Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रन्थ

सम्पादक

डॉ० आनन्द स्वरूप पाठक

श्री कन्हैयालाल चंचरीक

प्रकाशक

बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

करोल बाग, दिल्ली ५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रन्थ

सम्पादक

डॉ० आनन्द स्वरूप पाठक

श्री कन्हैयालाल चंचरीक

प्रकाशक

बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

करोल बाग, दिल्ली ५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

⊙⊙

बाबू वृन्दावनदास
अभिनन्दन - ग्रन्थ

⊙⊙

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास
अभिनन्दन-ग्रन्थ

⊙

संपादक

डॉ० आनन्द स्वरूप पाठक

श्री कन्हैयालाल 'चंचरीक'

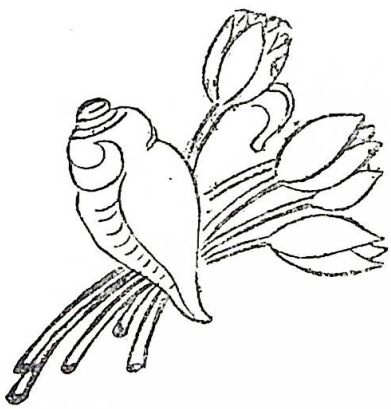

१९७५

बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

नई दिल्ली–५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रथमावृत्ति ११०० : सन् १९७५
मूल्य १०१.०० रुपये

⊙

प्रकाशक
बाबू वृन्दावनदास अभिनंदन ग्रंथ समिति
१९२ ई, देवनगर, करौल बाग
नई दिल्ली-५ [भारत]

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद-३
[भारत]

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी

अध्यक्ष

⊙

सम्पादन परामर्श

श्री अक्षय कुमार जैन	:	श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
डा० विजयेन्द्र स्नातक	:	डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित
श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	:	श्री शरदेन्दु
श्री सुधाकर पाण्डेय	:	प्रो० राजाराम शास्त्री
डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'	:	डा० कैलाशचन्द्र भाटिया
डा० गोपाल शर्मा	:	डा० कृष्णदत्त बाजपेयी
डा० चंद्रभान रावत	:	डा० महेन्द्र कुमार
डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	:	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	:	श्री अशोक वाजपेयी

सम्पादक

डा० आनन्द स्वरूप पाठक	:	श्री कन्हैयालाल 'चंचरीक'

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

⊙⊙

श्री चकलेश्वर सिंह

संसद् सदस्य

अध्यक्ष

⊙

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी	:	डा० कुसुम श्रीवास्तव
डा० रामस्वरूप आर्य	:	डा० माधुरी दुबे
डा० मलखान सिंह सिसौदिया	:	डा० राज बुद्धिराजा
डा० गणेशीलाल बुधौलिया	:	डा० माधुरी मिश्रा
डा० रघुवीर शरण 'व्यथित'	:	डा० अरुणा दीक्षित
डा० भगवान सहाय पचौरी	:	डा० कृष्णा रैना
डा० शरण बिहारी गोस्वामी	:	डा० हर्षनन्दिनी भाटिया
डा० ब्रज वल्लभ मिश्र	:	डा० विद्यावती नम्र
डा० राजेन्द्र रंजक चतुर्वेदी	:	डा० प्रेमलता पालीवाल
डा० श्याम सुन्दर बादल	:	डा० सुषमा अग्निहोत्री
डा० योगेन्द्र नाथ	:	डा० नजीर अहमद
डा० विष्णुदत्त 'राकेश'	:	डा० वसन्त यमदग्नि
डा० परमानन्द पांचाल	:	डा० ललन मिश्र
डा० विश्वनाथ अय्यर	:	डा० चन्द्रकान्त मुदलियार
श्री बनवारी लाल पाठक	:	श्री रमेश चन्द्र दुबे
डा० शिवाशंकर पांडे	:	श्री तेजनारायण टण्डन
श्री रामेश्वरदयाल उपाध्याय	:	डा० रामगोपाल चतुर्वेदी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

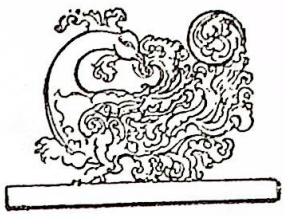

नमोवाक्

साहित्यिक कार्य विशाल जनायन पंथ है। सरस्वती के उदार प्रांगण में सबके लिए अवकाश है। साहित्यिक अनुष्ठानों में सबका आह्वान है। इस दृष्टि से सारस्वत अभिनन्दन की प्रथा विद्वज्जन सम्मत है। इस साहित्यिक अनुष्ठान में भी देश के श्रेण्य एवं वरेण्य साहित्य-मर्मज्ञों एवं विपश्चितों का सक्रिय सहयोग ही इसे पूर्णता के विन्दु तक लाने का एकमात्र आश्रय रहा है। सुधी लेखकों के प्रीतियुक्त साहित्यिक उपायनों से ग्रन्थ का मात्र कलेवर ही सुपुष्ट नहीं हुआ है, वरन् ज्ञानगंभीर सामग्री का संकलन भी हुआ है तथा साहित्य-वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी के प्रति उनके प्रेमाविल सम्बन्धों का द्योतन भी हुआ है। इस यज्ञ में जिन-जिन महानुभावों ने अपना प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग प्रदान किया है, उनके सौहार्द्रपूर्ण कार्यों के लिए 'नमोवाक्' अर्पित है।

ज्ञानवृद्ध एवं तपोवृद्ध मनीषियों के अभिनन्दन की परम्परा अत्यन्त पुरातन है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि :

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं वलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सनमन्तु॥

(सबके कल्याण की इच्छा से ऋषियों ने सर्वप्रथम तप और दीक्षा की उपासना की। उनके तप से ही राष्ट्र में वल और ओज उत्पन्न हुए, अतएव तपस्वियों को प्रणाम करो)।

वस्तुतः अभिनन्दन व्यक्ति का नहीं; शक्ति का, सद् और महत् कार्यों का होता है। बाबू वृन्दावन-दास जी जहाँ सत् कार्यों में निरत रहे हैं, वहाँ उनकी साहित्यिक सेवाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। अखिल भारतीय व्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जनपदीय परिषद् एवं व्रजभारती पत्रिका; सभी तो उनकी सेवाओं से लाभान्वित हुए हैं। आपके संकल्प सदैव शुभ और शिव होते हैं। उनके स्वयं के मतानुसार यजुर्वेद का यह मंत्र उनके जीवन का आलोक स्तम्भ रहा है :

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृप्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥ ——यजु ३४।६५

(जिस प्रकार उत्तम सारथि रथ के घोड़ों को उत्तम मार्ग पर चलाता है, उसी तरह हृदय में रहने वाला जरा-रहित सदा तरुण मन इस शरीर को चलाता है, वह शुभ संकल्पयुक्त हो)।

वावूजी के संकल्प शिवतम होते हैं और हृदय से मीढुष्टम हैं। साहित्य के क्षेत्र में बाबूजी का आगमन साहित्य और विशेष रूप से व्रजभाषा साहित्य के लिए एक अमृतमय सुयोग रहा है। उनके सुकार्यों और साहित्यिक कार्यों का अभिनन्दन करने का यह लघुतम प्रयास है।

हमारी तथा वावूजी के मित्रों और सहयोगियों की सद्भिलाषा है कि बाबू वृन्दावनदास जी का पुत्र-पौत्रीण रूप साहित्यिक यश की पावमानी स्थिति को प्राप्त हो और उनका जीवन शतसांवत्सरिक हो।

साभिनन्दन——

नई दिल्ली

——डॉ० आनन्द स्वरूप पाठक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

⊙⊙

श्री चकलेश्वर सिंह

संसद् सदस्य

अध्यक्ष

⊙

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी	:	डा० कुसुम श्रीवास्तव
डा० रामस्वरूप आर्य	:	डा० माधुरी दुबे
डा० मलखान सिंह सिसौदिया	:	डा० राज बुद्धिराजा
डा० गणेशीलाल बुधौलिया	:	डा० माधुरी मिश्रा
डा० रघुवीर शरण 'व्यथित'	:	डा० अरुणा दीक्षित
डा० भगवान सहाय पचौरी	:	डा० कृष्णा रैना
डा० शरण बिहारी गोस्वामी	:	डा० हर्षनन्दिनी भाटिया
डा० ब्रज वल्लभ मिश्र	:	डा० विद्यावती नम्र
डा० राजेन्द्र रंजक चतुर्वेदी	:	डा० प्रेमलता पालीवाल
डा० श्याम सुन्दर बादल	:	डा० सुषमा अग्निहोत्री
डा० योगेन्द्र नाथ	:	डा० नजीर अहमद
डा० विष्णुदत्त 'राकेश'	:	डा० वसन्त यमदग्नि
डा० परमानन्द पांचाल	:	डा० लल्लन मिश्र
डा० विश्वनाथ अय्यर	:	डा० चन्द्रकान्त मुदलियार
श्री बनवारी लाल पाठक	:	श्री रमेश चन्द्र दुबे
डा० शिवाशंकर पांडे	:	श्री तेजनारायण टण्डन
श्री रामेश्वरदयाल उपाध्याय	:	डा० रामगोपाल चतुर्वेदी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

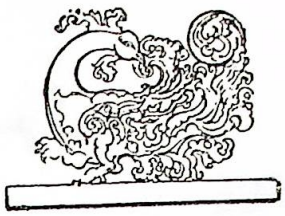

नमोवाक्

साहित्यिक कार्य विशाल जनायन पंथ है। सरस्वती के उदार प्रांगण में सबके लिए अवकाश है। साहित्यिक अनुष्ठानों में सबका आह्वान है। इस दृष्टि से सारस्वत अभिनन्दन की प्रथा विद्वज्जन सम्मत है। इस साहित्यिक अनुष्ठान में भी देश के श्रेण्य एवं वरेण्य साहित्य-मर्मज्ञों एवं विपश्चितों का सक्रिय सहयोग ही इसे पूर्णता के विन्दु तक लाने का एकमात्र आश्रय रहा है। सुधी लेखकों के प्रीतियुक्त साहित्यिक उपायनों से ग्रन्थ का मात्र कलेवर ही सुपुष्ट नहीं हुआ है, वरन् ज्ञानगंभीर सामग्री का संकलन भी हुआ है तथा साहित्य-वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी के प्रति उनके प्रेमाविल सम्बन्धों का द्योतन भी हुआ है। इस यज्ञ में जिन-जिन महानुभावों ने अपना प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग प्रदान किया है, उनके सौहार्द्रपूर्ण कार्यों के लिए 'नमोवाक्' अर्पित है।

ज्ञानवृद्ध एवं तपोवृद्ध मनीषियों के अभिनन्दन की परम्परा अत्यन्त पुरातन है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि :

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं वलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सनमन्तु॥

(सबके कल्याण की इच्छा से ऋषियों ने सर्वप्रथम तप और दीक्षा की उपासना की। उनके तप से ही राष्ट्र में वल और ओज उत्पन्न हुए, अतएव तपस्वियों को प्रणाम करो)।

वस्तुतः अभिनन्दन व्यक्ति का नहीं; शक्ति का, सद् और महत् कार्यों का होता है। बाबू वृन्दावन-दास जी जहाँ सत् कार्यों में निरत रहे हैं, वहाँ उनकी साहित्यिक सेवाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। अखिल भारतीय व्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जनपदीय परिषद् एवं व्रजभारती पत्रिका; सभी तो उनकी सेवाओं से लाभान्वित हुए हैं। आपके संकल्प सदैव शुभ और शिव होते हैं। उनके स्वयं के मतानुसार यजुर्वेद का यह मंत्र उनके जीवन का आलोक स्तम्भ रहा है :

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृप्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥ ——यजु ३४।६५

(जिस प्रकार उत्तम सारथि रथ के घोड़ों को उत्तम मार्ग पर चलाता है, उसी तरह हृदय में रहने वाला जरा-रहित सदा तरुण मन इस शरीर को चलाता है, वह शुभ संकल्पयुक्त हो)।

वावूजी के संकल्प शिवतम होते हैं और हृदय से मीढुष्टम हैं। साहित्य के क्षेत्र में वावूजी का आगमन साहित्य और विशेष रूप से व्रजभाषा साहित्य के लिए एक अमृतमय सुयोग रहा है। उनके सुकार्यों और साहित्यिक कार्यों का अभिनन्दन करने का यह लघुतम प्रयास है।

हमारी तथा वावूजी के मित्रों और सहयोगियों की सद्भिलाषा है कि बाबू वृन्दावनदास जी का पुत्र-पौत्रीण रूप साहित्यिक यश की पावमानी स्थिति को प्राप्त हो और उनका जीवन शतसांवत्सरिक हो।

साभिनन्दन——

नई दिल्ली

——डॉ० आनन्द स्वरूप पाठक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मंगलम्

⊙

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गै स्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।

—ऋग्वेद

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।

—यजुर्वेद

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहाँ ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।

—अथर्ववेद

यतोयतः समीहसे ततोनोऽअभयङ्कुरु ।
शन्नः कुरुप्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः ।

—यजुर्वेद

स्तुता मया वरदा वेदमाता ।
प्रचोदयन्ताँ पवमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं पशुंकीर्तिं द्रविणं ।
ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।

—अथर्ववेद

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

सम्पादक द्वय

डा० आनन्द स्वरूप पाठक

श्री कन्हैयालाल चंचरीक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदासजी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अनुक्रमणिका

⊙⊙

लेखक-परिचय

काव्याञ्जलि

⊙

१. शुभ-कामना : : श्री हृषीकेश चतुर्वेदी
२. मूक साधक : : : श्री बलवीर सिंह रंग
३. ब्रज वसुधा कौ सुधा : : श्री रामलला
४. जुग-जुग जिओ स्वस्थ रहि सेवहु ब्रज हिन्दी अधिकाई : . श्री अमृतलाल चतुर्वेदी
५. अमर रहे ब्रज रज रतन श्री वृन्दावनदास : : श्री ब्रजनन्दन गुप्त 'ब्रजेश'
६. ब्रज वारे वृन्दावनदास : : श्री राजेश दीक्षित
७. बाबू वृन्दावनदास के प्रति : : श्री रमेशचन्द्र दुबे
८. तुम्हें अर्पित सुमन श्रद्धा के · · श्री गौरीशंकर गुप्त
९. हिन्दी के देदीप्यमान नक्षत्र गगन के : : श्री ब्रजमोहन शर्मा 'मोहन'
१०. मनन मनस्वी, प्रखर तपस्वी, भाषा के सेनानी : : श्री गणेशलाल शर्मा 'प्राणेश'
११. शुभ साहित्यिक तीर्थ : : श्री ब्रजमोहन लाल सरवरिया
१२. ब्रजवाणी प्रतिनिधि बन आये तुम वृन्दावनदास : : श्री ब्रजमोहन पाण्डेय 'विनीत'
१३. अभिनन्दन : : श्री ब्रजेश
१४. बाबू वृन्दावनदास : : श्री थानसिंह सुभाषी
१५. राष्ट्रभाषा के पुजारी : : श्री कृष्ण शर्मा
१६. बाबू वृन्दावनदास : : डा० भवेश पचौरी

साधना खण्ड

⊙⊙

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

⊙

१. साहित्य-सेवी : : श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : : १
२. ब्रज के अनन्य साधक : : डा० सत्येन्द्र : : ४
३. बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न व्यक्तित्व : : डा० केदारदत्त तत्राड़ी : : ७
४. साहचर्य के संस्मरण : : डा० नारायणदत्त शर्मा : : ११
५. निर्मल समाज-सेवी : : श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' : : १७
६. बन्धुवर श्री वृन्दावनदास जी : : डा० बनारसीदास चतुर्वेदी : : २०
७. सदा सनमानें रहैं सब ठौरें : : डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : : २३
८. साहित्यक तीर्थ : : डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : : २५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

९. बाबू वृन्दावनदास : व्यक्तित्व और कृतित्व : : श्री तोताराम 'पंकज' : : २७
१०. साहित्य के निःस्वार्थ साधक : : श्री रमेशचन्द्र दुबे : : ३१
११. सम्पादकीय टिप्पणियों के वातायन से : : डा० रामस्वरूप आर्य : : ३६
१२. प्राचीन और अर्वाचीन का संगम : : डा० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : : ३७
१३. सेवापरायण महामानव : : ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी : : ३९
१४. साहित्य संत : : श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' : : ४१
१५. सौजन्यशील आदर्शवादी : : पं० उमाशंकर दीक्षित : : ४३
१६. लोक-साहित्य के प्रेरणा-स्रोत : : श्री तुलसी प्रसाद सहयोगी : : ४४
१७. ब्रजभाषा के परम पोषक : : डा० भगवानदास तिवारी : : ४६
१८. धुन के धनी : : श्री वेंकटलाल ओझा : : ४९
१९. अधिमानित अध्यक्ष : : श्री निरंकुश : : ५१
२०. अध्यवसायी और दृढ़निश्चयी : : श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी : : ५४
२१. ब्रज की विभूति : : डा० विश्वपाल शर्मा : : ५५
२२. सभा-सम्मेलनों के प्राण : : डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ : : ५८
२३. महारथी साहित्यकार : : डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : : ५९
२४. एक प्यारी यादगार : : श्री जी० पी० श्रीवास्तव : : ६०
२५. निष्णात पत्रलेखक : : डा० श्यामसुन्दर बादल : : ६२
२६. ब्रजभाषा के अनन्य आराधक : : श्री युगल किशोर चतुर्वेदी : : ६५
२७. सौम्य एवं समन्वयशील व्यक्तित्व : : डा० मलखानसिंह सिसौदिया : : ६७
२८. एकनिष्ठ साधक : : डा० राज बुद्धिराजा : : ७०
२९. साहित्य के अक्षयवट : : श्री परमानन्द पाण्डेय : : ७२
३०. विनम्रता के प्रतीक : : श्री मधुमोद के० रायजादा : : ७५
३१. प्रशस्त पुण्य-पंथ के पथिक : : डा० गनेशीलाल बुधौलिया : : ७८
३२. बहुविद् मृदुल व्यक्तित्व : : डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी : : ८१
३३. निष्ठावान : : श्री शंभुनाथ चतुर्वेदी : : ८२
३४. कतिपय संस्मरण : : श्री मधुसूदन चतुर्वेदी : : ८३
३५. साहित्यकारों के प्रेरणा-स्रोत : : श्री हरिश्चन्द्र प्रसाद : : ८६
३६. जनपदीय यज्ञ के पुरोधा बाबू वृन्दावनदास : : श्री रमण शाण्डिल्य : : ९०
३७. लोक-साहित्य के संरक्षक : : श्री रामनारायण उपाध्याय : : ९४
३८. एक समर्पित व्यक्तित्व : : डा० ललन मिश्र : : ९६
३९. साहित्य-मनीषी और जन-सेवक : : श्री केशवदेव मिश्र 'कमल' : : ९९
४०. उदारचेता साहित्यवेत्ता : : श्री रामेन्द्र मोहन त्रिपाठी : : १०१
४१. प्रखर राजनयज्ञ : : बा० अब्दुल गनी : : १०३
४२. निष्णात राजमर्मज्ञ : : मोहम्मद शाहमीर मलीहा : : १०५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

४३. मण्डल के सारथी : : आचार्य जुगल किशोर चतुर्वेदी : : १०७
४४. मूर्तिमंत सौजन्य : : श्री त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल : : ११०
४५. ब्रज साहित्य मंडल और बाबू वृन्दावनदास जी : : श्री मोहनलाल शर्मा : : ११२
४६. संस्कृति के उन्नायक : : श्री ज्वालाप्रसाद सिनहा : : ११४
४७. मेरे आचार्य : : श्री अयोध्या सिंह : : ११५
४८. निरहंकार और मिलनसार : : श्री रघुनाथ गुप्त : : ११६
४९. एक सौजन्यशील लोकप्रिय व्यक्तित्व : : चौधरी दिगम्बर सिंह : : ११७
५०. कुशल और जनप्रिय प्रशासक : : श्री अम्बादत्त : : ११९
५१. मर्मज्ञ संपादक : : श्री रामशंकर द्विवेदी : : १२०
५२. जनपदीय कार्यकर्ता की दृष्टि में : बाबू वृन्दावनदास : : श्री गणेश चौबे : : १३०
५३. आगरा मंडल के साहित्यिक कमिश्नर : : डा० राजेन्द्र रंजन : : १३३
५४. प्रतिभा के धनी : बाबू वृन्दावनदास जी : : श्री हुकुमचन्द्र तिवारी : : १३६
५५. ब्रज क्षेत्र के कर्मठ कर्णधार ! : : श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी : : १३८
५६. निर्वैर, कर्मठ और जीवन्त व्यक्तित्व : : डा० भगवानसहाय पचौरी : : १४०
५७. बाबू वृन्दावनदास : पूर्व के क्षितिज से : : आचार्य बैजनाथ राय : : १४२
५८. एक कर्मण्य व्यक्तित्व : : श्री ब्रजगोपाल भाटिया : : १४५
५९. साहित्य सेवारत व्यक्तित्व : : डा० भगतसिंह : : १४६
६०. वाग्मी और अध्ययनशील : : श्रीमती वी० पी० मेरी कुरियाकोज : : १४६
६१. नवीन लेखकों के निर्माता : : डा० नारायणदास गुप्त : : १४७
६२. शिव संकल्पवान : : श्री रामप्रसाद 'कमल' : : १४८
६३. विपश्चित साधक : : डा० रघुवीरशरण 'व्यथित' : : १५०
६४. मंडल के अग्रणी : : श्री रामेश्वर दयाल उपाध्याय : : १५०
६५. सत्यवाक्य एवं दृढ़व्रती : : डा० सोहनलाल शर्मा : : १५२
६६. पुनीत संकल्पवान : : श्री आनंद शंकर माधवन : : १५३
६७. ऋषिकल्प व्यक्तित्व : : डा० कृष्णकुमार गोस्वामी : : १५३
६८. विद्या-व्यसनी वरिष्ठ : : श्री ठाकुरदास : : १५४
६९. प्रबुद्ध एवं सजग लेखक : : कु० भारती दत्ता : : १५५
७०. विद्यावृद्ध एवं अभिनन्दनीय : : डा० शिवांशंकर पांडे : : १५६
७१. आदर्श प्रतिवेशी : : श्री राधागोविन्द जोशी : : १५६
७२. अहर्निशं सेवामहे : : डा० शंकरलाल चतुर्वेदी : : १५७
७३. एक पारदर्शी सौम्य-व्यक्तित्व : : डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' : : १५८
७४. नीतिमान एवं प्रभविष्णु : : श्री हृदयेश नारायण चतुर्वेदी : : १५९
७५. वृन्दावनोऽसौ नय यज्ञ यूपः : : डा० हरिदत्त शास्त्री : : १६०
७६. ब्रज संस्कृति के उद्गाता : : श्री जगदीश प्रसाद गुप्त : : १६२

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

९. बाबू वृन्दावनदास : व्यक्तित्व और कृतित्व : : श्री तोताराम 'पंकज' : : २७
१०. साहित्य के निःस्वार्थ साधक : : श्री रमेशचन्द्र दुबे : : ३१
११. सम्पादकीय टिप्पणियों के वातायन से : : डा० रामस्वरूप आर्य : : ३६
१२. प्राचीन और अर्वाचीन का संगम : : डा० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : : ३७
१३. सेवापरायण महामानव : : ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी : : ३९
१४. साहित्य संत : : श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' : : ४१
१५. सौजन्यशील आदर्शवादी : : पं० उमाशंकर दीक्षित : : ४३
१६. लोक-साहित्य के प्रेरणा-स्रोत : : श्री तुलसी प्रसाद सहयोगी : : ४४
१७. ब्रजभाषा के परम पोषक : : डा० भगवानदास तिवारी : : ४६
१८. धुन के धनी : : श्री वेंकटलाल ओझा : : ४९
१९. अधिमानित अध्यक्ष : : श्री निरंकुश : : ५१
२०. अध्यवसायी और दृढ़निश्चयी : : श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी : : ५४
२१. ब्रज की विभूति : : डा० विश्वपाल शर्मा : : ५५
२२. सभा-सम्मेलनों के प्राण : : डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ : : ५८
२३. महारथी साहित्यकार : : डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : : ५९
२४. एक प्यारी यादगार : : श्री जी० पी० श्रीवास्तव : : ६०
२५. निष्णात पत्रलेखक : : डा० श्यामसुन्दर बादल : : ६२
२६. ब्रजभाषा के अनन्य आराधक : : श्री युगल किशोर चतुर्वेदी : : ६५
२७. सौम्य एवं समन्वयशील व्यक्तित्व : : डा० मलखानसिंह सिसौदिया : : ६७
२८. एकनिष्ठ साधक : : डा० राज बुद्धिराजा : : ७०
२९. साहित्य के अक्षयवट : : श्री परमानन्द पाण्डेय : : ७२
३०. विनम्रता के प्रतीक : : श्री मधुमोद के० रायजादा : : ७५
३१. प्रशस्त पुण्य-पंथ के पथिक : : डा० गनेशीलाल बुधौलिया : : ७८
३२. बहुविद् मृदुल व्यक्तित्व : : डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी : : ८१
३३. निष्ठावान : : श्री शंभुनाथ चतुर्वेदी : : ८२
३४. कतिपय संस्मरण : : श्री मधुसूदन चतुर्वेदी : : ८३
३५. साहित्यकारों के प्रेरणा-स्रोत : : श्री हरिश्चन्द्र प्रसाद : : ८६
३६. जनपदीय यज्ञ के पुरोधा बाबू वृन्दावनदास : : श्री रमण शाण्डिल्य : : ९०
३७. लोक-साहित्य के संरक्षक : : श्री रामनारायण उपाध्याय : : ९४
३८. एक समर्पित व्यक्तित्व : : डा० लल्लन मिश्र : : ९६
३९. साहित्य-मनीषी और जन-सेवक : : श्री केशवदेव मिश्र 'कमल' : : ९९
४०. उदारचेता साहित्यवेत्ता : : श्री रामेन्द्र मोहन त्रिपाठी : : १०१
४१. प्रखर राजनयज्ञ : : वा० अब्दुल गनी : : १०३
४२. निष्णात राजमर्मज्ञ : : मोहम्मद शाहमीर मलीहा : : १०५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

४३. मण्डल के सारथी : : आचार्य जुगल किशोर चतुर्वेदी : : १०७
४४. मूर्तिमंत सौजन्य : : श्री त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल : : ११०
४५. ब्रज साहित्य मंडल और बाबू वृन्दावनदास जी : : श्री मोहनलाल शर्मा : : ११२
४६. संस्कृति के उन्नायक : : श्री ज्वालाप्रसाद सिनहा : : ११४
४७. मेरे आचार्य : : श्री अयोध्या सिंह : : ११५
४८. निरहंकार और मिलनसार : : श्री रघुनाथ गुप्त : : ११६
४९. एक सौजन्यशील लोकप्रिय व्यक्तित्व : : चौधरी दिगम्बर सिंह : : ११७
५०. कुशल और जनप्रिय प्रशासक : : श्री अम्बादत्त : : ११९
५१. मर्मज्ञ संपादक : : श्री रामशंकर द्विवेदी : : १२०
५२. जनपदीय कार्यकर्ता की दृष्टि में : बाबू वृन्दावनदास : : श्री गणेश चौबे : : १३०
५३. आगरा मंडल के साहित्यिक कमिश्नर : : डा० राजेन्द्र रंजन : : १३३
५४. प्रतिभा के धनी : बाबू वृन्दावनदास जी : : श्री हुकुमचन्द्र तिवारी : : १३६
५५. ब्रज क्षेत्र के कर्मठ कर्णधार ! : : श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी : : १३८
५६. निर्वैर, कर्मठ और जीवन्त व्यक्तित्व : : डा० भगवानसहाय पचौरी : : १४०
५७. बाबू वृन्दावनदास : पूर्व के क्षितिज से : : आचार्य बैजनाथ राय : : १४२
५८. एक कर्मण्य व्यक्तित्व : : श्री ब्रजगोपाल भाटिया : : १४५
५९. साहित्य सेवारत व्यक्तित्व : : डा० भगतसिंह : : १४६
६०. वाग्मी और अध्ययनशील : : श्रीमती वी० पी० मेरी कुरियाकोज : : १४६
६१. नवीन लेखकों के निर्माता : : डा० नारायणदास गुप्त : : १४७
६२. शिव संकल्पवान : : श्री रामप्रसाद 'कमल' : : १४८
६३. विपश्चित साधक : : डा० रघुवीरशरण 'व्यथित' : : १५०
६४. मंडल के अग्रणी : : श्री रामेश्वर दयाल उपाध्याय : : १५०
६५. सत्यवाक्य एवं दृढ़व्रती : : डा० सोहनलाल शर्मा : : १५२
६६. पुनीत संकल्पवान : : श्री आनंद शंकर माधवन : : १५३
६७. ऋषिकल्प व्यक्तित्व : : डा० कृष्णकुमार गोस्वामी : : १५३
६८. विद्या-व्यसनी वरिष्ठ : : श्री ठाकुरदास : : १५४
६९. प्रबुद्ध एवं सजग लेखक : : कु० भारती दत्ता : : १५५
७०. विद्यावृद्ध एवं अभिनन्दनीय : : डा० शिवांशंकर पांडे : : १५६
७१. आदर्श प्रतिवेशी : : श्री राधागोविन्द जोशी : : १५६
७२. अहर्निशं सेवामहे : : डा० शंकरलाल चतुर्वेदी : : १५७
७३. एक पारदर्शी सौम्य-व्यक्तित्व : : डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' : : १५८
७४. नीतिमान एवं प्रभविष्णु : : श्री हृदयेश नारायण चतुर्वेदी : : १५९
७५. वृन्दावनोऽसौ नय यज्ञ यूपः : : डा० हरिदत्त शास्त्री : : १६०
७६. ब्रज संस्कृति के उद्गाता : : श्री जगदीश प्रसाद गुप्त : : १६२

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

७७. राष्ट्रभाषा के सेवक : : डा० जगदीश बाजपेयी . १६३
७८. दंभहीन और स्नेही व्यक्तित्व : : श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी : : १६३
७९. साहित्य-वारिधि : : डा० लक्ष्मीनारायण दुबे : : १६४
८०. राष्ट्रभाषा उन्नयन महायज्ञ के होता : : श्री सूरज प्रसाद मिश्र : : १६६
८१. पुण्यश्लोक साहित्य-सेवी : : डा० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : : १६७
८२. प्रौढ़ लेखक एवं समालोचक : : श्री जयवीरसिंह चौहान : : १६८
८३. भ्राजिष्णु अध्यक्ष : : डा० परमात्मा शरण बंसल : : १६८
८४. पत्रविधा के उन्नायक : : डा० सरलादेवी : : १६९
८५. योजकस्तत्र दुर्लभः : : डा० देवेशचन्द्र : : १६९
८६. मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवतः : : कु० मीनाक्षी : : १७०
८७. वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां : : डा० शरण बिहारी गोस्वामी : : १७१
८८. स्पृहणीय साहित्य-सेवी : : श्री रामनगीना राय : : १७२
८९. उनके अभिनन्दन में : : श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : : १७३
९०. एक प्रखर व्यक्तित्व : : श्री रामगोपाल 'परदेशी' : : १७४
९१. मेरा नमन : : श्री हरगोविन्द गुप्त : : १७५
९२. शत-शत वन्दन : : श्री देवकीनन्दन शर्मा : : १७७
९३. समारोहों के आयोजक : : डा० विश्वदेव शर्मा : : १७७
९४. सौमनस्य की मूर्ति : : डा० राजेन्द्र सिंह कुशवाहा : : १७८
९५. हिन्दी के जागरूक प्रहरी : : डा० एम० खान दुर्रानी : : १७९
९६. धन्य व्यक्तित्व : : श्री देवेन्द्रदत्त नौटियाल : : १८०
९७. साहित्यज्ञों के आराधक : : डा० जगदीश प्रसाद गुप्त : : १८०
९८. बाबू वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व व कृतित्व : : श्री राधेविहारीलाल सक्सेना 'राकेश' : : १८१
९९. क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे : : श्री कमल कुमार मेहरोत्रा : : १८५
१००. पुष्ट प्रतिमानों के पोषक : : डा० अरुणा दीक्षित : : १८६
१०१. बहुमुखी प्रतिभा के धनी : : श्री कौसलाधीश मिश्र : : १८७
१०२. मूर्तिमंत सदाशयता : : श्री राधाकान्त भारती : : १८८
१०३. साहित्यनिष्ठ : : श्री अफलासिंह वर्मा : : १८८
१०४. अभिनव चैतन्य बाबूजी : : डा० प्रेमलता पालीवाल : : १८९
१०५. एक निराला व्यक्तित्व : बा० वृन्दावनदास : : श्री अवधेश नारायण सिंह : : १९१
१०६. अविस्मरणीय व्यक्तित्व : : श्री महेशचन्द्र गर्ग : : १९२
१०७. हिन्दीमय व्यक्तित्व : : डा० द्वारिका प्रसाद मीतल : : १९३
१०८. पत्र-साहित्य के संकलनकर्ता : : डा० माधुरी दुबे : : १९४
१०९. मण्डल के स्थपति : : डा० रामकुमार मिश्र : : १९४
११०. ब्रजभारती के त्राता : : श्री राजमणि तिवारी : : १९५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१११. अभिनन्दन : : श्री कृष्णकुमार सराफ : : १९६
११२. ब्रजभाषा-सेवी का अभिनन्दन : : श्री वद्रीसिंह : : १९६
११३. शास्त्रवेत्ता एवं साहित्यज्ञाता : : श्री यशपाल रावत : : १९७
११४. सरल एवं निरभिमानी : : श्री रामकुमार मिश्र : : १९७
११५. प्रबुद्ध एवं परिश्रमशील : : श्री सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर : : १९८
११६. अन्तः-जनपदीय-परिषद के कर्णधार : : श्री कुलदीप नारायण 'झड़प' : : १९९
११७. मंडल एवं तदाकार व्यक्तित्व : : डा० लक्ष्मीनारायण गर्ग : : २००
११८. जीवेम शरदः शतम् : : श्री नन्दकिशोर पाठक : : २००

आराधना खण्ड

⊙⊙

साहित्य और भाषा-शास्त्र

⊙

१. सुन्दर की व्युत्पत्ति और पर्याय : : डा० रामदत्त भारद्वाज : : २०१
२. हिन्दी आचार्यत्व : : डा० विजयपाल सिंह : : २०८
३. संघरक्षित और उनका सुबोधालंकार : : डा० ब्रह्म मित्र अवस्थी : : २२०
४. 'चित्रालंकार' साहित्य की अनुपम कृति 'कंकण-वन्ध-रामायण' : : डा० रुद्रदेव त्रिपाठी : : २२६
५. नाट्य-शास्त्र की पूर्ववर्ती-परम्परा : : डा० ब्रजबल्लभ मिश्र : : २३०
६. रामायण-सौन्दर्य : : डा० पाण्डुरंग राव : : २३४
७. संस्कृत-साहित्य में नारी-चित्रण : : डा० (श्रीमती) तुलसी मिश्र : : २३८
२८. हिन्दी और तेलगु का आदिकालीन साहित्य : : डा० जी० सुन्दर रेड्डी : : २४३
९. मलयालम का भक्ति-साहित्य : : डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर : : २४८
१०. तेलुगु के प्रमुख गीतिकार कवि : : डा० के० रामनाथन् : : २५२
११. तिरुमल-तिरुपति और श्री वल्लभाचार्य : : डा० एम० संगमेशम् : : २५७
१२. भारती और भारतेन्दु : : डा० चन्द्रकान्त मुदालियर : : २६२
१३. प्रेम-भक्ति के वातायन से कबीर : : डा० कुसुम श्रीवास्तव : : २६५
१४. तुलसी की विनय-पत्रिका में भक्ति के विविध भाव : : डा० (श्रीमती) माधुरी मिश्र : : २७०
१५. तुलसी और ब्राह्मणवाद : : डा० उदयभान मिश्र : : २७४
१६. रीतिकालीन साहित्य का भौगोलिक विस्तार : : डा० वै० वेंकट रमण राव : : २७९
१७. रीतिकालीन हिन्दी का शाक्त-साहित्य और आचार्य कुलपति मिश्र : : डा० विष्णुदत्त 'राकेश' : : २८७
१८. रीतिकालीन वीरकाव्य 'दिग्विजय' : : प्रो० नर्मदा प्रसाद गुप्त : : २९४
१९. बोधीदास कृत जोगवसिष्ठ कथा : : डा० सुधाकर मिश्र : : ३००
२०. भक्त कवि भीखजन : : डा० कन्हैयालाल सहल : : ३०५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

७७. राष्ट्रभाषा के सेवक : : डा० जगदीश बाजपेयी . १६३
७८. दंभहीन और स्नेही व्यक्तित्व : : श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी : : १६३
७९. साहित्य-वारिधि : : डा० लक्ष्मीनारायण दुबे : : १६४
८०. राष्ट्रभाषा उन्नयन महायज्ञ के होता : : श्री सूरज प्रसाद मिश्र : : १६६
८१. पुण्यश्लोक साहित्य-सेवी : : डा० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : : १६७
८२. प्रौढ़ लेखक एवं समालोचक : : श्री जयवीरसिंह चौहान : : १६८
८३. भ्राजिष्णु अध्यक्ष : : डा० परमात्मा शरण बंसल : : १६८
८४. पत्रविधा के उन्नायक : : डा० सरलादेवी : : १६९
८५. योजकस्तत्र दुर्लभः : : डा० देवेशचन्द्र : : १६९
८६. मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवतः : : कु० मीनाक्षी : : १७०
८७. वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां : : डा० शरण बिहारी गोस्वामी : : १७१
८८. स्पृहणीय साहित्य-सेवी : : श्री रामनगीना राय : : १७२
८९. उनके अभिनन्दन में : : श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : : १७३
९०. एक प्रखर व्यक्तित्व : : श्री रामगोपाल 'परदेशी' : : १७४
९१. मेरा नमन : : श्री हरगोविन्द गुप्त : : १७५
९२. शत-शत वन्दन : : श्री देवकीनन्दन शर्मा : : १७७
९३. समारोहों के आयोजक : : डा० विश्वदेव शर्मा : : १७७
९४. सौमनस्य की मूर्ति : : डा० राजेन्द्र सिंह कुशवाहा : : १७८
९५. हिन्दी के जागरूक प्रहरी : : डा० एम० खान दुर्रानी : : १७९
९६. धन्य व्यक्तित्व : : श्री देवेन्द्रदत्त नौटियाल : : १८०
९७. साहित्यज्ञों के आराधक : : डा० जगदीश प्रसाद गुप्त : : १८०
९८. बाबू वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व व कृतित्व : : श्री राधेविहारीलाल सक्सेना 'राकेश' : : १८१
९९. क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे : : श्री कमल कुमार मेहरोत्रा : : १८५
१००. पुष्ट प्रतिमानों के पोषक : : डा० अरुणा दीक्षित : : १८६
१०१. बहुमुखी प्रतिभा के धनी : : श्री कौसलाधीश मिश्र : : १८७
१०२. मूर्तिमंत सदाशयता : : श्री राधाकान्त भारती : : १८८
१०३. साहित्यनिष्ठ : : श्री अफलासिंह वर्मा : : १८८
१०४. अभिनव चैतन्य बाबूजी : : डा० प्रेमलता पालीवाल : : १८९
१०५. एक निराला व्यक्तित्व : बा० वृन्दावनदास : : श्री अवधेश नारायण सिंह : : १९१
१०६. अविस्मरणीय व्यक्तित्व : : श्री महेशचन्द्र गर्ग : : १९२
१०७. हिन्दीमय व्यक्तित्व : : डा० द्वारिका प्रसाद सीतल : : १९३
१०८. पत्र-साहित्य के संकलनकर्ता : : डा० माधुरी दुबे : : १९४
१०९. मण्डल के स्थपति : : डा० रामकुमार मिश्र : : १९४
११०. ब्रजभारती के त्राता : : श्री राजमणि तिवारी : : १९५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१११. अभिनन्दन : : श्री कृष्णकुमार सराफ : : १९६
११२. ब्रजभाषा-सेवी का अभिनन्दन : : श्री बद्रीसिंह : : १९६
११३. शास्त्रवेत्ता एवं साहित्यज्ञाता : : श्री यशपाल रावत : : १९७
११४. सरल एवं निरभिमानी : : श्री रामकुमार मिश्र : : १९७
११५. प्रबुद्ध एवं परिश्रमशील : : श्री सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर : : १९८
११६. अन्तः-जनपदीय-परिषद के कर्णधार : : श्री कुलदीप नारायण 'झड़प' : : १९९
११७. मंडल एवं तदाकार व्यक्तित्व : : डा० लक्ष्मीनारायण गर्ग : : २००
११८. जीवेम शरदः शतम् : : श्री नन्दकिशोर पाठक : : २००

आराधना खण्ड

⊙⊙

साहित्य और भाषा-शास्त्र

⊙

१. सुन्दर की व्युत्पत्ति और पर्याय : : डा० रामदत्त भारद्वाज : : २०१
२. हिन्दी आचार्यत्व : : डा० विजयपाल सिंह : : २०८
३. संघरक्षित और उनका सुबोधालंकार : : डा० ब्रह्म मित्र अवस्थी : : २२०
४. 'चित्रालंकार' साहित्य की अनुपम कृति 'कंकण-बन्ध-रामायण' : : डा० रुद्रदेव त्रिपाठी : : २२६
५. नाट्य-शास्त्र की पूर्ववर्ती-परम्परा : : डा० ब्रजवल्लभ मिश्र : : २३०
६. रामायण-सौन्दर्य : : डा० पाण्डुरंग राव : : २३४
७. संस्कृत-साहित्य में नारी-चित्रण : : डा० (श्रीमती) तुलसी मिश्र : : २३८
२८. हिन्दी और तेलगु का आदिकालीन साहित्य : : डा० जी० सुन्दर रेड्डी : : २४३
९. मलयालम का भक्ति-साहित्य : : डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर : : २४८
१०. तेलुगु के प्रमुख गीतिकार कवि : : डा० के० रामनाथन् : : २५२
११. तिरुमल-तिरुपति और श्री वल्लभाचार्य : : डा० एम० संगमेशम् : : २५७
१२. भारती और भारतेन्दु : : डा० चन्द्रकान्त मुदालियर : : २६२
१३. प्रेम-भक्ति के वातायन से कबीर : : डा० कुसुम श्रीवास्तव : : २६५
१४. तुलसी की विनय-पत्रिका में भक्ति के विविध भाव : : डा० (श्रीमती) माधुरी मिश्र : : २७०
१५. तुलसी और ब्राह्मणवाद : : डा० उदयभान मिश्र : : २७४
१६. रीतिकालीन साहित्य का भौगोलिक विस्तार : : डा० वै० वेंकट रमण राव : : २७९
१७. रीतिकालीन हिन्दी का शाक्त-साहित्य और आचार्य कुलपति मिश्र : : डा० विष्णुदत्त 'राकेश' : : २८७
१८. रीतिकालीन वीरकाव्य 'दिग्विजय' : : प्रो० नर्मदा प्रसाद गुप्त : : २९४
१९. बोधीदास कृत जोगवसिष्ठ कथा : : डा० सुधाकर मिश्र : : ३००
२०. भक्त कवि भीखजन : : डा० कन्हैयालाल सहल : : ३०५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२१. गोस्वामी राधाचरण : प्रामाणिक रचनाएँ : : डा० केदारदत्त तवाड़ी : : ३०७
२२. हिन्दी रंगमंच को पं० नारायण प्रसाद जी 'बेताब' की देन : : डा० विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र : : ३१०
२३. कामायनी में चतुर्युगीन मानव-विकास का इतिहास : : डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना : : ३१६
२४. प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र : : डा० गिरिवरधारी सिंह : : ३२०
२५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास की भूमिका : : डा० रणवीर रांग्रा : : ३२५
२६. प्रकृतिवादी यथार्थवाद : : डा० श्यामनारायण शुक्ल : : ३३०
२७. तमिल प्रदेश के लोक-जीवन में कृष्णभक्ति : : डा० पी० जयरामन : : ३३५
२८. कविवर 'उपाध्याय', 'गुप्त' एवं 'प्रसाद' का ब्रजभाषा-काव्य : : कु० नरेश अरोड़ा : : ३४०
२९. वीसलदेव रास में लोकतत्व : : डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' : : ३४४
३०. कबीर : व्यक्तित्व और कृतित्व : : श्री सुरेशचन्द्र मिश्र : : ३५१
३१. हास्य और व्यंग का स्वरूप : : डा० गिरिराज शरण अग्रवाल : : ३५५
३२. उपसर्ग अनुशीलन : : डा० आनन्द स्वरूप पाठक : : ३६३
३३. कश्मीरी भाषा और लिपि : : डा० कृष्णा रैना : : ३६९
३४. कारक और विभक्ति की संकल्पना : : डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' : : ३७५
३५. गीति काव्य का प्रथम कवि 'उमापति' : : डा० केशवदेव शर्मा : : ३८४
३६. कवियित्री ताजकृत 'बीबी-बांदी का झगड़ा' : : श्री क्षेत्रपाल शर्मा : : ३८७
३७. प्रेमयोगिनी मीराँ : : कु० लक्ष्मी मिश्रा : : ३८९
३८. ब्रजभाषा : माधुर्य का ध्वनितात्विक आधार : : डा० चन्द्रभान रावत : : ३९४
३९. ब्रज-गौरव : ग्वालकवि : : डा० भगवान सहाय पचौरी : : ४२४
४०. भारतीय आर्यभाषाओं में अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की परम्परा : : डा० श्रीपति शर्मा जोशी : : ४३५
४१. ब्रजभाषा के विविध सोपान : : डा० आनन्द स्वरूप पाठक : : ४४०
४२. खुसरो का जनकाव्य : : श्री महावीर सिंह शर्मा : : ४४६

नीराजना खण्ड

⊙⊙

ब्रजभाषा-साहित्य और संस्कृति

⊙

१. सांख्य दर्शन की दृष्टि से पुष्टिमार्गीय सेवा का महत्व : : डा० गोवर्द्धननाथ शुक्ल : : ४४९
२. हित चौरासी : एक दिव्य भक्तिकाव्य : : डा० विजयेन्द्र स्नातक : : ४५३
३. सूरति मिश्र कृत 'काव्य सिद्धान्त' और लाल कवि की अज्ञात टीका : : डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित : : ४६६
४. मीरा के काव्य में प्रेम का स्वरूप : : डा० रमेश आंगिरस : : ४७२
५. चाँचर का ब्रज साहित्य में उद्भव और विकास : : डा० नजीर मुहम्मद : : ४७६

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

६. कवि रहीम कृत नगर-शोभा : : डा० बालकृष्ण 'अकिंचन' : : ४८२
७. सन्त कवि सूर स्वामी और उनका काव्य : : डा० गोपाल बाबू शर्मा : : ४९१
८. चैतन्य सम्प्रदाय की ब्रज को देन : : डा० श्याम शर्मा : : ४९५
९. केरल का ब्रजभाषा साहित्य : : श्रीमती आनन्द लक्ष्मी अय्यर : : ५०५
१०. मालवी लोक साहित्य पर ब्रज लोक साहित्य का प्रभाव : : श्री मदन भगीरथ शर्मा : : ५०९
११. ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि घासीराम व्यास : : श्री रामचरण हयारण 'मित्र' : : ५१३
१२. काव्याचार्य ब्रजेश के काव्य में शब्दालंकार : : डा० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : : ५१६
१३. ब्रजी का ऐतिहासिक काव्य गढ़—पथैना रासो : : डा० विष्णुचन्द्र पाठक : : ५१९
१४. रासलीला : : श्रीमती सुधा भार्गव : : ५२२
१५. आधुनिक ब्रज-गद्यधारा : : डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : : ५२६
१६. पूंछरी कौ लौठा : कुहरे में रंगीन चीख : : डा० सुषमा अग्निहोत्री : : ५३४
१७. ब्रजकाव्य में होली : : श्री कन्हैयालाल 'चंचरीक' : : ५३८
१८. ब्रजभाषा का सार्वदेशिक रूप : : श्री निशेन्दु ओझा : : ५४२
१९. ब्रज के तीन प्रमुख रसियाकार : : डा० वसन्त यामदग्नि : : ५४९
२०. ब्रज के लोक-गायक सुखई : : श्री बाबूराम पालीवाल : : ५५७
२१. ब्रज की लोक-कलाएँ : : डा० कैलाशचन्द्र भाटिया : : ५६१
२२. ब्रज की वास्तु तथा मूर्तिकला : : डा० कृष्णदत्त वाजपेयी : : ५६५
२३. ब्रज में नृत्य और रास : पुरातात्विक साक्ष्य : : श्री रमेशचन्द्र शर्मा : : ५७१
२४. मथुरा-कला में वाद्ययंत्र : : श्री शिवदयाल त्रिवेदी : : ५७६
२५. ब्रज का काम्यक वन : : श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश' : : ५८०
२६. बुद्धकालीन ब्रज में यक्ष : : श्री मधुकर 'पिप्पलायन' : : ५८२
२७. ब्रज के पोखर, कूप तथा सरोवर : : डा० (श्रीमती) हर्षनन्दिनी भाटिया : : ५८६
२८. ब्रज के लोकोत्सव और पर्व : : श्री मोहन स्वरूप भाटिया : : ५९२
२९. ब्रज के फूलडोल एवं फूलबंगले : : श्री श्याम सुन्दर चतुर्वेदी, : : ५९८
३०. ब्रज में शरद ऋतु की महिमा : : डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी : : ६०२
३१. वैष्णव मन्दिरों में सेवा-भोग और श्रृंगार : : डा० गोपाल शर्मा : : ६०६
३२. ब्रजभाषा का गौरवपूर्ण अतीत और भविष्य की संभावनाएँ : : डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : : ६१०
३३. ब्रज का उदारवादी दृष्टिकोण : : श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : : ६१६
३४. ब्रज का रास रंगमंच और उसका भारतीय ललित कलाओं पर प्रभाव : : श्री रामनारायण अग्रवाल : : ६२२
३५. कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला : : डा० हरिकृष्ण देवसरे : : ६३३
३६. ब्रजभाषा का चिट्ठी-पत्री साहित्य : : श्री बनवारी लाल पाठक : : ६३८
३७. सुखदेव कृत वाणिज्य नीति : : डा० महेन्द्र कुमार : : ६४२
३८. लाख : एक चमत्कारी कवि : : श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव : : ६४९

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२१. गोस्वामी राधाचरण : प्रामाणिक रचनाएँ : : डा० केदारदत्त तवाड़ी : : ३०७
२२. हिन्दी रंगमंच को पं० नारायण प्रसाद जी 'बेताब' की देन : : डा० विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र : : ३१०
२३. कामायनी में चतुर्युगीन मानव-विकास का इतिहास : : डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना : : ३१६
२४. प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र : : डा० गिरिवरधारी सिंह : : ३२०
२५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास की भूमिका : : डा० रणवीर रांग्रा : : ३२५
२६. प्रकृतिवादी यथार्थवाद : : डा० श्यामनारायण शुक्ल : : ३३०
२७. तमिल प्रदेश के लोक-जीवन में कृष्णभक्ति : : डा० पी० जयरामन : : ३३५
२८. कविवर 'उपाध्याय', 'गुप्त' एवं 'प्रसाद' का ब्रजभाषा-काव्य : : कु० नरेश अरोड़ा : : ३४०
२९. वीसलदेव रास में लोकतत्व : : डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' : : ३४४
३०. कबीर : व्यक्तित्व और कृतित्व : : श्री सुरेशचन्द्र मिश्र : : ३५१
३१. हास्य और व्यंग का स्वरूप : : डा० गिरिराज शरण अग्रवाल : : ३५५
३२. उपसर्ग अनुशीलन : : डा० आनन्द स्वरूप पाठक : : ३६३
३३. कश्मीरी भाषा और लिपि : : डा० कृष्णा रैना : : ३६९
३४. कारक और विभक्ति की संकल्पना : : डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' : : ३७५
३५. गीति काव्य का प्रथम कवि 'उमापति' : : डा० केशवदेव शर्मा : : ३८४
३६. कवियित्री ताजकृत 'बीबी-बांदी का झगड़ा' : : श्री क्षेत्रपाल शर्मा : : ३८७
३७. प्रेमयोगिनी मीराँ : : कु० लक्ष्मी मिश्रा : : ३८९
३८. ब्रजभाषा : माधुर्य का ध्वनितात्विक आधार : : डा० चन्द्रभान रावत : : ३९४
३९. ब्रज-गौरव : ग्वालकवि : : डा० भगवान सहाय पचौरी : : ४२४
४०. भारतीय आर्यभाषाओं में अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की परम्परा : : डा० श्रीपति शर्मा जोशी : : ४३५
४१. ब्रजभाषा के विविध सोपान : : डा० आनन्द स्वरूप पाठक : : ४४०
४२. खुसरो का जनकाव्य : : श्री महावीर सिंह शर्मा : : ४४६

नीराजना खण्ड

⊙⊙

ब्रजभाषा-साहित्य और संस्कृति

⊙

१. सांख्य दर्शन की दृष्टि से पुष्टिमार्गीय सेवा का महत्व : : डा० गोवर्द्धननाथ शुक्ल : : ४४९
२. हित चौरासी : एक दिव्य भक्तिकाव्य : : डा० विजयेन्द्र स्नातक : : ४५३
३. सूरति मिश्र कृत 'काव्य सिद्धान्त' और लाल कवि की अज्ञात टीका : : डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित : : ४६६
४. मीरा के काव्य में प्रेम का स्वरूप : : डा० रमेश आंगिरस : : ४७२
५. चाँचर का ब्रज साहित्य में उद्भव और विकास : : डा० नजीर मुहम्मद : : ४७६

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

६. कवि रहीम कृत नगर-शोभा : : डा० बालकृष्ण 'अकिंचन' : : ४८२
७. सन्त कवि सूर स्वामी और उनका काव्य : : डा० गोपाल बाबू शर्मा : : ४९१
८. चैतन्य सम्प्रदाय की ब्रज को देन : : डा० श्याम शर्मा : : ४९५
९. केरल का ब्रजभाषा साहित्य : : श्रीमती आनन्द लक्ष्मी अय्यर : : ५०५
१०. मालवी लोक साहित्य पर ब्रज लोक साहित्य का प्रभाव : : श्री मदन भगीरथ शर्मा : : ५०९
११. ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि घासीराम व्यास : : श्री रामचरण हयारण 'मित्र' : : ५१३
१२. काव्याचार्य ब्रजेश के काव्य में शब्दालंकार : : डा० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : : ५१६
१३. ब्रजी का ऐतिहासिक काव्य गढ़—पथैना रासो : : डा० विष्णुचन्द्र पाठक : : ५१९
१४. रासलीला : : श्रीमती सुधा भार्गव : : ५२२
१५. आधुनिक ब्रज-गद्यधारा : : डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : : ५२६
१६. पूंछरी कौ लौठा : कुहरे में रंगीन चीख : : डा० सुषमा अग्निहोत्री : : ५३४
१७. ब्रजकाव्य में होली : : श्री कन्हैयालाल 'चंचरीक' : : ५३८
१८. ब्रजभाषा का सार्वदेशिक रूप : : श्री निशेन्दु ओझा : : ५४२
१९. ब्रज के तीन प्रमुख रसियाकार : : डा० वसन्त यामदग्नि : : ५४९
२०. ब्रज के लोक-गायक सुखई : : श्री बाबूराम पालीवाल : : ५५७
२१. ब्रज की लोक-कलाएँ : : डा० कैलाशचन्द्र भाटिया : : ५६१
२२. ब्रज की वास्तु तथा मूर्तिकला : : डा० कृष्णदत्त वाजपेयी : : ५६५
२३. ब्रज में नृत्य और रास : पुरातात्विक साक्ष्य : : श्री रमेशचन्द्र शर्मा : : ५७१
२४. मथुरा-कला में वाद्ययंत्र : : श्री शिवदयाल त्रिवेदी : : ५७६
२५. ब्रज का काम्यक वन : : श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश' : : ५८०
२६. बुद्धकालीन ब्रज में यक्ष : : श्री मधुकर 'पिप्पलायन' : : ५८२
२७. ब्रज के पोखर, कूप तथा सरोवर : : डा० (श्रीमती) हर्षनन्दिनी भाटिया : : ५८६
२८. ब्रज के लोकोत्सव और पर्व : : श्री मोहन स्वरूप भाटिया : : ५९२
२९. ब्रज के फूलडोल एवं फूलबंगले : : श्री श्याम सुन्दर चतुर्वेदी, : : ५९८
३०. ब्रज में शरद ऋतु की महिमा : : डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी : : ६०२
३१. वैष्णव मन्दिरों में सेवा-भोग और श्रृंगार : : डा० गोपाल शर्मा : : ६०६
३२. ब्रजभाषा का गौरवपूर्ण अतीत और भविष्य की संभावनाएँ : : डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : : ६१०
३३. ब्रज का उदारवादी दृष्टिकोण : : श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : : ६१६
३४. ब्रज का रास रंगमंच और उसका भारतीय ललित कलाओं पर प्रभाव : : श्री रामनारायण अग्रवाल : : ६२२
३५. कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला : : डा० हरिकृष्ण देवसरे : : ६३३
३६. ब्रजभाषा का चिट्ठी-पत्री साहित्य : : श्री बनवारी लाल पाठक : : ६३८
३७. सुखदेव कृत वाणिज्य नीति : : डा० महेन्द्र कुमार : : ६४२
३८. लाख : एक चमत्कारी कवि : : श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव : : ६४९

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

३९. ब्रजभाषा के चार कवि : : डा० रामगोपाल चतुर्वेदी : : ६५३
४०. ब्रजभाषा के आधुनिक प्रबंध काव्य : : श्री रामजीत ओझा : : ६५८
४१. अर्वाचीन ब्रजभाषा प्रबंध काव्य : : डा० आनन्द स्वरूप पाठक : : ६६४
४२. उत्तरकालीन मुगल सम्राट और उनकी रचनाएँ : : डा० शालिग्राम गुप्त : : ६८०
४३. दक्खिनी हिन्दी में ब्रजभाषा काव्य : : डा० परमानन्द पांचाल : : ६९५
४४. प्राचीन मथुरा का बौद्ध-धर्म से संबंध : : श्री प्रभुदयाल मीतल : : ६९८

सुमना खण्ड

⊙⊙

विविधा

⊙

जयतु जयतु वृन्दावनदासः : : डा० राजेन्द्र प्रसाद द्विवेदी : : ७०६
साहित्यिक संस्थाओं के अभिसिंचक : : डा० प्रभाकर माचवे : : ७०७
सुशील साहित्य सेवी : : डा० सैयद असद अली : : ७०७
शत-शत अभिनन्दन : : श्रीमती डा० माजदा असद : : ७०७
मनोविज्ञान के पंडित : : कु० मधु पोद्दार : : ७०८
ब्रज-संस्कृति के मर्मज्ञ : : डा० मण्डन मिश्र : : ७०८
कर्मठ साहित्यकार : : श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' : : ७०९
विनम्र साहित्य-सेवी : : कु० जयलक्ष्मी नायडू : : ७०९
हिन्दी पोषक महारथी : : डा० चक्रधर विजल्वान : : ७१०
स्थितप्रज्ञ : : श्री आंजनेय शर्मा : : ७१०
साहित्य तीर्थ : : डा० विद्या शर्मा : : ७११
श्रद्धेय : : श्री अनिल कुमार आंजनेय : : ७११
चेतनादीप्त एवं स्थितप्रज्ञ : : डा० एल० वी० राम 'अनन्त' : : ७१२
एक भाव नमन : : श्री उमाकान्त शुक्ल : : ७१२
महान आत्मा : : श्री रामदास शास्त्री : : ७१३
प्रकाश पूंज बाबू वृन्दावनदास जी : : श्री मोहनलाल 'मधुकर' : : ७१३
साहित्य और संस्कृति के उन्नायक : : श्री बच्चू प्रसाद सिंह : : ७१४
सहकारिता आन्दोलन के महारथी : : डा० शिवशंकर उपाध्याय : : ७१५
संस्कृति-अनुरागी : : डा० भगवान दयाल श्रीवास्तव : : ७१५
एकनिष्ठ साधक : : श्री राजेन्द्र कृष्ण : : ७१६
महामना : : श्री नरेन्द्र मोहन अग्रवाल : : ७१६
अध्यवसायी एवं अध्ययनशील : : डा० श्याम सिंह 'शशि' : : ७१७
बहुज्ञ साहित्यज्ञ : : श्रीमती कुसुम श्रीवास्तव : : ७१७
प्रेरणा का प्रकाश : : डा० राजेन्द्र रंजन : : ७१८

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लेखक-परिचय

⊙⊙

श्री हृषीकेश चतुर्वेदी : हिन्दी, संस्कृत तथा ब्रजभाषा के विख्यात कवि और साहित्यकार।

श्री बलवीरसिंह रंग : हिन्दी के सुपरिचित कवि। नगला कटीला, एटा (उ० प्र०)।

श्री रामलला : ब्रजभाषा के रस सिद्ध कवि। अमृतध्वनि छंद के रचयिता, गायक। सतीबुर्ज, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री अमृतलाल चतुर्वेदी : साहित्य-वारिधि, ब्रजभाषा के प्रख्यात कवि। शीतलागली, आगरा (उ० प्र०)।

श्री ब्रजनंदन गुप्त 'ब्रजेश' : ब्रजभाषा के सरस कवि। कोट बाजार, राठ, हमीरपुर (उ० प्र०)।

श्री राजेश दीक्षित : हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार, कवि एवं पत्रकार। अनेक ग्रंथों का प्रणयन। कृष्णापुरी, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री रमेशचन्द्र दुबे : हिन्दी-संस्कृत के विद्वान्। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता। ए ९०, गांधीनगर, मुरादाबाद (उ० प्र०)।

श्री गौरीशंकर गुप्त : कवि और पत्रकार। मन्त्री, राष्ट्रकवि परिषद्। गायघाट, वाराणसी (उ० प्र०)।

श्री ब्रजमोहनलाल शर्मा 'मोहन' : कवि एवं लेखक। महावन, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री गणेशलाल शर्मा 'गणेश' : प्रगल्भ कवि एवं पत्रकार। शारदा सदन, फीरोजाबाद (उ० प्र०)।

श्री ब्रजमोहन सरवरिया : कवि एवं साहित्यकार, झाँसी (उ० प्र०)।

श्री ब्रजमोहन पाण्डेय 'विनीत' : कवि एवं साहित्यकार।

श्री थान सिंह शर्मा 'सुभाषी' : हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और लेखक। रांगेय राघव मार्ग, आगरा (उ० प्र०)।

श्री श्रीकृष्ण शर्मा : कवि और साहित्यकार।

डा० भवेश पचौरी : भगवान सहाय पचौरी नाम से ख्यात। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध विद्वान् और कवि। महाकवि 'ग्वाल' पर शोध प्रबन्ध। २५, कृष्णापुरी, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : हिन्दी के सुविख्यात निर्भीक पत्रकार और लेखक। अनेक पत्रों, संवाद-समितियों में महत्वपूर्ण पदों पर रहे। विदेश यात्राएँ कीं। अ० भा० ब्रजसाहित्य मण्डल के संस्थापक सदस्य एवं भू० पू० प्रधान मंत्री। कई साहित्यिक-वैचारिक संस्थाओं से संबद्ध। 'लोकराज' साप्ताहिक के संपादक। ५५, काकानगर, नई दिल्ली।

डा० गौरीशंकर सत्येन्द्र : अ० भा० ब्रजसाहित्य मण्डल के आजीवन सदस्य और भू० पू० प्रधान मंत्री। विख्यात लोकशास्त्र वेत्ता। निवर्त्तमान् हिन्दी विभागाध्यक्ष, जयपुर विश्वविद्यालय। राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के अध्यक्ष। तिलक नगर, जयपुर (राजस्थान)।

डा० केदारदत्त तत्राड़ी : लेखक और साहित्यकार। गो० राधाचरण के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-प्रबन्ध। उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत (उ० प्र०) के हिन्दी प्रवक्ता।

डा० नारायणदत्त शर्मा : विद्वान् लेखक और साहित्यकार। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों पर शोध-प्रबन्ध। जवाहर कालेज, मथुरा के प्राचार्य। जयसिंह पुरा, मथुरा (उ० प्र०)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' : बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध साहित्यकार। शंकर सदन, झाँसी (उ० प्र०)।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी : हिन्दी के वयोवृद्ध प्रख्यात पत्रकार और लेखक। भू० पू० राज्य सभा सदस्य। अनेक साहित्यिक आन्दोलनों के जन्मदाता। कई हिन्दी पत्रों के संपादक रहे। अनेक साहित्यिक संस्थाओं से सम्मानित और उपाधियों से विभूषित। चौबों का मुहल्ला, फीरोजाबाद (उ० प्र०)।

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : साहित्य वारिधि उपाधि से विभूषित हिन्दी के जानेमाने लेखक और साहित्यकार। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता। आगरा के बलवन्त राजपूत कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष। शीतलागली, आगरा (उ० प्र०)।

डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : भारती के प्रसिद्ध ओजस्वी गायक और प्रगल्भ कवि। अनेक ग्रन्थों के सृजनकर्ता। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं प्रखर आलोचक। हरियाणा साहित्य अकादमी के अध्यक्ष और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग से संबद्ध। हिन्दी में 'इण्टरव्यू' साहित्य विधा के जन्मदाता। हिन्दी गद्यकाव्य पर शोध प्रबन्ध, अभी हाल में दिवंगत।

श्री तोताराम 'पंकज' : सिद्धहस्त लेखक, कवि और पत्रकार। सम्पादक, साहित्यालोक। १६३, रांगेय राघव मार्ग, आगरा।

श्री रमेशचन्द्र दुबे : आगरा कालेज में प्राध्यापक रहे। अब उ० प्र० प्रशासनिक सेवा में। कवि, लेखक और साहित्यालोचक। डिप्टी सेक्रेटरी, टैक्नीकल एजूकेशन, (उ० प्र०) सरकार, लखनऊ।

डा० रामस्वरूप आर्य : मँजे हुए लेखक। कई ग्रन्थों का सम्पादन। हिन्दी विभागाध्यक्ष, वर्द्धमान कालेज, बिजनौर (उ० प्र०)।

डा० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : प्रतिष्ठित कवि, लेखक और साहित्य मर्मज्ञ। संपादक, सुकवि विनोद। रीडर, हिन्दी विभाग, जयनारायण कालेज, लखनऊ (उ० प्र०)।

ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी : ब्रज संस्कृति के गहन अध्येता। हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक। भारती अनुसंधान भवन, मथुरा के अधिष्ठाता।

श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' : युग लेखक और सृजनशील साहित्यकार। कई साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध। संपादक, अंग माधुरी, बोरिंग रोड, पश्चिम पटना -(बिहार)।

पं० उमाशंकर दीक्षित : उदीयमान कवि एवं लेखक। स्वामीघाट, मथुरा।

श्री तुलसी प्रसाद सहयोगी : विचारक पत्रकार और तत्वदर्शी लेखक। उ० प्र० सरकार की विभिन्न समितियों-आयोगों और सहकारी अनुष्ठानों से संबद्ध। संप्रति उ० प्र० खादी ग्रामोद्योग मण्डल और यूपिका, कानपुर के संचालक-मण्डल के सदस्य। हाथरस (उ० प्र०)।

डा० भगवानदास तिवारी : सुप्रसिद्ध शोध-विद्वान और उच्चकोटि के शोध ग्रन्थों के प्रणेता। संतों पर विशेष अध्ययन। हिन्दी विभागाध्यक्ष, सोलापुर कालेज (महाराष्ट्र)।

श्री वेंकटलाल ओझा : हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाओं के संग्राहक। लेखक और पत्रकार। मंत्री, समाचार पत्र संग्रहालय, कसारहट्टा रोड, हैदराबाद (उ० प्र०)।

श्री निरंकुश : सृजनशील लेखक और कवि। उत्तर प्रदेश सरकार के अन्तर्गत सेवारत। संप्रति ए० डी० एम० प्लानिंग, चमोली, गढ़वाल।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी : युवा लेखक, पत्रकार और कई साहित्यिक अनुष्ठानों के संचालक। चौबे जी का फाटक, किनारी बाजार, आगरा (उ० प्र०)।

डा० विश्वपाल शर्मा : अनेक सांस्कृतिक-साहित्यिक संस्थाओं के परिपोषक। सामाजिक कार्यकर्त्ता और अ० भा० ब्रजसाहित्य मण्डल के संरक्षक।

डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ : विदुषी लेखिका और साहित्यकार 'हिन्दी में कृष्णभक्ति का स्वरूप' विषय पर शोध प्रबन्ध। किशोरीरमण गर्ल्स डिग्री कालेज, मथुरा की प्राचार्या।

डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : ब्रजभाषा के आधुनिक गद्य पर शोध-प्रबन्ध। हिन्दी के मर्मज्ञ लेखक और प्रसिद्ध साहित्यकार। संप्रति बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा के संस्कृत विभागाध्यक्ष।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव : हिन्दी के पुराने जाने माने हास्य लेखक। कई हास्य पुस्तकें प्रकाशित गोण्डा (उ०प्र०) में अरसे से वकालत।

डा० श्यामसुन्दर बादल : बुन्देली के फाग-साहित्य पर शोध प्रबंध। लेखक और पत्रकार। साहित्याचार्य, साहित्यमहोपाध्याय। राठ, हमीरपुर (उत्तर प्रदेश)

श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी : प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्त्ता, लेखक और पत्रकार। राजस्थान सरकार के भूतपूर्व मंत्री लोक शिक्षक का संपादन। प्रियम्वदा सदन; अशोक मार्ग, जयपुर (राजस्थान)।

डा० मलखान सिंह सिसौदिया : सुप्रसिद्ध कवि, लेखक एवं साहित्यकार। एटा में एक कालेज के प्राचार्य। कल्पनाकुटीर, एटा।

डा० राज बुद्धिराजा : विदुषी लेखिका। कालिन्दी कालेज, दिल्ली के हिन्दी विभाग से संबद्ध।

श्री परमानन्द पाण्डेय : हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक और साहित्यकार। बिहार की कई साहित्यिक संस्थाओं से संबंधित। राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

श्री मधुमोद के० रायजादा : युवा लेखक और पत्रकार। साहित्यिक कार्यकर्ता। २।२ शाहगंज, आगरा (उ० प्र०)

डा० गनेशीलाल बुधौलिया : लेखक और साहित्यकार। सदाशिव निवास, राठ (हमीरपुर)।

डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी : हास्य रस के ख्याति प्राप्त लेखक और कवि। भारत सरकार की केन्द्रीय स्कूल संगठन योजना में उच्चपदासीन।

श्री शम्भुनाथ चतुर्वेदी : आगरा के प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ता। नगर महापालिका आगरा के भूतपूर्व मेयर। संसद सदस्य भी रहे। शाहगंज, आगरा (उ० प्र०)।

श्री मधुसूदन चतुर्वेदी : ब्रजभाषा के कवि। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार। अनेक पुस्तकों का प्रणयन। बेगम बाजार, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।

श्री हरिश्चन्द्र प्रसाद : पटना (बिहार) के युवा लेखक और साहित्यकर्मी।

श्री रमण शाण्डिल्य : लोक भाषाओं पर सम्यक् अध्ययन में रत, युवा साहित्यसेवी। हिन्दी के लेखक और पत्रकार। द्वारा मदन कैन्टीन, अलोंग (अरुणाचल प्रदेश)।

श्री रामनारायण उपाध्याय : हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और लोक साहित्य मर्मज्ञ। अनेक ग्रन्थों का प्रणयन। सभी प्रमुख पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। ब्राह्मणपुरी, खण्डवा (मध्य प्रदेश)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० ललन मिश्र : गणेश शंकर विद्यार्थी की रचनाओं पर शोध प्रबंध। लेखक और पत्रकार। संप्रति स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, कुशीनगर, देवरिया में सेवारत।

श्री केशवदेव मिश्र 'कमल' : कवि और पत्रकार। हरिजन निवास, किंग्सवे कैम्प, दिल्ली-९।

श्री रामेन्द्र मोहन त्रिपाठी : प्रख्यात कवि एवं लेखक। छीपी टोला, आगरा (उ० प्र०)।

श्री बाबू अब्दुल गनी : समाजसेवी और मथुरा नगर पालिका के उपाध्यक्ष। अभी हाल में दिवंगत।

श्री मोहम्मद शाहमीर मलीहा : उर्दू के कवि और लेखक। मथुरा के प्रतिष्ठित नागरिक। भरतपुर दर्वाजा, मथुरा (उ० प्र०)।

आचार्य जुगलकिशोर चतुर्वेदी : मथुरा नगर कांग्रेस के मंत्री। समाजसेवी, लेखक और पत्रकार। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा के महामंत्री। सुख्यात वकील। गली गुजराना, मथुरा।

श्री त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल : तरुण कवि, लेखक और पत्रकार। प्रभावी वक्ता। कई पुस्तकों का प्रकाशन। किशोरीरमण ट्रेनिंग कालेज, मथुरा से सम्बद्ध। गली कसेरान, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री मोहनलाल शर्मा : ब्रजभाषा गद्य के समर्थ लेखक और कवि। संप्रति केन्द्रीय विद्यालय आई० एन० ए० कालोनी, नई दिल्ली में उपप्रधानाचार्य।

श्री ज्वाला प्रसाद सिन्हा : समाज सेवी। स्फुट लेखन। गोण्डा (उ० प्र०) में वकालत।

श्री अयोध्या सिंह : लेखक और जागरूक साहित्यकार। पटना (बिहार)।

श्री रघुनाथ गुप्त : सफल लेखक। अध्यक्ष, चम्पारन शोध संस्थान, मोतीहारी (बिहार)।

चौ० दिगम्बर सिंह : ब्रज जनपद के प्रमुख समाजसेवी और सहकारी आंदोलन के अग्रणी नेता। भूतपूर्व संसद सदस्य। किसान निवास, डैम्पियर नगर, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री अम्बादत्त : लोहवन के सम्भ्रांत नागरिक एवं मथुरा नगर पालिका के भूतपूर्व उच्च अधिकारी।

श्री रामशंकर द्विवेदी : प्रतिभाशाली लेखक और साहित्यकार। उरई (उ० प्र०)।

श्री गणेश चौबे : लोक साहित्य मर्मज्ञ। जनपदीय आंदोलन के अग्रणी कार्यकर्ता। भोजपुरी लोक साहित्य पर अनेक रचनाएं प्रकाशित। पो० बंगरी, चम्पारन (बिहार)।

डा० राजेन्द्र रंजन : उदीयमान लेखक लोक साहित्य अध्येता। डा० रांगेय राघव पर शोध प्रबंध। जैन इंटर कालेज, सासनी (अलीगढ़) में अध्यापन।

श्री हुकुमचन्द तिवारी : मथुरा में भू० पू० आनरेरी मजिस्ट्रेट। एडवोकेट और प्रतिष्ठित नागरिक।

श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी : कवि, लेखक और ब्रज शोध निर्देशक, ब्रज साहित्य मंडल के उत्साही कार्यकर्ता। 'मथुरा का पुरातन परिचय' आदि ग्रन्थों के लेखक।

आचार्य बैजनाथ राय : प्रतिभाशाली लेखक और साहित्यकार।

श्री ब्रज गोपाल भाटिया : स्वतंत्रता सेनानी। मथुरा के प्रतिष्ठित नागरिक। अनेक सांस्कृतिक साहित्यिक संस्थाओं से संबंधित। साहित्य प्रेमी। डैम्पियर नगर, मथुरा (उ० प्र०)।

डा० भगत सिंह : कूर्माञ्चल के भाषा साहित्य पर शोध-प्रबंध और वहीं की भाषा के भाषाशास्त्रीय अध्ययन पर डी० लिट्०। भाषा विज्ञान वेत्ता। कई पुस्तकें प्रकाशित।

श्रीमती वी० पी० मेरी कुरियाकोज : हिन्दी, संस्कृत और भाषा शास्त्र की विदुषी दक्षिण भारतीय लेखिका। संप्रति सीमाशुल्क निदेशालय, भारत सरकार में हिन्दी अधिकारी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० नारायणदत्त गुप्त : हिन्दी संस्कृत के विद्वान 'हरिऔध' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध प्रबन्ध। बदायूँ।

श्री रामप्रसाद 'कमल' : मथुरा के प्रतिष्ठित नागरिक और वकील। कई शिक्षण-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध। नगरपालिका के भू० पू० उपाध्यक्ष। छगनपुरा, मथुरा।

डा० रघुबीरशरण 'व्यथित' : हिन्दी के समर्थ लेखक। पलाई (केरल) के सेंट थामस कालेज के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग के भू० पू० अध्यक्ष। संप्रति लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में प्राध्यापक।

श्री रामेश्वरदयाल उपाध्याय : केन्द्रीय-सूचना-सेवा के अधिकारी, सुप्रसिद्ध लेखक और पत्रकार। आजकल (मासिक) और दिल्ली (मासिक) के भू० पू० संपादक। ब्रज० सा० मण्डल के भू० पू० मंत्री, संप्रति दिल्ली आकाशवाणी केन्द्र में समाचार-सम्पादक।

डा० सोहनलाल शर्मा : हिन्दी के समर्थ लेखक और साहित्यकार। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में हिन्दी अधिकारी भारतीय संस्कृति और समाज व्यवस्था के आदिकाल का विशेष अध्ययन।

श्री आनन्द शंकर माधवन : विद्वान् लेखक और चिन्तक। मन्दार विद्यापीठ के कुलपति, मन्दार विद्यापीठ, भागलपुर (बिहार)।

डा० कृष्णकुमार गोस्वामी : हिन्दी के युवा लेखक। 'अनुवाद' पत्रिका के उपसंपादक। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली में प्रवक्ता।

श्री ठाकुरदास : युवा भाषाशास्त्री और उदीयमान् लेखक। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली में प्रवक्ता।

कु० भारती दत्ता : संस्कृत, हिन्दी की उदीयमान लेखिका। शोधरत। संस्कृत प्राध्यापिका, ई० एम० एम० रोड, नई दिल्ली-५५।

डा० शिवशंकर पांडे : 'रामकाव्य में रसिक भक्ति' पर शोध प्रबन्ध। विद्वान् लेखक।

श्री राधागोविन्द जोशी : हरिद्वार के व्यापारी, मथुरा के सम्भ्रान्त नागरिक एवं बाबू वृन्दावनदास जी के प्रतिवेशी।

डा० शंकरलाल चतुर्वेदी : संस्कृत-हिन्दी के विद्वान लेखक। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के संस्कृत-साहित्य पर शोध प्रबन्ध। मथुरा।

डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' : हिन्दी के लेखक। अनेक पुस्तकों के प्रणेता। 'स्वयंभू और तुलसी के नारी पात्रों' के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध। एस० डी० कालेज, गाजियाबाद में प्राध्यापक।

श्री हृदयेश नारायण चतुर्वेदी : ब्रज साहित्य मण्डल के सदस्य, लेखक अभिनेता। भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय से सम्बद्ध।

डा० हरिदत्त शास्त्री : संस्कृत के प्रकांड विद्वान्। डी० ए० वी० कालेज, कानपुर के भू० पू० संस्कृत विभागाध्यक्ष। ज्वालापुर महाविद्यालय के उपकुलपति। 'भारतोदय' का सम्पादन सूरजभान का फाटक, बेलनगंज, आगरा (उ० प्र०)।

श्री जगदीश प्रसाद गुप्त : युवा लेखक। भारत सरकार के आकाशवाणी महानिदेशालय, नई दिल्ली में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० जगदीश बाजपेयी : प्रतिष्ठित लेखक एवं ब्रजभाषा साहित्य मर्मज्ञ। आधुनिक ब्रजभाषा काव्य पर शोध प्रबन्ध। सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर के हिन्दी विभागाध्यक्ष।

श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी : प्रसिद्ध समाज सेवी, कवि और लेखक। लाजपत कुंज, आगरा (उ० प्र०)।

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे : सुप्रसिद्ध हिन्दी विद्वान। शोध मर्मज्ञ। सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग से संबद्ध।

श्री सूरज प्रसाद मिश्र : कवि, लेखक और पत्रकार। ३८ अरुण रोड, साकची, जमशेदपुर (बिहार)।

डा० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' : युवा पीढ़ी के सशक्त लेखक, कवि और समालोचक। अनेक पुस्तकों के लेखक। श्यामलाल कालेज, दिल्ली (शाहदरा) में हिन्दी प्राध्यापक।

श्री जयवीर सिंह चौहान : अर्थशास्त्र के विद्वान लेखक। भारत सरकार के खान एवं धातु मंत्रालय के हिन्दी अधिकारी।

डा० परमात्माशरण बंसल : हिन्दी विद्वान एवं लेखक, हिन्दी कहावतों और मुहावरों का तुलनात्मक अध्ययन-विषय पर शोध प्रबन्ध। कृषि मंत्रालय में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी, दिल्ली।

डा० सरलादेवी : विदुषी केरलीय हिन्दी लेखिका। महाराजा कालेज, एरनाकुलम के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका।

डा० देवेशचन्द्र : हिन्दी लेखक। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय में डिप्टी डाइरेक्टर।

कु० मीनाक्षी : उदीयमान लेखिका कवियित्री।

डा० शरण बिहारी गोस्वामी : सुख्यात लेखक। आकाशवाणी दिल्ली में प्रोड्यूसर और दयालसिंह कालेज में प्राध्यापक रहे। सखी संप्रदाय पर शोध प्रबन्ध संप्रति ओरियन्टल कालेज, वृन्दावन (उ० प्र०) के प्रिंसिपल।

श्री रामनगीना राय : 'चतुर्मुख' तथा 'गांधियाना' के संपादक। विद्वान लेखक।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : वयोवृद्ध प्रतिष्ठित लेखक एवं वरिष्ठ पत्रकार। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी। अनेक ग्रन्थों के लब्धप्रतिष्ठ प्रणेता। विकास लिमिटेड, सहारनपुर (उ० प्र०)।

श्री रामगोपाल परदेसी : प्रतिभाशाली लेखक, कवि और पत्रकार। अनेक साहित्यिक संस्थानों से संबद्ध। प्रगति प्रकाशन, आगरा।

श्री हरगोविन्द गुप्त : लोक-साहित्य मर्मज्ञ। लोक-साहित्य पर पुष्कल कार्य। चिरगाँव, झाँसी (उ० प्र०)।

श्री देवकीनन्दन शर्मा : विद्वान लेखक। ब्रज के जनपदीय साहित्य के अध्येता। सरस्वती महाविद्यालय, हाथरस में प्राध्यापक। गिज़रौली, हाथरस (उ० प्र०)।

डा० विश्वदेव शर्मा : युवा कवि, लेखक, एवं साहित्यकार। 'रेडियो-साहित्य' पर शोध प्रबन्ध। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के बैंकिंग विभाग में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी।

डा० राजेन्द्र सिंह कुशवाहा : अष्टछाप के कवियों के आधार पर ब्रज के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन पर शोध प्रबन्ध। प्रसिद्ध लेखक और कहानीकार। अनेक पुस्तकों के प्रणेता और संप्रति योजना आयोग में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी।

डा० एम० खान दुर्रानी : हिन्दी, संस्कृत एवं फारसी के विद्वान लेखक। गीता और कुरान के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध प्रबन्ध। भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय की संस्कृत एकक में सह-निदेशक।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री देवेन्द्र दत्त नौटियाल : संस्कृत एवं हिन्दी के विद्वान लेखक। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी। "भाषा" पत्रिका के संपादक, अनेक ग्रन्थों का सम्पादन।

डा० जगदीश प्रसाद गुप्त : हिन्दी के उदीयमान लेखक। केन्द्रीय हिन्दी-निदेशालय में सेवारत।

श्री राधे बिहारी लाल सक्सेना : योग्य लेखक। गोवर्द्धन, मथुरा (उ० प्र०)।

श्री कमल कुमार मेहरोत्रा : अंग्रेजी तथा हिन्दी के उदीयमान लेखक। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया में कार्यरत, व्रज साहित्य मण्डल की कार्यकारिणी के भूतपूर्व सदस्य।

डा० अरुणा दीक्षित : विदुषी लेखिका—नामदेव की हिन्दी रचनाओं पर शोध प्रबन्ध हरयाणा के डिग्री कालेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष।

श्री कौशलाधीश मिश्र : सुख्यात लेखक, उद्योग मंत्रालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

श्री राधाकान्त भारती : लेखक और पत्रकार, भागीरथ पत्रिका के सम्पादक।

श्री अफला सिंह वर्मा : समाजशास्त्र और हिन्दी के विद्वान, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में हिन्दी अधिकारी।

डा० प्रेमलता पालीवाल : अंग्रेजी तथा हिन्दी विद्वान लेखिका, मथुरा में डिग्री कालेज प्रिन्सिपल।

श्री अवधेश नारायण सिंह : प्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार।

श्री महेशचन्द्र गर्ग : उदीयमान लेखक।

डा० द्वारिका प्रसाद मीतल : हिन्दी के सुख्यात लेखक अनेक ग्रन्थों का प्रणयन झाँसी के डिग्री कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० माधुरी दुबे : प्रसिद्ध हिन्दी लेखिका, हिन्दी गद्य का वैभवकाल विषय पर शोध प्रबन्ध, अनेक हिन्दी ग्रन्थों की प्रणेता। राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर में हिन्दी प्राध्यापिका। दुबे भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर।

डा० रामकुमार मिश्र : लेखक, साहित्यकार। भारत सरकार के सम्पदा निदेशालय दिल्ली में हिन्दी अधिकारी।

श्री राजमणि तिवारी : हिन्दी के सफल वक्ता और लेखक। भारत सरकार के गृह मंत्रालय में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी।

श्री कृष्णकुमार सराफ : हिन्दी अनुवाद एवं तकनीकी शब्दावली में निष्णात। उद्योग तथा नागरिक पूर्ति मंत्रालय से सम्बद्ध।

श्री बद्रीसिंह : उदीयमान लेखक। उद्योग तथा नागरिक पूर्ति मंत्रालय के हिन्दी विभाग में कार्यरत।

श्री यशपाल रावत : कूर्मांचलीय हिन्दी लेखक। वर्तमान में भारी उद्योग विभाग के हिन्दी अनुभाग से सम्बद्ध।

श्री रामकुमार मिश्र : संस्कृत तथा हिन्दी के निष्णात लेखक। भारत सरकार की उद्योग व्यापार पत्रिका के सम्पादक।

श्री सुरेन्द्रनारायण दफ्तुआर : अंग्रेजी तथा अर्थशास्त्र के विद्वान, हिन्दी लेखक। प्रधान मंत्री के सचिवालय में हिन्दी अधिकारी।

श्री कुलदीप नारायण 'झड़प' : प्रसिद्ध लेखक, साहित्यकार एवं पत्रकार।

डा० लक्ष्मीनारायण गर्ग : हिन्दी के प्रगल्भ लेखक, संप्रति हिन्दी निदेशालय दिल्ली में कार्यरत।

श्री नन्दकिशोर पाठक : मथुरा के वरिष्ठ विद्वान एवं वैद्य, पुराण और कर्मकाण्ड में निष्णात, भूतपूर्व आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा नगरपालिका सदस्य।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० रामदत्त भारद्वाज : सरस्वती के वयोवृद्ध साधक। तुलसी संबंधी सोरों सामग्री के उद्भावक। दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त।

डा० विजयपाल सिंह : हिन्दी के पराकोटि के विद्वान्। केशव कवि पर शोध प्रबन्ध। अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन। अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस (उ० प्र०)

डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी : संस्कृत के लब्धकीर्ति विद्वान् एवं लेखक। लाल बहादुर संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली से सम्बद्ध।

डा० रुद्रदेव त्रिपाठी : संस्कृत के विद्वान् लेखक। लालबहादुर संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में प्राध्यापक।

डा० ब्रजवल्लभ मिश्र : कलाकार, लेखक और विद्वान्। किशोरीरमण डिग्री कालेज, मथुरा में हिन्दी प्राध्यापक।

डा० पांडुरंग राव : आन्ध्र के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान्। संप्रति संघ लोक सेवा आयोग में (भारतीय भाषाओं के) विशेषकार्याधिकारी।

डा० तुलसी मिश्र : विदुषी लेखिका। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका।

डा० जी० सुन्दर रेड्डी : साहित्य वारिधि, विद्वान् लेखक। कई पुस्तकों के प्रणेता। दक्षिण में हिन्दी के स्तम्भ। आन्ध्र विश्वविद्यालय (वाल्टेयर) में हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर : बहुभाषाविद् एवं हिन्दी-संस्कृत के प्रकांड पंडित। कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० के० रामनाथन : हिन्दी-तेलुगु के विद्वान् लेखक। सूरदास और पोतन्ना का तुलनात्मक अध्ययन पर शोध प्रबन्ध। वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक।

डा० एम० संगमेशम् : दक्षिण में हिन्दी के परिपोषक। विद्वान लेखक। अध्यक्ष हिन्दी विभाग : वेंकटेश्वर आर्य कालेज, तिरुपति।

डा० चन्द्रकान्त मुदालियार : तमिलनाडु के हिन्दी संस्कृत विद्वान् विचारक और लेखक। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी। केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण योजना के दक्षिण क्षेत्र के क्षेत्रीय अधिकारी।

डा० कुसुम श्रीवास्तव : विदुषी लेखिका। इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध। इस ग्रन्थ की सम्पादन समिति की सदस्या।

डा० माधुरी मिश्र : विदुषी लेखिका।

डा० उदयभान मिश्र : हिन्दी के प्रयोगधर्मी कवि, लेखक और युवा विचारक।

डा० वे० वेंकटरमण राव : विचारशील लेखक। रीतिकालीन साहित्य का सांस्कृतिक आधार विषय पर शोध। सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन लेंग्वेजेज में प्राध्यापक।

डा० विष्णुदत्त 'राकेश' : हिन्दी-संस्कृत के उद्भट विद्वान्। कई पुस्तकों के प्रणेता। संप्रति गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष।

प्रो० नर्मदाप्रसाद गुप्त : विद्वान् लेखक और साहित्यकार।

डा० सुधाकर मिश्र : प्रतिभाशाली लेखक।

डा० कन्हैयालाल सहल : हिन्दी के विद्वान् लेखक। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता। कई साहित्यिक संस्थानों से सम्बद्ध। बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट, पिलानी के मंत्री।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र : नाटककार नारायण प्रसाद 'बेताब' की विदुषी सुपुत्री। बेताब के नाटकों पर शोध प्रबन्ध। बम्बई विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना : हिन्दी, संस्कृत एवं भाषाशास्त्र के उद्भट विद्वान्। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता। मेरठ विश्वविद्यालय में रीडर एन० आर० ई० सी० कालेज, खुर्जा के हिन्दी विभागाध्यक्ष। इस ग्रन्थ के सम्पादन परामर्शदाता।

डा० गिरिवरधारी सिंह : प्रेमचन्द पर शोध प्रबन्ध। उदीयमान लेखक। भारत सरकार के आयात-निर्यात के मुख्य नियन्त्रक के कार्यालय में हिन्दी कार्य प्रभारी।

डा० रघुवीर राँगा : ख्यातिनामा लेखक, साहित्यज्ञ एवं भाषा वैज्ञानिक। हिन्दी उपन्यासों में चरित्र चित्रण पर शोध प्रबन्ध। कई पुस्तकों का प्रणयन-सम्पादन। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी।

डा० श्यामनारायण शुक्ल : हिन्दी के विद्वान् लेखक।

डा० पी० जयरामन् : डी० लिट० उपाधि से विभूषित। हिन्दी एवं दक्षिण भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञ और लेखक। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, बम्बई में हिन्दी विभाग के सर्वोच्च अधिकारी।

कु० नरेश अरोड़ा : उदीयमान लेखिका-कवियित्री-गायिका। उद्योग मंत्रालय में सेवारत।

डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' : हिन्दी के प्रतिभावान लेखक और विद्वान् समीक्षक।

श्री सुरेशचन्द्र मिश्र : युवा लेखक। औद्योगिक विकास विभाग, भारत सरकार में हिन्दी अधिकारी।

डा० गिरिराजशरण अग्रवाल : लेखक और साहित्यकार।

डा० आनन्द स्वरूप पाठक : इस ग्रन्थ के सम्पादक। भाषा, व्याकरण और साहित्य के पंडित। 'हिन्दी लिंग निर्णय' विषय पर शोध प्रबंध। स्वामी रामानंद शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ एवं एक युग एक प्रतीक—'बाबू जगजीवनराम अभिनन्दन ग्रन्थ', 'भारतीय साहित्य एवं संस्कृति' का सम्पादन तथा अंग्रेजी ग्रन्थ 'स्ट्रगल्स एवं अचीवमेण्ट' और 'जगजीवन राम ए सलैक्ट बिबलियोग्राफी' के सम्पादन परामर्शदाता। संप्रति भारत सरकार के उद्योग मंत्रालय में हिन्दी-अधिकारी। दलपत खिड़की, मथुरा।

डा० कृष्णा रैना : कश्मीरी हिन्दी लेखिका : हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' : इस ग्रन्थ के सम्पादन-परामर्शदाता। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री। अनेक पुस्तकों के लेखक। अनेक शोधग्रन्थों के प्रणेता। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर।

डा० केशवदेव शर्मा : संस्कृत के विद्वान् और हिन्दी के समर्थ लेखक। 'अचिन्त्य भेदाभेद' पर शोध प्रबंध। नेहरू डिग्री कालेज, एटा में संस्कृत विभागाध्यक्ष।

श्री क्षेत्रपाल शर्मा : मथुरा के तरुण कवि, लेखक और कलाकार।

कु० लक्ष्मी मिश्रा : हिन्दी की विदुषी लेखिका। आर्य कन्या डिग्री कालेज, खुर्जा में हिन्दी विभाग की अध्यक्ष।

डा० चन्द्रभान रावत : तिरुपति विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर, ब्रजभाषा एवं भाषाशास्त्र के पंडित। 'मथुरा जिले की बोली' पर शोध प्रबंध लिखा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० भगवान सहाय पचौरी : काव्यशास्त्र एवं ब्रजभाषा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् ग्वाल कवि पर शोध प्रबन्ध। उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग से सम्बद्ध।

डा० श्रीपति शर्मा जोशी : हिन्दी संस्कृत एवं भाषाशास्त्र के विद्वान्। 'फारसी से गृहीत हिन्दी शब्दावली' पर शोध प्रबन्ध लिखा है।

श्री महाबीर शर्मा : उदीयमान लेखक। विचारक एवं कलाकार। भारी उद्योग मंत्रालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

डा० गोवर्द्धननाथ शुक्ल : प्रतिष्ठित हिन्दी लेखक, सम्प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर।

डा० विजयेन्द्र स्नातक : लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी विद्वान्, अनेक ग्रन्थों का प्रणयन, इस ग्रन्थ के परामर्शदाता संपादक। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित : काव्यशास्त्र मर्मज्ञ हिन्दी के ख्यातिनामा विद्वान् इस ग्रन्थ के परामर्श-दाता सम्पादक। पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० रमेश आंगिरस : हिन्दी लेखक, गृह मंत्रालय क अधीन हिन्दी अधिकारी, कवि निराला पर शोध प्रबन्ध।

डा० नजीर मुहम्मद : हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी के विद्वान्। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में रीडर।

डा० बालकृष्ण अकिंचन : युवा लेखक, कविवर रहीम पर शोध प्रबन्ध। दिल्ली विश्वविद्यालय के शिवाजी कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष।

डा० गोपाल बाबू शर्मा : प्रतिभावान लेखक और कवि हाथरस वाले 'सूरस्वामी' पर शोध प्रबन्ध। धर्म समाज कालेज अलीगढ़ में हिन्दी प्राध्यापक।

डा० श्याम शर्मा : हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखक, डीडवाना (राजस्थान) के डिग्री कालेज में हिन्दी प्रध्यापक।

श्रीमती आनन्द लक्ष्मी अय्यर : दक्षिण भारत की विदुषी हिन्दी लेखिका। त्रिपुर्णित्तुरा (एरनाकुलम्) के कालेज में हिन्दी प्राध्यापिका।

श्री मदन भगीरथ शर्मा : हिन्दी के सुख्यात लेखक। भारत सरकार के गृह मंत्रालय दिल्ली में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी, शोधरत।

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' : साहित्य वारिधि उपाधि से विभूषित समर्थ कवि, लेखक एवं साहित्यकार। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता।

डा० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा : हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक और साहित्यकार।

डा० विष्णुचन्द पाठक : युवा लेखक और साहित्यकार। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के कालेज में हिन्दी प्राध्यापक।

श्रीमती सुधा भार्गव : उदीयमान लेखिका और विदुषी। साहित्यकार संघ लोक सेवा आयोग के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल : हिन्दी-सस्कृत के विद्वान्, लेखक और अनेक ग्रन्थों के प्रणेता। वी० आर० कालेज, आगरा में प्राध्यापक।

डा० सुषमा अग्निहोत्री : उदीयमान लेखिका। साठोत्तर हिन्दी कहानी के शैली तात्विक अध्ययन विषय पर शोध। झुझनू (राजस्थान)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री कन्हैयालाल 'चंचरीक' : हिन्दी के कवि और लेखक, स्वामी रामानन्द शास्त्री अभिनंदन ग्रन्थ, एक युग एक प्रतीक, स्ट्रगल्स एण्ड अचीवमेन्टस, भारतीय संस्कृति और साहित्य के यशस्वी संपादक, इस ग्रन्थ के सम्पादक।

श्री निशेन्दु ओझा : तरुण हिन्दी कवि एवं लेखक, भारत सरकार के भारी उद्योग विभाग के हिन्दी प्रकोष्ठ के प्रभारी।

डा० वसन्त यमदग्नि : हिन्दी के सफल लेखक एवं वार्ताकार रासलीला पर शोध प्रबन्ध, आकाशवाणी के ब्रजमाधुरी कार्यक्रम से सम्बद्ध।

श्री बाबूराम पालीवाल : सुख्यात हिन्दी विद्वान्, ब्रज साहित्य, संस्कृति और लोक साहित्य के मर्मज्ञ, ब्रज-माधुरी कार्यक्रम के भूतपूर्व प्रोड्यूसर।

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया : भाषाशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान् 'अक्षर' पर डी० लिट की उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता प्रशासकीय अकादमी मसूरी में भाषा विभाग के अध्यक्ष।

डा० कृष्णदत्त बाजपेयी : सुख्यात पुरातत्व वेत्ता, ब्रजसाहित्य मण्डल के पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ के सम्पादक सागर विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष तथा टैगोर प्रोफेसर।

श्री रमेशचन्द्र शर्मा : पुरातत्व वेत्ता, विद्वान् लेखक, कर्जन संग्रहालय मथुरा में संग्रहाध्यक्ष।

श्री शिवदयाल त्रिवेदी : पुरातत्व विद, लेखक, मथुरा संग्रहालय से सम्बद्ध।

श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश' : श्री स्वामी ब्रजेश्वरानन्द जी महाराज नाम से विख्यात, पत्रकार तथा लेखक।

श्री मधुकर पिप्पलायन : उदीयमान लेखक, संपादक लघु उद्योग समाचार।

डा० (श्रीमती) हर्ष नन्दिनी भाटिया : लेखिका और कवियित्री, डा० कैलाश चन्द्र भाटिया की विदुषी पत्नी। अलीगढ़ में प्राध्यापक। मैरिस रोड, नन्दन, अलीगढ़।

श्री मोहन स्वरूप भाटिया : ब्रजलोक तत्व के पंडित, मथुरा आकाशवाणी से सम्बद्ध रहे, अनेक सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध।

आचार्य श्यामसुन्दर चतुर्वेदी : संस्कृत के उद्भट विद्वान्, द्वारिकाधीश स्नातकोत्तर संस्कृत पाठशाला के प्रिन्सिपल, अनेक विषयों के आचार्य तथा एम० ए०। सिद्धहस्त लेखक। दलपत खिड़की, मथुरा।

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी : डी० लिट० उपाधि से विभूषित, अनेक विषयों के आचार्य, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित श्री श्रीवर जी शास्त्री के सुपुत्र, एक डिग्री कालेज के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के अध्यक्ष, गतश्रम टीला, मथुरा।

डा० गोपाल शर्मा : भारत सरकार के हिन्दी निदेशालय के भू० पू० निदेशक। हिन्दी की तकनीकी शब्दावली व राजभाषा हिन्दी के स्वरूप विधायक प्रसिद्ध हिन्दी लेखक।

श्री रामनारायण अग्रवाल : भैयाजी नाम से विश्रुत, आकाशवाणी से सम्बद्ध, कूबरी आदि अनेक ब्रजभाषा काव्यों और नाटकों के रचयिता। आजकल सूर पंचशती समारोह कार्यक्रम में संलग्न।

डा० हरिकृष्ण देवसरे : अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी लेखक, आकाशवाणी से सम्बद्ध।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री बनवारी लाल पाठक : संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान् लेखक, संस्कृत के 'रमलशास्त्र' विषय पर संस्कृत भाषा में शोध प्रबन्ध--दर्शनशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र में पारंगत। अनेक सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बन्धित। दलपत खिड़की, मथुरा।

डा० महेन्द्र कुमार : डी० लिट० उपाधि से विभूषित। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, भाषाशास्त्र साहित्यशास्त्र और कोशविज्ञान के पंडित।

श्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव : ब्रजभाषा के प्राचीन ग्रन्थों के प्रसिद्ध खोजकर्ता, शोधपरक लेखों के लेखक।

डा० रामगोपाल चतुर्वेदी : कवि ('गुपलेश' जी उपनाम) लेखक और पत्रकार--हिन्दी पत्रकारिता पर शोध प्रबन्ध, भारत सरकार के कृषि मंत्रालय की 'खेती' पत्रिका के प्रधान सम्पादक।

श्री रामजीत ओझा : उदीयमान कहानीकार और लेखक।

डा० शालिग्राम गुप्त : शान्ति निकेतन के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति परक लोकसाहित्य विषय पर शोध प्रबन्ध, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता।

डा० परमानन्द पांचाल : उर्दू एवं फारसी के विद्वान। दक्खिनी हिन्दी पर शोध प्रबन्ध, भारत सरकार के गृह मंत्रालय के कार्मिक विभाग में हिन्दी अधिकारी।

श्री प्रभुदयाल मीतल : ब्रजभाषा साहित्य मर्मज्ञ विद्वान ब्रजसाहित्य के शोधकर्त्ता एवं अन्वेषक, ब्रज-साहित्य एवं संस्कृति विषयक लगभग दो दर्जन ग्रन्थों के लेखक,-सैकडों स्फुट लेखों के लेखक-मीतल निवास डैम्पियर नगर, मथुरा।

डा० राजेन्द्र द्विवेदी : संस्कृत अँग्रेज़ी के विद्वान अनेक हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता हिन्दी समाचार के निवर्तमान संपादक कृषि मंत्रालय के वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी।

डा० प्रभाकर माचवे : हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान, लेखक, उपन्यासकार और कवि-साहित्य एकडेमी, दिल्ली के सचिव।

डा० सैयद असद अली : हिन्दी लेखक, 'मुस्लिम संस्कृति की हिन्दी को देन' विषय पर शोध प्रबन्ध, अनेक पुस्तकों के प्रणेता। नेशनल बुक ट्रस्ट में उच्चाधिकारी। १२७५ हवेली हिसामुद्दीन बल्लीमारान दिल्ली-६।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' : हिन्दी जगत के प्रसिद्ध साहित्यकार, कवि, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता और इस अभिनंदन ग्रंथ के सम्पादन-परामर्श दाता। संप्रति साहित्य एकाडेमी दिल्ली से सम्बन्धित।

डा० माजदा असद : सुख्यात लेखिका, 'रसखान' कवि पर शोध प्रबन्ध, अनेक पुस्तकों की रचयिता। लेडी श्रीराम कालेज दिल्ली के हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका।

कु० मधु पोद्दार : उदीयमान लेखिका, विदेशों में अध्ययन। मथुरा के प्रसिद्ध व्यापारी चुरूवाले सेठों की पुत्री, बाबूजी की दौहित्री।

डा० मण्डन मिश्र : ख्यातिनामा संस्कृत विद्वान् एवं वक्ता। भारत सरकार के लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य।

कुमारी जयलक्ष्मी नायडू : दक्षिण भारतीय हिन्दी लेखिका। भारत सरकार के उद्योग मंत्रालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

डा० चक्रधर बिजल्वान : संस्कृत हिन्दी के विद्वान् लेखक। लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यालय के शोध विभाग में रीडर।

श्री आंजनेय शर्मा : आन्ध्र के हिन्दी विद्वान एवं लेखक, संपादन निष्णात, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के महामंत्री।

डा० विद्या शर्मा : हिन्दी लेखिका, गार्गी कालेज दिल्ली के हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका।

श्री अनिलकुमार आंजनेय : 'चतुर्मुख' पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक, प्रसिद्ध लेखक जनपदीय आन्दोलन के स्तम्भ।

डा० एल० बी० राम अनन्त : अनेक पुस्तकों के लेखक एम० एम० एच० कालेज गाजियाबाद के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक।

श्री उमाकान्त शुक्ल : हिन्दी विद्वान और लेखक।

श्री रामदास शास्त्री : पत्रकार, लेखक।

श्री मोहनलाल 'मधुकर' : पत्रकार--हिन्दी प्रचार सभा भरतपुर के कर्मठ कार्यकर्त्ता।

श्री बच्चूप्रसाद सिंह : लेखक एवं विद्वान्, भारत सरकार के वैदेशिक कार्य मंत्रालय के विशेषाधिकारी हिन्दी।

डा० शिवशंकर उपाध्याय : स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, मथुरा के प्रसिद्ध समाज सेवी, साहित्यिक अभिरुचि। अनेक सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध।

डा० भगवान दयाल श्रीवास्तव : 'हिन्दी उपन्यास साहित्य में जनहित की भावना और उसका विकास' विषय पर शोध प्रबन्ध, भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स भूपाल में हिन्दी अधिकारी।

श्री राजेन्द्रकृष्ण : लेखक और पत्रकार कृषि मंत्रालय की 'खेती' पत्रिका के सम्पादक।

श्री नरेन्द्र मोहन अग्रवाल : उदीयमान हिन्दी लेखक, भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय में हिन्दी अधिकारी।

डा० श्यामसिंह 'शशि' : पत्रकार, कवि और समाजशास्त्र वेत्ता, भारत सरकार के प्रतिरक्षा मंत्रालय के 'सैनिक समाचार' के सम्पादक।

श्रीमती कुसुम श्रीवास्तव : विदुषी लेखिका। किशोरीरमण इन्टर कालेज मथुरा में हिन्दी प्राध्यापिका। ब्रज साहित्य मंडल की आजीवन सदस्या।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साधना

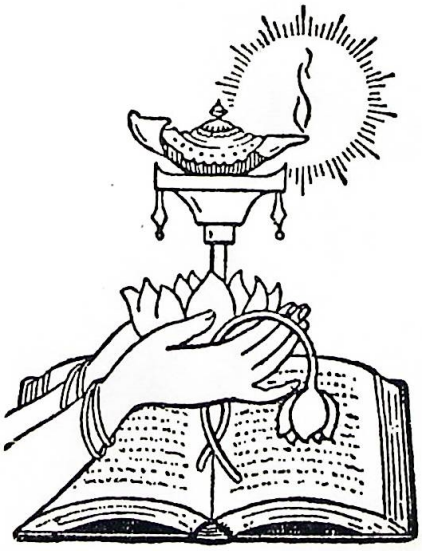

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

काव्यांजलि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

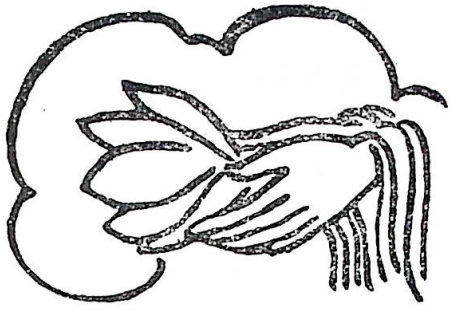

शुभकामना

हृषीकेश चतुर्वेदी

श्रीविष्णु-सार्द्धं निवसेत्तवालये,
वृकध्वजस्त्वन्मतिमत्र नोदय-
न्दाक्षिण्य-वृद्धिं सततं करोतु ते
वर-प्रदास्यात्प्रयता सरस्वती।
नताऽस्तु ते दुर्जय शत्रु-संहतिः,
दामोदरस्त्वो प्रददात्वभीप्सितम्।
सदाशिवस्त्वच्छिवमातनोत्विह,
जीवेश्चिरं स्वस्थमना मुदा, सुहृद्!

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मूक साधक

बलवीरसिंह 'रंग'

उद्भाषित्
ब्रज व्योम पर
'हीरा लाल' प्रकाश,
मथुरा नगर
विराजते "श्री वृन्दावनदास।"
श्री वृन्दावनदास
हास की मूर्ति-मनोहर,
भारतीय संस्कृति है
जिनके लिए धरोहर॥
हिन्दी-हिन्दुस्तान की सदा उतारी आरती,
मूक-साधना मंत्र से मुखर हुई 'ब्रज भारती।'

●

ब्रज बसुधा कौ सुधा

रामलला

कोविद कविन्दन कों लखि सुख पावै भूर,
उर हरसावै भावै सामरौ सलौनों है।
लला कवि अमित अनंद लहिवे के लिये,
जुर मिल आये सो सनेह बीज बोनों है।
विद्या वारधी कौ वुधा वृज वसुधा कौ सुधा
ताके भव्य भाल दिपै मुदित दिठौनों है।
विन्द्रावन दास बाबू कौ है अभिनन्दन सों
सोने में सुगंध है सुगंध मांहि सोनों है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जुग जुग जिओ स्वस्थ रहि सेबहु ब्रज-हिन्दी अधिकाई

अमृतलाल चतुर्वेदी

बन्धुवर बारम्बार बधाई !

'साहित वारिधि' को उपाधि जो तुम सुपात्र ने पाई।
योग बधाई प्रथम समेलन जा अस सुमति सुझाई॥

या उपाधि मिलिबे सों तुम्हरी ना कछु कीर्ति बढ़ाई।
तुम सिनु आइ उपाधि आपु ही बड़ भागिन बन जाई॥

तन मन धन तीनों सों करि रहे तुम साहित सिबकाई।
याके प्रति उपकार बात मन तुम्हरे कबौं न आई॥

सरल सुभाव सात्त्वकी बृत्ती अहं गुमान न भाई।
सुठि बक्ता लेखक, सम्पादक कार्य कुशल गुन पाई॥

नम्र बिनीत मृदुल ब्यवहारी प्रचुर करौ पहुनाई।
स्वयं गुनी गुन गाहक भारी स्वर्न सुगंध मिलाई॥

छोटौ हू साहित्यिक तुमकों लेवतु तुरत बुलाई।
सफर कष्ट व्यय और असुविधा कबौं न आढ़ें आई॥

जुग जुग जिओ स्वस्थ रहि सेबहु ब्रज हिन्दी अधिकाई।
'अमृत' जू जस ध्वजा राउरी लहरि लहरि लहराई॥

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अमर रहे ब्रज रज रतन श्री वृन्दावनदास

ब्रजनन्दन गुप्त ब्रजेश

बानी मीठी मन मधुर, मोहक मृदुल सुभाव
वृन्दावन में पाइये, नित्य नेह को भाव
सुजन मन भावनों।
एक बार जासों मिलत, मिलत हीय सों हीय
बारे बूढ़े नहिं गिनत, करनी अनु करनीय
वृन्दावन दास की।
सज्जन-सम्मत सारयुत सरस सुबोध निबन्ध
बहुत प्रकाशित है गये बहुतन को बरबन्ध
अँगारी व्हैं रह्यो।
हिन्दी सेवा में निरत, नित्य नवीन उमंग
शुभ साहित्य सुतीर्थ, में आयोजित सतसंग
करत निज गेह में।
ब्रज मंडल के लाड़ले, जगत-लाड़ले होहु
बुन्देली ब्रिज भागिनि पै सदा कीजियो छोहु
विनय तुमसों यही।
अभिनंदन सांचो तबहि वृन्दावन को होय
जब सब को मन कुंजहु वृन्दावन सो होय
अमित आनंद बढ़े।
अति उदार सांचे सुद्ध बानी के बरदान
श्री वृन्दावनदास पै हिन्दी को अभिमान
हिन्द को गर्व है।
अमर रहे ब्रजभारती दिन दिन होय विकास
अमर रहे ब्रज रज रतन श्री वृन्दावन दास
भारती भावते।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रत बारे वृन्दावनदास

राजेश दीक्षित

ब्रजबानी-सुहानी-कलिन्दजा के तट के हैं कदंब सरीखे सुहावन।
अहैं सेवक साधु-गुनीजन के कविराजन के मन के हुलसावन॥
'राजेशजू' नेही सनेहिन के यह भीतर-बाहर सों बड़े पावन।
धनि, पुन्य-मही मथुरा की अहै जहां बास करें नित 'बाबूवृन्दावन'॥

× × ×

मन के यह भोरे सलोने महा तन के अभिराम हैं, नीके, ललाम हैं।
धन के रहे दानी सदा सों जड़े जन के प्रिय पोसक हैं, सुखधाम हैं॥
'राजेशजू' बाबू वृन्दावन जू 'ब्रजमाधुरी' के बने दास अकाम हैं।
हुलसावन चित्त सुधीजन के यह साधु गुनीजन केर गुलाम हैं॥

× × ×

'ब्रजसाहित्यमण्डल' धन्य भयौ अतियारे 'वृन्दावनदास' मिले।
'ब्रजभारती' को दुख दूरि भयो रखवारे 'वृन्दावनदास' मिले॥
'राजेशजू' मुग्ध मही ब्रज की ब्रज बारे 'वृन्दावनदास' मिले।
हम काहे कूं और की चाह करें? हमें प्यारे 'वृन्दावनदास' मिले॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास के प्रति

रमेशचन्द्र दुबे

श्री वृन्दावन-चन्द्र कृष्ण ब्रज-नन्द दुलारे।
धर कर अनुपम रूप सुधामय, साँझ सकारे,
अब भी सुधा बिखेरा करते जिसके आँगन;
धर कर नटवर वेष किया करते ध्वनि-वादन॥

उस रसमय क्रीडांगन का है नाम परम सुखधाम।
श्री जयदेव-प्रथित, 'वृन्दावन' कुंज-धाम अभिराम॥
उसके 'दास' रहा करते तुम, मथुरा नगरी बीच।
वास 'प्रकाश भवन' में करते, तुम साहित्य-दधीच॥

जो भी कभी भूल कर पहुँचा ब्रजभाषा अनुरागी।
मिला स्नेह, आतिथ्य, प्रीति पा, हुआ सुखी बड़भागी॥
ब्रजपति के नाना भोगों सी मधुर प्रीतिमय वाणी।
सदा विहँसती, मुख की शोभा, दीप्तिमयी, कल्याणी॥

निश्छल, भोले बालक, जैसे वचन तुम्हारे मोहन।
ब्रज-भारती फले फूले, बस यही ध्यान है पल छिन॥
तरुणों से उत्साही, वय से वृद्ध, तपस्वी, साधक।
ब्रज की सुधा-पूत वाणी के तुम सच्चे आराधक॥

'ब्रज-भारती' छपा करती है अब नियमित प्रति वर्ष।
सम्पादक, शोधक, प्रेषक सब, एक तुम्हीं, अति हर्ष॥
किसने जाना कितना व्यय-श्रम, तुम करते हो इस पर।
किन्तु पाठकों तक पहुँचाते, ब्रज की बात हृदय-हर॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नगर पालिका अध्यक्ष चुने जाने पर बा. वृन्दावन दास सदस्यों तथा जनप्रतिनिधियों के साथ ।

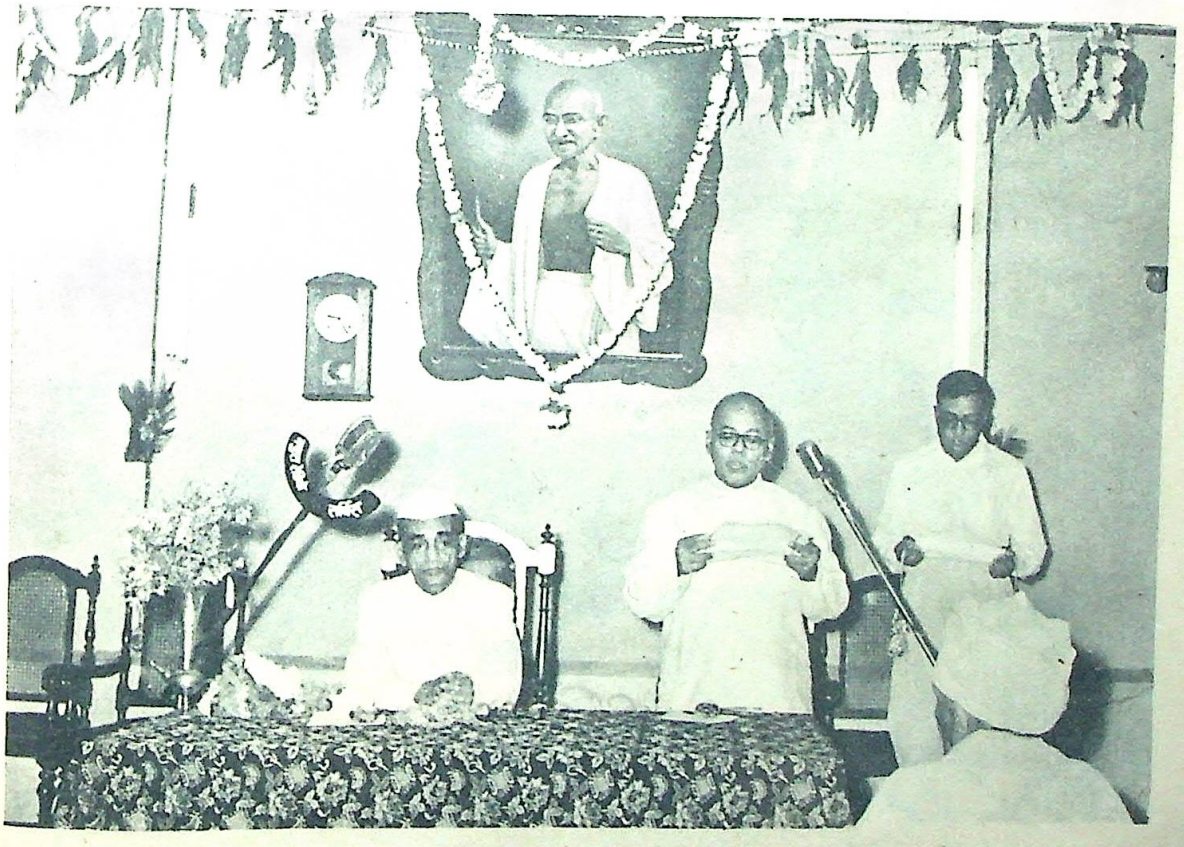

नगरपालिका अध्यक्ष बा. वृन्दावन दास महामहिम राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास को मानपत्र पढ़ते हुए ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी के देदीप्यमान नक्षत्र गगन के

ब्रजमोहन लाल शर्मा 'मोहन'

अभिनन्दन केहि भाँति करें श्रीमान तिहारौ।
साहित वारिध आप ज्ञान तेहि अंश हमारौ॥
बूंद सिन्धु विनसाय, कहे जो कोई भूले।
परम तत्व में लीन जीव सुख पावे फूलै॥
ब्रज में कियो प्रकाश नाम ब्रज चंद कहायो।
श्री वृदावनदास दास ताकौ भू आयौ॥
नटवर नन्द किशोर रमन ब्रज भाषा आँगन।
ताकी पटतर करै कौन बड़भागी लालन॥
ब्रजभाषा उत्थान और ब्रज भूमि समर्थक।
सार ग्रहण की वान सदा परित्याग निरर्थक॥
हिन्दी के देदीप्यमान नक्षत्र गगन के।
सुधा वृष्टि नित करैं मयंक प्रकाश भवन के॥
प्रीति रीति अपनाय अहं को भाव विहायौ।
ऊँच नीच को भेद भाव नियरे नहिं आयौ॥
राग द्वेष छल दम्भ कपट की गंध न भावै।
भारी भारी सरस बात उर सुख पहुँचावै॥
राजनीति में दक्ष मधुपुरी नगर पितापद।
कियौ सुशोभित आप सिद्ध भये सफल, दयाप्रद॥
ब्रज महिमा की मधुर गूंज ब्रज भारती गाई।
सांस्कृतिक परिदृश्य आपकी करे बड़ाई॥
जन्म भूमि सुख धाम महावन पूर्वज धारी।
अंकुर 'मोहन' जान हिये हुलसे अति भारी॥
जननी कौ कहि ध्यान रखें सुत सज्जन भारी।
सदा निभावें रीत यही उर आशाधारी॥
वर्षा ग्रीष्म वसंत शिशिर हेमन्त लुभानी।
शरद चन्द्रिका सुखद साल सत देखौ ज्ञानी॥
जयति सच्चिदानंद जयति जय गिरवर धारी।
जयति नन्द के नन्द राधिका रमण विहारी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनन मनस्वी, प्रखर तपस्वी, भाषा के सेनानी

गणेशलाल शर्मा 'गणेश'

पद्म गंधिनी वास सुयश की दिग दिगंत को भरती,
स्वर लहरी गुंजित हो झंकृत हृदतंत्री को करती।
कलित कीर्ति साहित्य जगत में जिसकी चहुँ दिशि छाई,
उसका गुण-गौरव गाने में सरस्वती सकुचाई।।

वृन्दावन के दास तुम मथुरा के अधिकारी।
निज प्रभाव से मथुरा कर दी तीन लोक से न्यारी।।
त्यारी सेवा शक्ति भक्ति लेखनी आप की न्यारी।
दीनों की हितकारी इससे लगती सब को प्यारी।।

पर हित सरिस धर्म नहिं कोई इसे बताने वाले,
प्रभोमृत के पिला दिए हमको प्याले पर प्याले।
ब्रज रज, 'ब्रजमण्डल' औ 'भारती' सबको ही अपनाया,
सींच सींच साहित्य सुधा से नव जीवन सरसाया।।

भारतीय संस्कृति काव्य नवनीत रचाने वाले,
सतत साधनों से हिन्दी का मान बढ़ाने वाले।
मधुर कंठ, नवनीत हृदय में करुणा रही समाई,
भव्य ललाट मनोहर मुख पर ज्योति रही छवि छाई।।

विनयशील बाबू वृन्दावनदास सदा दरसाते,
स्नेहशील, व्यक्तित्व सरल के दर्शन से सुख पाते।
तुम मयंक साहित्य जगत के लगते सब को प्यारे,
निरख तुम्हारी शीतल छवि को हर्षित हैं हम सारे।।

राजभवन सी सब सुख निधियाँ तुमने तृण समत्यागी,
तुम हो मधुकर चम्पकवन के हिन्दी के अनुरागी।
ऐश्वर्यों के मोह-कुंज में कभी न फंसने वाले,
ध्रुव हो, धर्म धुरीण कर्म की ध्वजा उठाने वाले।।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनन मनस्वी, प्रखर तपस्वी ? भाषा के सेनानी,
अथक लगन की लिखी जायगी अनुपम अमर कहानी।
जन सेवा करने का तुमने निशि दिन पाठ पढ़ाया;
अहो कामना जयी ? तुम्हें तो सेवा पथ ही भाया॥

उस पथ पर मानव विचार से श्रद्धा सहित चलेगा,
मानवता-सुख-शांति द्वार तब सत्वर सहज खुलेगा।
हिन्दी के जिस सेवा व्रत पर तन मन तुमने वारा,
अभिलाषा 'प्राणेश' ? मार्ग का संबल बने हमारा॥

●

शुभ साहित्यिक तीर्थ

ब्रजमोहन सरवरिया

श्री वृन्दावनदास मधुपुरी मधु बरसावन।
शुभ साहित्यिक तीर्थ कूल कालिन्दी पावन॥

स्वयम् आप साहित्य वारिधि मधु मिश्रित हैं।
जन-मन की अभिलाष माधुरी से सिंचित हैं॥

"ब्रज भारती" मधुर स्वर लहरी से सम्पादित।
ब्रज की पावन धरा-धार इनसे आह्लादित॥

ब्रज साहित्यिक मण्डल के अति निर्मल दर्पण।
हिन्दी के हित करने तन-मन-धन सब अर्पण॥

तपः पूत अति नम्र सदा सेवा-बल धारी।
नव प्रकाश के पुञ्ज चेतना-व्योम विहारी॥

शत मधुऋतु शत शरद सुधामय जीवन पावें।
है अभिलाषा यही अब्द शत्-शत् बहु आवें॥

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजवाणी प्रतिनिधि बन आये तुम वृन्दावनदास

ब्रजमोहन पाण्डेय 'विनीत'

सूनी ब्रजभारती पड़ी ज्यों होकर परम बिहाल,
प्रगति पंथ अज्ञात निराशा का फैला था जाल।
सूरदास ने जिस धरणी पर छेड़ी थी मृदु तान,
भग्न पड़ी वीणा वह पावन, शिथिल हुए वे गान।
वही सूर सरिता से सिंचित मृदुलतिका सी वाणी,
हुई उपेक्षित म्लान, श्वास की गति गिनती कल्याणी।
वाणी ने वीणा के स्वर की तब ही की झंकार,
फूट पड़ी ज्यों गद्यमयी सरिता की सुंदर धार।
हुआ अनवरत प्रवहमान रसधारा का शुचि लास,
ब्रजवाणी प्रतिनिधि बन आये तुम वृन्दावनदास।
पर-अभिनंदन रहा तुम्हारे जीवन का शुचि ध्येय,
क्षीण पुरातन संस्कृति का पोषण ही है तब प्रेय।
किया चंचला कमला का वाणी से सुकर सुयोग,
ब्रजमण्डल के प्राण तुम्हीं में योग और शुभ योग।
ब्रज रज भी साभार करे अभिनंदन लिये हुलास,
वृन्दावन तुम ही सचमुच हो श्री वृन्दावनदास॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनन्दन

ब्रजेश

ब्रज में ब्रज की रज की नित प्रीति, प्रतीत पग ब्रजनन्दन में।
सद ज्ञान सुधा परस सरस गति, ज्ञानिन के अभिनन्दन में॥
रहें अग्र ब्रजेश सनेहिन में, सुख मानें सुधी जन वन्दन में।
विंदरावन दास हुलास भरे बिहरें मन के विंदरावन में॥

●

बाबू वृन्दावन दास

थानसिंह शर्मा 'सुभाषी'

विन्दावनदास बास मथुरा पुरी में नीकौ
ही कौ नवनीत, हरिचरन ही कौ सुपास।
हितू हितबारौ थारौ सरल सुभाय भारौ—
जाकी कृति-बगिया में रहै मंजु-मधुमास॥
हियौ सुधाधर मथि काढ़ी जो रतन रासि—
दिपत दिगन्तन में तारौ अति सै प्रकास।
साहित्य कौ सिन्धु धार आइ मिल्यौ रविन्द्रा में
जबै ब्रज मंडल बिहारी 'विन्दावन दास'॥

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राष्ट्रभाषा के पुजारी

श्रीकृष्ण शर्मा

हे मूक साधक !
साधना में रत
निरन्तर ;
साहित्य-सेवा में--
सदा संलग्न हो तुम !
राष्ट्र-भाषा के पुजारी,
ब्रज-भारती के पूत !
प्रेरणा-स्त्रोत हो तुम !
निष्ठावान् !
हो कृत-संकल्प--
तुम आराधना में !
ब्रजभूमि का गौरव बढ़ाया
जन्म मथुरा में !
रखा है नाम वृन्दावन !
तुम तपस्वी हो
तुम्हारी यश-सुरभि से
हम प्रफुल्लित हैं--
धरा-आकाश रवि-शशि भी !
तुम्हारी
मृदु मुसकान पर
अर्पित करोड़ों कोष--
'कवि' कुबेरों के।
स्वीकार तुम कर लो
'दास' !
वन्दना श्रीकृष्ण की !!

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास

डा० भवेश पचौरी

बानी मिसिरी सौं मधुर साहित्यिक सौं नेहु।
ब्रु न अहं की रंच हू दृगनु रसिकता मेहु॥
वृंदारक मंदार जहँ विकसत हास विनोद।
दाड़िम दांत दिखावही जहँ तव सभा समोद॥
बरबस जो मोहत मननु मित्रनु लखि सुख जाहि।
नव-नव साहित योजना मुदकारी हैं ताहि॥
दान पुन्न साहित्यकँनु कविनु सराहत नित्त।
सहज सरल सुचि सान्तिजुत सरस सुरसिक सुचित्त॥
साहित बारिधि बिज्ञबर, ब्रजभारती-प्रकास।
हिय जिय सौं हिन्दी हितू, जय वृन्दावनदास॥
त्यक्त कीन जिन राजनय, साहित्तिक ब्रत लीन।
वारिधि जे सद्गुननु के, सारद सेवा कीन॥
रिसि कौ सौ जीवनु विरदु, लेखक वागबिलास।
धिषनाधिप हिन्दी हितू, जय वृन्दावनदास॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

अ. भा. व्रज साहित्य मंडल के १५ वें गाजियाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए बा. वृन्दावन दास, श्री. रामेश्वर उपाध्याय, डा० रामसुभगसिंह (उद्घाटन कर्ता), श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी (प्रधान मंत्री) श्री

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

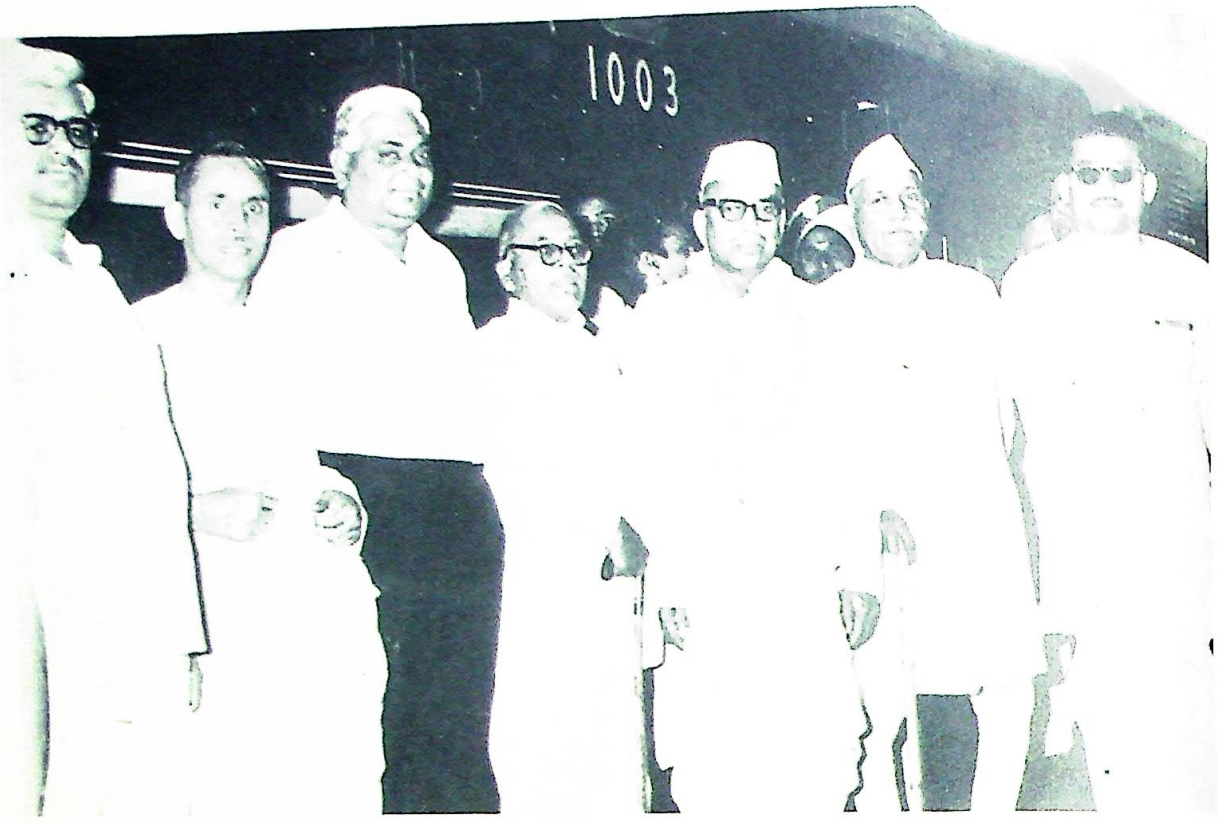

आगरा में सेठ गोविन्द दास जी का स्वागत करते हुए श्री सूर्य पाल सिंह तोमर, श्री रमेश चन्द्र दुबे, बा. वृन्दावन दास, सेठ गोविन्द दास, सेठ अचल सिंह, श्री रामप्रसाद 'कमल'।

कविरत्न सत्यनारायण अर्द्ध शताब्दी समारोह में स्वागत भाषण पढ़ते हुए-बा. वृन्दावन दास (बैठे हुए), श्रीकृष्णदत्त पालीपाल, सेठ गोविन्द दास, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, रैवरैन्ड फादर जोसेफ, श्री रमेशचन्द्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य सेवी

⊙

जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

किसी को जन्म देना, किसी नए संगठन को खड़ा करना, किसी नई संस्था की नींव डालना—इस बात की मांग करते हैं कि इन कामों को करनेवाले में शक्ति हो, उत्साह हो और क्षमता हो। मगर मरे हुओं में जान डालना, जो चीज़ समाप्तप्राय हो चुकी हो या यों कहिए कि केवल जो नाम-शेष है, उसको पुनर्जीवित करना जन्म देने के कार्य से कहीं महान् दुष्कर कार्य है। उसके लिए जिस शक्ति, लगन, उत्साह तथा धैर्य की आवश्यकता है वह प्रायः उनमें नहीं पाई जातीं जो जन्मदाता मात्र होते हैं। इसे यदि व्यापारी शब्दावली में कहें तो यह कहना अधिक ठीक होगा कि किसी भी प्रकार की नई दुकान खड़ी करना, नया कारखाना खड़ा करना या नई सेवा की स्थापना कर उसे चला देना, चमका देना, बाजार में उसका नाम कर देना, अपेक्षाकृत कहीं अधिक आसान काम है बनिस्बत किसी गिरी-मरी दुकान को उठा कर फिर से चलाने के, जिस व्यापारी की बाजार में साख गिर गई हो या जिस कम्पनी की 'गुडविल' जाती रही हो उसको वापिस लाने में। जमीन के खाली प्लाट पर किसी भी तरह का मकान बनाना आसान है, लेकिन किसी गली-कूचे में पुराने बने हुए मकान को गिराए बिना उसको नया, उपयोगी और आकर्षक बनाना कहीं कठिन परिश्रम और योग्यता की अपेक्षा रखता है। इस दृष्टि से जब हम ब्रज साहित्य मण्डल पर विचार करते हैं तो हमें लगता है कि मण्डल को जो मृतप्राय हो चुका था, फिर से जीवन दान देना, एक जीती-जागती संस्था के रूप में खड़ा करने का श्रेय अगर किसी एक अकेले व्यक्ति को हम दें तो वह बाबू वृन्दावनदास हैं। ब्रज-साहित्य मण्डल की जब शरदपूर्णिमा १९४० में स्थापना हुई थी, उस समय यह कहा जा सकता था कि उसके बनाने वाले पाँच पंच थे। वैसे उसकी संयोजन समिति में सात सदस्य थे और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा ऊपर से काम कर रही थी। मथुरा हिन्दी साहित्य परिषद् के समस्त कार्यकर्ताओं और उस समय उनकी संख्या काफी थी, तथा उसके अध्यक्ष सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार का वरद-हस्त मुझे प्राप्त था। सेठ जी के घर पर बड़े-बड़े चिग्घाड़ विद्वान भी भींगी बिल्ली बन जाते थे और अगर सेठ जी ने कह दिया कि 'जगदीश जी आप ठीक कह रहे हैं' तो सब बुजुर्गों को 'हांजी' 'हांजी' कहनी पड़ती थी। पैसे-रुपये के मामले में डा० विश्वपाल की जेब ब्रज-साहित्य मण्डल के कार्य के लिए हमेशा खुली थी और खास तौर पर यह तो उन्होंने नियम ही बना लिया था कि अगर छोटे चौबे जी (मैं) इस कार्य के लिए उनसे कुछ कहूँगा तो वे कभी इन्कार नहीं करेंगे। ब्रज-साहित्य मण्डल की स्थापना के छह महीने बाद ही जब आगरा की एक बैठक में मैंने प्रस्ताव किया कि 'ब्रजभारती' का प्रकाशन किया जाय और बड़े-बड़े विद्वान सम्पादक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता यह पूछने लगे कि उसके लिए पैसा कहाँ से आएगा, तो डा० विश्वपाल शर्मा ने बड़े उदार हृदय से तत्काल घोषणा की कि छह महीने का खर्चा मैं दूँगा। बाद में छह महीने छोड़ कई छह महीने डा० विश्वपाल शर्मा के मत्थे मढ़ गए। लेकिन उस छोटे से काल में छोटी सी पत्रिका 'ब्रजभारती' ने हिन्दी साहित्य-जगत में अपनी धाक जमा दी और ब्रज-साहित्य मण्डल का डंका बजवा दिया। मुझे तो

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पत्रकारिता में प्रवेश के हेतु ब्रज-मण्डल छोड़ना पड़ा, हालांकि यहाँ भी मैं 'ब्रजभारती' का प्रकाशक-सम्पादक लिखा जाता था, परन्तु 'ब्रजभारती' और ब्रज-साहित्य मण्डल क्षेत्रीय रूप छोड़कर अखिल भारतीय बन गए, उसका डंका सारे देश में पुजने लगा। दिल्ली का ब्रज-कवि-दरबार और कलकत्ते में सेठ कन्हैयालाल पोद्दार को टण्डन जी द्वारा 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' का भेंट किया जाना तथा हाथरस में राष्ट्रपति द्वारा ब्रज-साहित्य मण्डल का उद्घाटन व मथुरा में पुनः राष्ट्रपति द्वारा ब्रज-साहित्य मण्डल के अपने भवन का उद्घाटन, ऐसी घटनाएँ थीं जिन्होंने ब्रज-साहित्य मण्डल को गौरवान्वित किया। परन्तु इसके बाद मण्डल मुकदमेबाज़ी, आपसी फूट तथा तरह-तरह के छोटे-बड़े भद्र-अभद्र लोगों के मनमुटाव, तनाव का जो शिकार हुआ, उसके बाद उसका नाम लेवा भी कोई नहीं रहा और मण्डल के जितने पुराने कार्यकर्त्ता थे सब ने उससे अपना रास्ता नाप लिया। ऐसी स्थिति में ब्रज-साहित्य मण्डल की प्रतिष्ठा उसके कार्य तथा उसकी पत्रिका 'ब्रजभारती' को पुनःस्थापित करना किसी महावीर के बूते का ही काम था और ऐसे महावीर निकले बाबू वृन्दावनदास।

मथुरा में जब हम पढ़ते थे या जब वकालत करते थे और हिन्दी साहित्य परिषद् तथा ब्रज-साहित्य मण्डल के कार्य में व्यस्त थे, तब हम बाबू वृन्दावनदास वकील को म्यूनिसिपल बोर्ड के नेता के रूप में जानते थे। उस समय तक हमें इस बात का कोई अन्दाज़ नहीं था कि इस व्यक्ति में साहित्यिक कार्य के प्रति कोई रुचि है या वे ऐसे कार्यों में कुछ आर्थिक सहायता भी दे सकते हैं। नहीं तो ब्रज-साहित्य मण्डल की स्थापना करते समय हम लोगों ने यह नहीं सोचा होता कि हम ही लोग दस-दस रुपया चन्दा देकर यह उत्सव कर लेंगे और उनको २५ रुपया दे कर ब्रज-साहित्य मण्डल की आजीवन सदस्यता के लिए भी नहीं कहा। यह हमें मालूम था कि उनका एक श्याम काशी प्रेस है। पर हमने न 'ब्रजभारती' के किसी विज्ञापन के लिए, न रियायती रेट पर छपाई के लिए भी उनसे प्रार्थना की। इसलिए जब हमें यह पता लगा कि बाबू वृन्दावनदास ब्रज-मण्डल में रुचि ले रहे हैं तो उस समय ऐसा आभास हुआ कि अग्रवाल-समाज के कई अन्य प्रमुख व्यक्ति—लाला रमणलाल या बम्बई के अग्रवाल और जायसवाल उद्योगपति—ब्रज-साहित्य मण्डल में रुचि लेने लगे हैं तो शायद बाबू वृन्दावनदास ने भी उसी हिसाब से दिलचस्पी दिखानी शुरू की हो। लेकिन हमें आश्चर्य हुआ कि जिस-जिस प्रकार से मंत्रियों और बड़े-बड़े पैसे वालों ने ब्रज-साहित्य मण्डल के काम से अपना हाथ खींचना प्रारम्भ किया, बाबू वृन्दावनदास का हाथ बढ़ता गया। पहले तो शोभा-प्रतिष्ठा की बात ही रही, यानी सभा-सम्मेलनों की अध्यक्षता करना, फिर 'ब्रजभारती' के संचालन के लिए पैसा जुटाना भी पड़ा और बाद में तो यह नौबत आ गई कि बाबू वृन्दावनदास ब्रज-साहित्य मण्डल के 'पीर-बबर्ची भिश्ती-खर' सभी बन गए। ऐसी बात नहीं है कि मथुरा में इस समय ऐसे विद्वान नहीं हैं जो ब्रज-साहित्य के बारे में कुछ जानते न हों। आज के गए-गुजरे ज़माने में भी हर प्रकार के विद्वान पड़े हैं। फिर भी, आज स्थिति यह है कि यदि ब्रज-साहित्य के शोध में कोई बाहरी विद्वान आता है और यदि उसका बहुत बड़ा नाम नहीं है या उसका कोई खास राजनीतिक महत्व नहीं है तो उसकी सेवा-सत्कार की ज़िम्मेदारी बाबू वृन्दावनदास को उठानी पड़ती है। ब्रज-साहित्य-मण्डल के पोस्टेज से लेकर 'ब्रजभारती' की छपाई और कागज की व्यवस्था भी उन्हें देखनी पड़ती है और उसके लिए सम्पादन करना पड़ता है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को पत्र लिखने पड़ते हैं और वे कितने महंगे होते हैं इसका पता इस बात से ही लगता है कि उन्हें उन पत्रों को विधिवत् रूप देने के लिए एक लम्बी-चौड़ी किताब ही छपवानी पड़ी। चिट्ठियों के लिखने में जितना समय और पोस्टेज व्यय हुआ होगा वह अलग है। इस पुस्तक में ३०० छपे हुए पृष्ठ हैं और पुस्तक की छपाई-सफाई तथा गेट-अप आत्माराम एंड

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सन्स द्वारा प्रकाशित 'श्री पद्मसिंह शर्मा के पत्र' पुस्तक से कहीं ऊँचे दर्जे की है। छोटे-मोटे काम भी होते रहते हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के अभिनन्दन-ग्रंथ 'प्रेरक साधक' के व्रज-खण्ड का तो उन्होंने बड़ा सुरुचिपूर्ण सम्पादन किया ही और 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' के पश्चात् व्रज-संस्कृति पर २०० पृष्ठों की बड़े साइज़ में छपी जो महत्वपूर्ण सामग्री संग्रहीत की है, वह एक अलग ही चीज़ है। साथ ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पाँच हज़ार रुपया अपने पास से तथा अपने मित्रों से एकत्र कर दिया, यद्यपि पुस्तक-प्रकाशन का सारा श्रेय किन्हीं दूसरों ने बिना एक कानी कौड़ी लगाए ही ले लिया। बाबू जगजीवनराम अभिनंदन ग्रंथ में भी आप संपादन परामर्श समिति के सदस्य थे।

बाबू वृन्दावनदास ने जो साहित्य-सेवा की है, अन्तर्जनपदीय कार्यकर्ताओं के साथ व्रज-साहित्य मण्डल का फिर मेल कराया है तथा दिवंगत साहित्यकारों की श्रद्धांजलियों का क्रम कायम किया है उससे बाबू जी का निजी साहित्यिक कार्य भी आगे बढ़ा है और वे भारत के प्राचीन इतिहास पर बड़े मनोयोग से शोध और प्रकाशन करते जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी उन्हें 'साहित्यवारिधि की उपाधि ही नहीं दी, उन्हें सम्मेलन का अध्यक्ष भी निर्वाचित किया और इस प्रकार उनके सेवा-क्षेत्र का विस्तार किया है। ठीक ही है, 'ऋतु बसन्त जाचक भयौ, दिये डार द्रुम पात। तातें नवपल्लव भये दिया दूर नहीं जात।' हम यह कामना करते हैं कि बाबू वृन्दावनदास जी इस नए उत्साह के साथ बहुत वर्षों तक साहित्य की सेवा और वृद्धि में लगे रहें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के अनन्य साधक

डा० सत्येन्द्र

एम० ए०, डी० लिट०

सन् १९३० की बात है। चम्पा अग्रवाल हाईस्कूल में एक हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए मुझे बुलाया गया। नगर के प्रसिद्ध रईस और ख्यातनामा ऐडवोकेट बाबू जमनाप्रसाद हाईस्कूल के प्रबंधक थे। उनके पास प्रातः पहुँचा। मैं आगरा से एक दिन पहले शाम को मथुरा आ गया था और अपने एक बड़े भाई बाबू सुनहरीलाल कुलश्रेष्ठ के पास होली वाली गली में ठहरा था। जब बाबू जमुनाप्रसाद से मिलने को तय्यार हो रहा था तो बड़े भाई ने कहा कि तुम जिन कपड़ों को पहन कर जा रहे हो, वे तो ठीक नहीं हैं, उनका प्रभाव ठीक नहीं पड़ेगा। मेरे कपड़े पहन जाओ। इंटरव्यू में जाने के समय कुछ जँचने वाला व्यक्तित्व तो बना कर जाना चाहिए। मैंने विनम्र शब्दों में कहा—दादा जी, मेरा जैसा अपना रूप अपनी पोशाक में है, उसी में मैं जाऊँगा। थोड़ा भी बन सँवर कर नहीं जाऊँगा। वे चाहें मुझे लें या न लें।

और जब बाबू जमुनाप्रसाद जी की आलीशान कोठी पर पहुँचा और उन्हें परिचय दिया तो उन्होंने एक रजिस्टर में कुछ लिख कर वह रजिस्टर एक चपरासी को दिया और मुझसे कहा कि आप चपरासी के साथ जा कर प्रबंध समिति के सदस्यों से मिल आइए। मैंने नमस्कार किया और चपरासी के साथ हो लिया। मैनेजर महोदय ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। जिन महानुभावों से मैं चपरासी के साथ जा कर मिला उनमें बाबू गिरिराज चरन जी तो संभवतः मंत्री थे, बाबू वृन्दावनदास जी, संभवतः सहायक मंत्री थे। बाबू लक्ष्मण प्रसाद वकील और श्री प्रभूदयाल मीतल भी थे जिनसे मिला था। मुझे पहले से किसी का पता नहीं था। इंटरव्यू यों भी कुछ अद्भुत ही था, क्योंकि प्रत्याशी तो मैं अकेला ही था। और इंटरव्यू बोर्ड के सदस्यों के घर जा कर भेंट करनी थी, कुछ ऐसा भी लगा कि सदस्यों को पहले से इस इंटरव्यू का पता भी नहीं था। तभी बाबू वृन्दावनदास जी ने मेरे पहुँचने पर पहला प्रश्न कुछ इसी प्रकार का किया था—'कहिए अच्छे हैं न ? आज यहाँ कैसे आना हुआ।' तभी चपरासी ने वह रजिस्टर उनके समक्ष रख दिया। 'अच्छा यह बात है।' रजिस्टर देख कर उन्होंने कहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है बाबू जी ने कोई विशेष पूछ ताछ नहीं की। उनके छोटे भाई मेरे सहपाठी थे, आगरा कालेज में। बाबू वृन्दावनदास जी भी आगरा कालेज के ही छात्र रह चुके थे। बी० ए०, एल० एल० बी० आगरा से ही किया था। आगरा कालेज में भी वे अत्यन्त कर्मठ थे, जहाँ तक मुझे स्मरण है, वे आगरा कालेज की यूनियन के या तो अध्यक्ष रह चुके थे या मंत्री। जो भी हो, उन्होंने रजिस्टर पर कुछ लिख कर चपरासी को दे दिया, और मैं नमस्कार कर के चपरासी के साथ आगे चल दिया। श्री प्रभुदयाल मीतल से मैं कुछ समय पूर्व एक अनोखे प्रसंग में मिल चुका था। आज वह प्रसंग बताया जा सकता है, स्वतंत्रता से पूर्व उसका संकेत करना भी गुनाह होता। बात यह थी कि 'नमक बनाओ आन्दोलन' में अंग्रेजी सरकार द्वारा जो अत्याचार आगरा जिले में किये गये थे उन पर एक 'इन्क्वायरी कमेटी' कांग्रेस ने बिठायी थी। उसकी रिपोर्ट अंग्रेजी में थी—उसे गुपचुप ही छपवाया जा सकता था। कोई प्रेस वाला उसे क्यों छापता ? पर, महेन्द्र जी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ने या किसी अन्य कांग्रेसाधिकारी ने मीतल जी को पटा लिया। ये थे भी विशेष राष्ट्रीय विचारों के। फिर भी सब काम गोपनीय ढंग से होना था। उसका प्रकाशन अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी होना था। महेन्द्र जी ने मुझे यह काम सौंपा। मैं मीतल जी से मिला और प्रेस में एक चोर स्थान पर मुझे बिठा दिया गया। उधर अंग्रेजी में कम्पोज होना आरम्भ हुआ और मैंने हिन्दी में अनुवाद करना भी आरंभ कर दिया। प्रातः ही काम पर बैठा था और रात को सम्भवतः ११-१२ बजे तक काम समाप्त कर के मैं उठा। मीतल जी ने कई बार कहा भी कुछ आराम भी कर लो। पर मैं उठा नहीं। मीतल जी इससे बहुत प्रभावित हुए। संभवतः उन्हें महेन्द्र जी ने यह भी बता दिया होगा कि मैं हिन्दी साहित्य विद्यालय का प्रधानाचार्य हूँ। जो भी हो, जब उस चपरासी के साथ मैं मीतल जी से मिला तो पहले तो वे भी नहीं समझ पाये कि मैं प्रत्याशी हूँ। वे समझे कि मैं यों ही मथुरा आया हूँ और पहली मुलाकात के कारण उनसे मिलने चला आया हूँ। जब रजिस्टर देखा तो बहुत प्रसन्न हुए, "आप आ जाँय तो बड़ा अच्छा रहेगा। पर हम आपको कुछ दे तो नहीं सकेंगे। ५० रु० पर आप क्या आयेंगे ?" मैंने कहा—"मुझे जो कुछ आप देंगे मैं उसे छात्रवत्ति समझ कर ग्रहण करूँगा, क्योंकि अध्यापन के साथ मैं अध्ययन भी करना चाहता हूँ।" और इंटरव्यू समाप्त। बाबू लक्ष्मण प्रसाद जी ने वास्तव में इंटरव्यू लिया और जम कर विविध विषयों पर चर्चा की। लिखने में उन्हें भी रुचि थी। जो भी हो, इंटरव्यू हो गया और मुझे कुछ दिन बाद नियुक्ति मिल गयी। बाबू वृन्दावनदास उस समय चंपा अग्रवाल हाई स्कूल की कार्यकारिणी में प्रभावशाली व्यक्ति थे। भरे हुए शरीर और कुछ ठिगने-ठिगने न सही, अति लम्बे होने के कारण तब भी गोल मटोल दर्शनीय शालिग्राम से लगते थे। अपनी शरीर-यष्टि को ये आज भी वैसी ही दर्शनाभिराम बनाए हुए हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु करे। चम्पा अग्रवाल कालेज में नियुक्ति से पूर्व ही मैं इनका अनुज हो गया था, क्योंकि इनके छोटे भाई मेरे सहपाठी थे। हम दोनों में अच्छी मैत्री थी।

श्री बाबू जी के पिता जी उद्योगपति थे—एक विशाल प्रेस और प्रकाशन के मालिक। इनका श्याम काशी प्रेस उस समय प्रसिद्ध था। उस समय मथुरा में इनके अतिरिक्त एक और भी प्रेस था बम्बई भूषण प्रेस इस समय इस प्रेस के कर्त्ता-धर्त्ता थे श्री द्वारिका प्रसाद भरतिया। बड़े प्रखर व्यक्तित्व वाले थे, वे। उनकी किसी से कम ही पटती थी। उनके घनिष्ठ मित्र थे श्री मंगीलाल जी सदस्य अग्रवाल कालेज; इन दोनों को विरोधी दल का माना जा सकता है। पर ये सभी चंपा अग्रवाल हाई स्कूल को उन्नत बनाने के लिए ही झगड़ते थे—विरोध सैद्धान्तिक ही था। मेरे साथ जो इंटरव्यू का नाटक हुआ था। उसका कारण यह था कि श्री भरतिया जी मुझे अग्रवाल कालेज में लाने के लिए बहुत उत्सुक थे। उनकी योजना सफल हुई, और मैं १९३० में अग्रवाल हाईस्कूल का हिन्दी-अध्यापक हो गया। बम्बई भूषण प्रेस और श्याम काशी प्रेस में जनप्रिय साहित्य छपता था। पुस्तकों के फर्मे एक बार ढाल लिए जाते थे, और संस्करण समाप्त होते ही उन फर्मों से बिना कंपोजिंग का दुबारा सर दर्द लिए, पुस्तकें छाप ली जाती थीं। भरतिया जी ने तो एक दूकान भी खोल रक्खी थी, इस प्रकार वे पुस्तक विक्रेता भी थे। श्याम काशी प्रेस ने यह सब-कुछ नहीं किया। उस युग में इन प्रेसों ने साहित्य की बड़ी सेवा की थी। कितने ही कवियों की रचनायें, रामायण, रामचरितमानस, कहानी, कथा, ज्योतिष ग्रंथ, सानुवाद सटीक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ सभी तो इन प्रेसों के द्वारा प्रकाश में लाया गया। आज भी यदि श्याम काशी प्रेस के उस समय के प्रकाशन का लेखा-जोखा लिया जाय तो ऐसे कई ग्रंथ ऐसे कवियों के मिल सकेंगे जिनकी चर्चा किसी इतिहास तक में नहीं। अतः बाबू वृन्दावनदास का पुस्तकों और पुस्तक प्रकाशन से जन्मजात संबंध था। इसी का परिणाम यह माना जा सकता है कि बाबू वृन्दावनदास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की रुचि मूलत: साहित्यिक है। पठन-अध्ययन-मनन में लगने वाली सुरुचि। प्रेस की लीक बंध चुकी थी और उसे देखने-भालने वाले भी घर में कम न थे। इन्हें भी थोड़ा-बहुत ही देखना पड़ता था। एल० एल० बी० थे ही, वकालत में भी लगे; पर अर्थ-चिन्ता तो थी ही नहीं, अत: जम कर विविध विषयों के अध्ययन में और शिक्षा और समाज की सेवा में जुट गए।

इतिहास, सहकारिता, राजनीति और साहित्य आपके प्रिय विषय रहे हैं—कानून को भी इनका एक प्रिय विषय माना जा सकता है। मैं इनके जीवन की गति-विधियों को तीन कालों में विभक्त कर के देखता हूँ। प्रथम आरंभिक युग में ये लेखन का कार्य सामान्य रूप में करते रहे और सेवा की दृष्टि से समाज इनका केन्द्र रहा। विशेषत: अग्रवाल समाज और उसमें शिक्षा पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया। दूसरा काल नगर और विश्वविद्यालय सेवा का रहा—मथुरा की नगरपालिका का कार्य भार सँभाला और विश्व-विद्यालय की सीनेट के सदस्य भी बने। इस काल में साहित्य-सेवा कुछ शिथिल-सी रही। इनके जीवन का यह तीसरा काल आजकल है, इसमें ये सर्वतो भावेन साहित्य सेवा के लिए समर्पित हो चुके हैं। तन-मन-धन सभी इन्होंने इस समय साहित्य सेवा के निमित्त सरस्वती मंदिर में चढ़ा दिया है। फलत: एक ही छलांग में ये सूर्य की भाँति हिन्दी सुमेरु पर जगमगाते दिखायी पड़ रहे हैं।

इस काल की इनकी उपलब्धियाँ प्रशंसनीय हैं—ब्रज-साहित्य मंडल को पुनरुज्जीवन आपने ही प्रदान किया है और यह एक ऐसा उपकार है जिसे ब्रजवासी और हिन्दी भाषी कभी नहीं विसरा सकेगा। ब्रज क्षेत्र का एकमात्र साहित्यिक मंच यह मंडल ही है, यह जितना प्राणवान होगा, उतना ही ब्रज और उसका साहित्य प्राणवान होगा। उतना ही ब्रज-क्षेत्र का सिर ऊँचा उठेगा। उससे भी अधिक श्रेय इन्हें 'ब्रजभारती'के संपादन और प्रकाशन के लिए है। जहाँ तक मैं समझता हूँ 'ब्रजभारती' का अधिकांश व्यय आप ही उठा रहे हैं। 'ब्रजभारती' तो ब्रज-साहित्य मंडल की यश-पताका है, एक इसी प्रवृत्ति से ब्रज-साहित्य मंडल की जीवन-सामर्थ्य का पता लगता रह सकता है। यह सच है बाबू जी समर्थ हैं, पर ऐसे कितने सामर्थ्यवान व्यक्ति हैं जो उस सामर्थ्य को ऐसे उपयोगी रूप में नियोजित करते हैं। 'ब्रजभारती' से आपका व्यक्तित्व ही झिलमिलाता है। जो विशाल हृदयता और उदारता आपके व्यक्तित्व में है, वही ब्रजभारती में मिलती है। सब के प्रति सहिष्णुता, उदारता, सौम्यता, विनम्रता और गुण ग्राहकता। बाबू जी से बातें करने वाला यह अनुभव किए बिना नहीं रह सकता कि ये कभी किसी पर क्रोध नहीं कर सकते। दूसरों को प्रोत्साहन देने और उनका अधिकाधिक आदर करने के गुण भी आप में बद्धमूल लगते हैं।

'ब्रजभारती' के आपके द्वारा संपादित अंकों से यह बात भी विदित होती है कि बाबू जी ने अछूते ग्रंथों, अछूते विषयों और अछूते कवियों को प्रकाश में लाने का सतत प्रयत्न किया है। कितने ही नये लेखक उभरते दिखायी पड़ रहे हैं। साहित्य की यह बहुत ठोस सेवा है। आप में सच और यथार्थ को कहने और करने का भी साहस है, पर उस साहस के साथ वाणी और स्वभाव की विनम्रता और शील-सौजन्य हाथ से नहीं जाता।

और इससे आगे, उनकी इन्हीं गुणों और सेवाओं के कारण आपको उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष भी बना दिया गया। आपने अपने नाम से उत्तर प्रदेश में कई स्थानों पर पुस्तकालय भी खुलवाये हैं।

साहित्यकारों का सम्मान करने की आपकी भावना भी बड़ी बलवती है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रंथ को प्रकाशित-संपादित करने का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। मेरे पास उनके अभिनंदन के लिए शब्द कहां जुट सकते हैं? ऐसा महान व्यक्तित्व है उनका।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्त्व

⊙

डा० केदारदत्त तत्राड़ी
एम० ए०, पी-एच० डी०

आज लगभग २० वर्ष पुरानी धुँधली स्मृति मेरे मस्तिष्क पर स्पष्ट हो रही है कि बाबू वृन्दावन दास जी के सर्व प्रथम दर्शन मुझे २७ जुलाई सन् १९५१ को हुए थे। उस समय मैं चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज, मथुरा के सैन्य-विज्ञान के प्रवक्ता-पद के साक्षात्कार हेतु उसकी प्रवन्ध-समिति के समक्ष प्रस्तुत हुआ था। बाबू जी उस समिति के अध्यक्ष थे। चयन-समिति के मंत्री श्री मोतीलाल शोरावाला और प्रधानाचार्य श्री कान्तानाथ गर्ग ने मुझसे अनेक प्रश्न किए और अन्त में बाबू जी ने एक आकर्षक मृदु मुस्कान के साथ मुझसे पूछा—"क्या आप आई०एन०ए० में भी थे?" मैंने छोटा सा उत्तर दिया—"जी हाँ।" बाबू जी प्रसन्न हो उठे। फिर तो उन्होंने श्रद्धेय नेताजी और द्वितीय महायुद्ध सम्बन्धी प्रश्नों की झड़ी सी लगा दी। उनके युद्ध-कला सम्बन्धी प्रश्नों को सुन कर मैं सोचने लगा कि इस खादी वेश-भूषा में वार स्ट्रेटजी का महान ज्ञाता कोई फील्ड मार्शल मेरे समक्ष है। बाबू जी ने माडर्न वार टेक्टिसेज पर उसी समय एक अच्छा व्याख्यान सा दे डाला। जिसने कि उस प्रथम दर्शन के अवसर पर ही मुझे बाबू जी की ओर आकर्षित कर लिया। यदि मैं यह कहूँ तो अनुचित न होगा कि कथित समिति ने न केवल प्रवक्ता के रूप में ही मेरा चयन किया वरन् इस बहुरंगी धरातल पर खड़े होने के लिए एक सुस्पष्ट जीवन-मार्ग का भी चयन मेरे लिए किया। मुझे आज भी अपनी पृष्ठभूमि के रूप में बाबू वृन्दावनदास जी ही दिखाई पड़ते हैं।

बाबू जी के दर्शन एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के रूप में होते हैं। उनका जीवन-दर्शन इतना व्यापक है कि उसे हम सुविधा की दृष्टि से सहज ही विविध क्षेत्रों में बाँट सकते हैं।

शिक्षा-क्षेत्र में बाबू जी बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। उन्होंने सन् १९२२ ई० में एस० एल० सी० (हाई स्कूल) परीक्षा और १९२६ में बाह्य-पक्ष (एक्सटरनल साइड) आगरा कालेज के छात्र-रूप में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बाह्य-पक्ष के रूप में परीक्षा देने वाला बाबू जी का बैच अन्तिम था। सन् १९२८ में उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस प्रकार वे इलाहाबाद और आगरा दोनों विश्वविद्यालयों के रजिस्टर्ड ग्रेजुएट हैं। वे अपने छात्र-जीवन में कभी भी असफल नहीं हुए। अतः उनका विद्यार्थी-जीवन एक निश्चित अवधि में ही समाप्त हो गया।

वे कानून की सम्मानपूर्ण उपाधि से अलंकृत होकर सन् १९२८ में मथुरा आए और अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण सन् १९२९ में ही अग्रवाल शिक्षा मण्डल के सदस्य और चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज, मथुरा की प्रवन्ध समिति के उपमंत्री तथा कुछ ही वर्ष उपरान्त उसके अध्यक्ष भी निर्वाचित किए गये।

वे सन् १९३३ से १९५१ अर्थात् निरन्तर १८ वर्ष की दीर्घ अवधि तक कन्या विद्यालय, मथुरा (अब

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रस्तावित डिग्री कालेज) के मंत्री पद को गौरवान्वित करने के उपरान्त उसी संस्था की प्रबन्ध समिति के भी अध्यक्ष निर्विरोध निर्वाचित किये गये। इस सम्मानपूर्ण पद को भी उन्होंने लगभग १५ वर्ष तक अलंकृत किया।

बाबू जी अत्यन्त मिलनसार व्यक्ति हैं। कानपुर के डा० वीरेन्द्र स्वरूप तथा उनके इष्ट-मित्रों के सम्पर्क से वे आगरा विश्वविद्यालय की सीनेट के रजिस्टर्ड ग्रेजुएट्स की ओर से सदस्य निर्वाचित हुए। पिछले दशक से वे बी० एन० पोद्दार हाई स्कूल तथा बाबू शिवनाथ पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, मथुरा की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष-पद पर आसीन हैं।

साहित्य-क्षेत्र में भी उनकी यशस्वी लेखिनी विगत ४० वर्षों से अग्रसर है। वे एक अनुभवी एवं स्वतंत्र चिन्तक-लेखक हैं। उनमें एक सर्जक की अभिव्यक्ति की छटपटाहट दिखाई पड़ती है। संस्कृत एवं इतिहास उनके प्रिय विषय होने के कारण सन् १९२८ से ही उनके ऐतिहासिक निबन्ध भावी इतिहासकारों के लिए एक व्यापक पृष्ठ भूमि का कार्य कर रहे हैं। उनके प्राय: सभी ऐसे निबन्ध हमारे गौरव-गर्भित एवं उज्ज्वल अतीत के पृष्ठों को खोलते हैं। ये निबन्ध सुधा, माधुरी, विश्वमित्र, विशालभारत, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जनार्दन, म्यूनिसिपल गज़ट, संगठन, चाँद, दैनिक नागरिक, गोरक्षण, भविष्य, सरस्वती, नवयुग-सन्देश, सैनिक, अमर उजाला, ब्रजभारती आदि पत्र-पत्रिकाओं की संचिकाओं में बिखरे हुए हैं।

बाबू जी के सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा विविध ६० निबन्धों का एक संग्रह "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" के नाम से अगस्त सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ था। यह संग्रह इतना अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि एक वर्ष में ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया और मई १९७० में इसका द्वितीय संस्करण विज्ञ पाठकों के हाथों में था।

बाबू जी ने अंग्रेजी में भी हजारों लेख लिख लिख कर अधिकारियों का ध्यान जनता की ओर आकर्षित किया। अंग्रेजी दैनिक पत्रों के स्तम्भ उनके राजनैतिक, सामाजिक, एवं शैक्षणिक समस्याओं से सम्बन्धित लेखों से भरे पड़े हैं, ऐसे लेख-निबन्धों की हजारों कतरनें आज भी बाबू जी के निजी संग्रहालय में सुरक्षित हैं। उनकी "इंगलिश डिक्सनरी" लगभग ३० वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। उनका "मारकण्डेय पुराण" का भाषानुवाद हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध है ही।

इस बीच समाज-सेवा की ओर विशेष झुकाव होने के कारण उनकी साहित्यिक गति-विधियों में शिथिलता अवश्य आई किन्तु कुछ वर्षों के बाद उनका ध्यान 'ब्रज-साहित्य मण्डल" की जीर्णावस्था की ओर गया और उन्होंने उसके पुनरुत्थान का व्रत ले लिया। वे सन् १९६३ से अब तक इस मण्डल के अध्यक्ष हैं। सन् १९६५ में उन्होंने इस मण्डल की त्रैमासिक शोध-पत्रिका "ब्रज-भारती" का सम्पादन कार्य अपने हाथ में लिया जिससे कि उनकी लेखनी पुन: जाग्रत हो उठी। इस पत्रिका का अधिकांश व्यय भी उनको वहन करना पड़ता है। बाबू जी "बहुबन्धी" हैं। कितने ही व्यवधान क्यों न हों किन्तु यह पत्रिका ठीक समय पर पाठकों के हाथ में होती है। इसके सम्पादन में उनकी निष्ठा एवं कार्यशीलता स्तुत्य है।

सन् १९६९ में वे उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उपसभापति और हिन्दुस्तानी एकादमी के सदस्य हुए। सन् १९७० ई० में उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बाबू जी को अपने देहरादून अधिवेशन में "साहित्य-वारिधि" की सम्मानपूर्ण उपाधि द्वारा अलंकृत किया। इस अवसर पर प्रदेश के विभिन्न जनपदों द्वारा उनका अभिनन्दन किया गया। मथुरा जनपद के कार्यकर्त्ताओं में भी विशेष उल्लास पाया गया।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

अ. भा. ब्रज. साहित्य मंडल के सूरसागर प्रकाशनोद्घाटन समारोह में बा. वृन्दावन दास, श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, बा. जगजीवन राम, श्री वियोगी हरि श्री अशोक वाजपेयी, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० ब्रजयेन्द्र स्नातक भाषण करते हुए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सूर सागर के प्रकाशनोद्घाटन के अवसर पर भाषण देते हुए बा. वृन्दावन दास जी। चित्र में बाएँ से श्रीबाबूराम पालीवाल, श्रीशरदेन्दु, श्रीश्याम सुन्दर गर्ग, ला. श्रीनाथदास, श्रीजगदीश नारायण चतुर्वेदी, श्रीजुगल किशोर चतुर्वेदी, डा० राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी, श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, बा. जगजीवन राम, डा० हरि वंशराय बच्चन, श्री भगवती चरण वर्मा आदि।

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उन्होंने २१ जून १९७० को श्री प्रभुदयाल मीतल की अध्यक्षता में, अलका होटल में बाबू जी का अभिनन्दन किया और उन्हें अनेक बधाइयाँ दीं, इस आयोजन में प्रो० जयकुमार मुद्गल का कार्य-संयोजन सराहनीय था।

बाबू जी एक सफल भाषणकर्त्ता भी हैं। भाषण उनके चिर संचित जीवन के अमरत्व का संरक्षण करते हैं। ब्रज-साहित्य मण्डल के गाजियाबाद अधिवेशन तथा उ० प्र० हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के १५वें अधिवेशन, (२३ मई १९७१) फिरोजाबाद के उनके अध्यक्षीय भाषणों की तो विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से सराहना की है। आकाशवाणी के दिल्ली, मथुरा, लखनऊ आदि केन्द्रों द्वारा प्रसारित विविध विषयों पर उनके रेडियो-भाषण भी प्रायः सुनने को मिलते हैं।

सहकारिता-क्षेत्र में बाबू जी बहुत विख्यात हैं। उनके द्वारा लिखे गए अनेक लेख, वक्तव्य एवं भाषणों ने सहकारिता के क्षेत्र में एक युगान्तरकारी परिवर्तन प्रस्तुत किया है। वे सन् १९४० से १९७० तक (बीच के ५-६ वर्ष छोड़ कर) लगभग ३५ वर्ष तक जिला सहकारी बैंक, मथुरा के संचालक पद पर रहे। सन् १९४३ में जिला सहकारी बैंक के प्रतिनिधि के रूप में उ० प्र० सहकारी संघ, लखनऊ की साधारण सभा के सदस्य मनोनीत हुए तथा प्रगतिशील विचार एवं चिर संचित व्यापक अनुभवों के कारण उसी वर्ष कथित संस्था के संचालक भी चुने गए। उन्होंने इस पद का कार्य-भार बड़ी शालीनतापूर्वक सन् १९४८ तक वहन किया। ६ वर्ष के उपरान्त वे पुनः उस संस्था के संचालक चुने गए। एक बार उपाध्यक्ष भी मनोनीत हुए।

बाबू जी सन् १९५४ में यू० पी० कोआपरेटिव यूनियन के सदस्य मनोनीत हुए और इस संस्था की प्रदेशीय-समिति एवं प्रबन्ध समिति के भी लगभग १२ वर्ष तक सदस्य रहे। यहां यह विशेष उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपनी कार्यकारिणी सदस्यता के कार्यकाल में अन्य ४ सदस्यों के सहयोग से लगभग ६००० सुपर-वाइजरों का चयन प्रदेश में किया और क्षेत्रीय स्तरों पर उपनिबन्धकों के साथ बैठ कर सुपरवाइजरों के अनुशासन सम्बन्धी हजारों मुक़दमों पर विद्वत्तापूर्ण निर्णय दिए। बाबू जी की सत्य निष्ठा एवं कार्यशीलता के प्रति सभी क्षेत्रों के उपनिवन्धक आश्वस्त रहते थे। सन् १९६० में उनकी नियुक्ति व्यक्तिगत भागीदारों के क्षेत्र से सम्पन्न चुनाव के परिणाम स्वरूप यू० पी० कोआपरेटिव बैंक के संचालक के रूप में हुई। इस संस्था में भी उन्होंने निरन्तर चुनावों में बहुमत से विजय प्राप्त करते हुए १० वर्ष तक संचालक के पद को सुशोभित किया। अस्तु, बाबू जी प्रदेश की तीनों ही शीर्षस्थ संस्थाओं के संचालक एवं उनकी कार्यकारिणी के सदस्य रहे। उनकी गणना प्रदेश के इने गिने ८-१० शीर्षस्थ सहकारी कार्यकर्त्ताओं में रही है। बाबू जी ही सर्व प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें कथित तीनों शीर्ष संस्थाओं की संचालकता और उनकी प्रबन्धकारिणी समितियों की सदस्यता ये दोनों पद साथ-साथ प्राप्त हुए।

समाज एवं राज-धर्म के क्षेत्र में बाबू जी महान समाज सुधारक या राजनीतिज्ञ होने का दम्भ नहीं करते और न आधुनिक उछल-कूद या पैंतरेबाज़ी पर ही विश्वास करते हैं। उनकी राजनीति अपने भोले-भाले स्वभाव से देश-प्रेम एवं समाज-सुधार के पवित्र एवं ठोस धरातल पर आधारित है। "स्वदेशी स्वीकार, विदेशी बहिष्कार" उनके जीवन का एक लक्ष्य रहा है। सन् १९३३ में उनकी नियुक्ति अवैतनिक न्यायाधीश के रूप में हुई। सन् १९३५ से १९५३ तक लगातार १८ वर्ष पर्यन्त वे नगरपालिका, मथुरा के सदस्य रहे। सन् १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस सरकार का गठन हुआ जिसके नियमानुसार एक व्यक्ति उक्त दोनों पदों को

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता था। इसलिए तत्कालीन जिलाधीश महोदय ने बाबू जी से अनुरोध किया कि वे नगरपालिका की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दें और अवैतनिक न्यायाधीश के सम्मान पूर्ण पद को ग्रहण करें किन्तु बाबू जी ने उत्तर दिया—"मैं जनता द्वारा निर्वाचित पद को ही पसन्द करता हूँ। एतदर्थ मुझे ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के कार्य-भार से तुरन्त मुक्त किया जाय।" जिलाधीश महोदय के अनेक आग्रह करने पर भी बाबू जी ने सन् १९३७ में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पद से त्याग-पत्र दे दिया, किन्तु जनता द्वारा निर्वाचित नगरपालिका की सदस्यता नहीं छोड़ी।

वे सन् १९३७ के लगभग यू० पी० चेम्बर ऑफ कामर्स के सदस्य और एक वर्ष बाद उसकी कार्यकारिणी के भी सदस्य नियुक्त हुए। सन् १९३८ से १९४४ तक चेम्बर की ओर से सर हारकोट बटलर टैकनोलौजिकल इन्स्टीट्यूट की परामर्शदात्री समिति के सदस्य भी मनोनीत रहे। उनकी इस सदस्यता की अवधि में कथित समिति के अध्यक्ष डी० पी० आई०, मि० मैकेंजी और मि० हैरप थे। एक बार बाबू जी चेम्बर के प्रतिनिधि के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय कोर्ट के भी सदस्य नियुक्त हुए।

श्री एच० एस० रौस तत्कालीन जिलाधीश, मथुरा ने प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषणों पर बाबू जी का गम्भीर अध्ययन देख कर अति प्रसन्नता व्यक्त की और उन्हें सन् १९३८ ई० में मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय का सदस्य नियुक्त किया। इस सदस्यता का भी निर्वाह उन्होंने ६-७ वर्ष तक बड़ी तल्लीनता के साथ किया।

बाबू जी आजकल जिला स्तर की प्राचीन संस्था 'सेवा समिति' और प्रदेश की विशाल गृह-निर्माण समितियों में प्रमुख गोविन्द नगर सहकारी गृह-निर्माण समिति, मथुरा के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।

बाबू जी के जीवन के केवल मुख्य-मुख्य परिदृश्यों का ही उल्लेख यहां किया गया है किन्तु इन सबको मिला कर जीवन का जो रूप निखरता है वह निस्संदेह एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष के व्यापक, उदात्त एवं उत्कृष्ट जीवन का दिव्य रूप है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहचर्य के संस्मरण

⊙

डा० नारायणदत्त शर्मा
एम० ए०, पी–एच० डी०

सन् १९१८-१९ की बात है काजी पाड़े की ऊँची गली में जहाँ अब "गोवर्धन पुस्तकालय" और प्रिंटिंग प्रेस है, उसी मकान में टीनों के लंबे दालान के पश्चिमी कोने में गद्दी पर बैठे पुस्तक-मुद्रण और प्रकाशन कार्य की व्यवस्था एक वृद्ध पुरुष देखते थे। यह उनका निजी व्यवसाय था। गोरा शरीर, घनी श्वेत बीच की मूंछें, नारंगी पगड़ी, कोट अथवा अंगरखा, धोती पहने, दुपट्टाधारी, वाणी में ओज, गम्भीर आकर्षक मुद्रा––ये थे लाला श्यामलाल जी। "मथुरा में मुद्रण कला के जनक"––जिन्होंने श्यामकाशी प्रेस की स्थापना कर मुद्रण व्यवसाय का श्रीगणेश किया। उसके पश्चात् तो उनकी सन्तति, उनके सहयोगी, साझेदार और सम्बन्धियों ने इस कार्य को इतना प्रसारित किया और दक्षता से सम्पन्न किया कि अपने प्रदेश में इस कार्य में मथुरा का सर्वप्रथम स्थान है। ये लाला श्यामलाल जी बाबू वृन्दावनदास जी के पितामह थे।

मुद्रण-कला दक्षता के व्यसन के साथ लाला श्यामलाल जाति-सुधार और सामाजिक संगठन के कट्टर पक्षपाती थे। उनके सहयोगी थे मास्टर किशनलाल भरतिया एवं मास्टर शीतल प्रसाद तथा लाला केशवदेव चौधरी जिनके सम्मिलित प्रयास से अग्रवाल सभा की स्थापना हुई और 'अग्रवाल पाठशाला' चलने लगी। मेरे पिता पंडित नत्थीलाल उसी पाठशाला में सहायक अध्यापक थे। प्रधानाध्यापक थे एक चौबे हरिहर जी जिनकी सहृदयता की पिता जी बहुत प्रशंसा किया करते थे। लाला श्यामलाल जी ने वृन्दावनदास जी को घर पर शिक्षा देने के निमित्त पं० नत्थीलाल जी (मेरे पिता जी) को नियुक्त कर लिया था। और वे बाबू वृन्दावनदास उनके अनुज श्री कुंजलाल, केदारनाथ और रनछोरदास का भी शिक्षण करते थे। मैं पट्टी बुद्दका लेकर पिता जी के साथ वहीं प्रेस में कभी-कभी पढ़ने जाता था। बाबा मुझे देख कर प्रसन्न होते और खाने की कोई चीज बूँदी वगैरह भी मंगाकर देते।

बा० वृन्दावनदास ने सन् १९२२ में स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट परीक्षा पास की। हिन्दी, संस्कृत से उन्हें विशेष रुचि रही। संस्कृत के अनेक सुभाषित नीति वाक्य और सूक्तियाँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। अंग्रेजी उनकी रुचि का विषय था। इस प्रकार तीनों भाषाओं पर उनका समान लिखने-पढ़ने का अधिकार एवं वक्तृता-सामर्थ्य थी जिसके परिणाम स्वरूप उनके गुरुवर अपने कौशल प्रदर्शन के निमित्त उनका प्रयोग प्रायः करते और अपने शिष्य की सफलता पर उसे आशीष देते हुए अपने को भाग्यशाली मानते। उन्होंने सन् १९२६ में आगरा कालेज से बी० ए० पास किया और सन् १९२८ में वकालत की परीक्षा पास की। बाबू जी के साहित्यिक और सामाजिक व्यक्तित्व के विकास में उनके मातामह बलवीर हजारा के रचयिता वृन्दावन निवासी यशस्वी कविवर लाल बलवीर एवं उनके श्वसुर लाला गोपालदास जी बम्बई वालों का प्रभाव और योगदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। लाला गोपालदास जी को हजारों श्लोक, सूक्तियाँ, छन्द, चौपाई,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता था। इसलिए तत्कालीन जिलाधीश महोदय ने बाबू जी से अनुरोध किया कि वे नगरपालिका की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दें और अवैतनिक न्यायाधीश के सम्मान पूर्ण पद को ग्रहण करें किन्तु बाबू जी ने उत्तर दिया—"मैं जनता द्वारा निर्वाचित पद को ही पसन्द करता हूँ। एतदर्थ मुझे ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के कार्य-भार से तुरन्त मुक्त किया जाय।" जिलाधीश महोदय के अनेक आग्रह करने पर भी बाबू जी ने सन् १९३७ में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पद से त्याग-पत्र दे दिया, किन्तु जनता द्वारा निर्वाचित नगरपालिका की सदस्यता नहीं छोड़ी।

वे सन् १९३७ के लगभग यू० पी० चेम्बर ऑफ कामर्स के सदस्य और एक वर्ष बाद उसकी कार्यकारिणी के भी सदस्य नियुक्त हुए। सन् १९३८ से १९४४ तक चेम्बर की ओर से सर हारकोट बटलर टैकनोलौजिकल इन्स्टीट्यूट की परामर्शदात्री समिति के सदस्य भी मनोनीत रहे। उनकी इस सदस्यता की अवधि में कथित समिति के अध्यक्ष डी० पी० आई०, मि० मैकेंजी और मि० हैरप थे। एक बार बाबू जी चेम्बर के प्रतिनिधि के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय कोर्ट के भी सदस्य नियुक्त हुए।

श्री एच० एस० रौस तत्कालीन जिलाधीश, मथुरा ने प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषणों पर बाबू जी का गम्भीर अध्ययन देख कर अति प्रसन्नता व्यक्त की और उन्हें सन् १९३८ ई० में मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय का सदस्य नियुक्त किया। इस सदस्यता का भी निर्वाह उन्होंने ६-७ वर्ष तक बड़ी तल्लीनता के साथ किया।

बाबू जी आजकल जिला स्तर की प्राचीन संस्था 'सेवा समिति' और प्रदेश की विशाल गृह-निर्माण समितियों में प्रमुख गोविन्द नगर सहकारी गृह-निर्माण समिति, मथुरा के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं।

बाबू जी के जीवन के केवल मुख्य-मुख्य परिदृश्यों का ही उल्लेख यहां किया गया है किन्तु इन सबको मिला कर जीवन का जो रूप निखरता है वह निस्संदेह एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष के व्यापक, उदात्त एवं उत्कृष्ट जीवन का दिव्य रूप है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहचर्य के संस्मरण

⊙

डा० नारायणदत्त शर्मा
एम० ए०, पी–एच० डी०

सन् १९१८-१९ की बात है काजी पाड़े की ऊँची गली में जहाँ अब "गोवर्धन पुस्तकालय" और प्रिंटिंग प्रेस है, उसी मकान में तीनों के लंबे दालान के पश्चिमी कोने में गद्दी पर बैठे पुस्तक-मुद्रण और प्रकाशन कार्य की व्यवस्था एक वृद्ध पुरुष देखते थे। यह उनका निजी व्यवसाय था। गोरा शरीर, घनी श्वेत बीच की मूंछें, नारंगी पगड़ी, कोट अथवा अंगरखा, धोती पहने, दुपट्टाधारी, वाणी में ओज, गम्भीर आकर्षक मुद्रा—ये थे लाला श्यामलाल जी। "मथुरा में मुद्रण कला के जनक"—जिन्होंने श्यामकाशी प्रेस की स्थापना कर मुद्रण व्यवसाय का श्रीगणेश किया। उसके पश्चात् तो उनकी सन्तति, उनके सहयोगी, साझेदार और सम्बन्धियों ने इस कार्य को इतना प्रसारित किया और दक्षता से सम्पन्न किया कि अपने प्रदेश में इस कार्य में मथुरा का सर्वप्रथम स्थान है। ये लाला श्यामलाल जी बाबू वृन्दावनदास जी के पितामह थे।

मुद्रण-कला दक्षता के व्यसन के साथ लाला श्यामलाल जाति-सुधार और सामाजिक संगठन के कट्टर पक्षपाती थे। उनके सहयोगी थे मास्टर किशनलाल भरतिया एवं मास्टर शीतल प्रसाद तथा लाला केशवदेव चौधरी जिनके सम्मिलित प्रयास से अग्रवाल सभा की स्थापना हुई और 'अग्रवाल पाठशाला' चलने लगी। मेरे पिता पंडित नत्थीलाल उसी पाठशाला में सहायक अध्यापक थे। प्रधानाध्यापक थे एक चौबे हरिहर जी जिनकी सहृदयता की पिता जी बहुत प्रशंसा किया करते थे। लाला श्यामलाल जी ने वृन्दावनदास जी को घर पर शिक्षा देने के निमित्त पं० नत्थीलाल जी (मेरे पिता जी) को नियुक्त कर लिया था। और वे बाबू वृन्दावनदास उनके अनुज श्री कुंजलाल, केदारनाथ और रनछोरदास का भी शिक्षण करते थे। मैं पट्टी बुद्दका लेकर पिता जी के साथ वहीं प्रेस में कभी-कभी पढ़ने जाता था। बाबा मुझे देख कर प्रसन्न होते और खाने की कोई चीज बूँदी वगैरह भी मंगाकर देते।

बा० वृन्दावनदास ने सन् १९२२ में स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट परीक्षा पास की। हिन्दी, संस्कृत से उन्हें विशेष रुचि रही। संस्कृत के अनेक सुभाषित नीति वाक्य और सूक्तियाँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। अंग्रेजी उनकी रुचि का विषय था। इस प्रकार तीनों भाषाओं पर उनका समान लिखने-पढ़ने का अधिकार एवं वक्तृता-सामर्थ्य थी जिसके परिणाम स्वरूप उनके गुरुवर अपने कौशल प्रदर्शन के निमित्त उनका प्रयोग प्रायः करते और अपने शिष्य की सफलता पर उसे आशीष देते हुए अपने को भाग्यशाली मानते। उन्होंने सन् १९२६ में आगरा कालेज से बी० ए० पास किया और सन् १९२८ में वकालत की परीक्षा पास की। बाबू जी के साहित्यिक और सामाजिक व्यक्तित्व के विकास में उनके मातामह बलवीर हजारा के रचयिता वृन्दावन निवासी यशस्वी कविवर लाल बलवीर एवं उनके श्वसुर लाला गोपालदास जी बम्बई वालों का प्रभाव और योगदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। लाला गोपालदास जी को हजारों श्लोक, सूक्तियाँ, छन्द, चौपाई,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दोहे कण्ठस्थ थे। वार्तालाप के समय वे सुभाषित की झड़ी लगा देते थे। उनका हिन्दी संस्कृत साहित्य का अच्छा अध्ययन था। उन्हें स्वाध्याय का व्यसन था और धर्मशास्त्रों में निष्ठा थी। बाबू वृन्दावनदास को भौतिक सम्पत्ति के अतिरिक्त धर्म परायणता, समाज सेवा, राष्ट्र भावना और विद्या व्यसन की थाती भी लाला जी से मिली। मेरे पिता जी कालान्तर में बाबू वृन्दावनदास जी के कुलगुरु हो गए। पहले उनके भाई फिर उनके पुत्र-पुत्रियों और पौत्र-पौत्रियों को पढ़ाते रहे। कुछ वर्ष उन्हें (पिता जी को) जिला बोर्ड की सेवा में लोहवन रहना पड़ा था। वहाँ से भी वे अध्यापन करने मथुरा आते। पीछे सन् १९२९ में तो नगर पालिका मथुरा में वापिस आ गए थे। मेरा बाबू जी से निरंतर सम्पर्क रहा। मेरी स्वाध्याय वृत्ति, कविता और साहित्य वार्ता में रुचि थी। बाबू जी से इन विषयों पर प्रायः चर्चा होती रहती थी।

हाँ तो—वकालत पास करना लोक सेवा और लोक व्यवहार कुशलता की पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। परन्तु उसमें व्यावसायिक दृष्टि से बाबू जी की रुचि न थी। फिर घर की समृद्धिशालीनता का तकाजा था कि वकालत कर के अदालत में किस-किस से 'हुजूर' 'हुजूर' कहते फिरें—सभी द्विविधा में थे। इसी बीच सरकार की ओर से बाबू जी 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' चुने गए। इससे सभी को प्रसन्नता हुई। बाबू जी को अपने स्तर और रुचि का काम मिल गया। उन्हें निजी व्यवसाय, लोक सेवा, समाज सेवा, रईसी और सरकार में प्रभाव, सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ उपलब्धि करने का अवसर हाथ आया। वह ब्रिटिश सरकार का कठोर शासन काल था। जनता की सेवा और निजी प्रभाव से कुछ कर लेना सरकार की कृपा के बिना सम्भव न था। अतः 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की भाँति बाबू जी ने पहले मध्यम मार्ग स्वीकार किया। पहले नगरपालिका की शिक्षा-समिति के और पीछे निर्वाचित सदस्य हो कर वे बोर्ड में भी आ गए। एक दीर्घ काल तक उन्होंने बोर्ड के सदस्य की हैसियत से सेवा की और लोक हित के अनेक कार्य किए। 'अग्रवाल सभा' भी अब विकसित होकर 'अग्रवाल शिक्षा मंडल' का रूप ले चुकी थी। उनके द्वारा संचालित पाठशाला अब 'चम्पा अग्रवाल हाईस्कूल' बन गया था। बाबू जी इसी वर्ष मंडल के (१९३० ई०) मंत्री चुने गए। इधर डोरी निवाड़ का काम और बिजली का ठेका व्यवसाय दोनों बाबू जी को ठोस अर्थ योग देते थे। सन १९३६ से द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ। अन्य व्यवसाइयों की भाँति बाबू जी को भी उसका लाभ मिला। सार्वजनिक और सरकारी दोनों क्षेत्रों में उन्हें राय साहिब सेठ लल्लोमल और राय बहादुर बाबू जमुना प्रसाद दोनों से यथेष्ट सहायता मिली।

बाबू जी के स्थानीय मित्रों में जोशी राधेश्याम द्विवेदी, डा० विश्वपाल शर्मा, प्रभुदयाल मीतल, रामप्रसाद 'कमल' और मु० अब्दुलगनी मुख्य हैं जिनसे जीवन के विविध कार्य क्षेत्रों में बाबू जी को सहायता, परामर्श और सहयोग मिला है। बाबू जी में कुछ विलक्षण गुण भी हैं जिनके कारण उनके मित्रों और प्रशंसकों की संख्या बहुत अधिक है। उनका पहला गुण है सब की सहायता करना और जहाँ तक हो किसी को विमुख न लौटने देना। आगन्तुक को उनसे मिलने के पश्चात् यह विश्वास हो जाता है कि बाबू जी मेरी भरसक सहायता करेंगे। मेरा काम निकालेंगे। उनका दूसरा गुण है प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समाज में घुल-मिल कर आत्मीयता उत्पन्न करने की शक्ति। प्रत्येक समाज और अवसर के वे विशुद्ध भविष्यद्रष्टा हैं। उसकी परम्परा, रीति रिवाज और अवसर के कुशल निर्वाह के सूक्ष्म मनोविज्ञानी हैं। इस कारण किसी भी धर्म, जाति, समाज अथवा गुट के साथ घुलने-मिलने और समर्थन प्राप्त करने में उन्हें कठिनाई नहीं होती। चाहे 'अंजुमने इस्लामिया' की कोई बैठक हो रही हो अथवा गोस्वामी द्वारिकेशलाल जी के मंदिर में कोई

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धार्मिक सम्मेलन, संस्कृत पंडितों की विद्वत् सभा हो अथवा कुम्हारों की पंचायत, अ० भा० विद्यार्थी फैडेरेशन की कार्यवाही चल रही हो अथवा राज्य स्तर पर अनुशासनहीनता संबंधी कोई राजमंत्रियों की बैठक, नेता सम्मेलन हो या राज अधिकारियों का बचत योजना कन्वैन्शन, गीता पर प्रवचन हो या सरकारी रीतिनीति अथवा खाद्य नियंत्रण के समाधान में किसी आन्दोलन की तैयारी बाबू जी को उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे हर विषय और हर परिस्थिति के आशुवक्ता हैं। आपने उन्हें पहले से बुक कर लिया है तो ठीक है, नहीं तो समाज में उपस्थित होते ही आगे पीछे जब चाहेंगे वे परिस्थिति का यथातथ्य निर्वाह करेंगे और दो चार मार्के की ऐसी बातें अपने भाषण में अवश्य कह जायंगे जो श्रोताओं के माथे में बार-बार टकराती रहेंगी। पत्र-पत्रिकाओं में 'सम्पादक के नाम पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत उनकी टिप्पणियाँ महत्वपूर्ण मानी जाती रही हैं। निकट साहचर्य और सम्पर्क से जितने लोग उन्हें जानते हैं उनसे बहुत अधिक उन टिप्पणियों के माध्यम से।

सब किसी को अविलंब सीधे सम्पर्क की सुविधा बाबू जी का तीसरा गुण है। वे किसी से भी मिलने में कोई देर लगाना महान पाप समझते हैं। इससे जन-जन में उनके प्रति निष्ठा है। उन्हें प्रातः ७-८ बजे से ११ बजे तक घूमने का व्यसन है जिसके मूल में यह जन संपर्क की प्रवृत्ति प्रमुख है। बाबू जी घर से ७॥ बजे चले। रास्ते में सईद मियाँ का लड़का शफ़ी मिल गया। बाबू जी तुरन्त बोले अरे देखो शफ़ी! चुंगी में लालटेन वाले की एक जगह खाली हुई है। तुम अर्जी लिखा कर मुझे शाम तक दे आना। और देखो सुनो वह अशफाक (भिश्ती) अभी तक काम पर नहीं आया। आखिर जगह कब तक खाली पड़ी रहेगी। उसे फौरन आज ही भेजो। कुछ आगे चले तो जुगलकिशोर चतुर्वेदी! नजर पड़े बाबू जी बोल उठे, "क्यों भाई चतुर्वेदी जी तुलसी जयन्ती ९ अगस्त की पड़ रही है आपको स्मरण है न? सब तैयारी सूचना आदि ठीक रहनी चाहिए। अब की बार श्री नारायण चतुर्वेदी जी आ रहे हैं, बैठक वहीं प्रकाश भवन में ही ठीक रहेगी।" टहलते टहलते बाबू जी अपने सहकारिता संगी चौधरी दिगम्बर सिंह के यहाँ पहुँचे। वहीं लखनऊ में प्रान्तीय बोर्ड की बैठक की तिथियाँ, जनपदीय समितियों की गतिविधियाँ, सहकारी बैंक का भविष्य का कार्यक्रम सामने आया। इतने में टेलीफोन आया कि बाबू शिवनाथ कालेज के प्रधानाचार्य पद का चुनाव २२ अक्टूबर को रख लिया जाय। बाबू जी ने उत्तर दिया "हाँ ठीक है।" कहने का तात्पर्य है कि व्यस्तता के इस जीवन में कहीं भी 'ना' नहीं है। सब जगह 'हाँ' ही है। जीवन और कार्य योजना, विचार परम्परा और व्यवहार समाज, दर्शन और साहित्य सर्जना का बाबू जी ने इतना सुन्दर समन्वय कर लिया है कि उन्हें बाहर का सब कुछ ग्राह्य है और उनका सब कुछ बाहर ग्राह्य है। वे एक विलक्षण समन्वयवादी हैं।

बाबू वृन्दावनदास समन्वयवादी होते हुए भी हिन्दू विचारों के कट्टर समर्थक हैं। उनकी राष्ट्र भावना दो संस्कृतियों की पोषक नहीं वरन् उनका विचार है कि भारत राम और कृष्ण के आदर्शों का अनुगामी है। उनके शौर्य, दया दाक्षिण्य, शरणागत रक्षा सब जन सुखाय वृत्ति का समर्थक है। महावीर स्वामी की अहिंसा, भगवान् बुद्ध की तपस्या और लोक पराङ्मुखता, दधीच का त्याग, राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता और शांतिप्रियता भारत को ग्राह्य है। इन्हीं विचारों का महात्मा गाँधी, नेहरू आदि ने समर्थन किया है। अतः वे हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, हिन्दुस्तानी को नहीं। उर्दू को वे हिन्दी की एक बोली मानते हैं। भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए हिन्दी की अनिवार्यता उनकी सब से पहली शर्त है। उनको 'ब्रज-साहित्य मंडल' के अध्यक्ष होने की हैसियत से जब ब्रजभाषा का समर्थन करते हुए देखा तो बार-बार प्रश्न किये गये। आप हिन्दी पोषक हैं या ब्रज भाषा के? जब ब्रज भाषा की उन्नति में साहित्यकारों की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समग्र शक्ति लग जायगी तो क्या हिन्दी का अहित न होगा ? बाबू जी ने 'ब्रज भारती' के माध्यम से इन प्रश्नों के श्लाघनीय समाधान प्रस्तुत किए। उन्होंने व्यक्त किया "ब्रजभाषा की समृद्धि हिन्दी की समृद्धि है। ब्रजभाषा की हिन्दी से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं। यदि हिन्दी से ब्रजभाषा साहित्य को निकाल दिया जाय तो शेष रह ही क्या जाता है। खड़ी बोली और उर्दू तो ब्रजभाषा की पिछली दुहिताएँ हैं।" अपने में हिन्दी एक व्यापक भाषा है। ब्रजभाषा, खड़ी बोली, भोजपुरी, राजस्थानी, अवधी सभी उसकी सहायिका हैं। अतः उनकी श्रीवृद्धि करना हिन्दी का पोषण करना ही है।

हिन्दी के समर्थन में उन्होंने एक स्थान पर कहा, "देश के दो तिहाई भाग में बोली जाने के कारण हिन्दी ही इस देश की राष्ट्रभाषा है और सदा रहेगी। देश के शेष एक तिहाई भाग में भी अधिकांश लोग टूटी-फूटी भाषा में इसे समझ बोल लेते हैं। केवल तामिलनाडु के लोग हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी को चालू रखने का आग्रह करते हैं। उनको हिन्दी सीखना बोझ मालूम पड़ता है अंग्रेजी सीखना नहीं। यदि वे अपना दुराग्रह छोड़ कर हिन्दी सीखना प्रारम्भ कर दें तो उनको शीघ्र ही विदित हो जायगा कि वे हिन्दी में अंग्रेजी से अधिक क्षमता प्राप्त कर सकते हैं।" हिन्दी सीखना अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक आसान है। राष्ट्रभाषा सेवा और ब्रजभाषा उन्नयन दोनों के समन्वय की बात को दृष्टि में रखते हुए ही बाबू जी ने 'उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की जनपदीय शाखा की स्थापना की। उनके प्रयास से मथुरा, आगरा, एटा, इटावा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी जिलों में सम्मेलन का कार्य विकासशील-क्रम से चालित है। परीक्षाओं, प्रचार, वार्षिक सम्मेलन, विशेष अधिवेशनों के माध्यम से वे साहित्यिक समस्याओं तथा अंतर्जनपदीय प्रश्नों के समाधान, ब्रज की सर्वांगीण उन्नति और ब्रज-साहित्य मण्डल के उत्थान में प्रयत्नशील हैं। साहित्यकारों के अभिनंदन में उन्हें राष्ट्र के अभिनन्दन की झांकी देख पड़ती है। डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० हरिशंकर शर्मा, प्रभुदयाल मीतल, डा० रामविलास शर्मा, जवाहरलाल चतुर्वेदी, अमृतलाल चतुर्वेदी तथा श्री किशोरीदास वाजपेयी के अभिनंदनों की आयोजना और योजना में सक्रिय योगदान करके आपने एक मूर्तिमान पावन आदर्श प्रस्तुत किया है। कविवर सत्यनारायण कविरत्न के अर्द्धशताब्दी समारोह के वे स्वागताध्यक्ष थे और महाकवि ग्वाल की शताब्दी समारोह के अध्यक्ष। कविरत्न सत्यनारायण के असामयिक निधन से ब्रजभाषा साहित्य की ग्रन्थ-रचना की महान क्षति पर उन्होंने महान क्षोभ व्यक्त किया और उससे भी अधिक चिन्ता उन्होंने इस बात पर व्यक्त की कि उन महाकवि की अनेक रचनाओं का अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ और पाण्डुलिपियों को दीमक खाए जा रही है।

वे सभी उत्तम रचनाओं के प्रकाशित न होने से मन में घोर कष्ट का अनुभव करते हैं। यह बाबू जी की सहज साहित्यिक निष्ठा और साहित्यिकों के प्रति सच्ची सहानुभूति के उज्ज्वल प्रमाण हैं।

राष्ट्र-भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए बाबू जी ने हिन्दी संवर्द्धिनी योजना का सूत्रपात किया है। उसके माध्यम से हिन्दी की बोलियों की शब्द-माला को गूँथ कर उनको राष्ट्रभाषा-शब्दावली में स्थान देकर हिन्दी को समृद्ध बनाया जायगा। उनका दूसरा सुझाव विश्व के बड़े बड़े नगर जैसे न्यूयार्क, सिडनी, केपटाउन, काहिरा, टोकियो आदि में हिन्दी भवनों की स्थापना का है जिनमें हिन्दी की वर्णमाला और भाषा शिक्षा से लेकर सब प्रकार के उत्तम साहित्य की उपलब्धि, प्रदर्शन, निर्देशन और प्रचार-प्रसार की व्यवस्था हो। इससे हिन्दी संसार की भाषाओं में ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकेगी।

अ० भा० ब्रज-साहित्य मंडल ब्रज प्रदेश की एक महत्वपूर्ण संस्था रही है। सन् १९४० में हिन्दी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य परिषद के जनपदीय वृहद् रूप में स्थापित होकर एक सुष्ठु विकास क्रम देखते हुए मंडल ने अपना अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण किया। कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ, ब्रज का इतिहास, अष्ट छाप के वाद्य यंत्र एवं 'ब्रज-भारती' की आदर्श पत्रकारिता के कारण इसका चारों ओर सम्मान बढ़ा और हाथरस एवं मथुरा के अधिवेशनों में स्वयं राष्ट्रपति ने उपस्थित होकर मुक्त कंठ से इसके कार्यकर्त्ताओं एवं कार्य प्रणाली की प्रशंसा की। सन् १९४७ में देश की स्वतंत्रता के अनन्तर सन् १९५२ में पहली बार सार्वजनिक चुना हुए। मथुरा नगरपालिका के वार्ड नं० ९ से कांग्रेस टिकिट पर बाबू जी, कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री स्व० जगदीश्वरदत्त उपाध्याय और मैं तीन प्रत्याशी थे। यह वार्ड जनसंघ का गढ़ था अतः हम तीनों ही पराजित हुए परन्तु बाबू जी ने इस हार से तुरन्त पैंतरा बदला और फिर वे उस समय से सन् १९६५ तक निरंतर नगरपालिका के अध्यक्ष बने रहे। यद्यपि इस पहलवानी में कभी वे चोट खा जाते थे और कभी प्रतिद्वन्द्वियों को करारी मार भी देते जाते थे। सार्वजनिक संस्थाओं को बाबू जी ने अपने अध्यक्ष की स्थिति में बहुत लाभान्वित किया। 'विद्यासागर पुस्तकालय', 'अग्रवाल कन्या विद्यालय' इनमें प्रमुख हैं। गोविन्द नगर हाउसिंग सोसाइटी के तो वे प्रारंभ से लेकर अभी तक अध्यक्ष हैं जिसके माध्यम से उन्होंने मथुरा के नागरिकों और संस्थाओं को बहुत लाभान्वित किया है और कर भी रहे हैं। नगरपालिका अध्यक्ष पद से संन्यास लेने के अनन्तर वे साहित्य सेवा, राष्ट्रभाषा सेवा और ब्रज मंडल के उद्धार में लग गए हैं। ब्रज-साहित्य मंडल का गतिरोध दूर करके 'ब्रजभारती' के निरंतर प्रकाशन, कवि और साहित्यिकों की जयंतियाँ, विशिष्ट पर्वों का आयोजन आदि के माध्यम से उन्होंने मानों एक मजबूत साहित्यिक अखाड़े का सूत्रपात किया है। इससे ब्रज और राष्ट्रभाषा की समुन्नति में भारी योगदान मिला है। बाबू जी को पत्र-पत्रिकाओं में सामयिक और मर्मवेधी टिप्पणियाँ लिखने की तो पुरानी आदत थी ही उन्होंने लीडर, अमृत पत्रिका, अमर-उजाला में ऐसी सैकड़ों टिप्पणियाँ प्रकाशित कराई होंगी। वही अभिरुचि विवर्द्धित होकर ब्रजभारती की सम्पादकीय टिप्पणियों के रूप में एक जागरूक राष्ट्र रक्षक, उदार चेता साहित्यकार की उदात्त समीक्षा बन गई। वृहद् ब्रज प्रदेश के गठन, हिन्दी की हित रक्षा, पाकिस्तानी आक्रमण और रीति-नीति की भर्त्सना, साहित्यकारों का दायित्व, भूले बिसरे साहित्य स्रष्टा और उनकी कृतियों के प्रकाशन की ललक, कविवर सत्यनारायण के स्मारक की चिन्तना और नवनीत जी के रचना प्रकाशन की आकुलता आदि उनके सम्पादक कर्म के कतिपय समुज्ज्वल प्रतीक हैं। भारतीय इतिहास और संस्कृति, आलोचना, संस्मरण, ब्रज साहित्य, जीवन चरित उनके साहित्य सृजन की विशेष विधाएँ हैं। "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य", "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", "काव्य नवनीत", "देशभक्त होरेशस" "प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य" उनके लेखक के ललित उपहार इस बीच हिन्दी जगत को मिले हैं जो बाबू जी की भारतीय संस्कृति में अगाध निष्ठा, गंभीर अध्ययनशीलता, राष्ट्रभाषा हिन्दी की अनन्य भक्ति , ब्रज भाषा और ब्रज संस्कृति के उत्थान की चिन्ता, लेखनी पर अधिकार, कठोर कर्तव्य परायणता, सभी साहित्यिकों के प्रति सहज सखा भाव, उदात्त वृत्ति और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसी सूझ-बूझ, संगठन प्रियता एवं साहित्य स्रष्टाओं के प्रति समादर भावना और सहायता के प्रकाशवान स्तम्भ हैं। विद्यासागर पुस्तकालय, भारती अनुसंधान भवन, ब्रज साहित्य मंडल और छोटी मोटी अनेक साहित्यिक संस्थाओं का पोषण करने के कारण लगभग ४ वर्ष पूर्व अपने विद्यालय में नेहरू जयंती की अध्यक्षता करते समय मैंने उन्हें सबसे पहले मथुरा के 'भारतेन्दु' कहा था। बाबू जी का यह परिचय साहित्यकारों को इतना रुचिकर प्रतीत हुआ कि उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने जब उनकी साहित्य-सेवाओं से उपकृत होकर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उन्हें 'साहित्य वारिधि' की गरिमामयी उपाधि से अलंकृत किया तब तो उनका यह परिचय जन जन की वाणी पर सवार हो गया। अपने निजी व्यय से 'ब्रज भारती' का इतने वर्षों से अनवरत प्रकाशन, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय पर्वों और समारोहों के आयोजन, साहित्यकारों और उदीयमान कवियों की सहायता और संरक्षा उनकी हरिश्चन्द्री गरिमा के कुछेक स्वाभाविक प्रतीक हैं। अध्यक्ष पद पर आसीन होने की बाबू जी की सहज वृत्ति है। इस कारण कभी बी० एस० ए० कालेज, चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज, महाराजा अग्रसेन इण्टर कालेज, गोविन्दनगर हाउसिंग सोसाइटी, नगरपालिका मथुरा, ब्रज साहित्य मंडल आदि संस्थाओं के वे स्थायी रूप से अध्यक्ष तो रहते ही हैं, वैसे आये दिनों नागरिक सभाओं, सामाजिक संगठनों, विद्यार्थी सम्मेलनों, शिक्षा संस्थाओं और विशिष्ट पर्वों पर अध्यक्षता के लिए उनका सबसे अधिक बुकिंग होती है। यह उनके सहज औदार्य और जनहित परतामयी वत्ति का सहज परिणाम है।

बाबू जी के पिता स्व० लाला हीरालाल जी एक दत्तक पुत्र के रूप में लाला श्यामलाल जी को प्राप्त हुए थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा, श्रम और अध्यवसाय से पुस्तक व्यापार को बहुत बढ़ाया और मथुरा एवं बम्बई में संपत्ति-संग्रह किया। उनके भाई लाला प्यारेलाल (बाबू जी के चाचा जी) भी उनके व्यवसाय में सहयोगी रहे जिनके पुत्रों ने कालान्तर में असली दवाखाना नामक प्रख्यात आयर्वेद रसायन शाला की स्थापना की। बाबू वृन्दावनदास जी के मातुल लाला मनोहरलाल जी ने लाला जी के संपर्क में रहकर मनोहर पुस्तकालय, लक्ष्मी बुक डिपो, मनोहर प्रेस आदि व्यावसायिक संस्थानों को जन्म दिया जिनको उनके योग्य पुत्र श्री भगवानदास एवं राधेश्याम अग्रवाल आदि सुयोग्यता से संचालित कर रहे हैं। बाबू जी के चार भाई और कई बहनें हैं जो सभी समृद्धिशाली, परोपकारी, सज्जन और शिष्ट हैं। बाबू जी के श्री गोविन्द प्रसाद, दिवाकर लाल एवं हरी बाबू तीन योग्य पुत्र हैं जो हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स के मालिक हैं और मुद्रण-कला में लगभग प्रति वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार के मुद्रण पुरस्कार एवं प्रशंसा पत्र प्राप्त करते हैं।

बाबू जी की माता श्रीमती भगवान देवी परम् वैष्णव एवं उदार और उदात्त भावों से परिपूर्ण महिला थीं। जहाँ तक मेरा विश्वास है बाबू जी की अतिथि परायणता, निष्कपटता, सरलता और शील-सम्पन्नता, दानशीलता और दुष्टों के प्रति उदासीनता एवं स्वाभाविक सौजन्य उनको मातृसंपत्ति के रूप में ही मिले हैं। अपनी माता और पिता जी के स्मारक के रूप में उन्होंने हीरालाल धर्मशाला, मथुरा में निर्मित कराई है जो नगर का एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं उपयोगी संस्थान है।

बाबू जी के कुछ सहज मानवीय गुण भी हैं। वे दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होते हैं; किसी से विवाद बढ़ जाने पर उसे मर्यादा का प्रश्न नहीं बनाते और दूसरे का अहित होने की स्थिति तक पहुँचने के पूर्व अग्रणी बनकर स्वयं समाधान के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। बुर-बोलाओं के साथ उनका उदासीन भाव रहता है। सबका सहज आदर और सत्कार करना उनके स्वभाव का अंग है। प्रिय और मृदुभाषिता एवं सम्पर्क के प्रत्येक व्यक्ति की कृतकार्यता की सराहना और मूल्य चुकाना उनके व्यक्ति के आचार की विशेषता है। उनकी भाषा-शैली मनोरंजक और गंभीर है। तत्काल-प्रतिभावान होने के साथ-साथ संस्कृत के सुभाषित और अंग्रेजी के उद्धरणों का समृद्ध कोष उनकी अक्षुण्ण धरोहर है जिससे उनका वक्ता और श्रोता कभी नीरस नहीं होने पाता। अनेक गुणों से विभूषित और समृद्धियों से सम्पन्न, परोपकार प्रिय और राष्ट्र-भारती के सेवक बाबू वृन्दावनदास जी के दीर्घ जीवन, श्रेष्ठ स्वास्थ्य और वृहद् साहित्यिक एवं सामाजिक योगदान के हम परम आकांक्षी हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

आगरा में कविरत्न सत्यनारायण की अर्द्ध शताब्दी समारोह के अवसर पर सेठ गोविन्द दास जी का अभिवादन करते हुए बा. वृन्दावन दास ।

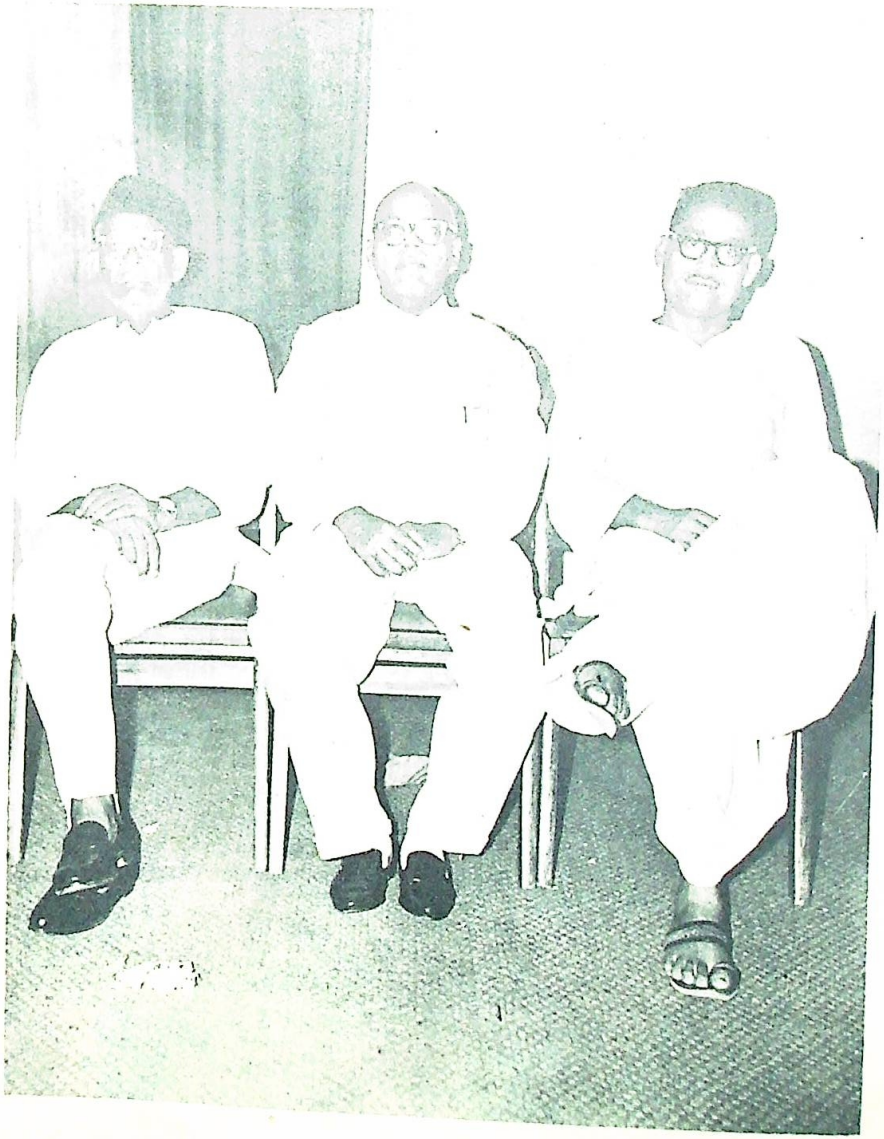

बा. वृन्दावन दास अपने दो अभिन्न मित्र श्री अब्दुल गनी व श्री राम प्रसाद 'कमल' नगर पालिका सदस्यों के साथ ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आगरा में आयोजित महाकवि ग्वाल पुण्य शताब्दि समारोह की अध्यक्षता करते हुए बा. वृन्दावन दास। (बाएँ से) श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी, श्री रमेशचन्द दुबे, श्री युगल किशोर चतुर्वेदी (जयपुर), श्री राधे बिहारी लाल सक्सेना।

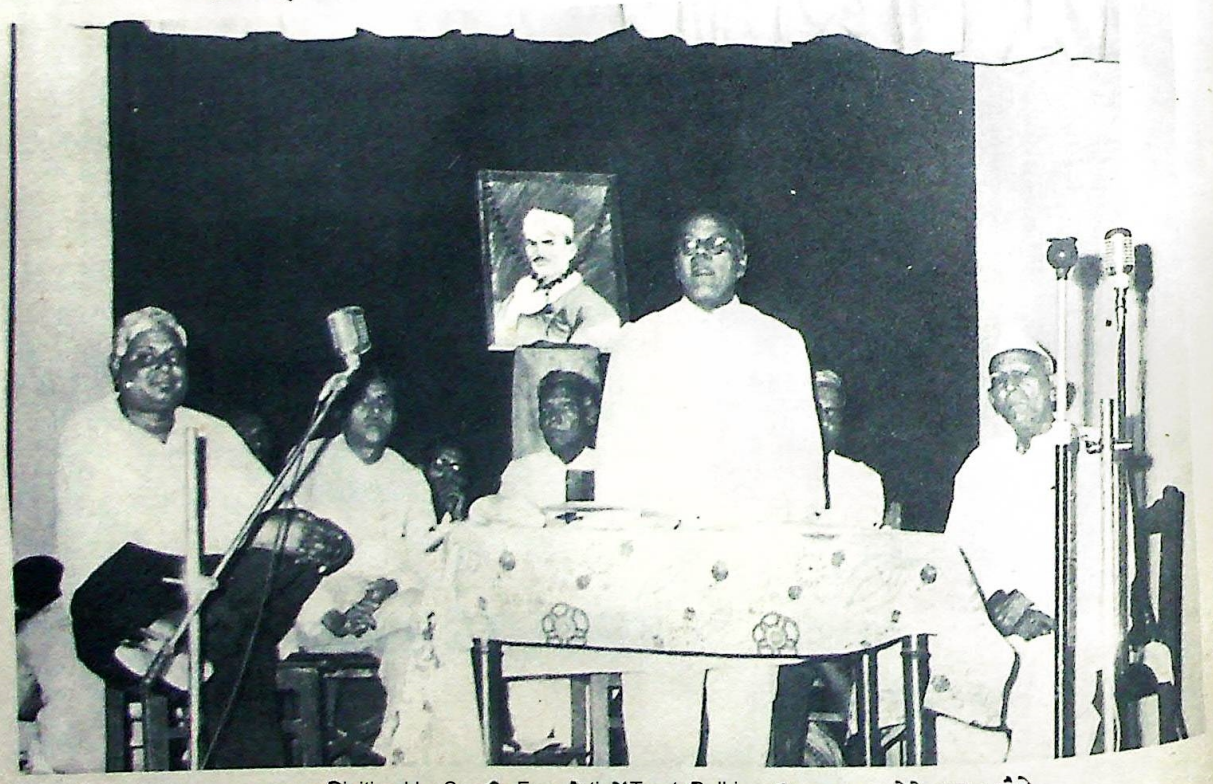

महा कवि ग्वाल शताब्दी समारोह में बाबूजी अध्यक्षीय भाषण देते हुए। बैठे हुए-बाँये से श्री रमेशचन्द्र दुबे, श्री सूर्यपालसिंह तोमर, श्री देवी प्रसाद दिव्य

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निर्मल समाज सेवी

⊙

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

सार्वजनिक-सेवा का कार्य अत्यंत ही पुण्यप्रद और महत्वपूर्ण सिद्ध होता है यदि उसको निस्वार्थ-भावना से किया जाय। जन-सेवा के उपलक्ष्य में जो परमिट और अन्य सुविधाओं का उपभोग करने की तिकड़म में रहते हैं वे प्रशंसित नहीं होते। भारतीय-संस्कृति की निष्काम-कर्म की परिपाटी इसलिए ही अनुकरणीय कही गई है।

बाबू वृन्दावनदास ने अपने व्यक्तिगत कार्य के साथ ही साथ जितनी सार्वजनिक-सेवाओं में अपना योगदान दिया है वह सचमच ही आश्चर्यजनक है। कितनी ही सेवाओं में से कुछ सेवाएँ इस प्रकार हैं—

१. नगरपालिका मथुरा के वर्षों तक अध्यक्ष और सदस्य रहे।

२. पाँच वर्ष तक आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे।

३. सात वर्ष पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की प्रबन्ध समिति के सदस्य रहे।

४. कितने ही वर्षों तक उत्तर प्रदेशीय चेम्बर ऑफ कामर्स के सदस्य रहे।

५. उत्तर प्रदेशीय कोआपरेटिव बैंक, उत्तर प्रदेशीय कोआपरेटिव फेडरशन और उत्तर प्रदेशीय कोआपरेटिव यूनियन के वर्षों तक संचालक रहे और आजकल भी यू० पी० कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड के संचालक मंडल के सदस्य हैं।

६. सन् १९६० से अब तक लगातार आप गोविन्द नगर कोआपरेटिव-हाउसिंग सोसाइटी के अध्यक्ष हैं।

७. अग्रवाल-कन्या-विद्यालय, मथुरा, चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज मथुरा, और वी० एन० इण्टर कालेज मथुरा की कार्य समितियों के अध्यक्ष रहे।

८. सेठ वी० एन० पोद्दार स्कूल, मथरा और बी० एस० ए० डिग्री कालेज, मथुरा की प्रबन्ध समितियों के आज भी अध्यक्ष हैं।

९. सन् १९६४ ई० से ब्रज-साहित्य मण्डल के अध्यक्ष हैं।

१०. सन् १९६४ ई० से ही ब्रज-भारती पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं।

उक्त सार्वजनिक-सेवाओं के अतिरिक्त आपसे मथुरा और यत्र-तत्र की धर्मार्थ तथा जनोपयोगी-संस्थाओं को विगत कितने ही वर्षों से सक्रिय सहयोग मिलता आ रहा है।

सार्वजनिक-संस्थाओं का सफलता पूर्वक संचालन और ब्रज-भारती का समयानुसार प्रकाशन करने के पश्चात् भी आप अपने समय के क्षण-क्षण का सदुपयोग किया करते हैं और उसका ही यह शुभ परिणाम है कि उन्होंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी का भण्डार निम्नलिखित ग्रंथों से अलंकृत किया है—

१. भारतीय-संस्कृति के विविध परिदृश्य।

२. प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

३. सम्पादकाचार्य डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र।

४. मारकण्डेय पुराण।

५. काव्य-नवनीत।

६. वीरवर होरेशस।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में ठीक ही लिखा है—"मथुरा में अन्तर्जनपदीय परिषद को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया है। मैं वहाँ गया था।

बाबू वृन्दावनदास जी ब्रज की अद्वितीय विभूति हैं। सेवा-भावना से परिपूर्ण, साधन-सम्पन्न, उदार और विनम्र। हमारे बुन्देलखण्ड को भी वैसे ही कर्मठ यजमान चाहिए।

श्री बाबू जी की यह विशेषता है कि वे दूसरों को सम्मान देने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।"

दादा जी को अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट हो चकने के पश्चात् १५।४।७० के पत्र में उन्होंने संतोष व्यक्त करते हुए लिखा था—"यद्यपि आयोजकों ने अपनी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक किया तथापि उसका अधिकांश श्रेय तो उसके विद्वान लेखकों को है जिन्होंने ग्रंथ के कलेवर ही नहीं आत्मा का भी निर्माण किया है। चतुर्वेदी जी को मैं एक महान निर्माता के रूप में देखता हूँ और यह उचित ही है कि एक निर्माता के सम्मान में किया हुआ निर्माण-कार्य सर्वथा उसकी प्रतिष्ठा के अनरूप हो। उदारमना चतुर्वेदी जी ने सदैव सद्भावनाएँ ही चहुँ ओर बिखेरी हैं और यह स्वाभाविक ही है कि आज उपकृत-बन्धु उनके सम्मान में अपने स्नेह की गंगा बहा रहे हैं।"

त्याग, शील, गुण और कर्म का जैसा समन्वय बाबू जी के उज्ज्वल-चरित्र में मिलता है वैसा अन्यत्र बहुत ही कम देखने में आता है। प्रभावशाली व्यक्तित्व के अतिरिक्त पत्रकारिता, सम्पादन-कला और साहित्य-सृजन की दिशा में भी बाबू जी सिद्धहस्त हैं। ब्रज-भारती का सम्पादकत्व जब से आपने सँभाला है तब से शोध-विषयक ब्रज, बुन्देली और अन्य प्रदेशों के कितने ही प्रभावशाली लेख उसमें प्रकाशित हो चुके हैं।

आगामी जन गणना पर हिन्दी-भाषा-भाषियों से उन्होंने अनुरोध किया है कि वे अपनी मातृभाषा ब्रज भाषा (हिन्दी) लिखवाएँ इस प्रकार का ही अनुरोध बुन्देलखण्ड प्रदेश में चल रहा है कि वे बुन्देली (हिन्दी) ही अपनी भाषा व्यक्त करें।

स्व० हरिशंकर शर्मा और बाल ब्रह्मचारी श्री जीवनदत्त के स्मृति ग्रंथों को प्रकाशित करने की भी वे आयोजना बना रहे हैं। कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास की जयन्ती और मानस-चतुश्शती-समारोह मनाने के लिए आपने ज़ोरदार टिप्पणियाँ ब्रज भारती में प्रकाशित की हैं।

पत्रकारिता के अतिरिक्त ग्रंथों का सम्पादन करने में भी बाबू जी ने अपनी सम्पादन-पटुता का परिचय दिया है। बाबू जी वैसे तो बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं किन्तु साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक तथ्यों को जिस कुशलता से उन्होंने अपने निबंधों में व्यक्त किया है वे पठनीय और अधिक प्रशंसनीय हैं।

समय-समय पर विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके उक्त निबंध पुस्तक के रूप में प्रकाशित और प्रचारित हो चुके हैं। भारतीय-संस्कृति के विविध परिदृश्य नामक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है।

बाबू जी संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वान् हैं अतएव अपने सभी निबंधों में उन्होंने अपनी अध्ययनशीलता का स्पष्ट परिचय दिया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धार्मिक-भावनाओं की सुरक्षा का उन्होंने प्रबबल-समर्थन किया है किन्तु साथ ही धर्म के नाम पर बढ़ते हुए दम्भ की उन्होंने निन्दा भी की है। समाज को सत्संग से विशेष लाभ पहुँच सकता है यदि जन-जन उसको सद्भाव से अपनाने में सचेष्ट हों। शुद्ध, शान्ति और सौहार्दपूर्ण वातावरण का समाज में निर्माण करें।

श्रीमद्भगवत गीता के सत्य, सनातन और परमोत्कृष्ट आदर्श को अपनाने का उन्होंने आग्रह किया है।

सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक सब ही निबंधों में उनकी शैली-विशेष का आनन्द प्राप्त होता है जिससे पाठक कुछ न कुछ उत्तरोत्तर ग्रहण करता हुआ, तर्क की कसौटी पर कसता हुआ और आनन्द विभोर होता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

अंत में मैं उनका हार्दिक-अभिनंदन करते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का यह साधक अनेक वर्षों तक इसी प्रकार सार्वजनिक-हित में संलग्न बना रहे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बन्धुवर श्री वृन्दावनदास जी

⊙

डा० बनारसीदास चतुर्वेदी

पिछले कई वर्षों से भाई वृन्दावनदास जी से मेरा इतना निकट का सम्बन्ध रहा है कि उनके बारे में तटस्थ वृत्ति से लिखना मेरे लिए सम्भव ही नहीं रहा। उनकी तारीफ में कुछ भी कहना आत्म प्रशंसा के समान है। फिर भी इस शुभ अवसर पर दो चार पंक्तियाँ लिखना मेरा कर्तव्य है।

इस बीच भाई वृन्दावनदास जी से बीसियों बार मिलना हुआ है और उन्होंने पचासों ही पत्र मुझे भेजे होंगे। मानव-चरित्र के अध्ययन का मुझे व्यसन रहा है। अंग्रेजी के महाकवि पोप का कथन है—'Proper study for mankind is man' यानी मानव जाति के लिए मनुष्य का अध्ययन ही सब से अधिक उपयुक्त विषय है।

कोई भी समझदार लेखक किसी से तीन-चार घंटे की बातचीत में ही उसके व्यक्तित्व की झुकान तथा गहराई के बारे में अनुमान लगा सकता है। मनुष्य केवल वाणी से ही नहीं बोलता, उसके हावभाव चाल-ढाल, नेत्र तथा शरीर के प्रत्यंग भी बोलते हैं। चीन के एक महान सन्त ने कहा था—'मनुष्य अपने को कैसे छिपा सकता है?' और मैं बिना किसी अत्युक्ति के कह सकता हूँ कि श्री वृन्दावनदास जी में ऐसे अनेक गुण पाये जाते हैं, जो वर्तमान समाज में अत्यन्त दुर्लभ हो गए हैं। उनमें सहज बुद्धि के साथ-साथ विनम्रता, दानशीलता, कृतज्ञता और सहनशीलता भी है। आतिथ्य सत्कार के तो वे विशेषज्ञ ही हैं। अपनी निन्दा सुन कर भी वे उत्तेजित अथवा उद्विग्न नहीं होते।

पर इन सब गुणों से अधिक मुझे आकर्षित किया है उनकी ब्रजभक्ति ने। वे अपने जनपद ब्रजमंडल के अनन्य प्रेमी हैं और नित्य प्रति कम से कम आठ दस घंटे ब्रजमंडल की सेवा में ही बिताते हैं। यदि वे वकालत करते तो काफी पैसा कमा सकते थे और व्यापार तो उनका पैतृक व्यवसाय ही है, फिर भी सब काम छोड़ कर वे ब्रज साहित्य मंडल तथा अन्तर्जनपदीय परिषद का ही काम करते रहते हैं।

ब्रजभूमि में जहाँ भी जो कुछ अच्छा कार्य हो रहा है उसके विषय में भाई वृन्दावनदास जी की जिज्ञासा निरन्तर जाग्रत रहती है और वे उस स्थान की यात्रा करने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहते हैं।

आगरे में सात आठ मील की दूरी पर राजा बाबू—श्री प्रताप नारायण अग्रवाल का आगरा कमिश्नरी का जो सर्वश्रेष्ठ उपवन है उसके दर्शन करने के लिए वे वहाँ गए थे और उसकी रक्षा के लिए भी वे केन्द्रीय मंत्री श्री राजबहादुर के निवासस्थान पर पधारे थे। होलीपुरा में जो दामोदर इंटर कालेज है और जिसने जंगल में मंगल उपस्थित कर दिया है, उसे देखने का प्रोग्राम उन्होंने बना लिया था। नरवर के संस्कृत विद्यालय की वे तीर्थयात्रा कर चुके हैं। स्व० सत्यनारायण कविरत्न की स्मृति में एक स्कूल धाँधूपुर के निकट तोरा में स्थापित हुआ है। उसके उत्सव में भी भाई वृन्दावनदास जी गए थे। और उसकी कुछ आर्थिक सहायता भी की थी। कविरत्नजी के स्वर्गवास के बाद अर्द्धशताब्दी मनाने का आयोजन उन्होंने किया

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

था । फीरोजाबाद तो वे कई बार पधार चुके हैं—वहीं उन्हीं के सभापतित्व में उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन भी हुआ था। चमरौला के शहीद मेले में भी वे शामिल हुए थे।

भाई वृन्दावनदास जी में आज्ञापालन का जो अद्‌भुत गुण है वह तो हमारे नवयुवकों के लिए अनुकरणीय है। मैंने उन्हें जिन जिनसे मिलने के लिए और जहाँ जहाँ की यात्रा करने के लिए लिखा उन्होंने मेरी प्रार्थना को आदेश मान कर स्वीकार किया। उनकी इस विनम्रता से मैं दंग रह गया।

भाई वृन्दावनदास जी बड़े दानशील भी हैं। मेरे सम्मान के लिए उन्होंने जो कुछ किया उसकी चर्चा मैं यहाँ नहीं करना चाहता, क्योंकि हम लोगों के सम्बन्ध तो अब घरेलू हो चुके हैं, पर उनकी सक्रिय रुचि इस प्रकार के सभी आयोजनों में निरन्तर रहती है वे पत्र व्यवहार में अत्यन्त सावधान हैं और छोटे से छोटे कार्यकर्ता के व्यक्तित्व का सम्मान करते हैं और यथाशक्ति वे उनको आर्थिक सहयोग भी देते रहते हैं। हमारे देश में ऐसे व्यक्ति बहुत पाए जाते हैं जो अपने पास से एक पैसा भी किसी सत्कार्य में खर्च नहीं करना चाहते और हाथ पाँव बचा कर मूँजी को टरकाने में जिनका विश्वास है। भाई वृन्दावनदास जी सहर्ष और मुक्त हस्त से प्रत्येक शुभ कार्य में सहायता देते हैं। वे ब्रजमंडल के छोटे से छोटे कार्यकर्ता के व्यक्तित्व का यथोचित सम्मान करते हैं।

श्री कन्हैयालाल चंचरीक और डा० आनंद स्वरूप पाठक द्वारा संपादित बाबू जगजीवनराम अभिनंदन ग्रंथ 'एक युग : एक प्रतीक' में भी वृन्दावनदास जी संपादन परामर्श मंडल के सदस्य थे।

पिछले वर्षों में उन्हें सब से अधिक चिन्ता ब्रज मंडल के लिए भूमि के अधिकरण की रही है और तदर्थ उन्हें कई बार लखनऊ की यात्रा भी करनी पड़ी है। ब्रजभारती के तो वे ३१ अंक निकाल चुके हैं। मेरे पत्रों का संग्रह उन्होंने कई सहस्र व्यय कर के निकाल दिया तथा स्वर्गीय आचार्य वासुदेव शरण जी के पत्रों का भी संग्रह तैय्यार कर लिया है। अयोध्या में भी उन्होंने एक पुस्तकालय की स्थापना कर दी है! सर्वोत्तम दान वे सद्‌ग्रन्थों के वितरण को ही मानते हैं और बिना माँगे भी वे ऐसे दान करते रहते हैं। फीरोजाबाद के एक महाविद्यालय को वे एक सौ रुपये के ग्रन्थ भेंट कर आये। यहाँ ज्ञानपुर पधार कर उन्होंने मुझसे स्वयं ही कहा कि यहाँ कोई पुस्तकालय हो तो उसे भी एक सौ रुपये के ग्रन्थ भेंट कर सकता हूँ।

स्वर्गीय जीवनदत्त जी ब्रह्मचारी के स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए वे चिन्तित रहे हैं। यही नहीं डा० सत्येन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ तथा श्री लल्लन मिश्र के गणेश जी विषयक शोध-ग्रन्थ अपने पुराने सहयोगी स्व० हरदयालु सिंह के विषय में शोध कराने के लिए वे उत्सुक हैं। प्रकाशन में भी वे सहयोग देना चाहते हैं। न्यायमूर्ति प्यारे लाल चतुर्वेदी की शताब्दी मथुरा में मनवाने का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया है।

भाई वृन्दावनदास जी स्वयं सिद्धहस्त लेखक हैं पर अपनी इस लेखन प्रतिभा का बलिदान कर के वे ब्रज साहित्य मंडल के लिए दस-दस घंटे रोज़ खर्ज करते रहते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को सीमातीत बढ़ते देख कर मैं चिन्तित हो गया और मैंने उन्हें लिख भेजा कि उन्हें अब संस्थाओं का मोह छोड़ कर साहित्य सृष्टि के काम में लग जाना चाहिए। आचार्य पद्मसिंह जी कहा करते थे कि संस्था के मानी कब्र भी होते हैं—सम्यक् रूपेण स्थापित।

अपनी निराधार निन्दा सुन कर भी वृन्दावनदास जी उद्विग्न नहीं होते। कुछ नासमझ लोगों ने उन पर यह इलजाम लगाया कि वे पदलोलुप हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पर भाई वृन्दावनदास जी ने स्वयं ही यह निश्चय कर लिया है कि ब्रज-साहित्य मंडल की भूमि का अधिकरण हो जाने के बाद वे इस कार्य से मुक्ति पा लेंगे।

मेरी भाई वृन्दावनदास जी से यह प्रार्थना है कि वे अब किसी भी संस्था के चक्कर में पड़े बिना अपनी साहित्य सृष्टि के कार्य में संलग्न हो जावें। बाकी बचे वक्त में वे अन्तर्जनपदीय कार्य स्वतंत्र रूप से कर सकते हैं। ब्रजभूमि सम्बन्धी वे एक निजी संग्रहालय भी कायम कर सकते हैं।

भाई वृन्दावनदास जी मेरे यजमान हैं—मेरे प्रति श्रद्धा भी रखते हैं, यद्यपि मैं उसका उपयुक्त पात्र नहीं—और उन्हें आशीर्वाद देने का अधिकार मुझे प्राप्त है। वे शतायु हों और इसी प्रकार ब्रजभूमि की सेवा करते रहें, यही मेरी कामना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सदा सनमानें रहैं सब ठौरें

डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी
डी० लिट्

बाबू वृन्दावनदास जी 'यथा नाम तथा गुण' के जीवंत उदाहरण हैं। उनका साक्षात्कार वृन्दावन की पावन-भूमि की भांति रोम-रोम को पुलकित कर देता है। उनसे परिचय का अर्थ है उनसे प्रेम। और उनसे प्रेम का अर्थ है—सदा सर्वदा के लिए उससे स्नेह बन्धन में आबद्ध हो जाना।

मथुरा का निवासी होने के कारण मैं अनेक वर्षों से उनके नाम और काम से परिचित रहा हूँ। कई वर्षों से बाबू जी के सम्पर्क के साथ ही मेरा सम्पर्क 'ब्रज-भारती' और ब्रज-साहित्य मण्डल के साथ हो गया। उनके साथ ज्यों-ज्यों निकटता होती गई त्यों-त्यों उनकी महत्ता का उद्‌घाटन होता गया। उनकी भोली-भाली सूरत, सीधी सच्ची बातें और उनके ऋजु सरल व्यवहार को देख कर बीसवीं शताब्दी में लालित-पालित होने वाला कोई भी व्यक्ति यह सोच भी नहीं सकता है कि इनके व्यक्तित्व में कृतित्व, वर्चस्व एवं वैभव की त्रिवेणी अजस्र रूप से प्रवाहित रहती है। बाबू जी स्वयं बड़े हैं, बड़प्पन को बांटते हैं और अधिकाधिक बड़े बनते रहते हैं, ठीक ही है—

यों रहीम सुख होत है उपकारी के अंग।
बाटन बारे कें लगै, ज्यों मेंहदी को रंग॥

बाबू जी के सम्पर्क में रह कर मैंने यह सीखा कि बड़ा वह है जिसके पास बैठ कर हम अपने आपको बड़ा समझने लगें। बाबू जी के साथ रहते समय मैं भी एक साहित्यकार होने के गर्व से अभिभूत हो उठता हूँ। उनके द्वारा अनेक साहित्य-सेवियों का पोषण होता है और न मालूम कितने साहित्य-प्रेमियों का उत्साह-वर्धन होता है। उनका जीवन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सदृश साहित्यकारों की परम्परा का स्मरण करा देता है—

या जगमें तिन्हें धन्य गिनौं
जो सुभाय पराय भले कह दौरे।
आपुन हूं कौं भलों करैं नामो,
सदा सनमाने रहैं सब ठौरैं॥

साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी कोई योजना हो, कोई आयोजन हो, बाबू जी उसमें तन, मन, धन से तत्पर दिखाई देते हैं। उनके घर में स्थापित देवी अन्नपूर्णा का भण्डार तो प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के लिए सदैव खुला ही रहता है। "ना जानें का रूप में नारायण मिल जांय" का स्मरण करते हुए बाबू जी प्रत्येक साहित्य प्रेमी से भुजा भर कर भेंटते हैं। परिणाम यह है कि उनके हृदय में नारायण का निवास है और लक्ष्मी उन पर कृपा करने के अवसर देखती रहती हैं। ठीक ही हैं—"परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू जी का व्यक्तित्व अंगूर की भाँति मृदुल, मधुर और कोमल है। वह लबालब रस से पूर्ण है। देखने में मृदुल, बोलने में मधुर और व्यवहार में आकर्षक। व्यक्ति उनके पास पहुँच भर जाए, बस उनका हो कर ही रहता है। उन्हें हरदिल अज़ीज कहें, गोकुल का कन्हैया कहें अथवा साहित्य प्रेमियों की लैला। उनके हृदय में अपने परिचितों के प्रति स्नेह का जो सागर लहरता रहता है, उसकी कल्पना करने-कराने के लिए उनके एक पत्र की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

"ऋषीकेश जी मेरे ऊपर तो बड़ी कृपा रखते थे। वे मेरे सहपाठी, मित्र, अभिन्न हृदय थे। दुर्दैव का, सौजन्य, शील और भद्रता पर निर्दय प्रहार हुआ है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से समाज में एक चीज उत्पन्न की थी जिसे विरले ही कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। ईश्वरेच्छा बलीयसी।"

अपने मित्रों के हित-साधन की चिन्ता उन्हें सदैव बनी रहती है। मैंने उन से एक काम के लिए एक बार यों ही कह दिया था। उन्होंने उसकी इतनी चिन्ता रखी जितनी शायद मुझे भी नहीं रही थी। बाबू जी उन वृक्षों में हैं जो फूलते भी हैं, फलते भी हैं और फल-भार के कारण सदैव नत बने रहते हैं। उनके एक अन्य पत्र का यह उद्धरण द्रष्टव्य है—"भाई, काका जी का एकाध संकलन तो और निकालो, उसके लिए अर्थ व्यवस्था तो हो ही जाएगी।"

बाबू जी का जीवन मूक साधक का जीवन है। वह करते अधिक हैं, कहते कम हैं। उनका विचार है कि कहने से पुण्य का क्षय होता है। बाबू जी को 'साहित्य वारिधि' उपाधि प्राप्त होने के अवसर पर मैंने उनके सम्मुख सम्मान-समारोह का प्रस्ताव रखा। उन्होंने छूटते ही दो टुकड़े मना कर दिया। परन्तु जब मैंने बार-बार आग्रह किया, तो वह 'हाँ' कर गए।

मेरे विचार से बाबू जी की महत्ता का रहस्य उनके व्यक्तित्व में समाहित आत्मीयता ही है। यह आत्मीयता उनके रोम-प्रतिरोम से निस्सृत होती रहती है। एक बार जब मैं बिना कुछ खाए ही उनसे विदा लेने लगा, तो उन्होंने मुझे एक लिफाफा पकड़ा दिया—यह कहते हुए "इसे रास्ते में खोलना।" रेल में बैठने पर मैंने वह लिफाफा खोला। उसमें काजू किशमिश आदि मेवे थे।

× × ×

कुछ दिनों पहले बाबू जी के कनिष्ठ भ्राता का देहावसान हो गया था। उस भ्राता का जिसके वियोग की कल्पना मात्र से भगवान राम यह कह रो पड़े थे—"मिलहि जगत न सहोदर भ्राता।" मैं शिष्टाचार के लिए उनके पास गया। उस समय मैं उनका धैर्य एवं उनका संतुलन देख कर दंग रह गया। तब मैंने जाना कि इस सहृदय का निर्माण कितनी पक्की मिट्टी द्वारा हुआ है। उस अवसर पर भी वह व्यवहार की सामान्य शिष्टताओं के प्रति सजग थे। शालीनता में कहीं किसी प्रकार की मलिन छाया नहीं थी।

× × ×

हम लोग जन्म से गुलाम हैं और स्वभाव से कृतघ्न। हम आत्मीय जन का सम्मान करना जानते ही नहीं हैं। ऐसा करते हुए हमें लज्जा आती है। जो महानुभाव इसका प्रतिवाद हैं, उन्हें चाहिए कि वे बाबू जी के उपकारों का उनकी सेवाओं का ब्योरे वार लेखा-जोखा तैयार करें, जिससे हम जान सकें कि इस वट वृक्ष के नीचे कितने बटोही विहगों को आश्रय प्राप्त हुआ है। जहाँ तक मेरी बात है, मैं सरलतापूर्वक यह कह सकता हूँ कि बाबू जी का कृपा-भाव मेरा बहुत बड़ा सम्बल है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आगरा पत्रकार सम्मेलन के अवसर पर श्री अक्षय कुमार जैन (भाषण करते हुए), श्री व्रजेश, श्री गोपाल प्रसाद व्यास, श्रीमती अक्षयकुमार जैन, बा. वृन्दावन दास (स्वागताध्यक्ष)

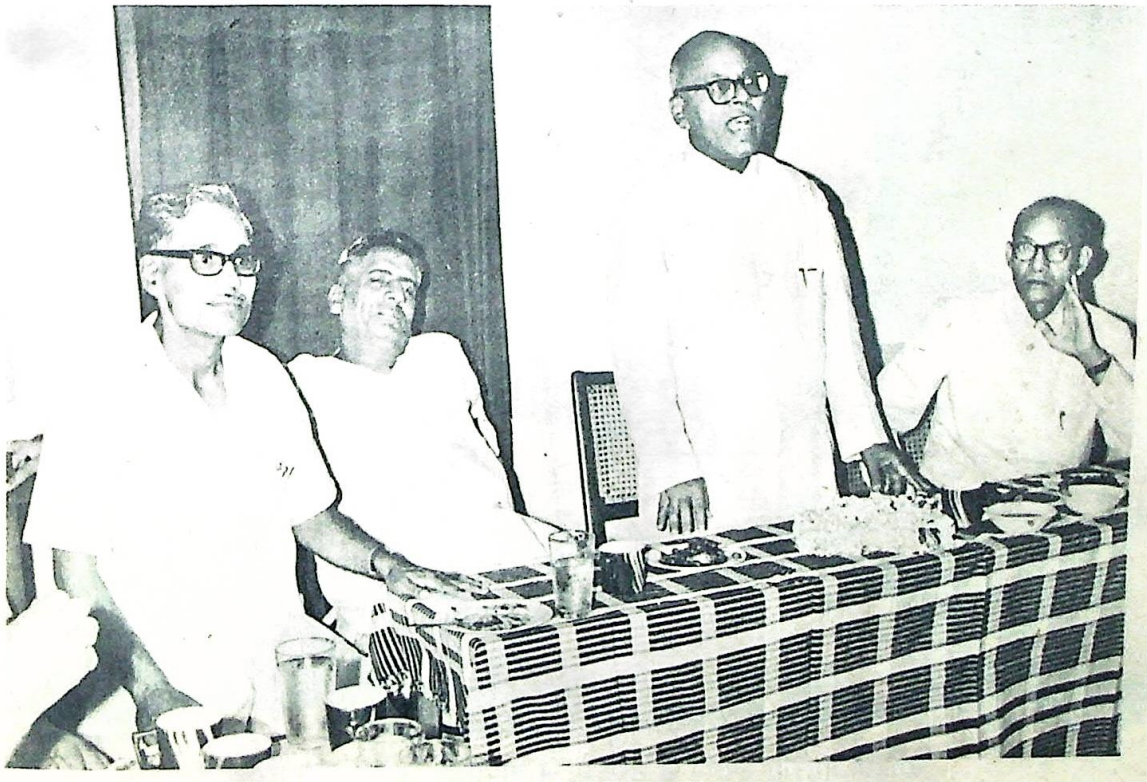

बाबूजी को 'साहित्य वारिधि' उपाधि प्राप्त होने पर, सम्मान मे आयोजित समारोह में श्री जय कुमार मुद्गल, श्री गोपाल प्रसाद व्यास, बा. वृन्दावन दास (भाषण करते हुए), श्री प्रभुदयाल मीतल ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य वारिधि उपाधि प्राप्ति के उपलक्ष में आयोजित स्वागत समारोह में बाबू जी अपने मित्रों के साथ ।

साहित्य वारिधि उपाधि के उपलक्ष्य में आयोजित सम्मान समारोह में डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, (भाषण करते हुए) बा. वृन्दावन दास, पं० राजनाथ कुंजरू (सभापति) श्री प्रभुदयाल मीतल, श्री शीतल प्रसाद (कुलपति. आगरा. वि. वि.)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य के तीर्थ

स्व० डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी साहित्य और ब्रजभाषा के तीर्थ हैं। मूक-साधक की भाँति उन्होंने हिन्दी की साधना की है। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैंने बाबू वृन्दावनदास जी को पहली बार सिकन्दराराऊ में आयोजित 'शिशु-स्मृति-समारोह' में देखा था। उस आयोजन के कर्णधार सुकवि राजेश दीक्षित थे। वहाँ राष्ट्रीय कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी की उपस्थिति में, ब्रज क्षेत्र के कवि-कलाकारों को ताम्रपत्र और पुष्पहार से सम्मानित करने का शुभ कार्य, जब कवि सम्मेलन के दूसरे दिन हुआ तो बाबू जी ने जो भाषण दिया वह एक ऐसे व्यक्ति का भाषण था, जिसमें ब्रज क्षेत्र के साहित्यकारों के विकास के लिए कुछ कर गुजरने की तड़प थी। जब से ब्रज-साहित्य मण्डल मित्रों के पारस्परिक कलह का शिकार हुआ तब से जिस व्यक्ति ने इस संस्था को अकेले जीवित रखा है, उसके बारे में मेरी धारणा कुछ और ही थी। मैं समझता था कि वह व्यक्ति सचमुच कोई राजनैतिक महत्वाकांक्षा लिए होगा और अखाड़ेबाजी में माहिर होगा। कारण, आजकल साहित्यिक संस्थाओं में भी ऐसे ही महानुभाव अपना प्रभुत्व जमाये हुए हैं, जिसके फलस्वरूप साहित्यिक संस्थाएँ राजनीति का खेल भर रह गई हैं और उनमें भाग लेने वाले अधिकांश तथाकथित साहित्यकार भी साहित्येतर उद्देश्यों से ही उनके साथ सम्बद्ध रहते हैं। लेकिन जब मैंने बाबू वृन्दावनदास जी को देखा तो लगा कि यह व्यक्ति इस प्रकार का नहीं है। वेशभूषा और बातचीत से नितान्त साधारण और सहज बाबू वृन्दावनदास जी उस श्रेणी के व्यक्ति हैं जिनके लिए साहित्य समय के सदुपयोग का सब से बड़ा और सब से उत्तम साधन होता है। सम्पन्न वे अवश्य होंगे अन्यथा एक संस्था को वर्षों अकेले सँभालना और साहित्य-सृजन के साथ नवोदित कलाकारों को प्रोत्साहन दे कर साहित्य के मंच पर ले आना संभव न होता। सम्पन्नता के साथ सेवा की भावना जुड़ जाने से ही वे यह सब कर पाए हैं। 'ब्रजभारती' में उनकी अनेक टिप्पणियाँ भी यह प्रमाणित करती हैं कि वे निरन्तर अपने अवकाश के क्षणों में साहित्य, इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों को सूक्ष्मता के साथ आत्मसात करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

दूसरी बार बाबू जी से मेरा साक्षात्कार आगरा के स्वावलम्बी प्रकाशक-साहित्यकार श्री रामगोपाल परदेशी के यहाँ हुआ। परदेशी जी ने अपने पुत्र के नामकरण-संस्कार का एक विशाल आयोजन किया था। संयोगवश मैं भी तब आगरा में था और उसमें उपस्थित हो गया था। स्थानीय लोगों के साथ बाबू जी को देख कर मैं आश्चर्य चकित रह गया था। वे मथुरा से आगरा केवल उस तरुण साहित्यकार का उत्साह बढ़ाने ही पहुँचे थे। रात को देर से ही उन्हें मथुरा भी जाना था। उस समय भी उनकी आडम्बरहीनता और सरलता ने मुझे प्रभावित किया था और मैंने यह सोच लिया था कि चाहे और कुछ भी हो, यह व्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में किसी स्वार्थ से नहीं आया है। मेरा यह विचार तब और पुष्ट हुआ जब उनसे ब्रज के कलाकारों,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य सेवियों और विद्वानों की अपने ही घर में उपेक्षा की चर्चा हुई। इस चर्चा को ले कर जो उत्साह उन्होंने उस समय और उसके पश्चात् भी प्रदर्शित किया उससे मुझे उनके व्यक्तित्व के प्रति और भी अधिक श्रद्धा बढ़ी मथुरा के एक तरुण साहित्यकार ने भी बाबू जी के ब्रज-प्रेम की मुझसे बार-बार प्रशंसा की है और मुझसे आग्रहपूर्वक उनसे मिलने का सुझाव दिया है। मैंने सोचा भी है पर वह सुयोग नहीं आ पाया जब मैं बाबू जी से मिल कर उनकी ब्रज-विषयक योजना को हृदयंगम कर सकूँ। इसमें दोष मेरा ही है। वह इसलिए कि बाबू जी तो अनेक बार मथुरा से आने वाले मित्रों द्वारा संदेश भिजवाते रहे हैं।

मैं बाबू वृन्दावनदास जी के व्यक्तित्व के विषय में इससे अधिक और क्या लिखूँ? आपके इस कार्य की प्रशंसा किए बिना मैं नहीं रह सकता क्योंकि समाज या राजनीति में प्रतिष्ठितों की आरती सब उतारते हैं पर आप एक निस्पृह साहित्य-सेवी का सम्मान कर रहे हैं। आपका यह आयोजन पूर्ण सफल हो और आपके ग्रंथ द्वारा एक सेवाभावी साहित्यकार का व्यक्तित्व और कृतित्व निखर कर दूसरों के लिए प्रेरणा-स्रोत बने, यही कामना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास : व्यक्तित्व और कृतित्व

तोताराम पंकज

बाबू वृन्दावनदास जी उन इने-गिने साहित्य प्रेमियों में से हैं, जिन्होंने साहित्य सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझा है। बाबू जी के जीवन का अधिकांश भाग समाज और साहित्य सेवा में ही व्यतीत हुआ है। एक ओर यदि वे कर्मठ कार्यकर्ता हैं तो दूसरी ओर प्रेरणा के स्रोत भी हैं। बाबू वृन्दावनदास लगन और धुन दोनों के पक्के हैं। इस अवस्था में भी उनकी जैसी लगन और कर्मठता बहुत कम लोगों में मिलेगी। बाबू जी की प्रेरणा से अनेकों व्यक्ति साहित्य सेवा की ओर उन्मुख हुए हैं और आज वे सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। अनेकों कवि-लेखकों को साहित्यिक मंच पर लाने का श्रेय बाबू जी को ही है।

व्यक्तित्व

बाबू वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व बड़ा ही निराला है। बाबू जी बड़े सहृदय, उदार, सहनशील और विनम्र स्वभाव के हैं। उनमें आत्मीयता का सागर हिलोरें मारता रहता है। अपरिचित व्यक्ति भी यह अनुभव नहीं कर पाता कि बाबू जी से मेरी प्रथम भेंट है। उनसे मिलते ही ऐसा लगता है मानो जन्म-जन्मान्तर से हमारा और बाबू जी का साथ है। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की समान रूप से कृपा होने पर भी उनमें अहं या दम्भ छू तक नहीं गया है। यह गुण या तो स्व० हृषीकेश चतुर्वेदी में था या फिर बाबू वृन्दावनदास जी में ही मिलता है। श्रद्धेय चौबे जी की भाँति ही बाबू जी भी गुणग्राहक हैं। वे बड़े ही पारखी हैं। 'होनहार बिरवान' को तुरन्त पहचान लेते हैं और उसे उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। उनके लगाये हुए पौधे आज साहित्य-जगत में खूब पुष्पित और पल्लवित हो रहे हैं। बाबू जी ने कितनों को ही साहित्यकार बना दिया।

वृन्दावनदास जी स्नेह और सरलता की साक्षात् प्रतिमा हैं। वे छोटे और बड़े सब को समान रूप से आदर देते हैं। उनकी साधु प्रवृत्ति और सौम्य स्वभाव अपनी अमिट छाप छोड़ देता है। बाबू जी का हृदय बड़ा ही निश्छल और गंगाजल की भाँति पवित्र है। विरोधियों के प्रति भी उनमें द्वेष और घृणा नाम मात्र को भी नहीं है। उनका तो अपना संकल्प है—"जो जैसा होगा, वह वैसा ही आचरण करेगा, हमें तो अपना कार्य करना है। सब को तो ईश्वर भी प्रसन्न नहीं कर पाया, हम तो मनुष्य हैं। और फिर कुछ लोगों का स्वभाव ही अकारण विरोध करना है, हम कैसे उनमें सुधार कर सकते हैं। हमारे मन में पाप नहीं, तब हम क्यों किसी का बुरा मानें।" आज ऐसे विरले ही मनुष्य मिलते हैं।

बाबू जी का ठिगना कद, चौड़ा मस्तक, गोल-गोल स्नेहमयी आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा, बन्द गले का कोट और पैन्ट, हाथ में बेंत, स्वस्थ और आकर्षक व्यक्तित्व, अनायास ही श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। बाबू जी की वाणी में बड़ा मिठास है। वे बड़े ही हँसमुख और निरभिमानी हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जन्म और कार्य-क्षेत्र

बाबू वृन्दावनदास जी का जन्म भाद्रपद कृष्ण अष्टमी सन् १९०६ में हुआ था। आपके पिता लाला हीरालाल जी मथुरा के सर्व सम्पन्न घराने के थे। बाबू जी के पितामह श्याम काशी प्रेस, मथुरा के संस्थापक लाला श्यामलाल जी ने बड़ी ख्याति अर्जित की। बड़े लाड़-प्यार में पले बाबू वृन्दावनदास जी ने अपने पूर्वजों की यश-परम्परा को अक्षुण्ण रखा और त्याग तथा परोपकार की भावना को ग्रहण किया।

बाबू जी ने सन् १९२२ में हाईस्कूल पास किया, सन् १९२६ में बी० ए० और सन् १९२८ में एल्-एल्० बी०। सब से बड़ी बात यह है कि बाबू वृन्दावनदास जी कभी फेल नहीं हुए। हमेशा अच्छे नम्बरों से ही उत्तीर्ण हुए। बाबू जी शिक्षा समाप्त कर सामाजिक कार्यों में जुट गए। वकालत में उनकी रुचि नहीं रही, 'झटके' की कमाई उन्हें पसन्द नहीं। वृन्दावनदास जी सन् १९३५ से सन् ५३ तक निरन्तर नगरपालिका मथुरा के सदस्य रहे और सन् १९५७ से १९६४ तक अध्यक्ष भी रहे। बाबू जी सन् १९३५ से १९३७ तक आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रह चुके हैं।

संस्थाओं को योगदान

वृन्दावनदास जी का कई सामाजिक व साहित्यिक संस्थाओं को सक्रिय सहयोग मिला है। नगरपालिका मथुरा के तो वे वर्षों सदस्य और अध्यक्ष-पद पर रह कर नगर की सेवा करते ही रहे हैं, अन्य कई संस्थाओं की भी सेवा और सहायता करते रहे हैं। वर्तमान समय में आप सात संस्थाओं के अध्यक्ष हैं—

१. स्नातकोत्तर महाविद्यालय बाबू शिवनाथ अग्रवाल डिग्री कालेज की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष।
२. स्थानीय सेवा समिति के अध्यक्ष।
३. गोविन्द नगर गृह-निर्माण सहकारी समिति के अध्यक्ष।
४. सन् १९६३ से अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य मण्डल के अध्यक्ष।
५. बी० एन० पोद्दार हाईस्कूल की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष।
६. केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार के अध्यक्ष।
७. उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष।

इसके अतिरिक्त सहकारी शीर्ष संस्थाओं के संचालक, प्रबन्ध समिति के सदस्य एवं उपाध्यक्ष भी रहे हैं यथा—

१. उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक।
२. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ।
३. उत्तर प्रदेश सहकारी यूनियन।

बाबू वृन्दावनदास जी अनेक शिक्षा संस्थाओं के वर्षों तक अध्यक्ष रहे हैं। महाराजा अग्रसेन बालिका विद्यालय के संस्थापकों में से हैं। इस विद्यालय की स्थापना सन् १९३३ में हुई। इसमें बीस वर्ष मन्त्री रहे और पन्द्रह वर्ष तक अध्यक्ष। चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज की प्रबन्ध समिति के भी अध्यक्ष रहे हैं। आगरा विश्वविद्यालय की सीनेट और लखनऊ विश्वविद्यालय के कोर्ट के सदस्य रहे। इनके अतिरिक्त भी अन्य कई संस्थाओं को बाबू वृन्दावनदास जी का सहयोग मिलता रहा है। बाबू जी ने जिस संस्था में भी कार्य किया, उसे हर प्रकार की सहायता दी और निःस्वार्थ भाव से सेवा करते रहे। जितनी संस्थाओं से बाबू वृन्दावनदास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जी का सम्पर्क और सम्बन्ध रहा है, उतना हमारी जानकारी में अन्य किसी व्यक्ति का नहीं रहा। यह उनकी लोकप्रियता, सच्चाई, लगन और कर्मठता का ही परिणाम है। बाबू जी स्वयं एक नहीं, अनेक संस्था हैं। बाबू जी ने भगवान राम की पावन जन्मभूमि अयोध्या में वृन्दावनदास पुस्तकालय नाम की एक सार्वजनिक संस्था की स्थापना की है।

कृतित्व

बाबू वृन्दावनदास जी ने सन् १९२८ से लिखना प्रारम्भ किया और आज तक अबाध गति से लेखनी चलती आ रही है। अपने विद्यार्थी जीवन में भी विद्यालय पत्रिकाओं में लिखते रहे। हिन्दी और अंग्रेजी में समान रूप से लिखा है। लीडर, पायनियर, अमृत बाजार पत्रिका, नेशनल हैरल्ड आदि समाचार पत्रों में अंग्रेजी में हजारों की संख्या में सामयिक लेख लिखते रहे हैं। विशाल भारत, माधुरी, सरस्वती, सुधा, चाँद आदि हिन्दी की उच्चकोटि की मासिक पत्रिकाओं में बराबर आपके निबन्ध छपते रहे हैं। बाबू जी की लेखनी में बड़ा चमत्कार है। आप बड़ी खोजपूर्ण सामग्री पाठकों को देते हैं। बाबू जी खड़ी बोली और ब्रज-भाषा में कोई भेद नहीं मानते। उनका कहना है कि खड़ी बोली ब्रजभाषा की बेटी है।

ग्रन्थ

बाबू वृन्दावनदास जी निरन्तर लिखते ही रहते हैं। सामयिक विचार प्रत्येक दैनिक पत्र में प्रायः देखने को मिल ही जाते हैं। बाबू वृन्दावनदास जी की कृतियों में 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य', 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' तथा 'प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य' आदि की बड़ी चर्चा है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों का संग्रह तैयार है। मार्कण्डेय पुराण का अनुवाद आज से पच्चीस वर्ष पूर्व आपने किया था जो श्याम प्रेस काशी मथुरा से छपा। स्व० हरदयालुसिंह के सहयोग से हिन्दी-इंगलिश विश्व-कोश की रचना की जो लक्ष्मी बुक स्टोर, मथुरा से प्रकाशित हुआ।

सम्पादक

बाबू वृन्दावनदास जी उच्चकोटि के लेखक ही नहीं, सफल सम्पादक भी हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल की मुख पत्रिका 'ब्रज-भारती' का सफल सम्पादन इस बात का प्रमाण है कि बाबू जी बड़े कुशल और निपुण सम्पादक हैं। सम्पादन से ले कर समस्त कार्य बाबू जी स्वयं अपने हाथ से करते हैं। 'ब्रज-भारती' का अधिकांश आर्थिक भार बाबू जी उठाते हैं। सन् १९६५ से जब से बाबू जी ने मण्डल का सारा कार्य-भार संभाला है, 'ब्रज-भारती' नियमित रूप से प्रकाशित होने लगी है। 'ब्रज-भारती' के नियमित प्रकाशन से एक नयी चेतना आ गयी है।

'ब्रज-भारती' में सम्पादकीय टिप्पणियों को देखने से पता चलता है कि ब्रजभाषा और खड़ी बोली अलग नहीं हैं।

'प्रेरक साधक : बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ' की पृष्ठभूमि में बाबू वृन्दावनदास जी का ही विशेष रूप से योगदान है। ब्रजभाषा भाग के आप ही सम्पादक थे। साहित्याचार्य पं० हरिशंकर शर्मा स्मृति-ग्रंथ और डा० सत्येन्द्र अभिनन्दन-ग्रंथ तथा जीवनदत्त शर्मा स्मृति-ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था भी आप ही कर रहे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हैं। श्री युगल किशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन आपने किया है तथा बा० जगजीवनराम के अभिनन्दन ग्रंथ––एक युग : एक प्रतीक के आप परामर्शदाता सम्पादक रहे हैं। कविरत्न सत्यनारायण के देशभक्त होरेशस का भी सम्पादन बाबू जी ने ही किया है। इसके अतिरिक्त और भी कृतियों का सफलतापूर्वक आपने सम्पादन किया है।

सम्मान

वृन्दावनदास जी की साहित्यिक सेवाओं से प्रभावित हो कर उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको अपनी सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य वारिधि' से विभूषित किया। आप डा० दीनदयाल गुप्त के निधन के परिणामस्वरूप रिक्त स्थान पर उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सर्वसम्मति से उपसभापति निर्वाचित किए गए थे। बाद में आप सम्मेलन के फीरोजाबाद अधिवेशन में अध्यक्ष चुन लिए गए।

बाबू वृन्दावनदास जी मूक साधक हैं। उन्हें छल-छिद्र से कोई सरोकार नहीं। निष्ठावान साहित्य सेवी हैं। बाबू जी की प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की तन-मन और धन तीनों प्रकार से सेवा की है। इस समय एक प्रकार से अन्य कार्यों से पूर्ण अवकाश ले चुके हैं। साहित्य सेवा ही एकमात्र कार्य रह गया है। बाबू वृन्दावनदास जी से अभी बड़ी आशाएँ हैं। भगवान से कामना है, बाबू जी शतायु हों और इसी प्रकार माँ भारती की दत्त-चित्त हो कर सेवा करते रहें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य के निःस्वार्थ साधक

⊙

रमेशचन्द्र दुबे

बाबू वृन्दावनदास से मेरा परिचय सन् १९६७ में सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दी समारोह के आयोजन के सिलसिले में गोवर्धन के प्रिंसिपल श्री शर्मा जी के माध्यम से हुआ। इस आयोजन की रूपरेखा बनाने के लिए एक मीटिंग का आयोजन बाबू जी के निवास पर प्रिंसिपल साहब ने मेरे अनुरोध पर किया था। वहाँ पहुँचे तो कई साहित्यिक-कवि उपस्थित थे। बाबू जी ने छूटते ही कह दिया कि 'हम तो पहले से ही यह आयोजन करने की सोच रहे थे। महाकवि ग्वाल की शताब्दी समारोह के आयोजन का भी विचार था। अब आपका सहयोग मिल गया, यह और अच्छा हुआ।' मुझे तभी लगा कि साहित्यिक कार्य के लिए बाबू जी में सहज तत्परता का अपूर्व गुण है। उनकी आतिथ्य-भावना तो विशुद्ध भारतीय आत्मीयता से सराबोर मिली। सारे विश्व को परमात्मा का स्वरूप जानने वाले देश में ही, परायों को इतनी आत्मीयता से ग्रहण करने वाली सज्जनता, सुलभ हो सकती है।

यह साहित्यानुराग उन्हें अपने स्वर्गीय पिता श्री हीरालाल जी से पैतृक दाय के रूप में मिला है। मथुरा के प्रसिद्ध 'श्याम काशी' प्रेस के वे मालिक थे। इस प्रेस से, हिन्दी के उस नवजागरण के युग में, सेठ हीरालाल जी ने अनेकानेक सुन्दर मर्यादापूर्ण कृतियाँ प्रकाशित कर के हिन्दी के भण्डार को भरा था और हिन्दी पाठकों की तत्कालीन ज्ञान-पिपासा को आतृप्त किया था। सन् १९७० की शिवरात्रि को मैं हर की पैड़ी हरिद्वार पर गंगा स्नान को गया था। 'गंगालहरी' पढ़ने की इच्छा हुई। वहाँ घाट के बाहर से पुस्तक मँगाने पर देखा कि यह 'श्याम काशी' प्रेस से प्रकाशित दिखाई गई है और मुद्रक हैं 'शर्मा प्रेस, हाथरस।' मूलतः वह 'श्याम काशी' प्रेस से ही प्रकाशित हुई होगी। हिन्दी गद्य व पद्य में उसका मूल अनुवाद भी छपा है। पर आज उस प्रेस की 'गुडबिल' (सुनाम) के कारण दूसरे प्रेस वाले उसी 'श्याम काशी' प्रेस के नाम से उसे छापते और बेचते हैं। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि 'श्याम काशी' प्रेस की हिन्दी जगत में उस समय कैसी प्रतिष्ठा थी, जो आज तक अपनी धाक और साख हिन्दी के धार्मिक जगत् के सस्ते प्रकाशनों के वितरण में बनाए हुए हैं। हिन्दी की ऐसी ठोस सेवा करने वाले यशस्वी पिता के पुत्र होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि बाबू जी हिन्दी के अनन्य सेवक बनते ।

'ब्रजसाहित्य मण्डल' के अध्यक्ष होने के बाद से बाबू जी ने हिन्दी की जो अनवरत सेवा की है उसने उन्हें भारतीय स्तर के हिन्दी सेवियों में उच्चतम स्थान का अधिकारी बना दिया है। वे प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'साहित्य वारिधि' की उपाधि प्राप्त कर अब उस सम्मेलन के अध्यक्ष ही हैं। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि ब्रज की सेवा के सीमित क्षेत्र से उठ कर वे हिन्दी की सेवा का विस्तृत उपक्रम कर सकें। यह अवसर उन्हें स्वतः प्राप्त हो गया है। 'ब्रज-भारती' के सम्पादकीय लेखों में हिन्दी की आवश्यकताओं, अभावों तथा सरकारी-गैर सरकारी दायित्वों का उल्लेख वे सदा करते रहते हैं। इन वक्तव्यों में साधनों के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गलत जगह केन्द्रित होने से अथवा उनके अभाव से उत्पन्न छटपटाहट के दर्शन हमें हमेशा होते हैं। लगता है कि बाबू जी की आत्मा हिन्दी को राष्ट्र की क्या विश्व की सिर-मौर भाषा बनाने के लिए कितनी आकुल है। मेरी तो कई बार इन सम्पादकीय लेखों को पढ़ कर यह इच्छा हुई कि दिल्ली के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का अध्यक्ष पद बाबू जी को दे दिया जाना चाहिए, भले ही वह ५ वर्ष के कण्ट्रेक्ट पर ही क्यों न हो। इससे लाखों करोड़ों रुपयों का बजट हिन्दी की सच्ची सेवा में लग सकेगा।

बहरहाल वर्तमान परिस्थितियों में बाबू जी जो सतत साधना हिन्दी की श्री-वृद्धि करने के लिए कर रहे हैं वह शीघ्र ही उन्हें हिन्दी के उच्चतम आसन पर बिठाने में समर्थ होगी, ऐसी हमारी धारणा है। इस सेवा में उन्हें निरन्तर आनन्द की अनुभूति होती है, इसका आभास उनके एक पत्र में लिखे कतिपय वाक्यों से सुस्पष्ट है—

अपने १५-९-७१ के पत्र में बाबू जी ने मुझे लिखा है—

"साहित्यिक गतिविधियों में दिन-रात व्यस्त रहता हूँ। आनन्द ही आनन्द है।"

बिना किसी स्वार्थ के केवल अनाविल आनन्द की प्राप्ति के लिए साहित्य की ऐसी सेवा करने वाला व्यक्ति आज दुर्लभ है। बाबू जी की लगन का पूर्ण उपयोग किसी साधन-समर्थ पद पर शीघ्र ही किया जाय, ऐसी हमारी कामना है।

बाबू जी के अन्य गुणों का परिचय भी मैं उनके पत्रों से उद्धृत वाक्यों द्वारा देना महत्वपूर्ण समझता हूँ। व्यक्तिगत पत्र अकृत्रिम भाव-व्यंजना के सरल वाहक होते हैं। इनसे आदमी के अन्तरतम का सही पता चलता है। बाबू जी के अंतरतम की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए हम उनके पत्रों से उद्धरणों का आकलन नीचे कर रहे हैं।

पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी उन शीर्षस्थ साहित्यकारों में हैं, जिन्होंने गांधी जी की उदार भावनाओं से प्रेरित साहित्य का प्रभूत-सर्जन किया है। हिन्दी संस्थाओं की सुदृढ़ स्थापनाओं में ही उन्होंने अपना भरसक योग दिया है। बाबू जी को उनके प्रति अपार श्रद्धा है। उनके कई सौ पत्रों को अभी हाल में ही उन्होंने पुस्तकाकार छपाया है। सोलह हजार के मूल्य का "प्रेरक साधक" शीर्षक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ तो बाबू जी की ही महनीय चेष्टा का सुफल है।

बाबू जी का यह प्रयास रहता है कि वे विभिन्न स्थानों के साहित्यिकों से सम्पर्क बढ़ा कर हिन्दी साहित्य की समस्याओं से परिचित रहें और व्यक्तिगत स्तर पर पारस्परिक सहयोग से उन्हें निपटाने का प्रयास करते रहें। वे साहित्यिकों को अपना आत्मीय ही समझते और मानते हैं। इस दृष्टि से विभिन्न सभा-गोष्ठियों में साहित्यकारों के आगमन और सम्पर्क को वे बहुत महत्व देते हैं। एक आग्रहपूर्ण निमंत्रण का नमूना देखिए। १४-५-७१ के पत्र में बाबू जी ने लिखा—

"क्या ही अच्छा हो यदि आप फीरोजाबाद (उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन में) पधारें। सम्मेलन और चतुर्वेदी जी। एक पन्थ दो काज। आपसे भेंट हुए भी मुद्दतें गुजर चुकीं। कोशिश कीजिए। साहित्यिक बंधुओं से सम्पर्कशीलता का अनुपम अवसर है।"

सरल स्वभाव और सहज स्नेह के वशीभूत हो कर वे अपने साहित्यिक मित्रों का परस्पर परिचय

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

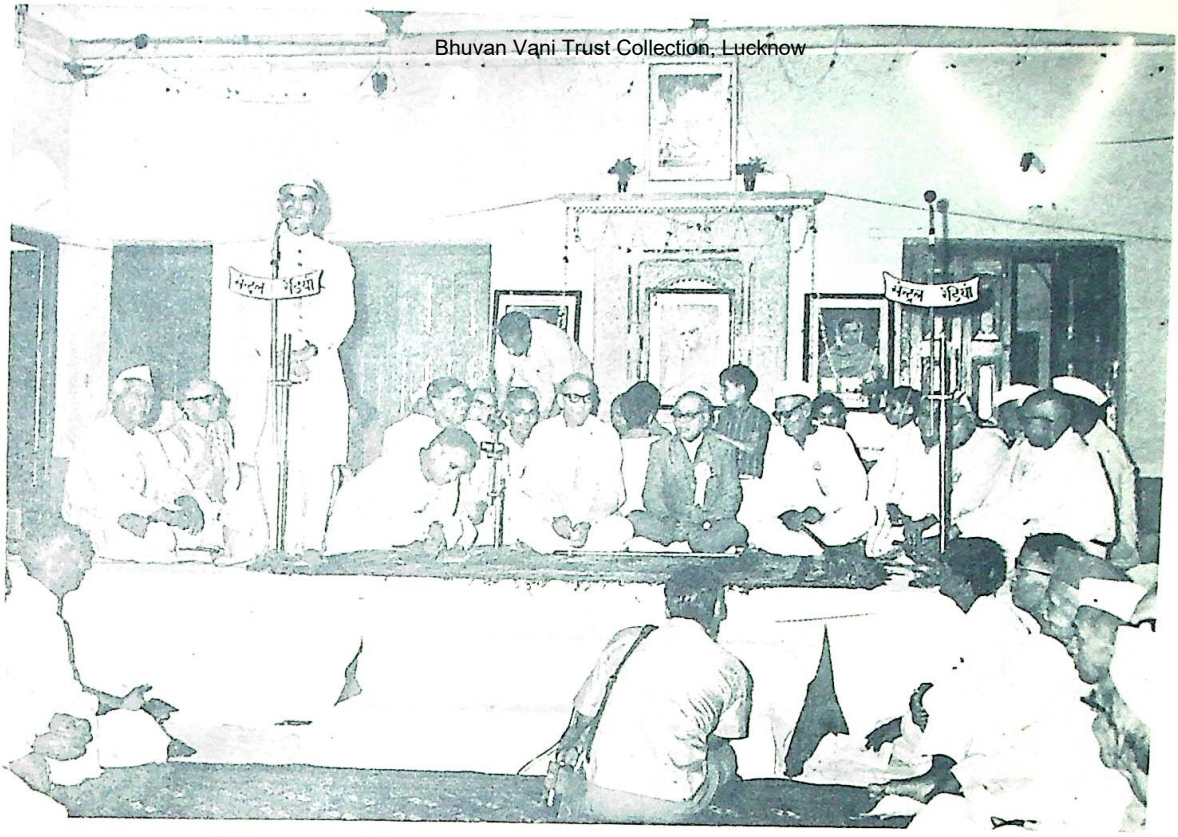

फीरोजाबाद अधिवेशन का एक अन्य चित्र जिसमें अध्यक्ष बा. वृन्दावन दास अनेक हिन्दी सेवियों के साथ बैठे हैं और डा० हरवंश लाल शर्मा भाषण कर रहे हैं।

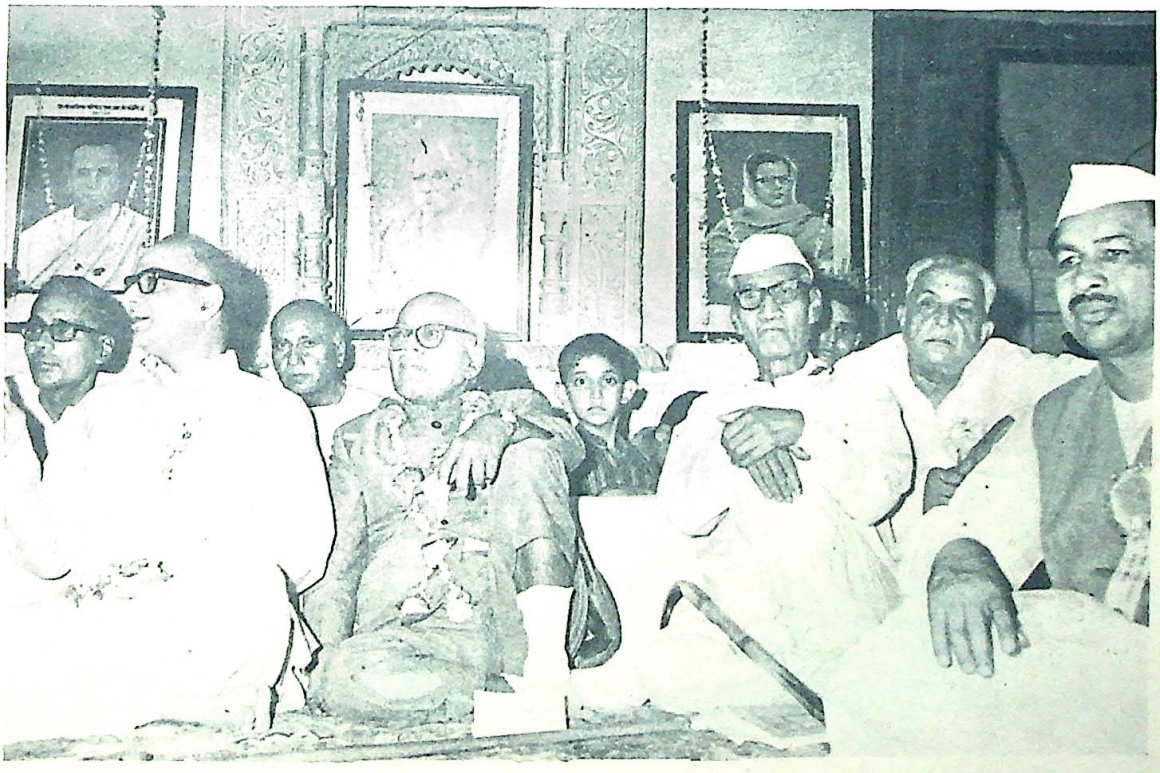

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १३ वें फीरोजाबाद अधिवेशन के सभापति बा. वृन्दावन दास साथ में बाएँ से श्री जयकुमार मुद्गल, श्री अक्षयकुमार जैन (भाषण करते हुए), श्री प्रणेश, बा. वृन्दावनदास डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री. के. एस गर्ग, श्रीबालकृष्ण गुप्त (स्वागताध्यक्ष)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गलत जगह केन्द्रित होने से अथवा उनके अभाव से उत्पन्न छटपटाहट के दर्शन हमें हमेशा होते हैं। लगता है कि बाबू जी की आत्मा हिन्दी को राष्ट्र की क्या विश्व की सिर-मौर भाषा बनाने के लिए कितनी आकुल है। मेरी तो कई बार इन सम्पादकीय लेखों को पढ़ कर यह इच्छा हुई कि दिल्ली के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का अध्यक्ष पद बाबू जी को दे दिया जाना चाहिए, भले ही वह ५ वर्ष के कण्ट्रेक्ट पर ही क्यों न हो। इससे लाखों करोड़ों रुपयों का बजट हिन्दी की सच्ची सेवा में लग सकेगा।

बहरहाल वर्तमान परिस्थितियों में बाबू जी जो सतत साधना हिन्दी की श्री-वृद्धि करने के लिए कर रहे हैं वह शीघ्र ही उन्हें हिन्दी के उच्चतम आसन पर बिठाने में समर्थ होगी, ऐसी हमारी धारणा है। इस सेवा में उन्हें निरन्तर आनन्द की अनुभूति होती है, इसका आभास उनके एक पत्र में लिखे कतिपय वाक्यों से सुस्पष्ट है—

अपने १५-९-७१ के पत्र में बाबू जी ने मुझे लिखा है—

"साहित्यिक गतिविधियों में दिन-रात व्यस्त रहता हूँ। आनन्द ही आनन्द है।"

बिना किसी स्वार्थ के केवल अनाविल आनन्द की प्राप्ति के लिए साहित्य की ऐसी सेवा करने वाला व्यक्ति आज दुर्लभ है। बाबू जी की लगन का पूर्ण उपयोग किसी साधन-समर्थ पद पर शीघ्र ही किया जाय, ऐसी हमारी कामना है।

बाबू जी के अन्य गुणों का परिचय भी मैं उनके पत्रों से उद्धृत वाक्यों द्वारा देना महत्वपूर्ण समझता हूँ। व्यक्तिगत पत्र अकृत्रिम भाव-व्यंजना के सरल वाहक होते हैं। इनसे आदमी के अन्तरतम का सही पता चलता है। बाबू जी के अंतरतम की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए हम उनके पत्रों से उद्धरणों का आकलन नीचे कर रहे हैं।

पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी उन शीर्षस्थ साहित्यकारों में हैं, जिन्होंने गांधी जी की उदार भावनाओं से प्रेरित साहित्य का प्रभूत-सर्जन किया है। हिन्दी संस्थाओं की सुदृढ़ स्थापनाओं में ही उन्होंने अपना भरसक योग दिया है। बाबू जी को उनके प्रति अपार श्रद्धा है। उनके कई सौ पत्रों को अभी हाल में ही उन्होंने पुस्तकाकार छपाया है। सोलह हजार के मूल्य का "प्रेरक साधक" शीर्षक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ तो बाबू जी की ही महनीय चेष्टा का सुफल है।

बाबू जी का यह प्रयास रहता है कि वे विभिन्न स्थानों के साहित्यिकों से सम्पर्क बढ़ा कर हिन्दी साहित्य की समस्याओं से परिचित रहें और व्यक्तिगत स्तर पर पारस्परिक सहयोग से उन्हें निपटाने का प्रयास करते रहें। वे साहित्यिकों को अपना आत्मीय ही समझते और मानते हैं। इस दृष्टि से विभिन्न सभा-गोष्ठियों में साहित्यकारों के आगमन और सम्पर्क को वे बहुत महत्व देते हैं। एक आग्रहपूर्ण निमंत्रण का नमूना देखिए। १४-५-७१ के पत्र में बाबू जी ने लिखा—

"क्या ही अच्छा हो यदि आप फीरोजाबाद (उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन में) पधारें। सम्मेलन और चतुर्वेदी जी। एक पन्थ दो काज। आपसे भेंट हुए भी मुद्दतें गुजर चुकीं। कोशिश कीजिए। साहित्यिक बंधुओं से सम्पर्कशीलता का अनुपम अवसर है।"

सरल स्वभाव और सहज स्नेह के वशीभूत हो कर वे अपने साहित्यिक मित्रों का परस्पर परिचय

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

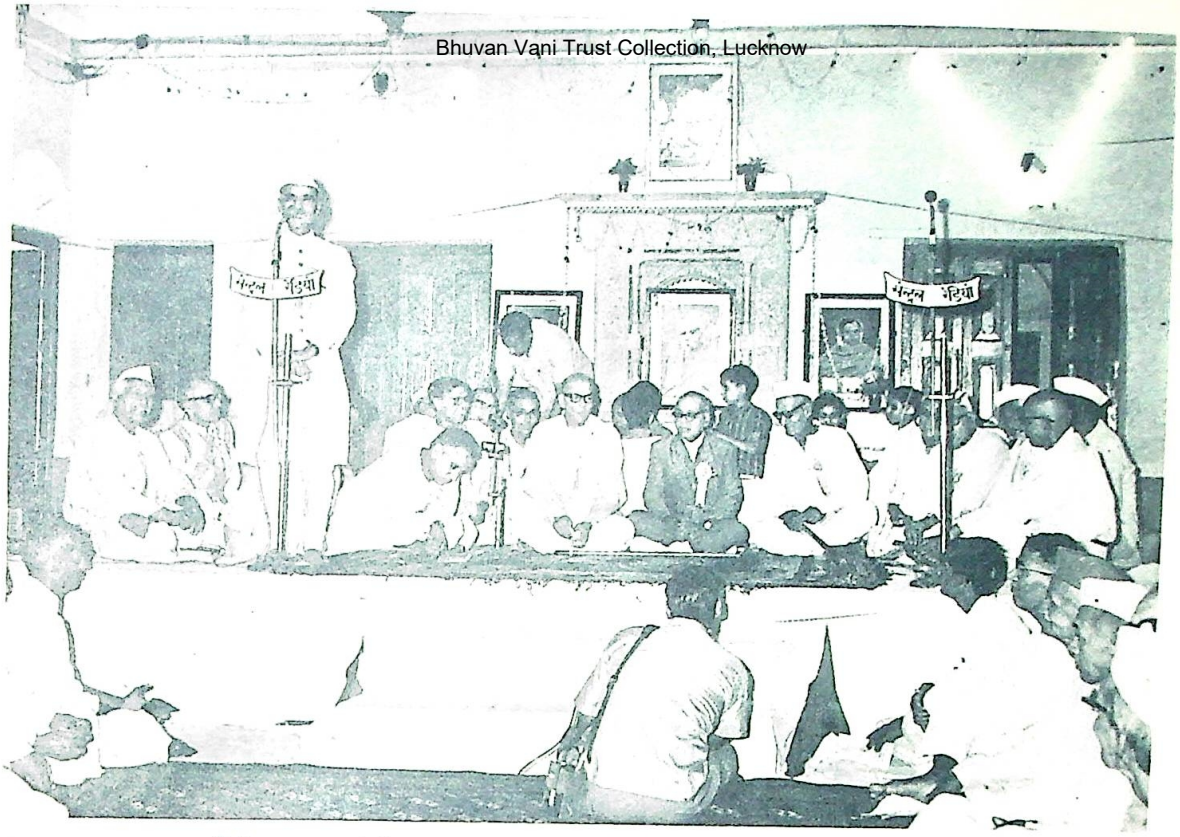

फीरोजाबाद अधिवेशन का एक अन्य चित्र जिसमें अध्यक्ष बा. वृन्दावन दास अनेक हिन्दी सेवियों के साथ बैठे हैं और डा० हरवंश लाल शर्मा भाषण कर रहे हैं।

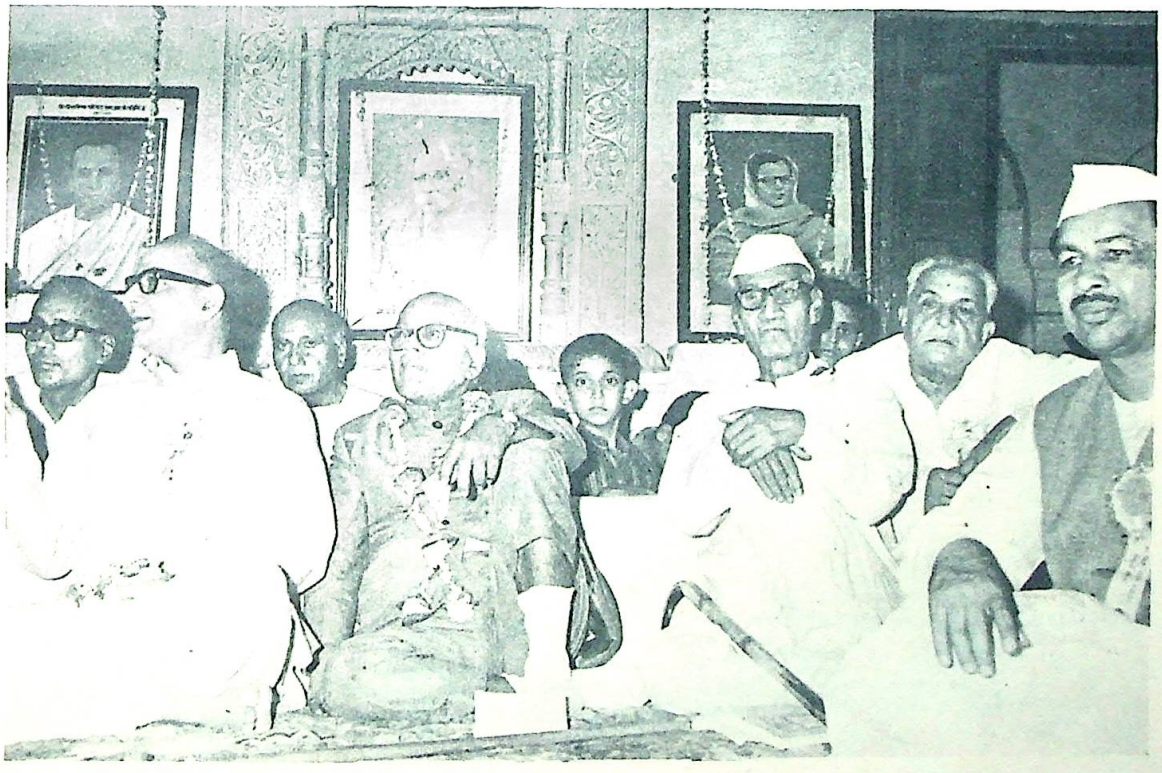

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १३ वें फीरोजाबाद अधिवेशन के सभापति बा. वृन्दावन दास साथ में बाएँ से श्री जयकुमार मुद्गल, श्री अक्षयकुमार जैन (भाषण करते हुए), श्री प्राणेश, बा. वृन्दावनदास डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री. के. एस गर्ग, श्रीबालकृष्ण गुप्त (स्वागताध्यक्ष)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

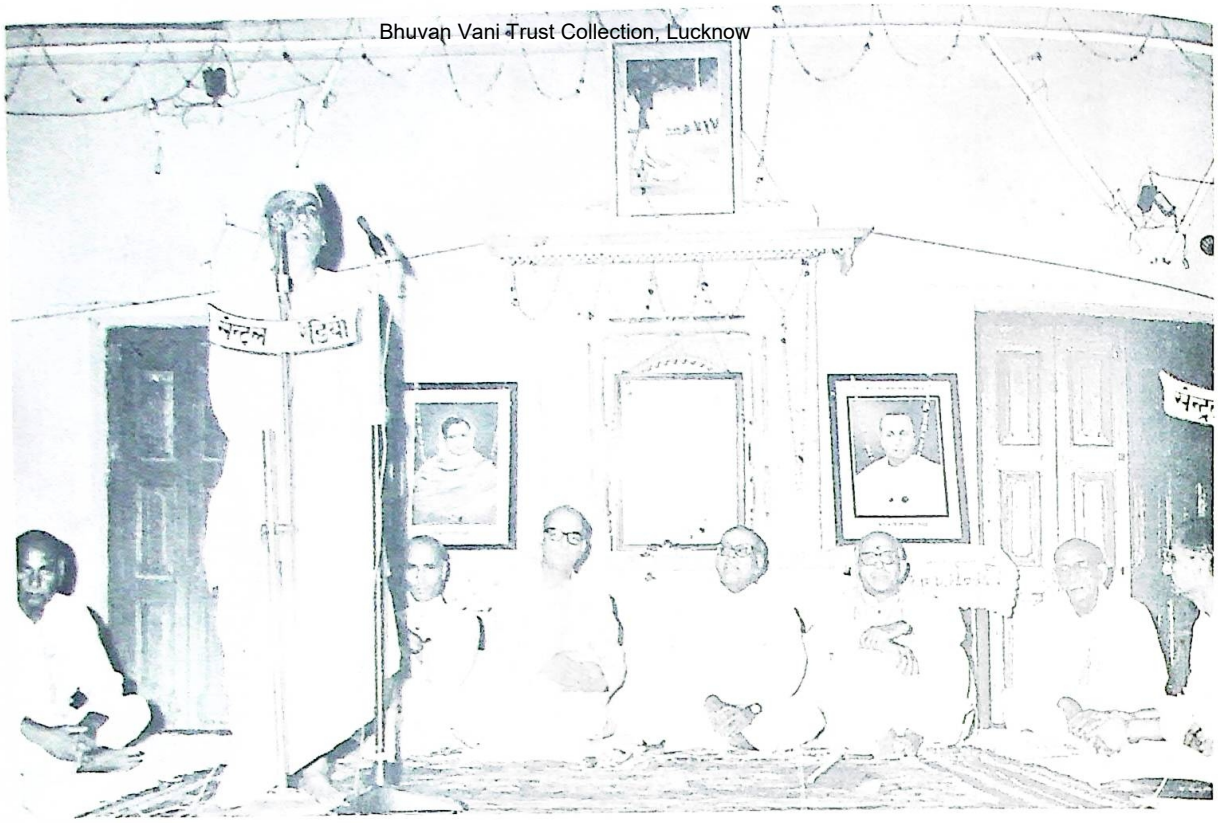

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंचपर, (बोलते हुए) श्री जगन्नाथ लहरी-एम. एल. ए., बैठे हुए सर्व श्री प्राणेश डा० हरवंश लाल शर्मा, श्री अक्षय कुमार जैन, बा. वृन्दावन दास (अध्यक्ष), श्री यशपाल जैन, श्री अमृत लाल चतुर्वेदी

फीरोजाबाद अधिवेशन का एक चित्र जिसमें मंच पर आसीन अध्यक्ष बा. वृन्दावनदास सहित सभी बन्धु प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहे हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कराना भी हमेशा जारी रखते हैं। ४ अक्टूबर १९७१ के अपने पत्र में पं० मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही', सम्पादक 'वीणा' इन्दौर ने मुझे लिखा कि 'ब्रजभारती' के सम्पादक बाबू वृन्दावनदास ने उन्हें मेरा परिचय 'उद्भट विद्वान' कह कर दिया। मैंने 'निर्मोही' जी को लिखा कि यह तो बाबू जी की ही महिमा है जो उन्होंने इस प्रकार मेरा परिचय दिया। मैं तो साहित्य का केवल एक विनम्र सेवक हूँ। विद्वत्ता का गर्व मैं नहीं कर सकता। बाबू जी की स्नेहशीलता और उदारता का यह एक निदर्शन मात्र है। तुलसीदास ने कहा है कि संसार में ऐसे पुरुष ही बहुत हैं जो अपनी बड़ाई की बाढ़ से फूलते हैं। ऐसे समुद्र-सदृश लोग कम हैं जो चन्द्रमा को पूर्ण हुआ देख कर उमगने लगें—

जग नर बहु सर सरि सम भाई।
जे निज बाढ़ बढ़हिं जलु पाई॥
सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई।
देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई॥

दूसरों की बड़ाई में सुख पाने वाले बाबू जी, तुलसीदास के शब्दों में संसार के अपवाद स्वरूप 'सज्जन' व्यक्ति हैं। तुलसीदास के ही शब्दों को दुहराते हुए मैं बाबू जी के सहज-प्रीति के गुण का आख्यान भी करना चाहूँगा—

सम शीतल नहीं त्यागहिं नीती।
सरल सुभाव सबहि सन प्रीती॥

बहुतों के आक्रोश-भागी राजेश दीक्षित पर भी बाबू जी का वैसा ही स्नेह है जैसा साहित्यिक-हास के रसगुल्ले खाने वाले डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी से। उनके इस सहज-स्नेह का सुख बहुतों को मिला है, और वे सब भी बाबू जी के स्नेही हैं। उनकी सूची बहुत लम्बी है। इस लेख में उसे देने से, यह पूरी पुस्तक के आकार का हो जावेगा। इस व्यापक मित्र-मण्डली के स्नेह-सागर को अभिव्यक्ति देने के किसी स्वाभाविक माध्यम की अनिवार्यता ने ही, प्रस्तुत अभिनन्दन-ग्रंथ को जन्म दिया है। बाबू जी न तो शासन-के मंत्री हैं, न गवर्नर, न राजनेता और न ही किसी सत्ता-सम्पन्न संस्थान के मठाधीश। फिर भी उनके अभिनन्दन में एक बृहद् ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना आग्रह के साथ स्वतः सम्पन्न हो रही है, यह बाबू जी के विशाल व्यक्तित्व की सहज आकर्षण-शीलता का ही परिणाम है। इसमें न चाटुकारी है, न झूठी प्रशंसा है। केवल हृदय की भावनाओं का स्नेह-पूर्ण निवेदन भरा है, क्योंकि बाबू जी केवल साहित्य के ही वारिधि नहीं, स्नेह के भी वारिधि हैं, जहाँ अनेकों के स्नेह की सरिताएँ अपना विश्राम पाती हैं।

बाबू जी की स्नेहाभिव्यक्ति का प्रसाद बहुतों को मिलता रहता है। मैं भी उन भाग्यशाली व्यक्तियों में से एक हूँ जिन पर बाबू जी का अतुल स्नेह है। मैंने एक कविता में लिखा था 'वह रूपशिखा थी नहीं हृदय था, गीतों में खिल उठा कि जो' वैसे ही यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि यह मेरी कोई अपनी विशेषता नहीं हैं, जो बाबू जी के शब्दों में अभिव्यक्त हुई है। यह केवल बाबू जी की स्नेहपूर्ण विशाल दृष्टि का फल ही है, जिस पर उनके स्नेह के आलोक से, नगण्य सी बातें भी विशालता का जामा पहिन कर उभर आई हैं। बाबू जी ने अपने ६-८-७१ के पत्र में मुझे लिखा—

"आत्मीयता और प्रचुर स्नेह के शुभ्र भावों से आपूरित आपके पत्र को पढ़ कर मैं रस-तृप्त और आत्म-विभोर हो गया। आपके निश्छल, मधुर भावों की सहज अभिव्यक्ति पाण्डित्य-सुलभ शब्दावली पाकर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक ऐसी पवित्र मन्दाकिनी बन जाती है, जिसमें अवगाहन से हृदय को अपूर्व आह्लाद का अनुभव होता है। कुछ दिन कोई पत्र न लिख पाए तो क्या हुआ, जब लिखने बैठे तो ऐसा हृदय-स्पर्शी लिख दिया कि सौ बार पढ़ो तो भी तबियत न भरे।"

बाबू जी का उपरोक्त कथन क्या उन्हीं के पत्र पर शतशः लागू नहीं होता। विज्ञ पाठक इस दृष्टि से उपरोक्त उद्धरण को पढ़ने पर बाबू जी के हृदय की अतुल गहराइयों में अवश्य पैठ सकेंगे। जिस पत्र के उत्तर में अपना ऊपर संकेतित पत्र उन्होंने लिखा था उसकी 'साहित्यिक यादों' की 'नास्टैलजिया' का रसास्वाद भी पाठकों को करा देने का मन कर रहा है। अपने २६-७-७१ के पत्र में बाबू जी ने लिखा था—

"यह तो मैं जानता हूँ कि पत्र तो आपकी ओर से पहले भी कम आते थे परन्तु उसकी कसर आपसी भेंटों में निकल जाती थी। कभी आप पधारते और कभी हम ही आगरा पहुँच जाते, अतः पत्राचार अधिक आवश्यक भी नहीं था। परन्तु अब तो यह शून्यता बहुत खलने लगी है। महीनों हो जाते हैं कोई समाचार नहीं। साहित्यिक यादें भी बड़ी आती हैं।"

अन्य समसामयिक साहित्यकारों के प्रति अपनी श्रद्धा भावना बाबू जी निस्संकोच प्रगट किया करते हैं। वह आरोपित नहीं होती। बहुत सहज होती है। उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का विवरण देते हुए उन्होंने सभी उल्लिखित साहित्यकारों को 'श्रद्धेय' कह कर अभिहित किया है। पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के प्रति तो बाबू जी की अनन्य श्रद्धा भावना है। उनकी उदारता और विनम्रता के वे कायल हैं। अपने १२-६-७१ के पत्र में बाबू जी लिखते हैं—

"श्रद्धेय अमृतलाल चतुर्वेदी, रामचरण हयारण मित्र, यशपाल जैन, अक्षय कुमार जैन आदि को 'साहित्य-वारिधि' की उपाधि-प्रदान की गई। श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी का सान्निध्य सदैव प्रेरणा-दायक सिद्ध हुआ। स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति में भी उन्होंने अधिवेशन में अपना बहुत समय दिया। वे हर पत्र में आपको प्रणाम लिखा करते हैं।"

धन्य हैं ये प्रणम्य गुरुजन जो दूसरों के प्रति श्रद्धा बिखेरने में ही सुख पाते हैं। आज के श्रद्धा-विहीन समाज में ऐसे महामना व्यक्तियों को आदर दे कर, हम अपनी वर्तमान पीढ़ी का सही दिशा-निर्देशन ही कर रहे हैं। यह इस समय की अनिवार्य आवश्यकता भी है। बाबू जी का अभिनन्दन, इसी उन्मूल श्रद्धा के दृढ़ आरोपण का एक सुसंकल्पित प्रयास है।

आगरे में हुए बाबू जी के अभिनन्दन के अवसर पर मैंने एक कविता लिख भेजी थी जिसे पं० अमृतलाल चतुर्वेदी ने अपने सुमधुर कंठ से वहाँ पढ़ा था। बाबू जी ने बाद में बड़े विनम्र शब्दों में एक पत्र लिखा था—

"साँचो सो लिखहार कहावै" शीर्षक से मेरा एक लेख 'सैनिक' में बाबू जी के विषय में छपा था, जिसमें मैंने यह लिखा था कि बाबू जी के प्रश्रय में बहुतों को साहित्य-साधना का प्रोत्साहन मिल रहा है और 'ब्रज-भारती' के तो डाक के पते लिखने से ले कर प्रूफ पढ़ने व संपादन करने के सारे काम बाबू जी अकेले ही सपरिश्रम निभा रहे हैं। इस लेख को पढ़ कर बाबू जी ने अपने १०-११-७० के पत्र में लिखा—

"आपने आत्मीयता और स्नेह से अभिभूत हो कर मेरे नगण्य काम को भी महत्व देकर उसे आलोकित कर दिया है। जिन बातों की ओर आपकी पैनी दृष्टि गई है, उस ओर तो किसी का ध्यान भी नहीं जा सकता था। साहित्यकार के संस्पर्श से माटी भी स्वर्ण हो जाती है।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वास्तव में बाबू जी ने ही अपने साहित्यिक संस्पर्श से अनेक साहित्य-प्रेमियों को निरन्तर प्रोत्साहित कर माटी से स्वर्ण बनाने का कार्य सहज स्वाभाविक रूप से सिद्ध किया है।

किसी की विद्वत्ता को अहंकार का घुन लग जाता है और ज्ञान के बीज को भीतर ही भीतर निस्सार कर देता है। किसी की उच्चकोटि की साहित्यिक सेवा को लोकमान्यता का कीट अहर्निश खाता रहता है और उसे निष्प्राण बना देता है। कुछेक की सदाशयता को 'गृह कारज नाना जंजाला' का मायाजाल उभरने ही नहीं देता और कुछेक की बुद्धि की कुशाग्रता को, उनका स्वार्थ, आत्म-केंद्रित बना कर, व्यक्तित्व के आकर्षण से विहीन कर देता है। पर बाबू जी हैं कि जहाँ स्नेह का नित नवीन आकर्षण है; सदाशयता का अपरिमित भण्डार है; साहित्यिक सेवा का निरन्तर मीठा चाव है; विद्वत्ता और ज्ञान के बीज को निरन्तर पल्लवित करती हुई सुदृढ़ लेखनी का अनथक सफल प्रयास है, जो अतीत की ऊँचाइयों को छू कर अपने वर्तमान को उनकी ऐश्वर्य-प्रभा से सतत आलोकित कर रहा है। 'भारतीय' संस्कृति के विविध परिदृश्य' के निबन्ध इसका प्रमाण हैं।

'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' और 'ब्रजभारती' में प्रकाशित बीसियों लेख और स्वयं 'ब्रज भारती' के उनके द्वारा सम्पादित अंक, उनके विचार-फलक की विशालता और अध्ययन-क्षेत्र की दीर्घता और सुविशालता को स्पष्ट कर देते हैं। अतीत के इतिहास को अपनी महनीय संस्कृति के गौरव के अनुरूप सम्यक् दृष्टि से पुनः आलिखित करने का बुद्धियुक्त प्रयास, बाबू जी के प्रागैतिहासिक लेखों की विशेषता हैं। इनमें हमारे साहित्य को गरिमा और इतिहास को गौरव प्राप्त होता है। साथ ही विगत ऊँचाइयों के छोरों को पुनः छू लेने की प्रेरणा भी, नई पीढ़ी को देने में ये समर्थ हैं। डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र और प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य दोनों ही ग्रन्थ बाबू जी की भारतीय संस्कृति के चिरन्तन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने के साहित्यिक प्रेरणा के सुमधुर फल हैं। उनके पीछे छिपा उनका उदार आर्य-संस्कृति-मूलक दृष्टिकोण, भारतीय पुनर्जागरण का अनोखा प्रदीप है। उनकी ये रचनाएं हिन्दी की स्थायी निधि हैं।

हिन्दी की इस निधि को अपनी निस्स्वार्थ सेवा से और अधिक आपूर्ण करने के लिए, ब्रजपति उन्हें, सम्पूर्ण इन्द्रियों को सम्यक् रूपेण क्रियाशील रखते हुए, शतायु जीवन दें, यही प्रभु से हमारी प्रार्थना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सम्पादकीय टिप्पणियों के वातायन से

डा० रामस्वरूप आर्य
एम० ए०, पी-एच० डी०

बाबू वृन्दावनदास जी एक प्रकार से ब्रज-साहित्य-मंडल के पुनरुद्धारकर्त्ता हैं। दीर्घकाल तक मंडल में गतिरोध उपस्थित रहा है। बाबू जी ने अपने सत्प्रयासों से उसे पुनः गति प्रदान की (द्रष्टव्य, सम्पादकीय ब्र० भा० वर्ष १९ अंक १)। मंडल का कार्य हाथ में लेते ही उन्होंने उसकी मुखपत्रिका 'ब्रज-भारती' का प्रकाशन पुनः आरंभ किया तथा वर्ष १९ अंक १ से आज तक, जब कि उसका वर्ष २७ अंक २ प्रकाशित हो चुका है, वे उसका सफलतापूर्वक सम्पादन कर रहे हैं। आरंभ से अब तक के सभी अंकों में उन्होंने सम्पादकीय टिप्पणियों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किए हैं। इन्हीं के आधार पर उनके व्यक्तित्व एवं विचारधारा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

बाबू वृन्दावनदास जी के हृदय में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति पूर्ण निष्ठा है। वे उसकी प्रगति एवं विकास के प्रति पूर्ण आस्था रखते हैं। उनका विश्वास है कि हिन्दी के प्रति क्षणिक विरोध धीरे-धीरे शांत हो जाएँगे और एक दिन वह देश की सर्वमान्य राष्ट्रभाषा होगी। इससे बढ़ कर वे उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखना चाहते हैं। उन्हीं के शब्दों में—

"हिन्दी देश की एकमात्र सम्पर्क भाषा है। उसे ८० प्रतिशत से अधिक देशवासी भली भाँति समझ लेते हैं। उसकी प्रगति का रथ अप्रतिहत रूप से आगे बढ़ेगा। उसकी गति को कोई शक्ति रोक नहीं सकती। (ब्र० भा० २१.३)। वह दिन दूर नहीं है जबकि इसके प्रति उत्पन्न समस्त दुर्भावनाएँ विगत काल की वस्तु हो कर रह जायँगी और यह सर्वसम्मत रूप से देश की एकमात्र राष्ट्रभाषा के रूप में अभिषिक्त होगी (ब्र० भा० २२.१)। अपने अमोघ गुणों के कारण हिन्दी भारतवर्ष की सार्वभौम भाषा तो है ही वह दिन दूर नहीं जब उसका प्रचलन अन्तर्राष्ट्रीय होगा (ब्र० भा० २३.२)।"

बाबू जी राष्ट्रभाषा की सेवा को सब से बड़ा पुण्य का कार्य स्वीकार करते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि इस समय मठ-मन्दिरों के निर्माण की अपेक्षा राष्ट्रभाषा की सेवा में हमें अधिक तत्पर रहना चाहिए—"राष्ट्रभाषा की सेवा एक अक्षय पुण्य है। संसार में जितने कृत्य और अनुष्ठान पुण्य की परिभाषा में आते हैं, राष्ट्रभाषा की सेवा को हम उन सबमें सर्वोच्च स्थान देने में तनिक भी संकोच नहीं करते (ब्र० भा० २२.४)"

बाबू वृन्दावनदास जी अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य मंडल के अध्यक्ष हैं। अतः ब्रजभाषा के प्रचार-प्रसार को वे अपना पावन कर्त्तव्य मानते हैं। कुछ महानुभावों को भ्रांति होती है कि इस प्रकार के क्रिया कलाप राष्ट्रभाषा हिन्दी के मार्ग में बाधा उपस्थित करेंगे। किन्तु बाबू जी का दृष्टिकोण व्यापक है। वे खड़ी बोली को ब्रजभाषा की दुहिता के रूप में मानते हैं। भला माता अपनी पुत्री का अहित चाहेगी! अतः ब्रजभाषा के विकास के साथ साथ वे हिन्दी की उन्नति के लिए भी पूर्ण प्रयत्नशील हैं। वे ब्रज-साहित्य को भारतीय साहित्य, दर्शन, अध्ययन और चिन्तन का ही अभिन्न अंग स्वीकार करते हैं और इसी में उन्हें ब्रजभाषा का भी हित दृष्टिगोचर होता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्राचीन और अर्वाचीन का संगम

डा० लक्ष्मीशंकर मिश्र निशंक

एम० ए०, पी-एच० डी०

अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए विशुद्ध साहित्यिक वातावरण बनाने के लिए भारतेन्दु की भांति शासन तंत्र से अप्रभावित रह कर तन मन धन से साहित्य सेवा के व्रत का सफलतापूर्वक निर्वाह करने वाले आज कठिनाई से मिलेंगे। नये युग का शंखनाद करने वाला कवि भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाता है और हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए छटपटाता है; किन्तु जब वह अपने जीवन के रस में डूबता है तो अनायास ही गुनगुनाने लगता है—

"पियप्यारे तिहारेनिहारे बिना।
दुखियाँ अँखियाँ नहिं मानतीं हैं।।"

बीसवीं शताब्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबंधु, पं० रूपनारायण पाण्डेय, आचार्य सनेही, डॉ० श्यामसुंदरदास, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, तथा पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि अनेक साहित्यकारों एवं साहित्य प्रेमियों ने हिन्दी की जो उल्लेखनीय सेवा की उसी के फलस्वरूप आज उसे राष्ट्रभाषा-पद की गरिमा प्राप्त हुई है। उक्त विद्वान न केवल साहित्य रचना में प्रवृत्त रहे वरन् उन्होंने तन-मन-धन से साहित्यकारों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान कर उनका मार्ग-निर्देशन भी किया। नई प्रतिभाओं और प्रवृत्तियों के संरक्षण एवं दिशा-दर्शन से ही साहित्य प्रगति पथ पर अग्रसर होता है तथा उसमें नया जीवन और नया जोश संचरित होता है।

बाबू वृन्दावनदास ऐसे ही महानुभाओं में हैं जो हिन्दी-सेवा के लिए सतत प्रयत्नशील रहे हैं। उनका जीवनकर्म और साधना का ज्वलंत उदाहरण है। 'ब्रज-साहित्य-मंडल' के तो वे प्राण-स्वरूप हैं। उन्हीं के सहयोग का संबल प्राप्त कर मंडल उत्तरोत्तर ब्रजभाषा और उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार में अग्रसर हुआ है। उन्होंने 'ब्रज-भारती' पत्रिका का संपादन कर के ब्रजभाषा साहित्य की परम्परा को नया जीवन प्रदान किया है। सामग्री-संकलन और सम्पादन से लेकर उसके प्रकाशन और वितरण तक का सारा कार्य वही करते हैं। अयोध्या में उन्होंने एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की है। यह उनके उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। ब्रज प्रान्त में रह कर साकेत की समृद्धि का ध्यान रखना उन जैसे हिन्दी प्रेमियों की बहुत बड़ी विशेषता है। इसके लिए वे प्रचुर धनराशि भी प्रदान कर चुके हैं। लखनऊ में भी 'ब्रज-साहित्य-मण्डल' की एक शाखा स्थापित करने का उनका विचार है, जिसे वे शीघ्र ही कार्यान्वित करने जा रहे हैं। इसी प्रकार अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार की दृष्टि से उन्होंने अनेक पुरस्कार प्रदान करने की भी योजना बनाई है। इससे हिन्दी प्रचार को प्रोत्साहन मिलेगा। ब्रजभाषा के अनेक अप्रकाशित एवं उपयोगी ग्रंथों को प्रकाशित करने के लिए भी उनकी एक योजना विचाराधीन है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी के विकास और प्रचार में योगदान के साथ-साथ वे एक लेखक एवं सम्पादक के रूप में सदैव साधनालीन रहे हैं। 'सुधा' और 'माधुरी'जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं के लेखक के रूप में वे हिन्दी पाठकों को बहुत पहले ही अपना परिचय दे चुके हैं। "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" नामक निबंध-संग्रह में वे एक चिन्तनशील, जागरूक साहित्य स्रष्टा के रूप में प्रकट हुए हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने इस निबंध-संग्रह की भूमिका में इसे स्वीकार करते हुए लिखा है—

"इन निबंधों से स्पष्ट विदित होता है कि बाबू जी धर्म, संस्कृति और साहित्य सभी के समान रूप से अनुसंधाता और जागरूक व्याख्याकार हैं।"

"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" का संपादन करके उन्होंने एक महान साहित्य-साधक के व्यक्तित्व और उससे संबंधित जीवन के अनेक पक्षों का पाठकों के सम्मुख उद्‌घाटन किया है।

उनके निबंधों की भाषा संस्कृत-निष्ठ, प्रवाहपूर्ण एवं विचारोत्तेजक है। वह विषय वस्तु के सर्वथा अनुकूल है। उनके निबंधों को पढ़ने से लगता है जैसे कोई कसक उनके मन में है जिसे वे धीरे से जन-जन तक पहुँचा देना चाहते हैं। यह कसक ही उन्हें हिन्दी-सेवा की ओर प्रवृत्त करती है, यही उन्हें आत्म-विस्तार की प्रेरणा भी प्रदान करती है। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 'काव्य-नवनीत' का संपादन और प्रकाशन कर के व्रजभाषा के समर्थ कवि 'नवनीत' जी की कविताओं को हिन्दी प्रेमियों के लिए सुलभ बनाया।

बाबू वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व उनके कृतित्व से भी अधिक सौम्य, आकर्षक एवं प्रभावशाली है। एक बार परिचय हो जाने के बाद उन्हें कोई भूल नहीं सकता; यदि भूलेगा तो वे स्वयं उसे याद दिला देंगे। उनसे मेरा परिचय भी उनके शील-सौजन्य की कहानी है। भाई रमेशचन्द्र दुबे की प्रेरणा से मैंने अपना 'जय भरत' खण्डकाव्य बाबू जी के पास भेज दिया। एक पत्र भी लिख दिया। उनका तुरन्त उत्तर आया कि पुस्तक नहीं मिली है। मैंने उसे पुनः बुकपोस्ट द्वारा भेज दिया। उसी के कुछ दिनों बाद जब मैं कालेज में था तो मुझे सूचना मिली कि मेरे घर पर मथुरा के एक सज्जन मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मथुरा में मेरे कई परिचित व्यक्ति हैं। उन्हीं की ओर मेरा ध्यान गया। घर पहुँच कर देखा तो एक वयोवृद्ध सज्जन मुझसे मिलने के लिए बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने अपना परिचय दिया तो मैं आश्चर्य और प्रसन्नता से विभोर हो उठा। दुबे जी द्वारा प्रस्तुत उनके व्यक्तित्व का सहज स्नेह-सौजन्य मुझे प्रत्यक्ष साकार रूप हमें दिखाई पड़ा। इस अप्रत्याशित भेंट से मैं उनसे बड़ा प्रभावित हुआ। तब से वे जब कभी लखनऊ आते हैं तो बिना सूचना दिए मेरे निवास स्थान पर यथावत् पधारने की कृपा करते हैं।

उनका ऐसा व्यक्तित्व है जिसमें अहं का नाम नहीं, जिस पर बड़ेपन की कोई छाप नहीं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सेवा परायण महामानव

⊙

ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी

सन् २३ की वात है। आगरा कालेज में इंटरमीडिएट कक्षा में मैं विद्यार्थी था। अंग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, इतिहास और तर्क शास्त्र मेरे विषय थे। अंग्रेजी , इतिहास और तर्कशास्त्र में तो कक्षा में अनेक सहपाठी थे परन्तु संस्कृत कक्षा में ६-७ विद्यार्थी ही थे। उन्हीं में एक मथुरा निवासी चश्माधारी ठिगने कद के सहपाठी मित्र वृन्दावनदास जी थे। मथुरा निवासी होने की वात-जान कर उनका विशेष परिचय पूछा तो मैं आश्चर्य चकित रह गया क्योंकि मेरे घर के अत्यन्त समीप रहते हुए भी वृन्दावनदास जी से मेरी पहले कभी भेंट नहीं हुई थी। इनके श्याम काशी प्रेस का नाम तो मैंने सुना था क्योंकि मेरे मकान के सामने चूड़ी वाले सेठों की गली में यह प्रेस था। वृन्दावनदास जी श्याम काशी प्रेस के मालिक लाला हीरालाल जी के ही पुत्र हैं। फिर क्या था मथुरा का एक पड़ौसी ही सहपाठी मित्र मिल जाने ये इससे अधिक सहपाठी को आनन्द नहीं मिलता ? तभी से उनसे मित्रता हुई केवल मित्रता ही नहीं हुई वे मेरे अभिन्न मित्र वन गए। अव तो हम लोग सभी विषयों की कक्षा में पास-पास बैठते थे। वृदावनदास जी प्रारम्भ से ही प्रतिभाशाली थे और सभी विषयों में ये अच्छे विद्यार्थी थे। मैं अंग्रेजी में कुछ कमजोर था परंतु ये अंग्रेजी में तेज थे अतएव मुझे इनसे बड़ी सहायता मिलती थी। इस प्रकार हमारी उत्तरोत्तर मित्रता बढ़ती गयी और यहाँ तक कि मैं इनके परिवार का ही एक अंग वन गया। लाला हीरालाल जी को मैं भी उनके अन्य पुत्र-पुत्रियों की तरह लालाजी ही कहता था। वृन्दावनदास जी का अभिन्न मित्र मात्र समझ कर ही नहीं वल्कि मथुरा के एक प्रतिष्ठित घराने का व्यक्ति समझ कर वे बड़ा आदर करते थे और साथ ही वृन्दावनदास जी के मित्र होने के नाते आत्मीय भाव रखते थे। वृन्दावनदास जी के पिता ही नहीं उनके सभी भाई और बहिनें ऐसा ही घर का-सा आत्मीय भाव रखते थे।

विद्या अध्ययन के पश्चात् मथुरा आ जाने पर वृन्दावनदास जी में समाज सेवा की ओर रुचि और प्रवृत्ति बढ़ी और हम दोनों ने अनेक संस्थाओं में कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य किया। सब से पहले हम दोनों ही ने मिल कर मथुरा में उत्तर प्रदेशीय गौ शाला सम्मेलन का अधिवेशन किया उसके बाद अखिल भारतीय गौरक्षा सम्मेलन में भी दोनों ने ही अग्र भाग लिया। यह कहना अनुचित न होगा कि हम ने ही यह सम्मेलन कराया। मथुरा वृदावन हासानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट की प्रबन्ध समिति में वर्षों तक हम दोनों ने साथ-साथ कार्य किया। इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य-परिषद्, व्रज-साहित्य-मण्डल तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं में भी हम दोनों अभिन्न रूप से सक्रिय साथी रहे। वर्षों साथ-साथ प्रातः भ्रमण करने जाते, डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल के यहाँ बैठ कर उनसे ज्ञान चर्चा करते थे। वृन्दावनदास जी केवल मेरे राजनीतिक क्षेत्र में साथी नहीं रहे। इन्होंने जिस क्षेत्र में भी कार्य किया सफलतापूर्वक स्वाभिमान-पूर्वक काम किया। यद्यपि वृन्दावनदास जी बी० ए०, एल एल० बी० हुए परन्तु उन्होंने वकालत की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जगह समाजसेवा की ओर ही अपनी अभिरुचि रखी। सन् १९३५ में वे अवैतनिक मजिस्ट्रेट बनाए गए। १८ वर्ष नगर पालिका, मथुरा के सदस्य रहे, उसके कई वर्ष वरिष्ठउपाध्यक्ष रहे और सन् १९५७ में नगर पालिका के अध्यक्ष चुने गए। यह उनकी लोक प्रियता या जन प्रियता का ही प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। नगर पालिका के सदस्य, उपाध्यक्ष और अध्यक्ष होने के नाते उन्होंने नगर की समस्याओं को स्पष्ट रूप से रखा और उनका समाधान किया। इसी प्रकार शिक्षा, सहकारिता और उद्योग व्यापार क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी सेवायें समर्पित कर पूर्ण योगदान दिया। चम्पा अग्रवाल इंटर कालेज, अग्रवाल कन्या महाविद्यालय, बी० एस० ए० कालेज की कार्यकारिणी के सदस्य ही नहीं इनके अध्यक्ष रह कर इनकी सर्वांगीण उन्नति में अपना पूर्ण योगदान दिया है। ये अध्यापक न होते हुए भी एक सच्चे शिक्षा शास्त्री हैं। शिक्षा की समस्याओं के पूर्ण ज्ञाता हैं। जब स्टूडेन्टस् फैडरेशन का अधिवेशन आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में मथुरा में हुआ था तब उसके स्वागताध्यक्ष श्री वृन्दावनदास जी थे। उनकी बहुमुखी साहित्य सेवायें हैं। वे अच्छे लेखक और वक्ता हैं। अनेक वर्षों से ब्रज साहित्य मंडल के रथ के आप सारथी रहे हैं। उसकी मुख पत्रिका 'ब्रज भारती' का अनेक वर्षों से सम्पादन कर रहे हैं। उन्होंने ब्रज साहित्य मंडल की डगमगाती नैय्या को अपना पूरा समय लगा कर चलाया है। इसी प्रकार आपकी साहित्य सेवा की योग्यता पर उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंद्रहवें फिरोजाबाद अधिवेशन में आपको उसका अध्यक्ष बनाया गया और "साहित्य वारिधि" की उपाधि से सम्मानित किया गया है। उन्होंने जीवन भर मथुरा नगर और देश की समस्याओं पर अंग्रेजी के "लीडर", "हिन्दुस्तान टाइम्स", अमर उजाला, सैनिक आदि में सामयिक सैकड़ों लेख लिखे हैं। चाँद, माधुरी, सरस्वती, सुधा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, विशाल भारत, कल्याण, अग्रवाल हितैषी, ज्ञानदा आदि साहित्यिक सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में तथा विशेषांकों में आपके लेख निकले हैं। इस प्रकार साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सहकारिता के क्षेत्रों में आपकी बहुविध सेवायें हैं जो सब यहाँ लिखा जाना सम्भव नहीं हैं। निश्चय ही वृन्दावनदास जी का जीवन साहित्य समाज और सहकारिता के क्षेत्रों में समर्पित रहा है। भगवान ऐसे सेवा परायण, उदार व्यक्ति को दीर्घायु प्रदान करें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

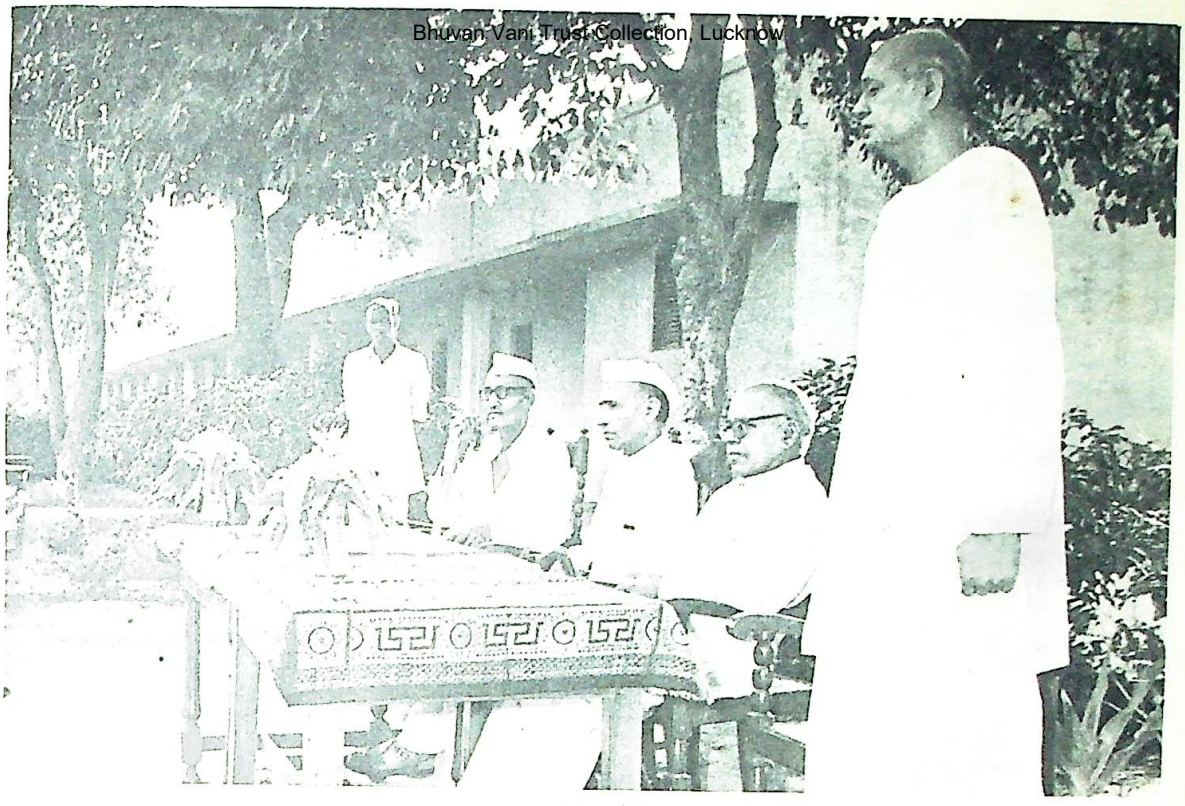

बा. वृन्दावन दास द्वारा पद्म श्री हरिशंकर शर्मा के चित्र अनावरण के अवसर पर डा० हरवंश लाल शर्मा श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री शिवदत्त चतुर्वेदी (भाषण करते हुए)।

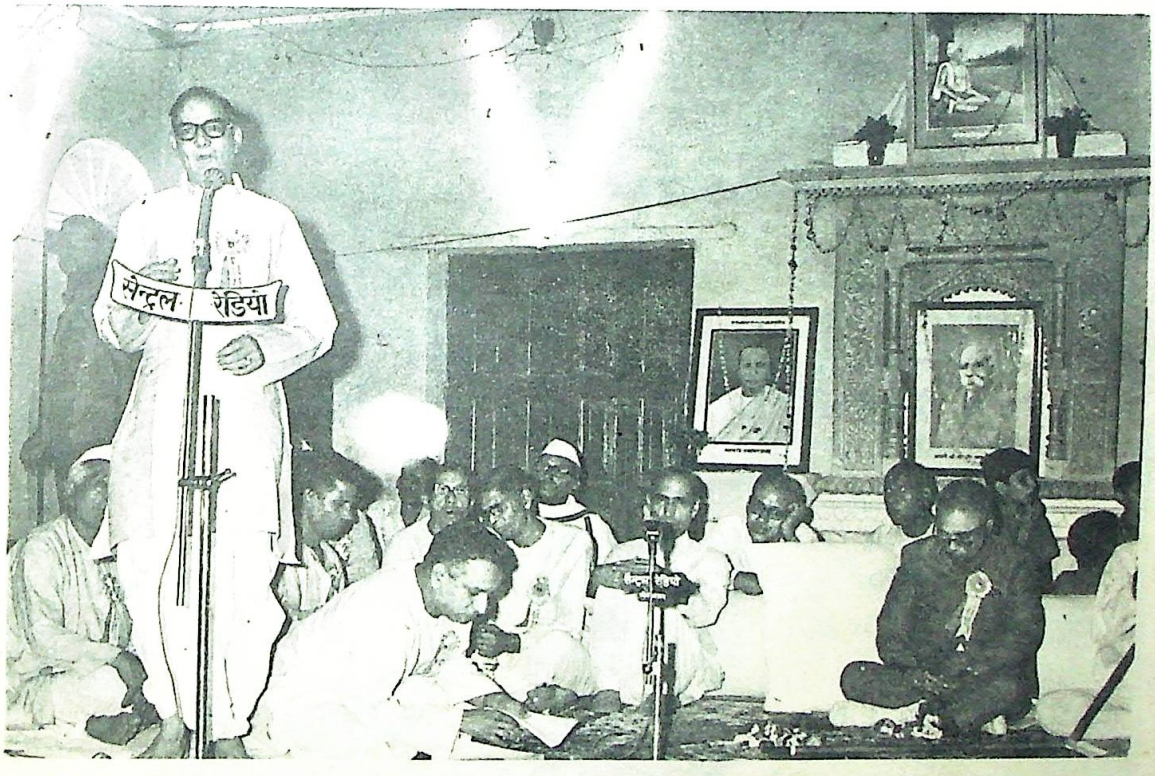

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फीरोजाबाद अधिवेशन के अध्यक्ष पद पर आसीन बा. वृन्दावन दास, भाषण करते हुए श्री अक्षय कुमार जैन श्री प्रभात शास्त्री, डा० विजयपाल सिंह श्रीधर शास्त्री, डा० हरवंश लाल शर्मा, श्री जयकुमार मुद्गल, श्री प्राणेश, बा. वृन्दावनदास जी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लोक भाषा के जरिए हिन्दी की क्या सेवा हो सकती है इस संबंध में वृन्दावनदास जी का कहना है—"लोक भाषाएँ हिन्दी की आधार शिलाएं हैं। लोक भाषाओं के भण्डार से हमें हिन्दी के साहित्य को समृद्ध करना है, उसकी शब्दावली को सामर्थ्य प्रदान करना है। अनेक शब्द लोक भाषाओं की परिधि में वर्तमान हैं जिनके पर्याय हिन्दी में हैं ही नहीं। इन शब्दों को हमें हिन्दी में भरना है जिससे हिन्दी की अभिव्यंजना शक्ति बढ़े, उनकी अभिव्यक्ति सामर्थ्यवान बन सके। हमें तो लोक भाषाओं के शब्दों को ही नहीं भावों, मुहावरों, पहेलियों, गीतों, गाथाओं और कथाओं से राष्ट्रभाषा के भंडार की श्रीवृद्धि करनी है।"

इस तरह अपने कथनानुसार आप अपनी राष्ट्रभाषा और लोक भाषा की सेवा अनवरत रूप से कर रहे हैं। आप एक प्रकाश स्तंभ हैं जिनके जरिए हम अनवरत आलोकित हो रहे हैं। आपकी साहित्य सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। सचमुच आप साहित्य संत हैं। हमारी कामना है तथा ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारे साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी चिरायु हों।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सौजन्यशील-आदर्शवादी

⊙

पं० उमाशंकर दीक्षित

हृदय की आर्द्रता और जीवन की तपस्या का समाहार ही आदर्श व्यक्तित्व है। आदरणीय बाबू जी के व्यक्तित्व में त्याग और मनस्विता, औदार्य और सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता और सैद्धान्तिक दृढ़ता जहाँ एकाकार हो गए हैं वहाँ उनका प्रेम, अपरिग्रही स्वभाव और सौजन्यता का मणि कांचन संयोग है।

मैं श्रद्धेय बाबू जी से जब भी मिला; उनकी प्रखर प्रतिभा और पीयूषवर्षी व्यक्तित्व से अभिभूत हुआ। उनकी त्याग-भावना, उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता, परोपकारिता तथा उनके श्रेष्ठ आदर्शों में मुझे लोकोत्तर जीवन की गरिमा के दर्शन हुये। एक महान साहित्यकार, निःस्वार्थ समाज सेवी, सच्चे राष्ट्रप्रेमी और हिन्दुत्व के गौरव से अभिभूत बाबू जी की जितनी प्रशंसा की जाए, कम ही होगी।

उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का विकास और विद्वत्ता उनकी रचनाओं तथा उनके द्वारा सम्पादित "ब्रजभारती" में देखी जा सकती है जो उनकी बहुज्ञता के साथ उनकी गम्भीर अध्ययनशीलता का भी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने जो यशस्वी स्थान प्राप्त किया है, वह उनकी सतत् साधना एवं कर्मनिष्ठा का सुन्दर फल है।

प्रायः यह देखा जाता है कि लक्ष्मी और सरस्वती का परस्पर मेल नहीं होता परन्तु बाबू वृन्दावनदास जी के जीवन में यह नियम एक अपवाद सिद्ध हुआ है। आप मथुरा के प्रसिद्ध धनी-मानी परिवार के व्यक्ति होते हुए भी सरस्वती के अनन्य उपासक के रूप में ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। आपकी सौजन्यशीलता एवं गुणग्राहकता का ही यह सुन्दर परिणाम है कि आप सरस्वती और लक्ष्मी दोनों के समान रूप से कृपापात्र हैं।

सचमुच बाबू जी ब्रज साहित्य मण्डल और ब्रज संस्कृति के इने-गिने ज्योतिःस्तम्भों में से एक हैं। वे स्वस्थ राजनयिक भी हैं। भ्रष्ट पद लोलुपता उनमें छू तक भी नहीं गई है। मथुरा की नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में आपने जो जन सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। साहित्यिक क्षेत्र की अनेक संस्थाओं में उनका वरद हस्त रहा है और अब भी है। अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के तो वे प्राण ही हैं। उनके ही सद् प्रयासों से ब्रज साहित्य मण्डल को पुनः जीवन प्राप्त हुआ है। उनके सत् प्रयासों से मण्डल ने अनेक बार सुन्दर अधिवेशन और गोष्ठियों का गरिमामय आयोजन किया है। ब्रज साहित्य से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का प्रकाशन आपके काल में ही मण्डल द्वारा किया जा चुका है। आपकी अनेक रचनाओं का जितना गौरव है उतना ही आपके द्वारा सम्पादित श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी के पत्रों के संग्रह का है जो साहित्यकारों के लिए अमर धरोहर के रूप में वर्तमान है। मैं बाबू जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लोक-साहित्य के प्रेरणा स्रोत

⊙

तुलसी प्रसाद सहयोगी

यह कोई बीस वर्ष पहले की बात है। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री पंडित गोविन्दवल्लभ पंत ने 'हाथ करघा बोर्ड' में जब मुझे नामित किया तो लखनऊ सचिवालय में ब्रज के एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के दर्शन हुए, जिसके ओठों पर सदैव मंद-मंद मुस्कान थिरकती रहती थी। यही बाबू वृन्दावनदास थे। श्रद्धेय पंत जी ने उन्हें भी कई प्रादेशिक समितियों में सदस्य या निदेशक नामित किया था। फिर पता चला कि आप मथुरा में सहकारिता क्षेत्र के अग्रणी कार्यकर्त्ता हैं। साथ ही ऊँचे दर्जे के साहित्यकार भी। तभी से उनके प्रति मेरी श्रद्धा है। फिर तो लगातार गोष्ठियों और बोर्ड की बैठकों में उनसे मुलाकात होती रहती।

सहकारिता के क्षेत्र में अधिकांशतः वे लोग आते हैं जो निजी तौर पर अपना भविष्य सुधारना चाहते हैं। पर बाबू जी अपनी नहीं, दूसरों की चिन्ता के लिए इस क्षेत्र में आए। क्योंकि लक्ष्मी की उनके परिवार पर बड़ी कृपा रही है।

सहकारिता के साथ-साथ बाबू जी ने संस्कृति और साहित्य की बड़ी साधना की है। गहन अध्ययन और मनन के फलस्वरूप वे अपनी लेखनी को स्वभावतः रोक नहीं पाए हैं, चाहे आर्थिक घाटे सहते रहे हों।

वर्त्तमान में, मृतप्राय और राहु-केतुओं से ग्रसित ब्रज साहित्य मंडल को शीर्ष की साहित्यिक संस्था बनाने का श्रेय उन्हें है। वे इतने संकोची हैं कि इसका श्रेय भी स्वीकार करने को उद्यत नहीं। स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद, पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन और लोकनायक श्रीकृष्णदत्त पालीवाल मंडल को समृद्ध और प्राणवान देखना चाहते थे। १९५१ का हाथरस अधिवेशन इसका प्रमाण है। जनपदीय आंदोलन की विधिवत् रूपरेखा भी तभी बनी। बाबू जी ने इस आंदोलन को अब नई दिशा दी है। जहां तक मुझे मालूम है ठाकुर भगवान सिंह विमल और भाई कन्हैयालाल चंचरीक ने जब सन् १९४९ के आसपास ब्रज लोक साहित्य का संकलन कार्य प्रारंभ किया तो मेरी भी इस कार्य में थोड़ी बहुत रुचि थी। बाबू जी के नाम की चर्चा बराबर आती थी और ये दोनों युवा लोक-साहित्य के संग्राहक इस फिक्र में रहते थे कि बाबू वृन्दावनदास जी की ओर से टेप-रिकार्डर या प्रकाशन की कोई व्यवस्था हो जाय। मंडल की हालत भी अच्छी नहीं थी। इन्होंने साहित्य अकादमी और संगीत नाटक अकादमी के भी द्वार खटखटाये और कुछ शिरोमणि विद्वानों की अकृपा और आक्रोश के कारण वित्तीय मदद मिलते मिलते तो रह ही गई, एक बहुत बड़े लोक सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्य को धक्का भी लगा। इस से बड़ा जनपदीय आंदोलन का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? बाद में भाई कन्हैयालाल चंचरीक की कई पांडुलिपियों का स्वनामधन्य कई लोक साहित्य वेत्ताओं ने छपवाने के बहाने से मुक्त उपयोग किया और ख्याति अर्जित की। बड़े हर्ष की बात है कि बाबू वृन्दावनदास जी ने नये सिरे से ऐसे अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने का वचन दिया है। इस समय देश में जनपदीय आंदोलन और लोक-साहित्य के वे प्रेरणा स्रोत हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गत दो दशकों में बाबू जी के साथ कई साहित्यिक गोष्ठियों-आयोजनों में जाने का अवसर आया है। हर बार कोई नई सूझ, कोई नई प्रेरणा ले कर वे आते हैं। 'स्वामी रामानंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ' में ब्रज-लोक-साहित्य और संस्कृति पर 'गोल्डन बाउ' के लेखक जेम्स फ्रेजर की सी पैनी दृष्टि वाले लेखकद्वय भाई कन्हैयालाल चंचरीक और डा० चन्द्रभान रावत ने बड़े आकार के लगभग १०० पृष्ठों में शोधपूर्ण सामग्री दी है जिसको स्वतंत्र रूप से प्रकाशित करने का बाबू जी ने वचन दिया है। यह उनके ब्रज संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम का परिचायक है। उन्हीं की प्रेरणा से डा० आनंद स्वरूप पाठक और भाई चंचरीक एक ब्रज विश्वकोष की रचना में संलग्न हैं।

ब्रज जनपद के प्रमुख हिन्दी दैनिक "अमर उजाला" और "सैनिक" के माध्यम से बाबू जी की बहुत सी साहित्यिक गतिविधियों की निरंतर सूचना मिलती रहती है। 'ब्रज भारती' त्रैमासिक उन्हीं के प्रयत्नों से निरंतर निकल रहा है। श्री यशपाल जैन द्वारा संपादित "पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रन्थ" और भाई चंचरीक और डा० आनन्द स्वरूप पाठक द्वारा संपादित 'एक युग—एक प्रतीक' अभिनंदन ग्रंथ में भी आप संपादन परामर्श मंडल के सदस्य थे। बेझिझके धारा प्रवाह साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजनों में भाषण करना उनके गहन अध्ययन और निर्भीकता का परिचय प्रदान करता है।

देश के किसी भी कोने में लोक साहित्य की कोई भी गोष्ठी या सम्मेलन हो, बाबू जी इस वृद्धावस्था में भी दौड़े जाते हैं।

इस आपाधापी के युग में ऐसे सच्चे, मधुर, सहृदय व्यक्तित्व वाले साहित्यकार मिलते कहां हैं ? इस अभिनंदन के अवसर पर ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे, यही कामना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के परम पोषक

डॉ० भगवानदास तिवारी

एम० ए०, पी०-एच० डी० साहित्यमहोपाध्याय, शिक्षा विशारद, तत्त्वभूषण

विगत बीस वर्षों से निरंतर आसेतु हिमाचल शोध-यात्राएँ करते रहने के कारण मुझे इस देश में राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा तक के बारे में विविध क्षेत्रों में, विभिन्न पद्धतियों से कार्य करने वाले तिकड़मबाजों से लगाकर प्रातः स्मरणीय मनीषियों तक के दर्शनों का लाभ हुआ है। संस्मरण की दृष्टि से आज इन सभी साहित्यकारों को मैं तीन वर्गों में विभक्त कर लेता हूँ। यों, यह वर्गीकरण हर युग के साहित्यकारों के लिए भी लागू हो सकता है।

मेरे विचार से इस देश में प्रथम श्रेणी के साहित्यकार राजनीतिक साहित्यकार हैं, जिनके अपने-अपने गुट हैं, अपने-अपने पत्र हैं, अपने-अपने मत हैं और अपने-अपने दल के नीति-नियमोंके दलदल हैं। ये एक विशिष्ट वर्ग के साहित्यिक हैं, जिनके प्रदेश में अपरिचित और निष्पक्ष लोगों के लिए प्रवेश वर्जित है। इन्हें साहित्य में स्थान, राजनीति में सम्मान और राजकीय पुरस्कार प्रचार के बल पर मिलते हैं।

दूसरे प्रकार के साहित्यकार अर्धव्यावसायिक अर्ध साहित्यिक होते हैं। ये जिस हाथ की अँगुलियों से कलम रगड़ते हैं, उसकी हथेली द्रव्यार्जन की कामना से सदैव खुजलाती रहती है, अर्थात् इनकी लेखनी का मसि प्रवाह मुद्रा की प्रेरक ऊष्मा से तरंगित होता है। साहित्य की साधना, भाषा का समृद्ध आदि-आदि के लिए लिखना ये 'मूर्खता' समझते हैं, अतः इनकी कृतियों का प्रणयन लोकरुचि और जनता की माँग के अनुरूप होता है।

तीसरे वर्ग के साहित्यिक सूर-तुलसी के कवि-आदर्श को मानकर चलते हैं। ये लोग 'स्वान्तः सुखाय' लिखते हैं, अतः आधुनिक युग में, जब कि प्रचार और पेकिंग की तड़क-भड़क के बल पर गधा घोड़े के धोखे में चल जाता है, ये गरीब गाय से उपेक्षित रहते हैं। समाज में ये चलते पुर्जों द्वारा उपेक्षणीय समझे ही नहीं जाते, उपेक्षित रहते भी हैं, अतः कभी-कभी कोई भूला भटका 'मरमी' ही इन पर दृष्टिपात करता है। इनकी हालत उस नरगिस की तरह होती है, जिसे देख एक उर्दू शायर ने कहा था कि—

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।

कभी-कभी सौभाग्यवश या प्रसंगोद्भव पर इक्के-दुक्के लोग इन्हें मूक तपस्वी, मौन साधक, कलम के सिपाही, वीणापाणि के वरद पुत्र या सरस्वती के एकनिष्ठ साधक आदि कहकर सम्मानित करते हैं, परंतु चूँकि ये स्वयं मौन रहते हैं, अतः प्रशंसक भी प्रसंग समाप्त होते ही मौन साध जाते हैं।

बाबू वृन्दावनदास तीसरे वर्ग के साहित्यिक हैं। उनसे मेरा परिचय योगायोग से हुआ। बात यों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुई कि मीरा की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन, रीतिकालीन हिन्दी वीर काव्य, देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी का स्थान और राष्ट्रभाषा की समस्या पर क्रमशः चार शोधकार्य करने के बाद मैंने 'महाकवि नंददास-प्रणीत भँवर गीत' पर साहित्य महोपाध्याय के लिए ग्रंथ लिखने की पाँचवीं शोध-योजना बनाई। परम पूज्य डॉ० भगीरथ जी मिश्र ने इस शोध-योजना के लिए निर्देशन देना स्वीकृत कर मुझे प्रोत्साहित किया और पूना विश्वविद्यालय ने इस शोध-योजना के लिए तीन सहस्र रुपयों का शोध अनुदान दिया। भँवर गीत पर कार्य करने के पहले एक बार डॉ० दीनदयालु जी गुप्त से व्यक्तिशः मिलना मुझे उचित प्रतीत हुआ। मैंने डॉ० गुप्त जी से लखनऊ में ही मिलने का निश्चय किया और पत्र भेज दिनांक २० अक्टूबर १९६४ को लखनऊ जा धमका। श्रद्धेय गुप्त जी ने मुझे दो-ढाई घंटे तक शोध की दिशाएँ, ब्रज के विविध संग्रहालयों की सूचना तथा वहाँ के लोगों और साहित्यिकों के बारे में जानकारी दी और अपनी शोध-यात्रा के अनुभव सुनाए। इसी क्रम में उन्होंने मुझे कुछ लोगों से अवश्य मिलने का, कुछ लोगों से केवल परिचय पा लेने का और कुछ लोगों से बच कर रहने का भी संकेत दिया। उनके कथन अनुभव सिद्ध थे, अतः वे परवर्ती शोधयात्रा में मेरे लिए बड़े लाभप्रद सिद्ध हुए।

गुप्त जी ने अपनी चर्चा के बीच मुझे जिन दो एल्-एल० बी० उपाधिधारियों के साथ सम्पर्क साधने की सूचना दी, उनमें एक थे बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल्० बी० और दूसरे थे—बाबू वृंदावनदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। बाबू ब्रजरत्नदास के मआसिरुलउमरा के अनुवाद, नंददास कृत भँवरगीत और नंददास ग्रंथावली आदि ग्रंथ मेरे देखे हुए थे, पर बाबू वृन्दावनदास मेरे लिए अपरिचित थे, अतः मैंने मथुरा जाने पर बाबू वृन्दावनदास से मिलने का संकल्प किया।

इन्हीं यात्राओं के सिलसिले में मैं २९ मई १९६६ को सुबह-सुबह मथुरा पहुँचा। मथुरा में मैं धर्मशाला में ठहरा। सुबह ही स्नानादि से निवृत्त हो थोड़ा सा नाश्ता कर मैं बाबू वृन्दावनदास के निवास स्थान की खोज में निकला। थोड़ी ही देर में डोरी बाजार के प्रकाश भवन से मेरी खोज की डोर जुड़ गई। मुख्य सड़क से मैं प्रकाश भवन में पहुँचा। बाबू जी उस समय भीतर थे, अतः मैं बैठक में उनका इन्तजार करने लगा। बाबू जी की बैठक में सोफासेट था, कुर्सी थी, टेबिल थी, रेक था और टेबिल पर पुस्तकों का ढेर था। मैं कमरे में इधर-उधर देख ही रहा था कि इतने में बाबू जी आए। उनका उन्नत ललाट और बड़ी-बड़ी आँखें देख मुझ पर उनके व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव पड़ा। टेबिल के पास अपनी कुर्सी पर बैठ जब उन्होंने अपनी पारदर्शी आँखों पर मोटे काँच का चश्मा लगाया, तब उनके चेहरे पर साधक का रोब चमका। इस रोब के साथ उनकी सादी वेश-भूषा का प्रभाव और जुड़ गया। उनकी वह सादगी उनके मन के अनुरूप सरल और निश्छल थी। बातों ही बातों में परिचय आत्मीयता में बदल गया। उनके बारे में बहुत सी बातें जानकर मेरा हृदय गद्गद हो गया। इतने में चाय आई, नाश्ता आया और इसके साथ ही साथ बातों का ताँता लग गया। बाबू जी की बातों से मुझे यह पता चला कि उनके मन में ब्रजभूमि, ब्रजभाषा और ब्रज संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम है और यह प्रेम भावना का ही विषय नहीं, त्याग और सेवा का आधार भी है।

आज आधुनिकता के आशिकों की भीड़ में प्राचीन भाषा, प्राचीन साहित्य और प्राचीन संस्कृति के मर्मज्ञ खोते जा रहे हैं और प्राचीन साहित्य के जानकारों की परंपरा टूट रही है। यह चिन्ता का विषय है। ब्रजभाषा महत्वपूर्ण होते हुए भी आज उपेक्षिता है, लेखन में, व्यवहार में, प्रकाशन में। उसके क्षेत्रीय प्रयोग और आंचलिक अस्तित्व से आगे उसका मूल्य क्या है ? यही विचारणीय है। ऐसी हालत में बाबू वृन्दावनदास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष हैं। ब्रजभाषा की सेवा जिस ढंग से वे कर रहे हैं, उसका ऐतिहासिक मूल्य है। भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में मेरी यह मान्यता है कि भाषा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में वर्तमान का प्रचार-प्रसार और उसकी समृद्धि के प्रयास जितने मूल्यवान हैं, अतीत की परंपरा का पोषण और उसका संरक्षण भी उतनी ही महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। खड़ी बोली के युग में ब्रजभाषा के एकनिष्ठ साधक बाबू वृन्दावनदास जी का योगदान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में बाबू जी ब्रजभाषा के निष्काम सेवी, प्रचारक, प्रसारक और संरक्षक हैं, यही उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की गरिमा का आधार है। पहली मुलाकात में उनकी इसी गरिमा का प्रभाव मेरे मन पर पड़ा। फिर बाबू जी से पत्र-व्यवहार हुआ। उनके पत्रों में उनकी आत्मीयता का स्वर इतना प्रबल था कि मैंने ब्रजभारती के लिए दो-एक लेख भेजे, जिन्हें उन्होंने सहज स्नेह से प्रकाशित करने की कृपा की।[१]

२२ मई १९६९ को मैं पुनः मथुरा पहुँचा और बाबू जी से मिला। यह मुलाकात कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हुई। बाबू जी ने मुझे हिन्दी के स्वनामधन्य पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी के अभिनंदन-ग्रंथ की योजना बताई और इसी अवसर पर उन्होंने मुझे अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य की एक प्रति सस्नेह प्रदान की। मथुरा से दिल्ली, अलीगढ़, हाथरस, इलाहाबाद की यात्रा में मैं इस पुस्तक को आद्यन्त पढ़ गया। श्रेष्ठ साहित्य के सम्बन्ध में मेरी एकधारणा यह है कि श्रेष्ठ साहित्य वह है, जिसमें सामान्य पाठक को रसानुभूति के साथ-साथ ज्ञानवर्धन की सामग्री और प्रबुद्ध वर्ग को अध्ययन, मनन-चिन्तन सापेक्ष विचार-भाव संपदा प्राप्त हो। मैं बिना किसी औपचारिकता के यह कह सकता हूँ कि कोई भी पाठक यदि तटस्थ दृष्टि से बाबू जी के उक्त ग्रंथ का अध्ययन करे तो वह उसे श्रेष्ठ साहित्य की कृति मानेगा।

फिर एक दिन "राष्ट्रभाषा सन्देश"[२] में यह समाचार आया कि उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अनेक विद्वानों के साथ-साथ बाबू वृन्दावनदास जी को भी 'साहित्यवारिधि' उपाधि से अलंकृत कर उन्हें एक ताम्रपत्र प्रदान किया है। 'साहित्यवारिधि' उपाधि बाबू जी की दीर्घ मूकसाधना और सूक्ष्म अध्ययनशील वृत्ति की गहराई का संकेत मात्र है। अभी उनके सर्जक, चिंतक और कर्तृत्वशील व्यक्तित्व के उर्वर धरातल का मूल्यांकन होना बाकी है। ऐसी अवस्था में बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रंथ की योजना एक आवश्यक सामयिक और समुचित विचारधारा है, जिसके माध्यम से ब्रजभाषा, ब्रज साहित्य और ब्रज संस्कृति का यह एकनिष्ठ मूक साधक साहित्य-जगत में यथोचित न्याय और सम्मान पा सकेगा। मैं इस योजना का हृदय से स्वागत करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह बाबू वृन्दावनदास को सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करे ताकि वे सामान्य जनजीवन के व्यावहारिक जगत से लुप्त ब्रजभाषा सरस्वती का प्रवाह अक्षुण्ण बनाए रखें।

●

---

१. भाषा दशम स्कन्ध में नंददास द्वारा अनूदित भँवरगीत, ब्रजभारती, मार्गशीर्ष, सं० २००६, पृष्ठ १५-१९। कवि मंजुल और उनका काव्य, ब्रजभारती, भाद्रपद, सं० २०२७, पृष्ठ २५-३१।

२. राष्ट्रभाषा सन्देश, भाग–६, अंक १, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १ जुलाई १९७०, पृष्ठ २।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

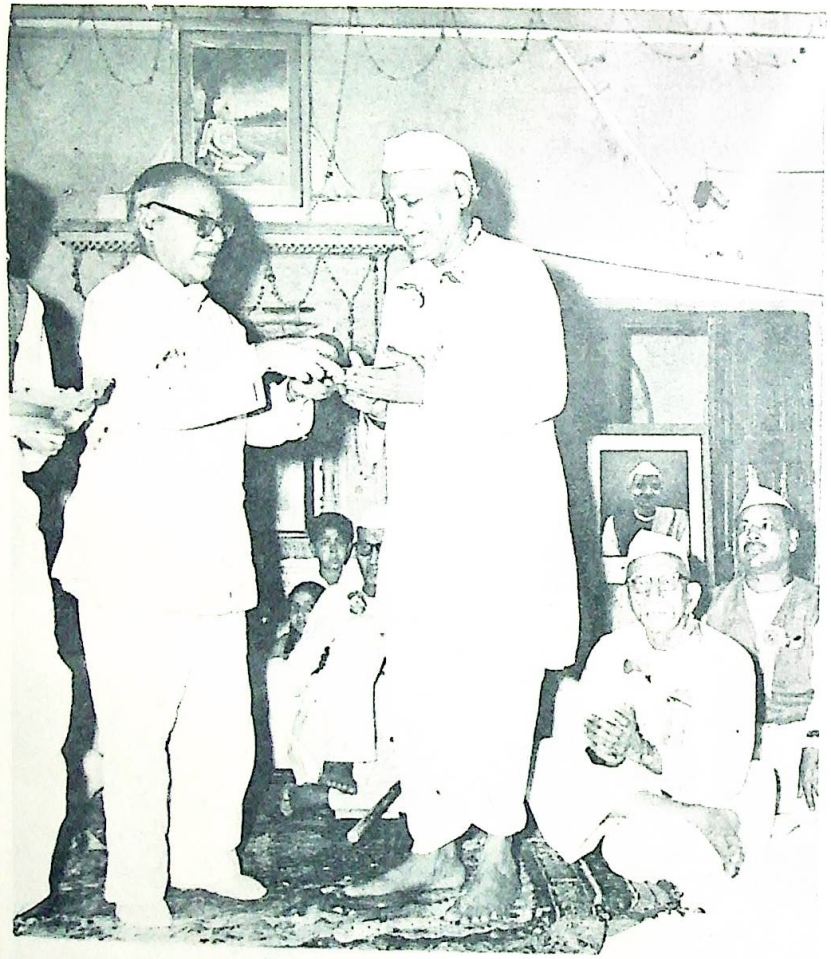

बा. वृन्दावन दास "श्री रामचरण हयारण मित्र को 'साहित्य वारिधि' उपाधि प्रदान करते हुए।

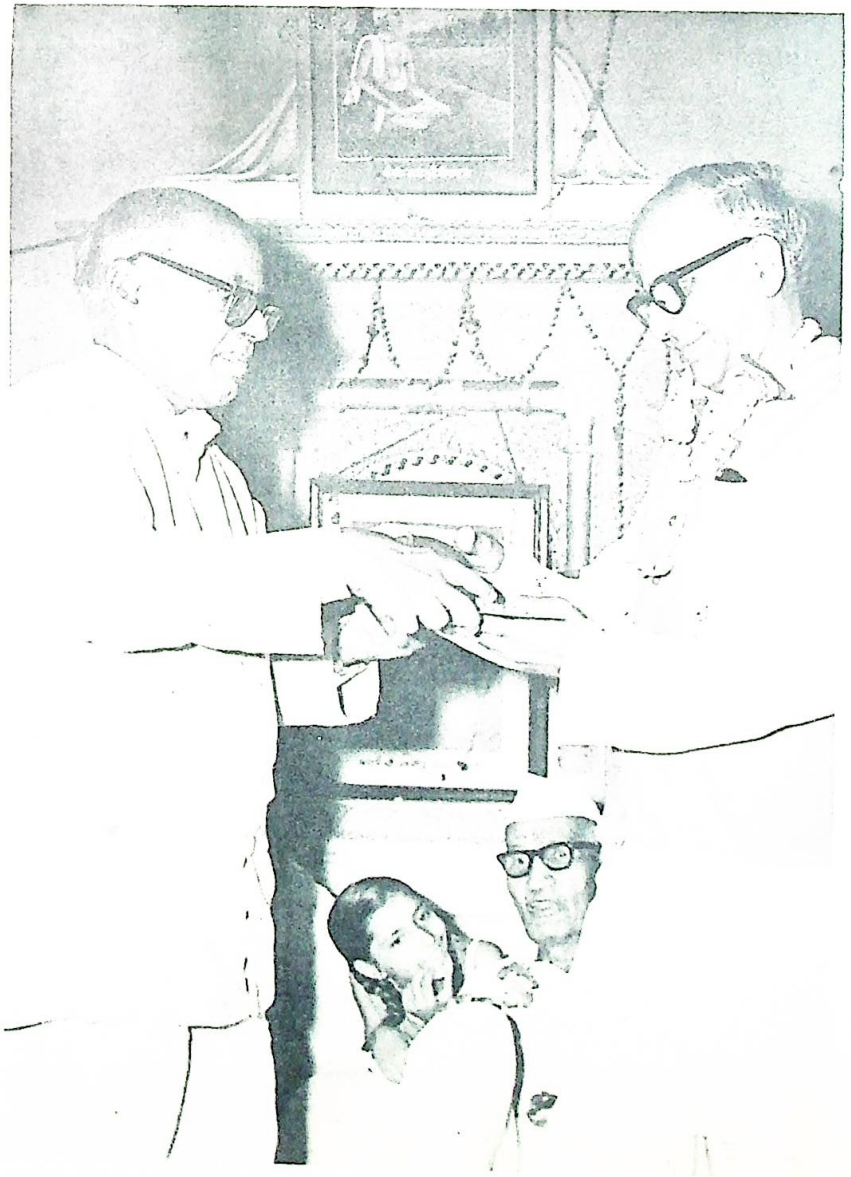

बा. वृन्दावन दास अध्यक्ष उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन फीरोजाबाद अधिवेशन में श्री यशपाल जैन को साहित्य बारिधि उपाधि प्रदान करते हुए, बीच में डा. बनारसी दास जी अपनी पौत्री के साथ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

फीरोजाबाद अधिवेशन में डा० बनारसीदास चतुर्वेदी को साहित्य वारिधि उपाधि से समानित करते हुए बाबू जी। डा० हरवंश लाल शर्मा चतुर्वेदीजी

श्री राजबहादुर जी को सम्मान पत्र भेंट करते हुए बा. वृन्दावन दास, बीच में श्री. पी. एल. मिश्रा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धुन के धनी

⊙

वेंकट लाल ओझा

ब्रज-साहित्य-मंडल की स्थापना ब्रज के मनीषियों द्वारा मथुरा में बड़े उत्साह के साथ हुई। वे लोग वर्षों उसका संचालन लगन के साथ करते रहे। उसकी मुख पत्रिका 'ब्रज भारती' भी नियमित प्रकाशित होती थी। उसके कई अधिवेशन भी बड़े ठाट-बाट से हुए। पर एक-एक कर उसके कर्मठ पदाधिकारी अपने जीविकोपार्जन के निमित्त अन्यत्र चले गए और मंडल का कार्य ठप हो गया। इसी तरह कई वर्ष गुजर गए। उसी मृतप्राय ब्रज-साहित्य-मंडल की अध्यक्षता बाबू वृन्दावनदास को सौंपी गयी। यह १९६३ की बात है। तब से मंडल में नयी जान आ गयी जिसके कारण सबसे अधिक प्रसन्न हैं प्रेरक साधक पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी। उनको इस बात का संतोष है कि ब्रज साहित्य मंडल की बागडोर अब ऐसे कर्मठ हाथों में है जो नित्य १०-१२ घंटे इसके लिए देता है। श्रद्धेय चतुर्वेदी जी कर्म में विश्वास करने वाले हैं। इसीलिए कर्मठ व्यक्ति उन्हें सदा प्रिय है। यही कारण है कि ३ नवंबर १९७० को जब मैं फीरोजाबाद उनके दर्शनार्थ पहुँचा तो उन्होंने वृन्दावनदास जी के आगे हो कर चर्चा की जिससे मैं इतना प्रभावित हुआ कि आगरा से दिल्ली जाते हुए मथुरा एक दिन के लिए उतरा था और पांच दिन रुक गया।

भगवान कृष्ण की लीला भूमि ब्रज का आकर्षण तो प्रधान है ही पर साथ ही वृन्दावनदास जी का आकर्षण भी कुछ कम नहीं है। सूर साहित्य के विशेषज्ञ आचार्य जवाहरलाल जी चतुर्वेदी से जम कर साहित्य चर्चा नित्य होती थी। पुराने साहित्यकारों में वे सौभाग्य से हमारे बीच आज भी विद्यमान हैं। भले ही उनका शरीर अब पहले सा सबल नहीं है पर वाणी में पहले जैसा ही ओज है। साहित्यिक संस्करणों का पिटारा जब वे खोलते हैं तो वह इतना रसमय होता है कि समय का भान ही नहीं रहता। इन्हीं से मिलने के लिए मैं पिछले २० वर्षों में कई बार मथुरा गया। पर वे वहां नहीं थे। पर इस बार सौभाग्य से मिल गए। यदि वृन्दावनदास जी से मिलने के लिए मथुरा नहीं जाता तो जवाहरलाल जी के सत्संग से वंचित ही रह जाता। अतः इसका श्रेय भी उन्हें हैं।

वृन्दावनदास जी से मेरा यह प्रथम साक्षात्कार था। हां, पत्र-व्यवहार अवश्य था। फिर भी जिस उत्साह से उन्होंने मेरा आतिथ्य सत्कार किया उसको मैं नहीं भूल सकता। ब्रज साहित्य मंडल की भूमि के संबंध में वे बहुत ही सक्रिय थे। मैंने देखा कि कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब उसके लिए वे दौड़ धूप न करते हों। पूरी लगन और निष्ठा के साथ इस कार्य में लग गए थे। संस्थाओं के मामले में इस तरह के कम ही लोग मैंने देखें हैं, जो इतने उत्साह से उसके लिए कार्य करते हों। वैतनिक पैरोकार भी इतना नहीं कर सकता। इन पांच दिनों में मैंने देखा कि उनका अधिकांश समय मंडल के कार्य में ही जाता है। 'ब्रज भारती' के संपादन से ले कर उसका पूरा पत्र-व्यवहार वे स्वयं करते हैं।

यह भी मैंने देखा कि समूचे ब्रज से मिलने वाले लोग आते ही रहते हैं जिनमें साहित्यकार, समाजसेवी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आदि कई तरह के। उनकी समस्याओं को सुलझाने के वे उपाय भी बताते जाते हैं। वकील हैं, पर कभी वकालत नहीं की। फिर भी आने वाले व्यक्ति को ऐसा सत् परामर्श देते हैं कि कोई अदालती वकील क्या देगा। यह सब कुछ निस्पृह भाव से। आने वाला गद्‌गद् हो कर जाता है। मथुरा नगरपालिका के वर्षों अध्यक्ष रहने के नाते और साथ ही सहकारिता के क्षेत्र में भी कई सहकारी समितियों आदि के अध्यक्ष आदि रहने एवं अनेक सरकारी समितियों के सदस्य होने तथा मथुरा की शिक्षण संस्थाओं के संचालन में सक्रिय रहने के नाते इनका कार्य क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है जिसकी झांकी मुझे मथुरा प्रवास में पांच दिनों में मिली।

यहीं मेरा परिचय गोवर्द्धन के श्री राधेबिहारीलाल सक्सेना से हुआ। जिसके कारण मैंने गिरिराज जी के दर्शन किए। साथ ही वहां से कुछ दूर सूर कुटीर के दर्शन कर पावन हो गया। चन्द्रसरोवर की वह गुमटी भी देखी जहां बैठ कर सूरसागर की रचना सूरदास जी ने की। पर खेद है कि दोनों ही स्थान उपेक्षित पड़े हैं। सूर कुटी तो बनी है। पर बहुत ही जीर्णशीर्ण अवस्था में है। पता नहीं कब ढह जाय। सक्सेना जी इसी संबंध में वहां आये थे। काव्य में पत्तिवाद के प्रवर्तक भाई गोपाल प्रसाद व्यास की जन्मभूमि भी यहीं है। वे यहीं के मूल निवासी हैं। उन्हीं की दौड़-धूप से सूर कुटी बनी थी।

इस तरह वृन्दावनदास जी कोरमकोर कर्मठ कार्यकर्ता ही नहीं हैं वरन साथ साथ अध्ययनशील लेखक भी हैं। भारतीय साहित्य, संस्कृति, धर्म, इतिहास इनके प्रिय विषय हैं जिन पर वे वर्षों से अध्ययन और अनुशीलन करते आ रहे हैं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, माधुरी, सुधा, कल्याण, विश्वमित्र, विशाल भारत, ब्रजभारती आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख मैंने पढ़े हैं। भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य नामक पुस्तक तो अपने विषय में गागर में सागर की तरह है। दो वर्ष की अल्पावधि में ही इसके दो संस्करण प्रकाशित हो जाना इस पुस्तक के महत्त्व को सिद्ध करता है।

गत वर्ष फीरोजाबाद में इन्हीं की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पंद्रहवां अधिवेशन हुआ था। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने हिन्दी की विश्व व्यापी विविध प्रवृतियों पर जो प्रकाश डाला है वह उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। उनकी पैठ कितनी पैनी है, यह सिद्ध करता है।

इस तरह बाबू वृन्दावनदास जी अनेक खूबियों और धुन के धनी हैं। इस अभिनंदन के अवसर पर भगवान से यही प्रार्थना है कि उन्हें चिरायु करें। उनका शरीर स्वस्थ रहे जिससे वे मां भारती के भंडार को और भी भर सकें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अधिमानित अध्यक्ष

⊙

निरंकुश

लेखनी के लड़ैतों को पोसने की परिपाटी बहुत पुरानी है। यह बात और है कि उसके स्वास्थ्य के प्रश्न को ले कर साहित्य-चिकित्सकों में मतभेद रहा हो। धुर अतीत में सौर-मण्डल के ग्रहों ने कुछ ऐसी सांठ-गांठ कर ली कि एक ही समय पर किसी व्यक्ति को देवी शारदा और कल्याणी लक्ष्मी का आशीर्वाद नहीं मिल पाता था, परंतु कालांतर में मनुष्य ने ब्रह्माण्ड को कुछ इस प्रकार हिला-डुला दिया कि धनी को मूर्ख और विद्वान को निर्धन होने की अनिवार्यता नहीं रही। आज साहित्यकार सुविधा के साथ समृद्ध बन सकता है, बशर्ते कि राजनयिक भाषा की बारह खड़ी से परिचित हो।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से हिन्दी की काव्य परम्परा राज दरबारों के आश्रय में पलती थी। मेरे विचार से यह तथ्य अन्य भाषाओं की काव्य परम्पराओं पर भी समान रूप से लागू होता है।

रजवाड़ों की आश्रयदायिनी परंपरा से हट कर उत्साहवर्द्धन की नयी परिपाटी को जन्म दिया गया काशी में, लखनऊ में, प्रयाग में और आगरे में। अंग्रेजी शासन के आरम्भ में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के पुत्र राय रत्नचन्द और शाह फ़तहचन्द्र बनारस में आकर बस गए थे। शाह फ़तहचन्द्र के पौत्र हुए गोपालचंद्र जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता थे और गिरधरदास के नाम से कविता करते थे। स्वयं एक प्रौढ़ कवि होने साथ साथ गोपालचन्द्र बड़े गुणग्राही थे। उनके यहां विद्वानों और कवियों का जमघट लगा रहता था और घंटों नियमित रूप से काव्य-चर्चा होती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता-वर्द्धिनी-सभा का गठन कर रक्खा था। उसमें गुणी व्यक्तियों का बहुमान किया जाता था और नवोदित प्रतिभाओं का विकास। तत्कालीन कवि सेवक, सरदार नारायण, दीनदयालु गिरि, दुर्गादत्त गौड़, द्विज मन्नालाल प्रभृति अनेकानेक सरस्वती पुत्र पधार कर समागम किया करते थे। भारतेन्दु जी ने हिन्दी की इस आश्रयदाता परंपरा के निर्वाह के लिए जो आत्म परिचय दिया है उसे उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के
हैं कबिन के मीत हित गुन गानी के।
सीधन सों सीधे, महा बांके हम बांकन सों
हरीचंद नगद दमाद अभिमानिन के।
चाहिबे की चाह न काहू की परवाह
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आगरे में पं० हरिशंकर शर्मा का निवास स्थान साहित्यिकों का तीर्थस्थान बना रहता था। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी फीरोजाबाद के हैं। इस नाते से वह भी आगरे के ही हुए। वह जहाँ-जहाँ रहे वहाँ उन्होंने साहित्यकारों, पत्रकारों, कवियों, समालोचकों को न केवल प्रोत्साहित किया; बल्कि उनकी कीर्ति-रक्षा का अभियान भी चलाया। आज भी उन्हें यदि कोई चिंता है तो शहीदों के श्राद्ध की और हिन्दी के उदय की। पं० हृषीकेश चतुर्वेदी का स्मरण किए बिना आगरे के साहित्यिक समाज की चर्चा अधूरी रह जायगी। १४ सितंबर १९७० को वह सदा के लिए चले गए। उनके साथ किनारी बाजार स्थित उनकी बैठक में जुड़ने वाली महफिल भी खत्म हो गई। वह खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों के उत्कृष्ट कवि थे। जो साहित्यिक गोष्ठियां उनके यहाँ नित्य प्रति आयोजित होती थीं और जिनमें भाग लेने की हर एक को आजादी रहती थी उन्हें कोशिश करने पर भी भुलाया नहीं जा सकता। चतुर्वेदी जी स्वयं एक संस्था बन गए थे।

सन् १९६६ में जब मैं मथुरा पहुँचा तब मेरे यहाँ अमर उजाला और सैनिक आते थे। दोनों में ही मथुरा समाचार का स्तम्भ सुरक्षित रहता था। उन पत्रों को नियमित रूप से पढ़ने के पश्चात मैंने अनुभव किया कि मथुरा में साहित्यिक आयोजनों की अध्यक्षता का भार प्रायः एक ही सज्जन उठाए हुए हैं और उनका शुभ नाम है बाबू वृन्दावनदास। मुझे उनसे मिलने कीउत्कंठा हुई पर मुलाकात हो तो कैसे। संयोग से मथुरा जिला सहकारी बैंक के डायरेक्टर्स के चुनाव का दायित्व निर्वाह के लिए मेरे हिस्से में आया। मैंने देखा सभा में सब से भिन्न मुद्रा में शालीनता की मूर्ति बने एक महानुभाव मेरे ही निकट मंच पर विराजमान हैं जो कभी-कभी मुस्करा देते हैं। ज्ञान की गरिमा उनकी आकृति पर झलकती थी और सौम्यता उसका शृंगार कर रही थी। चुनाव संपन्न हो जाने के उपरांत अल्पाहार की बेला आई। खाते पीते मनोविनोद बढ़ गया और मैं बातों ही बातों में बाबू वृन्दावनदास से मिल लिया। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि वह मेरा नाम और मेरी रुचि आदि से भली प्रकार परिचित थे। रहस्य तब खुला जब स्वर्गीय बच्चन जी और डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी संदर्भ में आए।

उस दिन के बाद से बाबू जी की अनन्य कृपा रहने लगी। जब कभी उन्हें समय मिलता पधार कर कृतार्थ करते और मेरे लिए तो उनके घर के द्वार सदैव ही खुले रहते थे। भारतेन्दु जी काशी के तत्कालीन साहित्यिकों का जिस प्रकार सम्मान करते थे उसका अनुमान उनके संस्मरण लिखने वालों की कृतियों से ही हो सका है परंतु बाबू जी अपने घर पर आयोजित गोष्ठियों में अतिथियों का जो सत्कार करते थे उसे मैंने अपनी आँखों से देखा है और वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। मथुरा के रसिकजन बाबू जी को ही अध्यक्ष बनाने के लिए क्यों लालायित रहते हैं इसका कारण उनके निकट संपर्क में आने के पश्चात समझ में आ गया। बाबू जी बड़ी उदार प्रकृति के हैं। उनका ज्ञान व्यापक है और रुचि परिष्कृत। वह गंभीर अवसरों पर गहन चिंतन में लीन और हल्के फुल्के मौकों पर व्यंग्य विनोद में अगुआ होने की विलक्षण क्षमता रखते हैं। आतिथ्य ग्रहण करने के लिए वह निवेदन करते हैं। बाहर के प्रायः सभी हिन्दी सेवियों को उनके यहाँ ठहर कर सुख सुविधा का अनुभव होता है। मामूली सी संगत के बहाने दम भर में बढ़िया नाश्ता पानी करा देना उनकी टेव है और यदि पूर्व सूचना के उपरांत भोजन कराने का अवसर मिले तो वह स्वयं को गौरवान्वित समझते हैं। खाने वाला तो नाना प्रकार के सरस व्यंजनों का आनन्द ले कर सच्चिदानन्द की अनुभूति करने ही लगता है।

बाबू जी एक सिद्धहस्त संगठनकर्ता, लेखक और वक्ता हैं। उनके विचार मौलिक होने के साथ-साथ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निर्माणकारी होते हैं। कदाचित सहकारिता के क्षत्र में लम्बे- अर्से तक महत्वपूर्ण भूमिका निबाहने के फलस्वरूप बाबू जी का दृष्टिकोण समन्वयकारी हो गया है। वह अध्यवसायी हैं, बराबर पढ़ते और लिखते रहते हैं। घूमने का उन्हें शौक है और सार्वजनिक सेवा की लत। जिस बात का बीड़ा वह उठा लेते हैं उसे पूरा किए बिना चैन नहीं लेते। अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष के नाते उन पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ गई है। वह मण्डल का अपना भवन, अपना छापाखाना, अपना पुस्तकालय, अपना वाचनालय, अपना शोधालय न जाने क्या-क्या शीघ्रता से बनवाना चाहते हैं। भवन के लिए भूमि अध्याप्त की कार्यवाही के सिलसिले में मेरी उनसे अक्सर बातचीत होती थी। वह बार-बार लखनऊ दौड़ते थे और अच्छे सा अच्छा कानूनी मशविरा प्राप्त करते थे। वह "ब्रजभारती के संपादक हैं। पत्र के लिए विचारोत्तेजक सामग्री का चयन करने में वह अथक परिश्रम करते हैं। मूर्धन्य लेखकों से आग्रह करते हैं कि प्रकाशनार्थ रचनायें भेजें। यह उन्हीं की लगन का फल है कि 'ब्रजभारती' नियमित रूप से छप रही है।

बाबू जी संपादक के नाम पत्र लिखने के माहिर रहें हैं। अंग्रेजी और हिन्दी पत्रों में उनके ऐसे पत्र भारी संख्या में प्रकाशित हुए । अग्रणी पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख बड़े चाव से छापे जाते रहे हैं। उनकी तीन पुस्तकें तो इन्हीं दिनों प्रकाशित हो चुकी हैं। एक है भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य , दूसरी डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र और तीसरी प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ का कुशलता से संपादन भी किया। भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य में बाबू जी ने महत्वपूर्ण सांस्कृतिक साहित्यिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उसमें प्रकाशित स्वर्गीय रूपकिशोर जैन गंगेरवाल से संबंधित संस्मरण को पढ़ कर विदित होता है कि बाबू जी को हिन्दी के आश्रय-दाता बनने का सौभाग्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ। दूसरी पुस्तक जिसमें प्रेरक साधक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों का संकलन किया गया है हिन्दी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है।

बाबू जी की शैली मनोरंजक होने के साथ साथ पुष्ट और प्रांजल है। उनके अग्रलेख पत्रकारिता साहित्य की निधि हैं। अध्यक्ष पद से वह जितने भी भाषण देते अथवा प्रवचन करते हैं उनमें एक ओर पाण्डित्य के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर शिक्षा के। रेडियो प्रसारण में बाबू जी की वार्त्तायें बड़े चाव से सुनी जाती हैं। इतने साधन संपन्न होते हुए भी बाबू जी अत्यंत विनीत एवं मृदुभाषी हैं। उनकी विशेषता यह है कि दूसरों को बोलने का अवसर अधिक देते हैं और मूर्ख से मूर्ख की बात को भी पूर्ण मनोयोग से सुनने को उद्यत रहते हैं। वह अपने विचारों को आरोपित करने की चेष्टा कभी नहीं करते और सदैव ज्ञानलाभ की तलाश में रहते हैं।

बाबू जी को हिन्दी से अनन्य प्रेम है। ब्रजभाषा तो उनका सर्वस्व ही है। दोनों की अभिवृद्धि के लिए वह कृतसंकल्प हैं। अब वह उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी हो गए हैं। आशा है उनके नेतृत्व में हिन्दी अभूतपूर्व उन्नति करेगी। यह एक संयोग है कि निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल का शब्दकार पतित पावनी काशी की एक रसिक रईस था और इस समय उसी लगन के साथ हिन्दी की सेवा में रत तीन लोक से न्यारी मथुरा का प्रतिष्ठित नागरिक भी उनका सजातीय ही है। तब भी हिन्दी पर संकट था और अब भी उसे नियत स्थान तक पहुँचने के लिए कष्ट का अनुभव हो रहा है। बाबू वृन्दावनदास प्रत्येक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दृष्टि से वही भूमिका निबाह रहे हैं जो लगभग सौ वर्ष पूर्व हरिश्चन्द्र ने स्वीकार की थी। मुझे यह लिखते हुए कोई संकोच नहीं होता कि बाबू जी हिन्दी की प्राचीन ज्वलंत आश्रयदाता परंपरा की डोर थामे हुए हैं और उनके सौजन्य और आशीर्वाद से कलियाँ चटक रही हैं और फूल महक रहे हैं। मेरी प्रार्थना है कि बाबू जी शतायु हों, बराबर मन, बुद्धि, विवेक और वाणी के धनी बने रहें और याज्ञिक के रूप में हिन्दी के अभ्युदय के लिए निरंतर कोई न कोई मंगलकारी यज्ञ करते जायें।

अध्यवसायी और दृढ़ निश्चयी

सतीशचन्द्र चतुर्वेदी

साहित्य के क्षेत्र में मथुरा के दो-तीन प्रसिद्ध व्यक्तियों में से बाबू वृन्दावनदास जी प्रमुख हैं। वे ब्रज-साहित्य-मंडल के अध्यक्ष हैं। कोई जमाना था जब ब्रज-साहित्य-मंडल ने बड़ा काम और नाम किया था। उसके बाद वह संस्था वर्षों तक निर्जीव पड़ी रही। अब कई वर्षों से बाबू जी की लगन और परिश्रम से पुनः उसका नाम सुनाई देता है। बाबू जी का नाम कहीं ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष के रूप में दीखता है, कहीं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में। आगरा, मथुरा, फीरोजाबाद तथा आस-पास के क्षेत्रों में कोई साहित्यिक कार्य बिना बाबू जी की उपस्थिति या सहयोग के पूरा नहीं होता। लगता है जैसे बाबू जी ने अपना शेष जीवन साहित्यिक कार्यों के लिए अर्पित कर दिया है।

व्यक्ति अपने युग की कहानी होता है। बाबू जी लगभग ६५ वर्ष के होंगे। उनकी वेशभूषा पुराने सम्भ्रान्त कुलीन घराने के व्यक्तियों की भाँति है। बन्द गले का कालरदार कोट, बिना कालर की कमीज, पेटीदार पैण्ट, आँखों पर चश्मा और उसमें से झाँकती उनकी दृढ़ और बड़ी-बड़ी आँखें।

बाबू जी अपनी लगन के पक्के हैं। बराबर अपनी लगन में लगे रहते हैं। श्रद्धेय डा० बनारसीदास चतुर्वेदी की भाँति ये भी योजनाओं में लगे रहते हैं। दोनों में एक अन्तर है। श्री चतुर्वेदी जी योजनाएँ बना कर लोगों से उन पर चलने को कहते हैं स्वयं कम चल पाते हैं। परन्तु बाबू जी योजनायें पूरी करने को बनाते हैं और उनको पूरी करने के ताने-बाने बुन कर उन्हें पूरी करते हैं। हमने ऐसी कई योजनाएँ देखी हैं। जो उन्होंने बनाई हैं और उन्हें पूरा किया है। यह बात उनकी सूझ-बूझ और सतत परिश्रम की परिचायक है और यह बहुत श्रेय की बात है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की विभूति

⊙

डा० विश्वपाल शर्मा

ब्रजभूमि के वातावरण ने अनेक असीम और चमत्कारिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को जन्म दिया है––यह स्थल राजनीति-अध्यात्म और सरस्वती का प्रचुर वरदान क्षेत्र है इसका इतिहास साक्षी है। यहाँ भगवान स्वयं कृष्णावतार के रूप में जन्म लेकर राजनीति-मानव धर्मशास्त्र और कर्म योग को यहाँ के कण-कण में व्याप्त कर गए हैं।

महात्मा सूरदास और स्वामी दयानंद के गुरुदेव महात्मा विरजानंद, भक्ति और ज्ञान के सजीव स्वरूप थे। तीनों लोकों से न्यारी इस महान ब्रजभूमि में बाबू वृन्दावनदास ने सरस्वती के वरद पुत्र के रूप में जन्म लेकर अपनी असाधारण विचित्र प्रतिभा का प्रारम्भ से ही परिचय दिया।

बाबू वृन्दावनदास से मेरा पूर्वजीय निकट संबंध है––उनके परम आदरणीय पिता लाला हीरालाल जी तथा मेरे पूज्य पिता जी पं० क्षेत्रपाल शर्मा में अत्यन्त निकट सौहार्द था और हम लोग भी बाल्यकाल से निकट मित्र रहे––आपकी माता जी दृढ़ धार्मिक विश्वास और धार्मिक रुचि सम्पन्न एवं दिव्य महिला थीं और धार्मिक अंतर इन्हें उन्हीं से प्रत्यक्ष सम्पत्ति के रूप में मिला है।

आपकी स्मरण शक्ति और गुण-ग्राहकता प्रारम्भ से ही अत्यन्त तीव्र थी और विवेचना इनके स्वभाव का एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण अंग था––अपने शिक्षाकाल में इनकी हिन्दी और काव्य में तीव्र रुचि थी और धार्मिक अध्ययन में यह हमेशा ही आन्तरिक रस लेते रहे।

अंग्रेजी शासन के उस युग में भी हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों में धार्मिक ग्रंथों के उद्धरण प्रचुरमात्र में होते थे––यथा मानस का संपूर्ण अयोध्या कांड एक अनिवार्य पाठ्य विषय था।

स्वभाव से काव्य और रस के आंतरिक प्रेमी के रूप में इन्होंने अंग्रेजी काव्य में भी अनेक बार अपनी तीव्र रुचि और योग्यता का परिचय दिया––तर्क और विवेचन बुद्धि की प्रेरणा से आपने कालेज की स्नातकोत्तर विधि शास्त्र की शिक्षा प्राप्त कर के एल० एल० बी० की परीक्षा पास की।

शिक्षाकाल में यह सदैव अपने सहपाठियों के परम सुहृदों में रहे। इस प्रकार साहित्य-विवेचन और विधि शास्त्र शिक्षा काल से ही इनके साथ हो लिए।

आपके पूज्य पिता मथुरा के एक बड़े प्रेस के स्वामी और प्रकाशक थे। प्राचीन साहित्य के प्रकाशन में आप उनकी सहायता करते किन्तु इससे इनकी आकांक्षा पूरी नहीं होती थी। जब इन्होंने कार्य क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय सम्पन्न और लोकप्रिय व्यक्तियों के लिए राजनीति एक बड़ा आकर्षक क्षेत्र था जिसमें सम्मान और ख्याति की सुलभ इच्छा को आश्रय मिलता था।

पारिवारिक ख्याति, विधि शास्त्र के विद्वान होने के कारण तथा परम्परागत सौहार्द के द्वारा इन्होंने अपने राजनीति क्षेत्र में स्थानीय उच्चतम सफलताएँ प्राप्त कीं। अठारह वर्षों तक सदस्य रहने के अतिरिक्त

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आप आठ वर्षों तक मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष रहे अपने नगर और नगर निवासियों की समस्या से आप निरन्तर मनोयोग पूर्ण चिंतित और उनके सफलतापूर्वक सुलझाने में निरंतर व्यस्त रहे। इनके व्यवस्था काल में नगर ने चहुँमुखी उन्नति की और उसमें प्रत्यक्ष एवं स्मरणीय सुधार हुए। इसी समय मथुरा के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसके लिए मथुरा निवासी और आने वाली पीढ़ियाँ इनकी चिरऋणी रहेगी। मथुरा में राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियों के हेतु विभिन्न जाति, वर्ग और धर्म के प्रभावशाली व्यक्तियों ने विभिन्न जाति और धर्म के लोगों में ऐसे मतभेद उत्पन्न कर दिए कि वस्तुतः विभिन्न जाति के व्यक्ति परस्पर शत्रुता का सा अनुभव और परस्पर तीव्र विरोध करने लगे थे। हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में भी परस्पर तीव्र असद्भाव पैदा हो गया था दूसरे धर्म के लोगों में राजनीतिक कारणों से खिचाव हो गया था। बाबू वृन्दावनदास ने इस ओर अपने व्यक्तिगत प्रभाव और निरंतर युक्तिपूर्ण चेष्टा से इतना अथक प्रयास किया कि उस वातावरण का सदैव के लिए अंत कर दिया। मथुरा के सभी वर्ग और धर्म के लोगों में अब असाधारण सद्भाव है। जो मथुरा के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को एक महत्वपूर्ण देन है। साधारणतया अनेक सामाजिक सुधारों और जातीय सुधार के कार्य तो आप सतत करते ही रहते हैं। उनका उल्लेख करने के लिए तो बहुत स्थान चाहिए।

राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में बाबू जी को निरंतर सफलताएं मिलती रही हैं। सेवा भाव से और निर्लोभ ही से उन्होंने यह सब किया। इसे व्यवसाय कभी नहीं माना। जैसा कि आजकल राजनैतिक क्षेत्रों में सब कुछ चल रहा है। आज यह सत्ता, साधन और सम्पन्नता का साध्य बन गया है। अधिकांश व्यक्ति राजनीति के माध्यम से भरपूर आर्थिक लाभ उठाते हैं।

एक कठिनाई यह भी उपस्थित हो गई है कि व्यक्ति अपने द्वारा चुने गए व्यक्ति से अनुचित स्वार्थ साधन की चेष्टा करने लगे हैं। ऐसी अवस्था में एक उत्कट ईमानदार और न्याय प्रिय व्यक्ति के लिए राजनीति द्वारा लोकप्रियता कठिन और राजनैतिक उपलब्धियाँ एक समस्या बन कर रह गई। वह मानव के अंतर और व्यक्तित्व को उठाने की बजाय उसे कठिनाइयों में डालने का हेतु बन गई है।

ऐसे वातावरण में बाबू वृन्दावनदास ने धर्म और साहित्य के क्षेत्र में विचार विवेचन द्वारा और साहित्य सृजन द्वारा लोक सेवा का कार्य अपनाया फिर भी बाबू वृन्दावनदास जी निस्वार्थ भाव से ही राजनीतिक क्षेत्र में रहे। आपके राजनीति में सक्रिय रहने के समय प्रति दिन के झंझटों में व्यस्त रहने के कारण साहित्य सेवा का काम वांछित गति से नहीं चल सका। राजनीति में सक्रिय तत्परता से मुक्त हो कर इनकी साहित्यिक सेवा दबे ज्वालामुखी की भाँति प्रचण्ड रूप में सामने आई।

बाबू वृन्दावनदास ने भारतीय धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक ग्रंथों के गंभीर और मार्मिक अध्ययन के साथ भारतीय राजनीति का भी गहन अध्ययन किया गया है। उनके लेखों और प्रकाशनों से राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को महान प्रगति मिली है निरंतर अध्ययनरत उनकी आंतरिक और सहज ईश्वर प्रदत्त प्रतिभायें स्वरूपमान हो कर प्रकट हो गई हैं। आपका राजनैतिक अध्ययन और विवेचन भी अत्यन्त गंभीर और महत्वपूर्ण रहा। आप अपने विचारशील और प्रभावशाली लेखों द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में जागृति बनाए रखने की प्रबल चेष्टा करते रहे। आपने राजनीतिक विचारों और लेखों को भी प्रमुख समाचारपत्रों ने सदैव प्रमुख स्थान दिया। उनका व्यक्तित्व अनेक मानवीय गुणों की सजीव प्रतिमा है। सरल जीवन सौहार्द्र-निर्भीकता, सम्मान, स्वाभाविक प्रसन्नता, सेवाभाव, आतिथ्य और सरसता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १६ वें झांसी अधिवेशन के अध्यक्ष बा. वृन्दावन दास (बाएँ), श्री गौरी शंकर द्विवेदी (दाएँ), श्री मोहन लाल भट्ट डा० द्वारका प्रसाद मीतल, (स्वागतमंत्री भाषण करते हुए)

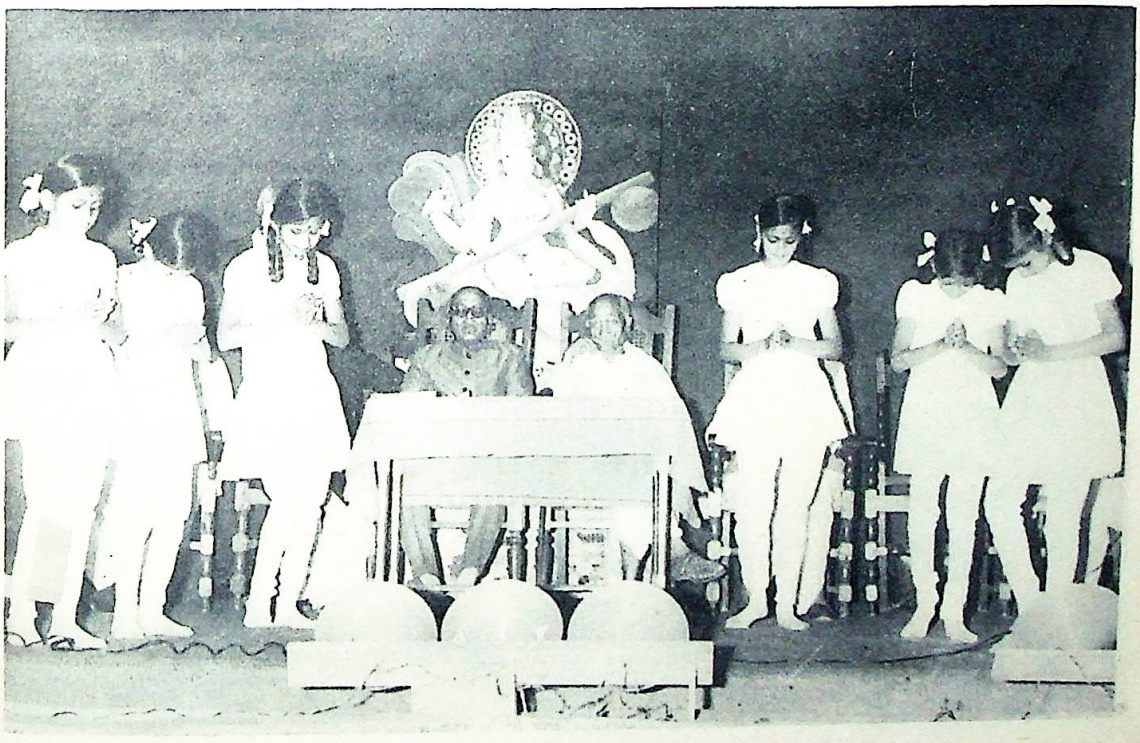

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन झांसी के अधिवेशन में आयोजित सांस्कृतिक समारोह में बा. वृन्दावन दास एवं श्री मोहन लाल भट्ट ।

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुरादाबाद अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए बा. वृन्दावनदास ।

उ० प्र० हि० सा० सम्मेलन के मुरादाबाद अधिवेशन में बाबूजी अध्यक्षता करते हुए । स्वागत मन्त्री श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल भाषण करते हुए ।

Digitized by Sarayu Trust. Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आदि अनेक सुसंस्कृत मानवीय गुणों की उनका व्यक्तित्व सजीव प्रतिमा है। राष्ट्र प्रेम, धर्म प्रेम और साहित्य प्रेम उनके रग-रग में भरा है।

बाबू वृन्दावनदास के अंतर में ब्रजक्षेत्र और उसकी अत्यन्त सूक्ष्मतर महानताओं का प्रभाव भरा है। ब्रज से अगाढ़ प्रेम उनकी स्वनाम-धन्यता का परिचायक है और मेरा विश्वास है कि वह इस ब्रज प्रेम को ले कर ही जन्मे हैं। ब्रज की देन है वह राजनीति जो कभी पराजित नहीं हुई। ब्रज की देन है वह अनन्य भक्ति जो परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कराती है। ब्रज की देन है वह ज्ञान जो आध्यात्म, व्यवहारिकता और चिरस्थायी शांति से परिपूर्ण है। ब्रज की देन है वह कर्मयोग जो मनुष्य को परमार्थमय और अनवरत परिश्रम-शीलता, शांति और अमरत्व प्रदान करता है। "वृन्दावन" ब्रज का हृदय क्षेत्र है और 'वृन्दावनदास' नाम को सार्थक करने वाले बाबू वृन्दावनदास इन सभी गुण वाचक विशालतम और प्रगतिशील उपलब्धियों के ज्वलंत और मूर्तिमान प्रतीक हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सभा सम्मेलनों के प्राण

⊙

डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

एम० ए०, पी०-एच० डी०

बाबू जी मथुरा की एक साहित्यिक विभूति हैं। सरल हृदय और तीक्ष्ण दृष्टि वाले बाबू जी के स्वभाव में हृदय और बुद्धि का अद्भुत समन्वय है। बाबू जी के हृदय में प्रेम लबालब भरा हुआ है तथा उसका प्रसार असीमित क्षेत्र में है। साहित्यिक जन तो उनके सुहृद तथा कृपा पात्र ही हैं। वे साहित्य जनों को प्रश्रय देते तथा उन्हें सदैव अपने निकट पाना चाहते हैं। ये अगर उनका कुछ अप्रिय भी कर दें तो प्रथम तो उनका अपराध उन्हें प्रभावित नहीं करता और यदि कभी करता भी है तो वे उसे तुरन्त क्षमा कर देते हैं। कभी कभी तो क्षमा मांगने की भी आवश्यकता नहीं होती।

दुर्भाग्य से उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन दो रूपों में बंट गया है परन्तु वृन्दावनदास जी का दूसरे से भी वैर नहीं। जिसके वे अध्यक्ष हैं उसके मुरादाबाद स्थित अधिवेशन में मथुरा से सब को बुलाते हैं और दो दिन बाद ही दूसरी सितम्बर को श्री बालकृष्ण राव की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहे अधिवेशन में सीधे मंच पर ही जा कर उपस्थित हो जाते हैं। मेरा हृदय उनके प्रति श्रद्धा से भर उठता है। ऐसे विशाल हृदय हैं बाबू जी। एक बार मुझसे भी भारी भूल हुई। डर लग रहा था कि वे क्षमा कर देने से पहले कुछ कटु शब्दों का प्रयोग तो करेंगे ही क्योंक वैसी स्थिति में यही सम्भव था परन्तु बाबू जी ने 'अच्छा कोई बात नहीं' कह कर जब उस अपराध को हवा में उछाल दिया तो मैं गद्गद हो गई। साहित्य की सेवा होनी चाहिए। यदि सेवा करने में बाबू जी को कष्ट और थोड़ा अपमान भी मिलता है तो भी वे उससे मुँह नहीं मोड़ते। उनकी दृष्टि में साहित्य-सेवा से बढ़ कर कुछ भी मूल्यवान नहीं है। व्यवसायी क्षेत्र के व्यक्ति होने पर भी उनके मन-प्राण में साहित्य समा गया है। पुस्तकें पढ़ना, लिखना, सार्वजनिक संस्थानों के कार्यों में जुटे रहना उनका यही कार्य सब जानते हैं। इसके अतिरिक्त कोई और व्यवसाय है, कोई इसे नहीं जानता।

बाबू जी प्राय: अध्यक्षता करते हैं और वह उन्हें सोहती भी खूब है। शिष्ट और सुसंस्कृत भाषा में वे अध्यक्षीय भाषण देते हैं और देते ही जाते हैं। देश काल की सीमाएँ टूट जाती हैं परन्तु उनके शब्दों का जादू सुनने वालों पर अपना रंग जमाता है। प्रत्येक सभा की अध्यक्षता करने की क्षमता है बाबू जी में। संगीत सभा हो, कवि सम्मेलन हो, पढंत गोष्ठी हो, लोकगीत सम्मेलन हो अथवा किसी कलाकारके सम्मान का समारोह, बाबू जी को इन सभी की अध्यक्षता शोभा देती है। उनके पास पहुँचने वाले उनका स्नेह लाभ करने के साथ-साथ धन लाभ भी करते हैं। न जाने कितने समारोहों की शोभा में उन्होंने अपने धन से योगदान किया है तथा कितने समारोह अपनी प्रेरणा से आयोजित किए हैं, इसका हिसाब शायद बाबू जी के पास भी नहीं होगा।

उनका अभिनन्दन ग्रंथ ठीक ही तो प्रकाशित हो रहा है जो सबका अभिनन्दन करता है उसका स्वयं का अभिनन्दन होना ही चाहिए। इससे साहित्यजन अपने आपको ही गौरवान्वित करेंगे। ●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

महारथी साहित्यकार

⊙

डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

एम० ए०, एल० एल० बी०, पी-एच० डी०, साहित्यालंकार

ब्रज अपनी विभूतियों के लिए प्रसिद्ध है। कृष्ण जहाँ जन्मे हों, वह क्षेत्र निश्चय ही महान होगा। उसी संस्कृति को मध्यकाल में अष्टछाप के कवियों ने आगे बढ़ाया। यहाँ की लोक भाषा, साहित्य-संस्कृति एवं कला पर आज भी भारतीय गर्व कर सकते हैं। विदेशी विद्वान और भाषाविद् 'माय री माय, सांकरी गली में, मोरे पांयन में कांकरी गड़ति ए' सुन कर तभी तो रीझ गए थे।

ऐसी माधुर्य पूर्ण भाषा के उन्नायक और ब्रज सांस्कृतिक धारा को आगे बढ़ाने वाले बाबू वृन्दावनदास ब्रज की एक अद्भुत विभूति हैं।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सर्वोच्च मानद उपाधि 'साहित्य वारिधि' से विभूषित बाबू वृन्दावनदास ने ब्रज-क्षेत्र की साहित्यिक गति-विधि को चेतना प्रदान की है। उन्होंने अपना जीवन पूर्णरूपेण साहित्य की सेवा में लगा रखा ही है। उन्होंने ब्रज साहित्य के उन्नय के लिए पर्याप्त प्रयास किया। ब्रज साहित्य मण्डल को पुनर्जीवन प्रदान करना और ब्रज-क्षेत्र की वाणी 'ब्रजभारती' का प्रकाशन करना वे महत्वपूर्ण कार्य हैं, जो इस साहित्य के मूक सेवक की महान् सेवा कहे जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ब्रज-क्षेत्र की इस महान् विभूति को 'साहित्य वारिधि' की उपाधि से विभूषित कर के इस क्षेत्र का गौरव बढ़ाया है। ब्रज-क्षेत्र की सभी प्रकार की साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र बाबू वृन्दावनदास एक कर्मठ साहित्यकार हैं। प्रत्येक युग में महारथी साहित्यकार होते रहे हैं, उन्हीं की परम्परा को आप जीवित बनाए हुए हैं। मैं शतायु होने की कामना करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक प्यारी यादगार

⊙

जी० पी० श्रीवास्तव

"आजाद टाइम्स" मथुरा कई महीने से मेरे सम्बन्ध में अपना एक विशेषांक निकालने का विज्ञापन छाप रहा था। इसी बीच में २३ अप्रैल १९७० को मेरी एक्यास्वीं वर्ष गांठ पर मथुरा में उसने मेरा अभिनन्दन करने की भी ठान ली। निमन्त्रण पाते ही मेरे होश उड़ गए। गुड़ भरी हंसिया न निगलते बने न उगलते।

अन्य किसी काम के लिए बुलाया जाता तो आसानी से असमर्थता प्रगट कर के जान छुड़ा सकता था। उस काम के लिए और लोग भी मिल सकते थे। कोई दूसरा मेरी जगह पर बैठाया नहीं जा सकता था। इतने लम्बे सफ़र के लिए मेरे पास कोई मुझे टेकाने वाला न था।

मैं इसी सोच में बैठा था कि इतने में मेरे मित्र बाबू ज्वालाप्रसाद सिनहा, एडवोकेट भूतपूर्व एम० एल० ए० जो गोंडे के प्रायः सभी धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को अध्यक्ष वा मन्त्री के रूप में अपना विशेष योगदान देते रहे हैं और अब वकालत छोड़ कर अपना जीवन जन-सेवा में अर्पण किए हुए हैं, मुझसे मिलने आए।

मथुरा का नाम सुनते ही वह मारे खुशी के चहक उठे—"अरे! भाई वहाँ तो मेरे एक बड़े ही घनिष्ट मित्र बाबू वृन्दावनदास जी रहते हैं।" इतना कह कर वह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की तारीफ़ें करते हुए बोले—"चलिए और ज़रूर चलिए। मैं स्वयं आपका प्राइवेट सेक्रेटरी बन कर आपको ले चलूँगा।"

उनकी बातों ने मेरी मरी हुई जान में जान फूँक दी और बाबू वृन्दावनदास जी के दर्शनों की ऐसी उत्कण्ठा पैदा कर दी कि मेरे पास बैठे हुए उदीयमान लेखक "निर्मल" भी मेरे साथ मथुरा चलने को तैयार हो गए।

सिनहा साहब ने हम लोगों के लिए रेल में जगहें सुरक्षित कराई। हम और "निर्मल" जी उनके साथ गोंड़े से मथुरा के लिए २० अप्रैल सन् १९७० को रवाना हुए।

संयोग से श्री वृन्दावनदास जी किसी काम से लखनऊ आए थे। वह भी लखनऊ से उसी गाड़ी से लौट रहे थे जिस गाड़ी में हम लोग थे। क्योंकि अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष तथा 'ब्रज-भारती' के सम्पादक और मथुरा के प्रमुख साहित्यकार होने के नाते वह भी हमारे अभिनन्दन समारोह के एक मुख्य कर्ता-धर्ता थे। ऐसे अवसर पर उनकी उपस्थिति वहाँ आवश्यकीय थी। साहित्य में उनकी कितनी गहरी पैठ है और इसकी कला में वह कितनी उच्चता पर हैं उसी से अनुमान किया जा सकता है कि उन्हें 'साहित्य वारिधि' की उपाधि मिल चुकी है और वह इस समय उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के पद पर सुशोभित हैं।

सिनहा साहब उनको देखते ही लपके। उनसे मेरा परिचय कराया। उस समय भेंट तो बहुत ही सरसरी हुई। फिर भी उनके व्यक्तित्व की मेरे हृदय पर गहरी छाप पड़ी। धन, पद, प्रतिष्ठा सभी में पूर्णतया सम्पन्न होने पर भी उन्हें गर्व किसी बात का नहीं। उस पर सादगी के साथ माधुर्य और सौजन्यता उनके रोम-रोम से बराबर छलकती रहती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लगभग ८ बजे सुबह को गाड़ी मथुरा पहुँची। श्री डाक्टर बरसानेलाल चतुर्वेदी के साथ, जिनसे मिलने का सौभाग्य मुझे पहिले लखनऊ रेडियो स्टेशन पर जब हम और वह एक हास्य गोष्ठी में निमंत्रित हुए थे, प्राप्त हो चुका था, श्री सुरेशचन्द्र सक्सेना सम्पादक 'आजाद टाइम्स' तथा मथुरा के कुछ अन्य प्रमुख साहित्यकार और कवि प्लेट-फार्म पर मंडरा रहे थे। जब मालूम हुआ कि ये सभी महानुभाव मेरी ही अगवानी करने के लिए पधारे हैं तब तो मैं गर्व से ऐसा फूला कि अगर रबड़ का बना होता तो एकदम गुब्बारा बन कर आकाश की सैर करने लगता। मगर अपनी बुढ़ापे की अवस्था, अस्त व्यस्त धजा, क्योंकि इस लम्बे सफ़र में मेरे कपड़ों का काफ़ी सौंदन हो चुका था उस पर अपनी हलकी जेब का ख्याल आते ही सारा नशा उतर गया और मैं सिकुड़ कर फिर अपनी असलियत पर आ गया।

हम और बाबू वृन्दावनदास जी एक ही रिक्शे पर बैठे। मथुरा की मधुर और मदमाती बहार जिसका उद्घाटन स्वयं कृष्ण भगवान ने किया था तथा उसकी लचकदार प्यारी बोली का क्या कहना जिसकी मीठी झनकार पर पशु-पक्षी तक में मस्ती छा जाती है। इसलिए मेरा रिक्शा भी नगर के फाटक में प्रवेश करते ही कुछ ऐसा मस्त हुआ कि उसकी पथरीली सड़क पर अपनी ठुमुक चाल से लगा थिरकने। जिसके प्रभाव से मेरा सारा बदन भी झूम-झूम कर तता तथई करने लगा। ऐसा जान पड़ा कि मैं बैठे ही बैठे 'फ़ाक्स ट्राट'—विलायती नाच—का मज़ा ले रहा हूँ।

हम लोगों के ठहरने का प्रबन्ध उन्हीं की धर्मशाला में था और हमारी मेहमानदारी का भार उन्होंने अपने घर पर, जो वहाँ से निकट ही था, अपने सर ले रखा था। धर्मशाला देख कर मैं चकित हो कर रह गया। अति विशाल और अत्यन्त ही सुविधाजनक, यहाँ आने पर बाबू जी के बहुधन्धी होने का भी परिचय मिला। वह मथुरा के नगरपालिका तथा हिन्दू-महासभा के भी अध्यक्ष रह चुके हैं और सहकारिता में तो डाइरेक्टर के रूप में उनका योगदान रहता चला आया है। और तारीफ़ यह कि हर क्षेत्र में उनकी लगन और कार्य-कुशलता समान है।

खा-पीकर लेटा ही था कि आजाद टाइम्स के सहकारी सम्पादक विशेषांक में छपने वाले मेरे सम्बन्धित लेखों का बन्डल लेकर आए। जिनमें कई लेख तथा शुभकामनाएँ विदेश के महान पुरुषों की देखकर मैं हिन्दी के प्रचार पर फूला न समाया। क्योंकि विदेश में इन महान पुरुषों को मेरी बाबत जानकारी हुई थी तो हिन्दी ही के माध्यम से। इससे मैं कुछ ऐसा प्रभावित हुआ कि मैंने एक ऐसा उपन्यास लिखने का संकल्प किया जिसमें विदेशों की झलकियाँ दिखाता हुआ हिन्दी के महत्व और विस्तार का गुण गाता चलूँ।

उसी दिन शाम को अर्थात् २१ तारीख़ को श्री वृन्दावनदासजी ने अपने मकान पर ब्रज साहित्य मंडल की गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें ब्रज के सभी साहित्यकार तथा कवि उपस्थित थे और इस बात का परिचय दे रहे थे कि श्री वृन्दावनदास की नगर में फैली धाक है और वह कितने लोकप्रिय हैं। बाबू जी ने हम लोगों का परिचय करा कर और सिनहा साहब की जन सेवा का बखान कर के हम दोनों के गले में अभिनन्दन का हार पहना दिया। गोष्ठी अत्यन्त ही सफल रही। निष्कर्षतः बाबू जी का जीवन सामाजिक साहित्यिक गतिविधियों में अत्यन्त व्यस्त रहता है। साहित्यज्ञों का स्वागत करके उनका जीवन लक्ष्य सा बन गया है। साहित्य के हित में उन जैसे व्यक्तियों का शताधिक आयु वाला होना साहित्यज्ञों की अन्तःस्फुरित अभिलाषा है। मैं अभिनन्दन के अवसर पर अपनी प्रणति अर्पण करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निष्णात पत्र लेखक

⊙

डा० श्यामसुन्दर बादल

वाण्यां सच्छिव सौन्दर्यम् लेखे मूल्याङ्कनी तुला।
द्वयं वृन्दावने दृष्टं वागर्चा कमलाकृपा ।१।
सम्पादको नः भारत्याः सम्मेलनाद्यधीश्वरः ।
श्री वृन्दावन दासोऽयं जीवताच्छरदश्शतम् ।२।

बाबू वृन्दावनदास जी एक सफल पत्रकार हैं। मैं उनको एक सफल पत्र-लेखक भी मानता हूँ।

पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में मैंने अपने विचार तो बाबू जी के पास तभी प्रस्तुत कर दिए थे, जब वे 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' नामक ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे थे। वह ग्रन्थ प्रकाशित हो गया है और इसमें वे विचार बाबू जी की भूमिका के अन्त में स्थान पा गए हैं। यहाँ तो पत्रों की मुख्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य में बाबू जी के पत्रों का मूल्यांकन करना ही अपना अभीष्ट है। पत्रों की प्रमुख विधाएँ दो हैं—१. प्राचीन। २. अर्वाचीन। आज के व्यस्त जीवन में इन्हें भी निम्न तीन शैलियों में विभाजित किया जा सकता है—

१. विस्तृत या लेख-शैली।

२. स्वस्थ या नार्मल-शैली।

३. संक्षिप्त या तार-शैली।

विस्तृत शैली में शिष्टाचार भी बढ़ा-चढ़ा कर लिखा जाता है तथा अन्य अनावश्यक बातें भी लिख दी जाती हैं। इस प्रकार पत्र लेख का रूप ग्रहण कर लेते हैं। स्वस्थ पत्र-शैली में शिष्टाचार और काम की बातें नपे-तुले शब्दों में ही लिखी जाती हैं। संक्षिप्त शैली में पत्र प्रायः तार की भाषा में ही लिखे जाते हैं। कुछ उदाहरण देकर हम इन्हें और अधिक स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी पूर्ण विकसित अर्वाचीन-विधा के पत्र-लेखक हैं। आपका पत्र-व्यवहार प्रायः स्वस्थ पत्र-शैली में ही होता है, फिर भी इनके कुछ पत्र विस्तृत-शैली और तार-शैली की सीमा का भी स्पर्श करते हैं। यहाँ हम उनके क्रमशः इन तीनों शैलियों के पत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१)

प्रकाश भवन
मथुरा, ४।११।६६ ई०

प्रिय शास्त्री जी। सादर नमस्कार

ता० २२-१०-६६ का कृपा पत्र यथासमय मिल गया। धन्यवाद। 'ब्रज-भारती' के सम्बन्ध में आपने जो विचार प्रकट किए उससे घना प्रोत्साहन मिला।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप बुन्देली के संस्कार में रत हैं। आदरणीय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी मुझे ऐसा ही लिखा था । बुन्देली लोक साहित्य पर आप कोई लेख हिन्दी में भेजें तो हम सहर्ष पत्रिका में छापेंगे।

'बुन्देली का फाग साहित्य' शीर्षक ग्रन्थ आप हमारे पास भिजवाने की व्यवस्था करें । हम अवश्य उसकी समीक्षा करा कर 'ब्रज भारती' में प्रकाशित करेंगे । आपके किसी मित्र ने उसकी समीक्षा लिखी हो और वह अद्यावधि अप्रकाशित हो तो आप उसे हमारे पास भेज दें। हम उसे पत्रिका में मुद्रित कर देंगे।

'ब्रज भारती' हम आपके पास नियमित रूप से भेजते रहेंगे।

यदि कोई सज्जन या संस्था इसकी ग्राहक बनना चाहें तो हम केवल तीन रुपये का वी० पी० कर के ही पत्रिका भेज देंगे। इसमें १.१० तो हमारा डाक व्यय में ही निकल जायेगा। शेष धन से कहीं अधिक लागत है परन्तु हमें प्रचार करना है।

भवदीय
वृन्दावनदास

स्वस्थ या नार्मल पत्र शैली के :—

(२)

प्रकाश भवन
मथुरा, १९-१-६७

प्रिय शास्त्री जी, सादर नमस्कार

'ब्रजभारती' का मार्गशीर्ष अंक आपकी सेवा में भेजा जा चुका है। आपकी पुस्तक की समीक्षा हमने राजेन्द्र से लिखाई थी, वह मुद्रित हो गई। बुधौलिया जी ने अद्यावधि कुछ लिख कर नहीं भेजा है, यद्यपि हम इन्हें बहुत पहिले इसके लिए लिख चुके हैं।

आशा है आप सपरिवार कुशलतापूर्वक होंगे।

भवदीय
वृन्दावनदास

'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' नामक ग्रन्थ में बाबू जी ने अन्य साहित्यकारों को लिखे गए चतुर्वेदी जी के पत्रों को भी स्थान दिया एवं एक स्वस्थ परम्परा कायम की। एतदर्थ मुझसे भी आपने दो पत्र माँगे थे, पर मैंने इस शर्त पर तीन भेज दिए थे कि आप इनमें से कोई दो चुन लें, पर बाबू जी ने उन तीनों को स्थान दे दिया। इससे मुझ पर उनका जैसा हार्दिक स्नेह है स्पष्ट हो जाता है। निम्न पत्र इसी विषय का है—

(३)

प्रकाश भवन
मथुरा, ६-४-७१

मान्यवर बादल जी, प्रणाम

कृपा पत्र मिला। धन्यवाद। आज ही प्रयाग अयोध्या से वापिस आया हूँ। अब की बार उत्तर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन २३, २४ मई को फीरोजाबाद में होना निश्चित हुआ है। क्या आप उसमें सम्मिलित होंगे ?

मैं कुछ पत्र उन विद्वानों के भी (अपने ग्रन्थ में) दे रहा हूँ, जिन्हें मेरे अतिरिक्त चतुर्वेदी जी ने भेजे हैं। आप अपने दो पत्र भेज दें। पाण्डुलिपि निश्चित हो चुकी है और ३०० में २०० पृष्ठ छप भी चुके हैं। आपके दो पत्र सम्मिलित कर देंगे। भूमिका के अन्तर्गत तो आपका शुभ नाम आ ही गया है। दो पत्रों की प्रतिलिपि आप अविलम्ब भेज दें।

डा० बुधौलिया जी मथुरा पधारे थे, दुर्भाग्य से मैं यात्रा पर था, भेंट न हो सकी।

आपका
वृन्दावनदास

संक्षिप्त शैली के बाबू जी के पत्र—निम्न पत्र एक निमन्त्रण-पत्रके बाद भेजा गया है—

(४)

प्रकाश भवन
मथुरा, १९-८-७०

मान्यवर बादल जी,

दादा जी आ रहे हैं। आप भी अवश्य पधारें।

आपका
वृन्दावनदास

विस्तार भय से यहाँ बाबू जी के इतने ही पत्र दिए जा सके हैं। हम लोग गत पाँच-छः वर्ष से आपके सम्पर्क में आए एवं उत्तरोत्तर आपके हार्दिक-स्नेह के अधिकाधिक पात्र बनते गए।

बाबू जी का आदर्श पारिवारिक-स्नेह, उनकी सामाजिक-सेवाएँ, साहित्यिकों और कवियों के प्रति उनका अगाध-स्नेह, 'ब्रजभारती' जैसी सुन्दर एवं उपयोगी पत्रिका के संचालन में आपका आत्मविश्वास, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल को नव-जीवन देने में इनका आत्म-संयम एवं साहित्य-सर्जना में आपका आत्म-ज्ञान आदि सभी प्रशंसनीय गुण हैं। लार्ड टैनिसन का कथन है:—

"Self reverance, self knowledge and self control these three alone lead life to the sovereign power."

अर्थात् आत्म-विश्वास या आत्म-गौरव, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम ये तीन गुण ही मनुष्य के जीवन को उन्नत बना देते हैं। श्रद्धेय चतुर्वेदीजी अभिनन्दन-ग्रन्थ 'प्रेरक साधक' का इतने अल्प समय में ही इतने सुन्दर वृहदाकार एवं आकर्षक रूप में-प्रकाशित हो जाने में जिन लोगों ने तन, मन, धन से कार्य किया है उनमें बाबू जी का उल्लेखनीय स्थान है। तदनन्तर तुरन्त ही ३०० पृष्ठों में 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' नामक ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन में सफलता बाबू जी की क्षमता के कार्य हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

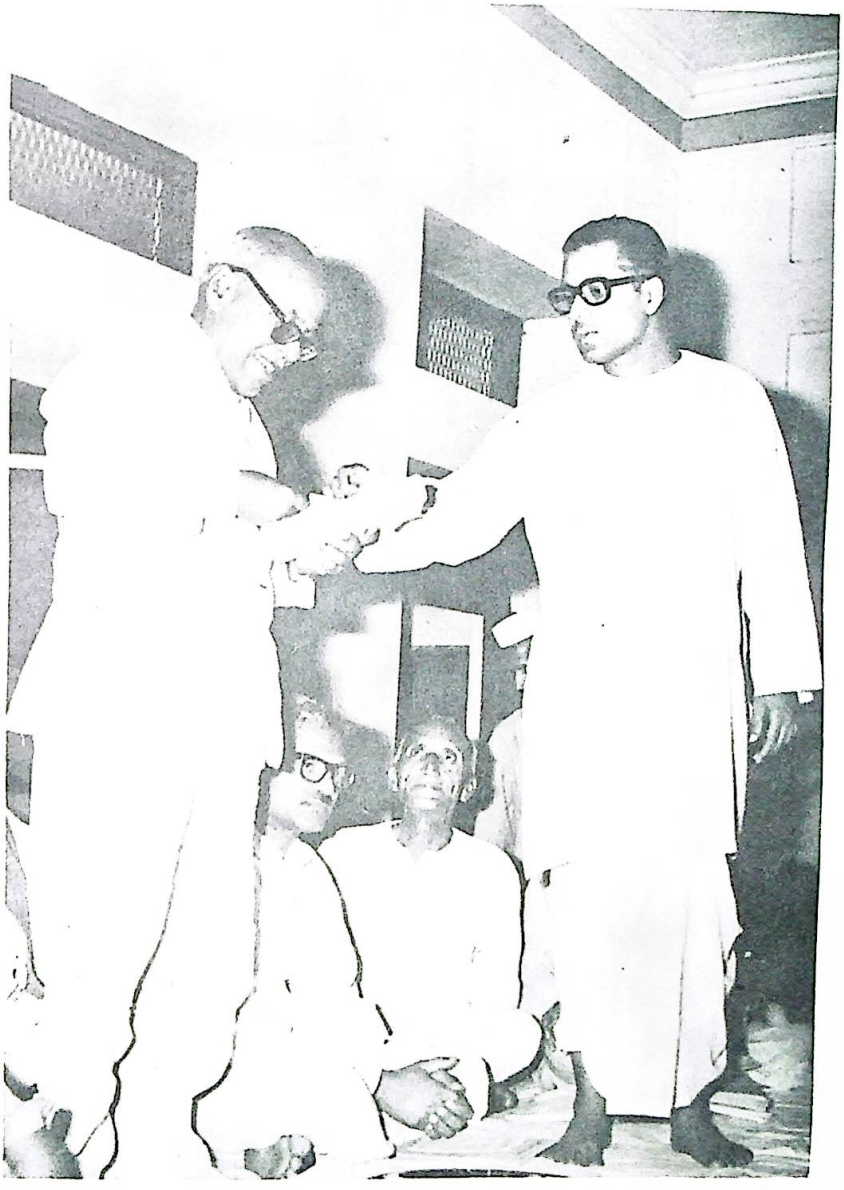

हैवी इलैक्ट्रीकल्स हरिद्वार में आयोजित समारोह में डा० विष्णुदत्त 'राकेश' को मानपत्र भेंट करते हुए बा. वृन्दावन दास (अध्यक्ष)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य सेवा का आपका क्षेत्र कितना व्यापक और विस्तृत है यह इसी से सिद्ध होता है कि आप एक ओर जहाँ साहित्य की सेवा में लगे हुए डा० बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर चुके हैं, स्वर्गीय पं० हरिशंकर शर्मा का पत्र-व्यवहार प्रकाशित कराने जा रहे हैं। साथ ही आप प्रशासनिक-सेवा में कार्य करने वाले महापुरुषों की जीवनियाँ व स्मृति ग्रन्थों के सम्पादन और प्रकाशन में भी पूर्ण सहयोग देते रहते हैं।

इन पंक्तियों के लेखक के साथ बाबू जी का परिवार का सा सम्बन्ध रहा है, आप मेरे द्वारा सम्पादित वैचारिक पाक्षिक "लोक शिक्षक" को तो समय समय पर लेख भेजते ही हैं, मेरे लेखों को भी 'ब्रज-भारती' में बड़े प्रेम से स्थान देते हैं।

इतना ही नहीं, जब कभी मेरी पत्नी तथा मैं मथुरा जाते हैं तो प्रायः आपसे बिना मिले नहीं लौटते। उस समय आप सपत्नीक हमारा जो आतिथ्य सत्कार करते हैं वह भुलाने की चीज नहीं है।

उपर्युक्त अनेक उत्तम गुणों में आ कर आप शतायु होते हुए देश, समाज तथा हिन्दी और ब्रजभाषा की सेवामें सतत रत रहते रहें यही भगवान से प्रार्थना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सौम्य एवं समन्वयशील व्यक्तित्व

⊙

डा० मलखानसिंह सिसौदिया
एम० ए०, पी-एच० डी०

एक सुन्दर प्रभात को मुझे एक पत्र मिला जिसमें सम्मानपूर्ण सम्बोधन के अनन्तर लिखा था—"श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी मुझे लिखे गए अपने पत्रों में आपके नाम का उल्लेख किया करते हैं। आप जब कभी मथुरा पधारें, मेरे साथ भोजन करें। आपसे कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक विषयों पर वार्तालाप करना है।" इस पत्र के लेखक थे स्वनामधन्य बाबू वृन्दावनदास।

यद्यपि इससे पूर्व अलीगढ़ जनपद में सिकन्दराराऊ नगर में सुकवि राजेश दीक्षित द्वारा संयोजित 'शिशु स्मृति समारोह' में कुछ क्षणों के लिए बाबू जी से मेरी भेंट हो चुकी थी, किन्तु उसमें उनके सामीप्य का लाभ नहीं मिल सका था। उस स्वल्प साक्षात्कार में उनके निरभिमानी, विनम्र और आत्मलीन व्यक्तित्व की छाप तो मेरे मन पर अवश्य पड़ी, किन्तु उनके उस बाह्य के भीतर बैठे लगनशील, अध्यवसायी एवं स्नेहिल व्यक्तित्व के दर्शन मुझे उस समय नहीं मिल सके जिसका वास्तविक रूप आगे चल कर देखने को मिला। इस पत्र के बाद एक ओर जहाँ बाबू जी से भेंट करने की उत्कट इच्छा मुझमें जाग्रत हुई वहाँ दूसरी ओर श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा उनसे हुई विभिन्न भेंटों में बाबू जी के विषय में कहे गए विभिन्न कथनों के आधार पर उनके क्रियाशील व्यक्तित्व का रूप भी मेरी कल्पना में धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा। वह रूप एक ऐसे व्यक्ति का था जो चतुर्वेदी जी की ही भाँति नित्य प्रति पत्र-लेखन में एकाधिक घन्टा लगाता हुआ ब्रज मंडल एवं उससे बाहर साहित्यिक क्रिया-कलापों में ब्रजभाषा और हिन्दी के प्रचार, प्रसार तथा समृद्धि से सम्बद्ध विभिन्न योजनाओं की पूर्ति में ही अपना सारा समय देता है। वह व्यक्ति न केवल स्वयं इन कार्यों में लगा रहता है, वरन ब्रज मंडल के अनेक कार्यकर्ताओं, लेखकों, कवियों और विद्वानों को भी पत्रों के माध्यम से प्रेरित करता रहता है। इस प्रकार मेरे मस्तिष्क में बाबू जी का एक पूर्णतः समर्पित व्यक्ति का चित्र बनता जा रहा था।

संयोगवश एक विद्यालय के प्रधानाचार्य का चयन कराने के लिए शिक्षा विभाग के प्रतिनिधि के रूप में मुझे मथुरा जाना पड़ा। इस अवसर का लाभ उठा कर मैं बाबू जी से भेंट करने के लिए अपने सहकारी श्री यादवेन्द्र आमौरिया के साथ उनके निवास पर जा पहुँचा। भृत्य के द्वारा सूचित किए जाने पर जब वह अपने सुसज्जित कक्ष से बाहर आए तो न मैं उन्हें पहचान सका और न वह मुझे पहचान सके। उसका कारण यह था कि समारोह में हम लोगों की भेंट मात्र औपचारिक थी और उस समय वेश-भूषा एवं मुद्रा भी भिन्न थी। मैंने जैसे ही उन्हें अपना परिचय दिया कि उनके मुख पर अंकित अपरिचय का भाव गहरी आत्मीयता में परिवर्तित हो गया। इसके अनन्तर जो दो-तीन घन्टे उनके साथ व्यतीत हुए वे बहुत सुखद थे, अकृत्रिम आतिथ्य, स्नेह और अपनत्व से शराबोर। इस अवसर पर 'ब्रज भारती', जनपदीय आन्दोलन, ब्रज मंडल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि अनेक विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। मैंने देखा साठ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

से ऊपर आयु होने पर भी दोपहर को भोजनोत्तर दस मिनट के ही विश्राम के उपरान्त काम करने के लिए वह अपनी कुर्सी पर आ गए और मेज पर कागज-पत्रों के ढेर को उलटने-पलटने में लग गए। मैं सोचने लगा यह आयु और काम की यह धुन। वास्तव में लक्ष्मोन्मुखी व्यक्तियों के जीवन में एक विकट बड़वानल जलती रहती है जो उन्हें विश्राम करने ही नहीं देती। जिनके लिए सोद्देश्य कर्म मुख्य और विश्राम गौण होता है वे व्यक्ति महापुरुषों की श्रेणी में आते हैं। इस अर्थ में बाबू जी भी महत् कार्य में संलग्न महापुरुषों की सीमा-रेखा को स्पर्श कर लेते हैं। उनमें सामान्यता की महत्ता मूर्तिमती हो गयी है।

उपर्युक्त प्रथम भेंट के अनन्तर तो कई अवसरों पर बाबू जी के सामीप्य का लाभ मुझे मिला। प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन, 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र नामक ग्रंथ जिसके वह सम्पादक हैं, विमोचन, सूर-स्मारक मंडल का अधिवेशन आदि आयोजनों में उनके नेतृत्वशील एवं कर्मठ व्यक्तित्व के दर्शन मिलते रहे हैं। डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० सत्येन्द्र, श्री प्रभात शास्त्री आदि विद्वानों के मध्य मैंने उन्हें देखा है। उन्होंने विभिन्न अवसरों और विषयों पर मुझे अनेक पत्र लिखे हैं। डा० भगवान सहाय पचौरी सदृश कतिपय मित्र भी उनके और मेरे बीच की कड़ी बने रहे हैं। इन विभिन्न माध्यमों से बाबू जी के साहित्य-सेवी, समाज-सेवी, नगर-सेवी, शिक्षा-सेवी, एवं बहुमुखी कृतित्व-सम्पन्न जीवन का परिचय प्राप्त कर मैं अभिभूत होता रहा हूँ। 'डा०बनारसीदास चतुर्वेदी-साधक एवं प्रेरक' अभिनन्दन ग्रंथ का संयोजन एवं प्रकाशन अपने आप में एक ऐसी कथा है जो उनके व्यक्तित्व की पर्तों को उभाड़ कर उसका उज्ज्वल स्वरूप हमारे समक्ष रख देती है। श्रद्धेय चतुर्वेदी जी के श्रीमुख से ही मुझे वह पूरी कथा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

डा० सत्येन्द्र ने उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का इन शब्दों में सुन्दर विश्लेषण किया है—'बाबू वृन्दावनदास जी को मूलतः मैं लेखक मानता हूँ—अध्ययनशील लेखक। अभिव्यक्ति की छटपटाहट इन्हें अन्य क्षेत्रों की ओर भी घसीट ले गयी—ये समाज सेवा के व्रती बने। बाबू जी में अभिव्यक्ति के लिए जो मूल छटपटाहट थी, वह अपनी मूल लीक से च्युत होकर समाज और नगर सेवा की ओर झुक गयी—यहाँ तक कि इनकी भटकी हुई अभिव्यक्ति-इच्छा व्रज-साहित्य-मंडल से जा टकरायी। वास्तव में आत्मान्वेषण की दीर्घ यात्रा में बाबू जी अनेक पड़ावों पर स्वल्प काल के लिए रमते हुए भी निरन्तर आगे चले आ रहे हैं। लेकिन उनके ये पड़ाव पड़ाव ही रहे हैं, लक्ष्य नहीं बने। इस यात्रा में सहसा उनकी भेंट एक ऋषि से (डा० बनारसीदास चतुर्वेदी) हो गयी जिन्होंने उनके लक्ष्य की सही दिशा को इंगित कर दिया। तब से बाबू जी अविश्रांत उस लक्ष्य की ओर यात्रा जारी रखे हुए हैं।

बाबू जी की साहित्यिक कर्मण्यता में उनके अन्वेषी रूप के अतिरिक्त विचारक का रूप भी प्रमुखता से उभरता है। वह मुख्यतः इतिहास के अध्येता एवं व्याख्याता हैं। इतिहास को उन्होंने घटनाओं के अभिलेख के रूप में नहीं, वरन इन घटनाओं के आवरणों में निहित सांस्कृतिक विकास-क्रम के रूप में देखा है। उनके निबन्ध संग्रह 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक निबन्धों से यह स्पष्ट हो जाता है। इनमें उन्होंने भारतीय संस्कृति की आत्मा को पहचानने और खोजने का प्रयास किया है। यह खोज सोद्देश्य है क्योंकि उनके कथनानुसार जब तक नागरिकों में अपनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के प्रति स्वाभिमान की भावना न होगी, तब तक उनके देश में सच्ची राष्ट्रीयता स्थापित न हो सकेगी।' इसके अनुसार इन निबन्धों के माध्यम से उन्होंने सच्ची राष्ट्रीयता स्थापित करने का प्रयास किया है। उनमें भारतीय समाज की विभिन्न कुरीतियों के निवारणार्थ दिए गए सुझावों में उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

झलक मिलती है। इसी संग्रह में साहित्यकारों पर लिखे गए निबन्धों में सम्बद्ध साहित्यकार के अन्तरंग और बहिरंग का उन्होंने मानवीय रूप उभारा है। विषय-वैविध्य, विश्लेषणात्मक तर्कपूर्ण शैली, मौलिक चिन्तन और सहज बोधगम्य भाषा के कारण बाबू जी का यह निबंध संग्रह हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण देन होने के साथ उनके बहुज्ञ और सुलझे हुए व्यक्तित्व का भी परिचायक है। इसमें उनका कृतिकार अपनी कृतियों से एकात्म है।

ब्रज-साहित्य मंडल के अध्यक्ष के रूप में ब्रज-भारती का सम्पादन अपने हाथ में ले कर उसके माध्यम से उन्होंने न केवल ब्रजभाषा, वरन् बुन्देलखण्डी भाषा, भोजपुरी भाषा एवं समग्र रूप में हिन्दी भाषा की महत्वपूर्ण सेवा की है। इस पत्रिका के प्रारम्भिक पृष्ठों में सम्पादकीय के अन्तर्गत अन्तरप्रान्तीय साहित्यिक गतिविधियों, पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्यकारों से सम्बद्ध टिप्पणियाँ दे कर बाबू जी कार्यकर्ताओं एवं लेखकों को प्रेरित करते हुए सम्पर्क स्थापित करने का आधार तैयार करते रहते हैं। बाबू जी के समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण भी इस पत्रिका की बहुत उपयोगिता है। वस्तुतः यह पत्रिका उनका सतत चलने वाला साहित्यिक अनुष्ठान है जिसमें संभवतः उन्हें अपने व्यक्तिगत अर्थ की भी आहुतियाँ देनी होती हैं।

'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' नामक ग्रंथ का सम्पादन बाबू वृन्दावनदास जी द्वारा हिन्दी साहित्य को उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण देन है। हिन्दी भाषा में केवल नामोल्लेख के लिए ही पत्र-साहित्य मिलता है। यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण साहित्य-विधा है, किन्तु हिन्दी के साहित्यकारों का इसके प्रति किंचित उपेक्षा-भाव रहा है, अन्यथा गत एवं वर्तमान मूर्धन्य साहित्यकारों के पत्रों के संकलन उनके प्रशंसकों एवं प्रेमियों द्वारा निकाले जाने चाहिए थे, क्योंकि पत्र ही एक मात्र ऐसी विधा है जिसमें व्यक्ति और युग की अंतरंग झांकी मिल सकती है। इन पंक्तियों के लेखक ने इस ग्रंथ के विमोचन के अवसर पर बोलते हुए बाबू जी की देन की सराहना करते हुए कहा था, 'हम आज सब कुछ लिखते हैं—कविता लिखते हैं, कहानी लिखते हैं, नाटक लिखते हैं, और भी बहुत-सी चीजें लिखते हैं—अगर कुछ नहीं लिखते हैं तो केवल पत्र, पत्र जो उत्प्रेरक हों, युग के प्रतिबिम्ब हों और हों व्यक्ति के परिचायक।' इस दृष्टि से बाबू जी द्वारा इस ग्रंथ का सम्पादन पत्र-साहित्य में मील का पत्थर माना जाना चाहिए। इसमें उन्होंने केवल अपने पत्रों को ही संकलित न कर आत्म-प्रदर्शन से रहित विशाल हृदयता का परिचय दिया है क्योंकि "केवलाघो भवति केवलादि" (जो अकेले खाता है, पाप खाता है) वेद मंत्र के अनुसार यह सर्वथा उचित ही था। यह कार्य उनकी समन्वयशील वृत्ति का परिचायक है। संयोगवशात श्रद्धेय चतुर्वेदी जी द्वारा उनको लिखे गए पत्रों में परोक्ष में बाबू जी के बहुमुखी व्यक्तित्व की झांकी भी मिल जाती है। इनसे यह प्रकट है कि बाबू जी किस प्रकार ब्रज-प्रदेश के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्नशील हैं और तदर्थ अनेक कार्यकर्त्ताओं से सम्पर्क रखते हैं। इस संदर्भ में श्रद्धेय चतुर्वेदी जी द्वारा उनको प्रदत्त 'ब्रज-मंडल के साहित्यिक कमिश्नर' की उपाधि सर्वथा सार्थक है।

समग्रतः बाबू वृन्दावनदास जी के व्यक्तित्व का सर्वांशतः आकलन करने पर यह भलीभांति देखा जा सकता है कि उनमें एक अद्भुत साहित्यिक समन्वय मिलता है। यह समन्वय प्राचीन और नवीन का है, चिंतन और कर्म का है और है सर्जन तथा संयोजन का। आज सचमुच ही उनके मुख से ब्रज बोलता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एकनिष्ठ साधक

⊙

डा० राज बुद्धिराजा

एम० ए०, पी-एच० डी०

कुछ लोग जीवन के चित्रपट पर अपना प्रभावशून्य अभिनय कर शीघ्रता से चले जाते हैं और कुछ क्षण भर में ही अपनी छाप व्यक्ति और परिस्थितियों पर छोड़ जाते हैं। बाबू जी ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने 'व्यक्ति' की छाप हर व्यक्ति पर छोड़ देते हैं, अपनी गहराई से हर व्यक्ति को गहरा देते हैं। वर्षों के उतार-चढ़ाव की कहानी कहता चेहरा, स्नेह और आत्मीयता बिखेरती चश्मे से झांकती आँखें, ठेठ ब्रजवासीपन लिए पान से रंगे होंठ तथा सरसतापूर्ण उन्मुक्त हास बिखेरती स्पष्ट आवाज निकट आने वाले हर व्यक्ति को बरबस अपनी ओर खींच लेती है और उस व्यक्ति विशेष पर कुछ समय के लिए तो हावी हो ही जाती है।

'शहरीपन' से दूर दिन-रात अपने ही काम में व्यस्त रहने वाले बाबू जी में साहित्यकार की बू नाममात्र को भी नहीं है। व्यस्त न होने पर भी व्यस्तता का ढोंग और संपर्क में आने वाले व्यक्तियों से अजनबी व्यवहार, परिजनों की उपेक्षा वृत्ति, रचनाओं को छपवाने और बेचने की धुन में एक दूसरे पर कीचड़ उछाल प्रवृत्ति आदि आज के साहित्यकार के जितने भी अजूबे हैं उनसे ये कोसों दूर हैं। शहरी साहित्यकार और पाठक की लंबी दूरी यहाँ आ कर कम हो जाती है। जो भी व्यक्ति एक बार इनके संपर्क में आ जाता है उसका औपचारिक परिचय शीघ्र ही घनिष्ठता में बदल जाता है, नयी पीढ़ी का विद्रोह मित्रता में बदल जाता है।

नये लेखकों के प्रति सहृदयता और लगाव इनकी विशेषता है। ये यथाशक्ति नये लेखकों को प्रोत्साहन देते रहते हैं। इस पीढ़ी के प्रति उदारतापूर्ण दृष्टिकोण मुझे आगरा में आयोजित ग्वाल शताब्दी समारोह में देखने को मिला। गोष्ठी और कवि-सम्मेलन दोनों में युवकों के प्रति इन्होंने जो रवैया अपनाया वह देखने योग्य था। जिस व्यक्ति का कभी नाम भी नहीं सुना था—उसे भी इन्होंने कवि-सम्मेलन के मंच पर कविता-पाठ करने का अवसर दिया। प्रतिष्ठित साहित्यकारों के अतिरिक्त अप्रतिष्ठित लेखकों का भी इन्होंने तपाक से स्वागत किया। उनके खानपान आवास की व्यवस्था का भार इन्हीं के वृद्ध किंतु सुदृढ़ कंधों पर था। सच तो यह है कि इनका अतिथि सत्कार प्राचीन वृन्दावनी प्रणाली पर आधारित है जहां प्रत्येक व्यक्ति को पूज्य मान कर उसका सत्कार किया जाता है और उस सत्कार में निश्छलता और आत्मीयता के अतिरिक्त और कुछ ढूँढ़ने को भी नहीं मिलता। वर्षों की अवधि ही केवल संबंधों को मज़बूत नहीं बनाती बल्कि आत्मीयता की गहराई निश्छलता उत्पन्न करती है। यही कारण है कि इनका आत्मीय आतिथ्य अतिथि के मन में जो श्रद्धा उत्पन्न कर देता है वह जीवन भर ज्यों की त्यों बनी रहती है।

साहित्यकार केवल कृतियों के माध्यम से ही पाठक तक नहीं पहुँचता, पत्रों के माध्यम से भी पहुँचता है। कुशल पत्र-व्यवहार भी एक कला है जिसे हर कोई नहीं कम से कम साहित्यकार तो नहीं अपना सकता। यह कला केवल पत्रों को दृष्टिकोण में रख कर नहीं नापी जा सकती। पत्र व्यक्ति के भावों का अनुवाद होते हैं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और बाबू जी के व्यक्ति की यह विशेषता है कि वह दूर-दूर से आए पत्रों का उत्तर अविलंब देता है। उसके संसार में पत्रों को रद्दी के टोकरे में डालने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस दृष्टि से वे श्रद्धेय बच्चन जी के समकक्ष ठहरते हैं जो प्रत्येक पाठक के पत्र का उत्तर अपने हाथ से लिख कर देते हैं। इनके पत्र ठीक नाप तोल कर इनके व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों द्वारा ब्रज साहित्य तथा शोध संबंधी सूचनाएँ पूर्ण रूपेण मिल जाती हैं।

ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष रूप में बाबू जी का चित्रण करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं तो उस व्यक्ति का रूप प्रस्तुत करना चाहती हूँ जो सुयश के प्रलोभन और अपयश के भय से दूर एकनिष्ठ हो कर दिन-रात साहित्यिक खोज में जुटा हुआ है। कुछ व्यक्ति युगों में जीते हैं और कुछ क्षणों में बाबू जी ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने जीवन-घट की एक-एक बूँद को पिया है। न केवल पत्र-व्यवहार बल्कि संपादन के क्षेत्र में भी इन्होंने एकनिष्ठा का परिचय दिया है। नये लेखकों और कृतियों की जानकारी तथा अनुपलब्ध साहित्य से परिचय ब्रज भारती द्वारा हो जाता है। ब्रज क्षेत्र के समाचारों और ब्रजभाषा के अपरिचित कवियों को सामने लाना अपने आप में बहुत बड़ा काम है।

सच तो यह है कि इनकी कर्मठ वृद्धावस्था के सामने आज का यौवन शरमाता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य के अक्षयवट

⊙

परमानन्द पाण्डेय

एम० ए०, बी० एल०

जो अपने व्यक्तित्व को 'स्व' में केन्द्रित कर देता है उसका 'स्व' भी कालचक्र में विलुप्त हो जाता है, जैसे सागर-तल पर एक बुलबुला उठा और विलीन हो गया, अज्ञात-अदृष्ट। किन्तु, जो अपना 'स्व' 'पर' को समर्पित कर देता है उसका व्यक्तित्व उस अक्षयवट की व्यापकता को प्राप्त कर लेता है, जो अनेक श्रान्त पथिकों को सुखद शीतल छाया और कलरव करते खगकुल को अपने सबल स्कंधों पर आश्रय देता है। साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी उसी अक्षयवट की प्रतिमूर्ति हैं।

अनेक वर्ष पूर्व लोक-साहित्य के अध्येता पण्डित गणेश जी ने आपसे मेरी चर्चा की थी। आपको ज्ञात हुआ कि मैं प्राचीन अंग-जनपद, अर्थात् वर्तमान भागलपुर प्रमण्डल की उपेक्षित लोकभाषा 'अंगिका' के उन्नयन के निमित्त कुछ कार्य कर रहा हूँ। श्रद्धेय बाबू साहब तो जनपदीय भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के अन्यतम उद्धारक ही हैं। अंगिका के विकास-कार्य की जानकारी प्राप्त होते ही गद्‌गद हो उठे और सहज ही उनके आत्मीय जनों की सूची में स्थान पा जाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। फिर तुरत उनका कृपा-पत्र; पत्र के प्रत्येक अक्षर से स्नेह सौजन्य और आत्मीयता व्यक्त हो रही थी। उस समय मैंने ऐसा अनुभव किया कि आपसे मेरा बहुत ही पुराना परिचय है और आप एक हितैषी सुहृदय हैं। यह आपकी अनुपम महनीयता कि मुझ जैसे लघु व्यक्ति को आपने बन्धुवत् आदर दिया जब कि मैं उनके अनुज-स्नेह का ही अधिकारी हूँ। उसके बाद आपका आशीर्वाद और पुण्य ब्रजभूमि का प्रसाद-रूप ब्रजभारती मुझे नियमित रूप से मिलती रही।

मैंने कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए श्रद्धेय बाबू साहब की सेवा में एक पत्र भेजा तो तुरत आपका उत्तर मिला —

"मान्यवर पाण्डेय जी, प्रणाम। कृपा पत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद। साहित्यिक बन्धुओं से सुखद संवाद पाकर मन को जो प्रसन्नता होती है वह वर्णनातीत है। गणेश जी हमारे परम मित्र हैं। वे सहज स्नेहवश सभी जगह हमारे द्वारा की गयी क्षुद्र सेवा की श्लाघा करते रहते हैं।"

उपर्युक्त शब्दों से आपकी सदाशयता, और विनम्रता प्रकट होती है। आप में साहित्य-सर्जना की नैसर्गिक निष्ठा है। साहित्य-सेवा के निमित्त आपके अन्तर में सहज आकुलता है, फिर भी जब-जब अवसर आया, आपने समाज की पुकार पर अपने को समर्पित कर दिया।

अनेक वर्षों तक बाबू वृन्दावनदास जी मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर आसीन रहे। इस अवधि में आपने नागरिकों की सुख-सुविधा के लिए नवीन परिवेश प्रस्तुत किया, आगरा विश्वविद्यालय की सिनेट के सदस्य के रूप में आपने शिक्षा जगत् को अपनी शैक्षणिक प्रतिभा से परिपुष्ट किया। किसी भी क्षेत्र में आपकी कर्त्तव्यनिष्ठा और सेवा-तत्परता में त्रुटि नहीं आयी। किन्तु उक्त अवधि में आपका साहि-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

बाँये से (बैठे हुए) सर्व श्रीगोविन्द प्रसाद, दिवाकर लाल, कुसुमाकर लाल, (बाबूजी के तीनों पुत्र) श्री हीरालालजी,
श्रीमती भगवानदेवी (बाबूजी के पिता एवं माता) बा० वृन्दावनदास और उनकी पत्नी श्रीमती प्रकाश वती ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आप भारतीय संस्कृति के निष्णात विद्वान तथा प्रबल अवधारक हैं। भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य नामक कृति से आपकी व्यापक अध्ययनशीलता, गम्भीर चिन्तन और प्रौढ़ लेखन का सहज परिचय मिलता है। साहित्य, संस्कृति, पुराणेतिहास आदि विषयक लेखों के अतिरिक्त आह्लादक संस्मरण एवं पत्रों से सुसज्जित यह ग्रन्थ प्रज्ञा का विस्तृत पटल प्रस्तुत करता है। सरल, स्पष्ट एवं रोचक शैली आपके व्यक्तित्व की सफल संवाहिका है जो गहन विचारों को भी सुग्राह्य बना देती है। इस ग्रन्थ के कतिपय सामाजिक लेखों से मालूम पड़ता है कि आप दृढ़ सनातनी होते हुए भी विवेकपूर्ण प्रगतिशीलता के पक्षपाती हैं। आप रूढ़िवाद की जड़ता से समाज को मुक्त करने के आग्रही हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण लेख आपकी 'साहित्य वारिधि' उपाधि की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। 'ब्रजभारती' से आपकी प्रौढ़ सम्पादन-कला तथा नैसर्गिक गवेषणा वृत्ति का परिचय मिलता है। ब्रज-साहित्य-मंडल और 'ब्रज-भारती' के माध्यम से आपके द्वारा की गयी ब्रज-साहित्य-संस्कृति की सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

जब से आपका परिचय मिला, मैं निरन्तर आपके स्नेह का अधिकारी बना हुआ हूँ। आपकी पटना यात्रा के अवसर पर केवल एक बार आप से भेंट हुई है, किन्तु सैकड़ों मील दूर रह कर भी मैं अपने को आपकी आत्मीयता की परिधि में आवद्ध पाता हूँ। आप जैसे महामनीषी का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि शताधिक वर्षों तक आप स्वस्थ-प्रसन्न रह कर साहित्य-संस्कृति की सेवा करते रहें।

कबहुँक यह तन अधम लहे शुचि व्रज-थल-रेणु विलास,
कर दर्शन लोचन-फल पाऊँ परम विकल अभिलाष।
जय व्रजनन्दन मथुरा वृन्दावन वृन्दावनदास,
वन्दन अभिनन्दन वरेण्य जय व्रज-रज-रत्न प्रकाश॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विनम्रता के प्रतीक

मधुमोद के० रायज़ादा

परमादरणीय बाबू वृन्दावनदास जी के सर्व प्रथम दर्शन, मैंने हृषीकेश जी चतुर्वेदी की षष्ठीपूर्त्ति तथा साहित्यिक स्वर्ण-जयन्ती के भव्य समारोह में किए थे। मैं समारोह का प्रचार-संयोजक तथा बाजार स्वागत समिति की ओर से विशेषतः मनोनीत एकमात्र गैर-व्यापारी सदस्य था। अतः मेरा उनके तुरन्त सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। किन्तु अपनी संकोचशील प्रवृत्ति के कारण ऐसा नहीं हुआ। समारोह में मुख्य अतिथि के चले जाने के बाद पूज्य बाबू जी ने ही अध्यक्ष पद संभाला था। उनके ओजस्वी समापन-भाषण से प्रभावित होने वाले हजारों श्रोताओं में एक मैं भी था। मंच पर, नगर के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों के बीच बन्द कालर के कोट-पैंट में बैठे वह, अन्य लोगों से अलग-अलग दिखाई दे रहे थे। एक सम्पन्न व्यक्तित्व पर सरल-सौम्यता और विद्वत्ता कुछ ऐसी चमक रही थी कि लोग उन्हीं की ओर टकटकी लगा कर देख रहे थे। उनके भाषण में श्रद्धेय चतुर्वेदी जी के प्रति व्यक्त किए गए उद्‌गार तथा साहित्यकारों के प्रति आवाहन सब कुछ बहुत ही प्रेरणाप्रद था।

सम्पादकाचार्य पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को उनके ७७ वें जन्म-दिवस (२४, दिसम्बर, १९६८) पर भेंट की गई 'अभिनन्दिनी' में जब मेरा भी लेख छपा तो वह मेरी ओर उन्मुख हुए। किन्तु अभी तक वार्तालाप अथवा पत्र-व्यवहार का सौभाग्य मैं नहीं पा सका था। फिर जब पूज्य दादा जी (लेखक-प्रवर श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी) को सस्ता-साहित्य-मंडल नई दिल्ली की ओर से उप-राष्ट्रपति महामहिम डा० गोपालस्वरूप पाठक द्वारा भेंट किए जाने वाले अभिनन्दन-ग्रन्थ—'प्रेरक-साधक' के अन्तर्गत ब्रजभूमि खंड के लिए लेख भेजने का निमन्त्रण मुझे भी मिला और मेरा लेख छपा, तो मैं ठगा सा रह गया। कारण...? इस राष्ट्रीय स्तर के अभिनन्दन-ग्रन्थ में प्रकाशित लेखकों में, मैं नई पीढ़ी तथा अल्पायु का एकमात्र लेखक हूँ। अतः इन सभी वरिष्ठ सम्पादकों तथा पूज्य बाबू जी के प्रति मेरा श्रद्धा नत् हो जाना पूर्णतः स्वाभाविक था। पर, पूज्य बाबू जी से व्यक्तिगत रूप से वार्तालाप का सर्वप्रथम सौभाग्य मुझे ८ नवम्बर, १९७० को उस भव्य-समारोह के पश्चात् ही मिल सका, जो ब्रज साहित्य मंडल आगरा द्वारा उन्हें उत्तर प्रदेशीय साहित्य सम्मेलन द्वारा सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य-वारिधि' से सम्मानित किए जाने के उपलक्ष में किया गया था। तब से आज तक मेरा उनसे अटूट सम्बन्ध है। वह व्यक्तिगत तथा पत्रों के द्वारा मेरा प्रेरणात्मक मार्ग दर्शन करते रहते हैं।

बाबू वृन्दावनदास जी का जन्म मथुरा नगरी के एक अत्यन्त सम्मानित तथा सम्पन्न प्रेसाध्यक्ष श्री हीरालाल जी के यहाँ १९०६ में हुआ था। साहित्यिक प्रतिभा उन्हें विरासत में मिली, उनका कहना है "लिखने की प्रवृत्ति बचपन से ही है। पिता प्रकाशक हों और ऐसे प्रकाशन के स्वामी हों जिससे छोटे-बड़े ४०० प्रकाशन निकले हों तो पढ़ने और लिखने की प्रवृत्ति बन जाना स्वाभाविक सी है। मेरे पिताजी प्रसिद्ध श्याम काशी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेस नामक संस्थान के स्वामी थे। मैं कवि नहीं हूँ। संस्कृत और इतिहास दोनों विषय बी० ए० तक रहे। अतः साहित्य में रुचि सदा से ही रही। मेरे पिताजी चाहते थे कि मैं संस्कृत में एम० ए० करूँ। परन्तु प्रत्येक शनिवार को घर आने और कालेज के बजाय घर का अधिक ध्यान रखने के कारण २ वर्ष में एल-एल० बी० ही पास कर के सन्तोष करना पड़ा। एम० ए० की कक्षा में प्रवेश तक न किया।"

पूज्य बाबू जी को मैंने अति निकट से देखा-जाना है। वह मथुरा नगरी के अत्यन्त आदरणीय नागरिक ही नहीं अपितु एक सक्रिय साधक-सेवी और इससे भी बढ़-चढ़ कर एक सच्चे मानव हैं। उनका मानवीय गुण ही उन्हें समाज के प्रायः सभी वर्गों के प्रति परम आदरणीय बनाए हुए है। मैंने उनसे विविध-विषयों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया है। मेरी धारणा है कि वह केवल, एक धुरन्धर विद्वान ही नहीं बल्कि एक युग द्रष्टा भी हैं। आज के इस घोर राजनैतिक वातावरण में कमल के समान रह कर दूसरों की सेवा में लगे रहना और बहुप्रिय होना, कितना कठिन होता है, यह तथ्य सर्व विदित है। किन्तु वह इसके अपवाद हैं। उनमें कितनी ही ऐसी विशेषताएं हैं, जो विरलों में ही मिलती हैं। ब्रजभूमि की इस विभूति का व्यक्तित्व तथा कृतित्व दोनों ही महान एवं अनुपम है। आज राजनैतिक रूप से निराश तथा कुछ अवसरवादी नेता जिस ढंग से ब्रज प्रदेश के निर्माण के लिए केवल कोरी नारेबाजी कर रहे हैं, उसमें उनके कितने निहित स्वार्थ हैं, यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है। किन्तु ब्रज-प्रदेश के निर्माण से पूर्व उनमें से कितनों ने उचित वातावरण तैयार किया है, यह अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। विद्वानों का कथन, कि किसी देश का सही प्रतिनिधित्व उसका साहित्य ही करता है, ब्रज-प्रदेश के लिए कितनी सत्यता लिए हुए है। अतः ब्रज-प्रदेश की मांग के साथ ही उसके बहुमूल्य साहित्य-संस्कृति की भी रक्षा करनी होगी। काश, यह तथ्य हमारे नेता भी समझ पाते। सौभाग्य से श्रद्धेय बाबू जी १९५७ से ब्रज-साहित्य-मंडल के विभिन्न पदों पर रह कर इस ओर संलग्न हैं। वर्तमान में मंडल के अध्यक्ष तथा 'ब्रज-भारती' के निरन्तर निःशुल्क सम्पादन, प्रकाशन और वितरण के द्वारा जो ब्रजभूमि की अनुकरणीय सेवा कर रहे हैं, वह निश्चय ही स्तुत्य है। मुझे विश्वास है कि ब्रजभूमि उनकी निःस्वार्थ सेवाओं का यथासमय उचित सम्मान अवश्य करेगी।

पूज्य बाबू जी एक सरल-सौम्य मानव ही नहीं, वरन् एक सक्रिय साधक-सेवी भी हैं। उनकी अब तक की महान उपलब्धियाँ ३ वर्गों में जानी-मानी जाती हैं। एक साहित्य-सेवी के रूप में—'ब्रज-भारती' का सम्पादन, हिन्दी में जनपदीय आन्दोलन का नेतृत्व, अहिन्दी-क्षेत्रों में हिन्दी का ठोस प्रचार-प्रसार, अनेक पत्र-पत्रिकाओं के स्थायी लेखक, हिन्दी में नूतन विधाओं के प्रवर्त्तक, शोधपूर्ण ग्रन्थों के लेखक-सम्पादक आदि के रूप में उनकी सेवाएँ हिन्दी वल्लरी को हरा-भरा किए हुए हैं। यही कारण है कि वह नई-पीढ़ी के प्रति जहाँ प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं वहाँ पुरानी-पीढ़ी के पोषक भी हैं। उनके इस महान योगदान को स्वीकार कर, उत्तर-प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें अपनी सर्वोच्च उपाधि "साहित्य-वारिधि" से विभूषित कर वास्तव में स्वयं को गौरवान्वित किया है।

आदरणीय बाबू जी ने १९२८ में एल-एल० बी० करने के बाद वकालत अथवा व्यापार की ओर ध्यान न दे कर सक्रिय समाज-सेवा के द्वारा अपने सार्वजनिक जीवन का शुभारम्भ किया था। लगभग १८ वर्षों तक मथुरा नगरपालिका के सम्मानित सदस्य तथा पश्चात् अध्यक्ष के रूप में आपने मथुरा नगरी को जो आधुनिक रूप दिया है, वह आपको 'नगर-पिता' कहलाने का गौरव प्रदान करता है। आपका सामाजिक जीवन आनरेरी मजिस्ट्रेट, पुरातत्व संग्रहालय मथुरा की प्रबन्ध-समिति के सदस्य, उत्तर प्रदेशीय चैम्बर आफ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कामर्स के सदस्य तथा इनके अतिरिक्त प्रादेशिक स्तर के सहकारी बैंक, सहकारी फैडरेशन, सहकारी यूनियन आदि के संचालक-मंडलों के सदस्य आदि के रूप में गौरवपूर्ण रहा है। वह अनेक सामाजिक संस्थाओं से आज भी तथा सदा सम्बन्धित रहे हैं और रहेंगे। कदाचित् इसका एकमात्र कारण उनकी निःस्वार्थ सेवा-प्रवृत्ति, विद्वत्ता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा ही है। उनकी सेवाएँ एक प्रमुख शिक्षा-शास्त्री के रूप में भी आंकी जाती हैं। वह नारी-शिक्षा के कट्टर समर्थक हैं। मथुरा-नगरी के अग्रवाल कन्या विद्यालय, बी० एन० पोद्दार इण्टर कालेज, चम्पा अग्रवाल इण्टर कालेज, बी० एस० ए० कालिज आदि की प्रबन्ध-समितियों के महत्वपूर्ण पदों पर रह कर आज भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार में रत हैं।

बाबू वृन्दावनदास जी अपने इन दुर्लभ गुणों के कारण ही उत्तर प्रदेश की साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक चेतना की प्रतीक संस्था "त्रिसा" के भी संस्थापक तथा संचालक सदस्य हैं जो अखिल भारतीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में भारतीयता के प्रचार-प्रसार के लिए कटिबद्ध है।

आज जब कि हिन्दी-संसार साहित्य-वारिधि तथा सम्पादक-प्रवर बाबू वृन्दावनदास जी का जन्म-दिवस मना रहा है, मैं नत मस्तक हो कर उस परम् पिता परमेश्वर से याचना करता हूँ कि वह अपने जीवन का १०० वाँ जन्म-दिवस भी मनाएँ, सुख-स्वास्थ्य-समृद्धि-कीर्त्ति उनके चरण चूमे और वह सदा 'हिन्दी' की श्री वृद्धि करते रहें। मैं पुनः उनका अभिनन्दन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रशस्त पुण्य पंथ के पथिक

डा० गनेशीलाल बुधौलिया

एम० ए०, पी-एच० डी०

'ब्रज-भारती' के माध्यम से बाबू जी से परिचय हुआ और साथ ही उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का बोध। जहाँ तक व्यक्तित्व का प्रश्न है एक आभिजात्य सम्पन्नता तथा कुलीनता की आभा उनके व्यक्तित्व को घेरे हुए है। बाबू जी ब्रज के एक परिवार की साहित्यिक परम्परा के गौरव रत्न हैं। आप लाल बलबीर के छोटे भाई द्वारिकादास जी के दौहित्र हैं। लाल बलबीर ब्रज के यशस्वी महाकवि ग्वाल के समकालीन थे और स्वयं बड़े अच्छे कवि थे। आपका बुन्देलखंड के रजवाड़ों में कवि के नाते अच्छा सम्मान था। बाबू जी का ब्रज की राजनीति तथा साहित्य दोनों में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मथुरा नगरपालिका के कई वर्षों तक आप सफल अध्यक्ष रहे। अब राजनीति से विदा ले कर साहित्य और संस्कृति की साधना में संलग्न हैं। कई शिक्षा संस्थान आपसे संबंधित रहे हैं। ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष के रूप में आप मण्डल की सराहनीय सेवा कर रहे हैं। 'ब्रज-भारती' पत्रिका के तो आप जीवन-दाता ही हैं। सन १९६३ में वे अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के कार्य वाहक अध्यक्ष हुए थे और सन् १९६४ से 'ब्रज-भारती' सम्पादक के रूप में हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। ब्रज साहित्य मण्डल में कुछ वर्षों तक गतिरोध रहा। इधर जब से बाबू जी ने उसका कार्य भार संभाला और ब्रज-भारती को पुनः जीवन दिया तब से उसके स्वरूप में एक नया निखार आया, उसको गति मिली और एक दिशा मिली।

बाबू जी का व्यक्तित्व चुम्बकीय और पारदर्शी है। कुछ विशिष्ट जीवन मूल्यों को वे अपने में संजोये हुए हैं। उनमें ज्ञान की गरिमा के साथ विनम्रता, शिष्टता, उदारता और सहृदयता आदि गुण सन्निहित हैं। उनमें प्राचीन के प्रति मोह और नवीन के प्रति आकर्षण है। अपनी देवोपम संस्कृति और अपने अतीत के ऐतिहासिक गौरव के प्रति उनकी आस्था है, श्रद्धा है। उनके साहित्यकार का स्वरूप स्वस्थ, प्रेरक और प्रौढ़ है। उसके पीछे चालीस वर्षों से अधिक की उनकी सतत साधना है। ब्रज-भारती के माध्यम से बाबू जी के पत्रकार तथा साहित्यकार के स्वरूप को भली प्रकार परखा जा सकता है। उनका दृष्टिकोण बहुत साफ है। उनके सम्पादकीय ज्वलंत प्रश्नों और समस्याओं से संबंधित होते हैं। भाषा की समस्या के संबंध में उनके कुछ विचार देखिए—

"उस भाषा की जिसे देश की जनता का दो-तिहाई भाग भली भाँति बोल और समझ सकता है और शेष एक तिहाई का अधिकांश भी टूटी-फूटी भाषा के रूप में सुन समझ सकता है समस्या ही क्या हो सकती है? उसकी समस्यायें तो राजनीति की देन हैं। हिन्दी की व्यापकता और लोकप्रियता उसके राष्ट्र भाषा होने की दलील है। किसी भी स्वतंत्र देश की राष्ट्रभाषा उसकी निजी भाषा हो सकती है। विदेशी भाषा कदापि नहीं।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आज दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रति जो द्रोह पैदा कर दिया गया है तथा जो उन्माद वहाँ व्याप्त है उस संबंध में बाबू जी के हृदय की वेदना देखिए—

"दक्षिण भारत में हिन्दी के विरोध में चल रही आंधी को देख कर प्रत्येक भारतवासी का हृदय दुःख से शतधा विदीर्ण हो रहा है। राष्ट्रीय एकता के इस ध्वंस से प्रत्येक भारतवासी देश प्रेमी को एक गहरा आघात पहुँचा है। जो हिन्दी राजा जी, महात्मा गांधी, जवाहरलाल प्रभृति देशवन्द्य नेताओं द्वारा देश की एकमात्र सम्पर्क भाषा के रूप में मान्य हो चुकी है, उसी मातृभाषा हिन्दी को हिन्दी राक्षसी, हिन्दी दानवी की आकृतियों में अग्निसात किया जा रहा है। कैसी विडम्बना है? हिन्दी को यह समझना कि वह उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश अथवा बिहार की ही भाषा है, एकदम गलत है। हिन्दी पूरे देश की भाषा है।"

इससे एक बात स्पष्ट है। जहाँ बाबू जी हिन्दी के प्रति निष्ठावान हैं वहाँ उनमें अन्य प्रान्तीय भाषाओं के प्रति दुर्भाव तथा संकीर्णता नहीं है। उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा था—

प्रकाश-भवन
मथुरा, ५-२-१९६९

प्रिय डा० बुधौलिया जी,
नमस्कार।

कृपा पत्र आपका मिला। धन्यवाद।

मैं ब्रजभाषा और स्थानीय किसी भी भाषा में कोई भेद-भाव नहीं समझता। मैं हिन्दी का कार्यकर्ता हूँ और इन समस्त भाषाओं को हिन्दी का ही रूप मानता हूँ। ब्रज साहित्य मण्डल का अध्यक्ष होने के नाते ब्रजभाषा का काम भी इसलिए करता हूँ कि ब्रजभाषा हिन्दी के साहित्य की भाषा है। यदि हिन्दी की उन्नति करनी है तो ब्रजभाषा ही नहीं समस्त स्थानीय भाषाओं की उन्नति करनी होगी। विघटनकारी वृत्तियाँ सदैव इस देश के लिए अभिशाप रही हैं। हिन्दी, हिन्दू, हिन्द के कल्याण के लिए सदैव समन्वय का दृष्टिकोण ही अभीप्सित है। हिन्दी के उन्नयन और चलन के लिए प्रबल सौहार्द की आवश्यकता है। मद्रास के कुछ सज्जन मेरे घर पर पधारे थे। मैंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के माध्यम से एक निबंध प्रतियोगिता पुरस्कार चालू कर रक्खा है। मैंने उनसे कहा कि कुछ भी कहिए, परंतु हिन्दी को प्रत्येक भारतवासी तक पहुँचा जरूर दीजिए। राष्ट्रभाषा होने के नाते हिन्दी हमारी एकता की प्रतीक है।

शुभेच्छु, वृन्दावनदास

इस पत्र में बाबू जी का जीवन-दर्शन प्रतिविम्बित है। अपने देश, समाज और साहित्य के प्रति उनकी आत्मीयता और समन्वयवादी भावना के दर्शन होते हैं। देश काल की सीमाओं के संकीर्ण बन्धन उन्हें स्वीकार नहीं। रूसी विद्वान डा० चैनिशोव तथा श्रीमती साजानोवा पर उन्होंने ब्रज भारती में अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में मुक्त कंठ से उनकी हिन्दी साहित्य की सेवाओं की सराहना की है। बाबू जी की साहित्य-साधना के विविध रूप हैं। उन्होंने देश भक्त हौरेशस, काव्य नवनीत, महाकवि ग्वाल पुण्य शताब्दी समारोह, नवीन अध्ययन तथा शोधपीठ, स्व० पं० हरिशंकर शर्मा स्मृति अंक, 'प्रेरक साधक' (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ) आदि ग्रन्थों का सफल सम्पादन किया है।

भारत एक महान देश है, उसका अतीत गौरवपूर्ण है। बाबू जी उसी अतीत के सुधी हैं। परकीय दासता से क्षत-विक्षत अपने देश के ऐतिहासिक गौरव के स्वरूप को सँवारने करने की उन्होंने चेष्टा की है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'ब्रज-भारती' में प्रकाशित उनके कुछ लेख इस बात के प्रमाण हैं। प्रमुख हैं--वेदकालीन भारतीय जीवन की एक झाँकी, विक्रमादित्य का ऐतिहासिक गौरव, वेदों में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री और उसका महत्व, भारतीय इतिहास के पहिले छै मन्वन्तर, प्राचीन भारत के उपनिवेश, वेदों में तत्कालीन सामाजिक दशा का वर्णन, भारतीय इतिहास में 'यदुवंश' वाकाटक वंश, नागवंश आदि। इन लेखों में बाबू जी का सुधी रूप उभर कर आया है। अपने देश के प्राचीन इतिहास को उन्होंने जिस भाषा-शैली में अंकित किया है वह प्रशंसनीय है। लेखों के पढ़ने में कहीं अरुचि उत्पन्न नहीं होती। भाषा में प्रवाह है, मोहकता है और शैली में ताजगी और रोचकता। आज की नई पीढ़ी को अपने अतीत का यह वैभव प्रेरणा तो देता ही है, गर्व गौरव की अनुभूति कराता है और राष्ट्र को अपने स्वरूप को समझने की दिशा प्रदान करता है।

बाबू जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी अपनी लेखनी चलाई है। 'ब्रज भारती' में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का रीति काल' और 'आधुनिक काल' लेख द्रष्टव्य हैं। बाबू जी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सुरुचि के व्यक्ति हैं। वे एक विचारक हैं और मनीषी विद्वान। उन्होंने कई साहित्यकारों और विद्वानों की स्मृति-मंजूषाएँ सजाई हैं और कई उपेक्षित तथा अज्ञातनामा कवियों और लेखकों को प्रकाश में लाए हैं। पत्रकार प्रवर पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ (प्रेरक साधक) के इतने सुन्दर सम्पादन और प्रकाशन में बाबू जी का बहुत बड़ा योगदान है। कविरत्न सत्यनारायण अर्ध शताब्दी समारोह, महाकवि ग्वाल शताब्दी समारोह, सूर समारोह, हरिऔध समारोह, शिशुपालसिंह शिश स्मृति समारोह, अमृतलाल चतुर्वेदी अभिनन्दन आदि आयोजन बाबू जी की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के ज्वलंत प्रमाण हैं।

ब्रज साहित्य मण्डल के पन्द्रहवें अधिवेशन (गाजियाबाद) पर बाबू जी का जो अध्यक्षीय भाषण हुआ था उसमें उन्होंने 'साहित्यकारों की समस्यायें' शीर्षक से जो एक विचार दिया वह रचनात्मक है। वे कहते हैं—

"आज साहित्यकार दो प्रकार के हैं। प्रथम तो वे जो साधन सम्पन्न हैं और जिनकी कोई समस्या नहीं है और दूसरे वे जिनको अनेक समस्याओं ने घेर रक्खा है। जिनकी रचनाएँ उत्कृष्ट होते हुए भी धनाभाव के कारण नहीं छप पातीं हैं। ऐसे लोग यदि सरकारी सहायता की बाट जोहते रहेंगे तो उनको सफलता प्राप्त करने के आसार बहुत ही न्यून हैं। हमारी राय में उन्हें स्वावलम्बन का मार्ग टटोलना पड़ेगा। कुछ समय की बात है केरल राज्य में लेखकों ने सहकारी समिति बना कर आशातीत सफलता प्राप्त की थी।"

आज यदि लेखकों के सहकारी प्रकाशन की योजना किसी प्रकार चल सके तो प्रकाशकों का शोषण बंद हो सकता है। प्रकाशक लेखक का यमदण्ड है। अनगिनी उत्कृष्ट रचनाएँ और कृतियाँ प्रकाशन के अभाव में काल कवलित हो रही हैं। ब्रज-भारती के माध्यम से बाबू जी जो कुछ कर रहे हैं, बहुत कर रहे हैं। वे हमारी आशा और आकांक्षा के केन्द्र हैं। एक प्रकार से वे व्यक्ति नहीं संस्था हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु करे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबूजी अपने अनुज श्री आर० डी० अग्रवाल के साथ (बाँये से), मध्य में श्री घनश्याम दास जी बिड़ला बैठे हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

(बाँये से) सर्व श्री राम सहाय पान्डे, बाबू वृन्दावन दास, सेठ घनश्याम दास बिड़ला, वि. सौ. करुणा, श्री आर. डी० अग्रवाल, श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल ।

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बहुविद्र मृदुल व्यक्तित्व

डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी

एम० ए०, पी-एच०डी०

बाबू वृन्दावनदास जी का जीवन अनुकरणीय है। अनेक विद्यालयों की प्रबंध समितियों में विभिन्न पदों पर रह कर उन्होंने ब्रज जनपद के शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अनेक विद्यालयों की उन्होंने स्थापना की, उन्हें पल्लवित किया तथा उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया।

वे एक मँजे हुए लेखक भी प्रारम्भ से रहे हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण है उन्होंने सामयिक समस्याओं पर अब तक अंग्रेजी और हिन्दी में सैकड़ों पत्र लिखे होंगे जिनकी प्रशंसा बड़े-बड़े सम्पादकों ने की है; इसके अतिरिक्त उन्होंने कई काव्य-ग्रन्थों का सम्पादन किया है तथा भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्धी अनेक खोजपूर्ण लेख लिखे हैं जिनकी प्रशंसा विद्वानों ने की है।

सहकारिता-आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया तथा उससे सम्बन्धित अखिल भारतीय संस्थाओं के सम्मानित सदस्य रहे हैं। मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने नगर की चतुर्मुखी उन्नति में योगदान दिया। विद्यासागर पुस्तकालय, सेवा समिति तथा उत्तर प्रदेशीय-हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा ब्रज साहित्य मंडल आदि अनेक संस्थाएँ हैं जो आपके संरक्षण द्वारा पुष्पित एवं पल्लवित हुई हैं। 'ब्रजभारती' के सम्पादक के रूप में आपने नए कवियों व लेखकों को प्रकाश में लाने का कार्य किया है जो स्तुत्य है।

मैं बाबू वृन्दावनदास जी के अनेक गुणों के कारण एवं उनकी परोपकारी-वृत्ति के कारण उनका अभिनन्दन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निष्ठावान

⊙

शम्भुनाथ चतुर्वेदी

एम० ए०

बाबू वृन्दावनदास जी से मेरा परिचय विद्यार्थी जीवन से है जब हम आगरा कालेज में पढ़ते थे और टामसन होस्टल में रहते थे जिसके कक्षों में उनका मुक्त हास्य गुंजायमान करता रहता था। वे मुझसे दो वर्ष सीनियर थे और मेरे अग्रज स्व० जस्टिस ब्रजकिशोर चतुर्वेदी के सहपाठी थे। दोनों ने ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की।

बाबू वृन्दावनदास जी की गणना विनयशील, परिश्रमी और भले छात्रों में थी और उनका सब के प्रति मैत्री भाव था। यही गुण निरन्तर विकसित होते गए जिन्होंने उन्हें एक अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान किया है। सेवा की भावना से आज उनका जीवन ओतप्रोत है। ब्रजभाषा के उत्थान के लिए तो उन्होंने अपना तन, मन, धन सभी अर्पित कर दिया है। साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने नगरपालिका के सदस्य और अध्यक्ष के रूप में नगर की अच्छी सेवा की है तथा सहकारी आन्दोलन में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिस काम में भी उन्होंने हाथ डाला है बड़ी लगन, कुशलता और तत्परता से पूरा किया। चाहे व्यवसाय हो अथवा जनसेवा, सभी क्षेत्रों में उन्होंने स्वस्थ मानदण्ड स्थापित किए हैं।

देश की विभिन्न समस्याओं पर जो उनके पत्र और लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं, उनसे स्वतंत्र चिन्तन, परिपक्व विचार और जागरूकता का परिचय मिलता है।

ऐसे निस्पृह, निष्ठावान जनसेवकों की आज राष्ट्र को हर क्षेत्र में आवश्यकता है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उनका अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यह नई पीढ़ी को मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान करेगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कतिपय संस्मरण

⊙

मधुसूदन चतुर्वेदी

२४-५-६८

दादा बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा से मैं बाबू वृन्दावनदास जी के दर्शनार्थ मथुरा गया। वहाँ उनसे वार्तालाप हुआ। ब्रज-साहित्य मण्डल के लिए भवन प्राप्त करने के सम्बन्ध में किए गए संघर्ष की अद्‌भुत कहानी सुनी। ब्रज-भारती के प्रकाशन की व्यवस्था और उसमें उनके योगदान का परिचय मिला। यह वार्ता मथुरा के मधुर पेड़ों के साथ-साथ चल रही थी। यह निर्णय करना कठिन था कि मधुरता किसमें अधिक है—पेड़ों में या वार्ता में।

टेलीफोन द्वारा प्रेषित समाचार के प्रत्युत्तर में थोड़ी देर में वहाँ वयोवृद्ध कविवर भगवानदत्त चतुर्वेदी और हास्यरस पर शोध प्रबन्ध लिख कर हँसी-हँसी में डाक्टर बनने वाले श्री बरसानेलाल जी भी आ गये। गद्य का स्थान अब कविता-पाठ ने ले लिया और लगभग २ घंटे तक हम लोग यह भूले रहे कि भगवान् भुवन-भास्कर धीरे-धीरे अपनी प्रचंडता पूर्ण करने में प्रयत्नशील हैं।

ग्रीष्मावकाश में मैं आगरा आ गया था। श्री वृन्दावनदास जी से मिलने मथुरा जाना चाहता था, परन्तु आगरा के साहित्यिक मित्रों ने सूचना दी कि वे स्वयं आगरा आने वाले हैं। दोपहरी थोड़ी ढली, तो मैं हंटले होस्टल से पैदल ही चल कर नागरी प्रचारिणी सभा तक आया। यहाँ पूछ-ताछ के द्वारा मैं यह जानने का प्रयास कर रहा था कि श्री वृन्दावनदास जी से मिलने के लिए कहाँ जाना उचित होगा। एक जानकार कार्यकर्ता ने मुझे आश्वासन दिया कि मैं वहीं ठहरा रहूँ। कुछ मिनटों में ही श्री वृन्दावनदास जी वहीं आने वाले हैं और उसकी बात सत्य निकली। मैंने पलट कर दरवाजे की ओर देखा। मुख पर मंद मुस्कान और प्रसन्न चित्त की मुद्रा अपनाए हुए उनकी सौम्य मूर्ति नागरी प्रचारिणी सभा के हाल में प्रवेश कर रही थी।

असल में आज नागरी प्रचारिणी सभा में ब्रज-साहित्य मंडल की एक उपसमिति की बैठक का आयोजन था, जिसमें कविवर अमृतलाल जी चतुर्वेदी के अभिनन्दन का विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया जा रहा था। व्यय का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के बाद समिति ने आय के साधनों पर भी विचार किया और श्री वृन्दावनदास जी का आश्वासन पा जाना मानो आर्थिक चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाना था। उप-समिति की अध्यक्षता श्री वृन्दावनदास जी ही कर रहे थे। उपस्थित सदस्यों ने सर्वसम्मति से निश्चय किया था कि ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष की उपस्थिति में और किसी व्यक्ति के अध्यक्ष बनने का प्रश्न ही नहीं उठता।

उपसमिति की समस्त कार्यवाही थोड़े समय में उचित रीति से समाप्त कर श्री वृन्दावनदास जी मथुरा लौट जाने के लिए उद्यत थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आगरा उनके लिए मथुरा का ही एक मुहल्ला

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है, जिसकी सभाओं में भाग लेने के लिए उन्हें किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। आज की भेंट में उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई, जो एक सप्ताह के बाद ही फीरोजाबाद में होने जा रहा था और जिसकी अध्यक्षता का भार आपके ही ऊपर था। नागरी प्रचारिणी सभा के लम्बे प्रांगण में साथ-साथ टलहते हुए हम दोनों सड़क पर आ गए। यहाँ मैंने उनसे विदा ली। दोनों को विभिन्न दिशाओं में चल कर अपने-अपने स्थान तक पहुँचना था।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। सम्मेलन की अध्यक्षता आदरणीय वृन्दावनदास जी कर रहे थे। दादा बनारसीदास जी से भेंट भी होगी। मैनपुरी से लोकप्रिय कवि नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी के साथ लगभग एक बजे मैं बस से चल दिया। तीन बजते-बजते हम लोग फीरोजाबाद में थे। चार बजते-बजते चाय की चर्चा चली और बाहर के मैदान में इष्ट-मित्रों के साथ लोग चाय की मेजों के आस-पास एकत्रित होने लगे। दादा बनारसीदास जी और श्री वृन्दावनदास इस दल में विद्यमान थे। सभी आए हुए साहित्यकारों से श्री वृन्दावनदास जी ने भेंट की और उनसे अपनी आत्मीयता का परिचय दिया।

कुछ ही देर के बाद साहित्यकारों की यह भीड़ हॉल में एकत्रित हो गयी। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पंद्रहवां अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। मंच पर 'साहित्य-वारिधि' उपाधिधारियों का जमघट था। कुछ पहले बन चुके थे, कुछ आज बनने वाले थे। सम्मेलन के अन्य कार्यकर्ता भी मंच पर थे। स्वागताध्यक्ष का भाषण समाप्त होने पर डा० विजयपाल सिंह ने अपना उद्घाटन भाषण समाप्त किया। अब अध्यक्षीय भाषण की वारी थी। श्री वृन्दावनदास जी का भाषण मुद्रित हो कर श्रोताओं में वितरित हो चुका था, फिर भी कई बार करतल ध्वनि से श्रोताओं ने उसके विशेष स्थलों पर अपना आह्लाद प्रकट किया। मनीषियों को "साहित्य वारिधि" की उपाधि से अलंकृत करने का कार्य विशेष रूप से आकर्षक था। इस रस्म के कई अंग थे—कौन क्या करे—इसमें कुछ द्विविधा थी। अध्यक्ष महोदय ने आगे बढ़ कर सारी रस्म गौरव के साथ संपादित की।

मैं मंच से दूर हॉल में पंखे के नीचे बैठा हुआ सभी कार्यक्रमों का आनन्द ले रहा था। अध्यक्ष की निगाह वहाँ तक पहुँच गयी। मुझे भी मंच पर बुलाया गया और सम्मेलन की कार्यवाही को और निकट से देखने का अवसर दिया गया।

दूसरे दिन प्रभात में फिर एक शानदार अवसर श्री वृन्दावनदास जी से मिलने का प्राप्त हुआ। जैन कालेज, फीरोजाबाद में स्व० पं० हरिशंकर शर्मा के चित्र का अनावरण समारोह था। इस कार्यक्रम में भी मुख्य अतिथि श्री वृन्दावनदास जी ही थे। समस्त वातावरण उपस्थित साहित्यकारों के हास-परिहास से आनन्दमय बना हुआ था। कुछ समय के लिए जब भाषण और काव्य-पाठ का कार्यक्रम हुआ, शान्ति छा गयी। चित्र अनावरण के पश्चात् चाय-पान के अवसर पर पुनः विनोद को स्थान मिल गया।

इन दो दिनों में श्री वृन्दावनदास जी से मिलने का कई बार और विभिन्न प्रसंगों में अवसर मिला। उनके सौम्य स्वभाव और लोकप्रियता के अनेक प्रमाण मिले। सम्मेलन के अधिवेशन का संचालन, जिसमें निजी दृष्टिकोण अपनाने वाले साहित्यकार कम न थे, उनकी कार्य-कुशलता का श्रेष्ठतम उदाहरण था। मैंने उनसे विदा ली—इस आश्वासन के साथ कि निकट भविष्य में ही उनसे मथुरा में फिर मिलूँगा। उनको दिया गया वह आश्वासन निजी कारणों से मैं अभी तक पूरा नहीं कर पाया हूँ। परन्तु मुझे उनकी क्षमाशीलता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पर अटूट विश्वास है और उनके जो पत्र मुझे मिलते रहे हैं—उनसे स्पष्ट है कि मेरा अपराध क्षम्य माना जा चुका है।

मगर श्री वृन्दावनदास जी असम्भव को सम्भव बना सकते हैं। उन्होंने हंटले होस्टल में पधार कर मुझे सचमुच अनुगृहीत किया। विद्यालय से अवकाश-ग्रहण कर लेने पर मेरे सामने भविष्य की कई सम्भावनाएँ हैं। ब्रज-मंडल में निवास को मैं बहुत प्रधानता देता हूँ और ब्रज-साहित्य मंडल के अध्यक्ष से भेंट मेरा साहस बढ़ाएगी—इसमें संदेह नहीं। अध्यक्ष महोदय ने बताया कि मंडल के लिए भूमि इतने परिश्रम के बाद भी नहीं प्राप्त हो सकी है। उसके मूल्यांकन में नवीनता ला कर उसकी प्राप्ति में कठिनाई उपस्थित की गयी है। "ब्रज-भारती" की नियमितता, उसका उच्चस्तर और उसमें ब्रजभाषा के विद्वानों का भरपूर सहयोग इत्यादि की चर्चा हुई। उनकी नव प्रकाशित कृति "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" की विशेषताएं व उसकी लोकप्रियता का परिचय मिला।

आगरा से ३५ मील दूर ग्राम होलीपुरा में स्थापित महाविद्यालय में आज एक विशेष कार्यक्रम था। श्री वृन्दावनदास जी उस समारोह में भाग लेने को उत्सुक थे। मथुरा से आगरे तक की ३० मील की दूरी वह तै कर चुके थे। अभी देहात में ३५ मील जा कर फिर रात को उन्हें मथुरा लौट जाना था। इस समारोह में आगरे के कमिश्नर साहब भी जाने वाले थे। श्री वृन्दावनदास जी चाहते थे कि यदि उनका साथ हो जाए, तो कम से कम ७० मील की यात्रा का एकाकीपन दूर हो सकता है। इस उम्र में भी यात्रा के लिए इतना उत्साह जहाँ उनके साहस और श्रमशीलता का परिचय देता है, वहाँ उन्हें दादा बनारसीदास जी द्वारा दी गयी "ब्रज-प्रदेश के कमिश्नर" की उपाधि का सत्यापन भी प्रकट करता है।

चतुर्वेदी प्रकाशन समिति के संरक्षक के नाते आज की भेंट में उन्होंने कई सुझाव समिति को अधिक व्यापक और लोकप्रिय बनाने के भी दिए। अनेक ग्रंथों के प्रणेता साहित्य-वारिधि वृन्दावनदास जी ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष और इस वर्ष उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अध्यक्ष होने के नाते साहित्य-जगत् की अनगिनत सेवाएँ कर सब प्रकार आदरणीय बन चुके हैं। भगवान् से उनके दीर्घ-जीवन के लिए प्रार्थना आज हम सब के हृदयों में सदैव विद्यमान् रहती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्यकारों के प्रेरणा-स्रोत

⊙

हरिश्चन्द्र प्रसाद

साहित्य-वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी को सर्वप्रथम अध्ययन और मनन करने का सुअवसर मुझे तब मिला जब मैं सन् १९६५ ई० में अपनी पुस्तक 'ए बिबलिओग्राफी ऑफ फॉकलोर ऑफ बिहार' के लिए सामग्री जुटाने के क्रम में सुधा (लखनऊ), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), विशाल-भारत (कलकत्ता), माधुरी (लखनऊ), चाँद (प्रयाग), विश्वमित्र (कलकत्ता) आदि पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी संचिकाओं के पृष्ठों को उलट रहा था। इन पत्र-पत्रिकाओं में दास जी-द्वारा प्रणीत सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि विभिन्न विषयक प्रकाशित निबन्धों की अद्‌भुत वर्णन शैली देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि उनमें सरल और सुबोध शैली में गूढ़-से-गूढ़ विषयों को वर्णित करने की जो क्षमता है, वह अन्यत्र दुर्लभ-सी है। मैंने सोचा कि ऐसे साहित्य-स्रष्टा से निकट का सम्पर्क ही क्यों न स्थापित कर लिया जाय। किन्तु, मेरी यह इच्छा बहुत दिनों तक मूर्त रूप धारण न कर सकी।

इसी बीच सन् १९६८ ई० में १५ अप्रैल को आगरे में सत्यनारायण कविरत्न अर्द्ध शताब्दी समारोह सोल्लास सम्पन्न हुआ और पं० गणेश चौबे इस समारोह में सम्मिलित हो कर घर लौटे। उन्होंने मेरे हाथों में समारोह में पठित अध्यक्षीय अभिभाषण और सत्यनारायण कविरत्न-द्वारा अनूदित तथा वृन्दावनदास जी द्वारा सम्पादित 'देश-भक्त होरेशस'[1] की प्रतियाँ देते हुए समारोह की सारी गति-विधियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने उसी क्रम में बाबू साहब की सरलता, उदारता, विशाल सहृदयता, साहित्यिकता आदि सद्‌गुणों की खुले हृदय से सराहना की। इससे उनके प्रति मेरे हृदय में सोए हुए भाव और भी प्रज्वलित हो उठे। किन्तु, मैं उनके साथ सम्पर्क स्थापित न कर सका।

दिन व्यतीत होते गए। सन् १९७० ई० के जुलाई महीने में कलकत्ते से मेरी पुस्तक के प्रकाशक श्री शंकर सेन गुप्त ने सूचना भेजी कि मेरी पुस्तक अब प्रकाश्य है और यदि मैं उसमें अनुक्रमणिका के रूप में कुछ नई सामग्रियाँ जोड़ना चाहूँ तो मैं उसे तैयार कर उनके पास शीघ्र भेज दूँ। सामग्री-संकलन के इसी क्रम में मैं 'चौबे-पुस्तकालय' की शरण में बंगरी पहुँचा। वहाँ दास जी द्वारा सम्पादित उस समय तक के 'ब्रज-भारती' के सारे अंकों को देख कर उनकी स्मृति पुनः ताजी हो उठी। किन्तु, इस बार भी मैं उनसे सम्पर्क स्थापित करने की बात सोचता ही रह गया।

सन् १९७१ ई० में १० फरवरी को अचानक दास जी का एक पत्र और 'ब्रज-भारती' का मार्गशीर्ष

---

१. प्र०—अखिल भारतीय-ब्रज-साहित्य-मंडल, मथुरा, १९६७ ई०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(सं० २०२७ वि०) अंक मिला। पत्र में उन्होंने बड़े ही आत्मीय ढंग से हिन्दी और भोजपुरी के विकास के लिए मेरे द्वारा किए गए कार्यों की प्रशंसा की थी और 'ब्रज-भारती' में प्रकाशनार्थ ब्रजभाषा सम्बन्धी कुछ लेखों की माँग की थी। मैंने उनके आदेश को शिरोधार्य किया और एक लेख शीघ्र भेज दिया। इस प्रकार हम दोनों में जो सम्पर्क हुआ, वह दिनानुदिन अपनेपन में परिणत होता चला जा रहा है।

दास जी भारतीय संस्कृति के उपासक और अतीत गौरव के उद्धारक हैं। 'ब्रज-भारती' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख उनके इन गुणों के परिचायक हैं। भारतीय संस्कृति तथा अतीत गौरव का ऐसा कोई भी अंग शायद नहीं बचा है, जिस पर उनकी लेखनी ने अपना चमत्कार न दिखलाया हो। हमारी संस्कृति तथा हमारे प्राचीन इतिहास के बहुत सारे ऐसे अज्ञात पृष्ठ थे जिन पर बड़े-बड़े विद्वानों तथा मनीषियों ने अपनी लेखनी चलाने में संकोच का अनुभव किया था। किन्तु दास जी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इन विषयों पर बड़े ही आकर्षक ढंग से नए पृष्ठों का निर्माण किया है।

दास जी में साहित्यिकता इतनी कूट-कूट कर भरी है कि उन्होंने साहित्य, इतिहास, आलोचना, संस्मरण, पत्र-साहित्य, जीवन-चरित आदि साहित्य के अनेक अंगों को यथासाध्य परिपुष्ट करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपने कई लेखों में देश-विदेश के बहुत से ऐसे विषयों का स्पर्श किया है जिनसे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन भी होता है। उनके संस्मरणात्मक लेखों से उनकी सहृदयता का पूर्ण परिचय मिलता है। पत्रों पर आधारित लेख लिखने में वे तो पारंगत ही हैं। इन बातों का परिचय तो हमें उनके लेखों के संग्रह 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य'[1] में विशद रूप से मिलता है।

ग्रन्थ एवं पत्र-सम्पादक के रूप में दास जी सदा याद किए जाते रहेंगे। उनके द्वारा सम्पादित 'देश-भक्त होरेशस', 'काव्य-नवनीत', 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र'[2] तथा 'ब्रज-भारती' के अंक उनकी विशिष्ट सम्पादन-कला के प्रतीक हैं। सत्यनारायण कविरत्न द्वारा लॉर्ड मैकोले की अमर कृति 'होरेशस' के ब्रजभाषा में किए गए पद्यबद्ध अनुवाद का सम्पादन-प्रकाशन कर उन्होंने एक साहित्यकार की लुप्त-प्राय रचना को जीवन-दान दिया है। 'काव्य-नवनीत' उनकी हिन्दी-सेवाओं का जाज्वल्य प्रमाण ही है। 'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' शीर्षक पत्र-संग्रह-द्वारा उन्होंने चतुर्वेदी जी को साहित्यिक इतिहास के एक महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करने का यथासाध्य प्रयत्न किया है। इस प्रकार दास जी द्वारा प्रणीत और सम्पादित ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि वे हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के परम हितैषी हैं।

पत्र-सम्पादक के रूप में दास जी की कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। 'ब्रज-भारती' के सम्पादन में वे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, डॉ० शिवपूजन सहाय, डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु प्रभृति सद्सम्पादकों द्वारा पत्रिका में 'सम्पादकीय-टिप्पणी-लेखन-कला' की चलाई गई परम्परा का पूर्णतः अनुकरण करते हैं।

पत्र-लेखक के रूप में भी दास जी विश्व के महान पत्र-लेखकों के समकक्ष ठहरते हैं। उनमें पत्र लिखने की अद्भुत क्षमता है। नपे-तुले शब्दों में अधिक-से-अधिक बातों को कह देना उनके लिए मामूली-सी

---

१. प्र०—सुषमा पुस्तकालय, कृष्णनगर, दिल्ली—५१, १९७० ई० (द्वि० सं०)।
२. प्र०—साहित्य प्रकाशन, नई सड़क, मालीवाड़ा, दिल्ली—६, १९७१ ई०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बात है। उनके पत्रों में एक भी शब्द ऐसा नहीं रहता जो बेकार समझा जा सके। उदाहरणार्थ इन पंक्तियों के लेखक को उनके द्वारा लिखे गए एक-दो पत्र उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

प्रकाश भवन
मथुरा, ७-२-७१

बन्धुवर !

आपके शुभ नाम की चर्चा मित्रवर गणेश जी ने मुझसे की है। आपके लेखादि पढ़ कर मैं प्रभावित हुआ हूँ। आप अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा हिन्दी और भोजपुरी के अन्यतम सेवक हैं। आप हमें बिहार के ब्रजभाषा कवियों की सूची भेजें, हम उसे 'ब्रज-भारती' में छापेंगे। ब्रजभाषा-कवि सम्बन्धी सूचनाएँ, उनके जीवन-वृत्त और कृतियों आदि पर यदि आप कोई निबन्ध भेजेंगे तो हम सहर्ष उन्हें 'ब्रज-भारती' में स्थान देंगे।

'ब्रजभारती' की एक प्रति सेवा में प्रेषित है।

आपका
वृन्दावनदास

(२)

प्रकाश भवन
मथुरा, १४-६-७१

बन्धुवर !

आपका कृपा पत्र यथा समय प्राप्त हो गया था, अनेक धन्यवाद। उत्तर-प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रति की गई मेरी सेवाओं की सराहना के लिए आपका अत्यन्त आभारी हूँ। 'ब्रज-भारती' का ज्येष्ठ अंक और अध्यक्षीय भाषण की एक प्रति दोनों चीजें भेजी जा चुकी हैं, पहुँची होंगी।

डॉ० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के पत्रों वाली पुस्तक तो छप चुकी है, परन्तु उसके आवरण, चित्रों आदि के मुद्रण तथा जिल्द बँधने में कुछ विलम्ब लगेगा, परन्तु मैं सचेष्ट हूँ यथासंभव शीघ्र वह कार्य भी पूरा होगा।

आशा है, आप स्वस्थ एवं सानन्द हैं।

आपका
वृन्दावनदास

दास जी स्वयं में एक संस्था हैं। उनमें सुसंगठित कर दूसरी संस्थाओं को भी सुचारु रूप से चलाने की इतनी क्षमता है कि उसे देख कर स्पर्द्धा होती है। हमने देखा है कि ब्रज-साहित्य-मंडल, जो वर्षों तक मृत-प्राय पड़ा था, उनके द्वारा शुश्रूषित हो कर जीवनदान प्राप्त कर चुका है और दिनानुदिन प्रगति की ओर अग्रसरित है। इधर इसकी ओर से एक-दो पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं और 'ब्रज-भारती' नियमित रूप से निकल रही है। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तो वे प्राण ही हैं। अध्यक्ष के रूप में उन्होंने इसके माध्यम से हिन्दी के विकास एवं प्रसार-प्रचार के लिए कई नई योजनाएँ बनाई हैं और उनकी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कार्यान्विति के लिए वे सतत प्रयत्नशील हैं। हिन्दी-अन्तर्जनपदीय-परिषद् के संयोजक के रूप में उन्होंने हिन्दी-प्रदेश की विभिन्न बोलियों के कोश-निर्माण के कार्यक्रम को बहुत अंशों में आगे बढ़ाया है और आशा की जाती है कि एक-दो वर्षों में इसका एक मूर्त रूप हमारे सामने अवश्य आयेगा।

इतने सारे गुणों के रहते भी दास जी में जो सब से बड़ा गुण है, वह यह है कि वे साहित्यकारों के सच्चे हितैषी और आश्रयदाता हैं। जाने कितने दिवंगत साहित्यकार उनकी लेखनी में आबद्ध हो कर साहित्य की अमूल्य निधि बन चुके हैं। जीवित साहित्यकारों के प्रति उनके उदार भाव उनकी सहृदयता के प्रमाण हैं। जिन साहित्यकारों से उनका लेश मात्र भी सम्पर्क हुआ कि उनके यहाँ घर बैठे 'ब्रज-भारती' के अंक और उनके द्वारा सम्पादित तथा प्रणीत ग्रन्थों की प्रतियाँ पहुँचती रहेंगी।

अन्त में हम यही कहेंगे—

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जनपदीय यज्ञ के पुरोधा–बाबू वृन्दावनदास

रमण शाण्डिल्य

वर्ष १९७० का महत्व मेरे जीवन में इसलिए भी रहेगा कि इस वर्ष मुझे हिन्दी के उच्चकोटि के तीन विद्वानों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे विद्वान हैं क्रमशः पंडित गणेश चौबे, बाबू वृन्दावनदास जी एवं कृष्णानंद गुप्त। इनमें सर्वप्रथम पंडित गणेश चौबे का ही परिचय प्राप्त हुआ था और चौबे जी की कृपा से ही बाबू वृन्दावनदास एवं श्री कृष्णानंद गुप्त का सहज स्नेह मुझे मिला।

वैसे सर्वप्रथम इस पवित्र नाम (श्री वृन्दावनदास) को जानने का श्रेय एक लेख (सारस्वत साधना के प्रतीक श्री वृन्दावनदास जी, 'उत्तर विहार', २०जुलाई, ७०) को मिलना चाहिए। यदि 'उत्तर विहार' का वह अंक मुझे नहीं मिला होता तो और कुछ दिनों के लिए मैं इस नाम से अपरिचित रहता। इस दूरस्थ पर्वतीय प्रदेश में तो आवश्यक सूचनाएँ भी नहीं पहुँच पाती हैं। आज के 'नेफा' की तुलना १९३०-३१ के तिब्बत से की जाए तो तनिक भी आश्चर्य नहीं जहाँ श्री राहुल जी के पास महीनों बाद डाक सामग्री पहुँचा करती थी। यहाँ तो डाक-विभाग का ऐसा हाल है कि पत्र-पत्रिकाएँ तीन-तीन महीनों बाद पहुँचती हैं। कुछ तो पहुँचती भी नहीं। रास्ते में ही किसी 'जीवधारी' द्वारा गायब कर दी जाती है। फिर ऐसी विभूतियों का परिचय कैसे मिले।

मुझे इसका बड़ा ही क्षोभ है कि उपर्युक्त तीनों विभूतियों का परिचय मुझे इतने विलम्ब से मिला। काश ! मैं दस वर्षों पूर्व बाबू जी को जान पाया होता। वर्ष ६१ में ही मैंने मथुरा, वृन्दावन की यात्रा की थी पर मेरा दुर्भाग्य ! खैर, देर आयद, दुरुस्त आयद।

उस लेख के पढ़ने के तुरन्त बाद मैंने 'उत्तर विहार' के सम्पादक श्रीराम रीझन रसूलपुरी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी एवं पंडित गणेश चौबे को पत्र लिखे जिसमें मैंने बाबू जी के संबंध में जानने की इच्छा व्यक्त की साथ ही "श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" एवं "श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" इन दोनों पुस्तकों के संबंध में भी जानने की इच्छा व्यक्त की थी। श्री चतुर्वेदी जी का उत्तर आया। उसमें बाबू जी का पता था। पता क्या मिला मुझे स्वर्ण धन मिल गया था। पत्र लिखने तक की देर थी। १६ अक्तूबर १९७० को 'ब्रजभारती' का भाद्रपद अंक (सं० २०२७ वि०) मेरे सामने था।

इस घोर अहिन्दी प्रदेश में एक साहित्यिक पत्रिका को प्राप्त कर मैं फूला नहीं समा रहा था। सब से अधिक खुशी तो इसलिए थी कि जनपदीय दृष्टिकोण के समर्थन वाली पत्रिका मेरे हाथ में अकस्मात् आ गई थी। ब्रजभाषा साहित्य विषयक विपुल सामग्री, महत्वपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियाँ, विदेशी विद्वानों की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी सेवा का मूल्यांकन, 'जीवनदत्त शर्मा स्मृति ग्रंथ' के लिए श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी के विचार, मीतल जी, डा० कैलाशचन्द्र भाटिया तथा डा० गनेशीलाल बुधौलिया के लेख, श्री भगवान सहाय पचौरी, श्री रामशंकर द्विवेदी एवं श्री कृष्णनंद गुप्त के महत्वपूर्ण पत्र। सभी का मिला-जुला आकर्षण मन को मोह गया।

बाबू वृन्दावनदास, श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्री शिवपूजनसहाय, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी की परंपरा की अगली कड़ी हैं। एक न एक दिन हिन्दी इनसे धन्य होगी। जिस जनपदीय दृष्टिकोण की गंगा को डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जन्म दिया श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमि में 'मधुकर' और 'विशाल भारत' के द्वारा अपने भगीरथ प्रयत्नों से जिसे जीवित रखा, उस लोक गंगा में जन-जन के अवगाहन का स्वप्न सर्वप्रथम बाबू वृन्दावनदास जी ने ही देखा।

मैं अपने सीमित ज्ञान के बल पर कह सकता हूँ कि हिन्दी जगत के सामने भाषाओं का जो तथाकथित (महाभारत) संकट आ उपस्थित हुआ है यदि बाबू जी के विचारों, योजनाओं का कार्यान्वयन किया जाए तो न क्षेत्रीय बोलियों के मार्ग में ही किसी प्रकार की बाधा खड़ी होगी और न अहिन्दी प्रदेशों की प्रादेशिक भाषाओं का ही विकास अवरुद्ध होगा। बाबू जी का विश्वास रचनात्मक कार्यों में है। अन्तर्जनपदीय परिषद् के आप संयोजक हैं। हिन्दी क्षेत्र की समस्त जन भाषाओं के बीच सौहार्द्र स्थापित करना, उन क्षेत्रों में साहित्यिक जागरण पैदा करना आपका लक्ष्य है। आप चाहते हैं कि सभी जन भाषाएँ फूलें, फलें और विकसित हों। मात्र ब्रजभाषा ही नहीं, राजस्थानी, भोजपुरी, बुन्देली, अवधी, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, मगही, अंगिका, वज्जिका आदि सभी जन भाषाओं के कल्याण की बात आपके हृदय में है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की 'जनपद कल्याणी योजना' एवं श्री चतुर्वेदी जी की 'विकेन्द्रीकरण योजना' के अतिरिक्त आपके द्वारा चलाई गई 'हिन्दी संवर्द्धिनी योजना' जनपदीय आन्दोलन की रीढ़ सिद्ध हो रही है। सभी क्षेत्रों के जनपदीय कार्यकर्ता एक नई स्फूर्ति का अनुभव करने लगे हैं।

जनपदीय भाषाओं के अलिखित साहित्य के प्रति बाबू जी में बड़ी भारी ममता है।

'उत्तर बिहार' (साप्ताहिक पत्र) के २८ जून, ७१ वाले अंक में मैंने आपकी कृति "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" की समीक्षा लिखी थी। उस समीक्षा के पढ़ने के बाद आपने मुझे अपने ७-७-७१ वाले पत्र में लिखा—

मान्यवर शाण्डिल्य जी प्रणाम,

आपका २५-६-७१ का कृपा पत्र यथासमय प्राप्त हो गया। अनेक धन्यवाद। आप जनपदीय भाषाओं के पुनरुद्धार का महान् कार्य कर रहे हैं। 'सांपो' पर हम भाद्रपद अंक के सम्पादकीय में निश्चित रूप से अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। आपका प्रयास स्तुत्य है तथा वहाँ के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणादायक है। २८ जून के उत्तर बिहार में मेरी पुस्तक पर आपकी भव्य समीक्षा भी प्रकाशित हो गई है। इस पुस्तक पर अद्यतन प्रकाशित समस्त समीक्षाओं में मैं आपकी समीक्षा को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। आपने पुस्तक का बड़ी बारीकी से साद्यन्त अध्ययन किया है। नूतन तथ्यों को उद्घाटन करने वाली आपकी समीक्षा एक बहुश्रुत एवं प्रौढ़ अन्वेषक की दृष्टि प्रस्तुत करती है। मैं तो भूल गया था कि आठ वर्ष पहले मैंने कभी लिखा था कि पूर्व पाकिस्तान से प्रत्येक हिन्दू भारत आकर ही रहेगा। आपने उन शब्दों को खोज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निकाल कर मुझे भविष्यवक्ता का आदर प्रदान किया है। इस भव्य समीक्षा के लिए मैं आपका कितना आभार प्रकट करूँ।. . .आप जो कुछ साहित्य भेजेंगे हम सब का उल्लेख 'ब्रजभारती' में करेंगे।

शेष फिर, आपका
वृन्दावनदास

बाबू जी ने उपर्युक्त पत्र में इस रूप में मुझ पर स्नेह वर्षा की जिससे मैं सराबोर हूँ। इतना ही नहीं, मैंने अपना एक लेख बिहार की जनपदीय भाषाओं पर उनकी सेवा में भेजा। लौटती डाक से उत्तर आया उनके २०-७-७१ पत्र के रूप में—"आपका लेख यथासमय प्राप्त हो गया। . . .लेख मार्गशीर्ष अंक में निश्चित रूप से छाप देंगे। आपने लोकभाषा साहित्य का बड़ा गहन अध्ययन किया है। आपके लोकभाषाओं पर लिखे हुए लेख जहाँ भी प्रकाशित हों उनकी एक-एक प्रति मुझे मिलनी चाहिए। वे संग्रहणीय हैं। उनका उल्लेख भी ब्रज-भारती में होना आवश्यक है। अपने जनपदीय आन्दोलन का यह ध्येय है। वास्तव में आपका योगदान हम सब से अधिक है और परम स्तुत्य है

आपका
वृन्दावनदास

इस अख्यात व्यक्ति को इतना सम्मान बाबूजी से ही मिला जो वस्तुतः इतने अधिक सम्मान का उत्तराधिकारी नहीं।

मेरे प्रथम पुत्र जन्मोत्सव पर जो उन्होंने हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट कीं वह किसी कुटुम्बी से ही संभव था। २७-७-७१ वाले पत्र में आप लिखते हैं—"आपका पत्र पढ़कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। आपने बड़ा शुभ सम्वाद सुनाया है। आप सामने होते तो आपको बड़ा स्वादिष्ट मिष्ठान्न अर्पित करता। पुत्र-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आपको और श्रीमती वसुंधरा जी को अनेक बधाइयाँ। नवजात शिशु को खूब प्यार एवं आशीर्वाद। बालक दीर्घायु प्राप्त करता हुआ सदैव सुखी एवं समृद्धिशाली रहे यही हमारी मंगलकामना है। आज आपको डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र शीर्षक पुस्तक की एक प्रति रजिस्टर्ड बुकपोस्ट से भेजी है। कृपया पहुँच लिखें। कुशल समाचार देते रहें।"

आपका
वृन्दावनदास

'डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' को सम्पादित प्रकाशित कर बाबू जी ने जनपदीय आन्दोलन की दिशा को एक मोड़ दिया है। चतुर्वेदी जी स्वयं जनपदीय आन्दोलन के जन्मदाताओं में रहे हैं। उपर्युक्त पुस्तक पर जब मैंने अपने विचार बाबू जी की सेवा में भेजे तो उसका उत्तर इस रूप में आया।

मथुरा, २४-८-७१

मान्यवर शाण्डिल्य जी, प्रणाम

"कृपापत्र १५-८-७१ प्राप्त हुआ। अनेक धन्यवाद। आपने पुस्तक पर विस्तार सहित अपने महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए, एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। हिन्दी साहित्य की पत्र विधा का सही मूल्यांकन आप सदृश

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनीषी ही कर सकते हैं। सभी मित्रों ने इस पुस्तक का बड़े प्रेम के साथ स्वागत किया है और मेरे ऊपर जो स्नेह वर्षा की है उसे मैं आशीर्वाद के रूप में ग्रहण करता हूँ।

फुटबाल के खेल में चोट लग गई यह जान कर दुख हुआ। आशा है अब पीड़ा शान्त हुई होगी।...

वृन्दावनदास

ये कुछ पत्र प्रमाण हैं कि उनके भीतर आत्मीयता, सहृदयता, सेवा भावना, किस प्रकार कूट-कूट कर भरी हुई है। निःस्वार्थ भावना से बाबू जी ने जिस जनपदीय यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की है उसकी ज्योति से समस्त जन मानस आलोकित होगा और हिन्दी का ध्वज सातवें आसमान पर लहराएगा।

अंत में भाई रमेशचन्द्र दुबे की पंक्तियों को दुहराना चाहता हूँ––

बढ़े तुम्हारी कीर्ति, पुलक से यमुना छलके रह रह।
बढ़े तुम्हारी कीर्ति सुरभि संपूरित फैले मह-मह
ब्रज की कीर्ति, धरापर है यह स्वर्ग सरिस वृन्दावन।
तुम हो उसके 'दास' करेंगे विपुल कृपा नंदनंदन॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लोक साहित्य के संरक्षक

⊙

रामनारायण उपाध्याय

बाबू वृन्दावनदास जी को यदि यह कहें कि उन्होंने लोक साहित्य को संरक्षण देने में अपना समूचा जीवन लगा दिया तो कोई अत्युक्ति न होगी।

लोक साहित्य के कार्य को अपने श्वास-प्रश्वास से गति देने वाले, जब महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल और श्री रामनरेश त्रिपाठी नहीं रहे, तब बाबू साहब ने ब्रज साहित्य मंडल के माध्यम से दिनांक १४-१५ और १६ अप्रैल ६८ को, आगरा में कविरत्न पंडित सत्यनारायण, कुंवर हनुमंत सिंह एवं महाकवि ग्वाल की, अर्धशताब्दी के साथ ही साथ, अन्तर जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया। उपरोक्त परिषद् की स्थापना सन् १९५२ में, ब्रज-साहित्य मंडल के तत्वावधान में ही हाथरस में की गई थी जिसमें राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद से लेकर, लोक साहित्य पर कार्य करने विद्वान् एकत्रित हुए थे। उसमें एक ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, पं० रामनरेश त्रिपाठी, सत्यार्थी, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री नवीन जी जैसे हिन्दी के उद्भट विद्वान् उपस्थित थे, तो दूसरी ओर अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी, मालवी, निमाड़ी, राजस्थानी, बघेलखण्डी, बैसवाड़ी एवं संथाल आदि अनेकों लोक भाषा के विद्वान् डाक्टर सत्येन्द्र, श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री श्याम परमार, श्री रामनारायण उपाध्याय, श्री देवी लाल सामर, श्री "उरगेश", श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल, श्री वंशीधर शुक्ल, श्री रामाज्ञा द्विवेदी समीर, श्री वृजनन्दन गुप्त और श्री ठाकुर प्रसाद सिंह जैसे लोक साहित्य के अनेकों मूक साधक भी उपस्थित थे। इस संस्था की स्थापना से देश में लोक साहित्य की ऐसी आंधी आई जिससे लोक भाषा के विविध अंगों पर कार्य हुआ। लेकिन कुछ ही समय के बाद यह कार्य जहाँ का तहाँ ठप रह गया। इसे नई शक्ति और नई सूझ से पुनः प्रतिमान करने के लिए जब बाबू साहब के द्वारा आगरा में सम्मेलन बुलाया गया तो उसमें सुदूर बिहार से गणेश चौबे, दिल्ली से जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, जयपुर (राजस्थान) से डा० सत्येन्द्र, मध्य प्रदेश से श्री रामनारायण उपाध्याय तथा फिरोजाबाद से पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी उपस्थित हुए।

अन्तर जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए बाबू साहब ने अपने स्वागत भाषण में कहा—"हिन्दी के भण्डार को समृद्ध करने का एक बड़ा शक्तिशाली साधन है, उसे जनपदीय शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि से समन्वित करना। इनके अतिरिक्त लोक वार्ता, लोक गीत आदि भी लोक साहित्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। हम चुस्त राष्ट्रभाषा बनाने के वास्ते तरस रहे हैं, पर उसकी जो खानें है उनको खोज कर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमारा ध्यान अभी तक नहीं गया। आदरणीय बनारसीदास जी चतुर्वेदी, डा० सत्येन्द्र, गणेश चौबे, रामनारायण उपाध्याय, श्यामसुन्दर बादल

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आदि अनेक साहित्यिक वन्धुओं ने मुझे जनपदीय परिषद् स्थापित करने का परामर्श दिया है। मेरा विचार है कि सम्मेलन के इस अवसर पर अन्तर जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित और पुनर्गठित कर दिया जाय।" वाद में इस विषय का प्रस्ताव रखते हुए, श्री गणेश चौवे ने कहा--"हमारे जनपदों में लोक साहित्य का अक्षय भण्डार है। वहां एक-एक वस्तु के लिए अनेकों शव्द प्रचलित हैं। इन सव के संकलन, सम्पादन एवं अध्ययन के लिए एक केन्द्रीय संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है। अन्तर जनपदीय परिषद् ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है, अतएव उसे पुनर्जीवित किया जाय तो यह कार्य आगे वढ़ सकता है।" इसके समर्थन में, श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, डा० सत्येन्द्र, डा० व्रजेश्वर वर्मा रामनारायण उपाध्याय, एवं श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने अपने विचार व्यक्त किए। वाद में श्री पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया, जिसके वावू साहव मंत्री चुने गये। इस तरह लोक साहित्य के कार्य को पुनर्गतिमान करने का श्रेय वावू साहव को रहा है। आपने न सिर्फ इस संस्था को पुनर्जीवित किया, वरन् भोजपुरी, निमाड़ी और व्रज भाषा के शव्द कोष निर्माण कार्य को भी पूरा कराने के लिए आप निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

लोक साहित्य के ऐसे तपस्वी साधक के प्रति मैं श्रद्धा से अपना प्रणाम निवेदन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक समर्पित व्यक्तित्व

⊙

ललन मिश्र

युग युग सेवा करो यही है जन जन की शुभ आस।
तब ब्रज-वाणी हो भव-वाणी, श्री बृन्दावन दास॥

बात बहुत पुरानी नहीं है। यही पाँच-छः वर्ष बीते होंगे जब दैनिक 'भारत' (प्रयाग) में 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' नाम से एक सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित होती थी। इसी स्तंभ में छपा ब्रजभाषा का एक लोकगीत—

"मैं तो गोबर्धन को जाऊँ मोरी बीर
नाँय मानैं मेरौ मनुआँ।"

मुझे इतना पसन्द आया कि मैंने श्रीयुत व्यास से निवेदन किया कि कृपा कर वैसे लोक गीतों का कोई संग्रह बताइए। उन्होंने मेरा ध्यान बाबू वृन्दावनदास जी और ब्रज साहित्य मण्डल की ओर आकर्षित कर दिया। तब से अब तक बाबू जी और उनके मण्डल के प्रति मेरा समान रूप से आकर्षण रहा है।

आज से ३०-४० वर्ष पहले के लिखे उनके निबन्धों में समाज-सुधार, सांस्कृतिक अनुराग, व्यापक अध्ययन, सुनिश्चित दृष्टिकोण सब कुछ दृष्टिगोचर हो जाता है। 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' उनकी अद्भुत रचना है। सचमुच अपने देश का संपूर्ण सांस्कृतिक आकलन इतने व्यापक परिवेश को ले कर शायद ही किसी कृति में दिखाई पड़ा हो। इस पुस्तक में संकलित कुछ निबन्ध तो ऐसे हैं जिनकी लोगों को कल्पना तक नहीं थी। भला अमेरिका जैसे शिक्षित सम्पन्न एवं सुसभ्य देश में वैसा हृदय-विदारक, वैसा जघन्य, वैसा अमानवीय कार्य हो सकता है।[1] यही नहीं अपने देश की भी बहुत सी बातों से हम अनजान बने रहने में ही गौरव करते थे। विधवा विवाह होना चाहिए, स्त्रियों की दशा सुधारनी चाहिए, स्त्री-शिक्षा हमारी प्रगति का प्रमुख आधार है—यह जान कर भी हम अनजान बने थे। उन्हीं दिनों बाबू जी ने इन विषयों को उठाया ही नहीं, वरन् इन पर सारगर्भित लेख लिख कर एक सामाजिक तथ्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और रूढ़िवादिता के प्रति बड़ी ही उदारता के साथ अपनी असहमति प्रकट की। 'विधवा-विवाह' शीर्षक लेख में वे कहते हैं—

"त्रिपाठी जी! आपने क्या यह सिद्धान्त बेचारी स्त्रियों के लिए ही निश्चित किया है? क्या पुरुष वर्ग इसके अनुशीलन से विमुख कर दिया गया है? क्या अधीनस्थ होने के कारण निर्बल पर ही बल की आजमाइश करना सनातन धर्म है?"

---

१. देखिए 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' में 'कू-क्लक्स क्लान', पृ० ३८३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इतने पहले प्रायः ३५-३६ वर्ष पहले लिखे गए उनके निबन्धों जैसे 'स्त्रियाँ और हमारी उन्नति', 'विधवा-विवाह', 'धनकुबेर क्या नहीं खरीद सकते ?', 'अमेरिका की कुछ आततायी संस्थाएँ' आदि में उनका विशद अध्ययन, सरल किन्तु प्रभावोत्पादक शैली और सुस्पष्ट मत दृष्टिगोचर हो जाते हैं। जो लोग धन-संग्रह को ही लक्ष्य बना कर कार्य करते हैं उनसे बड़ी स्पष्टता के साथ आग्रह करते हुए बाबू जी कहते हैं--

"वेतनभोगी लोगों को अपने वेतन के अतिरिक्त अनुचित उपायों के द्वारा धन-संग्रह कदापि न करना चाहिए। यह बड़ी गर्हित बात है। जिन लोगों को धन-पिपासा लगी है उन्हें सेवा का मार्ग ढूँढ़ना व्यर्थ है। उनको चाहिए कि उद्योग-धन्धे अथवा वाणिज्य-व्यवसाय कर के अपने बुद्धि-कौशल से धनोपार्जन करें।"

ठीक है, धन समाज के लिए आवश्यक वस्तु है, किन्तु है तो वह साधन ही, साध्य नहीं। सन्त कवि कबीर सैकड़ों वर्ष पूर्व हमें सावधान कर गए हैं--

'सब साज पड़ा रह जायेगा जब लादि चलेगा बनजारा।'

हिन्दी-सेवा बाबू जी का व्यसन है। संभव है यह प्रतिभा उनमें जन्मजात रही हो। आज हमारे देश में ऐसे कार्यकर्ताओं की जो मिशनरी ढंग से कार्य कर रहे हों, बड़ी कमी है। बाबू जी ने अकेले ही इतना कुछ किया है जितना कोई सक्रिय संस्था ही कर सकती है। हिन्दी सेवा तो उनके लिए देश-सेवा का पर्याय बन गई है। उनके चिन्तन का व्यापक क्षितिज न केवल देश वरन् विदेशों की बातों से भी परिचय कराता है। विश्वास न हो तो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' को एक बार पढ़ जाइए।

समाज-सेवा के व्रती को तलवार की धार पर चलना पड़ता है। उसे अनेक जिज्ञासाओं, शंकाओं, भ्रान्तियों का समाधान करना पड़ता है। फिर जहाँ समाज के अधिकांश लोग आत्म-केन्द्रित हो गए हों या हो रहे हों वहाँ तो यह समस्या और भी कठिन हो जाती है।

बाबू वृन्दावनदास जी पिछले चार दशकों से एकसाँस हिन्दी की सेवा करते चले आ रहे हैं। और अब तो उनका संकल्प इस सेवा के व्यापक अभियान को चरितार्थ कर रहा है। इसी भावना को लेकर उन्होंने 'श्री वृन्दावनदास-प्रकाशवती ट्रस्ट' का निर्माण किया है। इसी ट्रस्ट के द्वारा अभी हाल में ही भगवान् राम की पावन जन्म-भूमि अयोध्या में 'श्री वृन्दावनदास पुस्तकालय एवं वाचनालय' की स्थापना की गई है। इस पुस्तकालय में वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, इतिहास, रामायण, महाभारत आदि सभी आर्षग्रन्थ तथा हिन्दी साहित्य के विविध विधाओं पर अनेक अनुपम ग्रन्थ संगृहीत हैं।

बाबू जी एक कुशल संयोजक हैं। आज के भौतिकवादी युग में ऐसे कुशल संयोजक दुर्लभ हो गए हैं। आपने अपनी सदाशयता से ही हिन्दी के तपस्वी साहित्यकार श्रद्धेय पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के कुछ पत्रों का बड़ा ही सुरुचिपूर्ण संपादन करके पत्र-सम्पादन के क्षेत्र में एक प्रतिमान स्थापित कर दिया है। जनपदीय-हिन्दी-आन्दोलन के प्रवर्तक डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के युगोद्बोधक पत्रों का भी संपादन आप कर रहे हैं।

बाबू जी सच्चे अर्थों में ब्रजवासी हैं--जन्म से, कर्म से, मन से, वचन से। आपकी निष्ठा अद्वितीय है, आपकी विनीतता प्रशंसनीय है, आपकी सरलता अभिनन्दनीय है। निःसन्देह आप ब्रजभाषा के प्रति अप्रतिम अनुराग रखते हैं; किन्तु हिन्दी की सेवा करना अपना प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य समझते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आपके ही शब्दों में––"हम स्वयं अपने को हिन्दी का विनम्र कार्यकर्ता पहले और ब्रजभाषा का पीछे मानते हैं।"[१]

निश्चय ही आपका हिन्दी-प्रेम किसी दिन राष्ट्रीय एकता एवं जागरण का शंख-नाद फूँकेगा। आपकी साधना किसी दिन अवश्य ही पुष्पित और फलित होगी। आपकी 'ब्रज-भारती' एक दिन विश्व-भारती बन जायगी।

समाज-सेवा और साहित्य-सेवा दोनों को बाबू जी साथ ही निभाते रहे हैं। मथुरा नगरपालिका के आप बहुत दिनों तक सदस्य रहे और बाद में कई वर्षों तक उसके अध्यक्ष-पद को भी सुशोभित करते रहे। इस अवधि में सहकारिता के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए आपने मथुरा नगर के विकास एवं स्वच्छता के लिए बहुत-सी योजनाएँ बनायीं और उन्हें कार्य रूप में भी परिणत किया। संप्रति आपने निर्जीव ब्रज-साहित्य-मण्डल में पुनः प्राण फूँक दिया है। आप सही माने में उसके यशस्वी अध्यक्ष हैं। यही नहीं आप उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष-पद की भी शोभा बढ़ा रहे हैं।

बाबू जी अपने को लुटाते रहे हैं––दोनों हाथ से। वास्तव में जो अपने को लुटाता है वही श्रद्धेय है, वही वन्दनीय है, वही अभिनन्दनीय है। उनका अभिनन्दन एक योग्य व्यक्ति का अभिनन्दन है, सत्कार्य का अभिनन्दन है, एक सच्चे मानव का अभिनन्दन है।

---

१. 'प्रेरक साधक'––ब्रजभूमि का निर्माण, पृष्ठ २७८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य-मनीषी और जन-सेवक

⊙

केशवदेव मिश्र 'कमल'

यशस्वी साहित्यकार और समाज-सेवी बाबू वृन्दावनदास जी को हिन्दी के प्रति अनन्य निष्ठा है। यास्क की परिभाषा के अनुसार जो तत्वानुभूति से समृद्ध है, वही पंडित है। बाबू जी का 'पांडित्य' यास्क की कसौटी पर खरा उतरता है। आधुनिक गद्य-लेखकों में वह अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। वह सीधा और सरल लिखते हैं। अलंकारमयी, कृत्रिम और संस्कृतनिष्ठ शैली उनके पास नहीं है और न किसी प्रकार की नक्काशी ही उनके पास मिलेगी। भाव-प्रकाशन में भी वह कुछ विशेष पच्चीकारी नहीं करते। भीतर से सहज जो उठता आता है, जैसे-का-तैसा ही उसे कागज पर उतारते जाते हैं। उनकी भाषा सीधी और प्रभावमयी होती है; किन्तु उसमें जो काव्यमयपुट होता है वह और भी परिष्कृत बना देता है।

मैं बाबू जी के सम्पर्क में आया तो उनका ही होकर रह गया। पत्रों में अपने स्नेह की वर्षा वह मुझ पर करते रहे हैं। नवीन लेखकों को आगे लाने में बाबू जी का योग सदा स्मरण किया जाएगा। लगभग ४० वर्ष से साहित्य-क्षेत्र में बाबू जी कुछ-न-कुछ काम करते ही रहे हैं। सन् १९६३ में 'ब्रज साहित्य मंडल' का सभापतित्व उनके हाथ में आया और उसके लिए नित्य प्रति १०-१२ घंटे उन्हें खर्च करने पड़े हैं फिर भी वह अपने को कोई महान कार्यकर्त्ता नहीं मानते।

बाबू जी ब्रज-मण्डल की विभूति हैं। ब्रज-भूमि की सेवा उनके जीवन की प्रेरणा है। अनेक वर्षों से वह समाज-सेवा के विविध क्षेत्रों में अपना सक्रिय योग देते रहे हैं। उन्मुक्त भाव से सहयोग देना उनका स्वभाव बन गया है। ६० के पार पहुँचने पर भी युवकों-जैसा उत्साह उनमें है। शिष्यत्व की भावना और काम को समय पर पूरा करते रहना उनका विशिष्ट गुण है। वह पत्रों के उत्तर तत्काल लिख कर देने में सिद्धहस्त हैं। यद्यपि उनका पत्र-व्यवहार बहुत विस्तृत रहता है, क्योंकि उनका आध्यात्मिक कुटुम्ब भी विस्तृत है।

पद-लोलुपता से दूर रहने पर भी लोगों के आग्रह पर समय-समय पर उन्हें अनेक जिम्मेदारियों को सँभालना पड़ा है। उनकी लगन, दृढ़ता, ईमानदारी और सूझ-बूझ ने ही उन्हें लोकप्रिय बनाया। उनके निम्न शब्द हमें सदा प्रेरणा देते रहेंगे—"हमें कृतज्ञ होना चाहिए अपने उन भाइयों का, जिनके त्याग और बलिदान की नींव पर हम अपनी सुविधाओं के महल निर्माण कर रहे हैं। वे ही हमारी नींव के पत्थर हैं।"

आपकी साहित्य-सेवायें अनुपम हैं। आपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हजारों ही लेख लिखे। 'ब्रज भारती' और 'ब्रज साहित्य मण्डल' आपके ब्रज संस्कृति-प्रेम के जीते-जागते उदाहरण हैं। आप सन् १९६४ से निरन्तर अब तक त्याग और लगन के साथ 'ब्रज भारती' का सम्पादन और 'ब्रज साहित्य मण्डल' का संचालन कर रहे हैं। 'ब्रज भारती' के वह सुयोग्य सम्पादक हैं। 'ब्रज भारती' का सम्पादकीय, खरी टिप्पणियाँ और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मननीय विचार सही दिशा के द्योतक हैं, जो मानव का मार्ग प्रशस्त और स्पष्ट करते हैं। आपने कई ग्रन्थ लिख कर भारती के भंडार को विकसित किया है। आपके 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' की सर्वत्र सराहना हुई है।

बाबू जी जब किसी से मिलते हैं तब बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। वे प्रारम्भ से ही मननशील रहे हैं। असाधारण परिश्रम और श्लाघनीय व्यवहार-बुद्धि से वे लोगों के हृदय में काफी गहरे पैठ चुके हैं। निकट भविष्य के घटनाचक्र और समय की माँग को तत्काल पूरा कर देना उनकी सब से बड़ी खूबी है। बुद्धि उनकी प्रखर है, प्रवृत्ति जिज्ञासु है और परिश्रम से उन्हें रुचि है। भावना और विचारों का एक अद्भुत समन्वय बाबू जी में मिलता है। जहाँ आप छोटी-से-छोटी वस्तु का आदर करते हैं वहाँ आपमें बड़े-बड़े विश्वासों के प्रति भी विरोधाभास देखा गया है। कठिन-से-कठिन जीवन बिताने का उन्हें अभ्यास है। सादगी उनका आभूषण है। वे अपने को एक सिपाही, सेवक मानते हैं। जो कुछ उन्हें ठीक जँचता है, कहने में नहीं चूकते। अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी उन्हें विविध साहित्य और शास्त्रों में बड़ा रस है। प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृतियों का उनमें अद्भुत समन्वय है। उनकी बड़ी भारी विशेषता उनकी अपूर्व सज्जनता है। वे बड़े प्रेम से सब से व्यवहार करते हैं। आज के युग में ऐसे गुणों के कारण वे आदर्श पुरुष हैं। जिन लोगों से उनका सैद्धान्तिक मतभेद हो, उनसे भी उनकी व्यक्तिगत मैत्री बनी रहती है। उनका कहना है, कि "घृणा शब्द को कहीं भी आश्रय नहीं मिलना चाहिए। उसे तो अपने शब्द-कोष में ही नहीं रखना चाहिए, क्योंकि यही झगड़े की यथार्थ जड़ है।"

बाबू जी मौन साधक हैं। उन्होंने मौन साधना द्वारा साहित्य-सृजन और मानव सेवा के लिए सतत् प्रयत्न किया और इन कामों में उन्होंने कभी थकान अनुभव नहीं की। भारतीय संस्कृति से अगाध प्रेम होते हुए भी उन्होंने विश्व-साहित्य के उदात्त सौंदर्य की ओर से कभी अपनी आँखें नहीं फेरीं। उनका विश्वास ढाँचे और प्रणाली में नहीं; बल्कि मनुष्य की पवित्र वैयक्तिकता में है। जो काम सामने है, उसे पूरा कर देना वह अपना धर्म समझते हैं और इस कर्त्तव्य-निष्ठा से जो कुछ भी सहज भाव से उन्हें प्राप्त होता है, वही उनकी दृष्टि में यथेष्ट है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उदारचेता साहित्यवेत्ता

रामेन्द्रमोहन त्रिपाठी
एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न

बाबू वृन्दावनदास का नाम 'हिन्दी', 'हिन्दुस्तानी' तथा 'हिन्दुस्तान' के लिए अब एक घरेलू नाम है। पता नहीं इतनी 'विभा' ईश्वर कैसे एक ही पात्र में भर देता है यह भी हो सकता है कि यह जन्म-जन्मान्तरों का सुफल हो।

मेरा परिचय 'बाबू जी' से सन् १९६७ के आसपास हुआ था। उस समय भी वे 'अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल' के अध्यक्ष थे और आज भी हैं। एक ही परिचय में उनकी चुम्बकीय दृष्टि ने मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और उन्होंने भी मुझे 'ब्रज भारती' की फ्री लिस्ट का अधिकारी समझ लिया। मैं अब तक यह अनुमान नहीं लगा सका हूँ कि कितना धन वह माँ भारती के मंदिर में फूलों की तरह बिखेर चुके होंगे। लखपति तो हिन्दुस्तान में बहुत से हैं लेकिन कितने ऐसे हैं जो अपनी भाषा और संस्कृति के नाम पर कुछ दमड़ी खर्च कर सकें ? मेरी कम लिखने की प्रवृत्ति को वे बार-बार टोकते हैं एवं जब किसी सभा में मिलते हैं तो एक नई मुस्कुराहट के साथ मिलते हैं इससे अजाने ही मन में जीवन के प्रति मोह पैदा हो जाता है। चिकने मुखमंडल पर चमकता हुआ चश्मा और चश्मे से आर-पार देखती हुई दो आँखें जब भी मेरे चेहरे पर टिकती हैं सहसा आभास होने लगता है कि अभी तीर जैसा कोई प्रश्न हुआ, कोशिश करता हूँ कि भीड़ में निकल जाऊँ लेकिन समारोह के बीच में ही आदेश मिल जाता है कि भाग मत जाना कुछ बातें करनी हैं। समारोह की भीड़ छूटती है तो एकान्त में कोई किताब निकाल कर देते हैं और धीरे से कहते हैं कि मथुरा से इसे आपके लिए ही लाया था। मन गर्वित हो जाता है कि बाबू जी को अपने से छोटों का कितना ख्याल रहता है। 'श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ' निकला तुरन्त ही आदेशात्मक पत्र मिला कि ब्रज मण्डल पर कोई लेख फौरन भेजो। क्या करता जैसे-तैसे लिख कर भेजना पड़ा। आज भी लेख प्राप्ति की अंतिम तिथि पर ही इसको प्रस्तुत कर रहा हूँ, लेकिन इस बात का भी एक अजीब सुख है कि मैं कुछ पंक्तियाँ 'बाबू जी' के प्रति लिखने में समर्थ हो सका। कहाँ हैं ऐसे लोग जो निर्व्याज कामना के साथ अपने से छोटों को बढ़ाने में सहायक होते रहे हों ? बाबू जी जैसे ही ऐसे लोगों की परम्परा जन्म लेगी।

अभी हाल में ही आगरा की 'श्री नागरी प्रचारिणी सभा' में बाबू जी की एक पुस्तक हाथ लगी। "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" एक ही बैठक में पढ़ गया, लगा कि बाबू जी भारतीयता के प्रति कितने आशावान हैं और नवीन पीढ़ी को दिशा निर्देशन को उत्सुक। वे स्वयं में एक संस्था हैं, पिछले वर्ष फिरोजाबाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यक्रम की सफलता में उनका बहुत कुछ हाथ था। इसी आयोजन के सम्बन्ध में एक कार्ड मुझे भी आदेश के साथ मिला कि कवि सम्मेलन में पहुँचो। पहुँच ही गया

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

क्या कर सकता था। कलम की साधना में रत रह कर भी अपने व्यवसाय को सम्हाले रखना उनकी अपनी विशेषता है। संभवतः यह उनके अभिजात कुल और वंशानुगत कीटाणुओं की विशेषता ही है। वरना सरस्वती के चक्कर में कितने ही लक्ष्मीपुत्र धारा में बह गए।

ब्रज प्रदेश के आंदोलन में आपका स्पष्ट वैचारिक दृष्टिकोण जनता के सम्मुख आया है। एक साफ सुथरी योजना भी उनके मस्तिष्क में है भले ही राजनीति के खिलाड़ी उसमें दाँव खोजने की चेष्टा करें लेकिन समझदार आदमी को आन्दोलन के औचित्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा। इसकी अस्वीकृति भी ब्रज प्रदेश की जनता को महँगी पड़ेगी यह निश्चित है। ब्रजभाषा हिन्दी से अलग कोई भाषा नहीं फिर भी इसके अंचल में कुछ न्यारी ही छबि है, उसे बाबू जी ने खुली आँखों से देखने की कोशिश की है। स्पष्ट आलोचना समाज में जल्दी स्वीकृति नहीं पाती लेकिन जब भी स्वीकृति की मोहर लगती है तो स्थाई ही लगती है इसीलिए उन्होंने इस आन्दोलन को बढ़ाया है, कुछ छूटे हुए उपेक्षित लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए। अन्य कोई विचारधारा इसमें घुस ही नहीं सकती है।

साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों के बीच में समान रूप से अपने अधिकार को अक्षुण्ण रखने वाले बाबू जी वास्तव में ब्रज प्रदेश के रत्न हैं। मेरी कुछ सहकर्मियों से अभी पिछले दिनों बाबू जी के बारे में चर्चा चली। उन्होंने विगत वर्षों में बाबू जी के नगरपालिका मथुरा के अध्यक्ष काल में हीं वहीं पर कार्य किया था, उन सब ने एक मत हो कर स्वीकारा कि बाबू जी की कार्य प्रणाली ही अजीब थी, वे आलोचनात्मक पद्धति के हामी नहीं रहे वरन् अपने अधीनस्थ कर्मचारी की प्रशंसात्मक अनुभूति को जगाने वालों में से रहे हैं। जिस उदात्त भावना का अंकुर बाबू जी के कार्यकाल में उनके अंदर फूटा है वह आज तक उनकी निधि है। इससे उनके लोकप्रिय प्रशासक का स्वरूप भी उद्घाटित होता है। राजनैतिक दृष्टि तो बहुधा अध्यक्षों में समान रूप से मिलती है पर बाबू जी में एक पालिका कर्मचारी की भावना थी इसीलिए उनके कार्यकाल को आज भी मथुरा नगरी के लोग याद करते हैं।

विविधताओं के धनी और समाज को चैतन्य रूप देने की चेष्टा में रत बाबू जी जैसा व्यक्तित्व वर्तमान एवं भविष्य दोनों की निधि है। पीढ़ियाँ इनके उदाहरण से कुछ-न-कुछ अवश्य सीखेंगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रखर राजनयज्ञ

⊙

बाबू अब्दुलगनी

मथुरा नगर के राजनैतिक जीवन में जहाँ कहीं बाबू वृन्दावनदास जी की चर्चा होती है वहाँ मेरा नाम उनके साथ जरूर लिया जाता है। यह मेरी और उनकी पुरानी तथा गहरी मित्रता का नतीजा है। वृन्दावनदास जी बड़ी खूबियों के मालिक हैं और हमारे मथुरा नगर के एक रत्न हैं। मैं उनकी दूसरी योग्यताओं के विषय में कुछ नहीं लिख सकता क्योंकि मैं न कोई कवि हूँ न लेखक। परन्तु यह बात अपने घनिष्ठ और पुराने सम्पर्क के आधार पर कह सकता हूँ कि ईश्वर ने उनको एक अच्छा दिमाग दिया है और वह कुशल शासक के रूप में हमेशा सफल रहे हैं।

यह सन् १९३५ की बात है। मैं और वह मथुरा नगरपालिका के चुनाव में कामयाव हुए थे और मेरी उनकी दोस्ती की शुरुआत नगरपालिका सदस्य होने के नाते ही हुई। फिर मित्रता और सम्पर्क दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया और ईश्वर की कृपा से आज भी कायम है। सन् १९३५ के बाद में मैं और वे चुनाव में कामयाब होते रहे। वह मेरे साथ सदस्य भी रहे और उपाध्यक्ष और अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने नगर-पालिका का प्रबन्ध संभाला और नगर की उन्नति के कामों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

बाबू वृन्दावनदास जी बड़े मिलनसार और हँसमुख, सादा रहन-सहन रखने वाले व्यक्ति हैं। एक दो बार जो उनसे मिल लेता है उनका हो जाता है। वह अपने आजाद विचार रखते हैं और यही वजह है कि वे कई राजनैतिक पार्टियों में थोड़े-थोड़े समय रह कर हमेशा आजाद ही रहे। उनकी राजनैतिक सूझ-बूझ इतनी है कि वह जल्दी ही जनता के रुख को पहचान लेते हैं और फिर उसी के मुताबिक चलने की कोशिश करते हैं जिसने उनको जनप्रिय बना दिया है। एक समय था जब हम स्व० रायबहादुर जमुनाप्रसाद जी, अध्यक्ष, नगरपालिका, के समर्थक थे। फिर काफी सालों के बाद जनता ने चेयरमैनी में परिवर्तन चाहा तो बाबू जी ने जनता की आवाज पर रायबहादुर साहिब के मुकाबिले में स्व० पं० शक्तिपाल का खुला समर्थन किया और मैं भी शक्तिपाल जी का हामी व मददगार रहा। इस कार्य में तत्कालीन नगरपालिका सदस्य पं० शिवराम शास्त्री का सशक्त सहयोग रहा।

मैं आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के सिद्धान्तों को उसी समय से मानता रहा हूँ जबकि देश में विभाजन से पूर्व मुस्लिम लीग का बड़ा दौर दौरा था। मैं हमेशा स्थानीय कांग्रेस कमेटी का मेम्बर रहा और आज भी कांग्रेस में हूँ। मेरी इसी कारण यह इच्छा रही कि मेरे गहरे मित्र बाबू वृन्दावनदास जी भी कांग्रेस में शामिल हो जाएं। मेरा इसरार बढ़ता गया और बाबू जी हँस कर टालते रहे। यहाँ तक कि सन् १९५३ में नगरपालिका में कांग्रेस पार्टी के १८ सदस्य चुने गए और जनसंघ के केवल १४ सदस्य परन्तु सीधे चुनाव की प्रणाली के कारण स्व० नागर जी जनसंघ की टिकट पर चेयरमैन चुन लिए गए। कांग्रेस पार्टी के अधिक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सदस्य उस समय बाबू वृन्दावनदास जी से बड़ा प्रेम रखते थे और उनकी राय को मान्यता देते थे। इसलिए कांग्रेस म्युनिस्पल पार्टी की मीटिंग बाबू जी के ही निवास स्थान पर होने लगी। और बाबू जी पार्टी के आपसी मामलात को भी सुलझाते रहे और परामर्श भी देते रहे। ऐसी दिशा में मेरा उन पर जोर बढ़ता गया कि वे कांग्रेस में शामिल हो जांय। स्व० डा० श्रीनाथ भार्गव जो उस समय एम० एल० ए० और मथुरा कांग्रेस के शक्तिशाली नेता थे वह भी मेरे गहरे मित्र और साथी थे। स्व० डा० साहिब ने भी वृन्दावनदास जी से कांग्रेस में आ जाने का इसरार किया। बाबू जी ने ज्यादातर मेरे लिहाज से कांग्रेस में शरकत कर ली और गांधी पार्क कांग्रेस मण्डल के अध्यक्ष भी चुन लिए गए। एक साल बाद जब नागर जी की सीट चुनाव-याचिका सफल हो जाने की वजह से खाली हुई तो कांग्रेस पार्टी के १८ म्युनिस्पल सदस्यों में से १४ सदस्यों ने बाबू जी का जोरदार समर्थन कर के उनके लिए चेयरमैनी के टिकट की मांग की परन्तु राजनीति के खेल निराले होते हैं केवल ४ सदस्यों की राय पर ही स्व० डा० साहिब को कांग्रेस हाईकमान ने टिकट दिया और वह सफल भी हो गए मगर नगरपालिका के सदस्यों में असन्तोष रहा और कुछ समय बाद बाबू जी भी कांग्रेस छोड़ कर फिर नान-पार्टी लीडर ही बन गए। बाद के चुनावों में एक समय ऐसा भी आया कि कांग्रेस पार्टी बहुमत प्राप्त न कर सकी और उस समय आजाद मेम्बरों के साथ ब्लाक कायम करके बाबू जी को ही चेयरमैनी के लिए चुना गया। मेरी नजर में बहुत से वाकयात हैं जिनको अगर बयान करता चला जाऊँ तो यह लेख बहुत लम्बा हो जाएगा। अब मैं भी बूढ़ा हो चुका हूँ और वृन्दावनदास जी भी वृद्धावस्था में आ गए हैं। फिर भी मुझे ताज्जुब होता है कि वह १२-१३ घंटा बराबर लिखा पढ़ी का काम करते रहते हैं। मैं अपने मित्र वृन्दावनदास जी के लिए लम्बी उम्र और अच्छे स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

"यह चमन यूं ही रहेगा और हजारों जानवर
अपनी अपनी बोलियां सब बोलकर उड़ जायेंगे।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निष्णात राजमर्मज्ञ

⊙

मोहम्मद शाहमीर मलीहा

मथुरा का यह ऐतिहासिक स्थान, व्रज की यह सुन्दर नगरी इसीलिए सारे देश बल्कि संसार में प्रसिद्ध है कि यहाँ से श्रीकृष्ण जी ने प्रेम और शान्ति का सन्देशा दिया था जिसकी गूंज अब भी यहाँ के वायुमण्डल और जमुना की पवित्र लहरों में सुनाई देती है। परन्तु इसको इस कारण भी ऊँचा स्थान प्राप्त है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेकों महाकवि बड़े-बड़े लेखक और मशहूर गायक इस स्थान पर पैदा हुए जिनका साहित्य आज भी सारी दुनियाँ के हृदय को मोहित किए हुए है।

मेरे मित्र बाबू वृन्दावनदास जी जिनके जीवन के सम्बन्ध में एक उचटती नजर डाल कर मैं कुछ सूक्ष्म में कहना चाहता हूँ इसी पवित्र भूमि के निवासी हैं। मैं उर्दू जबान का कवि और लेखक हूँ। इसलिए मैं बाबू जी के हिन्दी साहित्य के मुत्तालिक विस्तार से कुछ लिखने में समर्थ नहीं हूँ। परन्तु उस सम्पर्क के कारण जो राजनीति में वर्षों से बाबू जी के साथ रहा है मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि वह एक अच्छे राजनितिक व्यक्ति होने के साथ-साथ हिन्दी भाषा के ऊँचे दरजे के लेखक हैं। हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में उनके लेख हर प्रकार के विषयों पर मैंने पढ़े हैं। वह बहुत सादा भाषा में ऊँचे विचारों को समो देते हैं। उनके लेखों से पढ़ने वालों को उकताहट नहीं होती बल्कि दिलचस्पी बढ़ती जाती है। अंग्रेजी भाषा में इलाहाबाद के अखबार 'लीडर' में जो अब बन्द हो चुका है, मैं "एडीटर के नाम पत्र" कालम में समय-समय पर देश के समक्ष आने वाली समस्याओं पर उनका दृष्टिकोण और राय अक्सर पढ़ता रहता था। मुझे यह मालूम हुआ कि बाबू जी अंग्रेजी लेखों में भी अपना जवाब नहीं रखते। मैंने बाबू जी को कई परामर्श दिये हैं कि अंग्रेजी भाषा के ऐसे तमाम छपे हुए लेखों की कटिंग को जो उनके पास मौजूद हैं तरतीब देकर अपने सामने ही छपवा दें ताकि आगे आने वाली पीढ़ी उनके विषय में यह भी जान सके कि वे केवल हिन्दी में ही नहीं बल्कि अंग्रेजी भाषा में भी किस बेतकुल्लफी और सादगी के साथ अपने विचारों को प्रगट करते हैं।

बाबू वृन्दावनदास जी की सेवायें शिक्षा और सहकारिता के मैदान में भी कुछ कम नहीं हैं। वह करीब आधे दर्जन कालिजों और हाईस्कूलों की प्रबन्ध कमेटियों के अध्यक्ष, मंत्री तथा सदस्य हैं और इन संस्थाओं द्वारा इन्होंने अपने अनुभव से उन स्कूलों और कालिजों को बड़ा फायदा पहुँचाया है। मुझे भी बाबू जी के साथ पोद्दार हायर सैकेन्डरी स्कूल की मैनेजिंग कमेटी का सदस्य होने का वर्षों से मौका मिला है जिसके वह अध्यक्ष हैं और मैंने देखा है कि बाबू जी गम्भीर से गम्भीर प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं को बड़ी आसानी से सुलझा देते हैं।

कोआपरेटिव मूवमेंट को देश में आजादी के पश्चात् बड़ा बढ़ावा मिला है और हुकूमत ने भी इसमें

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अधिक-से-अधिक सहायता प्रदान की है। बाबू जी की सेवायें इस सम्बन्ध में केवल मथुरा जिले तक ही सीमित नहीं रही बल्कि सारे प्रान्त में उनकी जानकारी और योग्यता से लाभ उठाया गया है।

राजनैतिक क्षेत्र में बाबू वृन्दावनदास जी अपने स्वतंत्र विचारों के लिए मशहूर हैं। कई राजनैतिक पार्टियों के सदस्य तथा पदाधिकारी रहने के बाद उनके आजाद विचारों ने उनको कहीं पाबन्द नहीं होने दिया और वह आज भी मथुरा के निर्दलीय नेताओं में अपना अलग स्थान रखते हैं। इन्होंने अपने नगर की वर्षों तक नगरपालिका के सदस्य एवं अध्यक्ष और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट रह कर सेवायें की हैं और नगर की उन्नति में उनका भाग किसी दूसरे से किसी प्रकार कम नहीं रहा है। बाबू वृन्दावनदास जी से मेरी पहली मुलाकात बाबू अब्दुलगनी साहिब के द्वारा जो उनके पुराने और गहरे मित्र हैं करीब१९-२० वर्ष पहले हुई थी। फिर नगर की राजनीति में भाग लेते रहने की वजह से बाबू जी से बराबर हमारा सम्पर्क आज तक कायम है और उनकी नपी-तुली राय से मैं अनेकों अवसरों पर बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

बाबू वृन्दावनदास जी के विषय में सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि वह एक अच्छे हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के लेखक, शिक्षा और कोआपरेटिव संस्थाओं के योग्य शासक तथा राजनीति में सुलझे और ऊँची विचारधारा के मालिक हैं। आजकल देश में शिक्षा की अवश्य उन्नति हो रही है परन्तु इसी के साथ-साथ शिक्षा का स्तर दिन पर दिन गिरता जा रहा है। इसी कारण यह आशा बहुत कम है कि आने वाली पीढ़ी बाबू वृन्दावनदास जैसा योग्य और सादा मिजाज का व्यक्ति पैदा करने में सफल हो सकेगी। बाबू वृन्दावनदास जी आजकल अपना पूरा समय केवल हिन्दी भाषा की उन्नति और उसमें अच्छा लिटरेचर प्रकाशित करने पर लगा रहे हैं और इसके लिए वह इस वृद्धावस्था में भी १२-१३ घंटे तक अपनी मेज पर काम करते रहते हैं। बाबू जी उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अध्यक्ष हैं जो अवसर शायद मथुरा में उनको ही पहली बार मिला है।

उन जैसे योग्य व्यक्ति की मौजूदगी हमारे लिए गौरव की बात है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह बाबू जी को लम्बी उम्र दें ताकि देश और देशवासियों को उनके अनुभव और योग्यता से ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो सके।

डा० इकबाल के उर्दू शेर पर मैं अपना लेख समाप्त करता हूँ—

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मंडल के सारथी

⊙

आचार्य जुगलकिशोर चतुर्वेदी

ब्रज, ब्रजभाषा एवं ब्रजवासियों के अनन्य सेवक बाबू वृन्दावनदास जी के बारे में जो कुछ भी कहा जाये, अथवा लिखा जाये वह कम है। यदि सच मानें तो बाबू जी की सामाजिक एवं साहित्यिक सेवाओं के विषय में एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है।

संसार में ऐसे बहुत कम सज्जन देखने को मिलते हैं जिन पर लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों की एक साथ कृपा हो किन्तु बाबू जी पर दोनों की कृपा है। बाबू जी को दोनों की कृपा होने पर भी तनिक भी गर्व नहीं है।

मण्डल के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो यही कहा जा सकता है कि बाबू जी ने मंडल की जो तन, मन, धन से सेवा की है वह अब तक कोई भी अध्यक्ष नहीं कर सके हैं। बिना योग्य सारथी के रथ का घोड़ा नहीं चल सकता है इसी प्रकार बाबू जी ने सारथी के रूप में मंडल के रथ को आगे बढ़ाया है।

सन् १९६३ की बात है। मंडल के तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० श्री जगदीशनारायण जी चतुर्वेदी से बातें हो रही थीं कि मंडल के लिए एक कर्मठ कार्यवाहक अध्यक्ष की आवश्यकता है जो मथुरा निवासी हो। काफी विचार-विमर्श के बाद बाबू जी के नाम की ओर ध्यान मैंने दिलाया। तुरन्त ही भाई जगदीश नारायण जी ने स्वीकार कर बाबू जी से मिलने का निश्चय किया। जब हम दोनों तथा डा० आनन्दस्वरूप पाठक बाबू जी के घर पर उनसे मिले और अपना निर्णय उन्हें बताया तो बाबू जी ने मंडल की शोचनीय स्थिति पर हमसे बातचीत की तथा बाद में सहर्ष अपनी स्वीकृति मंडल की सेवा करने हेतु दी। बाबू जी ने कहा, "मैं जो वचन कह देता हूँ उसे अपनी सामर्थ्यानुसार पूरा करता हूँ।"

गाजियाबाद के मोहन चित्रलोक में जून १९६३ में बड़ी धूमधाम से मंडल का अधिवेशन हुआ और तत्कालीन अध्यक्षा श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने बाबू जी को मंडल का अध्यक्ष मनोनीत किया। बाबू जी ने पद लेते ही अपने सेवा व्रत की घोषणा कर दी। बाबूजी ने बैठक में कहा कि प्रत्येक संस्था को अपने निजीभवन एवं मुखपत्रिका की बहुत आवश्यकता होती है। मंडल में पहले कुछ वर्षों में व्यवधान हो जाने से यह दोनों कार्य स्थगित हो गए थे। मंडल के संबंध में अधिकारियों द्वारा की गई जाँच के समय विरोधियों ने अपने प्रभाव से यहाँ तक लिखा दिया कि मंडल जैसी कोई संस्था ही अस्तित्व में नहीं है और न कोई पदाधिकारी ही। इस बात को जान कर बाबू जी के हृदय को आघात पहुँचा और बाबू जी ने अपनी लगन एवं योग्यता से धैर्य के साथ अधिकारियों से मिलकर सही स्थिति समझा कर उचित रिपोर्ट लिखाई। मंडल के जयसिंहपुरा स्थित भवन, अधिग्रहण के संबंध में यदि मैं यह कहूँ कि बाबू जी के सद्प्रयत्नों से आज मंडल को भवन अधिग्रहण हो गया है तो कोई अत्युक्ति न होगी। बाबू जी ने अपना तन,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मन, धन न्यौछावर कर के मंडल को भवन प्राप्त कराने में जो अपना वचन निभाया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

दूसरा बचन बाबू जी ने सन् १९६४ में मंडल के संयुक्त प्रधानमंत्री श्री किशनप्रसाद जी जैन ऐडवोकेट के निवासस्थान पर हुई बैठक में दिया था कि मंडल की पत्रिका "ब्रजभारती" को अनवरत संपादित एवं प्रकाशित करता रहूँगा। "ब्रज भारती" को जब से बाबू जी ने सँभाला है तब से वह स्वयं ही संपूर्ण कार्य कर रहे हैं और बाबू जी के कार्यकाल में "ब्रज भारती" बराबर अपने समय पर प्रकाशित हो रही है एवं उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही है।

बाबू जी अपने जीवनकाल में अनेक सहकारी संस्थाओं, शिक्षण संस्थाओं, सामाजिक संस्थाओं एवं साहित्यिक संस्थाओं में अध्यक्ष पद सुशोभित कर चुके हैं और वह आज भी लगभग १० संस्थाओं के अध्यक्ष हैं। बाबू जी की विशेषता यह है कि कोई भी कार्यकर्ता बाबू जी के संपर्क में आकर उनकी कार्यप्रणाली से असंतुष्ट नहीं हो पाता।

देश विदेश के अनेक विद्वान बाबू जी के पास जब आते हैं और उनके विचार सुनते हैं तो अनेकों बार यही कहते सुना है कि ऐसा कर्मठ एवं योग्य व्यक्ति अभी तक नहीं मिल पाया। रूस, अमेरिका एवं भारतवर्ष के अनेकों विद्वान्, कवि, लेखक, पत्रकार एवं साहित्यकार बाबू जी के पास आते-जाते हैं और पत्र-व्यवहार करते रहते हैं। साहित्य की एक विधा पत्र लेखन शैली के तो बाबू जी मूर्द्धन्य विद्वान् हैं। डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र नामक ग्रन्थ का आपने बड़ी योग्यता एवं कुशलता से सम्पादन किया है। बहुत समय से अंग्रेजी एवं हिन्दी पत्रों में बाबू जी के मौलिक एवं आधुनिक विषयों पर पत्र छपते रहते हैं।

बाबू जी को साहित्यिक यात्राएँ करने का बहुत शौक है। अनेक विद्वानों को अपने साथ यात्राओं में ले जाते हैं और बराबर हिन्दी भाषा की उत्तरोत्तर वृद्धि के विषय में विचार चलता रहता है। आगरा, फिरोजाबाद, अयोध्या, गाजियाबाद, देहली, देहरादून, मुरादाबाद आदि अनेक नगरों की साहित्यिक यात्राएँ बाबू जी कर चुके हैं।

बाबू जी को हिन्दी के प्रचार-प्रसार की सच्ची लगन है। इसी भावना से प्रेरित हो कर बाबू जी ने "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" द्वारा हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता प्रारम्भ कराई है जो पिछले अनेक वर्षों से चल रही है। प्रत्येक वर्ष पुरस्कार बाबू जी की ओर से सभा द्वारा प्रदान किए जाते हैं।

हिन्दी की मूक सेवा के भाव से बाबू जी अनेक स्थानों पर पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित करना चाहते हैं और इसी श्रृंखला में भगवान राम के जन्मस्थान अयोध्या में बाबू जी द्वारा रजिस्टर्ड ट्रस्ट बना कर पुस्तकालय की स्थापना भी हो चुकी है। शीघ्र ही मथुरा में भी पुस्तकालय एवं वाचनालय की स्थापना की जा रही है।

बाबू जी ने जिस लगन एवं योग्यता से ब्रज साहित्य मंडल की सेवा की है और कर रहे हैं उसी से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यकर्ताओं ने उन्हें अध्यक्ष पद पर आसीन कर के अपनी शोभा बढ़ाई है। बाबू जी की हिन्दी सेवाओं के कारण ही सम्मेलन ने उन्हें "साहित्य वारिधि" की उपाधि से सम्मानित किया है। डाक्टर बनारसीदास चतुर्वेदी बाबू वृन्दावनदास जी को साहित्यिक कमिश्नर की उपाधि से विभूषित कर चुके हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू जी में यह विशेषता है कि उनके साथ जो कार्यकर्ता एक बार कार्य कर लेता है उस पर बाबू जी की ऐसी छाप पड़ती है कि वह उनसे कभी भी असन्तुष्ट नहीं हो पाता।

बाबू जी आजकल जनपदीय भाषाओं की सेवा में लगे हुए हैं। बाबू जी साहित्यिकों की आशा के केन्द्र हैं। उनसे अनेक तरुण लेखक, प्रकाशक, पत्रकार आजकल भी विचारोत्तेजक ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन्हीं सब बातों से प्रेरित हो कर कार्यकर्त्ताओं ने बाबू जी की सेवाओं के प्रति उन्हें अभिनन्दित करने का निर्णय किया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मूर्तिमंत सौजन्य

⊙

त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल

राजनीति में सक्रिय जीवन बिताने के पश्चात् प्रायः व्यक्ति अपने व्यावहारिक जीवन में अधिक उदार तथा निस्वार्थ नहीं रह पाता है किन्तु, इस संसार में इसके अपवाद में कुछ उदाहरण नहीं दिए जा सकें, ऐसा असम्भव नहीं है। आदरणीय बाबू वृन्दावनदास जी का जीवन भी इस प्रकार के अपवाद का एक आदर्श उदाहरण है। अनेक वर्षों तक सक्रिय राजनीतिक जीवन व्यतीत करने के उपरान्त भी राजनीति की तिक्तता एवं रिक्तता उनके जीवन में नहीं आ पाई है। वे अपने व्यावहारिक जीवन में जितने अधिक सरल एवं निश्छल मुझे प्रतीत हुए हैं, उससे मेरे मन में सदा ही उनके प्रति आदरभाव बढ़ा है।

मथुरा नगर के एक सम्पन्न व्यापारिक परिवार में जन्म लेने तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उनमें जितनी शालीनता एवं विनम्रता है, वह वस्तुतः एक प्रकार से अन्यतम है। यह बात उस समय के व्यक्तियों के सम्बन्ध में विशेष महत्व रखती है जब कि, मथुरा में सम्पन्न परिवार और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति गिने-चुने ही थे। यह मथुरा नगर के चालीस वर्ष पूर्व के सन्दर्भ की बात है किन्तु, वह सन्दर्भ आज भी गुण-शील के मूल्यांकन में किसी अन्य परिणाम का द्योतक नहीं है। बाबू जी इस नगर में तथा इसके बाहर अनेक उच्च पदों पर आसीन रह चुके हैं किन्तु उनमें अभिमान छू तक नहीं गया।

आदरणीय बाबू जी से जब भी मैं मिला हूँ, मैंने उनके व्यापारिक अथवा राजनीतिक स्वरूप के कभी दर्शन नहीं किए। मैंने उन्हें सदा ही एक आदर्श साहित्य सेवी एवं ब्रजभाषा के प्रमुख व्रती के रूप में पाया है। पिछले सात-आठ वर्षों से वे निरन्तर हिन्दी एवं ब्रजभाषा के प्रचार-प्रसार में दत्तचित्त हैं। ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष पद से तथा अपनी व्यक्तिगत साहित्यिक अभिरुचि से जिस प्रकार वे योजनाबद्ध विधि से हिन्दी तथा ब्रजभाषा की साहित्यिक सेवा कर रहे हैं, उससे ब्रज के अनेकों साहित्य-सेवियों को प्रेरणा मिली है और उनका निवास स्थान बाहर से पधारे साहित्यकारों के लिए एक सुखद विश्राम-स्थल बन गया है। साहित्यकारों की सेवा और उनको यथाशक्ति दिया गया सहयोग उनकी गुण ग्राहकता को सहज रूप से प्रकट करता है तथा उनके उत्कृष्ट साहित्य प्रेम की साक्षी देता है।

अपने से छोटी आयु के साहित्य सेवी के प्रति उन्हें सदा ही मैंने स्नेहशील एवं सहृदय देखा है। बिना किसी दंभ तथा बड़प्पन के वे सम्पर्क में आए प्रत्येक साहित्य सेवी के लिए अपना हर सम्भव सहयोग प्रदान करते रहते हैं। यही कारण है, भारत के अनेक छोटे-बड़े साहित्यकार उनके प्रति अत्यन्त सम्मान एवं श्रद्धा रखते हैं तथा उन्हें स्मरण करते हैं, सम्भवतः इसीलिए, श्रद्धेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी उन्हें ब्रज का साहित्यिक कमिश्नर कहते हैं।

हिन्दी तथा ब्रजभाषा साहित्य के विविध रचनात्मक कार्यों के सम्बन्ध में मैं जब भी उनसे मिला हूँ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मुझे सदा ही उनसे स्नेहयुक्त प्रोत्साहन तथा सहायता मिली है। मुझे उनके सम्मुख अपने विचार प्रकट करने में कभी द्विविधा प्रतीत नहीं हुई। मैंने बिना किसी झिझक के उनके सामने अपनी विविध योजनाओं एवं समस्याओं को रक्खा है। उन्होंने भी बिना किसी औपचारिकता के मुझे अपने दीर्घकालीन सामाजिक अनुभव के आधार पर समय-समय पर अपना सद्परामर्श दिया है। उनकी सहज सौजन्यता के प्रति मेरे हृदय में अत्यन्त उच्च स्थान है तथा मैं तो उन्हें सौजन्यता की मूर्ति ही मानता हूँ। उनके आदर्श आकर्षक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो भी लिखा जाय वह वस्तुतः थोड़ा ही होगा क्योंकि, उनकी विस्तृत गुण गरिमा को व्यक्त करना सरल नहीं है। अतएव, उनके अभिनन्दन के शुभावसर पर मेरा भी विनम्र अभिनन्दन है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज साहित्य मंडल और बाबू वृन्दावनदास जी

मोहनलाल शर्मा
एम० ए०, साहित्यरत्न

मंडल कौ नाम लेतई आजु एक ऐसी तसवीर आँखिन के साँमई आय जाय ऐ, जाके चौखटा बिखरि कैं दूर जाय परे हौइँ, सीसा धूरिके अम्बारन ते अट्यौ पर्‌यौ होइ। जामैं ते चित्र कूँ निकारि कैं फेरि मँढ़ाइबे के ताँई कहूँ अलग धरि दयौ होइ और जाकी कील फाँसन कौ कछू पतौई नाँय होइ। कैसी सुन्दर तसवीर हती। नए-नए कलाकारन नैं अपनी प्रज्ञा, प्रतिभाते वाकूँ सजाइबे, सँवारिबे कूँ कैसी साधना करी हती। एक सुन्दर सपनौ साकार होइबे के ताँई कुलबिलायौ हौ। ब्रज लोकजीवन के पावन मन्दिर मैं साहित्य-देवता की पूजा आरती की भीनी-भीनी सुवासित सुगन्ध चारौं ओर फैलन लगी ई और घन्टा झालरन की झनकार दूरि-दूरि लौं पहुँचन लगी ई। पर हाय रे दुर्दैव, प्राणप्रतिष्ठा होंतई, परसाद की चिन्ता हौन लगी। एक ऐसी आँधी आई कै बुझे भए दीए ऊ टकरायन लगे, पुजारीन नैं जैसे तैसे जान बचाई और तसवीर बिखरि गई। झालर घन्टन कौ ऊ पतौ नाँय चलौ। सर्जन कौ ऊ सुन्दर संस्थान भूतन कौ डेरौ बनिगयौ। अब वामैं कौन घुसै ?

जिनके मंडल ते आत्मीय सम्बन्ध हते, उनके मन मैं एक टीस बसि गई कै हाय, ई कहाभयौ। कबऊ न कबऊ तौ या अवस्था ते उद्धार होनौ चाहिए। वा धरोहर कूँ साजिबे सँवारिबे कैं लएँ कछू तौ करनौ चाहिए। दूर-दूर परे बड़े-बड़े चौखटान की अपनी विवसता हती। अन्त मैं उननैं अपने अपने फ्रेम बनाइकैं एकाकी अर्चना सुरू करि दई। या अवस्था में प्राप्त भए चित्र की वा पुनीत धरोहर की सुरक्षा करिबे की व्यथा जाके अन्तःकरण मैं तीव्र तम रूप ते क्रियात्मक पगडंडीन पै बहिबे लगी—वे ऐं—स्वनाम धन्य बाबू वृन्दावनदास जी जिनकें ताँई आज सब ब्रजवासी समवेत स्वर ते साधुपाद दै रए ऐं।

यों तौ मंडल ते बाबू जी कौ सम्बन्ध पुरानौ हौ; पर अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा ते भरे भए सुयोग्य जीवन में 'मंडल' की सेवा करिबे कौ प्रत्यक्ष दायित्व सन् १९६३ मैं उनपै आयौ जब वे गाजियाबाद अधिवेसन मैं मण्डल के उपाध्यक्ष सुसोभित भए। सन् १९६४ तेई 'मंडल' की मुखपत्रिका 'ब्रजभारती' के प्रकासन कौ काम आपकी कृपा ते प्रारम्भ भयौ जो आज लौं अनवरत रूप ते चलि रह्यौ ऐ। ता पाछैं आप 'मंडल' के अध्यक्ष पद पै सुसोभित होइकैं आज लौं वाकी गौरवगरिमाकूँ प्राण प्रण ते निबाह रए ऐं। बाबू जी ने अपने या ७-८ साल के सेवा काल मैं न केवल धरोहर में मिले ब्रज साहित्य देवता के वा पुनीत चित्र कूँ झाड़ पौंछ कैं साफ कर्‌यौ ऐ वरन् रास्ट्रीय साहित्य की समसामयिक विकासमान गतिविधीन के संग पूरी तरै सामंजस्य बनाइकैं नए-नए कलाकारन कूँ प्रेरणा दई ऐ, जो अपनी-अपनी तूलिकान नैं लैकें आज वा चित्र मैं नए-नए रंग भरिबे कूँ सजि परे ऐं।'भूत' भाग गए ऐं, वर्तमान सजग ह्वै गयौ ऐ, आँगन साफ है गयौ ऐ, अगरु दीप जरि उठे ऐं और भविष्य आसामय भयौ ऐ। या लघुकाल की या प्रगतिसील उपलब्धि कौ एकमात्र श्रेय सौम्यसील निधान बाबू वृन्दावनदास जी कूँ ई ऐ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'ब्रजभारती' के बन्द होइवे कौ तौ प्रस्नई नाँय। ब्रजभाषा गद्य की अपनी या सैली में हर अंक कूं एक रचना जरूर जरूर भेजौ करौ। अपनी 'पत्रिका' में ब्रजभाषा की रचना राखियों। 'मंडल' के भवन कूं अधिग्रहण करिवे की बड़ी रोचक कहानी ऐ। लगि रह्यौ ऊँ। 'मंडल' की आगरा साखा बड़ी सक्रिय रूप ते संलग्न ऐ। श्री कविरत्न समारोह पें आगरा अइयों। हिन्दी-वर्धिनी योजना के ताँईं कहा लिखि रए औ। अन्तर्जनपदीय परिसद् की फिर ते सुरुआत करिंगे। श्री पालीवाल जी व पं० हरीशंकर जीऊ गए। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन देहरादून अधिवेसन मैं आय सकौ तौ अइयों। चच्चन जी बीमार ऐं। गोरधन पैं ब्रजसाहित्यसेवीन कौ अच्छौ समूह ऐ। चोखी गोष्ठी करैं ऐं। हिन्दी और ब्रजभाषा की सेवा एकई ऐ। प्रस्न ऐ—कछू करौ तौ—काऊ के लइयाँ करौ। कोसी मैं प्रदेसीय सम्मेलन की साखा खोलियो। 'ग्वाल' पै डा० पचौरी नैं चोख्यौ काम कियौ ऐ। भारतीय इतिहास कौ अबई पूरौ रूप उजागर नांय भयौ। साँचे मानिन मैं ई हिन्दू इतिहास हौ नौ चहिए। पू० दादा जी के अभिनन्दन समारोह मैं दिल्ली अइयों। अपनी-अपनी रचनान के प्रकासन की छोटी-छोटी योजना बनाऔ। श्रीकृष्ण जन्मभूमि पै ब्रज साहित्य संग्रहालय स्थापना कौ सुझाव बड़ौ ई उपयोगी ऐ। जब मथुरा आयौ करौ तौ ग्हाँ जरूर आयौ करौ। आदि आदि ऐसे कितनेई प्रसंग ऐं, जिनपै बाबू जी नैं प्रत्यक्ष वार्तालाप और पत्रन के माध्यम सौं चर्चा करीऐ। मैं तौ जितनी बार उनके दर्सनन कूं गयौ, मोय एक नयौ ई विसय, एक नई- ई चर्चा मिली और मैं कृतार्थ भयौ।

बाबू जी के नेतृत्व में आज 'मंडल' सप्राण ऐ। 'ब्रजभारती' वाकौ सुनियोजित तानौ बानौ बुनि रई ऐ। साहित्यिक धरातल पै एक स्वस्थ सांस्कृतिक ब्रज-चेतना कौ निर्माण भयौ ऐ। बाबूजी वस्तुतः 'साहित्य-वारिधि' ऐं। ऊ दिन दूर नायँ जब बाबू जी के स्नेहसील प्रज्वलित 'मंडल' के अपनेई भवन में दिवारी मनामिंगे। एक लघु कार्यकर्त्ता के नाते उनके प्रयासन कूँ मेरी कर्मसाधना सर्मपित ऐ और उनके युगानुरूप नेतृत्व कूँ मेरी स्रद्धांजलि—

प्रौढ़-वपु चिर युवक उर, बालसम बिस्वास।
भारती ब्रज के सुसेवक, श्री वृन्दावनदास॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज साहित्य मंडल और बाबू वृन्दावनदास जी

मोहनलाल शर्मा
एम० ए०, साहित्यरत्न

मंडल कौ नाम लेतई आजु एक ऐसी तसवीर आँखिन के साँमई आय जाय ऐ, जाके चौखटा बिखरि कैं दूर जाय परे हौइँ, सीसा धूरिके अम्बारन ते अट्यौ पर्‌यौ होइ। जामैं ते चित्र कूँ निकारि कैं फेरि मँढ़ाइबे के ताँईं कहूँ अलग धरि दयौ होइ और जाकी कील फाँसन कौ कछू पतौई नाँय होइ। कैसी सुन्दर तसवीर हती। नए-नए कलाकारन नैं अपनी प्रज्ञा, प्रतिभाते वाकूँ सजाइबे, सँवारिबे कूँ कैसी साधना करी हती। एक सुन्दर सपनौ साकार होइबे के ताँईं कुलबिलायौ हौ। ब्रज लोकजीवन के पावन मन्दिर मैं साहित्य-देवता की पूजा आरती की भीनी-भीनी सुवासित सुगन्ध चारौं ओर फैलन लगी ई और घन्टा झालरन की झनकार दूरि-दूरि लौं पहुँचन लगी ई। पर हाय रे दुर्दैव, प्राणप्रतिष्ठा होंतई, परसाद की चिन्ता हौन लगी। एक ऐसी आँधी आई कै बुझे भए दीए ऊ टकरायन लगे, पुजारीन नैं जैसे तैसे जान बचाई और तसवीर बिखरि गई। झालर घन्टन कौ ऊ पतौ नाँय चलौ। सर्जन कौ ऊ सुन्दर संस्थान भूतन कौ डेरौ बनिगयौ। अब वामैं कौन घुसै ?

जिनके मंडल ते आत्मीय सम्बन्ध हते, उनके मन मैं एक टीस बसि गई कै हाय, ई कहाभयौ। कबऊ न कबऊ तौ या अवस्था ते उद्धार होनौ चाहिए। वा धरोहर कूँ साजिबे सँवारिबे कैं लएँ कछू तौ करनौ चाहिए। दूर-दूर परे बड़े-बड़े चौखटान की अपनी विवसता हती। अन्त मैं उननैं अपने अपने फ्रेम बनाइकैं एकाकी अर्चना सुरू करि दई। या अवस्था में प्राप्त भए चित्र की वा पुनीत धरोहर की सुरक्षा करिबे की व्यथा जाके अन्तःकरण मैं तीव्र तम रूप ते क्रियात्मक पगडंडीन पै बहिबे लगी—वे ऐं—स्वनाम धन्य बाबू वृन्दावनदास जी जिनकें ताँईं आज सब ब्रजवासी समवेत स्वर ते साधुपाद दै रए ऐं।

यों तौ मंडल ते बाबू जी कौ सम्बन्ध पुरानौ हौ; पर अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा ते भरे भए सुयोग्य जीवन में 'मंडल' की सेवा करिबे कौ प्रत्यक्ष दायित्व सन् १९६३ मैं उनपै आयौ जब वे गाजियाबाद अधिवेसन मैं मण्डल के उपाध्यक्ष सुसोभित भए। सन् १९६४ तेई 'मंडल' की मुखपत्रिका 'ब्रजभारती' के प्रकासन कौ काम आपकी कृपा ते प्रारम्भ भयौ जो आज लौं अनवरत रूप ते चलि रह्यौ ऐ। ता पाछैं आप 'मंडल' के अध्यक्ष पद पै सुसोभित होइकैं आज लौं वाकी गौरवगरिमाकूँ प्राण प्रण ते निबाह रए ऐं। बाबू जी ने अपने या ७-८ साल के सेवा काल मैं न केवल धरोहर में मिले ब्रज साहित्य देवता के वा पुनीत चित्र कूँ झाड़ पौंछ कैं साफ कर्‌यौ ऐ वरन् रास्ट्रीय साहित्य की समसामयिक विकासमान गतिविधीन के संग पूरी तरै सामंजस्य बनाइकैं नए-नए कलाकारन कूँ प्रेरणा दई ऐ, जो अपनी-अपनी तूलिकान नैं लैकें आज वा चित्र मैं नए-नए रंग भरिवे कूँ सजि परे ऐं।'भूत' भाग गए ऐं, वर्तमान सजग ह्वै गयौ ऐ, आँगन साफ है गयौ ऐ, अगरु दीप जरि उठे ऐं और भविष्य आसामय भयौ ऐ। या लघुकाल की या प्रगतिसील उपलब्धि कौ एकमात्र श्रेय सौम्यसील निधान बाबू वृन्दावनदास जी कूँ ई ऐ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'ब्रजभारती' के बन्द होइवे कौ तौ प्रस्नई नाँय। ब्रजभाषा गद्य की अपनी या सैली में हर अंक कूं एक रचना जरूर जरूर भेजौ करौ। अपनी 'पत्रिका' में ब्रजभाषा की रचना राखियों। 'मंडल' के भवन कूं अधिग्रहण करिवे की बड़ी रोचक कहानी ऐ। लगि रह्यौ ऊँ। 'मंडल' की आगरा साखा बड़ी सक्रिय रूप ते संलग्न ऐ। श्री कविरत्न समारोह पें आगरा अइयों। हिन्दी-वर्धिनी योजना के ताँईं कहा लिखि रए औ। अन्तर्जनपदीय परिसद् की फिर ते सुरुआत करिंगे। श्री पालीवाल जी व पं० हरीशंकर जीऊ गए। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन देहरादून अधिवेसन मैं आय सकौ तौ अइयों। चच्चन जी बीमार ऐं। गोरधन पैं ब्रजसाहित्यसेवीन कौ अच्छौ समूह ऐ। चोखी गोष्ठी करैं ऐं। हिन्दी और ब्रजभाषा की सेवा एकई ऐ। प्रस्न ऐ—कछू करौ तौ—काऊ के लइयाँ करौ। कोसी मैं प्रदेसीय सम्मेलन की साखा खोलियो। 'ग्वाल' पै डा० पचौरी नैं चोख्यौ काम कियौ ऐ। भारतीय इतिहास कौ अवई पूरौ रूप उजागर नांय भयौ। साँचे मानिन मैं ई हिन्दू इतिहास हौ नौ चहिए। पू० दादा जी के अभिनन्दन समारोह मैं दिल्ली अइयों। अपनी-अपनी रचनान के प्रकासन की छोटी-छोटी योजना बनाऔ। श्रीकृष्ण जन्मभूमि पै ब्रज साहित्य संग्रहालय स्थापना कौ सुझाव बड़ौ ई उपयोगी ऐ। जब मथुरा आयौ करौ तौ ग्हाँ जरूर आयौ करौ। आदि आदि ऐसे कितनेई प्रसंग ऐं, जिनपै बाबू जी नैं प्रत्यक्ष वार्तालाप और पत्रन के माध्यम सौं चर्चा करीऐ। मैं तौ जितनी बार उनके दर्सनन कूँ गयौ, मोय एक नयौ ई विसय, एक नई- ई चर्चा मिली और मैं कृतार्थ भयौ।

बाबू जी के नेतृत्व में आज 'मंडल' सप्राण ऐ। 'ब्रजभारती' वाकौ सुनियोजित तानौ बानौ बुनि रई ऐ। साहित्यिक धरातल पै एक स्वस्थ सांस्कृतिक ब्रज-चेतना कौ निर्माण भयौ ऐ। बाबूजी वस्तुतः 'साहित्य-वारिधि' ऐं। ऊ दिन दूर नायँ जब बाबू जी के स्नेहसील प्रज्वलित 'मंडल' के अपनेई भवन में दिवारी मनामिंगे। एक लघु कार्यकर्त्ता के नाते उनके प्रयासन कूँ मेरी कर्मसाधना समर्पित ऐ और उनके युगानुरूप नेतृत्व कूँ मेरी स्रद्धांजलि—

प्रौढ़-वपु चिर युवक उर, बालसम बिस्वास।
भारती ब्रज के सुसेवक, श्री वृन्दावनदास॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संस्कृति के उन्नायक

श्यामाप्रसाद सिन्हा

भारतीय संस्कृति के आदर्श कृष्ण भगवान की पावन जन्म एवं अनेकानेक महात्माओं की जन्मभूमि मथुरा के प्रसाद स्वरूप श्री बाबू वृन्दावनदास को भी मथुरा के पवित्र वातावरण में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त है।

आपसे मेरा परिचय प्रादेशिक सहकारी संघ, उत्तर प्रदेश के संस्थापन सदस्य के रूप हुआ और उससे भी ज्यादा गहरा सम्बन्ध १९४७-४८ ई० में मद्रास में अखिल भारतीय खादी सम्मेलन के अवसर पर हुआ, और साथ ही साथ लगभग २० दिन तक साथ रह कर दक्षिण भारत के रामेश्वरम्, मैसूर, बंगलौर इत्यादि का भ्रमण किया।

सम्मेलन में उत्तर प्रदेश की ओर से प्रतिनिधित्व के लिए बाबू वृन्दावनदास अपने व्यक्तित्व एवं प्रतिभा पर चुने गए थे। साथ-साथ सम्मेलन के अध्यक्ष स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद जी थे जो कि इस समय खाद्य मन्त्री थे। उसमें डा० सच्चिदानन्द सिन्हा लोक सभा के अध्यक्ष भी थे जबकि भारतीय संविधान का निर्माण हुआ था उसी सम्मेलन में मैं भी उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधि हो कर गया था।

बाबू वृन्दावनदास जी बी० ए० एल० एल० बी० (एडवोकेट) हैं और स्वयं के व्यवसाय नागरिक भी; परन्तु मेरा जहाँ तक सम्पर्क है, मुझे मालूम है कि आपने वकालत के पेशे को अपनाया ही नहीं। जीवकोपार्जन हित आपने व्यापारिक व्यवसाय चुना; क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जीवकोपार्जन के लिए कुछ-न-कुछ करता ही है। आपका साहित्यिक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में महान् योगदान है। आप मथुरा नगर के नगरपालिका अध्यक्ष एवं हिन्दू सभा के अध्यक्ष थे। सामाजिक क्षेत्र में स्कूल कालेज के माध्यम से विद्या के प्रचार-प्रसार में विशिष्ट योगदान है। उत्तर प्रदेश की तीनों सहकारिता संस्थाओं के डायरेक्टर निर्वाचित हो चुके हैं तथा साहित्य क्षेत्र में तो आपने ऐतिहासिक योगदान दिया और दे रहे हैं। ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष एवं इस संस्था द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'ब्रजभारती' के प्रधान सम्पादक हैं। ब्रज क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि एवं लेखकों की कृतियों को सुरक्षित एवं उन्हें प्रकाशित करने में आपने महान् त्याग का परिचय दिया। महाकवि ग्वाल आदि के अपेक्षित रचनाओं के संग्रह में आपका परिश्रम उल्लेखनीय है। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा साहित्य-वारिधि की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। और इस समय तो आप उपरोक्त संस्था के अध्यक्ष हैं। इसी से आपके व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। इसके साथ-साथ आपका परिवार धन-धान्य एवं पुत्र-पौत्र से परिपूर्ण है।

वर्तमान समय में आपके तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं। जिनका पाणिग्रहण संस्कार आदि हो चुका है। व्यापारिक क्षेत्र में आप मथुरा नगर के अग्रणी जनों में से हैं। मथुरा नगर में आपकी व्यापारी पट्टे के निकट विशाल कर्मशाला है और उसी बाजार में आपका निवास स्थान है।

अन्त में मैं श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना करते हुए शुभकामना प्रेषित करता हूँ कि आपको दीर्घजीवन स्वस्थ एवं सुखी रखे तथा इसी लगन एवं उत्साह से साहित्य सेवा और समाज की सेवा में रत रहें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मेरे आचार्य

⊙

अयोध्या सिंह

आचार्य वृन्दावनदास जी का पाठक तो मैं सन् १९२४-२५ से ही हूँ पर संपर्क हुए थोड़े ही दिन हुए हैं। इन थोड़े ही दिनों में आपकी विद्वत्ता, सज्जनता, परदुखकातरता आदि गुणों की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। इन थोड़े ही दिनों में आपने मेरे हृदय में अपना उच्च स्थान बना लिया है। यों तो मेरा संबंध-संपर्क हिन्दी के चोटी के विद्वानों से रहा तथा है पर जो श्रद्धा और प्रेम इन पर है वह बहुत कम पर रहा है। इनके तीन ग्रंथ मेरे पास हैं। वे हैं––भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र और प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य।

आप द्वारा संपादित 'ब्रजभारती' पढ़ कर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्मरण हो आता है। इस पत्रिका की संपादकीय टिप्पणियों को पढ़कर आपकी विद्वत्ता के आगे अनायास सिर झुक जाता है। आप पत्र संपादन कला के ही नहीं पत्र लेखन कला के भी आचार्य हैं। 'ब्रजभारती' को पढ़ लेने के बाद फिर दूसरी पत्रिकाओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता। आचार्य जी से हमने इसे सचित्र मासिक का रूप देने की प्रार्थना कई बार की है।

आज हिन्दी में स्वतंत्र विचार के विद्वानों, संपादकों, विचारकों का नितांत अभाव है। इस युग में स्वतंत्र विचार प्रकट करना असंभव सा है। पर इस भयंकर युग में मेरे आचार्य जिस निष्पक्षता से स्वतंत्र विचार प्रकट करते हैं उसे देख कर अवाक् रह जाना पड़ता है। लगता है कि अमर शहीद पत्रकार शिरोमणि श्री गणेश शंकर की लेखनी तो नहीं चल रही है। हाँ, इनकी लेखनी में इतनी ही शक्ति है।

आज हिन्दी में अभिनन्दन ग्रंथों की बाढ़ आयी हुई है, पर कितने अपने नाम को सार्थक करते हैं यह छिपा नहीं है। आज अनाधिकारियों को ही अभिनन्दित किया जाता है और जिसने अपनी भाषा, देश, समाज की सेवा में ही तन-मन-धन अर्पित कर दिया उन्हें एक ओर पटक दिया जाता है। आज के भ्रष्टाचार, अनीति, अन्याय के दमघोटू वातावरण में किसी स्वतंत्र विचार वाले विद्वान का जीवित रहना असंभव-सा है। पर ऐसे वातावरण में भी बाबू जी प्रकाश स्तंभ की तरह अपनी भाषा, देश, समाज को दिशा निर्देश दे रहे हैं।

लगता ही नहीं कि वे इस दमघोटू युग के हैं। सारी बाधाओं का अतिक्रमण कर आचार्य वृन्दावनदास जी जैसी महती सेवा कर रहे हैं उसे देख कर विश्वास नहीं होता कि ये इस युग में कैसे सफल हो रहे हैं। पर जो यथार्थ है उसे कैसे नकारा जा सकता है। मां भारती आप जैसे सुपुत्र को पाकर धन्य धन्य है।

हिन्दी के महारथियों ने हिन्दी के लिए वर्तमान में क्या किया जग जाहिर है। पर एक मूक सेवक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संस्कृति के उन्नायक

⊙

ज्वालाप्रसाद सिन्हा

भारतीय संस्कृति के आदर्श कृष्ण भगवान की पावन क्रीड़ा स्थली एवं अनेकानेक महात्माओं की जन्मभूमि मथुरा के प्रसाद स्वरूप श्री बाबू वृन्दावनदास को भी मथुरा के पवित्र स्थल पर जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त है।

आपसे मेरा परिचय प्रादेशिक सहकारी संघ, उत्तर प्रदेश के सदस्यता चुनाव के समय हुआ और उससे भी ज्यादा गहरा सम्बन्ध १९४७-४८ ई० में मद्रास में अखिल भारतीय खाद्य सम्मेलन के अवसर पर हुआ, और साथ ही साथ लगभग २० दिन तक साथ रह कर दक्षिण भारत के रामेश्वरम्, मैसूर, बंगलौर इत्यादि का भ्रमण किया।

सम्मेलन में उत्तर प्रदेश की ओर से प्रतिनिधित्व के लिए बाबू वृन्दावनदास अपने व्यक्तित्व एवं प्रतिभा पर चुने गए थे। साथ-साथ सम्मेलन के अध्यक्ष स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद जी थे जो कि उस समय खाद्य मन्त्री थे। उसमें डा० सच्चिदानन्द सिन्हा लोक सभा के अध्यक्ष भी थे जबकि भारतीय संविधान का निर्माण हुआ था उसी सम्मेलन में मैं भी उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधि हो कर गया था।

बाबू वृन्दावनदास जी बी० ए० एल० एल० बी० (एडवोकेट) हैं और नगर के गण्यमान नागरिक भी; परन्तु मेरा जहाँ तक सम्पर्क है, मुझे मालूम है कि आपने वकालत के पेशे को अपनाया ही नहीं। जीवकोपार्जन हित आपने व्यापारिक व्यवसाय चुना; क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जीवकोपार्जन के लिए कुछ-न-कुछ करता ही है। आपका साहित्यिक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में महान् योगदान है। आप मथुरा नगर के नगरपालिका अध्यक्ष एवं हिन्दू सभा के अध्यक्ष थे। सामाजिक क्षेत्र में स्कूल कालेज के माध्यम से विद्या के प्रचार-प्रसार में विशिष्ट योगदान है। उत्तर प्रदेश की तीनों सहकारिता संस्थाओं के डायरेक्टर 'निर्वाचित हो चुके हैं तथा साहित्य क्षेत्र में तो आपने ऐतिहासिक योगदान दिया और दे रहे हैं। ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष एवं इस संस्था द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'ब्रजभारती' के प्रधान सम्पादक हैं। ब्रज क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि एवं लेखकों की कृतियों को सुरक्षित एवं उन्हें प्रकाशित करने में आपने महान् त्याग का परिचय दिया। महाकवि ग्वाल आदि के आपेक्षित रचनाओं के संग्रह में आपका परिश्रम उल्लेखनीय है। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा साहित्य-वारिधि की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। और इस समय तो आप उपरोक्त संस्था के अध्यक्ष हैं। इसी से आपके व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। इसके साथ-ही-साथ आपका परिवार धन-धान्य एवं दूध-पूत से परिपूर्ण है।

वर्तमान समय में आपके तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं। जिनका पाणिग्रहण संस्कार आदि हो चुका है। धार्मिक क्षेत्र में आप मथुरा नगर के अग्रणी जनों में से हैं। मथुरा नगर में आपकी स्वामी घाट के निकट विशाल धर्मशाला है और उसी बाजार में आपका निवास स्थान है।

अन्त में मैं श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना करते हुए शुभकामना प्रेषित करता हूँ कि आपको ईश्वर स्वस्थ एवं सुखी रखे तथा इसी लगन एवं उत्साह से साहित्य सेवा और जनता की सेवा में रत रहें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मेरे आचार्य

⊙

अयोध्या सिंह

आचार्य वृन्दावनदास जी का पाठक तो मैं सन् १९२४-२५ से ही हूँ पर संपर्क हुए थोड़े ही दिन हुए हैं। इन थोड़े ही दिनों में आपकी विद्वत्ता, सज्जनता, परदुखकातरता आदि गुणों की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। इन थोड़े ही दिनों में आपने मेरे हृदय में अपना उच्च स्थान बना लिया है। यों तो मेरा संबंध-संपर्क हिन्दी के चोटी के विद्वानों से रहा तथा है पर जो श्रद्धा और प्रेम इन पर है वह बहुत कम पर रहा है। इनके तीन ग्रंथ मेरे पास हैं। वे हैं--भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र और प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य।

आप द्वारा संपादित 'ब्रजभारती' पढ़ कर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्मरण हो आता है। इस पत्रिका की संपादकीय टिप्पणियों को पढ़कर आपकी विद्वत्ता के आगे अनायास सिर झुक जाता है। आप पत्र संपादन कला के ही नहीं पत्र लेखन कला के भी आचार्य हैं। 'ब्रजभारती' को पढ़ लेने के बाद फिर दूसरी पत्रिकाओं की ओर ध्यान ही नहीं जाता। आचार्य जी से हमने इसे सचित्र मासिक का रूप देने की प्रार्थना कई बार की है।

आज हिन्दी में स्वतंत्र विचार के विद्वानों, संपादकों, विचारकों का नितांत अभाव है। इस युग में स्वतंत्र विचार प्रकट करना असंभव सा है। पर इस भयंकर युग में मेरे आचार्य जिस निष्पक्षता से स्वतंत्र विचार प्रकट करते हैं उसे देख कर अवाक् रह जाना पड़ता है। लगता है कि अमर शहीद पत्रकार शिरोमणि श्री गणेश शंकर की लेखनी तो नहीं चल रही है। हाँ, इनकी लेखनी में इतनी ही शक्ति है।

आज हिन्दी में अभिनन्दन ग्रंथों की बाढ़ आयी हुई है, पर कितने अपने नाम को सार्थक करते हैं यह छिपा नहीं है। आज अनाधिकारियों को ही अभिनन्दित किया जाता है और जिसने अपनी भाषा, देश, समाज की सेवा में ही तन-मन-धन अर्पित कर दिया उन्हें एक ओर पटक दिया जाता है। आज के भ्रष्टाचार, अनीति, अन्याय के दमघोटू वातावरण में किसी स्वतंत्र विचार वाले विद्वान का जीवित रहना असंभव-सा है। पर ऐसे वातावरण में भी बाबू जी प्रकाश स्तंभ की तरह अपनी भाषा, देश, समाज को दिशा निर्देश दे रहे हैं।

लगता ही नहीं कि वे इस दमघोटू युग के हैं। सारी बाधाओं का अतिक्रमण कर आचार्य वृन्दावनदास जी जैसी महती सेवा कर रहे हैं उसे देख कर विश्वास नहीं होता कि ये इस युग में कैसे सफल हो रहे हैं। पर जो यथार्थ है उसे कैसे नकारा जा सकता है। मां भारती आप जैसे सुपुत्र को पाकर धन्य धन्य है।

हिन्दी के महारथियों ने हिन्दी के लिए वर्तमान में क्या किया जग जाहिर है। पर एक मूक सेवक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आचार्य क्या कर रहे हैं यह भी छिपा नहीं। आचार्य ने जो कार्य प्रारंभ किया है वह अवश्य पूर्ण होगा। कारण आप तो निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं। फिर असफलता का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। पूज्य दादा जी, चंचरीक और पाठक जैसे जिन विद्वानों ने आचार्य के अभिनन्दन का कार्य प्रारंभ किया है उन्हें शत बार प्रणाम। अगर हिन्दी में यह परंपरा जारी रही तो हिन्दी की ओर किसी को उंगली उठाने का भी अवसर नहीं मिलेगा।

मां भारती का गोद अभी भी खाली नहीं है। उसकी गोद में वृन्दावनदास जैसे पुरुष रत्न हैं। आचार्य की प्रशंसा व्यर्थ है। उनकी सेवा ही उनकी सच्ची प्रशंसा है। कोई लाख इनका विरोधी हो पर उनकी सेवा को—सच्ची सेवा को कौन नकार सकता है। आचार्य के श्री चरणों में फिर प्रणाम।

निरहंकार और मिलनसार

⊙

रघुनाथ गुप्त

ब्रज पर लिखूँ? या वृन्दावनदास पर लिखूँ? या भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य में खो जाऊँ?

ब्रज संस्कृति को पारिभाषित करने वाले बाबू वृन्दावनदास पर कुछ लिखने के सन्दर्भ में उपयुक्त प्रश्न चिह्न सामने है? वृन्दावनदास जी से मेरा परिचय पत्रों के आधार पर ही है। फ्रांसीसी लेखक आन्द्रे मालरो व्यक्ति को उसकी विशेषताओं से न जानकर उसके द्वारा समाज को प्रदत्त गुणों से जानने के पक्षधर हैं। लगभग तीन-चार वर्षों से वृन्दावनदास जी के पत्र मुझे विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों के परिवेश में आते रहे हैं तथा मैं भी लिखता रहा हूँ। पत्रों के आधार पर ही व्यक्ति की विशेषता आसानी से स्पष्ट हो जाती है। मिलनसार सहज प्रकृति, अहं भाव से परे व्यक्ति नहीं संस्था बाबू वृन्दावनदास जी ब्रजभाषा के उत्थान में व्यस्त हैं।

वृन्दावनदास जी की अमूल्य ब्रजभाषा सेवा से सारे हिन्दी भाषी ऋणी हैं। यह ऋण चिरकाल तक लदता रहे प्रकृति से मेरा यही निवेदन है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक सौजन्यशील लोकप्रिय व्यक्तित्व

⊙

चौधरी दिगम्बरसिंह

भू० पू० संसद सदस्य

मुझे यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि कुछ विद्वान् बाबू वृन्दावनदास जी के अभिनन्दन के लिए तैयारी कर रहे हैं। मैं समझता हूँ, वास्तव में, उन्होंने एक अच्छा कार्य अपने हाथ में लिया है। आजकल लोगों के द्वारा अधिकतर उनके ही अभिनन्दन किए जाते हैं जिनसे कुछ स्वार्थ हल होता हो। स्वार्थ भी समाज का नहीं, स्वयं का। जो व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़ कर किसी सामाजिक व साहित्यिक कार्य करने वाले का सम्मान करते हैं तो उस सम्मान का लोगों की दृष्टि में अधिक मूल्य होता है। मेरे सम्मुख जब किसी राजनीतिक नेता के अभिनन्दन की बात आती है और विशेषकर जो किसी उच्च पद पर हो तो मैं समझता हूँ कि अभिनन्दन करने वाले व्यक्ति बड़े साहसी होते हैं क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को जनता दूसरी दृष्टि से देखती है।

बाबू वृन्दावनदास ने राजनीति में भी काम किया है और राजनीति में नगर पालिका के सभापति रहे हैं। उस समय भी लोग उनकी प्रशंसा करते थे। साहित्यिक क्षेत्र में जो उन्होंने सेवा की है उसके सम्बन्ध में तो साहित्यिक व्यक्ति अधिक लिखेंगे मैं तो उनके सम्बन्ध में कुछ व्यक्तिगत अनुभव की बातें ही लिखूँगा।

बाबू वृन्दावनदास सरल और नम्र स्वभाव के हैं। उनकी एक विशेषता यह देखी कि जिस किसी व्यक्ति के साथ हों चाहे वह साधारण व्यक्ति हो, साहित्यिक हो या अशिक्षित, धनवान हो या गरीब, उच्च पद पर हो या छोटे से छोटा कर्मचारी, जब उससे मिलते हैं तो मिलने वाला यह अनुभव करता है और देखने वाला भी कि बाबूजी यह अनुभव नहीं होने देते कि उनमें और मिलने वाले व्यक्ति में विशेष अन्तर है।

कोई व्यक्ति जो धनवान हो, शिक्षित हो, पदों पर हो, समाज व साहित्य की सेवा कर रहा हो और इतना सरल हो, इतना नम्र हो, जैसे कि बाबू वृन्दावनदास, मुश्किल से नज़र आते हैं। बाबूजी ने मेरे साथ मथुरा और लखनऊ में सहकारिता के क्षेत्र में बहुत कार्य किया है; उच्चतम पदों पर रहे हैं। बाबूजी के कार्य से इस क्षेत्र के नेता इतने प्रभावित हैं कि मुझसे मिलते वक्त पुराने साथी बाबूजी के सम्बन्ध में पूछे बिना नहीं रहते। मथुरा में सहकारी संस्थाओं के चुनाव में गांव और शहर की भावना कभी-कभी पैदा होती रही है किन्तु बाबूजी के चुनाव के समय गांव के लोग बाबूजी को सर्वसम्मति से समर्थन करते रहे हैं। एक घटना का मेरे दिल पर विशेष प्रभाव है। मथुरा में जिला सहकारी बैंक के संचालकों द्वारा प्रबन्ध संचालक का चुनाव होना था उसके लिए मैं उम्मीदवार था। मेरे विरुद्ध आचार्य जुगलकिशोर शिक्षामंत्री, श्री लक्ष्मीरमण आचार्य, डा० श्रीनाथ आदि प्रचार कर रहे थे और बाबूजी को पदों का लालच दे कर वोट देने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के लिए वाध्य कर रहे थे। यह भी उल्लेख कर देना उचित ही होगा कि बाबू जी का बहुत बड़ा प्रेस है और उसमें सरकार की किताबों की छपाई होती थी। आचार्य जुगलकिशोर जी शिक्षामंत्री थे फिर भी उन्होंने यह कह कर उनकी बात न मानी कि दिगम्बर सिंह के समर्थन का मैंने आश्वासन दे दिया है उनके विरुद्ध नहीं जा सकता चाहे कितना ही दबाव डाला जाय।

योग्यता और ईमानदारी के सम्बन्ध में क्या कहा जाय। उनका उनके साथ काम करने वालों पर विशेष प्रभाव है। जिला सहकारी बैंक, मथुरा के संचालक व कर्मचारी सब ही बाबूजी में गहरी श्रद्धा रखते हैं।

लोगों में जब पार्टीबंदी का तनाव बढ़ जाता है एक दूसरे के विरोध की भावना बढ़ जती है। हर गुट यह चाहता है कि दूसरे को नहीं होने देंगे और गुटबंदी की वजह से चुनाव में कठिनाई दिखती है और यह इच्छा होती है कि सर्व सम्मति से हो तो ऐसे समय पर बाबू वृन्दावनदास जी का ही नाम सम्मुख आता है। मुझे लोक सभा में रह कर बड़े से बड़े आदमियों से मिलने का अवसर मिला, सहकारी संस्थाओं से भी संबंध रहा किन्तु मैंने बहुत कम व्यक्ति ऐसे देखे कि जो बाबूजी की तरह पद के द्वारा न तो कोई आर्थिक लाभ ही उठाना चाहते हैं और न अन्य किसी प्रकार का।

बाबूजी को अनेकों दावतों में साथ खाना खाते देखा। ऊँचे-से-ऊँचे और अच्छी-से-अच्छी दावतों में देखा है। गांव के साधारण से किसान के यहाँ जमीन पर बैठ कर पत्तल और कुल्लड़ में खाते देखा है। ऐसा अनुभव होता है कि बाबू जी उसमें उतनी ही रुचि ले रहे हैं जितना कि कोई गांव का साधारण आदमी गांव की दावत में लेता है। गांव का साधारण व्यक्ति अपने यहां दावत खिलाते हुए बाबू जी को कभी इस प्रकार नहीं देखता जिस प्रकार गरीब आदमी के यहाँ बड़े आदमी दावत खाते हुए नखड़े दिखाते हैं। चुनावों के ऐसे भी अवसर आए कि जब बाबू जी को स्थान नहीं मिला तो बाबू जी ने कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि बाबू जी को पद न प्राप्त होने का किसी प्रकार का असन्तोष है।

मुझे यह प्रसन्नता है कि बाबू जी जैसे व्यक्ति के लिए मुझे दो शब्द लिखने का अवसर मिला।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कुशल और जनप्रिय प्रशासक

⊙

अम्बादत्त

श्री वृन्दावनदास जी जिन्हें मथुरा नगरपालिका के कर्मचारी "बाबूजी" कह कर सम्बोधित करते थे इस नगरपालिका में प्रथम बार सन् १९२५ में सदस्य निर्वाचित हुए। वह निरन्तर सन् १९५३ तक सदस्य बने रहे। इस कालावधि में वह विभिन्न समितियों के अध्यक्ष तथा नगरपालिका के वरिष्ठ उपाध्यक्ष भी रहे। वह दिनांक १४ नवम्बर १९५७ को इस पालिका के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और दिनांक ७ मार्च १९६१ तक निरन्तर इस पद पर आसीन रहे। पुनः दिनांक ३० नवम्बर १९६३ से ले कर दिनांक १७ दिसम्बर १९६४ तक नगरपालिका के अध्यक्ष रहे।

मेरी इस नगरपालिका में लगभग ३९ वर्ष की सेवायें हैं। मेरा कार्यालय अधीक्षक होने के कारण अध्यक्ष से निकट सम्पर्क रहता है। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि बाबूजी एक कुशल प्रशासक हैं। वह बड़े ही मृदुल स्वभाव के हैं। नगरपालिका का कोई भी कर्मचारी किसी भी समय उनसे अपने सरकारी कार्य के अतिरिक्त अपने निजी कार्य से मिल सकता था और आज भी चाहे जब मिल सकता है। वह उसकी पूरी-पूरी सहायता करते हैं। उन्हें नगरपालिका प्रशासन के विभिन्न अंगों का प्रौढ़ अनुभव है। नगरपालिका प्रशासन में कोई ऐसी बात नहीं थी जिसका उन्हें ज्ञान न रहा हो। वह धाराप्रवाह लेखक व वक्ता हैं। मैंने उन्हें कभी किसी के ऊपर क्रोधित होते हुए नहीं देखा। मथुरा नगर में जल वितरण सम्बन्धी, ३१, १४, ६.०० रु० की वृहद पुनर्गठन योजना का श्री गणेश कराने का श्रेय उन्हीं को है।

मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मर्मज्ञ संपादक

⊙

रामशंकर द्विवेदी

जीवन में स्वाध्यायी लेखक होना बड़े सौभाग्य की बात है। लेखक के साथ-साथ व्यक्ति यदि मनुष्यता के गुणों से भी मंडित हो तो उसका व्यक्तित्व और साहित्य दोनों आत्मतेज की आभा से निखर आते हैं। बाबू वृन्दावनदास ऐसे ही कृती और आस्थावान व्यक्ति हैं। उनके जीवन और साहित्य की जड़ें दैवी विभूतियों से अपना जीवन-रस खींचती रही हैं। फलतः उनकी जीवन लतिका 'ऋत' और 'सत्य' के कल्पवृक्ष को घेरे हुए है। वे जीवन में बड़े व्यवस्थित, धुन के पक्के, उदार और अत्यंत कोमल हृदय के व्यक्ति हैं। मेरी और उनकी साहित्यिक सगाई हुए अभी थोड़ा समय हुआ है। किंतु इस छोटी अवस्था में ही उनकी साहित्य सेवा, मधुर व्यवहार, निःस्वार्थता और आत्मीयता ने मुझे गहराई से प्रभावित किया है। अभी तक मेरा उनका वार्त्तालाप पत्रों के माध्यम से ही हुआ है। ये पत्र उनके व्यक्तित्व की कई विशेषताओं को व्यक्त करते हैं और इनके आधार पर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन पृथक् लेख का विषय है। यहाँ तो 'ब्रजभारती' के माध्यम से उनकी साहित्य सेवा का विस्तृत उपाख्यान ही किया जा सकता है।

(२)

उनकी साहित्य सेवा ४०-४५ वर्षों के विस्तृत काल फलक पर फैली हुई है। आत्माभिव्यक्ति की अदम्य लालसा ही उन्हें लिखने को प्रेरित करती रही है। उनके अधिकांश लेखों का संग्रह भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य ग्रंथ में किया गया है और कुछ का इतिहास विषयक ग्रंथ में हो रहा है। इन निबंधों से उनकी गद्य शैली, उनकी रुचि की विविधता, उनके मन का सम्मान और उनके लेखन का विकासात्मक अध्ययन किया जा सकता है। एक पत्र में वे मुझे लिखते हैं—

"आपके दो सारगर्भित पत्र मिले। मुझे भी साहित्यिक बन्धुओं को पत्र लिखने में बड़ा आनन्द आता है परन्तु अभिशाप यह है कि मुझे दम मारने की फुर्सत नहीं रहती। अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध होने के कारण तथा एक लम्बे अर्से तक सामाजिक सम्पर्क शीलता रहने के कारण बहुत से ऐसे कामों पर भी समय का अपव्यय हो जाता है जिनके लिए अब मेरे मन में कोई रुचि वर्तमान नहीं है। फिर भी आजकल मेरा अधिकांश समय ब्रजभाषा और हिन्दी (जिन्हें मैं एक समझता हूँ) की सेवा के लिए ही अर्पित है।"

इस पत्र के उद्धरण से उनकी साहित्य-साधना का थोड़ा-सा आभास मिलता है। उन्होंने अपनी शैली का निर्माण कैसे किया, उसकी मँजाई में पत्र-लेखन कितना सहायक हुआ इससे यह भी विदित हो जाता है। लेकिन उनके लेखन में व्यवस्था, नियमितता ब्रजभारती और ब्रजमण्डल का काम सम्हालने के बाद ही आई। उनका सोया हुआ लेखक जागा और उसने सम्पादकीय टिप्पणियों और निबंधों के रूप में अनवरत साहित्य-साधना प्रारम्भ की। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"इनकी भटकी हुई अभिव्यक्ति-इच्छा व्रज-साहित्य मंडल से जा टकरायी और यहाँ सोने में सुगंध की भाँति अभिव्यक्ति के दोनों रूप गौण अर्थात् सामाजिक या नागरिक सेवा एवं मूल अर्थात् साहित्यिक अभिव्यक्ति-एकमेव हो गए। इन्होंने व्रज-साहित्य मंडल की सेवा का व्रत लिया, व्रजभारती के संपादन को हाथ में लिया—तो लेखक पुनः जग पड़ा। व्रजभारती ने इन्हें विशेषतः विवश किया कि ये कुछ लिखें।"

व्रजभारती व्रजमंडल की शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिका है। इधर डा० सत्येन्द्र और प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी के बाहर चले जाने के बाद से यह बन्द थी। १९६३ में बाबू वृन्दावनदास व्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९६४ से उन्होंने व्रजभारती के सम्पादन का भार सम्हाला। तब से लेकर आज तक व्रजभारती के सम्पादन, प्रकाशन और उसे डाक में भेजने तक का सारा काम उन्हें ही करना पड़ रहा है। अपनी व्यवसायात्मकता, लगन और सच्ची हिन्दी निष्ठा के कारण उन्होंने व्रजभारती को एक संस्था का रूप दे दिया है। इस कारण व्रज मण्डल और व्रज के बाहर भी जहाँ कहीं भारती पहुँचती है एक साहित्यिक चेतना की लहर दौड़ जाती है। बाबू वृन्दावनदास ने अपने स्नेहपूर्ण तथा प्रोत्साहन भरे पत्रों के द्वारा व्रजभारती के आस-पास एक लेखक मण्डल की स्थापना कर ली है। ये लेखक बन्धु व्रजभारती में लिखने के अतिरिक्त अपने-अपने क्षेत्रों में लोक साहित्य और राष्ट्रभाषा की महत्त्वपूर्ण सेवा में लगे हुए हैं। असल में व्रजभारती का कार्य उन उपवनों को सींचना है जिनका जीवन रस बड़े-बड़े वट वृक्षों के कारण सूखा जा रहा है।

(३)

व्रजभारती का आकार लघु है। लेकिन इसमें प्रकाशित सामग्री अत्यंत महत्व की है। व्रज साहित्य के इतिहास लेखन में इसकी प्रतियाँ नींव का कार्य करेंगी। इसकी विशेषता इसकी नियमितता है। संपादकीय टिप्पणियों के अतिरिक्त इसमें विविध विषयक लेख, कविताएँ, पुस्तक समीक्षाएँ और कभी-कभी महत्वपूर्ण साहित्यिक विषयों पर लेखकों के पत्र निकलते रहते हैं। बाबू वृन्दावनदास के सम्पादकत्व में अब तक उसकी जितनी प्रतियाँ निकली हैं उनमें समाविष्ट सामग्री के आधार पर व्रज मण्डल की साहित्यिक गतिविधियों की एक झलक ली जा सकती है।

किसी भी पत्र का स्वरूप उसके सम्पादक की सूझ-बूझ और सम्पादन-कुशलता पर निर्भर होता है। उसके साहित्यिक विवेक, जीवनगत आदर्श, शेष संसार के प्रति उसकी दृष्टि और अन्य अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं का बोध हमें उसकी सम्पादकीय टिप्पणियों से हो जाता है। मेरी दृष्टि में तो सम्पादकीय टिप्पणियाँ ही किसी मासिक त्रैमासिक को वजनदार बनाती हैं। रामानन्दबाबू ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों के बलपर ही माडर्न रिव्यू को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का पत्र बना दिया था। आ० द्विवेदी ने भी सरस्वती में सम्पादकीय टिप्पणियों का चलन माडर्न रिव्यू के ही आदर्श पर किया था। गर्दे जी, पराड़कर जी और बाबू बालमुकुन्द गुप्त की सम्पादकीय टिप्पणियाँ राजनैतिक जगत में हलचल मचा दिया करती थीं। यही हाल विशाल भारत के सम्पादकीय नोटों का था। आ० शिवपूजन सहाय जिस किसी पत्र के सम्पादक हुए उसे अपनी महत्वपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियों से बराबर सजाते-सम्हारते रहे। बाबू वृन्दावनदास जी व्रजभारती में इस परम्परा का निर्वाह बड़ी कुशलता से कर रहे हैं।

उनके सम्पादन में व्रजभारती का पहला अंक भाद्रपद सं० २०२२ वि० (वर्ष १९, अंक १) में निकला था। तब से ले कर अब तक[1] उसके २५ अंक निकल चुके हैं। इन अंकों की पृष्ठ संख्या १२५० है। इसमें विनियोजित सामग्री को कई दृष्टियों से विभाजित किया जा सकता है। मोटे रूप में व्रजभारती में अब तक इन शीर्षकों के अन्तर्गत सामग्री निकली है—

---

१. लेख लिखते समय।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१. सम्पादकीय टिप्पणियाँ
२. विविध विषयक लेख
३. पुस्तक समीक्षाएँ
४. कविताएँ
५. महत्त्वपूर्ण पत्र

एक-एक शीर्षक के अन्तर्गत समाविष्ट सामग्री को अन्य कई उपशीर्षकों में बाँटा जा सकता है। विवेचन की सुविधा के लिए और ब्रजभारती के साहित्यिक दृष्टिकोण को समझने के लिए हम पहले सम्पादकीय टिप्पणियों का विश्लेषण करेंगे।

अधिकांश टिप्पणियाँ हिन्दी हित से संबंधित हैं। किसी में किसी साहित्यकार के अभिनन्दन या स्वागत समारोह पर लिखते हुए उसके कार्य का मूल्यांकन किया गया है। किसी में कोई साहित्यिक योजना हिन्दी-जगत के सामने रखा गया है। किसी टिप्पणी में लोक साहित्य या अन्तर्जनपदीय परिषद् की सराहना की गई है। किसी टिपण्णी में किसी पत्रिका के विशेषांक या किसी लेखक के शोध निबंधों की अनुमुद्रित प्रतियों पर फड़कती हुई प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। किसी में किसी साहित्यकार के दुखद निधन का शोक सूचक समाचार दिया गया है। किसी टिप्पणी में किसी नवसिखये साहित्यकार को प्रोत्साहित किया गया है। कई सम्पादकीय टिप्पणियों में ब्रज जनपद के साथ-साथ अन्य प्रदेशों की साहित्यिक गतिविधियों का भी उल्लेख किया गया है। राजस्थान, बिहार, बुन्देलखण्ड और दक्षिण भारत में हिन्दी के सम्बन्ध में कहाँ क्या हो रहा है इसकी भी कुछ जानकारी आपको ब्रजभारती की सम्पादकीय टिप्पणियों से मिल जायगी। सम्पादक का दृष्टिकोण अत्यंत उदार और व्यापक है। वह किसी विशेष जनपद या विशेष भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं है। न उसका किसी विशेष जनपद के साथ कोई पक्षपात है।

अपने दृष्टिकोण का परिचय देते हुए वे तीसरे अंक में लिखते हैं —

"भारतीय साहित्य, दर्शन, अध्यात्म और चिन्तन के अन्तर्गत ही ब्रज साहित्य है। वह उससे पृथक् नहीं हो सकता। अतः यदि ब्रजभारती में भारतीय साहित्य अथवा इतिहास के कुछ पृष्ठ हों तो उनसे ब्रज साहित्य को संक्रमण न होगा वरन् वे उसके लिए संजीवनी बूटी का काम करेंगे। ब्रजभारती में ब्रज साहित्य पर शोध सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते हैं, वे अवश्य प्रकाशित हों परन्तु उनके साथ यदि भारतीय हिन्दी साहित्य, इतिहास आदि पर भी सामग्री प्रकाशित हो जाय तो यह उसकी शोभा की बात होगी, हीनता की नहीं।

"हमारी नीति यह है कि ब्रज सम्बन्धी साहित्यिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक लेख ब्रजभारती में हम लगभग ६० प्रतिशत दें और शेष ४० प्रतिशत स्थान हम भारतीय हिन्दी साहित्य, इतिहास और अध्यात्म, दर्शन, चिन्तन आदि की सामग्री पर दें। यह एक आवश्यक मोड़ है और वर्त्तमान संदर्भ में नीतिसंगत है।"

ब्रजभारती की संचिकाओं को देखने से उसकी इस नीति का प्रतिफलन आपको उसके हर अंक में मिलेगा। संपादकीय दृष्टिकोण की व्यापकता का पता भारत के सुदूर अंचलों में फैला उसका लेखक-वर्ग दे रहा है। आपको इसमें पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता, बिहार, नीफा, राजस्थान, मद्रास आदि अंचलों के साहित्यकारों के लेख या वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों पर टिप्पणियाँ मिल जायँगी। इसका एकमेव कारण है इसकी सम्पादकीय नीति की विशुद्ध हिन्दी हित निष्ठा। ब्रजभारती शौकिया पत्रिका नहीं है। न

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यह मनोरंजन के लिए निकाली जाती है। इसका ध्येय तो ब्रज संस्कृति का पुनरुद्धार और अपनी सीमा में रह कर भारतीय हिन्दी साहित्य तथा उसके गौरव का संरक्षण है।

सम्पादकीय टिप्पणियों का विभाजन--

ब्रज जनपद तथा उसका साहित्य।

अन्तर्जनपदीय परिषद् तथा लोक साहित्य।

विभिन्न साहित्यिक योजनाएँ।

साहित्यकारों का सम्मान, अभिनंदन ग्रंथ,किसी की विशिष्ट कृति या किसी साहित्यकार के महत्व-पूर्ण पत्र किसी नवीन पत्र का प्रारम्भ।

हिन्दी हित सम्वर्धन के प्रति सरकार का रुख।

अन्य सामाजिक, राजनैतिक विषयों पर टिप्पणियाँ।

हिन्दी में शोध कार्य आदि शीर्षकों में किया जा सकता है।

ब्रज जनपद ८४ कोस में ही नहीं फैला हुआ है न इसे मथुरा-वृन्दावन में ही सीमित किया जा सकता है। जहाँ यमुना है, कृष्ण हैं, ब्रजभाषा है, उसके कवि हैं, वहीं ब्रज मण्डल है। इसीलिए तो कवि को कहना पड़ा--'ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ' हाँ इसका केन्द्र अवश्य ब्रज में है। इसलिए ब्रजभारती का प्रधान कर्त्तव्य ब्रजमण्डल या ब्रज जनपद की सर्वांगीण उन्नति है। अब तो एक-एक जनपद को समर्पित अनेक पत्र-पत्रिकाओं की अवतारणा होनी चाहिए। समस्त जनपदों का प्रतिनिधित्व कोई एक पत्रिका कर भी नहीं सकती है।

ब्रज मण्डल का कार्य हाथ में लेते हुए बाबू वृन्दावनदास 'ब्रजभारती' के पहले अंक में ही निवेदन करते हैं--

"मण्डल का प्रधान कार्य ब्रज साहित्य की उन्नति एवं विकास है। इसके तीन साधन ही मुख्य समझे जाते हैं (१) गोष्ठियों द्वारा साहित्य चर्चा, (२) ब्रजभारती के प्रकाशन द्वारा साहित्यिक शोध का कार्य, (३) ग्रन्थ-प्रकाशन।" इसी अंक में वे भावी योजनाओं के सम्बन्ध में लिखते हैं--

"मण्डल के सभापतित्व के आसन से श्रद्धेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने एक बार बड़े महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए थे। उनके कहने का भाव यह था कि साहित्यकार केवल साहित्य की साधना में ही न लगें, उन्हें चाहिए कि वे अपने चारों ओर सुन्दर, स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण भी उत्पन्न करें। उनके ये सुझाव बड़े महत्वपूर्ण हैं। मथुरा नगरी ब्रज जनपद की मुख्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी है। हमारा ध्येय वृहत्तर मथुरा होना चाहिए।"

इसी सम्पादकीय में उन्होंने अष्टछाप भवन की योजना और इसमें अष्टछापी साहित्य के संरक्षण पर भी विचार प्रकट किए थे। इस योजना से ब्रज जनपद के सम्बन्ध में उनके व्यापक दृष्टिकोण का पता चलता है। ब्रज क्षेत्र में हजारों की संख्या में हस्तलिखित पोथियाँ बिखरी पड़ी हैं। उनके संकलन, संरक्षण के प्रति भी वे सजग हैं। इसके लिए उन्होंने अपने घर पर ही एक संग्रहालय की नींव डाली है।

ऊपर उन्होंने ब्रजभाषा और साहित्य की उन्नति के लिए जो तीन साधन बताए हैं उनमें गोष्ठियाँ, सम्मेलन, साहित्य चर्चा तथा साहित्यिक खोज और उसका विवरण, मण्डल की ओर से ग्रन्थ प्रकाशन शनैः-शनैः हो रहा है। इनमें प्रकाशन का कार्य अत्यधिक व्ययसाध्य है इसलिए तीन में दो ही प्रधानता से हो रहे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि मण्डल की प्रेरणा से अन्य अनेक लोग अपने-अपने क्षेत्रों में ग्रंथ प्रकाशन कर रहे हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रन्थ यद्यपि सस्ता साहित्य मंडल से निकला है। परंतु, इसकी मूल प्रेरणा का अग्रणी मैं ब्रजमंडल के अध्यक्ष बाबू वृन्दावनदास को ही मानता हूँ।

ब्रज क्षेत्र की सर्वाङ्गीण उन्नति और उसके साहित्यिक लेखे-जोखे से संबंधित सम्पूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियों का उद्धरण इस छोटे-से लेख में संभव नहीं है। हाँ, बाबू वृन्दावनदास का इस संबंध में जो संकल्प है उसे ब्रज अभिनंदन ग्रंथ या ब्रज क्षेत्र की डाइरेक्टरी संबंधी टिप्पणी के संदर्भ में बखूबी प्रकट किया जा सकता है।

ब्रज क्षेत्र की एक डाइरेक्टरी प्रकाशित हो इस संबंध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अखबारों में कई विचारोत्तेजक लेख लिखे और ब्रज क्षेत्र के साहित्यकारों से पत्र-व्यवहार किया। इस विषय पर लिखते हुए बाबू वृन्दावनदास कहते हैं—

"चतुर्वेदी जी ब्रजभूमि के अद्यतन सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता हैं। उनका ब्रजभूमि के प्रति बड़ा ममत्व है। वे अहर्निश यही चिंतन करते रहते हैं कि किस प्रकार से ब्रज संस्कृति, ब्रज साहित्य और ब्रज क्षेत्र की कलाओं, उद्योग धंधों, उसके वृक्षों, उपवनों, कृषिक्षेत्रों आदि की उन्नति हो।

"सामूहिक रूप से ब्रज के लेखकों, कवियों, साहित्यकारों, कलाकारों आदि का अभिनंदन अपने आप में एक परम स्तुत्य कार्य है, इसमें दो मत नहीं हो सकते।"

आगे वे इसी टिप्पणी में ब्रज के साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास लेखन पर इसके पहले जो कार्य हुआ है उसका उल्लेख करते हुए कहते हैं, "सामान्य कार्यकर्ताओं के सामूहिक अभिनंदन की अपेक्षा ब्रजभूमि की डाइरेक्टरी (परिचय पत्रिका अथवा परिचय कोश) का प्रकाशन अधिक सुगम एवं व्यावहारिक है। उसमें जैसा चतुर्वेदी जी चाहते हैं ब्रज क्षेत्र के सभी साहित्य सेवियों, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं, कलाओं, उद्योग-धंधों, वन-उपवनों, तीर्थस्थलों, दर्शनीय स्थानों आदि का संक्षिप्त एवं सचित्र वर्णन प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस प्रकार के कोश के निर्माण का कार्य विद्वानों की एक संगठित सभा करें तो अच्छा हो।"

इस टिप्पणी के साथ यदि बुन्देलखण्ड का साहित्यिक इतिहास शीर्षक टिप्पणी को जोड़ दिया जाय तो उनका चिंतन और स्पष्ट रूप में हमारे सामने आ जाता है।

बुन्देलखण्ड के साहित्यिक इतिहास पर मैंने एक छोटा-सा लेख ब्रजभारती में भेजा था। उस पर बाबू जी कहते हैं, "द्विवेदी जी ने उपर्युक्त इतिहास के संबंध में जो तथ्य प्रस्तुत किए हैं वे उतने ही बल के साथ ब्रज क्षेत्र पर भी लागू होते हैं। हमें भी ब्रज क्षेत्र के साहित्य का लेखा-जोखा तैयार करना चाहिए। अनेक प्रतिमाएँ अज्ञात पड़ी हैं, अनेक सुन्दर कृतियाँ अप्रकाशित हैं। पिछले कुछ दशकों में बहुत-सा साहित्य प्रकाश में आया है, कई पत्र-पत्रिकाएँ बड़ा उपयोगी कार्य कर रही हैं और बहु प्रचलित हैं, कुछ मूल्यवान् शोध प्रबंध भी प्रकाशित हुए हैं, कतिपय हिन्दी सेवी संस्थाएँ भी बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, काव्य-रचना, अनुवाद और कोश-निर्माण की दिशाओं में भी प्रगति हुई है। कुल मिला कर स्थिति संतोषजनक ही कही जायगी परन्तु इन सब की चर्चा होनी चाहिए जिससे जो कुछ हुआ है उसकी लोगों को जानकारी हो। इस चर्चा से साहित्य के भावी इतिहास का मार्ग प्रशस्त होगा।"

बाबू जी ने अपनी ब्रज जनपद संबंधी टिप्पणियों में ब्रजभाषा-कवियों के अप्रकाशित ग्रंथों और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा गद्य पर भी लिखा है। इन टिप्पणियों में ब्रज क्षेत्र संबंधी अन्य आनुषंगिक विषय भी अन्तर्भुक्त हैं। जिनका परिचय ब्रजभारती की प्रतियों के अनुशीलन से हो जाता है।

ब्रजभारती में प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियों का अनुशीलन करने से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी हित संबर्धन, अन्तर्जनपदीय परिषद् तथा लोक साहित्य संबंधी विभिन्न योजनाओं, साहित्यकारों का सम्मान, अभिनंदन ग्रंथ, किसी लेखक की कोई विशिष्ट कृति, लेख या नवीन पत्रिका का प्रारम्भ, साहित्यकार के महत्त्वपूर्ण पत्रों पर जो टिप्पणियाँ की गई हैं वे ही महत्त्वपूर्ण हैं और उन्हीं को ब्रजभारती की विशिष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है।

इन टिप्पणियों में प्रेरणा की अक्षय निधि सुरक्षित है। साहित्यिक दृष्टि से जहाँ कहीं विभूतिमत्, श्री सम्पन्न और तेजस्वी तत्त्व है उसको सराहना, सहलाना, प्रोत्साहित, करना और अन्य लोगों का ध्यान उस ओर खींचना इन टिप्पणियों का उद्देश्य है।

मेरी समझ से अन्तर्जनपदीय परिषद् संबंधी कार्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद और राजस्थान को छोड़ कर जहाँ-कहीं हो रहा है वहाँ व्यक्तिगत ही अधिक है। और सामूहिक सहयोग के अभाव में उसकी गति अत्यंत मन्द है। ब्रजभारती तथा मण्डल का कार्य हाथ में लेते ही बाबू वृन्दावनदास का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक था। उन्होंने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा अन्तर्जनपदीय क्षेत्र में उत्साह और प्रेरणा का वातावरण बनाने का प्रयास किया। इन टिप्पणियों का साहित्यिक जगत् में खूब स्वागत हुआ। भिन्न-भिन्न मनीषी विद्वानों ने अपने-अपने क्षेत्र में अन्तर्जनपदीय कार्य की चर्चा प्रारम्भ कर दी। अपनी इस योजना को बाबूजी हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना कहते हैं। वे लिखते हैं—

"जनपदीय शब्दों, मुहाविरों, लोकोक्तियों आदि से हिन्दी का भण्डार भरने की योजना का नाम हम 'हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना' रखते हैं। हम हिन्दी के लेखकों, साहित्यकारों को इस योजना में अपना योगदान देने को आमंत्रित करते हैं। हम इस योजना पर साहित्यकों द्वारा विचार-विमर्श का भी स्वागत करेंगे। जनपदीय भाषाएँ शाश्वत हैं, वे जन-सामान्य के हृदय तल से निकली हुई अमर वाणियाँ हैं। हमें चाहिए कि उनके मानसरोवर के विस्तृत जल से अपनी भाषा का सिंचन करें। अपनी भाषा को पुष्पित और पल्लवित करने का यह अचूक साधन है।" अन्तर्जनपदीय कार्यक्रम में गति लाने के लिए उन्होंने अनेक साहित्यकारों से पत्र-व्यवहार किया। डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन, रामनारायण उपाध्याय, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्र लिखकर इस योजना पर अपनी उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की। डा० सुमन ने लिखा—"आप ब्रजभाषा साहित्य की संवृद्धि के लिए और जनपद कल्याणी योजना को सक्रिय रूप से जीवन्त बनाने के लिए जो प्रयत्न करने वाले हैं उसके लिए आप निश्चित रूप से बधाई और साधुवाद के पात्र होंगे, यदि आपने वास्तव में सच्ची निष्ठा से योजनाबद्ध रूप में इनका समारम्भ कर दिया।"

श्री रामनारायण उपाध्याय ने बहुत पहले हुई हाथरस की अन्तर्जनपदीय परिषद् का उल्लेख करते हुए कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। लोक साहित्य के कार्य को व्यवस्थित रूप देने एवं उसके सम्मेलन, सम्पादन, खोज, शोध और अध्ययन के लिए अन्तर्जनपदीय परिषद् के पुनर्गठन की आवश्यकता पर बल दिया।

इन उत्साहपूर्ण पत्र-प्रतिक्रियाओं से उल्लसित हो कर उन्होंने फिर लिखा—"हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए अन्तर्जनपदीय कार्य का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में वे ही कार्य देशहित और जनहित में समझे जावेंगे जो देश में एकता की भावना उत्पन्न करें। हिन्दी की १७ बोलियों अथवा उप-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भाषाओं में अपार लोक साहित्य है; इसी प्रकार भारत की अन्य चौदहों भाषाओं का अपना-अपना लोक साहित्य है। विद्वज्जन यदि इस विशाल वाङ्मय का आलोडन कर अनुवादों और शब्द-संकलन से हिन्दी के भण्डार को भरपूर करें तो विश्व में हिन्दी का कोष अप्रतिम होगा।"

इन उद्धरणों से अन्तर्जनपदीय कार्य के प्रति उनकी निष्ठा व्यक्त होती है। कविरत्न अर्द्ध शताब्दि समारोह में अपने स्वागत भाषण में उन्होंने फिर इस कार्यक्रम पर बल दिया। वर्ष २२, अंक १ की टिप्पणी में वे लिखते हैं—"प्रस्तुत अंक में श्री कृष्णानन्द गुप्त के इन पंक्तियों के लेखक के नाम दो पत्र मुद्रित हैं। इन पत्रों से इस विषय पर माननीय गुप्त जी का दृष्टिकोण स्पष्टतया परिलक्षित हो जाता है। कोश-निर्माण इस दिशा में एक ठोस कार्य है—ऐसा कार्य जो अब से बहुत पहले हो जाना चाहिए था।

एक-एक स्थानीय भाषा (Dialect) का अलग-अलग एक-एक कोश हो फिर उनका समन्वय करके एक वृहत् कोश का निर्माण किया जाय। कार्य बड़ा महत्त्वाकांक्षापूर्ण है परन्तु है वास्तविक। इसके लिए ज्ञानियों और कार्यकर्त्ताओं की एक सेना की आवश्यकता होगी। यह कार्य त्याग और बलिदान की भावना से ही सम्पन्न होगा। परिश्रम, निष्ठा और लगन तो चाहिए ही।"

अन्तर्जनपदीय कार्यक्रम पर श्री कृष्णानन्द गुप्त के पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कोशों का निर्माण कैसे हो, उसे कहाँ से प्रारम्भ किया जाय, विदेशों में इसपर क्या कार्य हुआ है, अपने यहाँ स्थिति कैसी है, स्थानीय भाषाओं का महत्त्व क्या है, बोली कोश क्यों बनना चाहिए, अब तक कार्य क्यों नहीं हो सका है? आदि-आदि प्रश्नों पर उन्होंने बड़ी गहराई से विचार किया है।

ब्रजभारती की सम्पादकीय टिप्पणियों और श्री गुप्त जी के पत्रों को पढ़ कर बाबू वृन्दावन लाल वर्मा और पं० गौरीशंकर द्विवेदी ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। वर्मा जी ने लिखा—

"मुझे यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल ने हिन्दी स्थानीय भाषाओं (बोलियों) के वृहद् संग्रह की योजना बनाई है और तदनुसार उसने कार्यारम्भ भी कर दिया है, मैं इस शुभ और कल्याणकारी योजना का हृदय से स्वागत करता हूँ और प्रभू से उसकी सफलता चाहता हूँ। गौरीशंकर जी ने इस योजना को कैसे बढ़ाया जाय इस पर विचार कर लिखा—मैं उनसे (श्री कृष्णानन्द गुप्त से) इस विषय में सर्वथा सहमत हूँ कि सब ही शब्द-कोष एक ही ढाँचे के तैयार होने चाहिए जिससे विश्व-कोष की भाँति उनके द्वारा प्रत्येक शब्द का अर्थ उसके व्यवहार करने की स्थान-स्थान की शैली का बोध मिल सके। आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा से सम्बन्धित शब्दों का भली प्रकार विश्लेषण कर देना आवश्यक है। शब्द-कोष और व्याकरण सम्बन्धी कुछ कार्य यत्र-तत्र हो भी चुका है उसकी भरपूर जानकारी उपलब्ध कर लेना आवश्यक है।

ब्रजभारती की संपादकीय टिप्पणियों में अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण विषय संजोए गए हैं। सबका विश्लेषण सम्भव नहीं है। इन्हीं टिप्पणियों से पता चलता है कि स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दी शोध के विषय नहीं हो सकते। इन्हीं से रूसी विद्वान डा० चैर्विशोव का परिचय मिलता है। कई व्यतीत महत्त्वपूर्ण समारोहों, सम्मेलनों और आन्दोलनों की स्मृतियाँ इन टिप्पणियों में सुरक्षित हैं। ये सब अपने परिवेश के प्रति सम्पादक की सजगता का परिचय देती हैं।

ब्रजभारती पूर्णरूपेण साहित्य, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र गौरव की समर्पित पत्रिका है। इसलिए इसमें इन्हीं विषयों से संबंधित लेख अधिक छपे हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों पर स्वयं बाबू

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वृन्दावनदास ने महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं। ये उनके विस्तृत और गम्भीर अध्ययन के परिचायक हैं। ये निबंध स्वतंत्र समीक्षा के विषय हैं। ऐतिहासिक निबंधों के अतिरिक्त कई शोधपूर्ण निबंध ब्रज साहित्य के कई अनछुए प्रसंगों पर प्रकाश डालते हैं। पुरातत्व, कला, शिल्प, लोक साहित्य, भाषा, तुलनात्मक शोध और हिन्दी भाषा-भाषी अंचलों के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों में बिखरे ब्रजभाषा साहित्य पर भी कई महत्त्वपूर्ण लेख निकले हैं।

पुरातत्त्व, कला, शिल्प की दृष्टि से मथुरा अत्यंत समृद्ध नगरी है। मथुरा कला ग्रंथ में स्व० अग्रवालसे जी ने इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है। ब्रजभारती में मथुरा की मूर्ति कला (वर्ष २०-२), मथुरा से प्राप्त एक नवीन मृण्मूर्ति (वही) मैनपुरी का किला ये तीन पुरातत्त्व संबंधी लेख छपे हैं। कूप पूजन और उसके बुन्देली गीत (वर्ष-१) करना चौथे (२०-३), ब्रज लोक साहित्य में सौन्दर्य और शिव भावना, ब्रजभाषा में कृषि सम्बन्धी शब्द, ब्रजभाषा के लोक गीतों में राष्ट्रीय चेतना, ब्रज लोक साहित्य में हास्य, ब्रज के कुछ लोक गीत, बुन्देलखण्डी साहित्य में अलंकार योजना, ब्रज के कुछ स्थान अभिधान, ब्रज का मंगल गीत बधावा, ब्रज लोक साहित्य में गहगड्ड, 'ब्रज ८४' में प्रचलित स्वजन सम्बन्धी शब्दावली का विवेचन, बुन्देली सूर, हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त कुछ बुन्देली शब्द, जनपदीय भाषाओं के कोश निर्माण का प्रश्न, जनपदीय साहित्य की समस्या परम्परा और आधुनिक कवि कर्म आदि लोक साहित्य सम्बन्धी लेख हैं--इनसे ब्रजभारती की लोक साहित्य सम्बन्धी दिशा का पता चलता है। लोक साहित्य के अतिरिक्त दूसरी महत्त्वपूर्ण दिशा मध्यकालीन साहित्य संबंधी शोध है जिस पर ब्रजभारती में सर्वाधिक निबंध निकले हैं। कविवर श्री लाल बलवीर और उनका काव्य (श्री राधेश्याम अग्रवाल) लेख ब्रजभारती के वर्ष २०, अंक ४ में छपा था। इन्हीं पर एक लेख श्री सर्वेश्वर (वर्ष १७, अंक ४) में छपा। श्री वेद प्रकाश गर्ग खोजपूर्ण लेख लिखने में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इन्होंने देव सहाय त्रिवेद की अशोक संबंधी स्थापनाओं को भी संशोध्य माना है। श्री लाल बलवीर किस सम्प्रदाय केअनुयायी थे, इस पर इन्होंने एक खोजपूर्ण लेख लिखा जो ब्रजभारती के वर्ष २५, अंक १ में छपा। इसी तरह के वाद-विवाद पूर्ण लेख ब्रजभारती में और भी छपे हैं। कविवर अखैराम, ग्वाल, कवयित्री ताज, संगीतज्ञ कवि घोंघी पर भी ब्रजभारती में पर्याप्त सामग्री निकली है। डा० भगवानदास पचौरी ने ग्वाल कविवर विशेष शोध की है। अखैराम और घोंघी पर श्री रामदास शर्मा, डॉ० भगवान सहाय पचौरी तथा श्री प्रभु दयाल मीतल और डा० शालिग्राम गुप्त के निबंध निकले हैं। ब्रजभारती में अज्ञात कवियों या उन कवियों की अज्ञात रचनाओं पर भी कई लेख निकले हैं। ब्रज के अज्ञात सन्त कवि श्री सूर स्वामी, ब्रज का अल्प ज्ञात संगीतज्ञ कवि घोंघी, वृन्दावन के दीवान चम्पा राय की दो अज्ञात रचनाएँ, सूर सागर की एक दुर्लभ प्रति, हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ आदि लेखों में अल्प ज्ञात या अज्ञात कवि या साहित्यिक सामग्री पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। आचार्य श्रीपति (वर्ष २४, १), क्या सिख गुरुओं की भाषा पंजाबी थी (वर्ष २०, ३), कविवर सोमनाथ और उनका काव्य (वर्ष १९, २), गदाधर भट्ट की ध्यान लीला (वर्ष २५, १), स्व० श्री घासीराम व्यास की ब्रज साहित्य को देन (वर्ष२१,२), दोहा सारसंग्रह और उसका संग्रहकार (वर्ष२३,३), निम्बार्क सम्प्रदाय के संतों की साहित्य सेवा (वर्ष २०, १) आदि अन्य खोजपूर्ण निबंध हैं।

संस्मरण और साहित्य सेवा मूल्यांकन परक निबंधों में आचार्य जीवनदत्त शर्मा स्मृति ग्रंथ, कृष्णानन्द गुप्त, कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी सुयोग्य लेखक, पत्रकार और समाज सुधारक, श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के पत्र, ब्रज कोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न, ब्रज प्रदेश के लोक कवि पं० सत्य नारायण शर्मा, ब्रज के एक परिवार की साहित्यिक परम्परा, पं० श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र, महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' लोक साहित्य के प्रचारक, प्रसारक स्व० लाला कुंजी लाल अग्रवाल, लोक साहित्य के मनीषी कृष्णानन्द गुप्त, लोक साहित्य सेवी डा० सत्येन्द्र, श्रमजीवी साहित्यकार श्री कृष्णानन्द जी गुप्त, स्व० पं० हरिशंकर शर्मा के जीवन पर संस्मरण, साहित्य महोपाध्याय श्री श्यामसुन्दर बादल आदि निबंधों में साहित्य सेवियों के जीवन और उनकी साहित्य सेवा का नाति दीर्घ परिचय दिया गया है। इनमें से अधिकतर संस्मरण, निबंध सरस, सजीव शैली में विद्यमान साहित्यकारों के व्यक्तित्व की झाँकी देते हैं, उनकी साहित्य सेवा से परिचय कराते हैं और उनके ऐसे गुणों की जानकारी देते हैं जिनसे हम अब तक अपरिचित थे या उन पर उपेक्षा की धूल डाले हुए थे। स्वर्गीय साहित्य सेवियों की स्मृति के द्वारा लेखक हमें उनकी स्मृति रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं ताकि पीढ़ियाँ उनसे प्रेरणा लेती रहें और हम उनका स्मृति तर्पण कर पितृ ऋण से मुक्त हो सकें।

अन्तर्जनपदीय कार्यक्रम संबंधी लेखों का उल्लेख सम्पादकीय टिप्पणियों के विवेचन के समय हो चुका है। कुछ लेख हिन्दी भाषा की समस्याओं पर और कुछ विशिष्ट महत्त्व के अभिनंदन ग्रंथों पर निकले हैं। कुछ लेख साहित्यिक गोष्ठियों और समारोहों पर हैं। कुछ इन समारोहों में पढ़े गए भाषण भी लेख रूप में मुद्रित हुए हैं।

शोध पूर्ण त्रैमासिक पत्रिका होते हुए भी ब्रजभारती में कविताओं को भी स्थान मिला है। ये कविताएँ ब्रजभाषा में हैं और ब्रजभाषा के माधुर्य का परिचय देती हैं। इनसे विदित होता है कि ब्रजभाषा काव्य परम्परा अभी भी जीवित है। इसमें अनेक सुगंधित पुष्प खिले हुए हैं। कुछ अपनी सुगंध से हिन्दी प्रांगण को सुरभित भी कर चुके हैं। मध्य काल की तरह आधुनिक ब्रजभाषा काव्य भी अत्यंत समृद्ध और काव्य-गुणों से पूर्ण है। अब तो उसका गद्य भी विकसित हो रहा है। डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने इस पर विशेष शोध की है।

ब्रजभारती में प्रकाशित कविताओं का विषय भगवद्भक्ति या शृङ्गार है। कुछ कविताओं में शरद्, पावस का चित्रण है। कुछ राष्ट्रीय गौरव से पूर्ण, कुछ सामयिक विषयों पर हैं। कुछ कविताओं में दिवंगत साहित्यकारों के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की गई है, कुछ में साहित्यकारों की वंदना है। रवीन्द्रनाथ की एक जन्मांतर कविता है। बाबू वृन्दावनदास ने एक बार इसके अनुवाद की प्रतियोगिता की। इसमें कई लोगों ने भाग लिया। कुछ ने शौकिया इसका अनुवाद किया। इनमें श्री श्यामसुन्दर क्षत्री और श्री अमृतलाल चतुर्वेदी भी थे। इनके अतिरिक्त श्री उमाशंकर दीक्षित और श्री श्याम सुन्दर बादल ने भी भाग लिया। इन सब के अनुवाद ब्रजभारती में निकले। इन्हें पाठकों ने बहुत पसन्द किया।

त्रैमासिक शोध पत्रिकाओं का पुस्तक समीक्षा स्तम्भ अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इनमें प्राप्त पुस्तकों की प्रसन्न गम्भीर शैली में समीक्षा की जाती है। ब्रजभारती का भी यह स्तम्भ अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें अब तक ७०-७५ ग्रंथों की समीक्षाएं निकल चुकी हैं। कुछ पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों की हैं, कुछ महत्वपूर्ण अभिनंदन या स्मृति ग्रंथों की और कुछ काव्य रस पूर्ण साहित्यिक पुस्तकों की। कुछ समीक्षाएँ महत्वइर्ण शोध ग्रंथों पर भी हैं जैसे श्री श्याम सुन्दर बादल का फार्म साहित्य, डॉ० सत्येन्द्र का ब्रज साहित्य का इतिहास, श्री प्रभुदयाल मीतल का ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास डॉ० शालिग्राम गुप्त का ब्रज और बुन्देशी लोक गीतों में कृष्ण आचार्य, जवाहर लाल चतुर्वेदी का महाकवि सूरदास और उनका कृतित्व। इसी तरह

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कुछ महत्वपूर्ण अभिनंदन ग्रंथों और स्मृति ग्रंथों की भी चर्चा की गई है। यह हर्ष की बात है कि समीक्ष्य पुस्तकों में ब्रजभाषा गद्य में लिखित पूंछ री कौ लौठा भी है।

पत्र-पत्रिकाओं में जो सामग्री निकलती है उस पर प्रबुद्ध पाठकों की पत्र-पतिक्रियाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। इससे सम्पादक को पाठकों की नब्ज पहचानने का मौका मिलता है और उन पत्रों को छाप कर वह एक पाठक की बात दूसरे पाठक तक पहुँचा देता है। त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाओं में यह स्तम्भ कभी-कभी महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने और शोध की नवीन दिशाओं के उन्मेष के लिए पर्याप्त उत्प्रेरक सिद्ध होता है। ब्रजभारती में अब तक कई गम्भीर साहित्यिक पत्र छप चुके हैं। बाबू वृन्दावनदास इस स्तम्भ के प्रति सदा सतर्क रहते हैं। उन्हें जैसे ही कोई महत्वपूर्ण, दिशाबोधक चिन्तन प्रधान पत्र मिला कि लेखक की अनुमति लेकर उसे तुरंत छाप देतेहैं। इससे पत्र लेखक को तो प्रोत्साहन मिलता ही है उसके विचारों की तरंगें समस्त ब्रज मंडल में फैल जाती हैं जिससे पत्र में उठाई गई समस्याओं पर कई साहित्यिक मनीषी विचार-मंथन करना प्रारम्भ कर देते हैं।

प्रस्तुत लेख में ब्रजभारती में प्रकाशित समस्त सामग्री का सविस्तार विवेचन आ गया हो ऐसा नहीं है। इसमें तो उसका आभास मात्र दिया गया है। मेरा लक्ष्य इस सामग्री के विवेचन के द्वारा बाबू वृन्दावनदास की हिन्दी सेवा और उनकी सम्पादन कला पर प्रकाश डालता रहा है। किसी भी पत्रिका में प्रकाशित सामग्री उसके सम्पादक की रुचि, निष्ठा और उसके साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रतिविम्ब हुआ करती है। फिर सम्पादकीय टिप्पणियों में तो अन्तर्बाह्य वही समाया रहता है। इस लेख में मेरा यह भी लक्ष्य रहा है कि हिन्दी में समय-असमय उत्पन्न और विलीन होने वाली पत्रिकाओं की विवेचनात्मक विवरणिकाएँ निकलें। इन पर अलग से लेख भी लिखे जायँ। शोध की दृष्टि से ये कितनी महत्त्वपूर्ण होंगी। यह किसी से छिपा नहीं है। जहाँ तक ब्रज मण्डल और ब्रजभारती का प्रश्न है यह हिन्दी की सात्विक सेवा भरपूर कर रही है। इसके कृती सम्पादक बाबू वृन्दावनदास अपनी सीमा में बहुत बड़ी अलख जगा रहे हैं। वास्तव में ब्रजभारती एक जीवन्त चेतना का केन्द्र है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसकी सेवाएँ अक्षय रहेंगी। पूज्य चतुर्वेदीजी ने ठीक ही लिखा है : वे ब्रजभारती के लिए ८-१० घंटे रोज़ कार्य करते हैं। हमारे बुन्देलखण्ड में भी उन जैसे कार्यकर्त्ताओं की जरूरत है (२०-९-७१ को लेखक को लिखे पत्र से)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जनपदीय कार्यकर्त्ता की दृष्टि में : बाबू वृन्दावनदास

⊙

गणेश चौबे

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी अपने पत्रों के माध्यम से दो समानशील व्यक्तियों में संपर्क स्थापित करा देने में बड़े कुशल हैं, जिसे वे साहित्यिक सगाई की संज्ञा देते हैं। वे बड़े गर्व के साथ इस बात की चर्चा किया करते हैं कि उन्होंने अनेक साहित्यिक सगाइयाँ करायी हैं। बाबू वृन्दावनदास जी से मेरा सान्निध्य ऐसी ही सगाई का फल है जिसके पुरोधा हैं पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी।

सन् १९६७ ई० की जनवरी की बात है। पं० बनारसीदास जी का मुझे एक पत्र मिला, जिसमें इस बात की चर्चा थी कि वे हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। उन्होंने मुझसे यह भी पूछा था कि भोजपुरी में कुछ काम हो रहा है या नहीं ? मैंने उनको भोजपुरी क्षेत्र में हो रहे जनपदीय कार्यों का विस्तृत ब्यौरा भेजा तो उनसे प्रत्युत्तर मिला कि वे मेरे पत्रों की प्रतिलिपि ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष श्री वृन्दावनदास को भेज रहे हैं और मैं उनसे सम्पर्क स्थापित करूँ। मैं श्री वृन्दावनदास को पत्र लिखने को सोच ही रहा था कि उनका एक पत्र मुझे मिला जो इस प्रकार है—

प्रकाश भवन, मथुरा
ता० १७-५-६७

प्रिय चौबे जी, सादर नमस्कार !

माननीय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे आप के संबंध में लिखा है। हिन्दी प्रेमियों के प्रति तो हम श्रद्धावनत हैं। आपको नियमित रूप से ब्रजभारती भेजते रहेंगे। कदाचित आपने हमारी पत्रिका देखी होगी। जनपदीय आन्दोलन के प्रति आप सजग हैं, यह जान कर हर्ष हुआ। हमने हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना चलायी है। जनपदीय आन्दोलन के माध्यम से हिन्दी के भंडार को भरना है।

कृपा भाव रखें।

भवदीय
वृन्दावनदास

ता० १६-५-६७ के अपने पत्र में श्री चतुर्वेदी जी ने मुझे सूचित किया था कि वे श्री वृन्दावनदास को मेरे पत्रों की प्रतिलिपि भेज रहे हैं और ता० १७-५-६७ का लिखा श्री वृन्दावनदास जी का पत्र जब मुझे मिला तो मैं यह तत्परता देख कर चकित रह गया। मुझे ऐसा लगा कि श्री चतुर्वेदी जी का पत्र ज्योंही श्री वृन्दावनदास जी को मिला, उन्होंने तत्क्षण मुझे पत्र लिख डाला। पत्र का एक-एक शब्द लेखक की प्रबुद्ध मनोवृत्ति पर प्रकाश डाल रहा था। यों तो ब्रज साहित्य मंडल की परंपरा रही है कि उसका अध्यक्ष कोई-न-कोई मूर्द्धन्य विद्वान् ही होता आया है, लेकिन वह पत्र कह रहा था कि उसका लेखक विद्वान् ही नहीं; कुछ और भी है। उसके हृदय में उदारता है, विद्वानों के लिए सम्मान का भाव है और जनपदीय कार्यों के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लिए उत्कट इच्छा। इसके पूर्व उनसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं था। उनके प्रथम पत्र ने ही मुझ पर स्नेह-पूरित घट उड़ेल दिया। मेरा हृदय उनके प्रति श्रद्धा से भर गया।

पं० बनारसीदास जी हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करने के लिए अत्यन्त व्यग्र और तत्पर थे, वे पुराने कार्यकर्ताओं को पुनः एक मंच पर इकट्ठा करना और नये कार्यकर्त्ताओं को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित करना चाहते थे। उनका फिर पत्र आया कि इस अनुष्ठान के लिए एक होता की जरूरत होगी। मैंने उन्हें राय दी कि इस कार्य के लिए श्री वृन्दावनदास जी ही उपयुक्त व्यक्ति हैं। श्री चतुर्वेदी जी से प्रत्युत्तर आया कि मैं भी इसके लिए श्री वृन्दावनदास को आग्रह करूँ। मैंने आदेश का पालन किया और मुझे श्री वृन्दावनदासजी से विनम्रतापूर्ण उत्तर मिला। पत्र किंचित लंबा है, जिसका संबंधित अंश इस प्रकार है—

प्रकाश भवन, मथुरा
८-३-६८

मान्यवर चौबे जी, सादर प्रणाम।

कृपा-पत्र मिला। यह शुभ संवाद है कि आप कविरत्न संबंधी त्रिदिवसीय समारोह में जो १४, १५, १६ अप्रैल को आगरा में हो रहा है, सम्मिलित होंगे। अन्तर्जनपदीय परिषद् की स्थापना तो उस अवसर पर कर ही देनी है। आप मुझे होता तो बनाना चाहते हैं, श्रद्धेय चतुर्वेदी जी भी ऐसा कई बार लिख चुके हैं, परन्तु होता को यह नहीं मालूम कि यह होता कैसे है ? आपको उस संबंध में प्रमुख भार उठाना होगा। आप सहृदय मित्रों के आश्रय पर ही मैं यह महान कार्य भार उठाने को उद्यत हो गया हूँ।

आपका
वृन्दावनदास

श्री वृन्दावनदास ने जनपदीय आन्दोलन को चलाने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है, यह जान कर हम आश्वस्त हुए। इस अनुष्ठान के ब्रह्मा तो चतुर्वेदी जी थे ही, एक कर्मठ होता भी मिल गया।

यदि हम बनारसीदास जी चतुर्वेदी को जनपदीय विचार-धारा का आदि प्रवर्त्तक और स्व० डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल को उसका भाष्यकार कहें तो यह उपयुक्त ही होगा। पं० बनारसीदास ने जनपदों की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामग्रियों के संकलन पर बल दिया था। स्व० अग्रवाल जी ने उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कर दिया। उनका विचार था कि प्रत्येक जनपद को एक इकाई मान कर वहाँ की भूमि, प्रकृति, भूगोल, पुरातत्व, इतिहास, निवासी, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित जनपदों में बिखरी हुई सामग्रियों का विधिवत् संकलन, अध्ययन और प्रकाशन होना चाहिए। जो राष्ट्र के समग्र रूप के दर्शन के लिए अनिवार्य है। डा० अग्रवाल ने इस योजना को जनपद कल्याणी योजना की संज्ञा दी थी। कार्यारंभ हुआ। सन् १९५२ ई० में विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् की स्थापना भी हुई, परन्तु आगे चल कर इसमें शिथिलता आ गयी। फिर जनपद कल्याणी योजना से क्या अपेक्षित है, इसका साहित्यकारों को सम्यक् बोध भी नहीं रहा। अतः सन् १९६६ ई० में श्री वृन्दावनदास ने इसके लिए एक सुगम और सुबोध नाम चुना। उन्होंने 'जनपदीय शब्दों, मुहाविरों, लोकोक्तियों आदि से हिन्दी का भंडार भरने की योजना का नाम 'हिन्दी सम्वर्द्धिनी योजना' रखा। उन्होंने हिन्दी सेवियों से अनुरोध किया कि 'वे जनपदीय साहित्य, संस्कृति एवं भाषा का जनपदों में जा कर अध्ययन करें।' इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वृन्दावनदास जी की योजना स्व० डा० अग्रवाल की योजना का संशोधित रूप है, जो उनकी योजना की अपेक्षा पं० बनारसीदास जी की योजना के अधिक निकट है। डा० अग्रवाल की योजना इतनी व्यापक और विशाल है कि उसके कार्यान्वयन के लिए प्रत्येक जनपद में सैकड़ों निस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्त्ताओं एवं एक बड़ी संस्था की जरूरत है, जिसका अभाव इस योजना को अव्यावहारिक बना देता है। हमारी संस्थाओं और साहित्यकारों के सीमित साधनों को देखते हुए उसमें आशोधन की जरूरत थी, अतः श्री वृन्दावनदास जी की यह संशोधित योजना कालोचित है और उन्होंने इस विषय पर व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है।

तारीख १४, १५ और १६ अप्रैल १९६८ ई० को आगरे में सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दि समारोह ग्वाल शताब्दि समारोह और कुँवर हनुमंत सिंह जयन्ती समारोह का आयोजन था। उसी अवसर पर ब्रज-साहित्य मंडल का अधिवेशन और हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् का पुनर्गठन होने वाला था। अतः मैं तारीख १३ अप्रैल को आगरा पहुँचा। सेंट पीटर्स कॉलेज के अहाते में समारोहों का आयोजन था और वहीं अतिथियों के ठहरने की व्यवस्था थी। दूसरे दिन प्रातः खंडवा के श्री रामनारायण उपाध्याय आए। मध्याह्न में श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी और पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के साथ श्री वृन्दावनदास जी आए। वे लोग हमसे बड़े प्रेम से मिले। अपराहन में कविरत्न सत्यनारायण अर्द्धशताब्दि समारोह का शुभारंभ हुआ। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अध्यक्षता की। श्री वृन्दावनदास द्वारा स्वागत भाषण पढ़े जाने के बाद स्व० पालिवाल जी का ब्रजभाषा में सुललित भाषण हुआ। इस कार्यक्रम की समाप्ति के बाद हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् का कार्यारंभ हुआ। श्री वृन्दावनदास जी के आदेशानुसार इन पंक्तियों के लेखक ने हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् जैसी संस्थाओं की उपयोगिता पर किंचित प्रकाश डाला। हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् का पुनर्गठन हुआ। इसके लिए एक समिति बनी, जिसके पं० बनारसीदास जी अध्यक्ष और श्री वृन्दावनदास जी संयोजक बनाए गए। इस प्रकार सोलह वर्षों के बाद श्री बनारसीदास जी की प्रेरणा और श्री वृन्दावनदास के सत्प्रयास से इस परिषद् का पुनर्गठन संभव हो सका।

हमारे पास ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि श्री वृन्दावनदास जी साहित्य-जगत में नवागतों के पोषक हैं। प्रतिभा सम्पन्न नए लेखकों की रचनाओं को वे ब्रजभारती में स्थान देने में तनिक भी संकोच नहीं करते। वे नए ग्रंथकारों के ग्रंथों के सुन्दर अंशों की प्रशंसा कर, उनकी समीक्षा प्रकाशित कर स्व० आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और शिवपूजन सहाय जी एवं श्री बनारसीदास जी के सदृश उन्हें उत्साहित करते रहते हैं। हिन्दी पत्रकार जगत में आज कितने ऐसे व्यक्ति हैं ?

श्री वृन्दावनदास जी पत्र लिखने में बड़े तत्पर हैं। वे सीधी-सादी भाषा और नपे-तुले शब्दों में छोटे-छोटे पत्र लिखते हैं। मेरा उनका सम्पर्क सवा चार वर्षों का है इस अवधि में लिखे उनके उनचास पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं।

श्री वृन्दावनदास जी हम जनपदीय कार्यकर्त्ताओं के लिए शक्ति केन्द्र हैं, प्रकाश-स्तंभ हैं और उनसे हमें सतत् प्रेरणा और पथप्रदर्शन मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास है। वे शतायु हों, ऐसी हमारी मंगल-कामना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आगरा मण्डल के साहित्यिक कमिश्नर

राजेन्द्र रंजन

यों मथुरा-वृन्दावन वासियों के लिए तो उनका नाम चार दशाब्दी पुराना है क्योंकि यहाँ के सार्वजनिक क्षेत्र में सन् १९२८ से ही वे सक्रिय हो गए थे---पुरातत्व संग्रहालय व्यवस्था समिति की सदस्यता हो या नगरपालिका की, ऑनरेरी मजिस्ट्रेटी हो या चेयरमैनी, विभिन्न विद्यालयों के प्रबंधक तथा सहकारी संस्थाओं के संचालक रूप में भी वे जनजीवन के बहुत निकट रहे हैं किन्तु जब सन् १९६४ में उन्हें अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल का अध्यक्ष चुना गया तो जन्मजात, नहीं वंशानुगत साहित्यिक संस्कार जागा। प्रकाशक और मुद्रक साहित्य-क्षेत्र के ही मरजीवा होते हैं, चाहते न चाहते जाने-अनजाने ही साहित्य की प्रेरणा उन्हें उद्‌बुद्ध करती ही रहती है और वे वंश परंपरागत प्रकाशक और मुद्रक रहे अतः कहना चाहिए कि कई पीढ़ी पुरानी साहित्यिक चेतना तो उनमें थी ही---मण्डल का संस्पर्श पाकर कुलबुला उठी। प्रारंभ में लोगों को कुछ नयापन या अनोखापन-सा लगा, स्वयं ब्रज साहित्य मण्डल के जन्मदाता श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी समझा कि कोई श्रेष्ठि हैं, जिन्हें जबर्दस्ती जिजमान बनाया गया है---परन्तु यह तो मनोविज्ञान का जाना-पहचाना तथ्य है, अतः वह अटपटापन शीघ्र ही वास्तविकता के बाने में उपस्थित हो गया तथा जनपदीय सांस्कृतिक आन्दोलन के भीष्मपितामह ने उनका 'आगरा कमिश्नरी के साहित्यिक कमिश्नर' रूप में अभिषेक कर दिया। अब तो ओर पास जहाँ भी दृष्टि जाय साहित्यिक-सभाओं की अध्यक्षता उनका आलिंगन करने को मचलती ही दिखाई दे। लोग कहते हैं कि वे अध्यक्षता को चाहते हैं और अध्यक्षता कहती है कि मैं उन्हें चाहती हूँ। पता नहीं, कौन किसको चाहता है? पर हम इतना अवश्य चाहते हैं कि वे जनपदीय सांस्कृतिक आन्दोलन के अध्यक्ष बनें। अस्तु! इस चाहने के चक्कर में एक बात और निकली कि उन्हें यश की बड़ी जबर्दस्त भूख है---वैसे यह यश आदर्श व्यक्तियों की अन्तिम निर्बलता होती है। हमारे नीतिकारों ने यश को निर्बलता नहीं, परमार्थ की प्रबल प्रेरणा माना है---

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्

रांगेय राघव पर भी समालोचकों ने 'यश का भूतावेश' होने की बात कही थी, जो भी हो, हम इतना अवश्य मानते हैं कि यश की लालसा से ही यदि कुछ सार्वजनिक हित संपादित हो जाय तो ऐसे यश को कहीं पा लूँ तो उस पर न्यौछावर हो जाऊँ! धन्य है वह यश, जो उनसे पैसा भी खर्च कराता है, यहाँ से वहाँ---दूर-दूर सभाओं में ले जाता है और आठ-आठ घण्टे टेबिल-वर्थ कराता है।

ये तो बातें हुईं ऊपरी; अब उनके आन्तरिक गुणों की खोज करते हैं। मेरा उनसे संपर्क लगभग आठ वर्ष पुराना है; बहुत निकट तक आ पहुँचा था। उनमें सब से बड़ी और पहली विशेषता है---व्यावहारिकता। वे ऐसे आदर्श के कायल नहीं जो धरती पर न उतरे, त्रिशंकु की तरह लटक जाय। यही कारण है कि उन्होंने जिस योजना को सम्हाला, पूरा किया। मुझे याद है कि एक बार ग्वाल शताब्दी की बातें

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चलीं किन्तु वह योजना कुछ बिखरी-सी प्रतीत हुई, उन्होंने उसके लिए वादा कर दिया था और जब वह मथुरा में न हो सकी तो आगरे में उसे संपन्न कराया। इसी प्रकार ब्रज भारती की बात है। वहाँ भी वे मध्यम मार्ग को अपना कर गतिशील रहे हैं। उनकी दूसरी विशेषता है—अपने विरोधियों को भी मित्र बना लेना। वे बड़े जिज्ञासु भाव और उत्सुकता के साथ लोगों की बातों को सुनते हैं और महत्व देते हैं। कुछ लोगों को अहम्मन्यता के कारण दूसरों की बातें नहीं सुहातीं परिणामतः वे संकीर्णता की परिधि में बँध जाते हैं किन्तु उन्होंने इस तथ्य को भली भाँति समझा है, इसीलिए उनके दिलो दिमाग के दरवाजे सदैव खुले ही रहते हैं। वे बातों ही बातों में बातों का सार निकालने में अपनी पूरी योग्यता से काम लेते हैं। डा० बनारसीदास चतुर्वेदी आदमी को पहचानने में प्रवीण हैं, उन्होंने उनकी विशेषता बताई—योजकस्तत्र दुर्लभः। संयोजकत्व का दुर्लभ गुण उनमें कट-कूट कर भरा हुआ है, कितनी भी कुटिल-प्रवृत्ति का व्यक्ति उनके समीप आवे, वे उसे निभा लेंगे; क्योंकि वे उस तरीके को जानते हैं कि साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे। यदि यह बात न होती तो मथुरा नगर पालिका की चेयरमैनी को इतनी कुशलता से निभाना आसान न था। वास्तव में वे राजनीति के टेढ़े-मेढ़े रास्तों में होकर यहाँ तक पहुँचे हैं, इसलिए संयोजन कौशल उनसे नीचे है।

अब हम उनकी उपलब्धियों पर विचार कर लें, ब्रज साहित्य मण्डल यदि आज जीवित है तो वह उनके ही कारण; अन्यथा मण्डल के उन नित-नमनीय पुराने कर्णधार स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा सर्वश्री डा० सत्येन्द्र, गोपाल प्रसाद व्यास, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, जवाहर लाल चतुर्वेदी, गोपालदत्त शर्मा, सुदामा प्रसाद जी, वियोगी हरि, भारतभूषण अग्रवाल, नवीन जी, राजबहादुर जी आदि द्वारा मथुरा की दूषित दलबन्दी के कारण उदासीन हो जाने पर ब्रज साहित्य मण्डल में क्या था? स्व० श्री जगदीश नारायण जी को धन्यवाद जिन्होंने उन्हें मण्डल में लाकर खड़ा किया—आज कम-से-कम, तीन महीने में आकर ब्रजभारती तो यह शंख नाद कर देती है कि ब्रज साहित्य मण्डल जीवित है। आजकल वे दिन रात इस उधेड़ बुन में रहते हैं कि मण्डल का विकास कैसे हो?

श्रीमान् डा० बनारसीदास चतुर्वेदी ने जिन दिनों विकेन्द्रीकरण का नारा दिया था उन्हीं दिनों उसी भावना ने ब्रज साहित्य मण्डल को जन्म दिया जिसे स्व० डा० वासुदेवशरण जी ने बाद में जनपदीय आन्दोलन नाम दिया। इसीलिए मण्डल के माध्यम से और उससे पृथक् अन्य सभी रूपों में बाबू वृन्दावनदास जी जनपदीय आन्दोलन के संयोजक हैं। वे नगर-नगर में जनपदीय आन्दोलन की ज्योति के संवाहक बन गए हैं। उन्होंने ब्रजभारती के द्वारा जनपदीय क्षेत्र में अपना स्थान बना लिया है। वे आज जनपदीय कार्यकर्त्ताओं का आकर्षण-केन्द्र बन गए हैं। इस क्षेत्र में श्री बनारसीदास जी का उन्हें हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त है।

श्रद्धेय बनारसीदास जी का यह मूल मन्त्र कि —जे कवि हैं कोमल विरवा तिनकों कबहू कुम्हलान न दीजै। उन्होंने आत्मसात कर लिया है। ब्रजभारती के द्वारा उन्होंने अनेक ऐसी प्रतिभाओं को जीवन प्रदान किया है। कुछ लोग दूसरों की प्रशंसा करने में हिचकते हैं तथा कुछ कृपणता करते से प्रतीत होते हैं। परन्तु उनमें यह बात नहीं, जहाँ कहीं वे गुण देखते हैं—दिल खोल कर और जी भर कर सराहते हैं—नीतिकार का वाक्य है : वचने का दरिद्रता।

उनकी साहित्यिक उपलब्धियों में मुख्य हैं—डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र, प्राचीन भारत में हिंदू राज्य, भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य। ये तीनों उच्चकोटि की कृतियाँ मानी गई हैं—इन पर इस ग्रंथ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में अन्यत्र बहुत कुछ स्वतंत्र रूप से लिखा ही जा चुका है। अब उनका एक और महत्वपूर्ण ग्रंथ आ रहा है—डा० वासुदेवशरण जी के संबंध में। यह ग्रंथ जनपदीय सांस्कृतिक आन्दोलन के लिए पथ-प्रदर्शक सिद्ध होगा।

जहाँ तक विचारधारा का प्रश्न है—वे मौलिक चिन्तक हैं। यह बात दूसरी है कि आपसे उनका विचार न मिले, किन्तु वे अपने विचारों को तर्कसंगत आधार प्रदान करने में सफल ही होते हैं। मेरे पास उनके अनेक ऐसे पत्र हैं जिनमें उन्होंने समस्याओं पर अत्यन्त स्पष्ट विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने अपनी सेवा तथा कार्यों से डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी प्रदत्त उपाधि को सार्थक सिद्ध कर दिया है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रतिभा के धनी : बाबू वृन्दावनदास जी

हुकुमचन्द्र तिवारी

एम० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट, भू० पू० आनरेरी मजिस्टेट, मथुरा

मानवीय गुणों के पोषक, परम्परा और मान्यताओं का समन्वय कर के जनसाधारण को निकट से पहचानने वाले बाबू वृन्दावन दास जी से मेरा परिचय उस समय हुआ था जिस समय मैं १९५४ में च० अ० इंटर कालेज में पढ़ता था ! जब मैंने बाबू जी को पहली बार देखा मैंने उनसे अपने एक साथी छात्र की आर्थिक स्थिति की दयनीय दशा बतायी और साथ ही साथ छात्र की प्रतिभा को भी बताया तो उन्होंने छात्र की पूरी-पूरी मदद करने का आश्वासन दे कर उसे व्यवहार में परिणत कर दिया। आज वह छात्र उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख 'वक्ता' और युवक नेता है।

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी-साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं जिनकी प्रतिभा और साहित्य साधना से समस्त हिन्दी जगत प्रभावित है। उनकी अनूठी साहित्य साधना से हिन्दी जगत आलोकित हो रहा है। हिन्दी जगत और ब्रज भाषा के लिए किए गए अलौकिक कार्य उनकी कुशलता के परिचायक हैं। सहज और सरलता में जो कार्य आपने अपने अनूठे ढंग से किए हैं वे मानवीय गुणों के उद्‌घाटक हैं। अपने सहयोगियों और साथियों के लिए उनमें अपार अनुराग तो मिलता ही है साथ ही साथ अपरिचित से अपरिचित को भी वे अपना सहयोग बड़ी निष्ठा और विश्वास के साथ देते हैं !

बाबू वृन्दावनदास जी विशेषकर अपने शुभचिंतक व सहयोगियों को एक ही बात का परामर्श देते हैं और वही उनके जीवन की साधुता की पहिचान है कि उपकार करने के बाद धन्यवाद की प्रतीक्षा मत करो, यह कथन बाबू जी की सौमनस्यता का परिचायक है।

बाबू वृन्दावनदास के व्यक्तित्व के अनेक रूपों से एक रूप यह भी है कि उन्हें अपने देश की संस्कृति कला आदि का अनूठा और अद्वितीय ज्ञान है। क्या भारतीय भाषा है क्या उसका स्वरूप है तथा क्या भारत की परम्पराएँ और उनके निभाने में क्या मान्यताएँ मानी जायँ यह बात बाबू जी में रहन-सहन और भाषणकला से स्वयं ही प्रगट हो जाती है। एक बार १९६२-६३ में मथुरा जनपद के लोक गीतों की प्रतियोगिता हुई उसका सभापतित्व बाबू वृन्दावनदास द्वारा किया गया, उस समय उन्होंने लोक गीतों के साहित्य पर जो सारगर्भित भाषण दिया उससे उपस्थित जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

जनपदीय भाषाओं के समर्थक

बाबू वृन्दावनदास साहित्य में अभिरुचि रखते हैं और साहित्य के सृजन में उनका अटूट विश्वास है तथा इस क्षेत्र में वे अत्यधिक व्यावहारिक हैं। आपका विश्वास है कि साहित्य के क्षेत्र को सबल और सम्पन्न देखना है तो यह अति आवश्यक है कि देश की जनपदीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाय और इस दिशा में भाषायी सौहार्द स्थापित किया जाय। जब-जब बाबू जी ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देली आदि जनपदीय

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भाषाओं की चर्चा करते हैं तो वे आत्मविहोर हो कर यही कहते हैं कि सभ्यता और संस्कृति को ये ही भाषा जीवन दे सकने में सक्षम होगी ! हमारा लोक जीवन इन्हीं में निहित है।

बाबू वृन्दावनदास जी जिस परिवार में जन्मे हैं वह नगर का प्रमुख व्यवसायी परिवार है तथा आर्थिक क्षेत्र में वह नगर में प्रमुख गिना जाता है किन्तु वे निरभिमानी हैं। उनकी मित्रता और बैठना उठना साधन सम्पन्न और साधनहीन दोनों प्रकार के लोगों में समान रूप से है। उनका व्यवहार सभी के प्रति स्तुत्य एवं वंदनीय है।

नगर व जिले में जब दावतें होती हैं तो उनके पास धनिक व्यवसायियों के यहाँ से अधिक निमंत्रण आते हैं तथा कुछ लोग उन्हें अपनी कार भेज कर अपने दरवाजे पर देखना चाहते हैं। बाबू जी उस दिन एक ऐसी सूची बनाते हैं कि आज किस गरीब के आयोजन में शामिल होना है अर्थात् गरीब से गरीब व्यक्ति के दरवाजे पर जाने में वे अपना सौभाग्य समझते हैं। कुर्सियों और सोफा सेटों की चमचमाहट को त्याग कर खाली धरती पर जहाँ टाट की बिछाई की भी व्यवस्था नहीं होती है वहाँ बड़े प्रेम से भोजन करते हैं। यह गुण सम्भवतः बहुत कम ही व्यक्तियों में मिलेगा !

बाबू जी ने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो सम्मान अर्जित किया है वह उनकी विद्वत्ता और चिंतन का ही एक मात्र फल है। आपने साहित्य की साधना में मौलिकता का तो परिचय दिया ही है साथ-ही-साथ अपने विचारों में एक नई चुनौती को भी स्वीकार किया है। उनकी विद्वत्ता और जागरूकता ने उनको साहित्य के क्षेत्र में शिखर पर पहुँचा दिया है।

साहित्य और राजनीति

हिन्दी जगत के ऐसे विरले ही साहित्य सेवी होंगे जो साहित्य की साधना में लगाकर सरस्वती के अनन्य उपासक बन जायँ, और जनपद से लेकर प्रदेश स्तर तक राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके, यह सौभाग्य बाबू जी को उनकी अविरल सेवा और सिद्धान्त की उपासना से ही मिला है। मथुरा नगर की घनी आबादी में रह कर जनपद के प्रत्येक किसान मजदूर का असीम प्यार और श्रद्धा उन्हें सहकारिता के क्षेत्र में ३० वर्षों से मिलती आयी है, प्रदेश की सहकारिता के क्षेत्र में आज तक ऐसा को भी व्यक्ति नहीं हुआ जो है वर्षों निर्विरोध प्रदेशीय स्तर की तीनों इकाइयों का संचालक रहा हो। ये सहकारिता की प्रदेशीय स्तर की तीन इकाइयाँ उ० प्र० सहकारी संघ उत्तर प्रदेशी सहकारी बैंकव उ० प्र० सहकारी यूनियन ही बाबू जी के कार्यों से लाभान्वित रहीं है और बाबूजी कीसतत् साधना ने उ० प्र० सहकारिता के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान प्राप्त कर के गरिमा के अंकों को वर्षों तक प्राप्त किया है। मथुरा जनपद का प्रत्येक ग्राम व वहाँ के सहकारी बन्धु जीवन भर बाबू जी के किए गए उल्लेखनीय कार्यों से ऋणी रहेंगे।

मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर रह कर भी बाबू जी द्वारा जो सम्मान सेवा के क्षेत्र में अर्जित किया है वह स्मरणीय है। नगरपालिका में सदैव से यह शिकायत जनता की रही कि सफाई, पानी और रोशनी की समुचित व्यवस्था इसलिए नहीं हो पाती है कि जनता के प्रतिनिधि चुन जाने के बाद इस ओर सक्रियता से अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाते हैं किन्तु बाबूजी ने नगरपालिका के अध्यक्ष के पद का निर्वाह गली-गली और मोहल्ले-मोहल्ले में पैदल घूम कर जनता की शिकायतों को सुन कर पूरा किया और उन्होंने सफाई, रोशनी, पानी की समस्या के समाधान के लिए भगीरथ प्रयास कर के नगरपालिका सेवा काल में एक कीर्तिमान स्थापित किया है जो नगर के इतिहास में युगों तक याद किया जावेगा तथा आने वाली पीढ़ी इन कार्यों को स्मरण कर के अपना कर्त्तव्य निभाने में प्रेरणा प्राप्त करेगी। मैं बाबू जी के किए गए कार्यों के प्रति नमन करता हूँ और आभार प्रकट करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजक्षेत्र के कर्मठ कर्णधार!

⊙

बालक चतुर्वेदी

बाबू वृन्दावनदास जी से मेरा परिचय बहुत पुराना है। ब्रज साहित्य मंडल के कार्य क्षेत्र में मेरी उनसे घनिष्ठ मित्रता हुई और वह दिनोंदिन दृढ़तर होती गई है। जब वे मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष थे तब नगरपालिका से प्रकाशित कराने हेतु उन्होंने मुझसे 'मथुरा का पुरातन परिचय' नाम का परिचय ग्रंथ लिखवाया था जो मथुरा नगरपालिका की अक्षम प्रसुप्त नीति के कारण प्रकाशित नहीं हो पाया। बाबू जी को ब्रज की संस्कृति ब्रजभाषा और ब्रज निर्माण के कार्यक्रमों में अगाध निष्ठा है। बड़ी लगन के साथ वे ब्रज के विकास कार्यों में अपना योगदान देते रहते हैं, और उनकी यह निरन्तर कामना है कि किसी प्रकार से ब्रज का प्रतिभाशाली क्षेत्र सम्पूर्ण रूप से विकसित और गौरव सम्पन्न बने। यद्यपि ब्रजभाषा में वे स्वयं नहीं लिखते हैं, फिर भी ब्रज के कवियों, साहित्य सेवियों कलाकारों और रस सृजेताओं के प्रति उनकी अपार आत्मीयतामयी स्नेह भावनायें हैं। वे ब्रज के साहित्य और कला क्षेत्र को अपने प्राचीन गौरव के अनुरूप फलता-फूलता देखने के लिए अति उत्सुक रहते हैं, और अपने सशक्त प्रयासों के रूप में वे अपने सांस्कृतिक ब्रज परिवार को; उसके रचनात्मक उद्‌बुद्ध सदस्यों कवि कोविदों को वे सदैव अपनी सेवायें अर्पित करने को उद्यत रहते हैं।

बाबू वृन्दावनदास जी में एक विशेष गुण है—वे अपने कर्तव्य कर्म को पूरा करने में सोच विचारों और वायदों प्रलोभनों के झमेलों में नहीं पड़ते और उन्हें जो करना होता है उसे वे अनौपचारिक सत्यता के साथ कर डालते हैं। ब्रज क्षेत्र के प्रत्येक कार्यकर्ता के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और उनके योगदान से अनेक साहित्य संस्थायें और कार्यक्रम लाभान्वित होते रहते हैं। सुविज्ञ अतिथि सत्कार और साहित्य समागम आपकी एक और परिमार्जित रुचि है जिसके अंतर्गत मथुरा आने वाले प्रत्येक साहित्यमहारथी का उनके यहाँ स्नेहमय समादर होता है। ऐसे अवसरों पर परिचर्चा की अनेक गोष्ठियों का समायोजन आपके यहाँ होता रहता है, जिससे ब्रज साहित्य के प्रमुख विद्वानों और कलाकारों का परिचय तो बाहर वालों को होता ही है, साथ ही इससे ब्रज भाषा की उपेक्षित साहित्य रचना परंपराओं की धाराओं को भी पर्याप्त बल मिलता रहता है और वह स्वतः ही नव सृजन की ओर अभिमुख होती रहती हैं।

बाबू जी का स्वभाव सरल कोमल उदार सक्षम और साधना सम्पन्न है। वे साहित्य गोष्ठियों में बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। अभिमान उनमें तनिक भी नहीं है तथा अपने कर्तव्यों के प्रति वे सहज जागरूक प्रयत्नबद्ध और भावनिष्ठ हैं। मथुरा से बाहर ब्रज के अंचलों में अनेक बार मैं और वे साथ-साथ गए हैं और वहाँ जनपदीय जागरण की प्रेरणाओं में उनका योगदान रहा है। जनपदीय जागरण और उसके सर्वतोमुखी विकास में उनका अटूट विश्वास है तथा जनमानस को इस ओर प्रेरित करने और उसे उद्‌बुद्ध बनाने में उनका आत्मबल बड़ी दृढ़ता से सामने आता है। उनके कुछ स्वप्न हैं जिनको साकार करने में वे प्रयत्नशील

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हैं। पुस्तकालयों की एक शृंखला की स्थापना, ब्रज साहित्य के दुर्लभ ग्रंथों का प्रकाशन, ब्रज शोध संस्थान का सुदृढ़ गठन, मथुरा के अनुरूप एक साहित्य मंदिर का संचालन संवर्धन तथा और भी अनेक स्वप्न उनके मानस में पल रहे हैं और अपनी साकारता के लिए स्पर्धा लगा रहे हैं।

ब्रज साहित्य मंडल की अध्यक्षता तथा ब्रजभारती के सम्पादन के रूप में उन्होंने बहुत कुछ कार्य किया है। अनेक पुस्तकों के लेखन, सम्पादन और प्रकाशन के रूप में उन्होंने अपनी हिन्दी सेवा रुचि को पल्लवित किया है। यह धारा अभी अपने पूरे वेग और प्रवाह के साथ गतिगामिनी है और भविष्य के सम्बन्ध में हमें उनसे बहुत कुछ आशायें हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निर्वैर, कर्मठ और जीवन्त व्यक्तित्व

डा० भगवान सहाय पचौरी

बाबू वृन्दावनदास जी के सद्गुणों पर, उनकी विशेषताओं पर, उनकी हिन्दी-आश्रयदाता सुरुचि पर एक पूरा ग्रन्थ लिखा जा सकता है। विशेषकर मुझ जैसे व्यक्ति से यह आशा और अपेक्षा की ही जाती है, जो प्रायः एक दशक तक उनके निकट साहित्यिक सम्पर्क में रहा हो। उनके सद्गुणों ने ही मुझे उनकी ओर आकृष्ट किया था। परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ मैत्री में परिणत होता गया। जी हाँ, सब प्रकार से बड़े होते हुए भी बाबू जी अपने छोटों के साथ मित्रवत् ही व्यवहार करते हैं। जो एक बार उनके सम्पर्क में आया कि उनका होकर रह गया। राजनीति, साहित्य, समाज कोई भी क्षेत्र हो, बाबू जी सर्वत्र प्रमुख होकर रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप वे छोड़ते हैं। ये तीनों ही क्षेत्र उनके व्यक्तित्व के प्रशंसक रहे हैं। नगरपालिका की अध्यक्षता के समय में उनके प्रथम दर्शन प्राप्त करने का अवसर सन् १९५४-५५ में मिला। स्व० पं० शिवचरणलाल शर्मा पत्रकार के साथ किसी कार्य से प्रकाश भवन में उनके दर्शन हुए थे। नवागन्तुक मेरे ऊपर उनके वार्तालाप ने मुझ पर जादू का-सा प्रभाव डाला।

मृदुभाषिता आपका सर्वोपरि गुण है। उनके संभाषण में मिश्री घुली रहती है। बातें करने का उनका 'लहजा' अपना है। मुसकान उनके मुख की कभी म्लान नहीं होने पाती। आत्मीयता चूँकि आद्यन्त बनी रहती है, अतः किसी के विरोध करने का भी प्रश्न नहीं उठता। उनकी यह आत्मीयता ही उनके प्रत्येक कार्य में उनको यश प्रदान करती है। एल-एल-बी० होते हुए भीवे तर्क के लिए तर्क नहीं करते। धनी और सम्पन्न होते हुए भी वे लक्ष्मी सम्पन्न होने का आभास नहीं देते। उनके मित्रों में प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म के अनुयायी आते हैं। परन्तु उनके सम्पर्क में सभी बाबू जी मय दीखते हैं। बीच-बीच में हँसी के कहकहे छूटते रहते हैं। वार्तालाप में ऊष्मा नहीं आने देते। हिंदी के वरिष्ठतम, उच्चतम विद्वानों के साथ रहने का उन्हें अभिमान नहीं। उनकी निरभिमानता आदर की वस्तु है। वैर, प्रतिशोध, ईर्ष्या, कुढ़न, मात्सर्य उनकी आचार संहिता के कोश में हैं ही नहीं।

लेखन की प्रवृत्ति आप में संस्कारजन्य है और छात्र जीवन से है। हिन्दी की प्राचीन साहित्यिक पत्रिकाओं में छपे उनके लेख और पत्र इसके प्रमाण हैं। 'सुधा', 'प्रभा', 'माधुरी' के पुराने अंक देखे जा सकते हैं। अंग्रेजी पत्रों में सम्पादक के नाम पत्रों में बाबू वृन्दावनदास सैकड़ों स्थान पर छापे गए हैं। यही नहीं सम्पादन की क्षमता भी आपमें जबर्दस्त है। 'ब्रजभारती' का पुनरुद्भव और उसका अनवरत, अनवरुद्ध सम्पादन और प्रकाशन अकेले आप ही ने किया है और कर रहे हैं। देश के कोने-कोने से विद्वानों से लेख माँगना, सम्पादन करना, पत्रों के उत्तर लिखना, विमर्श करना, प्रकाशन करना फिर स्वयं 'ब्रजभारती' के अंकों को निःशुल्क चारों ओर प्रेषित करना यह सब अकेले आप कर रहे हैं। 'ब्रजभारती' की लोकप्रियता बढ़ी है। पाठक बढ़े हैं। लेखक बढ़े हैं। आप इससे कुछ नहीं। व्यय ही व्यय है। आप स्वयं ही धन का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जुगाड़ करते हैं, व्यय करते हैं। किसलिए। आत्मश्लाघा के लिए ? नहीं ! हिन्दी के लिए, ब्रज के लिए, देश के लिए। उद्देश्य यह कि हिन्दी सेवी उनके चारों ओर रहे और वे हिन्दी सेवियों के बीच। उद्देश्य जितना महान, उपलब्धि उतनी ही प्रशंसनीय।

लेखन की बात आई है तो यहाँ कहना है कि आप लेखक से बढ़ कर 'लिक्खाड़' हैं। कुछ ही अन्तराल में तीन-तीन ग्रन्थ आपने हिन्दी को दिए। वे हैं—१. भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य, २. डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र और ३. प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य। एतदतिरिक्त पत्र लेखन का अभ्यास खासा है। दस बीस साहित्यिक पत्र प्रतिदिन लिखना आपके लिए साधारण सी बात है। लिखने में कोई कंजूसी नहीं। भाषण आप अच्छा देते हैं। उसमें एक अच्छा सन्तुलन भी बनाए रखते हैं। सम्पादकीय भी सन्तुलित ही लिखते हैं। भाषा प्रांजल और व्याकरण सम्मत रहती है।

संस्थाओं के संगठन करने और संचालन करने की प्रतिभा आप में अद्भुत है। लोगों के नाज-नखरे और उनकी आलोचना सुनने की क्षमता भी आप में अपूर्व हैं। जो काम ठान लेते हैं, उसे शीघ्र पूरा करने में जी-जान से जुटते हैं। ब्रज-साहित्य मण्डल के विवादास्पद भवन प्रकरण का राज्य स्तर से निस्तारण कराना किसी दूसरे के वश की बात नहीं थी। वह आपने किया। इसका श्रेय एकमेव आपके प्रयासों को जायगा। यह एक बहुत बड़ा और साहित्य के कल्याण का काम आपने किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन (द्वितीय) में आपने जीवन का संचार किया। इन दोनों के आप अध्यक्ष रहे। साहित्य की कोई सभा नहीं जहाँ आप न हों और कोई ऐसा विमर्श नहीं जहाँ आप न हों। काफी संस्थायें आपसे प्रश्रय पाती हैं।

सब से बड़ी विशेषता आपकी समरसता है। सब काल, सर्वत्र सर्वतोभावेन एक रस सस्मित वदन से सभी का स्वागत करना, विद्वानों के मध्य बैठ कर समुत्फुल्ल रहना, विद्वानोंका सत्कार आत्मीयतापूर्वक कर के सन्तोष लाभ करना, मतभेदों की स्थिति में भी हँसना, विनोदी मुद्रा में झेल जाने योग्य साहित्यिक छेड़ छाड़ करना और यदा कदा व्यंग्य की फुलझड़ियाँ छोड़ कर गोष्ठी में रंगत भरना आपके अनुकरणीय गुण हैं। सर्वोपरि निर्वैर रहना ऐसी विशेषता है, जो आपके सौम्य व्यक्तित्व को दूसरों से पृथक् ला कर खड़ा कर देती है।

आप एक सुसम्पन्न प्रतिष्ठित घराने में जन्मे, नगर में रहे, पढ़े और नगर की समाज सेवा की। परन्तु आश्चर्य इस बात का करना पड़ता है कि जनपदीय आन्दोलनों के पृष्ठपोषक और संगठक बने। कहाँ नागर-सभ्यता और कहाँ लोक मानस। किन्तु देश की नब्ज़ को पहचानने-परखने का मूल स्थान लोक मानस है। साहित्यिक भाषा की जननी लोक भाषा है। नागर संस्कृति की अग्रजा लोक संस्कृति है। अतः आपने जनपदीय भाषाओं और जनपदीय भाषा की पत्रिकाओं को प्रश्रय प्रदान किया। विश्वविद्यालयों में मोटी-मोटी धनराशियों को पा-पा कर भी हिन्दी के कितने विद्वान् हिन्दी की सच्ची सेवा कर रहे हैं। हिन्दी का खा कर हिन्दी को ही खाए जा रहे हैं। वे सोचें कि बाबू वृन्दावनदास हिन्दी के लिए क्या नहीं कर रहे। ऐसे हिन्दी सेवियों पर सैकड़ों प्राध्यापक वारिए। जय हिन्दी, जय भारत।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू वृन्दावनदास : पूर्व के क्षितिज से

आचार्य बैजनाथ राय

प्रायः लोगों से सुनने में आता है कि भारत में महापुरुषों की श्रृंखला समाप्त हो गयी, जितने नव-रत्न थे निकल गए, भारत वसुन्धरा सच्चे समाज-सेवकों एवं तत्त्वचिन्तकों से रिक्त हो गयी। तथा सभी लोकहित चिन्तक धरती से उठ गए। परन्तु मैं इन कथनों में विश्वास नहीं करता। कारण यह कि भारत-वसुन्धरा रत्नगर्भा है—केवल अर्थ की दृष्टि से ही नहीं, अपितु नर-रत्नों को जन्म देने की दृष्टि से भी। वह श्रृखला समाप्त कहाँ हुई ? न समाप्त हुई और न होगी, अभी भी हमारे देश में महापुरुषों की कमी नहीं। कमी है केवल हमारी दृष्टि की। यदि देश के स्वच्छ दर्पण में हम देखें तो ऐसे कितने महापुरुषों के गतिशील चित्र दृष्टिगोचर होंगे जो अहर्निश निस्पृह भाव से देश-हित के कार्यों में संलग्न हैं। उन्हें न किसी के दाद देने इच्छ है और न किसी के द्वारा याद किए जाने की कामना। श्री वृन्दावनदास जी उनमें से एक हैं, जिन्हें मैंने सुदूर पूर्व में रहते हुए भी बहुत समीप से देखा है, उनके व्यक्तित्व को परखा है तथा उनके कृतित्व को समझा है।

आप श्री वृन्दावन विहारी लाल के प्रवास धाम में निवास करते हुए निखिल ब्रज एवं भाषी लोक-मानस पर छाए हुए हैं—प्रभुता केवल पर नहीं, प्रभु के पद-रज के आधार पर। कवीन्द्र रवीन्द्र की कविता 'महाड़ानवेर सागर तीरे' के भावों को अपने हृदय-कक्ष में सँजोए हुए उदात्त मानवता के आप मूर्तिमान रूप हैं। त्याग, तपस्या, उदारता, सहृदयता, परोपकार, प्रगाढ़ देशभक्ति एवं राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति विशेष अनुराग आदि आपके विशेष गुण हैं। हृदय खोल कर मिलने वालों के लिए आपकी दोनों बाहें सतत उठी रहती हैं। इस स्वाभाविक मिलन में ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा तथा ज्ञानी-अज्ञानी का भेद-भाव नहीं रहता। आपके विशाल हृदय में सभी के लिए स्थान है बशर्ते कि वह सच्चा और ईमानदार हो। कृत्रिमता एवं नकाबपोशी से बाबू जी को अत्यन्त घृणा है। वे चाहते हैं कि तुम जो हो, वही बने रहो, इसी में तुम्हारी महानता है। 'मम्मी-डैडी' के भाषाडम्बर एवं अंग्रेजियत के अनुकरण से उन्हें बहुत चिढ़ है। वे चाहते हैं कि कोई देश के चाहे किसी राज्य में निवास करता हो, पहले सच्चा मानव बने और यदि व्यर्थाडम्बर का कृत्रिम खोल ओढ़े हुए हो तो उसे उतार कर अलग रख दे और तयव वह अपनी विशुद्ध मातृभाषा में बात करेता कि वह श्रुति-मधुर हो और सामान्य जन-जीवन में उसका प्रवेश हो। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि अपनी मातृभापा से प्रेम करने वाला ही राष्ट्रभाषा के महत्त्व को समझ सकता है और सच्चा मातृभाषी निश्चय ही राष्ट्रभाषा-प्रेमी होगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू जी पर माँ भारती की असीम कृपा है। उन्होंने साहित्य के साथ-साथ समाज, मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति का गहन अध्ययन किया है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति के अध्ययन केक्रम में उन्होंने प्राचीन भारत के हिन्दू राज्यों का भी गहन अध्ययन किया है और इस विषय पर उन्होंने 'प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य' एक शोधपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है, जो हिन्दी का एक गौरव-ग्रन्थ है। इस विषय से संबन्धित उनका दूसरा ग्रन्थ है 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य'। जिन लोगों ने इन ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा, निश्चय ही बाबू जी की कुशाग्र प्रतिभा एवं विषय-प्रवेश की पैनी दृष्टि से वे पूर्ण परिचित होंगे। आप जितने ऊँचे साहित्यकार हैं उतने ही ऊँचे पत्रकार भी। 'ब्रजभारती' पत्रिका सम्पादन जिस न्याय-निष्ठा एवं परिश्रम से कर रहे हैं वह किसी से छिपा नहीं है। आप स्वयं साहित्यकार एवं पत्रकार होते हुए दूसरे साहत्यकारों एवं पत्रकारों का पूरा सम्मान करते हैं। हिन्दी-गद्य को सँवारने में जिन पत्रगकारों एवं साहित्यकारों का हाथ रहा है, उनमें से कई आपके श्रद्धा के पात्र रहे हैं और जहाँ कहीं उनके संवन्ध में आपने लेखनी उठायी है, उनके सम्पूर्ण पक्षों को उजागर किया है। आप एक स्वछन्द लेखक एवं निर्भय समीक्षक हैं। 'बिनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' आपकी लेखन-कला का सुन्दर परिचायक ग्रन्थ है। इस प्रकार की आपकी कृतियाँ और भी हैं, परन्तु यहाँ उनकी समीक्षा या उल्लेख करना उद्देश्य नहीं, वरन् बाबू साहब के अन्तर का उद्घाटन करना है।

बाबू वृन्दावनदास जी को जो लोकप्रियता प्राप्त है, वह कुछ इने-गिने साहित्यकारों को ही प्राप्त होती है। साहित्य-सृजन एक पृथक् वस्तु है तथा लोकप्रिय बनना पृथक्। मेरा उद्देश्य उस लोकप्रियता से है जो जनता के हृदय-सागर से स्वतः प्रसूत भाव-भक्ति से मिश्रित होती है। ऐसी लोकप्रियता उसी को प्राप्त होती है जो अपनी उदात्तता के द्वारा लोक-अन्तर में समाया हुआ है। बाबू जी को ऐसी ही लोकप्रिप्ता प्राप्त है। यही कारण है कि वे हिन्दी के साहित्यकारों एवं ब्रजभाषा के साहित्यकारों के हृदयों पर समान अधिकार रखते हैं और इसी का सुपरिणाम है कि आज आप 'अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल' एवं 'उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन दोनों संस्थाओं के अध्यक्ष हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आपकी प्रगाढ़ श्रद्धा है। हिन्दी प्रचार व प्रसार के कार्य को आपने कर्म रूप में नहीं, अपितु धर्म रुपेण स्वीकार किया है। इस पवित्र अनुष्ठान में वे दिन-रात जुटे रहते हैं। इस सम्बन्ध में उनका दृष्तिटकोण वही है जो हमारे श्रद्धेय स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टण्डन जी का था। और यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मुझे भी जो उनके अक्षय स्नेह का भंडार प्राप्त हुआ वह विशेष इसी कारण कि एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र में मैं हिन्दी प्रचार का कार्य गत पच्चीस वर्षों से करता आ रहा हूँ। संभव है मेरे लेखन-स्तर ने भी उनकी दृष्टि मेरी ओर आकर्षित की हो, परन्तुप्रत्यक्ष रूप में तो मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ है। निस्सन्देह आदरणीय भाई डा० रामस्वरूप आर्य जी का सौहातर्द एवं सौजन्य इस प्रसंग में विस्मरण नहीं किया जा सकता, जिन्होंने दो हृदयों को सम्बद्ध करने में एक मजवूत कड़ी का काम किया और यह उन्हीं की महती कृपा का परिणाम है कि बाबू जी को इतने निकट से देखने का मुझे अवसर मिला और साथ-साथ सौभाग्य भी। एतदर्थ मैं डा० आर्य का सतत आभारी बना रहूँगा।

यह जान कर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई कि हिन्दी साहित्यकारों ने बाबू वृन्दावनदास जी का ससमारोह अभिनन्दन करने का रचनात्मक कार्यक्रम निश्चित किया है ;। इससे अच्छी बात क्या हो सकती है ? इस आयोजन के द्वारा केवल राष्ट्रभारती के सपूत का ही अभिनन्दन नहीं होगा, वरन् राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनन्दन होगा और निश्चय ही इस पुनीत आयोजन द्वारा हिन्दी का गौरव और मान बढ़ेगा। भगवान् से प्रार्थना है कि आदरणीय बन्धुवर बाबू वृन्दावनदास जी को दीर्घायु करें ताकि हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में उनका अक्षम दान एक सुदृढ़ कीर्ति-स्तम्भ तथा हिन्दी भाषा का प्रचार व प्रसार देश में ही नहीं, अपितु विश्व के कोने-कोने में हो ताकि भावी पीढ़ी उनके मार्ग-दर्शन पर चल करविश्व में अपना सर्वोच्च मानदण्ड स्थिर करने में समक्ष हो।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक कर्मण्य व्यक्तित्व

⊙

ब्रजगोपाल भाटिया

बा० वृन्दावनदास जी के परिवार से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध सन् १९१४ से ही रहा है परन्तु उन्हें निकट से समझने का सौभाग्य जब ही हुआ जबकि कुछ सार्वजनिक संस्थाओं में उनके साथ कार्य करने का सुअवसर मिला। सौजन्य, नीति-निपुणता तथा विविध विषयों की मर्मज्ञता के अतिरिक्त उनमें रुचि-पूर्वक किसी कार्य को विधिवत् एवं सफल ढंग से सम्पादित करने की जो विलक्षण प्रतिभा है वह सर्वथा अनूठी है, संस्थाओं के कार्य संचालन में आप दक्ष हैं।

मुझे गोविन्द नगर हाउसिंग सोसाइटी की कार्यकारिणी में जिसके बा० वृन्दावनदास जी सभापति और स्व० श्री केदारनाथ जी भार्गव मंत्री थे, उनके साथ कार्य करने पर अनुभव हुआ कि उनके कार्य करने की शैली अपने ढंग की है, जिससे कि मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

हिन्दी साहित्य जगत् में आपकी सेवाएँ सुविदित हैं, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल तथा उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति होने के अतिरिक्त आप मथुरा, आगरा, अलीगढ़, एटा, भरतपुर आदि जिलों के प्रायः सभी साहित्यिक समारोहों की अपनी उपस्थिति से शोभावृद्धि करते हैं। आपकी जिह्वा पर तो साक्षात् सरस्वती विराजती हैं और मस्तिष्क में विद्या का निवास है। कभी भी किसी साहित्यिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक विषय पर आप धाराप्रवाह भाषण करने में सक्षम हैं, यह आपकी बहुज्ञता एवं अध्ययनशील प्रवृत्ति का परिचायक है।

किशोर काल से ही लेख आदि लिखने का आपका सहज स्वभाव है। इस अवस्था में भी आपके लेख, टिप्पणियाँ-आलोचना आदि आये दिन समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलते हैं। वर्तमान में आप राजनीति के प्रति अल्प तथा साहित्यिक गतिविधियों में पूर्णतः अभिरुचि लेते हैं। ब्रज के साहित्यिक क्रियाकलापों के मूल में आपकी प्रेरणा अवश्य निहित होती है।

मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि आपको शतायु प्रदान करें जिससे भारत एवं भारती के भव्य भवितव्य में आपका समर्थ योगदान प्राप्त हो सके। जय जगत।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य सेवारत व्यक्तित्व

⊙

डा० भगत सिंह

एम० ए०, डी० लिट०

वैसे तो बा० वृन्दावनदास जी का नाम मैं समाचार पत्रों, ब्रज भारती एवं साहित्यज्ञों के माध्यम से सुन चुका था किन्तु विशेष परिचय मुझे अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के प्रकाशन मंत्री एवं मेरे परम मित्र डा० आनन्दस्वरूप पाठक द्वारा मिला। उन्होंने बाबूजी के अभिनन्दन के विषय में मुझसे वार्तालाप एवं परामर्श किया तथा हम लोगों ने अर्थात् भाई चंचरीक, डा० पाठक तथा मैंने मिलकर इस योजना को तैयार किया व उसकी एक रूपरेखा बनाई।

डा० पाठक के सम्पर्क से मुझे बाबूजी की अनेक कृतियों यथा "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र," "भारत के हिन्दू राज्य" आदि को देखने का अवसर भी प्राप्त हुआ है। इन ग्रन्थों में उनकी मंजी हुई लेखन शैली के दर्शन होते हैं। हिन्दी की पत्र साहित्य विधा अभी कृशकाय स्थिति में है, बाबूजी ने उसे पुष्ट बनाने में योगदान दिया है यह हर्ष का विषय है। ज्ञात हुआ है कि इस ओर वे और प्रयत्नों में भी रत हैं। बा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों का संग्रह भी प्रायः मुद्रित हो चुका है। निःसंदेह इस क्षेत्र में उनका योगदान एक प्रमाणचिह्न होगा।

सम्पादक के रूप में भी उनका अनुभव गंभीर है। लगभग एक दशाब्दि से वे 'ब्रजभारती' पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं तथा 'प्रेरक साधक' (डा० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रंथ), 'श्री युगल किशोर चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रन्थ' आदि का सफल सम्पादन भी कर चुके हैं।

आज के युग के व्यस्त जीवन में बाबूजी साहित्यिक कार्यों के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते हैं तथा मथुरा जाने वाले साहित्यज्ञों का इनके आवास पर स्वागत होता है यह तथ्य परम सन्तोषकारी है। मेरी शुभकामना है कि बाबूजी शतायु पर्यन्त साहित्य पीयूष का पान करते रहें।

●

वाग्मी और अध्ययनशील

⊙

श्रीमती वी० पी० मेरी-कुरियाकोज

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), एम० लिट० (भाषातत्व)

भारत के प्रतिरक्षा मंत्री बा० जगजीवनराम जी के अभिनन्दन समारोह में देश के लब्धप्रतिष्ठ कतिपय व्यक्ति अपनी शुभाशंसाएं अर्पित कर रहे थे उसी समय अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल और उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी का नाम श्रुतिगोचर हुआ। नाटे से कद के चश्मा धारण किए हुए छोटे से व्यक्तित्व को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह कोई सामान्य-सा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनुष्य हैं। जनता को आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने धारावाहिक रूप से स्वल्पाक्षरों में अपने अभिस्तवन को बड़ी संयत और अवसरानुकूल साहित्यिक भाषा में जनता को प्रस्तुत किया। सभी श्रोतागण मंत्र-मुग्ध भाव से उनके भाषण को सुनते रहे तथा दिल्ली के इस उच्चस्तर के मंच पर उनके सहज और स्वाभाविक भाषण देने की वाक्क्षमता से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा में अपने उद्गार व्यक्त करने लगे। स्वयं महामना राष्ट्रपति श्री गिरि ने भी बा० जगजीवन राम जी से उनके कान में बाबूजी के विषय में पूछा तथा उनके मुख से इस भाषण के प्रति सन्तोष एवं इस व्यक्तित्व के प्रति सहज आकर्षण के भाव ही व्यक्त हो रहे थे।

जिस समय बाबूजी भाषण देने को खड़े हुए तो मेरे निकट बैठे हुए बा० जगजीवनराम अभिनंदन ग्रंथ के संपादक डा० आनन्द स्वरूप पाठक ने बताया कि वे ब्रजजनपद के साहित्यिक और सांस्कृतिक यज्ञों के पुरोधा हैं। उनकी वाग्मिता और अध्ययनशीलता भाषण, लेखन एवं बातलाप में सुन्दर और मनो-ग्राही रूप में अभिव्यंजित होती है।

हिन्दीप्रेमी चाहे वे हिन्दी प्रदेश के हों अथवा मेरी भाँति दक्षिण प्रदेश के या भारतेतर देश से सम्बन्धित हों जैसे श्री चेनिशोव आदि सभी के प्रति उनका स्नेह भाव रहता है। उनकी मान्यता है कि ब्रजभाषा की उन्नति हिन्दी की उन्नति की साधक है उसकी उन्नति में बाधक कदापि नहीं।

प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसा उदारचेता और महामना व्यक्तित्व शताधिक वर्षों तक हिन्दी और ब्रज भारती के कोष की श्रीवृद्धि करता रहे।

●

नवीन लेखकों के निर्माता

⊙

डा० नारायणदास गुप्त
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करना बड़ी टेढ़ी खीर है। सम्पादक को बड़े संयत विचारों वाला तथा आग्रहविमुक्त होना पड़ता है। यदि कहीं पत्र क्षेत्रीय भाषा का हो तो सम्पादक का उत्तरदायित्व द्विगुणित हो जाता है। कारण सुस्पष्ट है कि उसे उन्हीं लेखकों एवं आलोचकों के बीच ही रहना पड़ता है जिसके विषय में वह अपनी लेखनी को चलाता है। लेखों के चयन करने की बात तो अत्यन्त कठिन समस्या है। प्रत्येक लेखक यह चाहता है कि उसके लेख को अवश्य ही छाप दिया जाये, ऐसे विवेकी लेखकों की संख्या तो अत्यल्प होती है जो अपने लेख का छपना न छपना, संशोधन या सम्पादन सम्पादक पर छोड़कर अपनी इतिकर्तव्यता मान लेते हैं। वास्तविक स्थिति यह होती है कि सम्पादक को अनेक बार ऐसे धर्मसंकट में भी पड़ना पड़ता है कि उसे ऐसे लेख मिल जाते हैं जो या तो उस पत्रिका में उस लेख के आने के पूर्व छप चुके हैं अथवा उस पत्रिका के क्षेत्राधिकार के बाहर के हैं अथवा लेखक की सामग्री उस

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

स्तर की नहीं है जितनी अपेक्षित है, उस विषय पर सम्पादक ने प्रस्तुत लेखक से उत्कृष्टतर रचनाएँ या शोध-प्रबन्ध देखे हैं, फिर ऐसी स्थिति में सम्पादक की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। पर बा० वृन्दावनदास जी इन सभी परिस्थितियों में एक मध्य मार्ग निकालना भी जानते हैं जो गुण अन्य सम्पादकों में नहीं होता।

बा० वृन्दावनदास जी के ब्रज भारती के सम्पादन में यह विशिष्टता है कि जहाँ वे पुराने या उच्च-कोटि के लेखकों को महत्व देते हैं वहाँ वे नई पीढ़ी के लेखकों को चाहे वे लेखक के उच्चस्तर तक न भी पहुँच पाए हों, प्रोत्साहित करते हैं। अनेक बार तो उन्हें ऐसा भी कहते हुए सुना गया है कि यह बहुत उत्साही युवक है अगर प्रोत्साहन मिला तो अच्छा लिखने लगेगा। उनका मत है कि छपास का रोग तो सभी युवकों को होता है। पर सर्वतोभावेन वे पत्रिका का स्तर बनाए रखने के लिए उच्चस्तर की सामग्री भी अनिवार्य रूप से रखते हैं। विगत आठ नौ वर्ष के उनके द्वारा सम्पादित अंकों से देखा जा सकता है कि प्रत्येक अंक में प्रथम, द्वितीय और सामान्य श्रेणी के लेख होते हैं। सामान्य श्रेणी के लेखों को पत्रिका में प्रकाशित करने का एकमात्र उद्देश्य बाबू जी के शब्दों में 'नवीन लेखकों' को प्रोत्साहन देना है। बाबू जी का कथन है कि तीसरे-चौथे लेख से ही उत्साही लेखक में सुधार आ जाता है और वह उत्तरोत्तर उन्नति करता है। हिन्दी में आज ऐसे सम्पादकों की कमी है। जो लेखकों का निर्माण करना अपना कर्तव्य समझते हैं। बाबूजी लेखकों के निर्माता हैं, ब्रजभारती के माध्यम से उन्होंने अनेक लेखक उत्पन्न कर दिए हैं, नई-नई प्रतिभाओं को सृजन के पथ का अनुगामी बनाया है। वस्तुतः वे लेखकों के प्रजापति हैं।

मैं ऐसे सद्भावी सम्पादक प्रवर को अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ।

●

शिव संकल्पवान

⊙

रामप्रसाद 'कमल'

एम० काम०, एल-एल० बी०

मथुरा नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते बाबूजी यों तो सभी सदस्यों से मित्रवत भाव रखते रहे हैं, पर विशेष रूप से उनका मेरे प्रति सहज अनुराग एवं विश्वास नगर में चर्चा का विषय बना रहा है। इस विषय में तो मात्र इतना ही कह सकता हूँ कि यह उनकी सहृदयता है, मैं तो स्वयं में ऐसा कोई अद्भुत गुण नहीं पाता हूँ। हाँ, बाबूजी के गुणों को अवश्य मुझे निकट से देखने का सौभाग्य मिला है, राजनीति के तो वे निष्णात पंडित हैं, कठित से कठिन परिस्थितियाँ जिसका पूर्वाभास पाते ही अच्छे-अच्छे लोग थर्रा जाते हैं बाबूजी को उनका सामना निर्भयता से करते हुए मैंने देखा है और सफलता को उनके चरणों का चुम्बन करते हुए पाया है। भयंकर विरोधी भी उनके समक्ष मंत्रों से कीलित सर्प की भाँति बैठा रहता है, अनायास ही कूटनीति के दावपेचों को निष्फल करना उनकी वाक्विदग्धता का सहज गुण है। नगर का चाहे प्रबुद्ध वर्ग हो चाहे उद्धत वर्ग, विकसित समाज हो या पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक सभी को बाबूजी में स्वकीयता के दर्शन होते हैं। चुनाव के दिनों में प्रबल विरोधियों को

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दो क्षण में पक्षपोषक बना लेने की मोहिनी शक्ति उनमें अद्भुत है। मैं उन्हें नगर का एक सफल एवं यशस्वी राजनीतिज्ञ एवं राजमर्मज्ञ मानता हूँ तथा जनता के सभी वर्ग उन्हें अपना हितैषी समझते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा और भी उत्कृष्टतर सिद्ध हुई। जहाँ उन्होंने सहस्रों पृष्ठ लिखे हैं वहाँ उन्होंने नये लेखकों को प्रेरणा प्रदान कर सहस्रों पृष्ठ लिखवाये भी हैं। जो लेखक उनके संपर्क में आ गया वह उनका अपना हो गया। ब्रज क्षेत्र के ही सैकड़ों नवयुवकों को उन्होंने लेखन में दक्ष बना दिया, उनकी इस विशेषता को ब्रज तक ही सीमित रखना अनुचित होगा। सच तो यह है कि सारे भारत के उदीयमान लेखक बाबूजी की सहृदयता के पात्र बनते हैं तभी ब्रजभारती में कभी कोई लेख दक्षिण भारत के लेखक का होगा तो कभी किसी मुस्लिम लेखक का, कभी बिहार के प्रतिभाशाली लेखक का लेख होगा तो कभी राजस्थान, मध्यप्रदेश या देश के किसी अन्य राज्य के लेखक का। उदीयमान प्रतिभाओं को प्रश्रय देकर उन्हें लेखन के प्रति उन्मुख करना आपकी साहित्यिक गतिविधि का विधायक पक्ष है। उनकी मान्यता है कि साहित्य मात्र 'स्व' की वस्तु नहीं है न 'पर' की प्रशंसा अर्जन करने या उसे प्रसन्न करने की ही वह तो 'परस्पर' की वस्तु है, उनके इस उच्चादर्श के समक्ष अनेक अहंमन्य लेखक उनके समक्ष बौने प्रतीत होते हैं। उनके साहित्यिक यश का परिसर दिन प्रतिदिन विस्तीर्ण होता चला जा रहा है।

सभा-संस्थाओं के तो बाबूजी प्राण हैं। जिस मंच पर वे आसीन हो जाते हैं वाणी वैभव का विलास श्रुतिगोचर होता है। अनुभव के गम्भीर सागर से अनेक रत्न जिन पर ज्ञान की ओप चमचमाती है, निकलते चले आते हैं। उनके विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि वे वास्तव में गुणी हैं, उनकी वाग्मिता अध्ययन और ज्ञान गंभीरता की परिचायक है।

बाबूजी के कार्यकलाप का स्तर यह है कि उनका कोई भी कार्य किसी के अहित की भावना से प्रेरित न होकर सबके हित की भावना से होता है तथा उनके संकल्प शिव और शुभ होते हैं।

ब्रज साहित्य मंडल के कार्यों में मैंने देखा है कि काम में आगापीछा उन्हें पसंद नहीं। वे मानते हैं कि अनावश्यक आशंकाएँ, बे-जरूरी तर्क और अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने में हिचकिचाहट सार्वजनिक जीवन में बंधन का काम करती है। बाबूजी इन बंधनों से मुक्त हैं, दृढ़ संकल्प, व्यावहारिकता और स्पष्ट नीति आपके चरित्र के गुण हैं। ब्रज साहित्य मंडल के संस्थापकों एवं प्राचीन कार्यकर्ताओं को जहां नींव के पत्थर की उपमा दी जाती है वहां बा० वृन्दावनदास जी को ब्रज साहित्य मंडल का स्थपति कहना अत्यन्त सटीक है।

मैं ऐसे शिवसंकल्पवान साहित्यज्ञ के दीर्घायुष्य की शतशः कामनाएँ करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विपश्चित साधक

⊙

डा० रघुवीरशरण 'व्यथित'
एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रजभारती के माध्यम से बा० वृन्दावनदास जी के व्यक्तित्व को आँकने का अवसर तो प्रायः मिलता ही रहा है पर और निकट से उन्हें समझने का अवसर प्राप्त करने की उत्सुकता तब जाग्रत हुई जब मेरे मित्र डा० आनन्दस्वरूप पाठक ने वल्लभ विद्यानगर में मेरे पास उनके अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए योजना बनाने विषयक पत्र भेजा था। वहां हिन्दी स्नातकोत्तर विभाग का प्राध्यापक होने के नाते जब अन्य साथियों से इस विषय में वार्तालाप होने लगा तो ज्ञात हुआ कि बा० वृन्दावनदास जी की मूक साधना से यहाँ की विद्वान् मंडली भी सुपरिचित है। अचानक उन्हें पत्र लिखने की प्रेरणा हुई और उनके उत्तर भी प्राप्त हुए। यों तो जीवन में अनेक पत्र पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है पर बा० वृन्दावनदास जी की पत्रलेखन शैली में स्वकीयता का भाव प्रति शब्द से निःसृत होता है। प्रथम पत्र में ही उनकी स्नेह-प्रवण भाषा ने मुझे इस प्रकार प्रेमरज्जु में बांध लिया कि वरवश दूसरा पत्र भी लिखना पड़ा। इतना ही नहीं दूसरे पत्र के उत्तर के पश्चात् तो मैं उनके दर्शनार्थ स्वयं मथुरा जा पहुंचा पर उनके अचानक बाहर चले जाने से उनके दर्शनलाभ से वंचित रहा। अभी ऐसे साहित्यानुरागी पुरुष के साथ सत्संग की बलवती इच्छा बनी हुई है। मैं समझता हूँ कि सुपुण्यों के उदय पर ही ऐसे महानुभावों के सान्निध्य में आया जा सकता है।

उनके ब्रजभाषा प्रेम, हिन्दी हितैषिता, जनपदीय आंदोलन के प्रति जागरूकता, पत्र साहित्य के प्रकाशन एवं लेखन के प्रति महती रुचि भारतीय इतिहास के लेखन की प्रवीणता आदि प्रपुंज गुणों से हिन्दी का भंडार पूरित हो रहा।

मैं ऐसे महामना विपश्चित के लिए अपनी प्रणामांजलि निवेदित करता हूँ।

●

मंडल के अग्रणी

⊙

रामेश्वरदयाल उपाध्याय

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल से लगभग बीस वर्षों से निकट से सम्बन्ध होने के कारण ब्रज एवं ब्रजी संस्कृति तथा भाषा के उन्नायकों, हितैषियों एवं साहित्य एवं संस्कृतिविदों के सम्पर्क में आने के सुअवसर प्रायः आते रहे हैं। मुझे स्मरण आता है कि एक दिन अनायास ही ब्रज साहित्य मंडल

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के मंत्री मेरे अनन्य मित्र श्री जगदीश चतुर्वेदी ने अन्तरंग रूप से परामर्श किया कि मंडल की गतिविधियों में स्फूर्ति लाने के लिए बा० वृन्दावनदास जी का सहयोग प्राप्त किया जाये। योग कुछ ऐसा बना कि बाबू जी को मंडल का अध्यक्ष बनाया गया तथा इन्होंने मंडल की मुखपत्रिका ब्रजभारती का संपादन भी अपने नियन्त्रण में रखकर उसका निरन्तर अबाध रूप से प्रकाशन करने का वचन भी दिया। उनका वचनों के प्रति प्रतिबद्धता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि आजतक उसी समय से ब्रजभारती के अंक समय पर बिना विलम्ब के निकलते रहते हैं।

बाबू जी के मंडल के अध्यक्ष बनते समय मंडल के सामने ज्वलन्त प्रश्न मंडल के भवन के लिए स्थान अधिग्रहण का था। बाबूजी ने इस प्रश्न के प्रति अपनी रुचि का ही प्रदर्शन नहीं किया अपितु कटि-बद्ध होकर इस दुष्कर कार्य में संलग्न हो गये। वर्षों के प्रयत्नों के उपरान्त भी वे आशा निराशा की स्थितियों में हिचकोले खाते हुए भी प्रयत्नों से विरत नहीं हुए। संयोग से उन्हें श्री जुगलकिशोर जी चतुर्वेदी जैसे महामंत्री मिल गये तथा मन्त्रिमंडल में भी डा० आनन्दस्वरूप पाठक, श्री कन्हैयालाल चंचरीक, डा० किशन-लाल, श्री रामप्रसाद कमल जैसे सहयोगी मिले और वर्षों से निलम्बित कार्य जो गिरिराज पर्वत के उठाने की भाँति कठिन था इन सभी बन्धुओं के प्रयत्न एवं श्रेष्ठि श्री गंगादास जी झबर की उदार दानशीलता से सम्पन्न हो गया। ब्रज साहित्य मंडल के प्रति बाबूजी का स्नेह अपार है मंडल को किसी प्रकार की हानि की कल्पना भी उन्हें सालती है। वे पूरी लगन एवं निस्वार्थ भाव से मंडल की सेवा करते हैं।

गाजियाबाद सम्मेलन के समय बाबूजी की नीतिपटुता देखने का अवसर मिला। अपने कुछ बन्धुओं के सहयोग से हमने गाजियाबाद में ब्रजसाहित्य मंडल का अधिवेशन करने का निमन्त्रण दिया था जिसका उद्घाटन तत्कालीन डाकतार मंत्री डा० रामसुभग सिंह ने किया था। उस समय कुछ बातों पर एक-दो साथियों में मतवैभिन्य हो गया था पर बाबू जी ने सम्मेलन के दोनों दिनों में ऐसा नियन्त्रण रखा कि कहीं भी किसी को इस बात की गन्ध तक न मिल पाई और वह क्षणिक बात समय के गर्त में विलीन हो गई तथा उनकी नीतिमत्ता से सम्मेलन पूर्णतः सफल हुआ। इस प्रसंग में स्व० हीरालाल जी का पुण्य स्मरण हो आता है, वे तो मंडल के लिए कल्पवृक्ष थे। गाजियाबाद के सभी कार्यक्रमों को तो वे संभालते ही थे, साथ ही मंडल की तन-मन-धन सभी प्रकार से सेवा करने में तत्पर रहते थे। उन्होंने भी सम्मेलन को सफल बनाने के लिए सभी प्रयत्न किये।

साहित्य के क्षेत्र में बाबूजी की गतिविधियाँ उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रहीं और आज वे उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी अध्यक्ष हैं। आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी विद्वानों ने प्रशंसा की है। मेरी कामना है कि बाबूजी अनेक वर्षों तक साहित्य की और विशेष रूप से अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल की सेवा करते रहें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सत्यवाक्य एवं दृढ़व्रती

डा० सोहनलाल शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

सरस्वती एवं लक्ष्मी का वरद पुत्र होना तो ईश्वरीय देन है, पर मानवीय उत्कृष्ट गुणों का होना व्यक्ति को महामानव की श्रेणी में ले आता है। धन और विद्या के आधार पर व्यक्ति निश्चित ही उच्चस्तर का बनता है। सामान्य सामाजिक के स्तर से ऊपर अधिष्ठित होता है किन्तु एक आदर्श मानव में भारतीय संस्कृति के अनुरूप विशिष्ट गुणों का होना अनिवार्य है। बा० वृन्दावनदास जी वयोवृद्ध होने के साथ ज्ञानवृद्ध, लक्ष्मीवृद्ध तो हैं ही साथ ही मानवीय उत्कृष्ट गुणों का समाहार उनमें साकार हो गया है। उनमें दो गुण मुझे पराकोटि को पहुँचे हुए दृष्टिगोचर हुए हैं। वे अपने वचनों के बड़े पक्के हैं, बड़े समझ-सोचकर किसी बात के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, यदि वे किसी उद्देश्य या कार्य के प्रति वचनबद्ध हो जाते हैं तो उसे पूर्ण करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। उनकी यह प्रवृत्ति मात्र उद्देश्य या कार्य तक ही सीमित नहीं, प्रत्युत उनके स्नेही जन भी उनकी इस प्रवृत्ति के भाजन बनते हैं। अपने परिसर के व्यक्तियों के प्रति प्रतिबद्धता उनकी मैत्री का अभिन्न अंग है। ब्रजभारती परिवार में सम्मिलित करने से लेकर सभी साहित्यिक एवं अन्य आयोजनों तक में उनके सिद्धान्त के अनुसार उनके साथियों सहयोगियों सहकर्मियों एवं सहभागियों का होना अनिवार्य होता है। जिस सभा–संस्था से बाबूजी का सम्बन्ध हो जाता है उसमें उनके सभी अंतरंग मित्रों का नाम स्थायी आमंत्रित जनों की सूची में हो जाता है फलतः वे सभी संस्था-विशेष के पोषक एवं समर्थक हो जाते हैं। बाबू जी का अपने कर्तव्यों उद्देश्यों एवं अपने परिवार के व्यक्तियों के प्रति सत्यनिष्ठ होना सुविदित है। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल की मुखपत्रिका का सुनिश्चित समय निर्बाध प्रकाशन उनकी इसी वचनबद्धता का सुपरिणाम है तथा उनकी कर्तव्यनिष्ठा और दृढ़ प्रतिज्ञता का परिचायक है। इसी दृढ़ता के फलस्वरूप ही ब्रज साहित्य मंडल के भवन के लिए स्थापना स्थल अधिग्रहीत किया जा सका जिसमें भगीरथ प्रयत्नों के साथ-साथ विपुल धनराशि की समस्या भी निहित थी। इस समस्त कार्य की पूर्ति में एक प्रेरक एवं अदम्य उत्साही व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो ब्रज साहित्य मंडल को बाबूजी के रूप में सहज उपलब्ध था; अतः "तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम": के अनुसार श्री और विजय सुनिश्चित थी। सरस्वती एवं सरस्वती के वरदपुत्रों के अर्चक बा० वृन्दावनदास जी के लिए वैदिक शब्दों में "अदीना स्याम शरदः शतम्" अर्थात् अदीन भाव से वे शत वर्षों पर्यन्त जीवित रहें, यही कामना करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पुनीत संकल्पवान

⊙

आनंदशंकर माधवन

अखिल भारतीय व्रज साहित्य मण्डल तथा व्रज भारती के माध्यम से बा० वृन्दावनदास जी क्या चाहते हैं इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वे हिन्दी में अनेक व्यासों का आह्वान करते हैं, सूर, तुलसी, केशव, भारतेन्दु के आविर्भाव के इच्छुक हैं और हिन्दी को विश्व की मूर्धन्य भाषाओं में देखने की उनकी बलवती इच्छा है।

वे व्रज, व्रजभाषा और साहित्य के उपासक हैं। व्रजभूमि का महत्व अलौकिक है। उस पृथ्वी का स्वर सनातन है। उसका संदेश सर्वत्र प्रसारित है। कतिपय विपथगामियों का स्वर उसे दबा नहीं सकता है। बाबूजी ने उस अमर अलौकिक संदेश को समझा है उसका मनन और चिंतन किया है तथा उनके प्रत्येक कार्य में उसका प्रतिफलन भी होता है।

सार्वजनिक उत्तरदायित्व अनुभव करना जाग्रत चेतना का काम है। चेतना साधना से जगती है। जाग्रत चेतना का नाम ही प्रतिभा है। बाबूजी प्रतिभाशाली हैं। वे साहित्य साधना की पावन भागीरथी जनमानस में बहाना चाहते हैं। उनके आदर्श उच्च हैं, संकल्प पुनीत हैं। मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

ऋषिकल्प व्यक्तित्व

⊙

डा० कृष्णकुमार गोस्वामी

एम० ए०, पी-एच० डी०

ऋषि का अर्थ द्रष्टा होता है जिसे भविष्य की दृष्टि होती है अथवा किसी भी वस्तु घटना आदि के पूर्वापर का जो यथातथ्य ज्ञान रखता है वही ऋषि है। सम्यक् ज्ञान सम्यक् बुद्धि से होता है। सम्मीचीनता की इस आधार भूमि पर पहुंचने वाले महाप्राण मानव, देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि आदि विशेषणों से अभिमंडित होते हैं। आज के युग में यद्यपि हम किसी को इन विशेषणों से अलंकृत नहीं करते इसके पीछे मात्र हमारी धार्मिक आस्था ही अवरोधक होती है किन्तु यह कहना कि साम्प्रतिक युग में ऐसे सम्यक् ज्ञानवान या द्रष्टा नहीं होते नितांत भ्रामक धारणा है। वास्तविकता तो यह है कि पुराकाल के सीमित समाज एवं सीमित ज्ञान के समय की अपेक्षा आज के विस्तीर्ण समाज एवं ज्ञान विज्ञान के समय में अनेक प्रतिभाएँ अवतरित होती हैं जिन्हें हम प्राचीन शब्दावलि में राजर्षि ब्रह्मर्षि आदि न कह कर सीमित और निश्चित अर्थवाले शब्दों से अभिहित करते हैं। बा० वृन्दावनदास जी भी सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में ऐसे ही दुर्लभ चरित्रवान व्यक्ति हैं। सर्वजनीन कार्यों के प्रति जिनके जीवन के क्षण

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

क्षण अर्पित रहे हैं और रहते हैं। उनकी सम्यक् दृष्टि का ही यह फल है कि सभी वर्गों के लोग उन्हें अपना हित संवाहक मानते हैं। मुस्लिम सम्प्रदाय में जहाँ उनके घनिष्ठ मित्र हैं वहाँ पिछड़े वर्ग एवं अनुसूचित जातियों में भी उनके अभिन्नहृदय मौजूद हैं। वैश्य सम्प्रदाय के तो वे शिरोमणि हैं, तथा ब्राह्मण वर्ग उनका प्रशंसक है निष्कर्षतः वे समाज के प्रत्येक वर्ग के श्रद्धाभाजन हैं।

बाबूजी समाज व्यवस्था के भविष्य को प्रारंभ से ही जानते हैं, समाज सुधारक के रूप में उनके लिखे हुए अनेक लेख उनकी सम्यक् दृष्टि एवं सम्यक् ज्ञान के द्योतक हैं। सम्यक्द्रष्टा के रूप में उन्हें ऋषिकल्प कहना सर्वथा उचित है। साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी के हित सम्पादन की भावना से ब्रजभाषा के कार्य को अग्रसर करना उनकी इसी सम्यक् दृष्टि का ही परिणाम है।

मैं उनका आदरपुरस्सर अभिनन्दन करता हूँ।

●

विद्या-व्यसनी वरिष्ठ

⊙

ठाकुरदास

एम० ए० (हिन्दी, अर्थशास्त्र), एम० लिट० (भाषाशास्त्र)

ज्ञान का क्षेत्र सुविस्तृत एवं विशाल है, मानव आजीवन प्रयत्न करने के उपरान्त भी यह अनुभव करता है कि वह ज्ञान के अथाह और विस्तीर्ण सागर के तट पर बैठा हुआ सीपियां चुन रहा है, वैसे गंभीर समुद्र में गहरे पैठकर मणियों के चयन करने का सुयोग तो उसे मिला ही नहीं है। प्रत्येक ज्ञानपिपासु की यही स्थिति होती है। जबकि किञ्चिज्ञ अपने अल्पज्ञान पर द्विपइव मदान्ध हो उठते हैं। बा० वृन्दावनदास जी भी इस विपुल ज्ञानराशि में से कुछ प्राप्त करने को सदैव सयत्न रहते हैं। उन्होंने इसके लिए वैसा ही वातावरण भी अपने चहुंओर निर्माण किया हुआ है। लिखने पढ़ने और बोलने का उनका अभ्यास पुराना है।

वयस्कता की सीमा रेखा में पदार्पण करते ही बाबूजी का स्थान जहाँ पढ़ने की ओर रहता था वहाँ उनका मन लिखने में भी अत्यधिक रमता था। माधुरी, सुधा, विशालभारत, विश्वमित्र, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जनार्दन, संगठन, चांद, सरस्वती, सैनिक, अमर उजाला, ब्रजभारती आदि में उनके लेख प्रायः मुद्रित हुए हैं। आज भी लेखन के प्रति उनकी रुचि उतनी ही है जितनी कि प्रारंभ में थी। भारतीय संस्कृति के परिदृश्य, भारत के हिन्दूराज्य, बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्रसंग्रह, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का पत्रसंग्रह आदि का सम्पादन संकलन एक मनस्वी का ही कार्य हो सकता है। हिन्दी लेखन में जहाँ लेखक को धनागम की तनिक भी आशा नहीं होती वहाँ इतना बड़ा कार्य करना व सहस्राधिक पृष्ठ लिखकर उनको मुद्रित कराना एक बड़े सेवाव्रती के हिमाचल सदृश धैर्य का ही परिचायक है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वे एक सिद्ध वाग्मी हैं। भाषणकर्ता के रूप में वाबूजी को प्रतिभासम्पन्न वाग्मी कहना अत्युक्ति न होगा। अ० भा० व्रज साहित्य मंडल की कार्यसमिति का सदस्य होने के नाते मंडल के गाजियावाद अधिवेशन में मुझे वावूजी की वाग्मिता का परिचय मिला, उनके भाषण साहित्यिक ज्ञानगरिमा से मंडित होते हैं और सहज स्वाभाविक भाव से उनके मुख से अजस्र वाक्प्रवाह निकलता रहता है।

एक सफल नेता के गुण उनमें विद्यमान हैं, वड़े से वड़े विरोध को ये एक क्षण में समाप्त करने की क्षमता रखते हैं। एक सरस सहृदय साहित्य श्रोता के रूप में उनकी साहित्यिक अभिरुचि दर्शनीय एवं आदर्श है। मुझे स्मरण है कि गाजियावाद सम्मेलन के समय आयोजित कवि सम्मेलन में अर्धरात्रि पर्यन्त वड़ी रुचि से वे कवियों की कविता का पाठ सुनते रहे। व्रज साहित्य की कवि गोष्ठियों तथा पढ़न्त सम्मेलन आयोजित करने और उनमें सरल हृदय श्रोता के रूप में आनन्द निमग्न होने का उनमें अद्भुत गुण है। वावूजी स्वयं कवि तो नहीं पर उनको कवि का संवेदनशील हृदय अवश्य मिला है।

हमारे व्रज साहित्य मंडल के तो वे वरिष्ठ नेता हैं, अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण के इस पुनीत यज्ञ में मैं भी यह चाहता हूँ कि : "अर्चना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा **मिला लो**"।

●

प्रबुद्ध एवं सजग लेखक

⊙

कु० भारती दत्ता

एम० ए० बी० एड०

व्रजभारती के सुख्यात सम्पादक बा० वृन्दावनदास जी का अभिनन्दन वस्तुतः एक कर्मठ एवं निस्पृह साहित्य सेवी का अभिनन्दन है। अल्पकाल में ही हिन्दी साहित्य के पत्रकारिता क्षेत्र में वावू जी ने जो यश अर्जित किया है यह उनकी साहित्यिक अभिरुचि, दत्तचित्तता तथा मनोयोग का सुफल है। आपकी यह विशेषता है कि जिस गति एवं उत्साह से आप अपनी युवावस्था में पत्र-पत्रिकाओं में लिखते थे उसमें निरन्तर वढ़ोतरी हुई है। प्रौढ़ होने पर भी उनकी लेखनी यौवन से अछूती नहीं। प्रत्येक वर्ष एक दो नवीन रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित होती ही रहती हैं।

आपकी एक दूसरी विशेषता यह है कि आप एक ओर पुरानी पीढ़ी के आदर्शवादी छोर को छूते हैं वहाँ दूसरी ओर आपकी भावुकता अपने आधुनिक परिवेश में आजकल के रोमान्टिक नवयुवकों को भी अभिभूत किये रहती है। वावूजी की भाषा साहित्यिक होते हुए भी सरल होती है। आपके विचार नये से नये विषय को छूते हुए भी मूर्तरूप से भारतीय संस्कृति के प्रतीक होते हैं। आपका मत है कि भारतीय संस्कृति मूलरूप से सार्वजनीन आत्मीय एकता की ओर इंगित करती है।

आपकी तीसरी विशेषता यह है कि केवल साहित्य सृजन में ही नहीं हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार में भी आपका योगदान रहा है। उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन अ० भा० जनपद परिषद एवं अ० भा० व्रज साहित्य मंडल के द्वारा हिन्दी क्षेत्रों में तथा पुरस्कार आदि द्वारा हिन्दीतर क्षेत्रों में आप हिन्दी संवर्धन के कार्य में सक्रिय रहे हैं। मैं सरस्वती के कर्मठ वरद पुत्र के दीर्घायुष्य की कामना करती हूँ। व्रजभाषा साहित्य के साधक को मेरा प्रणाम उनका हार्दिक अभिनन्दन।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विद्यावृद्ध एवं अभिनन्दनीय

डा० शिवाशंकर पांडे
एम० ए०, पी-एच० डी०

भारतीय संस्कृति का आप्तवाक्य है कि अभिवादनशील मनुष्य की आयु विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है। अतएव अभिनन्दनीय पुरुषों का अभिनन्दन करने में अभिनन्दनकर्ताओं का श्रेय निहित है। बड़ों के प्रति आस्था के दो शब्द कहना या लिखना स्वयं को बड़प्पन की ओर अग्रसर करना है। जिसमें बाबू वृन्दावनदास जी तो ब्रजभाषा साहित्य के परम् सेवक एवं ब्रज के रिक्थ के रक्षक एवं पोषक हैं। उनका अभिनन्दन तो होना ही चाहिए। उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों एवं सम्पादित ब्रजभारती पत्रिका से उनके गुण स्वतः व्यक्त हैं। मैं ऐसे वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध साहित्यज्ञ का आस्थापूर्ण अभिनन्दन करता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे साहित्य आराधना के यज्ञ को शताधिक वर्षों तक करते रहें।

●

आदर्श प्रतिवेशी

राधागोविन्द जोशी

निकट के निवासी ही किसी व्यक्ति की अच्छाइयों और त्रुटियों से भली भाँति सुपरिचित हो सकते हैं। प्रतिक्षण पास में रहने के कारण वे उसके आचार व्यवहार व्यवसाय सद् और असत् प्रवृत्तियों तथा उसके परिकर के व्यक्तियों का सम्यक् ज्ञान रखने में समर्थ होते हैं। बहुधा देखा गया है कि दूर से आकर्षित व्यक्तित्व वाले अनेक तथाकथित महापुरुष अपने पड़ोसियों की दृष्टि में हेय एवं घृणार्ह होते हैं पर बा० वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व इस दोहरे रंग का नहीं है। उनमें शालीनता है, सौम्यता है बचकानेपन की बेसर पैर की बातें उन्हें नहीं रुचतीं और न ही वे आत्मश्लाघा में झूठे बायदे करने के ही अभ्यासी हैं। नगर का प्रत्येक व्यक्ति उनसे निस्संकोच वार्तालाप कर सकता है। बाबूजी की विशेषता है कि वे वार्तालाप करने वाले के मन को जीत लेते हैं तथा उसे प्रतीत होता है कि वे एक निश्छल व्यक्ति से बातें कर रहा है। स्पष्टवादी वे इतने हैं कि यदि किसी कार्य के करने में वे स्वयं को अक्षम पाते हैं तो स्पष्ट रूप से नकारात्मक उत्तर दे देते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में तो दूर-दूर तक उनके नाम की दुन्दुभी बजती है। अभी हाल ही में वे हिन्दी में तुलनात्मक समालोचना के प्रवर्तक पं० पद्मसिंह शर्मा के शताब्दी समारोह की अध्यक्षता करने हरिद्वार में पधारे थे तथा इस अवसर पर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ के सम्पादन में भी आपका पूर्ण योग रहा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'साहित्यालोक' ने बाबूजी पर एक विशेषांक भी प्रकाशित किया है। लिखाड़ तो आप प्रारंभ से ही हैं आपने अनेक लेखों, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के लेखन एवं सम्पादन द्वारा सरस्वती के भंडार की वृद्धि की है।

मेरे परिवार के तो वे अत्यन्त निकटस्थ हैं यदि यह कह दिया जाये कि वे मेरे परिजन ही हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। मेरे पितामह पं० गजाधर जी सरदार के प्रति उनके मन में सदैव श्रद्धा भावना रही तथा वे भी बाबूजी के आबालवृद्ध समग्र परिवार को अपने परिवार का जन ही मानते रहे। हरिद्वार में जब कभी बाबूजी आते हैं वे अपनी समझ कर दर्शन अवश्य देते हैं। यह उनका बड़प्पन ही नहीं हमारे ऊपर स्नेह है। मैं कामना करता हूँ कि उनके सहस्राभिनन्दन किये जायें।

●

अहर्निशं सेवामहे

⊙

डा० शंकरलाल चतुर्वेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०

आज के आपाधापी के युग में, तथाकथित महान लोग सेवा के अवगुंठन में आत्मसेवालीन रहने में अपना हित समझते हैं। भौतिक दृष्टि से यद्यपि यह हितावह है पर भारत जैसे परमार्थ प्रिय देश में इस प्रवृत्ति को कभी आदर्श नहीं माना गया वरन् सदैव हेय दृष्टि से ही देखा गया है। त्यागी और निःस्वार्थ वृत्ति के ऋषियों तपस्वियों और मुनियों की परम्परा के व्यक्तित्वों का आज भी भारत में अभाव नहीं है। इस प्रकार के उदारचेता महामना व्यक्तित्वों के निस्वार्थ और निष्काम भाव से आगामी पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण करती है तथा इन्हीं की त्याग तपश्चर्या के बल पर राष्ट्र उर्जस्वित और वर्चस्वी होता है। बा० वृन्दावन दास जी भी इसी परम्परा में आते हैं। उन्होंने अपने सक्रिय जीवन की एक अर्धशताब्दी, सेवा कार्यों में लगाई है। सामाजिक राजनैतिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रों में उन्होंने जी लगाकर कार्य किया है, वे स्वयं को नेता न मानकर एक छोटा-सा कार्यकर्ता मानते हैं। प्रत्येक कार्य को स्वयं करने के लिए सन्नद्ध रहते हैं। 'ब्रजभारती' के सम्पादन को ही ले लीजिए वे विद्वानों से सम्पर्क साधने, उनसे लेख प्राप्त करने उनका सम्पादन करने, प्रूफ पढ़ने आदि का कार्य स्वयं ही करते हैं। उन्हें किसी भी कार्य के करने में कोई संकोच नहीं होता उनकी दृष्टि में कोई भी कार्य छोटा नहीं है। वे उद्देश्य प्राप्ति को ही वरेण्य मानते हैं। उनकी मान्यता है कि उद्देश्य अच्छा होना चाहिए उसके लिए किया जाने वाला प्रत्येक कार्य उच्च है।

उनके त्याग का मूर्तिमान कीर्तिस्तम्भ मथुरा में 'हीरालाल धर्मशाला' है जो उनके पिताजी के नाम पर श्री वृन्दावनदास जी के परिवार ने बनवाई है अनेक शिक्षा संस्थाओं को तथा अन्य संस्थाओं को दान देना आपकी सहज प्रवृत्ति है। स्थानीय राजनीति में यश अर्जन करने के उपरान्त आपने साहित्य सेवा को

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अपना उद्देश्य बना लिया है तथा राजनीति के दलों की दलदल से निकलकर आप विशुद्ध साहित्यिक का जीवनयापन कर रहे हैं। शौकिया लेखन का कार्य तो वे अपनी युवावस्था से ही करते आ रहे हैं पर साहित्य के क्षेत्र में उनका सशक्त लेखन एक दशाब्दि की परिसीमा में ही हुआ है। निरन्तर समाज और साहित्य की सेवा करना उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है।

साहित्यज्ञों के सम्मान के लिए उनका द्वार सदैव खुला हुआ है, यह गुण अब अत्यल्प व्यक्तियों में रह गया है, पर बाबू जी गुणियों का यथोचित स्वागत सत्कार करते हैं।

मैं उनको अपने श्रद्धा पुष्प अर्पित करता हूँ।

●

एक पारदर्शी सौम्य-व्यक्तित्व

⊙

डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा "अरुण"
एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रज की पुण्यधरा ने ऐसे अनेक मानव-रत्न दिए, जिनकी यश-कान्ति ने दिग्दिगन्त को प्रभासित किया है। उन दिव्य-मानव-रत्नों की ज्योतिर्मयी माला में अपनी स्वतंत्र प्रभा से मण्डित एक रत्न हैं, बाबू वृन्दावनदास जी, जिनका हिन्दी-साहित्य की अनेक विधाओं में तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में जो अमूल्य योगदान है, उसका मूल्यांकन वस्तुतः अभी होना है।

बाबू जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण कर पाना सहज नहीं। एक विशाल उदधि की भाँति उनके व्यक्तित्व के सिंधु में सर्वत्र अनुभवों के अनुपम मोतियों का भण्डार है और जिज्ञासु जिस भावना से उनके सम्पर्क में जाता है, उसी प्रकार की तृप्ति पाकर लौटता है। सौम्य-सन्त बाबू वृन्दावनदास जिस पारदर्शी-व्यक्तित्व के धनी हैं, उसने न जाने कितने व्यक्तियों को प्रेरणा देकर सफलता के हिमालय का स्पर्श कराया है।

स्वयं जीना एक सामान्य बात है किन्तु दूसरों को जीवन देना सहज नहीं; जबकि यह कठिन कार्य बाबूजी ने किया है। अपने समयुगीन साहित्यकारों एवं पत्रकारों की कितनी स्मृतियों को उनके पत्रों के रूप में बाबू जी ने सुरक्षित रक्खा है उसका अनुमान बाबूजी द्वारा संगृहीत पत्रों से ही किया जा सकता है। स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं आचार्यप्रवर डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी के अन्तःव्यक्तित्व की झाँकी देने वाले पत्रों का भण्डार बाबू जी के हृदय की उस महान भावना का परिचय देता है, जो आज भी उन्हें गरिमामण्डित करा रही है।

मुझे अपने अभिन्न मित्र डॉ० राजेन्द्र 'रंजन' के साथ जब बाबू जी के दर्शन का प्रथम बार अवसर मिला और उन्हें बताया गया कि मेरा सम्बन्ध हरिद्वार से है तो बाबू जी ने बिना किसी संकोच के मुझे सम्मानित स्थान देकर कहा—"गंगा वाले गंगा से कम सम्माननीय नहीं होते।" उनकी इस उदार एवं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मुक्त भावना ने मुझे अभिभूत कर लिया और आज भी बाबू जी के प्रति मेरा शीश स्वतः नत होता है।

एक अन्य विशेष बात, जो मैंने बाबू वृन्दावनदास जी में पाई; वह है निरभिमान व्यक्तित्व! अपने मथुरा-प्रवास (१९६३ से १९६६ के बीच) में जितना परिचय मैं बाबू जी का पा सका, उसे एकदम घनिष्ठ मान सकूं, ऐसा मुझे नहीं लगा; किन्तु अपने एक शोध-छात्र को गत वर्ष मैंने जब एक पत्र देकर शोध कार्य में सहायता लेने उनके पास भेज दिया तो उन्होंने मेरे छात्र को जो आत्मीय-व्यवहार दिया, उससे 'घनिष्ठ परिचय' की मेरी धारणा ही बदल गई और अब मैं बाबू जी के साथ गर्वपूर्वक अपना घनिष्ठ सम्बन्ध मानता हूँ।

'ब्रज-भारती' के यशस्वी सम्पादक, सांस्कृतिक निबंधों के अप्रतिम लेखक, पत्रकारिता के अनन्य उन्नायक एवं ब्रज-साहित्य के आधार बाबू वृन्दावनदास जी का प्रेरक एवं पारदर्शी सौम्य-व्यक्तित्व आगत पीढ़ी को नव-स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान करे, इसी मंगल कामना के साथ मैं विनीत भाव से शत-शत वन्दन अर्पित करता हूँ।

●

नीतिमान एवं प्रभविष्णु

⊙

हृदयेशनारायण चतुर्वेदी

भरतपुर अधिवेशन ब्रज साहित्य मंडल के इतिहास में एक मोड़ देने वाला अधिवेशन था। मण्डल के भू० पू० प्रधानमंत्री स्व० जगदीश नारायण चतुर्वेदी के असामयिक निधन से मंडल को ठेस पहुँची थी अब उसे संवारने का समय था। मैं डा० पाठक के साथ दिल्ली से फ्रन्टियर मेल द्वारा भरतपुर को रवाना हुआ। भरतपुर तो हम लोग ठीक समय पर पहुँच गये पर स्थान ढूंढ़ने में लगभग पन्द्रह मिनट का विलम्ब हुआ। हमारे पहुँचने से पहले कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका था। मंच पर श्री जुगल किशोर जी चतुर्वेदी (भू० पू० मंत्री, राजस्थान) डा० सत्येन्द्र, प्रभुदयाल जी मीतल एवं बा० वृन्दावनदास जी आदि विराजमान थे। डा० शरण विहारी गोस्वामी का भाषण चल रहा था। डा० राधेश्याम कौशिक डा० वसन्त कुमार मिश्र आदि के भाषण के उपरान्त बा० वृन्दावनदास जी का भाषण हुआ तथा उसी भाषण के कतिपय विवादास्पद प्रश्नों पर मंडल के कुछ सदस्यों ने विरोधी वादविवाद कर अधिवेशन में बाधा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। पर बा० वृन्दावन दास जी बड़ी कुशलता से उन सभी उलझनों की उपेक्षा करके अपना भाषण सफलता से देते रहे और विघटनकारी लोग असफल रहे।

इतना ही नहीं सायंकाल के सत्र में जबकि मंडल के महामंत्री का चयन किया जाना था बाबूजी ने जिस शालीनता का प्रदर्शन किया था वह तो अद्भुत थी। पूर्व निश्चय के अनुसार डा० विश्वपाल जी को महामंत्री चुना जाना था किन्तु श्री जुगलकिशोर जी चतुर्वेदी का नाम प्रस्तावित किया गया बाबूजी ने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सभी लोगों की इच्छा के अनुरूप ही स्वयं को ढाल लिया। यद्यपि कतिपय लोगों के गलत रवैये के कारण बस में कुछ तनावपूर्ण स्थिति रही परन्तु मथुरा में डा० आनन्दस्वरूप पाठक आदि के सद्प्रयत्नों से स्थिति ठीक ठाक हो गई। कुछ ही दिनों में बाबूजी के स्पष्ट और हस्तक्षेपरहित व्यवहार के कारण श्रीजुगल किशोर जी चतुर्वेदी भी बाबूजी के कथनानुसार कार्य करने लगे और दोनों के अनुरूप व्यवहार के फलस्वरूप एवं मंडल के कार्यकर्ताओं के सद्प्रयत्नों से ५८००० रु० की धनराशि से मंडलभवन का स्थान खरीद लिया गया। जो उपलब्धि मंडल के इतिहास में महानतम है, जिस कार्य को करने में केन्द्रीय मंत्री तक सफल न हो सके वह कार्य बाबू जी के योग्य निदेशन में सम्पन्न हो सका यह अत्यन्त गौरव की बात है।

बाबूजी की नीतिमत्ता एवं व्यक्तियों को प्रभावित करने की शक्ति अनुपम है, मैं तो उन्हें पितृ-तुल्य मानता हूँ। अभिनन्दन के सुअवसर पर मेरा नमन उन्हें अर्पित है।

●

वृन्दावनोसौ नय यज्ञ यूपः

⊙

डा० हरिदत्त शास्त्री
एम० ए०, पी-एच० डी०

आज से कुछ वर्ष पूर्व, भारती अनुसन्धान भवन मथुरा के संस्थापक पं० राधेश्याम जी जोशी के साथ उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति तथा अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के का० अध्यक्ष साहित्य वारिधि बा० वृन्दावनदास जी के दर्शनों को पहुँचा था। बाबू जी उस समय विश्राम कक्ष में थे किन्तु सूचना प्राप्त कर तुरन्त बाहर आ गये। बहुत देर तक हिन्दी साहित्य की विधाओं पर मनोरंजन, चर्चा रही। अनेक प्राचीन कवियों का प्रसंग आया और वर्तमान में ब्रजभाषा की प्रगति एवं गतिविधियों पर विमर्श करने के उपरान्त हम दोनों लौट आए। तब से आज तक 'बाबूजी' 'ब्रजभारती' लगातार भेजकर मुझ पर अक्षुण्ण प्रेम बनाये हुए हैं। उनके यहां साहित्य मनीषियों का तांता लगा रहता है। मैंने देखा है कि उनके हृदय में प्राचीन लेखकों की कीर्ति रक्षा की बड़ी तड़प है। वे साहित्यिक यज्ञ सदैव करते रहते हैं। श्री जुगलकिशोर जी चतुर्वेदी के अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन उन्होंने ही किया है उसमें उन्होंने मुझसे भी कुछ लिखने को कहा था उनके आदेश का यथावत पालन भी हुआ। अभी हाल में पद्मसिंह शर्मा स्मारक समिति के समारोह में उद्घाटनकर्ता एवं अध्यक्ष के रूप में उनके दर्शन हुए सारांश यह है कि बाबूजी के जीवन का प्रत्येक क्षण साहित्य साधना में ही लग गया है। आप इस अवसर पर प्रकाशित 'आचार्य पद्मसिंह शर्मा' स्मारक ग्रन्थ' तथा 'चतुर्मुख' पत्रिका के 'आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति अंक' दोनों के सम्पादन मण्डल में हैं। ब्रजभारती की श्रीवृद्धि में और हिन्दी साहित्य के उदीयमान नवयुवक साहित्यकारों को आगे लाने में वे बड़ी लगन से लगे हैं। साहित्य की सेवा और साहित्यिकों की सेवा उनके जीवन का प्रमुख अंग है। आपकी लेखनशैली परिमार्जित है तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ मार्मिक होती हैं। कार्य वा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साधयेयं देहं वा पातयेयम्" यह उनके जीवन का लक्ष्य वाक्य (मोटो) है। वे अपनी धुन के धनी हैं जिस काम को हाथ में ले लेते हैं उसमें अपने तन मन धन से जुट जाते हैं और सफलता उनकी अनुचरी बन जाती है। हि० सा० सम्मेलन के पितामह पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी उनकी प्रेरणा के स्रोत हैं। बाबूजी में वे सभी गुण हैं जिनसे वे यदि संसद सदस्य बन जायें तो सेठ गोविन्ददास जी के गोलोकवासी होने से हुए अभाव की पूर्ति अंशतः पूरी हो सकती है। बाबूजी विषयक अपने कतिपय विचारों को मैं छन्दबद्ध करके संस्कृत में नीचे लिख रहा हूँ—

गुणानुरक्ति दरकाव्य शक्ति।
उपात्तपक्तिः श्रितकाव्यशक्तिः।
प्रख्यात वृन्दावनदास चित्रम्।
वदामि किञ्चित कुतुकाच्चरित्रं ॥१॥

काव्यच्छविः यस्य विकासमाप्ता।
लेखेषु सम्पादन सत्कलासु।
हिन्दी विरोधी व्रजभंजनेषु।
शिक्षा समालोचन वाचसेषु ॥२॥

तर्काशु जालप्रहतान्धकारं।
प्रताप सूर्योन्मथितार्ति जाड्यं।
ते नाम वृन्दावनदासभासं।
गर्भासोष्नः समुदीरयन्ति ॥३॥

मनस्विताया प्रति ऊप ऊपः।
तरस्वि लोकाशय दुर्ग कूपः॥
सावज्ञ किञ्चिज्ञ निपात कूपः।
वृन्दावनोसौ नय यज्ञ यूपः ॥४॥

नाना भाषाविलासी श्रितमति विभवो भूतनाथांघ्रि दासः
वाग्मी स्वात्माभिमानीऽप्यनुपम विनयो वैश्य वंशावतन्सः।
सत्कार्य व्याकृतिज्ञ स्मितयुत वचनो दास वृन्दावनाख्यः
हिन्दी राष्ट्रादिपत्यम् वहतु बहुतिथं कालमार्यस्वभावः ॥५॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज संस्कृति के उद्गाता

⊙

जगदीशप्रसाद गुप्त
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, इंगलिश)

अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी "शिवोभूत्वा शिवम् यजेत्" के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनके जीवन का ब्रज और ब्रज संस्कृति के साथ तादात्म्य हो गया है। वे मन, वचन, कर्म से ब्रजभाषा साहित्य एवं ब्रज संस्कृति की सेवा में रत रहते हैं। ब्रजभारती के सम्पादन से पदे पदे स्पष्ट होता है कि उनका ब्रजभाषा साहित्य प्रेम हिन्दी हित का पोषक और संवर्धक है। बाबूजी का सुस्थिर मत है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का हित ही ब्रजभाषा का हित है। विगत एक दशाब्दि से वे 'ब्रजभारती' के माध्यम से ब्रज संस्कृति का सन्देश सुधी जनों को देते रहते हैं।

आपकी साहित्यिक गतिविधियों के प्रति रुचि स्पृहणीय है। कविरत्न सत्यनारायण अर्धशताब्दि समारोह, महाकवि ग्वाल शताब्दि समारोह, सूर समारोह, हरिऔध समारोह, शिशुपाल सिंह शिशु स्मृति समारोह, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति समारोह आदि में आपने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। आप जहाँ दिवंगत कवियों और साहित्यकारों का पुण्य स्मरण करते हैं वहाँ जीवित साहित्यकारों के आतिथ्य के लिए आपके 'प्रकाश भवन' के द्वार सदैव खुले हैं। 'प्रेरक साधक' (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ), श्री युगल किशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति ग्रन्थ आदि के सम्पादक एवं 'एक युग: एक प्रतीक' (बा० जगदीवनराम अभिनन्दन ग्रन्थ) के परामर्शदाता सम्पादक के रूप में आपकी सेवाएँ सुख्यात हैं। आप प्रत्येक साहित्यिक गतिविधि में रुचि से कार्य करते हैं। भाई डा० आनन्द स्वरूप जी पाठक एवं चंचरीक जी द्वारा बाबूजी को निकट से जानने का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा ब्रज-भारती का अवलोकन भी कर सका अतएव इन उपकारकर्ताओं को भी साधुवाद देता हूँ कि ऐसे साहित्य-प्राण व्यक्तित्व से परिचय कराया। बाबूजी निस्पृह साहित्यसेवी हैं और साहित्य के क्षेत्र के कार्यकर्ता भी। साहित्यिकों का अभिनन्दन एक स्वस्थ परम्परा है। मैं बाबूजी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राष्ट्रभाषा के सेवक

डा० जगदीश वाजपेयी
एम० ए०, पी-एच० डी०

जीवन के विपुल विसिष्ट कार्यक्षेत्र त्यागे
मसि जीवियों के हित विमल प्रकास भे।
एक लक्ष्य, एक ध्येय धारि कें अनन्य मन
भाषा सेवियों में अग्रगण्य अरु खास भे।
सुख सुविधा तथा समृद्धि की सरद छाँड़ि
विद्या बुद्धि सुकुसुम कलित मधुमास भे।
हिन्दी की प्रगति, ब्रजभाषा की भगति हेतु
वृन्दावनदास जे ते राष्ट्रभाषा दास भे॥

दम्भहीन और स्नेही व्यक्तित्व

रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी
एम० ए०, साहित्यरत्न

बाबू वृन्दावनदास जी के छोटे भाई श्री केदारनाथ और मैं मिशन स्कूल, मथुरा में १९२७ और १९२८ में सातवीं और आठवीं कक्षा में सहपाठी और मित्र थे। तब मथुरा का मिशन स्कूल, असकुंडा घाट और स्वामीघाट के बीच काज़ीपाड़ा में था। श्री केदारनाथ से छोटे भाई श्री रणछोड़ दास हम लोगों से एक क्लास नीचे थे। तब परम्पराएं ऐसी थीं कि सहपाठी के छोटे भाई को अपना छोटा भाई और बड़े भाई को अपना बड़ा भाई माना जाता था। श्री वृन्दावनदास जी को प्रथम दिन से ही मैंने उसी दृष्टि से देखा, वैसा ही आदर किया, और उसी योग्य पाया। फलतः उनकी ओर से भी मुझे छोटे भाई के समान स्नेह मिला। जब हम विद्यार्थी थे, तो हमारी श्रद्धा, में थोड़ा भय, का भी मिश्रण रहता था, बाद में बाबू वृन्दावनदास जी ने वह भय और संकोच बिल्कुल निकाल दिये। जब अपने छोटे से वह बराबरी का व्यवहार करते हैं, और आदर देते हैं तो गद्‌गद् हो जाने की स्थिति बन जाती है।

मथुरा का ही निवासी होने के कारण बाबू वृन्दावनदास जी को मैंने सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर उठते ही देखा। उन्हें वकील की तरह कचहरी जाते देखा, चुंगी के मेम्बर और फिर चेयरमैन की तरह

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मथुरा के सेवा सुधार में रत देखा और बाद में एक साहित्यिक की तरह समाज, नगर, प्रदेश, और देश को गौरव प्रदान करते भी देखा।

बाबू वृन्दावनदास जी का सबसे बड़ा गुण उनका दम्भहीन व्यक्तित्व है, उनकी बातचीत का ऐसा अनोखा स्नेही ढंग है कि दूसरे के मन के संकोच को मिलते ही दूर कर देते हैं। उन्होंने हमारे मन के भय और संकोच को बिलकुल ही मिटा दिया। मेरे जैसों की संख्या बहुत है, जो उनकी उन्नति पर प्रसन्न होते हैं, और उनकी उत्तरोत्तर ख्याति से हमें सन्तोष मिलता है।

निरभिमान, कर्मठ, श्रमी, परहित सुमन-कपास।
वन्दनीय, विनयी, गुणी, श्री वृंदावनदास॥

साहित्य वारिधि

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

बाबू वृन्दावनदास सचमुच साहित्य वारिधि हैं। उन्होंने साहित्य के अनेक क्षेत्रों में कार्य किया है। वे साहित्यकार भी हैं और साहित्यिक संगठनकर्ता भी। उनके कर्मठ व्यक्तित्व में अनेक पक्षों का स्वर्णिम समन्वय मिलता है।

उनकी पारिवारिक सम्पन्नता उनकी साहित्य साधना में अवरोधक नहीं बनी। उनके व्यक्तित्व तथा कार्य-कलापों को देखकर मुझे सेठ गोविन्ददास तथा व्योहार राजेन्द्रसिंह का स्मरण हो आता है जो कि मध्यप्रदेश की महान् विभूति हैं। उनके परिवार की प्रतिष्ठा, सम्पन्नता तथा वणिक् वृत्ति ने उनकी साहित्य तथा समाज-सेवा के मार्ग को प्रशस्त किया है।

वृन्दावनदास जी का जीवन सर्वथा सार्वजनिक एवं समर्पित जीवन रहा है। उन्होंने साहित्य, शिक्षा, संस्कृति तथा संस्थाओं की अभूतपूर्व सेवा की है। वे एक ओर पुरातत्व पर लिखते हैं, दूसरी ओर इतिहास की अनेक ग्रंथियों को सुलझाते हैं और तीसरी ओर सम्मेलनों एवं अधिवेशनों की अध्यक्षता करते हैं। वे पुरातत्त्व संग्रहालय, नगरपालिका, पुस्तकालय, महाविद्यालय, सहकारिता ब्रज-साहित्य-मण्डल, हिन्दी पत्रकारिता आदि से सम्बद्ध रहे हैं। सम्प्रति उन्होंने अपना सक्रिय जीवन ब्रज-साहित्य-मण्डल और 'ब्रज भारती' को सम्पूर्णतया समर्पित कर दिया है। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्तम्भ हैं। वे ब्रज साहित्य तथा ब्रज माधुरी के परम उन्नायक हैं।

'ब्रज भारती' की उनकी सम्पादकीय और संक्षिप्त टिप्पणियाँ हिन्दी-जगत् में विशेष आदर के साथ पढ़ी जाती हैं। वे जनपदीय आन्दोलन के कर्णधार रहे हैं। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों ने सामयिक कर्त्तव्य बोध को जाग्रत किया है। उन्होंने अनेक विषयों पर लिखा है जैसे साहित्य, संस्कृति, इतिहास, साहित्यशास्त्र तथा शिक्षा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मैंने वृंदावनदास जी को परोपकारी, सहयोगी, विनम्र तथा सरल मानव के रूप में पाया है। वे भाषाविद् होने के साथ ही साथ मानव-स्वभाव के भी अच्छे पारखी हैं। साहित्य तथा समाज के पवित्र तथा सर्वहितकारी कार्यों में उन्हें सदैव तत्पर तथा अग्रणी रूप में देखा जा सकता है। ६८ वर्ष के होने के उपरांत भी वे युवकों की-सी स्फूर्ति महसूस करते हैं। उनका प्रसन्न मुखमण्डल सदैव प्रेरणा का स्रोत बना रहता है। वे उस पुरानी पीढ़ी के प्रतीक हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा की सेवा को, उसके कार्य को मिशनरी-वृत्ति से ग्रहण किया और उसके लिए तन-मन-धन सर्वस्व अर्पित कर दिया। उन्होंने अपने बहुभाषा-ज्ञान से हिन्दी वाङ्मय को संस्कृति के अनेक अनूदित ग्रन्थों तथा हिन्दी-अंग्रेजी-शब्दकोश से परिपूर्ण किया। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को स्वस्थ आयाम प्रदान किये।

पत्र-लेखक के रूप में वृन्दावनदास जी डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी की भाँति चिर स्मरणीय हैं। उनके पत्र हिन्दी की निधि हैं। उन्होंने अपने पत्रों के द्वारा हिन्दी की अनेक योजनाओं को प्राणान्वित किया है। उनका सम्पादनबोध तथा पत्र-पत्रिकाओं के लेखों के रचयिता के रूप में उनका क्रियाशील व्यक्तित्व एक ओर शोध-मान्यताएँ स्थापित करता है तो दूसरी ओर साहित्यकारों की पुण्य-स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के कार्य-कलापों में जीवन फूँकता है।

वृन्दावनदास जी लगभग ४५ वर्षों से नियमित रूप से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लिख रहे हैं। वे एक अध्ययनशील लेखक हैं। निबंधकार के रूप में उनकी सशक्त अभिव्यंजना-शैली तथा कला-कुशलता का सर्वोत्कृष्ट दृष्टांत उनके निबंध-संग्रह "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" में देखने को मिलता है। उसमें उनके तीन प्रकार के निबंध उपलब्ध हैं—(क) साहित्यिक-सांस्कृतिक (ख) ऐतिहासिक एवं (ग) सामाजिक-समसामयिक। उपरिलिखित निबंधों में उनका अनुसंधाता तथा जागरूक व्याख्याकार का व्यक्तित्व अपने सफलतम रूप में प्रस्फुटित हुआ है। उनके अध्ययन-मनन-चिंतन तथा गवेषणा की गहनता से परिचय पाने के लिए उपर्युक्त ग्रन्थ श्रेष्ठ कृति हैं। उनके संस्मरण लिखने की शैली भी अपूर्व है। उनकी सम्पर्कशीलता तथा जीवन के व्यापक अनुभवों ने उनके व्यक्तित्व के राष्ट्रीय राजनीतिक पक्ष को उद्घाटित करने में सहयोग दिया है।

वृन्दावनदास जी भारतीय संस्कृति के परम उपासक हैं। उन्होंने उसके गरिमा मण्डित तथा विश्व-व्यापी स्वरूप को सम्यक् रूप में विवेचित किया है। वे भारतीय संस्कृति के अन्वेषक और व्याख्याकार हैं। इस दिशा में उन्होंने नृतत्व शास्त्र तथा समाजशास्त्र का भी उपयोग किया है। उन्होंने भारत की साहित्यिक विरासत को भारतीय संस्कृति के मानसरोवर में पंकज के समान उर्दायमान पाया है। उपर्युक्त पुस्तक शोध तथा स्तरीय सामग्री से आपूर्ण है।

वे मौलिक दृष्टि तथा रोचक शैली के लेखक हैं।

मैंने उनके व्यक्तित्व में प्रोत्साहनकारी गुणों का आधिक्य पाया है। उनके व्यष्टि में समष्टि का भाव समाया हुआ है। ईश्वर उनको शतायु करे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राष्ट्रभाषा उन्नयन महायज्ञ के होता

⊙

सूरजप्रसाद मिश्र

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अपने असहयोग के साथियों की पुण्यस्मृति को जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत करते समय बाबू भूलन साहीं की चर्चा के सन्दर्भ में लिखते हैं कि "किसी महायज्ञ में बहुत सी अज्ञात समिधाएँ पड़ती हैं जिनका लोग खयाल नहीं करते और पीछे जल्दी भूल भी जाते हैं। लेकिन अग्नि को प्रज्वलित करने में उनका सबसे बड़ा योग होता है। बाबू भूलनसाहीं ऐसी ही अज्ञात समिधा थे।"

आज मुझे राहुल जी की साहीं जी के संदर्भ में कहीं गयीं पंक्तियाँ पाठक जी का पत्र साहित्यवारिधि बा० वृन्दावनदास अभिनंदन ग्रन्थ हेतु कोई व्यक्तित्वपरक रचना प्रेषित करने हेतु प्राप्त करने के उपरान्त अचानक स्मरण आ गईं। संदर्भ भी ठीक वैसा ही है।

एक साहित्यिक गोष्ठी में मुझे कहना पड़ा था कि किसी भी मातृभाषा का समुचित विकास तभी हो सकता है जब उसे वृन्दावनदास जी जैसी महान् विभूतियाँ मिलें। यह ब्रजभाषा का सौभाग्य है कि उसे बा० वृन्दावनदास जी जैसा सेवक मिला है।

भारतीय वाङ्मय को पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित करने में अहर्निश व्यस्त श्रीदास को मैं तो वाल्मीकि, शुकदेव, नारद, व्यास, याज्ञवल्क्य, जनक, वशिष्ठ, दधीचि, वल्लभ, माधव, नानक चैतन्य, कबीर, सूर, तुलसी, ज्ञानदेव, तुकाराम, एकनाथ, रामदास, रामकृष्ण, रामतीर्थ प्रभृति सन्तों और मनीषियों के कुल-गोत्र (ज्ञातव्य एवम् स्मरणीय है कि साहित्य संसार में मानवकृत जाति से उत्पन्न कुल-गोत्र नहीं होता है।) का जानता-मानता हूँ, इसलिए ब्राह्मणकुल में पैदा होने के बावजूद भी मैं बाबू के चरणों का स्पर्श करने में आना-कानी नहीं करता हूँ और इसी कारण एक बार मुझे बाबू से स्पष्ट शब्दों में कहना भी पड़ा था कि वे मुझे प्रणाम या नमस्कार करने के बदले आशीर्वाद दिया करें तथा मुझे बन्धु-वर न कहकर अनुज की संज्ञाओं से सम्बोधित करें।

"महान्तरेव महतामर्थं साधयितु क्षमाः।
ऋते समुद्रादन्य बिभर्ति व आवानलम॥

"जो सर्वश्रेष्ठ, कुलीन तथा शिक्षा प्रभृति कार्यों में निपुण हैं, वे ही सुविचारपूर्वक राष्ट्रीय कार्यों को देख सकते हैं, जैसे समुद्र को छोड़कर प्रलयंकारी अग्निपिण्ड को जिसे बड़वानल कहते हैं कौन सम्भाल सकता है, क्या कुआँ और तालाब?" नीतिवाक्य की महिमा में चार चाँद लगाने वाले मेरे अग्रज के राष्ट्रीय कार्यों तथा सेवाओं को अभी समग्र देश के लोग भले ही न जान पाए हों लेकिन भारत के प्रबुद्ध लोग जान चुके हैं मगर देशवासी अब तक उनको समुचित सम्मान प्रदान करने में कोताही बरत रहे हैं।

अपने अग्रजतुल्य बा० वृन्दावनदास जी के व्यक्तित्व की चर्चा करते समय मैं अनेक साहित्यकारों को बता चुका हूँ कि जिन तत्वदर्शी पंडितों ने मानव ज्ञान मंदिर के अल्पांश या बहुलांश का निर्माण किया

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है उन्हीं की अग्रपंक्ति में बा० वृन्दावनदास जी भी आते हैं। वे स्वयं को ज्ञान का प्रेमी बताते हैं ज्ञान का स्वामी नहीं। ब्रजभूमि की विभूति, ब्रजसाहित्य के कर्णधार, राष्ट्रवाणी हिन्दी के गौरवस्तम्भ अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल और उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष त्रैमासिक शोध पत्रिका ब्रजभारती के सम्पादक तथा अन्तर्जनपदीय भाषा साहित्य आन्दोलन के सूत्रधार बा० वृन्दावनदास जी के अभिनन्दन के अवसर पर मैं उन्हें अपनी प्रणति अर्पित करता हूँ।

●

पुण्यश्लोक-साहित्य सेवी

⊙

डा० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'
एम० ए०, पी-एच० डी०

एक युग बीता जब लोग हिन्दी की सेवा निस्वार्थ भाव से करने में रत रहते थे। आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। प्रत्येक कवि पैसे ठहराकर कवि सम्मेलनों में कविता पढ़ता है। प्रत्येक लेखक पैसे लेकर लेख लिखता है पर प्राचीन पीढ़ी के लोग भिन्न विचारधारा वाले थे। वे अपनी भाषा एवं साहित्य की उन्नति में विशेष अभिरुचि रखते थे, साहित्यसेवी होना अभिजात वर्ग की निशानी थी। बड़े-बड़े राजा एवं सम्राट (अकबर आदि) निस्वार्थ साहित्य सृजन करके स्वयं को धन्य मानते थे। इस विचारधारा के अनुयायी कतिपय विद्वान आज भी हिन्दी जगत में हैं जिन पुण्यश्लोक एवं महामना व्यक्तियों के त्याग एवं तपश्चर्या के बल पर हिन्दी का मान-सम्मान आधारित है वर्तमान युग में सेठ गोविन्द दास जी उस माला के सुमेरु थे। उसी परम्परा में बा० वृन्दावनदास जी का भी नाम आता है। बाबू जी के द्वार साहित्यज्ञों के सम्मान के लिए सदैव खुले रहते हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल एवं उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं ब्रज भारती पत्रिका के सम्पादक बाबूजी साहित्यिक समारोहों के प्राण हैं उनकी वाग्मिता से हिन्दी जगत सुपरिचित है। सत्यनारायण कविरत्न, सूर, ग्वाल, शिशु, आचार्य पद्मसिंह शर्मा आदि के स्मृति समारोहों एवं ग्रन्थों के प्रेरणास्रोत बाबूजी की साहित्यिक निष्ठा स्तुत्य है। उनके द्वारा आयोजित गोष्ठियों एवं पढन्त सम्मेलनों से ब्रजक्षेत्र के सभी लोग परिचित हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्र ही नहीं अहिन्दी भाषी क्षेत्र (दक्षिण भारत) में भी आपके द्वारा आयोजित पुरस्कार प्रायोजना हिन्दी हितों की संवर्धक है। साहित्यज्ञ, साहित्यस्रष्टा एवं साहित्यज्ञों एवं हिन्दी के पोषक बाबूजी का अभिनन्दन माँ भारती का अभिनन्दन है।

शतायु जीवन की कामना सहित मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रौढ़ लेखक एवं समालोचक

जयवीर सिंह चौहान
एम० ए० (हिन्दी, अर्थशास्त्र)

कल्पना कुटीर के निवासी डा० मलखान सिंह सिसोदिया को मैं पहले कल्पना जगत का विहारी समझा करता था। क्योंकि लेखन एवं कविता करने का मूलधन कल्पना ही है परन्तु जब उनकी साहित्यिक रचनात्मक गतिविधियों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ तो मेरी समझ में आया कि साहित्यस्रष्टा कल्पना जगत का ही नहीं इस व्यावहारिक जीवन का सक्रिय कर्ता-धर्ता होता है इसी संदर्भ में एक बार उन्होंने मुझसे मथुरास्थ बा० वृन्दावनदास जी की कर्मठता के विषय में बताया। मैं बाबू जी को अपने मित्र डा० पाठक के सान्निध्य से जानता था। बातचीत के दौरान बाबूजी की विचक्षण वाग्मिता एवं सुरुचिपूर्ण लेखन का प्रसंग भी आया। मुझे आश्चर्य हुआ कि जिस बौने से व्यक्तित्व को मैंने छोटा सा आँका था वह आज मेरी दृष्टि में बहुत ऊँचा दिखाई पड़ रहा है। परिचित होने के उपरान्त पांच वर्षों में तो मैं उनकी साहित्यिक गतिविधियों की अनेक चर्चाएँ सुनता एवं पढ़ता रहा हूँ। उनकी रचनाएँ भी मैंने एटा में डाक्टर साहब के पास देखीं एवं पढ़ी हैं वे प्रौढ़ लेखक एवं समालोचक हैं। भारतीय संस्कृति के उद्गाता तो वे हैं ही। ब्रजी के उन्नायक के रूप में सुख्यात बाबू जी अभिनन्दनीय एवं अभिवन्दनीय हैं। अभिनन्दन के सुअवसर पर उन्हें मेरा प्रणाम अर्पित है।

●

भ्राजिष्णु अध्यक्ष

डा० परमात्माशरण वंसल
एम० ए०, पी-एच० डी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी स्वयं में एक संस्था हैं। हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए उन्होंने एक पुस्तकालय योजना चला रखी है जिसके अधीन पुस्तकालयों को आधे मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें मिल जाती हैं तथा उन्होंने भी स्वयं अपने व्यय से अयोध्या आदि स्थानों पर अनेक पुस्तकालय चला रखे हैं। उनके ही कार्यकाल में मंडल ने ५८००० रुपए की राशि से मंडल भवन के लिए भूमि खरीदी है। मण्डल की पत्रिका 'ब्रज भारती' का ८ वर्षों से समय पर निरंतर प्रकाशन एवं वितरण उन्हीं के सद्प्रयासों का सुफल है।

रचनाकार के रूप में, भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य, भारत के हिन्दू राज्य, बनारसीदास जी के पत्र डा० वासुदेवशरण जी के पत्र आदि कृतियाँ उनकी कीर्तिस्तम्भ हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लेखन भाषण एवं प्राचीन साहित्यकारों का स्मरण उनकी सुरुचि (हावी) है। उदीयमान साहित्यकारों को प्रश्रय देना तथा लेखन के लिए प्रोत्साहित करना उनकी रचनात्मक एवं विधायक प्रवृत्ति का परिचायक है। ऐसे साहित्यज्ञों का अभिनन्दन श्रेयस्कर है। मेरी कामना है कि बाबू जी चिरायु हों तथा उनके शताभिनन्दन किए जायें तथा अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल ऐसे भ्राजिष्णु अध्यक्ष से धन्य होता रहे।

पत्र विधा के उन्नायक

डा० सरला देवी
एम० ए०, पी-एच० डी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल एवं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी की साहित्य सेवा 'ब्रज भारती' के माध्यम से हिन्दी जगत को सुविदित है। उन्होंने साहित्यज्ञों के पत्र संग्रह प्रकाशित एवं सम्पादित करके हिन्दी की पत्र विधा के उन्नयन में स्तुत्य योगदान किया है। भाई डा० आनन्दस्वरूप पाठक से जो केन्द्रीय सरकार की हिन्दी शिक्षण योजना के प्राध्यापक के रूप में एरणाकुलम आए थे उनकी साहित्यिक अभिरुचि के विषय में प्रायः चर्चा होती रही है। ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष के रूप में बाबूजी की सेवा श्लाघनीय है। अभिनन्दन के सुअवसर पर ब्रजभाषा के वयोवृद्ध साहित्यकार बा० वृन्दावनदास जी को मेरा नमन।

योजकस्तत्र दुर्लभः

डा० देवेश चन्द्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

कार्य को करने की उद्भावना प्रत्येक व्यक्ति के मन में उद्भूत हो सकती है। अच्छी-अच्छी योजनाएँ और उनकी प्राक्कल्पनाएँ भी मस्तिष्क में आ सकती हैं। सभा समितियों में अनेक प्रस्ताव पारित किए जा सकते हैं पर उनका सम्यक् रूप से निर्वाह और निष्पादन करना सामान्य व्यक्ति का कार्य नहीं है। वे विरले ही व्यक्ति होते हैं जिनकी सद्प्रातिभा एवं प्रयास रचनात्मक और विधायक कार्यों में लगते हैं तथा जिनके प्रयासों के फलस्वरूप किसी संस्था या कार्यविशेष का समापन होता है। बा० वृन्दावनदास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जी ऐसे ही व्यक्ति हैं जिनके व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि वे अपने क्रियमाण कर्म को बड़ी सुरुचि से सम्पादित करते हैं। चाहे अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल का प्रकरण लें या उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अथवा अन्य किसी समारोह का जिसके मूल में बा० वृन्दावनदास जी की प्रेरणा रही है सभी कार्यक्रम सम्यक् रूप से पूरे उतरते हैं। वस्तुतः वे एक सफल संयोजक हैं। किसी भी काम को ठीक प्रकार से करने के लिए साधन जुटा लेना उनका सहज गुण है। आज हिन्दी के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है। वे शतायु पर्यन्त हिन्दी की सेवा करते रहें। उनका हार्दिक अभिनन्दन।

●

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवतः

⊙

कु० मीनाक्षी

मधुर सम्भाषण और अमृतमयीवाणी विधाता प्रत्येक को नहीं देता। वाणी मनुष्य का अलंकार है, उसके सद्प्रयोग से प्रत्येक वस्तु प्राप्तव्य है। मुझे स्मरण है कि बा० जगजीवनराम जी के अभिनन्दन समारोह में बा० वृन्दावनदास जी की वाग्मिता को देखकर सभी व्यक्ति मंत्रमुग्ध हो गये थे। नाटे से शरीर में इतनी विशाल प्रतिभा का स्थान देखकर आश्चर्य होता था। देश के उच्चतम व्यक्तियों के मध्य बैठकर राष्ट्रपति, गृहमंत्री, रक्षामंत्री आदि के सान्निध्य में वे किस निर्भीकता से सहजभाव में अपने कथ्य को प्रतिपादित करते रहे यह वस्तुतः साधारण प्रतिभाशाली मनुष्य का काम नहीं है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि जब उनसे वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ तो उनका व्यवहार बड़ा मधुर एवं मृदुल प्रतीत हुआ, मधुस्फीत वाणी और उनका अमृतमय व्यवहार दोनों ही आकर्षक हैं।

साहित्य के क्षेत्र में उनके लेख एवं कृतियों ने उन्हें उच्च स्थान प्रदान किया है पर मानवता के नाते उनके मृदुल व्यवहार ने उन्हें ऐसा व्यवहार प्रदान किया है जिससे कि वे दूसरे व्यक्ति पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ देते हैं। ऐसे महान् व्यक्ति निश्चित ही अभिनन्दनीय हैं।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां

डा० शरणबिहारी गोस्वामी
एम० ए०, पी-एच० डी०

बाबू वृन्दावनदास जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। समाज-सेवा के क्षेत्र में उन्होंने अपना कीर्तिमान् स्थापित किया है और इसके परिणामस्वरूप वे मथुरा नगरपालिका के अनेक वर्षों तक अध्यक्ष रहे हैं। राजनीति को उन्होंने समाज-सेवा के पर्याय के रूप में ही लिया है और जब उन्हें यह अनुभव हुआ कि अब देश के वातावरण में राजनीति छद्म बनकर छलने लगी है तब उन्होंने उस राजनीति का सर्वथा परित्याग कर दिया। यह वेलागपन और त्याग की भावना उनके व्यक्तित्व के गुण हैं।

बाबूजी का व्यवसाय प्रिंटिंग प्रेसों एवं प्रकाशन से संबंधित रहा। व्यवसाय के उच्चतम शिखरों को उन्होंने अपनी कर्मठता एवं सूझबूझ से सुशोभित किया परंतु जब उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अब उनके पुत्र उस कार्य को भली भाँति चला सकते हैं तो उन्होंने अपने आजीविका के समस्त कार्यभार को 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां' के आधार पर तत्काल छोड़ दिया। यह उनके साहस का उदाहरण है। वे कार्य के पीछे घिसटना नहीं जानते, जिस कार्य को उठाते हैं, उसके ध्वजदण्ड को उठाकर आगे चलते हैं और नया रास्ता बनाते हैं।

बाबू वृन्दावनदास जी ने अपेक्षाकृत देर से ही साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया क्योंकि इससे पूर्व वे सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहे थे। यह नहीं ज्ञात हो सका कि साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश करते ही उनमें साहित्यिकी धारा सहज ही कैसे फूट पड़ी? परंतु देखा जाय तो उनके ये संस्कार और तदनुसार उनका लेखन ज्ञात-अज्ञात रूप से बराबर चलता ही था और जब उसे पूरा उन्मुक्त क्षेत्र मिला तो लगा, जैसे बाबू जी का प्रमुख व्यक्तित्व साहित्यिक सेवा ही था। अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने इस संस्था को उस समय जीवित रखा जब इसके लिए चारों ओर घुप अँधेरा था और समस्त मार्ग अवरुद्ध थे। उस अंधकार के मार्ग को बाबू वृन्दावनदास जी ने अपनी आस्था का दीप जलाकर प्रकाशित किया और फिर से ब्रजसाहित्य मंडल को प्रकाश के चौमुहाने पर लड़ाकर खड़ा कर दिया।

इस बीच ब्रज साहित्य मंडल के माध्यम से उनकी दो बड़ी उपलब्धियाँ रहीं। एक तो मण्डल के भवन का अधिग्रहण, जिसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया, दूसरे, 'ब्रजभारती' का अनवरत प्रकाशन। यह कार्य बहुत कठिन था—श्रमसाध्य भी और अर्थसाध्य भी। परंतु बाबू जी तो जिस कार्य में लगते हैं, लग ही जाते हैं और उनकी लगन सफलता का ही दूसरा नाम है। 'ब्रजभारती' के संपादन में उनका लेखन खूब उभरा। उनकी साहित्यिक सूझ-बूझ, परिस्थितियों पर गंभीर टिप्पणियाँ, हिन्दी और ब्रजभाषा के भविष्य का चिन्तन, विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों का संगठन और समीक्षा एवं विशेषकर इतिहासपरक खोजपूर्ण लेख—ये सभी बाबू जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निदर्शन हैं। इस बीच उनके कई ग्रंथ भी अलग से प्रकाशित हुए, उन्होंने ग्रंथों का संपादन किया। 'मण्डल' के अतिरिक्त उत्तरप्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी वे अध्यक्ष बने। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें 'साहित्य वारिधि'

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की उपाधि से विभूषित किया। जहाँ-जहाँ सम्मेलन, सभाएँ, साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, वहाँ वे सदा उपस्थित रहे और अपने चिन्तनपूर्ण विचारों से प्रकल्पों की दिशा प्रदान की।

चुप वे कभी बैठते नहीं, बैठ सकते नहीं। सरस्वती का उन्हें यह वरदान है। परिस्थितियों का सही और ओजपूर्ण आकलन देखना हो तो समाचारपत्रों में प्रकाशित उनके पत्रों में देखिए। ओज, निर्भीकता और वही बेलागपना। भय किसी से नहीं, सच बात सबकी, झूठ से समझौता नहीं। ऐसा प्रखर और धारदार व्यक्तित्व रहा है बाबूजी का।

निस्संदेह, बाबू वृन्दावनदास जी न केवल ब्रज जनपद के, अपितु देश के गौरव हैं। युवक उनसे कार्य करना सीख सकते हैं। इस आयु में भी वे तरुणों को स्फूर्ति देते हैं, साहित्य को समीक्षा और सांस्कृतिक जीवन को गति प्रदान करते हैं। परिश्रम और प्रतिभा के ऐसे धनी का अभिनन्दन बाबू जी के व्यक्तित्व का अभिनन्दन तो है ही, वह मानवता के सद्गुणों को अभिवादन है।

बाबू जी शतायु हों, उनका मार्गदर्शन हमें अक्षुण्ण रूप से मिलता रहे, यही कामना है।

स्पृहणीय साहित्य सेवी

रामनगीना राय

"स्वामी रामतीर्थ ने कहा था कि किसी देश की शक्ति छोटे विचारों के बड़े आदमियों से नहीं, किन्तु बड़े विचारों के छोटे आदमियों से बढ़ती है। यह उक्ति साहित्यवारिधि बा० वृन्दावनदास जी के जीवन पर ठीक ठीक खरी उतरती है। आप 'सादा जीवन उच्च विचार' की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। राष्ट्र-भाषा की अनवरत निस्पृह सेवा आपके जीवन का अनिवार्य अंग है। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, अखिल भारतीय जनपदीय साहित्य परिषद् आदि अनेक साहित्य संस्थानों को सजाने संवारने में आपका सतत योगदान सदा स्तुत्य एवं स्पृहणीय रहेगा। ऐसे नैष्ठिक हिन्दी साहित्य सेवी की दीर्घायु की कामना करता हूँ। ईश्वर उन्हें सदा स्वस्थ एवं सबल रखे ताकि वे निरन्तर सचेष्ट रहकर हिन्दी की अधिकाधिक श्रीवृद्धि कर सकें।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उनके अभिनन्दन में

⊙

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नाम कुछ, काम कुछ; इसके उदाहरण गली गली हैं, पर घर घर हैं; इतने अधिक कि नाम के साथ काम का भी कोई सम्बन्ध है, इस पर विचार करना ही अविचार हो गया है। भारत के शहरों में महात्मा गांधी मार्ग पर देशी शराब के ठेके होना अब किसी को भी चिंता नहीं उपजाता। इस स्थिति में बाबू वृन्दावनदास का ब्रज साहित्य के प्रति समर्पित जीवन जीना एक चमत्कार ही है। वे यथा नाम तथा गुण के उत्तम उदाहरण हैं; वृन्दावनदास संपादक 'ब्रजभारती'।

मैं गांधी की पीढ़ी का आदमी हूँ, उस समय साहित्य के कार्य में वे ही लोग लगते थे, जो भूखे पेट रहकर भी काम करने के अभ्यस्त हों। तब साहित्य का कार्य न शौक था, न व्यापार, एक मिशन था, एक यज्ञ था। तब कभी कभी नये लोगों से एक शिकायत सुनाई पड़ती थी—"अजी, सारी शक्ति तो भोजन-वस्त्र के उपार्जन में लग जाती है, क्या खाक साहित्य-सर्जना करें;" फिर भी, अभावग्रस्त होते भी वे अच्छी रचनायें करते थे। देश के स्वतंत्र होने पर उन्हें ऐसे काम मिले कि अभाव का भाव भी उनके पास न रहा। बढ़िया वस्त्र, उत्तम मकान, भोजन, पद और पैसा, पर सबने देखा कि सर्जना के नाम पर वे ठूंठ हो गये, अभाव छूटा, तो भाव रूठा और सर्जना का प्रवाह ही अवरुद्ध हो गया। बाबू वृन्दावनदास इसके उत्तम अपवाद हैं। 'योगक्षेम से, सुबह-शाम के चिन्तन से निश्चिंत, पर अपने यज्ञकार्य के लिए सदा सचिन्त; जैसे वही उनका जीवन कर्म हो!

मेरे एक मित्र हमेशा ऐसा जूता पहनते थे, जो जाने कैसे चमड़े का बना होता था कि हर कदम पर चर्रमर्र करता था। वे हमारे चौक में आते, तो हमें तीसरी मंजिल पर बैठे-बैठे ही मालूम हो जाता कि श्रीमान जी आ गये और जब जाते, तो गली में से भी आवाज आती रहती। एक बार पूछा—"यह कैसा जूता पहनते हैं आप?" बोले—"जूता ही क्या, जो हर कदम पर यह न कहे कि कोई आ रहा है।"

हमारे सार्वजनिक जीवन में, जिसमें साहित्यिक जीवन भी सम्मिलित है, यह वृत्ति पूरी तरह छाई हुई है कि हम यश के लिए सिद्धि की प्रतीक्षा नहीं करते, हर कदम पर अपना यशोगान सुनना चाहते हैं। बात यह कि हमारा अहं हमें साधक मानता ही नहीं, हमारे लिए हमारा हर कदम एक विशिष्ट उपलब्धि है, सिद्धि है और चाहते हैं हम कि दूसरे भी उसे एक विशिष्ट उपलब्धि मानें, इस वृत्ति का मुझे सबसे मजेदार अनुभव हुआ तब, जब एक उत्तम पत्र के लिए एक सम्पादक की जरूरत थी और उसके संचालक ने प्रत्याशियों के प्रार्थना पत्र मुझे दिखाए। एक प्रत्याशी ने लिखा था—"मैं तो जन्मजात साहित्यकार हूँ मेरे स्कूल की जो वार्षिक मैगजीन प्रकाशित होती थी, उसमें एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि मेरी कोई न कोई रचना न छपी हो; स्थान कम हुआ, तो चुटकुला ही छपा।" पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने गोरखपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में इसे 'काता और ले दौड़ी' कहा था। हमारे बाबू वृन्दावनदास जी हल्केपन की इस वृत्ति से इतने दूर हैं, कहूँ, ऐसे मूक साधक हैं कि दूसरों से अपने कार्य की प्रशंसा वे क्या चाहेंगे, उन्हें अपने काम के मोल की तरफ ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला है। एक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के बाद एक और एक के साथ एक वे तो किये जा रहे हैं, पर उर्दू के महाकवि चकबस्त ने ठीक ही कहा था कि 'मैं लाख छिपता फिरूँ, शोहरत मुझे एक दिन ढूंढ़ ही लेगी'।

बाबू वृन्दावनदास के काम की महक ने गुण पारखियों को आकृष्ट कर ही लिया है और वे वन्दना के स्वरों का यह 'टेप' तैयार करने में जुट पड़े हैं। मैं भी अपनी लघुता के अनुरूप एक शब्द भेंट करता हूँ—प्रणाम !

●

एक प्रखर व्यक्तित्व

⊙

रामगोपाल परदेशी

बा० वृन्दावनदास जी से मेरी भेंट अनेक बार हुई है। जब भी उन्हें देखा कार्य में अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी वे बड़े सहज ढंग से मिले हैं। विज्ञापनबाजी से दूर रहने वाले बाबू जी को मैंने सदैव शान्त गम्भीर पाया है। वे मानवतावाद के प्रमुख स्तम्भ हैं। उनका साहित्य सृजन समय की धारा के अनुकूल है और युग की माँग के अनुरूप ही उन्होंने अपनी लेखनी को ढाला है।

बा० वृन्दावनदास जी वरिष्ठ पत्रकार एवं वक्ता हैं। उनके निकट सम्पर्क में जो भी आया वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। उनके विचार अत्यन्त प्रौढ़ एवं हृदयग्राही हैं। बाबूजी द्वारा लिखित "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य पढ़ने का जब मुझे सौभाग्य मिला तो मैंने उनके मौलिक विचारक के रूप को देखा इस पुस्तक में उनका स्वस्थ और मौलिक चिन्तन सर्वत्र स्पष्ट झलकता है।

मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बाबूजी की लेखनी से लिखित कभी इतिहास ग्रन्थ भी पढ़ने को मिलेगा। 'प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य' ग्रन्थ देखकर मैं उनकी अध्ययनशीलता का लोहा मान गया। इसमें बाबूजी ने नितान्त तटस्थ होकर अपने संयत विचारों को स्पष्ट किया है।

बाबूजी सफल साहित्यकार के साथ साथ एक समाजसेवी भी हैं इस क्षेत्र में उनकी सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें "साहित्य वारिधि" की उपाधि से सम्मानित किया गया है। अनेक अनेक संस्थाओं के जन्मदाता एवं पदाधिकारी हैं। 'ब्रजभारती' के सफल सम्पादक के रूप में आप सुख्यात हैं। आपकी साहित्य सेवा स्मरणीय रहेगी। मैं बाबू जी का अभिनन्दन करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मेरा नमन

⊙

हरगोविन्द गुप्त

आदरणीय बाबू (श्री वृन्दावनदास) जी का और मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना नहीं है, पर ऐसा भी नहीं है कि उसे एकदम नया कहा जा सके। उनके और अपने अयाचित-अनियोजित, संयोगजन्य सम्बन्ध पर मुझे बाबा श्री तुलसीदास जी की उक्ति स्मरण हो आती है।

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी हू पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरै अनेकन व्याध॥

बात सन् १९७० की है। मेरे साहित्यिक कार्यों के प्रेरक शुभैषी श्रद्धास्पद डा० श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल के पत्रों का संकलन वे कर रहे थे। तभी मुझे ठोक-पीट कर वैद्यराज बनाने वाले पूज्य दादा श्री चतुर्वेदी जी ने अपनी उपेक्षितों की उपासना करने की जन्मजात धुन में अपने मनमाने मसाले लगाकर मेरा नाम उन्हें बताया और वे मेरी गले पड़ गये।

सम्बन्धित विषय को लेकर कई कृपापत्र उनके मेरे पास आये, जिनमें हर बार उनको सरल, सहज और सौम्य दर्शन ही मुझे मिले। भले ही उनकी वह निर्मल स्नेहधारा श्रद्धास्पद् दादा श्री चतुर्वेदी जी के कारण प्रवाहित हुई हो या डा० अग्रवाल के कारण पर मेरे अपने लिए वह एक संयोगजन्य होकर भी मेरी कृतार्थता के लिए पर्याप्त थी और है। डा० अग्रवाल के पत्रों की प्रतिलिपि भेजने के साथ ही मैंने अपने आप में सोचा था, स्यात् अब यह स्नेहधारा और आगे आगे न बढ़े। हुआ उसके विपरीत यह कि—

तुलसी बाँह सपूत की सपने में छू जाय।
आप निबाहे जन्म भर लरकन सो कह जाय॥

और मैं देखता हूँ कि आज के इस क्षण तक उनका वह सहज स्नेह उसी अबाध और अनवरत रूप में मिल रहा है। कहीं कोई साहित्यिक वा सांस्कृतिक आयोजन उनके माध्यम से हो कोई प्रकाशन उनके सहयोग से हो उन सब में अपने स्नेह का दान वे सहज रूप में मुझे देते हैं। यह बात दूसरी है कि मैं अपनी परिस्थितियों के अपने स्वभाव के कारण उनका उतना लाभ जितना वे देना चाहते हैं न उठा सकूं। किसी की कृपा का स्नेह का लाभ उठाने के लिए भी तो पूर्व सुकृतों की साधना आवश्यक होती है। पर मैं उनकी कृपा का लाभ उठा सकूं या न उठा सकूं वे अपने अपनत्व को अनवरत रूप से निभाए जा रहे हैं।

व्रज-भारती तो वे सन् १९७० से अब तक निरन्तर भेजते ही हैं तथा उनके माध्यम से जो और प्रकाशन होता है, या जिसे वे मेरे लिए उचित समझते हैं अपने स्नेहानुग्रह के प्रसाद रूप मुझे देकर उत्साहित और उपकृत करते हैं। इतना ही नहीं मेरी मात्सर्य या आलस भरी किसी बात को वे भले ही आई-गई कर बिसरा दें पर यदि मेरी कोई बात उन्हें रुचिकर हुई तो उसे दादा श्री चतुर्वेदी जी की ही भांति तिल का ताड़ बनाकर प्रचारित और प्रसारित करेंगे।

स्वतंत्रता रजत जयन्ती वर्ष में राष्ट्रकवि गुप्त जी के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सम्मानित कराने के कार्य में मैंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की अनुभूति का कुछ सुझाव कुछ राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा प्रेमियों की सेवा में निवेदित किये थे। झांसी-आगरा कारागारों में जहाँ राष्ट्रकवि महोदय राजबन्दी के रूप में रहे थे उनके स्मारकों की बात भी थी। मेरे उन आवेदनों का अन्य स्थानों पर जो प्रभाव हुआ वह तो हुआ ही यह स्थान उसकी चर्चा का नहीं है, पर बाबूजी ने उसके लिए जो प्रयत्न किया उसके परिणामस्वरूप ही उ० प्र० के तत्कालीन कारागृह मंत्री श्री स्वामीप्रसाद जी ने झांसी कारागार में राष्ट्रकवि स्मारक या स्मरण की योजना पर अपनी स्वीकृति की छाप लगाई—यह बात दूसरी है कि वह विभाग अब उनके हाथ से चले जाने पर वह योजना अभी मूर्तरूप नहीं ले पाई। राष्ट्रकवि की स्मृति में डाक टिकट जारी कराने के मेरे सुझाव पर उन्होंने ब्रजभारती के सम्पादकीय में जोरदार टिप्पणी लिखी और केन्द्रीय सरकार की सेवा में निवेदन पत्र भेजा था। परिणामतः आज हम उस प्रयास को साकार रूप में देख रहे हैं।

साक्षात्कार होने के पूर्व मैं उन्हें एक आधुनिक वेश-भूषा और शहरी आचार-विचारों से आवेष्टित, अभिवक्ता मानता था, पर जब एक बार वे झांसी पधारे और श्री घासीराम व्यास स्मृति-भवन में उनके सम्मान में आयोजित एक गोष्ठी का आमंत्रण मुझे मिला तब मैं भी अपने संकोची स्वभाव को लेकर डरता डरता-सा वहाँ पहुँचा। भांति-भांति की मनगढ़न्त कल्पनाएँ उनके रूप-रस को लेकर मन में आ जा रही थीं। पर वहाँ मानस-मुद्रण में जाकर जब उनके दर्शन किये तो मेरी सारी कल्पनाओं पर पानी फिर गया। उनका अत्यन्त सरल, सहज और सादगी से भरा निश्छल स्वरूप जो भीतर और बाहर एक-रसता से विभोर देखकर मैं अभिभूत होकर रह गया; चकित और विस्मित।

एक अन्य साहित्यिक मनीषी उस दिन उनसे मिलने के लिए अपने दूरस्थ गांव से झांसी पधारे थे पर वे झांसी आकर अपने एक अन्य मित्र के यहां ठहर गये और बाबूजी के आवास-स्थान पर न आकर वहीं से सन्देश भेज दिया कि मैं इस समय तक अमुक स्थान पर ठहरा हूँ। जो कुछ लोग वहाँ बैठे थे सन्देश सुन कर सन्न रह गये। हम नहीं कह सकते उन साहित्यकार मनीषी की और बाबूजी की गरिमा क्या है? पर सौजन्य और व्यावहारिकता के नाते जब बाबूजी मथुरा से झांसी आये थे तब किसी भी झांसीनिवासी को भले ही वह झांसी जनपद के किसी ग्राम का निवासी हो, उनके डेरे पर ही पहुँचना मिलना चाहिए था— या उनके सम्मान में आयोजित गोष्ठी में उनसे भेंट कर लेनी थी। पर हम लोग तो सोचते ही रहे और बाबूजी ने अपनी सहज-साधुता और गम्भीरता के साथ किसी दुर्भावना के बिना ही उन मनीषी महोदय से उनके डेरे पर जाकर भेंट की।

इसी प्रकार उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक साहित्यकार बन्धु उनसे झांसी में आकर मिले, और एक-दो बातों के पश्चात अपनी एक कविता पुस्तक पर उनकी सम्मति मांगी। बाबूजी ने बात सुनी और सहज स्वर में कहा—'भाई उसके लिये तो आपको घूँस देनी होगी' और वह घूँस यही है कि आप रात में यहां रुकिये हम सबके साथ भोजन कीजिए। अपनी कविता का रसास्वादन कराइए और फिर सवेरे जलपान में सहयोग दे सम्मति लीजिए। कवि महोदय अपनी धुन के धुनी थे बाबू जी की बात में उन्हें टालने वाली बात की नहीं स्नेह की ही झलक दिखाई दी वे रात में वहीं रुके, कवि सम्मेलन में कविता पाठ किया और सवेरे बाबूजी के साथ जलपान कर उनकी तथा श्री परिपूर्णानन्द जी की सम्मति लेकर प्रसन्नता भरे हृदय से बाबूजी से विदा हुए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस प्रकार मैं अनुभव करता हूँ कि आज के अहम्वादी युग में भी वे अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं और परम्पराओं के अपने प्रतीक हैं। सौम्य, सरल, सज्जन और सहृदय। सुधी तो हैं ही।

अपनी हार्दिक श्रद्धा एवं सद्भावनाओं के साथ उन्हें अपने प्रणाम निवेदित करने में मैं अपना गौरव मानता हूँ।

●

शत-शत वन्दन

⊙

देवकीनन्दन शर्मा

एम० ए० (हिन्दी संस्कृत), साहित्यरत्न

ब्रज, ब्रज-भाषा और ब्रजेश में भारतीय संस्कृति के पूर्ण दर्शन होते हैं। यह संस्कृति वृन्दा, वन और दासों से विभूषित ही नहीं जाज्वल्यमान है। भोजन, भजन और भेषज में वृन्दा का अपूर्व स्थान है। जन्म से मृत्यु तक सभी कार्यों में इसकी पूजा इसके गुणों से है। वन, ब्रज तथा ब्रजधराधिप को ही, प्यारे नहीं रहे हैं,। वरन् ऋषि, मुनि, महर्षियों के साथ ये संस्कृति के स्रोत रहे हैं और हैं। चौदह वर्ष के वन-वास ने राम को रामत्व प्रदान किया। पाण्डव वन में ही रहकर प्रखर पराक्रमी हुए और उनका पाण्डवत्व देदीप्यमान हुआ। आज भी वनों की महिमा से सभी अवगत हैं। अब रहीं दासों की चर्चा, हो भक्त-शिरोमणि सूरदास पहले भक्त हैं। पीछे सूरदास वृन्दा के दास तुलसीदास लोकनायकत्व प्राप्त कर चुके हैं। यहीं नहीं कितने ही दासों ने आचार्यत्व प्राप्त किया है। इस प्रकार यह इन शब्दों (वृन्दा, वन, दास) का अलग-अलग चमत्कार है; किन्तु जो स्वयं वृन्दावनदास हैं, जिनमें तीनों का सम्मिश्रण तीनों का समन्वय और तीनों का सामंजस्य है, ऐसे वृन्दावनदास, ब्रज और ब्रज-भाषा के लिए क्योंकर अमूल्य निधि न होंगे? उन्हें मेरा शत-शत वन्दन है और उनके चिरजीवी होने की उत्कट कामना है।

●

समारोहों के आयोजक

⊙

डा० विश्वदेव शर्मा

एम० ए० (हिन्दी, इंगलिश) पी-एच० डी०

साहित्यिक समारोहों का आयोजन करना एवं करवाना बाबू वृन्दावनदास जी के स्वभाव की विशेषता है। इसमें वे तन मन धन सभी प्रकार से सहायता करते हैं। कविरत्न सत्यनारायण शताब्दि समा-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रोह, ग्वाल कवि शताब्दि समारोह, शिशुस्मृति समारोह, सूर समारोह, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति समारोह सभी में बाबूजी की प्रेरणा एवं प्रयास निहित हैं।

साहित्य के सम्पादन, संकलन एवं प्रकाशन की ओर आपकी महती रुचि है। 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' 'डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र', 'पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' सत्यनारायण कविरत्न का 'देशभक्त हीरेसिंह', 'भारत में हिन्दू राज्य' आदि पुस्तकों का सम्पादन आपने ही किया है, जिसमें प्रथम और अन्तिम तो आपकी ही रचनाएँ हैं। अ० भारतीय ब्रजसाहित्य मंडल एवं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में आपकी सेवाएँ सुविदित हैं। ब्रजभारती का आठ वर्षों से अनवरत प्रकाशन तो निश्चित ही स्तुत्य है। पं० बनारसीदास अभिनन्दन ग्रन्थ—श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ दोनों का सम्पादन आपने किया है।

बाबूजी के कर्मठ व्यक्तित्व एवं उनकी साहित्य रचना तथा सेवाओं से प्रभावित होकर सम्मेलन ने उन्हें सम्मेलन की सर्वोच्च "साहित्य वारिधि" की उपाधि से विभूषित किया है।

वे शताधिक वर्षों तक साहित्य सेवा में निरत रहें, उन्हें मेरा नमन।

●

सौमनस्य की मूर्ति

⊙

डा० राजेन्द्र सिंह कुशवाहा
एम० ए०, पी-एच० डी०

बा० वृन्दावनदास जी देश की एकाधिक साहित्य संस्थाओं की प्रेरक शक्ति हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के तो वे प्राण हैं। अपकर्ष के गर्त की ओर उन्मुख मंडल को स्थिर आधार प्रदान करने में आपका योगदान स्तुत्य है। ५८ हजार रुपये की राशि संचित कर मंडल के लिए भवन और भूमि का अधिग्रहण करने का आपका प्रयास साहित्य सेवियों और ब्रजवासियों को सदैव स्मरण रहेगा. आप ब्रज साहित्य मंडल की मुखपत्रिका 'ब्रजभारती' को आठ वर्षों से अजस्र रूप से सम्पादित एवं प्रकाशित करते रहे हैं। आपके सम्पादन काल में जहाँ बड़े लेखकों की रचनाओं को पत्रिका में स्थान मिला है वहाँ उदीयमान लेखकों को भी प्रोत्साहन की दृष्टि से स्थान मिला है।

आपका मत है कि हिन्दी का संवर्धन मात्र साहित्य से ही नहीं हो सकता है, उसमें शास्त्रीय ग्रन्थों का भी प्रणयन किया जाना चाहिए इस दिशा में आपने "भारत में हिन्दू राज्य" नामक ऐतिहासिक पुस्तक लिखकर प्रशंसनीय कार्य किया है। पत्र विधा के तो आप निष्णात पंडित हैं आपके द्वारा सम्पादित 'पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' तथा 'डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र' दोनों ही रचनाएं इस दिशा के मार्ग-चिन्ह हैं। बाबूजी ब्रजभाषा साहित्य के आराधक एवं हिन्दी के पुजारी हैं:

प्रत्येक साहित्यकार का स्वागत सम्मान करने में उन्हें आनन्द मिलता है। अग्रजन्माओं के प्रति

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्रद्धा तथा छोटों के प्रति स्नेह तथा सभी के प्रति सौमनस्य का भाव उनके चरित्र की विशेषता है। वे शतायु पर्यन्त साहित्य की सेवा करते रहें और उनके अभिनन्दन होते रहें।

●

हिन्दी के जागरूक प्रहरी

⊙

डा. एम. खान. दुर्रानी
एम० ए० (संस्कृत) पी-एच० डी०

ब्रज जनपद में बा० वृन्दावनदास जी की ख्याति साहित्य के क्षेत्र में सर्वत्र बगरी हुई है। ब्रज का शिक्षित वर्ग उनके साहित्य प्रेम एवं साहित्य सेवाओं से सुपरिचित है। वे ब्रजभाषा के अध्येता हैं, तथा उसके मार्मिक विद्वान् भी। हिन्दी के क्षेत्र में भी उनकी साहित्यिक यात्राएँ हुआ करती हैं। जहाँ तक हिन्दी के विद्वानों के सम्पर्क का सम्बन्ध है, मेरा ऐसा अनुमान है कि उनका परिचय हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख विद्वानों से है। उनके स्वागत भाषण एवं उद्घाटन भाषण बड़े मार्मिक और साहित्यिक होते हैं उनमें आधुनिक समस्याओं का निर्देश होता है तथा उनके समाधान का दिशानिर्देश भी। समारोहों के तो वे एक तरह प्राण ही हैं, किसी भी साहित्यिक समारोह के लिए उनके आर्थिक सहयोग की पूर्व अनुमति प्रत्येक साहित्यज्ञ को प्राप्त है, उनका बौद्धिक सहयोग अल्प आयास ही से ही प्राप्त हो जाता है, साहित्य और भाषा के प्रश्न पर वे बड़े सजग हैं। भाषा और साहित्य संबन्धी संस्थाओं की रीतिनीति एवं सरकारी रीतिनीति सभी का वे सावधानीपूर्वक अध्ययन करते हैं तथा वे उसकी शल्य चिकित्सापरक विवेचना ब्रजभारती के सम्पादकीय में या अन्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निकालने में तनिक भी संकोच एवं विलंब नहीं करते। साहित्य-संवर्धन, किसी साहित्यज्ञ की स्मृति समारोह, किसी पत्रिका का विशेषांक या किसी ग्रन्थ का प्रकाशन इन कार्यों के लिए वे सर्वदा कटिबद्ध होकर सन्नद्ध हैं, वे व्यर्थ की नुन-नच नहीं करते। प्रत्येक सद्कार्य में सहयोग देना आपनी प्रकृति है।

ब्रजभाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने में सहायक है, उसकी भूमिका विधायक है विनाशक नहीं इस दृढ़ विश्वास के साथ वे हिन्दी मंच पर अग्रसर हुए हैं। जनपदीय आन्दोलन के तो वे पुरोधा हैं। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक जनपदीय भाषा मानक हिन्दी की आकर भाषा है, जनपदीय भाषाओं का उन्नयन एवं संवर्धन हिन्दी का सम्वर्धन है। आसेतु हिमाचल पर्यन्त देश का भ्रमण कर उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किए हैं उसके आधार पर उन्होंने अपनी मान्यताओं का निर्धारण किया है। वे स्वयं को साहित्यज्ञ न कहकर साहित्यसेवी कहते हैं यह बाबू जी की विनम्रता है। अभिनन्दन के इस अवसर पर मेरा उन्हें प्रणाम। ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे और वे साहित्य सेवा करते रहे।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धन्य व्यक्तित्व

देवेन्द्रदत्त नौटियाल
एम० ए०

कथनी और करनी में एकरूपता लाना, समन्वय स्थापित करना कठिन काम होते हुए भी आवश्यक है। जीवन में इसीलिए ऐसे मनीषियों को अपना आदर्श बनाना पड़ता है जिन्होंने जो कहा है वह किया है, कठिन काम को आसान तथा सबके लिये व्यावहारिक बनाया है और अपनी कर्मण्यता का आदर्श स्थापित किया है। समाज राजनीति तथा अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे ही व्यक्ति उभर कर आते हैं जो "कार्यम् वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्' के सिद्धान्त को जीवन में उतार लेते हैं। बा० वृन्दावनदास जी भी बड़े जीवट के व्यक्ति हैं जिस काम में जुट जाते हैं उस काम को पूर्ण करके ही सांस लेते हैं। ब्रज साहित्य मंडल के भवन एवं स्थल के अधिग्रहण के कार्य में उन्होंने लगभग एक दशाब्दि तक निरन्तर प्रयास किए और अन्ततोगत्वा सफलता उनकी चेरी बनी।

बाबूजी का साहित्यिक रूप सुविदित है वे साहित्य सृजन में व्यस्त रहते हैं तथा हिन्दी भाषा एवं साहित्य का प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य है। वे धन्य हैं। मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

साहित्यज्ञों के आराधक

डा० जगदीश प्रसाद गुप्त
एम० ए०, पी-एच० डी०

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि 'ब्रजभारती' के यशस्वी संपादक बा० वृन्दावनदास जी के अभिनन्दन के उपलक्ष्य में एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। अभिनन्दनीय का अभिनन्दन उभय पक्ष के लिए कल्याणकारी है।

आज के 'स्वकेन्द्रित युग' में, जबकि प्रत्येक व्यक्ति आपाधापी एवं अपनी उदरपूर्ति तथा परिवार पालन में ही पूर्णतः लीन है निस्पृह साहित्य सेवी व्यक्ति धन्य हैं। बा० वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार का है, उन पर जहाँ 'श्री' का वरद हस्त है वहाँ 'वाणी' की मुक्त कृपा भी है। विनम्रता की तो उनमें पराकाष्ठा है "हौं पंडितन केर पछिलगा" कहकर वे अपनी विद्वत्ता को विनम्रता में छिपाते रहते हैं। बाबूजी जहाँ प्राचीन कवियों के स्मृति समारोह आयोजित करते हैं वहाँ वे उनकी कृतियों को मुद्रित भी करवाते हैं। कविरत्न सत्यनारायण जी के देशभक्त होरेशस का सम्पादन कर उसे ब्रज साहित्य मंडल से आपने प्रकाशित करवाया है। अपने निवास स्थान पर साहित्यज्ञों का सम्मान करना, प्राचीन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्यज्ञों की स्मृति में आयोजन करना, उदीयमान साहित्यविदों को प्रोत्साहन प्रदान करना, विद्वानों का अभिनन्दन करना, साहित्यिक सामयिक विषयों पर लिखना आपकी हाबी है। साहित्यिक आयोजनों को आर्थिक सहायता प्रदान करना आपका सहजगुण है। हिन्दी की अनेक संस्थाओं को आपसे प्रेरणा एवं सहायता मिलती रहती है। अभिनन्दन तो उनके अनेक हो चुके हैं अनेक विशेषांक भी उनके विषय में निकले हैं पर सार्वदेशिक स्तर पर अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का आयोजन कर साहित्य प्रकाशन का सव्याज-प्रयास प्रशंसनीय है। बाबूजी को मेरी विनम्र प्रणति।

●

बाबू वृन्दावनदास जी का व्यक्तित्व व कृतित्व

⊙

राधेबिहारीलाल सक्सेना 'राकेश'

साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास जी ब्रजक्षेत्र की उन साहित्यिक विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और लगन से ब्रज साहित्य मंडल और ब्रजभारती को ही पुनर्जीवित नहीं किया बल्कि ब्रज के साहित्यकारों में भी एक नवीन चेतना उत्पन्न की। जनपदीय आन्दोलन को एक नया रूप प्रदान कर तथा अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के लिये पुरस्कार योजना प्रचलित कर उन्होंने एक नवीन परम्परा का सूत्रपात किया है। प्राचीन हिन्दी साहित्यकारों की जयन्तियाँ, शताब्दी समारोह, नवीन लेखकों को पर्याप्त प्रोत्साहन व हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु वे तन, मन, धन से सक्रिय ही नहीं हैं बल्कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही इसके लिये अर्पित कर दिया है। यह बड़े हर्ष व गर्व की बात है कि हम उन्हें अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित कर रहे हैं।

बाबू जी का जन्म मथुरा नगर के एक प्रतिष्ठित एवम् सम्भ्रान्त व्यापारी परिवार में लाला हीरालाल जी अग्रवाल के यहां अगस्त सन १९०६ में हुआ था। बाबू जी की साहित्यिक वृत्ति का विकास विद्यार्थी-काल से ही विभिन्न रूपों में हुआ है। बी० ए० एल-एल० बी० पास करने के पश्चात् आपने वकालत की और न व्यापार की ओर आकृष्ट हुए। कालेज छोड़ने के पश्चात् आपने हिन्दी की मासिक-पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक विषयों पर अनेक लेख लिखे। प्रारम्भ में आपने डोर निदाड का विशाल कार्य अवश्य आरम्भ किया किन्तु साहित्यिक और सामाजिक अभिरुचि होने के कारण उसे बन्द करना पड़ा और तभी से सार्वजनिक जीवन व्यतीत करने लगे।

बाबूजी के जीवन को उनके कार्य और सेवा के अनुसार निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) शिक्षण संस्थाओं में सेवा—सन् १९५७ में नगरपालिका अध्यक्ष निर्वाचित होने पर उन्होंने अनेक नवीन प्रारम्भिक पाठशालाओं की स्थापना की। शिक्षा के प्रति आप विशेष सजग रहे हैं। मथुरा डेम्पीरियर नगर में स्थित राजकीय पुस्तकालय आपके ही उद्योग का परिणाम है। अग्रवाल कन्या विद्यालय,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चम्पा अग्रवाल इन्टर कालेज, बी० एन० पोद्दार हा० से० स्कूल, बाबू शिवनाथ अग्रवाल डिग्री कालेज की प्रबन्ध समितियों के पदाधिकारियों के पद पर रह कर उनका संचालन करते रहे हैं। विद्यासागर वैदिक पुस्तकालय का पुनरुद्धार आपने ही किया।

(२) **सहकारिता क्षेत्र में सेवा**—इस क्षेत्र में आपकी सेवाएँ अति प्रशंसनीय रही हैं। उ० प्र० सहकारी संघ, उ० प्र० सहकारी बैंक, उ० प्र० सहकारी यूनियन आदि के सुयोग्य प्रबन्धक वम् संचालक रहे हैं। आप सहकारी ढंग पर साहित्यकारों के लिए सहयोगी प्रकाशन संस्था चलाने के लिये प्रयत्नशील हैं। इस क्षेत्र में बाबू जी ने अहिन्दी प्रांत जैसे मद्रास, काश्मीर, इत्यादि राज्यों में भी भ्रमण किया है।

(३) **राजनैतिक कार्य**—बाबू जी हिन्दी, संस्कृति व भारतीय राष्ट्रीयता के परम भक्त हैं और इन्हीं विचारधाराओं से ओतप्रोत होने के कारण वे सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करने वाले उत्साही कर्मठ कार्यकर्त्ताओं से बहुत प्रभावित हैं। स्वतन्त्र प्रत्याशी होने के कारण ही उन्हें नगरपालिका मथुरा के अध्यक्ष पद पर विजय प्राप्त हुई थी २५ वर्ष तक उन्होंने नगरपालिका का सराहनीय कार्य किया। वे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे। नगरपालिका अध्यक्ष निर्वाचित होने पर उन्होंने अनेक मुख्य राजमार्गों का सुधार करवाया और जल-कल व्यवस्था का पुनर्गठन किया।

(४) **सामाजिक कार्य**—आप पुरातत्व संग्रहालय समिति के सदस्य रहे और भारतीय कला, संस्कृति और साहित्य की अलभ्य वस्तुओं के संग्रह में पूर्ण सहयोग दिया। मथुरा आकाशवाणी केन्द्र को विकसित करने में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गोवर्धन साहित्य परिषद् तो आपकी छत्रछाया में ही पल्लवित हुई है। उसकी उन्नति का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है।

(५) **साहित्य सेवा**—प्रारम्भ में बाबूजी ने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद और हिन्दी अंग्रेजी के एक शब्दकोश की रचना की। तभी से अधिकांश समय आप साहित्य सेवा में देने लगे।

अर्वाचीन समस्याओं एवम् सार्वजनिक जीवन की कठिनाइयों पर ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से आपने अंग्रेजी, हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक पत्रों में जब तब अनेकों पत्र भेजकर प्रदेश के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में लोकप्रिय स्थान बना लिया है। बाबूजी अंग्रेजी के दैनिक पत्र "लीडर" प्रयाग के यशस्वी ख्यातिप्राप्त लेखक हैं। कल्याण, माधुरी, सरस्वती, ब्रजभारती, चाँद, प्रभा, सुधा, विशाल भारत, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवयुग सन्देश व विश्वामित्र इत्यादि पत्रों के सुधी पाठक उनकी लेखनी से परिचित हैं।

बाबूजी की प्रकाशित पुस्तकों में भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य (दूसरा संस्करण) प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र मारकण्डेय पुराण (सम्पादित) काव्य नवनीत (सम्पादित) वीरवर होरेशस (सम्पादित) प्रमुख हैं।

भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य पुस्तक में भारतीय इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित निबन्ध संकलित हैं। इस संग्रह में सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक निबन्ध संग्रहीत हैं। नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के एक अंक, के पृष्ठ १७१ पर आपका लेख 'कुषाण कालीन भारत' से आपकी भारत की गौरवमयी संस्कृति और इतिहास के प्रति निष्ठा होने की भावना प्रदर्शित हो ही जाती है। उपरोक्त लेख में बाबू जी ने इतिहास की जानकारी के पाँच साधन बतलाये हैं (१) शिलालेख (२) मुद्राएँ (३) शिल्पकला (४) प्राचीन साहित्य (५) विदेशियों के वर्णन। कनिष्ककाल के तीन प्रधान कलाविद् थे जिनकी चर्चा बाबूजी ने अपने उक्त लेख में पृष्ठ १७६ पर की है। नागरी प्रचारिणी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सभा पत्रिका के एक अंक में बाबू जी का ऐतिहासिक लेख "कौटिल्य काल के गुप्तचर" प्रकाशित हुआ था। इस लेख में बाबूजी ने कौटिल्यकाल के गुप्तचरों का वर्गीकरण करके उनके कार्य और अधिकार बतलाये और वर्तमान सरकार के गुप्तचरों से उनकी तुलना की है। लखनऊ से प्रकाशित माधुरी में आपका निबन्ध "हिन्दी की उत्पत्ति एवम् विकास" अपने समय में बहुचर्चित रहा। इस निबन्ध में बाबूजी ने अपभ्रंशकाल से लेकर गद्यकाल तक हिन्दी के विविध रूपों और प्रवृत्तियों के पतन उत्थान का विवेचन किया है। उन्होंने शब्दों के आडम्बर से रहित विषयानुकूल प्रवाहयुक्त प्रभावमयी जनप्रिय सरल भाषा का प्रयोग किया है जिसके कारण आपके लेख समाज में जन-जन के पठन-पाठन का विषय बन गये।

बाबू जी ने हिन्दी गद्य की अनेक विधाओं पर प्रशंसनीय कार्य कर महत्वपूर्ण योग दिया है। पत्र-लेखन का स्थान पाश्चात्य साहित्य संसार में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता सार्वजनिक व राजनीति के कार्यकर्ता के लिए अत्यधिक होती है। बाबू जी ने इस कला को आत्मसात कर राजनैतिक एवम् सामाजिक जनोपयोगी विषयों पर खूब लिखा और जब तब लिखते रहे हैं। साहित्य साधना आपके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस कारण आप समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते रहते हैं।

काव्य नवनीत पुस्तक में बाबूजी ने ब्रजभाषा के प्रख्यात कवि श्री नवनीत चतुर्वेदी की कविताओं को संकलित कर उनके जीवन परिचय व साहित्य साधना पर यथेष्ट प्रकाश डाला है, और इस प्रकार अतीत की स्मृति को विलुप्त होने से बचाकर एक सराहनीय कार्य किया है। इसी प्रकार ब्रजभाषा के लोकप्रिय कवि स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न की पुस्तक वीरवरहोरेशस को प्रकाशित किया है इस प्रकार ब्रज साहित्य मंडल के सहयोग से उन्होंने हिन्दी साहित्य के दो ऐसे उच्चकोटि के कवियों की कृतियों को प्रकाशित कर हिन्दी साहित्य प्रेमियों व साहित्यिकों के लिये उपलब्ध कर दिया है जो कि अप्राप्य थीं और उनका मिलना अब सुगम हो गया है।

बाबूजी का सचित्र परिचय साहित्यिक सन्दर्भ ग्रन्थों में जैसे भारतीय लेखक कोष, (आगरा), सोलहव बत्तीस साहित्यकार तथा हिन्दी साहित्य के नवीन इतिहास में प्रकाशित हुआ है। दैनिक अमर उजाला में ब्रज के लोकप्रिय कवि श्री राजेन्द्र रंजन ने उनकी साहित्य साधना पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। बाबूजी का जीवन अत्यन्त ही व्यापक और व्यस्त है। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल सन् १९६३ में आपको अभिनन्दन पत्र भेंट कर चुका है। हर्ष है कि हिन्दी साहित्यकार उन्हें अब उनकी सेवाओं के उपलक्ष में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट कर रहे हैं। बाबूजी सन १९५७ में ब्रज साहित्य मंडल के समारोह मंत्री थे व १९६४ से आज तक अध्यक्ष हैं। नगरपालिकाध्यक्ष के कार्यभार से मुक्त होने पर आपने अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के पुनरुद्धार का व्रत लिया। आपके प्रयास से मंडल की भूमि के अधिग्रहण की समस्या प्रायः सुलझ ही गई है और आशा है कि अब मंडल का कार्य अधिक उत्साह से आगे बढ़ सकेगा।

आप ब्रज साहित्य मंडल की त्रैमासिक शोध पत्रिका "ब्रजभारती" के सम्पादक हैं आपकी सामयिक टिप्पणी तथा विचार जनमानस को सदैव ही उद्वेलित करते रहते हैं। आप इसके प्रकाशन का भी बहुत कुछ भार वहन कर रहे हैं। मथुरा की प्रमुख प्रकाशन संस्था "शिक्षा ग्रंथागार" आपकी है जिसका संचालन आपके सुपुत्र श्री गोविन्द प्रसाद जी अग्रवाल कर रहे हैं। पत्र लेखन साहित्य में आप विख्यात हैं। प्रारम्भ से ही आप व्यापार त्याग कर अधिकांश समय साहित्यिक एवम् शिक्षण संस्थाओं के प्रतिष्ठित पदों पर आसीन रहे और अब भी हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पर्क से आपने स्वर्गीय साहित्यकारों के श्राद्ध मनाने की प्रथा मथुरा में प्रचलित की तथा नवीन साहित्यकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करने का संकल्प लिया। ब्रजभाषा एवं हिन्दी प्रचार आन्दोलन को विकसित करने में बाबूजी पूर्णतः सक्रिय हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के तत्वावधान में आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता बाबूजी के नाम से चलती है जिसमें आपकी ओर से १०१) का पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

बाबूजी ने 'प्रेरक साधक : श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ' के जन्मदात्री ब्रजभूमि वाले भाग का सम्पादन किया है। इसमें बाबूजी ने ब्रज साहित्य, ब्रज की संस्कृति, ब्रज का लोक साहित्य ब्रज के साहित्यकार, कवि, कलाकार, चित्रकार ब्रज के मंदिर देवालय, उत्सव त्यौहार मेले इत्यादि के सम्बन्ध में उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा प्रमाणित सन्दर्भ सामग्री प्रस्तुत की है। ब्रज का प्राचीन साहित्यिक रूप इस ग्रंथ में उभरकर स्पष्ट हो गया है जिसके लिये बाबूजी बधाई के पात्र हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने बाबूजी की साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें साहित्य-वारिधि की उपाधि से विभूषित किया है। इस अवसर पर ब्रज साहित्य मंडल, आगरा शाखा ने उनका अभिनन्दन किया था।

साहित्य सेवक के साथ आपमें सरलता, सरसता, स्नेह, सहानुभूति, सहयोग ऐसे सद्गुण हैं जिनके कारण आप नगर में लोकप्रिय समाजसेवी व्यक्ति बन गये हैं। आप दलबन्दी से अलग रहकर निष्पक्ष निस्वार्थ रूप से कार्य करने में आनन्द की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार शिक्षा, साहित्य, सहकारिता एवम् स्वायत्तशासन चारों क्षेत्रों में उनकी अपूर्व सेवायें हैं और वे साहित्य साधना में बेजोड़ हैं।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे

कमल कुमार मेहरोत्रा
एम० काम०

अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के गाजियाबाद अधिवेशन में अवकाश के क्षणों में अनौपचारिक वार्तालाप चल रहा था। अचानक प्रश्न उपस्थित हुआ कि साहित्यिक व्यक्ति किसे माना जाये। बाबू जी ने बड़े संयत भाव से उत्तर दिया कि मैं तो प्रत्येक सुशिक्षित को साहित्यिक मानता हूँ। यह विचार प्रथम दृष्ट्या बड़ा हलका-फुलका प्रतीत हुआ, पर बाबूजी से वार्तालाप करने पर ज्ञात हुआ कि ये शब्द उन्होंने बड़े सुविचारित ढंग से कहे हैं। बाबूजी ने सुव्याख्यात रूप में बताया कि साहित्य में एक ओर जहाँ परम्पराभुक्त दृष्टिकोण सबल हैं वहाँ उसका दूसरा परम्पराभुक्त आयाम भी कम परिपुष्ट नहीं है जिसमें जनजीवन में उभरता हुआ विद्रोह चिन्तन है, आक्रोश और कुंठाएँ व्यक्त हो रही हैं, जीवन के घिनौने और कामुक चित्र साहित्य की भाषा में बाँधे जा रहे हैं। एक ओर ग्रन्थ ज्ञान का आश्रय है तो दूसरी ओर अनुभव प्राप्त ज्ञान है, युगबोध का प्रश्न सावधान कर रहा है। उनके द्वारा व्याख्यात साहित्यिक की परिभाषा बड़ी युगानुकूल प्रतीत हुई।

मानव के नाते बाबूजी उच्चकोटि के मानव तो हैं ही वे साहित्यिक भावक भी हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल की कार्यकारिणी का सदस्य होने के नाते उन्हें निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। वे मंडल के सफल अध्यक्ष सिद्ध हुए हैं। लक्ष्यपूर्ति उनका एकमात्र साध्य होता है, साधन वे स्वयं जुटा लेते हैं। उनके कार्यकाल में गतिहीन मंडल गतिशील हुआ है। आशा है कि प्रगामी रूप से प्रगतिशील भी हो जायगा।

वे सभी प्रकार से बड़े हैं। मैं उनका अभिवादन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पुष्ट प्रतिमानों के पोषक

डा० अरुणा दीक्षित
एम० ए०, पी-एच० डी०

लीक का फकीर बनना बात दूसरी है पर आदर्श परम्पराओं एवं पुष्ट प्रतिमानों के प्रति आस्था रखना उच्चतर ज्ञानस्तर का द्योतक है। पुराणपंथी अन्धविश्वासों को त्याज्य एवं गर्हित मान-कर सुस्थापित सुष्ठु परम्पराओं एवं मानव हित का वहन कर प्रतिमानों के प्रति सश्रद्ध भाव रखना, सनातन काल से चली आ रही मान्यताओं को रिक्थ समझ उन्हें अग्रगामी बनाने में सहयोग प्रदान करना बाबू वृन्दावनदास जी के चरित्र का प्रधान विधायक तत्व है। एक लोकप्रिय जननेता के रूप में भी उनके कार्यों को, उनकी सूझबूझ और उपलब्धियों को सर्वत्र सराहा गया है।

वे कार्यों के साधक हैं। किसी भी, अच्छे कार्यों में बाधक नहीं बनते। उनके जीवन का आदर्शवाक्य वाल्मीकि रामायण की निम्नलिखित सूक्ति है :—

"छिद्रं हि मृगयन्तेस्म यज्ञेषु ब्रह्मराक्षसा"

वे किसी भी सद्कार्य की पूर्ति में छिद्रान्वेषण नहीं करते हैं बस उस कार्य की बड़ाई ही करते हैं। सद्-कार्यों के सम्पादन के लिये बाबू जी हमेशा उत्सुक और तत्पर रहते हैं। दोष दर्शन की 'ब्रह्मराक्षसी' प्रवृत्ति का उनमें सर्वथा अभाव है।

मथुरा के साहित्यिक क्षेत्र में एक योग्य संयोजक के रूप में उनकी भूमिका जहाँ प्रशंसनीय है वहाँ प्रबुद्ध अध्यक्ष के रूप में उनके अभिभाषण युगबोध से युक्त तथा मार्गदर्शक होते हैं; वे अभिनन्दनीय हैं तथा श्रद्धास्पद भी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

⊙

कौसलाधीश मिश्र

एम० ए०

बाबू वृन्दावनदासजी एक बहुमुखी प्रतिभा के यशस्वी व्यक्ति हैं। किसी भी कार्य अथवा संगठन की सफलता उसके दूरदर्शी और समर्थ संयोजक पर निर्भर करती है। संयोजक की प्रतिभा, उनकी सूझ-बूझ, लगन और व्यापक दृष्टिकोण बिगड़ते कार्य को भी सँवार देती है। ब्रज साहित्य मण्डल को भी इसी प्रकार के एक सुयोग्य, मेधावी और कर्मण्य अध्यक्ष की काफी अर्से से आवश्यकता अनुभव हो रही थी। ब्रज साहित्य और ब्रज भारती के पोषण और संरक्षण, तथा ब्रज प्रदेश को उन्नत, समृद्ध और गौरवान्वित करने के लिए मौलिक दृष्टिकोण वाले एक सजग साधक की आवश्यकता थी। समय की यह माँग बाबू जी जैसे कर्मठ और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के मिल जाने से काफी हद तक पूरी हुई है। उनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन क्या साहित्य, क्या समाज सेवा, क्या शिक्षा एवं क्या संस्कृति सभी क्षेत्रों में हुआ है। ब्रज मण्डल की सेवा उन्होंने केवल एक साहित्य-सर्जक के रूप में ही नहीं की है प्रत्युत नगर पालिका के निर्वाचित सदस्य से अध्यक्ष पद तक को निरन्तर सुशोभित किया है। ब्रजवासियों के मनोनीत जन-नेता और कर्मठ समाज सेवी के रूप में आपकी सेवाएँ श्लाघनीय रही हैं।

एक जागरूक इतिहास वेत्ता के रूप में बाबूजी ने भारतीय इतिहास की सर्वथा नवीन वैज्ञानिक और मौलिक दृष्टिकोण से व्याख्या की है। उसके घटना क्रमों को बड़ी बारीकी से निरखा-परखा है, तथा उसे युगानुरूप और जीवनोपयोगी बनाने का यथाशक्य प्रयास किया है। बाबूजी ने जीवन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के उन चिरन्तन मूल्यों को खोजकर, जाँच-परख कर हमारे समक्ष उपस्थित किया है जिनसे हमारी संस्कृति गौरवान्वित है। उनकी समन्वय साधना का आधार भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परायें रही हैं। बाबू जी ब्रजमण्डल, ब्रजभूमि ब्रज साहित्य और ब्रज भारती के प्रेरणास्रोत हैं। वे ब्रजमण्डल में आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के सामञ्जस्य और समन्वय की पुनर्स्थापना की दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों में प्रभावी विकास के बावजूद हम अभी भी आदर्शवादियों द्वारा अनादिकाल से कांक्षित सामंजस्यपूर्ण एवं समन्वित एकता से बहुत दूर हैं। बाबू जी ने इस दिशा में भी स्तुत्य पहल की है। सहानुभूति, सौष्ठव और समरूपता का संचार कर जीवन को सन्तुलित और स्वस्थ बनाने में वे प्राणपण से तल्लीन हैं।

मेरी कामना है कि बाबू जी दीर्घकाल तक साहित्य साधना करते हुए साहित्य और संस्कृति को गौरवान्वित करते रहें। इसी प्रकार उनके और भी अभिनन्दन होते रहें।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मूर्तिमंत सदाशयता

राधाकान्त भारती

एम० ए० (हिन्दी, भूगोल)

जिनके लिए सदाशयता ही परम ज्ञान है, सेवा ही परम भक्ति है, कर्तव्यनिष्ठा ही सद्कर्म है ऐसे महान् व्यक्तित्व वाले, दिव्य गुणों से विभूषित हैं बाबू वृन्दावनदास जी। ज्ञान, अध्यवसाय और 'यावज्जीवं अधीते' की त्रिवेणी ने उनके जीवन में अनुपम प्रयाग उपस्थित कर दिया है। साहित्यिक और राजनीतिक क्षितिजों पर उच्च चरित्रबल, कर्तव्यपरायणता एवं लगन द्वारा आपने आदर्श प्रतिमानों का प्रतिदर्श स्थापित किया है।

अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अ० भा० जनपदीय परिषद के आदर्श अध्यक्ष के रूप में आपकी साहित्य सेवा अनुकरणीय रही है। ब्रजभारती के सम्पादक के रूप में तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लेखक के रूप में आपकी लेखन के प्रति अभिरुचि सुव्यक्त है। सम्पादन का दीर्घकालीन अनुभव एवं अनेक ग्रन्थों के लिखने के परिश्रम ने उन्हें राजनीति के क्षेत्र से साहित्य के क्षेत्र में ला खड़ा किया है। इस अवस्था के अनुकूल ज्ञान का प्रचार-प्रसार उनका वरेण्य है। सत् की प्रेरणा से अभिभूत आपकी कर्म शृंखला शतायु पर्यंत चलती रहे तथा वे निरोग रहें। उनका हार्दिक अभिनन्दन।

साहित्यनिष्ठ

अफलासिंह वर्मा

एम० ए० (हिन्दी, समाज शास्त्र)

धन वैभव से सम्पन्न होने पर अधिकांश व्यक्ति विलासिता के चक्कर में पड़कर कुमार्ग पर चलने लगते हैं। जो इससे बचते हैं वे माया-मोह से नहीं उबर पाते। बा० वृन्दावनदासजी सम्पन्न होते हुए भी परम सात्विक हैं। काम-क्रोध-लोभ आदि से असम्पृक्त। सत्य ही उनके निकट एकमात्र सत्य है।

अध्ययन एवं साहित्य साधना की सुविधा के लिए आपके निवास स्थान 'प्रकाश भवन' में एक विशाल कक्ष है। इसमें एक मेज के सहारे कुर्सी पर बाबूजी विराजते हैं बगल में तुलसीदासजी का विशाल चित्र है तो दूसरी ओर सूरदास जी का चित्रपट है। मेज पर अनेक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकों का जमघट। पीछे की आलमारी में पुस्तकों का जमाव है। इतना ही नहीं सामने की ओर एक छोटे से कमरे में किताबों के ढेर हैं। पुस्तकें आलमारियों, टांडों पत्थरों आदि पर तो रखी ही हुई हैं। ऐसे सरस्वती मंदिर में बा० वृन्दावनदासजी विराजते हैं।

साहित्य सृजन, पत्रलेखन एवं समारोहों का आयोजन तथा उनमें भाषण करना यही उनकी संक्षेप में गतिविधियाँ हैं। सुज्ञ साहित्यज्ञों का सम्मान करने में आपको बड़ा मनस्तोष होता है। वस्तुतः ऐसा साहित्यनिष्ठ स्तुत्य है। मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनव चैतन्य बाबूजी

डा० प्रेमलता पालीवाल
एम० ए०, पी-एच० डी०

हाथ में छड़ी लिए नापते हुए कदमों से चलते हुए व्यक्ति रूप में अवतरित एक अभिनव चैतन्य को मैंने मथुरा की चौक भरतपुर रोड़ पर बार-बार देखा है। इसी साकार चैतन्य को साहित्यिक समाओं में व सांस्कृतिक अनुष्ठानों में सभापति पीठ पर भी आसीन देखा है और इसी सार्वदेशिक व्यक्तित्व को नागरिक युवा समितियों, शिक्षा विचार यज्ञों, विद्यार्थियों की विविध प्रतियोगी-हलचलों में अध्यक्ष पदारूढ़ हुए साशीष पुरस्कार वितरण करते हुए भी पुनः-पुनः देखा है। और इसी महान् मस्तिष्क के मौलिक विचारों को आकाशवाणी के माध्यम से बार-बार सुना है। इसी अभिनव चैतन्य को हम स्नेहवश बाबूजी की संज्ञा देते हैं जिनके बारे में यह उक्ति सत्यवत् प्रतीत हो उठती है—

नहिं महत्तरं किंचित् मनुष्यात्

(मनुष्य से महान और कुछ नहीं है)

ब्रज संस्कृति के उन्नायक, हिन्दी साहित्य के पोषक, सभाओं के सौरभ, गोष्ठियों के गौरव, पत्रकारिता के प्रेरक, हिन्दी भाषा के जीवक, लोकवाणियों के अनुनायक, ब्रज साहित्य मण्डल के सहोदर "साहित्य वारिधि" बाबू वृन्दावनदास हिन्दी साहित्य सरोवर के सरसिज हैं जिसके नयनाभिराम प्राफुल्य पर सहस्रों सहृदय साहित्य स्नेह भ्रमरवत् बलिहार जाते हैं—यही नहीं, बाबूजी का सहज स्वभाव साधारण बोलचाल दैनिक क्रियाकलाप सब कुछ ऐसी विलक्षणता लिए हैं कि सहसा मन कह उठता है—

श्रवण नयनमुख नासिका, सबके एकहिं ठौर।
रहन सहन चितवन चलन, चतुरन की कछु जौर॥

वस्तुतः मूर्तिमान सरलता, अनुपम औदार्य, परिपक्व पांडित्य, सर्वसुलभ व्यक्तित्व, वैचारिक वैभव, लोकोपकारी लोकेषणा, विलक्षण-आचारम्भण, विशिष्ट ब्रजहितत्व ये सब लक्षण बाबूजी को एक चलती फिरती संस्था की संज्ञा देते हैं ऐसे ही विचारज्ञ के विषय में आश्चर्यभाव से विश्व विख्यात नाटक-कार शेक्सपियर ने कहा है :—

What A Pilce of Work is Man!

मथुरा जनपद की साहित्यिक गोष्ठियों, शिक्षा संस्थानों एवं आकाशवाणी द्वारा आयोजित विशेष आयोजनों आदि में मैंने बाबूजी को बहुत निकट से देखा और समझा कि हिन्दी व ब्रजभाषा के प्रचार व प्रसार क्षेत्र में आपका देह व प्राण जैसा योग है—साथ ही आंग्ल भाषा पर भी आपका विशेष अधिकार है और तभी आपके दृष्टिकोण में, विचारों के योगायोग में, भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मूल्यों में एवं राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के नैरंतर्य परिपेक्ष्य में आपकी गतिमान चेतनता कुछ नवीनता का पुट लिए हुए है आपकी विचार सरणी कुछ ऐसी विलक्षण है जिसके श्रवण मात्र से ऐसा बोध होता है मानों चिरपरिचित सरगम पर, पुरातन सात स्वरों पर अनन्त राग-रागनियों का विस्तार हो रहा हो—साथ ही बाबूजी के आचूलमूल व्यक्तित्व को झांकने से बोध होता है कि—

ज्यों ज्यों निहारिए नेरे हैं नैनन,
त्यों त्यों खरी निकरे सी निकाई।

उर्वर विचारों से ओतप्रोत आदरणीय बाबूजी धर्म शिक्षा साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में नवीनता से छलकती हुई उस अभिनव दिशा को इंगित करते हैं जहां सब कुछ "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" है। धर्म के धनी बाबूजी को मैंने बहुत अधिक तब पहचाना जब एक विशेष साक्षात्कार के अवसर पर बाबूजी ने 'गीता' का यह प्रेरक श्लोक पढ़ दिया :—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

आज की बदलती हुयी मान्यताओं के मध्य भी बाबूजी इस सूत्र का जयघोष करते हैं कि हिन्दू धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ है। बाबूजी के अनुसार अज्ञानी हम हिन्दू नहीं जो मूर्ति पूजा के उपासक हैं वरन् अज्ञानी वे काफिर हैं जो हिन्दू धर्म की मूर्ति पूजक प्रणाली को 'कुफ्र' बताते हैं। आज जबकि विज्ञान के धरातल पर रूढ़ियाँ पिछड़ रही हैं, बाबूजी के मतानुसार हमें सजग रहना है कि कहीं हमारी आस्थायें न टूट जायें—मूर्ति पूजा में हमारी आस्था वह आस्था है जो हमें जड़ के बीच चैतन्य के दर्शन कराने का अभिनव ज्ञान देती है और इस प्रकार समग्र ज्ञान के वातायन से झांकने का अवसर प्रस्तुत होता है। इस संदर्भ में अलंकार, वस्त्र सज्जा अथवा पाषाण की पूजा नहीं वरन् पाषाण में अन्तर्हित देवत्व की उपासना ही हमारी आस्था का केन्द्रबिन्दु है।

इतना होने पर भी साहित्यालय ही बाबूजी का देवालय है और साहित्य सेवा ही ईश्वरोपासना है। साहित्य के प्रति समर्पित व्यक्तित्व के लिए इस भाव से अधिक 'पूर्ण योग दर्शन' और किस माध्यम से उपलब्ध हो सकता है। 'मेरो मन अनत कहां सुख पावै' वाली सूरोक्ति इस प्रकार बाबूजी की अविच्छिन्न साहित्य साधना में समाहित हो जाती है। यही उनकी सहज साहित्यिक साधना का सार है।

'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' यह उक्ति पूज्य बाबूजी की सर्व सम्मानित विज्ञता के लिए सर्वोचित संस्तुति है। बाबूजी सर्व विदित विद्वान हैं और महान भी। बाबूजी महान पैदा हुए और उन्होंने महत्ता को बनाये रक्खा इस प्रकार जन्मतः व कर्मतः अर्चित आपकी महानता आपके स्वभाव की सरलता से पाणिग्रहीत हो निशिवासर ब्रज मण्डल को पूत कर रही है। आज मथुरा जनपद की अधिकतम शिक्षा-संस्थायें श्रद्धेय बाबूजी द्वारा अनुपोषित हैं। 'लक्ष्मी व सरस्वती' के अपूर्व अनुग्रह से बाबूजी की ख्याति विस्तृति को अप्रतिहतरूपेण पोषित किया है। शिक्षा संस्थाओं को आप कभी अर्थदान से प्राणवन्त करते हैं तो कहीं आप वैचारिक क्रांति द्वारा संस्थाओं को संबल देते हैं और कहीं आप विद्यालयों को पुस्तकदान द्वारा कृतार्थ करते हैं। वृद्धों के आप प्रेरक हैं और युवाओं के मार्गदर्शक, संस्थाओं के आप सेवक हैं तो समितियों के हैं आप बीजक। बाबूजी वस्तुतः अभिनन्दनीय हैं, उनको शत शत प्रणाम।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक निराला व्यक्तित्व--बाबू वृन्दावनदास

⊙

अवधेश नारायण सिंह

बाबू वृन्दावनदास जी से मेरा परिचय करीब दो वर्षों से है। बाबूजी से परिचय श्रद्धेय डाक्टर बनारसीदास चतुर्वेदी के माध्यम से हुआ था। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये एक पत्र में मैंने जनपदीय आन्दोलन के सन्दर्भ में कार्य करने की इच्छा व्यक्त की थी। डाक्टर बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने अन्तर्जनपदीय परिषद के विषय में बाबू वृन्दावनदास जी से सम्पर्क स्थापित करने के लिए लिखा। मैंने बाबू जी को एक पत्र लिखा और उसमें 'ब्रज भारती' खरीद कर अध्ययन करने की इच्छा व्यक्त की। बाबूजी का पत्र मिला—"ब्रजभारती के अंक प्रति अंक १) के हिसाब से बिकते हैं। परन्तु चूंकि आप अन्तर्जनपदीय कार्य में विशेष रुचि रखते हैं और उसी निमित्त ब्रजभारती खरीदना चाहते हैं, इसलिए हम ब्रजभारती के ३० अंक आपको १५) में देंगे तथा ३) रजिस्टर्ड पोस्टेज। इस प्रकार यदि आप १८) का मनीआर्डर हमें भेज देंगे तो हम ३० अंक आपकी सेवा में रजिस्टर्ड बुकपोस्ट से भेज देंगे और उनके साथ ही भाषण आदि निःशुल्क सामग्री भी रख देंगे।"

बाबू वृन्दावनदास जी का तुरन्त उत्तर प्राप्त होने से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, लेकिन मेरी आर्थिक दशा ऐसी न थी कि मैं 'ब्रजभारती' खरीद कर पढ़ सकूँ। मैंने बाबूजी को पुनः पत्र लिखकर अपनी स्थिति से अवगत कराया। दूसरा पत्र मैंने अपने पितामह बाबू आदित्य प्रसाद सिंह पर एक लेख 'ब्रजभारती' में प्रकाशित करने के लिए लिखा। इन पत्रों के सन्दर्भ में १८-५-७३ का लिखा बाबूजी का मुझे यह पत्र प्राप्त हुआ—"आपके दो पत्र मिले। धन्यवाद। हमने आप का शुभ नाम ब्रजभारती की कम्प्लीमैण्टरी लिस्ट में लिख लिया है और अब आपको पत्रिका नियमित रूप से पहुँचती रहेगी। अपने पूज्य पितामह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आप तीन-चार पृष्ठ का लेख लिखकर भेज सकते हैं। हम उसे अवश्य पत्रिका में स्थान देंगे, विशेष रूप से क्योंकि वे ब्रजभाषा साहित्य-मर्मज्ञ थे।"

मैंने 'रीतिकाल के सन्तकवि बाबू आदित्य प्रसाद सिंह' शीर्षक से एक लेख लिख कर 'ब्रज-भारती' में प्रकाशनार्थ भेज दिया। बाबूजी ने इस लेख को 'ब्रजभारती' भाद्रपद सं० २०३० वि० अंक में प्रकाशित किया। बाबूजी उपेक्षित कवियों को 'ब्रजभारती' में सर्वप्रथम उचित स्थान देते हैं; यह उनकी महान् साहित्य सेवा ी भावना का परिचायक है। बाबूजी की कृपा से ब्रजभारती पत्रिका नियमित रूप से आज भी मुझे पढ़ने को मिलती है। इतने उदार हैं ये बाबू जी!

मैं, ऐसे उदार व्यक्तित्व वाले बाबूजी के चिरायु होने की शुभकामना करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अविस्मरणीय व्यक्तित्व

महेशचन्द्र गर्ग
एम० ए०

बाबूजी एक महान समाजसेवी हैं। प्रभु कृपा से आर्थिक सम्पन्नता है, किन्तु उस सम्पन्नता की अभिमानजनक गंध किंचित मात्र भी नहीं। किस आदर और प्रेम से आतिथ्य करते हैं उसका वास्तविक चित्र वही जान सकते हैं जो एक बार भी उनके सम्पर्क में आ चुके हैं।

आप ब्रज साहित्य के उन्नायक हैं। ब्रज साहित्य मण्डल की जो सेवा की है और जिस लगन से अब भी वृद्धावस्था में युवकों जैसे उत्साह के साथ १०-१२ घण्टे कार्य करके मण्डल को प्रगति दे रहे हैं वह श्लाघनीय एवम् अनुकरणीय है। आपका विशाल पुस्तक भण्डार आपके स्वाध्याय प्रेम का प्रतीक एवम् दिग्दर्शक है। आप एक अच्छे संग्रहालय की सामग्री एकत्रित कर रहे हैं। मुझे आशा है आपका संग्रहालय हिन्दी साहित्य और उत्तर प्रदेश का एक साहित्यिक संस्थान बनकर सामने आवेगा।

आपके यहाँ से पुस्तकालयों को सुन्दर साहित्य ५० प्रतिशत कमीशन पर देने की योजना चल रही है। लेखक ने अपने विद्यालय के पुस्तकालय के लिए भी आपके यहां से लगभग १३००) रुपये की पुस्तकें क्रय कर अपने पुस्तकालय को सम्पन्न किया है। इस योजना से मुझे आशा है प्रदेश के अनेक निर्धन पुस्तकालय धनी हो जायेंगे और दूसरी ओर जनता-जनार्दन को उन साहित्यिक कृतियों को पढ़ने का अवसर मिलेगा जो उन्हें सहज प्राप्त न होती। आपकी सादगी और साधुता सहज ही प्रभावित कर लेती है।

बाबूजी विद्वानों का किस रूप में समादर करते हैं इसका एक उदाहरण उनकी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' की भूमिका से मिलता है जिसे डा० सत्येन्द्र जी ने लिखा है। डा० सत्येन्द्र जी अपने को बाबूजी का अनुज मानकर भूमिका लिखने में संकोच करते थे इसका उत्तर बाबूजी ने इस प्रकार दिया—वे अनुज सही किन्तु उनके अगाध ज्ञान और प्रकाण्ड पांडित्य का श्रेय तो उन्हें प्राप्त ही है। एक उदाहरण दिया—सम्राट परीक्षित की सभा में शुकदेव जी के आगमन पर उनके सम्मान में पराशर प्रभृति महर्षियों के उठ खड़े होने के भारतीय संस्कृति के मनोहर चित्र का। इस प्रकार उन्हें भूमिका लिखने को तैयार कर ही लिया। यह आपकी विद्वानों को आदर देने की प्रवृत्ति का परिचायक है।

बाबूजी गत लगभग ४० वर्षों से हिन्दी साहित्य सेवा में रत हैं। आप एक अच्छे लेखक हैं।

मथुरा के सम्भ्रान्त नागरिक, संस्थाओं के पोषक बाबू जी को मेरा अभिनंदन।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दीमय व्यक्तित्व

⊙

डा० द्वारकाप्रसाद मित्तल
एम० ए०, डी० लिट०

सन् १९७३-७४ के सत्र की ही बात है कि आदर्श बाल मन्दिर झांसी में सायंकाल बाबू वृन्दावन दास का भाषण था। मैं भी रसास्वादन करने चला गया। भाषण के उपरान्त बाबूजी से व्यक्तिगत परिचय हुआ और उनके ठहरने के स्थान तक मैं वार्तालाप करता हुआ चला गया। मैंने निवेदन किया कि प्रातः बुन्देलखण्ड कालिज झांसी में छात्रों को प्रवचन कर अनुगृहीत करें। बुन्देलखण्ड कालिज झांसी की स्नातकोत्तर हिन्दी साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में आपने प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य पर बड़ा शोधपूर्ण अभिभाषण दिया। मैं तभी बाबूजी के संपर्क में आया।

बाबूजी ने कालिज और उसके पुस्तकालय को देखा तथा प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि तुम ऐसे स्थान पर हो कि चाहो तो उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का अधिवेशन झांसी में करा सकते हो।

मैं अपनी जन्मभूमि से लौटते समय बाबूजी के निवास स्थान पर गया। बाबूजी के आतिथ्य एवं निश्छल व्यवहार को देखकर बहुत ही प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि हम हिन्दी वाले हैं परन्तु हिन्दी की सेवा करते हैं बाबूजी। बाबूजी ने अपने दो ग्रन्थ—प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य एवं डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र मुझे भेंट किये।

बाबूजी निरन्तर हिन्दी की सेवा करते रहते हैं, कहीं ब्रजसाहित्य मंडल मथुरा की तो कहीं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की। एक विस्तृत भूमि का ब्रजसाहित्य मंडल के हेतु अधिग्रहण उनकी मंडल को अपार देन है।

मैंने उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अठारहवें अधिवेशन को ३ व ४ मई १९७४ को विपिन बिहारी इण्टर कालिज झांसी में करने की स्वीकृति बाबूजी से ली और हिन्दी के प्रति अटूट निष्ठा देखकर उसका अध्यक्ष भी बाबूजी को ही बनाया। अध्यक्ष पद से बाबूजी ने जो भाषण दिया उससे जनसमूह प्रभावित हुआ, पत्र-पत्रिकाएँ गौरवान्वित हुईं।

मैं बारबार यही सोचता हूँ कि ऐसे सौम्य, निश्छल एवं हिन्दी सेवी के निकट अभी तक क्यों न आ सका। आप कहीं हरिद्वार में पद्मसिंह शर्मा स्मृति समारोह में, ९ जून ७४ को स्वागत भाषण दे रहे हैं तो कहीं ब्रजसाहित्य मंडल की पत्रिका का सम्पादन, कहीं पत्रों का संकलन कर रहे हैं तो कहीं प्राचीन हिन्दू संस्कृति पर शोध। विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय, पारिवारिक जीवन का सुख, पत्नी के प्रति अनुराग, सारल्य, अतिथि सत्कार, दिवस रात्रि हिन्दी के प्रचार-प्रसार की लगन ही उनका व्यक्तित्व है। ●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पत्र साहित्य के संकलनकर्ता

⊙

डा० माधुरी दुबे

ब्रजभारती पत्रिका के यशस्वी संपादक तथा अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मंडल एवं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी ब्रजभाषा साहित्य एवं हिन्दी साहित्य के उन्नायक के रूप में सुख्यात हैं। हिन्दी पत्र विधा के क्षेत्र को आपने "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" एवं "डा० वासुदेव शरण अग्रवाल" के पत्रों का सम्पादन कर समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है। पं० पद्मसिंह शर्मा स्मृतिग्रन्थ, बा० जगन्नीवन राम अभिनन्दन ग्रन्थ एवं प्रेरक साधक (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन) ग्रन्थों के सम्पादन में आपका योगदान सर्वविदित है। आपका साहित्यिक समारोहों को आयोजित करने का व्यासंग (हॉबी) साहित्यज्ञों को लेखन के प्रति संप्रेरणा देता है।

आज के युग में जबकि निस्वार्थ साहित्य निरत व्यक्ति कम होते जा रहे हैं, बाबूजी की साहित्य तत्परता प्रशंसनीय है, वे सर्वतोभावेन अभिनन्दनीय है। इस अवसर पर मेरा उन्हें अभिवन्दन।

●

मण्डल के स्थपति

⊙

डा० रामकुमार मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रज क्षेत्र का निवासी होने के नाते अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल और उसके अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी से निकट का परिचय रहा है। मंडल की साहित्यिक गतिविधियाँ एक समय हिन्दी साहित्य जगत में मूर्धन्य रह चुकी हैं, जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन में तालाबन्दी थी उस समय मंडल ही साहित्यिक गतिविधियों का एकमात्र केन्द्र था। एक समय मंडल की गतिविधियों में स्थिरता भी आई। मंडल को नव चैतन्य प्रदान करने का श्रेय बा० वृन्दावनदास जी को है। जहाँ साहित्य शिरोमणि श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार प्रभृति विद्वानों को अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल का संस्थापक और जन्मदाता कहा जाता है वहाँ मंडल के इतिहास में बा० वृन्दावनदास जी का स्थान स्थपति का जैसा है। मंडल को निश्चित रूपाकार देकर दृढ़ आधार भित्ति प्रदान करना बाबूजी की अविस्मरणीय सेवा है। अनेक अध्यक्षों ने यथाशक्य मंडल की सेवा की परन्तु उसके लिए भवन की व्यवस्था करने का स्तुत्य प्रयास बाबूजी ने ही किया जिसमें उन्हें साफल्य प्राप्त हुआ—मंडल के आदर्श रूप की बाबूजी की मनोरथ प्रतिमा बड़ी आकर्षक है। ईश्वर उसे पूर्ण करे—और बाबूजी उसकी शतायु पर्यन्त सेवा करते रहें। ●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभारती के त्राता

⊙

राजमणि तिवारी

एम० ए०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल की मुख पत्रिका 'ब्रज भारती' के अवलोकन एवं अध्ययन का सुअवसर अपने प्रियमित्र डा० आनन्दस्वरूप पाठक के सौजन्य से मिलता रहता है। मंडल को प्राप्त सीमित साधनों से जब कि मंडल को सरकार से कोई अनुदान या विशेष कार्य के लिए सहायता नहीं मिलती ब्रज साहित्य के शोध छात्रों के लिए सहायतार्थ इस पत्रिका का प्रकाशन किया जाना वस्तुतः एक चमत्कार ही है। स्पष्ट है कि इसके मूल में बा० वृन्दावनदास जी की प्रेरणा है जब से उन्होंने इस कार्यभार को संभाला है पत्रिका संपादन और प्रकाशन उन्हीं की देखरेख में होता है। इस हेतु धन की व्यवस्था वे अपने प्रभाव का सदुपयोग करके रहते हैं। मैंने देखा है कि उनके ऊपर पते भी स्वयं बाबूजी के ही लिखते हैं वे किसी लिपिक से सहायता भी इस हेतु नहीं लेते। उनका वैयक्तिक सहायक ही पत्रिका के वेष्टन तैयार करता है। पत्रिका का समय पर प्रकाशन एवं उचित अवधि में डाक द्वारा भेजा जाना दोनों पर नियमों का अंकुश भी है। अन्यथा डाक दर अधिक देनी पड़ती है, बाबूजी कभी भी इस कार्य में देर नहीं होने देते।

उनके संपादकीय सामयिक होते हैं तथा भविष्य के कर्तव्य के प्रति उनमें एक संप्रेरणा होती है। लेखों के चयन में बाबूजी की नीति बिना किसी भेदभाव के होती है। ब्रज प्रदेश निवासियों को ही प्रमुखता दें ऐसी प्रवृत्ति नहीं है, प्रायः यह देखने में आया है कि ये लेख प्रमुखतः ब्रजेतर क्षेत्र के लेखकों के ही होते हैं। ब्रज के लोगों को तो उसमें अपना यथोचित प्रतिनिधित्व मिलता ही है।

बाबूजी अच्छे लेखक और भाषणकर्त्ता दोनों ही हैं। वे शतायु होकर साहित्य की सेवा करते रहें। शुभम्

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अभिनन्दन

⊙

कृष्णकुमार सराफ

एम० ए०

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद को बा० वृन्दावनदास दो बार सुशोभित कर चुके हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल का तो वे मूर्तिमान स्वरूप हैं। लगभग एक दशाब्दि से वे राजनीति को छोड़कर साहित्य में इतने लीन हो गये हैं कि प्रत्येक वर्ष में कई दर्जन साहित्य समारोहों के अध्यक्ष या स्वागताध्यक्ष रहते हैं। प्रत्येक वर्ष कम से कम एक ग्रन्थ की रचना करना तथा एक ग्रन्थ को अपनी प्रेरणा से संपादित कराना बाबूजी के जीवन का अनिवार्य अंग हो गया हैं। बाबूजी का अंतः और बाह्य दोनों ही कोमल और मधुर हैं। उनका सर्वांग मधुर व्यक्तित्व सुरम्य हैं। उनकी वाणी से मधु-धारा प्रवाहित होती हैं। उनसे बात करके जहाँ व्यक्ति स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है वहाँ उनके साहित्य वार्तालाप से लाभान्वित भी होता हैं।

वे निस्पृह साहित्य सेवी हैं। मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूं।

●

ब्रजभाषा-सेवी का अभिनन्दन

⊙

बद्री सिंह

एम० ए०

ब्रज साहित्य की माधुरी का पान करने वाले धन्य हैं और ब्रज साहित्य को सेवा करने वालों का तो सार्थक जीवन है। 'ब्रज की सी मिठलौनी कहाँ' की प्रसिद्धि ब्रजभाषा के शताब्दियों के प्रयोग के उपरान्त प्राप्त हुई। सहस्रों कवियों ने भाषाशिल्पियों ने अपनी शिल्पकारिता से इसे इतना सुचिक्कण बना दिया कि हिन्दी और खड़ी बोली के विवाद के समय लोगों का यह सुदृढ़ मत था कि कविता केवल ब्रजभाषा में ही हो सकती है खड़ी बोली में नहीं। अस्तु, कलेवर कुछ हो पर प्रतिपाद्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' हो वही वांछित है, ब्रजी, में तो गो, गोपाल, एवं गोपिकाओं के प्रिय कृष्ण के जनमन रोचक साहित्य का सृजन हुआ हैं जो युगपत् ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखों का प्रदाता है।

बा० वृन्दावनदास जी अ० भा० ब्र० साहित्य मंडल के अध्यक्ष ही नहीं प्रत्युत ब्रजभाषा साहित्य के मर्मज्ञ और सेवक भी हैं। उनकी साहित्य सेवा श्लाघनीय है मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

शास्त्रवेत्ता एवं साहित्यज्ञाता

⊙

यशपाल रावत

एम० ए०

श्री वृन्दावनदास जी ब्रजभाषा, हिन्दी एवं जनपदीय भाषाओं के उन्नतकामी उन महानुभावों में से हैं जो किसी लक्ष्यपूर्ति के लिए तन-मन-धन प्राण पण की बाजी लगा देते हैं। उन्होंने सैकड़ों लेख लिखकर पत्रकारिता के क्षेत्र में योग दिया है वहाँ स्वयं भी ब्रजभारती पत्रिका का सम्पादन करते रहे हैं। अभी चतुर्मुख के 'आचार्य पद्मसिंह शर्मा' स्मृति विशेषांक के सम्पादन वर्ग में आपका नाम देखने को मिला था। आपने छोटी-बड़ी लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिनमें कुछ ग्रन्थ तो वस्तुतः संग्रहणीय हैं। साहित्य के साथ-साथ शास्त्रों का ज्ञान एवं उनका लेखन आपकी विशेषता है। इतिहास शास्त्रीय आपका ग्रन्थ 'भारत के हिन्दू राज्य' प्रशंसनीय ही नहीं अपितु इतिहास के क्षेत्र में मार्गचिन्ह है। आपके भाषणों का भी ऐतिहासिक महत्व है, सुविचारित एवं भविष्य दृष्टि से युक्त आपके भाषण हिन्दी क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए मार्गबोध होते हैं।

बाबूजी को साहित्य सेवा के प्रति अपनी प्रणति अर्पित करते हुए मैं उनके दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

●

सरल एवं निरभिमानी

⊙

रामकुमार मिश्र

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), साहित्याचार्य

अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष बा० वृन्दावनदास जी साहित्य के क्षेत्र में लगभग एक दशाब्दी से ही उतरे हैं पर लेखन का उनका शौक पुराना है। अब तो वे निष्णात साहित्यज्ञ एवं सफल सम्पादक हैं। आपका स्वभाव इतना सरल और निरभिमान है कि अजनबी व्यक्ति को तो यह सहसा विश्वास ही नहीं हो पाता है कि सरस्वती का यह पुत्र लक्ष्मी का भी कृपापात्र है तथा भोली भाली बातें करने वाला यह साहित्यज्ञ कुशल प्रशासक भी रह चुका है।

ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे तथा वे हिन्दी और ब्रजभाषा की सेवा शतायु-पर्यन्त करते रहे।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रबुद्ध और परिश्रमशील

⊙

सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर

एम० ए० (अंग्रेजी, अर्थशास्त्र)

बा० वृन्दावनदास जी साहित्य और इतिहास क्षेत्र के लेखक हैं। मैं उन्हें परिश्रमशील और प्रबुद्ध लेखक मानता हूँ। वे साहित्य क्षेत्र के अच्छे कार्यकर्त्ता भी हैं। यद्यपि बा० वृन्दावनदास जी अपने को कोई महान कार्यकर्ता नहीं मानते और न प्रतिभाशाली साहित्यिक ही। उनका तो कथन है कि "हौं पंडितन केर पछलगा" वैसे तो अपनी योग्यतानुसार निरन्तर परिश्रम करते रहते हैं और प्राचीन इतिहास के बारे में तो उनकी अच्छी गति भी है। साहित्य के क्षेत्र में वे अच्छे लेखक हैं। ब्रज और मथुरा की सर्वतोमुखी उन्नति के कामी बाबू जी हैं।

मथुरा की उन्नति के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। एक दिन वार्तालाप के मध्य उन्होंने बताया कि काशी और मथुरा पौराणिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वशील हैं उसमें मथुरा ऐतिहासिक दृष्टि से और भी अधिक महत्वशाली है, पर काशी की उन्नति मथुरा से अधिक हो गई इसका श्रेय मालवीय जी डा० भगवानदास जी आदि महापुरुषों के सयत्न से है जबकि मथुरा में इस कोटि के महापुरुषों का अभाव रहा है। उनका मत है कि यदि सम्भ्रान्त और प्रबुद्ध जन कुछ प्रयत्न करें तो मथुरा भी अपने गतवैभव को प्राप्त कर सकती है। ब्रज के लिए तो बाबू जी का व्यक्तित्व सुधामय है। ब्रजभाषा के उन्नयन के लिए उनके प्रयत्न सुविदित हैं।

मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अन्तः-जनपदीय-परिषद के कर्णधार

⊙

कुलदीप नारायण 'झडप'

जनपदीय योजना के ऋषि डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने जिस बीज का वपन किया, उसे वा० वृन्दावनदास जी ने सर्वप्रथम भगवान वासुदेव की लीलाभूमि ब्रजमंडल में आरोपित कर उसे अपने प्रयत्नों से सिंचित किया उसकी सघन छाया अन्य जनपदों पर भी पड़ रही है।

सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास जुड़ा हुआ है। अतएव बाबूजी सभी भाषाओं, विभाषाओं और बोलियों के विकास के समर्थक हैं। पर उनका उद्देश्य विघटन नहीं संघटन है। इस दिशा में बिहार से राजस्थान तक के जनपदीय कार्यकर्ताओं को उनका सहयोग प्रेरणा और निर्देशन प्राप्त है। वे अन्तर जनपदीय कार्यक्रमों के केन्द्रबिन्दु हैं जिसका सूत्र समस्त हिन्दी क्षेत्र में व्याप्त है। ब्रजभारती के माध्यम से उक्त कार्यक्रम का प्रचार प्रसार और समय निकालकर साहित्य-सेवा उनका उद्देश्य है। आपमें साधना और साधन सम्पन्नता का मणिकांचन संयोग है।

हम हिन्दी और जनपदीय भाषाओं के वरिष्ठ सेवक वा० वृन्दावनदास जी की दीर्घायु की कामना करते हुए उनका पुनः पुनः हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

अमर यशी की अमर ज्योत्स्ना, ज्योतित हिन्दी का आकास।
करती रहे सुदीघ् समय तक, अमर रहें वृन्दावनदास।
जनपद फूलें फलें प्रसारित, कर हिन्दी का बेलि वितान।
छा जाये शुभ देश देश में, ब्रजवासी की कीर्ति महान।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मंडल एवं तदाकार व्यक्तित्व

⊙

डा० लक्ष्मीनारायण गर्ग
एम० ए०, पी-एच० डी०

बाबू वृन्दावनदास जी एवं ब्रज साहित्य मंडल व्यक्ति और संस्था के नाम हैं पर आज वास्तविकता कुछ भिन्न है। बाबूजी का व्यक्तित्व मंडल के साथ एकाकार हो गया है। शिवोभूत्वा शिवं यजेत की जैसी स्थिति हो गई है, बाबू जी के कार्यक्रम ब्रज साहित्य मय बन गये हैं। ब्रज साहित्य, संस्कृति, कला, भाषा सम्बन्धी कोई भी कार्यक्रम हो वह बाबूजी के जीवन क्रम का असम्पृक्त अंग बन गया है। ब्रज प्रदेश से निकलने वाले सभी समाचार पत्रों में उनके व्यक्तित्व का पक्ष उदात्त रूप से प्रस्फुटित होता है। मंडल के प्रत्येक कार्य को वे अपना कार्य समझ कर करते हैं। 'ब्रजभारती' का सम्पादन अन्य साहित्यिक आयोजन उन्हें इतने ही इष्ट हैं जितना कि किसी व्यापारी को अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान का कार्य। ऐसे साहित्य सेवी धन्य हैं मैं, उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

●

जीवेम शरदः शतम्

⊙

नन्द किशोर पाठक

बाबू जी का कुल पुरोहित होने का मुझे वंश परम्परागत अधिकार प्राप्त है। पुरोहित, हित की बात पूर्व ही सोचने वाला समादृत व्यक्ति विशेष होता है। सौभाग्य से बाबू जी के राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में साथ-साथ रहने का मुझे अवसर मिला है। वे शिव संकल्पवान व्यक्ति हैं। मैं उनके अदीन शतायु जीवन की कामना करता हूँ।

'अदीना स्याम शरदः शतम्'

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आराधना

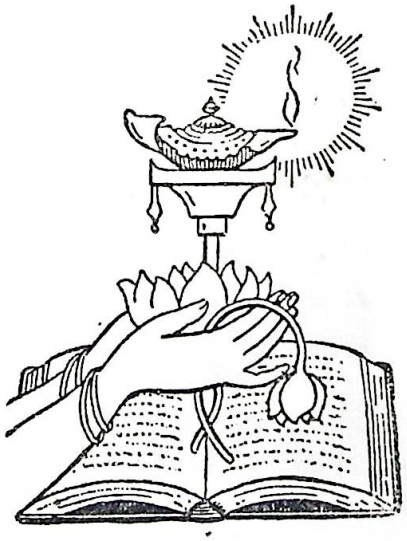

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection; Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुन्दर की व्युत्पत्ति और पर्याय

डा० रामदत्त भारद्वाज
एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट०

व्युत्पत्ति

संस्कृत भाषा का सुन्दर शब्द, हो सकता है, 'सु' और 'नर' के संयोग से बना हो, जैसा कि कुछ भाषा-विज्ञानी समझते हैं। इस संयोग से 'सुनर' शब्द का निर्माण होता है, किन्तु उक्त दोनों शब्द के बीच में दकार के आगम से 'सुन्दर' शब्द उसी प्रकार बना प्रतीत होता है, जिस प्रकार 'वा' और 'नर' के संयोग से 'वानर' और दकार के आगम से तथा वकार के बकार में परिवर्तित होने से 'बन्दर'। 'सुनर' शब्द वेद में उपलब्ध है, यथा :

यो वाधते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इलां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम्॥ ऋ० १-४०-४

'बन्दर' शब्द हिन्दी का है और बहु-प्रयुक्त है। संस्कृत में 'वानर' शब्द का प्रयोग होता है; विकल्पित नर को वानर कहा जाता है—वा विकल्पितो नरः, और इसकी निरुक्ति दूसरे प्रकार भी है, जो वन में उत्पन्न फलों को लाए—वानं वने भवं फलादिकं राति। वैयाकरण इस 'वानर' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं—वान+√रा+क। किन्तु 'सुनर' शब्द यद्यपि व्याकरण-साध्य है तथापि उसका प्रयोग यदि है तो विरल है; 'सुन्दर' शब्द ही अधिक प्रयुक्त है। व्याकरण के पण्डित 'सुन्दर' की व्युत्पत्ति किंचित भिन्नता से करते हैं। कुछ कोशकार उसे सु+√उन्द्+अरन् का योग मानते हैं, जिसके अनुसार इस शब्द का अर्थ है 'वह जो नेत्र को सुख दे', क्योंकि उन्द् धातु का अर्थ है भिगोना अथवा तर करना और 'सु' का अर्थ है : भले प्रकार। दूसरे उसे सु+ √दृ+अप् का योग मानते हैं, और अर्थ करते हैं 'वह जो हृदय को प्रेरित अथवा व्यथित करता है', क्योंकि इस प्रकरण में 'सु' धातु का अर्थ है दबा कर रस निकालना, और 'दृ' धातु का अर्थ है वध करना। किन्तु तीसरे उसे सु (उपसर्ग) +दृ (धातु) +अप् प्रत्यय से निष्पन्न कर उसका अर्थ करते हैं 'वह जो हृदय को भले प्रकार चालित या द्रवित करे', क्योंकि 'सु' उपसर्ग का अर्थ है अतिशय, 'दृ' अकर्मक धातु का अर्थ है आदर करना। सुन्दर की ये सभी व्युत्पत्तियाँ और अर्थ समुचित प्रतीत होते हैं, जैसा कि आगे चल कर हम देखेंगे।

'सुन्दर' शब्द से निर्मित तीन संज्ञाएँ हैं—त्व प्रत्यय के योग से सुन्दरत्व, ता के योग से सुन्दरता और व्यञ् के योग से सौन्दर्य। ये तीनों एक ही अर्थ के द्योतक हैं। इनके अनेक पर्याय हैं, जिनकी कुछ चर्चा अभीष्ट है।

सुन्दर के पर्याय हैं : अंगना, अच्छा, अनवद्य, अनुपम, अनुपमेय, अनूठा, अभिजात, अभिराम, अलबेला, अवदात, कंचन, कमनीय, कल, कलित, कान्त, कान्तिमान्, चाक्षुष्य, चारु, चित्ताकर्षक, चंग (चंगा), छबीला, दर्शनीय, दिव्य, दृश्यमान, निक्त, प्रिय, प्रियदर्शी, बाँका, भद्र, भव्य, मंजु, मंजुल, मनोज्ञ, मनमोहन, मनभावन,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनोरम, मनोहर, मनहरण, मनरोचन, मधुर, रतिमान्, रमणीक, रमणीय, रम्य, रुचिर, रूपमय, रूपमान्, रूपवन्त, रूपवान्, रूपी, रूपमान्, फबीला, बान (वर्ण), ललाम, ललित, सरस, सुजात, सुचारु, सुरूप, सुष्ठु, सुठि, सुठार, सुठारु, सुठौना, सुडौल सुढर, सुढार, सुढारु, सुदेश, सुदेह, सुन्नर, सुमुख, सुमेरु, सुरंग, सुवर्ण, सुरोचि, सुवेश, सुशोभन, स्वच्छ, स्वरूपवान्, हृदयग्राही हृदयवेधी, हृदयहारी, हिरण्य।

'सुन्दरता' के समानार्थक शब्द हैं : सुन्दरत्व, सौन्दर्य, अनूठापन, अच्छापन, अनोखापन, अलबेलापन, अपूर्वता, कान्ति, चारुता, छवि, छबीलापन, दिव्यता, दीप्ति, धज, लावण्य, लुनाई, निकाई, निकामता, भव्यता, मधुरता, माधुर्य, मधुरिमा, माधुरी, मनोहरता, लालित्य, ललामता, रुचिरता, रूप, रुचिरता, शोभा, श्री, लक्ष्मी, सुषमा, सुरूपता, सौष्ठव, सौम्यता, सुघटन, सुघड़ाई, सुडौलता, सुभगता। कुछ अरबी-फारसी के शब्द हैं : हुस्न, रौनक, खूबसूरती, नफ़ासत, शान (सजावट), आब।

रूप के पर्याय हैं : आकार, आकृति, गढ़न, गठन, ढाँचा, बनाव, बानक, वेश, संघटन।

'कुरूप' के पर्याय हैं : अदर्शनीय, अनगढ़, अनरूप, अपरूप, अभद्र, कदाकार, कुडौल, कुमुख, कुदर्शी, थूल (स्थूल, मोटा, भारी, भद्दा), घोंघा, निरूप, बूचा, बेडौल, बेढंग (रचना बनावट), बेढब (बनावट, गढ़न) बेतुका (वि+तुक), भद्दा, सामंजस्य-रहित, भदेसिल, भोंडा, मछन्दर, विरूप, विलोम, विहंगम।

कुरूपता के पर्याय हैं : अनरूपता, कदर्थ (निकम्मा), कदाकारिता (कद्+आकार), भद्दापन, भोंडापन, विरूपता।

उपर्युक्त पर्यायों का कुछ विवेचन 'सौन्दर्य' की परिभाषा के निमित्त हितकर होगा; ऐसी सम्भावना है, अतः अभीष्ट है। 'अंगना' की निरुक्ति है : प्रशस्तानि अंगानि यस्याः सा, अर्थात् अच्छे अंगों वाली। इस शब्द से ध्वनित होता है कि सौन्दर्य का निवास अंगसौष्ठव एवं अनुपात में रहता है। 'अच्छा' शब्द संस्कृत के 'अच्छ' से निर्मित है, जिसका अर्थ है निर्मल (जिससे यह ध्वनित होता है कि सौन्दर्य में मल या मलीनता का अभाव होता है), अथवा वह स्फटिक की भाँति चमकदार है। वैयाकरण इसे छो धातु और क प्रत्यय से व्युत्पन्न मानते हैं। 'छो' का अर्थ है काटना, अतएव 'अच्छ' का अर्थ हुआ अच्छा कटा या तराशा हुआ, अर्थात् वह जिसके शरीर की आकृति में स्पृहणीय कटाव हो। अनवद्य=नञ्+अवद्य=निर्दोष, निष्कलंक, अमर्त्सनीय। 'अनुपम' 'अनुपमित' और 'अनुपमेय' ये तीनों शब्द 'मा' धातु से निष्पन्न हैं, जिसका अर्थ है नापना। इस प्रकार इन तीनों शब्दों से ऐसे व्यक्ति का अभिप्राय है, जिसे मापा न जा सके अर्थात् जिसके जोड़ का कोई और न हो : नास्ति उपमा यस्य। इनका प्रयोग प्रायः सौष्ठव-परक होता है। 'अनूठा' इस शब्द को कोषकारों ने संस्कृत के अनुत्थ से व्युत्पन्न बताया; और अनोखा, विचित्र, विलक्षण, अद्भुत आदि शब्दों का पर्याय माना है। 'अभिजात' शब्द 'अभि' उपसर्ग, 'जन्' धातु और 'क्त' प्रत्यय से निर्मित है और इसका अर्थ है, वह जो कुलीन हो। खाते-पीते कुल में जो उत्पन्न होते हैं; वे प्रायः स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और रंग-रूप से स्पृहणीय होते हैं। 'अभिराम' शब्द अभि उपसर्ग, रम् धातु और घञ् प्रत्यय से बना है। रम् का अर्थ है प्रसन्न होना, खेलना, क्रीड़ा करना, मैथुन करना, बना रहना, टिकना। अतएव अभिराम का अर्थ है : हर्षपूर्ण, मधुर, प्रिय, रम्य, मनोहर, सुन्दर। इससे ध्वनित होता है कि सौन्दर्य में हर्ष और प्रियता का समावेश होता है। 'अलबेला' का अर्थ है : बाँका, बनाठना, छैला, अनोखा, अनूठा, अल्हड़, मनमौजी। इससे ध्वनित होता है कि सौन्दर्य में वेशभूषा तथा हाव-भाव की वक्रता रहती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'अभिराम' अभि उपसर्ग, रम् धातु और घञ् प्रत्यय से निर्मित है। 'अभि' का अर्थ है अधिक, और 'राम' का है मधुर अथवा सुन्दर। अतएव अभिराम का अर्थ है अत्यन्त मधुर, मनोहर, प्रिय, रम्य, अनुकूल अथवा सुन्दर।

'अवदात' शब्द 'अव' उपसर्ग, दै धातु और क्त प्रत्यय के योग से बना है। 'अव' का अर्थ है : फैलाव, विस्तार, शोधन, शुद्धता, निर्मलता। 'दै' धातु का अर्थ है पवित्र करना। अतएव 'अवदात' का अर्थ है स्वच्छ, सुन्दर।

'कमन' और 'कमनीय' दोनों शब्द 'कम्' धातु से निष्पन्न हैं, पहले में 'ल्युं' प्रत्यय है तो दूसरे में 'अनीयर्'। 'कम्' का अर्थ है चाहना। अतएव उक्त दोनों सुन्दरवाची शब्दों में क्रमशः चाहना और चाहे-जाना अथवा स्पृहा और स्पृहणीयता की भावभूमि है। आंग्ल भाषा में कम्ली (Comely) द्रष्टव्य है।

'कल' और 'कलित' दोनों शब्द 'कल्' धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है : आवाज़ करना, गिनती करना। अतएव कल के पर्याय हैं : अस्पष्ट, मधुर, धीमा-कोमल, निर्बल; और कलित का अर्थ है गृहीत, गणित, चुना हुआ। इससे यह प्रतीति होती है कि सौन्दर्य में उग्रता नहीं होती और वह बहुतों में से चुना हुआ अतएव असाधारण होता है।

'कान्त' शब्द कन् धातु और क्त प्रत्यय से निर्मित है। कन् का अर्थ है चमकना, शोभित होना। इस प्रकार यह प्रतीति होती है कि सौन्दर्य में कान्ति अथवा चमक का कुछ न कुछ पुट होता है।

कोमल =कु (धातु) +कलच+मुट्। इसका अर्थ है धीमा, नरम, मुलायम, मंद, प्रिय, मधुर, मनोहर।

'चाक्षुष्य' अथवा 'चाक्षुष' शब्द चक्षु से बने हैं। इनका अर्थ है दर्शनीय, देखने अथवा देखे जाने योग्य। इस शब्द से यह संकेत मिलता है कि सौन्दर्य का विशेष सम्बन्ध चक्षु नामक इन्द्रिय से है।

'चारु' शब्द चर् धातु और उण् प्रत्यय से बना है। इसका शब्दार्थ है वह जो चित्त में चले, विचरण करे : चरति चित्ते। इससे ध्वनित है कि सौन्दर्य के कारण चित्त चंचल हो उठता है। ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग यज्ञ के लिए हुआ है : प्रति त्यं चारु मध्वरं गोक्षथाय प्रहूयसे, (१-१९-१)।

'चित्ताकर्षक' इस शब्द का अर्थ सुस्पष्ट है, सौन्दर्यपूर्ण वस्तु द्रष्टा के चित्त को आकृष्ट करती है।

'चंगा' शब्द, हिन्दी शब्दसागर के अनुसार, संस्कृत के चंग शब्द से निर्मित है; जिसका अर्थ है : स्वस्थ सुन्दर, भला।

'छबीला' छवि से निर्मित है, अतः कान्ति का द्योतक है। छवि =छो+किन्। छो धातु का अर्थ है काटना। छवि का प्रभाव द्रष्टा पर काटने का सा तीव्र होता है। यह शब्द शारीरिक कटाव का द्योतक होने के कारण अंग संघटन अथवा सुडौलता का पर्याय भी है।

'दृश्य' शब्द दृश् धातु और क्यप् प्रत्यय से बना है। इसका अर्थ है दिखलाई पड़ने वाला। इस प्रकार 'दर्शनीय' दृश् धातु और अनीयर प्रत्यय से बना है। इसका अर्थ है देखने-दिखाने योग्य। तुलसीदास ने राम-सौन्दर्य के लिए लिखा था : अवसि देखिये देखन जोगू। दृश्यमान का अर्थ है : जो दिखाई पड़ रहा हो। अतएव स्पष्टतः सौन्दर्य का निकट सम्बन्ध नेत्र के व्यापार देखने-दिखाने से है।

'दिव्य' शब्द दिव् धातु और यत् प्रत्यय से बना है। दिव् का अर्थ है चमकना। अतएव दिव्य के पर्याय हैं : चमकीला, कान्त।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी के 'निकाई' और 'नीक' शब्द सुन्दरता वाचक हैं। हिन्दी शब्द सागर ने 'नीक' को सस्कृत के निक्त से व्युत्पन्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि निक्त से हिन्दी में नीक और अँगरेजी का 'नीट' बना, जिनका अर्थ है स्वच्छ।

हिन्दी का 'बाँका' संस्कृत के वंक अथवा वक्र से निष्पन्न है। ये शब्द टेढ़ापन सूचित करते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति से अभिव्यक्ति-सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

पेश=रूप। यह पिश् धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है संघटन करना, प्रकाश करना। पेशल और सुपेशी सुन्दरता द्योतक है।

प्रशस्त=प्र+शस+क्त। इसका अर्थ है वह जो प्रशंसा करने योग्य है सौन्दर्य अथवा अन्य किसी गुण के कारण।

प्रिय और प्रियदर्शी। इन दोनों शब्दों में प्रसन्नता की भावना है, पहले में साधारणत: और दूसरे में दर्शन के कारण; क्योंकि प्रिय शब्द प्री धातु और क प्रत्यय से बना है और संस्कृत के 'प्री' तथा आँग्ल भाषा के 'प्लीज़' का अर्थ है प्रसन्न करना, तृप्त करना।

भद्र शब्द भन्द धातु और रक् प्रत्यय से निष्पन्न है। पंचतंत्र में इसका प्रयोग सौन्दर्य-परक हुआ है। इससे व्युत्पन्न हिन्दी शब्द 'भला' है; और इसी अर्थ में इसका बहुल प्रयोग होता है। ऋग्वेद के कुछ उद्धरण हैं: भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजवाः (१-८९-८), भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतौ (८-९३-२८), भद्रं मनः वृत्रतूर्ये (८-१९-२०)। उक्त वेद में एक और मंत्र है :

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधि वाचि॥ १०-७१-२

इसमें यास्क ने भद्र की निरुक्ति इस प्रकार की है : भद्रं=भग। भग क्यों? यह प्राणियों का भजने योग्य है, या प्राणी उसे भजते हैं (भजनीयं भूतानाम्), अथवा (वे प्राणी) उसकी ओर भागते हैं (अभिद्रवणीयम्) अथवा रमण (रति) देता है (भवद्रमयतिइतिवा), अथवा सुकृतीजन उसके भाजन होते हैं (भाजनाद् वा) (४-२-१०)। इससे प्रतीत होता है कि 'भद्र' में कोई आकर्षण है, जिसके कारण प्राणी उसकी ओर प्रवृत्त होते हैं।

'भव्य' शब्द भू धातु और यत प्रत्यय से निर्मित है; जिसका अर्थ है विद्यमान, आगे होने वाला, बहुत करके होने वाला, शुभ तथा सुन्दर।

मंजु, मंजुल और मंजिमान्। मंजु में मंज् धातु तथा कु प्रत्यय है। मंजु में लच् के योग से मंजुल और मंजु में इमनिच् प्रत्यय से मंजिमा शब्द बने हैं। मंज् धातु का अर्थ है दीप्त करना।

मधुर शब्द मधु और रा तथा क के (अथवा मधु और र के) संयोग से बना है, जिसका अर्थ है मिष्ट।

'मन' के योग से अनेक सुन्दरता वाचक शब्दों का निर्माण हुआ है। मनोज्ञ और मनोज्ञा शब्द 'मनस्' और 'ज्ञा' के योग से; मनस् और मोहन के योग से मनोमोहन; मनस् हृ और अच् के योग से मनोहर; मनस् और हरण के योग से मनहरण बने हैं। इसी प्रकार मनरोचन में मनस् और रोचन का योग है और मनोरम में मनस् और रम् का। इन शब्दों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि सौन्दर्य की अनभूति में मन का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विशेष स्थान है, यों मानसिक क्रिया तो मानव के प्रत्येक व्यवहार में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहती है। सौन्दर्य से मन का हरण होता है, उसमें मन् रमता है। वह मन को अनुकूल प्रतीत होता है अथवा अच्छा लगता है, जैसा कि मनोरोचन शब्द से संकेतित है। 'मनोभावन' (मनस्+भू+ णिच्+ल्यु) शब्द से संकेत मिलता है कि सौन्दर्य मन को प्रभावित करता है और 'मनोमोहन' (मनस+मुह+णिच्+ल्यु) अथवा 'मनोमोहक' शब्द यह संकेत करता है कि सौन्दर्य मन को मोहने वाला, माया में डालने वाला, परेशान अथवा व्याकुल करने वाला है।

रतिमान् और रतिवन्त ये दोनों शब्द रति से निर्मित हैं; और रति स्वयं रम् धातु और क्तिन् प्रत्यय से निर्मित है। ये दोनों शब्द रतिपति कामदेव के सूचक हैं, जो प्रेम और सौन्दर्य का देवता है।

रम्य, रमणीय और रमणीक इन तीनों शब्दों में रम् धातु है। इनमें से प्रथम में यत् और दूसरे में अनीयर प्रत्यय है। रम् धातु का अर्थ है, प्रसन्न होना, खेलना, मैथुन करना, टिकना। सौन्दर्य के प्रभाव के कारण प्रसन्नता, मिथुनता अथवा चित्त-विराम होता है। वृहदारण्यक उपनिषद् का वाक्य है : रमिति प्राणो वै रं प्राणे होमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि इ वा अस्मिन् भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एवं वेद (५-१२), अर्थात् रम् निश्चय रूप से, जीवन है क्योंकि इस संसार में सव जीव जीवन में रमते हैं, निश्चय ही वास्तव में सब जीव उसमें प्रविष्ट होते हैं। मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है : अयोध्या नगरे रम्ये ॥१-१॥ छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है : तद्य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् (५-१०-७), अर्थात् उनमें से जो इस संसार में रमणीय आचरण वाले हैं वे शीघ्र ही रमणीय (ब्राह्मणादि उत्तम) योनि को प्राप्त होते हैं। रम्य शब्द भी 'सुन्दर' का पर्याय है, यथा : सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् (अभिज्ञान शाकुन्तलम् १-२०), अर्थात् शैवलिनी से आवृत होने पर कमल सुन्दर लगता है।

रण, रण्व और रण्य शब्दों का वैदिक प्रयोग सुन्दरता-परक रमणीय का पर्याय है, यथा ऋग्वेद (३-४७-१) में लिखा है : मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय। यहाँ निरुक्त (४-२-९) में रणाय=रमणीयाय, संग्रामाय। क्षेत्रं न रण्वम्=रमणीय क्षेत्र, ऋग्वेद १०-३३-६। ऋग्वेद (८-७७-११) में लिखा है : उभा ते वाहू रण्या सुसंस्कृत ऋद्रूपै चिद्रदूविधा। यहाँ निरुक्त (६-६-३३) में वारकाचार्य के अनुसार, रण्यौ= रमणीयौ संग्रामौ।

रुचिर, रुचक और रुचि, रोचन ये चारों शब्द रुच् धातु से निष्पन्न हैं, जिसका अर्थ है आभा या दीप्ति प्रदान करना—रुच दीप्तौ। ऋग्वेद में इसका प्रयोग स्वर्ग के विशेषण के रूप में हुआ है : ये नाकस्याधि रोचने दिवि दैवास आसते ॥१-१९-६॥

रूपमय, रूपमान्, रूपवन्त, रूपवान्, तथा रूपी ये पाँचों शब्द रूप से निष्पन्न तथा सुन्दरता के द्योतक हैं। रूप की चर्चा आगे की जायगी।

रूरा, रूरो, इन दोनों की निरुक्ति का आधार है 'रूढ़' अर्थात् प्रशस्त।

ललाम और ललित भी सौन्दर्य द्योतक हैं। इनके स्त्रीलिंग हैं ललामी और ललिता। ललित की भाववाचक संज्ञा है लालित्य। संस्कृत वैयाकरण ललाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं : लड् धातु+क्विप् प्रत्यय, तम् अपति (=आप्नोति)। लड् का अर्थ है विलास, उसे जो प्राप्त करता है वह है ललाम। ललाम= लड्+क्विप्+अम्+अण्। डकार का लकार हो गया। लड् से लडह शब्द बनता है जिसका अर्थ है सुन्दर,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी के 'निकाई' और 'नीक' शब्द सुन्दरता वाचक हैं। हिन्दी शब्द सागर ने 'नीक' को सस्कृत के निक्त से व्युत्पन्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि निक्त से हिन्दी में नीक और अँगरेजी का 'नीट' वना, जिनका अर्थ है स्वच्छ।

हिन्दी का 'वाँका' संस्कृत के वंक अथवा वक्र से निष्पन्न है। ये शब्द टेढ़ापन सूचित करते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति से अभिव्यक्ति-सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

पेश=रूप। यह पिश् धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है संघटन करना, प्रकाश करना। पेशल और सुपेशी सुन्दरता द्योतक है।

प्रशस्त=प्र+शस+क्त। इसका अर्थ है वह जो प्रशंसा करने योग्य है सौन्दर्य अथवा अन्य किसी गुण के कारण।

प्रिय और प्रियदर्शी। इन दोनों शब्दों में प्रसन्नता की भावना है, पहले में साधारणत: और दूसरे में दर्शन के कारण; क्योंकि प्रिय शब्द प्री धातु और क प्रत्यय से वना है और संस्कृत के 'प्री' तथा आँग्ल भाषा के 'प्लीज़' का अर्थ है प्रसन्न करना, तृप्त करना।

भद्र शब्द भन्द धातु और रक् प्रत्यय से निष्पन्न है। पंचतंत्र में इसका प्रयोग सौन्दर्य-परक हुआ है। इससे व्युत्पन्न हिन्दी शब्द 'भला' है; और इसी अर्थ में इसका वहुल प्रयोग होता है। ऋग्वेद के कुछ उद्धरण हैं: भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजवा: (१-८९-८), भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतौ (८-९३-२८), भद्रं मन: वृत्रतूर्ये (८-१९-२०)। उक्त वेद में एक और मंत्र है :

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मी र्निहिताधि वाचि॥ १०-७१-२

इसमें यास्क ने भद्र की निरुक्ति इस प्रकार की है : भद्र=भग। भग क्यों? यह प्राणियों का भजने योग्य है, या प्राणी उसे भजते हैं (भजनीयं भूतानाम्), अथवा (वे प्राणी) उसकी ओर भागते हैं (अभिद्रवणीयम्) अथवा रमण (रति) देता है (भवद्रमयतिइतिवा), अथवा सुकृतीजन उसके भाजन होते हैं (भाजनाद् वा) (४-२-१०)। इससे प्रतीत होता है कि 'भद्र' में कोई आकर्षण है, जिसके कारण प्राणी उसकी ओर प्रवृत्त होते हैं।

'भव्य' शब्द भू धातु और यत प्रत्यय से निर्मित है; जिसका अर्थ है विद्यमान, आगे होने वाला, वहुत करके होने वाला, शुभ तथा सुन्दर।

मंजु, मंजुल और मंजिमान्। मंजु में मंज् धातु तथा कु प्रत्यय है। मंजु में लच् के योग से मंजुल और मंजु में इमनिच् प्रत्यय से मंजिमा शब्द वने हैं। मंज् धातु का अर्थ है दीप्त करना।

मधुर शब्द मधु और रा तथा क के (अथवा मधु और र के) संयोग से वना है, जिसका अर्थ है मिष्ट।

'मन' के योग से अनेक सुन्दरता वाचक शब्दों का निर्माण हुआ है। मनोज्ञ और मनोज्ञा शब्द 'मनस्' और 'ज्ञा' के योग से; मनस् और मोहन के योग से मनोमोहन; मनस् हृ और अच् के योग से मनोहर; मनस् और हरण के योग से मनहरण वने हैं। इसी प्रकार मनरोचन में मनस् और रोचन का योग है और मनोरम में मनस् और रम् का। इन शब्दों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि सौन्दर्य की अनभूति में मन का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विशेष स्थान है, यों मानसिक क्रिया तो मानव के प्रत्येक व्यवहार में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहती है। सौन्दर्य से मन का हरण होता है, उसमें मन् रमता है। वह मन को अनुकूल प्रतीत होता है अथवा अच्छा लगता है, जैसा कि मनोरोचन शब्द से संकेतित है। 'मनोभावन' (मनस्+भू+णिच्+ल्यु) शब्द से संकेत मिलता है कि सौन्दर्य मन को प्रभावित करता है और 'मनोमोहन' (मनस+मुह+णिच्+ल्यु) अथवा 'मनोमोहक' शब्द यह संकेत करता है कि सौन्दर्य मन को मोहने वाला, माया में डालने वाला, परेशान अथवा व्याकुल करने वाला है।

रतिमान् और रतिवन्त ये दोनों शब्द रति से निर्मित हैं; और रति स्वयं रम् धातु और क्तिन् प्रत्यय से निर्मित है। ये दोनों शब्द रतिपति कामदेव के सूचक हैं, जो प्रेम और सौन्दर्य का देवता है।

रम्य, रमणीय और रमणीक इन तीनों शब्दों में रम् धातु है। इनमें से प्रथम में यत् और दूसरे में अनीयर प्रत्यय है। रम् धातु का अर्थ है, प्रसन्न होना, खेलना, मैथुन करना, टिकना। सौन्दर्य के प्रभाव के कारण प्रसन्नता, मिथुनता अथवा चित्त-विराम होता है। वृहदारण्यक उपनिषद् का वाक्य है : रमिति प्राणो वै रं प्राणे होमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि इ वा अस्मिन् भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एवं वेद (५-१२), अर्थात् रम् निश्चय रूप से, जीवन है क्योंकि इस संसार में सब जीव जीवन में रमते हैं, निश्चय ही वास्तव में सब जीव उसमें प्रविष्ट होते हैं। मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है : अयोध्या नगरे रम्ये ॥१-१॥ छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है : तद्य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् (५-१०-७), अर्थात् उनमें से जो इस संसार में रमणीय आचरण वाले हैं वे शीघ्र ही रमणीय (ब्राह्मणादि उत्तम) योनि को प्राप्त होते हैं। रम्य शब्द भी 'सुन्दर' का पर्याय है, यथा : सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् (अभिज्ञान शाकुन्तलम् १-२०), अर्थात् शैवलिनी से आवृत होने पर कमल सुन्दर लगता है।

रण, रण्व और रण्य शब्दों का वैदिक प्रयोग सुन्दरता-परक रमणीय का पर्याय है, यथा ऋग्वेद (३-४७-१) में लिखा है : मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय। यहाँ निरुक्त (४-२-९) में रणाय=रमणीयाय, संग्रामाय। क्षेत्रं न रण्वम्=रमणीय क्षेत्र, ऋग्वेद १०-३३-६। ऋग्वेद (८-७७-११) में लिखा है : उभा ते वाहू रण्या सुसंस्कृत ऋष्टूपे चिद्रदूविधा। यहाँ निरुक्त (६-६-३३) में वारकाचार्य के अनुसार, रण्यौ= रमणीयौ संग्रामौ।

रुचिर, रुचक और रुचि, रोचन ये चारों शब्द रुच् धातु से निष्पन्न हैं, जिसका अर्थ है आभा या दीप्ति प्रदान करना—रुच दीप्तौ। ऋग्वेद में इसका प्रयोग स्वर्ग के विशेषण के रूप में हुआ है : ये नाकस्याधि रोचने दिवि दैवास आसते ॥१-१९-६॥

रूपमय, रूपमान्, रूपवन्त, रूपवान्, तथा रूपी ये पाँचों शब्द रूप से निष्पन्न तथा सुन्दरता के द्योतक हैं। रूप की चर्चा आगे की जायगी।

रूरा, रूरो, इन दोनों की निरुक्ति का आधार है 'रूढ़' अर्थात् प्रशस्त।

ललाम और ललित भी सौन्दर्य द्योतक हैं। इनके स्त्रीलिंग हैं ललामी और ललिता। ललित की भाववाचक संज्ञा है लालित्य। संस्कृत वैयाकरण ललाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं : लड् धातु+क्विप् प्रत्यय, तम् अपति (=आप्नोति)। लड् का अर्थ है विलास, उसे जो प्राप्त करता है वह है ललाम। ललाम= लड्+क्विप्+अम्+अण्। डकार का लकार हो गया। लड् से लडह शब्द बनता है जिसका अर्थ है सुन्दर,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और लड्डू अर्थात् मोदक भी। ललित अथवा इसका स्त्रीलिंग ललिता लल् धातु और क्त प्रत्यय से निर्मित है। 'लल' का अर्थ है खेलना, चाहना।

लावण्य=लवण+ष्यञ्। लवण और लवणा सौन्दर्य द्योतक भी हैं। नमक का रंग श्वेत होता है और स्वाद से लोकप्रिय है। जिस प्रकार माधुर्य उसी प्रकार लावण्य भी सौन्दर्य का पर्याय है। आंग्ल भाषा में सैलाइन ब्यूटि (Saline beauty) और फारसी में सुन्दर के लिए हैं 'नमकीन' नमकीनियत (मलाहत), मलीहुतब्बा (नमकीन मिज़ाज़ वाला)। हिन्दी में सलोना का प्रयोग सर्व-विदित है।

सूठ, सूठि, सुठार (सुडौल) सुठारु, सुठौना ये शब्द संस्कृत के सुष्ठु से व्युत्पन्न हैं, जिसकी निरुक्ति है : सु+स्था धातु+कु। इससे विदित होता है कि सौन्दर्य के प्रभाव से द्रष्टा का चित्त स्थिर होता है। इस निमित्त स्था और रम् दोनों धातु एक से हैं।

सुन्नर शब्द को 'सुनर' से अथवा सुन्दर के दकार के लोप से व्युत्पन्न किया जा सकता है।

सु उपसर्ग के योग से अनेक शब्दों का निर्माण हुआ है, यथा : सुकुमार=कोमल, सुजात=सु+जात, सुचारु=सु+चारु, सुरूप=सु+रूप, सुडौल=सु+डौल, सुन्दर आकार का, सुढर=सुडौल, सुढंग=सुघड़, सुदर्शन=देखने में सुन्दर। सुदेश=सु+देश (अंग), सुदेह=सु+देह (=शरीर), सुमुख=सु+मुख, सुमेरु=सु+मेरु अर्थात् अच्छे मेरुदण्डवाला अथवा हिरण्य वर्ण, सुरंग=सु+रंग (अच्छे रंग का), सुवर्ण=सु+वर्ण, अर्थात् अच्छे वर्ण का, अभिजात, हिरण्यवर्ण; सुरोचि=सु+रुचि=सुरुचि, सुवेश=सु+वेश, अर्थात् अच्छा वेशधारी, सुशोभन=सु+शोभन=अत्यन्त शोभायुक्त, स्वच्छ=सु+अच्छ=बहुत अच्छा, निर्मल; सुघड़ाई=सुघड़=सुघट=सुडौलपन, सुघटन=सु+घटन। सुभद्र और सुभद्रा दोनों सु उपसर्ग और भद्र (=भग) के योग से बने हैं, और सुन्दरता द्योतक हैं।

सुषमा=सुषम+टाप्। सुषम=सु+सम=सुन्दर (सम्), अथवा सुष्ठु समं सर्वं यस्मात्, अर्थात् वह जिसके आकार-प्रकार में सममात्रा (सिमिट्रि) अथवा समंजन हो। सकार का षकार हो गया है। अतएव सुषमा का अर्थ है परम शोभा, अत्यन्त सुन्दरता।

सौभाग्य=सुभगा+ष्यञ्=सौन्दर्य। सुभग=सु+भग। भग=ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज वचन हैं : षाड्गुण्य में तेज और ऐश्वर्य के समावेश के कारण सौभाग्य का अर्थ सौन्दर्य है, जो समुचित है। ऋग्वेद (३-१६-६) में अग्नि के लिए सुभग विशेषण है।

सुवासा का अर्थ है अच्छे वस्त्रोंवाली। सु+वासस। वासस=कपड़ा, वस्त्र। वासस=वस्+असुन्।

'सौम्य' अथवा 'सौम्या' भी सुन्दर का पर्याय है, जसा कि उसकी व्युत्पत्ति से स्पष्ट है। सौम्य=सोम+य+अण्। सोम का अर्थ है चन्द्रमा, अतएव सौम्य का अर्थ है चन्द्रमा-सा। वदन की उपमा प्रायः चन्द्र से दी जाती है, उसकी आकृति एवं कान्ति एवं वर्ण के कारण।

श्री और लक्ष्मी ये दोनों भगवान् विष्णु की पत्नियाँ हैं, जैसा कि यजुर्वेद का मंत्र है :

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ ३१-२२

यों तो श्री और लक्ष्मी दोनों का अर्थ सौन्दर्य है, तथापि उक्त मंत्र में भाष्यकारों के द्वारा श्री का अर्थ सम्पत्ति और लक्ष्मी का सौन्दर्य किया गया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हृदयग्राही, हृदय-वेधी, हृदय-हारी इन तीनों सौन्दर्य-द्योतक शब्दों से प्रतीत होता है कि सौन्दर्य हृदय को पकड़ लेता है, विद्ध करता अथवा हर लेता है।

हिरण्य स्वर्णवाचक है, और हिरण्मय तथा हिरण्यय इन दोनों शब्दों का अर्थ है सुनहला। ऋग्वेद में 'हिरण्य' का प्रयोग उदाहरणतः इस प्रकार है : हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, (१०-१२१-१), इन्द्रोवज्रो हिरण्यय (१-७-२)। यास्काचार्य निरुक्त (२-३-१०) में ऊहापोह करते हैं : हिरण्य यह नाम क्यों? (शिल्पी द्वारा भूषणों के रूप में) विस्तृत करने के लिए हरण करते हैं अथवा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के प्रति (व्यापार में) हरण किया जाता है, अथवा हित और रमण होता है (हितं रमणं भवतीति वा), अथवा प्रेप्सा या प्रकृष्ट प्राप्त करने की इच्छा के अर्थ में हृञ् धातु से (हर्यते वास्यात् प्रेप्सा कर्मणः)। दुर्भिक्ष आदि के समय हिरण्य से हित होता है और उसे लेकर चूहे को भी रति होती है। हर्यते स्वप्रभया दीप्यत इति सुबोधिनीकारः। अतएव हिरण्य वह वस्तु है जो अपनी कान्ति से चमकता है, और जिसे लेने की इच्छा लोग करते हैं।

इस प्रकार विचार करने पर हिरण्य को सौन्दर्य का प्रतीक मानना उचित प्रतीत होता है।

रूप की व्युत्पत्ति वैयाकरणों के अनुसार रूप् धातु और अच् प्रत्यय से है। रूप् का अर्थ है बनाना, गढ़ना, रंगमंच पर रूप धरना। अतएव रूप का अर्थ है आकृति, आकार, सौन्दर्य।

सौन्दर्य की चर्चा पूर्व और पश्चिम दोनों में हुई है। सुन्दर व्यक्तियों और वस्तुओं का वर्णन होता रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी उपलब्ध है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराणों में विशेषतः संस्कृत-हिन्दी के काव्यों में प्रचुरता से प्राप्त है।

किन्तु कदाचित् सौन्दर्य के स्वरूप के सम्बन्ध में जितना क्रमबद्ध मनन पश्चिम में हुआ है, उतना पूर्व में नहीं। पश्चिम में सौन्दर्य की मीमांसा शास्त्र के रूप में हुई है, यों जैसा कि कहा जा चुका है, पूर्व में सौन्दर्य के वर्णन बाहुल्य का तनिक भी अभाव नहीं।

सौन्दर्य के दो पक्ष हैं . ग्रहण और सर्जन अथवा अनुभूति और अभिव्यक्ति। सौन्दर्य क्या है? उसका क्या आधार है? उसमें कितने तत्व होते हैं? उसके कितने भेद हैं? सौन्दर्य का निवास कहाँ है—मन में या वस्तु में? हमारे मन पर सौन्दर्य का क्या प्रभाव पड़ता है? सत्य से और शिव से सौन्दर्य का क्या सम्बन्ध है, ऐसे प्रश्न सौन्दर्यानुभूति परक हैं। किसी सुन्दर व्यक्ति-वस्तु की अनुभूति कर उसकी अनुपस्थिति में, स्थापत्य, शिल्प अथवा चित्र के द्वारा, उसका पुनर्निर्माण तो सौन्दर्य-सर्जन का है अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का विषय है। अभिव्यक्ति विशेष किस प्रकार सम्पन्न हो, तन्निमित्त हमारे पास क्या साधन हों और उस अभिव्यक्ति कौशल के लिए हमें किन नियमों का अनुसरण करना चाहिए? व्यक्ति और समाज के लिए ऐसी अभिव्यक्ति का क्या उपयोग है? ऐसी अभिव्यक्ति निमित्त योग्यता की क्या रूपरेखा और सीमा है? ऐसे प्रश्न सौन्दर्याभिव्यक्ति-परक हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और लड्डू अर्थात् मोदक भी। ललित अथवा इसका स्त्रीलिंग ललिता लल् धातु और क्त प्रत्यय से निर्मित है। 'लल' का अर्थ है खेलना, चाहना।

लावण्य=लवण+ष्यञ्। लवण और लवणा सौन्दर्य द्योतक भी हैं। नमक का रंग श्वेत होता है और स्वाद से लोकप्रिय है। जिस प्रकार माधुर्य उसी प्रकार लावण्य भी सौन्दर्य का पर्याय है। आंग्ल भाषा में सैलाइन ब्यूटि (Saline beauty) और फारसी में सुन्दर के लिए हैं 'नमकीन' नमकीनियत (मलाहत), मलीहुतब्बा (नमकीन मिज़ाज़ वाला)। हिन्दी में सलोना का प्रयोग सर्व-विदित है।

सूठ, सूठि, सुठार (सुडौल) सुठारु, सुठौना ये शब्द संस्कृत के सुष्ठु से व्युत्पन्न हैं, जिसकी निरुक्ति है : सु+स्था धातु+कु। इससे विदित होता है कि सौन्दर्य के प्रभाव से द्रष्टा का चित्त स्थिर होता है। इस निमित्त स्था और रम् दोनों धातु एक से हैं।

सुन्नर शब्द को 'सुनर' से अथवा सुन्दर के दकार के लोप से व्युत्पन्न किया जा सकता है।

सु उपसर्ग के योग से अनेक शब्दों का निर्माण हुआ है, यथा : सुकुमार=कोमल, सुजात=सु+जात, सुचारु=सु+चारु, सुरूप=सु+रूप, सुडौल=सु+डौल, सुन्दर आकार का, सुढर=सुडौल, सुढंग=सुघड़, सुदर्शन=देखने में सुन्दर। सुदेश=सु+देश (अंग), सुदेह=सु+देह (=शरीर), सुमुख=सु+मुख, सुमेरु=सु+मेरु अर्थात् अच्छे मेरुदण्डवाला अथवा हिरण्य वर्ण, सुरंग=सु+रंग (अच्छे रंग का), सुवर्ण=सु+वर्ण, अर्थात् अच्छे वर्ण का, अभिजात, हिरण्यवर्ण; सुरोचि=सु+रुचि=सुरुचि, सुवेश=सु+वेश, अर्थात् अच्छा वेशधारी, सुशोभन=सु+शोभन=अत्यन्त शोभायुक्त, स्वच्छ=सु+अच्छ=बहुत अच्छा, निर्मल; सुघड़ाई=सुघड़=सुघट=सुडौलपन, सुघटन=सु+घटन। सुभद्र और सुभद्रा दोनों सु उपसर्ग और भद्र (=भग) के योग से बने हैं, और सुन्दरता द्योतक हैं।

सुषमा=सुषम+टाप्। सुषम=सु+सम=सुन्दर (सम्), अथवा सुष्ठु समं सर्वं यस्मात्, अर्थात् वह जिसके आकार-प्रकार में सममात्रा (सिमिट्रि) अथवा समंजन हो। सकार का षकार हो गया है। अतएव सुषमा का अर्थ है परम शोभा, अत्यन्त सुन्दरता।

सौभाग्य=सुभगा+ष्यञ्=सौन्दर्य। सुभग=सु+भग। भग=ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज वचन हैं : षाड्गुण्य में तेज और ऐश्वर्य के समावेश के कारण सौभाग्य का अर्थ सौन्दर्य है, जो समुचित है। ऋग्वेद (३-१६-६) में अग्नि के लिए सुभग विशेषण है।

सुवासा का अर्थ है अच्छे वस्त्रोंवाली। सु+वासस। वासस=कपड़ा, वस्त्र। वासस=वस्+असुन्।

'सौम्य' अथवा 'सौम्या' भी सुन्दर का पर्याय है, जसा कि उसकी व्युत्पत्ति से स्पष्ट है। सौम्य=सोम+य+अण्। सोम का अर्थ है चन्द्रमा, अतएव सौम्य का अर्थ है चन्द्रमा-सा। वदन की उपमा प्रायः चन्द्र से दी जाती है, उसकी आकृति एवं कान्ति एवं वर्ण के कारण।

श्री और लक्ष्मी ये दोनों भगवान् विष्णु की पत्नियाँ हैं, जैसा कि यजुर्वेद का मंत्र है :

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥ ३१-२२

यों तो श्री और लक्ष्मी दोनों का अर्थ सौन्दर्य है, तथापि उक्त मंत्र में भाष्यकारों के द्वारा श्री का अर्थ सम्पत्ति और लक्ष्मी का सौन्दर्य किया गया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हृदयग्राही, हृदय-वेधी, हृदय-हारी इन तीनों सौन्दर्य-द्योतक शब्दों से प्रतीत होता है कि सौन्दर्य हृदय को पकड़ लेता है, विद्ध करता अथवा हर लेता है।

हिरण्य स्वर्णवाचक है, और हिरण्मय तथा हिरण्यय इन दोनों शब्दों का अर्थ है सुनहला। ऋग्वेद में 'हिरण्य' का प्रयोग उदाहरणतः इस प्रकार है : हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, (१०-१२१-१), इन्द्रोवज्रो हिरण्यय (१-७-२)। यास्काचार्य निरुक्त (२-३-१०) में ऊहापोह करते हैं : हिरण्य यह नाम क्यों? (शिल्पी द्वारा भूषणों के रूप में) विस्तृत करने के लिए हरण करते हैं अथवा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के प्रति (व्यापार में) हरण किया जाता है, अथवा हित और रमण होता है (हितं रमणं भवती-ति वा), अथवा प्रेप्सा या प्रकृष्ट प्राप्त करने की इच्छा के अर्थ में हृञ् धातु से (हर्यते वास्यात् प्रेप्सा कर्मणः)। दुर्भिक्ष आदि के समय हिरण्य से हित होता है और उसे लेकर चूहे को भी रति होती है। हर्यते स्वप्रभया दीप्यत इति सुबोधिनीकारः। अतएव हिरण्य वह वस्तु है जो अपनी कान्ति से चमकता है, और जिसे लेने की इच्छा लोग करते हैं।

इस प्रकार विचार करने पर हिरण्य को सौन्दर्य का प्रतीक मानना उचित प्रतीत होता है।

रूप की व्युत्पत्ति वैयाकरणों के अनुसार रूप् धातु और अच् प्रत्यय से है। रूप् का अर्थ है बनाना, गढ़ना, रंगमंच पर रूप धरना। अतएव रूप का अर्थ है आकृति, आकार, सौन्दर्य।

सौन्दर्य की चर्चा पूर्व और पश्चिम दोनों में हुई है। सुन्दर व्यक्तियों और वस्तुओं का वर्णन होता रहा है। प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी उपलब्ध है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराणों में विशेषतः संस्कृत-हिन्दी के काव्यों में प्रचुरता से प्राप्त है।

किन्तु कदाचित् सौन्दर्य के स्वरूप के सम्बन्ध में जितना क्रमबद्ध मनन पश्चिम में हुआ है, उतना पूर्व में नहीं। पश्चिम में सौन्दर्य की मीमांसा शास्त्र के रूप में हुई है, यों जैसा कि कहा जा चुका है, पूर्व में सौन्दर्य के वर्णन बाहुल्य का तनिक भी अभाव नहीं।

सौन्दर्य के दो पक्ष हैं : ग्रहण और सर्जन अथवा अनुभूति और अभिव्यक्ति। सौन्दर्य क्या है? उसका क्या आधार है? उसमें कितने तत्व होते हैं? उसके कितने भेद हैं? सौन्दर्य का निवास कहाँ है—मन में या वस्तु में? हमारे मन पर सौन्दर्य का क्या प्रभाव पड़ता है? सत्य से और शिव से सौन्दर्य का क्या सम्बन्ध है, ऐसे प्रश्न सौन्दर्यानुभूति परक हैं। किसी सुन्दर व्यक्ति-वस्तु की अनुभूति कर उसकी अनुपस्थिति में, स्थापत्य, शिल्प अथवा चित्र के द्वारा, उसका पुनर्निर्माण तो सौन्दर्य-सर्जन का है अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का विषय है। अभिव्यक्ति विशेष किस प्रकार सम्पन्न हो, तन्निमित्त हमारे पास क्या साधन हों और उस अभिव्यक्ति कौशल के लिए हमें किन नियमों का अनुसरण करना चाहिए? व्यक्ति और समाज के लिए ऐसी अभिव्यक्ति का क्या उपयोग है? ऐसी अभिव्यक्ति निमित्त योग्यता की क्या रूपरेखा और सीमा है? ऐसे प्रश्न सौन्दर्या-भिव्यक्ति-परक हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी आचार्यत्व

डा० विजयपाल सिंह
एम० ए०, पी-एच० डी०

संस्कृत काव्य की सुदीर्घ परम्परा किसी न किसी रूप में १८वीं शताब्दी तक चलती रही। इस परम्परा के साथ-साथ इस स्रोत से निःसृत संस्कृत काव्य-शास्त्र के पृष्ठाधार पर अवलंबित, पर अपनी निजी 'भाषा' तथा युगीन परिवेश की सीमाओं से निबद्ध और प्रभावित, हिन्दी काव्य-शास्त्र की परम्परा भी चली। सामान्य रूप से १६वीं शती में ही इसका सूत्रपात हो गया था और सत्रहवीं तथा अठारहवीं शती में प्रबल और पुष्ट होती हुई यह परम्परा १९वीं शती तक चली आई। एकाध देशी भाषा ही इतनी दीर्घ काव्यशास्त्र की परम्परा का गर्व कर सकती है। यद्यपि हिन्दी के आचार्य का उपजीव्य संस्कृत काव्यशास्त्र ही था, तथापि उनकी अपनी विचित्रताएँ और विशेषताएँ भी थीं। उसको अपनी निजी सीमाओं के भीतर कार्य करना था और युग की प्रवृत्ति और माँग को संपुष्ट करना था। 'आचार्यत्व' का रूप इन तत्त्वों के आधार पर निर्धारित हुआ।

संस्कृत भाषा के प्रति देशी भाषा की मृदु क्रान्ति हुई। अपने समय में प्राकृत और अपभ्रंश ने साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत के समान ही लोकप्रियता और प्रतिष्ठा प्राप्त की। प्रेमकाव्य, गीत रचना, मुक्तक रचना और चरित काव्य के क्षेत्र में प्राकृतों और अपभ्रंश की उपयुक्तता दृढ़ता से स्वीकार की गई। "यदि हम संस्कृत साहित्य की ओर दृष्टि फेरें, तो देखेंगे कि आठवीं शताब्दी के बाद का संस्कृत साहित्य उत्तरोत्तर पंडितों की चीज बनता गया। इस साहित्य में लोक-जीवन से हटे हुए एक कल्पित जीवन और कल्पित संसार का आभास मिलता है"।[1] अपभ्रंश की विकसित परम्परा में अब्दुल रहमान, स्वयंभू तथा विद्यापति ने 'भाषा' को दृढ़ता से पकड़ा। स्वयंभू ने 'देशीभाषा उभय तडुज्जल' कहकर उसकी जीवनाभा की घोषणा की। विद्यापति ने 'देसिल बयणा सब जन मिट्ठ' कहकर उसके माधुर्य में अपना विश्वास प्रकट किया। स्वयंभू ने अपनी भाषा नीति के सम्बन्ध में कहा :

"सामाण भास छुड माविहडउ, छुडु आगमजुत्ति किणि घडडउ।
छुडु होंति सुहाइय-वयणाइं, गामेल्ल भास परिहरणाइं।
एहु सज्जण लोयउ किउ बिनउ, जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ।"[2]

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १०।

२. इसका रूपांतर राहुल जी ने इस प्रकार दिया है :

सामान्य भाष यदि ना गढ़ऊं, यदि आगम युक्ति किछू गढ़ऊं।
यदि होंइ सुभाषित बचनाई, ग्रामीण भाष परिहरणाई।
एहु सज्जन लोगहँ का विनऊँ, जो अबुधि प्रदर्शेउ आपनऊ॥

—हिन्दी काव्यधारा, पृ० २४-२५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सामान्य भाषा के ग्राम्य रूप को स्वयंभू अपनाना चाहता है।

तुलसी तक आते-आते इस लोकभाषा का स्वरूप और इसकी कांति विशद हो गई। इस कांति ने जहाँ शास्त्रीय संस्कृत भाषा के प्रासाद को डगमगा दिया और 'भाषा' को दृढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित किया; वहाँ शास्त्रीय काव्य नियोजन के स्थान पर लोकप्रवृत्ति से पुष्ट काव्य की स्थापना हुई। 'का भासा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच' कहकर तुलसी ने भाव की प्रतिष्ठा की, इससे काव्य रूप से सम्बद्ध शास्त्र की उपेक्षा हुई। उन्होंने 'रघुनाथ गाथा' को भाषा निवद्ध किया। उन्होंने अपनी 'भाषा भणिति' की सफलता के लिए शिव-पार्वती से प्रार्थना की :

सपनेहुँ साँचेहुँ मोहिं पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ।[1]

तुलसी ने भी काव्य शास्त्र के विधि-विधान की ओर उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया :

कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥[2]

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तुलसी इस सब शास्त्रीय विधान से सामान्यतः भी परिचित नहीं थे, या इस विधान का प्रयोग उन्होंने नहीं किया; वल्कि इसका तात्पर्य यही है कि इन सभी काव्यांगों के शास्त्रीय संविधान को भाव की अपेक्षा कम महत्व देते थे। वैसे मानस रूपक में इनकी स्थिति भी बताई गई है : 'उपमा वीचि विलास मनोरम', 'पुरइनि सघन चारु चौपाइ', 'छंद सोरठा सुन्दर दोहा', 'अरथ अनूप सुभाव सुभासा', 'धुनि अवरेब कबिब गुन जाती', 'नवरस जपतप जोग बिरागा।' इस सूची में प्रायः सभी काव्यांग आ जाते हैं। स्वयंभू ने भी इनके प्रयोग की वात कही है।[3]

महाकाव्य के क्षेत्र में भाषा और महाकाव्य की इस लोकभूमिका पर केशव झुँझला रहे थे : केशव कवियों के उस आभिजात्य वर्ग के प्रतिनिधि थे, जो संस्कृत भाषा और उसके काव्य शास्त्र के समर्थक थे। पर युग की प्रवृत्ति के दबाव की विवशता थी कि केशव को भी 'भाषा' अपनानी पड़ी,[4] पर काव्य शास्त्र को दृढ़ता से पकड़े रखा। यह महाकाव्य या प्रबंध के क्षेत्र की स्थिति थी।

---

१. बालकाण्ड, दोहा १५।

२. वही, दोहा ८-९ के बीच।

३. सम्बद्ध पंक्तियों का रूपांतर राहुल जी ने इस प्रकार दिया है :

अक्षर-बास-जलोध मनोहर, सुअलंकार छंद मत्स्योधर।
दीर्घ समास प्रवाहींह बंकित, संस्कृत प्राकृत पुलिनालंकृत॥
——हिन्दी काव्यधारा, पृ० २८।

४. भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
ते भाषा कविता करी, जड़मति केसवदास॥—कविप्रिया

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जहाँ तक मुक्तक और गीतों का प्रश्न था, उनकी भी 'भाषा' और 'भाव शवलता' की ओर प्रवृत्ति स्वाभाविक थी। एक ओर 'संधा' भाषा सिद्ध-सेवित थी। इसके साथ काव्य शास्त्र का सम्बद्ध होना किसी दृष्टि से संभव नहीं था। अलंकारों के स्थान पर आध्यात्मिक संकेतों से युक्त शब्द-प्रतीकों का प्रयोग होता था। इनकी व्याख्या के लिए अलंकार शास्त्र की ओर जाना आवश्यक नहीं था। इस परम्परा में आगे निर्गुणियों के गीत-सबद-दोहरा की परंपरा आती है। यह भी प्रतीक विधान पर आधारित धारा थी।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी या देशी भाषा की आरंभिक परिस्थितियों में 'काव्यशास्त्र' को विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त नहीं हुआ। एक प्रकार से उच्चवर्गीय काव्य साधना के प्रति एक प्रतिक्रिया भी परिलक्षित की जा सकती है। पर रूपगोस्वामी के सूक्ष्म रस और नायक-नायिका विवेचन ने काव्यशास्त्र के भक्ति-रंजित रूप की सुदृढ़ परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। भक्ति के स्वरों ने काव्य-शास्त्र की दिशा-दृष्टि में तो परिवर्तन उपस्थित किया, पर उसे देश-व्यापी भक्ति आंदोलन से सम्बद्ध करके उसे गति दी। जयदेव की वाणी भी इस परंपरा में गृहीत हुई। विद्यापति और चण्डीदास ने काव्य शास्त्र तो नहीं लिखा; पर मधुर भाव, नायिका निरूपण को साहित्य में स्थान प्रदान किया। सिद्ध नाथ सन्त परम्परा की काव्य शास्त्र की ओर बढ़ती हुई उपेक्षा को एक प्रकार से ललकारा। भक्ति से संबद्ध होने से काव्यशास्त्र में कुछ विशेषताएँ आ गई थीं, काव्य शास्त्र अलंकारों के विधान की अपेक्षा रस-संयोजन की ओर विशेष रूप से झुका, भक्ति भावना की प्रबलता ने शास्त्रीय आचार्यत्व की अपेक्षा उदाहरणों की रचना की ओर विशेष ध्यान दिया, अर्थात् शुद्ध शास्त्रीय विचारधारा का प्रायः अन्त हो गया। उदाहरणों में राधा-कृष्ण अथवा इष्टदेव का विशेष रूप से प्रवेश हो गया, राधा-गोपी-कृष्ण के त्रिकोण पर आश्रित मधुर भाव संवलित लीला काव्य में नायिका-निरूपण प्रधान होता गया, जिसका काव्यशास्त्र ने विशेष रूप से पोषण किया और रसरीति को समझने के माध्यम स्वरूप अव्यक्त रूप से काव्यशास्त्र को बल मिला। कृपाराम की 'हिततरंगिणी', सूर की 'साहित्य लहरी', नंददास की 'रसमंजरी' तथा रहीम की 'बरवै नायिका भेद' जैसी रचनाओं में भक्ति आश्रित काव्य शास्त्र का रूप दीखता है। 'हिततरंगिणी' में 'हित' शब्द यह प्रकट करता है कि ये राधावल्लभ संप्रदाय के थे।[1] नन्ददास ने स्पष्ट रूप से रसमंजरी का उद्देश्य प्रेम-रीति-परिचय बताया है : "विन जाने यह भेद सब, प्रेम न परचै होय।" गोपा ने अपने 'रामभूषण' में अपनी रामभक्ति-भावना और अलंकार-निरूपण की रुचि का समन्वय किया है। मोहन लाल मिश्र के 'शृंगार सागर' का उद्देश्य भी भक्तिमूलक था। सूर की साहित्य लहरी उद्देश्यतः शास्त्रीय ग्रंथ नहीं है, उसमें भक्ति ही उच्छ्वसित है। इस प्रकार सगुण भक्ति शाखा में काव्यशास्त्र का प्रवेश हो गया था। आगे के साहित्य पर इस परम्परा का इतना तो प्रभाव अवश्य ही पड़ा कि राधाकृष्ण का शृंगारिक रूप रीतिकालीन कवियों द्वारा रचित उदाहरणों में ओत-प्रोत रहा। भक्त्याश्रित काव्यशास्त्र की इस परिस्थिति में केशव ने स्वतंत्र काव्य शिक्षा की दृष्टि से काव्यशास्त्र की पुनः प्रतिष्ठा की। यही हिन्दी के काव्यशास्त्र का सूत्रपात था। आगे भक्ति और काव्यशास्त्र की परंपरा चली तो अवश्य, पर शिथिल रूप में। भक्ति का स्थान 'शृंगार' ने लिया और काव्यशास्त्र के प्रति कवि और आचार्य विशेष उद्‌बुद्ध हो गए। भक्ति ने काव्य के साथ संगीत का संयोग करके काव्यशास्त्र को सीमित कर दिया था। मुक्तकों के उदय ने इसे फिर बल प्रदान किया।

---

१. राधा वल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत एवं अध्ययन, डा० विजयेन्द्र स्नातक।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राज्याश्रय और काव्यशास्त्र

जिस प्रकार भक्ति के आश्रय ने काव्यशास्त्र को प्रभावित करना आरम्भ किया, उसी प्रकार १७वीं शती के संस्कृत और हिन्दी काव्यशास्त्र को राज्याश्रय की प्रकृति ने भी प्रभावित किया। अत्यन्त प्राचीन काल से 'शास्त्र' को राज्याश्रय मिलता रहा था। उपनिषद् युग में जनक आदि के दरबार में दार्शनिक विद्वान् रहते थे और सत्यानुसंधान के लिए शास्त्रार्थ करते रहते थे। वैदिक सूक्तियों में अतिशयोक्तिपूर्ण 'नाराशंसियों' तथा 'प्रशस्तियों' का उल्लेख भी मिलता है।[१] ऋग्वेद में भी प्रश्रयदाता प्रभुओं की प्रशंसा और कुशल प्रशस्ति गायकों को दिए जाने वाले पुष्कल पारितोषिकों का वर्णन करने वाली दान-स्तुतियाँ पाई गई हैं। देवताओं की विजयों की प्रशस्तियाँ तो मिलती ही हैं।[२] पुरुरवा[३] और नहुष[४] जैसे कुछ राजाओं की चर्चा भी है। इन वर्णनों में कहीं-कहीं अलंकृत शैली का प्रयोग है। पतंजलि द्वारा प्रयुक्त श्लोकों अथवा श्लोकांशों को उद्धृत करके कीथ ने शृंगार, प्रशस्ति, करुणा सुभाषित आदि काव्य रूपों के बीजों तथा उनके अंकुरण को सिद्ध किया है।[५] 'प्रशस्ति' की स्थिति राज्याश्रय को प्रमाणित करती है। सुप्रसिद्ध संस्कृत कवियों के संरक्षण का श्रेय बहुत कुछ राजाओं को ही था।[६] 'बाण' के आश्रयदाता हर्ष और अनेक कवियों और आचार्यों के आश्रयदाता भोज को नहीं भुलाया जा सकता।

मध्यकाल में राज्याश्रय का द्विविध रूप हो गया: मुस्लिम शासकों का राज्याश्रय तथा हिन्दू सामन्तों का आश्रय। शासनीय समस्याओं से बहुत कुछ मुक्त होकर तथा अवकाश प्राप्त हिन्दू राजाओं तथा सामन्तों ने शास्त्र और काव्य के संरक्षण, सृजन एवं पुनरुत्थान में सक्रिय रुचि ली। भाषा ही नहीं, संस्कृत कवियों और काव्यशास्त्र के आचार्यों को भी मुस्लिम बादशाहों का आश्रय प्राप्त हुआ। प्रमुख आश्रयदाता और आश्रित संस्कृत कवि ये हैं[७]:

१. भानुकर (भानुदत्त)	: शेरशाह, निजामशाह
२. गोविन्द भट्ट[८]	: अकबर
३. पंडितराज जगन्नाथ	: शाहजहाँ, आसफखाँ[९]

---

१. Macdonall and Keith, Vedic Index, 1, p. 443.

२. इंद्र की शम्बर विजय, ऋ० ७।९९।५, २।१४।६।

३. यजु० ५।२।

४. ऋ० ८।८।३; १।१२२।११; ७।६।५; १०।९२।१२; ८।६।२४।

५. कीथ, हिन्दी अनुवाद, पृ० ५८।

६. राजशेखर ने काव्य मीमांसा में कुछ प्रसिद्ध आश्रयदाता राजाओं का उल्लेख किया है—वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक, साहसांक आदि।

७. यह सूची J. B. Chaudhari, Muslim Patronage and contribution to Sanskrit Learning (Introducing India, part II, Calcutta, 1949, p 83) के आधार पर है।

८. इनको अकबरीय कालिदास भी कहा जाता था। इनके पद्य १६वीं शती के उत्तरांश के पश्चात् के पद्य संग्रहों में उपलब्ध हैं।

९. 'आसफविलास' रचना इसका प्रमाण है। दिल्लीश्वर की प्रशंसा में इन्होंने लिखा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

४. हरिनारायण मिश्र[1] : शाहजहाँ
५. वंशीधर मिश्र[2] : मुमताजमहल, शाहजहाँ
६. चतुर्भुज[3] : शायस्त खाँ (औरंगजेब)
७. लक्ष्मीपति[4] : मुहम्मद शाह
८. उदयराज[5] : मुहम्मद बेगदा (गुजरात)
९. मंडन[6] : होशंग गौरी अथवा अलपखाँ (मालवा)

उक्त सूची में से १, ३, ६, ७ तथा ९ ने संस्कृत में काव्यशास्त्रीय रचनाएँ कीं। काव्य और काव्य शास्त्र के अतिरिक्त ज्योतिष, संगीत, व्याकरण, दर्शन, कोष आदि शास्त्रीय विषयों पर मुस्लिम शासकों के संरक्षण में रचनाएँ हुईं। ये विद्याएँ भी काव्य के लिए सहायक अप्रस्तुत सामग्री प्रस्तुत करती थीं। 'नाम-माला' साहित्य (कोषशास्त्र) विशेष रूप से काव्य और काव्यशास्त्र के लिए आवश्यक था। नन्ददास ने भी 'नाममाला' की रचना की थी। हिन्दी में आरंभ से ही छंदवद्ध नाममालाओं की परम्परा मिलती है। यह परम्परा इस सूची से स्पष्ट हो जाती है:

खालिकबारी	: अमीर खुसरो	नाममाला	: बनारसीदास
अनेकार्थ मंजरी	: नन्ददास	अमरकोष भाषा	: हरिजू मिश्र
मानमंजरी	: नन्ददास	नाममाला कोष	: चन्दन
नाममाला	: नन्ददास	शब्द रत्नावली	: प्रयागदास

मुसलमान वादशाहों ने नाममालाकारों तथा अन्य संस्कृत के शास्त्रज्ञों को अपने दरबार में आश्रय दिया। हर्षकीर्ति की लिखी 'नाममाला' एक प्रसिद्ध पर्याय कोष है।[7] हर्षकीर्ति के गुरु चन्द्रकीर्ति जहाँगीर के द्वारा सम्मानित और संरक्षित थे।[8] हर्षकीर्ति ने अपनी 'धातुपाठ तरंगिणी' में संस्कृत के विभिन्न आश्रित शास्त्रकारों की सूची आश्रयदाताओं के नाम के साथ दी है।[9] 'सूची में अलाउद्दीन से लेकर जहाँगीर तक

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्येन केनापि नृपेण दत्तं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥

१. 'पद्मवेणी' में इनके दो पद्य संकलित हैं।
२. पद्माकृत तरंगिणी में इनके दो पद्य संकलित हैं।
३. रचना 'रसकल्पद्रुम' (१६८९ ई०)।
४. रचना 'लिपिमालिका' १८वीं शती।
५. रचना 'राजविनोद'।
६. रचनाएँ—काव्य मंडन, शृंगार मंडन, सारस्वत मंडन।
७. पूना से १९६१ ई० में प्रकाशित: सम्पादक मधुकर मंगेश पटकर।
८. वही, भूमिका, पृ० VII।
९. वज्रसेन : अलाउद्दीन (अल्लवदी); रत्नशेखर-पीरोजशाह (१३५१-१३८८ ई०), हंसकीर्ति :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की परम्परा स्पष्ट होती है। अकबर से पूव ही संस्कृत के शास्त्राचार्यों को मुस्लिम प्रश्रय प्राप्त होता रहा। संगीत आदि अन्य शास्त्रकारों को भी संरक्षण मिला।[1] अनेक हिंदी काव्यशास्त्र के रचयिताओं को भी मुस्लिम संरक्षण प्राप्त था।

केशव-पूर्व हिंदी काव्याचार्यों का विशेष विवरण तो प्राप्त नहीं, पर वे भी या तो स्वतंत्र थे अर्थात् भक्तिपरक काव्यशास्त्र से सम्बद्ध थे अथवा राज्याश्रित थे। पुण्ड या पुष्य, राजा मान के आश्रित था।[2] केशवदास का सम्बन्ध यद्यपि एक हिन्दू राजा से था, फिर भी जहांगीर से उनका गहरा सम्बन्ध भुलाया नहीं जा सकता। आगे के आचार्यों का सम्बन्ध तो प्रायः राजाओं या मुस्लिम बादशाहों से था। इनका राज्याश्रय विवरण यों दिया जा सकता है :

सुन्दर कवि	: शाहजहाँ
चिन्तामणि	: नागपुर के मकरंद शाह[3]
मतिराम	: बूंदी के भावसिंह
भूषण	: शिवाजी
कुलपति मिश्र	: महाराज रामसिंह (जयपुर)[4]
सुखदेव मिश्र	: औरंगजेब के मंत्री फ़ाजिल अली
देव	: कई आश्रयदाता, पर मुख्य रूप से भोगीलाल
कालिदास त्रिवेदी	: बीना के जालिम जोगा जीत
सूरति मिश्र	: जहाँनाबाद के नेवाज़ मुहम्मद
आचार्य श्रीपति	: सम्भवतः स्वतंत्र
सोमनाथ	: प्रतापसिंह (भरतपुर)
करन कवि	: पन्ना नरेश
भिखारीदास	: अलवर नरेश हिन्दूपति
प्रतापसाहि	: चरखारी नरेश विक्रम साहि
नवीन	: नाभा नरेश जसवन्त सिंह
पद्माकर	: जगतसिंह (जयपुर)[5]

सिकन्दरशाह (सम्भवतः सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१८ ई०), आनन्दराय : हुमायूं (१५३०-१५४०), चंद्रकीर्ति : शाहसलेम (जहांगीर), पद्मा सुन्दर मणि : अकबर (१५५६-१६०५)।

१. Journal of Indian History 'Cultural Activities During The Reign of Allauddin Khilji, Introducing India part II. 'Muslim Patronage and contribu tion to Sanskrit Learning. J. K. chaudhary.

२. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १ (सं० १९९४ वि०), पृ० ७३; शिवसिंह सरोज०, पृ० १ (भूमिका)।

३. सूरजबंसी भोसला लसत साह मकरंद।
महाराज दिगपाल जिमि भाल समुद सुभचन्द॥
इनको रुद्रसिंह सोलंकी तथा शाहजहाँ की कृपा भी प्राप्त थी।

४. रस रहस्य ८।२०८, २०९।

५. यह सूची उदाहरण स्वरूप दी गई है। बृहत् सूची के लिए 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठ भाग) देखिए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राजाओं ने ही नहीं, उनके अमीर-उमरावों ने भी हिंदी के आचार्यों को आश्रय दिया। बेनी बन्दीजन वज़ीर टिकैटराय (लखनऊ) के कृष्ण कवि जयपुर नरेश हरनाथ सिंह के पुत्र गोविंद सिंह के आश्रित थे। इनके अतिरिक्त अनेक ज्ञात-अज्ञात आचार्यों को राजाओं के अमीर-उमरावों ने आश्रय दिया था।

इस प्रकार राज्याश्रय का द्वार हिंदी और संस्कृत आचार्यों के लिए उन्मुक्त रहा। इस राज्याश्रय ने आचार्य का स्वरूप निर्धारित किया। हिन्दी के आचार्यत्व की सीमा निश्चित करने में संस्कृत की सुदीर्घ काव्यशास्त्र परंपरा का भी हाथ था। काव्यशास्त्र के प्रत्येक अंग पर प्रायः अंतिम शब्द कहा जा चुका था। सिद्धांतों का परीक्षण, खण्डन-मण्डन तथा उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना हो चुकी थी। इस समृद्ध परम्परा ने प्रेरणा तो भरपूर दी, पर हिन्दी के आचार्य के कर्तव्य-पथ को जटिल बना दिया। काव्यशास्त्र में सक्रिय रूप से उद्भावक या व्याख्याता के रूप में भाग ले सकना सम्भव नहीं था। पर राज्याश्रय 'विनोद और विलास' के रूप में काव्य और काव्य-शास्त्र की सृष्टि की प्रेरणा दे रहा था। इस प्रकार संस्कृत काव्य-शास्त्र को स्रोत के रूप में स्वीकार करके और राज्याश्रय से प्रेरणा लेकर हिन्दी का आचार्य चला। हिन्दी के 'आचार्य' के साथ 'कवि' भी लगा रहा। आचार्यत्व की पूर्णता के लिए कवि ने उदाहरणों की योजना की। विजयी या पराजित आश्रयदाता के अवकाश क्षणों को प्रशस्ति और विनोद विलास से मंडित और स्फीत बनाना आश्रित कवि आचार्य का कर्तव्य-कर्म सुनिश्चित हुआ। इस काल का आश्रयदाता 'भोज' और 'हर्ष' की परम्परा में नहीं था, जो काव्य-शास्त्रीय सूक्ष्म ऊहापोह को आश्रय देता। वह सम्भवतः शास्त्र में नहीं विनोद में, काव्य-शास्त्र में नहीं, कविता के काव्य-शास्त्रीय रसास्वाद तथा तत्संबंधी शक्ति संचय में अभिरुचि रखता था। उसकी रुचि का एक और पक्ष था : वह काव्य-शास्त्रीय उपलब्धि में इतना विश्वास नहीं रखता था, उसे स्वयं भी कविता की रचना (चाहे प्रयत्नसाध्य ही क्यों न हो) की अभिलाषा थी। तत्कालीन सामंतीय जीवन का आदर्श वह था, जो कामशास्त्र ने निश्चित किया था। नागरिक की दिनचर्या में परिष्कृत रुचि और कला-विलास का स्थान था। उसके लिए बहुमुखी ज्ञान अनिवार्य था। साहित्य-संगीत-कला की गोष्ठियाँ आयोजित होती रहती थीं। यह वातावरण 'कवि' नहीं तो प्रयत्नसाध्य कवि अवश्य बना सकता था। कई राजाओं ने स्वयं कविता की तथा काव्यशास्त्र की रचना भी की। कुछ प्रसिद्ध राजा या राजकुमार, जिन्होंने काव्य-शास्त्र की रचना की, ये थे—नरवरगढ़ के राजा रामसिंह, तेरवा नरेश यशवन्त सिंह, अमेठी नरेश भूपति, सिंहरामऊ के रईस जमींदार रणधीर सिंह, काशिराज (काशी-नरेश महाराज चेतसिंह के पुत्र) तथा मान कवि (राजा जोरावर सिंह के पुत्र)।[1] कवि के द्वारा प्रशस्ति-गायन में राजा को अपने अमरत्व की ज्योति दीखती थी। इसके पुरस्कार में कवि को निश्चित अवकाश मिलता था। राजा प्रशस्ति के आधार पर ही अमरत्व के लोभी नहीं थे, काव्य-नैपुण्य प्राप्त करके कवि रूप में भी यशः शरीर की प्राप्ति के इच्छुक थे।[2] कवियों और काव्याचार्यों के लिए यह सौभाग्य की बात थी। ऐसे काव्येच्छु राजाओं का अस्तित्व

---

१. इनके विशेष परिचय के लिए देखिए, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ४२६, ४२८, ४४५, ४५७, ४७४।

२. देव ने इस अमरत्व की चर्चा यों की है :

रहत न घरवर धामधन तरुवर सरवर कूप।
जस सरीर जग में अमर भव्य काव्य रस रूप॥ —काव्य रसायन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संस्कृत काल में भी था।[1] बाण के आश्रयदाता हर्ष स्वयं काव्य-साधक थे। राजा भोज ने अपनी साहित्य-साधना से अपने बहुशास्त्र ज्ञान को सिद्ध किया है। हाल सातवाहन का नाम प्राकृत साहित्य में प्रसिद्ध है ही। वाक्पति राज ने 'गौडवहो' नामक महाकाव्य की रचना कन्नौज के राजा यशोवर्मन के लिए की थी। इससे काश्मीराधिपति ललितादित्य के हाथों उसकी पराजय हो जाने पर भी उसकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकी।

उद्देश्य

उक्त सामंतीय वातावरण ने हिन्दी के काव्यशास्त्र की दिशा निर्धारित की और उद्देश्य निश्चित किया। कुछ काव्यशास्त्र के ग्रंथों के साथ 'विनोद' सम्बद्ध हुआ—पद्माकर का 'जगद्विनोद', कालिदास का 'वधू विनोद', चन्द्रशेखर का 'रसिक विनोद', जनराज का 'कविता रस विनोद', प्रतापसाहि का काव्यविनोद आदि। कुछ ग्रंथों का नामकरण 'विलास' के आधार पर हुआ—गोपालराय का 'भूषणविलास', मंडन का 'रसविलास', देव के 'भवानीविलास', 'रसविलास' और 'कुशल विलास', समनेस का 'रसिक विलास', बेनी बंदीजन का 'रसविलास', बलवीर का 'दंपतिविलास', लालकवि का 'विष्णुविलास', भोगीलाल दुबे का 'बखत-विलास', देव का 'भावविलास', रूपसाहि का 'रूपविलास', प्रतापसाहि का 'काव्यविलास' आदि। किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि संस्कृत के काव्यशास्त्रों की शैली पर नामकरण हुआ ही नहीं। सबसे लोकप्रिय नाम 'भूषण' या उसके पर्यायों के आधार पर बना।[2] इससे अलंकारप्रियता स्पष्ट होती है। वैसे अलंकार लक्षण-ग्रंथों का नामकरण इस प्रकार का हुआ। संस्कृत में भी इस प्रकार के नाम थे : 'काव्यालंकार' 'काव्यालंकार सूत्र', 'प्रताप रुद्र यशोभूषण', 'सरस्वती कण्ठाभरण' आदि। प्रकाश,[3] आलोक, चंद्रिका[4] आदि से युक्त नाम भी संस्कृत की परंपरा में आते हैं। 'दर्पण' की शैली के भी कुछ नाम हैं।[5] फिर भी 'विनोद' और 'विलास' वाला नामकरण नवीन प्रतीत होता है। और प्रवृत्ति की दृष्टि से एक प्रमुख प्रेरणा स्रोत की ओर संकेत करता है।

इन राज्याश्रित आचार्यों का उद्देश्य निरूपण में भी युग की परिस्थितियों और राजरुचि के अनुसार हुआ। इनके उद्देश्यों में विकास हुआ है। काव्य-शास्त्र काव्य-साधना का एक अंग था। सदोष काव्य कर्ता

---

१. कीथ, हिन्दी अनुवाद, पृ० ६६।

२. उदाहरण के लिए : गोप का 'रामचन्द्र भूषण', करनेस का 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' तथा 'भूप-भूषण', जसवन्ती सिंह का 'भाषा भूषण', भूषण का 'शिवराज भूषण', भूपति का 'कंठाभूषण', दूलह का 'कविकुल कंठाभरण,' 'पद्माभरण'।

३. छेमराज का 'फतेहप्रकाश', ब्रह्मदत्त का 'दीप प्रकाश', चतुर्भुज का 'अलंकाराभा', सुखदेव मिश्र का 'फाजिल अली प्रकाश', चिन्तामणि का 'काव्यप्रकाश'।

४. गोपा का 'अलंकार चंद्रिका', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', सूरति मिश्र का 'रसग्राहक चन्द्रिका'।

५. रतनेश का 'अलंकार दर्पण', सेवादास का 'रसदर्पण'।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

को समाज में निन्द्य बना देता है।[१] आचार्यों ने काव्य की सफलता के लिए शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक माना है। व्युत्पत्ति विविध शास्त्रों का ज्ञान है तथा अभ्यास का आधार काव्यशास्त्र का ज्ञान है। इस साधना के लिए पदुमनदास ने काव्यशास्त्र तथा अन्य सम्बद्ध शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता बताई है। इनसे जो अवगत हो वही 'सुकवि' है।[२] दूलह ने इस बात को और भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार अलंकार ज्ञान से युक्त और अलंकार-प्रयोग में निष्णात कवि अलंकृती होता है और सभा में उसका आदर होता है।[३] सभा में शोभित होने और राज-दरबार में सम्मान पाने के इच्छुकों के लिए इसीलिए काव्य-शिक्षा की आवश्यकता थी। यदि कवित्व-शक्ति जन्मसिद्ध होती है, तो उसके लिए 'कविशिक्षा' और निरीक्षण भी आवश्यक होता है।[४] वैसे 'सत्कवियों' (=आचार्यों) ने पूर्वकाल में बड़े-बड़े सिद्धांतों की रचना की थी, पर 'अलंकृती' बनने के इच्छुक कवियों के लिये ऐसे लघु प्रयत्नों की भी आवश्यकता थी, जो उन सिद्धान्तों को सुगम सुलभ कर दें।[५] जो सिद्धांतों के इन लघु संस्करणों को कंठस्थ कर लेंगे, उनको भारती की सिद्धि हो सकती है।[६] इस युग के काव्यशास्त्र और आचार्य का उद्देश्य इसी आवश्यकता से निश्चित हुआ। राज्याश्रय का मोह अनेक नवीन कवियों को काव्यशास्त्र की ओर आकर्षित कर रहा था। इसलिए कवि शिक्षा और तत्सम्बन्धी ग्रन्थों की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। सभी कवियों के पास इतनी शक्ति-संपत्ति कहाँ थी कि काव्य शिक्षा के सहारे के बिना ही युग कवि बनकर अपना स्थान बना सकें। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' परम्परा का कवि अपनी अनिद्य भाव-सम्पदा के आधार पर चल सके। आरम्भ से ही हिंदी के आचार्य ने कवि की इस आवश्यकता को ध्यान में रखा। कृपाराम ने अपनी 'हित तरंगिणी' की रचना 'कविहित' के लिए की।[७] केशव का उद्देश्य स्पष्टतः शास्त्रोन्मुख हो जाता है। उनकी दृष्टि में कवि ही नहीं 'पाठक' भी आता है। भामह की भाँति वे भी दोषयुक्त काव्य और उसके कर्ता को समाज में निन्द्य समझते थे।[८] साथ ही अलंकाररहित कविता की

---

१. भामह : काव्यालंकार १।११।

२. ज्ञान व्याकरण कोष में छन्द ग्रन्थ को जान।
अलंकार रसरीति में निपुन सुकवि तिहि मान॥--काव्य मंजरी

३. सभा मध्य सोभा लहे, अलंकृती ठहराय।--कविकुल कंठाभरण, ४

४. सूक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि, जन्म नक्षत्र में दीन्हि विधातैं।
काव्य की रीति सिखी सुकवीन्ह सों देखी सुनी बहु लोक की बातैं॥
--भिखारीदास : काव्य निर्णय।

५. दीरघ मत सत कविन के अर्थाशय लघुतर्ण।
कवि दूलह याते कियो, कविकुल कण्ठाभर्ण॥

६. ग्रन्थ काव्य निर्नयहि जो, समुझि करींहगे कंठ।
सदा बसैगी भारती ता रसना उपकंठ॥--दूलह

७. हित तरंगिनी हौं रची कवि हित परम प्रकासु।
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इनको बाद का मानते हैं। हिन्दी साहित्य, पृ०, ४।

८. राजत रंचन दोषजुत कविता बनिता मित्र।
बन्दक हाला होत ज्यों, गंगाघट अपवित्र॥--कविप्रिया ३।४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

स्थिति की भी वे कल्पना नहीं कर सकते थे।[1] अतः उन्होंने कविहित को ध्यान में रखकर ही 'कविप्रिया' की रचना की। जो कवि बनना चाहते हैं, उन्हें 'कविप्रिया' कंठस्थ कर लेनी चाहिए।[2]

केशव की दृष्टि कविशिक्षा की थी। वे बाला बालकों की शिक्षा के लिए शिक्षा ग्रंथ की रचना कर रहे थे।[3] कवि शिक्षा की परम्परा राजशेखर से निश्चित रूप में चली थी। इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। इस शिक्षा संप्रदाय का उद्देश्य काव्यशास्त्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखनेवाले नौसिखिये कवियों को इस शास्त्र की ओर आकर्षित करना था। राज्याश्रय का लोभ अनेक कवियों को आकर्षित तो कर रहा था, पर कवि पंथ से अनजान रहकर उनकी साधना पूर्ण नहीं हो पाती थी। व्याकरण-शास्त्र से विमुख विद्यार्थियों को इस शास्त्र की ओर आकर्षित करने के लिए यही कार्य कात्यायन ने पाणिनि सूत्रों की वार्तिक की रचना द्वारा किया था। केशव ने पूर्वाचार्यों के पुष्ट और सुनिश्चित काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की आलोचना-प्रत्यालोचना या उनका खण्डन-मण्डन न करके उनको 'भाषा' की सरल शैली में निबद्ध किया। विषय की सुस्पष्टता के लिए केशव ने उदाहरण-प्रत्युदाहरणों की रचना की। इस प्रकार व्याख्याकार आचार्य के कार्य का सम्पादन भी किया और कवि शिक्षाचार्य का भी। इस प्रकार केशव ने कवि यशेच्छु नवीन कवियों के हितार्थ पूर्वाचार्यानुमोदित सिद्धांतों को सुबोध शैली में प्रस्तुत किया और लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए उदाहरण-प्रत्युदाहरणों की योजना की। उदाहरणों में रामकृष्ण को स्थान देकर भक्तिक्षेत्रीय नवीन कवियों को भी काव्य-शास्त्रीय शिक्षा की ओर आकर्षित किया। केशव का 'बालाबालकनि' वाला उद्देश्य अप्पय दीक्षित से साम्य रखता है।[4] केशव का लक्ष्य शुद्ध कविशिक्षा था। पर अप्पय दीक्षित ने 'ललितः क्रियते' लिखकर उदाहरणों के लालित्य की ओर सम्भवतः संकेत किया है। मतिराम ने 'ललित ललाम' नामकरण करके इसी परम्परा से जैसे अपना सम्बन्ध जोड़ा था। डा० ओम प्रकाश ने इसका अर्थ 'सुकुमारोपयोगी' दिया है।[5] भूषण का उद्देश्य अलंकार निरूपण नहीं, शास्त्रीय माध्यम से शिवा-चरित्र गायन था।[6] इस प्रकार कविशिक्षा से 'ललित ललाम' और उससे 'शिवराज भूषण' उद्देश्य विकास की दिशा को स्पष्ट करते हैं। केशव का उद्देश्य प्रायः शास्त्रीय था। जसवन्त सिंह ने 'भाषा भूषण' की रचना 'भाषा में निपुण' और

---

१. जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन, सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजहीं, कविता बनिता मित्त॥ कविप्रिया ५।१।

२. कंठमाल ज्यों कविप्रिया कंठ करहु कविराज॥ कविप्रिया ३।३। दूलह ने भी इसी में स्वर मिलाया।

३. समुझें बालाबालकनि बरनत पंथ अगाध।
कविप्रिया केशव करी छमिऔ बुध अपराध॥ कविप्रिया ३।१।

४. अलंकारेषु बालानाम्, अवगाहन सिद्धये।
ललितः क्रियते तेषां लक्ष्य लक्षण संग्रहः॥ कुवलयानन्द ४।

५. हिन्दी अलंकार साहित्य, पृ० ९१।

६. सिव चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषण के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥ शिवराज भूषण २९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'कविता-विषै-प्रवीनों' के लिए की।[1] यहाँ बालाबालकनि' वाला उद्देश्य नहीं दीखता। कविता-विषै-प्रवीन से तात्पर्य संभवतः काव्य शक्ति से युक्त होना है, जो दूलह के अनुसार जन्मजात होती है। उसको विकसित कवि शिक्षा करती है। 'रसलीन' ने ब्रजभाषा सीखने के लिए ही लक्षण ग्रन्थ रचा।[2] इस प्रकार उद्देश्य का विस्तार होता रहा। भूषण और रसलीन ने स्वयं अपने हित के लिए अलंकार निरूपण किया। केशव का जो उद्देश्य आरम्भ में था, वह ज्यों का त्यों पीछे न रह सका, शुद्ध कवि शिक्षा का उद्देश्य न रहकर उद्देश्य-मिश्रित होता गया।

उद्देश्य की दूसरी दिशा और है। रसिकों के लिए भी काव्य-शास्त्र की रचना हुई। पाठक को सामान्य से अधिक रस प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करने में काव्य-शास्त्र का योग रहता है।[3] भक्तों का उद्देश्य प्रेम रस परिचय देना था।[4] एक मित्र ने नन्ददास से विशेष आनंद की प्राप्ति के लिए नायक-नायिका-भेद के लिए जिज्ञासा प्रकट की।[5] केशव की दृष्टि में भी यह रसिक-जिज्ञासु वर्ग था। नन्ददास की भाँति उन्होंने भी विशिष्ट और सामान्य द्विविध उद्देश्य से 'रसिक प्रिया' की रचना की। सामान्य दृष्टि से उनके सामने रसिक-जिज्ञासु वर्ग है।[6] विशिष्ट रूप से उनकी दृष्टि में 'प्रवीणराय' है, जिसको 'सविता' ने कविता शक्ति प्रदान की थी। अतः उसके विकास के लिए उसे कवि शिक्षा अपेक्षित थी।[7] पर कवि शिक्षा का सम्बन्ध मुख्यतः अलंकार शिक्षा से माना गया। इस विशिष्ट शिक्षा की अधिकारिणी प्रवीण राय मानी गई है। वैसे 'रसिक-प्रिया' की उपयोगिता भी भाषा कवि के लिए है।[8] पर पारिभाषिक रूप से रस-रीति का परिचय कराने को रसिक प्रिया और कवि शिक्षा देने के लिए कविप्रिया की रचना मानी जानी चाहिए। छन्दमाला की रचना भी कवि शिक्षा से सम्बद्ध है। भाषाकवि को संस्कृत छन्दों की शिक्षा ही केशव को इस ग्रन्थ में अभीष्ट है।[9]

---

१. ताही नर के हेतु यह कीन्हों ग्रन्थ नवीन।
जो पंडित भाषा निपुन, कविता विषै प्रवीन॥ भाषाभूषण।

२. ब्रज-बानी सीखन रची, यह रसलीन रसाल॥ अंगदर्पण, १७८।

३. डा० भगीरथ मिश्र : "यथार्थ में काव्य-शास्त्र के उद्देश्य दो ही होते हैं। एक तो उपस्थित काव्य के सौंदर्य को स्पष्ट करके उसके द्वारा सामान्य से अधिक आनंद प्राप्त करना, दूसरा दोषों से बचाते हुए उत्तम काव्य सृष्टि की प्रबल प्रेरणा भर देना।" हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास

४. बिन जाने यह भेद सब, प्रेम न परचै होय। नन्ददास, रसमंजरी-प्रस्तावना।

५. एक मीत हमसों अस गुन्यो। मैं नाइका भेद नहिं सुन्यो।
अरु जो भेद नाइक के गुने। तेहू मैं नहिं नीके गुने॥ रसमंजरी-प्रस्तावना।

६. रसिकन को रसिक प्रिया कीनी केसवदास॥ रसिकप्रिया १।१२।

७. सविता जू कविता दई, ता कहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केसवदास॥ कविप्रिया १।६१।

८. जैसे रसिक प्रिया बिना, देखिय दिन-दिन दीन।
त्योंही भाषा कवि सबै, रसिक प्रिया बिनुहीन॥ रसिकप्रिया१६।१५।

९. भाषा कवि समुझैं सबै, सिगरे छन्द सुभाइ।
छन्दन की माला करी, सोभन केसवराइ॥ छन्दमाला।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस प्रकार केशव का उद्देश्य उन्हें आचार्य के पद पर अधिष्ठित कर देता है। रसिकों के हितार्थ काव्यशास्त्र की रचना की परम्परा आगे भी चलती रही। भिखारीदास का उद्देश्य भी रसिकों के सामान्य ज्ञान से सम्बद्ध है।[१] दास के अनुसार बुद्धिमानों तथा रसिकों के लिए काव्य चर्चा सदैव सुखद होती है।[२] इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों के उद्देश्य में १८वीं शती तक विकास होता है। कवि शिक्षा का शुद्ध शास्त्रीय उद्देश्य पीछे रसिकजनों को सामान्य परिचय देने की ओर मुड़ गया। संस्कृत के काव्याचार्यों का भी उद्देश्य इसी प्रकार द्विविध बना रहा : यश-प्राप्ति और आनन्द-प्रदान करना।[३] यश-प्राप्ति के इच्छुक कवि भी इससे लाभान्वित होते थे। रसिकों के लिए काव्यानन्द की अनुभूति कराने की शास्त्रीय पद्धति प्रतिष्ठित करके आनन्द प्रदान करने में भी आचार्य समर्थ थे।

---

१. चाहत जानिजु थोर ही, रस कवित्त को वंश।
तिन रसिकन के हेत यह, कीन्हों रस सारांश॥ रस सारांश।

२. दास कवितन्ह की चरचा बुधिवंतन को सुख दै सब ठाई॥ काव्य निर्णय।

३. "The two great ends which appeal to them are the winning of fame and the giving of pleasure..."

—Keith, Hist. of Skt. Lit., P. 338

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संघरक्षित और उनका सुबोधालंकार

डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी
एम० ए०, पी–एच० डी०

पालि-साहित्य के विशाल भण्डार में साहित्य-शास्त्र विषयक ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। संभवतः इसका कारण बौद्ध आचार्यों का निर्वाण की ओर ही मुख्यतः उन्मुख होना है; जब कि काव्य अथवा काव्य-शास्त्र में निर्वाण अपर पर्याय मोक्ष विषय अत्यन्त गौण है। इस प्रसंग में यह नहीं भूलना चाहिए कि काव्य और काव्य-शास्त्र के अनेक प्रयोजनों में मोक्ष का संयोजन बौद्ध आचार्यों की ही देन है, अन्यथा वाल्मीकि आदि प्राचीनतम कवियों की रचनाओं में उद्देश्य के रूप में केवल धर्म, अर्थ और काम का ही संकेत मिलता है।[1] भरत कृत्य नाट्यशास्त्र में केवल आठ रसों की चर्चा भी इसका ही प्रमाण है।[2]

पालि-साहित्य में काव्य-शास्त्र के आचार्य के रूप में हमें एकमात्र भिक्षु संघरक्षित (भिक्खु संघ रक्खित) का पता चलता है। मेजर जी० ई० फ्रेयर (G. E. Fryer) के अनुसार संघरक्षित प्रसिद्ध पालि-महावैयाकरण मोग्गलान से अभिन्न हैं। उनके अनुसार इनका दूसरा नाम मेधंकर है, जो सीलोन के प्रसिद्धतम बौद्ध-विहार उदम्बर गिरि के भिक्षुओं की परम्परा में १२वीं शताब्दी में हुए थे। इनके गुरु का नाम सारि-पुत्त (शारिपुत्र) अथवा शील थेरा था।[3]

उनके लिखे ग्रंथों में सुबोधालंकार, वुत्तोदय, सम्बन्ध चिन्ता, सुसद्द सिद्धि, योग विनच्चय तथा खुद्दक सिक्खा टीका का स्पष्ट पता चलता है, जिनमें प्रथम दो साहित्य-शास्त्र विषयक, सम्बन्ध चिन्ता शब्द शक्ति विषयक, सुसद्द सिद्धिव्याकरण विषयक तथा शेष दो योग विनिच्चय और खुद्दक सिक्खा टीका बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित धार्मिक ग्रन्थ हैं।

साहित्य-शास्त्र विषयक इनके दोनों ग्रन्थों में से वुत्तोदय में काव्यों में व्यवहृत होने वाले छन्दों का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है और सुबोधालंकार में काव्य के लक्षण, दोष, दोष-परिहार, गुण, अलंकार एवं रसादि का विवेचन प्राप्त होता है। पालि भाषा में लिखा गया यह एक मात्र ग्रन्थ है, जिसमें काव्य के प्रायः समस्त उपादान तत्वों का विवेचन किया गया है।

तीन सौ इकहत्तर (३७१) कारिकाओं में रचित यह ग्रन्थ पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। जिनमें

---

१. अभिरामस्य रामस्य चरितं कर्त्तुमुद्यतः।
कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थं गुण विस्तरम्॥
—वाल्मीकि रामायण १, ३, ७ ८।

२. नाट्यशास्त्र ६-१५-१६।

३. बंगाल एशियाटिक सोसाइटी जनरल आफ कलकत्ता (G. A. S. B.), १९७५, पृष्ठ ९१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

क्रमशः प्रथम में अड़सठ, द्वितीय में अड़तालीस, तृतीय में अड़तालीस, चतुर्थ में एक सौ अस्सी एवं पंचम में एकत्तीस कारिकाएँ विद्ध हैं। इनमें क्रमशः काव्य-लक्षण एवं दोष-विवेचन, दोष-परिहार के उपाय, गुणों का सोदाहरण परिचय, ३५ अलंकारों का भेद-प्रभेदों एवं उदाहरणों सहित परिचय तथा विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव एवं व्यभिचारी भावों की परिभाषाओं सहित परिगणन तथा श्रृंगार आदि नव रसों का परिचय उपनिवद्ध है।

इस ग्रन्थ की रचना में आचार्य संघरक्षित का उद्देश्य काव्य-शास्त्र विषयक प्रायः विषयों का मागध-भाषा (पालिभाषा) के माध्यम से परिचय प्रदान करना है। इसके लिए आचार्य ने पूर्वकालीन आचार्यों की रचनाओं में उपलब्ध सामग्री का भी यथेष्ट उपयोग किया है। आचार्य संघरक्षित ने अपने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में रामशर्मा नामक आचार्य विशेष का नाम ग्राहं उल्लेख किया है,[1] जिनकी चर्चा आचार्य भामह ने भी अपने काव्यालंकार में एकाधिक बार की थी।[2] रामशर्मा के नाम के साथ ही संघरक्षित ने आदिपद से कुछ आचार्यों की ओर संकेत किया है, यहाँ उनका संकेत संभवतः भामह और दण्डी की ओर है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सुबोधालंकार की चर्चा दण्डी के काव्यादर्श को आधार बना कर की गयी है और अनेक बार उसमें काव्यादर्श का अनुवाद उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है; किन्तु मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। इसका मुख्य कारण अनेक अलंकारों के नामों में पूर्ण अथवा आंशिक भेद, अलंकारों के विवेचन क्रम में दण्डी स्वीकृत क्रम का सर्वथा अभाव आदि है। आचार्य संघरक्षित काव्य में दोषों का अभाव न केवल नितान्त आवश्यक मानते हैं, अपितु दोषों के अभाव में उसमें गुणों की अनायास सत्ता स्वीकार करते हैं। संघरक्षित कृत रसादि विवेचन का दण्डीकृत काव्यादर्श में सर्वथा अभाव ही है। अतः सुबोधालंकार को काव्यादर्श का अनुकरण मानना नितान्त अनुचित है। इतना अवश्य है कि अग्निपुराण और सरस्वती कण्ठाभरण के समान सुबोधालंकार में भी अनेक अलंकारों की परिभाषाएँ काव्यादर्शगत अलंकारों की परिभाषाओं से कुछ साम्य रखती हैं, किन्तु इस साम्य का आधार वर्ण्य-विषय के धर्मों के कारण भी हो सकता है, अनुकरण के कारण ही नहीं। संघरक्षित और दण्डी की मान्यताओं और प्रयोगों में अन्तर के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

संघरक्षित ने काव्य पद के स्थान पर वन्ध पद का प्रयोग किया है। उनके अनुसार दोषरहित शब्द और अर्थ के साहित्य का नाम वन्ध अर्थात् काव्य है। गद्य, पद्य एवं मिश्र भेद से काव्य तीन प्रकार का है तथा ये तीनों प्रकार निवद्ध और अनिवद्ध भेद से दो-दो उपभेदों में विभक्त हो जाते हैं। यहाँ निवद्ध और अनिवद्ध से संघरक्षित का तात्पर्य कल्पना प्रधान और ऐतिहासिक होना चाहिए। काव्य का यह उपविभाजन आचार्य संघरक्षित की मौलिक उद्भावना है।

काव्यलक्षण में दोषों के परित्याग पर संघरक्षित ने सर्वाधिक बल दिया है। दण्डी और भामह दोनों ही काव्य में दोषों का अभाव आवश्यक मानते हैं। इस प्रसंग में संघरक्षित की उपमा सर्वाधिक उपयुक्त है, वे सदोष काव्य को गुणों और आभूषणों से अलंकृत उस कन्या की तरह मानते हैं, जो अपने दोष विशेष के कारण विद्वानों में कभी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर पाती और निर्दोष होने पर वह रचना अलंकारों के अभाव में भी अनलंकृत

---

१. रामसम्पाद्यलंकारा सन्ति सन्तो पुरातनाः ॥ सुबोधालंकार १-१।

२. भामह : काव्यालंकार २– १९, ५८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

किन्तु दोष से रहित गुणशालिनी कुल-बधू के समान आदरणीय होती है; क्योंकि उनके अनुसार दोषों के अभाव में गुणों की सत्ता अनायास ही हो जाती है।

संघरक्षित के अनुसार काव्य में पदवाक्य और अर्थ भेद से तीन प्रकार के दोष हो सकते हैं। स्मरणीय है कि दण्डी और भामह दोनों ने ही दोषों का किसी प्रकार का विभाजन नहीं किया था। इस प्रकार का विभाजन हमें सर्वप्रथम वामन की काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में उपलब्ध होता है। संघरक्षित के अनुसार विरुद्धार्थान्तर, अध्यात्त, क्लिष्ट, विरोधि नेष्य, विशेषणापेक्ष, हीनार्थक और अनर्थक ये आठ पददोष; एकार्थक, भग्नरीति, अव्याकीर्ण, ग्राम्य, यतिहीन, अपक्रम, औचित्यहीन, संशय एवं दुष्टालंकृति ये ८ अर्थदोष कहे जाते हैं। स्मरणीय है कि उन्होंने वामन के अनुसार अर्थदोषों का पदार्थ और वाक्यार्थरूप में विभाजन न कर केवल अर्थदोषों के अन्तर्गत ही सब का परिगणन किया है। वामन के अनुसार असाधुकृष्ट (क्लिष्ट), ग्राम्य, अप्रतीत एवं अनर्थक पाँच पद दोष; भिन्नवृत्त, यतिभ्रष्ट एवं विसन्धि तीन वाक्यदोष तथा अन्यार्थ नेयार्थ गूढ़ार्थ अश्लील, क्लिष्ट (पदार्थगत) व्यर्थ, एकार्थ सन्दिग्ध, अप्रयुक्त, अपक्रम, लोकशास्त्र (विद्या) विरुद्ध (वाक्यार्थ) भेद से ये ग्यारह अर्थदोष हैं; जबकि दण्डी और भामह दोनों ने ही दस काव्य-दोष स्वीकार किये थे। विवेचन क्रम की दृष्टि से भामह और दण्डी ने दोष प्रकरण को ग्रन्थ के अन्त में निबद्ध किया था; जबकि संघरक्षित ने सबसे पहले। वामन-कृत काव्यालंकार सूत्र वृत्ति में रीति और गुणों के विवेचन के अनन्तर दोषों का विवेचन है; जब कि सुबोधालंकार में दोष विवेचन के अनन्तर गुणों का विवेचन किया गया है।

सुबोधालंकार के अनुसार काव्य में दस गुण हैं : प्रसाद, ओज, मधुरता, समता, सुकुमारता, श्लिष्ट, उदारता, कान्ति, अर्थव्यक्ति और समाधि।[1] भरत-कृत नाट्यशास्त्र और दण्डी-कृत काव्यादर्श में अविकल-रूप से इन्हीं गुणों का वर्णन प्राप्त होता है।[2] जबकि भामह माधुर्य, प्रसाद और ओज तीन गुण ही मानते हैं। दण्डी के गुण विवेचन में श्लेष का स्थान सर्वप्रथम है और ओज का आठवाँ; जबकि संघरक्षित प्रसाद को सर्वप्रथम स्थान देते हैं और श्लेष को सुकुमारता के अनन्तर छठे स्थान पर रखते हैं। संघरक्षित ओज को द्वितीय स्थान पर रखते हैं, जबकि दण्डी प्रसाद को द्वितीय स्थान प्रदान करते हैं। इस आधार पर दण्डी और संघरक्षित की दृष्टि से गुण विशेष को महत्व देने के प्रसंग में पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है।

दण्डी और भामह की दृष्टि से अलंकार दो प्रकार के हैं: शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकारों में दोनों ने ही यमक और अनुप्रास को स्वीकार किया है, यद्यपि दण्डी अनुप्रास की चर्चा गुणों के प्रकरण में प्रथम परिच्छेद में तथा यमक की चर्चा दोष विवेचन से पूर्व तृतीय परिच्छेद में करते हैं।[3] साथ ही वे इसी प्रकरण में चित्र तथा प्रहेलिका की भी चर्चा करते हैं। आचार्य संघरक्षित ने शब्दालंकारों की सर्वथा उपेक्षा की है। यही परम्परा हमें संस्कृत काव्य-शास्त्र के उत्तरकालीन आचार्य शोभकरमित्र, अप्पय

---

१. सुबोधालंकार ३-२।
२. (क) नाट्यशास्त्र १७-९६; (ख) काव्यादर्श १-४१।
३. काव्यादर्श १.५२-५७, ३.१-७७।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दीक्षित, जगन्नाथ, विश्वेश्वर और भट्ट देवशंकर आदि में प्राप्त होती है। कालक्रम से अलंकार-शास्त्र का अध्ययन करने पर संघरक्षित ही इस परम्परा के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं।

आचार्य संघरक्षित के अनुसार अर्थालंकार तैंतीस हैं।

सुबोधालंकार में स्वीकृत अलंकारों में से महन्तत्थ, एकावली, भम एवं अन्ञोन्ञ चार अलंकार ऐसे हैं, जो दण्डी के काव्यादर्श में स्वीकृत नहीं है; अन्य अलंकार के बीच अन्तर्भाव अथवा भेदोपभेदों के बीच इनकी सत्ता खोजना दूसरी बात है। वंचना और परिकप्पना अलंकारों को दण्डी ने अपह्नुति एवं उत्प्रेक्षा अलंकार नाम दिया था। इसके अतिरिक्त सुबोधालंकारगत पियतर, समासवुत्ति, परियायवुत्ति, व्याजोपवण्णन, रूळ्हालंकार, अप्पकतत्थुति, सहवुत्ति, भाव और भिस्स के नाम भी कुछ अन्तर के साथ ही काव्यादर्श में उपलब्ध होते हैं।

सुबोधालंकार में वर्णित समस्त अलंकारों के लक्षण एवं भेदोपभेद देना विस्तार-भय से यहाँ उचित न होगा। किन्तु इस प्रसंग में इस धारणा के प्रति विरोध प्रकट करना आवश्यक समझूँगा कि सुबोधालंकार में संघरक्षित ने दण्डी का ही सर्वशः अनुकरण किया है। दण्डी और संघरक्षित द्वारा दिये गये लक्षणों में यदि कहीं साम्य प्रतीत होता है तो वह लक्ष्य के धर्म के कारण है, अनुकरण के कारण नहीं। किसी एक वस्तु के स्वरूप का वर्णन यदि अनेक लोगों द्वारा स्वतन्त्र रूप से भी किया जाए तो वस्तुगत धर्म की अभिन्नता के कारण वर्णन में समानता की सत्ता स्वतः रहेगी ही। कभी-कभी दृष्टि भेद के कारण अन्तर भी हो सकता है। सुबोधालंकार में भी दृष्टि भेद के कारण अलंकारों के लक्षणों एवं भेद-प्रभेद की कल्पना में अनेक बार मौलिक अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ सुबोधालंकार के प्रथम अलंकार अतिशय को ही लें—दण्डी के अनुसार 'लोकोत्तर विशेष की विपक्षा से किया गया कथन अतिशयोक्ति अलंकार है।' संघरक्षित के अनुसार अतिशयोक्ति में विशेष का लोकोत्तर होना आवश्यक नहीं है, केवल 'अतिशयविशेष की प्रकाशक उक्ति को भी अतिशय अलंकार कहा जा सकता है'। यही कारण है कि उन्होंने लोकातिक्रान्त अतिशय के साथ ही लोकिकातिशयोक्ति को भी अतिशयोक्ति के भेद के रूप में स्वीकार किया है।

अलंकारों के भेद-प्रभेदों की कल्पना में भी दण्डी और संघरक्षित के बीच महान अन्तर परिलक्षित होता है। दण्डी ने उपमालंकार के धर्मोपमा आदि बाईस भेदों को स्वीकार किया था, जिनमें से संघरक्षित ने केवल चौदह भेदों की ही चर्चा की है। भेदों की कल्पना में विस्तार-भय से कुछ की उपेक्षा कर देना स्वाभाविक हो सकता है, किन्तु यहाँ वे सभी भेद छोड़ दिए गए हैं, जिन्हें आचार्य भामह ने अस्वीकृति प्रदान की है; इसके फलस्वरूप भेद विशेष के छोड़ देने में मान्यता भेद की कल्पना करना अनुचित न होगा। इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि आचार्य मेधावी स्वीकृत सात उपमा दोषों की संघरक्षित ने भी पुष्टि की है; जिनका भामह ने उल्लेख किया था एवं दण्डी ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार किया था।

आचार्य दण्डी ने रूपकालंकार का सर्वप्रथम विभाजन वाक्य संघटन की दृष्टि से करते हुए समस्त रूपक, व्यस्तरूपक आदि भेद किए थे, जब कि संघरक्षित ने आरोप्यमाण और आरोपविषयों की सम्पूर्णता और अल्पता के आधार पर सर्वप्रथम समस्त वस्तु विषय एवं एक देश विवर्ति भेदों का परिगणन किया है, जो उत्तरकालीन आचार्यों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकृत हुए हैं। उन्होंने परम्परा के अनुसार रूपकालंकार के अनन्त भेद कहते हुए समासोक्त रूपक की चर्चा अवश्य की है। किन्तु उसे विशेष महत्व प्रदान नहीं किया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दीपकालंकार के प्रसंग में भी उन्होंने दण्डी स्वीकृत जाति, द्रव्य, गुण एवं क्रियादीपक तथा विरुद्धार्थ, एकार्थ एवं श्लिष्टार्थ दीपक भेदों की चर्चा नहीं की है। यही स्थिति आक्षेप अलंकार में है। आचार्य संघरक्षित ने अतीत, वर्त्तमान एवं अनागत भेद से आक्षेप अलंकार को तीन प्रकार का मानते हुए दण्डी स्वीकृत धर्म्याक्षेप आदि इक्कीस भेदों की पूर्णतः उपेक्षा की है। परिकल्पना (उत्प्रेक्षा) अलंकार में संघरक्षित ने क्रिया परिकल्पना (क्रियोत्प्रेक्षा) आदि भेदों के साथ उपमाभ्यन्तरापरिकल्पना नामक भेद को स्वीकार किया है। दण्डी जिसका उल्लेख करते हुए स्पष्ट शब्दों में खण्डन करते हैं। इसके अतिरिक्त वंचना (अपह्नुति) अलंकार में दण्डी आदि आचार्यों ने विषयापह्नुति आदि भेदों को स्वीकार किया है; जबकि संघरक्षित ने इन भेदों की चर्चा किए बिना समवंचना एवं असमवंचना भेद से दो भेद स्वीकार किये हैं। इसके आधार पर यह स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि संघरक्षित ने सुबोधालंकार में दण्डी का अनुकरण नहीं किया है, जैसा कि हेरम्ब चटर्जी आदि कुछ विद्वान् स्वीकार करते हैं।

सुबोधालंकार में किए गए अलंकार विवेचन तथा यथावसर पूर्वाचार्यों के स्वीकृत नामों के अन्तर में संघरक्षित की मौलिकता है अथवा यदि उन पर किसी आचार्य विशेष का प्रभाव है तो वे आज खोज के विषय हैं। अधिक संभव है कि इनका सुबोधालंकार रामशर्मा (रामश्रमण) के ग्रन्थ से प्रवर्तित परम्परा पर आधारित हो। जिनके नाम का उल्लेख ग्रन्थ के आरम्भ में ही किया गया है।[1] इन रामशर्मा की चर्चा भामह ने भी काव्यालंकार में प्रहेलिका अलंकार के प्रसंग में की है तथा उपमानाधिकत्व दोष का उदाहरण रामशर्मा के ग्रन्थ (अब तक अज्ञात) से संकलित किया है।

ग्रंथ के अन्तिम परिच्छेद में आचार्य संघरक्षित ने रस आदि का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारीभावों की परिभाषाएं भी दी हैं, जो नाट्यशास्त्र में उपलब्ध परिभाषाओं का अनुसरण करती हैं। इनके द्वारा संकेतित रसानुभूति का सिद्धान्त नाट्यशास्त्र के भाष्यकार अभिनव गुप्त की मान्यता से अभिन्न है। नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने केवल आठ रसों को स्वीकार किया था, जबकि आचार्य संघरक्षित शान्त रस के साथ रसों की संख्या नौ मानते हैं। इस प्रसंग में उनकी मान्यता आनन्दवर्द्धन, मम्मट आदि आचार्यों का अनुगमन करती है। रसों के अवान्तर भेदों में उन्होंने केवल हास्य के भेद प्रदर्शित किए हैं। ऐसा अन्य किसी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। रसों के अतिरिक्त संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा स्वीकृत भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भावसन्धि और भावशवलता की चर्चा इन्होंने नहीं की है।

आचार्य संघरक्षित ने सुबोधालंकार में दोषगुण अलंकार आदि सभी प्रकरणों में प्रायः सभी उदाहरण स्वनिर्मित ही दिये हैं; जिससे उनकी कवित्व प्रतिभा की सूचना मिलती है। कहीं-कहीं इनके उदाहरण पद्यों में संस्कृत कवियों का भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है; जो इनकी स्वाध्यायशीलता की परिचायक है। इनके प्रायः सभी पद्यों में भगवान् बुद्ध के प्रति भक्ति-भाव की व्यंजना हुई है।

इस ग्रंथ पर अब तक हमें पाँच टीकाओं का पता चल सका है। पहली टीका वाचिस्सर नाम से प्रचलित किसी सिंहली भिक्षु के द्वारा १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है।[2] डा० भरतसिंह उपाध्याय

---

१. रामसम्पाद्यलंकारा सन्ति सन्तो पुरातनाः॥ सुबोधालंकार १.२।

२. पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५७२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के अनुसार इसके लेखक सारिपुत्र के शिष्य हैं। मललसीकर के अनुसार इन्हें १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना चाहिए। इस पर लिखी गई दूसरी टीका 'छपच्चय' दीपनी है, जिसकी रचना चौदहवीं शताब्दी में बर्मी भिक्खु सद्धम्मयाण द्वारा की गई है। बर्मा में इस पर सन् १८८० ई० में अलंका निस्सय नाम की टीका लिखी गई है, जिसके लेखक अज्ञात हैं। इसके अतिरिक्त काव्य-साहित्य-संग्रह नामक टीका सन् १८७२ ई० में विन्दा-भिसिर नामक बर्मी लेखक द्वारा लिखी गई है। डाक्टर हेरम्ब चटर्जी के अनुसार इन टीकाओं के अतिरिक्त परिवार नाम की एक टीका सीलोनी भाषाओं में और है, जो अब तक ताड़पत्र पर सीलोन में ही सुरक्षित है तथा अब तक उसका प्रकाशन न हो सका है, तथा जो इस ग्रन्थ को स्पष्ट करने में पर्याप्त सहायक है। इस ग्रन्थ का एक अनुवाद वर्तमान शताब्दी में भिक्खु अय्यवंश द्वारा बंगला भाषा में किया गया है, जिसका प्रकाशन १९४८ में कलकत्ता से हुआ है। किन्तु यह अनुवाद न तो विषय विवेचन की दृष्टि से प्रौढ़ कहा जा सकता है और नहीं ही अर्थ को स्पष्ट कराने में पूर्ण सक्षम है।

पालि-साहित्य के विशाल भण्डार में अब तक उपलब्ध एकमात्र अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ सुबोधालंकार प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के मूल एवं टीकाओं के प्रकाश में आने से निस्सन्देह अलंकार-शास्त्र के इतिहास में एक रिक्तता की पूर्ति होगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'चित्रालङ्कार' साहित्य की अनुपम कृति 'कङ्कण-बन्ध-रामायण'

आचार्य डा० रुद्रदेव त्रिपाठी
एम० ए०, पी-एच० डी०

भारतीय-वाङ्मय की विविध धाराओं में शब्दालङ्कार से समन्वित रचनाओं ने सदा अपनी चमत्कार-परम्परा के कारण विद्वानों को आकृष्ट किया है। संस्कृत-साहित्य ऐसी विधाओं का कोष है और उसमें आज भी ऐसे अनेक रत्न छिपे हुए हैं, जिनके आलोचन से मानवीय मेधा की लोकोत्तरता किस चरम बिन्दु तक पहुँच सकती है; इसका आश्चर्यकारी आभास परिलक्षित होता है।

यद्यपि संस्कृत-भाषा की अपनी कुछ क्षमताएँ तथा मर्यादाएँ ऐसी हैं, जो अन्य सामान्य भाषाओं में सर्वथा दुष्प्राय हैं; तथापि व्याकरण के प्रौढ़ पाण्डित्य एवं साहित्य की विविध विधाओं के मङ्गल-मिलन से समुद्भूत प्रतिभा वाले विशिष्ट रचनाकारों की प्रतिभा ही उसमें प्रमुख रहती है। उदाहरणार्थ, महाकवि दण्डी तथा कुछ कवियों ने ओष्ठ्य वर्णों से रहित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनकी पृष्ठभूमि किसी पात्र के अभिनय से पूर्व आकस्मिक दुर्घटना-ग्रस्त हो जाने से उसके ओष्ठ का कट जाना है। कटे हुए ओष्ट वाला पात्र यदि अभिनय के समय पवर्ग का प्रयोग करता है, तो उसका उच्चारण अवश्य ही अशुद्ध होगा और उसी समय उसे उच्चारण-जन्य कष्ट तो होगा ही। इस आकस्मिक कष्ट से मुक्त रखने के लिये निरोष्ठ्य वर्ण-प्रयोग कितना सहायक हुआ होगा ; यह सहृदय ही जान सकता है। दशकुमार चरित का अन्यतम उच्छ्वास, निरोष्ठ्य चम्पू और निरोष्ठ्य रामायण इसके उदाहरण हैं।

इसी प्रकार रामायण की एक पात्र शूर्पणखा को लक्ष्य में रखकर लिखा गया 'निरनुनासिक चम्पू' काव्य बेचारी कटी नाकवाली शूर्पणखा द्वारा रावण के दरबार में राम के व्यवहार का वर्णन करते हुए अनुनासिक वर्णों के अपप्रयोग से उत्पन्न उपहास से किस तरह बच गई, यह भी कितनी गौरव की बात है? ङ-ञ-ण-न-म आदि वर्णों के प्रयोग से मुक्त अपने कथन की सुविधा से शूर्पणखा की तुष्टि के साथ सभ्यों का आश्चर्य भी इसमें द्रष्टव्य है।

यही क्यों, अशोक वाटिका में बैठी सीता को जब रावण अपनी रानी बनाने के लिये बार-बार आग्रह करता है; तब तीन चरणों के संवाद को केवल मात्रा, अनुस्वार, अक्षर अथवा पद के परिवर्तन का सङ्केत चौथे चरण से देकर रावण के कथन को धूल में मिला देने वाली युक्ति वाले काव्य—'सीतारावण संवाद-क्षरी' का अन्यत्र उदाहरण कहाँ मिल सकता है? बीसवीं शती की ऐसी एक ही नामवाली तीन कृतियाँ आज उपलब्ध हैं, जो च्युत-चित्रालङ्कार के कुछ भेदों का ही परिणाम हैं। केवल एक ही अक्षर को स्वरमाला से संयुक्त कर स्रग्धरा जैसे विशाल छन्द की सार्थक रचना, दो अक्षरों से बने पद्यों द्वारा इष्टस्तुति (एकाधिक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पद्यमय) की रचना, पूरे के पूरे महाकाव्य में धारावाहिक सात-सात कथाओं की समायोजना, गद्य-पद्य के काव्यों द्वारा पूरे व्याकरण का क्रमिक बोध, जिसमें एक ओर काव्यगत कथानक और दूसरी ओर व्याकरण के सूत्रों से सम्मतप्रयोगों का ज्ञापन होता है; श्लेषालङ्कार की पराकाष्ठा प्रकट करते हुए केवल अष्टाक्षरी वाक्य 'राजा नो ददते सौख्यं' के आठ लाख से भी अधिक अर्थ करना, पूरे काव्य में लोम-विलोम-पद्धति से आधा पद्य सीधा पढ़ने पर राम कथा और उसी को उलटा पढ़ने पर कृष्ण कथा का आनन्द देने वाला दैवज्ञ सूर्यमल्ल का कार्ष्णिकाव्य, एक ही ग्रन्थ में विभिन्न पठन-पद्धतियों के आश्रय से विभिन्न विषयों का समायोजन, लक्ष्य-लक्षण की एक साथ सङ्गति, जनजीवन के जागते चित्रों में वर्ण योजना कर भावनाओं का उद्रेक उपस्थित करना आदि विचित्र कर्म सचमुच ही संस्कृत-भाषा में ही सुलभ हो सकता है।

चित्रालङ्कार शब्दालङ्कार के स्वेतर भेदों को अपने में आवर्जित करता है। यह श्रव्य होने के साथ ही दृश्य भी होता है। सामाजिक उपादानों के आश्रय से अभिव्यक्त होने के कारण समाज के साथ इसका पूरा सामञ्जस्य है और कृतिगत वैशिष्ट्य के साथ ही कृती की मेधाशक्ति के चमत्कारपूर्ण परिणमन के कारण विस्मय का जनक तो है ही। स्वर, वर्ण, स्थान, गति, प्रहेलिका, च्युत, गूढ़, प्रश्नोत्तर, समस्या, भाषा, आकार और छन्द से सम्बद्ध विविध भेद-प्रभेदों के कलात्मक समन्वय से यह भेद बहुत ही विस्तारवाला बन गया है और लक्ष्य तथा लक्षण-ग्रन्थों में हेय-प्रेय की दोलाचल-स्थिति में बहते हुए भी सदा विकसित ही हुआ है, जो इसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का अनुपम प्रमाण है।

कङ्कण-बन्ध और उसके प्रकार

आभरणों की विविधता में कङ्कण का अपना कुछ विशेष महत्त्व है। यह पुरुष और महिला दोनों के हाथों की बहुत प्राचीन काल से शोभा बढ़ाता आया है। वैदेशिक चाकचक्य से प्रभावित पुरुषवर्ग ने तो अब इस अलङ्करण को छोड़ दिया है, किन्तु महिलाएँ आज भी उसे अपने सौभाग्य का प्रतीक मानती हैं। कवि ने कङ्कण की आकृति को अपने बन्धकाव्य में बड़ा महनीय स्थान दिया और उसके मणिमण्डित आकार में जड़े हुए मोतियों को एक निश्चित आकार देकर, तदनुकूल पद्य-रचना की है, जिसे 'कङ्कण-बन्ध' नाम दिया जाता है।

प्रकारभेद की दृष्टि से कहीं ३२ मणियाँ, कहीं २४ मणियाँ, कहीं १६ मणियाँ तथा कहीं ८ मणियों का उपयोग होने से स्वभावतः चार भेद बन जाते हैं और जब इन मणियों में एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर या चतुरक्षरों का विन्यास कर पूरे पद्य की चमत्कृत-पठन-प्रणाली पूर्वक योजना की जाती है, तो चार भेद और बन जाते हैं। पाठ्य-पद्धति की दृष्टि से भी कहीं गृहीत-मुक्त, कहीं आवृत्ति और कहीं विलोमपद्धति आदि का प्रयोग होता है तथा कहीं पहली बार पूर्ण वर्णावृत्ति और दूसरी बार कतिपय वर्णावृत्ति भी होती है और उसमें भी नियतावृत्ति एवं अनियतावृत्ति की जाय तो यह भेद परम्परा पर्याप्त विस्तृत हो जाती है। लोम-विलोम और अर्धार्ध लोम-विलोम पद्धति इस आवृत्ति-प्रक्रिया में अत्यन्त चमत्कारिक मानी जाती है और क्लिष्टाक्षरों के द्वारा विभिन्नार्थों का परिज्ञापन उसकी चरम स्थिति है।

रामायण और चित्रकाव्य

चित्रालङ्कार के लिये महाकाव्यों में प्रायः कविवर्ग किसी एक सर्ग को चुन लेता है और उसमें आए

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुए विषय के अनुरूप ही चित्र-पद्यों की रचना भी करता है। इस दृष्टि से युद्ध-वर्णन को सर्वाधिक स्थान मिला है। भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध, हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय आदि इसके निदर्शन हैं। चित्रकाव्य-प्रकटन का दूसरा क्षेत्र स्तुति-काव्य है। देवताओं की दिव्य विभूतियों का चूड़ान्त वर्णन इसका विषय है; अतः किसी भी पद्धति से इष्ट का गुणाख्यान विभिन्न चित्र-पद्यों में किया जाना सरल होता है। सैकड़ों स्तुति-काव्यों में चित्रालङ्कारमय पद्य उपलब्ध होते हैं; यथा - आनन्दवर्धनाचार्य का देवीशतक, अवतार-कवि का ईश्वरशतक आदि।

चित्रकाव्य के क्षेत्र में भी रामकथा का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। दैवज्ञ सूर्यमल्ल कवि ने 'रामकृष्ण-विलोम काव्य' से चित्र-कवित्व को पुरस्कृत किया है तो एक महाराष्ट्र के भक्त-कवि श्रीमयूरपन्त ने मन्त्र-रामायण, किन्तु रामायण, इत्यादि रामायण आदि १०८ प्रकार की रामायण-कथाएँ लिखकर चित्रात्मकता को अपनाया है। सन्ध्याकर नन्दी का 'रामचरित' एक साथ दो कथाओं को प्रस्तुत करके धनंजय और राघव-भट्ट को 'राघव-पाण्डवीय' जैसे चित्रार्थ काव्यों की प्रेरणा देने में अग्रसर रहा है।

इस परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए दक्षिण के वेंकटेश कवि ने 'चित्रबन्ध-रामायण' की रचना करके उसमें अनेकविध चित्रबन्धों के माध्यम से ही रामायण की कथा का ग्रथन किया है।

कङ्कणबन्ध और रामायण

प्रायः किसी पद्य की रचना में कवि इतना ही श्रम करता है कि यदि वह मुक्तक है, तो अपने आप में कथनीय भाव से परिपूर्ण हो और यदि वह काव्यान्तर्गत प्रचलित रचना से सम्बद्ध है, तो वह पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह करते हुए अपने लक्ष्य की पूर्ति करे। कुछ ऐसे पद्य भी मिलेंगे जो मुक्तक होते हुए भी वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्यार्थों के समान विभिन्न अर्थों को समेटे हुए हों। किन्तु चित्रालङ्कार के पद्य इस सीमा से कुछ आगे बढ़कर गर्भगत वैशिष्ट्य के द्वारा कवि, काव्य, स्तव्य, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, भेषज, आभाणक आदि को भी प्रकट करते हैं अथवा श्लेषालङ्कार की सहायता से एक से लेकर अनेकार्थों की सृष्टि करते हैं।

जब उपर्युक्त कतिपय प्रक्रियाओं को सम्मिलित रूप में प्रस्तुत किया जाए तो स्वाभाविक है कि वह कृति अपने ढंग की अनूठी होगी। कङ्कण-बन्ध की रचना में ऐसे प्रयोग हुए हैं, जिनका प्रथम उदाहरण वेंकटेश कवि ने 'चित्रबन्ध-रामायण' में दिया है। बत्तीस अक्षरों से निर्मित कङ्कणबन्ध में अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक अक्षर को 'गृहीतमुक्त' पद्धति से पढ़ा जाता है। इस प्रकार के पठन से जब सीधा पठन किया जाता है तो बत्तीस पद्य बन जाते हैं और उन पद्यों में प्रत्येक का सन्दर्भानुसारी अर्थ निकलता है। किसी भी छन्द में यह रचना की जा सकती है। कवि की विवेच्य शक्ति की प्रधानता से अनुलोम और विलोमगति द्वारा जितनी बार पठन होगा, उतने ही पद्य बनते जाएँगे।

वशिष्ठ गोत्रीय कृष्णमूर्ति कवि ने इसी बन्ध को आधार बना कर केवल एक अनुष्टुप् के बत्तीस अक्षरों के लोम-विलोम पाठ से बत्तीस के स्थान पर चौंसठ पद्यों की रचना की है और साथ ही उसमें रामायण के कथानक का क्रमिक समावेश भी कर दिया है। इस सफलता पर कवि ने स्वयं कहा है कि :

ननु कङ्कणबन्धकृतिः कृतिनामपि नो सुकरा यदि वा कविभिः।
कविभिर्घटिताऽस्ति तथापि कथाक्रम-संग्रथिता न चकास्ति भुवि॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अर्थात् 'यद्यपि पूर्वकवियों ने जो कङ्कण-बन्ध की रचना की है, वह भी सामान्य कवि के लिए सुकर नहीं है; किन्तु उन्होंने फिर भी वैसी रचना की है। तथापि कथाक्रम से ग्रथित कङ्कण-बन्ध की रचना आज तक इस पृथ्वी पर नहीं मिलती है।' इस प्रकार प्रस्तुत बन्ध-निर्माण की महत्ता पर प्रकाश डाल कर उक्त कवि ने एक ऐसे पद्य की रचना की, जिसमें सारी रामकथा का छः काण्डों में समावेश किया और उनके पद्यों का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया :

पहले काण्ड में १२ पद्य, दूसरे में १३ पद्य, तीसरे में ६ पद्य, चौथे में ११ पद्य, पाँचवें में १० तथा छठे में १२ पद्य। इस प्रकार कुल चौंसठ पद्यों और छः काण्डों में पूरी रामायण की कथा का ग्रथन कङ्कण-बन्ध के एक ही पद्य में इस प्रकार किया गया है :

नेतादेवालीनामाशाधानाधीनानेका लोका।
मास्थानं भाख्या योगीशं पायादेतं रामे राजा॥१॥

यह पद्य ३२ अक्षरों से निर्मित है। इसका प्रत्येक अक्षर कङ्कण के प्रत्येक मोती में निहित रहता है। प्रथम अक्षर से बत्तीसवें अक्षर तक पहला पद्य बनता है। द्वितीय अक्षर से आरम्भ करके बत्तीसवें अक्षर तक आकर उसमें प्रारम्भ का पहला अक्षर और जोड़ देने पर ३२ अक्षर का पुनः पद्य बन जाता है। इसी प्रकार ग्रहण-मुक्त पद्धति से अनुलोम पाठ से ३२ पद्य बनते हैं और विलोम पद्धति से पुनः पाठ करने पर अन्य ३२ पद्य और बन जाते हैं और कुल पद्यों की संख्या ६४ बन जाती है। इन पद्यों के प्रारम्भाक्षरों की योजना प्रतीक रूप में :

१. नेता० २. तादे० ३. देवा० ४. वाली० आदि है।

उपर्युक्त प्रत्येक दो-दो अक्षर प्रत्येक पद्य के आरम्भाक्षर हैं तथा इनसे बनने वाले ३२-३२ अक्षर के ६४ पद्यों का रामायण के सन्दर्भ में अर्थ लगाना भी कोई सरल कार्य नहीं है। अतएव स्वयं कवि ने ही इन पद्यों की व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी है।

एक सौ अट्ठाईस अर्थों वाला कङ्कणबन्ध

उपर्युक्त कवि से प्रभावित होकर ही चारलू भाष्यकार शास्त्री ने एक अन्य कङ्कण-बन्ध की रचना की है, जिसके पद्य तो चौंसठही बनते हैं; किन्तु उन प्रत्येक पद्य के दो-दो अर्थ किये हैं और उनमें पूरी रामायण की कथा को विभाजित करते हुए १२८ अर्थों में उसे संकलित किया है। इस रचना का मूल पद्य इस प्रकार है :

रामानाथा मारासारा चारा नारा गोपाधारा।
धारा धारा भीमाकारा पारा वारा सीतारामा॥

समस्त संस्कृत-वाङ्मय में ऐसी आश्चर्यपूर्ण रचनाएँ हैं, जिनमें चित्रात्मकता के साथ ही विभिन्न विचित्रताओं का भी समावेश है। साथ ही यह भी प्रसन्नता का विषय है कि ऐसी काव्यधारा आज भी रुकी नहीं है, अपितु बढ़ती ही जा रही है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नाट्य-शास्त्र की पूर्ववर्ती-परम्परा

डा० ब्रजबल्लभ मिश्र
एम० ए० पी-एच० डी०

नाटक के लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा में आचार्य भरतमुनि कृत 'नाट्य-शास्त्र' विश्व-साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थों में से है। पाश्चात्य-विद्वान् इस सन्दर्भ में अरस्तू के 'पोइतिक्स' को सबसे प्राचीन मानते हैं। सिद्धान्ततः 'पोइतिक्स' नाटक का लक्षण-ग्रंथ न होकर, काव्य का लक्षण-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में अरस्तू ने प्रसंगवश त्रादस-नाटकों पर भी कुछ लिख दिया है, किन्तु वह बहुत अल्प है। उसके आधार पर उसे नाट्य-ग्रन्थ कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से भरतमुनि का 'नाट्य-शास्त्र' ही विश्व का प्राचीनतम लक्षण-ग्रन्थ ठहरता है।

कतिपय विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि भारत में ईसापूर्व पाँचवीं शती में नाटक की कला का अस्तित्व नहीं था। इसी के विपरीत यूनान में ईसापूर्व चौथी और पाँचवीं शती में नाटक का जन्म हो चुका था। कतिपय लेखकों के कथ्यानुसार यह बात विश्वकोष अमेरिकना और ब्रिटेनिका में भी लिख दी गई है कि विश्व में नाट्यकला का विकास सर्वप्रथम यूनान में हुआ।

अपने तर्क को पुष्ट करने के लिये इन्होंने महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी को आधार बनाया। कहा गया कि अष्टाध्यायी में न तो कहीं नाट्य शब्द देखने को मिलता है और न कहीं अभिनेता। पाणिनि का समय ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी निश्चित किया गया। इसके साथ ही कुछ लोगों ने अष्टाध्यायी के सूत्र "पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षु नट सूत्रयोः" को उद्धृत करके नाटक तो नहीं, हाँ 'नट' शब्द की पाणिनि-काल में खोज कर ली। इस सूत्र के अनेक प्रकार से अर्थ किये गये और इसका सम्बन्ध नाटक से जोड़ने की चेष्टा की गयी। इस सबके बाद भी यह सिद्ध नहीं हो पाया कि पाणिनि-काल में भारत में 'नाटक' का कला के रूप में अस्तित्व था। इस सूत्र में 'नट' शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु 'नाट्य' अथवा 'अभिनेता' शब्द की चर्चा कहीं देखने को नहीं मिलती।

इस अन्वेषण की दृष्टि में सबसे बड़ा दोष यह रहा है कि हमने अपनी प्राचीन नाट्य-परम्परा को भ्रान्त शब्दों के आधार पर खोजने की चेष्टा की। अन्वेषण करते समय हमारी दृष्टि 'नट' अथवा 'नाट्य' शब्द को प्राचीन साहित्य में टटोलती रही। भारत की प्राचीन नाट्य-परम्परा में 'नाट्य' शब्द बहुत समय तक तो प्रचलित ही नहीं हुआ और जब अस्तित्व में आया भी, तो बहुत सीमित अर्थ लेकर प्रकट हुआ था। उसका तत्कालीन अर्थ आज के अर्थ से पूर्णतः भिन्न था। इसी प्रकार 'नट' शब्द का प्रयोग भी उस समय भिन्नार्थक था। अतः इन शब्दों के आधार पर भारत की प्राचीन नाट्य-परम्परा का अन्वेषण करना एक निरर्थक प्रयास ही है।

प्रश्न यह है कि क्या पाणिनि के काल में सचमुच 'नट' शब्द का अर्थ 'अभिनेता' था अथवा हम बलात्

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उससे वह अर्थ निकालने की चेष्टा करते रहे हैं। इस बात को समझने के लिये हमें पाणिनि से पूर्व की शब्द-स्थिति पर विचार करना अधिक उपयुक्त है।

पाणिनि से पूर्व देश में प्राकृत-भाषाएँ थीं। आर्ष-प्राकृत का काल उनसे भी प्राचीन रहा है। आर्ष-प्राकृत में नट के लिये 'णट्ट' शब्द का प्रयोग हुआ करता था। 'णट्ट' एक जातिवाचक शब्द था। 'पाइअ णट्ट महण्णवो' में 'णट्ट' का अर्थ 'नर्तकों' की एक जाति है। पालि शब्द-कोश में भी 'नट' नर्तकों के अर्थ का द्योतन करता है। पालि-भाषा का समय ईसापूर्व चौथी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, अर्थात् ईसापूर्व एक हजार वर्ष से ईसापूर्व प्रथम शताब्दी तक नट का अर्थ नर्तकों की जाति थी। मनु ने अपनी 'स्मृति' में इस जाति के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि व्रात्य-क्षत्रिय से सवर्णों में उत्पन्न सन्तान को नट, करण, खस और द्रविण कहा जाता है। इस सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नट अभिनेता का पर्याय न होकर एक जाति का नाम था। यह जाति पाणिनि के बहुत पहले से भारत में विद्यमान थी।

भारत की नाट्य-शास्त्रीय परम्परा का परिशीलन करते समय सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि पाणिनि अथवा उससे पूर्व इस देश में अभिनेता शब्द का अस्तित्व नहीं था। स्वयं 'नाट्य-शास्त्र' में अभिनेता के लिये अभिनेता शब्द प्रयुक्त न होकर प्रस्तोता अथवा प्रयोगज्ञ शब्द का प्रयोग हुआ है। अभिनेता शब्द 'नाट्य-शास्त्र' के बहुत बाद प्रचलन में आया है।

पाणिनि से पूर्व नाट्य अथवा अभिनेता शब्दों का प्राप्त न होना इस बात का प्रमाण नहीं कि भारत में उस समय तक नाट्य-कला का विकास नहीं हुआ था, अपितु इस बात का द्योतक है कि पाणिनि से पूर्व भारत में अभिनेता और नाट्य-कला के लिये किन्हीं अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाता था।

विषय में गहनता से अवगाहन करने पर प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती-परम्परा में अभिनेताओं को भरत कहा जाता था। यद्यपि 'नाट्य-शास्त्र' के प्रणेता का नाम भरतमुनि था, किन्तु भरतमुनि शब्द में केवल मुनि शब्द ही विशिष्ट रचनाकार की वैयक्तिकता का द्योतक है, शेष भरत शब्द समुच्चय-बोधक है। पाणिनि से पूर्व गायन, वादन, नर्तन विधा के सिद्ध कलाकारों को भरत कहा जाता था। पाणिनि से पूर्व की परम्परा में नाटक प्रस्तुत न होकर गायन, वादन, नर्तन का संयुक्त प्रदर्शन हुआ करता था। इसे या तो 'तौर्यत्रिकम्' कहा जाता था अथवा 'नटनम्' कहा जाता था। पाणिनि ने भी नर्तक, गायक तथा प्राणितूर्य शब्दों की अपने ग्रन्थ में व्याख्या प्रस्तुत की है। प्राणितूर्य का अर्थ पाणिनि ने गायक और नर्तक किया है।

भरत इस तौर्यत्रिकम् क्रिया के सिद्ध कलाकार थे। पाणिनि से पूर्व गायन, वादन, नर्तन के सन्दर्भ में भरत लोगों की चर्चा अनेक ग्रन्थों में हुई है। पाणिनि से पूर्व भारत में यास्क नामक वैयाकरण बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। यास्क ने निघण्टु नामक ग्रन्थ की टीका निरुक्त के नाम से की। यास्क का समय पाणिनि से लगभग ६०० वर्ष पूर्व रहा है। निघण्टु वेदांग भाष्य माना गया है, अतः उससे भी अधिक प्राचीन है। निघण्टु के तृतीय अध्याय में 'भरताः' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो भरत का बहुवचन है।

इससे भी पूर्व 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भरत जाति का संकेत प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मणों का रचना-काल पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा ईसापूर्व लगभग दो हजार वर्ष स्वीकार किया गया है। ऐतरेय में एक कारिका है : "तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्तनां वित्तिं प्रयन्ति तुरीय हैव संग्रहीतारो वदन्ते" (२.२५) अर्थात् इस प्रकार भरत लोग सात्विक वृत्ति का प्रयोग करते थे और तूर्य-संग्रहों के आधार पर वादन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कर्म करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि तूर्य-वाद्यों के संग्रह-ग्रन्थ ऐतरेय से भी बहुत पहले रचे जा चुके थे। कालान्तर में तूर्य से तौर्य हुआ और तौर्य शब्द से तौर्यत्रिकम् क्रिया बनी। दूसरी महत्वपूर्ण बात इससे यह स्पष्ट होती है कि तूर्य-संग्रहों के आधार पर वादन करने वाले भरत लोग उस काल से भी पूर्व भारत में लोकप्रिय हो चुके थे।

याज्ञवल्क्य-स्मृति में भी इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं। मूलतः यह ग्रन्थ धर्म और उसके समाज सापेक्ष स्वरूप का विवेचन करता है, किन्तु आत्मा का विवेचन करते हुए एक स्थान पर इसमें लिखा है :

यथा हि भरतो वर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम्।
नानारूपाणि कुर्वाणस्तथात्मा कर्मजातस्तनूः॥३.१६२

विज्ञानेश्वर द्वारा इसकी मिताक्षरी टीका में इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है : "भरतो नटः स यथा रामरावणादिनानारूपाणि कुर्वाणः सितासितपीतादिभिर्वर्णैरात्मनस्तनुम् वर्णयति रचयति तथेज्ञात्मा . . .।" अर्थात् जिस प्रकार भरत नामक नट श्वेत, श्याम, पीत आदि वर्ण धारण करके राम रावण आदि के नाना रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार आत्मा अपने नाना कर्मानुसार अनेक वर्णों में फल भोगता है।

वृहत्पाराशर के पृष्ठ २९४ में भी एक पद ऐसा है, जिसका यह अर्थ होता है कि नाट्य-कर्मियों को भरत कहा जाता है। भावप्रकाश के लेखक शारदातनय ने लिखा है कि भरत के नाट्य-शास्त्र से वृद्ध भरत ने नाट्य वेदागम की रचना की थी। इसे स्पष्ट करते हुए उसने वृद्ध भरत को द्वादश साहस्रीकार कहा है और भरतमुनि को षट्सहस्रीकोर माना है। उसके अनुसार भरतमुनि ने वृद्ध भरत के बारह हजार श्लोकों के ग्रन्थ का ६ हजार श्लोकों में संक्षिप्तीकरण प्रस्तुत किया था :

"एवं हि नाट्यवेदे अस्मिन् भरतेनोच्यते रसः।
तथा भरत वृद्धेन कथितं गद्यमीदृशम्॥
एवं द्वादशसाहस्रैः श्लोकैरेकं तदर्थतः।
षड्भिः श्लोकसहस्रैयो नाट्यवेदस्य संग्रहः॥

भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में भी अनेक प्रकार के अन्तर्साक्ष्य हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि उससे पूर्व भरत लोगों का एक विशिष्ट वर्ग इस कार्य को किया करता था। साथ ही उसके शास्त्र से पूर्व नाट्य-विषयक लक्षणों का नियमन हो चुका था। 'नाट्य-शास्त्र' में एक स्थान पर लिखा है : "स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेन्तु वृत्ति" अर्थात् इस वृत्ति का प्रयोग भरत लोग किया करते थे, अतः इसे भारती-वृत्ति कहा जाता है। अनेक स्थानों पर इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, जिनको भरतमुनि ने 'आनुवंश-परम्परा' से प्राप्त स्वीकार करते हुए लिखा है : "अत्रानुवंश्ये आर्ये भवतः तत्र श्लोकः।" धर्मियों का विवेचन करते हुये भरतमुनि ने 'नाट्य-धर्मी' और 'लोक-धर्मी' दो शब्दों का प्रयोग किया है। नाट्यधर्मी के सम्बन्ध में यह कथन कि अमुक प्रयोग नाट्य-परम्परानुकूल व्यवहृत है, यह सिद्ध कर देता है कि भरतमुनि से पूर्वनाट्य की एक व्यापक परम्परा का विकास हो चुका था।

नाट्य-शास्त्र की पूर्ववर्ती-परम्परा को स्पष्ट करने के लिये कुछ संकेत तो ऐसे हैं, जिन्हें सामान्य व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है; किन्तु कुछ संकेत ऐसे हैं, जिनका प्रयोग पारिभाषिक शब्दावली के रूप

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में हुआ है और जिनका सम्बन्ध पूर्ववर्ती-परम्परा से है। बीसवें अध्याय में लिखा है : 'अंक इतिरूढ़िशब्दो।' अर्थात् अंक, यह एक रूढ़िगत शब्द है, अतः इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। अंक गणितपरक संख्याओं के लिए प्रयोग किया जाता है तथा अंक का अर्थ गोद भी होता है, किन्तु नाटक के सन्दर्भ में कथानक को विभाजित करने के लिये इसका प्रयोग होता है। जब नाट्य-शास्त्र इसके सम्बन्ध में कहता है कि नाटक के सन्दर्भ में यह शब्द रूढ़ हो चुका है, तो स्पष्ट हो जाता है कि इसके रूढ़ स्वरूप का निर्माण दो-चार दिन में नहीं हुआ होगा; अपितु उसकी पृष्ठभूमि में कई शताब्दियों की नाट्य-मान्यतायें आवेष्टित रही होंगी।

इसी प्रकार एक अन्य शब्द 'मार्ग' का प्रयोग हुआ है। ऐसे सन्दर्भ में 'देशी' और 'मार्ग' दो शब्द आते हैं। संगीत और नृत्य की विधियों का विभाजन करते हुये शास्त्रकार ने एक विधि 'देशी' बतलायी है, दूसरी 'मार्ग'। इनमें देशी नृत्य वह है, जिनमें लोक-व्यापी तत्व संग्रहीत होते हैं तथा मार्ग-नृत्य वह है, जिसका विधान ब्रह्मा के आदेश पर भरतों द्वारा किया गया है; अर्थात् नाट्य-शास्त्र में वर्णित मार्ग-पद्धति के विधान का निर्माण भरतमुनि से बहुत पूर्व ही हो चुका था।

अतः यह पूर्णतः असंदिग्ध है कि वर्तमान नाट्य-शास्त्र भले ही ईसा पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी की रचना हो, किन्तु इससे पूर्व नाट्य के लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा भारत में विकसित हो चुकी थी। वर्तमान नाट्य-शास्त्र का निर्माण उन्हीं पारम्परिक-सूत्रों के आधार पर हुआ था। जब ईसा पूर्व दो हजार वर्ष के ऐतरेय-ग्रन्थ में भरतों का अस्तित्व था, तो निश्चय ही उनके संग्रह-ग्रन्थ भी थे। निश्चय ही भरत मुनि से पूर्व वृद्ध भरत ने 'नाट्यवेदांगम्' ग्रन्थ की रचना की होगी। राघव भट्ट ने शकुन्तला पर अपनी अर्थ-द्योतनिका नामक टीका में आदि भरत से १७ कारिकायें उद्धृत की हैं तथा भरत मुनि से ११ सूत्र उद्धृत किये हैं। भरत मुनि में अध्यायों का उल्लेख है, जबकि वृद्ध भरत का नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि राघव भट्ट के समय वृद्ध भरत की कारिकाएँ कण्ठाग्र रूप में ही उपलब्ध थीं, न कि पुस्तक रूप में; अन्यथा राघव भट्ट उनके अध्यायों का उल्लेख भी कर देते।

इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नाट्य-शास्त्र की परम्परा ग्रीक में अरस्तू द्वारा विरचित 'पोइतिक्स' से बहुत शताब्दियों पूर्व ही भारत में पल्लवित हो चुकी थी। आज आवश्यकता इस बात की है कि कोई भारतीय "नाट्यवेदांगम" ग्रंथ की खोज करे; कहीं ऐसा न हो कि यह श्रेय भी किसी विदेशी को ही प्राप्त हो। हमारा दृढ़ विश्वास है कि देश के किसी न किसी भाग में, किसी न किसी रूप में वृद्ध भरत का 'नाट्यवेदांगम' आज भी पड़ा हुआ किसी की प्रतीक्षा कर रहा होगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रामायण-सौन्दर्य

⊙

डॉ० पांडुरङ्गराव
एम० ए०, पी-एच० डी०

यावत स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद रामायणकथा लोकेषु प्रतिरिष्यति ।।

विधि-विधान था कि जब तक पर्वतों में खड़े रहने का सामर्थ्य है और नदियों में प्रवाह की क्षमता है, तब तक सारे संसार में रामायण का प्रसार बराबर बना रहेगा। किसी भी कृति को इस प्रकार का चिरंतन अस्तित्व प्रदान करने वाली शक्ति उसकी रमणीयता में होती है। कोई भी सुन्दर वस्तु चिरंतन आनंद का अक्षय आधार बन जाती है। रामायण के इसी लोकोत्तर सौंदर्य के साक्षात्कार से पुलकित होकर ही विश्व-विधाता ने यह सच्ची भविष्य वाणी की थी।

रामायण के सौन्दर्य को समझने के पहले रामायण शब्द की रमणीयता पर विचार करना होगा। राम और अयन - दो शब्दों के मेल से रामायण शब्द बनता है। राम शब्द की व्युत्पत्ति 'रम्' धातु से है और 'अयन' शब्द की व्युत्पत्ति 'इ' (गमने) धातु से है। अतः ये दोनों धातुएँ क्रमशः रमणशीलता और गमन-शीलता का बोध कराती हैं। जन-मन में निरंतर राममाण होकर प्रतिष्ठित राम का सारा जीवन गत्यात्मक रहा है। सोलह वर्ष के पूरे होने के पहले विश्वामित्र के साथ लोक-कल्याण की साधना में राजमहल से प्रस्थित राम ने फिर जीवन में कभी भी चैन की साँस नहीं ली। आजीवन परहित की साधना और अखिल जगत् की आराधना में तत्पर रामचन्द्र के जीवन में स्थिति और गति का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। समुद्र का गांभीर्य, हिमाचल का धैर्य, पृथ्वी की क्षमा आदि प्रशांत गुणों से मर्यादित रामचंद्र की मनोवृत्ति क्रोध में कालानल का रूप धारण कर सकती है। 'तदेजति तन्नैजति'—वाले उपनिषद् वाक्य के अनुसार काव्य नायक राम में स्थितिज (Potential) और गतिज (Limetic) दोनों प्रकार की ऊर्जाओं का मंगलमय संगम पाया जाता है। इसीलिए आदि-कवि ने अपने काव्य का नाम 'रामायण' रखा है। रामायण शब्द में निहित यह सौंदर्य राम के जीवन को ही नहीं, प्राणिमात्र की जीवन-यात्रा में अभीष्ट सौंदर्य को भी विवृत बना देता है।

'रामायण' शब्द से लेकर इस काव्य के प्रत्येक अक्षर में इस प्रकार का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए कहा गया है:

चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातक नाशनम्।।

सैकड़ों-करोड़ों रूपों में संसार में व्याप्त रघुनाथ चरित के प्रथम प्रणेता वाल्मीकि ने राम के इतिवृत्त को चौबीस हज़ार श्लोकों में निबद्ध किया है। इसीलिए रामायण को चतुर्विंशति सहस्रिका भी कहा जाता है। चौबीस संख्या की एक विशेषता है। मंत्रराज गायत्री में चौबीस वर्ण हैं। भगवान विष्णु के भी केशव, नारायण,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

माधव आदि चौबीस नाम हैं। गायत्री मंत्र के द्रष्टा और राम-लक्ष्मण के मंत्र-गुरु विश्वामित्र का भी इस काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए वाल्मीकि ने अपनी रामायण में गायत्री मंत्र को विशेष महत्व दिया है। रामायण के चौबीस हज़ार श्लोकों में प्रत्येक हज़ार श्लोकों का पहला श्लोक गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर से प्रारम्भ होता है। पहला श्लोक इस प्रकार है:

'तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्।
नारदं परिप्रपच्छ वाल्मीकिर्मुनि पुंगवम्॥'

दूसरे हज़ार श्लोकों का आरंभिक श्लोक इस प्रकार है:

स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनंदनः!

इसी प्रकार

विश्वामित्रः स धर्मात्मा .....
तुष्टावास्य तदा वंश .....
वनवास हि संख्याय .....
राजा सत्यं च धर्मं च .....

प्रत्येक हज़ार का प्रारम्भ पूर्ववत होता है। इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण गायत्री बीज सम्मित रचना है।' तत्' शब्द के प्रति भी वाल्मीकि की विशेष रुचि दिखाई देती है। वास्तव में वाल्मीकि रामायण तत्वनिष्ठ रचना है।

यह तो केवल वाल्मीकि रामायण का बाह्य सौंदर्य है। इस काव्य का आंतरिक सौंदर्य सुन्दर कांड में अपने परिणत रूप में देखा जा सकता है। सुंदर कांड का नामकरण भी कुछ विचित्र-सा लगता है। बाल कांड में बालक राम का वर्णन है, अयोध्या कांड में अयोध्या की राजगद्दी पर राम को प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव आता है, अरण्य कांड में राम का बनवास वर्णित है, किष्किधा कांड में किष्किधा के निवासी वानरों के साथ राम का संबंध वर्णित है तथा युद्ध कांड में राम और रावण के बीच के युद्ध का वर्णन है। लेकिन सुन्दर कांड में वर्णित इतिवृत्त का उस कांड के नामकरण से कोई सीधा संबंध प्रतीत नहीं होता। वाल्मीकि ने इसे सुंदर कांड का नाम दिया था। इसीलिए परवर्ती रामायणकारों ने भी इसे वही नाम दिया। लेकिन वाल्मीकि ने इस काव्यखंड को यह नाम क्यों दिया होगा, इस पर सोचने से आदि-कवि की अलौकिक सौंदर्य भावना स्पष्ट होती है।

सुंदर कांड का प्रधान पात्र साधारण दृष्टि से असुंदर समझा जाने वाला वानर है। इसमें लंका की विकट रूपधारी राक्षसियों का जुगुप्सा-जनक वर्णन भी पाया जाता है। फिर भी इसी असुंदर तत्व से आवृत्त होकर विश्वसुंदरी सीता अशोक वाटिका में तपस्विनी-सी बैठी दर्शन देती है। इसी सौंदर्य को पुनः प्राप्त करने के लिए राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान और सारी वानर सेना तत्पर है। इस सौंदर्य साधना में निष्ठा के साथ आगे बढ़ने वाला, हनुमान पवन का पुत्र जलराशि को पार करता है, धरती की सुता सीता के दर्शन से अपने को धन्य समझता है, वासना की दुर्गन्ध से कलुषित लंका को वहीं की आग से जला डालता है और अंतरिक्ष की लहरों पर फिर अपने मूल स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार सीता-दर्शन के इस प्रधान इतिवृत्त में पवनतनय हनुमान पाँचों भूतों का रोमांचक समावेश घटित करता है। पार्थिव तत्वों की इस अपार्थिव साधना में हनुमान की दृष्टि अक्षय सौन्दर्य की अमोघ निधि सीता पर ही रहती है। इस गवेषणा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रामायण-सौन्दर्य

⊙

डॉ० पांडुरङ्गराव
एम० ए०, पी-एच० डी०

यावत स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद रामायणकथा लोकेषु प्रतिरिष्यति॥

विधि-विधान था कि जब तक पर्वतों में खड़े रहने का सामर्थ्य है और नदियों में प्रवाह की क्षमता है, तब तक सारे संसार में रामायण का प्रसार बराबर बना रहेगा। किसी भी कृति को इस प्रकार का चिरंतन अस्तित्व प्रदान करने वाली शक्ति उसकी रमणीयता में होती है। कोई भी सुन्दर वस्तु चिरंतन आनंद का अक्षय आधार बन जाती है। रामायण के इसी लोकोत्तर सौंदर्य के साक्षात्कार से पुलकित होकर ही विश्व-विधाता ने यह सच्ची भविष्य वाणी की थी।

रामायण के सौन्दर्य को समझने के पहले रामायण शब्द की रमणीयता पर विचार करना होगा। राम और अयन - दो शब्दों के मेल से रामायण शब्द बनता है। राम शब्द की व्युत्पत्ति 'रम्' धातु से है और 'अयन' शब्द की व्युत्पत्ति 'इ' (गमने) धातु से है। अतः ये दोनों धातुएँ क्रमशः रमणशीलता और गमन-शीलता का बोध कराती हैं। जन-मन में निरंतर राममाण होकर प्रतिष्ठित राम का सारा जीवन गत्यात्मक रहा है। सोलह वर्ष के पूरे होने के पहले विश्वामित्र के साथ लोक-कल्याण की साधना में राजमहल से प्रस्थित राम ने फिर जीवन में कभी भी चैन की साँस नहीं ली। आजीवन परहित की साधना और अखिल जगत् की आराधना में तत्पर रामचन्द्र के जीवन में स्थिति और गति का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। समुद्र का गांभीर्य, हिमाचल का धैर्य, पृथ्वी की क्षमा आदि प्रशांत गुणों से मर्यादित रामचंद्र की मनोवृत्ति क्रोध में कालानल का रूप धारण कर सकती है। 'तदेजति तन्नैजति'—वाले उपनिषद् वाक्य के अनुसार काव्य नायक राम में स्थितिज (Potential) और गतिज (Limetic) दोनों प्रकार की ऊर्जाओं का मंगलमय संगम पाया जाता है। इसीलिए आदि-कवि ने अपने काव्य का नाम 'रामायण' रखा है। रामायण शब्द में निहित यह सौंदर्य राम के जीवन को ही नहीं, प्राणिमात्र की जीवन-यात्रा में अभीष्ट सौंदर्य को भी विवृत बना देता है।

'रामायण' शब्द से लेकर इस काव्य के प्रत्येक अक्षर में इस प्रकार का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए कहा गया है:

चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातक नाशनम्॥

सैकड़ों-करोड़ों रूपों में संसार में व्याप्त रघुनाथ चरित के प्रथम प्रणेता वाल्मीकि ने राम के इतिवृत्त को चौबीस हज़ार श्लोकों में निबद्ध किया है। इसीलिए रामायण को चतुर्विंशति सहस्रिका भी कहा जाता है। चौबीस संख्या की एक विशेषता है। मंत्रराज गायत्री में चौबीस वर्ण हैं। भगवान विष्णु के भी केशव, नारायण,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

माधव आदि चौबीस नाम हैं। गायत्री मंत्र के द्रष्टा और राम-लक्ष्मण के मंत्र-गुरु विश्वामित्र का भी इस काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए वाल्मीकि ने अपनी रामायण में गायत्री मंत्र को विशेष महत्व दिया है। रामायण के चौबीस हज़ार श्लोकों में प्रत्येक हज़ार श्लोकों का पहला श्लोक गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर से प्रारम्भ होता है। पहला श्लोक इस प्रकार है:

'तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्।
नारदं परिप्रपच्छ वाल्मीकिर्मुनि पुंगवम्॥'

दूसरे हज़ार श्लोकों का आरंभिक श्लोक इस प्रकार है:

स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञध्नान् रघुनंदनः!

इसी प्रकार

विश्वामित्रः स धर्मात्मा .....
तुष्टावास्य तदा वंश .....
वनवास हि संख्याय .....
राजा सत्यं च धर्मं च .....

प्रत्येक हज़ार का प्रारम्भ पूर्ववत होता है। इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण गायत्री बीज सम्मित रचना है।' तत्' शब्द के प्रति भी वाल्मीकि की विशेष रुचि दिखाई देती है। वास्तव में वाल्मीकि रामायण तत्वनिष्ठ रचना है।

यह तो केवल वाल्मीकि रामायण का बाह्य सौंदर्य है। इस काव्य का आंतरिक सौंदर्य सुन्दर कांड में अपने परिणत रूप में देखा जा सकता है। सुंदर कांड का नामकरण भी कुछ विचित्र-सा लगता है। बाल कांड में बालक राम का वर्णन है, अयोध्या कांड में अयोध्या की राजगद्दी पर राम को प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव आता है, अरण्य कांड में राम का बनवास वर्णित है, किष्किधा कांड में किष्किधा के निवासी वानरों के साथ राम का संबंध वर्णित है तथा युद्ध कांड में राम और रावण के बीच के युद्ध का वर्णन है। लेकिन सुन्दर कांड में वर्णित इतिवृत्त का उस कांड के नामकरण से कोई सीधा संबंध प्रतीत नहीं होता। वाल्मीकि ने इसे सुंदर कांड का नाम दिया था। इसीलिए परवर्ती रामायणकारों ने भी इसे वही नाम दिया। लेकिन वाल्मीकि ने इस काव्यखंड को यह नाम क्यों दिया होगा, इस पर सोचने से आदि-कवि की अलौकिक सौंदर्य भावना स्पष्ट होती है।

सुंदर कांड का प्रधान पात्र साधारण दृष्टि से असुंदर समझा जाने वाला वानर है। इसमें लंका की विकट रूपधारी राक्षसियों का जुगुप्सा-जनक वर्णन भी पाया जाता है। फिर भी इसी असुंदर तत्व से आवृत्त होकर विश्वसुंदरी सीता अशोक वाटिका में तपस्विनी-सी बैठी दर्शन देती है। इसी सौंदर्य को पुनः प्राप्त करने के लिए राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान और सारी वानर सेना तत्पर है। इस सौंदर्य साधना में निष्ठा के साथ आगे बढ़ने वाला, हनुमान पवन का पुत्र जलराशि को पार करता है, धरती की सुता सीता के दर्शन से अपने को धन्य समझता है, वासना की दुर्गन्ध से कलुषित लंका को वहीं की आग से जला डालता है और अंतरिक्ष की लहरों पर फिर अपने मूल स्थान पर पहुँच जाता है। इस प्रकार सीता-दर्शन के इस प्रधान इतिवृत्त में पवनतनय हनुमान पाँचों भूतों का रोमांचक समावेश घटित करता है। पार्थिव तत्वों की इस अपार्थिव साधना में हनुमान की दृष्टि अक्षय सौन्दर्य की अमोघ निधि सीता पर ही रहती है। इस गवेषणा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में उसे कई जुगुप्सा-जनक दृश्यों को देखना पड़ता है। फिर भी उसका मन विचलित नहीं होता। वह बार-बार कहता है कि जानकी के मुख कमल की शोभा कब मुझे दृष्टिगोचर होगी ?

राम-कार्य की तत्परता उसमें इतनी प्रगाढ़ है कि वह किसी दूसरी चीज़ की परवाह नहीं करता। समुद्र को पार करते समय और लंका में राक्षसों से लड़ते-झगड़ते समय वह हमेशा राम का स्मरण करता और बार-बार कहता है :

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।
दासोऽहं कौशलेंद्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः
हनूमान शत्रु सैन्यानां निहंता मारुतात्मजः।
न रावण सहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्
अर्द्धयित्वा पुरीं लंका अभिवाद्य च मैथिलीं
समृद्धार्थो गमिष्यामि द्विषतां सर्वरक्षसां॥

यह आत्म-बल उसको महात्मा राम की प्रेरणा से ही मिलता है। राम के हाथ से निकले बाण की तरह वह लंका में पहुँच जाता है और राम के आदेश का पूरा-पूरा पालन करता है।

हनुमान में आत्मयोगी के लिए आवश्यक स्थिरता भी है। वानर-सुलभ चंचलता होते हुए भी हनुमान पग-पग पर अपने धैर्य और गाम्भीर्य का परिचय देता है। सारी लंका में खोजने के बाद जब अशोक वाटिका में सीता के दर्शन होते हैं, तब वह प्रसन्न तो होता है और मनसा रामचंद्र के यहाँ पहुँच भी जाता है, लेकिन तुरंत सीता जी के सामने जाकर अपना परिचय नहीं देता। वह धैर्य से सारी परिस्थिति को समझने की कोशिश करता है, सीता की दयनीयता से दुखी होता है, रावण और सीता के वार्तालाप को सहिष्णुता के साथ सुन लेता है और अन्त में राम के गुणगान से जानकी का ध्यान अपनी ओर खींच लेता है। जब जानकी की दृष्टि पेड़ पर स्थित हनुमान की ओर उन्मुख होती है तब न मालूम हनुमान का मन कितना प्रफुल्ल हुआ होगा। इस अनुभूति की कल्पना मात्र से किसी भी साधक का मन पुलकित हो उठता है।

सीता के साथ ही नहीं, रावण के साथ भी हनुमान बड़े संयम से काम करता है। बिना किसी प्रकार के संकोच और भय के उसे जो कुछ कहना था सब कह देता है। व्याकरण के विशेषज्ञ और वाणी के मर्मज्ञ के रूप में हम यहां पर हनुमान को देखते हैं। रावण के साथ उसके व्यवहार की सफलता का सबसे सबल प्रमाण यही है कि जिस अग्नि से रावण उसे ताप देना चाहता था, उसी अग्नि से वह सारी लंका को जला डालता है और लंकावासियों के मन में भय और त्रास का संचार कराता है। सीता जी को आश्वासन देने के लिए वह कहता है :

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च संति तत्र वनौकसाः
मतः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीव सन्निधौ।

सुग्रीव के दरबार में जितने भी लोग हैं, वे या तो मुझसे अधिक पराक्रमी हैं या मेरे समान हैं। मुझसे कम श्रेणी का व्यक्ति वहाँ कोई नहीं है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इन शब्दों में हनुमान की विनम्रता भी स्पष्ट झलकती है और उसकी कार्यसाधक वाग्विदग्धता भी। हनुमान की वाणी का ठीक समाधान सीतादेवी की कोमलकांत पदावली में मिलता है। जब हनुमान सीता जी को अपनी पीठ पर चढ़ा कर राम के पास ले जाने की बात करता है, तो सीता जी ठीक ही कहती हैं: एक तो मैं महिला हूँ, स्वभाव से भीरु हूँ और बंदर की पीठ पर बैठ कर जाने में और भी डर लगता है। कौन जाने, बीच में समुद्र में गिर पड़ूँ या रास्ते में राक्षस लोग हम दोनों को देखकर हमारा पीछा करें और उनसे लड़ते-लड़ते तुमको मुझे सँभालना मुश्किल हो जाए और मैं फिर बंदी बन जाऊँ। अगर मैं निरापद राम के पास पहुँच भी जाऊँ, तो भी पता नहीं, राम इसे पसंद करेंगे या नहीं। जैसे रावण मुझे हर ले आया, वैसे ही चोरी-चोरी मुझे राम वापस बुला ले तो इसमें राम की विशेषता क्या रही? अतः युद्ध में रावण को पराजित कर मुझे वे पुनः प्राप्त कर लें, इसी में राम की गुणवत्ता है—तत्तस्य सदृशं भवेत्!

मन और वाणी की यह रमणीयता सुंदर कांड के प्रत्येक अक्षर में दिखाई देती है। इसीलिए रामायण का सुंदर कांड काव्य-सौंदर्य की अक्षय निधि है। 'सुंदरे किं न सुंदरम्?' वाली उक्ति इसी दृष्टि से चरितार्थ है।

रामायण का परमार्थ भी इसी में है कि हम इस काव्य के अध्ययन के सहारे एक ऐसी तात्विक दृष्टि प्राप्त कर लें, जिसमें संसार में सर्वत्र उसी सुंदर तम की सुंदरता व्याप्त दिखाई दे, असुंदर को सुंदर रूप में देखने का दृष्टि-सौंदर्य हमारे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाए।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संस्कृत-साहित्य में नारी-चित्रण

डॉ० (श्रीमती) तुलसी मिश्र
एम० ए०, एम० एड०, पी-एच० डी०

संस्कृत-महाकाव्यों तथा नाटकों में नारी शास्त्रीय रूप में प्रतिष्ठित है। सदैव की भाँति गृहिणी का गृह में प्रमुख स्थान था। वह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के उपार्जन में पूर्ण सहयोगिनी मानी गई है। गृह में माता का सर्वोच्च स्थान था। पितृ-ऋण से मुक्ति प्राप्त करने के हेतु पुत्र-जन्म की आवश्यकता समझी जाती थी। पुत्र का जन्म वंशवृद्धि, गृह-सुरक्षा के लिए परमावश्यक समझा जाता था तथा गृहस्थाश्रम का परम लक्ष्य माना जाता था। पिता पुत्र को समस्त उत्तरदायित्व सौंपकर वानप्रस्थ ग्रहण करने में अपने जीवन की सार्थकता समझता था। 'रघुवंश' महाकाव्य में राजा रघु ने अपने प्रिय पुत्र अज को सम्पूर्ण उत्तर-दायित्व एवं राज्यभार सौंप कर वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया था तथा मोक्ष की साधना में तत्पर हो गए थे।[१]

परिवार में कन्या कुल का जीवन 'कुल जीवितम्'[२] समझी जाती थी। माता-पिता उसका पालन-पोषण अत्यन्त लाड़-प्यार से करते थे। महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला का पालन-पोषण बड़े लाड़-चाव से हुआ था। वह आश्रम के वृक्षों को सींचती थी तथा पौधों के प्रति पूर्ण ममत्वमयी अंकित की गई है। मृग-शावक उसे अत्यधिक प्रिय थे। कन्या को पितृगृह में पूर्ण स्वतंत्रता रहती थी। उनकी बाल्यावस्था विविध क्रीड़ाओं में ही व्यतीत होती थी।

आश्रमों में बालकों की भाँति ही बालिकाओं को भी शिक्षा दी जाती थी। भवभूति के 'मालतीमाधवम्' में वर्णित कामन्दकी लड़कों के साथ अध्ययन करती थी। शकुन्तला और उसकी सखियाँ अनुसूया और प्रियंवदा दोनों ही साक्षर थीं, उन्होंने दुष्यन्त की मुद्रिका पर अंकित नाम पढ़ कर जान लिया था कि दुष्यन्त राजा है। स्त्रियाँ ललित कलाओं में पारंगत होती थीं। 'मालविकाग्निमित्रम्' की मालविका ललित कला में दक्ष होने के कारण राजा को विशेष प्रिय थी।[३] शकुन्तला ने अपने प्रेमपत्र में अपना प्रणयभाव जिस मार्मिक ढंग से व्यक्त किया था, उससे उसकी शिक्षा तथा भावप्रकाशन-पटुता का आभास मिलता है। स्त्रियों को सांसारिक जीवन में सफलता के लिए उन्हें उपयुक्त विषयों—पढ़ना-लिखना, चित्रलेखन, संगीत, गृहकृत्यों की देखरेख आदि की भली प्रकार शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियों को प्राथमिक चिकित्सा का भी ज्ञान कराया जाता था। अपने प्रिय मृगशावक के व्रण पर इंगुदी तेल लगा कर शकुन्तला ने उसकी चिकित्सा की थी।[४]

---

१. रघुवंश : कालिदास, ७-१७।
२. कन्येयं कुलजीवितम् : कुमारसम्भव : कालिदास, ६-६३।
३. मालविकाग्निमित्रम् : कालिदास ग्रन्थावली, २।१३।
४. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ४।१४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आश्रम में स्त्रियाँ अत्यन्त सादगी से जीवन व्यतीत करती थीं। शकुन्तला आश्रम के वृक्षों को स्वयं ही सींचा करती थी तथा पुष्प चयन करके देवपूजन करती थी। आश्रम के सभी पशु-पक्षी उसे प्रिय थे, सभी को आत्मीय जैसा समझती थी। मृगशावक उसे पुत्रवत् प्रिय थे। वाल्मीकि के आश्रम में सीता पर्णकुटी में निवास करती थी। कन्द-मूल-फल भोजन करती थी तथा रात्रि में कुटिया में इंगुदी के तेल का दीपक जला कर मृगचर्म पर शयन करती थी। आश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ अथवा विद्यार्थिनियाँ समीपस्थ नदी तथा जलाशयों से हवनादिक एवं गृह कृत्यों के लिए स्वयं ही जल भर कर लाया करती थीं तथा वृक्ष-सिंचन किया करती थीं।[1] विदुषी होने के साथ ही स्त्रियाँ विनयशील भी होती थीं। राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' नामक नाटिका की प्रस्तावना से प्रकट है कि उस समय स्त्रियाँ स्वयं स्त्रीपात्रों का अभिनय किया करती थीं और अभिनय कुशला होती थीं।[2]

शिक्षिता कन्या का विवाह माता-पिता सुयोग्य वर से करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। युवती कन्या स्वयंवर में वर-चयन करती थी तथा माता-पिता कन्या द्वारा निर्वाचित वर के साथ विधिपूर्वक उसका विवाह कर देते थे। दमयन्ती ने नल का वरण स्वयं किया था। इस प्रकार संस्कृतकालीन समाज में स्त्रियों को विवाह-विषयक पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। क्षत्रिय राजाओं में अधिकतर स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। समाज में प्रजापत्य तथा गान्धर्व विवाह भी प्रचलित थे। विवाह अधिकतर सजातीय लोगों में होते थे। कभी-कभी अन्तर्जातीय सम्बन्ध भी हो जाते थे। प्रायः राजाओं को अपनी परिचारिकाओं से प्रेम हो जाता था। 'रत्नावली' में उदयन का सागरिका से तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' में राजा अग्निमित्र का मालविका से प्रणय था। वेश्याओं से प्रणय के उदाहरण भी हैं। 'मृच्छकटिक' में उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या चारुदत्त नामक ब्राह्मण पर अनुरक्त थी। उर्वशी-पुरूरवा का प्रणय भी प्रसिद्ध है। अनेक राजर्षियों की कन्याएँ गान्धर्व विवाह कर लिया करती थीं और उनके पिता अथवा अभिभावक उनका समर्थन करते थे। दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के गान्धर्व विवाह से महर्षि कण्व को पूर्ण सन्तोष था।[3]

माता-पिता कन्या के विवाह होने पर्यन्त उसे पराई सम्पत्ति 'धरोहर' के रूप में समझते थे। कन्या को पति के गृह भेज कर पिता स्वयं वैसी ही निश्चिन्तता अनुभव करता था, जैसे किसी की धरोहर लौटा कर अनुभव होता है। महर्षि कण्व ने शकुन्तला को विदा करके परम सन्तोष अनुभव किया था। माता-पिता को कन्या से बिछुड़ने में महान् दुःख अनुभव होता था। शकुन्तला के जाने से सम्पूर्ण तपोवन व्यथित हो उठा था।[4] माता-पिता कन्या को वस्त्राभूषण से सुसज्जित करके तथा पति से समादृत होने का आशीर्वाद देकर विदा करते थे तथा उसे आदर्श गृहणी बनने की शिक्षा भी देते थे।[5] कन्या पतिगृह सदैव के लिए भेज दी जाती

---

१. कालिदास के काल में शिक्षा और उसका आदर्श : वा० वि० मिराशी, पृ० ३६।
२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर, पृ० १९३।
३. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ४।२२।
४. वही, ४।६।
५. सुश्रुषस्व गुरूकुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजनैः
पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेविनी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

थी। आश्रम में उसका पुनरागमन पुत्रवती होने पर तथा पुत्र को समस्त राज्य एवं कुटुम्ब-भार सौंप कर वानप्रस्थाश्रम के समय पति के साथ ही सम्भव होता था। तब वह पुनः शान्त आश्रम में आकर सुख से शान्त जीवन व्यतीत कर सकती थी।

कन्या के विवाह के समय दहेज देने की प्रथा भी प्रचलित थी। पार्वती के विवाह के अवसर पर हिमालय ने रत्न, अर्घ्य, मधु, दधि, नवीन वस्त्राभूषणादि मंत्रोच्चारण सहित महादेव को समर्पित किए थे।[१] विवाह के समय कन्या को प्राप्त वस्त्राभूषणादि उसका 'स्त्रीधन' होता था। पति के लिए पत्नी सच्ची गृहणी, सचिव, सखी, प्रियशिष्या के समान होती थी तथा ललित कलाओं में पारंगत गृहस्वामिनी होती थी।[२] विपत्ति के समय पति को कर्तव्य का बोध करने में पत्नी पूर्ण समर्थ समझी जाती थी। रीति-नीति की ज्ञाता मानिनी द्रौपदी ने युधिष्ठिर से जो स्नेहमय, विद्वत्तापूर्ण एवं सारगर्भित वचन कहे, उसको बृहस्पति भी बोलने में असमर्थ कहे गए हैं।[३] संस्कृत-कवियों ने पार्वती, रति, सीता, इन्दुमती, शकुन्तला, दमयन्ती, वासवदत्ता आदि स्त्रियों का चित्रण पूर्ण पतिव्रता पत्नियों के रूप में किया है। पत्नी पति की छाया के समान होती थी। वह पति को 'आर्यपुत्र' कह कर सम्बोधन करती थी। वह पति-निन्दा कदापि सहन नहीं कर सकती थी। पिता द्वारा पति की अवहेलना देखकर साध्वी सती ने अपना शरीर दक्ष के यज्ञ में भस्म कर दिया था।[४] सती स्त्रियाँ दूसरे जन्मों में भी अपने पति की पत्नी बनी रहती थीं।

संस्कृतकालीन समाज में पति-पत्नी के आदर्श प्रेम को विशेष महत्व प्रदान किया गया है, भ्रमरवृत्ति को नहीं। परस्त्री की ओर दृष्टिपात भी अनुचित समझा जाता था।[५] सत्य प्रेम लोकापवाद की चिन्ता नहीं करता था। प्रिय की निन्दा सुनना भी पाप समझा जाता था। वास्तविक प्रेम जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सदा एकरस रहता था तथा सदैव दम्पति को सुख-शान्ति प्रदान करता था। महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरितम्' तथा 'मालतीमाधव' नाटकों में उज्ज्वल आदर्श दाम्पत्य-प्रेम का चित्रण किया है। आदर्श दाम्पत्य-प्रेम-की चरमावस्था सन्तान-प्राप्ति में मानी गई है। दम्पति के प्रणयपूर्ण दो हृदयों को एकसूत्र में बाँधे रखनेवाली आनन्दपूर्ण ग्रन्थि के रूप में सन्तान ही कही गई है।[६]

संस्कृत एवं महाकाव्यों-नाटकों में नारी पूर्ण सुन्दर एवं प्रेममयी अंकित की गई है। वास्तविक सौन्दर्यशालिनी नारी सभी अवस्थाओं में मनोरम एवं रमणीय प्रतीत होती है, उसे वाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती।[७] कवियों ने सुन्दर आकृतिवाली स्त्री में सुन्दर गुणों की कल्पना की है। नारी के चरम सौन्दर्य की पर-

---

यान्त्येवं गृहणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।

——अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ४-१८।

१. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ७।२७।

२. गृहणी सचिव : सखीमिथः प्रियशिष्याललिते कला विद्यौ : रघुवंश : कालिदास, ८।६७।

३. किरातार्जुनीयम् : भारवि, द्वितीय सर्ग २।

४. कुमारसम्भवम् : कालिदास, १।२१।

५. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ५।२८।

६. उत्तर-रामचरित : भवभूति, ३।१७।

७. किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, १-१९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

णति प्रेम में समझी गई है। 'प्रियेषु सौभाग्यफलम् हि चारुता' में ही नारी की सुन्दरता सार्थक थी अन्यथा नहीं।[1]

संस्कृत-साहित्य के श्रेष्ठ कवि कालिदास, भवभूति, बाण आदि ने प्रेम का मूल कारण पूर्वजन्म का प्रेम संस्कार माना है। 'कादम्बरी' में जन्म-जन्मांतर के संचित प्रेम संस्कारों का सजीव चित्रण है। सच्चा प्रणय सत्य की भाँति शाश्वत माना गया था। महाकवि कालिदास ने प्रेमी-प्रेमिका के मधुर सम्बन्ध का चित्रण अत्यन्त सहृदयता से किया है।

पति से वियुक्ता पत्नी स्वयं को 'मन्दभाग्या' समझती थी तथा अपने जीवन को भाररूप अनुभव करती थी। 'उत्तररामचरित' की परित्यक्ता सीता बारम्बार स्वयं को मन्दभागिनी कहती हुई धिक्कारती है। वह राम को किसी प्रकार से दोष नहीं देती हैं। पतिविरहिणी पत्नी के शरीर की आत्मा क्षीण हो जाती थी तथा उसका सौन्दर्य पाले से मुरझाई कमलिनी के सदृश प्रतीत होता था।[2] रघुवंशम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूतम्, उत्तर रामचरितम् और वासवदत्तम् आदि संस्कृत नाटकों एवं काव्यों में विरहिणी पतिव्रता नारियों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

पति की मृत्यु पर पतिव्रता पत्नी क्षण भर भी जीवित नहीं रहना चाहती थी। पति के अभाव में उसका संसार सूना हो जाता था। उसे अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होता था। जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्र से विहीन हो जाती है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री पतिमार्ग का अनुसरण करती थी।[3] लोक-परलोक दोनों ही में नारी की एकमात्र गति उसका पति माना जाता था। अतः पतिव्रता पत्नी पति की मृत्यु होने पर अपने प्राणों का परित्याग जीवनधारण से श्रेष्ठतर समझती थी। अतः समस्त शृंगार करके वह हर्षपूर्वक पति के शव के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो जाती थी, ऐसी स्त्रियाँ संसार में वन्दनीया होती थीं। 'कुमार-सम्भवम्' में रति कामदेव के पीछे-पीछे ही प्राणत्याग करना चाहती थी; किन्तु ऐसा न कर सकने का उसे बड़ा दुःख था[4]।

पति के अभाव में साध्वी नारी अग्नि में शरीर भस्म करके, जल में कूदकर, वृक्ष की शाखा में बँधकर अथवा विषपान कर अपना जीवन समाप्त कर देती थी तथा इस प्रकार की आत्महत्या को वह शास्त्र-सम्मत मानती थी। 'उत्तर रामचरितम्' में परित्यक्ता सीता गंगा में कूद पड़ी थी। क्षत्राणी सती नारी पति के वीरगति प्राप्त कर लेने पर पति के धनुष का आलिंगन करके चिता में भस्म हो जाती थी।[5] भास, शूद्रक, कालिदास आदि रचयिताओं की रचनाओं में सती प्रथा का वर्णन मिलता है।

विधवाओं के भी अनेक उदाहरण तत्कालीन साहित्य में प्राप्त हैं। शुभ कार्यों में विधवाएँ दूर ही रखी जाती थीं। 'कुमार सम्भवम्' में पार्वती के विवाह के लिए समस्त शृंगार तथा मांगलिक क्रियाएँ सुहागिन स्त्रियों ने ही की थीं।[6] कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में धनमित्र सेठ की अनेक विधवा सेठानियों

---

१. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ५।१।

२. मेघदूतम् (उत्तरमेघ) : कालिदास, २३।२४।

३. न पिता नात्मजावात्मा न माता न सखी जनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेका गतिः सदा। —वाल्मीकि रामायण, २।२७।६।

४. 'त्वामनुयामि' : कुमार सम्भवम् : कालिदास, ४।२१-२२।

५. क्षत्रियाणां देशान्तेमृतानां स्त्रियो धनुरा लंग्यानुम्रियन्ते इत्याचारः नारायण" नैषधः हर्ष, ४।२१।

६. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ७।६।१२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

थी। आश्रम में उसका पुनरागमन पुत्रवती होने पर तथा पुत्र को समस्त राज्य एवं कुटुम्ब-भार सौंप कर वानप्रस्थाश्रम के समय पति के साथ ही सम्भव होता था। तब वह पुनः शान्त आश्रम में आकर सुख से शान्त जीवन व्यतीत कर सकती थी।

कन्या के विवाह के समय दहेज देने की प्रथा भी प्रचलित थी। पार्वती के विवाह के अवसर पर हिमालय ने रत्न, अर्घ्य, मधु, दधि, नवीन वस्त्राभूषणादि मंत्रोच्चारण सहित महादेव को समर्पित किए थे।[१] विवाह के समय कन्या को प्राप्त वस्त्राभूषणादि उसका 'स्त्रीधन' होता था। पति के लिए पत्नी सच्ची गृहणी, सचिव, सखी, प्रियशिष्या के समान होती थी तथा ललित कलाओं में पारंगत गृहस्वामिनी होती थी।[२] विपत्ति के समय पति को कर्तव्य का बोध करने में पत्नी पूर्ण समर्थ समझी जाती थी। रीति-नीति की ज्ञाता मानिनी द्रौपदी ने युधिष्ठिर से जो स्नेहमय, विद्वत्तापूर्ण एवं सारगर्भित वचन कहे, उसको बृहस्पति भी बोलने में असमर्थ कहे गए हैं।[३] संस्कृत-कवियों ने पार्वती, रति, सीता, इन्दुमती, शकुन्तला, दमयन्ती, वासवदत्ता आदि स्त्रियों का चित्रण पूर्ण पतिव्रता पत्नियों के रूप में किया है। पत्नी पति की छाया के समान होती थी। वह पति को 'आर्यपुत्र' कह कर सम्बोधन करती थी। वह पति-निन्दा कदापि सहन नहीं कर सकती थी। पिता द्वारा पति की अवहेलना देखकर साध्वी सती ने अपना शरीर दक्ष के यज्ञ में भस्म कर दिया था।[४] सती स्त्रियाँ दूसरे जन्मों में भी अपने पति की पत्नी बनी रहती थीं।

संस्कृतकालीन समाज में पति-पत्नी के आदर्श प्रेम को विशेष महत्व प्रदान किया गया है, भ्रमरवृत्ति को नहीं। परस्त्री की ओर दृष्टिपात भी अनुचित समझा जाता था।[५] सत्य प्रेम लोकापवाद की चिन्ता नहीं करता था। प्रिय की निन्दा सुनना भी पाप समझा जाता था। वास्तविक प्रेम जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सदा एकरस रहता था तथा सदैव दम्पति को सुख-शान्ति प्रदान करता था। महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरितम्' तथा 'मालतीमाधव' नाटकों में उज्ज्वल आदर्श दाम्पत्य-प्रेम का चित्रण किया है। आदर्श दाम्पत्य-प्रेम-की चरमावस्था सन्तान-प्राप्ति में मानी गई है। दम्पति के प्रणयपूर्ण दो हृदयों को एकसूत्र में बाँधे रखनेवाली आनन्दपूर्ण ग्रन्थि के रूप में सन्तान ही कही गई है।[६]

संस्कृत एवं महाकाव्यों-नाटकों में नारी पूर्ण सुन्दर एवं प्रेममयी अंकित की गई है। वास्तविक सौन्दर्यशालिनी नारी सभी अवस्थाओं में मनोरम एवं रमणीय प्रतीत होती है, उसे वाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती।[७] कवियों ने सुन्दर आकृतिवाली स्त्री में सुन्दर गुणों की कल्पना की है। नारी के चरम सौन्दर्य की पर-

---

यान्त्येवं गृहणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।

--अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ४-१८।

१. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ७।२७।

२. गृहणी सचिव : सखीमिथः प्रियशिष्याललिते कला विद्यौ : रघुवंश : कालिदास, ८।६७।

३. किरातार्जुनीयम् : भारवि, द्वितीय सर्ग २।

४. कुमारसम्भवम् : कालिदास, १।२१।

५. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, ५।२८।

६. उत्तर-रामचरित : भवभूति, ३।१७।

७. किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, १-१९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

णति प्रेम में समझी गई है। 'प्रियेषु सौभाग्यफलम् हि चारुता' में ही नारी की सुन्दरता सार्थक थी अन्यथा नहीं।[1]

संस्कृत-साहित्य के श्रेष्ठ कवि कालिदास, भवभूति, वाण आदि ने प्रेम का मूल कारण पूर्वजन्म का प्रेम संस्कार माना है। 'कादम्बरी' में जन्म-जन्मांतर के संचित प्रेम संस्कारों का सजीव चित्रण है। सच्चा प्रणय सत्य की भाँति शाश्वत माना गया था। महाकवि कालिदास ने प्रेमी-प्रेमिका के मधुर सम्बन्ध का चित्रण अत्यन्त सहृदयता से किया है।

पति से वियुक्ता पत्नी स्वयं को 'मन्दभाग्या' समझती थी तथा अपने जीवन को भाररूप अनुभव करती थी। 'उत्तररामचरित' की परित्यक्ता सीता बारम्बार स्वयं को मन्दभागिनी कहती हुई धिक्कारती है। वह राम को किसी प्रकार से दोष नहीं देती हैं। पतिविरहिणी पत्नी के शरीर की आत्मा क्षीण हो जाती थी तथा उसका सौन्दर्य पाले से मुरझाई कमलिनी के सदृश प्रतीत होता था।[2] रघुवंशम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूतम्, उत्तर रामचरितम् और वासवदत्तम् आदि संस्कृत नाटकों एवं काव्यों में विरहिणी पतिव्रता नारियों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

पति की मृत्यु पर पतिव्रता पत्नी क्षण भर भी जीवित नहीं रहना चाहती थी। पति के अभाव में उसका संसार सूना हो जाता था। उसे अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होता था। जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्र से विहीन हो जाती है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री पतिमार्ग का अनुसरण करती थी।[3] लोक-परलोक दोनों ही में नारी की एकमात्र गति उसका पति माना जाता था। अतः पतिव्रता पत्नी पति की मृत्यु होने पर अपने प्राणों का परित्याग जीवनधारण से श्रेष्ठतर समझती थी। अतः समस्त शृंगार करके वह हर्षपूर्वक पति के शव के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो जाती थी, ऐसी स्त्रियाँ संसार में वन्दनीया होती थीं। 'कुमार-सम्भवम्' में रति कामदेव के पीछे-पीछे ही प्राणत्याग करना चाहती थी; किन्तु ऐसा न कर सकने का उसे बड़ा दुःख था[4]।

पति के अभाव में साध्वी नारी अग्नि में शरीर भस्म करके, जल में कूदकर, वृक्ष की शाखा में बँधकर अथवा विषपान कर अपना जीवन समाप्त कर देती थी तथा इस प्रकार की आत्महत्या को वह शास्त्र-सम्मत मानती थी। 'उत्तर रामचरितम्' में परित्यक्ता सीता गंगा में कूद पड़ी थी। क्षत्राणी सती नारी पति के वीरगति प्राप्त कर लेने पर पति के धनुष का आलिंगन करके चिता में भस्म हो जाती थी।[5] भास, शूद्रक, कालिदास आदि रचयिताओं की रचनाओं में सती प्रथा का वर्णन मिलता है।

विधवाओं के भी अनेक उदाहरण तत्कालीन साहित्य में प्राप्त हैं। शुभ कार्यों में विधवाएँ दूर ही रखी जाती थीं। 'कुमार सम्भवम्' में पार्वती के विवाह के लिए समस्त शृंगार तथा मांगलिक क्रियाएँ सुहागिन स्त्रियों ने ही की थीं।[6] कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में धनमित्र सेठ की अनेक विधवा सेठानियों

---

१. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ५।१।
२. मेघदूतम् (उत्तरमेघ) : कालिदास, २३।२४।
३. न पिता नात्मजावात्मा न माता न सखी जनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेका गतिः सदा। —वाल्मीकि रामायण, २।२७।६।
४. 'त्वामनुयामि' : कुमार सम्भवम् : कालिदास, ४।२१-२२।
५. क्षत्रियाणां देशान्तेमृतानां स्त्रियो धनुरा लंग्यानुस्त्रियन्ते इत्याचारः नारायण" नैषध : हर्ष, ४।२१।
६. कुमार सम्भवम् : कालिदास, ७।६।१२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का उल्लेख है।[१] अग्निवर्ण की गर्भवती विधवा महारानी ने अग्निवर्ण की मृत्यु होने पर वृद्ध मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार राजकार्य चलाया था।[२]

यद्यपि स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी, किन्तु स्त्रियों में अवगुण्ठन का प्रचार था। विवाह आदि उत्सवों में स्त्रियाँ हर्षपूर्वक भाग लेती थीं। अपने पति के साथ जलक्रीड़ा व वन-विहार करती थीं। अपनी रुचि के अनुसार विवाह करने में वह पूर्ण स्वतंत्र थीं, किन्तु उनमें लज्जाशीलता पाई जाती थी। लज्जा स्त्रियों का आभूषण मानी जाती थी। शकुन्तला अपने पति के साथ गुरुजनों के समक्ष जाने में लज्जा अनुभव करती थी, अतः वह 'अवगुण्ठनवती' होकर ही गई थी।[३]

अपूर्व लावण्यमयी अप्सराओं तथा सुरांगनाओं का वर्णन भी संस्कृत-साहित्य में अनेक स्थलों पर प्राप्त है। उर्वशी पुरूरवा का प्रणय प्रसिद्ध है। शकुन्तला मेनका अप्सरा की कन्या थी। 'किरातार्जुनीयम्' के अर्जुन का तप सुरांगनाएँ भी भंग नहीं कर सकी थीं। विशेष उत्सवों के समय अथवा जुलूसों में वेश्याएँ नृत्य किया करती थीं। राजाओं की परिचारिकाएँ दासियाँ होती थीं, जिन पर प्रायः राजा मुग्ध हो जाया करते थे।

संस्कृत-कवियों तथा नाटककारों ने नारी में असीम ममता, त्याग, सहनशीलता, वात्सल्य, निस्वार्थ सेवा-भक्ति एवं अपूर्व आज्ञाकारिता आदि सुन्दर गुणों का चित्रांकन किया है। नारी के सत्तापूर्ण स्वरूप का प्रायः अभाव ही है। नारी का सभा में वाक्-चातुर्य, विद्वत्ता, प्रतिभा वर्णन आदि कहीं नहीं दिखलाया गया है। स्त्रियों को प्राकृत भाषा में बोलते हुए अंकित किया गया है, जब कि पुरुष संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ प्रत्युत्पन्नमति होने के कारण सभी कार्यसाधनों में प्रवीण समझी जाती थीं। वह परम चतुरा होती थीं।[४] नारी 'स्त्रीरत्न' मानी जाती थीं। जो पुरुष को पुत्र रूप में 'कुलदीपक' प्रदान करती थी, जिससे वंश परम्परा अविच्छिन्न बनी रहती थी। गोद में निष्कपट, अबोध तथा स्वाभाविक रूप में अकारण खिलखिलाते हुए सुत को धारण करती हुई पत्नी का सुन्दर चित्रण मिलता है।[५] अनेक पुरुषों के होने पर भी अपनी अनुपस्थिति में अतिथियों के सत्कार का कार्यभार कण्व ऋषि ने शकुन्तला पर ही सौंपा था।[६] अतः स्पष्ट है कि स्त्रियाँ सभी प्रकार के कार्य-साधनों में दक्ष समझी जाती थीं।

सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में नारी का परम सुन्दर प्रेममय स्वरूप ही प्राप्त है। नारी पूर्णतः अबला नारी के रूप में अंकित है।

---

१. बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्र भवत भवितव्यम् : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास।

२. रघुवंशम् : कालिदास, १९।५५-५७।

३. 'जिह्मेमि आर्यपुत्रेण सह गुरु समीपं गन्तुम्' तथा 'अवगुण्ठनवती' अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास ५।१३; पृ० १६८।

४. 'इदं तत्प्रत्युत्पन्नयति स्त्रैणमिति' : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास।

५. प्रिय प्रसादेन विलास सम्पदा, तथा न भूषाविभवेन गेहिनी।
सुतेन निर्व्याजबलीकहासिना यथाङ्क पर्यङ्क गतेन शोभते ॥ विक्रमाङ्कदेव चरित, १।१०।

६. 'दुहितां शकुन्तलामतिथिसत्कारायनियुज्य' : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृष्ठ २२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी और तेलुगु का आदिकालीन साहित्य

डॉ० जी० सुन्दर रेड्डी

तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा है और हिन्दी आर्य परिवार की। यद्यपि ये भाषाएँ भिन्न-भिन्न परिवार की हैं तो भी अनेक विषयों में समानता रखती है।[१] आन्ध्र तथा तेलुगु शब्द प्रदेश विशेष के द्योतक होने के साथ-साथ भाषा के भी द्योतक रहे हैं। तेलुगु का मूल शब्द त्रिलिंग या त्रिकलिंग है। तेलुगु का आदिकालीन प्रचुर साहित्य अन्धकार के गर्भ में लीन है। सातवीं शती के पूर्व आन्ध्र में प्राकृत भाषा का ही साम्राज्य था; वह राजदरबारों में सम्मान पा रही थी। जनभाषा तेलुगु उपेक्षित थी। अतः दसवीं शती से पूर्व का कोई तेलुगु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। दसवीं शताब्दी के पूर्व आन्ध्र में बौद्ध और जैन धर्मों का उत्कर्ष हुआ और पतन भी। इसी बीच अन्य धर्मावलम्बियों के साथ धार्मिक विद्वेष के कारण बौद्ध व जैन साहित्य, जो तेलुगु में रचा गया था, जला दिया गया। इसमें हिन्दू कवियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी प्रवृत्ति के कारण नष्ट हो गया है। हाँ, गुणाढ्य—विजयादित्य तथा विजयवाड़ा के शासक युद्ध मल्लु के शिला-लेखों द्वारा हम इस समय की कविता का परिचय पा सकते हैं। वे शिलालेख भी पद्य में अंकित होते थे; किन्तु कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार के पद्य साहित्य के अतिरिक्त असंख्य पद एवं गीतों की भी रचना हुई थी। पालकुरिकि सोमनाथ ने इस बात का अपने काव्यों में उल्लेख किया। परंतु वे गीत और पद अनुश्रुत रूप में—परंपरागत प्राप्त होते आये हैं। उन्हें लिपिबद्ध करने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। परिणामस्वरूप वे जनता के आदर के अभाव के कारण लुप्त हो गये। इसके अतिरिक्त तेलुगु के आदि कवि नन्नयभट्ट के प्रादुर्भाव के बाद इन गीतों का शिष्ट-समाज में कोई आदर नहीं रहा। इसी समय देशी-कविता और मार्ग-कविता – जिसमें संस्कृत-शब्दों की बहुलता थी – के रूप में काव्य के दो रूप जनता के सामने आये।

हिन्दी के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रायः हर एक भाषा गीतों के रूप में ही प्रारंभ होती है। गीत और पद्य ही साहित्य के प्रारंभिक रूप हैं। हिन्दी के प्रथम कवि व ग्रन्थ के सम्बन्ध में अभी विद्वानों में मतभेद हैं। क्योंकि जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे अपभ्रंश-भाषा में हैं। अतः अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी कहाँ तक मानें, विवादास्पद है। किन्तु हिन्दी के विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भाषा पर उस युग में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रहा है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार हिन्दी के प्रथम कवि बौद्धाचार्य सरहपा हैं। वे ८वीं शताब्दी में विद्यमान थे। उनके तीन काव्य भी उपलब्ध हैं। इनके उपरान्त, अन्य कवियों में स्वयंभू, पुष्पदंत, शांतिपा, हेमचन्द्र सूरी, जैनाचार्य मेरुतुंग और विद्यापति के नाम आदर के

---

१. डॉ० चि० नारायण राव ने तेलुगु को आर्य परिवार की भाषा माना है : आन्ध्र भाषा-चरित्र।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का उल्लेख है।[१] अग्निवर्ण की गर्भवती विधवा महारानी ने अग्निवर्ण की मृत्यु होने पर वृद्ध मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार राजकार्य चलाया था।[२]

यद्यपि स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी, किन्तु स्त्रियों में अवगुण्ठन का प्रचार था। विवाह आदि उत्सवों में स्त्रियाँ हर्षपूर्वक भाग लेती थीं। अपने पति के साथ जलक्रीड़ा व वन-विहार करती थीं। अपनी रुचि के अनुसार विवाह करने में वह पूर्ण स्वतंत्र थीं, किन्तु उनमें लज्जाशीलता पाई जाती थी। लज्जा स्त्रियों का आभूषण मानी जाती थी। शकुन्तला अपने पति के साथ गुरुजनों के समक्ष जाने में लज्जा अनुभव करती थी, अतः वह 'अवगुण्ठनवती' होकर ही गई थी।[३]

अपूर्व लावण्यमयी अप्सराओं तथा सुरांगनाओं का वर्णन भी संस्कृत-साहित्य में अनेक स्थलों पर प्राप्त है। उर्वशी पुरूरवा का प्रणय प्रसिद्ध है। शकुन्तला मेनका अप्सरा की कन्या थी। 'किरातार्जुनीयम्' के अर्जुन का तप सुरांगनाएँ भी भंग नहीं कर सकी थीं। विशेष उत्सवों के समय अथवा जुलूसों में वेश्याएँ नृत्य किया करती थीं। राजाओं की परिचारिकाएँ दासियाँ होती थीं, जिन पर प्रायः राजा मुग्ध हो जाया करते थे।

संस्कृत-कवियों तथा नाटककारों ने नारी में असीम ममता, त्याग, सहनशीलता, वात्सल्य, निस्वार्थ सेवा-भक्ति एवं अपूर्व आज्ञाकारिता आदि सुन्दर गुणों का चित्रांकन किया है। नारी के सत्तापूर्ण स्वरूप का प्रायः अभाव ही है। नारी का सभा में वाक्-चातुर्य, विद्वत्ता, प्रतिभा वर्णन आदि कहीं नहीं दिखलाया गया है। स्त्रियों को प्राकृत भाषा में बोलते हुए अंकित किया गया है, जब कि पुरुष संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ प्रत्युत्पन्नमति होने के कारण सभी कार्यसाधनों में प्रवीण समझी जाती थीं। वह परम चतुरा होती थीं।[४] नारी 'स्त्रीरत्न' मानी जाती थीं। जो पुरुष को पुत्र रूप में 'कुलदीपक' प्रदान करती थी, जिससे वंश परम्परा अविच्छिन्न बनी रहती थी। गोद में निष्कपट, अबोध तथा स्वाभाविक रूप में अकारण खिलखिलाते हुए सुत को धारण करती हुई पत्नी का सुन्दर चित्रण मिलता है।[५] अनेक पुरुषों के होने पर भी अपनी अनुपस्थिति में अतिथियों के सत्कार का कार्यभार कण्व ऋषि ने शकुन्तला पर ही सौंपा था।[६] अतः स्पष्ट है कि स्त्रियाँ सभी प्रकार के कार्य-साधनों में दक्ष समझी जाती थीं।

सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में नारी का परम सुन्दर प्रेममय स्वरूप ही प्राप्त है। नारी पूर्णतः अवला नारी के रूप में अंकित है।

---

१. बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्र भवत भवितव्यम् : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास।

२. रघुवंशम् : कालिदास, १९।५५-५७।

३. 'जिह्मेमि आर्यपुत्रेण सह गुरु समीपं गन्तुम्' तथा 'अवगुण्ठनवती' अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास ५।१३; पृ० १६८।

४. 'इदं तत्प्रत्युत्पन्नयति स्त्रैणमिति' : अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास।

५. प्रिय प्रसादेन विलास सम्पदा, तथा न भूषाविभवेन गेहिनी।
सुतेन निर्व्याजवलीकहासिना यथाङ्क पर्यङ्क गतेन शोभते ॥ विक्रमाङ्कदेव चरित, १।१०।

६. 'दुहितां शकुन्तलामतिथिसत्कारायनियुज्य' : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृष्ठ २२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी और तेलुगु का आदिकालीन साहित्य

डॉ० जी० सुन्दर रेड्डी

तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा है और हिन्दी आर्य परिवार की। यद्यपि ये भाषाएँ भिन्न-भिन्न परिवार की हैं तो भी अनेक विषयों में समानता रखती है।[१] आन्ध्र तथा तेलुगु शब्द प्रदेश विशेष के द्योतक होने के साथ-साथ भाषा के भी द्योतक रहे हैं। तेलुगु का मूल शब्द त्रिलिंग या त्रिकलिंग है। तेलुगु का आदिकालीन प्रचुर साहित्य अन्धकार के गर्भ में लीन है। सातवीं शती के पूर्व आन्ध्र में प्राकृत भाषा का ही साम्राज्य था; वह राजदरबारों में सम्मान पा रही थी। जनभाषा तेलुगु उपेक्षित थी। अतः दसवीं शती से पूर्व का कोई तेलुगु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। दसवीं शताब्दी के पूर्व आन्ध्र में बौद्ध और जैन धर्मों का उत्कर्ष हुआ और पतन भी। इसी बीच अन्य धर्मावलम्बियों के साथ धार्मिक विद्वेष के कारण बौद्ध व जैन साहित्य, जो तेलुगु में रचा गया था, जला दिया गया। इसमें हिन्दू कवियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी प्रवृत्ति के कारण नष्ट हो गया है। हाँ, गुणाढ्य—विजयादित्य तथा विजयवाड़ा के शासक युद्ध मल्लु के शिला-लेखों द्वारा हम इस समय की कविता का परिचय पा सकते हैं। वे शिलालेख भी पद्य में अंकित होते थे; किन्तु कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार के पद्य साहित्य के अतिरिक्त असंख्य पद एवं गीतों की भी रचना हुई थी। पालकुरिकि सोमनाथ ने इस बात का अपने काव्यों में उल्लेख किया। परंतु वे गीत और पद अनुश्रुत रूप में—परंपरागत प्राप्त होते आये हैं। उन्हें लिपिबद्ध करने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। परिणामस्वरूप वे जनता के आदर के अभाव के कारण लुप्त हो गये। इसके अतिरिक्त तेलुगु के आदि कवि नन्नयभट्ट के प्रादुर्भाव के बाद इन गीतों का शिष्ट-समाज में कोई आदर नहीं रहा। इसी समय देशी-कविता और मार्ग-कविता – जिसमें संस्कृत-शब्दों की बहुलता थी – के रूप में काव्य के दो रूप जनता के सामने आये।

हिन्दी के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रायः हर एक भाषा गीतों के रूप में ही प्रारंभ होती है। गीत और पद्य ही साहित्य के प्रारंभिक रूप हैं। हिन्दी के प्रथम कवि व ग्रन्थ के सम्बन्ध में अभी विद्वानों में मतभेद हैं। क्योंकि जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, वे अपभ्रंश-भाषा में हैं। अतः अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी कहाँ तक मानें, विवादास्पद है। किन्तु हिन्दी के विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भाषा पर उस युग में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रहा है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार हिन्दी के प्रथम कवि बौद्धाचार्य सरहपा हैं। वे ८वीं शताब्दी में विद्यमान थे। उनके तीन काव्य भी उपलब्ध हैं। इनके उपरान्त, अन्य कवियों में स्वयंभू, पुष्पदंत, शांतिपा, हेमचन्द्र सूरी, जैनाचार्य मेरुतुंग और विद्यापति के नाम आदर के

---

१. डॉ० चि० नारायण राव ने तेलुगु को आर्य परिवार की भाषा माना है : आन्ध्र भाषा-चरित्र।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साथ लिये जा सकते हैं। विद्यापति ने अवहट्ट (अपभ्रंश) भाषा तथा मैथिली दोनों भाषाओं में रचनायें कर भावी कवियों का मार्ग अत्यन्त सुगम एवं प्रशस्त किया। इनकी रचनाओं में कीर्तिलता, कीर्तिपताका इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु और हिन्दी के प्रारंभिक युगों के कालक्रम में भी काफी समानता है; जैसे पुराण युग ई० सन् १०००-१३८० (तेलुगु)। वीरगाथा काल वि० सं० १०५०-१३७५ (हिन्दी)।

दोनों युगों के आविर्भाव का प्रधान कारण धर्म और देश की रक्षा कहा जा सकता है। आन्ध्र देश में जैन व बौद्ध धर्मों का प्रचार इतना बढ़ गया था कि वैदिक-धर्म के लुप्त हो जाने की संभावना थी। जैन और बौद्ध धर्मों का स्वरूप भी बहुत बिगड़ा हुआ था। इस समय नन्नयभट्ट ने आन्ध्र के चालुक्य वंशीय राजा राजराज नरेंद्र (ई० स० १०२०) के आदेश के अनुसार मृतप्राय वैदिक-धर्म को पुनः स्थापित करने के लिये 'आन्ध्र महाभारत' का प्रणयन किया। इस प्रकार नन्नय ने धार्मिक क्षेत्र में एक क्रांति उपस्थित की। महाभारत में वैदिक-धर्म का इस ढंग से प्रतिपादन किया गया है कि धर्मच्युत होने वाली जनता के हृदय में अपने धर्म के प्रति आत्म-विश्वास का भाव पैदा हुआ है। जनता का अपने धर्म पर पुनः विश्वास जाग उठा और वह जैन एवं बौद्ध धर्म को त्यागने लगी।

महाभारत की रचना तीन महाकवियों ने प्रस्तुत की है। एर्राप्रगडा तथा तिक्कुन्ना ने भी इस कार्य में हाथ बँटाया। नन्नया ने आदि-पर्व और सभा-पर्व समाप्त किया। अरण्य पर्व की रचना कर ही रहे थे कि उनका देहान्त हो गया। इस पर्व के शेषांश को एर्राप्रगडा ने पूरा किया तो शेष १५ पर्वों को तिक्कुन सोमयाजी ने। नन्नया, तिक्कुना और एर्राप्रगडा को आन्ध्र के 'कवित्रय' के नाम से अभिहित किया जाता है। इन तीनों महाकवियों की निर्विराम सेवा के कारण आन्ध्र जनता के लिये संस्कृत महाभारत का स्वाद तेलुगु वाणी में संभव हो गया है।

तेलुगु के आदि कवि नन्नया हैं या नन्नेचोडुडु—इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् नन्नेचोडुडु को आदिकवि मानते हैं। उनका कथन है कि नन्नया की रचना के पूर्व नन्नेचोडुडु ने 'कुमारसंभवम्' का रूपांतर तेलुगु में प्रस्तुत किया था। किन्तु यह विवादास्पद विषय है। अब तक प्रामाणिक रूप से कुछ निर्णय नहीं हो पाया है। इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि नन्नेचोडुडु के 'कुमारसंभवम्' का जनता में काफी प्रचार हुआ था और वह उस समय के प्रमुख कवियों में माने गये हैं।

जिस समय दक्षिण भारत में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, उसी समय उत्तर भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे। यदि उस समय दक्षिण में बिगड़े हुए जैन और बौद्ध धर्मों से लोगों को बचाकर वैदिक-धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रश्न था; तो उत्तर में मान, प्राण, राज्य और धर्म की रक्षा का प्रश्न था। इसलिये दक्षिण के नरेश धर्माचार्य एवं पंडित तथा कवि अपने धर्म की रक्षा के लिये उपाय ढूँढ़कर उन पर अमल करने लगे, तो उत्तर में विदेशी लुटेरों एवं शासकों को रोकने का प्रयत्न करने लगे थे। अतः उत्तर के कवि व पंडित, जो राजदरबारों में थे, अपने कर्तव्य के पालन के लिये युद्ध के मैदान में भी उतर पड़ते थे। शौर्य के आँखों देखे दृश्यों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया करते थे। इन कवियों की अधिकांश घटनायें कल्पित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा की है। साधारणतः युद्ध का कारण स्त्री को माना गया है। इन स्त्रियों के फेर में पड़कर उस जमाने के राजा और महाराजा अपने प्रथम कर्तव्य अर्थात् देश की रक्षा को भूल गये थे। कवि भी अपने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आश्रयदाताओं की कामुक भावनाओं को भड़काने में खूब योग देते थे। अतः इस समय के कवि व गीत वीर-रस प्रधान थे और उनमें शृंगार-रस का पुट पाया जाता है। इस काल के प्रमुख कवि चन्दवरदाई, भट्ट केदार, जगनिक और नरपति नाल्ह माने जाते हैं।

हिन्दी और तेलुगु की प्रारंभिक रचनाएँ राजाओं के दरबार में ही रची गईं। दोनों साहित्यों का प्रणयन राजदरबारों में ही हुआ। परंतु दोनों की परिस्थितियों में भिन्नता है। उत्तर भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच संघर्ष हो रहा था। उस संघर्ष-पूर्ण युग में वीर-रस प्रधान कविता ही हो सकती थी। संघर्ष का मूल-कारण राज्याकांक्षा था, जबकि आन्ध्र देश में यह संघर्ष राजनीतिक न होकर धार्मिक था। शैव और वैष्णवों के बीच धार्मिक विद्वेष की खाई बढ़ती गई तथा जैन और बौद्ध धर्मों ने आस्तिक भावना को मिटा दिया था। अतः नन्नया ने वैदिक-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने व उसे मजबूत बनाने का कार्य प्रारंभ किया। तेलुगु में महाभारत का प्रणयन किया, जिसमें ६० प्रतिशत संस्कृत के शब्द थे। उत्तर भारत में उस समय भाषा का स्वरूप ठीक तरह से निश्चित नहीं हो पाया था; हाँ राजस्थानी का प्रभाव जरूर ज्यादा था। 'पृथ्वीराज रासों' की भाषा में, जो डिंगल या राजस्थानी मानी जाती है, ठेठ शब्दों की बहुलता थी। आर्य परिवार की भाषा होते हुए भी हिन्दी के प्रारंभिक रूप, राजस्थानी में संस्कृत के शब्द कम थे। द्रविड़ परिवार की भाषा होते हुए भी तेलुगु भाषा पर संस्कृत की अधिक छाप थी, यह एक बड़ी विशेषता है। किन्तु क्रमशः तेलुगु भाषा संस्कृत के प्रभाव से मुक्त होती गई। उसमें ठेठ तेलुगु के भी अनेक शब्द व्यवहृत होने लगे।

नन्नया भट्ट तेलुगु के आदि कवि (११वीं सदी) माने जाते हैं। उनका 'महाभारत' ही तेलुगु का आदि काव्य है। महाभारत तो अनूदित ग्रन्थ है, जब कि हिन्दी में हमें प्रारंभ में मौलिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। अलावा इसके नन्नया भट्ट ने 'शब्द चिंतामणि' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा था। इससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि नन्नया के पूर्व भी अवश्य कुछ ग्रन्थों का प्रणयन हुआ होगा। नहीं तो 'महाभारत' में जैसी परिष्कृत साहित्यिक शैली का परिचय मिलता है—वह असंभव है। इतना ही नहीं, तेलुगु के प्रारंभिक काल में जैसे व्याकरण ग्रन्थ आदि आये हैं, वैसे व्याकरण ग्रन्थों का आविर्भाव हिन्दी में बहुत समय के बाद हुआ है।

हिन्दी के चारण और भाट कवि अपने आश्रयदाताओं की मिथ्या प्रशंसा में लगे रहे; जबकि तेलुगु के कवियों ने स्वयं भक्त होने के कारण अपने आश्रयदाताओं की प्रेरणामात्र लेकर समाज को संतुलित रखा। उदाहरण के लिये चन्दवरदाई की कविता राजा पृथ्वीराज के गुणगान तक ही सीमित रही। उस अखिल भारतीय आदर्श का इसमें समावेश न हो पाया, जो नन्नया की वाणी की विशेष विभूति है।

हिन्दी में डिंगल एवं अपभ्रंश भाषा में इस युग में रचनाएँ की गईं तो आन्ध्र में तेलुगु भाषा में मार्ग-कविता (जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होता है) और देशी कविता (जिसमें ठेठ तेलुगु शब्दों का बाहुल्य होता है) में रचनाएँ हुई। वैष्णव धर्म के अनुयायी आचार्य एवं कवियों ने मार्ग-कविताओं में रचनाएँ कीं, तो शैव कवियों ने देशी छन्दों में रचनाएँ कर सर्वसाधारण में अपने धर्म का प्रचार किया। जैसे गौतम बुद्ध के पहले उत्तर भारत में संस्कृत का बोलबाला था, तो बुद्ध ने आम जनता की भाषा 'पाली' में अपने धर्म का प्रचार शुरू किया था, वैसे ही मल्लिकार्जुन पंडित व पालकुरिकि सोमनाथ आदि कवियों ने जनता की बोली में रचनाएँ कीं। हिन्दी में ऐसी साहित्यिक धाराएँ इस युग में नहीं मिलतीं।

इस युग में तेलुगु में महाभारत, रामायण, मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश पुराण इत्यादि अनेक पुराणों का अनुवाद हुआ। फिर भी ये अविकल अनुवाद न होकर स्वतंत्र काव्य-से लगते हैं। इस युग में ही करीब-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करीब सभी पुराणों का तेलुगु में अनुवाद होने के कारण इस युग का नाम ही 'पुराण युग' पड़ गया; जैसे हिन्दी में वीररस-प्रधान काव्यों की अधिकता के कारण इस युग का नाम 'वीरगाथा काल' पड़ गया।

हिन्दी में रासो काव्यों के अतिरिक्त इस युग में 'आल्हखंड', 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'विद्यापति-पदावली' आदि की रचना हुई, उसी भाँति तेलुगु में शतक-प्रबंध-काव्य तथा पुराणों में वर्णित आख्यानों पर स्वतंत्र काव्य रचे गये।

यह तेलुगु का आदिकाल होते हुए भी सभी दृष्टियों से पूर्ण कहा जा सकता है। इसमें अनेक महाकवियों का प्रादुर्भाव हुआ, दर्जनों काव्य रचे गये। आदिकवि नन्नया ने 'आन्ध्र शब्द-चिंतामणि' नामक प्रथम व्याकरण ग्रन्थ लिखकर 'वागानुशासन' नामक उपाधि प्राप्त की। यह व्याकरण ग्रन्थ संस्कृत में रचा गया। इससे कवि के पांडित्य का सहज ही परिचय मिल जाता है। इसके अतिरिक्त अथर्वणाचार्य ने अथर्वण-कारिकावली (व्याकरण), 'अथर्वण-छन्द', महाकवि तिक्कन्ना का 'कवि वाग्बंध', तिप्पन्ना का 'रतिशास्त्रभु', केतना का 'भाषा-भूषण', विन्नकोट पेद्दना कृत 'काव्यालंकार-चूडामणि', गौरनमंत्री का 'लक्षण दीपिका' इत्यादि शास्त्रीय ग्रन्थ तथा व्याकरण-अलंकार, छन्द एवं रस सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ भी इसी युग में रचे गये हैं; जबकि हिन्दी साहित्य में ऐसे ग्रन्थों की सृष्टि बड़ी देरी से दिखाई देती है। 'रीतिकाल' तक यानी १७वीं शताब्दी तक हिन्दी में लक्षण-ग्रन्थ नहीं के बराबर हैं। इस दृष्टि से तेलुगु का आदि-काल भी प्रौढ़-साहित्य से परिपूर्ण कहा जा सकता है।

भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी के वीरगाथाकाल की अपेक्षा तेलुगु का पुराण-युग काफी विकसित एवं पूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि आदि कवि नन्नया, महाकवि तिक्कन्ना, नाचन सोमना इत्यादि ने भाषा को जिस ढंग से प्रौढ़ बनाया तथा जिस विशिष्ट शैली का प्रयोग किया, ये सब बहुत समय तक भावी पीढ़ी के लिये भी अनुकरणीय एवं आदर्श बन गए थे। ऐसे प्रतिभाशाली तेलुगु कवि बहुत कम हुए हैं। हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी का जो स्थान है, वही तेलुगु में नन्नया और तिक्कन्ना का है। ये दोनों कवि महान् पंडित, कवि एवं आचार्य थे। तिक्कन्ना तो महामात्य, राजगुरु तथा कवि थे। तिक्कन्ना यज्ञ करके सोमयाजी भी हो गये थे। इन दोनों कवियों की लोकानुभव की भावना अपूर्व है।

विषय वैविध्य की दृष्टि से भी पुराण युग परिपूर्ण कहा जा सकता है। श्री गोन बुद्धारेड्डी ने वाल्मीकि-रामायण का इसी युग में छन्द द्विपदा में अनुवाद किया। उन्होंने रामायण की कथा को ग्रहण कर और उसमें अनेक लोक-कथाओं से सम्बन्धित वृत्तान्तों को जोड़कर जहाँ काव्य को रोचक बनाया, वहीं विस्तृत और नीरस वर्णनों को निकाल भी दिया है। जन-साधारण में इस रामायण का विशेष प्रचार हुआ है। 'भास्कर रामायण' भी इसी युग की देन है, जो मार्ग-कविता में रची गई है। इसका भी तेलुगु 'महा-भारत' की भाँति अनेक कवियों द्वारा पद्यानुवाद किया गया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि आन्ध्र-साहित्य के आदिकाल में ही दो-तीन प्रसिद्ध 'रामायणों' की रचना हुई थी, जबकि हिन्दी साहित्य में रामायण के स्वान्तः सुखाभिलाषी गायक अभी उदित होने को थे।

उत्तर भारत में दिल्ली, अजमेर, कन्नौज इत्यादि केंद्र जैसे कवियों के आश्रय-स्थल थे, वैसे ही आन्ध्र में राजमुंद्री, नेल्लूर, वरंगल और अंद्रकि प्रधान केंद्र थे। यहाँ के राजाओं के प्रोत्साहन से ही अनेक काव्य रचे गये। दरबारों में कवियों का सम्माननीय स्थान था। उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता थी।

पुराण युग के आन्ध्र-साहित्य की सबसे विलक्षण विभूति उसका शैव साहित्य है, जिससे हिन्दी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्य एकदम वंचित रह गया। आन्ध्र साहित्य की मूल प्रेरणा शैव-धर्म में ही पाई जाती है। इस शाखा के तीन कवि आदिकाल में प्रसिद्ध हुए : नेन्नचोडुडु, पंडिताराध्य और सोमनाथुडु। ये तीनों शैव सिद्धान्तों के अन्वेषक, आराधक और अनुगायक थे। लोकप्रिय छन्दों में सुबोध शैली को अपनाकर उन्होंने कई धार्मिक रचनाएँ की थीं। जिनमें से उल्लेखनीय हैं : पंडिताराध्य का 'शिव तत्व पुराणमु' और सोमनाथ का 'वसव पुराणमु'। 'शिव तत्व पुराणमु' धार्मिक सिद्धांतों का संग्रह मात्र है; काव्य तत्व से शून्य है, पर सोमनाथ की रचना में धार्मिक सिद्धान्तों का कलात्मक प्रतिपादन है; जो साधारण शिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित जनता के लिये भी सुगम-सा लगता है। यही कारण है कि आपको 'वीर शैव शाखा का मस्तिष्क' कहा जाता है। अतिशय भावुकता के कारण आपकी कविता और अधिक चित्ताकर्षक है। साधारण जनता में सुप्रसिद्ध और सुश्राव्य 'द्विपद' छन्द को अपनाकर आपने उसे काव्य-गौरव प्रदान किया है। आन्ध्र के इस वीर-शैव साहित्य को आत्मसात् करके 'राष्ट्रवाणी' अपना श्रेयलाभ ही कर सकेगी।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मलयालम का भक्ति-साहित्य

डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

भक्ति-साहित्य भारतीय साहित्य परम्परा का रिक्थ है तथा भारतीय जन-भावना का निदर्शन। भारत की अन्यान्य भाषाओं की भाँति मलयालम साहित्य में भी भक्ति-साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मलयालम का उल्लेखनीय प्रथम भक्तिग्रन्थ रामचरितम् पाट्टु है। पाट्टु का सामान्य अर्थ है 'गीत', पर साहित्यिक अर्थ है—'द्राविड़ाक्षरों में रचा, अंतादि-प्रासयुक्त वृत्तविशेष में रचा खण्ड।' रामायण के लंकाकाण्ड पर मुख्यतः आधारित रामचरितम् के रचयिता के विषय में काफ़ी मतभेद है। अनेक विद्वान् श्री वीरराम नामक त्रावनकोर-नरेश को इसका रचयिता मानते हैं और बारहवीं सदी को इसका रचनाकाल। मलयालम साहित्य के इतिहास[1] के लेखक श्री परमेश्वरन नायर के मत में पाट्टु साहित्य में सबसे प्रौढ़ रचना संभवतः रामचरितम् ही है।

पाट्टु धारा की और एक उल्लेखनीय रामकथाश्रित रचना रामकथापाट्टु है: इसके रचयिता श्री अच्चिपिल्ले आशान त्रिवेन्द्रम के पास 'कोवळम' गाँव के निवासी थे। इस बृहद् काव्य का नामोल्लेख पहले होना था। परन्तु हाल ही में डॉ० पी० के० नारायण पिल्ले ने इस ग्रन्थ की पूरी प्रति प्राप्त कर ली है और उन्होंने विराट भूमिका एवं 'भाषा परिमळम' व्याख्या के साथ इसका संपादन-प्रकाशन किया है। वीररस से अनुस्यूत यह काव्य तमिष़-प्रभाव से मधुर और अल्पसंख्यक तत्सम शब्दों से युक्त मलयालम में रचित है। केरल के इन रामकवियों का उपजीव्य महाकाव्य तमिष़ भाषा का कंबरामायणम् है।

इन दोनों काव्यों का महत्व साहित्यिक अर्थात् काव्यात्मक दृष्टि से है। भक्तिपरक अंश इनमें नहीं के बराबर है; यही कारण है कि मलयालम के भक्ति-साहित्य की विवेचना के प्रसंग पर इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख भर किया गया है।

भक्ति-साहित्य से आशय रामकथाश्रित, कृष्णकथाश्रित एवं अन्य देवी-देवताओं की यशोगाथा वाले काव्य से है। इस दृष्टि से कण्णश्श रामायणम् मलयालम की अगली उल्लेखनीय रचना है। इसकी रचना श्री कण्णश्श पण्णिकर ने १४-१५वीं सदी में की थी। 'कण्णश्श' पारिवारिक नाम है। इस परिवार में सर्वश्री माधव, शंकर और राम नाम से तीन व्यक्ति हुए थे; जिनमें माधव पण्णिकर ने भगवद्गीता रची; शंकर पण्णिकर ने भारतमाला की रचना की। राम पण्णिकर ने 'रामायणम्', 'भारतम्', 'भागवतम्' तथा 'शिवरात्रि माहात्म्यम्' लिखे। कण्णश्श रामायणम् की पूर्ण प्रति उपलब्ध नहीं है और इस ग्रन्थ का विधिवत् मूल्यांकन नहीं हो पाया है, तथापि जो अंश

---

१. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रकाशित है, उसमें हम भाव-सौष्ठव के साथ शब्द-माधुरी एवं अनुप्रास-निर्वाह देख सकते हैं। भक्ति की दृष्टि से तो इनके उपरान्त रचित एष्ुत्तच्छनकृत अध्यात्मरामायणम् ही अधिक प्रशस्त है।

भक्तिकाव्य का शुद्ध स्वरूप केरल के मधुर भक्त कवि पून्तानम में मिलता है। केरल के प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थ 'गुरुवायुर' के भगवान् नारायण के अनन्य भक्त पून्तानम नंपूतिरि की भक्ति-विभोरता के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। इनका वाङ्मय आकार की दृष्टि से लघु है। भाषाकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना तथा सन्तानगोपालम्—इनकी लिखी तीन रचनाएँ ही मिलती हैं। भाषाकर्णामृतम् मुख्यतः श्री विल्वमंगल के संस्कृत ग्रंथ श्रीकृष्ण कर्णामृत का भावानुवाद है। एक छन्द[1] का भाव यहाँ उद्धृत किया जाता है—"कमर पर घुँघरू व करधनी; टखने पर नूपुर का कोलाहल; विनोदपूर्ण खेल, हँसता मुख, हाथों में करताल, गायों की टापों से निकली धूल से सने चरन, श्याम शरीर और मुखमण्डल पर अनंत करुणा इस अद्भुत रूपराशि के धनी बालकृष्ण को अपनी आँखों से देख सकूँ—यही प्रार्थना है।"

भाषा-कर्णामृतम् में कुछ-कुछ क्रमबद्ध रूप से श्रीकृष्ण की संपूर्ण कथा गाई गई है। मलयालम के ज्ञान-रसायन के रूप में तो पून्तानम की कृति 'ज्ञानप्पाना' अत्यन्त प्रशस्त है। 'पाना' एक द्राविड़ी छन्द का नाम है। संसार के ज्ञान-सार की बातें 'पाना' छन्द में संक्षेप में बतायी गयी हैं।

'भक्तिकाव्य' शब्द का अर्थ यदि 'केवल भक्ति प्रधान' काव्य है तो इस अर्थ से युक्त काव्य ग्रन्थों की संख्या बिलकुल नगण्य है। किन्तु श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि की कथाओं पर आधारित काव्यों में भक्ति का कुछ न कुछ अंश अवश्य मिलता है। उसी दृष्टि से मलयालम का भक्तिकाव्य कुछ विस्तृत है। इतिहासकार इसी दृष्टिकोण से कृष्णगाथा को मलयालम का भक्ति काव्य घोषित कर गये हैं। 'कृष्णगाथा के रचयिता चेरुश्शेरी नंपूतिरि अनुमानतः ईसवी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में जीवित थे। यह दीर्घ-काव्य भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को छोटे सरस द्राविड़ छन्द 'गाथा' में प्रस्तुत करता है। यह एक क्रमबद्ध प्रबन्धकाव्य है, जिसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके स्वर्गारोहण तक की कथा वर्णित है। रसानुगुण काव्य-रचना में कुशल कवि ने सारे प्रसंगों का उचित वर्णन किया है। इसीलिए कृष्णगाथा पाँच-पाँच सदियों के बाद भी प्रेम व श्रद्धा से पढ़ी जाती है। भाषा के विषय में इसकी थोड़ी-सी प्राचीनता माननी ही पड़ती है। तदनुसार ऐसे अनेक शब्द इसमें मिलते हैं, जो प्रादेशिक व ठेठ हैं; लेकिन अब गत प्रयोग हो गये हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के प्रेमियों ने चेरुश्शेरी एवं सूर की तथा उनके काव्य; कृष्णगाथा एवं सूरसागर की तुलना की है। यह तो सामान्य दृष्टि से ठीक है; क्योंकि दोनों ने कृष्ण कथा सुनाई है। बालकृष्ण, मुरली

---

१. "एलस्सुं मणियुं चिलंपुनळयुम्
कोलाहल-तोटेय-
म्मेळन्तिल् कळियुं चिरिच्च मुखवुं
नृककैकळिल् ताळवुं
कालिक्कालप्रोटियुं कळायनिरवुं
कारुण्यवायप्पुं तथा
बालकृष्ण नटुन्तु वन्नोरु दिनं
कण्डावु कणकोष्टु ज्ञान—"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मलयालम का भक्ति-साहित्य

डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

भक्ति-साहित्य भारतीय साहित्य परम्परा का रिक्थ है तथा भारतीय जन-भावना का निदर्शन। भारत की अन्यान्य भाषाओं की भाँति मलयालम साहित्य में भी भक्ति-साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मलयालम का उल्लेखनीय प्रथम भक्तिग्रन्थ रामचरितम् पाट्टु है। पाट्टु का सामान्य अर्थ है 'गीत', पर साहित्यिक अर्थ है—'द्राविड़ाक्षरों में रचा, अंतादि-प्रासयुक्त वृत्तविशेष में रचा खण्ड।' रामायण के लंकाकाण्ड पर मुख्यतः आधारित रामचरितम् के रचयिता के विषय में काफ़ी मतभेद है। अनेक विद्वान् श्री वीर-राम नामक त्रावनकोर-नरेश को इसका रचयिता मानते हैं और बारहवीं सदी को इसका रचनाकाल। मलयालम साहित्य के इतिहास[1] के लेखक श्री परमेश्वरन नायर के मत में पाट्टु साहित्य में सबसे प्रौढ़ रचना संभवतः रामचरितम् ही है।

पाट्टु धारा की और एक उल्लेखनीय रामकथाश्रित रचना रामकथापाट्टु है: इसके रचयिता श्री अच्चिपिल्ले आशान त्रिवेन्द्रम के पास 'कोवळम' गाँव के निवासी थे। इस बृहद् काव्य का नामोल्लेख पहले होना था। परन्तु हाल ही में डॉ० पी० के० नारायण पिल्ले ने इस ग्रन्थ की पूरी प्रति प्राप्त कर ली है और उन्होंने विराट भूमिका एवं 'भाषा परिमळम' व्याख्या के साथ इसका संपादन-प्रकाशन किया है। वीररस से अनुस्यूत यह काव्य तमिष़-प्रभाव से मधुर और अल्पसंख्यक तत्सम शब्दों से युक्त मलयालम में रचित है। केरल के इन रामकवियों का उपजीव्य महाकाव्य तमिष़ भाषा का कंबरामायणम् है।

इन दोनों काव्यों का महत्व साहित्यिक अर्थात् काव्यात्मक दृष्टि से है। भक्तिपरक अंश इनमें नहीं के बराबर है; यही कारण है कि मलयालम के भक्ति-साहित्य की विवेचना के प्रसंग पर इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख भर किया गया है।

भक्ति-साहित्य से आशय रामकथाश्रित, कृष्णकथाश्रित एवं अन्य देवी-देवताओं की यशोगाथा वाले काव्य से है। इस दृष्टि से कण्णश्श रामायणम् मलयालम की अगली उल्लेखनीय रचना है। इसकी रचना श्री कण्णश्श पण्णिकर ने १४-१५वीं सदी में की थी। 'कण्णश्श' पारिवारिक नाम है। इस परिवार में सर्वश्री माधव, शंकर और राम नाम से तीन व्यक्ति हुए थे; जिनमें माधव पण्णिकर ने भगवद्गीता रची; शंकर पण्णिकर ने भारतमाला की रचना की। राम पण्णिकर ने 'रामायणम्', 'भारतम्', 'भागवतम्' तथा 'शिवरात्रि माहात्म्यम्' लिखे। कण्णश्श रामायणम् की पूर्ण प्रति उपलब्ध नहीं है और इस ग्रन्थ का विधिवत् मूल्यांकन नहीं हो पाया है, तथापि जो अंश

---

१. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रकाशित है, उसमें हम भाव-सौष्ठव के साथ शब्द-माधुरी एवं अनुप्रास-निर्वाह देख सकते हैं। भक्ति की दृष्टि से तो इनके उपरान्त रचित एष्ुत्तच्छनकृत अध्यात्मरामायणम् ही अधिक प्रशस्त है।

भक्तिकाव्य का शुद्ध स्वरूप केरल के मधुर भक्त कवि पून्तानम में मिलता है। केरल के प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थ 'गुरुवायुर' के भगवान् नारायण के अनन्य भक्त पून्तानम नंपूतिरि की भक्ति-विभोरता के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। इनका वाङ्मय आकार की दृष्टि से लघु है। भाषाकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना तथा सन्तानगोपालम्—इनकी लिखी तीन रचनाएँ ही मिलती हैं। भाषाकर्णामृतम् मुख्यतः श्री विल्वमंगल के संस्कृत ग्रंथ श्रीकृष्ण कर्णामृत का भावानुवाद है। एक छन्द[1] का भाव यहाँ उद्धृत किया जाता है—"कमर पर घुँघरू व करधनी; टखने पर नूपुर का कोलाहल; विनोदपूर्ण खेल, हँसता मुख, हाथों में करताल, गायों की टापों से निकली धूल से सने चरन, श्याम शरीर और मुखमण्डल पर अनंत करुणा इस अद्भुत रूपराशि के धनी बालकृष्ण को अपनी आँखों से देख सकूँ—यही प्रार्थना है।"

भाषा-कर्णामृतम् में कुछ-कुछ क्रमबद्ध रूप से श्रीकृष्ण की संपूर्ण कथा गाई गई है। मलयालम के ज्ञान-रसायन के रूप में तो पून्तानम की कृति 'ज्ञानप्पाना' अत्यन्त प्रशस्त है। 'पाना' एक द्राविड़ी छन्द का नाम है। संसार के ज्ञान-सार की बातें 'पाना' छन्द में संक्षेप में बतायी गयी हैं।

'भक्तिकाव्य' शब्द का अर्थ यदि 'केवल भक्ति प्रधान' काव्य है तो इस अर्थ से युक्त काव्य ग्रन्थों की संख्या बिलकुल नगण्य है। किन्तु श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि की कथाओं पर आधारित काव्यों में भक्ति का कुछ न कुछ अंश अवश्य मिलता है। उसी दृष्टि से मलयालम का भक्तिकाव्य कुछ विस्तृत है। इतिहासकार इसी दृष्टिकोण से कृष्णगाथा को मलयालम का भक्ति काव्य घोषित कर गये हैं। 'कृष्णगाथा के रचयिता चेरुश्शेरी नंपूतिरि अनुमानतः ईसवी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में जीवित थे। यह दीर्घ-काव्य भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को छोटे सरस द्राविड़ छन्द 'गाथा' में प्रस्तुत करता है। यह एक क्रमबद्ध प्रबन्धकाव्य है, जिसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके स्वर्गारोहण तक की कथा वर्णित है। रसानुगुण काव्य-रचना में कुशल कवि ने सारे प्रसंगों का उचित वर्णन किया है। इसीलिए कृष्णगाथा पाँच-पाँच सदियों के बाद भी प्रेम व श्रद्धा से पढ़ी जाती है। भाषा के विषय में इसकी थोड़ी-सी प्राचीनता माननी ही पड़ती है। तदनुसार ऐसे अनेक शब्द इसमें मिलते हैं, जो प्रादेशिक व ठेठ हैं; लेकिन अब गत प्रयोग हो गये हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के प्रेमियों ने चेरुश्शेरी एवं सूर की तथा उनके काव्य; कृष्णगाथा एवं सूरसागर की तुलना की है। यह तो सामान्य दृष्टि से ठीक है; क्योंकि दोनों ने कृष्ण कथा सुनाई है। बालकृष्ण, मुरली

---

१. "एलस्सुं मणियुं चिलंपुनळयुम्
कोलाहल-तोटेय-
म्मेळन्तिल् कळियुं चिरिच्च मुखवुं
नूककैकळिल् ताळवुं
कालिक्कालप्रोटियुं कळायनिरवुं
कारुण्यवायप्पुं तथा
बालकृष्ण नटुन्तु वन्नोरु दिनं
कण्डावु कणकोष्टु ज्ञान—"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

माधुरी और गोपी-विरह के प्रसंग में दोनों के वर्णनों में थोड़ी-बहुत समानता पाई जाती है। इन दोनों में ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के कृष्ण-भक्त काव्यों में ये दोनों प्रसंग समान मिलते हैं। परन्तु बात यहीं तक सीमित है। चेरुश्शेरी व्यावहारिक और सरस हृदय जीव थे। प्रबन्धात्मकता इनके काव्य की विशेषता है। सूरदास जी का काव्य तो गेय मुक्तकों का समाहार है। इस विशेषता के कारण बहुत से पाठक इस बात से अवगत तक नहीं कि सूरदास ने भागवत के अनेक स्कन्धों की कथावस्तु का प्रतिपादन अपने गीतों में किया है।

केरल के तुलसीदास श्री तुंचन्तु एषुत्तच्छन मलयालम भक्ति-साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। उनकी महत्ता बहुमुखी है। प्रथम बात यह कि उनका जन्म अन्त्यज हिन्दू जाति में हुआ था, जो वेदाधिकार से वंचित थे। उन्होंने वेदज्ञों को चुनौती दी तथा 'भारत', 'भागवत' आदि ग्रन्थ लिखे, जिनमें वेदागमादि का सार है। काव्य के कलापक्ष के ममज्ञ कवि ने 'शिष्ट मणिप्रवाळ' भाषा को माध्यम बनाया है। 'शिष्ट मणिप्रवाळ' का भाव यह कि इसमें संस्कृत तत्सम, तद्भव और द्राविड़ी शब्दों का समन्वय औचित्यपूर्वक किया जाय। अधिकांश विद्वानों ने इनकी गढ़ी भाषा का ही प्रयोग आगे चलकर किया। यह स्तरीय मलयालम की कसौटी सिद्ध हुई है। इसी का प्रयोग अभी तक मलयालम के अच्छे-से-अच्छे लेखक करते आये हैं। एषुत्तच्छन की काव्य साधना के फलस्वरूप मलयालम भाषा का स्वरूप लगभग पाँच सदियों के पहले ही दृढ़ हो गया है।

यद्यपि मलयालम में अन्य रामकथाश्रित काव्य रचे गये हैं और वे कलापक्ष में सशक्त हैं, तथापि भावों की उदात्तता तथा भक्ति की गरिमा में एषुत्तच्छन की रचना अध्यात्मरामायणम् ही रामकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी साहित्य के प्रेमी रामचरितमानस से एषुत्तच्छन कृत अध्यात्मरामायण की तुलना में रुचि रखते होंगे। मगर उन्हें इसमें रामचरितमानस का-सा वृहद् आकार, कथोद्भावना, हास्य चेतना आदि विस्तारोचित बातें नहीं मिलेंगी। कारण यह कि एषुत्तच्छन स्वयं संक्षेपण-कला के कुशल और अत्यन्त विनम्र कवि थे। उनका ध्येय बड़ी श्रद्धा और ममता से मात्र रामकथा सुनाने का था। कोई मौलिक बात सुनाने का दावा वे नहीं करते।.यही प्रवृत्ति एषुत्तच्छन-कृत 'भागवत' में भी प्राप्त होती है। भागवत लोकप्रिय तो है, परन्तु रामायण-सा नहीं। रामायण के समान 'भारतम्' एषुत्तच्छन की अन्यतम सुन्दर रचना है। इसे पूर्ण रूप से भक्तिकाव्य नहीं माना जा सकता। इसमें यत्र-तत्र भक्ति की झलक है। जैसे, काव्य में भगवद्दूत के प्रसंग पर जो पार्थ-सारथि-स्तव है, वह भक्ति-भावना एवं काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से अद्वितीय है।

एषुत्तच्छन की ही अन्य रचनाएँ 'हरिनामकीर्तनम्' एवं 'चिन्तारत्नम्'—इनकी भक्तिपरक और दार्शनिकता-युक्त कृतियाँ हैं।

प्रत्यक्ष रूप से भक्तिकाव्य कहलाने योग्य न होने पर भी परोक्ष-रूप से भक्तितत्व प्रकट करनेवाली अनेक छन्दोमय रचनाएँ भी मलयालम में हैं। कथकलि और तुल्लल इसी कोटि के दो काव्य-रूप हैं। ये दोनों श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी हैं। इनका प्रस्तुतीकरण अधिकतर मन्दिरों में होता आया है। मन्दिरों के प्रांगण में प्रस्तुत काव्यरूप सहज ही भक्तिप्रधान कथा से सम्बन्धित रहे हैं। यहाँ तक कि केरल में कई मन्दिरों पर कथकळि का प्रस्तुतीकरण एक मनौती तक माना गया है। कथकळि काव्य में श्लोकों तथा गीतों का विधान होता है। सूच्य कथा श्लोक में तथा संवाद गीतों में होता है। राम, कृष्ण, शिव आदि भिन्न-भिन्न देवताओं से सम्बन्धित कथानक ही अधिकतर कथकळि में आते हैं। महाभारत, भागवत तथा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अन्य पुराण भी कथास्रोत बने हुए हैं। भक्ति-साहित्य में कथकळि की जैसी स्थिति है, वैसी ही स्थिति तुल्लल की (गायक-नर्तक द्वारा साभिनय मंच पर प्रस्तुत किया जानेवाला काव्य रूप) भी है। कथकळि एवं तुल्लल के रचयिता—खासकर तुल्लल के रचयिता—भक्तिरस आदि के साथ सरसता और हास्य का विशेष ध्यान रखते हैं; क्योंकि उनका मुख्य ध्येय श्रोताओं का मनोरंजन है। कथकळि एवं तुल्लल की तरह चंपूकाव्य भी कथाप्रधान है।

भौतिकवाद और बौद्धिकता की बाढ़ से मानव आज बुरी तरह आक्रान्त है, तथापि उसके अन्तरतम में भक्ति का क्षीण स्रोत अवश्य बहता है। हिन्दू धर्म ही नहीं, ईसाई धर्म तथा इस्लाम धर्म के भक्त-कवियों ने भी भक्तिगीत रचे हैं। इन आधुनिक भक्तिगीतों की विलक्षणता यह है कि इनमें से अधिकांश नयी-नयी फिल्मों की धुनों में रचे जाते हैं। केरल के प्रसिद्ध देवता अय्यप्पन के नाम-कीर्तन में ऐसे फिल्मी भक्ति-गीत बराबर सुने जाते हैं। भक्ति या कविता की दृष्टि से इनका प्रभाव अधिक गंभीर नहीं हो सकता। धुन की मिठास शायद किसी-किसी को पसन्द आवे, पर उसमें मौलिकता का अभाव खटकता है। इस्लाम धर्म के गीत-प्रेमी भक्त भी इन फिल्मी धुनों का अनुकरण करते हैं। उनका भी साहित्यिक प्रभाव नगण्य ही रहा है।

मलयालम के भक्ति काव्य का प्रसंग हिन्दू भक्ति काव्य की चर्चा से पूरा नहीं हो सकता। केरल में ईसाई धर्म के लोगों की संख्या काफ़ी अच्छी है। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने प्रगति की है। अतएव उनका भक्तिकाव्य भी मलयालम साहित्य का अंग है। ईसाई धर्म से सम्बन्धित कथानकों पर जो मलयालम काव्य लिखे गये हैं, वे बीसवीं सदी के हैं। इनकी रचना महाकाव्य की शिल्प-विधि के अनुकूल हुई है। कुछ खण्डकाव्य भी लिखे गये हैं। इनमें प्रमुख हैं श्री कट्टक्कन्नम का 'श्री येशु विजयम' और श्री सैमण का 'वेदविहारम।' इनमें ईसा मसीह की अलौकिक प्रभुता का वर्णन है और उस दृष्टि से इनका संबंध भक्ति से है। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालनेवाले 'मग्दलन मरियम' जैसे खण्डकाव्य भी यहाँ मिलते हैं।

अन्त में समसामयिक युग के भक्तवर श्री ओट्टूर उण्णि नंपूतिरि का भी उल्लेख आवश्यक है। ये उन भक्त कवियों के प्रतिनिधि हैं; जो चारों तरफ़ की टीमटाम या नास्तिकता के प्रचार से बिलकुल विचलित हुए बिना अपने मन की शान्ति के लिए भगवान् के चरणों पर स्तोत्र-पुष्प चढ़ाते हैं।

वर्तमान बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से 'भक्ति' काव्य का गौण अंग ही हो सकती है। कारण यह कि भक्ति-भावना कवि को अतिशय भावुक बना सकती है और ऐसा भाव कठोर यथार्थ से दूर भागने वाला पलायनवाद हो जाता है। अतएव आधुनिक वातावरण में मलयालम ही क्या, किसी भी भारतीय भाषा के भक्ति-साहित्य का भविष्य बड़ा धुँधला ही लगता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

माधुरी और गोपी-विरह के प्रसंग में दोनों के वर्णनों में थोड़ी-बहुत समानता पाई जाती है। इन दोनों में ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के कृष्ण-भक्त काव्यों में ये दोनों प्रसंग समान मिलते हैं। परन्तु बात यहीं तक सीमित है। चेरुश्शेरी व्यावहारिक और सरस हृदय जीव थे। प्रबन्धात्मकता इनके काव्य की विशेषता है। सूरदास जी का काव्य तो गेय मुक्तकों का समाहार है। इस विशेषता के कारण बहुत से पाठक इस बात से अवगत तक नहीं कि सूरदास ने भागवत के अनेक स्कन्धों की कथावस्तु का प्रतिपादन अपने गीतों में किया है।

केरल के तुलसीदास श्री तुंचन्तु एषुत्तच्छन मलयालम भक्ति-साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। उनकी महत्ता बहुमुखी है। प्रथम बात यह कि उनका जन्म अन्त्यज हिन्दू जाति में हुआ था, जो वेदाधिकार से वंचित थे। उन्होंने वेदज्ञों को चुनौती दी तथा 'भारत', 'भागवत' आदि ग्रन्थ लिखे, जिनमें वेदागमादि का सार है। काव्य के कलापक्ष के ममज्ञ कवि ने 'शिष्ट मणिप्रवाळ' भाषा को माध्यम बनाया है। 'शिष्ट मणिप्रवाळ' का भाव यह कि इसमें संस्कृत तत्सम, तद्भव और द्राविड़ी शब्दों का समन्वय औचित्यपूर्वक किया जाय। अधिकांश विद्वानों ने इनकी गढ़ी भाषा का ही प्रयोग आगे चलकर किया। यह स्तरीय मलयालम की कसौटी सिद्ध हुई है। इसी का प्रयोग अभी तक मलयालम के अच्छे-से-अच्छे लेखक करते आये हैं। एषुत्तच्छन की काव्य साधना के फलस्वरूप मलयालम भाषा का स्वरूप लगभग पाँच सदियों के पहले ही दृढ़ हो गया है।

यद्यपि मलयालम में अन्य रामकथाश्रित काव्य रचे गये हैं और वे कलापक्ष में सशक्त हैं, तथापि भावों की उदात्तता तथा भक्ति की गरिमा में एषुत्तच्छन की रचना अध्यात्मरामायणम् ही रामकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी साहित्य के प्रेमी रामचरितमानस से एषुत्तच्छन कृत अध्यात्मरामायण की तुलना में रुचि रखते होंगे। मगर उन्हें इसमें रामचरितमानस का-सा बृहद् आकार, कथोद्भावना, हास्य चेतना आदि विस्तारोचित बातें नहीं मिलेंगी। कारण यह कि एषुत्तच्छन स्वयं संक्षेपण-कला के कुशल और अत्यन्त विनम्र कवि थे। उनका ध्येय बड़ी श्रद्धा और ममता से मात्र रामकथा सुनाने का था। कोई मौलिक बात सुनाने का दावा वे नहीं करते।.यही प्रवृत्ति एषुत्तच्छन-कृत 'भागवत' में भी प्राप्त होती है। भागवत लोकप्रिय तो है, परन्तु रामायण-सा नहीं। रामायण के समान 'भारतम्' एषुत्तच्छन की अन्यतम सुन्दर रचना है। इसे पूर्ण रूप से भक्तिकाव्य नहीं माना जा सकता। इसमें यत्र-तत्र भक्ति की झलक है। जैसे, काव्य में भगवद्दूत के प्रसंग पर जो पार्थ-सारथि-स्तव है, वह भक्ति-भावना एवं काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से अद्वितीय है।

एषुत्तच्छन की ही अन्य रचनाएँ 'हरिनामकीर्तनम्' एवं 'चिन्तारत्नम्'—इनकी भक्तिपरक और दार्शनिकता-युक्त कृतियाँ हैं।

प्रत्यक्ष रूप से भक्तिकाव्य कहलाने योग्य न होने पर भी परोक्ष-रूप से भक्तितत्व प्रकट करनेवाली अनेक छन्दोमय रचनाएँ भी मलयालम में हैं। कथकलि और तुल्लल इसी कोटि के दो काव्य-रूप हैं। ये दोनों श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी हैं। इनका प्रस्तुतीकरण अधिकतर मन्दिरों में होता आया है। मन्दिरों के प्रांगण में प्रस्तुत काव्यरूप सहज ही भक्तिप्रधान कथा से सम्बन्धित रहे हैं। यहाँ तक कि केरल में कई मन्दिरों पर कथकळि का प्रस्तुतीकरण एक मनौती तक माना गया है। कथकळि काव्य में श्लोकों तथा गीतों का विधान होता है। सूच्य कथा श्लोक में तथा संवाद गीतों में होता है। राम, कृष्ण, शिव आदि भिन्न-भिन्न देवताओं से सम्बन्धित कथानक ही अधिकतर कथकळि में आते हैं। महाभारत, भागवत तथा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अन्य पुराण भी कथास्रोत बने हुए हैं। भक्ति-साहित्य में कथकळि की जैसी स्थिति है, वैसी ही स्थिति तुल्लल की (गायक-नर्तक द्वारा साभिनय मंच पर प्रस्तुत किया जानेवाला काव्य रूप) भी है। कथकळि एवं तुल्लल के रचयिता—खासकर तुल्लल के रचयिता—भक्तिरस आदि के साथ सरसता और हास्य का विशेष ध्यान रखते हैं; क्योंकि उनका मुख्य ध्येय श्रोताओं का मनोरंजन है। कथकळि एवं तुल्लल की तरह चंपूकाव्य भी कथाप्रधान है।

भौतिकवाद और बौद्धिकता की बाढ़ से मानव आज बुरी तरह आक्रान्त है, तथापि उसके अन्तरतम में भक्ति का क्षीण स्रोत अवश्य बहता है। हिन्दू धर्म ही नहीं, ईसाई धर्म तथा इस्लाम धर्म के भक्त-कवियों ने भी भक्तिगीत रचे हैं। इन आधुनिक भक्तिगीतों की विलक्षणता यह है कि इनमें से अधिकांश नयी-नयी फिल्मों की धुनों में रचे जाते हैं। केरल के प्रसिद्ध देवता अय्यप्पन के नाम-कीर्तन में ऐसे फिल्मी भक्ति-गीत बराबर सुने जाते हैं। भक्ति या कविता की दृष्टि से इनका प्रभाव अधिक गंभीर नहीं हो सकता। धुन की मिठास शायद किसी-किसी को पसन्द आवे, पर उसमें मौलिकता का अभाव खटकता है। इस्लाम धर्म के गीत-प्रेमी भक्त भी इन फिल्मी धुनों का अनुकरण करते हैं। उनका भी साहित्यिक प्रभाव नगण्य ही रहा है।

मलयालम के भक्ति काव्य का प्रसंग हिन्दू भक्ति काव्य की चर्चा से पूरा नहीं हो सकता। केरल में ईसाई धर्म के लोगों की संख्या काफ़ी अच्छी है। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने प्रगति की है। अतएव उनका भक्तिकाव्य भी मलयालम साहित्य का अंग है। ईसाई धर्म से सम्बन्धित कथानकों पर जो मलयालम काव्य लिखे गये हैं, वे बीसवीं सदी के हैं। इनकी रचना महाकाव्य की शिल्प-विधि के अनुकूल हुई है। कुछ खण्डकाव्य भी लिखे गये हैं। इनमें प्रमुख हैं श्री कट्टक्कन्नम का 'श्री येशु विजयम' और श्री सैमण का 'वेदविहारम।' इनमें ईसा मसीह की अलौकिक प्रभुता का वर्णन है और उस दृष्टि से इनका संबंध भक्ति से है। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालनेवाले 'मग्दलन मरियम' जैसे खण्डकाव्य भी यहाँ मिलते हैं।

अन्त में समसामयिक युग के भक्तवर श्री ओट्टूर उण्णि नंपूतिरि का भी उल्लेख आवश्यक है। ये उन भक्त कवियों के प्रतिनिधि हैं; जो चारों तरफ़ की टीमटाम या नास्तिकता के प्रचार से बिलकुल विचलित हुए बिना अपने मन की शान्ति के लिए भगवान् के चरणों पर स्तोत्र-पुष्प चढ़ाते हैं।

वर्तमान बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से 'भक्ति' काव्य का गौण अंग ही हो सकती है। कारण यह कि भक्ति-भावना कवि को अतिशय भावुक बना सकती है और ऐसा भाव कठोर यथार्थ से दूर भागने वाला पलायनवाद हो जाता है। अतएव आधुनिक वातावरण में मलयालम ही क्या, किसी भी भारतीय भाषा के भक्ति-साहित्य का भविष्य बड़ा धुँधला ही लगता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तेलुगु के प्रमुख गीतिकार कवि

डॉ० के० रामनाथन्
एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी के भक्ति-साहित्य में गीत-शैली को प्राधान्य मिला और प्रबन्धकाव्य-शैली गौण रही। जिस आन्ध्र में प्रबन्ध-काव्यों को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त होती रही, उसमें लोक शैली का आगमन एक ऐतिहासिक घटना है। संस्कृत वृत्तों के बीच 'द्विपदा' की स्थिति स्थिर होने लगी। अन्नमाचारी (सन् १४२४-१५०३ ई०) के संकीर्तन उस स्वतंत्र गीत शैली के स्पंदन हैं, जो प्रबन्ध-धारा से मुक्त होकर भगवान् को समर्पित हुई। गेय-काव्य-परंपरा के प्रमुख प्रवर्तक अन्नमारी का महत्व कला की दृष्टि से ऐतिहासिक है। पालकुरिकि सोमनाथ (सन् ११९०-१३२०) ने अपने 'पंडिताराध्य चरित्र' में तुम्मेद, पर्वत, आनंद, निवालि, गोलि, वेन्नेल इत्यादि अनेक लोक-गीतों का उल्लेख किया है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि नन्नया के पूर्व ही तेलुगु में लोक-गीतों की एक स्वस्थ परंपरा चल पड़ी थी। वी० रामराजु का मत है कि अन्नमाचारी ने तत्कालीन प्रचलित लोक-गीतों के ढाँचे के अनुसार ही अपने संकीर्तनों की रचना की थी।[2]

'सिंहाचल नृसिंह' के भक्त-कवि कृष्णमाचारी (सन् १२९५-१३२६ ई०) तेलुगु के सर्वप्रथम वचन गीतकार थे। उन्होंने सिंहगिरि वचनमुलु और शठगोप-विन्नप नाम से कुछ वचन गीतों की रचना की थी।[3] इनके सिंहगिरि वचनमुलु मधुर-भक्ति से युक्त गेय हैं। इनकी मधुर भक्ति की उपासना आलवारों से प्रभावित थी। अन्नमाचारी ने अपने पूर्ववर्ती कृष्णमाचारी की वंदना की है। अन्नमाचारी ने कृष्णमाचारी से प्रभावित होकर लोकगीत साहित्य को संगीत की सूक्ष्मताओं से युक्त करके अभिजात रुचि के अनुकूल बनाया। इस प्रकार लोकगीत का प्रभाव और संगीत की लय मिलकर एक अद्भुत काव्य-रूप साहित्य में स्थापित हो गया। यद्यपि कृष्णमाचारी के वचनमुलु गेय ही हैं, किन्तु उनमें टेक का अभाव, गद्यात्मकता, संगीत सरणियों और लय के परिष्कृत रूप का अभाव आदि कुछ दोष भी हैं। अतः उन्हें पद-साहित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इसीलिए अन्नमाचारी को 'आन्ध्र पद-कविता पितामह' होने का श्रेय मिला।

नारायण तीर्थ भी उल्लेखनीय कवि हैं, जिन्होंने अपने यक्षगान प्रदर्शन के लिए अध्यात्म-बोध से युक्त कीर्तनों की रचना की और भजन पद्धति के प्राचुर्य के लिए मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही उन्होंने गौण रूप से शृंगारिक पदों की भी रचना की।

आलोचकों का मत है कि अन्नमाचारी के पदों की दो धाराएँ आलोच्य युग के पश्चात् पृथक् हो

---

१. प्राङ्नन्नया युग, चागटि श्री गोपाल कृष्ण मूर्ति, पृ० ५७९।
२. आंध्र जनपद गेय साहित्यमु, निबन्ध, भारती (साहित्यिक मासिक पत्रिका) नवंबर, १९५६, पृ० १२।
३. आंध्र कवि सप्तशती, पृ० ४०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गयीं। शृंगारिक पदों का उन्नयन क्षेत्रय्या ने किया और आध्यात्म पदों का त्यागराज और रामदास ने। रूप की दृष्टि से एक अन्तर यह उपस्थित हुआ कि क्षेत्रय्या और रामदास के पदों में तो शास्त्रीय संगीत इतना प्रविष्ट नहीं हुआ, पर त्यागराज ने संगीतकला की सूक्ष्मतम सरणियों से इनको युक्त कर दिया। दूसरा अंतर क्षेत्रय्या और अन्नमाचारी में यह है कि अन्नमाचारी ने भक्तिभाव को प्रमुख रखते हुए शृंगार के शास्त्रीय विधान को इतना महत्व नहीं दिया, जितना क्षेत्रय्या ने। शृंगार की सभी शास्त्रीय विधियाँ क्षेत्रय्या में मिल सकती हैं, पर उनमें भक्ति भाव शिथिल हो गया। आध्यात्म संकीर्तनों के कर्त्ता अन्नमाचारी और रामदास में साम्य अधिक मिलता है। त्यागराज अन्नमाचारी की भाँति उच्चकोटि के भक्त थे; पर उनमें संगीत की शास्त्रीयता का तत्त्व पराकाष्ठा तक उभरा है।

इस प्रकार आन्ध्र के प्रमुख गीतकारों में चार के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं : अन्नमाचारी, क्षेत्रय्या, कंचेर्ल गोपन्न (भद्राचल रामदास) और त्यागराज स्वामी। इनके व्यक्तित्व और काव्य-संगीत का संक्षिप्त आलोचनात्मक विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

ताल्लपाक अन्नमाचारी

ताम्रपत्रों पर लिखित अन्नमाचारी के ३२,००० कीर्तन प्रसिद्ध पुण्य क्षेत्र तिरुमलै के श्री बालाजी के मंदिर में प्राप्त हुए हैं। इनके आध्यात्मिक कीर्तनों में दास्य भक्ति, वैराग्य, निर्वेद, मनःप्रबोध, नीति, उपदेश आदि के वर्णन मिलते हैं और शृंगार कीर्तनों में इष्ट युगल श्री वेंकटेश्वर और पद्मावती की शृंगार क्रीड़ाएँ, वेंकटेश्वर का दक्षिण नायकत्व, नायिका भेद, गोपिकाओं का रूप सौंदर्य, हाव-भाव, संयोग-वियोग आदि के प्रभावोत्पादक वर्णन हैं।

अन्नमाचारी ने लोकोक्तियों के बहुल प्रयोग के द्वारा लोक-भाषा शैली को जीवंत बनाया है। अन्नमाचारी द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों का एक स्वतंत्र कोष भी बन सकता है। अन्नमाचारी के अलंकार सदा भाव के वाहक रहते हैं।

सूर के समान अन्नमाचारी का व्यक्तित्व भावात्मक साधना का अभिन्न अंग था। उनमें साहित्य क्षेत्र में अपनी चमत्कृति से अमर होने की कामना नहीं मिलती। अन्नमाचारी में विरह अस्थायी है। एक ही पद में संक्षिप्त विरह या मान के पश्चात् मिलन की सूचना प्राप्त होती है। सूर का विरह कृष्ण के मथुरा-प्रस्थान के उपरांत अनंत हो जाता है। विरह के ऐसे मार्मिक स्थल अन्नमाचारी में नहीं हैं। राधा की मान्यता पद्मावती की मान्यता से भिन्न है। पद्मावती में माधुर्य और विवाहिता सती की-सी दास्य-भावना का संयोग मिलता है। अन्नमाचारी अपनी भावना के उच्चतम स्तर पर माधुर्य और दास्य की प्रतिमूर्ति पद्मावती से तादात्म्य करते प्रतीत होते हैं। तत्कालीन लोक-गीत साहित्य को संगीत की सूक्ष्मताओं से युक्त करके उसे अभिजात रुचि के अनुकूल बनाया है। जिस पद शैली को अन्नमाचारी ने जन्म दिया; वह क्षेत्रय्या, रामदास और त्यागराज स्वामी के द्वारा पूर्ण विकास को प्राप्त हुई।

क्षेत्रय्या (१७वीं शती पूर्वार्द्ध)

आन्ध्र वाङ्मय में क्षेत्रय्या का वही स्थान है, जो हिन्दी में विद्यापति का। दोनों का सम्बन्ध दरबारों से था और दोनों ही मुख्यतः शृंगारी कवि हैं। विरह पक्ष के उद्घाटन में दोनों में अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों कवियों के बीच यद्यपि दो शताब्दियों की खाई है, फिर भी दोनों में प्रवृत्ति-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गत साम्य दिखाई पड़ता है। दोनों के जीवन की परिस्थितियाँ पूर्ण रूप से नहीं तो आंशिक रूप से समान अवश्य हैं। दोनों का कलापक्ष ललित और सुगढ़ है। कोमलकांत पदावली शृंगार रस से संयुक्त होकर संगीत के स्वरों में गूँज उठी है, दोनों का अलंकार विधान भाषा और भाव को रमणीय बनानेवाला है। यत्र-तत्र यदि अलंकार-लोलुपता अधिक दीखती भी है तो उसे दरबारी वातावरण का प्रभाव मानना चाहिए। नायिका का नखशिख संयोगावस्था में जितना कामोत्तेजक और अश्लील होता है, उतना विरहावस्था में नहीं। इसी कारण दोनों की विरहिणी नायिका के चित्र स्वच्छ सरल रूप से सामने आते हैं। दोनों ने प्रकृति का चित्रण विशेष रूप से उद्दीपनों और अलंकारों के रूप में किया है, पर क्षेत्रय्या की अपेक्षा विद्यापति में विस्तार अधिक है। विद्यापति का ध्यान अधिकतर कला की ओर रहा तो क्षेत्रय्या अनुभूति और भाव की स्वाभाविकता एवं गहराई की ओर झुके हुए हैं।

गीतगोविंद के लेखक जयदेव और श्रीकृष्ण के अद्वैत भाव से युक्त श्रीकृष्णलीला तरंगिणी के लेखक नारायण तीर्थ में जो अंतर है, वही अंतर क्षेत्रय्या और त्यागराज में है। जयदेव के अष्टपदों को सुनते समय मन में उल्लास उत्पन्न होता है; पर भक्ति भाव उत्पन्न नहीं होता। नारायण तीर्थ के पदों को सुनते समय हृदय तन्मयता की स्थिति को प्राप्त करता है। उसी प्रकार त्यागराज के कीर्तनों को गायक भक्ति के आवेश में आकर गाते हुए अपने आप को भूल जाते हैं, साथ ही श्रोताओं को पुलकित भी कर देते हैं। जयदेव और विद्यापति में बहुत साम्य है।

कंचेर्ल गोपन्न (भद्राचल रामदास)

इने-गिने भक्ताग्रेसरों में रामदास का नाम आता है। इन महानुभाव का जीवन-काल सन् १६२० से १६८० ई० तक माना जाता है।

'रामदास चरित्रमु' नामक ग्रंथ से रामदास जी के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रामदास जी जन्मतः रामभक्त थे। जब वे रामायण पढ़ते थे, तब उन्हें दुःख इस बात से होता था कि श्रीराम जी के अवतार के समय में इनका जन्म न होकर अब क्यों हुआ? उक्त ग्रंथ में यह स्पष्ट उल्लेख है कि कबीरदास जी यात्रा करते-करते रामदास के गाँव पहुँच गये और राममंत्र देकर उन्हें रामभक्ति में दीक्षित किया। ऐतिहासिक दृष्टि से उस काल में कबीरदास जी का दक्षिण में आना संभव नहीं दीखता। इसलिए इस कबीर को उत्तर भारत के निर्गुण संप्रदाय के प्रवक्ता कबीरदास जी से अलग माना जा सकता है। जो भी हो, जब रामदास जी को गुरुमुख से राममंत्र प्राप्त हुआ, वे आनंद-विभोर होकर 'तारकमंत्रमु' कोरिन दोरिकेनु धन्नयुडनैतिनि ओरन्ना" कहते हुए कीर्तन गाने लगे। बचपन से ही हरिदासों की सेवा में अपना समस्त ऐश्वर्य लुटाने में उन्हें बहुत आनंद होता था। ये सहज-सरल जीवन व्यतीत करते थे।

कीर्तनों के अतिरिक्त रामदास जी ने 'दाशरथि' नामक एक शतक की रचना की है। रामदास के लगभग १०० कीर्तन ही देखने को मिलते हैं। इनके कीर्तन पांडित्य-प्रदर्शन से रहित सरल-स्पष्ट और लयान्वित हैं। उन से भावस्फुरण भी मार्मिक होता है। रामदास का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन नहीं था। संगीत उनकी भक्ति साधना का केवल एक उपकरण मात्र था। इनके कीर्तन सहज भक्तिभावावेश और तन्मयता के कारण अनायास फूट पड़े हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

स्वामी त्यागराज

अपनी अनन्य भक्ति से उद्‌भूत संगीत मधु-सागर का मंथन कर उससे उत्पन्न ब्रह्मानंदामृत का स्वयं पान करके, जन-जन को भी उसे बाँटने का श्रेय अमर गायक स्वामी त्यागराज को है। कर्णाटक संगीत के 'संगीत-त्रिमूर्ति' में इनका प्रमुख स्थान है। मौलिक धातुकल्पना से मंडित कीर्तनों को पल्लवित करके दाक्षिणात्य संगीत के यश में इन्होंने चार चाँद लगा दिये हैं। मद्रास प्रदेश के तंजाऊर जिले में तिरुवांकूर में सीतम्मा और रामब्रह्मम् के सुपुत्र के रूप में इनका जन्म हुआ था। इनका जीवन-काल सन् १७६७ से १८४७ ई० तक था। तुलजाजी महाराजा के दरबारी संगीतज्ञ सोंठि वेंकटरमणय्या त्यागराज के बचपन में एक वर्ष तक संगीत गुरु रहे थे। अपने जीवन के अंतिम समय में ब्रह्मानंद स्वामी से इन्होंने संन्यास ग्रहण किया। युवावस्था में ही इनका विवाह हो चुका था, पर पत्नी के स्वर्गवास हो जाने के कारण इन्होंने दुबारा विवाह किया था। अनेक प्रलोभनों और प्रताड़नाओं के बावजूद भी उन्होंने अपनी संगीत भारती को राज दरबार के कलुषित वातावरण से दूर रखा। वेदोक्त उञ्छवृत्ति से प्राप्य खाद्य सामग्री से उनके घर में भोजन बनता था। भगवान् को नैवेद्य चढ़ाकर, शिष्यों तथा अतिथियों को खिला-पिलाकर बाद में वे भी भोजन किया करते थे। तंजाऊर राजा के भक्तिपूर्ण आमंत्रण को इन्होंने ठुकरा दिया। क्योंकि राम-भक्ति के सम्मुख नर-स्तुति और ऐश्वर्यासक्ति को इन्होंने तुच्छ समझा था:

निधि चाला सुखमा रामुनि सन्निधि सेव सुखमा
निजमुग तेल्यु मनसा, ममता बन्धनयुत नर-स्तुति सुखमो।

इसी प्रकार तिरुवांकूर के राजा स्वाति तिरुणाल के आह्वान को भी उन्होंने तिरस्कृत कर दिया। उनके विचार से धन, सुत, ऐश्वर्य, राज-मैत्री आदि का भक्ति के सामने कोई मूल्य नहीं है:

पदवि नी सद्‌भक्तियु कल्गुटे
धनकार सुतागार संपदलु, धरणीशुल चेलिमोकपदवा ?

शरभोजी राजा हिंसा से उन्हें अपने दरबार में लाने के लिए कटिबद्ध हुए तो वे तत्क्षण असहनीय पेट दर्द के शिकार हुए। इससे उनकी आँखें खुल गईं और वे स्वयं सत्वर त्यागराज के घर जाकर श्रद्धा और भक्ति से उनके कीर्तनों को सुनने लगे। इन्होंने कांची, श्रीरंगम्, तिरुपति घटिकाचलम् आदि अनेक आस-पास के पुण्य क्षेत्रों की यात्रा की थी।

विषय लोलुपता, दंभाचार, घमंड, हिंसा, जार, चोरी आदि दुराचार, कपट, धार्मिक भेदभाव, सांप्रदायिकता, स्वार्थपरता आदि का इन्होंने खण्डन किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि समस्त धर्म और सम्प्रदायों का लक्ष्य एक ही है। शम, दम, निष्काम भक्ति, भगवत्कथा श्रवण, नाद-ब्रह्मोपासना आदि अनेक मोक्षप्रद साधनों को इन्होंने गा-गाकर लोगों को समझाया।

अब तक इनके प्रकाशित कीर्तन ६६० हैं, यद्यपि इनके कीतनों की संख्या २४,००० बतायी जाती हैं। 'प्रह्लाद भक्ति विजयमु', 'नौका चरित्रमु' तथा 'सीता-राम विजयमु' नामक तीन भक्ति और आध्यात्मिक विचारों से युक्त संगीत नाटकों की भी इन्होंने रचना की। इसमें संवाद गेय, द्विपदाएँ, चूर्निकाएँ, कंद, सीस, उत्पल, चंपकमाला तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों के पद्य सम्मिलित हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उनके समस्त कीर्तनों में लगभग २०० राग प्रयुक्त हुए हैं। सत्तर प्रतिशत कीर्तनों में आदिताल प्रयुक्त हुआ है। रागों को शास्त्र के क्षेत्र से शिल्प-क्षेत्र में लाकर कीर्तन रचना-विधान के एक नवीन क्षितिज की उन्होंने खोज की थी। अपनी भावतन्मयता को मार्मिक अभिव्यक्ति देने के लिए कीर्तन के शिल्प को उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया। इनके घन-राग-पंचरत्न कीर्तनों में अर्थगांभीर्य, भाव-स्फुरण तथा जटिल भाषा शैली है, वे संगीत विद्वानों के उत्साह और भावोद्रेकों को पल्लवित करने की क्षमता से युक्त होते हैं और इस प्रकार उन्हें अपने कला-प्रदर्शन के लिए एक विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है। त्यागराज के कीर्तनों की भाषा की बहुत-सी खूबियाँ हैं: (१) मृदु, ललित उच्चारण सौलभ्य से युक्त शब्द समूह का प्रयोग; (२) भाव व्यंजना के लिए कम से कम शब्दों का प्रयोग; (३) साहित्य-भाव और राग-भाव का मणि-कांचन समन्वय करनेवाले तथा इन दोनों भावों के अनुरूप रहने वाले पद समूह का प्रयोग; (४) लोकोक्तियों और तेलुगु लोकभाषा के मुहावरों का बहुल प्रयोग; (५) कहीं-कहीं उनके कीर्तनों में संस्कृत शब्दों का गांभीर्य, अन्यत्र देशीय तेलुगु भाषा की छटा का दर्शन होता है। शिष्ट व्यावहारिक भाषा का ही प्रायः इन्होंने प्रयोग किया है और (६) कुछ कीर्तनों में ललित यमकालंकार और प्रास के सौंदर्य व्यक्त हुए हैं। जैसे कि:

श्री दमा नतोवादमा नेभेदमा इति मोदमा
श्री रमा हृच्चरमा ब्रोव भारमा रायवारमा।

उपनिषदों के चिरंतन सत्यों को अत्यंत सरल शैली में प्रस्तुत करके अपने कीर्तनों को साधारण प्रजा के लिए भी इन्होंने आस्वाद्य बनाया। नवीन कल्पनाओं से युक्त संगीत शिल्प तथा राग की सर्वाङ्गीणता और परिपूर्णता त्यागराज के कीर्तनों की मुख्य विशेषताएं हैं।

संगीत कला-तपस्वी और अनन्य राम-भक्त स्वामी त्यागराज की अमरवाणी युग-युग तक गूँजती रहेगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तिरुमल-तिरुपति और श्री वल्लभाचार्य

⊙

डॉ० एम० संगमेशम्
एम० ए० पी-एच० डी०

भारत के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों में तिरुमल-तिरुपति एक है। तिरुमल यहाँ के पहाड़ का नाम है, जिसे तिरुवेंगडम्, वेंकटाद्रि, शेषाद्रि आदि नामों से भी पुकारते हैं। तिरुपति उस पहाड़ के पादप्रदेश में वसा नगर है, जो आजकल श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय का केंद्र है। तिरुमल पहाड़ पर भगवान् श्रीवेंकटेश्वरजी का मंदिर है, इसकी ईसा की प्रथम शताब्दी के आरंभ से ही प्रसिद्धि है और इसका उल्लेख ब्रह्मांड, वराह, वामन आदि पुराणों में मिलता है। आलवार भक्तों ने भारत-भर के १०८ वैष्णव क्षेत्रों का यश गाया और उन सबको तिरुपति के ही नाम पर १०८ दिव्य तिरुपति क्षेत्र कहकर व्यवहार किया। अन्य क्षेत्रों की तुलना में तिरुपति क्षेत्र के बारे में उनके रचे पद्यों की संख्या ज्यादा है। ये सब इस क्षेत्र के प्राधान्य को व्यक्त करते हैं।

आचार्य प्रभु वल्लभ के समय अर्थात् १५-१६वीं शताब्दी तक तिरुपति क्षेत्र की प्रसिद्धि सारे देश में फैल गयी। विशेषकर दक्षिण के चारों भाषा-प्रांतवालों में यहाँ के भगवान् श्रीवेंकटेश्वरजी इष्टदेव और कुलदेव से माने जाने लगे। आचार्यजी तेलुगुवाले थे। वे आंध्र प्रांत के वेलनाटि वैदिक ब्राह्मण थे और भारद्वाजस गोत्र के थे। उनका घर का नाम (पारिवारिक) कंभंपाटिवारु था और पुरखों का निवास-स्थान कृष्णा-गोदावरी प्रांत के काकरवाडा नामक गाँव था।[1] इनके मातुल हंपी विजयनगर के दरबार में किसी गौरवपूर्ण पद पर नियुक्त थे। काशी में पिता लक्ष्मण भट्ट की मृत्यु के बाद अपनी माता एल्लम्माजी के साथ युवक वल्लभ हंपी विजयनगर चले गये और माँ को छोड़ कर अकेले भू-प्रदक्षिणा करने चल पड़े।

अन्यान्य आंध्र नैष्ठिक ब्राह्मण परिवारों की तरह वल्लभ के परिवार में भी तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर जी को इष्टदेव माना जाता था। कहते हैं कि अपनी भू-प्रदक्षिणा के समय वल्लभाचार्य जी ने तिरुमल-तिरुपति की यात्रा की और पहाड़ पर वराहस्वामी के मंदिर के पास बैठक लगायी। बाद में अपनी दूसरी और तीसरी भारत-यात्राओं में भी वे तिरुमल-तिरुपति पधारे और उसी जगह बैठकें लगायीं, जहाँ पहली यात्रा

---

१. आंध्र विज्ञान सर्वस्व ४, पृ० १०१६।

(यद्यपि अनुश्रुतियों के अनुसार आचार्य वल्लभ के पुरखों का निवास-ग्राम कृष्णा-गोदावरी प्रांत का काकरवाडा कहा जाता है, तो भी उस प्रांत में इस नाम का कोई गाँव नहीं मिलता। लेकिन आंध्र प्रांत के अनंतपुरम् जिले के रायदुर्ग तालुके में काकराडा नामक गाँव अब भी दीखता है। वह हंपी विजयनगर से नजदीक पड़ता है। प्राचीन काल में वैवाहिक संबंध समीप प्रांतवालों के बीच हुआ करते थे। अतः अनंतपुरम् जिले का काकराडा गाँव ही आचार्यजी के पूर्वजों का गाँव रहा होगा।)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उनके समस्त कीर्तनों में लगभग २०० राग प्रयुक्त हुए हैं। सत्तर प्रतिशत कीर्तनों में आदिताल प्रयुक्त हुआ है। रागों को शास्त्र के क्षेत्र से शिल्प-क्षेत्र में लाकर कीर्तन रचना-विधान के एक नवीन क्षितिज की उन्होंने खोज की थी। अपनी भावतन्मयता को मार्मिक अभिव्यक्ति देने के लिए कीर्तन के शिल्प को उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया। इनके घन-राग-पंचरत्न कीर्तनों में अर्थगांभीर्य, भाव-स्फुरण तथा जटिल भाषा शैली है, वे संगीत विद्वानों के उत्साह और भावोद्रेकों को पल्लवित करने की क्षमता से युक्त होते हैं और इस प्रकार उन्हें अपने कला-प्रदर्शन के लिए एक विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है। त्यागराज के कीर्तनों की भाषा की बहुत-सी खूबियाँ हैं: (१) मृदु, ललित उच्चारण सौलभ्य से युक्त शब्द समूह का प्रयोग; (२) भाव व्यंजना के लिए कम से कम शब्दों का प्रयोग; (३) साहित्य-भाव और राग-भाव का मणि-कांचन समन्वय करनेवाले तथा इन दोनों भावों के अनुरूप रहने वाले पद समूह का प्रयोग; (४) लोकोक्तियों और तेलुगु लोकभाषा के मुहावरों का बहुल प्रयोग; (५) कहीं-कहीं उनके कीर्तनों में संस्कृत शब्दों का गांभीर्य, अन्यत्र देशीय तेलुगु भाषा की छटा का दर्शन होता है। शिष्ट व्यावहारिक भाषा का ही प्रायः इन्होंने प्रयोग किया है और (६) कुछ कीर्तनों में ललित यमकालंकार और प्रास के सौंदर्य व्यक्त हुए हैं। जैसे कि:

श्री दमा नतोवादमा नेभेदमा इति मोदमा
श्री रमा हृच्चरमा ब्रोव भारमा रायवारमा।

उपनिषदों के चिरंतन सत्यों को अत्यंत सरल शैली में प्रस्तुत करके अपने कीर्तनों को साधारण प्रजा के लिए भी इन्होंने आस्वाद्य बनाया। नवीन कल्पनाओं से युक्त संगीत शिल्प तथा राग की सर्वाङ्गीणता और परिपूर्णता त्यागराज के कीर्तनों की मुख्य विशेषताएँ हैं।

संगीत कला-तपस्वी और अनन्य राम-भक्त स्वामी त्यागराज की अमरवाणी युग-युग तक गूँजती रहेगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तिरुमल-तिरुपति और श्री वल्लभाचार्य

⊙

डॉ० एम० संगमेशम्
एम० ए० पी-एच० डी०

भारत के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों में तिरुमल-तिरुपति एक है। तिरुमल यहाँ के पहाड़ का नाम है, जिसे तिरुवेंगडम्, वेंकटाद्रि, शेषाद्रि आदि नामों से भी पुकारते हैं। तिरुपति उस पहाड़ के पादप्रदेश में वसा नगर है, जो आजकल श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय का केंद्र है। तिरुमल पहाड़ पर भगवान् श्रीवेंकटेश्वरजी का मंदिर है, इसकी ईसा की प्रथम शताब्दी के आरंभ से ही प्रसिद्धि है और इसका उल्लेख ब्रह्मांड, वराह, वामन आदि पुराणों में मिलता है। आलवार भक्तों ने भारत-भर के १०८ वैष्णव क्षेत्रों का यश गाया और उन सबको तिरुपति के ही नाम पर १०८ दिव्य तिरुपति क्षेत्र कहकर व्यवहार किया। अन्य क्षेत्रों की तुलना में तिरुपति क्षेत्र के बारे में उनके रचे पद्यों की संख्या ज्यादा है। ये सब इस क्षेत्र के प्राधान्य को व्यक्त करते हैं।

आचार्य प्रभु वल्लभ के समय अर्थात् १५-१६वीं शताब्दी तक तिरुपति क्षेत्र की प्रसिद्धि सारे देश में फैल गयी। विशेषकर दक्षिण के चारों भाषा-प्रांतवालों में यहाँ के भगवान् श्रीवेंकटेश्वरजी इष्टदेव और कुलदेव से माने जाने लगे। आचार्यजी तेलुगुवाले थे। वे आंध्र प्रांत के वेलनाटि वैदिक ब्राह्मण थे और भारद्वाजस गोत्र के थे। उनका घर का नाम (पारिवारिक) कंभंपाटिवारु था और पुरखों का निवास-स्थान कृष्णा-गोदावरी प्रांत के काकरवाडा नामक गाँव था।[1] इनके मातुल हंपी विजयनगर के दरबार में किसी गौरवपूर्ण पद पर नियुक्त थे। काशी में पिता लक्ष्मण भट्ट की मृत्यु के बाद अपनी माता एल्लम्माजी के साथ युवक वल्लभ हंपी विजयनगर चले गये और माँ को छोड़ कर अकेले भू-प्रदक्षिणा करने चल पड़े।

अन्यान्य आंध्र नैष्ठिक ब्राह्मण परिवारों की तरह वल्लभ के परिवार में भी तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर जी को इष्टदेव माना जाता था। कहते हैं कि अपनी भू-प्रदक्षिणा के समय वल्लभाचार्य जी ने तिरुमल-तिरुपति की यात्रा की और पहाड़ पर वराहस्वामी के मंदिर के पास बैठक लगायी। बाद में अपनी दूसरी और तीसरी भारत-यात्राओं में भी वे तिरुमल-तिरुपति पधारे और उसी जगह बैठकें लगायीं, जहाँ पहली यात्रा

---

१. आंध्र विज्ञान सर्वस्व ४, पृ० १०१६।

(यद्यपि अनुश्रुतियों के अनुसार आचार्य वल्लभ के पुरखों का निवास-ग्राम कृष्णा-गोदावरी प्रांत का काकरवाडा कहा जाता है, तो भी उस प्रांत में इस नाम का कोई गाँव नहीं मिलता। लेकिन आंध्र प्रांत के अनंतपुरम् जिले के रायदुर्ग तालुके में काकराडा नामक गाँव अब भी दीखता है। वह हंपी विजयनगर से नजदीक पड़ता है। प्राचीन काल में वैवाहिक संबंध समीप प्रांतवालों के बीच हुआ करते थे। अतः अनंतपुरम् जिले का काकराडा गाँव ही आचार्यजी के पूर्वजों का गाँव रहा होगा।)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में उन्होंने बैठक लगाकर भागवत का पारायण किया था।[1] आज भी वल्लभ-संप्रदाय के जो अनुयायी यात्री तिरुपति यात्रा पर जाते हैं तो वे वराहस्वामी के मंदिर के पास एक गुफा जैसे स्थान का दर्शन अवश्य करते हैं, जिसे वे श्री वल्लभ की बैठक का स्थान मानते हैं।[2] (लेकिन आज वहाँ कोई गुफा नहीं दीखती)।

आचार्य वल्लभ की तीन भू-प्रदक्षिणा यात्राओं का उल्लेख मिलता है। यह भी बताया जाता है कि उक्त तीनों यात्राओं में तिरुमल-तिरुपति में उनकी बैठकें लगीं और भागवत का पारायण भी हुआ। गोवर्धन पर श्रीनाथजी की प्रतिष्ठा आचार्यजी की दूसरी भू-प्रदक्षिणा के समय सन् १४९९ ई० में हुई। तीसरी यात्रा के समय सन् १५०९ ई० में विजयनगर पंडित-सभा में आचार्यजी को शास्त्रार्थ में विजय मिली और राजा नरसिंहराय ने कनकाभिषेक करके उनका सम्मान किया।[3] आचार्यजी की प्रतिभा से प्रहृष्ट व प्रभावित होकर प्रसिद्ध माध्वमताचार्य श्रीव्यासरायजी ने उनसे माध्वमत के आचार्यत्व को स्वीकार करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्हीं दिनों आचार्यप्रभु को लीलाशुक-विल्वमंगल का स्वप्न-संदर्शन होकर विष्णुस्वामी संप्रदाय की उच्छिन्न गद्दी को प्राप्त करके शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करने की प्रेरणा मिली।[4] आचार्यजी ने विल्वमंगल की सलाह मानी और सन् १५१० ई० से शुद्धाद्वैत मत के प्रचार में दत्तचित्त हो गये। यद्यपि अड़ैल और चरनाट में उनके दो घर बसे तो भी वे प्रति वर्ष चातुर्मास्य के दिनों में व्रज की यात्रा करते थे और गोकुल-गोवर्धन में रहकर वहाँ के मंदिरों की श्रीवृद्धि में योग देते थे। मंदिरों की व्यवस्था, वहाँ की सेवा-प्रणाली, संकीर्तन सेवा में सूरदासजी जैसे भक्त कवियों की नियुक्ति आदि महत्वपूर्ण बातें श्री आचार्यजी की श्रद्धा और ममता के परिणाम-स्वरूप कार्यान्वित हुई और व्रजचौरासी यात्रा जैसे नवीन उत्सवों की परिपाटियाँ भी उन्हीं की प्रेरणा से शुरू हुईं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्यजी को अपनी भू-प्रदक्षिणा यात्राओं के समय दक्षिण के सभी प्रसिद्ध वैष्णव मंदिरों के सेवा-क्रम, उत्सव संप्रदाय, प्रबंधाध्ययन, रागभोग आदि का अच्छा परिचय मिला होगा और गोकुल-गोवर्धन के मंदिरों के सेवाक्रम आदि को नियत करने में उनको उपर्युक्त परिचय से बहुत कुछ लाभ भी हुआ होगा।

उस समय में तिरुमल-तिरुपति को वैष्णव-धर्म के प्रचार के लिए एक सुरक्षित दुर्ग-सा माना जाता था। कुछ समय पहले दक्षिण पर दो बार मुसलमानों की चढ़ाइयाँ हुईं, जिनके कारण अहाविलम्, कांची, श्रीरंगम् जैसे दक्षिण के सुप्रसिद्ध वैष्णवालयों में कितना ही रक्तपात हुआ। श्रीवेंकटेश्वरजी की कृपा से तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों पर उन आततायियों की दृष्टि नहीं पड़ी और यहाँ वैसे अत्याचार व रक्तपात का कोई भीषण कांड कभी नहीं हुआ। उन आतंकमय दिनों में श्रीरंगम् के रंगनाथजी जैसों की मूर्तियों को तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर मंदिर में आश्रय मिला।[5] देवमूर्तियों के साथ दक्षिण के कई वैष्णव लोग भी उस समय यहाँ आ बसे थे और उनके साथ दक्षिण के मंदिरों के कई उत्सव संप्रदाय भी तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों में प्रविष्ट हो गये। इनके द्वारा यहाँ के तेलुगु वालों में तमिल प्रबंधम् (आलवार भक्तों

---

१. आंध्र प्रभा, ता० १८-५-६६ : श्री जगन्नाथदास गोविंददास का लेख।
२. वही लेख।
३. पुष्टिमार्ग का इतिहास : श्री वसंतराय शास्त्री, पृ० १९।
४. संप्रदाय प्रदीप, प्रसंग ८७।
५. तिरुपति का इतिहास, भाग १ : श्री टी० के० टी० वीरराघवाचार्य, पृ० ५३४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की नालायिर नामक वेद-तुल्य रचना) का प्रचार और विशिष्टाद्वैत श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार होने लगा। फिर भी तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों की विशिष्टता में कोई कमी नहीं आने पाई। यहाँ का मंत्रपुष्प अलग है, मूर्ति के अलंकरण व पुष्पाञ्जलि का क्रम अलग है और सहस्रनाम भी श्रीवेंकटेश्वर के अलग रचे गये हैं। उत्सवों में भी तेलुगु और तमिल दोनों संप्रदाय चलते हैं।

आचार्य वल्लभ के समय से कुछ दिन पहले जब चंद्रगिरि राज्य (तिरुमल-तिरुपति प्रांत) के स्थानिक शासक सालुव-वंशी राजा नरसिंहराय को विजयनगर साम्राज्य की गद्दी मिली (ई० १४८६-९१)[१], तब तिरुमल-तिरुपति क्षेत्र की उन्नति में एक नया अध्याय ही खुला। उस समय मंदिर में उत्सवों की संख्या बहुत बढ़ गयी। ब्रह्मोत्सव, वसंतोत्सव, मुक्कोटि, मागेलि जैसे पुराने उत्सवों के साथ तब उगादि, दिवाली, अयन, संक्रांति, उत्थान एकादशी व द्वादशी जैसे नये उत्सव शुरू किये गये। अन्न ऊंजल, डोला, नौका, आखेट जैसे उत्सव बड़े खर्च व वैभव के साथ मनाये जाने लगे। उत्सवों की शान बढ़ाने के लिए कई नये मंदिर, मंडप, गोपुर वगैरह का निर्माण किया गया। पुष्करिणी में वसंत-मंडप का निर्माण हुआ। रथोत्सव का नया क्रम जारी हुआ। मूलमूर्ति के साथ उत्सवमूर्ति और भोगमूर्ति के भी तिरुभंजन, तिरुकाशु, पुनुगुकापु जैसे (अभिषेक व अनुलेपन) उत्सव मनाये जाने लगे। प्रबंधपठन को अध्ययनोत्सव नाम से वर्ष में दो बार कई दिनों तक मनाने लगे। कैसिक पुराण और तिरुमेंगडम् माहात्म्य रचे गये। अलमेलमंगा देवीजी का शुक्रवार के दिन अभिषेक उत्सव मनाया जाने लगा। उन दिनों में होनेवाले उत्सवों की एक तालिका से यह पता चलता है कि साल में १५३ दिन उत्सव दिन माने जाते थे।

आचार्य वल्लभ के यात्रा-समय में विजयनगर में सालुव-वंशी राजाओं के शासन का अंत और तुलुवंशी राजाओं के शासन का आरंभ हुआ। उधर पूर्वान्ध्र में उत्कल के गजपतियों का राज्य चलता था। राजमहेंद्रवरम् में प्रतापरुद्र गजपति के प्रतिनिधि के रूप में राय रामानंद रहते थे। श्री चैतन्य प्रभु को इन्हीं के यहाँ कृष्णकर्णामृत और ब्रह्मसंहिता की तालपत्र प्रतियाँ मिलीं। उत्कल के गजपति राजा लोग बड़े कवि और कृष्णभक्त थे। पुरुषोत्तम गजपति (ई० १४६८-९७) ने अभिनव गीतगोविंद, नाममालिका, गोपालचरितामृत जैसे ग्रंथ रचे। प्रतापरुद्र गजपति (ई० १४९७-१५३८) के दरबार में भक्ति-भागवत के कवि जीवदेवाचार्य और जगन्नाथवल्लभ नाटक के रचयिता राय रामानंद रहते थे। उड़िया भाषा में भागवत पुराण की रचना भी उसी समय हुई। उसके कवि जगन्नाथदासजी श्री चैतन्य प्रभु के आप्त मित्रों में एक थे। कहा जाता है कि श्रीवल्लभाचार्य जी और श्रीचैतन्य स्वामीजी की पुरी श्रीजगन्नाथ में भेंट हुई। इन सभी बातों से यही मालूम पड़ता है कि आचार्य वल्लभजी को अपने यात्रा-काल में देश के, विशेषकर दक्षिण के सभी वैष्णव व भक्ति संप्रदायों का निकट परिचय मिला, जिसका थोड़ा बहुत प्रभाव शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टि-मार्ग भक्ति एवं सेवा-क्रम पर अवश्य पड़ा होगा।

विष्णुस्वामी और लीलाशुक बिल्वमंगल का प्रभाव वल्लभ-संप्रदाय की बालकृष्ण, गोपालकृष्ण व गोपीकृष्ण उपासना अथवा भक्ति पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। विशिष्टाद्वैत को आलवार प्रबंधम् और अन्नमाचार्य पदावली से, माध्व वैष्णव-संप्रदाय को कन्नड़ के दासकूट भक्तों के पदों से और चैतन्य-मत को सहजिया पद-साहित्य से सिद्धांत प्रचार एवं भक्ति प्रचार में जैसी सहायता मिल रही थी, वैसी सहायता

---

१. आंध्र विज्ञान सर्वस्व ३, पृ० २७६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में उन्होंने बैठक लगाकर भागवत का पारायण किया था।[1] आज भी वल्लभ-संप्रदाय के जो अनुयायी यात्री तिरुपति यात्रा पर जाते हैं तो वे वराहस्वामी के मंदिर के पास एक गुफा जैसे स्थान का दर्शन अवश्य करते हैं, जिसे वे श्री वल्लभ की बैठक का स्थान मानते हैं।[2] (लेकिन आज वहाँ कोई गुफा नहीं दीखती)।

आचार्य वल्लभ की तीन भू-प्रदक्षिणा यात्राओं का उल्लेख मिलता है। यह भी बताया जाता है कि उक्त तीनों यात्राओं में तिरुमल-तिरुपति में उनकी बैठकें लगीं और भागवत का पारायण भी हुआ। गोवर्धन पर श्रीनाथजी की प्रतिष्ठा आचार्यजी की दूसरी भू-प्रदक्षिणा के समय सन् १४९९ ई० में हुई। तीसरी यात्रा के समय सन् १५०९ ई० में विजयनगर पंडित-सभा में आचार्यजी को शास्त्रार्थ में विजय मिली और राजा नरसिंहराय ने कनकाभिषेक करके उनका सम्मान किया।[3] आचार्यजी की प्रतिभा से प्रहृष्ट व प्रभावित होकर प्रसिद्ध माध्वमताचार्य श्रीव्यासरायजी ने उनसे माध्वमत के आचार्यत्व को स्वीकार करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्हीं दिनों आचार्यप्रभु को लीलाशुक-विल्वमंगल का स्वप्न-संदर्शन होकर विष्णुस्वामी संप्रदाय की उच्छिन्न गद्दी को प्राप्त करके शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करने की प्रेरणा मिली।[4] आचार्यजी ने विल्वमंगल की सलाह मानी और सन् १५१० ई० से शुद्धाद्वैत मत के प्रचार में दत्तचित्त हो गये। यद्यपि अड़ैल और चरनाट में उनके दो घर बसे तो भी वे प्रति वर्ष चातुर्मास्य के दिनों में व्रज की यात्रा करते थे और गोकुल-गोवर्धन में रहकर वहाँ के मंदिरों की श्रीवृद्धि में योग देते थे। मंदिरों की व्यवस्था, वहाँ की सेवा-प्रणाली, संकीर्तन सेवा में सूरदासजी जैसे भक्त कवियों की नियुक्ति आदि महत्वपूर्ण बातें श्री आचार्यजी की श्रद्धा और ममता के परिणाम-स्वरूप कार्यान्वित हुई और व्रजचौरासी यात्रा जैसे नवीन उत्सवों की परिपाटियाँ भी उन्हीं की प्रेरणा से शुरू हुईं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्यजी को अपनी भू-प्रदक्षिणा यात्राओं के समय दक्षिण के सभी प्रसिद्ध वैष्णव मंदिरों के सेवा-क्रम, उत्सव संप्रदाय, प्रबंधाध्ययन, रागभोग आदि का अच्छा परिचय मिला होगा और गोकुल-गोवर्धन के मंदिरों के सेवाक्रम आदि को नियत करने में उनको उपर्युक्त परिचय से बहुत कुछ लाभ भी हुआ होगा।

उस समय में तिरुमल-तिरुपति को वैष्णव-धर्म के प्रचार के लिए एक सुरक्षित दुर्ग-सा माना जाता था। कुछ समय पहले दक्षिण पर दो बार मुसलमानों की चढ़ाइयाँ हुईं, जिनके कारण अहाविलम्, कांची, श्रीरंगम् जैसे दक्षिण के सुप्रसिद्ध वैष्णवालयों में कितना ही रक्तपात हुआ। श्रीवेंकटेश्वरजी की कृपा से तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों पर उन आततायियों की दृष्टि नहीं पड़ी और यहाँ वैसे अत्याचार व रक्तपात का कोई भीषण कांड कभी नहीं हुआ। उन आतंकमय दिनों में श्रीरंगम् के रंगनाथजी जैसों की मूर्तियों को तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर मंदिर में आश्रय मिला।[5] देवमूर्तियों के साथ दक्षिण के कई वैष्णव लोग भी उस समय यहाँ आ बसे थे और उनके साथ दक्षिण के मंदिरों के कई उत्सव संप्रदाय भी तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों में प्रविष्ट हो गये। इनके द्वारा यहाँ के तेलुगु वालों में तमिल प्रबंधम् (आलवार भक्तों

---

१. आंध्र प्रभा, ता० १८-५-६६ : श्री जगन्नाथदास गोविंददास का लेख।
२. वहीं लेख।
३. पुष्टिमार्ग का इतिहास : श्री वसंतराय शास्त्री, पृ० १९।
४. संप्रदाय प्रदीप, प्रसंग ८७।
५. तिरुपति का इतिहास, भाग १ : श्री टी० के० टी० वीरराघवाचार्य, पृ० ५३४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की नालायिर नामक वेद-तुल्य रचना) का प्रचार और विशिष्टाद्वैत श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार होने लगा। फिर भी तिरुमल-तिरुपति के मंदिरों की विशिष्टता में कोई कमी नहीं आने पाई। यहाँ का मंत्रपुष्प अलग है, मूर्ति के अलंकरण व पुष्पाञ्जलि का क्रम अलग है और सहस्रनाम भी श्रीवेंकटेश्वर के अलग रचे गये हैं। उत्सवों में भी तेलुगु और तमिल दोनों संप्रदाय चलते हैं।

आचार्य वल्लभ के समय से कुछ दिन पहले जब चंद्रगिरि राज्य (तिरुमल-तिरुपति प्रांत) के स्थानिक शासक सालुव-वंशी राजा नरसिंहराय को विजयनगर साम्राज्य की गद्दी मिली (ई० १४८६-९१)[1], तब तिरुमल-तिरुपति क्षेत्र की उन्नति में एक नया अध्याय ही खुला। उस समय मंदिर में उत्सवों की संख्या बहुत बढ़ गयी। ब्रह्मोत्सव, वसंतोत्सव, मुक्कोटि, मागेलि जैसे पुराने उत्सवों के साथ तब उगादि, दिवाली, अयन, संक्रांति, उत्थान एकादशी व द्वादशी जैसे नये उत्सव शुरू किये गये। अन्न ऊंजल, डोला, नौका, आखेट जैसे उत्सव बड़े खर्च व वैभव के साथ मनाये जाने लगे। उत्सवों की शान बढ़ाने के लिए कई नये मंदिर, मंडप, गोपुर वगैरह का निर्माण किया गया। पुष्करिणी में वसंत-मंडप का निर्माण हुआ। रथोत्सव का नया क्रम जारी हुआ। मूलमूर्ति के साथ उत्सवमूर्ति और भोगमूर्ति के भी तिरुभंजन, तिरुकाशु, पुनुगुकापु जैसे (अभिषेक व अनुलेपन) उत्सव मनाये जाने लगे। प्रबंधपठन को अध्ययनोत्सव नाम से वर्ष में दो बार कई दिनों तक मनाने लगे। कैसिक पुराण और तिरुमेंगडम् माहात्म्य रचे गये। अलमेलमंगा देवीजी का शुक्रवार के दिन अभिषेक उत्सव मनाया जाने लगा। उन दिनों में होनेवाले उत्सवों की एक तालिका से यह पता चलता है कि साल में १५३ दिन उत्सव दिन माने जाते थे।

आचार्य वल्लभ के यात्रा-समय में विजयनगर में सालुव-वंशी राजाओं के शासन का अंत और तुलुवंशी राजाओं के शासन का आरंभ हुआ। उधर पूर्वान्ध्र में उत्कल के गजपतियों का राज्य चलता था। राजमहेंद्रवरम् में प्रतापरुद्र गजपति के प्रतिनिधि के रूप में राय रामानंद रहते थे। श्री चैतन्य प्रभु को इन्हीं के यहाँ कृष्णकर्णामृत और ब्रह्मसंहिता की तालपत्र प्रतियाँ मिलीं। उत्कल के गजपति राजा लोग बड़े कवि और कृष्णभक्त थे। पुरुषोत्तम गजपति (ई० १४६८-९७) ने अभिनव गीतगोविंद, नाममालिका, गोपालचरितामृत जैसे ग्रंथ रचे। प्रतापरुद्र गजपति (ई० १४९७-१५३८) के दरबार में भक्ति-भागवत के कवि जीवदेवाचार्य और जगन्नाथवल्लभ नाटक के रचयिता राय रामानंद रहते थे। उड़िया भाषा में भागवत पुराण की रचना भी उसी समय हुई। उसके कवि जगन्नाथदासजी श्री चैतन्य प्रभु के आप्त मित्रों में एक थे। कहा जाता है कि श्रीवल्लभाचार्य जी और श्रीचैतन्य स्वामीजी की पुरी श्रीजगन्नाथ में भेंट हुई। इन सभी बातों से यही मालूम पड़ता है कि आचार्य वल्लभजी को अपने यात्रा-काल में देश के, विशेषकर दक्षिण के सभी वैष्णव व भक्ति संप्रदायों का निकट परिचय मिला, जिसका थोड़ा बहुत प्रभाव शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टि-मार्ग भक्ति एवं सेवा-क्रम पर अवश्य पड़ा होगा।

विष्णुस्वामी और लीलाशुक बिल्वमंगल का प्रभाव वल्लभ-संप्रदाय की बालकृष्ण, गोपालकृष्ण व गोपीकृष्ण उपासना अथवा भक्ति पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। विशिष्टाद्वैत को आलवार प्रबंधम् और अन्नमाचार्य पदावली से, माध्व वैष्णव-संप्रदाय को कन्नड़ के दासकूट भक्तों के पदों से और चैतन्य-मत को सहजिया पद-साहित्य से सिद्धांत प्रचार एवं भक्ति प्रचार में जैसी सहायता मिल रही थी, वैसी सहायता

---

१. आंध्र विज्ञान सर्वस्व ३, पृ० २७६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सूरदास जैसे भक्त-कवियों की रचनाओं से शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्ग को भी प्राप्त हुई। वल्लभ-संप्रदाय के मंदिरों में विविध जयंतियों, विलास-विहारों के उत्सवों की जो प्रथा चल पड़ी; उस पर दक्षिण के वैष्णव मंदिरों के उत्सव संप्रदायों की सुस्पष्ट छाप मिलती है। मंदिर में भगवान् की विविध झाँकियों की जो प्रणाली नियत हुई, उसमें भी ऐसा अनुकरण मिलता है। उस समय तिरुमल-तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर मंदिर में प्रतिदिन निम्न-लिखित झाँकियाँ होती थीं : सवेरे सुप्रभात या जगाना, ग्वाल, नवनीत, बालभोग, फिर अभिषेक, अलंकरण, अर्चा, दरबार, आरती व राजभोग; बाद में सर्वदर्शन, दूसरी अर्चा, सायंकाल पूजा, रात में एकांतसेवा, पर्यंक, तिरुवीस, लोरी और सुलाना। कहने की जरूरत नहीं कि वल्लभ-संप्रदाय के मंदिरों में भी इनमें से कोई-कोई झाँकियाँ ठीक वैसे ही मिलती हैं। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि आचार्य प्रभु के समय तक व्रजभूमि में भी (वृन्दावन आदि जगहों में) रामानुज-संप्रदाय के मंदिर बन चुके थे और दाक्षिणात्य संप्रदाय के अनुसार वहाँ के सेवा व उत्सव-क्रम चलते थे। चैतन्य-संप्रदाय का प्रभाव भी बाद में वृन्दावन में फैला, किंतु पहले से भी स्वामिनी, सखीभाव जैसी बातों में वल्लभाचार्य और चैतन्य स्वामी में हृदय-साम्य दीखता आया है।

चैतन्य प्रभु को अपने यात्रा-काल में आंध्र प्रांत में ही कृष्णकर्णामृत एवं ब्रह्मसंहिता की प्रतियाँ मिलीं। चैतन्य प्रभु और राय रामानंद की भेंट राजमहेंद्रवरम् में हुई और राधा-तत्व की चर्चा भी हुई। तब तक उस प्रांत के तेलुगु कवि एल्लनार्य राधा-माधव काव्य रचकर 'राधामाधव कवि' उपनाम पा चुके थे। कर्णामृत का चैतन्य-संप्रदाय में विशेष प्रचार हुआ। सन् १५११ ई० से चैतन्य-संप्रदाय का प्रचार वृन्दावन में भी होने लगा और बाद में वहाँ के लीला-नाटकों पर भी कर्णामृत के रासाष्टक वगैरह का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। कहते हैं कि वृन्दावन में लीला-नाटकों की परंपरा को शुरू करने का श्रेय आचार्य वल्लभ को ही है। कुछ लोग यह श्रेय नारायण भट्ट को देते हैं। जो हो, व्रज में ये दोनों एक काल में रहे और दोनों को दक्षिण के, तत्रापि आंध्र के लीला-नाटकों का खूब परिचय था।

संप्रदाय ग्रंथों के अनुसार श्री वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी संप्रदाय का प्रचार करने का प्रोत्साहन लीलाशुक बिल्वमंगल से ही (स्वप्न में) मिला। चैतन्य-संप्रदाय को भी विष्णुस्वामी का उपसंप्रदाय कहा गया है।[1] श्री वल्लभ और श्री चैतन्य की भेंट भी प्रसिद्ध है। श्रीजगन्नाथ एवं पुरुषोत्तम के दरबार में श्री वल्लभाचार्य का अभिगमन भी हुआ। जिस तरह बिल्वमंगल कहते हैं कि :

वृन्दावन-द्रुम-तलेषु गवांगनेषु वेदावसान समयेषु च दृश्यते यत्।
तद् वेणु-वादन-परं शिखि-पिच्छ-मौलि ब्रह्मं स्मरामि कमलेक्षणमभ्रनीलम्॥

—कृष्णकर्णामृत, २-२१

उसी तरह श्री वल्लभाचार्यजी भी पुरुषोत्तम के दरबार में कह गये कि :

एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतं, एको देवो देवकीपुत्र एव।
मंत्रोप्येक स्तस्य नामानि यानि, कर्मप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥[2]

---

१. संप्रदाय प्रदीप, पृ० ७५, ६७।
२. सूरदास का काव्य-वैभव : डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' : पृ० १६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दार्शनिक सिद्धांत की दृष्टि से यह कहना कठिन है कि विष्णुस्वामी का श्री वल्लभ प्रभु पर कितना प्रभाव पड़ा, लेकिन साधना-पक्ष में लीलाशुक विल्वमंगल की रचना कृष्ण-कर्णामृत का उन पर गहरा प्रभाव दीखता है। आचार्यजी के मधुराष्टक तो निम्नांकित कृष्णकर्णामृत श्लोक का विपुलीकरण ही है:

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोः मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगंधि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥

——कृष्णकर्णामृत, १-९१

शुद्धाद्वैत का रसरूप परब्रह्म कृष्ण लीलाशुक के मधुराद्वैत परब्रह्म में पहले दीखता है:

अतिभूमि नभूमि मेव वा वचसां वासित वल्लवीस्तनम्।
मनसामपरं रसायनं मधुराद्वैत मुपास्महेमहः॥

——कृष्णकर्णामृत, ३-३८

श्री वल्लभाचार्य के स्वामी-स्वामिनी और सखा-सखीवाले रूपद्वंद्व या भावद्वंद्व की मान्यता के बीज भी हमें कृष्णकर्णामृत में मिलते हैं:

लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्य लक्ष्मीमयीं।
बालां बाल तमाल नील वपुषं वंदे परां देवताम्॥

——कृष्णकर्णामृत, ३-६६

कृष्णकर्णामृत में चंद्रावली जैसी अन्य सखी-सहचरी गोपियों के प्रेम का भी वर्णन मिलता है:

राधा मोहन मंदिरादुपगतः चंद्रावलीमूचिवान्
राधे क्षेमयेऽस्ति, तस्य वचनं श्रुत्वाह चंद्रावली।
कंस क्षेममये विमुग्धहृदये, कंसः क्व दृष्टस्त्वया
राधा क्वेति विलज्जितो नतमुखः स्मेरे हरिः पातु वः॥

——कृष्णकर्णामृत, ३-१०६

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भारती और भारतेन्दु

डॉ० चन्द्रकान्त मुदालियर
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०

सन् १७५७ से १८५७ ई० तक के कंपनी शासन के कारण भारतीय जनता में पाश्चात्य संस्कृति व सभ्यता की ओर आकर्षण बना रहा। भारत के लोगों के मन में एक तरह की हीनता की भावना घर कर बैठी थी। जनता अंग्रेजों से विमुक्त होना चाहती थी, लेकिन अंग्रेजीपन से नहीं। यह बात जितनी विलक्षण थी, उतना ही उसका हल करना भी कठिन था।

ऐसे वातावरण में जनता को जगाने और ठीक रास्ते पर लाने के लिए महापुरुषों की आवश्यकता पड़ी। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में हुए इन महापुरुषों का जन्म एक प्रकार से समकालीन रहा। बंगाल में राजा राममोहन राय का जन्म सन् १७७४ में हुआ तो रामलिंगस्वामी तमिलनाडु में सन् १८२३ में जन्मे थे। धार्मिक जागृति लाने और सामाजिक पुनरुत्थान में इन दोनों का बड़ा हाथ रहा। ठीक इसी समय (सन् १८२४ में) गुजरात ने दयानंद सरस्वती को जन्म दिया और बंगाल ने श्री रामकृष्ण परमहंस (सन् १८३६ में) को। इन महापुरुषों द्वारा स्थापित प्रार्थना-समाज, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि संस्थाएँ नये समाज के निर्माण के प्रयत्न में आज तक लगी हुई हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक जागरण के साथ-साथ महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन के कारण लोगों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। लोग भाषा, साहित्य और कला के विकास की ओर ध्यान देने लगे।

इन महापुरुषों के क्रम में दो और साहित्यिक महर्षि पैदा हुए : एक उत्तर-भारत में और दूसरे दक्षिण में। ये हैं भारतेन्दु और भारती। भारतेन्दु का जन्म सन् १८४८ में हुआ और भारती का जन्म सन् १८८२ में। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत निबंध का विवेच्य है।

भारतेन्दु का जन्म

भारतीय साहित्य में सेठ अमीचन्द एक मुख्य व्यक्ति माने गये हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में सेठ अमीचन्द का बड़ा नाम था। अमीचन्द की वंश-परंपरा में श्री गोपालचन्द के पुत्र के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जन्म लिया था। गोपालचन्द में काव्य-प्रतिभा प्रचुर मात्रा में थी। बचपन से ही उनमें कविता करने की प्रवृत्ति रही। अपने पिता जी से निरन्तर प्रोत्साहन और आशीर्वाद पाने का सौभाग्य भी इनको मिला। काशी की जनता ने इनको 'भारतेन्दु' की उपाधि से अलंकृत किया। केवल ३५ वर्ष की आयु में ही भारतेन्दु जी ने लगभग १२५ ग्रन्थों की रचना की।

एक नाटककार के रूप में इनको अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई है। इनके नाटकों में प्राचीन व

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नवीन के संघर्ष की तीव्र प्रतिध्वनि है। इन्होंने दो प्रकार के नाटक लिखे : मौलिक व अनूदित। मौलिक नाटकों में "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति", "चन्द्रावली", "भारत-दुर्दशा", "नीलदेवी", "अंधेर-नगरी" आदि हैं। इन नाटकों में इन्होंने जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से सामग्री ली है। "चन्द्रावली" में प्रेम का आदर्श, "नीलदेवी" में ऐतिहासिक वृत्त, "भारत दुर्दशा" में देश-दशा का चित्रण है। उनके अनूदित नाटकों में "विद्या सुन्दर", "धनंजय विजय", "मुद्राराक्षस" और "भारत जननी" आदि हैं।

भारतेन्दु ने अपने को अन्य भाषाओं के ज्ञान से भी विपश्चित बनाया। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती, मराठी और बंगला आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया।

भारतेन्दु को हिन्दी गद्य का जन्मदाता कहा जाता है। हिन्दी गद्य में भावावेश से परिपूर्ण भावात्मक शैली के दर्शन सर्वप्रथम भारतेन्दु की रचनाओं में ही होते हैं। उन्होंने हिन्दी गद्य को संस्कृत की क्लिष्ट एवं बोझिल शैली से मुक्त किया। (भारती ने भी "मणिप्रवालम्" शैली से तमिल को विमुक्त किया।) लोगों में राष्ट्रीय चेतना लाने में इनका योगदान रहा।

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती का जन्म

महाकवि भारती का जन्म तमिलनाडु में सन् १८८२ में हुआ। भारतेन्दु की तरह ये भी बचपन में ही माता को खो बैठे। इनकी काव्य-प्रतिभा की झलक बचपन में ही दिखायी पड़ी। सन् १८९८ में काशी गये और वहाँ रहकर संस्कृत का अध्ययन किया। काशी में रहकर विद्याभ्यास करते समय भारतेन्दु नाम से वे परिचित हुए।

भारतीय जनता को उनका महत्व बताकर उनमें राष्ट्रप्रेम और भाषाप्रेम जगाने में ये भारतेन्दु से आगे थे। भारतेन्दु ने उस समय घोषणा की कि :

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।'

इधर भारती ने अपनी मातृभाषा का यशोगान करते हुए कहा : "हमारी ज्ञात भाषाओं में तमिल जैसी मीठी भाषा हमें और कहीं नहीं मिली। कंबर, वल्लुवर और इलंगो जैसे कवि भी हमारी नज़र में नहीं आये।"

हिन्दी के गद्य क्षेत्र में भारतेन्दु का जितना योगदान रहा, उतना भारती का तमिल के काव्य-जगत् में भी रहा। लोगों में राष्ट्रप्रेम जगाने में भारती को जितनी सफलता मिली, उतनी शायद ही और किसी को मिल सकती है। इनकी काव्य-भाषा रक्त की भाषा थी और जनता के भावों के साथ खेलती थी। भावात्मक और बौद्धिक स्तर पर लोगों की धारणाओं में विकासोन्मुख परिवर्तन लाने की अनुपम क्षमता इस राष्ट्रकवि में छिपी हुई थी।

ये सामाजिक पुनरुत्थान में किसी से पीछे नहीं रहे। सामाजिक कुप्रथाओं का इन्होंने खुलकर खण्डन किया।

भारतेन्दु के समान कवि भारती भी अधिक समय तक जीवित नहीं रहे, लेकिन इस अल्प आयु में समाज के सभी क्षेत्रों में प्रविष्ट होकर एक उच्च श्रेणी के सामाजिक नेता होकर दिवंगत हुए। नारी-जागरण एवं नारी-स्वातंत्र्य हेतु किये गये उनके प्रयास श्लाघ्य हैं। नारी को शिक्षा से वंचित करना और उनको समान अधिकार देने से इनकार करना—ये दोनों बातें भारती की दृष्टि में पाप हैं। छुआछूत का खंडन करते

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुए जब उन्होंने अपने विचार निडर होकर प्रकट किये, तब स्वयं इनके कुल के लोग इनसे घृणा करने लगे। लेकिन भारती ने कभी इसकी परवाह नहीं की; क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था।

भारतेन्दु के समान ये भी बहुभाषा विज्ञ थे। वे तमिल के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, फ्रेंच आदि भाषाएँ जानते थे।

आत्म-परिचय देते हुए भारतेन्दु ने लिखा है :

"सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कबिन के मीत चित हित गुनगानी के।
सीधेन सौं सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सौं,
हरिश्चन्द्र नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के॥"

महाकवि भारती की प्रतिज्ञा में हमें उनकी स्वसंस्कृति-निष्ठा, स्वभाषा-प्रेम का पूर्ण परिचय मिलता है और सच्ची भारतीय आत्मा के दर्शन होते हैं :

(१) जहाँ तक हो सके तमिल में ही बोलूँगा और लिखूँगा और उसी में सोचूँगा। मैं सदा परा-शक्ति का ध्यान करूँगा और उनके बारे में लिखूँगा।

(२) समय का पूर्णतया सदुपयोग करूँगा।

(३) आत्मप्रशंसा नहीं करूँगा।

(४) अज्ञानियों के मन में सम्मान पाने की चेष्टा करूँगा।

(५) झूठ, धोखा और खुशामद आदि द्वारा धनोपार्जन नहीं करूँगा।

(६) सतत् परिश्रम के द्वारा सांसारिक आपदाओं को पाऊँगा। सांसारिक संपदा न प्राप्त होने पर भी 'ईश्वर की इच्छा' मानकर सन्तुष्ट हो जाऊँगा।

(७) सदा प्रसन्न मुख, मधुर भाषण और स्पष्ट हृदय के साथ रहूँगा।

इस प्रकार महाकवि भारती राष्ट्रकवि, समाज-सुधारक, सच्चे देशभक्त और लेखक आदि कई रूपों में प्रसिद्ध हुए। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में तमिलनाडु के विकास के मूल में महा-कवि भारती का बड़ा हाथ है। जिस प्रकार हिन्दी जनता भारतेन्दु के प्रति कृतज्ञ है और उनके काव्यों से प्रेरणा प्राप्त करती है, उसी प्रकार तमिलनाडु के आबाल-वृद्ध नर-नारी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के काव्यों और रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तमिलनाडु में आज उपलब्ध जन-जागरण का मूल कारण महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ही हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेम-भक्ति के वातायन से कबीर

डॉ० कुसुम श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

भक्ति मूलतः उदात्तीकृत प्रेम है। इस प्रेम को स्त्री-पुरुष के सन्दर्भ में शृंगार तथा अन्य विभिन्न संदर्भों में वात्सल्य, स्नेह आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। यही प्रेम जब चिन्मुख होकर परमात्मा के प्रति होता है, तब भक्ति की संज्ञा पाता है। अध्यात्म के क्षेत्र में मात्र प्रेम को आधार बना कर भक्तों, आचार्यों ने भक्ति को एक नया आयाम दिया है। उसे परम प्रेमरूपा, अनुरक्ति की पराकाष्ठा कहा गया है तथा समस्त विधि निषेधों से परे माना है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर निर्गुण धारा के प्रतिनिधि कवि कहे जाते हैं। यह स्पष्ट है कि भक्ति व्यक्ति-परक है और ज्ञान विचार-परक। जब ब्रह्म निर्गुण और निराकार है तो उसकी उपासना ज्ञान से ही संभव है, भक्ति से नहीं; किन्तु कबीर की साधना की यह विशेषता है कि उन्होंने निर्गुण और निराकार की उपासना ज्ञान से उतनी नहीं की, जितनी भक्ति से की है। निराकार परमात्मा को भक्ति ग्राह्य बनाने के लिये उन्होंने प्रतीकों और रूपकों का आश्रय ग्रहण किया है। इससे निराकार ब्रह्म भी माता, पिता, राजा, स्वामी, पति आदि के स्पष्ट व्यक्तित्व से समन्वित होकर भक्ति के क्षेत्र में आ जाता है। कबीर ने इस भक्ति को सम्पूर्ण रूप से प्रेम के अन्तर्गत ही माना है और इस प्रकार निराकार ब्रह्म को प्रेम के माध्यम से सर्वसुलभ बना दिया है।

शास्त्रीय दृष्टि से वैधी-भक्ति वह धारा है, जो अपने दोनों किनारों से बँधी रहती है और प्रेम-भक्ति वह बाढ़ है, जो अपने दोनों किनारों का बन्धन तो मानती ही नहीं; वरन् सामने जो कुछ पड़ जाता है, उसे भी बहा ले जाती है। कबीर की भक्ति ऐसी ही है; इसमें निर्गुण, सगुण, ज्ञान और वैराग्य सभी भगवत्प्रेम में पर्यवसित हो गए हैं। भगवत्प्रेम ही उनका साधन है और वही उनका साध्य।

कबीर एक भावुक भक्त हैं। उन्होंने प्रेम-भक्ति का शास्त्रीय स्तर पर प्रतिपादन नहीं किया है और न वे शास्त्रीय ज्ञान से परिचित ही रहे होंगे; अतः उनकी प्रेम-भक्ति के अध्ययन में हमें भाव विकास की क्रमिक अवस्था, प्रेम के भेद-प्रभेद अथवा स्तर आदि की कोई क्रमबद्ध सरणि ढूँढ़ने का प्रयास नहीं करना चाहिये। प्रेम-भक्ति का आधार भगवत्प्रेम की सान्द्रता है और वह कबीर की वाणी में परिव्याप्त है।

परम प्रेम, रूपाआलोकमयी

कबीर की भक्ति नारदीय भक्ति के समान परम प्रेमरूपा है। समस्त संशयों का उच्छेद कर के हृदय को आलोकित करने वाली है :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुए जब उन्होंने अपने विचार निडर होकर प्रकट किये, तब स्वयं इनके कुल के लोग इनसे घृणा करने लगे। लेकिन भारती ने कभी इसकी परवाह नहीं की; क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था।

भारतेन्दु के समान ये भी बहुभाषा विज्ञ थे। वे तमिल के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, फ्रेंच आदि भाषाएँ जानते थे।

आत्म-परिचय देते हुए भारतेन्दु ने लिखा है :

"सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कबिन के मीत चित हित गुनगानी के।
सीधेन सौं सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सौं,
हरिश्चन्द्र नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के॥"

महाकवि भारती की प्रतिज्ञा में हमें उनकी स्वसंस्कृति-निष्ठा, स्वभाषा-प्रेम का पूर्ण परिचय मिलता है और सच्ची भारतीय आत्मा के दर्शन होते हैं :

(१) जहाँ तक हो सके तमिल में ही बोलूँगा और लिखूँगा और उसी में सोचूँगा। मैं सदा पराशक्ति का ध्यान करूँगा और उनके बारे में लिखूँगा।

(२) समय का पूर्णतया सदुपयोग करूँगा।

(३) आत्मप्रशंसा नहीं करूँगा।

(४) अज्ञानियों के मन में सम्मान पाने की चेष्टा करूँगा।

(५) झूठ, धोखा और खुशामद आदि द्वारा धनोपार्जन नहीं करूँगा।

(६) सतत् परिश्रम के द्वारा सांसारिक आपदाओं को पाऊँगा। सांसारिक संपदा न प्राप्त होने पर भी 'ईश्वर की इच्छा' मानकर सन्तुष्ट हो जाऊँगा।

(७) सदा प्रसन्न मुख, मधुर भाषण और स्पष्ट हृदय के साथ रहूँगा।

इस प्रकार महाकवि भारती राष्ट्रकवि, समाज-सुधारक, सच्चे देशभक्त और लेखक आदि कई रूपों में प्रसिद्ध हुए। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में तमिलनाडु के विकास के मूल में महाकवि भारती का बड़ा हाथ है। जिस प्रकार हिन्दी जनता भारतेन्दु के प्रति कृतज्ञ है और उनके काव्यों से प्रेरणा प्राप्त करती है, उसी प्रकार तमिलनाडु के आबाल-वृद्ध नर-नारी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के काव्यों और रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तमिलनाडु में आज उपलब्ध जन-जागरण का मूल कारण महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ही हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेम-भक्ति के वातायन से कबीर

डॉ० कुसुम श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

भक्ति मूलतः उदात्तीकृत प्रेम है। इस प्रेम को स्त्री-पुरुष के सन्दर्भ में शृंगार तथा अन्य विभिन्न संदर्भों में वात्सल्य, स्नेह आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। यही प्रेम जब चिन्मुख होकर परमात्मा के प्रति होता है, तब भक्ति की संज्ञा पाता है। अध्यात्म के क्षेत्र में मात्र प्रेम को आधार बना कर भक्तों, आचार्यों ने भक्ति को एक नया आयाम दिया है। उसे परम प्रेमरूपा, अनुरक्ति की पराकाष्ठा कहा गया है तथा समस्त विधि निषेधों से परे माना है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर निर्गुण धारा के प्रतिनिधि कवि कहे जाते हैं। यह स्पष्ट है कि भक्ति व्यक्ति-परक है और ज्ञान विचार-परक। जब ब्रह्म निर्गुण और निराकार है तो उसकी उपासना ज्ञान से ही संभव है, भक्ति से नहीं; किन्तु कबीर की साधना की यह विशेषता है कि उन्होंने निर्गुण और निराकार की उपासना ज्ञान से उतनी नहीं की, जितनी भक्ति से की है। निराकार परमात्मा को भक्ति ग्राह्य बनाने के लिये उन्होंने प्रतीकों और रूपकों का आश्रय ग्रहण किया है। इससे निराकार ब्रह्म भी माता, पिता, राजा, स्वामी, पति आदि के स्पष्ट व्यक्तित्व से समन्वित होकर भक्ति के क्षेत्र में आ जाता है। कबीर ने इस भक्ति को सम्पूर्ण रूप से प्रेम के अन्तर्गत ही माना है और इस प्रकार निराकार ब्रह्म को प्रेम के माध्यम से सर्वसुलभ बना दिया है।

शास्त्रीय दृष्टि से वैधी-भक्ति वह धारा है, जो अपने दोनों किनारों से बँधी रहती है और प्रेम-भक्ति वह बाढ़ है, जो अपने दोनों किनारों का बन्धन तो मानती ही नहीं; वरन् सामने जो कुछ पड़ जाता है, उसे भी बहा ले जाती है। कबीर की भक्ति ऐसी ही है; इसमें निर्गुण, सगुण, ज्ञान और वैराग्य सभी भगवत्प्रेम में पर्यवसित हो गए हैं। भगवत्प्रेम ही उनका साधन है और वही उनका साध्य।

कबीर एक भावुक भक्त हैं। उन्होंने प्रेम-भक्ति का शास्त्रीय स्तर पर प्रतिपादन नहीं किया है और न वे शास्त्रीय ज्ञान से परिचित ही रहे होंगे; अतः उनकी प्रेम-भक्ति के अध्ययन में हमें भाव विकास की क्रमिक अवस्था, प्रेम के भेद-प्रभेद अथवा स्तर आदि की कोई क्रमबद्ध सरणि ढूँढ़ने का प्रयास नहीं करना चाहिये। प्रेम-भक्ति का आधार भगवत्प्रेम की सान्द्रता है और वह कबीर की वाणी में परिव्याप्त है।

परम प्रेम, रूपाआलोकमयी

कबीर की भक्ति नारदीय भक्ति के समान परम प्रेमरूपा है। समस्त संशयों का उच्छेद कर के हृदय को आलोकित करने वाली है :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पंजरि प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसे छूटा सुख भया, मिला पियारा कंत॥

अमृत-स्वरूपा

प्रेम-भक्ति भक्त का भगवान् के प्रति सर्वथा ध्वंस रहित प्रेम है। यह अविचल प्रेम भक्त को भगवान् से संयुक्त कर देता है। यह अटल संयोग ही अमृतत्व है। कबीर भी राम से तादात्म्य स्थापित कर चुके हैं, उनके लिये मृत्यु का भय कहाँ? संसार को मरणशील बताकर अपने को मृत्यु की पहुँच से परे मानने का जो स्वर कबीर में है, उसमें उनकी अहंमन्यता नहीं है; वरन् एक प्रेमी भक्त का भगवान् के साथ अपने अटल संयोग का अगाध विश्वास है:

हंम न मरें मरिहै संसारा।
हमका मिला जिआवन हारा॥
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं।
हरि न मरें हम काहे को मरिहैं॥

नान्यास्पृहा

भक्त इस अमृतत्व की अनुभूति तभी कर सकता है, जब उसने अपने हृदय को भगवत्प्रेम के अतिरिक्त अन्य सभी अभिलाषाओं से शून्य बना लिया हो। इसे ही नारद पाँच रात्र में 'अनन्य ममता विष्णौ ममता' तथा भक्ति रसामृत सिन्धु में 'अन्याभिलषिता शून्यं' कहा गया है। भक्त कबीर भी यही अनुभव करते हैं कि जब तक लोकेषणा, फलकामना का सम्पूर्ण त्याग नहीं हो जाता, तब तक प्रेम-भक्ति का अनुभव नहीं किया जा सकता:

जब लगि भगति सकाम है, तब लगि निरफल सेव।
कहै कबीर वह क्यों मिले, निहकामी निजदेव॥

कबीर की समस्त आशाओं-आकांक्षाओं के केन्द्र राम हैं। सांसारिक सुख उन्हें स्पर्श नहीं कर पाते। सागर की अगाध जलराशि के बीच भी सीपी अपना सम्पुट नहीं खोलती, उसे तो केवल स्वाति की एक बूँद चाहिये:

आसा एक जू राम की, दूजी आस निरास।
जैसे सीप समंद में, नहीं स्वाति बिन प्यास॥

चित्तद्रवी वृत्ति

श्री मधुसूदन सरस्वती ने द्रवीभूत चित्त की भगवान् सर्वेश्वर के प्रति धारावाहिक वृत्ति को प्रेम-भक्ति कहा है। कबीर भी भगवान् के प्रति द्रवीभूत चित्तवृत्ति का प्रतिक्षण अनुभव करते हुए भक्ति रस के आस्वादन में मगन हो जाते हैं। 'कँवल कुवाँ' में स्थित प्रेम रस को कबीर सुरति की ढेंकुली बना कर प्रेम की रस्सी से खींच लेते हैं और उसका पान करते हुए आत्मविभोर हो उठते हैं:

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुरति ढोकुली लेज लौं मन नित ढोलनहार।
कँवल कुवाँ में प्रेम रस पीवत बारम्बार॥

और

जो जन भाउ भगति कछु जानें ताको अचरजु काहो।
जैसे जल जलहीं ढुरि मिलिओ त्यों ढुरि मिलयो जुलाहो॥

निरतिशय आनंददायिनी

आनंदमयता भक्ति का परम गुण है। इसका माधुर्य अकथ्य है, इसीलिये नारद से इसे 'मूका-स्वादनवत्' कहा है। इसकी अभिव्यंजना में कबीर की वाणी भी मूक हो उठी है :

अकथ कहानी प्रेम की कछु कहीं न जाइ।
गूंगे केरी सरकरा बैठे मुसकाइ॥

षट्गुणमयी

प्रेम-भक्ति को आचार्यों ने षट्गुणमयी कहा है :

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा।
सान्द्र विशेषात्मा श्री कृष्णार्कषिणी च सा॥

प्रेमी भक्त कबीर की वाणी में यद्यपि इन छः गुणों का कोई क्रमबद्ध वर्णन नहीं मिलता, तथापि उसमें इन सभी गुणों का स्वाभाविक विकास मिलता है।

क्लेशघ्नी

भक्ति का क्लेशघ्नी स्वभाव समस्त क्लेशों का निवारण करता है। शास्त्रों में प्रसिद्ध क्लेश हैं : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश। इनकी सामूहिक संज्ञा है माया। कबीर के शब्दों में भक्ति ही एक ऐसी अद्भुत जड़ी है, जिसे सूँघते ही क्लेशकारिणी माया नष्ट हो जाती है :

हमारे गुरु दीन्हीं अजब जरी।
पाँचो नाग पचीसों नागिनी सूँघत तुरत मरी॥

शुभदा

भगवान् से विमुख करने वाले विषयों में वितृष्णा और भगवद् विषय में अनुरक्ति—अनुकूलता, कृपा, सत्य, सरलता, समता, धैर्य, गांभीर्य, मानवत्व, अमानित्व आदि सद्गुण शुभ हैं। भक्ति इन गुणों की प्रदाता है इसलिए शुभ है। ये सभी सद्गुण सदाचरण के आधारभूत तत्व हैं। कबीर की वाणी में आचार-प्रवण रूढ़ि बहुल धर्म के स्थान पर सत्य की लौ, सत्याचरण, समदृष्टि, सहिष्णुता, निरभिमानिता का जो उत्कर्षमय संदेश मिलता है; उसका उत्स प्रेम-भक्ति का 'शुभदा' स्वभाव ही है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पंजरि प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसे छूटा सुख भया, मिला पियारा कंत॥

अमृत-स्वरूपा

प्रेम-भक्ति भक्त का भगवान् के प्रति सर्वथा ध्वंस रहित प्रेम है। यह अविचल प्रेम भक्त को भगवान् से संयुक्त कर देता है। यह अटल संयोग ही अमृतत्व है। कबीर भी राम से तादात्म्य स्थापित कर चुके हैं, उनके लिये मृत्यु का भय कहाँ? संसार को मरणशील बताकर अपने को मृत्यु की पहुँच से परे मानने का जो स्वर कबीर में है, उसमें उनकी अहंमन्यता नहीं है; वरन् एक प्रेमी भक्त का भगवान् के साथ अपने अटल संयोग का अगाध विश्वास है:

हम न मरें मरिहै संसारा।
हमका मिला जिआवन हारा॥
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं।
हरि न मरें हम काहे को मरिहैं॥

नान्यास्पृहा

भक्त इस अमृतत्व की अनुभूति तभी कर सकता है, जब उसने अपने हृदय को भगवत्प्रेम के अतिरिक्त अन्य सभी अभिलाषाओं से शून्य बना लिया हो। इसे ही नारद पाँच रात्र में 'अनन्य ममता विष्णौ ममता' तथा भक्ति रसामृत सिन्धु में 'अन्याभिलषिता शून्यं' कहा गया है। भक्त कबीर भी यही अनुभव करते हैं कि जब तक लोकेषणा, फलकामना का सम्पूर्ण त्याग नहीं हो जाता, तब तक प्रेम-भक्ति का अनुभव नहीं किया जा सकता:

जब लगि भगति सकाम है, तब लगि निरफल सेव।
कहै कबीर वह क्यों मिले, निहकामी निजदेव॥

कबीर की समस्त आशाओं-आकांक्षाओं के केन्द्र राम हैं। सांसारिक सुख उन्हें स्पर्श नहीं कर पाते। सागर की अगाध जलराशि के बीच भी सीपी अपना सम्पुट नहीं खोलती, उसे तो केवल स्वाति की एक बूँद चाहिये:

आसा एक जू राम की, दूजी आस निरास।
जैसे सीप समंद में, नहीं स्वाति बिन प्यास॥

चित्तद्रवी वृत्ति

श्री मधुसूदन सरस्वती ने द्रवीभूत चित्त की भगवान् सर्वेश्वर के प्रति धारावाहिक वृत्ति को प्रेम-भक्ति कहा है। कबीर भी भगवान् के प्रति द्रवीभूत चित्तवृत्ति का प्रतिक्षण अनुभव करते हुए भक्ति रस के आस्वादन में मगन हो जाते हैं। 'कँवल कुवाँ' में स्थित प्रेम रस को कबीर सुरति की ढेंकुली बना कर प्रेम की रस्सी से खींच लेते हैं और उसका पान करते हुए आत्मविभोर हो उठते हैं:

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुरति ढीकुली लेज लौं मन नित ढोलनहार।
कँवल कुवाँ में प्रेम रस पीवत बारम्बार॥

और

जो जन भाउ भगति कछु जानें ताको अचरजु काहो।
जैसे जल जलहीं ढुरि मिलिओ त्यों ढुरि मिलयो जुलाहो॥

निरतिशय आनंददायिनी

आनंदमयता भक्ति का परम गुण है। इसका माधुर्य अकथ्य है, इसीलिये नारद से इसे 'मूका-स्वादनवत्' कहा है। इसकी अभिव्यंजना में कबीर की वाणी भी मूक हो उठी है :

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाइ।
गूंगे केरी सरकरा बैठे मुसकाइ॥

षट्गुणमयी

प्रेम-भक्ति को आचार्यों ने षट्गुणमयी कहा है :

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा।
सान्द्र विशेषात्मा श्री कृष्णार्कर्षणी च सा॥

प्रेमी भक्त कबीर की वाणी में यद्यपि इन छः गुणों का कोई क्रमबद्ध वर्णन नहीं मिलता, तथापि उसमें इन सभी गुणों का स्वाभाविक विकास मिलता है।

क्लेशघ्नी

भक्ति का क्लेशघ्नी स्वभाव समस्त क्लेशों का निवारण करता है। शास्त्रों में प्रसिद्ध क्लेश हैं : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश। इनकी सामूहिक संज्ञा है माया। कबीर के शब्दों में भक्ति ही एक ऐसी अद्भुत जड़ी है, जिसे सूँघते ही क्लेशकारिणी माया नष्ट हो जाती है :

हमारे गुरु दीन्हीं अजब जरी।
पाँचो नाग पचीसों नागिनी सूँघत तुरत मरी॥

शुभदा

भगवान् से विमुख करने वाले विषयों में वितृष्णा और भगवद् विषय में अनुरक्ति—अनुकूलता, कृपा, सत्य, सरलता, समता, धैर्य, गांभीर्य, मानवत्व, अमानित्व आदि सद्गुण शुभ हैं। भक्ति इन गुणों की प्रदाता है इसलिए शुभ है। ये सभी सद्गुण सदाचरण के आधारभूत तत्व हैं। कबीर की वाणी में आचार-प्रवण रूढ़ि बहुल धर्म के स्थान पर सत्य की लौ, सत्याचरण, समदृष्टि, सहिष्णुता, निरभिमानिता का जो उत्कर्षमय संदेश मिलता है; उसका उत्स प्रेम-भक्ति का 'शुभदा' स्वभाव ही है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मोक्षलघुताकृत

भक्ति का आनन्द मुक्ति से बड़ा है, इसीलिये साधारणतः जिन्हें पुरुषार्थ कहा जाता है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—वे भक्ति के लिये कोई महत्व नहीं रखते। परम पुरुषार्थ मोक्ष उनके लिये नगण्य है। कबीर ने इसे बड़े सशक्त ढंग से द्विधाहीन भाषा में कहा है :

राम मोहि तारि कहाँ लै जइ हौं।
सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाउ मोहिं दइहौ॥
जउ तुम मोकों दूरि करत हौ तो मोहिं मुकुति बतावहु।
एकमेक रमि रह्यो सभनि में तौ काहे भरमावहु॥

सुदुर्लभा

प्रेम साधना का यह मार्ग असि-धारा मार्ग है। पल-पल में विचलित होने वाला अधीर साधक प्रकम्पित पग से जब इस पथ पर बढ़ता है, तब वह कट कर गिर पड़ता है; अविचल साधक पार उतर जाता है :

भगति दुहेली राम की, जस खंडे की धार।
जो डोलै सो कटि पड़े, निहचल उतरै पार॥

सान्द्र विशेषात्मा

प्रेम-भक्ति भगवत्प्रेम का सान्द्र रूप है। इस प्रगाढ़ प्रेम में समस्त साधनों की समाप्ति हो जाती है। भक्त ही भगवन्मय नहीं होता, भगवान् भी भक्तमय हो जाते हैं। यह मिलनानुभूति उन्हें एक निराले रंग में रँग देती है :

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही यूँ मिले, दोनउँ बरन गँवाइ॥

कृष्णाकर्षिणी

'कृष्ण' शब्द व्यापक अर्थ में परमात्मा का वाचक है, केवल कृष्णावतार तक सीमित नहीं है। भक्ति का यह गुण भगवान् को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। तीव्र प्रेम की चुम्बकीय शक्ति से भगवान् स्वयं भक्त के निकट खिंच आते हैं :

कबीर भया है केतकी, भँवर भए सब दास।
जहँ-जहँ भगति कबीर की, तहँ-तहँ राम निवास॥

कबीर की प्रेम भक्ति रूप का अरूप के प्रति पूर्ण समर्पण है। ससीम और असीम का वह प्रेममय मिलन है, जहाँ बूँद अपने को समुद्र में खो देती है और समुद्र बूँद में खो जाता है :

हेरत हेरत हे सखो, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाइ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यह प्रेमानुभूति की पराकाष्ठा है, पूर्ण एकत्व की स्थिति है। इसे दर्शन की किसी विशिष्ट संज्ञा—अद्वैत, केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैतादि द्वारा अभिहित करना कठिन है और अपर्याप्त भी। इस रसात्मक अनुभूति में भक्त और भगवान् भिन्न हैं अथवा अभिन्न, यह कहना कठिन है। भगवत रसिक के शब्दों में :

नाँही द्वैताद्वैत हरि, नाहिं विशिष्टाद्वैत।
बँधे नहीं मतवाद में, ईश्वर इच्छाद्वैत॥

यह प्रेम-भक्ति की चरम अवस्था है। पूर्ण निष्ठा, अगाध विश्वास और निष्कम्प दीप-शिखा की भाँति ज्योतिर्मयी चित्त की एकतानवृत्ति के सहारे बढ़ते हुए भक्त कबीर परम प्रेयान् के लिए अपार आकुलता का अनुभव करते हैं। उनके विरहाकुल नयन उस अरूप प्रियतम की अनन्त प्रतीक्षा में पथरा-से जाते हैं, उसका नाम पुकारते-पुकारते जीभ में छाले पड़ जाते हैं। प्रेमी भक्त की विरहिणी आत्मा वधू अपने मन प्राण के सम्पूर्ण स्नेह को उँड़ेल कर प्राणों का दीप जलाती है, उस रूप नामातीत प्रियतम के पथ को सजाती है; तब कहीं आत्म-साक्षात्कार का अपूर्व सुख मिलता है :

इस तन का दीवा करौं, बाती मेलौं जीव।
लोही सीचों तेल ज्यों, तब मुख देखों पीव॥

दिव्य प्रेम की उज्ज्वल जलधारा में आकण्ठ मग्न कबीर भगवान् के और भगवान् उनके हो जाते हैं। अविनाशी कंत से मिलन हो जाता है, साधना पूरी हो जाती है। भगवान् के प्रेममय स्वरूप की प्रेमानुभूति के अखण्ड आनंद के अनन्त विस्तार में डूबे कबीर की एकमात्र अनुभूति रह जाती है :

हरि रंग लागा हरि रंग लागा।
मेरे मन का संसय भागा॥
साँचे मन तैं साहिब नेरै, झूठे मन तैं भागा।
हरि जन हरि सों ऐसे मिलिआ, जैसे सोने संग सुहागा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तुलसी की विनय-पत्रिका में भक्ति के विविध भाव

डॉ० (श्रीमती) माधुरी मिश्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

'विनय-पत्रिका' तुलसीदास की दूसरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। तुलसीदास की भावनाओं का जितना सहज रूप हमें उनकी इस रचना में मिलता है, किसी अन्य रचना में नहीं मिलता। 'मानस' यदि उनकी साधना का आदर्श प्रस्तुत करता है, तो 'विनय-पत्रिका' उन आदर्शों की अपने जीवन में साधना। इसके अतिरिक्त भी 'विनय-पत्रिका' का महत्व उल्लेखनीय है। हिन्दी के ही नहीं कदाचित् विश्व के सर्वश्रेष्ठ आत्मनिवेदनात्मक साहित्य में 'विनय-पत्रिका' के अनेक गीतों की गणना होगी।

तुलसीदास की रामभक्ति के स्वरूप पर जब हम विचार करते हैं तो स्पष्ट देखते हैं कि वह मानवता की एक महान् कल्पना पर आधृत है। यही कारण है कि उनके पात्र पहले मानव हैं और फिर राम-भक्त हैं। इस विषय में वे कृष्ण-भक्त कवियों से ही नहीं, अग्रदासादि राम-भक्ति की मधुर-धारा के कवियों से भी बहुत पृथक् हैं। इस संदर्भ में यदि उनकी तुलना की जा सकती है तो कबीर आदि निर्गुण उपासक भक्तों से। किन्तु एक बात में वे उनसे भी भिन्न हैं, निर्गुण धारा के भक्त अपनी भक्ति की निष्पत्ति के लिये हठयोग का आश्रय लेते हैं, ज्ञान का आश्रय लेते हैं और मुक्ति की कल्पना करते हैं। तुलसीदास का साधन-साध्य सभी कुछ राम-भक्ति है। वह निष्केवल प्रेम है और वह प्रेम जिस राम से करने का वे उपदेश करते हैं, वे राम हैं मानवता के सबसे बड़े प्रतीक। इसलिये तुलसीदास की राम-भक्ति निरी आध्यात्मिक साधना ही नहीं, वह उतना ही एक नीतिमूलक जीवन-दर्शन भी है।

जीव और ब्रह्म की अपेक्षा तुलसी का मायाविचार ही अधिक गूढ़ होकर सामने आता है। 'विनय-पत्रिका' के इस पद को देखिये, जिसमें तुलसीदास ने सत्य, असत्य और दोनों की ही प्रबलता से पृथक् रहकर आत्मतत्त्व में लीन होने का उपदेश दिया है :

'केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।' ---विनय-पत्रिका, पद १११

आत्मतत्त्व में लीन होने का यह उपदेश तो संगत है, परन्तु देखना यह चाहिए कि इन तीनों में से तुलसीदास किसको मुख्य समझते थे ? तुलसीदास अपनी स्थिति को स्वयं ही स्पष्ट कर देते हैं :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।'

--विनय-पत्रिका, पद १२०

वस्तुतः यह प्रपंच तो मृषा है, किन्तु जो तापों का अनुभव हमें प्रतिक्षण हो रहा है, वह कैसे नष्ट हो? इस विषय में तुलसीदास का निष्कर्ष है :

'तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावे।
रघुपति भगति संत संगति बिनु को भवत्रास नसावै॥'

--विनय-पत्रिका, पद १२१

यदि तत्वदृष्टि से देखा जाए तो इसमें तुलसीदास ने अपने पक्ष को स्पष्ट करके रख दिया है।' 'जदपि झूठ स्रुति गावै' से स्पष्ट है कि तुलसीदास परमार्थतः विधिप्रपंच अथवा संसार को झूठ ही मानते हैं, परन्तु वह उसकी मीमांसा में मग्न नहीं होते। कारण यह है कि उसकी मीमांसा से भ्रम दूर नहीं होता। अतः इस भव-जाल से मुक्त होने का मार्ग राम की भक्ति और संत की संगति से ही है।

यह संसार चित्त का विलास है तो इसका सच्चा स्वरूप भी उसी चित्त में भासित होता है, जो राम की भक्ति से स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न हो चुका है।

अब हमें यह जानना है कि तुलसीदास ने जिस रामभजन को राजमार्ग कहा है, वस्तुतः वह है क्या? रामभजन को लेकर जो कबीर आदि निर्गुण संत चले थे, वह राजमार्ग नहीं था, अपितु वह 'कल्पहिं पंथ अनेक' का ही परिचायक था और 'श्रुतिसम्मत' भी नहीं था। तुलसीदास ने जिस रामभजन को लिया है, वह सबका जाना-समझा और मनभाया हुआ है। तुलसीदास का परम आदेश तो यह है :

'स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि अंग जग रूप भूप सीताबरु॥
इहै भगति बैराग्य ग्यान यह हरि तोषन यह सुभ ब्रत आचरु॥
तुलसिदास सिव मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुं नाहिंन डरु॥'

--विनय-पत्रिका, पद २०५

यहाँ पर तुलसीदास का शिवप्रतिपादित, कल्याणकारी राजमार्ग हमारे सम्मुख आ जाता है। मूर्तिपूजा के विषय में तुलसी का मत है :

'मन, इतनोई या तन को परम फलु।
सब अंग सुभग बिंदुमाधव छबि, तजि सुभाउ, अवलोकु एक पलु।'

--विनय-पत्रिका, पद ६३

तुलसीदास ने यहाँ इस बात का उल्लेख नहीं किया कि लोग किस प्रकार 'बिन्दुमाधव' की पूजा करते हैं। उनका ध्यान तो केवल इस पर रहा है कि 'बिन्दुमाधव' किस प्रकार किसी के हृदय में बस जाते हैं और उसकी बुद्धि उनके स्वरूप में रम जाती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि तुलसीदास मूर्ति-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तुलसी की विनय-पत्रिका में भक्ति के विविध भाव

डॉ० (श्रीमती) माधुरी मिश्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

'विनय-पत्रिका' तुलसीदास की दूसरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। तुलसीदास की भावनाओं का जितना सहज रूप हमें उनकी इस रचना में मिलता है, किसी अन्य रचना में नहीं मिलता। 'मानस' यदि उनकी साधना का आदर्श प्रस्तुत करता है, तो 'विनय-पत्रिका' उन आदर्शों की अपने जीवन में साधना। इसके अतिरिक्त भी 'विनय-पत्रिका' का महत्व उल्लेखनीय है। हिन्दी के ही नहीं कदाचित् विश्व के सर्वश्रेष्ठ आत्मनिवेदनात्मक साहित्य में 'विनय-पत्रिका' के अनेक गीतों की गणना होगी।

तुलसीदास की रामभक्ति के स्वरूप पर जब हम विचार करते हैं तो स्पष्ट देखते हैं कि वह मानवता की एक महान् कल्पना पर आधृत है। यही कारण है कि उनके पात्र पहले मानव हैं और फिर राम-भक्त हैं। इस विषय में वे कृष्ण-भक्त कवियों से ही नहीं, अग्रदासादि राम-भक्ति की मधुर-धारा के कवियों से भी बहुत पृथक् हैं। इस संदर्भ में यदि उनकी तुलना की जा सकती है तो कबीर आदि निर्गुण उपासक भक्तों से। किन्तु एक बात में वे उनसे भी भिन्न हैं, निर्गुण धारा के भक्त अपनी भक्ति की निष्पत्ति के लिये हठयोग का आश्रय लेते हैं, ज्ञान का आश्रय लेते हैं और मुक्ति की कल्पना करते हैं। तुलसीदास का साधन-साध्य सभी कुछ राम-भक्ति है। वह निष्केवल प्रेम है और वह प्रेम जिस राम से करने का वे उपदेश करते हैं, वे राम हैं मानवता के सबसे बड़े प्रतीक। इसलिये तुलसीदास की राम-भक्ति निरी आध्यात्मिक साधना ही नहीं, वह उतना ही एक नीतिमूलक जीवन-दर्शन भी है।

जीव और ब्रह्म की अपेक्षा तुलसी का मायाविचार ही अधिक गूढ़ होकर सामने आता है। 'विनय-पत्रिका' के इस पद को देखिये, जिसमें तुलसीदास ने सत्य, असत्य और दोनों की ही प्रबलता से पृथक् रहकर आत्मतत्त्व में लीन होने का उपदेश दिया है :

'केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।' ——विनय-पत्रिका, पद १११

आत्मतत्त्व में लीन होने का यह उपदेश तो संगत है, परन्तु देखना यह चाहिए कि इन तीनों में से तुलसीदास किसको मुख्य समझते थे ? तुलसीदास अपनी स्थिति को स्वयं ही स्पष्ट कर देते हैं :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।'

—विनय-पत्रिका, पद १२०

वस्तुतः यह प्रपंच तो मृषा है, किन्तु जो तापों का अनुभव हमें प्रतिक्षण हो रहा है, वह कैसे नष्ट हो? इस विषय में तुलसीदास का निष्कर्ष है :

'तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावे।
रघुपति भगति संत संगति बिनु को भवत्रास नसावै॥'

—विनय-पत्रिका, पद १२१

यदि तत्वदृष्टि से देखा जाए तो इसमें तुलसीदास ने अपने पक्ष को स्पष्ट करके रख दिया है।' 'जदपि झूठ स्रुति गावै' से स्पष्ट है कि तुलसीदास परमार्थतः विधिप्रपंच अथवा संसार को झूठ ही मानते हैं, परन्तु वह उसकी मीमांसा में मग्न नहीं होते। कारण यह है कि उसकी मीमांसा से भ्रम दूर नहीं होता। अतः इस भव-जाल से मुक्त होने का मार्ग राम की भक्ति और संत की संगति से ही है।

यह संसार चित्त का विलास है तो इसका सच्चा स्वरूप भी उसी चित्त में भासित होता है, जो राम की भक्ति से स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न हो चुका है।

अब हमें यह जानना है कि तुलसीदास ने जिस रामभजन को राजमार्ग कहा है, वस्तुतः वह है क्या? रामभजन को लेकर जो कबीर आदि निर्गुण संत चले थे, वह राजमार्ग नहीं था, अपितु वह 'कल्पहिं पंथ अनेक' का ही परिचायक था और 'श्रुतिसम्मत' भी नहीं था। तुलसीदास ने जिस रामभजन को लिया है, वह सबका जाना-समझा और मनभाया हुआ है। तुलसीदास का परम आदेश तो यह है :

'स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि अंग जग रूप भूप सीतावरु॥
इहै भगति बैराग्य ग्यान यह हरि तोषन यह सुभ ब्रत आचरु॥
तुलसिदास सिव मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुं नाहिंन डरु॥'

—विनय-पत्रिका, पद २०५

यहाँ पर तुलसीदास का शिवप्रतिपादित, कल्याणकारी राजमार्ग हमारे सम्मुख आ जाता है।

मूर्तिपूजा के विषय में तुलसी का मत है :

'मन, इतनोई या तन को परम फलु।
सब अंग सुभग बिंदुमाधव छबि, तजि सुभाउ, अवलोकु एक पलु।'

—विनय-पत्रिका, पद ६३

तुलसीदास ने यहाँ इस बात का उल्लेख नहीं किया कि लोग किस प्रकार 'बिन्दुमाधव' की पूजा करते हैं। उनका ध्यान तो केवल इस पर रहा है कि 'बिन्दुमाधव' किस प्रकार किसी के हृदय में बस जाते हैं और उसकी बुद्धि उनके स्वरूप में रम जाती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि तुलसीदास मूर्ति-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पूजा को ठीक नहीं समझते। उनकी दृष्टि में मूर्तिपूजा की उपयोगिता है, किन्तु वह इसे कलियुग का प्रमुख साधन नहीं मानते और इसी से कहते भी हैं :

'कलियुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।
सब भरोस तजि जो भजि रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥'

——मानस, उत्तर० १०३

'विग्रह' के रूप में तुलसीदास बिन्दुमाधव के भक्त थे और वे कहते हैं :

'तुलसिदास भवत्रास मिटै तब, जब मति इहि सरूप अटकै।
नाहिंन दीन मलीन हीन-मुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै।'

'जब मति इहि सरूप अटकै' से प्रकट ही है कि तुलसीदास यहाँ स्वरूप में ही मति को लीन करना चाहते हैं, कुछ पूजा-विधान अथवा अर्चामात्र में नहीं। तुलसीदास के इस पद से इतना और भी विदित हो जाता है कि वे वास्तव में यति थे। कारण, यदि लोग ही इस विग्रह के प्रमुख उपासक हैं।

राम के स्वरूप को तुलसी ने बहुत सराहा है, परन्तु साधना के क्षेत्र में उन्होंने जो महत्व राम के नाम को दिया, वह उनके रूप को नहीं। तुलसीदास अन्तर्बाह्य दोनों को प्रकाशित करने के लिए राम-नाम को ही ठीक समझते हैं और संक्षेप में सहज भाव से कह जाते हैं :

'हिय निर्गुन नैननि्ह सगुन रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम॥'

साधु-समाज के विषय में जब हम तुलसीदास के विचार जानने का प्रयत्न करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उनके किसी भी ग्रंथ का अवलोकन करने पर हमें कहीं 'साधु', कहीं 'विप्र' और 'चरित' शब्द तो सर्वत्र ही मिलता है। तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने 'चरित', 'विप्र' और 'संत' को ही सराहा है और इन्हीं के माध्यम से लोक तथा परलोक दोनों को ही साधा है। यह सत्य है कि तुलसीदास ने 'संत' को विशेष महत्व दिया है; किन्तु उसकी जो कसौटी उन्होंने दी है, वह लोक से उदासीन आत्माभिमुख मनमौजी संत की नहीं है।

साधुओं के असंख्य गुण हैं, किन्तु यदि उनमें 'परहित' नहीं तो कुछ भी नहीं। इस विषय में राम की स्पष्ट वाणी है :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउं तात जानहिं कोविद नर॥'

सारांश यह कि जिसमें लोकहित नहीं, वह साधु नहीं। अन्ततः मानना ही होगा कि तुलसी का साधु-मत वस्तुतः लोकहित का प्रतिपादक है, उसका विरोधी नहीं। राम-भक्ति की भूमिकाओं की समष्टि तुलसीदास ने प्रायः की है और इस प्रकार के समष्टिप्राय पदों के अतिरिक्त राम-भक्ति की कुछ अन्य भूमिकाओं को भी, जैसे——लोक-संग्रह-वृत्ति, वैराग्य-वृत्ति, तन्मयता तथा शुद्ध प्रेमासक्ति को भी यथेष्ट प्राधान्य मिला है।[1] अत्यन्त सुन्दरता के साथ भावाश्रित, कर्माश्रित तथा ज्ञानाश्रित भक्ति-मार्ग की प्रायः

---

१. विनय-पत्रिका, पद २०४, २०५, २६८, ८४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समस्त प्रमुख भूमिकाएँ इन पदों में समाविष्ट हुई हैं। राम-भक्ति के लिए शिव-भक्ति एक स्वतंत्र भूमिका है और बिना शिव-कृपा के राम-भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।[1] तुलसीदास राम के नित्य रूप का ही ध्यान करते हैं। तुलसीदास के राम केवल अवतारी राम नहीं हैं, बल्कि उनकी एक नित्य लीला भी है और तुलसीदास इन्हीं राम का ध्यान करते हैं। भक्त होने के नाते स्वभावतः भक्ति को उन्होंने ज्ञान-विज्ञानादि सभी के ऊपर महत्व दिया है और उसी को साध्य भी माना है। फलतः यहाँ भी हम तुलसीदास के व्यक्तित्व की वह महानता स्पष्ट रूप से देखते हैं, जो अन्यत्र देखी है। जिस प्रकार राम साहित्य के इतिहास में उनका स्थान अमर है, उसी प्रकार उन्होंने राम-भक्ति के इतिहास में भी अपना अमिट स्थान बना लिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति ईश्वरीय या उच्च मानवता के गुणों का विकास और उसके प्रति प्रेम-भाव है। इसीलिये वे निर्गुण ब्रह्म का जप न कहकर राम-रूप सगुण ईश्वर की आराधना की बात कहते हैं। उनकी यह व्याख्या बहुत प्रगतिशील है।

राम के शील स्वभाव को हृदयंगम करना तुलसी की भक्ति या मानवता का मुख्य रूप है। अतः निश्चित है कि उनकी भक्ति जटिल, वैयक्तिक, ऐकान्तिक, एकांगी साधना न होकर सर्वांगीण सामाजिक जीवन का सुन्दर दर्शन है। उनके भक्ति-मार्ग का द्वार सबके लिये खुला है। भक्ति का अंकुर उग आने पर मनुष्य बुराई से दूर हो जाता है, जबकि अन्य मार्गों में, जिनमें अपनी साधना के सहारे का अहंवाद विद्यमान है, विकारग्रस्त हो जाने का भय सदैव रहता है। इस मार्ग में राम के गुणों का, सम-विषम परिस्थिति में उनके आचार का तथा उनकी कृपा का सदैव सहारा है, अतः मार्ग से भ्रमित होने का डर इसमें नहीं है। इस प्रकार भक्ति-मार्ग की सरलता और निश्चयता के द्वारा तुलसीदास लोगों के हृदयों में गहन आस्था एवं आस्तिकता भर सके, जिसके बिना निराशा के अंधकार में जीवन बोझिल हो जाता। उसी जीवन के प्रति आस्था को प्राप्त करने के लिए आज भी हम महात्मा तुलसीदास के पास जाते हैं और यही उनके युग-युग और जन-जन में प्रिय होने का रहस्य है।

---

१. विनय-पत्रिका, पद १०-२१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पूजा को ठीक नहीं समझते। उनकी दृष्टि में मूर्तिपूजा की उपयोगिता है, किन्तु वह इसे कलियुग का प्रमुख साधन नहीं मानते और इसी से कहते भी हैं :

'कलियुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।
सब भरोस तजि जो भजि रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥'

——मानस, उत्तर० १०३

'विग्रह' के रूप में तुलसीदास बिन्दुमाधव के भक्त थे और वे कहते हैं :

'तुलसिदास भवत्रास मिटै तब, जब मति इहि सरूप अटकै।
नाहिंन दीन मलीन हीन-मुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै।'

'जब मति इहि सरूप अटकै' से प्रकट ही है कि तुलसीदास यहाँ स्वरूप में ही मति को लीन करना चाहते हैं, कुछ पूजा-विधान अथवा अर्चामात्र में नहीं। तुलसीदास के इस पद से इतना और भी विदित हो जाता है कि वे वास्तव में यति थे। कारण, यदि लोग ही इस विग्रह के प्रमुख उपासक हैं।

राम के स्वरूप को तुलसी ने बहुत सराहा है, परन्तु साधना के क्षेत्र में उन्होंने जो महत्व राम के नाम को दिया, वह उनके रूप को नहीं। तुलसीदास अन्तर्बाह्य दोनों को प्रकाशित करने के लिए राम-नाम को ही ठीक समझते हैं और संक्षेप में सहज भाव से कह जाते हैं :

'हिय निर्गुन नैननि्ह सगुन रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम॥'

साधु-समाज के विषय में जब हम तुलसीदास के विचार जानने का प्रयत्न करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उनके किसी भी ग्रंथ का अवलोकन करने पर हमें कहीं 'साधु', कहीं 'विप्र' और 'चरित' शब्द तो सर्वत्र ही मिलता है। तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने 'चरित', 'विप्र' और 'संत' को ही सराहा है और इन्हीं के माध्यम से लोक तथा परलोक दोनों को ही साधा है। यह सत्य है कि तुलसीदास ने 'संत' को विशेष महत्व दिया है; किन्तु उसकी जो कसौटी उन्होंने दी है, वह लोक से उदासीन आत्माभिमुख मनमौजी संत की नहीं है।

साधुओं के असंख्य गुण हैं, किन्तु यदि उनमें 'परहित' नहीं तो कुछ भी नहीं। इस विषय में राम की स्पष्ट वाणी है :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउं तात जानहिं कोविद नर॥'

सारांश यह कि जिसमें लोकहित नहीं, वह साधु नहीं। अन्ततः मानना ही होगा कि तुलसी का साधु-मत वस्तुतः लोकहित का प्रतिपादक है, उसका विरोधी नहीं। राम-भक्ति की भूमिकाओं की समष्टि तुलसीदास ने प्रायः की है और इस प्रकार के समष्टिप्राय पदों के अतिरिक्त राम-भक्ति की कुछ अन्य भूमिकाओं को भी, जैसे——लोक-संग्रह-वृत्ति, वैराग्य-वृत्ति, तन्मयता तथा शुद्ध प्रेमासक्ति को भी यथेष्ट प्राधान्य मिला है।[1] अत्यन्त सुन्दरता के साथ भावाश्रित, कर्माश्रित तथा ज्ञानाश्रित भक्ति-मार्ग की प्रायः

---

१. विनय-पत्रिका, पद २०४, २०५, २६८, ८४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समस्त प्रमुख भूमिकाएँ इन पदों में समाविष्ट हुई हैं। राम-भक्ति के लिए शिव-भक्ति एक स्वतंत्र भूमिका है और बिना शिव-कृपा के राम-भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।[1] तुलसीदास राम के नित्य रूप का ही ध्यान करते हैं। तुलसीदास के राम केवल अवतारी राम नहीं हैं, बल्कि उनकी एक नित्य लीला भी है और तुलसीदास इन्हीं राम का ध्यान करते हैं। भक्त होने के नाते स्वभावतः भक्ति को उन्होंने ज्ञान-विज्ञानादि सभी के ऊपर महत्व दिया है और उसी को साध्य भी माना है। फलतः यहाँ भी हम तुलसीदास के व्यक्तित्व की वह महानता स्पष्ट रूप से देखते हैं, जो अन्यत्र देखी है। जिस प्रकार राम साहित्य के इतिहास में उनका स्थान अमर है, उसी प्रकार उन्होंने राम-भक्ति के इतिहास में भी अपना अमिट स्थान बना लिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति ईश्वरीय या उच्च मानवता के गुणों का विकास और उसके प्रति प्रेम-भाव है। इसीलिये वे निर्गुण ब्रह्म का जप न कहकर राम-रूप सगुण ईश्वर की आराधना की बात कहते हैं। उनकी यह व्याख्या बहुत प्रगतिशील है।

राम के शील स्वभाव को हृदयंगम करना तुलसी की भक्ति या मानवता का मुख्य रूप है। अतः निश्चित है कि उनकी भक्ति जटिल, वैयक्तिक, ऐकान्तिक, एकांगी साधना न होकर सर्वांगीण सामाजिक जीवन का सुन्दर दर्शन है। उनके भक्ति-मार्ग का द्वार सबके लिये खुला है। भक्ति का अंकुर उग आने पर मनुष्य बुराई से दूर हो जाता है, जबकि अन्य मार्गों में, जिनमें अपनी साधना के सहारे का अहंवाद विद्यमान है, विकारग्रस्त हो जाने का भय सदैव रहता है। इस मार्ग में राम के गुणों का, सम-विषम परिस्थिति में उनके आचार का तथा उनकी कृपा का सदैव सहारा है, अतः मार्ग से भ्रमित होने का डर इसमें नहीं है। इस प्रकार भक्ति-मार्ग की सरलता और निश्चयता के द्वारा तुलसीदास लोगों के हृदयों में गहन आस्था एवं आस्तिकता भर सके, जिसके बिना निराशा के अंधकार में जीवन बोझिल हो जाता। उसी जीवन के प्रति आस्था को प्राप्त करने के लिए आज भी हम महात्मा तुलसीदास के पास जाते हैं और यही उनके युग-युग और जन-जन में प्रिय होने का रहस्य है।

---

१. विनय-पत्रिका, पद १०-२१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तुलसी और ब्राह्मणवाद

⊙

डॉ० उदयभान मिश्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

तुलसीदास जी ने ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा की है, उनके माहात्म्य का बार-बार उल्लेख किया है। इतना लिखा है कि यदि कोई उन्हें पण्डे-पुजारियों का वकील कह बैठे, तो कोई आश्चर्य नहीं। भागवत धर्म की मानवतावादी धारा पर जाति-पाँति का बोलबाला फिर बुलन्द करना और उसे फिर वेदसम्मत बताकर निम्न वर्णों के मुँह बन्द करना, भक्तिगत समानता द्वारा सामाजिक समानता की भूलभुलैया में डालकर निम्न वर्णों के सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मण के हाथ में दे देना और स्वयं भगवान् से इसका समर्थन करा देना; यही तो हमें 'मानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' में विशेष रूप से मिलता है।

तुलसी मानते हैं कि जब समाज में वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है तो वह समाज निरन्तर दुःख पाने लगता है। जिस समाज में वर्ण व्यवस्था पल्लवित और कुसुमित होती रहती है, उस समाज में सदा सुख की वर्षा होती रहती है। लोगों के पास भय, रोग और शोक भूल कर भी नहीं फटकता। 'कलियुग' में 'वर्ण-धर्म' छिन्न-भिन्न हो जाता है, किन्तु रामराज्य स्थापित होने पर उसकी तूती बोलने लगती है। इस प्रकार यह एकदम स्पष्ट है कि तुलसी वर्णाश्रमवादी थे।

तुलसी वर्ण को जन्मजात मानते हैं। मनुष्य जन्म से ही विप्र, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कुल में जन्म लेता है। काकभुसुण्डि, गरुड़ से अपनी जन्म-जन्मान्तर की कथाएँ सुनाते हुए कहते हैं कि एक जन्म में मैं अयोध्या में शूद्र कुल में पैदा हुआ था। राम भी अपने पुरुषार्थ और शक्ति की प्रामाणिकता परशुराम के सामने अपने 'वंशगत-शौर्य' के आधार पर देते हैं। चूँकि वे रघुवंशी हैं, इसलिए युद्ध से भागना या शत्रु के सामने हथियार डाल देना उनके लिए कल्पनातीत है।

तुलसी के वर्ण-धर्म में 'विप्र' समाज का श्रेष्ठतम प्राणी है। तुलसी जब मानस की रचना करने के लिए बैठते हैं तो विप्र की वन्दना करते हैं। जब अपने आराध्य राम की प्रार्थना करते हैं तो उसके साथ ही विप्र को भी पूजना नहीं भूलते हैं। ब्राह्मणों का प्रसन्न होना सब मंगलों की जड़ है। उनका क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है। शिव कहते हैं : जो इन्द्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल काल के दण्ड और विष्णु के भयंकर चक्र के मारे भी नहीं मरता, वह भी विप्र-द्रोह रूपी अग्नि में भस्म हो जाता है। द्विज से वैर करने वाले का वंश नहीं चल सकता। जिस प्रकार जाड़े के मारे मच्छर और डाँस नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण से द्रोह करने पर कुल का नाश हो जाता है। जब ब्राह्मण शाप दे देता है तो विष्णु के प्रिय द्वारपाल जय, और विजय तक भी 'असुर' योनि में पहुँच जाते हैं। मुनि कहते हैं, हे राजन ! काल भी तुम्हारे चरणों पर सिर नवाएगा, केवल एक ब्राह्मण कुल को छोड़कर। ब्राह्मण कुल से जोर-जबरदस्ती नहीं चलती। विजय प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण का सत्कार अभेद कवच है। जगत् में पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं। वह है मन, कर्म

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और वचन से ब्राह्मणों की पूजा करना। भगवान् राम को वे ही लोग प्रिय हैं, जो ब्राह्मणों के चरणों में भक्ति रखते हैं। वह जन्म धन्य है, जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति है। जप, तप, व्रत, दया, संयम, नेम के साथ ही मनुष्य को गुरु, गोविन्द और विप्र के चरणों में प्रीति रखनी चाहिए। राम-राज्य में समाज का हर व्यक्ति उदार, उपकारी और ब्राह्मणों का भक्त होता है। कलिकाल में अधर्म बढ़ जाता है और लोग माता-पिता, गुरु और ब्राह्मण का तिरस्कार करने लगते हैं। भगवान्, अपनी इच्छा से देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मण के लिए अवतार लेते हैं। भक्त, भूमि, भूसुर, सुर के हितों की रक्षा के लिए ही भगवान् मनुष्य का रूप धारण करते हैं।

जब असुरों का अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है और ब्राह्मण, गौ, देवता और धरती चीखने लगते हैं, तब प्रभु अवतार लेकर सज्जनों का कष्ट दूर करते हैं। अवतार लेकर भगवान् ब्राह्मणों की पूजा करते हैं। युद्ध करने के लिए प्रस्थान करते समय वे ब्राह्मणों की वन्दना करते हैं। युद्ध जब उन्हें बहुत भयंकर लगने लगता है तो शक्ति प्राप्त करने के लिए वे मन ही मन ब्राह्मण के चरणों को प्रणाम करते हैं—जिनके बल पर वे युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें। राम वसिष्ठ (ब्राह्मण और गुरु) का परिचय अपने सखा बन्धुओं से देते हुए कहते हैं : ये हमारे कुल के पूज्य गुरु वसिष्ठ हैं। इन्हीं की कृपा से मैंने युद्ध में राक्षसों पर विजय प्राप्त की है। इस प्रकार राम ब्राह्मण के कष्ट को दूर करने के लिए जन्म लेते हैं। उन्हीं ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करके राक्षसों का संहार करते हैं और फिर ब्राह्मणों को अभय तथा सुखी बनाते हैं। ये ब्राह्मण यज्ञ कराते हैं, मंत्रणा देते हैं। महत्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन के समय राजा के साथ रहते हैं। गद्दी पर बिठाने के लिए उत्तराधिकारी का चुनाव करते समय राजा ब्राह्मण की राय लेता है। राज्याभिषेक के समय इन ब्राह्मणों का रहना आवश्यक है। जब सीता को बिदाई देने के लिए जनक चलते हैं तो विप्र समाज तथा विप्र मंत्री उनके साथ रहता है। ये द्विज मंगल-अवसरों पर वेद पाठ करते हैं। दान लेते हैं और इसके अतिरिक्त ये ब्राह्मण 'संदेशवाहक' का भी कार्य करते हैं। इसलिए कि ये अवध्य हैं। शत्रुपक्ष में भी संदेशवाहक की हैसियत से ये खुले-आम जा सकते हैं। हनुमान जब विभीषण के घर में प्रवेश करने लगते हैं तो विप्र का रूप धारण कर लेते हैं। जब सुग्रीव हनुमान को राम के पास उनका भेद लेने के लिए भेजता है तो हनुमान 'विप्र' का वेश धारण कर राम के पास जाते हैं। जब राम के वाण से समुद्र व्याकुल हो गया और जब उसके सामने बचने का कोई दूसरा उपाय न रह गया तो विवश होकर उसने राम की शरण में जाने की सोची, लेकिन प्रश्न था जाए कैसे? फिर उसने विप्र का रूप धारण कर जाने का निश्चय किया—क्योंकि विप्र सदा 'अवध्य' होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि तुलसी के हृदय में ब्राह्मणों के प्रति अगाध श्रद्धा है; किन्तु इस श्रद्धा का अर्थ यह नहीं कि वे विचारों के वशीभूत होकर शूद्रों या अन्य जातियों की अधमता चाहते थे। जब वह 'विप्र' शब्द का उच्चारण करते हैं तो उनके मानस में समाज का वह ज्योतिर्मय स्तर कौंधने लगता है; जो ज्ञान, सत, विवेक का वाहन करनेवाला; समस्त सृष्टि के कल्याण की बात सोचने वाला; मनस्वी, भविष्यद्रष्टा और परहित धर्म को सबसे बड़ा धर्म मानने वाला होता है। सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की मंगल साधना में जो रत रहता है। तप बल की अग्नि से सदा प्रज्ज्वलित रहनेवाले विप्रों का उनके सामने चित्र रहता है। राम, परशुराम से कहते हैं : 'हे देव! हम क्षत्रियों के पास तो केवल एक ही गुण है—वह है यह 'धनुष'; किन्तु आप ब्राह्मणों के पास तो परम पवित्र नौ गुण सदा विद्यमान रहते हैं। शम, दम, तप, शौच, क्षमा,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता वाले ब्राह्मणों के सामने तो हम क्षत्रिय सदा हारे हुए हैं। हमारे अपराधों को क्षमा कीजिए।'

यह है वास्तविक विप्र का स्वरूप; जिसकी तुलसी वन्दना करते हैं, उनके राम वन्दना करते हैं और तुलसी और राम दोनों समाज को 'विप्र-पूजा' का आदेश देते हैं। 'विप्र वह होता है जो व्यवहार क्षेत्र में जनसमूह के प्रति उदार और उपकारी हो।' यही बात उनकी इस चौपाई में दर्शायी गयी है 'सब उदार, सब पर उपकारी, विप्र चरन सेवक नर नारी।' जिस द्विज में क्षमा, शील और परोपकार की भावना है, वही द्विज राम को प्रिय है, ऐसा वे अपने मुख से कहते हैं।

इसे क्षुद्र जातीयता के चश्मे से देखने का प्रयास हमें नहीं करना चाहिए। तुलसी की विप्र-पूजा मनुष्य की विराट अन्तर्गर्भा शक्तियों की पूजा है। जहाँ मानव की यह श्रेष्ठतम और पवित्रतम शक्ति अपनी मर्यादा से गिर जाती है, वहाँ तुलसी उसकी घोर निन्दा करते हैं। वे वास्तविक 'विप्र' के समर्थक हैं, न कि पतित विप्र के, वे तो स्पष्ट लिखते हैं :

'सोचि अ विप्र जो वेद विहीना
तजि निज धरम विषय लय लीना।'

तुलसी को जातीय पक्षपाती और रूढ़ ब्राह्मणवादी हम तब कह सकते थे, जब वे 'वेद-विहीन', 'धर्म-च्युत' ब्राह्मणों की भी स्तुति गाते। वे तो ऐसे ब्राह्मणों पर थूकते हुए लिखते हैं :

'विप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार शठ वृषला स्वामी।

तुलसी के सामने जाति-पाँति की रूढ़ कल्पना नहीं थी। वे जब भी विप्र, शूद्र, क्षत्रिय या वैश्य का नाम लेते हैं तो उनका ध्यान उनके कर्मों की ओर पहले जाता है। वे वर्णधर्म को इसलिए स्वीकार करते हैं कि वह मनुष्य को सुखी बनाता है; उसे भय, शोक, रोग से मुक्त करता है। भले ही आज उसकी आवश्यकता नहीं है :

'बरनाश्रम निज निज धरम
निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख
नहिं भय शोक न रोग॥'

तुलसी के वर्णाश्रम धर्म में यह कभी सह्य नहीं था कि शूद्रों के लिए सड़कें वर्जित कर दी जाएँ या सड़कों पर थूकने के लिए उन्हें अपने साथ पुरवा लेकर चलना पड़े। उनका वर्णाश्रम धर्म इन अतिवादी कट्टरताओं से मुक्त था। उनके राम के राजघाट पर शूद्र भी उसी प्रकार स्नान करता है, जिस प्रकार विप्र। उनके राम शूद्र निषाद से गले मिलते हैं। उसे अपना भाई मानते हैं। श्रेष्ठ-ऋषि वसिष्ठ निषाद से दौड़ कर लिपट जाते हैं

इसी 'मानव धर्म' के वशीभूत होकर राम शूद्र शबरी के जूठे बेरों को बड़े चाव से खाने लगते हैं। गोस्वामी जी ब्राह्मणपूजक होते हुए भीह रिजन उत्थान के प्रबल समर्थक थे। उनके काकभुसुण्डि शूद्र योनि में भी हर मन्दिर में पहुँच कर जाप किया करते थे और मंत्र दीक्षित बन सकते थे।

सारांश यह है कि चहुँ ओर से परखनेवाले समाज के समीक्षक तुलसीदास को, जिन्होंने विप्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

को 'विप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार शठ नृषला स्वामी' कह कर बहुत ही नीच कह डाला है। यदि कोई कहे कि वह ब्राह्मण या विप्र के पक्षपाती और शूद्र कहे जाने वाले व्यक्तियों के द्रोही थे, तो हम तो यही कहेंगे कि उसने तुलसीदास को समझा ही नहीं।

एक जगह तुलसी ने यह भी लिखा है कि 'शूद्र' ताड़ना का पात्र है। यहाँ भी तुलसीदास जी ने जातीय रागद्वेष से प्रेरित होकर नहीं लिखा है। इसे समझने के लिए हमें इस कथन का सन्दर्भ समझना होगा। राम अपनी सेना के साथ समुद्र के किनारे ठहरे हुए हैं। उनकी स्त्री सीता को रावण अपहरण करके लंका में उठा ले गया है। राम लंका पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी कर चुके हैं; किन्तु रास्ते में समुद्र है। बिना उसे पार किए लंका कैसे पहुँचें ? अतः उस पर सेतु बनाना है। वे समुद्र से मार्ग देने की प्रार्थना करते हैं, किन्तु समुद्र अपने मद में चूर है। राम की प्रार्थना अनसुनी कर देता है। इस प्रकार दिन बीतते चले जा रहे हैं और आज्ञा न प्राप्त कर सकने के कारण लंका पर चढ़ाई करने और सीता को मुक्त करने में विलम्ब हो रहा है। तब राम 'बिनु भय होइ न प्रीति' की नीति अपनाते हैं। 'विनय न मानत जलधि जड़' को वे अपने बाण के प्रहार से विकल कर देते हैं—तब समुद्र उनकी शरण में आता है और त्राण की भिक्षा माँगते हुए राम की इस दण्ड-नीति का औचित्य स्वीकार करता है।

यहाँ हमें तुलसी का निरपेक्ष अध्ययन करना है। निश्चित रूप से समुद्र द्वारा 'शूद्र' को नीच माना गया है और उसे ताड़ना देने का भी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है।

जब इतिहास के आलोक में तुलसी के युग पर दृष्टि डालते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि मुगल काल में समाज में स्त्री और शूद्र की स्थिति बहुत कारुणिक और हेय थी। इनका समाज में तनिक भी सम्मान नहीं था—यह बात सोलहों आने सही है। इसलिए 'समुद्र जब शूद्र को बिना किसी औचित्य के ही ताड़ना का अधिकारी बताता है तो वह मुगलकालीन समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य' का प्रतिनिधित्व करता है। उस समय ये तीनों जातियाँ शूद्रों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करती थीं।

अब देखना यह है कि क्या तुलसी भी समुद्र के इस कथन के साथ हैं। उत्तर मिलता है—कहीं नहीं और 'मानस' में शूद्र का प्रतीक 'निषाद' और नारी की प्रतीक 'सीता' दोनों की आराधना करते हैं। वे इन्हें स्वयं उच्चासन पर बिठाते हैं और अपने राम से भी बिठवाते हैं।

इस तरह काकभुसुण्डि जब यह कहता है कि वह एक जन्म में अयोध्या में शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ था तो तुरन्त अपने गुणों का भी हवाला देता है : धन मद मत्त परम बाचाला, उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला !

'मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह।
हरिजन, द्विज देखे जरऊँ, करउँ बिष्णु कर द्रोह॥'

वास्तव में तुलसीदास जाति को जन्मना और कर्मणा दोनों का समन्वय मानते हैं। शूद्र योनि में जन्म लेकर काकभुसुण्डि तब तक नीच जाति के विशेषण से सम्बन्धित नहीं होता; जब तक उसमें धन-मद, वाचालता, उग्र, बुद्धि अपार दंभ, ईर्ष्या, और अपकार की भावना के दर्शन नहीं होते।

तुलसीदास वर्णाश्रमवादी थे, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र—सब की अलग-अलग मर्यादा और सबका अलग-अलग शील स्थापित किया है; किन्तु उनका वर्ण-धर्म वह वर्ण धर्म नहीं था, जो

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

महाजनपद युग के बाद मुगल-काल तक आते-आते कट्टरवादी और निष्ठुर हो गया था; जिसमें 'अस्पृश्यता', 'खानपान में भेद' और शूद्रों के साथ पशुता का व्यवहार जैसे घृणित कीड़े लग गए थे।

तुलसीदास अपने वर्ण-धर्म को लचीला बनाने के आकांक्षी हैं। वर्णधर्म की आत्मा को वे अपने मानव-धर्म में देखने लगते हैं—जिसमें परहित सबसे बड़ा धर्म है और 'बड़े भाग मानुष तन पावा' जीव की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

तुलसी का मानव-धर्म मुगलकालीन विकृत वर्ण-धर्म की ही प्रतिक्रिया में उत्पन्न होते हुए भी प्राचीन काल के निष्कलुष वर्णधर्म का ही पवित्र स्थान है। मानव-धर्म 'वर्ण-धर्म' का उसके पवित्रतम रूप में स्थापित होने का प्रयास है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रीतिकालीन साहित्य का भौगौलिक विस्तार

डॉ० वै० वेंकटरमण राव
एम० ए०, पी-एच० डी०

१-० प्रास्ताविक

यह सर्वमान्य सत्य है कि प्राकृतिक अवस्था और मानव जीवन में आधार-आधेय का सम्बन्ध है। जीवन की आधारभूत सामग्री का स्रोत भौगोलिक परिस्थितियों में ही निहित रहता है। इसी आधारभूत सामग्री के अनुसार किसी देश या काल की जीवन-पद्धति बहुत कुछ निश्चित होती है। भौगोलिक परिस्थितियाँ और संपत्ति जीवन की बाह्य सज्जा को ही समृद्ध नहीं बनातीं, जीवन-यापन की विधियों के द्वारा मनुष्य की रुचि, उसके सांस्कृतिक विकास और साहित्य रचना को भी अत्यधिक प्रभावित करती हैं। भौगोलिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक अंतरावलंबन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी निश्चित करती हैं। भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थितियों ने ऐतिहासिक रूप से देश के चिंतन को विकास की दिशा प्रदान की है। अनेक जातियों का आगमन और अनेक सांस्कृतिक तत्वों का मिश्रण या समन्वय अव्यक्त रूप से देश के भौगोलिक तत्वों के कारण ही माने जा सकते हैं।

प्रायः सभी विद्वानों ने भौगोलिक परिस्थितियों और संस्कृति एवं साहित्य के सम्बन्ध को स्वीकार किया है। किसी देश का प्राकृतिक सौन्दर्य काव्यगत भावात्मक सौंदर्य की पृष्ठभूमि बनाता है। प्रकृति की विविध सज्जाएँ उसके अप्रस्तुत-विधान को समृद्ध करती हैं। उद्दीपन सामग्री का निरूपण, ऋतु-वर्णन आदि तो भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर ही संपन्न होते हैं। कवि की कल्पना और अनुभूति के साथ संगति बिठानेवाली शक्ति प्राकृतिक उपकरणों में है। प्रकृति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि त्वरित गति से बदल सकती है, पर उसके प्रति कवि की सौंदर्य-बोध-परक दृष्टि कम बदलती है। इसीलिए अनेक काव्य-रूढ़ियाँ प्राकृतिक उपादानों के सम्बन्ध में दीर्घ काल तक चलती रहती हैं। प्रकृति के विशिष्ट अंगों पर कुछ सांस्कृतिक परम्पराएँ या विश्वास भी बन जाते हैं। कवि भी परंपरा से संस्कृत और समादृत प्राकृतिक रूपों को काव्य में स्थान देता है और भावात्मक संस्पर्श से प्रकृति को सजीव करके अपने काव्य-विधान को विस्तार देता है। काव्य सृष्टि प्राकृतिक वातावरण से विच्छिन्न होकर न प्रभावोत्पादक बन सकती है और न समग्र या सजीव। यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि काव्य का अस्तित्व प्राकृतिक उपजीव्य के बिना संभव नहीं है।

प्रस्तुत लेख में रीतिकालीन काव्य से संबद्ध भौगोलिक विस्तार तथा उन परिस्थितियों का यथासंभव काव्य में निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है। रीतिकालीन काव्य की भाषा ब्रज-भाषा रही है। रीतिकालीन काव्य क्षेत्र ब्रजभाषा व्यवहार क्षेत्र से बहुत बड़ा है। ब्रज की सीमाओं से बाहर के कवियों ने भी ब्रजभाषा काव्य का विस्तार किया है। इसीलिए भिखारीदास ने यह स्पष्ट किया है कि ब्रजभाषा काव्य के लिए ब्रज में निवास की आवश्यकता नहीं है:

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'सूर केसव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्मा,
चिंतामणि, मतिराम, भूषण सुजानिए।
लीलाधर, सेनापति, निपट नेवाज, निम्मा,
नीलकण्ठ, मिश्र सुखदेव मानिए॥
आलम, रहीम, रसखान, सुंदरादि
अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमान्यो
ऐसे ऐसे कविन की बानी सों जानिए॥'

१-१ ब्रजभाषा काव्य-क्षेत्र

भिखारीदास ने स्पष्ट निरूपित किया है कि ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियों में अनेक उस भाषा क्षेत्र के घेरे से बाहर के हैं। इस बृहत्तर क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है : "ब्रज की वंशी की ध्वनि के साथ अपने पदों की अनुपम झंकार मिलाकर नाचनेवाली मीराँ राजस्थान की थी, नामदेव महाराष्ट्र के थे, नरसी गुजरात के थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भोजपुरी भाषा क्षेत्र के थे—बिहार में भोजपुरी, मागधी और मैथिली भाषा क्षेत्र में भी ब्रजभाषा के कई प्रतिभाशील कवि हुए हैं।" इससे यह निश्चित होता है कि ब्रजभाषा काव्य का बृहत्तर क्षेत्र बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान को भी समेट लेता था। इन प्रांतों को यदि रीतिकालीन साहित्य की देशगत इकाई के निर्धारण में छोड़ भी दिया जाय—क्योंकि यह भक्तिकालीन ब्रजभाषा काव्य का बृहत्तर क्षेत्र कहा जा सकता है—तब भी रीतिकालीन साहित्य की देशगत इकाई कम से कम एक दूसरे घेरे तक तो अवश्य ही रहती है; जिसकी सीमाएँ ब्रजभाषा व्यवहार क्षेत्र की सीमाओं से भिन्न हैं।

१-२ रीतिकालीन काव्य का विस्तार क्षेत्र

रीतिकालीन काव्य के विस्तार क्षेत्र का निरूपण अनेक आधारों पर किया जा सकता है। लेकिन सबसे वैज्ञानिक कवियों के स्थानों के आधार पर किया गया निरूपण ही माना जा सकता है। इसका समर्थन रीतिकालीन आश्रयदाता राजाओं के राज्यों की स्थिति से भी हो सकता; पर विवेचन की सुविधा और सुबोधता के लिए रीतिकाल के कवि जिन-जिन स्थानों से संबद्ध थे, उनकी एक प्रतिनिधि सूची नीचे दी जा रही है। सीमा-निर्धारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कवियों की यह सूची निम्नलिखित क्षेत्रों के अनुसार विभाजित करके दी गयी है। प्रमुख क्षेत्र ये हैं:

१. पारिभाषिक रूप से ब्रज क्षेत्र
२. पूर्वी क्षेत्र—मिर्जापुर, कानपुर, हरदोई, इटावा, लखनऊ
३. भोजपुरी क्षेत्र—बनारस
४. राजस्थान
५. बुन्देलखण्ड
६. बृहत्तर क्षेत्र।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१-२.१ पारिभाषिक रूप से ब्रज क्षेत्र

आगरा—कुलपति मिश्र, अलीमुहीब खाँ, रसिक सुमति; मथुरा—ग्वाल कवि, सूदन; रामपुर (मथुरा के पास)—गणेश बख्श; वृन्दावन—रसिक गोविंद, व्रजवासीदास, नवीन कवि, घनआनंद।

१-२.२ पूर्वी क्षेत्र

तिकवापुर (कानपुर)—चिंतामणि, मतिराम, भूषण; माड़ी (कानपुर)—दत्त; दौलतपुर (रायबरेली)—सुखदेव मिश्र; इटावा—देव, सबलसिंह चौहान; बसुवा गोविंदपुर (ग्वालियर)—बिहारीलाल; अन्तर्वेद (फतेहपुर)—कालिदास, नेवाज, कवीन्द्र (उदयनाथ), दूलह; कालपी—श्रीपति; बिलग्राम (हरदोई)—रसलीन; कन्नौज—मनीराम मिश्र; शाहजहाँपुर—चंदन; मकरंदनगर (कन्नौज)—देवकीनंदन; डोंडिया खेरे (रायबरेली)—थान कवि; बैंसी (रायबरेली)—वेनी वंदीजन; लखनऊ—वेनी प्रवीन, ललकदास; मल्लावाँ (हरदोई)—सम्मन; मिर्जापुर—कृष्णदास; असोथर—शंभूनाथ मिश्र; अयोध्या—जनकराज शिव मणि; श्रृंगवेरपुर (इलाहाबाद)—तोषनिधि; प्रयाग—श्रीधर या मुरलीधर; जौनपुर—रणधीर सिंह।

१-२.३ भोजपुरी क्षेत्र

काशी (बनारस)—गंजन, हरिनाथ, मनियारसिंह, रघुनाथ, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, ब्रह्मदत्त; गणेश चौबेपुर (बनारस)—चन्द्रशेखर, रामसहाय दास; प्रतापगढ़ (अवध)—भिखारीदास; चौरागाँव (काशीराज्य)—रघुनाथ; गोरखपुर—ऋषिनाथ; अयोध्या—जनकराज शिरोमणि, लखिराम, द्विजदेव।

१-२.४ राजस्थान

मारवाड़—जसवंतसिंह; भरतपुर—सोमनाथ; जयपुर—शिवसहाय दास, व्रजनिधि, जनराज, पद्माकर, जयचन्द्र; नरवरगढ़—रामसिंह; कृष्णगढ़—नागरीदास, सुन्दरकुमारी बाई; बसोथर—शंभुनाथ, भगवंतराय खीची; बाँदा—बोधा; जैतपुर—ठाकुर, मंडन; कोटा—मुकुंदसिंह; समथर—नवलसिंह; मेड़ता (जोधपुर)—वृन्द; जोधपुर—चन्द्रशेखर वाजपेयी; मेवाड़—मानकवि।

१-२.५ बुन्देलखण्ड

बुन्देलखण्ड—छत्रसाल, हरिकेश; पन्ना—रूपसाहि, करण कवि, पजनेस, बख्शी हंसराज, बोधा, हरिदास कायस्थ; चरखारी—प्रतापसाहि, गुमान, विक्रमसाहि, बलदेव ब्राह्मण; मऊ—लाल कवि, मंचित; रीवाँ—विश्वनाथसिंह, घनश्याम शुक्ल, समनेस, महाराजा मधुकर राज सिंह; दतिया—रसनिधि, नारायण; ओरछा—केशवदास, गोप कवि; असनी—ठाकुर, बैरीसाल; जैतपुर—मंडन।

१-२.६ बृहत्तर क्षेत्र

अहमदाबाद (गुजरात)—दलपतिराय, वंशीधर; पटियाला—उमादास, निहाल, संतोषसिंह; महाराष्ट्र—भूषण; दिल्ली—वीर आलम; गढ़वाल (श्रीनगर)—रतन कवि आदि।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१-३ भौगोलिक स्थिति

उपर्युक्त समस्त भूभाग का अधिकांश भाग मैदान है। कहीं-कहीं पहाड़ियाँ और टीले बिखरे हुए हैं। राजस्थान मरु भूमि है। यह क्षेत्र जलवायु की दृष्टि से गर्मियों में बहुत गरम और जाड़ों में बहुत शीतल रहता है। पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वी क्षेत्र में वर्षा अधिक होती है। राजस्थान में धूल भरी आँधियाँ चलती हैं, जो ब्रज तक को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार के पर्वत, नदियाँ और सागर नहीं हैं, जो जलवायु को प्रभावित कर सकें।

राजस्थान की ही भाँति बुन्देलखण्ड की स्थिति नहीं है। इसकी भौगोलिक स्थिति का परिचय एक कवि ने इस प्रकार दिया है :

'इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस॥
उवर समतल भूमि, गंग जमुन सुबहति हैं।
प्राची दिशा कैमूर, सोन कासी सुलसति हैं॥
दक्खिन रेवा विंध्याचल, तन सीतल करनी।
पश्चिम में चंबल, चंचल सोहत मन हरनी॥
तिन मधि राजे गिरि, बन सरिता सहित मनोहर।
कीर्तिस्थल बुन्देलन, को बुंदेल खंडवर॥'

ब्रज की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। ब्रज की प्राकृतिक शोभा का वर्णन पौराणिक साहित्य में भी पर्याप्त मिलता है। कृष्णवार्ता से सम्बन्धित भूमि होने के कारण काव्य और इतिहास में यहाँ के पशु, पक्षी, वनस्पति आदि का वर्णन भी मिलता है। वनस्पति की दृष्टि से मथुरा जिले के आसपास का ब्रज प्रदेश पुराण काल में वनों के लिए प्रसिद्ध था। आज लगभग समस्त भूमि कृषि योग्य बन गयी है। प्राचीन वनों के अवशेष के रूप में करील, पीलू, सिरस, ढाक आदि के वृक्ष आज भी मिलते हैं। करील और तमाल साहित्य में भी विशेष रूप से वर्णित हैं। कृषि-कर्म के साथ पशुपालन का व्यवसाय भी प्रचलित है। जाट, गूजर और अहीर जातियाँ पशुपालन से विशेष रूप से सम्बद्ध हैं। जंगली जानवरों में कोई विशेष हिंसक पशु नहीं मिलते।

संक्षेप में यही रीतिकालीन काव्य-क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति है। आगे इस क्षेत्र में रहनेवाले रीतिकालीन कवियों के साहित्य के आधार पर पशु, पक्षी और वनस्पति पर विचार किया गया है।

१-४ रीतिकालीन साहित्य में उपलब्ध प्राकृतिक-स्थिति

वैसे रीतिकालीन कवि का प्रकृति से कम सम्बन्ध था। वह परंपरागत प्रकृति वर्णन से ही संतुष्ट रहता था। फिर भी भौगोलिक पर्यावरण का उस पर प्रभाव पड़ना साधारण बात है। बारह-मासा, ऋतु-वर्णन आदि को परंपरागत ही कह सकते हैं। पर रीतिकालीन काव्य में कृष्ण और उनकी शृंगार लीलाओं का प्राधान्य रहा। इसलिए ब्रज के रूढ़ पक्षी और वृक्षों आदि का वर्णन काव्य में मिल जाता है। ये रूढ़ वर्णन भी स्थानीय वैशिष्ट्य से विच्छिन्न नहीं हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१-४.१ नदियाँ और पहाड़

रीतिकालीन साहित्य में यमुना, गंगा, नर्मदा, वेतवा और गोदावरी का उल्लेख मिलता है। इनमें गोदावरी का सम्बन्ध रामकथा के माध्यम से ही बन पाया है। यमुना का सम्बन्ध व्रज और कृष्ण लीलाओं से है। यमुना का वर्णन प्रायः कृष्णलीलाओं के साथ ही संबद्ध है :

१. कज्जल कलित अँसुवन के उमंग संग दूनो होत रंग रोज जमुना के जल में।
——भू० ग्रं०, २७६।१८०

२. कूल कलिंदजा के सुख मूल लतानि के वृंद वितान तने हैं। ——मि०, २, ५७।१५

३. कहै पद्माकर कलिंदी के कदंबन पै।
मधुपनि कीन्हों आइ महत मवासो है॥ ——पद्मा०, ३८७।१६४

४. जमुना तीर तमाल-तरु मिलित मालती-कुंज। —वि०, १२७।५७

सिर्फ भूषण को छोड़कर अन्य सभी उद्धरणों में यमुना का सम्बन्ध कृष्ण-वार्ता से ही है। व्रज की वाह्य सीमाओं पर गंगा भी आती है। कुछ कवियों ने इसका वर्णन भी किया है। गंगा का धार्मिक दृष्टि से ही विशेष महत्व है (भू० ३४५।१९४), (वि०. ५७६।२३९, पद्मा० २८।२४३)। छत्रसाल के साथ वेतवा का वर्णन मिलता है (भू० ५०९।२२९)। इस प्रकार रीतिकालीन साहित्यकारों के सामने यमुना और गंगा ही प्रमुख रह जाती हैं।

पहाड़ों में केवल गोवर्द्धन पहाड़ का वर्णन मिलता है, जो कृष्ण की एक लीला से सम्बद्ध था। यह व्रज की भौगोलिक स्थिति का एक भाग भी है। इसका प्रायः सभी कवियों ने उल्लेख किया है। सुमेरु (भू० २२१।१६६, घनआ० १०३।३३), मलय (घनआ० ६०।२०) आदि पर्वतों के वर्णन तो कवि-रूढ़ियों से संबद्ध ही हैं।

१-४.२ पेड़-पौधे

रीतिकालीन कवियों ने वातावरण के प्रभाव के लिए कभी उपमान रूप में और कभी केवल नाम गणना के रूप में कुछ वृक्षों का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं स्थानीय दृष्टि से औचित्य का अतिक्रमण भी हो गया है। व्रज की जलवायु को ध्यान में न रखकर लवंग, इलायची, दाख और सेव (भू० २०-२१।१३३) की स्थिति भी दिखलाई गयी है——(भू० ३६।१३४, घनआ० २८५।९१)। इस प्रकार के वर्णन चमत्कार, पांडित्य प्रदर्शन और तत्कालीन रुचि की दृष्टि से किये गये हैं और काव्य में उनका रूढ़ वर्णन परंपरा से चला आया है। इस प्रकार के वृक्षों में आते हैं तमाल, पलास, केतकी, कदली, कदंब, अशोक, कुंद, अनार आदि।

कुछ ऐसे वृक्षों के नाम भी रीतिकालीन रचनाओं में मिलते हैं, जो साहित्य में रूढ़ नहीं हुए हैं और जिनका वर्णन स्थानीय वैशिष्ट्य की दृष्टि से किया गया है। धतूरा, करौंदा, आक, पीपल, पलास, जंबीर, जवासा आदि वृक्ष या पौधे प्रायः काव्य-रूढ़ नहीं हैं। इनका परिगणन स्थान प्रभाव को प्रदर्शित करता है। व्रज की प्रकृति के सौंदर्य पक्ष में कदंब का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्षा की फुहारों में सुवास मिलाकर एक सुन्दर वातावरण प्रस्तुत कर देता है। वर्षा-ऋतु के वर्णन में पद्माकर ने कदंब की इसी स्थिति का वर्णन किया है :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बरसत मेह नेह सरसत अंग अंग
झरसत जैसे जरत जवासो है।
कहै पद्माकर कलिंदी के कदंबन पै
मधुपनि कीन्हों आइ महत मवासो है। —पद्मा० ३८७।१६४

व्रजभाषा के कवियों को कदंब कुंजों में केलि-क्रीड़ा करते हुए कृष्ण की झाँकी मनोरम लगती है। घनआनंद की भावना इस प्रकार है :

'फूले कदंब तरैं करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छवि सोहीं।' —घनआ० ३८८।१२०

कृष्ण की बाँसुरी से गूंजते हुए व्रजभाषा साहित्य में कदंब के समान ही महत्वपूर्ण स्थान तमाल का है। यह एक छोटा-सा वृक्ष होता है, जिसका तना श्याम रंग का होता है। तमाल की कुंजों का भी कृष्ण की शृंगार केलि के साथ घनिष्ट संबंध रहा है। घनआनंद की कल्पना तमाल को छोड़कर कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन नहीं कर पाती :

'ललित तमालनि सों बलित नवेली बेलि,
केलि रस झेलि हसैं लह्यो सुख सार है।' —पद्मा० ६०।२०

कदंब, तमाल और करील व्रज के विशेष वृक्ष या झाड़ी हैं। कृष्ण की वार्ता के साथ इनका प्रयोग स्थानीय रंग भर देता है।

१-४.३ फल

फलों में मुख्यतः इन फलों का वर्णन या उल्लेख मिलता है : बिम्बाफल, नासपाती, किसमिस, दाड़िम, कोहर (इन्द्रायन फल), निबोरी, अंगूर, आम, जम्बूफल, श्रीफल आदि। इनमें निबोरी, दाड़िम, आम और श्रीफल स्थानीय भी हैं। शेष केवल साहित्य में प्रयुक्त फलों के रूप में ही हैं।

१-४.४ फूल

रीतिकालीन कवियों ने कुछ पुष्पों का भी वर्णन किया है। इनमें कमल का वर्णन तो परम्परा से सिद्ध है। इसके अलावा कोकनद, कमल, कंज जैसे नाम और प्रकार रीतिकालीन कवियों में मिलते हैं। ये सभी कवियों में मिल जाते हैं। चंपा, चमेली, मालती, केतकी, मौलसिरी (मौलश्री), किंसुक, सोनजुही, कुंद, माधवी, कचनारि, बरना, सेवती (सेमंती) और पांडुर भी प्रसिद्ध पुष्प हैं। ये स्थानीय भी माने जा सकते हैं। इनका सम्बन्ध राजोद्यानों से भी था। राजोद्यानों से सम्बद्ध होने के कारण दरबारी रुचि के शृंगार के साथ इनका योग होना स्वाभाविक था। इनमें कुछ कृष्णवार्ता से भी सम्बद्ध हैं। इनका वर्णन भी कहीं नाम गणना के रूप में और कहीं उपमान के रूप में मिलता है। एकाध स्थान पर केसर का भी वर्णन है। देव ने उद्दीपन रूप में केसर का वर्णन किया है।

१-४.५ पक्षी

पक्षियों का उल्लेख भी स्थान-स्थान पर रीतिकालीन साहित्य में मिलता है। इन पक्षियों में कुछ का उद्दीपन सामग्री के रूप में प्रयोग होता रहा है; जैसे कोकिल, चातक, मोर, कीर आदि। कुछ पक्षियों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का सम्बन्ध काव्य में प्रयुक्त कवि-समयों से है। इनमें ये आते हैं : चकोर के चन्द्रमा के अपलक देखने और अंगार चुगने की रूढ़ि। हरियल पक्षी के विषय में प्रसिद्ध है कि वह पृथ्वी पर नहीं बैठता। जब आता है तो अपने पंजों में लकड़ी को दबा लेता है। चकई-चकवा रात को वियुक्त हो जाते हैं। पपीहा बादल को देखकर 'पीउ-पीउ' की ध्वनि करता है। इन प्रसिद्ध काव्य-रूढ़ पक्षियों में आँखों का प्रसिद्ध उपमान खंजन, गति का प्रसिद्ध उपमान हंस भी आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य पक्षी भी हैं, जो स्थानीय हैं और जिनका वर्णन लोक-संस्कृति और लोक-साहित्य में विशेष रूप से मिलता है। इनमें बाज. गीध, कौआ, गोरैया, बगुला, बतख, तीतर, चील, घूघू और कुही जैसे पक्षी आते हैं। मोर का वर्णन तो कवियों ने विशेष रुचि से किया है। क्योंकि इसका सम्बन्ध कृष्णवार्ता से भी है। मैना काम-शास्त्रीय पद्धति में स्थान रखती है। फुटकर पक्षियों में सारस, कुलंग और महूप जैसे पक्षी आते हैं। इन पक्षियों में कुछ का सम्बन्ध ब्रज की भौगोलिक स्थिति से है।

१-४.६ पशु

भूषण ने एकाध छंद में कुछ ऐसे पशुओं की गणना की है, जो भारत से बाहर के हैं। इन वर्णनों में नाम गणना की रूढ़ि ही विशेष रूप से सक्रिय है। प्राकृतिक स्थिति पर इनसे कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। हाथी राजवर्ग से सम्बद्ध थे। इनका वर्णन दान, युद्ध आदि के साथ मिलता है। इनका उपमान के रूप में भी प्रयोग मिलता है। पक्षियों की अपेक्षा पशु वर्णन में रीतिकालीन कवियों ने कम ध्यान दिया है।

१-५ ऋतु-वर्णन और प्राकृतिक स्थिति का प्रभाव

ब्रजभाषा कवियों ने ऋतुवर्णन में विशेष रुचि ली है। पर ऋतु-वर्णन भी परंपरागत ही अधिक है। वसंत और पावस रीतिकालीन कवियों को विशेष प्रिय रहे हैं। इनका वर्णन क्षेत्रीय प्रभावों से प्रायः मुक्त ही है। वही फूलों की परिगणन पद्धति, वही रूपक-विधान और शृंगारिक वसंत वर्णन मिलता है, जो परंपरावद्ध है। फिर भी यत्र-तत्र ऋतु-वर्णन में स्थानीय प्रभाव भी दिखाई देता है।

ग्वाल कवि ने क्षेत्रीय प्रभाव को ध्यान में रखकर सरसों के खेतों का भी वर्णन किया है :

'सरसों के खेत की बिछायस वसंत बनी,
तामें खड़ी चाँदनी बसंती रति कंत की।।'

वर्षा के वर्णन में कदंब के फूलने का उल्लेख स्थानीय माना जा सकता है।

ग्रीष्म ऋतु में हिन्दी क्षेत्र व्याकुल हो जाता है। राजस्थानी मरुभूमि से आनेवाली गर्म आँधियाँ और दिन भर चलनेवाली ज्वलनशील लू इस क्षेत्र की ग्रीष्मकालीन विशेषता है। लू चलने का वर्णन सेनापति, देव, ग्वाल, बिहारी जैसे कवियों ने किया है। श्रीपति ने तेज हवा चलने के साथ धूल-धूसरित होने का भी वर्णन किया है। इस ऋतु का प्रायः सभी कवियों ने भयंकर रूप दिखलाया है। बार-बार पानी पीने की इच्छा करती है, फिर भी प्यास नहीं बुझती :

'जब पियौ, तब पियौ, अब पियौ फेर अब।
पीवत हूँ पिवत बुझति न प्यास पापिनी।।' —ग्वाल कवि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समस्त क्षेत्र कुम्हार के आवाँ जैसा लगता है। किसी कवि ने पुट-पाक की प्रक्रिया से ग्रीष्म ग्रस्त इस क्षेत्र की तुलना की है :

'बरनि बताई, छिति व्यौम की ताई, जेठ
आयौ आतताई पुट-पाक सौ करतु है।'

गर्मी की नृशंसता से बचने के लिए जो सामंतीय विधान किया जाता है, उसका वर्णन रीति-कालीन विशेषता है। इन वर्णनों में फव्वारों, गुलाबजल, खसखानों, इत्र, बरफ, तहखानों आदि का विस्तृत वर्णन कवियों ने किया है। इस प्रकार के वर्णनों की पृष्ठभूमि में हम स्थानीय ग्रीष्मकालीन स्थिति को देख सकते हैं।

ग्रीष्म की ही भाति हेमंत और शिशिर भी विशेष त्रास देती हैं। अधिकांश कवियों ने ठंडी हवा का वर्णन किया है और कुछ ने शीतकालीन बादलों का भी। मनुष्य जीवन पर इसके प्रभाव का चित्रण भी किया गया है। रजाई का उपयोग, तेल लगाकर गरम पानी से नहाना, आग रखना आदि इस ऋतु की स्थानीय विशेषताएँ हैं। उच्चवर्ग में यह ऋतु विशेष भोग-विलास की ऋतु होती है। इसमें शाल-दुशालों का उपयोग होता है। काम-क्रीड़ाओं का भी विशेष चित्रण मिलता है। इसके साथ ही कुछ गर्मी देनेवाले भोज्य पदार्थों का भी उल्लेख है। इस सम्बन्ध में पद्माकर का यह छंद द्रष्टव्य है :

'गुलगुली गिल में गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी है चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं अरु प्याला हैं॥
सिसिर के पाला के न व्यापत कसाला तिन्हें
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं विनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं॥' —पद्मा० ३९१।१६५

इस प्रकार वसंत, वर्षा और शरद का वर्णन तो परिपाटीबद्ध ही मिलता है। पर ग्रीष्म, हेमंत और शिशिर के वर्णन में स्थानीय भौगोलिक-स्थिति विशेष प्रकट होती है।

१-६ निष्कर्ष

प्रस्तुत सर्वेक्षण के आधार पर कह सकते हैं कि भौगोलिक स्थिति और रीतिकालीन साहित्य का आधार-आधेय सम्बन्ध है। रीतिकालीन कवियों पर जितना भी परंपरागत वर्णनों का आरोप लगाया जाय, फिर भी उन पर क्षेत्रीय प्रभाव अवश्य है। भौगोलिक पर्यावरण से कवि स्वयं को पूर्णतः मुक्त नहीं कर सका है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत विधान पर भौगोलिक पर्यावरण का यह प्रभाव उनकी रचनाओं से ही सिद्ध हो जाता है। इन्हीं उपकरणों द्वारा रीतिकालीन काव्य-सौंदर्य भी कुछ उभरा है। स्थानीय नदियाँ, पहाड़, पक्षी और फल-फूल आदि का प्रवेश तो रीतिकालीन साहित्य में हो पाया है, लेकिन पशुओं का प्रवेश बहुत कम हुआ है। इसका कारण तत्कालीन काव्य प्रवृत्ति में देखा जा सकता है। इनका वर्णन तत्कालीन दरबारी वातावरण में अप्रस्तुत ही था। ये शृंगार-भावना के उद्दीपक नहीं हो सकते थे। अतः इनका प्रवेश नहीं हो पाया था। रीतिकालीन साहित्य में भौगोलिक स्थिति का एक स्फुट चित्र ऋतु-वर्णन से भी स्पष्ट होता है, जिस पर भौगोलिक स्थिति का अमिट प्रभाव परंपरागत वर्णनों के परदों की आड़ से स्पष्ट दिखाई देता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रीतिकालीन हिन्दी का

शाक्त-साहित्य और आचार्य कुलपति मिश्र

डॉ० विष्णुदत्त राकेश
एम० ए०, पी-एच० डी०

शक्ति के सौम्य रूप को लेकर भक्त कवियों ने शृंगार और वात्सल्य के माधुर्य-परक क्रीड़ा क्षेत्र में शक्ति और शक्तिमान के अद्वय सम्बन्ध की स्थापना की। कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति के रसिक सम्प्रदाय में शक्ति के मधुर रूप की अभिव्यंजना पर अधिक बल दिया गया। नाम-स्मरण, कृपा का सिद्धान्त, रति-चक्र, गो-लोक की कल्पना, गुरुवन्दना, लीला-गान तथा महाभाव के वैष्णव सिद्धान्त शाक्तों के शक्तिपात, भैरवीचक्र, रूपदर्श, उरजस्पर्श, अष्टदत्त प्रतीकात्मक महाभाव से प्रभावित हैं। इसीलिए हरिनाम के साथ दीनता, इष्टदेव की महत्ता, भक्त-वत्सलता, भय प्रदर्शन तथा षडैश्वर्य सम्पन्नता एवं मनोरम्य उपासना का प्रचलन उत्तरवर्ती भक्त कवियों में दिखाई देता है। सन्तों में योगाचार प्रभावित शाक्त-साधना की योग क्रियाओं तथा बीजाक्षरों की सांकेतिक प्रक्रिया परिग्रहण की प्रवृत्ति अधिक है। बृहत् ब्रह्म संहिता (२-४-१७३) ने शक्ति और शक्तिमान के जिस सामरस्य की स्थापना पर अधिक बल दिया, वह अर्द्ध-नारीश्वर के रूप में काव्य और साधना दोनों में ही उपास्य सिद्ध हुआ। गौड़ीय कवियों ने तो षडैश्वर्य सम्पन्नता में मधुर रस अथवा राधा-कृष्ण विषयक शृंगार की अवतारणा कर स्नेही युगल की प्रतिष्ठा की। गौड़ीय संस्कृत कवियों ने शास्त्रीय पद्धति पर इस विग्रह की रचना कर गतानुगतिकता पर बल दिया, किन्तु हिन्दी कवियों ने इस पक्ष को अधिक स्वतन्त्र और भावस्पर्शी बनाया। दुर्गा जैसे उग्र रूप की साधना वैष्णव कवियों ने मंगलाचरण और असाध्य कार्य साधक देवता के रूप में ही की। सूरसारावली (५५ पृष्ठ) में 'कहुँ एक दुर्गा देवि जान कै, जोरि विप्र निजधाम; करत होम चहुँ भाँति वेद धुनि, सब विधि ,पूरन काम' तथा तुलसीकृत मानस में 'वरदायनी पुरारी पियारी' कह कर इस तथ्य की पुष्टि की गई है। ब्रह्मयामल तंत्र कथित 'रामो दिव्यांगना भोगी, रामोज्ञानवतां वरः, रमा तरंग सहिता, रामभार्या रति प्रिया' जैसे निर्णय के अनुसार कालान्तर में राम और सीता में भी सौम्य रूप की कल्पना रसिकता के आधार पर कर ली गई। किन्तु भोग्य और भोक्तृ शक्ति को चिन्मय मान लेने से उनकी तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रही। वामाचारी शाक्त प्रक्रियाओं का संकेत भी अभिचारिक प्रसंगों में भक्त कवियों ने प्रस्तुत किया। 'जाइ कपिन सों देखा वैसा, आहुति देत रुधिर अरु भैंसा' जैसे मानस के (निकुम्भिला पूजन प्रसंग) प्रसंग इस पद्धति की ओर संकेत करते हैं। किन्तु साधारण रूप से वैष्णव कवियों ने शक्ति के समयाचारी रूप को ही स्वीकार किया है।

मध्यकाल में विरचित देवी भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में सीधरकृत सप्त सतीराछंद, कुशललाभ कृत देवी सातसी, भवानी छंद, ईसरदासकृत देवियाण, पीरदान कृत गुण हिंगलाल रासो, जसवन्तकृत त्रिपुर सुन्दरी की वेलि, लधराजकृत कालकाजी का दृश, देवी विलास, अजीतसिंह कृत दुर्गापाठ भासा, रामदान कृत करणी रूपक, कुलपति कृत दुर्गाभक्ति चन्द्रिका, अजीतसिंह कृत भवानी सहस्रनाम, श्रीकृष्ण

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भट्ट रचित दुर्गाभक्ति तरंगिनी, पद्माकर कृत गंगा लहरी, उत्तमचन्द भण्डारी कृत नाथ-पंथियों की महिमा, उमेदराम कृत ब्रह्म कवच, चैनरामकृत जानकी सहस्रनाम, मानसिंह कृत नाथ पुराण, रसपुंजकृत कवित्त श्री माताजी का तथा श्यामराम कृत दुर्गा विनोद महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही रीतिकालीन जड़सामन्तवाद, प्रगतिगामी सामन्तवाद से टकराया। श्रमिक तथा कृषकों के सिसकते जीवन का नेतृत्व शिवाजी, छत्रसाल तथा सूरजमल ने किया। विदेशी सत्ता से टकरा कर तत्कालीन जीवन के अस्तित्व रक्षण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय एकता के भाव की परियोजना ने महत्वपूर्ण प्रेरणा दी। पुनः शक्ति संचय के प्रयत्न इसीलिए देसी रियासतों और राज्यों में हुए। फल-स्वरूप कवियों ने पुनः शक्ति के गीत गाए, पर उनका आधार परम्परा की रक्षा और सांस्कृतिक अभिरक्षण ही बना रहा। सूरजमल कृत वंश भास्कर, जीवनलाल कृत गंगाशतक, दुर्गाचरित्र, गणेशपुरीकृत वीरविनोद, गुलाब जी कृत रुद्राष्टक, गंगाष्टक, शारदाष्टक, दुर्गास्तुति, मुरारिदान कृत वंश समुच्चय, जगदीशलाल कृत महावीर अष्टक, रामनाथ कृत शिवाष्टक, सतीचरित्र, शंभुशतक, दुर्गाष्टक, जयदेवकृत राधाशतक तथा अन्य फुटकर कवित्त शक्ति के लोकरक्षणमूलक राष्ट्रीय संगठनात्मक रूप को लेकर आगे चले हैं।

रीतिवद्ध कवियों में मंगलाचरण के रूप में ही शक्ति के दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी अथवा काली रूप का चित्रण हुआ है। सेनापति तथा गंग में इसी प्रकार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। परकीयातत्व के परिग्रहण से गोपीभाव तथा तज्जन्य रसिकता का प्रभाव राधातत्व और सीतातत्व पर देखा जा सकता है। देवी भागवत वर्णित सीता-राधा रूप प्रतिष्ठा के समानान्तर न होकर यह चित्र सहजिया सम्प्रदाय की धार-णाओं के अवशेष रूप प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में शक्ति उपासना, पौराणिक तान्त्रिकों की चमत्कारपूर्ण जीवन गाथा, अस्तित्वमूलक धारणा, लोक-रक्षण तथा लोकरंजन की प्रवृत्ति को लेकर चली है। दुर्गासप्त-शती के अतिरिक्त तन्त्रोक्त दश महाविद्याओं का स्वरूप निर्धारण करने वाले तथा सृष्टि पक्ष पर विचार करने वाले कवि अत्यन्त विरल हैं, सभी ने शिव-पार्वती के मंगल आख्यान का ही कथन अधिक किया है। तन्त्रोक्त शाक्त-साधना के प्रतिपादनों में रीतियुग में केवल कुलपति मिश्र की दुर्गाभक्ति चन्द्रिका का नाम लिया जा सकता है। तन्त्रोक्त नाद प्रक्रिया और दश महाविद्या निरूपण सर्वप्रथम 'चन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध की रचनाओं में मिलता है। उक्त दो विधान समयाचारी साधकों के प्रमुख लक्ष्य रहे हैं। अतः गुरु कृपा से प्राप्त इस रहस्यात्मक विधान का उल्लेख कवि ने वशीकरण, आकर्षण, उच्चाटन आदि सिद्धियों के लिए 'चन्द्रिका' में किया है। देखिये :

'छोभिनि अरु आकर्षिणी, करतिवश्य उन्माद,
महा अंकुसाखेचरी बीज जोनि मुद्रादि।
तिहु पुर मोहन चक्र में रखवारे चालीस,
जो निश्चलचित ह्वै छुटै तोरोकत कमलीस।
दसों महाविद्यारु बहु बरनै अंग विलास,
इह ठां कुलपति मिश्र नौ गुरु ते होइ विकास—' —दुर्गाभक्ति चंद्रिका

अब इस स्थल पर हम कुलपति की शक्ति साधना पर विचार इन्हीं दो प्रमुख सन्दर्भों में करेंगे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कुलपति की शक्ति साधना

कुलपति ने दुर्गासप्तशती का अनुवाद, पाठ की रीति तथा अर्गला-कवच, कीलक आदि का विधान दुर्गाभक्ति चन्द्रिका में दिया है। वह इस कृति को लौकिक और पारमार्थिक सिद्धि का साधन मानते हैं।[1] मार्कण्डेय पुराण सम्मत आख्यान को कवितावद्ध कर कवि ने.परम्परा का पालन 'अनुवाद काव्य' की दृष्टि से किया है, किन्तु उत्तरार्द्ध में दस महाविद्याओं के स्वरूप का निर्णय प्रस्तुत करते हुए कवि ने अपनी तन्त्र प्रधान दृष्टि का परिचय दिया है। कवि स्वतन्त्र कथन की अपेक्षा शास्त्र वाक्य को आधार मान कर चला है।

अहिर्बुध्न्य संहिता में बहुधा विभाजित माया के रूप में इसी पराशक्ति की प्रतिष्ठा की गई है।[2] इसी को परावाक् कहते हैं। महार्थ मंजरीकार ने इसे सूक्ष्मा कहा है। सप्तशती में 'चितिरूपेण या कृत्स्नं एतद् व्याप्यस्थिता जगत्' कह कर इसकी व्यापकता का परिचय दिया गया है। वाग्रूपिणी भगवती चैतन्य प्रदातृ होने के कारण 'सा नो मन्द्रेषमूर्ज दुहाना, धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु' के रूप में निर्विकल्प ज्ञान देने वाली है, इसीलिए मन्त्रों में मूलाक्षर रूप से रहने वाली मातृका, शब्दों में ज्ञान, ज्ञान में चिन्मयातीता तथा शून्य साक्षिणी रूप अजा का 'अण्डमध्ये (हिरण्यगर्भ-ब्रह्म) प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप, महाभूतात्मकं सर्व जगत्स्थावर जंगमम्'—रूप में चित्रण शास्त्रों के अनुरूप ही कवि ने प्रस्तुत किया है :

'पूरन काम करै जन के दुख पुंज हरै जग को सुख दानी,
अक्षर होत हैं मंत्र सबै जे रटै रसना तुव नाम को बानी।
कीजै कृपा यति को जु कहैं अब वर्णन की कविता रस सानी,
चेतन जाते कहावत ब्रह्म सु ब्रह्म में चेतनता तू भवानी।'

इसी प्रकार त्रिपुर सुन्दरी की संस्तुति के लिए भी कवि ने आचार्य शंकर प्रणीत सौन्दर्य लहरी का आश्रय लिया है। शंकराचार्यकृत 'अशेष ब्रह्माण्ड प्रलय विधि नैसर्गिक मतिः, श्मशानेष्वासीनः कृत-भासित लेपः पशुपतिः। दधौ कंठे हालाहलमखिल भूगोल कृपया भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये'—श्लोक की छाया से संवलित कुलपति की निम्न संस्तुति देखिए :

'व्याल गरै दृग लाल करै निस द्यौस चबात रहै गर को,
भूत भयानक संग फिरै समसानहिं मानत हैं घर को।
रारि सदा सब ही सौं करै न डरै वह जानत तौ वर को।'
नित सुन्दरि तू हो कटाछ पियूष सौं सींचि के ज्यावत है हर को।

माण्डूक्योपनिषद् में नाद रूपा शक्ति अपर प्रणव रूप धारण करने के कारण ब्रह्म की चेतनता कही गई है। शिव शक्ति की क्रियाशक्ति विन्दु कहलाती है। शुद्ध बिन्दु को महाविन्दु महामाया तथा

---

१. 'याते अवर न जगत में नुति दूजी है कोइ।
संतति संपति रिपु विजय सुमिरत कविता होइ।'
२. 'देवते परं ज्योतिरेक एव परः पुमान। स एव बहुधा लोके मायया भिद्यते स्वया,
सर्वभावात्मिका लक्ष्मीरहंता पारमात्मिका, तद्धर्म धर्मिणी देवी भूत्वा सर्वमिदं जगत्।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अशुद्ध बिन्दु को माया कहते हैं। शक्ति तथा बिन्दु का सम्बन्ध भेद ज्ञान कहलाता है। इसी भेद ज्ञान के सहारे शुद्ध बिन्दु में शिव क्षोभ उत्पन्न करते हैं, जिससे शब्द और अर्थ की दो धारायें चलती हैं। इन दोनों की पृथक्-पृथक् चार अवस्थायें परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी होती हैं। इन दोनों का कारण बिन्दु अचित कहलाता है। भेद ज्ञान समाप्त होने के बाद ही शिव का साक्षात्कार होता है। शक्ति और शिव के अद्वय से सामरस्य बिन्दु का आविर्भाव होता है। इसमें तदनुरूप चैतन्य स्फुरित होता है। इस बिन्दु को पूर्ण गिरि पीठ तथा चैतन्य को वाण लिंग कहते हैं, यही पश्यन्ती वाक् की स्थिति है। पराशक्ति काम रूप पीठ में आत्मगर्भस्थ विश्व की नित्य स्थिति की द्रष्टा है। भेद ज्ञान न होने से यह विक्षोभ रहित है। यहाँ से शब्द के साथ इच्छा का उन्मेष होता है। देश और काल की सीमायें यहीं से प्रारम्भ होती हैं। यहाँ ज्ञान शक्ति का उदय होता है। इसी बिन्दु रूप भूमिका को जालन्धर पीठ कहते हैं। इस बिन्दु से अभिव्यक्त चैतन्य को इतर लिंग कहते हैं। मध्यमा वाक् का जन्म यहीं होता है। अन्तर्मुखी आकर्षण की वाह्याभिव्यक्ति के लिए यहीं से क्रिया शक्ति सचेष्ट होती है, इसे उड्डीयान पीठ तथा तज्जन्य चैतन्य को परलिंग कहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति वैखरी कही जाती है। पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी को इच्छा, ज्ञान, क्रिया तथा प्रणय के अ, उ, म कहा जाता है। ओम्, उमा, शक्ति के अस्तित्व और शक्तिमान का प्रतीक है। यह त्रिकोणात्मिका आद्या शक्ति त्रिपुर सुन्दरी या श्री विद्या कही गई है।[1] इस त्रिकोण की तीन रेखायें पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी तीन प्रकार के शब्द या इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप तीन शक्त्यंश की प्रतीक है। त्रिकोण का मध्यविन्दु परावाक् अथवा अम्बिका और शान्ता इन दो शिव शक्त्यंश का साम्य भावापन्न रूप है, इसी विन्दु समन्वित त्रिकोण से वाह्य जगत् का आविर्भाव होता है।[2] अथर्ववेद के एक सूक्त में इसका उल्लेख 'यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः वत्सः कामदुघो विराजः सगुहा चक्रे तन्वः परावैः' मंत्र में हुआ है। यह त्रिभुजाकार योनि शक्ति का प्रतीकात्मक आधार है और विराज इस त्रिभुज में स्थित बिन्दु रूप शिव का प्रतीक।

शाक्त चिन्तन में सृजन प्रक्रिया का श्रेय शक्ति को है। शिव तटस्थ भाव से आत्मशक्ति की लीला देखते हैं। पराशक्ति शिवयुक्त होकर परम शिव के रूप में सामरस्य लाभ भी करती है और अभिव्यक्त होकर विश्व के आविर्भाव का वीज भी वनती है। ध्वनिवादी शिव को 'अ' तथा शक्ति को 'ह' (क्रमशः अग्नि और सोम) कहते हैं और इनके सामरस्य को अहं कहते हैं। साम्य भंग होने पर यही अहं अथवा विंदु शुक्ल और रक्त रूप में वदल जाता है। इसी को संवित् चैतन्य अथवा चित्कला कहा गया है। अग्निरूप शिव से पराशक्ति द्रवित होकर अमृत स्नान करती है, जिसे ब्रह्मानन्द स्वरूप कहा जाता है। यह अंश शक्तिभाव के प्राधान्य के कारण पुष्टि प्राप्त करता है, इसी तेज रूप बीज से नाद ध्वनित होता है। इस नाद में सृष्टिभूत बीज रूप से निहित रहते हैं। नाद अभिव्यक्त होकर त्रिधारात्मक आधार ग्रहण करता है। विमर्श अथवा पराशक्ति का शरीर यही त्रिकोण है। इसमें प्रकाश शुक्ल बिन्दु अथवा सोम रूप है तथा विमर्श अग्नि रूप लाल विन्दु है। दोनों का समभाव परमात्मतत्व का द्योतक है।

---

१. सैव पराशक्ति--सैव पुरत्रयं शरीर त्रयं व्याप्य वहिरन्तरवभासयन्ती महा त्रिपुर सुन्दरी व प्रत्यक् चितिः।

२. शक्ति साधना : महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज : शक्ति अंक, पृष्ठ ५८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसे काम कहते हैं। सिद्धों ने इसी को कुलिश कहा है। अग्नि और सोम, काम की कलायें हैं। इन तीनों का समन्वित रूप आद्या शक्ति का अमूर्त विग्रह है। इस त्रिकोण का मध्यविन्दु शक्ति का मुख अग्नि और सोम विन्दु स्तन युगल तथा सम्मिलित त्रिकोण की 'ह' रूप भुजाएँ योनि रूप में कल्पित हैं। यह शिव शक्ति के सम्मिलन से उत्पन्न लीला रूप तरंग की परिचायक हैं। तीनों प्रान्तों के विन्दु स्थूल, सूक्ष्म और कारण कहे जाते हैं। जव ये तीनों विन्दु अन्तर्मुखी होते हैं, तव रेखा रूप में अन्तर की ओर प्रवाहित महाविन्दु में सिमट जाते हैं। इसे तुरीय विन्दु अथवा महाकारण विन्दु कहा जा सकता है। इसी केन्द्र विन्दु में शिव-भक्ति का मिथुन अनादि काल से चल रहा है। सिद्ध और वौद्ध योगियों की 'युगनद्ध' अवस्था का रहस्य यही है। त्रिवलया कारा कुण्डलिनी स्फोट इसी रूप का अन्तर्मुखी कारण है। शक्तिमार्गी शव्द के अनुसन्धान को साधना का मूल सूत्र मानते हैं। विन्दु रूपा कुण्डलिनी स्वातन्त्र्य शक्ति से विक्षुव्ध होकर नाद विकसित करती है। सन्तों में गुरुकृपा, वैष्णवों में पुष्टि या अनुग्रह तथा शाक्तों में यह प्रक्रिया शक्ति-पात पर आधारित होती है। पूर्ण चैतन्य सम्पत्ति के लाभ के लिये इसे उद्वुद्ध किया जाता है। पट्चक्र अज्ञान अथवा आवरण के द्योतक हैं, जिनके क्रमिक भेदन द्वारा विन्दुभूमि प्राप्त होती है। विन्दु अर्ध रोधिनी नाम से प्रसिद्ध है, नाद इसी चक्रभेद से उत्पन्न होता है, यद्यपि साधना की दृष्टि से यह कठिनतम मार्ग है, नाद चैतन्य का सूचक है, इसी के द्वारा मनोराज्य के अन्त होने पर पराशक्ति का साक्षात्कार होता है। देवी चक्र इसी साधना का संकेतात्मक रूप है। यह पराशक्ति समस्त शक्तियों का मूलाधार है, अतः सर्व सुख प्राप्ति के लिए इस प्रक्रिया की मानसिक धारणा परम महत्व रखती है। कुलपति के शव्दों में सुनिए :

'मूलाधार अनाहत बाणी, सुनि कै जगी सुषुमणा नाडी।
वा मुख तें धुनि द्वैविध पाई, वर्णमयी धुनि रूप कहाई।'

इसी प्रकार महाभाव दल पर संस्थित सरस्वती की उपासना और ध्यान का फल भी कवि ने नाद प्रक्रिया सम्मत प्रस्तुत किया है :

'व्योम इंदु बस दल पंकज लहि, बर्ण आठ, आठौं पत्रनु चहि,
द्वै द्वै सुर केसरनि गनावौं, सब बरनन सों वृत्त बनावौ
मध्य मातृका सरसुति ध्यावौ, मनोवांछित फल तव ही पायौ,
भाल शशिकला लोचन तीन, जटा उजलता लीनी बीन,
वरनु पचासन देइ बनाइ, उरज भार लचकत छवि पाइ,
पक्ष अक्ष मालारु हस्त वर, पुस्तक अमृत कलस वायें कर,
कुंद कपूर सुधा सम तन छवि, पद्मासन जुत ध्याइ होइ कवि,
कवि पण्डित यश सौं जीवै बहु, धनपति होई धनद दूजौ बहु।'

शक्ति का स्फुरण वाला चैतन्य अंश ही शिव और शक्तिमान है। अतः नादरूपा चैतन्य शक्ति का निरूपण 'मूलाधार अनाहत वाणी' तथा 'ब्रह्म में चेतनता तू भवानी' पदों में कवि ने किया है। शेष सप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक तथा मूर्त्ति रहस्य का वर्णन कवि ने चन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रस्तुत किया है। 'दुख भय दारुण रोग दूरि करि' की भावना से प्रेरित होने के कारण कवि ने इन रहस्यात्मक मुद्राओं के ध्यान को लौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में सहायक माना है।

कुलपति की तन्त्रनिष्ठा और दश महाविद्यानिरूपण

निगमोक्त विराड् विद्या आगम में महाविद्या नाम से प्रसिद्ध है। विश्वरूप प्रजापति दशावयव होने से दशाह, दशहोता, दशाक्षर नामों से भी व्यवहृत होता है। कौशीतिकी ब्राह्मण में प्रतिष्ठा दशमहः (२७।२), शतपथ में दशाक्षरा वै विराट् (१।१।१), तैत्तरीय में यज्ञों वै दशहोता (२।२।१।६) कह कर उक्त तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। 'न वै एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्'—इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार एक अक्षर कम हो जाने पर भी विराट् का विराट्पना अक्षत रहता है। सबसे पहले शून्य बिन्दु था, जिसका अर्थ पूर्ण है, यह ब्रह्माक्षर का उन्मुग्ध रूप है, इसी से ९ अक्षर का विराट् उत्पन्न हुआ। पूर्वोक्त विराट ९ अक्षर का है, इसीलिए ९ संख्या की प्रधानता है। प्रथम शून्य बिन्दु होने से ९ की समाप्ति पर एक के सम्बन्ध से वही शून्य दस बन जाता है। संख्याओं के गुणन में अन्ततोगत्वा ९ रह जाता है। १०वाँ वही पूर्णरूप है, उसी को महाकाल या विश्वातीत परात्पर कहते हैं। उस शून्य रूप पूर्ण पुरुष के पेट में ९वाँ अक्षर विराट् रूप यज्ञ पुरुष समाविष्ट है। उसी पूर्ण रूप को १०वाँ प्रतिष्ठा नामक अहः कहते हैं। १० संख्या में एक का स्वतन्त्र विभाग है, वही बिन्दु है, ९ का स्वतन्त्र विभाग विराट् है। इस प्रकार निगमोक्ता सृष्टि विद्या १० भागों में विभक्त है अर्थात् एक ही पुरुष १० भागों में विभक्त हो रहा है। यह पुरुष का शक्ति प्रपंच है जो दशधा विभाजित है, यही दशधा प्रकृति महाविद्याएँ हैं। आगम-शास्त्र में इन्हीं की प्रतिष्ठा है। महाकाली, अग्रतारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमला, ये नाम इन महाविद्याओं के हैं। कुलपति ने इनका क्रमशः निरूपण चन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में किया है।

शाक्त प्रमोद कालीतन्त्र के अनुसार तथा तारातन्त्र के अनुसार कुलपति ने 'मुंडमाल भूषित सरीर नाचति अति सहसति, चढ़ि पिसाच के कंध बहुत लै संग महि भ्रमति। विकराल वदन अति घोर रूप, सिर छुटे वेस भुज चारि रुप। असि सहि रक्त अरु चाप हाथ, विवि वरद अभय मुद्रा सनाथ' कहकर काली का निरूपण किया है।

शाक्त प्रमोद के छिन्नमस्तातन्त्र के अनुरूप ही कुलपति ने 'वपुलस इव रस सोरह नवीन, उपवीत नाग कुच उच्च पीन। विपरीत सुरत रति काम पीठ, वर्ननी डाकिनी संग ईठ। वर्ननी लाल रंग छुटे केस, प्रत्यंग वसन विनु मधुर भेस। मुद्रिका मुख्य युत अकल ध्यान, अव कलातीत कटि सुख निधान। इहं भाँति छिन्न मस्तकहिं ध्याइ, याही शरीर भवपार जाइ' छिन्नमस्ता का निरूपण किया है।

शाक्त प्रमोद, तन्त्र में 'विवर्णाचंचला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा, विमुक्त कुन्तला वै सा विधवा विरलद्विजा, काकध्वज रथारूढ़ा विलम्बित पयोधरा, शूर्पहस्तातिरुक्षाक्षी धृतहस्ता वरान्विता' लक्षण के अनुरूप ही कुलपति ने 'विवर्ना महाचंचलास्यां रूपा, बड़ी वस्त्र मैले लये हाथ सूपा। छुटै कैस रुखे फटे दाँत कड्ढै, चढ़ी रथ्य पै दुज्जनो भीत वड्ढै। महे हाथ में भूत को दीठि रुखी, बड़े रुख से रोम या सीरु भूखी' कह कर धूमावती का निरूपण किया है।

शाक्त प्रमोद के बगलामुखी तन्त्र वर्णित 'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन्शत्रून परिपीड़यन्तीम'

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"देवी त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पांजलि", "तस्यामित्र मुखस्यवाचि हृदये जाड्यं भवेत्तत्क्षणात्", आदि श्लोकों के समान ही कुलपति ने भी 'रंग पीत साजि आसन दुकूल, करिपीत ध्यानु दै पीत फूल, घन प्रलय अस्त्र की नोंक धार, खल बुद्धि जीभ बाँधहु अपार" पद द्वारा बगलामुखी का वर्णन किया है। इसी प्रकार "श्यामां शुभ्रांशु मालां' के अनुरूप 'वचन लाज सोभा ससि वदनी, वाला काम सकति दुख कदनी, लक्ष्मी मांतगेश्वरि भज कवि" कह कर कवि ने मातंगी का निरूपण किया है।

शाक्त प्रमोद के भुवनेश्वरी तन्त्रोक्त 'बालरविद्युतिमिन्दु किरीटां तुंग कुचां नयनत्रय युक्ताम्" वर्णन के अनुरूप ही कवि ने "परभात सूरज भास, सिर विमल ससि परकास, दृग तीन जीतनि भीन, भुज चार कुच उर पीन, कर पास अंकुस वरद, भय हरित ज्यों पर करद, तन लता अति सुकुमार, लचकति चलति कुच भार" कह कर भुवनेश्वरी के ध्यान का वर्णन किया है। "वाणीज विमल शशि सत्वरूप, रुचि नील काम मोहन अनूप, छवि हेम सकति सुख साज देइ, सव सुगम लेहि बालाहि सेइ" वर्णन में "नीलग्रीवो विलोहितः" तथा 'नील विशाल पिंगल जटाजूटैकनागैर्युता", जैसे लक्षण काम कर रहे हैं।

भैरवी तन्त्रानुमोदित 'उद्यद्भानुसहस्र कान्तिमरुणां **क्षोमांशिरो** मालिकां—वर्णन से प्रभावित होकर कवि ने "महालक्ष्मी तुव प्रभारस, वाणी सुनत महेश, करन लगे कवि काम कै रजधरि भैरव भेस, तुव सुदृष्टि सों सूर ससि, विधि क्षिति अनल मिलाप, व्यापिनि व्योम अनन्त तू देवि दूर करि पाप" आदि दोहों में भैरवी का वर्णन किया है।

कमलातन्त्रोक्त "कान्त्याकांचनसन्निभां हिमागीरि मुख्यैः चतुर्भिर्गजैः" वर्णन के आधार पर कवि ने "अति अरुण कमल आसन बनाइ, तहँ तपत काक छवि तन लखाइ, मणि जटित कलस पीयूषधार, सींचत सु अंग हिय भुजा चार, सिर स्वच्छ मुकुट अरु तीन नैन, मुस्कान सहस ससि उदित ऐन"—कह कर रमा या कमला का चित्रण किया है।

अन्त में तन्त्रसार वर्णित "मुक्तापीत पयोदमौक्तिक जवावर्णैर्मुखैः पंचभिः' के अनुसार तथा षोडशी तन्त्रोक्त "बालार्क मण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पाशांकुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे" के अनुरूप कवि ने लगभग ६० पद्यों में त्रिपुर सुन्दरी के स्वरूप और महात्म्य का वर्णन किया है। आचार्य शंकरकृत "वृषो वृद्धो यानं विषयशनकाशा निवसनं" तथा "दधौ कण्ठे हालाहलमखिल भूगोल कृपया" "श्मशानेष्वासीनः कृत भसित लेपः पशपतिः" आदि विरोधी वर्णनों के आधार पर कवि ने भी "त्रिपुरा के चरन सरोजनु कौ वरनत" "आनन तेरो सुधा सरसीरुह" "व्याल गरै दृग लाल करै" तथा "भूत भयानक संग फिरै" जैसे पद लिख कर त्रिपुर सुन्दरी की महिमा का गान किया है। सरल सृष्टि विधायिका रूप में ही कवि ने इसका चित्रण किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवि ने महाविद्याओं का निरूपण तन्त्राधार पर किया है। दुर्गा भक्ति चन्द्रिका के सर्वेक्षण से तो कवि की तन्त्र निष्ठा में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता उनकी तन्त्रात्मक दृष्टि के स्पष्टीकरण के लिए उक्त विवेचन को हम पर्याप्त समझते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रीतिकालीन वीरकाव्य 'दिग्विजय'

प्रो० नर्मदाप्रसाद गुप्त

रीतिकाल में वीरकाव्य-परम्परा का विशेष महत्व है। शृंगारकाव्य भोगमूलक दृष्टि के कारण जीवन के अलस पक्ष से संबद्ध है, परन्तु वीरकाव्य जागरूक जीवन का काव्य है। यद्यपि जिस प्रकार शृंगार-काव्य आश्रयदाताओं के रंजन के लिए रचा गया, उसी प्रकार वीरकाव्य भी उनकी प्रशस्ति में लिखा गया, तथापि शृंगारकाव्य में तत्कालीन ह्रासोन्मुखी संस्कृति के चित्र अंकित हुए हैं जबकि वीरकाव्य में उत्साह-पूर्ण वातावरण के निर्माण की चेष्टा है। उसमें देश की रक्षा का संकल्प, स्वाधीनता की भावना, अशिव तत्वों के प्रति विद्रोह और विजय की आस्था के मिले-जुले स्वर झंकृत हुए हैं। इस नई ऊर्जा और शक्ति से सम्पन्न काव्य का उचित मूल्यांकन आवश्यक है। अब तक समीक्षकों की दृष्टि इस ओर नहीं गई है और शायद इसका प्रमुख कारण वीरकाव्य-ग्रंथों की संख्या का कम होना है। यदि बुन्देलखण्ड के ग्रंथागारों में खोज की जाए तो अनेक ग्रंथ प्रकाश में आ सकते हैं और तब संभव है कि हमें इस तथ्य को स्वीकार करना पड़े कि रीतिकाल में वीरकाव्य का उतना ही महत्व है जितना कि शृंगार काव्य का। इस सम्भावना की पुष्टि के लिए कवि 'हरिकेश' की कृति 'दिग्विजय' प्रस्तुत की जा सकती है।

हिन्दी के इतिहासकार और 'दिग्विजय'

मिश्रबंधुओं ने मिश्रबंधु-विनोद प्रथम भाग, पृ० ११५, ११८ में सबसे पहले कविवर 'हरिकेश' की चर्चा कुछ विस्तार से की है, परन्तु उसमें 'दिग्विजय' का कोई उल्लेख नहीं मिलता। भाग २ (६६१) में खोज रिपोर्ट के आधार पर 'महाराज जगतसिंह 'दिग्विजय' का नाम दिया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'हरिकेश' का नाम तक नहीं है। पं० गौरीशंकर जी द्विवेदी ने 'बुन्देल वैभव' में 'जगतराज की दिग्विजय' ग्रंथ 'हरिकेश' द्वारा रचित बतलाया है, पर उसके संबंध में कोई टिप्पणी तक नहीं दी। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भी खोज रिपोर्ट और मिश्रबंधु विनोद का आधार लिया है। हस्तलिखित ग्रंथों की सूची द्वितीय भाग पृ० ६१८ में 'जगतराज दिग्विजय' लिपि काल सं० १९५६ दिया गया है। इस प्रकार 'दिग्विजय' का उल्लेख भर हुआ है, उसका महत्वांकन नहीं।

रचना-काल

ग्रंथ में उसके रचयिता और रचना-काल के संबंध में कुछ भी नहीं मिलता। अनेक छंदों में दी हुई छाप और ग्रंथ के अंत में लिखित पंक्तियों से इतना स्पष्ट है कि ग्रंथ के रचयिता कवि 'हरिकेश' द्विज थे। 'बुन्देल वैभव' में उन्हें महाराज छत्रसाल का दरबारी कवि माना गया है, परन्तु 'दिग्विजय' के अनुसार वे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पन्ना छोड़कर महाराज छत्रसाल के पुत्र जैतपुर-नरेश महाराज जगतराज के आश्रय में आ गये थे। वहीं उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना की। ग्रंथ के अंतिम छंदों में कवि स्वयं कहता है कि उसने अपनी रचना महाराज जगतराज को सुनाई थी और महाराज ने प्रसन्न होकर उसे हाथी-घोड़े, हीरे-जवाहरात और ग्राम आदि भेंट किए थे :

ताही समय हरिकेश पढ़ि दिग्विजय श्रवण कराय।
सुन महामति जगनेश ता क्षण सुतन समेत उराय॥ (छंद सं० ८३२)
दिय साजि सजि कुंजर विजय गज विजय वाजी वाज दै।
जिहि नाम जाहिर विजयपुर सो गाँव ठाँव दराज दै॥ (छंद सं० ८४२)

स्पष्ट है कि ग्रंथ की रचना जगतराज के जीवन-काल में ही हुई थी। ग्रंथ में जगतराज द्वारा दलेल खाँ के मारे जाने का वर्णन है और उसका समय अगहन सुदी २, संवत् १७७६ दिया गया है। उसके बाद जगतराज की प्रयाग, काशी, मांडौ, रीवा आदि राज्यों की यात्रा का वर्णन है। मंगलगढ़ दुर्ग की नींव डालने का समय जेठ सुदी १०, सं० १७७७ दिया है। अतएव निश्चित है कि ग्रंथ की रचना सं० १७७७ के बाद में हुई होगी। बुन्देलों के इतिहास में मुहम्मद खाँ बंगश के आक्रमण, जोकि १७२४ ई० से १७२८ ई० तक हुए, अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। बंगश ने जगतराज की राजधानी जैतपुर पर घेरा डाला था और दुर्ग को अधिकार में कर लिया था। इस घटना का वर्णन इस ग्रंथ में आवश्यक था क्योंकि उन हमलों के बीच भी जगतराज ने अद्भत वीरता दिखाई थी परन्तु उन घटनाओं की कोई चर्चा इस ग्रंथ में नहीं है। इस प्रकार ग्रंथ का रचना-काल संवत् १७७७ और संवत् १७८१ (ईसवी १७२४) के बीच सं० १७७९-८० के लगभग होना संभव है।

कथावस्तु और उसकी ऐतिहासिकता

प्रस्तुत प्रति के आरम्भ में कवि ने अब्दुल समद की लड़ाई का वर्णन ३२ पृष्ठों में किया है। इस युद्ध के नायक महाराज छत्रसाल हैं और दिग्विजय से इसका संबंध नहीं जोड़ा जा सकता। मूल पुस्तक 'अथ दिग्विजय लिख्यते' से प्रारंभ होती है। वहाँ से पृष्ठ संख्या १ आरंभ हुई है। इस विवेचन में मैं केवल दिग्विजय को ही लूंगा परन्तु यह भी संकेत देना चाहूँगा कि कवि ने छत्रसाल के संबंध में और भी लिखा होगा जो अब तक उपलब्ध नहीं हो सका।

इस प्रबंध काव्य की मुख्य घटना दलेल खाँ का युद्ध है जो कि बुन्देलखण्ड के इतिहास की महत्व-पूर्ण घटना है। दलेल खाँ इतिहास प्रसिद्ध वीर पठान दिलेर खाँ है जो कि बुन्देलखण्ड में बुन्देलों का दमन करने के लिए भेजा गया था और जिसने बुन्देलों को कालपी से खदेड़ दिया था (महाराजा छत्रसाल बुन्देला: डा० भगवानदास गुप्त पृ० ७८)। अंतिम युद्ध मौधा (मौदहा, जिला हमीरपुर, उ० प्र०) में जेठ बदी ३०, सं० १७७८ (मई १५, १७२१ ई०) को हुआ और दिलेर खाँ मारा गया (महाराज छत्रसाल बुन्देला : डा० भगवानदास गुप्त पृ० ७९ का फुटनोट क्रम १२)। अतएव घटना की ऐतिहासिकता में कोई संदेह नहीं रह जाता। अंतर केवल इतना है कि इतिहास के ग्रंथों में जगतराज और दिलेर खाँ के बीच केवल एक युद्ध का वर्णन है जबकि 'दिग्विजय' में दो प्रमुख युद्धों का। पहला युद्ध गहबरौ में हुआ जिसमें जगतराज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

घायल होकर मूर्च्छित हुए और उनकी रानी विजय कुँअरि को रणक्षेत्र में उतरना पड़ा (दिग्विजय पृ० २४-२५)। कवि ने लिखा है कि इस युद्ध में महाराज छत्रसाल के अन्य पुत्र हिरदेशाह, अंगद, शालिवाहन आदि ने भी सक्रिय भाग लिया। इससे दिलेर खाँ का शौर्यसम्पन्न व्यक्तित्व निखर उठा है। अपने घायल पति को युद्ध से छीन लाने के लिए रानी विजयकुँअरि सैनिकों को उत्साहित करती है और चंडी की तरह शत्रुओं के सम्मुख संग्राम करती है। रानी की वीरता स्तुत्य है और जगतराज को घायल अवस्था में वापिस ले आना वीरता की अद्‌भत गाथा है। यह प्रासंगिक घटना ऐतिहासिक भी हो सकती है और काल्पनिक भी। इतिहास में इस तरह की (कोई) घटना का वर्णन नहीं है। इसी से मिलती-जुलती घटना लगभग १७२८ ई० (सं० १७८५) की जैतपुर घेरे की है। बंगश से जगतराज ने विकट युद्ध किया था और उनके घायल शरीर को महारानी जैतकुँअरि शत्रुओं से छीन लाई थीं। उनकी अद्‌भुत वीरता पर प्रसन्न होकर महाराज छत्रसाल ने उन्हें दो परगने इनाम में दिए थे (महाराजा छत्रसाल बुन्देला : डा० भगवान दास गुप्त पृ० ८६)। परन्तु कवि ने केवल सं० १७७७ तक की घटनाओं का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है, उसके पश्चात् घटित घटनाओं का वह साक्षी नहीं रहा। यदि वह इस घटना का दर्शक रहा होता तो इस रोमांचक घटना को भी निश्चित समेट लेता। अतएव विजयकुँअरि से संबंधित घटना भी ऐतिहासिक है। यदि कल्पित भी हो तो उसमें ऐतिहासिक संभावना निहित है।

जगतराज चेतना पाते ही दिलेर खाँ को युद्ध का संदेश भेजते हैं और परिणामस्वरूप दूसरा युद्ध मौधा में होता है। दिलेर खाँ युद्ध की तैयारी करता है, उसके सहायक उसे मना करते हैं। उसे अशुभ स्वप्न होता है फिर भी वह युद्ध के मैदान से पीठ नहीं दिखाता। सहायकों का मना करना, स्वप्न में अशकुन आदि का वर्णन रूढ़ि का पालन करने के लिए ही योजित किये गए जान पड़ते हैं। अंत में दोनों ओर की सेनाओं का जमघट, जगतराज की प्रतिज्ञा और दिलेरखाँ का लड़ते हुए मारा जाना आदि स्वाभाविक हैं। विजयोपरान्त जगतराज प्रयाग, काशी, मांडा, पाथरकछार, चित्रकूट, बाँदा आदि की यात्रा करते हैं। लौटने पर महाराज छत्रसाल उनकी प्रशंसा कर उन्हें खिलअत देते हैं। वास्तव में कथा यहीं समाप्त हो जाती है पर कवि ने मंगलगढ़ की नींव का वर्णन कर और विस्तार दे दिया है। कवि ने प्रसंगवश चन्देलों और वनाफरों की उत्पत्ति तथा उनसे संबंधित कुछ घटनाओं के संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किए हैं। वे ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पना के आधार पर लिखे गए हैं। उनके प्रेरणास्रोत जनश्रुतियाँ रही हैं। इन वर्णनों से मुख्य कथा की ऐतिहासिकता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

'दिग्विजय' में प्रस्तुत कथा से ऐसा लगता है कि इतिहासकारों को अपने तथ्यों में संशोधन करना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि दिग्विजय में दिलेर खाँ के मरने की तिथि अगहन सुदी २, संवत् १७७६ दी गई है—

सत्रा सौ छैहंतरा अगह शुध बुध दोज।
मौधा में जगनेश नै हनि दलेल तिहिं रोज॥ (छंद ३४७)

डा० भगवानदास गुप्त ने यह तिथि संवत् १७७८ दी है। इसका ऊहापोह इतिहासकारों की बात है परन्तु उन्हें उपर्युक्त प्रमाण स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार बुन्देलों के इतिहास में भी दिग्विजय का एक अलग महत्व है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection. Digitized by eGangotri

भाव-सौंदर्य

दिग्विजय वीररस प्रधान प्रबंध काव्य है। उसमें युद्ध, दया, दान, धर्म वीर में युद्ध वीर के वर्णन अधिक हैं। जगतराज दो बार युद्ध करते हैं इसलिए युद्ध-वर्णन का कौशल अनेक छंदों में प्रकट हुआ है। 'लाल' कवि के 'छत्रप्रकाश' में भी इन वर्णनों की बहुलता है पर कवि की इतिवृत्तात्मक शैली के कारण वे इतने जीवंत नहीं हो सके। दिग्विजय के वर्णन इतने सजीव हैं कि उनके मुक़ाबिले में दूसरे वीर काव्य-ग्रंथों के वर्णन ठहर नहीं सकते। चौपही, नाराच, श्रवणसुखद, पद्धरी आदि छंदों के प्रयोग के कारण वर्णनों में गति आ गई है। बीच-बीच में कवित्त, हरिगीतिका, भुजंगप्रयात आदि वर्णनों में गंभीरता ला देते हैं। युद्ध-वर्णन का एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

धुवां धुंध धाई चहूं ओर कैसैं। निहारें परें ज्यों धरा व्योम जैसैं॥
कढ़ो कोश तें जोश बाढ़ी कृपाणी। मनौ विज्जुली ज्वालमाला प्रमाणी॥
महा तोपखानें छुटैं सो बखानें। चलीं तोपचीं तीर तरवार वानें॥
वरच्छीं उछालीं सुभाले उछाले। करे मारि मीरान के घाव आले॥
लगैं बांक जाकें सु बेवांक होवै। तहां खंजरैं पंजरैं फारि सोवै॥
उलंघै बचै नाहिं जंघै घले तें। तहां पेश कवचान विछुवा चले तें॥
लगैं घाव गुरजान के वीर मुरझे गदा घाव के भाव सों मीर सुरझें॥ (छंद १८७ से १८९)

उपर्युक्त पंक्तियों में 'धुवाँ धुंध धाई', 'जोश बाढ़ी', पंजर फारि सोवै' आदि प्रयोग द्रष्टव्य हैं। मानवीकरण, नवीन विशेषण, उत्प्रेक्षा के चमत्कार के द्वारा वर्णन चमत्कारपूर्ण बन गया है; एक ही वजन के शब्दों (कोश-जोश, सुभाले-उछाले, बांक-बेवांक, खंजरैं-पंजरैं, उलंघै-जंघै, घाव-भाव) से प्रवाह और सौष्ठव आया है। इसी प्रकार सेना सज्जा का वर्णन अत्यंत स्वाभाविक है :

सजि सेन व्यूह अनी घनी। कवि कौन वरणि सकै मनी॥
चतुरंग रंगन सौ बनी। जनु घोर घुमड़ि घटा घनी॥
बहुरंग अंग तुरंग हैं। जहँ जब उमंग कुरंग हैं॥
बहु गजति मत्त मतंग हैं। गिरिराज अंग उतंग हैं॥
फहरें अनेक ध्वजान कीं। लहरें लगैं पवमान कीं॥
ठहरें विमान समान कीं। घहरें सुवीर उजान कीं॥
धमकैं सुधौंसन की मढ़ी। झमकैं सुयोधन की बढ़ीं॥ (छंद १३३ से १३५)

फहरें, लहरें, ठहरें, घहरें, धमकें, झमकें प्रयोग अत्यन्त मधुर और ध्वनिपूर्ण हैं। भिन्न-भिन्न ध्वनियों की आवृति से युद्ध का वातावरण आभासित हो जाता है।

हरिकेश ने कुछ स्थलों पर मनोदशाओं के पूर्ण चित्र अंकित किए हैं और कहीं एक ही पंक्ति से सब कुछ अभिव्यक्त कर दिया है। दिलेर खाँ के वध के पश्चात् जगतराज महाराज छत्रसाल से भेंट करने महेवा पहुँचे। महाराज छत्रसाल उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। हर्ष की व्यंजना कवि ने बड़े कौशल से की है :

उदधि मयंक लखि उमग उछाह भरें कोकनद कोक ज्यों विलोकि भोर भानुकों।
मूक मुख वाणी मया कोविद सुबुद्धि पाय सुकवि कहाय कवि कवित प्रमान कों।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

BPuwan Vani Trust Collection, Lucknow

साधक सुसिद्धि पाय सिद्धि पाय हरि जैसें रंक धन पाय शूर समर समान कों।
सुख तनु धारें माया पुर मह विहारें मनों ता समय विलोकें छता जगत दिमान कों। (छंद ७६३)

इस कवित्त में उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से महाराज छत्रसाल की आंतरिक मनःस्थिति को व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार कवि एक ही पंक्ति में दिलेर खाँ की विचित्र स्थिति का वर्णन करता है। दिलेर खाँ को जैसे ही सेल लगता है, वह धरती पर गिरकर अपनी तलवार उठाता है। वह घाव के कारण शब्दहीन हो जाता है पर न तो वह हार मानने के लिए तैयार है और न कोई दैन्य भाव उसके मुख पर है—"मार कढ़ै तिहि के मुख सों नहिं, हार कढ़ै नहिं, होय न दीनौ।" उसकी विवशता का लघु चित्र बहुत सुन्दर है। भावों के इस चित्रण में कवि की मूल विशेषता यह है कि वह इन छंदों में जहाँ प्रबंध की कथा को गति देता है, वहाँ मुक्तक की रसात्मकता भी भर देता है। ग्रंथ के अधिकांश छंद मुक्तक की स्वतंत्रता, रसवत्ता और कसावट की कसौटी पर खरे उतरते हैं। ऐसे छंदों में कवि भूषण की लीक का अनुसरण करता प्रतीत होता है :

छत्र छत्रसाली कौ तुहीं तौ एक जगतराज राखौ जगतराजी लाली राखी हिन्दुवानैं की।
पेश पेशवान की अपेश करि डारी वीर देश रीति राखी प्रीति राखी छत्र बानैं की।
बनी ठनी अनी घनी हनी तू दलेल खाँ की धरा पै करी है बिना ठीक औ ठिकानैं की।
नौंक राखी हिन्दु की सिपाही की शौक राखी साख राखी आपनी असाख तुरकानैं की।
(छंद ३४५)

इस प्रकार के छंद भाव और भाषा की दृष्टि से भूषण के छंदों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। भूषण के काव्य में उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक है परन्तु हरिकेश ने हिन्दी के शब्दों से ही वही ओजमय दीप्ति सुरक्षित रखी है। यह कवि की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है।

चमत्कार की प्रवृत्ति

रीतिकाल में चमत्कार के प्रति सजग रहने की प्रवृत्ति सामान्य थी। दिग्विजय के कवि ने भी चमत्कार पर अधिक ध्यान दिया है। परन्तु चमत्कार भाव के उपकारक रूप में आया है। चुने हुए उपमानों का प्रयोग, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं के प्रति लगाव और अनुप्रास की अतिरिक्त रुचि इस प्रवृत्ति के द्योतक हैं। वर्षा के रूपक में कवि ने रूढ़ि का अनुसरण किया है और इस कारण वह चमत्कार के फेर में पड़ गया है :

आई रितु पावस समान सेन पंचम की वारिधर वीर तलवार जड़ताई है।
कहैं हरिकेश घनैं घन से गराजें गज वाजि रव राजें बुंद तीर झर राई है।
तोपन तड़प्प गाज गजब भुशुंडिन की हूकन धुवां की धुंध सिंधु बहुताई है।
जोरैं कौन जंग हिन्दु हद्द सों बगोड़ै कौन ओड़ै कौन आज जगतराज की अवाई है। (छंद २४८)

परम्परित रूपकों की योजना कदाचित् प्रबंध-रूढ़ियों के अनुसरण के हेतु की गई है और इन रूपकों की संख्या अत्यल्प है। अधिकांशतः नवीन रूपकों और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग हुआ है और उनके द्वारा कल्पना का संयमित तथा अनुभूतिपरक रूप उभरा है। एक मौलिक रूपक द्रष्टव्य है :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

छत्रसाल जू के दृग युगल चकोर चारु कटकदेव सिंधु उद्यत उदय भयौ।
कैरव कुटुंब अंबु सुहृद मर्याद वेल वारिचर भृत्य शब्द पूरित जयौ जयौ।
वीची चारु नारि कुल पहर की मरीचीं सीं रतन गनी गइं सो हेलया ठयौ ठयौ।
चन्द्र तें दुचंद जगतराज हरिकेश भनें चारौ ओर सुयश विराजति नयौ नयौ। (छंद ७५५)

सिन्धु के इस रूपक में चकोर, कुमुदनी के पुष्प, जल, वेलि, वारिचर, वीचियाँ, रत्न जगतराज रूपी चन्द्रमा के प्रति सहज आकर्षण रखते हैं। चन्द्रमा के व्यापक संबंधों की कल्पना द्वारा एक सुन्दर सांग रूपक की सृष्टि हुई है। यहाँ कवि का साध्य चमत्कार नहीं है। दिग्विजय में ऐसे रससिक्त अंशों की बहुलता है। उत्प्रेक्षाओं में कवि ने पौराणिक उपमानों का प्रयोग अधिक किया है। कहीं-कहीं उनमें कविता और मौलिकता है--"भुज पर लगीं द्वै तलवार। मानहु विजय वंदनवार।" में तलवार के घावों को वंदनवार का सादृश्य दिया गया है जो सटीक और नवीन है। वस्तुतः दिग्विजय पर रीतिकालीन प्रभाव बहुत कम है और इस कारण उसमें कोरी चमत्कार-वृत्ति नहीं मिलती।

छत्रप्रकाश से तुलना

'लाल' कवि द्वारा रचित 'छत्रप्रकाश' दिग्विजय की समकालीन कृति है परन्तु दिग्विजय से पहले प्रकाश में आ जाने के कारण उसे अधिक महत्व मिल गया है। यदि दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि दिग्विजय अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ रचना है।[1] कथावस्तु की दृष्टि से दोनों समान महत्व रखते हैं पर दिग्विजय में एक ही ऐतिहासिक घटना का विस्तार है जबकि छत्रप्रकाश में अनेक लड़ाइयों का वर्णन है। छत्रप्रकाश इतिवृत्तात्मक है इसलिए उसमें वह रसात्मकता और चमत्कार नहीं जो दिग्विजय में है। शब्द-योजना, भाषा, गुण शैली आदि दृष्टियों से भी दिग्विजय की महत्ता असंदिग्ध है।

मूल्यांकन

रीतिकालीन वीरकाव्य मुक्तक और प्रबंध दोनों रूपों में विकसित हुआ है। वीर मुक्तकों की रचना में भूषण सबसे आगे रहे। प्रबंध की परम्परा में 'छत्रप्रकाश' को ही अधिक महत्व दिया गया। परन्तु दिग्विजय के अध्ययन के पश्चात् हमें अपनी धारणा बदलनी पड़ेगी। वीर रस प्रधान प्रबंधों में दिग्विजय को ही शीर्ष स्थान का अधिकारी ग्रंथ मानना होगा। ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से उसका महत् मूल्य है। दिग्विजय का अध्ययन रीतिकालीन वीरकाव्य की प्रबंध-परम्परा के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है। आशा है कि यह प्रस्थापना इस परम्परा के विकास में योगदान दे सकेगी। दिग्विजय के बिना रीतिकालीन वीरकाव्य की प्रबंध-धारा उतनी प्रवाहमय और सरस नहीं हो सकेगी। हिन्दी के इतिहास में दिग्विजय के प्रदेय का मूल्यांकन एक नवीन दिशा निर्देशित करेगा, इसी संभावना के साथ दिग्विजय का परिचयात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

---

१. मिश्रबंधु विनोद प्रथम भाग पृ० ११८ में 'लाल' कवि को उद्दंड कवि के रूप में भूषण और हरिकेश से अधिक प्रबल माना गया है पर ऐसा लगता है कि मिश्रबंधुओं ने उनके ग्रंथ 'दिग्विजय' को नहीं देखा जैसा कि उनके उपर्युक्त ग्रंथ के पृ० ११५ से प्रकट है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बोधीदास कृत जोगवसिष्ठ कथा

डॉ० सुधाकर मिश्र
एम० ए०, पी–एच० डी०

हिन्दी का अधिकांश काव्य धर्म और दर्शन के क्रोड़ में पल्लवित-पुष्पित हुआ है, जिसमें सन्त कवियों का योगदान अभिशंसनीय माना गया है। अपने छल-छद्महीन हृदय की पुकार को जनता की वाणी में जनता के सामने रखने के लिए, ये कवि निरन्तर प्रयत्नवान थे। ज्ञान की वाणी सर्वगम्य नहीं होती, यही कारण है कि इन कवियों की रचनाएं बहुतों को अगम्य और दुरूह प्रतीत होती है। समर्थ विचारक होने के कारण, इनकी रचनाओं में चिंतन की विभिन्न भंगिमाएं अपने आप उभर आयी हैं। निर्मल शीशे में जैसे किसी मूर्ति का निर्विकार दर्शन होता है, उसी तरह इन्होंने अपने निर्मल चित्त में पवित्र, जीवनोपयोगी एवं मुक्ति-दायी विचारों को उनके स्पष्टतम रूपों में देखा था। अपने अनुभवों को ये सर्वथा सत्य समझते थे और सत्य-कथन किसी भय की अपेक्षा नहीं करता, इसी से ये कवि अपने विचारों को बिना किसी झिझक के कहने के अभ्यस्त हो गये थे। अपनी बात को जिस विश्वास के साथ इन कवियों ने कहा है, उस विश्वास के साथ कहनेवालों की संख्या अन्यत्र नहीं के बराबर है। इनका हृदय धार्मिक भावनाओं से उद्दीप्त था, शुद्ध काव्य-प्रेरणा से प्रेरित नहीं, और ये अपने ज्ञान के द्वारा सामान्य जन-जीवन में व्याप्त बुराइयों के उन्मूलन में संलग्न थे; अतएव इनकी रचनाओं में व्याप्त काव्य-तत्व की गौड़ता सुनिश्चित होने के कारण खटकती नहीं। हिन्दी ऐसे कवियों की एक लम्बी परम्परा से विभूषित है, परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि अब भी उसके बहुत से कवि पाण्डुलिपियों में अपना परिचय छिपाये, ग्रामीणों के बस्तों में बन्द पड़े हैं। ऐसे ही एक कवि हैं श्री बोधीदास, जिनकी रचना जोगवसिष्ठ[1] कथा की एक खण्डित प्रति मुझे कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई है। यद्यपि इस कवि के सम्बन्ध में अभी तक विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है, फिर भी इस काव्य की ही एक चौपाई से इतना अवश्य ज्ञात हो गया है कि बोधीदास किसी 'बनिया कुल' में उत्पन्न हुए थे :

"दास बोधी बनिया कुल माई। नाम प्रताप राखे सरनाई॥"

---

१. अ––ग्रंथकार––बोधीदास। लिपिकार––अज्ञात। अवस्था ठीक। पृ० सं० ८०। आकार ७॥×४॥। लिपि––नागरी। रचनाकाल––अज्ञात। लिपिकाल––अज्ञात।

ब––इसके कुछ पृष्ठ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में भी सुरक्षित हैं।

स––प्राप्त प्रति खण्डित है। प्रारंभ का पृष्ठ और मध्य के ३-४ एवं ८० के बाद के पृष्ठ गायब हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जो पाण्डुलिपि मुझे प्राप्त हुई है, वह कम से कम ८०-९० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। इस पाण्डु-लिपि, काव्य पर पड़े विभिन्न कवियों के प्रभाव, काव्य-भाषा तथा नाम-महात्म्य में वर्णित संतों की नामावली को ध्यान में रखने पर बोधीदास जी १७वीं शताब्दी के कवि जान पड़ते हैं। कबीर की भांति ये भी बहुश्रुत एवं बहुज्ञ थे तथा ख्यातिलब्ध भक्तों एवं भारतीय चिन्तन परम्पराओं का इन्हें अच्छा ज्ञान था। काव्य पर पड़ी संस्कृत-साहित्य की छाप, इनके संस्कृतज्ञत्व का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

इस काव्य का प्रारंभ, मुनि वसिष्ठ द्वारा रामचन्द्र से कही गयी, त्रिविध तापों को नष्ट करनेवाली, शोकविमोचन और कामनाशक ब्रह्म-कथा के संक्षिप्त वर्णन से हुआ है :

"मुनिवसिष्ठ जो कथा बखानी। रामचन्द्र सुनि बहु सुख मानी॥
सो संछेप कहौं कछु गाई। जाते त्रिविध ताप नसि जाई॥
जोग बसिष्ठ कथा कर नामू। सोक मोचन अरु नासन कामू॥"

बोधीदास जी ने ब्रह्म का वर्णन विभिन्न विशेषणों के साथ किया है। इनके विचार से ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अविनाशी, अजर, अभय, अलख, निरंजन और अंतर्यामी है, तथा विधि हरि, हर सब इसी ब्रह्म का गान करते हैं :

"जाके रूप रेख कछु नाहीं। कर नहिं बदन अंग नहिं छाहीं॥
बिनु पद चलै देखै बिनु नैना। सुनहि स्रवनबिनु सहजे बैना॥
शब्द स्वरूप रहहि सब माहीं। दुख सुख ताहि कछु व्यापै नाहीं॥
निराकार निर्गुन अबिनासी। पूरन ब्रह्म निरंतर बासी॥"

इनके अनुसार ब्रह्म सर्व-व्यापी तथा जीव का आदि और अन्त स्थान है। सभी जीव उसी के अंश हैं और मृत्यु के बाद उसी में समा जाते हैं :

"एक ब्रह्म ज्ञानी लखैं, नाना रंग शरीर। मूल सूत जिमि एक है, अमित कहावै चीर॥"

विज्ञानी अचर-चर सबको ब्रह्ममय मानता है और ऊंच-नीच का भाव छोड़कर सबको सिर झुकता है :

जीव चराचर सारे प्रानी। सबै ब्रह्म जानै विज्ञानी॥
ब्रह्म जानि सिर सब को नावे। ऊंच नीच नहिं हिए बसावे॥

बोधीदास जी के अनुसार निर्वाण के लिए 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म' की भावना अनिवार्य है :

"ब्रह्म बिलोके ब्रह्म को, ब्रह्म ब्रह्म कहं खाए।
ब्रह्म ब्रह्म सों बोले, ब्रह्म ब्रह्म घर जाए॥
मनसा वाचा कर्मना, अस जाके विज्ञान।
अपर न जाने ब्रह्म तजि, आपु होए निर्वान॥"

बोधीदासजी ने मानव-शरीर को एक सुन्दर ऊर्ध्वमुखी वक्ष कहा है, जिसमें सुख और दुख रूपी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दो फल लगे हुए हैं। इस वृक्ष पर आत्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी भी निवास करते हैं। जो पक्षी दोनों फल खाता है, उसे जीव कहते हैं। परमात्मा (परमहंस) एक भी फल नहीं खाता, इसलिए वह शरीर में अविकारी रहता है:

"ब्रीछ सोहावन नर-तनु एका। ताकी मैं सब कहौं विवेका॥
पांच तत्व तरु डार: दस इन्द्रिय पल्लव बने।
त्रिगुन त्वचा सुधार: उर्धमुखी सो ब्रीछ है॥
तामे लागे जुगल फल: दुख सुख है समतूल।
सुख भोगे सो दुख सहै: अंत होए बहु सूल॥
तेहिं तरु पर पंछी दोए बासी। आतम परमातम अविनासी॥
पंछी एक दोउ फल खावे। एहि प्रकार ते जीव कहावे॥
परमहंस एको नहिं खाही। ताते अविकारी तनु माही॥"

संतों के समान शरीर को नश्वर मानकर भी बोधीदास जी ने उसे अज, विष्णु, महेश, सोम एवं दिनेश का निवासस्थान चित्रित किया है:

"..... या घट भीतर वस्तु घनेरा॥
या घट में अज विष्णु महेसा। या घट में रह सोम दिनेसा॥
या घट में रह जीव अविनासी। या घट पांचो तत्व सुखवासी॥"

जब जीव विषय-सुखों में अन्धा हो जाता है, तब उसे अपने स्वरूप का भी ज्ञान नहीं रहता:

"विषै स्वाद महं जीव भुलाना। अंध भया निज मरम न जाना॥
भिन्न-भिन्न इन्द्रिय सुख जाने। तब लगि नहीं ब्रह्म पहिचाने॥"

संसार मिथ्या है, सत्यमात्र ब्रह्म ही है। जो विश्व को सत्य समझता है वह अज्ञानी है:

सत्य विस्व जानहि अज्ञानी। जाते उपजे बिनसे प्रानी॥

तांत्रिकों के समान बोधीदास जी का भी विचार है कि यह संसार शब्दरूपी निराकार ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। सर्वप्रथम उससे 'ओंकार' की उत्पत्ति हुई और बाद में पाँचों तत्वों का निर्माण हुआ। यही पाँचों तत्व पिण्ड—जन्म के कारण हैं:

पिण्ड-निर्माणकारी पंच महाभूतों के रंगों एवं उनके तेज से उत्पन्न शरीरस्थ पंच तत्वों का भी इस कवि ने सम्यक् निरूपण किया है:

"धरती पीअलि शेत जल : काला रंग अकास।
तारा रंग अग्नि कर : हरिअर रंग बतास॥
छिति के तेज रचो सब अंगा। अप के तेज से बनो अनंगा॥
पावक तेज ते जठर है राई। पवन तेज ते प्रान बनाई॥
गगन तेज ते सुरति संसारी। कहा मैं पांचों तत्व विचारी॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अज्ञानी सांसारिक दुःख:-द्वन्दों का सहन करता है, परन्तु ज्ञानी इससे मुक्त रहता है :

"ग्यान विहीन सहै दुख दंदा । ग्यानवंत नर परम अनंदा ।।"

शरीर में परमतत्व के दर्शन की तांत्रिक परम्परा से हिन्दी के प्राय: सभी संत कवि अवगत दिखाई पड़ते हैं। बोधीदास जी भी हठयोग-साधना से पूरी तरह परिचित थे, इसका ज्ञान हमें इनके द्वारा वर्णित शरीर में ब्रह्म-प्राप्ति के विवरण से मिलता है। आसन लगाने से लेकर अनहदनाद के सुनाई पड़ने तक की सम्पूर्ण क्रियाओं-प्रक्रियाओं का इन्होंने सविस्तर वर्णन प्रस्तुत किया है :

"प्रथमहि पंकज आसन साधे । दूजो दुवो शर ? उलटि कए बांधे ।।"

ऐसा ब्रह्म-परायण योगी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूर्ण एवं सोम के समान शीतल होता है। उसे पाप और पुण्य स्पर्श नहीं करते। उसका मन तत्व-चिंतन में इस तरह संलग्न रहता है कि अज्ञानी लोग उसे निद्रावशीभूत समझ बैठते हैं। उसके प्रेम-मुदित मन का मर्म विरले ही जानते हैं :

"अस जोगी जो है निर दंदा । जिमि पूरन पूरनिमा को चंदा ।।"

बोधीदास जी ने जीवन्मुक्त साधक का पूरा परिचय दिया है। उनके विचार से ऐसा साधक सम-दृष्टि होता है और उसके हृदय में किसी प्रकार का द्विधाभाव नहीं रहता। वह इष्ट और अनिष्ट को समान समझता है तथा कंचन एवं कांच में अंतर नहीं करता। योग-भोग, दुख-सुख, राजा-रंक, हित-वैरी, हर्ष-संताप, पुण्य-पाप, मान-अपमान, विधि-निषेध स्तुति-निन्दा, सब जीवन्मुक्त को एक जैसे प्रतीत होते हैं। कुल-परिवार उसे कृष्ण भुजंग जैसा और रति जैसी सुन्दरियों का सौन्दर्य उसे क्षार के समान दिखाई पड़ता है :

"पूरन ब्रह्म देखे सब ठाईं । रहे असंग ब्रह्म की नाईं ।"

ज्ञान और योग के समान बोधीदास जी ने इस ग्रन्थ में भक्ति का भी निरूपण किया है। इनके विचार से भक्ति ही वह साधन है जिससे सांसारिक क्लेश नष्ट होते हैं और नरक से छुटकारा प्राप्त होता है :

"भक्ति बिना नहिं मिटए कलेसा । पछिम जाए जो उगए दिनेसा ।।"

मुक्ति भगवत् प्राप्ति से होती है और भगवत् प्राप्ति भक्ति से :

प्रेम बिना न भक्ति उद्वंता । भक्ति बिना न मिले भगवंता ।।
बिनु भगवंत मुक्ति होए नाहीं । जरा मरन बिनु मुक्ति न जाहीं ।।

सन्त-भक्त कवियों की भांति बोधीदास जी का मन भी नाम महात्म्यगान में खूब रमा है :

"नाम की महिमा सुनो कछु भाई ।
जाते दोविधा सकल नसाई ।।"

ग्रन्थ में नवधाभक्ति का भी वर्णन उपलब्ध है :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समुचित होए सुनहु काशीवराई । नवधा भक्ति कहों कछु गाई ।।
प्रथमहि गहे साधु गुरु पाया । दूजे सुनए राम जस राया ।।
तीजे भेष राम कर धरई । माला तिलक छाप अनुसरई ।।

(इसके बाद का पृष्ठ अनुपलब्ध है)

बोधीदास जी ने संतों की महिमा भी मुक्त-मन से गायी है :

"पर दुख देखि संत होहिं दुखी । पर सुख देखि संत होहिं सुखी ।।
परहित लागि संत सिर देहीं । पर दुख आपु अंगीछी के लेहीं ।।
अधम उधारन संत है : दुख मोचन भवहरन ।
विचार बनए सो कीजिए : हम सब तुमरी सरन ।।"

सन्तों के समान बोधीदास जी भी नारी-निंदा से परे नहीं रह सके । उनके विचार से नारी नरक का प्रकट स्वरूप है एवं उसके विचार से चलनेवाले व्यक्ति का कार्य कभी सफल नहीं होता :—

"जो जो चले नारि के बानी । सो सबके भी कारज हानी ।।
नारी नरक प्रकटहही लाई । हरि की भक्ति न जाई सोहाई ।।
नारि स्वरूप नरक के घानी । लागे सबहि बने कोई ग्यानी ।।"

इस प्रकार इस ग्रंथ में ज्ञान, भक्ति एवं योग का सुन्दर निरूपण हुआ है । कवि ने एक तरफ राम नाम की महिमा गाई है, भक्ति मार्ग की महनीयता प्रतिपादित की है तो दूसरी तरफ हठयोग द्वारा घट में ब्रह्म-दर्शन का चित्रण भी किया है । तांत्रिक साधना एवं भक्ति का मार्ग का यहाँ वैसा ही समन्वय उपलब्ध है, जैसा कबीर आदि संतों की रचनाओं में मिलता है । परन्तु सन्तों की पाखण्ड-खण्डन-परम्परा, रहस्यवादी प्रवृत्ति एवं चमत्कार प्रधान उक्तियों का इस ग्रंथ में बिल्कुल अभाव है ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भक्त कवि भीखजन

डॉ० कन्हैयालाल सहल
एम० ए०, पी-एच० डी०

भीखजन का जन्म तारगवंश में हुआ था। तारग लोगों को उच्च वर्ण के लोग न छूते हैं, न उनसे किसी प्रकार का लेन-देन करते हैं। इनका मोहल्ला भी सवर्ण हिन्दुओं के रहने के स्थान से गाँव के एक तरफ ही रहता है। कुओं पर सबके साथ इनको पानी भी नहीं भरने दिया जाता। ये लोग इतने पतित समझे जाते हैं कि प्रातःकाल इनका दर्शन भी अपकुशन माना जाता है। ये खेती-वारी का काम करते हैं और अन्य लोगों से अलग ही रहते हुए अपना जीवन व्यतीत किया करते हैं।

खेती-वारी से जो अवकाश मिलता, भीखजी उसे दादूपंथी साधुओं की संगति में विताया करते थे। भीखजी के समय में फतेहपुर में कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक साधु भी हो गये हैं जिनमें सुन्दरदासजी, चरनदास जी आदि मुख्य हैं। 'सुन्दर-ग्रन्थावली' के नाम से सुन्दरदासजी के ग्रन्थों का तो प्रकाशन हो चुका है पर कई अन्य साधुओं की रचनाएँ हस्तलिखित रूप में मठों में रहने वाले उनके शिष्यों के पास पाई जाती हैं। साधुओं की संगति से भीखजी भी रचना करने लगे और भगवान के भक्त हो गये। इन्होंने अपना आराध्यदेव श्री लक्ष्मीनाथ जी को ही बनाया जिनका मन्दिर शहर के बीच बाजार में स्थित है। इनकी यहाँ बड़ी भक्ति है और प्रायः नगर का प्रत्येक भक्त-नागरिक दर्शन के निमित्त प्रतिदिन इस मन्दिर में आया करता है। भीखजी इनकी भक्ति में इतने तल्लीन हो गये थे कि इनका दर्शन किये बिना न भोजन करते थे और न जल-ग्रहण करते थे। कुछ समय तक तो यह क्रम चलता रहा पर एक बार कुछ लोगों ने कहा कि तारगकुलोत्पन्न भीखजन का मन्दिर प्रवेश सवर्ण हिन्दुओं के लिए आपत्तिजनक है। अतः भीखजी को देवालय में जाने से रोक दिया गया। किन्तु वे तो भगवान का दर्शन किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे। अपने आप को सर्वथा असहाय पाकर वे मन्दिर के पिछाड़ी रास्ते में बैठ गये और भगवान की भक्ति के बावन कवित्त उन्होंने बनाये जो बाद में 'भीखजी की बावनी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। तीन दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये वे भगवान की स्तुति करते रहे। चौथे दिन सबेरे जब पुजारी भगवान की पूजा के निमित्त भीतर गया तो वे क्या देखता है कि मूर्ति पीठ फेरे हुए है और भगवान का मुंह पश्चिम की ओर है जिधर भीखजन तीन दिन से भूखे प्यासे बैठे हुए भगवान का भजन कर रहे थे। पुजारी ने मूर्ति को घुमाया पर मूर्ति फिर घूम गयी। इस बात की चर्चा सारे शहर में बिजली की तरह फैल गई और सब लोग असली बात जानने के लिए मन्दिर में इकट्ठे हो गये। सब लोगों ने भीखजी को परम भक्त समझ कर मूर्ति के ठीक सामने आम रास्ते पर मन्दिर में एक मोरी निकलवादी जिससे यह भक्त मन्दिर में आये बिना आम रास्ते से भगवान का दर्शन कर सके। जब तक भीखजी जीवित रहे तब तक तो यह मोरी थी। अब करीब पचास वर्षों से उसे बन्द करवा दिया गया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सं० १६८३ की पौष शुक्ला पूर्णिमा को 'भीखजन की बावनी' का निर्माण हुआ था जैसा कि निम्न-लिखित छप्पय से प्रकट होता है :

संवत सोलह सौ जु बरस तब हुतो तिरासी
पोख मास पख सेत हेत दिन पूरनमासी।
शुभ नक्षत्र जु पुस्य धर्‌यो जु कर्‌यो आसारज
कथो भीखजन ज्ञान जाति द्विज कुल आचारज।
सब संतन सों बीनती, अवगुण मोर निवारियहु।
मिलते से मिलता रहो, अनमिल अंक सवारियहु॥

'भीखजन की बावनी' की एक प्रति मेरे पास है जो सन् १९२२ में मुद्रित हुई थी। इसमें ५४ छप्पय हैं किन्तु इसका पाट बहुत अशुद्ध है। भीखजन के वंश में एक ऐसा आदमी है जो ५२ छप्पयों को कंठाग्र सुना सकता है। अपठित होने के कारण वह शब्दों का शुद्ध उच्चारण तो नहीं कर सकता पर उसके सुनाने और इस पुस्तक के छपे हुए छप्पयों में बड़ा पाठान्तर है। भीखजन के वंशज से पूछने पर ज्ञात हुआ कि भीखजन की बनाई हुई सब पुस्तकें कुछ समय पूर्व तो विद्यमान थीं पर कच्चे घरों में आग लग जाने के कारण सब जल गईं। भीखजन की बनाई हुई पुस्तकों में से 'भीख माला' नाम की एक और प्रसिद्ध पुस्तक है जिसके कुछ दोहे उक्त भीखजन के वंशज को याद हैं।

'भीखजन की बावनी' में से एक अन्य छप्पय उदाहरण के लिए यहाँ दिया जाता है :—

मंजारी कुल भेद, रक्त केशर परसंगा
नागरवेल बल संग, सहत माखी मल अंगा
किस्तूरी मृग नाभि, कटि पाटम्बर सोहै।
मणि विषधर उपजंत, फीम जूठनी जज मोहै।
पारस वंश पखान है, संख हाड सब कोइ कहै
हरिगुन हीत्वै भीखजन, नहिन कुल कारण चहै॥

अर्थात् बिल्ली की जेर अशुद्ध होते हुए भी लोग उसके प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, खून के प्रसंग में रहने पर भी केशर शुद्ध समझी जाती है, नागरवेल की उत्पत्ति भी अशुद्ध स्थान से ही होती है और शहद भी मक्खी के शरीर का मैल है। कस्तूरी हिरण के पेट से पैदा होती है, रेशम भी कीड़ों से तैयार होकर सुशोभित होता है और मणि साँप के सिर से उत्पन्न होती है तथा अफीम को भी, जो जूठन है, लोग प्रसन्नता पूर्वक खाते हैं। पारस पत्थर के वंश का है और शंख भी, सब जानते हैं, हड्डी के अतिरिक्त और क्या है? उक्त अशुद्ध चीजें भी भगवान के अर्चन-पूजन के निमित्त प्रयोग में आने के कारण शुद्ध समझी जाती हैं। इसलिए भीखजन कहते हैं कि भगवान के गुणों से प्रेम रखने वाले मनुष्य के लिए उच्च कुल की कोई अपेक्षा नहीं रह जाती। कबीर भी इसी स्वर में स्वर मिला रहे हैं :—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गोस्वामी राधाचरण : प्रामाणिक रचनाएँ

डॉ० केदारदत्त तत्राड़ी
एम० ए०, पी-एच० डी०

आज सम्पूर्ण भारतेन्दु-युग के मंथन, पुनर्विवेचन और गवेषणा के आधार पर, नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाकर पुनः पर्यवेक्षण की आवश्यकता प्रतीत होती है; क्योंकि युग-मानव के जर्जरित जीवन में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक-साहित्यिक आदि नवचेतनाओं के तीव्र स्वर सञ्चारित कर उसे विकासोन्मुख करने का एकमात्र श्रेय उसी युग के कलाकारों को है। उस काल के जागरूक कलाकारों के व्यक्ति और साहित्य-कार का न्यायोचित मूल्यांकन अभी शेष है।

श्री गो० राधाचरण जी अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रौढ़ लेखनी के बल पर भारतेन्दु जी के परिकरों में सबसे आगे दिखाई पड़ते हैं। स्वयं बाबू भारतेन्दु जी भी उनका लोहा मानते थे। वस्तुतः गो० जी के व्यक्ति और साहित्यकार के दर्शन एक साथ ही विविध रूपों में होते हैं। वे समाज क्षेत्र में सजग प्रहरी, धर्म-क्षेत्र में श्री माध्वगौड़ीय सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य, राजनीति में राजनीतिज्ञ, प्रशासकीय क्षेत्र में अवैतनिक न्यायाधीश और साहित्य-क्षेत्र में एक जागरूक साहित्यिक थे। जैसा उनका उदात्त एवं विलक्षण व्यक्तित्व था वैसा ही कृतित्व भी। उनकी समस्त रचनायें युग-सन्धिकालीन प्रकाश-स्तम्भ हैं जिनके द्वारा उन्होंने एक ओर हमारे गौरव-गर्भित उज्ज्वल अतीत को सामने रखकर युग-मानव को सचेत किया और दूसरी ओर कुण्ठित जन-जीवन की विकृतियों का उद्‌घाटन करके समाज की आँखें खोलीं। उनके कृतित्व का विकास युग-जागरण की जनवादी व प्रगतिशील नव चेतना के रूप में हुआ है। गो० जी की मौलिक रचनाओं की संख्या लेख-निबन्धादि के अतिरिक्त भी सहज ही ५० को लांघ जाती है। इतनी बड़ी संख्या भारतेन्दु-युग के लिए विशेष महत्व रखती है।

गो० जी की सम्पूर्ण रचनाओं से हिन्दी-जगत अब तक अनभिज्ञ अथवा अल्पविज्ञ है। किसी आलोचक विद्वान द्वारा उनकी कृतियों की पूर्ण एवं प्रामाणिक सूची प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया गया। जो कुछ सहज ही प्राप्त हो सका उस पर भी अनेक भ्राँतियाँ उत्पन्न होने लगीं। इस सम्बन्ध में एक कटु सत्य हमारे सामने यह है कि मिश्रबन्धु और आचार्य शुक्ल जी की मान्यताओं को ही बाद के विद्वानों ने प्रायः बिना तथ्य-परीक्षण के स्वीकार किया। सौभाग्य से गो० जी के पौत्र श्री अद्वैत चरण जी हमारे मध्य हैं। उन्होंने मार्च सन् १९४६ को गो० जी के अभिन्न मित्र श्री वियोगीहरि जी के करकमलों द्वारा गो० जी के प्रसिद्ध पुस्तकालय का जीर्णोद्धार करके उसे सुव्यवस्थित रूप भी दिया किन्तु किसी भी विद्वान ने उनको एक पोस्ट-कार्ड लिखकर भी गो० जी की प्रामाणिक रचनाओं की जानकारी प्राप्त करने का कष्ट नहीं किया।

गो० जी ने अपने आत्म-चरित के अन्तिम आवरण पृष्ठ पर अपनी रचनाओं की एक तालिका भी प्रकाशित की है जिसमें उनकी सन् १८९५ से पूर्व की प्रायः प्रमुख रचनायें सम्मिलित हैं। विद्वानों ने इस

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सूची के अनुसार भी उनकी रचनाओं का उल्लेख नहीं किया है। अस्तु, गो० जी की कुछ ऐसी रचनायें हैं जिनके सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण उन सब भ्रान्तियों का निराकरण तो सम्भव नहीं है किन्तु बहुत छान-बीन के बाद जो तथ्य सामने आये उनके आधार पर गो० जी की प्रामाणिक रचनाओं की सूची निम्न है :

मौलिक रचनायें

(अ) नाटक-प्रहसन

१. भंग-तरंग, २. श्रीदामा, ३. अमरसिंह राठौर, ४. कलिका, ५. चम्पकलता, ६. सती चन्द्रावली, ७. कामिनी कलानिधि, ८. कलंक्यवतार, ९. भारत-रोगी, १०. होली-हुर्दंग, ११. बूढ़े मुंह मुहासे लोग देखें तमासे, १२. तन, मन, धन गुसाईं जी के अर्पण, १३. दफ़ा चौंतीस, १४. म्यूनिसिपल कमिश्नर, १५. आनरेरी मजिस्ट्रेट।

(आ) नवन्यास-उपन्यास

१. बाल विधवा, २. सर्वनाश, ३. अकलचन्द (अपूर्ण), ४. विधवा-विपत्ति, ५. जावित्री, ६. चतुर (अप्राप्त), ७. वीरबाला, ८. कल्पलता, ९. सौदामिनी।

(इ) लेख-निबन्ध भाषणादि

गो० जी के ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, शिक्षा-सम्बन्धी और यात्रा-सम्बन्धी जीवन चरितात्मक विविध लेख, निबन्ध एवं भाषणादि की संख्या सहज ही २०० को लांघ जाती है। स्थानाभाव के कारण इतनी बड़ी तालिका यहाँ प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है, अधिकांश लेख, निबन्ध एवं भाषण आर्यावर्त, भारतजीवन बिहारबन्धु, भारत मित्र, कवि वचन सुधा, सार सुधा निधि, मित्र विलास, आर्य दर्पण, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका-मोहन चन्द्रिका, भारतेन्दु, हिन्दोस्तान, हिन्दुबान्धव, हिन्दी प्रदीप, श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की ही संजिकाओं में बन्द हैं।

(ई) स्तोत्र (व्यंग परिहास)

(१) नापित स्तोत्र, २. रेलवे स्तोत्र, ३. मूषक स्तोत्र, ४. वैद्यराज स्तवराज, ५. मच्छर स्तोत्र, ६. अंग्रेज स्तोत्र, ७. वेश्या स्तोत्र, ८. मेहत्तर स्तोत्र, ९. बूट स्तोत्र।

गोष्ठी साहित्य

(क) श्रीपाल और गोपाल का आलाप, दो मित्रों का संवाद, गंगा जमुना का वार्तालाप, रूसराज परमेश्वर का वार्तालाप, अमीर काबुल और बेगम की गुफ्तगू, हिन्दूराजा और हिन्दी पत्र, यजमान पुरोहित की दो-दो चोंचें, गुरुलाल बेग और भंगी लोगों का परम पावन संवाद।

(ख) **पंच**—दालभात में मूसलचंद, महा महा तर्पण, दावी सल्तनत मय खर्चा, हिंडोला लड़ाई भिड़ाई, वृद्ध विवाह, सिंह शार्दूल, भरत मिलाप।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पद्य साहित्य

श्री ब्रजेन्द्र विजय, वैष्णव बोधिनी, दामिनी दूतिका, पद प्रलाप, प्रेमबगीची, हित विशन्ति, निपट नादान, भारत संगीत, नव भक्तमाल, विधवा प्रलाप, धर्मगीत, प्रकृति वर्णन, दयाराम लार्ड लिटन, राजकुमार ड्यूक आफ एलबानी, लार्ड रिपन का षोडशोपचार, इलवर्ट विल।

उक्त के अतिरिक्त लगभग ३५० प्रकीर्णपद विभिन्न छन्दों में ब्रजभाषा में उपलब्ध हैं। गोस्वामी जी की १२ अनूदित रचनाएँ तथा १ संपादित और संकलित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन्होंने भारतेन्दु और श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका का भी संपादन किया था। एक व्यक्ति द्वारा इतने विपुल साहित्य का सृजन करना उसकी महान प्रतिभा का परिचायक है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी रंगमंच को पं. नारायणप्रसाद जी 'बेताब' की देन

डॉ० विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

नाटक चाक्षुष यज्ञ है तथा जनता को शिक्षित बनाने, जागृत करने और वैचारिक दृष्टि देने का यह एक प्रबल माध्यम है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में यह एक ऐसा सुन्दर व मनोरंजक कार्यक्रम है जिसके द्वारा जटिलतम समस्याओं को भी सरल और सुन्दर ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है। क्रांति लाई जा सकती है। अन्य साहित्यिक विधाओं की तरह रंगमंचीय नाटकों का भी हिंदी साहित्य में अपना स्वतंत्र स्थान है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक व्यावसायिक रंगमंच पर हिंदी नाटकों का कोई अस्तित्व ही न था। राज्य था उर्दू नाटकों का। सीता माता भी रामचन्द्र से कहती थीं–"तुम मुझको क्या मिले हो कि मेरा खुदा मिला।" (तालिब बनारसी)। इस शताब्दी के दूसरे दशक तक का काल अनेक प्रकार के आंदोलनों और क्रांतियों का काल रहा है। ऐसे संक्रांति काल में भी राष्ट्रीयता का ध्यान रखते हुए पं० नारायणप्रसाद जी "बेताब" ने उर्दू नाटकों में भी गाने हिंदी में ही रखे। इसकी चर्चा करते हुए मराठी के प्रसिद्ध लेखक कैप्टन मा० कृ० शिंदे ने अपने ग्रंथ "नाट्य संहिता" में लिखा है :

"१९ वीं शताब्दी तक पारसी रंगमंच पर उर्दू नाटक ही खेले जाते थे, और उनमें गज़ल, कव्वाली आदि ही पद्य के प्रकार होते थे। परन्तु बीसवीं शताब्दी का आरम्भ होने पर पारसी रंगमंच पर एक परिवर्तन दिखाई देने लगा। पं० नारायणप्रसाद "बेताब" ने उर्दू रंगभूमि पर हिन्दी भजनों व गीतों का प्रथम श्रीगणेश कर दिया। तत्पश्चात् अन्य नाटककारों ने भी उर्दू रंगभूमि पर हिन्दी का एक स्थान निश्चित कर दिया।"

सन् १९०१ में बेतावजी ने अपना प्रथम नाटक "कत्ले नज़ीर" जमादार की कम्पनी को दिया और लाहौर में इसके अभिनय से हिन्दी रंगमंच की सेवा का श्रीगणेश किया, जो १९४५ ई० तक अर्थात् ४५ वर्षों तक चलती रही। आपने १९०१ से १९१२ तक हिन्दी की ही एक शैली ऐसी उर्दू में हिन्दी गानों के साथ १५ नाटक लिखे जिन्हें सभी प्रकार के प्रेक्षक आसानी से समझ सकते थे। उन नाटकों के नाम हैं :

"कत्ले नज़ीर, हुस्ने फरंग, कृष्णावतार, मयूरध्वज, कसौटी, मीठा ज़हर, जो आप पसंद करें, ज़हरी सांप, अलीबाबा, फरेबे नज़र, वहम का पुतला, अमृत, फूट का फल, तौबाशिकन उर्फ इन्तकाम और गोरखधंधा।"

मीठा ज़हर, जो आप पसंद करें तथा गोरखधंधा क्रमशः शेक्सपियर के सिम्बेलीन, एज़ यू लाइक इट तथा कॉमेडी आफ एरर्स के अनुवाद हैं। फरेबे नज़र और जो आप पसंद करें ये दोनों नाटक मंच के लिए नहीं लिखे गए थे। बेतावजी ने इन दोनों नाटकों को अपनी उर्दू मासिक पत्रिका "शेक्सपियर" में केवल इसलिए प्रकाशित किया था कि पाठकों में नाटकों के प्रति प्रेम व रसोत्पन्न हो तथा अन्य भाषाओं के नाटकों से भी वे परिचित हो सकें। इन उपर्युक्त नाटकों में कत्ले नज़ीर, मीठा ज़हर, ज़हरी सांप, तौबाशिकन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और गोरखधंधा आदि बड़े ही लोकप्रिय हुए परंतु ज़हरी सांप तो सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। एक बार बम्बई में प्राचीन नाटकों की नाट्य-स्पर्धा रखी गई थी जिसमें "ज़हरी सांप" को सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ था। दिग्दर्शक थे सोहराबजी केरांवाला जिन्होंने खुद "नाहरसिंह डाकू" अर्थात् नायक का काम किया था।

"गोरखधंधा" नाटक के साथ ही १९१२ ई० में बेताबजी के उर्दू नाटकों का युग समाप्त हो गया और हिन्दी पौराणिक नाटकों का युगारंभ हुआ जिसकी तैयारी यूँ तो सन् १९०१ से ही हो रही थी परंतु जिसका साक्षात्कार २९ जनवरी, १९१३ ई० को देहली के संगम थियेटर में "महाभारत" के रूप में हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने पौराणिक, सामाजिक व राष्ट्रीय आदि अन्य १० और नाटक लिखे जिनके नाम इस प्रकार हैं :

"रामायण, पत्नी-प्रताप, कृष्ण-सुदामा, शंख़ की शरारत (एकांकी), गणेश-जन्म, सीता-बनवास, कुमारी किन्नरी उर्फ़ मदर इंडिया, समाज, हमारी भूल और शकुन्तला।"

पौराणिक नाटकों में से आज भी कई नाटक जनमन की थाती बने हुए हैं, कई नाटकों का प्रदर्शन नई और पुरानी कंपनियों का कलाकार समूह आज भी करता रहता है; कई नाटक फिल्माए भी गए हैं और अनेकों को अंशतः तथा कृष्ण-सुदामा को सम्पूर्णतः आकाशवाणी बम्बई से अनेक बार प्रसारित किया गया है। पद्मविभूषण श्री पृथ्वीराज कपूर ने मैसूर आकाशवाणी से पृथ्वी थियेटर्स द्वारा संपूर्ण "शकुंतला" नाटक अभिनीत एवं प्रसारित किया था।

बेताबजी के "महाभारत" नाटक से हिन्दी पौराणिक नाटकों का युगारंभ होता है। "महाभारत" के मंच ने तो व्यावसायिक पारसी रंगमंच का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया था। वह इस प्रकार कि जो नाटकों से घृणा करने लगे थे और बहन-बेटियों को नाटक न दिखाने की प्रतिज्ञा कर बैठे थे उनकी प्रतिज्ञा टूट गई, अन्य नाटककारों तथा कंपनियों के मालिकों ने बेताबजी तथा सेठ कावसजी पालन जी खटाऊ द्वारा प्रशस्त किए गए मार्ग का अनुकरण करना श्रेयस्कर समझा। हिन्दू समाज ने बेताबजी को स्वर्ण-पदक देकर उनका बहुमान किया। देवियों ने तो इसे इतना आदर दिया कि सेठ कावसजी खटाऊ को उनके लिए ही प्रति सप्ताह एक खेल करना पड़ता था। इस नाटक के गाने जैसे "अजब हैरान हूँ भगवन तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं ?" आज भी बड़े भक्ति-भाव से गाये जाते हैं।

सामाजिक नाटकों में "समाज" और "हमारी भूल" इन दो नाटकों के नाम उल्लेखनीय हैं। यूँ तो प्रत्येक नाटक में किसी-न-किसी सामाजिक समस्या का समावेश है परन्तु इन दोनों नाटकों में तत्कालीन ज्वलंत सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। "कुमारी किन्नरी" राष्ट्रीय नाटक है जिसमें मिस मेयो द्वारा भारत पर की गई टीका का जवाब दिया गया है। इस नाटक का अभिनय दिसंबर १९२८ में कांग्रेस अधिवेशन के समय कलकत्ता के अल्फ्रेड थियेटर में हुआ था। नाटक का प्रभाव तो यह रहा कि टिकट पहले से ही एक महीने के लिये सुरक्षित हो गये थे। सामाजिक और राज़नीतिक दोनों क्षेत्रों में हलचल मच गई। मंचन होने के लगभग दो सप्ताह बाद सेंसर बोर्ड को नाटक में राजद्रोह की गंध आने लगी और लेखक को लगभग डेढ़ महीने तक प्रतिदिन सेंसर बोर्ड में जाना पड़ा। नाट्यगृह में लगभग पचास सिपाही प्रतिदिन उपस्थित रहने लगे। सामाजिक कुरीतियों के प्रदर्शन का प्रभाव यह पड़ा कि कलकत्ता के धनिक वर्ग में एक खलबली मच गई जिसके कारण एक दिन नाट्यगृह में बेताबजी के जीवन का अंत कर देने का स्थिति भी आ गई थी किन्तु ईश्वर की अदृश्य कृपा से वह मनहूस घड़ी टल गई। ये प्रभाव स्वयं नाटकों की उद्देश्य सिद्धि के सफल प्रमाण हैं। शायद ही किसी हिंदी नाटककार को ऐसी विकट स्थिति का सामना करना पड़ा हो।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बेताबजी ने कुल २६ रंगमंचीय नाटकों की रचना की। तदुपरांत रंगमंच के प्रचलित व लोकप्रिय अंग रजट-पट के लिये भी ३२ चित्रपटों का योगदान दिया। नाट्येतर साहित्य में भी विविध विषयों पर उनकी ३६ कृतियाँ हैं। इस प्रकार उनकी रचनाओं की कुल संख्या ९४ होती है।

बेताबजी की साहित्य-सेवा का संक्षिप्त परिचय देने के बाद अब हम उनकी नाट्य-रचनाओं द्वारा सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय देन पर विचार करेंगे। नाट्याचार्य भरत मुनि ने कहा है :

"लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्,
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।।"

'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में कवि कालिदास ने भी लिखा है :—

"....त्रैगुण्योद्भवमत्रलोकचरितं नाना रसं दृश्यते,
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्।"

श्लोक का अंतिम वाक्यांश "बहुधा अपि एकं" बड़ा महत्वपूर्ण है। भिन्न भिन्न अभिरुचि वाले दर्शकों को अपनी अपनी रुचि के अनुसार अंश ग्रहण करके समाधान प्राप्त हो। बेताब जी ने नाटकों में कथा संयोजन के समय ही नहीं अपितु पात्रों और भाषा-प्रयोग में भी इस बात का ध्यान रखा है। नाटकों की नान्दी में कहीं साकार की वन्दना है तो कहीं निराकार की और कहीं समन्वयवादी रूप को अपनाया गया है। परमेश्वर के सर्वव्यापी होने, उसकी शक्ति और सामर्थ्य में विश्वास होने के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे सुदामा गुरु से कहता है :

पाया न वह मुकाम कि वह देखता न हो,
ऐसी जगह कहाँ है कि परमात्मा न हो।

चारित्रिक उन्नति और दृढ़ता के लिए जीवन में सचाई और ईमानदारी इन दोनों बातों का होना परमावश्यक है। नाटकों के अनेक पात्र इन बातों की ओर बार बार हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। ईश्वर-भक्ति में मगन "महाभारत" का चेता चमार ठाकुर पूजा के अपराध में हर प्रकार के दण्ड भोगने के लिये तैयार है। वह दुर्योधन से निवेदन करता है :

"खता की मेरी मिट्टी ने इसे मिट्टी में मिलवालो,
जो संकट झेलने काबिल न हो वह मुझसे झिलवालो,
उघड़वा लो मेरी यह खाल जूते इसके सिलवालो,
मेरा बच्चा है इकलौता उसे कोल्हू में पिलवालो,
मगर दिल से न दिलवर को जुदा करवाओ दिलवालो।"

"पत्नी-प्रताप" में साध्वी रेवा सती अनसूया, पिता भूपेन्द्र, रानी माता और पति गोपाल गुप्त के अनुरोध पर जन-कल्याणार्थ सूर्योदय करने के लिये जान लेवा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई कहती है :

"हालां कि इनकी बात में लपटें हैं आग की,
देती हूँ इसमें आहुति अपने सुहाग की।"

अछूतोद्धार भी हिंदू समाज की एक बड़ी विकट समस्या है। जिस युग में शूद्रों की परछाईं पड़ने पर भी धार्मिक भ्रष्ट हो जाते थे उस समय अर्थात् सन् १९१३ में बेताबजी ने इस समस्या को जनता के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सामने रखा था। वेदों के प्रमाण देकर शूद्र वर्ण को उन सभी कर्मों के करने का अधिकारी बताया था जो अन्य वर्ण करते हैं। देववाणी संस्कृत को भी "महाभारत" नाटक में स्थान दिया गया। "समाज" तथा "हमारी भूल" दोनों नाटकों में तो और भी अनेक सामाजिक बुराइयों का रोचक ढंग से पर्दाफाश किया गया है। अस्पृश्यता की समस्या को लेखक ने कितनी गहराई से देखा है। उदाहरणार्थ : समाज द्वारा पतित की गई मालती उच्च घराने की स्त्री है। मैले कपड़ों में वह अछूत मालूम होती है। उससे छू जाने पर धर्म के ठेकेदार सेठ मुरारीलालजी उसे भली बुरी सुनाने में कसर नहीं छोड़ते। वह इन्हें अच्छी तरह जानती है। उसका कुल गौरव इन्हें प्रत्युत्तर दिये बिना नहीं रहता। वह बेलाग कहती है :—"यदि मैं आज ही इस हिंदू समाज को तिलांजलि देकर मिसेज जेम्स बन जाऊं तो आपही मुझसे हाथ मिलाना अपनी इज्जत समझने लगें, पास बैठाने में अपनी आबरू मानने लगें, हाथ का सहारा देकर मोटर से उतारने लगें, मुझे क्या मेरे कुत्ते को भी पुचकारने लगें . . . तुम हिंदू नहीं ईसाइयों के बेकमीशन एजेंट हो जो मेरे जैसों को अपने दरवाजे से धक्के देकर हटाते हो और ईसाइयों की तादाद बढ़ाते हों।" मालती के इस कथन में समाज की नीच मनोवृत्ति और पतन का सच्चा प्रमाण है। हिन्दू समाज की वह मनोवृत्ति समाज में नासूर का काम कर रही है। "महाभारत" से "समाज" तक आते आते लेखक की आवाज तीव्रतर हो उठी है इसीलिये कि समाज जागृत हो, सावधान हो और अपने कर्तव्य को समझ कर सही रास्ते पर चले।

"समाज" नाटक में विधवा-विवाह सभा के सभापति हैं सेठ मुरारीलाल जिनका जीवन दोरंगी दुनिया है। साठ वर्षीय विधुर सेठजी उस कुमारिका से विवाह के इच्छुक हैं जिससे इनका बेटा विवाह करना चाहता है। वृद्ध-विवाह का पक्ष लेते हुए मुरारीलाल कहते हैं :—"बूढ़ों के विवाह से देश का लाभ ही लाभ है क्योंकि भारत में सैकड़ों भाई आये दिन दुष्काल से मर रहे हैं। ऐसे बुरे वक्त में देश की जन संख्या बढ़ाना देशद्रोहियों का काम है। यदि बूढ़ों का विवाह होगा तो औलाद पैदा न होने से जन संख्या भी नहीं बढ़ेगी और यदि बूढ़े पति के मरने पर किसी प्रकार औलाद हो भी गई तो वह वन पशुओं की खूराक हो सकेगी। अगर वह बच्चा वन पशुओं से बच भी गया तो इस महंगी के समय उसके पालन-पोषण की मुसीबत ईसाइयों के सर जायेगी, अपनी जाति इस खर्च से बच जायेगी।" क्या खूब दलील है। एक ही संधान में बूढ़ों की मनोकामना भी पूर्ण हो सकती है और राष्ट्र के सामने मुंह बाये खड़ी जन संख्या की समस्या का समाधान भी हो जाता है। मगर सभा में उपस्थित एक वृद्धा वहीं उनसे कहती है :—"यदि बूढ़ों के विवाह से लाभ ही लाभ है तो मैं अपने पुनर्विवाह के लिये १५-१६ वर्ष के कुमार को आमंत्रित करती हूं और वह भी इस शर्त पर कि मेरे मरने के बाद वह अपना पुनर्विवाह न करे।" सभापति इसे सहन न कर सके तो उसे बोलने से रोकने लगे परंतु निर्भीक संतप्त वृद्धा वहीं उनसे कहती है :—

"कपटी कुचाली जो कुरीतियों के सेवक हैं,
वही तो सभा में बने बैठे सभानाथ हैं।
नाम सरपंच पर मूरति प्रपंच की है,
पीने में हलाहल हैं देखने से क्वाथ हैं।
अबलाएं बेबस हैं कासे कहें, कहां जायें?
मुख में जबान है, न पैर हैं, न हाथ हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"नारायण" तु ही लाज राख बहू बेटियों की,
छटे छटे छिनले ही डोलियों के साथ हैं।"

वृद्धा के ये विचार तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति (१९२८ तक) पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हैं। अन्याय के सामने वृद्धा का न्याय प्रिय मन विद्रोह कर बैठता है और भरी सभा में भी वह ऐसी बेलाग सुनाने में नहीं चूकती।

दहेज-प्रथा पर भी बेताब जी ने करारी चोट की है। इस प्रथा से उत्पन्न कठिनाइयों को समाज भली भांति जानता है फिर भी इसका त्याग करने के लिये तैयार नहीं होता, बल्कि इसे अच्छी तरह आश्रय दे रहा है। "हमारी भूल" में तारा कहती है:

"मरे कन्यायें क्यूंकर न क्वारी,
निर्धन जो बाप है यह भी बड़ा पाप है।
रहे जैसे के तैसे, लगन हो तो कैसे
कि पैसे को है रिश्तेदारी।"

कर्मफल सिद्धांत का प्रतिपादन तो लगभग सभी नाटकों में हुआ है। इस सिद्धांतानुसार प्राणीमात्र को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इसी से सुदामा की गरीबी को दूर करने के विषय में भगवान कृष्ण कहते हैं:

"कोई रास्ता नहीं है कर्म करके फल न पाने का,
कि इस खाते में रहता है हिसाब एक एक दाने का,
सुदामा भक्त भी है, मित्र भी है और सहपाठी,
मगर नाता नहीं है कोई लिक्खे को मिटाने का।"

धर्म के विषय में बेताबजी ने सहिष्णुता और समन्वयवाद को स्थान दिया है क्योंकि इससे भावनात्मक एकता दृढ़ होती है, परस्पर प्रेम-भावना की वृद्धि होती है तथा संगठन भी मज़बूत होता है।

नाटकों की प्रस्तावनाओं में या तो किन्हीं मान्यताओं का शास्त्रोक्त समाधान है या फिर नाट्य-रचना के उद्देश्य का स्पष्टीकरण है या नाटक रूपी वृक्ष के बीज को बताने का उल्लेख और प्रदर्शन है। जहां "रामायण" में वानर, दशकंध आदि बातों का समाधान है, वहां "पत्नी-प्रताप" में सूत्रधार नटी से कहता है:

"इसीलिये हमारी आँखें माताओं और बहनों की उपस्थिति अधिकांश में चाहती हैं ताकि उनके निर्दोष और निर्मल हृदयों पर पातिव्रत धर्म की महिमा अंकित हो जाये और हमारे परम पावन उद्योग पर लगी हुई "कलंक" की वार्ता कलंकित हो जाये।"

आगा "हश्र" काश्मीरी के "सीता बनवास" नाटक को सेठ जमशेदजी माडन ने बेताबजी से पुनः लिखवाया था। यद्यपि नाटक के प्रथमांक में ही हश्र के कुछ दृश्य हैं शेष बेताबजी ने लिखा है: पूर्वार्ध हश्र, उत्तरार्ध बेताब। इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है:

"उन आचार्यों ने केवल वृक्ष का बयान किया है और हम वृक्ष के साथ उस बीज का भी महत्व दिखायेंगे जिसमें वह वृक्ष छुपा हुआ है।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस बीज को सिनेमा के प्लाट दृश्य द्वारा दिखाया जाता था। उत्तर रामचरित के लेखकों ने बीज की चर्चा कहीं नहीं की है। यह बात बेताबजी की अपनी विशेषता है।

अंग्रेजी राज्य में भारत दुर्दशा को देखकर जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू को मानसिक पीड़ा हुई थी उसी प्रकार बेताबजी का मन भी देश की दुर्दशा को देखकर कराह उठा। रजत-पट साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में हुई है। देवी देवयानी फिल्म की स्तुति में कवि का हृदय ईश्वर के दीनबंधु होने की भावना से विद्रोह करता हुआ उसी से शिकायत करता है :--

"दीनबन्धु तुमरो नाम झूठ है कहानी,
ऐसी करतूत कोई हमने नहिं जानी।
हमसा है कौन दीन दुर्बल और धन बिहीन,
कौड़ी के तीन तीन फिर भी आनाकानी।
कानन में तेल डाल बैठ रहे दयाल
भारत का देखो हाल अन्न है न पानी। दीन०

मुहावरेदार सरल भाषा में अभिव्यक्त देश की स्थिति का वर्णन कितना सचोट है, सटीक है। यह स्तुति इतनी लोकप्रिय हुई थी कि छोटे बड़े सभी की जवान पर चढ़ गई थी।

मनुष्य अपना राष्ट्र-प्रेम अनेक माध्यमों से व्यक्त करता आया है और करता रहेगा। बेताबजी ने भी राष्ट्र-प्रेम को अनेक रूपों में व्यक्त किया है, जैसे--राष्ट्र की एकता और भलाई के लिये उन्होंने नाटकों में उस राष्ट्रभाषा हिंदी को स्थान दिया जिसकी राष्ट्र को परमावश्यकता थी और आज भी है। सन् १९१३, २९ जनवरी के दिन "महाभारत" की प्रस्तावना में उन्होंने भाषा विषयक अपनी नीति की घोषणा इन शब्दों में की थी :--

न ठेठ हिंदी न खालिस उर्दू जबान गोया मिली जुली हो,
अलग रहे दूध से न मिसरी डली डली दूध में घुली हो।

पौराणिक चरित्रों और इतिहास को यथावत रखते हुए भी बेताबजी ने समस्यानुकूल उनमें कुछ ऐसे परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं जो नाट्यकला की दृष्टि से आवश्यक थे। तदुपरांत भारतीय हिंदू धार्मिक संस्कृति और ऐतिहासिक संपत्ति को विकृत होने से बचाकर उन्होंने व्यावसायिक हिंदी रंगमंच को गौरव प्रदान किया। उनकी एक विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है--"वे रचते थे पुरानों से औ बचते थे पुरानों से।"

"शकुन्तला" नाटक की नान्दी तो संस्कृत में ही लिखी थी जिसे पृथ्वी थियेटर्स के प्रत्येक नाटक के आरंभ में गाया जाता था। थियेटर ने अपने सोलह वर्ष के जीवन-काल में अपने सारे नाटकों का २६६२ वार मंचन किया और इतनी ही वार यह नान्दी सारे भारतवर्ष में गाई गई। आज भी पृथ्वी थियेटर्स की जयंती पर थियेटर के प्रेमी कलाकार इसी नान्दी से अपना कार्यक्रम आरंभ करते हैं। हिंदी रंगमंच के इतिहास में यह एक ऐसी घटना है, एक नाटककार का ऐसा अप्रतिम सम्मान है जो अपने आप में बेमिसाल है। वास्तव में हमारे लिये यह बड़े गौरव की बात है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कामायनी में चतुर्युगीन मानव-विकास का इतिहास

डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
एम० ए०, डी० लिट्०

युग विभाजन––भारतवर्ष में मानव का इतिहास चार युगों में विभक्त है, जो कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग कहलाते हैं। साथ ही यह कहा जाता है कि कृतयुग में राजा सगर हुए, त्रेता युग में प्रसिद्ध राजा राम हुए, द्वापर में श्रीकृष्ण तथा कौरव पांडव हुए और कलियुग महाभारत के युद्ध के उपरान्त प्रारम्भ हुआ है।[1] श्री ए० डी० पुसलकर का मत है कि कृतयुग के अंत तक आर्यों का विस्तार समस्त उत्तरी भारत में हो चुका था। जिसमें पश्चिम में काठियावाड़ और पूर्व में विहार तथा पश्चिमी घाट और वरार तक इनके उपनिवेश स्थापित हो गए थे। इनके विस्तार की दक्षिणी सीमा, विध्य और सतपुड़ा पर्वत तथा नर्मदा और ताप्ती नदियां थीं। द्वापर युग में आर्यों के उपनिवेश दक्षिण में भी स्थापित हुए। श्रीराम के समय में जन-स्थान, किष्किन्धा और लंका तक आर्यों के उपनिवेश स्थापित हुए थे और कलियुग का प्रारंभ होते-होते सारा भारतवर्ष इनके अधिकार में हो गया था। यहां तक कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तक इनकी राज्य-सत्ता स्थापित हो गई थी।[2] इस तरह मानव-सभ्यता के विकास को ध्यान में रखकर तथा उक्त चारों युगों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए आजकल मानव-विकास के कालों को इस प्रकार बाँटा जाता है:[3]––

(१) सतयुग अथवा पूर्व वैदिक काल
(२) त्रेता अथवा उत्तर वैदिक काल
(३) द्वापर अथवा रामायण, महाभारत तथा धर्मशास्त्र काल
(४) कलियुग अथवा राजा जनमेजय परीक्षित से लेकर अब तक

सतयुग या पूर्व वैदिक काल––आधुनिक मानव का इतिहास वैवस्वत मनु से प्रारम्भ होता है। इतिहासवेत्ताओं का कहना है कि जिस समय सर्वप्रथम मानव पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ, उस समय वह पृथ्वी से उत्पन्न आहार पर ही अपना निर्वाह करता था। यहूदी और यवन भी यही मानते हैं कि आदि काल में मानव निरामिष भोजी था, पशुओं के साथ शान्ति का व्यवहार करता था तथा भूमि की स्वाभाविक उपज खाता था।[4] उस समय वह सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक शक्तियों को देखकर चकित रह जाता था।[5] तथा वह गुफा में

---

१. दी वैदिक एज, पृ० ३११।
२. दी वैदिक एज, पृ० ३१२।
३. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, पृ० १२४-३०९।
४. भारतवर्ष का वृहद् इतिहास, पृ० २१४।
५. मानव की कहानी, भाग १, पृ० १२५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रहता था।[६] 'कामायनी' में हमें ये ही ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं, क्योंकि वहाँ पर भी प्रसाद जी ने प्रथम मानव मनु को स्वयं उत्पन्न शालियों को बीनकर उनसे उदर-पूर्ति करते हुए दिखलाया है,[७] ग्रह, नक्षत्र आदि को देखकर आश्चर्य चकित होते हुए अंकित किया है[८] तथा हिमालय की एक विस्तृत गुफा में निवास करते हुए लिखा है।[९]

धीरे-धीरे मानव का विकास हुआ और वह अस्त्र-शस्त्र बनाकर पशुओं का वध करके उसके मांस को खाने लगा तथा उनकी खाल को शरीर ढंकने के काम में लाने लगा[१०]। 'कामायनी' में मनु द्वारा आखेट करने; मृग को मारकर गुफा के द्वार पर डालने तथा धनुष, आयुध, प्रत्यंचा, शृंग, तीर आदि आखेट के उपकरणों के बिखेरने[११] के वर्णनों में उक्त ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत मिलता है।

तदुपरान्त मानव का और भी विकास हुआ। अब वह खेती करना, पशु पालना, उनके दूध से घृत-दधि आदि निकालना भी सीख गया। इतना ही नहीं, उसने अब गुफा को छोड़कर अपने रहने के लिए घर बनाना भी सीख लिया और वह सुरा और सोमरस का पान भी करने लगा। सूर्य, चन्द्र, सविता आदि प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए वह यज्ञ भी करने लगा तथा उस यज्ञ में वह क्षीर, अन्न, घृत, मांस और सोम की आहुतियां देने लगा था।[१२] "कामायनी" में इस ऐतिहासिक विवेचन के अनुसार ही मनु और श्रद्धा के मिलन के उपरान्त श्रद्धा को पशुपालन तथा खेती के लिए बीज संग्रह करने में लीन दिखाया गया है।[१३] इतना ही नहीं, वह नारी एक सुन्दर कुटीर का भी निर्माण करती हुई दिखलाई गई है।[१४] और मनु को मित्र-वरुण का यज्ञ करने तथा उसमें पशु-मांस, सोम आदि की आहुति देते हुए चित्रित किया है।[१५]

वैदिक ग्रन्थों में गांव, नगर आदि के वर्णनों के साथ-साथ उन्नत दुर्गों, भवनों, राज-प्रासादों, राज्य, मंत्री, पुरोहित, सभा-समिति आदि के भी संकेत मिलते हैं। इससे सिद्ध है कि पूर्व वैदिक काल में ही भारतवर्ष के अंतर्गत मानव राज्य-व्यवस्था करना सीख गया था।[१६] किन्तु उसकी राज्य-प्रणाली का पूरा-पूरा विकास उत्तर वैदिक काल में जाकर हुआ था।

त्रेतायुग या उत्तर वैदिक काल—इस युग में मानव के राज्य की सीमा बढ़ने लगी। सामाजिक वर्णों का भी विकास हुआ, किन्तु अभी तक जाति-प्रथा कठोर नहीं हुई थी। सगोत्र विवाह नहीं होते

---

६ मानव की कहानी, भाग १, पृ० १३०।
७. कामायनी, पृ० २८, ३२।
८. कामायनी, पृ० २६।
९. वही, पृ० ३०।
१०. मानव की कहानी, भाग १, पृ० ११७।
११. कामायनी, पृ० १४१।
१२. हिन्दू सभ्यता, पृ० ९१।
१३. कामायनी, पृ० ८२, १४१।
१४. कामायनी, पृ० १४९।
१५. वही, पृ० ११४-११७।
१६, हिन्दू सभ्यता, पृ० ८४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

थे, किन्तु अन्तर्जातीय विवाह होते थे।[१७] कृषि में पर्याप्त वृद्धि हुई, खेत जोतना, बोना, लावनी करना, मड़नी करना आदि भी आ गया। वह कई प्रकार के धान्य उगाने लगा। वह सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, आदि धातुओं से भी परिचित हो गया[१८]। अब उसने साम्राज्य भी स्थापित किए और सम्राटों के अभिषेक के लिये विशेष संस्कारों का निर्माण किया।[१९] स्त्रियों की भी शिक्षा एवं उन्नति की ओर ध्यान दिया तथा अरण्यों में बैठकर ज्ञानार्जन करना प्रारम्भ किया।[२०] इस युग में उसने अपने अद्भुत ज्ञान का परिचय उपनिषदों एवं अरण्यकों को लिखकर दिया। उपनिषद् तो संसार भर में ज्ञान के अद्वितीय रत्न माने जाते हैं। मानव के इसी ऐतिहासिक विकास का उल्लेख 'कामायनी' के 'स्वप्न' सर्ग में मिलता है, जहाँ मनु ने अपनी राज्य-व्यवस्था द्वारा सारस्वत नगर की पर्याप्त श्री-वृद्धि की है, सुन्दर और विशाल भवनों का निर्माण किया है, कृषि में पर्याप्त उन्नति की है, धातु-शोधन करके आभूषण और अस्त्र बनाने के नये-नये ढंग निकाले हैं, ललित कलाओं में वृद्धि की है और स्वर्ण-कलशों से सुशोभित भवन, सुन्दर उद्यान आदि के साथ-साथ नव मंडप एवं राज्य सिंहासन आदि का निर्माण किया है।[२१]

द्वापर युग अथवा रामायण, महाभारत एवं धर्मशास्त्र काल––इस युग में आकर मानव का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से और भी अधिक विकास हुआ। अब उसने सूत्र-ग्रंथ, महाभारत, रामायण, स्मृति-ग्रन्थ आदि लिखे, आर्थिक दृष्टि से व्यापार, कृषि आदि के द्वारा अधिक उन्नति की, कितनी ही नई-नई जीविकायें निकालीं, जिससे कुछ लोग सरकारी कर्मचारी के रूप में जीविकोपार्जन करने लगे।[२२] संगीत, शिल्प तथा मूर्तिकला का विकास हुआ। समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था की गई और उनके कर्तव्य निश्चित किए गए।[२३] व्यवहार-सम्बन्धी तथा फौजदारी के कानून बनाए गए।[२४] सुदूर दक्षिण तक राज्य सत्ता स्थापित की गई[२५] और सारे देश में शासन करने के लिए परिषद्-सभा तथा शासकीय विभाग स्थापित किए गए।[२६] अभी तक यज्ञों की प्रथा बराबर बनी हुई थी, अश्वमेधादि-यज्ञ अधिक मात्रा में हुआ करते थे, जिनमें पशु-वध आदि अच्छी तरह होते थे। इस युग का आभास 'कामायनी' में भी 'संघर्ष' सर्ग में मिलता है, क्योंकि यहाँ आते-आते मनु नियम आदि बनाकर प्रजा का वर्ग-विभाजन कर देते हैं।[२७] सारा समाज चार वर्णों में बँट जाता है और सभी अपना-अपना श्रम करने लगते हैं। ऐसे-ऐसे

---

१७. हिन्दू सभ्यता, पृ० ९७।
१८. वही, पृ० ९८-९९।
१९. वही, पृ० १०१।
२०. वही, पृ० ११३।
२१. कामायनी, पृ० १८१-१८३।
२२. हिन्दू सभ्यता, पृ० १२३।
२३. हिन्दू सभ्यता, पृ० १२९-१३४।
२४. वही, पृ० १३७-३८।
२५. वही, पृ० १४७।
२६. वही, पृ० १६०।
२७. कामायनी, पृ० १८९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नये शस्त्र और यंत्र बनाए जाते हैं जिनका कि समाज पहले स्वप्न भी नहीं देख सकता था। सभी व्यक्ति अब शक्ति का खेल खेलने के लिए आतुर हो उठते हैं और निरन्तर प्रकृति के साथ संघर्ष करने लगते हैं। राज्य के नये-नये नियम बनने लगते हैं और नियामक शासक निर्बाध अधिकार भोगने के लिए आतुर हो उठता है।[२८]

कलियुग अथवा मानवता का आधुनिक युग––यह युग जनमेजय परीक्षित के समय से आरम्भ होता है। इस युग में पहले बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा पशु-वध-प्रधान यज्ञों का विरोध हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप मानव में अहिंसा, सत्य, जीवों पर दया, समस्त प्राणियों से प्रेम, सामाजिक समानता आदि के भाव जाग्रत हुए। मानव के हृदय में पशु-वध आदि से घृणा होने लगी और उसने अवतारों की कल्पना करके शिव, राम, कृष्ण, गौतम आदि की पूजा करना प्रारम्भ किया। इस युग में मानव ने मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत-कला तथा काव्य-कला में अत्यधिक उन्नति की। इसी समय वैष्णव एवं शैव धर्मों का भी उदय हुआ, जिनके दार्शनिक विचारों, उपासना-प्रणालियों एवं शुद्धाशुद्ध की भावनाओं ने मानव आत्मा को एक दूसरी दिशा में मोड़ दिया और अब विशेष धर्मनिष्ठ होकर अपना जीवन व्यतीत करने लगा। इसके अनंतर उसके हृदय में अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहारों के महत्व, आस्तिकता-नास्तिकता के भाव, दार्शनिक विचार, उपासना-पद्धतियाँ आदि ऐसी प्रविष्ट हो गईं कि विदेशी आक्रमणकारियों के बल-पूर्वक परिवर्तन करने पर भी उसका हृदय परिवर्तन नहीं हो सका और बाह्य रूप से वह अवश्य दूसरों की वेश-भूषा, शिष्टाचार की पद्धतियाँ, लोक-व्यवहार आदि को अपनाता रहा, किन्तु आन्तरिक हृदय उसका कभी भी परिवर्तित नहीं हुआ। इस युग में विदेशी आक्रमणों का ताँता बराबर लगा रहा और एक के बाद एक नई संस्कृति ने इस देश पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस युग की अंतिम अंग्रेजी संस्कृति ने उसे यांत्रिक सभ्यता में ऐसा जकड़ा कि उसकी समस्त प्राकृतिक शक्ति छीन ली गई और उसका आर्थिक शोषण करके उसकी जीवनी जर्जर और झीनी बना दी गई। 'कामायनी' में इस युग का संकेत भी 'संघर्ष' सर्ग के अंतर्गत ही मिलता है।[२९] इसके अनंतर इस युग के राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक विकासों का उल्लेख 'कामायनी' में 'दर्शन, 'रहस्य' एवं 'आनन्द' सर्गों के अंतर्गत किया गया है; जहाँ पर राजनीतिक दृष्टि से एक शासक को जनता में भय न फैला कर समरसता के प्रचार करने की नेक सलाह दी गई है।[३०] दार्शनिक दृष्टि से इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का समन्वय करते हुए संसार को 'सत्य सतत चिर सुन्दर' बताया गया है और प्रत्येक प्राणी को पूर्ण अद्वैत भाव से जीवन-यापन करने का आग्रह किया गया है।[३१] धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से अखंड-आनन्द-घन नटराज शिव की आराधना उपासना की ओर संकेत किया गया है तथा सम्पूर्ण जगत् को चिति स्वरूप का शिव का विराट् मंगल वपु बतलाते हुए प्राणिमात्र की सेवा, समानता, सात्विकता, सादगी, समरसता आदि से युक्त सरल जीवन व्यतीत करने की सलाह दी गई है।[३२]

अतः प्रसाद रचित 'कामायनी' महाकाव्य एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें केवल श्रद्धा और मनु की कथा ही नहीं है, अपितु मानव के विकास का पूरा इतिहास अंकित है।

---

२८. कामायनी, पृ० १८९, १९२-९६।
२९. वही, पृ० १९९।
३०. वही, पृ० २४३-२४४।
३१. वही, पृ० २७२, २७३, २८८, २८९।
३२. वही, पृ० २५४, २८२, २८८-८९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र

डॉ० गिरिवरधारी सिंह
एम० ए०, पी-एच०डी०

मनोविश्लेषण का शाब्दिक अर्थ है--मनः+विश्लेषण (व्याख्या) अर्थात्, जिस शास्त्र में हमारे मानसिक भावों, उसके विकारों आदि का विश्लेषण किया जाए, उसे मनोविश्लेषण शास्त्र (साइको-अनाला-इसिस) कहते हैं। --सिग्मण्ड फ्रायड को इस मनोविश्लेषण शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने ही सर्व प्रथम इसका प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में किया। प्रारम्भ में तो इसका प्रयोग इसी सीमित क्षेत्र में किया गया। किन्तु, आज तो इसका क्षेत्र इतना अधिक व्यापक हो गया है कि प्रायः आज की सभी विचार-धाराएं इसकी अपेक्षा महसूस करती हैं।

फ्रायड ने इसमें दो रहस्य पाए--प्रथमतः काम वृत्ति और द्वितीयतः उस काम वृत्ति का अवचेतन रूप में दमन। फ्रायड के अनुसार यह काम वासना या कामवृत्ति मनुष्य की शैशवावस्था से ही काम करने लगती है। इसका बीज शिशु के भ्रूण रूप से ही पाया जाता है। समय पाकर यही कामवासना मनुष्य में परोक्षरूप से अपना काम करने लगती है। यह सामाजिक, नैतिक या ऐसे ही कई दबावों या अधीक्षणों के कारण कुंठित हो जाती है।

वस्तुतः सामाजिक या नैतिक बंधनों के कारण हम अपने सभी विचारों या भावों को व्यक्त नहीं कर पाते। और न हमारी सभी वासनाएँ ही तृप्त हो पाती हैं। फलस्वरूप, हमारे अन्दर कुंठाएं घर करने लगती हैं और तब हमारे अन्दर कई भाव-ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इस तथ्य को स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रेमचन्द कोई मनोविज्ञान-वेत्ता नहीं थे। क्योंकि उन्होंने किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में किसी प्रकार की उपाधि प्राप्त नहीं की थी। अतएव उनका मनोविज्ञान मनोविज्ञान के पंडितों की भांति किसी सिद्धान्त का क्रमिक स्वरूप नहीं उपस्थित करता। उन्होंने फ्रायड, युंग और एडलर आदि का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। फिर भी, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनके पास मनोवैज्ञानिक अन्तःदृष्टि का अभाव था। उनका मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था, जिसमें एक प्रकार के सामाजिक-मनोविज्ञान (सोशल-साइकालाजी) की प्रच्छन्न पृष्ठ भूमि मिलती है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रेमचन्द का मनोविज्ञान अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, डा० देवराज आदि का मनोविज्ञान भी नहीं है। वे इस क्षेत्र में जैनेन्द्र से भी भिन्न आचरण करते दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द किसी व्यक्ति की मनःग्रन्थियों को सुलझाने में ही अपनी इति कर्तव्यता नहीं समझते। उन्हें तो व्यक्ति भी समाज सापेक्ष ही दिखाई पड़ता था। समाज से कटा हुआ व्यक्ति उनकी रचना परिधि से परे था। समाज की मनोग्रन्थि खुल जाएगी, तो व्यक्ति की भी मनोग्रन्थि स्वतः खुल जाएगी, यही प्रेमचन्द की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धारणा थी और इसी आधार पर उनका मनोविज्ञान टिका हुआ था। अतः यही कारण है कि शेखर, भुवन (अज्ञेय के पात्र), नन्द किशोर, निरंजन, पारस नाथ (जोशी के पात्र), अजय, हेम, चन्द्रनाथ, साधना (डा० देवराज के पात्र), सुनीता, मृणाल, कट्टो, कल्याणी, हरिप्रसन्न, कुमार (जैनेन्द्र के पात्र) आदि जैसे पात्रों की रचना प्रेमचन्द नहीं कर सके।

प्रेमचन्द को मानव-प्रकृति का गहरा अध्ययन था और इसी आधार पर उन्होंने अपने पात्रों का चाहे उनकी कहानी के पात्र हों या उपन्यास के, निर्माण किया।

मनोभाव के ये ही विभिन्न रूप प्रेमचन्द के मनोवैज्ञानिक निरूपणों के उपजीव्य हैं। प्रेमचन्द, वैयक्तिक सत्य को समाज सत्य के माध्यम से ही व्यक्त करना पसन्द करते थे और उनकी यही सबसे बड़ी विशेषता भी थी। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द को जो सफलता मिली है, वह अभी तक अन्य किसी भी हिन्दी कथाकार को नहीं मिली है।

कलाकार, कवि या साहित्यकार युगद्रष्टा होता है। वह अपने वर्तमान युग को दृष्टिपथ में रख-कर भूत का सिंहावलोकन तो करता ही है, भविष्य का मार्ग-निर्देश भी करता चलता है। इस तरह अपनी क्रान्तिदर्शिता के कारण साहित्यकार सामान्य जन से ऊपर उठ जाता है। करीब तीन दशक पूर्व ही प्रेमचन्द ने यह घोषणा कर दी थी कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" वे आगे कहते हैं--"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है।" इसे पुष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं 'बुरा आदमी बिलकुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका लेखक का काम है"--

(कुछ विचार)

प्रेम चन्द मनुष्य की कमजोरियों को बहुत अच्छी तरह जानते थे। उन्हें मानव मन का गहरा अध्ययन था। उन्होंने मानव में सत्य और असत्य, साहस और कायरता सुख और दुख, अच्छाई और बुराई सभी कुछ स्वीकार किया है। इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखकर वे अपने पात्रों का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण तो करते ही हैं, साथ ही उसमें आदर्श की भी स्थापना करते चलते हैं, क्योंकि मानव में यदि बुराई है तो उसमें अच्छाई भी तो है।

मेरी दृष्टि में प्रेमचन्द ने ही सर्व प्रथम हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान का उपयोग किया है भले ही वह मनोविज्ञान सूक्ष्म न होकर किंचित स्थूल है। प्रेमचन्द का सामाजिक सम्बन्ध बहुत विस्तृत था। वे जिस समाज में थे उसके हर वर्ग के व्यक्ति को भलीभांति पहचानते थे।

प्रेमचन्द का मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था। उन्हें वैयक्तिक कुंठाओं से विशेष वास्ता नहीं था। उन्हें मानव की पेचीदी मानसिक शक्तियों का गहरा अध्ययन नहीं था, परन्तु इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था कि मनुष्य समाज में किस प्रकार व्यवहार करता है, सामाजिक प्रवृत्तियों की मानसिक प्रक्रियाएं क्या हैं और उनकी प्रेरणाएँ क्या हैं आदि।

प्रेमचन्द सामाजिक चेतना के लेखक थे अतः उन्होंने अपने उपन्यासों के पात्रों का निर्माण भी इसी सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में किया है। उन्होंने अपने यथार्थवाद को सामाजिक मनोविज्ञान के माध्यम से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र

डॉ० गिरिवरधारी सिंह
एम० ए०, पी-एच०डी०

मनोविश्लेषण का शाब्दिक अर्थ है--मनः+विश्लेषण (व्याख्या) अर्थात्, जिस शास्त्र में हमारे मानसिक भावों, उसके विकारों आदि का विश्लेषण किया जाए, उसे मनोविश्लेषण शास्त्र (साइको-अनालाइसिस) कहते हैं। --सिग्मण्ड फ्रायड को इस मनोविश्लेषण शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने ही सर्व प्रथम इसका प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में किया। प्रारम्भ में तो इसका प्रयोग इसी सीमित क्षेत्र में किया गया। किन्तु, आज तो इसका क्षेत्र इतना अधिक व्यापक हो गया है कि प्रायः आज की सभी विचार-धाराएं इसकी अपेक्षा महसूस करती हैं।

फ्रायड ने इसमें दो रहस्य पाए--प्रथमतः काम वृत्ति और द्वितीयतः उस काम वृत्ति का अवचेतन रूप में दमन। फ्रायड के अनुसार यह काम वासना या कामवृत्ति मनुष्य की शैशवावस्था से ही काम करने लगती है। इसका बीज शिशु के भ्रूण रूप से ही पाया जाता है। समय पाकर यही कामवासना मनुष्य में परोक्षरूप से अपना काम करने लगती है। यह सामाजिक, नैतिक या ऐसे ही कई दवावों या अधीक्षणों के कारण कुंठित हो जाती है।

वस्तुतः सामाजिक या नैतिक बंधनों के कारण हम अपने सभी विचारों या भावों को व्यक्त नहीं कर पाते। और न हमारी सभी वासनाएँ ही तृप्त हो पाती हैं। फलस्वरूप, हमारे अन्दर कुंठाएं घर करने लगती हैं और तब हमारे अन्दर कई भाव-ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इस तथ्य को स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रेमचन्द कोई मनोविज्ञान-वेत्ता नहीं थे। क्योंकि उन्होंने किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में किसी प्रकार की उपाधि प्राप्त नहीं की थी। अतएव उनका मनोविज्ञान मनोविज्ञान के पंडितों की भांति किसी सिद्धान्त का क्रमिक स्वरूप नहीं उपस्थित करता। उन्होंने फ्रायड, युंग और एडलर आदि का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। फिर भी, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनके पास मनोवैज्ञानिक अन्तःदृष्टि का अभाव था। उनका मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था, जिसमें एक प्रकार के सामाजिक-मनोविज्ञान (सोशल-साइकालाजी) की प्रच्छन्न पृष्ठ भूमि मिलती है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रेमचन्द का मनोविज्ञान अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, डा० देवराज आदि का मनोविज्ञान भी नहीं है। वे इस क्षेत्र में जैनेन्द्र से भी भिन्न आचरण करते दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द किसी व्यक्ति की मनःग्रन्थियों को सुलझाने में ही अपनी इति कर्तव्यता नहीं समझते। उन्हें तो व्यक्ति भी समाज सापेक्ष ही दिखाई पड़ता था। समाज से कटा हुआ व्यक्ति उनकी रचना परिधि से परे था। समाज की मनोग्रन्थि खुल जाएगी, तो व्यक्ति की भी मनोग्रन्थि स्वतः खुल जाएगी, यही प्रेमचन्द की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धारणा थी और इसी आधार पर उनका मनोविज्ञान टिका हुआ था। अतः यही कारण है कि शेखर, भुवन (अज्ञेय के पात्र), नन्द किशोर, निरंजन, पारस नाथ (जोशी के पात्र), अजय, हेम, चन्द्रनाथ, साधना (डा० देवराज के पात्र), सुनीता, मृणाल, कट्टो, कल्याणी, हरिप्रसन्न, कुमार (जैनेन्द्र के पात्र) आदि जैसे पात्रों की रचना प्रेमचन्द नहीं कर सके।

प्रेमचन्द को मानव-प्रकृति का गहरा अध्ययन था और इसी आधार पर उन्होंने अपने पात्रों का चाहे उनकी कहानी के पात्र हों या उपन्यास के, निर्माण किया।

मनोभाव के ये ही विभिन्न रूप प्रेमचन्द के मनोवैज्ञानिक निरूपणों के उपजीव्य हैं। प्रेमचन्द, वैयक्तिक सत्य को समाज सत्य के माध्यम से ही व्यक्त करना पसन्द करते थे और उनकी यही सबसे बड़ी विशेषता भी थी। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द को जो सफलता मिली है, वह अभी तक अन्य किसी भी हिन्दी कथाकार को नहीं मिली है।

कलाकार, कवि या साहित्यकार युगद्रष्टा होता है। वह अपने वर्तमान युग को दृष्टिपथ में रख-कर भूत का सिंहावलोकन तो करता ही है, भविष्य का मार्ग-निर्देश भी करता चलता है। इस तरह अपनी क्रान्तिदर्शिता के कारण साहित्यकार सामान्य जन से ऊपर उठ जाता है। करीब तीन दशक पूर्व ही प्रेमचन्द ने यह घोषणा कर दी थी कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" वे आगे कहते हैं--"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है।" इसे पुष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं 'बुरा आदमी बिलकुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका लेखक का काम है"--

(कुछ विचार)

प्रेम चन्द मनुष्य की कमजोरियों को बहुत अच्छी तरह जानते थे। उन्हें मानव मन का गहरा अध्ययन था। उन्होंने मानव में सत्य और असत्य, साहस और कायरता सुख और दुख, अच्छाई और बुराई सभी कुछ स्वीकार किया है। इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखकर वे अपने पात्रों का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण तो करते ही हैं, साथ ही उसमें आदर्श की भी स्थापना करते चलते हैं, क्योंकि मानव में यदि बुराई है तो उसमें अच्छाई भी तो है।

मेरी दृष्टि में प्रेमचन्द ने ही सर्व प्रथम हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान का उपयोग किया है भले ही वह मनोविज्ञान सूक्ष्म न होकर किंचित स्थूल है। प्रेमचन्द का सामाजिक सम्बन्ध बहुत विस्तृत था। वे जिस समाज में थे उसके हर वर्ग के व्यक्ति को भलीभांति पहचानते थे।

प्रेमचन्द का मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था। उन्हें वैयक्तिक कुंठाओं से विशेष वास्ता नहीं था। उन्हें मानव की पेचीदी मानसिक शक्तियों का गहरा अध्ययन नहीं था, परन्तु इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था कि मनुष्य समाज में किस प्रकार व्यवहार करता है, सामाजिक प्रवृत्तियों की मानसिक प्रक्रियाएं क्या हैं और उनकी प्रेरणाएँ क्या हैं आदि।

प्रेमचन्द सामाजिक चेतना के लेखक थे अतः उन्होंने अपने उपन्यासों के पात्रों का निर्माण भी इसी सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में किया है। उन्होंने अपने यथार्थवाद को सामाजिक मनोविज्ञान के माध्यम से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र

डॉ० गिरिवरधारी सिंह
एम० ए०, पी-एच०डी०

मनोविश्लेषण का शाब्दिक अर्थ है--मनः+विश्लेषण (व्याख्या) अर्थात्, जिस शास्त्र में हमारे मानसिक भावों, उसके विकारों आदि का विश्लेषण किया जाए, उसे मनोविश्लेषण शास्त्र (साइको-अनाला-इसिस) कहते हैं। --सिग्मण्ड फ्रायड को इस मनोविश्लेषण शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने ही सर्व प्रथम इसका प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में किया। प्रारम्भ में तो इसका प्रयोग इसी सीमित क्षेत्र में किया गया। किन्तु, आज तो इसका क्षेत्र इतना अधिक व्यापक हो गया है कि प्रायः आज की सभी विचार-धाराएं इसकी अपेक्षा महसूस करती हैं।

फ्रायड ने इसमें दो रहस्य पाए--प्रथमतः काम वृत्ति और द्वितीयतः उस काम वृत्ति का अवचेतन रूप में दमन। फ्रायड के अनुसार यह काम वासना या कामवृत्ति मनुष्य की शैशवावस्था से ही काम करने लगती है। इसका बीज शिशु के भ्रूण रूप से ही पाया जाता है। समय पाकर यही कामवासना मनुष्य में परोक्षरूप से अपना काम करने लगती है। यह सामाजिक, नैतिक या ऐसे ही कई दबावों या अधीक्षणों के कारण कुंठित हो जाती है।

वस्तुतः सामाजिक या नैतिक बंधनों के कारण हम अपने सभी विचारों या भावों को व्यक्त नहीं कर पाते। और न हमारी सभी वासनाएँ ही तृप्त हो पाती हैं। फलस्वरूप, हमारे अन्दर कुंठाएं घर करने लगती हैं और तब हमारे अन्दर कई भाव-ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इस तथ्य को स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रेमचन्द कोई मनोविज्ञान-वेत्ता नहीं थे। क्योंकि उन्होंने किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में किसी प्रकार की उपाधि प्राप्त नहीं की थी। अतएव उनका मनोविज्ञान मनोविज्ञान के पंडितों की भांति किसी सिद्धान्त का क्रमिक स्वरूप नहीं उपस्थित करता। उन्होंने फ्रायड, युंग और एडलर आदि का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। फिर भी, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनके पास मनोवैज्ञानिक अन्तःदृष्टि का अभाव था। उनका मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था, जिसमें एक प्रकार के सामाजिक-मनोविज्ञान (सोशल-साइकालाजी) की प्रच्छन्न पृष्ठ भूमि मिलती है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रेमचन्द का मनोविज्ञान अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, डा० देवराज आदि का मनोविज्ञान भी नहीं है। वे इस क्षेत्र में जैनेन्द्र से भी भिन्न आचरण करते दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द किसी व्यक्ति की मनःग्रन्थियों को सुलझाने में ही अपनी इति कर्तव्यता नहीं समझते। उन्हें तो व्यक्ति भी समाज सापेक्ष ही दिखाई पड़ता था। समाज से कटा हुआ व्यक्ति उनकी रचना परिधि से परे था। समाज की मनोग्रन्थि खुल जाएगी, तो व्यक्ति की भी मनोग्रन्थि स्वतः खुल जाएगी, यही प्रेमचन्द की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेमचन्द का यथार्थवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र

डॉ० गिरिवरधारी सिंह
एम० ए०, पी-एच०डी०

मनोविश्लेषण का शाब्दिक अर्थ है--मनः+विश्लेषण (व्याख्या) अर्थात्, जिस शास्त्र में हमारे मानसिक भावों, उसके विकारों आदि का विश्लेषण किया जाए, उसे मनोविश्लेषण शास्त्र (साइको-अनालाइसिस) कहते हैं। --सिग्मण्ड फ्रायड को इस मनोविश्लेषण शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने ही सर्व प्रथम इसका प्रयोग चिकित्सा शास्त्र में किया। प्रारम्भ में तो इसका प्रयोग इसी सीमित क्षेत्र में किया गया। किन्तु, आज तो इसका क्षेत्र इतना अधिक व्यापक हो गया है कि प्रायः आज की सभी विचार-धाराएं इसकी अपेक्षा महसूस करती हैं।

फ्रायड ने इसमें दो रहस्य पाए--प्रथमतः काम वृत्ति और द्वितीयतः उस काम वृत्ति का अवचेतन रूप में दमन। फ्रायड के अनुसार यह काम वासना या कामवृत्ति मनुष्य की शैशवावस्था से ही काम करने लगती है। इसका बीज शिशु के भ्रूण रूप से ही पाया जाता है। समय पाकर यही कामवासना मनुष्य में परोक्षरूप से अपना काम करने लगती है। यह सामाजिक, नैतिक या ऐसे ही कई दबावों या अधीक्षणों के कारण कुंठित हो जाती है।

वस्तुतः सामाजिक या नैतिक बंधनों के कारण हम अपने सभी विचारों या भावों को व्यक्त नहीं कर पाते। और न हमारी सभी वासनाएँ ही तृप्त हो पाती हैं। फलस्वरूप, हमारे अन्दर कुंठाएं घर करने लगती हैं और तब हमारे अन्दर कई भाव-ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इस तथ्य को स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि प्रेमचन्द कोई मनोविज्ञान-वेत्ता नहीं थे। क्योंकि उन्होंने किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में किसी प्रकार की उपाधि प्राप्त नहीं की थी। अतएव उनका मनोविज्ञान मनोविज्ञान के पंडितों की भांति किसी सिद्धान्त का क्रमिक स्वरूप नहीं उपस्थित करता। उन्होंने फ्रायड, युंग और एडलर आदि का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। फिर भी, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनके पास मनोवैज्ञानिक अन्तःदृष्टि का अभाव था। उनका मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था, जिसमें एक प्रकार के सामाजिक-मनोविज्ञान (सोशल-साइकालाजी) की प्रच्छन्न पृष्ठ भूमि मिलती है।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रेमचन्द का मनोविज्ञान अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, डा० देवराज आदि का मनोविज्ञान भी नहीं है। वे इस क्षेत्र में जैनेन्द्र से भी भिन्न आचरण करते दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द किसी व्यक्ति की मनःग्रन्थियों को सुलझाने में ही अपनी इति कर्तव्यता नहीं समझते। उन्हें तो व्यक्ति भी समाज सापेक्ष ही दिखाई पड़ता था। समाज से कटा हुआ व्यक्ति उनकी रचना परिधि से परे था। समाज की मनोग्रन्थि खुल जाएगी, तो व्यक्ति की भी मनोग्रन्थि स्वतः खुल जाएगी, यही प्रेमचन्द की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धारणा थी और इसी आधार पर उनका मनोविज्ञान टिका हुआ था। अतः यही कारण है कि शेखर, भुवन (अज्ञेय के पात्र), नन्द किशोर, निरंजन, पारस नाथ (जोशी के पात्र), अजय, हेम, चन्द्रनाथ, साधना (डा० देवराज के पात्र), सुनीता, मृणाल, कट्टो, कल्याणी, हरिप्रसन्न, कुमार (जैनेन्द्र के पात्र) आदि जैसे पात्रों की रचना प्रेमचन्द नहीं कर सके।

प्रेमचन्द को मानव-प्रकृति का गहरा अध्ययन था और इसी आधार पर उन्होंने अपने पात्रों का चाहे उनकी कहानी के पात्र हों या उपन्यास के, निर्माण किया।

मनोभाव के ये ही विभिन्न रूप प्रेमचन्द के मनोवैज्ञानिक निरूपणों के उपजीव्य हैं। प्रेमचन्द, वैयक्तिक सत्य को समाज सत्य के माध्यम से ही व्यक्त करना पसन्द करते थे और उनकी यही सबसे बड़ी विशेषता भी थी। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द को जो सफलता मिली है, वह अभी तक अन्य किसी भी हिन्दी कथाकार को नहीं मिली है।

कलाकार, कवि या साहित्यकार युगद्रष्टा होता है। वह अपने वर्तमान युग को दृष्टिपथ में रख-कर भूत का सिंहावलोकन तो करता ही है, भविष्य का मार्ग-निर्देश भी करता चलता है। इस तरह अपनी क्रान्तिदर्शिता के कारण साहित्यकार सामान्य जन से ऊपर उठ जाता है। करीब तीन दशक पूर्व ही प्रेमचन्द ने यह घोषणा कर दी थी कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" वे आगे कहते हैं--"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है।" इसे पुष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं 'बुरा आदमी बिलकुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका लेखक का काम है"--

(कुछ विचार)

प्रेम चन्द मनुष्य की कमजोरियों को बहुत अच्छी तरह जानते थे। उन्हें मानव मन का गहरा अध्ययन था। उन्होंने मानव में सत्य और असत्य, साहस और कायरता सुख और दुख, अच्छाई और बुराई सभी कुछ स्वीकार किया है। इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखकर वे अपने पात्रों का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण तो करते ही हैं, साथ ही उसमें आदर्श की भी स्थापना करते चलते हैं, क्योंकि मानव में यदि बुराई है तो उसमें अच्छाई भी तो है।

मेरी दृष्टि में प्रेमचन्द ने ही सर्व प्रथम हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान का उपयोग किया है भले ही वह मनोविज्ञान सूक्ष्म न होकर किंचित स्थूल है। प्रेमचन्द का सामाजिक सम्बन्ध बहुत विस्तृत था। वे जिस समाज में थे उसके हर वर्ग के व्यक्ति को भलीभांति पहचानते थे।

प्रेमचन्द का मनोविज्ञान सहज मनोविज्ञान था। उन्हें वैयक्तिक कुंठाओं से विशेष वास्ता नहीं था। उन्हें मानव की पेचीदी मानसिक शक्तियों का गहरा अध्ययन नहीं था, परन्तु इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था कि मनुष्य समाज में किस प्रकार व्यवहार करता है, सामाजिक प्रवृत्तियों की मानसिक प्रक्रियाएं क्या हैं और उनकी प्रेरणाएँ क्या हैं आदि।

प्रेमचन्द सामाजिक चेतना के लेखक थे अतः उन्होंने अपने उपन्यासों के पात्रों का निर्माण भी इसी सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में किया है। उन्होंने अपने यथार्थवाद को सामाजिक मनोविज्ञान के माध्यम से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्यक्त किया है। प्रेमचन्द ने आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की भांति अपने पात्रों को खंड-खंड कर के नहीं रखा है। उन्होंने पात्रों को उनकी सम्पूर्णता में हमारे सामने साकार खड़ा कर दिया है तथा उनके हृत्कम्पनों को हमें सुनने तथा अनुभव करने का मौका दिया है।

यों तो प्रेमचन्द का पहला हिन्दी उपन्यास निर्मला है, जिसमें सर्व प्रथम मनोविज्ञान का उपयोग किया गया माना जाता है। किन्तु, उनके इस मनोविज्ञान का बीजांकुर हम सेवा सदन से ही पाने लगते हैं। 'सेवा सदन' की सुमन में यह द्रष्टव्य है। सुमन एक अच्छे खाते-पीते मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की थी। पचीस रुपये प्रति माह पाने वाले क्लर्क गजाधर पाण्डेय से उसकी शादी हो जाती है। प्रेमचन्द ने सुमन का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है। सुमन की निगाह भोली बाई पर पड़ती है। वह देखती है कि लोग उसकी किस प्रकार पूजा करते हैं। धनी रईस, सेठ-साहूकार आदि बड़े-बड़े घरों में उसकी बड़ी पूछ है। जिधर देखो उधर उसी की चर्चा है। आखिर भोली बाई में कौन-सा विशेष गुण है, जो मुझ में नहीं है? अब गजाधर द्वारा प्रताड़ित सुमन का अन्तःमन जाग्रत होता है। वह अपने आप की भोली बाई से तुलना करने लगती है "सौंदर्य, हां, हां, वह रूपवती है, इसमें संदेह नहीं मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूं। वह सांवली है, मैं गोरी हूं। वह मोटी है, मैं दुबली हूं।" वह फिर आगे सोचती है "तो क्या उसके बनाव सिंगार, गहने कपड़े पर लोग इतने रीझे हुए हैं, मैं भी यदि वैसा बनाव-चुनाव करूं, वैसे गहने-कपड़े पहनूं, तो मेरा रंग-रूप और न निखर जाएगा, मेरा यौवन और न चमक जाएगा? लेकिन कहां मिलेंगे?"—(सेवासदन) अन्य पात्रों में भी यथेष्ट मनोवैज्ञानिक परिवर्तन दिखाया गया है।

'निर्मला' ही वह पहला उपन्यास है, जिसमें मनो-विज्ञान का प्रथम बार प्रयोग हुआ है। उनका यह मनोविज्ञान निर्मला और उसके पति तोता राम के चरित्र में द्रष्टव्य है।

आखिर निर्मला एक नारी थी। वह इन्द्रिय सन्निकर्ष से परे रहने वाली कोई देवी नहीं थी। अतः उसकी अन्तःचेतना में दमित इच्छाएँ प्रकट होने के लिए व्याकुल थीं। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे उसका अव-चेतन मन अपने सौतेले पुत्र मंसाराम की तरफ आकृष्ट होने लगा। उससे बातें करके उसे अपार सुख मिलता था, असीम तृप्ति होती थी। किन्तु कभी भी उसके अन्दर कुवासना नहीं आई थी। "कुवासना की उसके मन में छाया भी नहीं थी। वह स्वप्न में भी मंसाराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी।"...निर्मला पृ० ६३

मनोविश्लेषण-शास्त्रियों का कहना है कि हमारी दमित इच्छाएं ही हमारे अवचेतन में जाकर बैठ जाती हैं। हम डरते हैं कि ऐसा करने पर समाज हमें बुरा कहेगा। हम समाज के सामने दोषी सिद्ध हो जाएंगे। निर्मला के मन में भी इन दमित इच्छाओं का विस्फोट होता है। आखिर वह भी कह उठती है— "मुझ में सारी बुराइयाँ हैं बुराइयाँ हैं तुम्हारा कसूर नहीं। विमाता का नाम ही बुरा होता है, अपनी मां विष भी खिलाए तो वह अमृत है, मैं अमृत भी पिलाऊं तो विष हो जायगा।"

परन्तु समाज के सचेत प्रहरी प्रेमचन्द ने इसे सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध नहीं जाने दिया है। उसे उन्होंने सामाजिकता की ओर मोड़ दिया है।

तोता राम को भी अपने बेटे पर शंका करना स्वाभाविक है। इसीलिए उसे होस्टल में भेज देते हैं। बूढ़ों की यही स्थिति होती है और बुढ़ापे की शादी का यही फल होता है। प्रेमचन्द ने निर्मला और तोताराम के मानसिक संघर्ष का बहुत ही सुन्दर मनो-वैज्ञानिक निरूपण किया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'रंग भूमि' में सूरदास भी एक मनो-वैज्ञानिक पात्र हैं। प्रेमचन्द ने इसे पूर्णरूपेण आदर्शवादी बनाया है। वह जीवन को एक रंग-भूमि समझता है और इसीलिए वह डटकर जीवन-संघर्ष का मुकाबला करता है। मानव चरित्र में अच्छाइयां और बुराइयां दोनों ही रहा करती हैं। सूरदास में भी ये दोनों चीजें कमवेश मात्रा में पायी जाती हैं। भैंरो ने सुभागी को पीटकर घर से निकाल दिया है। अब वह सूरदास की शरण ले रही है। उस समय सूर के अंतरंग में उठने वाले एक भाव का चित्र देखा जाए—"मैं कितना अभागा हूं, काश यह मेरी स्त्री होती, तो कितने आनन्द से जीवन व्यतीत होता। अब तो भैंरो ने इसे घर से निकाल ही दिया, मैं रखलूं तो इसमें कौन सी बुराई है, उससे कहूं कैसे, न जाने दिल में क्या सोचे ? मैं अन्धा हूं तो क्या आदमी नहीं हूं। बुरा न मानेगी ? मुझसे इसे प्रेम न होता तो मेरी इतनी सेवा क्यों करती ?"

परन्तु वह वैसा नहीं करता। संभवत: प्रेमचन्द का सामाजिक यथार्थवाद, जो आदर्शवाद से मर्यादित है, सामने आ जाता है और हाड़-मांस का पुतला सूरदास ऐसा करने से बच जाता है।

"प्रेमाश्रम" में भी प्रेमचन्द ने ज्ञान शंकर और गायत्री के चरित्र में मनोविज्ञान का निर्वाह किया है। इसी प्रकार तेज शंकर और पद्म शंकर के चारित्रिक विकास में भी बाल मनोविज्ञान का अच्छा चित्रण किया है। इसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार छोटी छोटी बातों का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है और उनके दिमाग में वे बातें किस प्रकार घर कर जाती हैं तथा परिस्थिति और वातावरण का उनके विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। यत्र-तत्र ग्रामीण चरित्रों को भी यत्किंचित् मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने में प्रेमचन्द को सफलता मिली है।

इस दृष्टि से प्रेमचन्द को 'कायाकल्प' में पूरी सफलता नहीं मिल पायी है। इस उपन्यास के दो मुख्य पात्र हमारे सामने आते हैं—मनोरमा और चक्रधर। मनोरमा आशातीत आदर्शवादी पात्र है। चक्रधर आदर्शवादी तो है ही, वह दुर्बल मनोवृत्ति का एक ढुलमुल पात्र है। मनोरमा का चक्रधर के प्रति आकृष्ट होना तो मनोवैज्ञानिक सत्य दिखाई पड़ता है, किन्तु मनोरमा का विशाल देव सिंह से शादी करना, उसे खूब स्नेह देना और दाम्पत्य जीवन को सुखमय ढंग से बिताना मनोरमा जैसी युवती के लिए कैसे संभव हो सकता है ? अत: यह बात मनोविज्ञान सम्मत प्रतीत नहीं होती।

तदनन्तर, 'गबन' प्रेमचन्द का एक सफल उपन्यास है, जिसमें मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर और सफल प्रयोग हुआ है। लेखक ने इसमें यथार्थवाद और मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है। 'जालपा' और 'रमानाथ' दोनों का चरित्र-विकास मनोविज्ञान के आधार पर ही दिखाया गया है। उनके चरित्र विकास में प्रेमचन्द ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

तत्पश्चात् हम 'कर्म भूमि' में उतरते हैं। यह प्रेम चन्द के प्रौढ़ विचारों की एक प्रतिनिधि रचना है। इसके सारे पात्र करीब करीब विकसनशील हैं। इस उपन्यास का नायक अमरकान्त अत्यधिक विकसन-शील है। उसके चारित्रिक पक्ष को प्रेमचन्द ने बड़ी ही कुशलता के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से विकसित किया है।

मनुष्य के पास धन कुबेर की सारी सम्पदा हो किन्तु उसे सहज स्नेह न मिले, तो उसके लिए वह सब कुछ वैसे ही बेकार है, जैसे भंवरे के लिए चम्पा की कली। भंवरे को कमल से जो स्वाभाविक और मधुर रस मिलता है वह चम्पा की कली से कहां ? सुखदा अमरकान्त की पत्नी थी। वह बड़ी सुन्दर थी और बड़े धनी बाप की बेटी भी थी। अमरकान्त स्नेह का भूखा था। वह सकीना से प्रेम की याचना करता है। कारण,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उसे सुखदा से वह स्नेह नहीं मिला, जिसकी उसे भूख थी। वह सकीना के सुख-दुःख का साथी बन जाना चाहता है। सकीना की गरीबी देख द्रवीभूत होता है और दो साड़ियाँ लाकर उसे देना चाहता है। वह तो उससे शादी करके मुसलमान भी बन जाना चाहता है। वह पुनः मुन्नी की तरफ भी मुड़ता है और उससे भी प्रेम की याचना करता है, परन्तु वहां भी वह नहीं टिक पाता। इस तरह हम देखते हैं कि प्रेमचन्द अमर के मन की गुत्थियों को खोलना तो चाहते हैं किन्तु सामाजिक प्रतिबन्ध जिसे हम उनका आदर्श कह सकते हैं, उसके वशीभूत वे चाह कर भी ऐसा नहीं कर पाते और उस पर रोक लगा देते हैं।

रचनाक्रम की दृष्टि से 'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास है। इसी में इनका यथार्थ इनकी पूर्ववर्ती कृतियों में न्यस्त आदर्श के आरोप से मुक्त होकर चित्रित हो सका है। अतः इस कृति में प्रेमचन्द का यथार्थ मनोविज्ञान की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण नहीं रहा है। अन्य उपन्यासों में उनके पात्र उनके विचार के अनुकूल होते रह गए हैं। परिणामस्वरूप वे यथार्थ की आरम्भिक झलक रहने पर भी अन्ततोगत्वा आदर्शवादी बन गए हैं। 'सेवा सदन' की सुमन से लेकर 'प्रेमाश्रम' के प्रेम शंकर और रंगभूमि के सूरदास और 'कायाकल्प' के चक्रधर आदि आदि ऐसे ही पात्र हैं—किन्तु होरी में बहुत अन्तर आ गया है। यह सत्य है कि होरी का निर्माण भारतीय किसानों की व्यथा पूर्ण कहानी सुनाने के लिए हुआ है, किन्तु उसे 'देवता' न बना कर एक मनुष्य के रूप में चित्रित करने की कोशिश की गई है और उसकी सारी मनःस्थितियों का बड़ा ही बारीक विश्लेषण किया गया है।

इसी तरह मालती और मेहता का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। इन दोनों चरित्रों का निर्माण उनकी मानसिक स्थितियों के आधार पर ही किया गया है।

अन्ततः 'मंगल सूत्र' लेखक के जीवन की सांध्य वेला में लिखा गया कुछ ही पृष्ठों का एक अधूरा उपन्यास है। इसमें पात्रों का बड़ा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक चित्रण होता हुआ दिखाई पड़ता है, किन्तु उन पात्रों के चरित्र विकास को अन्तिम संस्पर्श देने के पहले ही प्रेमचन्द चल बसे। तथापि 'मंगल सूत्र' के देव कुमार की मनःस्थितियों का अध्ययन हमें निश्चित कर देता है कि प्रेमचन्द उसका मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण करना चाहते थे।

इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनके द्वारा व्यक्त मनोविज्ञान का संक्षेप में सर्वेक्षण करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के माध्यम से समाज के किसी ऐसे अश्लील चित्र को सामने रखने की कोशिश नहीं की है जिससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़े और उनका आदर्श विचार विखण्डित हो। दूसरी बात हम यह पाते हैं कि उन्होंने पात्रों का जो मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया है, वह किसी प्रकार का आरोपित मनोविज्ञान नहीं है, वरन् स्वतः निःसृत चित्रण है जिसमें कृत्रिमता या अस्वाभाविकता की बू तक नहीं पहुंच पाई है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास की भूमिका

डॉ० रणवीर राँगा
एम० ए०, पी-एच०डी०

देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता तो बहुत बाद १९४७ में मिली, पर हिन्दी का साहित्यकार उससे डेढ़-दो दशक पहले ही अपनी मानसिक मुक्ति की घोषणा कर चुका था। समाज को सब कुछ मानकर चलने वाली द्विवेदी-कालीन प्रवृत्ति के विरुद्ध उसने विद्रोह का झंडा गाड़ दिया था और बड़ी निर्भयता से उस पर प्रहार शुरू कर दिए थे। समाज की अंध-परम्पराओं, उसके कृत्रिम मूल्यों और निरर्थक मान-मर्यादाओं से व्यक्ति की आत्मा को मुक्त कराने के लिए वह जी-जान से जुट गया था। धर्म के पाप-पुण्य, समाज के विधि-निषेध तथा राजनीति के भय-प्रलोभन से ऊपर उठकर वह साहित्य-सृजन के माध्यम से व्यक्ति-सत्य की खोज में व्यक्ति-मानस की गहराइयों में उतरने लगा था। कथा-साहित्य में जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' ने सामाजिक मूल्यों की कृत्रिमता पर करारी चोट की। जैनेन्द्र के 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' में इन मूल्यों की गहरी खुदाई करके मूल नैतिकता की खोज शुरू हुई। अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' तक पहुंचते-पहुंचते तो साहित्यकार सामाजिक नैतिकता से भी ऊपर उठकर विज्ञान की अधुनातन उपलब्धियों के सहारे मानव-मन में कार्य-कारण के सूत्र ढूंढ़ने लग गया था।

हिन्दी के साहित्यकार की मानस-मुक्ति की यह यात्रा जितनी साहसिक थी उतनी ही उद्‌बोधक भी। समाज पर से साहित्यकार का जो विश्वास उठ गया था उसका यह अर्थ नहीं कि वह जीवन के प्रति भी आस्था खो बैठा था, बल्कि जीवन में उसकी आस्था बढ़ गई थी और वह व्यक्ति की शक्ति को पहचानने लगा था। उसे विश्वास हो गया था कि व्यक्ति समाज की मूलभूत इकाई है, समाज का उत्थान और पतन, विकास और ह्रास, व्यक्ति-निरपेक्ष नहीं हो सकता। समाज का सत्य पाना हो, जीवन की थाह लेनी हो, तो व्यक्ति के सत्य को पाना होगा; सामाजिक विकृतियों का निदान व्यक्ति-मानस में ढूंढ़ना होगा। समाज को सुधारने की बात उसके लिए निरर्थक हो गई थी। व्यक्ति के परिष्कार में भी उसे रुचि नहीं रही थी, क्योंकि वह मानता था कि व्यक्ति अपने को समझने लगे, अपनी प्रकृति-विकृति को पहचानने लगे तो उतना ही बहुत है।

इस प्रकार साहित्यकार की आस्था समाज से हटकर व्यक्ति में स्थापित हो गई और उसका लिखना अपने को पाने में प्रवृत्त हुआ। लिखना उसके लिए एक मजबूरी बन गया; लिखे बिना उसे कल नहीं पड़ती थी। रचना-प्रक्रिया में अपने साक्षात्कार से उसे जो संतुष्टि मिलती थी, वही उसका चरम-प्राप्य था। उसकी तुलना में वह शारीरिक सुख-सुविधा तथा आर्थिक-प्रलोभन और पद-प्रतिष्ठा को कुछ भी नहीं गिनता था। सत्य के प्रति उसमें एक लगन थी, एक सनक थी। जिसे समाज आदर की दृष्टि से देखता था। आदर के साथ कई बार आतंक का भाव भी जुड़ जाता था जो साहित्यकार को अच्छा ही लगता था।

स्वतंत्रता हमें समझौते के रूप में मिली और मिली भी अप्रत्याशित ही। अप्रत्याशित इसलिए कि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जब तक हम अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे, आजादी हमसे दूर रही पर सहसा ज्यों ही हमने अपने आदर्शों और विश्वासों के साथ समझौता करने का फैसला किया, हमें तत्काल आज़ादी मिल गई। उस समय ऐसा लग रहा था कि यह अवसर खो दिया तो न जाने स्वतन्त्रता कब मिले और देश जो शताब्दियों से दासता की चक्की में पिस रहा है उसकी यातनाओं का अन्त फिर न जाने कब और कैसे हो।

इस प्रकार, स्वतन्त्रता तो मिल गई, पर वह बहुत महंगी पड़ी। उसे पाने के लिए हमें उन सब उपलब्धियों की बलि देनी पड़ी जो हमने स्वाधीनता संग्राम के दीर्घकालीन अनुशासन, तप और त्याग से पाई थीं। भारत की अखंडता का स्वप्न बिखर गया। देश स्वतंत्र होने से पहले ही खंडित हो गया। एकता हमारे संघर्ष की धुरी थी। देश के विभाजन से एकता की नींव हिल गई और फूट के तत्वों को बढ़ावा मिला। अहिंसा हमारा मूलतन्त्र था, पर देखते-देखते हिंसा का नग्न नर्तन होने लगा और अहिंसा बेचारी असहाय खड़ी ताकती रही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का सत्य इतना भयानक था कि हम उसकी ताब न ला सके। आज़ादी हमें हार मान लेने पर मिली थी, पर हम उसे अपनी विजय मान बैठे। खंडित भारत को स्वीकार करके भी राग हम अखंडता के अलापते रहे; हिंसा की ओर झुककर भी नारा हम अहिंसा का लगाते रहे। इस प्रकार आत्मप्रवंचना का युग शुरू हुआ।

आज़ादी के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जो समझौता हुआ था, व्यक्ति और समाज के संबंधों पर भी उसका सीधा और गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्रता मिलते ही तप और त्यागमय जीवन को विराम मिल गया--एक तरह से दोनों को व्यर्थ सिद्ध करते हुए, क्योंकि अंततः समझौता ही करना था तो इतने बलिदानों की क्या ज़रूरत थी। यों भी एकनिष्ठ साधना की आवश्यकता न रही थी। आज़ादी का लक्ष्य पूरा हो चुका था और अन्य कोई लक्ष्य सामने था नहीं। समाजवादी जीवन पद्धति की बात कानों में पड़ जरूर रही थी, पर उससे आंखों के सामने कोई स्पष्ट चित्र नहीं उभरता था और फिर, जनता को लगता था कि स्वतन्त्रता-संग्राम में उसने अपनी भूमिका निष्ठापूर्वक निभा दी, अब शेष काम सरकार का है। लक्ष्य के अभाव में राष्ट्र की शक्ति केन्द्रच्युत होने लगी। व्यक्ति समाज से कटकर अपने में सिमटने लगा। अपने हिताहित को सोचता-समझता वह आत्मकेन्द्रित होता गया। धीरे-धीरे व्यक्तिहित राष्ट्रहित से ऊपर उठने लगा।

स्वार्थ की भावना ने ज़ोर पकड़ा तो हम अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गए और कर्त्तव्य के प्रति उदासीन। परिणाम यह हुआ कि अधिकारों की मांग का स्वर जितना तेज़ और तीखा होता गया, अधिकार उतने ही महंगे और दुर्लभ होते गए। हमने इतिहास के इस सत्य के प्रति आंखें मूंद लीं कि अधिकार सदा कर्त्तव्य की गैल चलकर ही मिलते हैं। कर्त्तव्य की उपेक्षा करके ज़ोर-जबरदस्ती से अधिकार पा भी लिए जाएं तो भी वे टिकते नहीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले हममें अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा और दूसरों के अधिकार के प्रति आदर का भाव था, पर अब हर कोई अपने अधिकारों और दूसरों के कर्त्तव्यों की दुहाई देने लगा; अपने को छोड़ कर, बाकी सबकी आलोचना में रस लेने लगा। इसमें जीवन में कटुता, कुंठा और घुटन बढ़ती गई।

देश के औद्योगीकरण का काम सरकारी स्तर पर पूरी गति से चला तो सरकार और उद्योगपतियों का अर्थात् सत्ता और धन का गठबन्धन हो गया। धन तो पहले ही मुंहज़ोर था। सत्ता का समर्थन मिलते ही वह अजेय हो गया। नैतिक मूल्यों का विघटन हो ही गया था; पुरातन मूल्यों का लोप हो रहा था, बदले में नए मूल्य बन नहीं रहे थे, अस्तित्व का संघर्ष विकट था ही। तब व्यक्ति को अपने त्राण का एक ही मार्ग

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दिखता था और वह था धन। जीवन के इस अस्तित्व-संग्राम में व्यक्ति ने दर-दर की ठोकरें खाकर, घाट-घाट का पानी पीकर, यह अनुभव पा लिया था कि दुनिया में धन ही सब कुछ है, धन जीवन का सबसे बड़ा वरदान है और धन का अभाव है सबसे बड़ा अभिशाप। इस प्रकार, जीवन के सभी मूल्य अर्थ में सिमिट आए और आर्थिक मूल्य ही एकमात्र जीवन मूल्य बन गए।

आत्मप्रवंचना का यह युग, मानव-मूल्यों के निर्मम विघटन और जीवन-व्यापी कटुता-कुंठा को लिए, अपनी सम्पूर्ण प्रकृति-विकृति के साथ हिन्दी उपन्यास में प्रतिविम्बित तो हुआ ही, उसे नया रंग, रूप और आकार भी देता रहा।

देश के विभाजन के परिणाम-स्वरूप अराजकता की जो आंधी चली, निरीह प्राणियों का जो रक्त-पात हुआ, उससे साहित्यकार का––विशेषतः उपन्यासकार का––आसन डोल गया। उसकी अन्तर्मुखता भंग हो गई और वह व्यक्ति-मानस की गहराइयों से उभर कर पुनः समाज में लौट आया––समाज के प्रति आक्रोश से भर कर, वह चिरन्तन सत्य का अन्वेषण छोड़, तात्कालिक यथार्थ की ओर मुड़ा, शाश्वत प्रश्नों को भूलकर वर्तमान समस्याओं में प्रवृत्त हुआ और वस्तुपरक होने लगा। जो व्यक्ति-निष्ठ ही रहे, वस्तु-निष्ठ न हो सके, उनका लेखन रुक गया––कम से कम उपन्यास के माध्यम से तो रुक ही गया। जैनेन्द्र और अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियों में एक लम्बा अन्तराल इस बात का प्रमाण है। इलाचन्द्र जोशी व्यक्ति-मानस की गहराइयों से अपेक्षतया जल्दी निकल आए और उन्होंने 'मुक्तिपथ' के रूप में एक सन्तुलित कृति दी। अमृत लाल नागर––जैसे अनेक उपन्यासकार समय की नब्ज पहचानते हुए व्यक्ति पर समाज के नृशंस अत्याचारों के विरुद्ध कटिबद्ध हो गए और उन्होंने 'बूंद और समुद्र' आदि कृतियों में व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध को चित्रित करते हुए दोनों के सामंजस्य पर बल दिया है। इनके अलावा कविता और नाटक की सीमाओं को लांघकर उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर आदि कई और लेखक भी सामाजिक उपन्यास की धारा में आ मिले।

यशपाल ने––कुछ देर से ही सही––अपनी महत्वपूर्ण कृति 'झूठा सच' में विभाजन की विभीषिका और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज और संस्कृति की दुःखद परिणति का निर्मम एवं सांगोपांग चित्रण किया। यशपाल के अतिरिक्त, नए परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय, राजेन्द्र यादव आदि अनेक नई प्रतिभाएं भी उपन्यास के क्षेत्र में आईं, जिससे समाजवादी धारा में फिर से जान आ गई। इस बीच एक और उल्लेखनीय घटना हुई। विभाजन की हृदय-विदारक परिस्थितियाँ झेलते समय साहित्यकार के भीतर जो मानस-मंथन हुआ था उसके परिणामस्वरूप उसकी सैद्धान्तिकता के तीखे कोने उत्तरोत्तर घिसते गए और जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण अधिक संयत एवं व्यावहारिक होता गया। यशपाल का परवर्ती लेखन और इस धारा की अन्य कृतियां इसका प्रमाण हैं।

समय पाकर व्यक्ति-निष्ठ उपन्यासकारों की कृतियाँ भी प्रकाश में आने लगीं, उदाहरणार्थ 'सुखदा', 'नदी के द्वीप', 'जयवर्धन' आदि। उनके माध्यम से वे व्यक्ति-मानस की गहराइयां नापते हुए मानव की चिरंतन समस्याओं से जूझने लगे, पर ये कृतियां उनकी पहली रचनाओं जितनी दुरूह न रही थीं, उन्हें समझने के लिए बहुत अधिक आयास की अपेक्षा न रही थी। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के साथ अब डा० देवराज, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे आदि भी आ मिले थे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अतीत में विचरने वाले ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति विशेष उत्साह न रहा। फिर भी, चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगरवधू', वृन्दावनलाल वर्मा की 'मृगनयनी', यशपाल की 'अमिता', आदि सशक्त रचनाओं के रूप में नए प्रयोग बरवस पाठकों को आकृष्ट करते रहे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब देश की एकाग्रता भंग हुई, एकता की अपेक्षा अनेकता की प्रवृत्ति बढ़ी और हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति-वर्ग, धर्म-संस्कृति पर आ टिका तब हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यास का उदय हुआ जिसका चरमोद्देश्य था—किसी विशेष अंचल अथवा प्रदेश को लेकर उसके जन-जीवन का यथार्थ एवं वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करना। नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'बलचनमा' से शुरुआत की तो फणीश्वरनाथ रेणु 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' की रचना द्वारा उसे विकास की ओर ले बढ़े। शिव-प्रसाद मिश्र 'रुद्र', भैरवप्रसाद गुप्त, राजेन्द्र यादव आदि कई और उपन्यासकार भी उनके साथ आ मिले।

स्वतन्त्र-भारत में नर-नारी के संबंधों ने भी नया मोड़ लिया। विवाह में अब धार्मिक अनुष्ठान न रह कर स्त्री-पुरुष में बराबरी के स्तर पर होने वाले समझौते का रूप धारण कर लिया। देश के विभाजन की आंधी में नारी को जो झेलना पड़ा था उसने उसकी आंखें खोल दी थीं। उसने अच्छी तरह देख लिया था कि व्यक्ति और समाज की विकृतियों का सबसे अधिक शिकार उसे ही बनना पड़ता है। अतः अपने परिपार्श्व के प्रति अब वह सजग हो गयी और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर-मिलाकर नहीं—चलने की माँग करने लगी। सभ्यता ने उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकारा। कानून ने उसे बराबरी का हक दिया। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा ने उसमें स्वाभिमान का भाव भरा पर इन सबको वह अपने व्यक्तित्व में खपा न पाई। सभ्यता, कानून और शिक्षा ने नारी की शारीरिक बेड़ियां तो काट दीं, पर उसके भीतर गहरे जमे सदियों की दासता के संस्कार, उसकी आत्मा को जकड़े रहे और वह लाख छटपटाने पर भी उनसे मुक्त न हो पा रही थी। संस्कारों में वह प्राचीना ही रही, पर आधुनिकता को उसने फैशन के रूप में ओढ़ लिया। इस प्रकार, द्वैत ने नारी के व्यक्तित्व को खंडित कर दिया।

नारी के इस द्वैत ने साहित्यकार को आकृष्ट किया। इलाचन्द्र जोशी के 'सुबह के भूले', उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' और डा० 'शैफाली' जैनेन्द्र के 'सुखदा', और 'विवर्त्त', माचवे के 'द्वाभा' आदि उपन्यासों ने इस विषय को गहराई से लिया। समाज में सेक्स और अर्थ की सम्मिलित विकृतियां नारी का शोषण करके उसे कहां से कहां पहुँचा देती हैं। इसका चित्रण यशपाल के 'मनुष्य के रूप' और भगवती बाबू के 'आखिरी दाव' में हुआ। देश के विभाजन की पृष्ठभूमि में नारी के भीषण शोषण और फिर नवजागरण का सांगोपांग चित्रण यशपाल ने अपने वृहद् उपन्यास 'झूठा-सच' में किया। गृहस्थी पर बढ़ता हुआ आर्थिक बोझ, स्वतन्त्रता की कामना और नागरिक जीवन की चकाचौंध आदि मिलकर नारी को नौकरी के क्षेत्र में ले आए पर गृहस्थी की जिम्मेदारी उसकी ज्यों की त्यों बनी रही और यह एक अतिरिक्त दायित्व उस पर आ पड़ा। पहले उसका शोषण घर में होता था, अब बाहर भी होने लगा, यद्यपि अब वह उतनी निरीह न रही थी पर जो पूरी ईमानदारी से दोनों ही दायित्व निभाना चाहती थी वह दो पाटों के बीच पिसने लगी। नौकरी-पेशा नारी की समस्याओंको लेकर रजनी पनिकर, उषा प्रियम्वदा, मीरा महादेवन आदि कई लेखिकाएं भी उपन्यास के क्षेत्र में आईं।

साहित्य के संदर्भ में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की सबसे महत्वपूर्ण घटना है साहित्य-सृजन का 'वाङ्मय तप' के आकाश से उतर कर व्यवसाय की कठोर धरती पर आ टिकना और इस आधार को दृढ़ता से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पकड़ लेना। साहित्य-सृजन व्यवसाय बना तो व्यवसाय के सभी नियम उस पर लागू हुए। व्यवसाय को बढ़ाने के लिए साहित्यकार को कई बार ऐसे हथकंडे भी अपनाने पड़े, जिनका साहित्य से दूर का भी संबन्ध न था। मांग और पूर्ति का चक्र चला तो साहित्यकार को 'आर्डर' पर भी माल तैयार करना पड़ा और ऐसा माल तैयार करना पड़ा जो कम से कम समय में अधिक से अधिक मात्रा में निकले और आकर्षक भी हो। इससे साहित्य में ऋजुता तो आई पर उसके साथ सस्तापन भी आया। मौलिकता और फैशन के फेर में नए-नए टैकनीकों का प्रयोग किया गया। गहन अनुभूति की कमी ने टेकनीक का मोह और भी बढ़ा दिया। इससे उपन्यास का शिल्पविकास तेज़ी से होने लगा और उसकी शिल्पगत उपलब्धियां उत्तरोत्तर बढ़ती गईं।

इस युग की सर्वाधिक क्रान्तिकारी घटना तो यह हुई कि जीवन जीने और भोगने के बजाय समझने और समझाने का विषय बनता गया और अनुभूति का स्थान उत्तरोत्तर बौद्धिकता लेती गई। उपन्यास को तो ज़माने की हवा बड़ी तेज़ी से लगती है। उपन्यास में अनुभूति की गहनता घटी तो कथ्य फीका पड़ने लगा। उपन्यास के लिए यह बड़े संकट का समय था, पर शीघ्र ही बौद्धिकता और शिल्प दोनों ने उसे सहारा देकर इस विकट स्थिति से उबार लिया। बौद्धिकता और शिल्प में वैसे भी चमत्कार पैदा करने की अद्‌भुत क्षमता है। साहित्य-सृजन के व्यवसाय का रूप धारण करते ही चमत्कार और भी वांछनीय हो उठा। मौलिकता और फैशन के आग्रह से भी शिल्प के नए-नए प्रयोगों को बढ़ावा मिला। शिल्पगत प्रयोग जितने अधिक इस युग में हुए हैं उतने शायद उपन्यास के पूरे इतिहास में भी नहीं हुए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अतीत में विचरने वाले ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति विशेष उत्साह न रहा। फिर भी, चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगरवधू', वृन्दावनलाल वर्मा की 'मृगनयनी', यशपाल की 'अमिता', आदि सशक्त रचनाओं के रूप में नए प्रयोग बरबस पाठकों को आकृष्ट करते रहे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब देश की एकाग्रता भंग हुई, एकता की अपेक्षा अनेकता की प्रवृत्ति बढ़ी और हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति-वर्ग, धर्म-संस्कृति पर आ टिका तब हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यास का उदय हुआ जिसका चरमोद्देश्य था—किसी विशेष अंचल अथवा प्रदेश को लेकर उसके जन-जीवन का यथार्थ एवं वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करना। नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'बलचनमा' से शुरुआत की तो फणीश्वरनाथ रेणु 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' की रचना द्वारा उसे विकास की ओर ले बढ़े। शिव-प्रसाद मिश्र 'रुद्र', भैरवप्रसाद गुप्त, राजेन्द्र यादव आदि कई और उपन्यासकार भी उनके साथ आ मिले।

स्वतन्त्र-भारत में नर-नारी के संबंधों ने भी नया मोड़ लिया। विवाह में अब धार्मिक अनुष्ठान न रह कर स्त्री-पुरुष में बराबरी के स्तर पर होने वाले समझौते का रूप धारण कर लिया। देश के विभाजन की आंधी में नारी को जो झेलना पड़ा था उसने उसकी आंखें खोल दी थीं। उसने अच्छी तरह देख लिया था कि व्यक्ति और समाज की विकृतियों का सबसे अधिक शिकार उसे ही बनना पड़ता है। अतः अपने परिपार्श्व के प्रति अब वह सजग हो गयी और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर-मिलाकर नहीं—चलने की माँग करने लगी। सभ्यता ने उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकारा। कानून ने उसे बराबरी का हक दिया। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा ने उसमें स्वाभिमान का भाव भरा पर इन सबको वह अपने व्यक्तित्व में खपा न पाई। सभ्यता, कानून और शिक्षा ने नारी की शारीरिक बेड़ियां तो काट दीं, पर उसके भीतर गहरे जमे सदियों की दासता के संस्कार, उसकी आत्मा को जकड़े रहे और वह लाख छटपटाने पर भी उनसे मुक्त न हो पा रही थी। संस्कारों में वह प्राचीना ही रही, पर आधुनिकता को उसने फैशन के रूप में ओढ़ लिया। इस प्रकार, द्वैत ने नारी के व्यक्तित्व को खंडित कर दिया।

नारी के इस द्वैत ने साहित्यकार को आकृष्ट किया। इलाचन्द्र जोशी के 'सुबह के भूले', उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' और डा० 'शैफाली' जैनेन्द्र के 'सुखदा', और 'विवर्त्त', माचवे के 'द्वाभा' आदि उपन्यासों ने इस विषय को गहराई से लिया। समाज में सेक्स और अर्थ की सम्मिलित विकृतियां नारी का शोषण करके उसे कहां से कहां पहुँचा देती हैं। इसका चित्रण यशपाल के 'मनुष्य के रूप' और भगवती बाबू के 'आखिरी दाव' में हुआ। देश के विभाजन की पृष्ठभूमि में नारी के भीषण शोषण और फिर नवजागरण का सांगोपांग चित्रण यशपाल ने अपने वृहद् उपन्यास 'झूठा-सच' में किया। गृहस्थी पर बढ़ता हुआ आर्थिक बोझ, स्वतन्त्रता की कामना और नागरिक जीवन की चकाचौंध आदि मिलकर नारी को नौकरी के क्षेत्र में ले आए पर गृहस्थी की जिम्मेदारी उसकी ज्यों की त्यों बनी रही और यह एक अतिरिक्त दायित्व उस पर आ पड़ा। पहले उसका शोषण घर में होता था, अब बाहर भी होने लगा, यद्यपि अब वह उतनी निरीह न रही थी पर जो पूरी ईमानदारी से दोनों ही दायित्व निभाना चाहती थी वह दो पाटों के बीच पिसने लगी। नौकरी-पेशा नारी की समस्याओंको लेकर रजनी पनिकर, उषा प्रियम्वदा, मीरा महादेवन आदि कई लेखिकाएं भी उपन्यास के क्षेत्र में आईं।

साहित्य के संदर्भ में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की सबसे महत्वपूर्ण घटना है साहित्य-सृजन का 'वाङ्मय तप' के आकाश से उतर कर व्यवसाय की कठोर धरती पर आ टिकना और इस आधार को दृढ़ता से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पकड़ लेना। साहित्य-सृजन व्यवसाय बना तो व्यवसाय के सभी नियम उस पर लागू हुए। व्यवसाय को बढ़ाने के लिए साहित्यकार को कई बार ऐसे हथकंडे भी अपनाने पड़े, जिनका साहित्य से दूर का भी संबन्ध न था। मांग और पूर्ति का चक्र चला तो साहित्यकार को 'आर्डर' पर भी माल तैयार करना पड़ा और ऐसा माल तैयार करना पड़ा जो कम से कम समय में अधिक से अधिक मात्रा में निकले और आकर्षक भी हो। इससे साहित्य में ऋजुता तो आई पर उसके साथ सस्तापन भी आया। मौलिकता और फैशन के फेर में नए-नए टैकनीकों का प्रयोग किया गया। गहन अनुभूति की कमी ने टेकनीक का मोह और भी बढ़ा दिया। इससे उपन्यास का शिल्पविकास तेज़ी से होने लगा और उसकी शिल्पगत उपलब्धियां उत्तरोत्तर बढ़ती गईं।

इस युग की सर्वाधिक क्रान्तिकारी घटना तो यह हुई कि जीवन जीने और भोगने के बजाय समझने और समझाने का विषय बनता गया और अनुभूति का स्थान उत्तरोत्तर बौद्धिकता लेती गई। उपन्यास को तो ज़माने की हवा बड़ी तेज़ी से लगती है। उपन्यास में अनुभूति की गहनता घटी तो कथ्य फीका पड़ने लगा। उपन्यास के लिए यह बड़े संकट का समय था, पर शीघ्र ही बौद्धिकता और शिल्प दोनों ने उसे सहारा देकर इस विकट स्थिति से उबार लिया। बौद्धिकता और शिल्प में वैसे भी चमत्कार पैदा करने की अद्भुत क्षमता है। साहित्य-सृजन के व्यवसाय का रूप धारण करते ही चमत्कार और भी वांछनीय हो उठा। मौलिकता और फैशन के आग्रह से भी शिल्प के नए-नए प्रयोगों को बढ़ावा मिला। शिल्पगत प्रयोग जितने अधिक इस युग में हुए हैं उतने शायद उपन्यास के पूरे इतिहास में भी नहीं हुए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रकृतिवादी यथार्थवाद

डॉ० श्याम नारायण शुक्ल
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकृतिवादी दृष्टिकोण का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस के उपन्यासकारों ने किया। फ्रांसीसी कलाकारों में प्रकृतिवादी धारा के प्रवर्तक के रूप में सर्वप्रथम साहित्यकार हम 'ज़ोला' को मान सकते हैं। यद्यपि इसकी स्थापना ज़ोला से पूर्व ही 'गनकौर भाई' ने कर दी थी। 'ज़ोला' की दृष्टि जीवन के प्रति प्रयोगात्मक थी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ल सेमान एक्सपेरिमेन्टल' में इसी दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होंने पात्रों का विश्लेषण उनकी वंशपरम्परा और वातावरण के आधार पर किया है। मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य-कलापों के लिये वंश-परम्परा और वातावरण ——ये दो तत्व ही उत्तरदायी होते हैं। किसी भी मनुष्य के शरीर का गठन, रूप और रंग उसके वंश से सम्बद्धित होता ही है, साथ ही उसके व्यवहार, आन्तरिक प्रवृत्तियों और अभिरुचियों में भी उसी वंश और वातावरण की झलक स्पष्टतः परिलक्षित होती रहती हैं। विज्ञान की इसी पद्धति को लेकर ज़ोला ने अपने पात्रों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन और विश्लेषण उपस्थित किया है। ज़ोला ने एक स्थान पर लिखा है——"प्रयोगी प्रकृति का परीक्षण कर विधि का निर्णय करने वाला होता है। हम उपन्यासकार मनुष्यों और उनके विकारों का परीक्षण और विधि निर्णय करने वाले हैं।" उनका कहना है कि जिस प्रकार अनेक रासायनिक पदार्थों के संमिश्रण से एक नवीन वैज्ञानिक पदार्थ की उत्पत्ति होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की आनुवंशिक अनेक प्रवृत्तियों का जब परिवेश से सम्पर्क होता है तो अनेक नई प्रवृत्तियों और क्रियाओं का जन्म अपने आप हो जाता है। प्रकृतिवादी यथार्थवादी इन्हीं प्रवृत्तियों का सूक्ष्म और गहन अध्ययन उपस्थित करता है।

मानव-जीवन का वंश-परम्परा और परिवेश से गहनतम सम्बन्ध होने के बावजूद उसे हम वैज्ञानिक प्रयोगशाला में परीक्षित नहीं कर सकते। मानव-जीवन कोई रासायनिक जड़ पदार्थ नहीं है जिसमें प्रयोगकर्ता को अपनी अभिरुचि का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। मानव-जीवन के साथ साहित्यकार की भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक परिस्थितियाँ, उसकी सामाजिक और वैयक्तिक मान्यतायें उसे चारों ओर से घेरे रहती हैं, जिनकी ओर से वह आँख बन्द नहीं कर सकता। ऐसा करने पर समाज के प्रति अपने दायित्व को वह विस्मृत कर देता है और उसका चित्रण यथार्थ की पार्श्व-भूमि से दूर चला जाता है। ऐसी स्थिति में जोला और उसके अनुयायियों द्वारा किये गये मानव-जीवन के अतिवादी प्रयोगों को हम उचित नहीं मान सकते। यह बात भिन्न है कि मानव-जीवन और समाज के प्रकृतिवादी प्रयोग में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। किन्तु उनका अतिरंजित रूप सर्वदा उपेक्षणीय रहेगा। इसी अतिवादी विचार-धारा की आलोचना करते हुए 'सार्त्र', ने लिखा है——'निरुपयोगिता की चरम सीमा ही सुन्दरता थी।

जोला के ही अनुकरण पर इसी पद्धति के आधार पर रचना करने वाले फ्रांसीसी कलाकारों में हम

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'रोम्या रोलाँ' और 'मोपाँसा' आदि का नाम ले सकते हैं, जिनके चित्रण में औपन्यासिक तत्वों की तुलना में कुछ तत्व जोला से भी अधिक उदात्त मात्रा में मिलते हैं। फ्रांसीसी प्रकृतिवादी साहित्यकारों के पश्चात् अंग्रेज़ी साहित्यकारों का नाम आता है। जिनकी रचनाओं में प्रकृतिवादी तत्वों की प्राप्ति अधिक न होने पर भी कुछ शैलीगत विशेषतायें अवश्य मिलती हैं। इन साहित्यकारों की कृतियों में समाज और मानव की बुराइयों का उपस्थितिकरण तो बड़ी उपयुक्त मात्रा में है किन्तु उस सम्बन्ध में उपस्थित की गई उनकी निजी व्याख्या प्रकृतिवादी व्याख्या से साम्य खाती प्रतीत नहीं होती। इन साहित्यकारों में 'भूर' और 'बटलर' आदि को छोड़कर कोई भी प्रभावशाली कलाकार दिखाई नहीं पड़ता।

इन पाश्चात्य प्रकृतिवादियों की तुलना में हिन्दी प्रकृतिवादी यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में वंश और परिवेश से प्रादुर्भूत अनेक वृत्तियों की क्रियाओं का विवेचन उचित मात्रा में उपस्थित करने में असमर्थ दीख पड़ते हैं। उनके प्रकृतिवाद की सीमा कुत्सित वृत्तियों के 'हू बहू' चित्रण तक ही है। प्रकृतिवादी उपन्यास की मूल धारा जीवन का प्राकृतिक विकास उनकी रचनाओं में बड़ी हीन मात्रा में मिलता है। मानव प्रकृति की समस्त चेतनाओं को उसी प्रकार उन्मुक्त उनके प्राकृत रूप में चित्रित किया जाता है, जिस सहज प्राकृतिक भाव से प्राणी मात्र आचरण करते हैं। प्राकृतिक या सहज स्वाभाविक भाषा और शैली में मनुष्य के सहज स्वाभाविक आचरण का चित्रण प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषता होती है।

पाश्चात्य और हिन्दी साहित्यकारों की कृतियों के विवेचन से एक बात बड़ी स्पष्ट झलकती है; वह यह कि कथानक और चरित्रों के विकास में जहाँ पाश्चात्य कलाकारों की रचनायें ऊबड़-खाबड़ अनिश्चित मार्ग से बहने वाली नदी दिखलाई पड़ती हैं, हिन्दी के तथाकथित प्रकृतिवादी साहित्यकारों की रचनायें पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार निर्मित जैसे नहरे हों। हिन्दी और पाश्चात्य उपन्यासकारों के मार्गों का यह भेद हिन्दी प्रकृतिवादियों को पाश्चात्य प्रकृतिवादी यथार्थवादियों से कई कदम पीछे कर देता है। हिन्दी उपन्यासकारों के चरित्रों और कथा के विकास में जीवन-विकास की वह स्वाभाविकता और प्रभावशालिता नहीं है, जो पश्चिमी प्रकृतिवादियों की रचनाओं में है। कभी-कभी कुछ लोगों को इस प्रकार के साहित्य में मानव के संयम-विहीन और स्खलित आचरण की झलक मिलती है, और इस कोटि के साहित्य की कटु आलोचना भी की जाती है। कलाकारों की लेखनी से मानव के आचरण में जो सहज भोलापन और अकृत्रिम सौंदर्य प्रस्फुटित होता है, वह बहुत से लोगों को अत्यन्त सत्य और सरल भी प्रतीत होता रहा है।

हिन्दी के आलोचकों ने प्रकृतिवादी यथार्थ को लगभग एक सी जो परिभाषायें की हैं और जिन उपन्यासकारों को इस धारा के अन्तर्गत रखा है उनसे पाश्चात्य प्रकृतिवादी उपन्यासकारों की कृतियों की तुलना करने से दोनों में वैषम्य दृष्टिगत होता है। आचार्य चतुरसेन, जोशी, उग्र, यशपाल और अज्ञेय की रचनाओं पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य उपन्यासकार ज़ोला, मोपासा और फ्लाबेयर ने मनुष्य का प्राकृतिक विकास क्रम के आधार पर जो प्रयोगात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, हिन्दी उपन्यासकारों में वह बात नहीं दिखलाई पड़ती। पश्चिमी उपन्यासकारों ने भी घोर यथार्थ चित्रों का नग्न प्रकटन किया है किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य पात्रों का उपर्युक्त प्रयोगात्मक अध्ययन ही है। यह बात हिन्दी के दो एक उपन्यासकारों—जैसे डा० अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग)—को छोड़कर, अन्य उपन्यासकारों में नहीं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रकृतिवादी यथार्थवाद

डॉ० श्याम नारायण शुक्ल
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकृतिवादी दृष्टिकोण का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस के उपन्यासकारों ने किया। फ्रांसीसी कलाकारों में प्रकृतिवादी धारा के प्रवर्तक के रूप में सर्वप्रथम साहित्यकार हम 'ज़ोला' को मान सकते हैं। यद्यपि इसकी स्थापना ज़ोला से पूर्व ही 'गनकौर भाई' ने कर दी थी। 'ज़ोला' की दृष्टि जीवन के प्रति प्रयोगात्मक थी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ल सेमान एक्सपेरिमेन्टल' में इसी दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होंने पात्रों का विश्लेषण उनकी वंशपरम्परा और वातावरण के आधार पर किया है। मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य-कलापों के लिये वंश-परम्परा और वातावरण ——ये दो तत्व ही उत्तरदायी होते हैं। किसी भी मनुष्य के शरीर का गठन, रूप और रंग उसके वंश से सम्बद्धित होता ही है, साथ ही उसके व्यवहार, आन्तरिक प्रवृत्तियों और अभिरुचियों में भी उसी वंश और वातावरण की झलक स्पष्टतः परिलक्षित होती रहती हैं। विज्ञान की इसी पद्धति को लेकर ज़ोला ने अपने पात्रों की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन और विश्लेषण उपस्थित किया है। ज़ोला ने एक स्थान पर लिखा है——"प्रयोगी प्रकृति का परीक्षण कर विधि का निर्णय करने वाला होता है। हम उपन्यासकार मनुष्यों और उनके विकारों का परीक्षण और विधि निर्णय करने वाले हैं।" उनका कहना है कि जिस प्रकार अनेक रासायनिक पदार्थों के संमिश्रण से एक नवीन वैज्ञानिक पदार्थ की उत्पत्ति होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की आनुवंशिक अनेक प्रवृत्तियों का जब परिवेश से सम्पर्क होता है तो अनेक नई प्रवृत्तियों और क्रियाओं का जन्म अपने आप हो जाता है। प्रकृतिवादी यथार्थवादी इन्हीं प्रवृत्तियों का सूक्ष्म और गहन अध्ययन उपस्थित करता है।

मानव-जीवन का वंश-परम्परा और परिवेश से गहनतम सम्बन्ध होने के बावजूद उसे हम वैज्ञानिक प्रयोगशाला में परीक्षित नहीं कर सकते। मानव-जीवन कोई रासायनिक जड़ पदार्थ नहीं है जिसमें प्रयोगकर्ता को अपनी अभिरुचि का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। मानव-जीवन के साथ साहित्यकार की भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक परिस्थितियाँ, उसकी सामाजिक और वैयक्तिक मान्यतायें उसे चारों ओर से घेरे रहती हैं, जिनकी ओर से वह आँख बन्द नहीं कर सकता। ऐसा करने पर समाज के प्रति अपने दायित्व को वह विस्मृत कर देता है और उसका चित्रण यथार्थ की पार्श्व-भूमि से दूर चला जाता है। ऐसी स्थिति में जोला और उसके अनुयायियों द्वारा किये गये मानव-जीवन के अतिवादी प्रयोगों को हम उचित नहीं मान सकते। यह बात भिन्न है कि मानव-जीवन और समाज के प्रकृतिवादी प्रयोग में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। किन्तु उनका अतिरंजित रूप सर्वदा उपेक्षणीय रहेगा। इसी अतिवादी विचार-धारा की आलोचना करते हुए 'सार्त्र', ने लिखा है——'निरुपयोगिता की चरम सीमा ही सुन्दरता थी।

जोला के ही अनुकरण पर इसी पद्धति के आधार पर रचना करने वाले फ्रांसीसी कलाकारों में हम

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'रोम्या रोलाँ' और 'मोपाँसा' आदि का नाम ले सकते हैं, जिनके चित्रण में औपन्यासिक तत्वों की तुलना में कुछ तत्व जोला से भी अधिक उदात्त मात्रा में मिलते हैं। फ्रांसीसी प्रकृतिवादी साहित्यकारों के पश्चात् अंग्रेज़ी साहित्यकारों का नाम आता है। जिनकी रचनाओं में प्रकृतिवादी तत्वों की प्राप्ति अधिक न होने पर भी कुछ शैलीगत विशेषतायें अवश्य मिलती हैं। इन साहित्यकारों की कृतियों में समाज और मानव की बुराइयों का उपस्थितिकरण तो बड़ी उपयुक्त मात्रा में है किन्तु उस सम्बन्ध में उपस्थित की गई उनकी निजी व्याख्या प्रकृतिवादी व्याख्या से साम्य खाती प्रतीत नहीं होती। इन साहित्यकारों में 'भूर' और 'बटलर' आदि को छोड़कर कोई भी प्रभावशाली कलाकार दिखाई नहीं पड़ता।

इन पाश्चात्य प्रकृतिवादियों की तुलना में हिन्दी प्रकृतिवादी यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में वंश और परिवेश से प्रादुर्भूत अनेक वृत्तियों की क्रियाओं का विवेचन उचित मात्रा में उपस्थित करने में असमर्थ दीख पड़ते हैं। उनके प्रकृतिवाद की सीमा कुत्सित वृत्तियों के 'हू बहू' चित्रण तक ही है। प्रकृतिवादी उपन्यास की मूल धारा जीवन का प्राकृतिक विकास उनकी रचनाओं में बड़ी हीन मात्रा में मिलता है। मानव प्रकृति की समस्त चेतनाओं को उसी प्रकार उन्मुक्त उनके प्राकृत रूप में चित्रित किया जाता है, जिस सहज प्राकृतिक भाव से प्राणी मात्र आचरण करते हैं। प्राकृतिक या सहज स्वाभाविक भाषा और शैली में मनुष्य के सहज स्वाभाविक आचरण का चित्रण प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषता होती है।

पाश्चात्य और हिन्दी साहित्यकारों की कृतियों के विवेचन से एक बात बड़ी स्पष्ट झलकती है; वह यह कि कथानक और चरित्रों के विकास में जहाँ पाश्चात्य कलाकारों की रचनायें ऊबड़-खाबड़ अनिश्चित मार्ग से बहने वाली नदी दिखलाई पड़ती हैं, हिन्दी के तथाकथित प्रकृतिवादी साहित्यकारों की रचनायें पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार निर्मित जैसे नहरे हों। हिन्दी और पाश्चात्य उपन्यासकारों के मार्गों का यह भेद हिन्दी प्रकृतिवादियों को पाश्चात्य प्रकृतिवादी यथार्थवादियों से कई कदम पीछे कर देता है। हिन्दी उपन्यासकारों के चरित्रों और कथा के विकास में जीवन-विकास की वह स्वाभाविकता और प्रभावशालिता नहीं है, जो पश्चिमी प्रकृतिवादियों की रचनाओं में है। कभी-कभी कुछ लोगों को इस प्रकार के साहित्य में मानव के संयम-विहीन और स्खलित आचरण की झलक मिलती है, और इस कोटि के साहित्य की कटु आलोचना भी की जाती है। कलाकारों की लेखनी से मानव के आचरण में जो सहज भोलापन और अकृत्रिम सौंदर्य प्रस्फुटित होता है, वह बहुत से लोगों को अत्यन्त सत्य और सरल भी प्रतीत होता रहा है।

हिन्दी के आलोचकों ने प्रकृतिवादी यथार्थ को लगभग एक सी जो परिभाषायें की हैं और जिन उपन्यासकारों को इस धारा के अन्तर्गत रखा है उनसे पाश्चात्य प्रकृतिवादी उपन्यासकारों की कृतियों की तुलना करने से दोनों में वैषम्य दृष्टिगत होता है। आचार्य चतुरसेन, जोशी, उग्र, यशपाल और अज्ञेय की रचनाओं पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य उपन्यासकार ज़ोला, मोपासा और फ्लाबेयर ने मनुष्य का प्राकृतिक विकास क्रम के आधार पर जो प्रयोगात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, हिन्दी उपन्यासकारों में वह बात नहीं दिखलाई पड़ती। पश्चिमी उपन्यासकारों ने भी घोर यथार्थ चित्रों का नग्न प्रकटन किया है किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य पात्रों का उपर्युक्त प्रयोगात्मक अध्ययन ही है। यह बात हिन्दी के दो एक उपन्यासकारों—जैसे डा० अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग)—को छोड़कर, अन्य उपन्यासकारों में नहीं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पाई जाती। उन्होंने चित्रण को ही साध्य बना लिया है, जब कि ज़ोला आदि ने उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। हिन्दी उपन्यासकारों की अधिकांश कृतियाँ प्रकृतिवादी यथार्थ की सीमा में नहीं आती।

'प्रकृतिवाद के भीतर स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुये सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्ति है। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रूप में मनुष्यता पहुँच जाती है तो उन्हें सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और इन बन्धनों को कृत्रिम और अवास्तविक माना जाने लगता है।' शिवदान सिंह चौहान ने 'दैनिक जीवन की औसत और असम्बद्ध घटनाओं के हू बहू यथातथ्य व्यौरेवार चित्रण' को, डा० श्री कृष्ण लाल ने 'ऐसे चरित्रों की सृष्टि जो पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं, विशेषकर विषय भोग की दृष्टि से वे पशुओं से भी नीच और निकृष्ट हैं; और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मनुष्य प्रकृति की विकसित जन्तु' और 'काम-क्रोध आदि मनोरागों की गट्ठर मात्र' मानकर इन उपन्यासकारों को प्रकृतिवादी नाम से अभिहित किया है। अतः इसी आधार पर हम इनकी कृतियों पर दृष्टि डालेंगे।

इलाचन्द्र जोशी को मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य-जगत मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के नाम से जानता है। किन्तु उनके मनोविश्लेषण, जिसके अन्दर वे चरित्रों और घटनाओं का नग्न चित्रण करते हैं, के आधार पर, उनकी रचनाओं को कुछ आलोचकों ने प्रकृतिवादी यथार्थ के अन्दर समाहित किया है। उनका 'पर्दे की रानी' ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें एक वेश्या की सन्तान निरंजना——जिसे मरते समय उसकी माँ मनमोहन नाम के एक व्यक्ति को पालने के लिये दे जाती है——को कथा-नायिका बनाकर जोशी ने उसके ऊपर मनमोहन के पुत्र इन्द्रमोहन का वासनात्मक प्रेम आरोपित किया है। आश्चर्य अपनी सीमा का अतिक्रमण वहाँ करता है, जहाँ मनमोहन स्वयं पुत्री के समान पालिता निरंजना से घृणित प्रस्ताव करता है। नैतिक पतन और अनाचारवादी दर्शन की पराकाष्ठा ही इसे कहा जायेगा। अन्ततः निरंजना के छात्रावास चले जाने पर इन्द्र मोहन के साथ उसका प्रेमाकुंर पल्लवित होता है। इन्द्र मोहन के अनेक छलपूर्ण कार्यों के पश्चात् उसे नेपाल जाते समय गाड़ी में ही निरंजना की आत्मसमर्पण युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार जोशी जी ने इन्द्रमोहन को चरित्र-हीन, कामासक्त और पशु से भी नीच मनुष्य सिद्ध किया है।

निरंजना के चरित्र में एक बात ध्यान देने योग्य अवश्य है, वह यह कि उसका चरित्र उसकी वेश्या माँ के रक्त से सम्बद्ध है, और उसके इस वंशानुगत संस्कार का वहाँ के परिवेश से संघर्ष होता है। जोशी ने उसके चरित्र को वंशानुक्रम और परिवेश से संचालित माना है, जो प्रकृतिवादी यथार्थवाद की विशेषता है।

'प्रेत और छाया' में भी मनोविज्ञान और कुछ प्रकृतिवादी तत्वों की प्राप्ति होती है। कथानायक पारसनाथ तो एक पतिव्रता माँ और चरित्रभ्रष्ट पिता की संतान है। उसे अपने पिता द्वारा यह ज्ञान होने पर कि वह अपने माँ की अनैतिक संतति है, उसकी माँ दुश्चरित्रा है, कितनी भयंकर प्रतिक्रिया होती है उसके जीवन में इसकी? जैसे वह अवसर पाते ही प्रत्येक युवती का शीलभंग करने की ताक में रहता है। इसमें उसे एक असीम और अज्ञात आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु इन युवतियों में से वह किसी के साथ विवाह करने के लिये उद्यत नहीं है। बाद में वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह एक वेश्या को अपनी धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार लेता है। अब उसका मानस और हृदय दोनों परिवर्तित हो चके हैं। शैली सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर भी उपन्यास प्रकृतिवादी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि पारसनाथ विरोधी चरित्रों वाले माता-पिता की सन्तान है तो उसके संस्कारों और कार्यों का विकास स्वाभाविक रूप से होना चाहिये था। यह ज्ञात होने पर कि उसकी माँ दुश्चरित्रा है; वह बुरे कार्य करने लगता है, और यह जानने पर कि उसकी माँ सती है, वह अच्छे कार्य करने लगता है। वह मनुष्य है या कोई यंत्रचालित काष्ठखण्ड ? निश्चित रूप से ऐसा ज्ञात होता है कि वह जोशी के संकेतों पर काम करने वाला एक नाटक का अभिनेता है। इस प्रकार उसके चरित्र का विकास प्रकृतिवाद की स्वाभाविक गति में नहीं होता। जोशी जी का यह उपन्यास प्रकृतिवादी होते हुए भी उसकी समूची शर्तों को पूरा नहीं कर पाता।

आचार्य चतुरसेन दूसरे उपन्यासकार हैं जिन्हें प्रकृतिवादियों की पंक्ति में हठात् खड़ा कर दिया गया है। उनके उपन्यास कई धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'वैशाली की नगर वधू', 'सोमनाथ' तथा अन्य इसी श्रेणी के उपन्यासों में प्रकृतिवादी तत्व नहीं मिलते। नारी-चरित्र और मनोविज्ञान पर प्रकाश डालने वाले उनके 'पत्थर युग के दो बुत' और 'आमा' आदि उपन्यास भी प्रकृतिवादी नहीं कहे जा सकते। उनका एक उपन्यास 'अमर अभिलाषा' अवश्य अनेक विधवाओं के नग्न चित्रण और उनकी दयनीय स्थिति का चित्र उपस्थित करता है। विषय का कुरुचिपूर्ण अतिशय यथार्थवादी चित्रण प्रकृतिवाद की विशेषता नहीं है। उसमें चरित्रों के विकास का न तो प्रकृतिवादी क्रम है, और न किसी चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। विषय की यथार्थता के आधार पर यदि कोई उसे प्रकृतिवादी कहे तो ऐसा कहा जा सकता है।

तीसरे प्रकृतिवादी उपन्यासकार अज्ञेय हैं। उनके 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' उपन्यासों में पर्याप्त रूप से प्रकृतिवादी तत्वों की आशा की जा सकती है। जीवनी का प्रथम भाग खण्ड अंशों के आधार पर शेखर की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का परिचय देता है। अहं, भय और काम—इन तीन प्रवृत्तियों का विकास लेखक ने शेखर में दिखलाया है। 'जीवनी' को प्रकृतिवादी उपन्यास की सीमा के अन्दर समाहित करते हुए हमें एक बात ध्यान में रखनी है कि शेखर की इन तीनों प्रवृत्तियों का विकास उसके वंशानुक्रम और परिवेश का प्रभाव है या लेखक की स्वयं की आरोपित वृत्ति।

अहं, काम और भय का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि शेखर में काम का विकास नैसर्गिक है, जो प्रत्येक मनुष्य में होता है। मनुष्य काम की सम्पूर्ति या तो सामाजिक प्रतिबन्ध (भय) के कारण या मर्यादा-भावना (अहं) के कारण नहीं कर पाता। अन्यथा सदैव वह इस संतुष्टि के लिये प्रयत्नशील रहता है। अहं और भय की प्रतिक्रिया का जो काम के ऊपर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रवृत्ति विशेष द्वारा लेखक ने शेखर के चरित्र का निर्माण किया है। जीवनी का प्रथम भाग मनोविश्लेषणात्मक होते हुये भी शेखर के चरित्र विकास में परिवेश का अभाव है। आनुवंशिकी का तो उसमें विवरण ही नहीं है। अज्ञेय को जोशी जी की अपेक्षा अधिक तटस्थतावादी होने के कारण प्रकृतिवादी लेखक माना जा सकता है। 'शेखर एक जीवनी' (प्रथम भाग) हिन्दी साहित्य में प्रकृतिवादी शैली में लिखी गई एक महत्वपूर्ण रचना है। दूसरा भाग इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं।

अज्ञेय का दूसरा मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'नदी के द्वीप' है। इस रचना में भी मानव की उन्हीं सब कामासक्त निम्न प्रवृत्तियों का अतिरंजित वर्णन है, जो सम्भवतः सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं। पात्रों और परिस्थितियों के सूक्ष्म तटस्थ और वैज्ञानिक अध्ययन के स्थान पर नग्न और वासनापूर्ण शैली में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पाई जाती। उन्होंने चित्रण को ही साध्य बना लिया है, जब कि ज़ोला आदि ने उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। हिन्दी उपन्यासकारों की अधिकांश कृतियाँ प्रकृतिवादी यथार्थ की सीमा में नहीं आती।

'प्रकृतिवाद के भीतर स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुये सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्ति है। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रूप में मनुष्यता पहुँच जाती है तो उन्हें सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और इन बन्धनों को कृत्रिम और अवास्तविक माना जाने लगता है।' शिवदान सिंह चौहान ने 'दैनिक जीवन की औसत और असम्बद्ध घटनाओं के हू बहू यथातथ्य व्यौरेवार चित्रण' को, डा० श्री कृष्ण लाल ने 'ऐसे चरित्रों की सृष्टि जो पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं, विशेषकर विषय भोग की दृष्टि से वे पशुओं से भी नीच और निकृष्ट हैं; और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मनुष्य प्रकृति की विकसित जन्तु' और 'काम-क्रोध आदि मनोरागों की गट्ठर मात्र' मानकर इन उपन्यासकारों को प्रकृतिवादी नाम से अभिहित किया है। अतः इसी आधार पर हम इनकी कृतियों पर दृष्टि डालेंगे।

इलाचन्द्र जोशी को मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य-जगत मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के नाम से जानता है। किन्तु उनके मनोविश्लेषण, जिसके अन्दर वे चरित्रों और घटनाओं का नग्न चित्रण करते हैं, के आधार पर, उनकी रचनाओं को कुछ आलोचकों ने प्रकृतिवादी यथार्थ के अन्दर समाहित किया है। उनका 'पर्दे की रानी' ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें एक वेश्या की सन्तान निरंजना——जिसे मरते समय उसकी माँ मनमोहन नाम के एक व्यक्ति को पालने के लिये दे जाती है——को कथा-नायिका बनाकर जोशी ने उसके ऊपर मनमोहन के पुत्र इन्द्रमोहन का वासनात्मक प्रेम आरोपित किया है। आश्चर्य अपनी सीमा का अतिक्रमण वहाँ करता है, जहाँ मनमोहन स्वयं पुत्री के समान पालिता निरंजना से घृणित प्रस्ताव करता है। नैतिक पतन और अनाचारवादी दर्शन की पराकाष्ठा ही इसे कहा जायेगा। अन्ततः निरंजना के छात्रावास चले जाने पर इन्द्र मोहन के साथ उसका प्रेमाकुंर पल्लवित होता है। इन्द्र मोहन के अनेक छलपूर्ण कार्यों के पश्चात् उसे नेपाल जाते समय गाड़ी में ही निरंजना की आत्मसमर्पण युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार जोशी जी ने इन्द्रमोहन को चरित्र-हीन, कामासक्त और पशु से भी नीच मनुष्य सिद्ध किया है।

निरंजना के चरित्र में एक बात ध्यान देने योग्य अवश्य है, वह यह कि उसका चरित्र उसकी वेश्या माँ के रक्त से सम्बद्ध है, और उसके इस वंशानुगत संस्कार का वहाँ के परिवेश से संघर्ष होता है। जोशी ने उसके चरित्र को वंशानुक्रम और परिवेश से संचालित माना है, जो प्रकृतिवादी यथार्थवाद की विशेषता है।

'प्रेत और छाया' में भी मनोविज्ञान और कुछ प्रकृतिवादी तत्वों की प्राप्ति होती है। कथानायक पारसनाथ तो एक पतिव्रता माँ और चरित्रभ्रष्ट पिता की संतान है। उसे अपने पिता द्वारा यह ज्ञान होने पर कि वह अपने माँ की अनैतिक संतति है, उसकी माँ दुश्चरित्रा है, कितनी भयंकर प्रतिक्रिया होती है उसके जीवन में इसकी? जैसे वह अवसर पाते ही प्रत्येक युवती का शीलभंग करने की ताक में रहता है। इसमें उसे एक असीम और अज्ञात आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु इन युवतियों में से वह किसी के साथ विवाह करने के लिये उद्यत नहीं है। बाद में वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह एक वेश्या को अपनी धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार लेता है। अब उसका मानस और हृदय दोनों परिवर्तित हो चके हैं। शैली सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर भी उपन्यास प्रकृतिवादी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि पारसनाथ विरोधी चरित्रों वाले माता-पिता की सन्तान है तो उसके संस्कारों और कार्यों का विकास स्वाभाविक रूप से होना चाहिये था। यह ज्ञात होने पर कि उसकी माँ दुश्चरित्रा है; वह बुरे कार्य करने लगता है, और यह जानने पर कि उसकी माँ सती है, वह अच्छे कार्य करने लगता है। वह मनुष्य है या कोई यंत्रचालित काष्ठखण्ड ? निश्चित रूप से ऐसा ज्ञात होता है कि वह जोशी के संकेतों पर काम करने वाला एक नाटक का अभिनेता है। इस प्रकार उसके चरित्र का विकास प्रकृतिवाद की स्वाभाविक गति में नहीं होता। जोशी जी का यह उपन्यास प्रकृतिवादी होते हुए भी उसकी समूची शर्तों को पूरा नहीं कर पाता।

आचार्य चतुरसेन दूसरे उपन्यासकार हैं जिन्हें प्रकृतिवादियों की पंक्ति में हठात् खड़ा कर दिया गया है। उनके उपन्यास कई धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'वैशाली की नगर वधू', 'सोमनाथ' तथा अन्य इसी श्रेणी के उपन्यासों में प्रकृतिवादी तत्व नहीं मिलते। नारी-चरित्र और मनोविज्ञान पर प्रकाश डालने वाले उनके 'पत्थर युग के दो बुत' और 'आभा' आदि उपन्यास भी प्रकृतिवादी नहीं कहे जा सकते। उनका एक उपन्यास 'अमर अभिलाषा' अवश्य अनेक विधवाओं के नग्न चित्रण और उनकी दयनीय स्थिति का चित्र उपस्थित करता है। विषय का कुरुचिपूर्ण अतिशय यथार्थवादी चित्रण प्रकृतिवाद की विशेषता नहीं है। उसमें चरित्रों के विकास का न तो प्रकृतिवादी क्रम है, और न किसी चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। विषय की यथार्थता के आधार पर यदि कोई उसे प्रकृतिवादी कहे तो ऐसा कहा जा सकता है।

तीसरे प्रकृतिवादी उपन्यासकार अज्ञेय हैं। उनके 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' उपन्यासों में पर्याप्त रूप से प्रकृतिवादी तत्वों की आशा की जा सकती है। जीवनी का प्रथम भाग खण्ड अंशों के आधार पर शेखर की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का परिचय देता है। अहं, भय और काम—इन तीन प्रवृत्तियों का विकास लेखक ने शेखर में दिखलाया है। 'जीवनी' को प्रकृतिवादी उपन्यास की सीमा के अन्दर समाहित करते हुए हमें एक बात ध्यान में रखनी है कि शेखर की इन तीनों प्रवृत्तियों का विकास उसके वंशानुक्रम और परिवेश का प्रभाव है या लेखक की स्वयं की आरोपित वृत्ति।

अहं, काम और भय का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि शेखर में काम का विकास नैसर्गिक है, जो प्रत्येक मनुष्य में होता है। मनुष्य काम की सम्पूर्ति या तो सामाजिक प्रतिबन्ध (भय) के कारण या मर्यादा-भावना (अहं) के कारण नहीं कर पाता। अन्यथा सदैव वह इस संतुष्टि के लिये प्रयत्नशील रहता है। अहं और भय की प्रतिक्रिया का जो काम के ऊपर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रवृत्ति विशेष द्वारा लेखक ने शेखर के चरित्र का निर्माण किया है। जीवनी का प्रथम भाग मनोविश्लेषणात्मक होते हुये भी शेखर के चरित्र विकास में परिवेश का अभाव है। आनुवंशिकी का तो उसमें विवरण ही नहीं है। अज्ञेय को जोशी जी की अपेक्षा अधिक तटस्थतावादी होने के कारण प्रकृतिवादी लेखक माना जा सकता है। 'शेखर एक जीवनी' (प्रथम भाग) हिन्दी साहित्य में प्रकृतिवादी शैली में लिखी गई एक महत्वपूर्ण रचना है। दूसरा भाग इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं।

अज्ञेय का दूसरा मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'नदी के द्वीप' है। इस रचना में भी मानव की उन्हीं सब कामासक्त निम्न प्रवृत्तियों का अतिरंजित वर्णन है, जो सम्भवतः सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं। पात्रों और परिस्थितियों के सूक्ष्म तटस्थ और वैज्ञानिक अध्ययन के स्थान पर नग्न और वासनापूर्ण शैली में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चित्रण है। चित्रण की इस असामाजिक, अनैतिक और अतियथार्थता के कारण 'नदी के द्वीप' को प्रकृतिवादी रचना अवश्य माना जा सकता है।

उग्र जी का 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास भी शैली की दृष्टि से प्रकृतिवादी यथार्थ का स्पर्श करता है। स्त्रियों का घृणित व्यापार करने वाले नीच पुरुषों के गर्हित कृत्यों का चित्रण लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है। उपन्यास में वर्णित स्थल सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ चेतना के प्रतीक नहीं माने जा सकते।

यशपाल का 'दादा कामरेड' उपन्यास भी चित्रण की नग्नता के कारण प्रकृतिवादी उपन्यासों की सीमा का स्पर्श कर गया है। हरीश का शैला से अनावृत होने के लिये प्रस्ताव और अन्ततः जिस पाशविक प्रेम की परिणति लेखक ने दिखलाई है, वह सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नहीं कही जा सकती।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तमिल प्रदेश के लोक-जीवन में कृष्ण-भक्ति

डॉ. पी. जयरामन, डी० लिट्०

ग्यारहवीं शताब्दी के रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित वैष्णव संप्रदाय अथवा श्री संप्रदाय पांचरात्र के वासुदेव संप्रदाय से मिलता-जुलता है। उसमें नारायण तथा विष्णु के तत्वों का समावेश हुआ है और नारायण को विशेष महत्व प्राप्त है। उक्त संप्रदाय के उपदेशों में गोपालकृष्ण और श्रीराम को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला है। किन्तु आचार्य रामानुज के पूर्व के आलवार भक्तों के 'दिव्य प्रबन्धम्' के पदों में भगवान विष्णु के राम, कृष्ण आदि अवतारों का पर्याप्त मात्रा में भक्तिपूर्वक विवेचन हुआ है जिसके फलस्वरूप तमिल प्रदेश के व्यापक लोक जीवन में कृष्ण भक्ति तथा कृष्णोपासना की एक लोक स्वीकृत परम्परा सुदीर्घ काल से चली आ रही है।

तमिल का सर्वप्रथम व्याकरण ग्रंथ तोलकाप्पियम ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का माना जाता है। उसमें वनभूमि के लोगों के उपास्य के रूप में 'मायोन्' अर्थात् विष्णु को स्वीकार किया गया है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि ईसा पूर्व काल में भागवत संप्रदाय की परम्परा तमिल प्रदेश के जन सामान्य के बीच व्यवहार में थी। प्राचीन संघकालीन साहित्य, शिलप्पधिकारम, मणिमेखलै आदि संघोत्तर रचनाओं से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि अत्यंत प्राचीन काल से तमिल प्रदेश में वैष्णव भक्ति का बहुत अधिक प्रचार होता आ रहा था। 'परिपाडल' नामक संघकालीन काव्य में एक चित्रण इस प्रकार है; कवि पेरुवळुदियार तिरुमालिरु चोलै मलै नामक पर्वत का वर्णन करते हैं,[1] "मानव! इस पर्वत पर बलराम सहित विराजमान पीतांबरधारी भगवान विष्णु का ध्यान करो। वहाँ पहुँचकर यदि तुम उनकी आराधना नहीं कर पाते हो तो उस पर्वत को देख कर नमन करो। उस पर्वत को भगवान ही समझ कर उस दिशा की ओर देखते हुए वंदना करो। विश्वव्यापी भगवान विष्णु मानव-जीवन के दुखों के अपहर्ता हैं। जैसे वेद उनका गुण-गान करते हैं वैसे ही हम भी अपने ज्ञान के अनुसार बलराम समेत विष्णु की स्तुति करें।" इसी ग्रंथ में कडुवनिल् वेयिनार नामक कवि ने विष्णु के चतुर्व्यूहों का उल्लेख किया है।[2] शिलप्पधिकारम के 'आय्च्चियर कुरवै' (अहीर जाति की नारियों का गीत-नृत्य) भाग में कृष्ण, बलराम तथा देवी नप्पिन्नै[3] की स्तुति करते हुए अंत में कहा गया है, 'पंचवर्कु तूतु नडन्तानै एत्तात नावेन्न नावे! नारायणा एन्ना नावेन्न

---

१. परिपाडल, पद १५।

२. वही, पद २२।

३. तमिल प्रदेश के लोक सामान्य में मान्य भगवान विष्णु की कनिष्ठा देवी (अर्थात् कृष्णावतार में उनकी विशिष्ट नायिका जिसे परवर्ती भारतीय साहित्य में राधा नाम से अभिहित किया गया है।)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चित्रण है। चित्रण की इस असामाजिक, अनैतिक और अतियथार्थता के कारण 'नदी के द्वीप' को प्रकृतिवादी रचना अवश्य माना जा सकता है।

उग्र जी का 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास भी शैली की दृष्टि से प्रकृतिवादी यथार्थ का स्पर्श करता है। स्त्रियों का घृणित व्यापार करने वाले नीच पुरुषों के गर्हित कृत्यों का चित्रण लेखक ने स्पष्ट रूप से किया है। उपन्यास में वर्णित स्थल सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ चेतना के प्रतीक नहीं माने जा सकते।

यशपाल का 'दादा कामरेड' उपन्यास भी चित्रण की नग्नता के कारण प्रकृतिवादी उपन्यासों की सीमा का स्पर्श कर गया है। हरीश का शैला से अनावृत होने के लिये प्रस्ताव और अन्ततः जिस पाशविक प्रेम की परिणति लेखक ने दिखलाई है, वह सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नहीं कही जा सकती।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तमिल प्रदेश के लोक-जीवन में कृष्ण-भक्ति

डॉ. पी. जयरामन, डी० लिट्०

ग्यारहवीं शताब्दी के रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित वैष्णव संप्रदाय अथवा श्री संप्रदाय पांचरात्र के वासुदेव संप्रदाय से मिलता-जुलता है। उसमें नारायण तथा विष्णु के तत्वों का समावेश हुआ है और नारायण को विशेष महत्व प्राप्त है। उक्त संप्रदाय के उपदेशों में गोपालकृष्ण और श्रीराम को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला है। किन्तु आचार्य रामानुज के पूर्व के आलवार भक्तों के 'दिव्य प्रबन्धम्' के पदों में भगवान विष्णु के राम, कृष्ण आदि अवतारों का पर्याप्त मात्रा में भक्तिपूर्वक विवेचन हुआ है जिसके फलस्वरूप तमिल प्रदेश के व्यापक लोक जीवन में कृष्ण भक्ति तथा कृष्णोपासना की एक लोक स्वीकृत परम्परा सुदीर्घ काल से चली आ रही है।

तमिल का सर्वप्रथम व्याकरण ग्रंथ तोलकाप्पियम ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का माना जाता है। उसमें वनभूमि के लोगों के उपास्य के रूप में 'मायोन्' अर्थात् विष्णु को स्वीकार किया गया है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि ईसा पूर्व काल में भागवत संप्रदाय की परम्परा तमिल प्रदेश के जन सामान्य के बीच व्यवहार में थी। प्राचीन संघकालीन साहित्य, शिलप्पधिकारम, मणिमेखलै आदि संघोत्तर रचनाओं से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि अत्यंत प्राचीन काल से तमिल प्रदेश में वैष्णव भक्ति का बहुत अधिक प्रचार होता आ रहा था। 'परिपाडल' नामक संघकालीन काव्य में एक चित्रण इस प्रकार है; कवि पेरुवळुदियार तिरुमालिरु चोलै मलै नामक पर्वत का वर्णन करते हैं,[1] "मानव! इस पर्वत पर बलराम सहित विराजमान पीतांबरधारी भगवान विष्णु का ध्यान करो। वहाँ पहुँचकर यदि तुम उनकी आराधना नहीं कर पाते हो तो उस पर्वत को देख कर नमन करो। उस पर्वत को भगवान ही समझ कर उस दिशा की ओर देखते हुए वंदना करो। विश्वव्यापी भगवान विष्णु मानव-जीवन के दुखों के अपहर्ता हैं। जैसे वेद उनका गुण-गान करते हैं वैसे ही हम भी अपने ज्ञान के अनुसार बलराम समेत विष्णु की स्तुति करें।" इसी ग्रंथ में कडुवनिल् वेयिनार नामक कवि ने विष्णु के चतुर्व्यूहों का उल्लेख किया है।[2] शिलप्पधिकारम के 'आय्च्चियर कुरवै' (अहीर जाति की नारियों का गीत-नृत्य) भाग में कृष्ण, बलराम तथा देवी नप्पिन्नै[3] की स्तुति करते हुए अंत में कहा गया है, 'पंचवर्कु तूतु नडन्तानै एत्तात नावेन्न नावे! नारायणा एन्ना नावेन्न

---

१. परिपाडल, पद १५।

२. वही, पद २२।

३. तमिल प्रदेश के लोक सामान्य में मान्य भगवान विष्णु की कनिष्ठा देवी (अर्थात् कृष्णावतार में उनकी विशिष्ट नायिका जिसे परवर्ती भारतीय साहित्य में राधा नाम से अभिहित किया गया है।)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नावे !"[१] अर्थात् पांडवों का दूत बन कर कौरवों के पास जो कृष्ण गए थे उनकी स्तुति न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? 'नमो नारायणाय' का मंत्रोच्चारण न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? उसी काव्य का एक दूसरा प्रसंग उल्लेखनीय है। जब चेर नरेश सती कण्णकी के मंदिर के लिए हिमालय से प्रस्तर लाने के उद्देश्य से उत्तर भारत की यात्रा को निकलते हैं तब तिरुवनंतपुरम के अनंत पद्मनाभ मंदिर का प्रसाद लांकर कुछ लोग चेर नरेश को प्रदान करते हैं और चेर नरेश उसे अपने कंधे पर धारण करते हैं।[२] इन साहित्यिक आधारों से यह स्पष्ट होता है कि तमिल के संघ साहित्य काल और उसके पहले से ही तमिल प्रदेश में विष्णु उपासना पर्याप्त प्रचार में थी, भागवत धर्म सम्बन्धी विभिन्न पुराणों का जन समाज में अत्यंत समादृत स्थान था, विभिन्न पूजा-विधियों के अनुसार विष्णु मंदिरों में उपासना होती थी और जन सामान्य 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र का उच्चारण बड़ी श्रद्धा-निष्ठा के साथ करता था।

प्राचीन तमिल साहित्य के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राचीन काल में तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों में वैदिक परम्परा में आगम-विहित विधियों का पालन करते हुए पूजा-उपासना की जाती थी। शिलप्पधिकारम में पुकार नगर के विष्णु मंदिर में वेदविहित पद्धति में यज्ञादि विधान कर के ब्रह्मा, विष्णु, बलराम आदि की उपासना किए जाने का उल्लेख है।[३] संघकालीन काव्य संकलन पदिट्रुप्पत्तु में तिरुवनन्तपुरम के अनन्त पद्मनाभ स्वामी मंदिर में ऊँची ध्वनि में भगवान विष्णु का नाम संकीर्तन करते हुए भक्त लोगों द्वारा भगवान की आराधना किए जाने का विस्तृत वर्णन मिलता है।[४] आळवार भक्तों में प्रथम आळवार कहलाने वाले पोय्गै आळवार ने (पाँचवीं शती) भगवान श्री नारायण की विविध उपासना-पद्धतियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि उनकी उपासना पुष्पों, यज्ञादि वैदिक क्रियाओं, सामान्य सेवा प्रणालियों, मंत्रोच्चारण आदि से की जाए और नाम-संकीर्तन द्वारा उनकी स्तुति की जाए तो वह भी पर्याप्त है।[५] उनकी कृति में तिरुपति, तिरुवे: का, तिरुक्कोविलूर आदि तीन प्रमुख वैष्णव स्थलों का भी उल्लेख है।[६] उनकी कृति में 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र की प्रशस्ति गायी गयी है और कहा गया है कि अमर परम पद प्राप्ति का सरलतम साधन उक्त मंत्र का उच्चारण है।[७] इससे यह स्पष्ट है कि समग्र तमिल प्रदेश में अत्यंत प्राचीन काल में सामूहिक सेवा-विधान, वेदागम विहित उपासना पद्धति, पुष्पाराधन, नामसंकीर्तन, नारायण मंत्रोच्चारण, ज्ञान-साधना आदि का पर्याप्त प्रचार था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों की सेवा-पद्धति वैष्णव आगमों के आधार पर थी। परवर्ती काल में रामानुजाचार्य ने पांचरात्र आगम का अनुसरण कर तमिल प्रदेश के वैष्णव मंदिरों की सेवा-पद्धति को व्यवस्थित करने का प्रयास किया।

किन्तु रामानुज के बहुत पहले से तमिल प्रदेश के लोक जीवन में विष्णु भक्ति, विशेषकर उनके राम, कृष्ण आदि अवतारों की भक्ति की धारा प्रवाहित होती आ रही थी। संघकालीन और संघोत्तरकालीन साहित्य इस बात के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि जन समाज में भागवतीय विष्णु भक्ति तथा अवतारो-

---

१. शिलप्पधिकारम, आय्च्चियर कुरवै, पद १४;
२. वही, काल् कोट् कादै, पद ८।
३. वही, इन्दिर विलवु ऊर एडुत्त कादै, पंक्ति १७५।
४. पदिट्रुप्पत्तु, चतुर्थ दश श्लोक का पहला पद।
५. मुदल् तिरुवन्तादि, पद ७०। ६. वही, पद ७७। ७. वही, पद ९५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पासना की पद्धति बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। तदनन्तर विष्णु भक्ति, प्रमुख रूप से राम-कृष्ण भक्ति की परम्परा की जन समाज में वैष्णव भक्त आळवार कवियों की रचनाओं के द्वारा प्रतिष्ठा होने लगी। तमिल प्रदेश के बारह आळवार भक्तों ने वेद, पुराण आदि का आधार ग्रहण कर विशेष रूप से कृष्ण भक्ति को लोक जीवन में प्रतिष्ठित किया। आळवारों ने भी एक परब्रह्म की अखण्ड शक्ति का वर्णन किया है। उनके अनुसार उसका नाम विष्णु है और ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी उसी के अंश हैं।[१] वे ही सर्वगुणसंपन्न, सर्वज्ञानी, सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता, सर्वलोकरक्षक, वेदसार, सर्वान्तर्यामी एवं रहस्यरूप हैं।[२] आळवारों का मत है कि भगवान विष्णु (नारायण) ने साधुओं की रक्षा, दुष्कृतों के विनाश तथा जीवराशियों के उद्धार के लिए राम, कृष्ण, नृसिंह आदि का अवतार लिया। आळवारों के प्रबन्धम् में भगवान नारायण के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का वर्णन मिलता है; किन्तु विशेष रूप से उनके उपास्य श्रीकृष्ण रहे हैं और उन्होंने श्रीकृष्ण की अन्यान्य लीलाओं, उनकी अलौकिक रूप माधुरी, उनकी रासलीला के समानांतर लीला[३] आदि का व्यापक चित्रण किया है। कृष्ण सम्बन्धी उनके भावाविष्ट वर्णनों में बालकृष्ण एवं किशोर कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण का प्रमुख स्थान है।[४]

आळवारों ने भक्ति को ही ज्ञान एवं योग से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। कुलशेखराळ्वार ने कहा है, "हे भगवान्! मैं स्वर्ग की भी कामना नहीं करता; मात्र तेरी भक्ति करते रहने की मेरी कामना है।"[५] वस्तुतः आळ्वारों ने भक्ति को साधन के रूप में नहीं, वरन् साध्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके काव्य में भक्ति के समस्त तत्वों का, विशेषकर नाम-संकीर्तन, अर्चन, ध्यान आदि का महत्व स्थापित करते हुए शरणागति अर्थात् प्रपत्तिमयी भक्ति की सर्वोत्कृष्टता को प्रतिष्ठित किया गया है।[६] आळ्वारों ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति के नवविध रूपों का नाना प्रकार से विश्लेषण किया है। आळ्वार काव्य 'प्रबन्धम्' भक्ति का सार है; वह भक्ति का लक्ष्यग्रंथ है और उसके माध्यम से सारे तमिल प्रदेश में नारायण भक्ति, विशेषकर कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा बहने लगी जिसमें निमज्जित होकर संपूर्ण लोक जीवन लोकोत्तरानन्द की अनुभूति करने लगा। आळ्वार भक्तों ने विष्णु भक्ति, प्रकारान्तर से कृष्ण भक्ति के लिए समस्त जातियों को अधिकारी घोषित किया और भगवद् भक्ति के मार्ग में सवर्ण-अवर्ण का—ऊँच-नीच का कोई अंतर नहीं देखा। आळवारों में से तिरुमळिशै आळ्वार, तिरुप्पाणाळ्वार और तिरुमंगै आळ्वार स्वयं अवर्ण या निम्न जाति के थे।[७] फिर भी वे अपनी भक्ति की असाधारणता के कारण तमिल समाज में परम पूज्य माने जाते थे। तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार ने यहाँ तक घोषणा की है," यदि

---

१. Dr. I. K. Iyengar, History of Tirupati, P. 151-152
२. नम्माळ्वार, तिरुवाय् मोळि १।१०।२, ३।१।३, ६, ७।
३. कुलशेखराळ्वार, पेरुमाळ् तिरुमोळि १-१०।
४ प्राचीन तमिल प्रदेश में इस लीला को 'कुरवैल कूत्तु' कहा जाता था। देखिए 'Krishna in Enoly Tamil Literature, V. R. R. Dikshitave, Indian Culture Vol IV (1937-38), P. 267-270
५. विशेष द्रष्टव्य : नम्माळ्वार-तिरुवाय् मोळि और आण्डाळ् तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोळि।
६. पेरुमाळ् तिरुमोळि, ४ ६। ७. तिरुमंगै आळ्वार, पेरिय तिरुमोळि।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नावे !'[१] अर्थात् पांडवों का दूत बन कर कौरवों के पास जो कृष्ण गए थे उनकी स्तुति न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? 'नमो नारायणाय' का मंत्रोच्चारण न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? उसी काव्य का एक दूसरा प्रसंग उल्लेखनीय है। जब चेर नरेश सती कण्णकी के मंदिर के लिए हिमालय से प्रस्तर लाने के उद्देश्य से उत्तर भारत की यात्रा को निकलते हैं तब तिरुवनंतपुरम के अनंत पद्मनाभ मंदिर का प्रसाद लांकर कुछ लोग चेर नरेश को प्रदान करते हैं और चेर नरेश उसे अपने कंधे पर धारण करते हैं।[२] इन साहित्यिक आधारों से यह स्पष्ट होता है कि तमिल के संघ साहित्य काल और उसके पहले से ही तमिल प्रदेश में विष्णु उपासना पर्याप्त प्रचार में थी, भागवत धर्म सम्बन्धी विभिन्न पुराणों का जन समाज में अत्यंत समादृत स्थान था, विभिन्न पूजा-विधियों के अनुसार विष्णु मंदिरों में उपासना होती थी और जन सामान्य 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र का उच्चारण बड़ी श्रद्धा-निष्ठा के साथ करता था।

प्राचीन तमिल साहित्य के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राचीन काल में तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों में वैदिक परम्परा में आगम-विहित विधियों का पालन करते हुए पूजा-उपासना की जाती थी। शिलप्पधिकारम में पुकार नगर के विष्णु मंदिर में वेदविहित पद्धति में यज्ञादि विधान कर के ब्रह्मा, विष्णु, बलराम आदि की उपासना किए जाने का उल्लेख है।[३] संघकालीन काव्य संकलन पदिट्रुप्पत्तु में तिरुवनन्तपुरम के अनन्त पद्मनाभ स्वामी मंदिर में ऊँची ध्वनि में भगवान विष्णु का नाम संकीर्तन करते हुए भक्त लोगों द्वारा भगवान की आराधना किए जाने का विस्तृत वर्णन मिलता है।[४] आळवार भक्तों में प्रथम आळवार कहलाने वाले पोय्गै आळवार ने (पाँचवीं शती) भगवान श्री नारायण की विविध उपासना-पद्धतियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि उनकी उपासना पुष्पों, यज्ञादि वैदिक क्रियाओं, सामान्य सेवा प्रणालियों, मंत्रोच्चारण आदि से की जाए और नाम-संकीर्तन द्वारा उनकी स्तुति की जाए तो वह भी पर्याप्त है।[५] उनकी कृति में तिरुपति, तिरुवे: का, तिरुक्कोविलूर आदि तीन प्रमुख वैष्णव स्थलों का भी उल्लेख है।[६] उनकी कृति में 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र की प्रशस्ति गायी गयी है और कहा गया है कि अमर परम पद प्राप्ति का सरलतम साधन उक्त मंत्र का उच्चारण है।[७] इससे यह स्पष्ट है कि समग्र तमिल प्रदेश में अत्यंत प्राचीन काल में सामूहिक सेवा-विधान, वेदागम विहित उपासना पद्धति, पुष्पाराधन, नामसंकीर्तन, नारायण मंत्रोच्चारण, ज्ञान-साधना आदि का पर्याप्त प्रचार था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों की सेवा-पद्धति वैष्णव आगमों के आधार पर थी। परवर्ती काल में रामानुजाचार्य ने पांचरात्र आगम का अनुसरण कर तमिल प्रदेश के वैष्णव मंदिरों की सेवा-पद्धति को व्यवस्थित करने का प्रयास किया।

किन्तु रामानुज के बहुत पहले से तमिल प्रदेश के लोक जीवन में विष्णु भक्ति, विशेषकर उनके राम, कृष्ण आदि अवतारों की भक्ति की धारा प्रवाहित होती आ रही थी। संघकालीन और संघोत्तरकालीन साहित्य इस बात के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि जन समाज में भागवतीय विष्णु भक्ति तथा अवतारो-

---

१. शिलप्पधिकारम, आय्च्चियर कुरवै, पद १४;
२. वही, काल् कोट् कादै, पद ८।
३. वही, इन्दिर विलवु ऊर एडुत्त कादै, पंक्ति १७५।
४. पदिट्रुप्पत्तु, चतुर्थ दश श्लोक का पहला पद।
५. मुदल् तिरुवन्तादि, पद ७०। ६. वही, पद ७७। ७. वही, पद ९५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पासना की पद्धति बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। तदनन्तर विष्णु भक्ति, प्रमुख रूप से राम-कृष्ण भक्ति की परम्परा की जन समाज में वैष्णव भक्त आळवार कवियों की रचनाओं के द्वारा प्रतिष्ठा होने लगी। तमिल प्रदेश के बारह आळवार भक्तों ने वेद, पुराण आदि का आधार ग्रहण कर विशेष रूप से कृष्ण भक्ति को लोक जीवन में प्रतिष्ठित किया। आळवारों ने भी एक परब्रह्म की अखण्ड शक्ति का वर्णन किया है। उनके अनुसार उसका नाम विष्णु है और ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी उसी के अंश हैं।[१] वे ही सर्वगुणसंपन्न, सर्वज्ञानी, सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता, सर्वलोकरक्षक, वेदसार, सर्वान्तर्यामी एवं रहस्यरूप हैं।[२] आळवारों का मत है कि भगवान विष्णु (नारायण) ने साधुओं की रक्षा, दुष्कृतों के विनाश तथा जीवराशियों के उद्धार के लिए राम, कृष्ण, नृसिंह आदि का अवतार लिया। आळवारों के प्रबन्धम् में भगवान नारायण के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का वर्णन मिलता है; किन्तु विशेष रूप से उनके उपास्य श्रीकृष्ण रहे हैं और उन्होंने श्रीकृष्ण की अन्यान्य लीलाओं, उनकी अलौकिक रूप माधुरी, उनकी रासलीला के समानांतर लीला[३] आदि का व्यापक चित्रण किया है। कृष्ण सम्बन्धी उनके भावाविष्ट वर्णनों में बालकृष्ण एवं किशोर कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण का प्रमुख स्थान है।[४]

आळवारों ने भक्ति को ही ज्ञान एवं योग से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। कुलशेखराळ्वार ने कहा है, "हे भगवान्! मैं स्वर्ग की भी कामना नहीं करता; मात्र तेरी भक्ति करते रहने की मेरी कामना है।"[५] वस्तुतः आळ्वारों ने भक्ति को साधन के रूप में नहीं, वरन् साध्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके काव्य में भक्ति के समस्त तत्वों का, विशेषकर नाम-संकीर्तन, अर्चन, ध्यान आदि का महत्व स्थापित करते हुए शरणागति अर्थात् प्रपत्तिमयी भक्ति की सर्वोत्कृष्टता को प्रतिष्ठित किया गया है।[६] आळ्वारों ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति के नवविध रूपों का नाना प्रकार से विश्लेषण किया है। आळ्वार काव्य 'प्रबन्धम्' भक्ति का सार है; वह भक्ति का लक्ष्यग्रंथ है और उसके माध्यम से सारे तमिल प्रदेश में नारायण भक्ति, विशेषकर कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा बहने लगी जिसमें निमज्जित होकर संपूर्ण लोक जीवन लोकोत्तरानन्द की अनुभूति करने लगा। आळ्वार भक्तों ने विष्णु भक्ति, प्रकारान्तर से कृष्ण भक्ति के लिए समस्त जातियों को अधिकारी घोषित किया और भगवद् भक्ति के मार्ग में सवर्ण-अवर्ण का—ऊँच-नीच का कोई अंतर नहीं देखा। आळवारों में से तिरुमळिशै आळ्वार, तिरुप्पाणाळ्वार और तिरुमंगै आळ्वार स्वयं अवर्ण या निम्न जाति के थे।[७] फिर भी वे अपनी भक्ति की असाधारणता के कारण तमिल समाज में परम पूज्य माने जाते थे। तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार ने यहाँ तक घोषणा की है," यदि

---

१. Dr. I. K. Iyengar, History of Tirupati, P. 151-152

२. नम्माळ्वार, तिरुवाय् मोळि १।१०।२, ३।१।३, ६, ७।

३. कुलशेखराळ्वार, पेरुमाळ् तिरुमोळि १-१०।

४ प्राचीन तमिल प्रदेश में इस लीला को 'कुरवैल कूत्तु' कहा जाता था। देखिए 'Krishna in Enoly Tamil Literature, V. R. R. Dikshitave, Indian Culture Vol IV (1937-38), P. 267-270

५. विशेष द्रष्टव्य : नम्माळ्वार-तिरुवाय् मोळि और आण्डाळ् तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोळि।

६. पेरुमाळ् तिरुमोळि, ४ ६। ७. तिरुमंगै आळ्वार, पेरिय तिरुमोळि।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नावे !'[१] अर्थात् पांडवों का दूत बन कर कौरवों के पास जो कृष्ण गए थे उनकी स्तुति न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? 'नमो नारायणाय' का मंत्रोच्चारण न करने वाली जिह्वा भी कोई जिह्वा है? उसी काव्य का एक दूसरा प्रसंग उल्लेखनीय है। जब चेर नरेश सती कण्णकी के मंदिर के लिए हिमालय से प्रस्तर लाने के उद्देश्य से उत्तर भारत की यात्रा को निकलते हैं तब तिरुवनंतपुरम के अनंत पद्मनाभ मंदिर का प्रसाद लांकर कुछ लोग चेर नरेश को प्रदान करते हैं और चेर नरेश उसे अपने कंधे पर धारण करते हैं।[२] इन साहित्यिक आधारों से यह स्पष्ट होता है कि तमिल के संघ साहित्य काल और उसके पहले से ही तमिल प्रदेश में विष्णु उपासना पर्याप्त प्रचार में थी, भागवत धर्म सम्बन्धी विभिन्न पुराणों का जन समाज में अत्यंत समादृत स्थान था, विभिन्न पूजा-विधियों के अनुसार विष्णु मंदिरों में उपासना होती थी और जन सामान्य 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र का उच्चारण बड़ी श्रद्धा-निष्ठा के साथ करता था।

प्राचीन तमिल साहित्य के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राचीन काल में तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों में वैदिक परम्परा में आगम-विहित विधियों का पालन करते हुए पूजा-उपासना की जाती थी। शिलप्पधिकारम में पुकार नगर के विष्णु मंदिर में वेदविहित पद्धति में यज्ञादि विधान कर के ब्रह्मा, विष्णु, बलराम आदि की उपासना किए जाने का उल्लेख है।[३] संघकालीन काव्य संकलन पदिट्रुप्पत्तु में तिरुवनन्तपुरम के अनन्त पद्मनाभ स्वामी मंदिर में ऊँची ध्वनि में भगवान विष्णु का नाम संकीर्तन करते हुए भक्त लोगों द्वारा भगवान की आराधना किए जाने का विस्तृत वर्णन मिलता है।[४] आळवार भक्तों में प्रथम आळवार कहलाने वाले पोय्गै आळवार ने (पाँचवीं शती) भगवान श्री नारायण की विविध उपासना-पद्धतियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि उनकी उपासना पुष्पों, यज्ञादि वैदिक क्रियाओं, सामान्य सेवा प्रणालियों, मंत्रोच्चारण आदि से की जाए और नाम-संकीर्तन द्वारा उनकी स्तुति की जाए तो वह भी पर्याप्त है।[५] उनकी कृति में तिरुपति, तिरुवे: का, तिरुक्कोविलूर आदि तीन प्रमुख वैष्णव स्थलों का भी उल्लेख है।[६] उनकी कृति में 'ओम् नमो नारायणाय' मंत्र की प्रशस्ति गायी गयी है और कहा गया है कि अमर परम पद प्राप्ति का सरलतम साधन उक्त मंत्र का उच्चारण है।[७] इससे यह स्पष्ट है कि समग्र तमिल प्रदेश में अत्यंत प्राचीन काल में सामूहिक सेवा-विधान, वेदागम विहित उपासना पद्धति, पुष्पाराधन, नामसंकीर्तन, नारायण मंत्रोच्चारण, ज्ञान-साधना आदि का पर्याप्त प्रचार था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों की सेवा-पद्धति वैष्णव आगमों के आधार पर थी। परवर्ती काल में रामानुजाचार्य ने पांचरात्र आगम का अनुसरण कर तमिल प्रदेश के वैष्णव मंदिरों की सेवा-पद्धति को व्यवस्थित करने का प्रयास किया।

किन्तु रामानुज के बहुत पहले से तमिल प्रदेश के लोक जीवन में विष्णु भक्ति, विशेषकर उनके राम, कृष्ण आदि अवतारों की भक्ति की धारा प्रवाहित होती आ रही थी। संघकालीन और संघोत्तरकालीन साहित्य इस बात के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि जन समाज में भागवतीय विष्णु भक्ति तथा अवतारो-

---

१. शिलप्पधिकारम, आय्च्चियर कुरवै, पद १४;
२. वही, काल् कोट् कादै, पद ८।
३. वही, इन्दिर विलवु ऊर एडुत्त कादै, पंक्ति १७५।
४. पदिट्रुप्पत्तु, चतुर्थ दश श्लोक का पहला पद।
५. मुदल् तिरुवन्तादि, पद ७०। ६. वही, पद ७७। ७. वही, पद ९५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पासना की पद्धति बहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। तदनन्तर विष्णु भक्ति, प्रमुख रूप से राम-कृष्ण भक्ति की परम्परा की जन समाज में वैष्णव भक्त आळवार कवियों की रचनाओं के द्वारा प्रतिष्ठा होने लगी। तमिल प्रदेश के बारह आळवार भक्तों ने वेद, पुराण आदि का आधार ग्रहण कर विशेष रूप से कृष्ण भक्ति को लोक जीवन में प्रतिष्ठित किया। आळवारों ने भी एक परब्रह्म की अखण्ड शक्ति का वर्णन किया है। उनके अनुसार उसका नाम विष्णु है और ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी उसी के अंश हैं।[१] वे ही सर्वगुणसंपन्न, सर्वज्ञानी, सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता, सर्वलोकरक्षक, वेदसार, सर्वान्तर्यामी एवं रहस्यरूप हैं।[२] आळवारों का मत है कि भगवान विष्णु (नारायण) ने साधुओं की रक्षा, दुष्कृतों के विनाश तथा जीवराशियों के उद्धार के लिए राम, कृष्ण, नृसिंह आदि का अवतार लिया। आळवारों के प्रबन्धम् में भगवान नारायण के विभिन्न अवतारों की लीलाओं का वर्णन मिलता है; किन्तु विशेष रूप से उनके उपास्य श्रीकृष्ण रहे हैं और उन्होंने श्रीकृष्ण की अन्यान्य लीलाओं, उनकी अलौकिक रूप माधुरी, उनकी रासलीला के समानांतर लीला[३] आदि का व्यापक चित्रण किया है। कृष्ण सम्बन्धी उनके भावाविष्ट वर्णनों में बालकृष्ण एवं किशोर कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण का प्रमुख स्थान है।[४]

आळवारों ने भक्ति को ही ज्ञान एवं योग से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। कुलशेखराळ्वार ने कहा है, "हे भगवान्! मैं स्वर्ग की भी कामना नहीं करता; मात्र तेरी भक्ति करते रहने की मेरी कामना है।"[५] वस्तुतः आळ्वारों ने भक्ति को साधन के रूप में नहीं, वरन् साध्य के रूप में स्वीकार किया है। उनके काव्य में भक्ति के समस्त तत्वों का, विशेषकर नाम-संकीर्तन, अर्चन, ध्यान आदि का महत्व स्थापित करते हुए शरणागति अर्थात् प्रपत्तिमयी भक्ति की सर्वोत्कृष्टता को प्रतिष्ठित किया गया है।[६] आळ्वारों ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति के नवविध रूपों का नाना प्रकार से विश्लेषण किया है। आळ्वार काव्य 'प्रबन्धम्' भक्ति का सार है; वह भक्ति का लक्ष्यग्रंथ है और उसके माध्यम से सारे तमिल प्रदेश में नारायण भक्ति, विशेषकर कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा बहने लगी जिसमें निमज्जित होकर संपूर्ण लोक जीवन लोकोत्तरानन्द की अनुभूति करने लगा। आळ्वार भक्तों ने विष्णु भक्ति, प्रकारान्तर से कृष्ण भक्ति के लिए समस्त जातियों को अधिकारी घोषित किया और भगवद् भक्ति के मार्ग में सवर्ण-अवर्ण का—ऊँच-नीच का कोई अंतर नहीं देखा। आळवारों में से तिरुमळिशै आळ्वार, तिरुप्पाणाळ्वार और तिरुमंगै आळ्वार स्वयं अवर्ण या निम्न जाति के थे।[७] फिर भी वे अपनी भक्ति की असाधारणता के कारण तमिल समाज में परम पूज्य माने जाते थे। तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार ने यहाँ तक घोषणा की है," यदि

---

१. Dr. I. K. Iyengar, History of Tirupati, P. 151-152
२. नम्माळ्वार, तिरुवाय् मोळि १।१०।२, ३।१।३, ६, ७।
३. कुलशेखराळ्वार, पेरुमाळ् तिरुमोळि १-१०।
४ प्राचीन तमिल प्रदेश में इस लीला को 'कुरवैल कूत्तु' कहा जाता था। देखिए 'Krishna in Enoly Tamil Literature, V. R. R. Dikshitave, Indian Culture Vol IV (1937-38), P. 267-270
५. विशेष द्रष्टव्य : नम्माळ्वार-तिरुवाय् मोळि और आण्डाळ् तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोळि।
६. पेरुमाळ् तिरुमोळि, ४ ६। ७. तिरुमंगै आळ्वार, पेरिय तिरुमोळि।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निम्न जाति का कोई व्यक्ति भगवान का दास भक्त हो तो चतुर्वेदों के अध्येता ब्राह्मणों का धर्म हैं उसका सेवन करना, उसको दीक्षा देना और उसकी विशेषता को ग्रहण करना। यदि ब्राह्मण वर्ग का कोई भी व्यक्ति ऐसे भगवद् भक्तों का तिरस्कार करे तो वह चांडाल हो जाएगा।"[१] भक्ति की इस सहजता और सर्वग्राह्यता का गंभीर प्रभाव लोक जीवन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। उपर्युक्त उद्धरण से यह भी स्पष्ट होता है कि आळवारों के विचारानुसार भगवद्भक्तों की सेवा भगवान की सेवा का ही एक अंग है। परवर्ती रामानुज प्रतिपादित प्रपत्तिवाद पर आऴवारों के प्रबन्धम् के प्रपत्ति सिद्धांत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा और रामानुज ने भक्ति मार्ग में जातीय विषमताओं का तिरस्कार कर सब को उस मार्ग का अधिकारी घोषित करने की जो क्रांति मचायी वह भी आऴवारों के आदर्श के प्रभाव का ही परिणाम था। आऴवारों के पश्चात् तमिल प्रदेश में वैष्णव आचार्यों की जो परम्परा चली उसके प्रथम आचार्य नाथमुनि आऴवारों के प्रबन्धम् साहित्य के महत्व एवं गौरव के उद्घोषक थे और उन्होंने ही संपूर्ण प्रबन्धम् साहित्य का संग्रह कर श्रीरंगम् के मंदिर में उसके अध्ययन, अध्यापन तथा गायन की व्यवस्था की। यह तथ्य भी स्मरणीय है कि नाथमुनि ने ही आऴवारों के पदों के गायन के लिए वेदों के समान एक विशिष्ट परिपाटी की भी आयोजना की। वस्तुतः विशिष्टाद्वैती सिद्धांत के परिचायक प्रथम ग्रंथ के रूप में स्वीकृत उनकी कृति 'न्याय तत्व' के प्रतिपाद्य तत्व का मौलिक आधार प्रबन्धम् साहित्य ही था। नाथमुनि के बाद आने वाले आचार्य यामुन अथवा आऴवन्दार ने भी आऴवारों के प्रबन्धम् के व्यापक प्रचार की व्यवस्था की और उसे सुदृढ़ किया। वास्तव में नाथमुनि, यामुनाचार्य, रामानुज प्रभृति वैष्णव आचार्यों ने आऴवारों के प्रबन्धम् साहित्य के द्वारा प्रतिपादित विचारों तथा वेद, उपनिषद्, ब्रह्म सूत्रों आदि के तत्वों का समन्वय कर विशिष्टाद्वैतीय संप्रदाय की स्थापना की।

तमिल समाज पर आऴवार भक्तों के प्रबन्धम् साहित्य की भक्ति भावना का ऐसा लोकव्यापी प्रभाव पड़ा कि भक्त लोग उनके नारायणपरक तथा उनके अवतारों, विशेषकर कृष्णावतार से संबन्धित पदों को आत्मविभोर हो गाने लगे। श्रीरंगम, तिरुपति, तिरुवल्लिकेणी, तिरुवेः का, आऴवार तिरुनगरी, तिरुवनंतपुरम, कांचीपुरम आदि स्थलों के समस्त विष्णु मंदिरों में आऴवारों के पदों के गायन की एक विशेष परम्परा चल पड़ी। मंदिरों में पूजा-अवसरों तथा पर्व-उत्सवों के अवसरों पर प्रबन्धम् के पदों, विशेष रूप से कृष्ण भक्ति प्रधान तिरुवाय्मोळि, तिरुविरुत्तम् (नम्माऴवार रचित), तिरुप्पावै, नाच्चियार तिरुमोळि (आण्डाळ रचित) आदि कृतियों के मधुर पदों का नियमित पाठ होने लगा। जन-जीवन में तथा मंदिरों के उपासना क्रमों में जिन संदर्भों में पहले वेदपाठ होता था उन संदर्भों में वेदपाठ के साथ प्रबन्धम् साहित्य, विशेषकर उपर्युक्त कृष्णभक्ति प्रधान पदों की भी गायन-परम्परा चल पड़ी। मार्गशीर्ष मास के अध्ययनोत्सव अथवा मोक्षोत्सव के अवसर पर प्रबन्धम् साहित्य, विशेषकर नम्माऴवार कृत 'तिरुवाय्मोळि' के गायन की व्यवस्था तिरुमंगै आऴवार के समय से होने लगी। आज भी उक्त उत्सव के उन्नीसवें दिन नम्माऴवार की मूर्ति की विरहिणी नायिका के रूप में साज-सज्जा की जाती है और बीसवें दिन उस मूर्ति को भगवान् के चरणों में समर्पित किया जाता है। इसके मूल में कृष्ण के प्रति गोपी की तन्मयासक्ति, मिलन की उत्कंठा, विरह की विदग्धता और अंत में अश्रुमार्ग से शरणागति भाव से भगवन्मय हो जाने की स्थिति की कल्पना विद्यमान रहती है। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मास में सारे तमिल प्रदेश में प्रातःकाल के अवसर पर कृष्ण (श्रीरंग-

---

१. तिरुमालै, ४२, ४३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नाथ) की प्रियतमा आण्डाळ् के माधुर्यभक्तिपूर्ण 'तिरुप्पावै' और 'नाच्चियार तिरुमोळि' के पद अत्यंत श्रद्धाभाव से गाए जाते हैं। भगवान् विष्णु के मंदिर के नित्य सेवा अवसरों पर 'प्रबन्धम्' के पदों के गायन की प्रथा अत्यंत प्राचीन काल से आज तक चली आ रही है। आळ्वारों के भक्तिपूर्ण प्रबन्धम् साहित्य का महत्व स्वीकार करते हुए वैष्णव आचार्य श्री वेदान्त देशिक ने यह नियम बनाया कि भगवान की मूर्ति के जुलूस में आगे प्रबन्धम् के पाठ की व्यवस्था होनी चाहिए।[1] ऐसे जुलूस के अवसर पर भगवान की मूर्ति के आगे प्रबन्धम् के गायक और पीछे वेदपाठी जाते हैं जिसके मूल में यह भावना रहती है कि भगवान भक्तवाणी प्रबन्धम् का अनुसरण कर रहे हैं और वेद भगवान का अनुसरण कर रहे हैं।

यद्यपि तमिल प्रदेश के वैष्णव संप्रदाय के अधिकांश मंदिर भगवान नारायण के मंदिर हैं फिर भी मन्नार्कुडि, राजमन्नार कोविल, तिरुवल्लिकेणी आदि कतिपय प्रमुख स्थलों में बहुत प्राचीन काल से आज तक कृष्ण मंदिर विद्यमान हैं। रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित श्रीसंप्रदाय में विहित उपासना-पद्धतियों के अनुसार तमिल प्रदेश के प्रायः सभी विष्णुपरक मंदिरों में भगवान नारायण की उपासना की जाती है। फिर भी आळ्वार भक्तों के प्रभावाधिक्य के कारण लोक-जीवन में आळ्वार काल से लेकर अद्यावधि कृष्ण भक्ति तथा कृष्णोपासना की परम्परा चली आ रही है। प्रबन्धम् साहित्य के कृष्णभक्तिपरक ललित पदों का तमिल प्रदेश के लोकजीवन तथा लोकमानस पर ऐसा गंभीर प्रभाव पड़ा है कि भगवान नारायण की उपासना में भी कृष्णोपासना की ही कल्पना की जाती है और उपासना के अवसर पर प्रबन्धम् के कृष्णभक्तिपरक पदों का मुक्त कंठ से गायन किया जाता है। यद्यपि साम्प्रदायिक दृष्टि से श्रीसंप्रदाय ने नारायणोपासना का विधान किया है तथापि जनसामान्य के बीच भगवान नारायण के अवतारभूत श्रीकृष्ण की उपासना का भावनाश्रित स्वरूप अक्षुण्ण है। यही कारण है कि आज भी वहाँ के मंदिरों में श्रीकृष्ण के बालकृष्ण, गोपी-कृष्ण आदि स्वरूपों की लीलाओं से संबन्धित प्रबन्धम् के पदों का गायन ही नहीं, अपितु भावाविष्ट नृत्य एवं अभिनय की भी व्यवस्था की जाती है और भक्त लोग ऐसे पदों का निरन्तर पाठ भी किया करते हैं। इसका उदाहरण तमिल प्रदेश के विष्णु मंदिरों में मार्गशीर्ष मास में मनाया जाने वाला "आण्डाळ् उत्सव" है जिसमें न केवल आण्डाळ् के उन गीतों के गायन, अभिनय आदि का ही आयोजन किया जाता है जिनमें प्रियतम भगवान कृष्ण के प्रति प्रेयसी आण्डाळ् के प्रेम भाव की गंभीर अभिव्यक्ति हुई है, विरह की विदग्धता तथा मिलन की तीव्र उत्कंठा का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है और साथ ही प्रिया-प्रियतम के स्वप्न-मिलन तक की दशाओं का मार्मिक प्रतिपादन हुआ है, अपितु उत्सव के अन्तिम दिन में नायिका आण्डाळ् और नायक भगवान श्रीकृष्ण का विवाह भी कराया जाता है।

वस्तुतः अत्यंत प्राचीन काल से शान्त, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भक्ति से ओतप्रोत कृष्णोपासना प्रधान एक लोक-संप्रदाय की धारा तमिल प्रदेश के लोक-जीवन में प्रवाहित होती आ रही थी। इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण ईसा पूर्व के संघकालीन तमिल साहित्य में प्राप्त होते हैं। बाद में उक्त धारा को वैष्णव भक्त आळ्वारों के समय में तीव्र गति प्राप्त हुई और तमिल समाज के व्यावहारिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर अद्यावधि उसका प्रभाव अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

---

१. वेदान्त देशिकाचार्य, पादुकासहस्रम्।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कविवर 'उपाध्याय', 'गुप्त' एवं 'प्रसाद' का ब्रजभाषा काव्य

कु० नरेश अरोड़ा, एम० ए०

यद्यपि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री मैथिलीशरण गुप्त एवं श्री जयशंकर प्रसाद का नाम खड़ी बोली के उन्नायकों एवं पक्षपोषकों की अग्रपंक्ति में परिगणित किया जाता है तदपि अपने कविजीवन की ऊषा वेला में उनका झुकाव युगप्रवृत्ति के कारण ब्रजभाषा में रचना करने की ओर ही था। ब्रजभाषा अपने सौरस्य प्रसाद और आमोद से समग्र देश को आपूरित कर चुकी थी और उत्तर भारत तो उसमें आकण्ठ निमग्न हो चुका था। वह साहित्य रसिकों की प्राणशक्ति थी, भक्ति रीति नीति और लोक अभिरुचि का साहित्य ब्रजवाणी में व्यक्त हुआ था; उस युग में ब्रजभाषा में काव्य सर्जना करने का आशय युग धर्म को मान कर परम्परा विहित एवं शिष्ट परिग्रहीत कार्य करना था। श्री हरिऔध, गुप्त एवं प्रसाद ने भी उसी परिपाटी का अनुसरण किया और रचनाएं ब्रजभाषा में कीं। उनकी ब्रजभाषा रचनाओं का विहंगावलोकन नीचे की पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा रचना प्रभूत मात्रा में की। उनका रस कलश तो ब्रजभाषा के माधुर्य से छलका पड़ता है। इस प्रसंग में उनकी अल्पज्ञात ब्रजभाषा रचनाओं का अल्प परिचय दिया जा रहा है।

हरिऔध जी की प्रारंभिक रचना रसिक रहस्य (अन्य नाम कबीर कुंडल : रचना काल १८७८-७९) ब्रजभाषा में लिखी गई है। इसमें कबीर के ३३ दोहों पर ७५ कुंडलियाँ हैं। उदाहरणार्थ एक कुंडली प्रस्तुत है—

"सब आयो इस एक में डार पात फल फूल।
कबिरा पाछे का रहा, गहि पकरा जिन मूल॥
गहि पकरा जिन मूल कह्यों जाने मन का ही।
इन्द्रिन गहिवे हेत होत ताको श्रम नांही॥
है सेयो 'हरिऔध' कृस्न पद पंकज को जब।
अहै कहा परवाह, जो न हम सेयौ सुरसब॥"

श्रीकृष्ण शतक (१८८२) में १२० कृष्णपरक दोहे हैं।

सुत धन दारा रूप बल, विद्या चाहौं, नाहि।
ब्रज रंजन चाहो सदा, पावन पद रज काहि॥

उपदेश कुसुम (१८८७) शेखसादी कृत गुलिस्ताँ के आठवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद है इसमें पद्य ब्रजभाषा में हैं और गद्य खड़ी बोली में है। पद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"बसन बीच सुंदर नवल, कितनो तन दरसाय।
जरो दूबरो कूबरो, उघरे बसन लखाय॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेम प्रपंच (१८८८) की अधिकांश कविताएँ 'फिसाना अजायब' का अनुवाद है। कुछ कविताएँ मौलिक भी हैं।

दोहा :

"ललकौंहे लोचन किए, कलपौंहे रतिमार।
अलि उकसौंहे उरज, की सोहै सरस बहार॥"

सोरठा :

"अलि अवली की चाल, ललित गुलाब प्रसून पै।
लपटी अलकें बाल, किधौं लाल के गाल पै॥"
"गरबीली वह बाल, चंचल उताल चलि।
गई लपेटि गुलाल, अरी लाल के गाल सों॥"

प्रेमाम्बु प्रवाह (१८९९) गोपियों की कृष्ण के प्रति उक्तियाँ हैं, इसमें ४२ सवैये, ३० कवित्त तथा ८ पद हैं। एक सवैया देखिए—

"पातक ताके पराहिं सबै, पथ प्रेम को लागत है जेहि प्यारो।
प्यास पियूख हूँ की न तिनैं, जिनको हरिनाम को होत सहारो॥
ताप तिलोक की कौन कथा, 'हरिऔध' है जो प्रभु आप हमारो।
पावन नीच अपावन हूँ करै, गोपिन को अपनावन हारो॥"

प्रेमाम्बु वारिधि (१८९९) विज्ञों के विनोदार्थ और आन्तरिक तृप्ति के लिए लिखे गए ७५ पदों का संग्रह है। प्रतिमा पूजन विषयक हरिऔध जी का मत द्रष्टव्य है—

"कहा प्रतिमा पूजन में दोख।
पढ़ि नमाज मसजिद में मुल्ला लहत जो संतोख।
गिरजा बैठि पादरी पावत पढ़ि किताब जो तोख॥
भजन गाइ आरज आश्रम जो पावत शांति अदोख।
प्रतिमा पूजि लहत का हिंदू तासो कम परितोख॥"

प्रेमाम्बु प्रस्रवण (१८९९) में करुण और शान्त रस के कवित्त हैं। उदाहरण—

प्रगट प्रताप पुहुमी में परिपूरि रह्यो
पाहन में पोहमें परीन में परैया में
गिरि में गुहान में गोविन्द गुण सिंधु रम्यो
गगन गजान में गुमान के गिरैया।
हीरक में हरा में 'हरिऔध' हूँ में
हरि हरिनीन में हियान के हिरैया में।
चाँदनी में चंद में चामीकर हूँ चंदन में
चोर में चकोर में चिराक में चिरैया में॥

काव्योपवन (१९०७) में २४ शीर्षकों पर पद्य रचना की गई है। यह रचना संग्रह उस समय में लिखा गया था जब कि ब्रजभाषा के विरोध में पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे जा रहे थे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कविवर 'उपाध्याय', 'गुप्त' एवं 'प्रसाद' का ब्रजभाषा काव्य

कु० नरेश अरोड़ा, एम० ए०

यद्यपि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री मैथिलीशरण गुप्त एवं श्री जयशंकर प्रसाद का नाम खड़ी बोली के उन्नायकों एवं पक्षपोषकों की अग्रपंक्ति में परिगणित किया जाता है तदपि अपने कविजीवन की ऊषा वेला में उनका झुकाव युगप्रवृत्ति के कारण ब्रजभाषा में रचना करने की ओर ही था। ब्रजभाषा अपने सौरस्य प्रसाद और आमोद से समग्र देश को आपूरित कर चुकी थी और उत्तर भारत तो उसमें आकण्ठ निमग्न हो चुका था। वह साहित्य रसिकों की प्राणशक्ति थी, भक्ति रीति नीति और लोक अभिरुचि का साहित्य ब्रजवाणी में व्यक्त हुआ था; उस युग में ब्रजभाषा में काव्य सर्जना करने का आशय युग धर्म को मान कर परम्परा विहित एवं शिष्ट परिग्रहीत कार्य करना था। श्री हरिऔध, गुप्त एवं प्रसाद ने भी उसी परिपाटी का अनुसरण किया और रचनाएं ब्रजभाषा में कीं। उनकी ब्रजभाषा रचनाओं का विहंगावलोकन नीचे की पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा रचना प्रभूत मात्रा में की। उनका रस कलश तो ब्रजभाषा के माधुर्य से छलका पड़ता है। इस प्रसंग में उनकी अल्पज्ञात ब्रजभाषा रचनाओं का अल्प परिचय दिया जा रहा है।

हरिऔध जी की प्रारंभिक रचना रसिक रहस्य (अन्य नाम कबीर कुंडल : रचना काल १८७८-७९) ब्रजभाषा में लिखी गई है। इसमें कबीर के ३३ दोहों पर ७५ कुंडलियाँ हैं। उदाहरणार्थ एक कुंडली प्रस्तुत है—

"सब आयो इस एक में डार पात फल फूल।
कबिरा पाछे का रहा, गहि पकरा जिन मूल॥
गहि पकरा जिन मूल कह्यों जाने मन का ही।
इन्द्रिन गहिबे हेत होत ताको श्रम नांही॥
है सेयो 'हरिऔध' कृस्न पद पंकज को जब।
अहै कहा परवाह, जो न हम सेयौ सुरसब॥"

श्रीकृष्ण शतक (१८८२) में १२० कृष्णपरक दोहे हैं।

सुत धन दारा रूप बल, विद्या चाहौं, नाहि।
ब्रज रंजन चाहो सदा, पावन पद रज काहि॥

उपदेश कुसुम (१८८७) शेखशादी कृत गुलिस्ताँ के आठवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद है इसमें पद्य ब्रजभाषा में हैं और गद्य खड़ी बोली में है। पद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"बसन बीच सुंदर नवल, कितनो तन दरसाय।
जरो दूबरो कूबरो, उघरे बसन लखाय॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेम प्रपंच (१८८८) की अधिकांश कविताएँ 'फिसाना अजायब' का अनुवाद है। कुछ कविताएँ मौलिक भी हैं।

दोहा :

"ललकौंहे लोचन किए, कलपौंहे रतिमार।
अलि उकसौंहे उरज, की सोहै सरस बहार॥"

सोरठा :

"अलि अवली की चाल, ललित गुलाब प्रसून पै।
लपटी अलकें बाल, किधौं लाल के गाल पै॥"
"गरबीली वह बाल, चंचल उताल चलि।
गई लपेटि गुलाल, अरी लाल के गाल सों॥"

प्रेमाम्बु प्रवाह (१८९९) गोपियों की कृष्ण के प्रति उक्तियाँ हैं, इसमें ४२ सवैये, ३० कवित्त तथा ८ पद हैं। एक सवैया देखिए—

"पातक ताके पराहिं सबै, पथ प्रेम को लागत है जेहि प्यारो।
प्यास पियूख हूँ की न तिनैं, जिनको हरिनाम को होत सहारो॥
ताप तिलोक की कौन कथा, 'हरिऔध' है जो प्रभु आप हमारो।
पावन नीच अपावन हूँ करै, गोपिन को अपनावन हारो॥"

प्रेमाम्बु वारिधि (१८९९) विज्ञों के विनोदार्थ और आन्तरिक तृप्ति के लिए लिखे गए ७५ पदों का संग्रह है। प्रतिमा पूजन विषयक हरिऔध जी का मत द्रष्टव्य है—

"कहा प्रतिमा पूजन में दोख।
पढ़ि नमाज मसजिद में मुल्ला लहत जो संतोख।
गिरजा बैठि पादरी पावत पढ़ि किताब जो तोख॥
भजन गाइ आरज आश्रम जो पावत शांति अदोख।
प्रतिमा पूजि लहत का हिंदू तासो कम परितोख॥"

प्रेमाम्बु प्रस्रवण (१८९९) में करुण और शान्त रस के कवित्त हैं। उदाहरण—

प्रगट प्रताप पुहुमी में परिपूरि रह्यो
पाहन में पोहमें परीन में परैया में
गिरि में गुहान में गोविन्द गुण सिंधु रम्यो
गगन गजान में गुमान के गिरैया।
हीरक में हरा में 'हरिऔध' हूँ में
हरि हरिनीन में हियान के हिरैया में।
चाँदनी में चंद में चामीकर हूँ चंदन में
चोर में चकोर में चिराक में चिरैया में॥

काव्योपवन (१९०७) में २४ शीर्षकों पर पद्य रचना की गई है। यह रचना संग्रह उस समय में लिखा गया था जब कि ब्रजभाषा के विरोध में पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे जा रहे थे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और ब्रजभाषा का एकाधिकार साहित्य के क्षेत्र से हट रहा था। काशी कवि सभा विषयक एक कवित्त द्रष्टव्य है—

बीथिन में बार बागर बजारन में
विविध विनोद की बिसालता हूँ बिगरी।
पूरित प्रमोद पुंज पुलकि पसीजि चले
केते कवि कोविद प्रवीन पाइ पगरी।
'हरिऔध' काशी कवि सभा की विलोकि धूम
सफल भई है सेवा सारदा की सगरी।
धाई धाई इंदिरा लुगाई सी फिरत आज
बाजत बधाई चंद्रशेखर की नगरी॥

उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि हरिऔध जी की ब्रजभाषा सेवा श्लाघनीय है।

मैथिलीशरण गुप्त :—

वयस्कता की सीमा रेखा में पदार्पण करते ही गुप्त जी ने छन्द ज्ञान प्राप्त करके ब्रजभाषा में रचना करना प्रारम्भ कर दिया था। १९०१ से १९०५ की अवधि में गुप्त जी ने ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं। गुप्त जी की इस काल की ब्रजभाषा रचनाएँ 'वेंकटेश्वर समाचार'में, कलकत्ता के "वैश्योपकारक" में, तथा कन्नौज के "मोहिनी" में, मुद्रित हुई थीं। श्री गुप्त जी द्वारा कनकलता छाप से सर्वप्रथम लिखा गया छप्पय निम्न प्रकार है :—

"लखन आदि सब भ्रात और श्रुतिकीरत आदिक।
सुमरि राम सहसीय चित्त अति आनंद दायक।
जिनकी कृपा कटाक्ष रहत शेखर संहारक।
कमलासन जग रचक और नारायण पालक।
भज अरुण पद्मसम अति सुभग चरण सीय रघुपति भगति।
हिय 'कनकलता' अति अति हरष लख जन्म सकल हरिहर करत॥"

दुर्दशा निवेदन गुप्त जी की ब्रजभाषा रचना है। उन्होंने संस्कृत गणवृत्तों में "षटऋतु विहार" नामक रचना ब्रजभाषा में आरंभ की थी।

परिमार्जित सुमधुर एवं अलंकृत शैली में गुप्त जी की ब्रजभाषा कविता बड़ी मनोहर होती थी। एक छन्द नीचे दिया जा रहा है :—

"जग की गति सों अपनी गति को नित हेरत हैं पहचानत ना।
चकचोंधि गये जकिकें थकि कें टकि भूलि गए सुधि आनत ना॥
हम जात खिचे कितके कित हैं जब लौं हरि जू तुम तानत ना।
अपनो अपनो सपनो सबु है, सब जानत है मन मानत ना॥"

गुप्त जी ने कतिपय अन्योक्तियाँ भी ब्रजभाषा में लिखी थीं। एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :—

"रे काक जो पिकन संग करै विहार, रोकों न तोहि याहि तें करिकै प्रचार।
पै बोल बोल निज कर्कश शब्द, भारी नहीं तिन्हें उचित है है करिबो दुखारी।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

काक के मिस कवियों के साथ तथा कथित कवियों के गठवन्धन सम्वन्धी उक्त अन्योक्ति कितनी सटीक है। युग के प्रवाह ने मोड़ लिया और गुप्त जी का कवि खड़ी वोली में रम गया।

श्री जयशंकर प्रसाद :—

प्रसाद जी ने भी 'कलाधर' उपनाम से व्रजभाषा रचना की। प्रारम्भ में उन्होंने व्रजभाषा को ही काव्य का माध्यम वनाया था। प्रसाद जी की व्रजभाषा कविता की वानगी तो देखिए :—

"पात बिन कीन्हयों जिन्हें पतझर रोष करि
तिन सब द्रुमन सुमन पूर कीने तू।
शारद कुमोदिनी के विरह बिहाल अलि
सहकार मंजरी सों मोद भरि दीने तू।
नगर बनाली कोकिला की काकली सों भरयो,
सुखद 'प्रसाद' रस रंग केलि भीने तू।
छोह छरि लीने, मन औरे करि दीने,
रे वसन्त रस भीने, कौन मंत्र पढ़ दीने तू॥"

और भी—

भई ढीठ फिरें चल चंचल सी यह रीति नहीं इनकी है नई।
नई देखि मनोहरता कत हूँ, थिरता इनमें नहिं पाई गई॥
गई लाज सरूप सुधा चखिकें इनकी न तबौ कुटिलाई गई।
गई खोजत ठौर ही ठौर तुम्हें, अखियाँ अब तौ हरजाई भईं॥

"उर्वशी चम्पू" की निम्नलिखित कविता में प्रकृति प्रेम के दर्शन तो कीजिए :—

"विलसत सान्ध्य दिवाकर की किरनैं माला सी।
प्रकृति गले में जो खेलति है वन माला सी॥
तुंग लसैं गिरि शृंग भरयौ कानन तरुगन ते।
जिनके भुज में अरुझि पवन हू चलत जतन ते॥"

"नीरव प्रेम" में भी व्रजभाषा की छटा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

"प्रथम भाषण ज्यों अधरान में
रहत है तउ गूँजत प्रान में
तिमि कहौ तुम हूँ चुपधीर सो
विमल नेह कथान गँभीर सों
कछु कहौ नहिं पै कहिं जात हौ,
कछु लहौ नहिं पै लहिजात है।
कवि नियोजित सुन्दर कल्पना
जव धरै प्रतिमा छवि अल्पना॥"

वक्ष्यमाण तथ्यों के आधार पर सुस्पष्ट है कि खड़ी वोली कविता के आधार स्तम्भ कवियों ने व्रजभाषा के प्रति अनुरागवती भावना प्रदर्शित की और प्रारम्भ में उसे ही रचना का माध्यम बनाया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बीसलदेव रास में लोकतत्त्व

⊙

डॉ० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'

नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रास' हिन्दी साहित्य का आदि कालीन काव्य-ग्रंथ है। इसकी अनेक उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका रचना काल सं० १०७३ और सं० १३७७ के मध्य विभिन्न तिथियों में निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है।

नरपति नाल्ह वस्तुतः लोक कवि था। वह अधिक शिक्षित भी प्रतीत नहीं होता। इसीलिए उसके काव्य में कलात्मक सौन्दर्य, भाषा सौष्ठव एवं अलंकृत भाव व्यंजना का अभाव है। उसने लोक-रंजन के लिए इस प्रेम-कहानी को कहा या गाया है, जैसा कि उसने स्वयं ही कहा है—

"दूसरइ कड़वइ गणपति गाइ।
नवण करी नइ लागुं जी पाइ॥"[१]

तथा "नाल्ह रसायण रस भरि गाइ।"[२]

और "जूठडड कवित्त कहइ कुलहीण।
नाल्ह बरवाणइ बे कर जोड़ि॥"[३]

यही कारण है कि नरपति नाल्ह के बाद भी गायकों के कंठ में स्थान पाने के कारण इसमें सुविधानुसार पाठान्तर भी होता गया तथा छन्दों और कथांशों में भी वृद्धि होती रही, जिससे उसका मूल रूप उसी में लीन हो गया। लोक-कवि द्वारा लोक-रंजन के लिए गाई गई इस प्रेम-कहानी में इसीलिए लोकतत्त्वों का इतना आधिक्य है। अतः आदि काल के इस काव्य को हम लोक-काव्य की संज्ञा प्रदान करें, तो अनुपयुक्त न होगा।

'बीसलदेव रास" का कथानक ही लोक-कथा पर आधारित प्रतीत होता है। इसका नायक बीसलदेव एक ऐतिहासिक पुरुष है। इसलिए किसी विद्वान् ने उसे विग्रहराज तृतीय प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है, किसी ने विग्रहराज चतुर्थ। वास्तविकता यह है कि बीसलदेव, राजमती और भोज इन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों तथा कतिपय ऐतिहासिक स्थानों के उल्लेख के अतिरिक्त इस काव्य में कुछ भी ऐतिहासिक नहीं है। इसमें वर्णित घटनायें इतिहास से प्रमाणित नहीं होतीं तथा इसमें जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है, उनमें से कई स्थानों का तो विग्रहराज तृतीय के समय में अस्तित्व भी नहीं था और दहेज में दिये गये ये अनेक राज्य तो कभी भी राजा भोज के अधिकार में नहीं रहे। इसलिए इसके कथानक का आधार उस काल में प्रचलित कोई

---

१. बीसलदेव रास (सं० माताप्रसाद गुप्त), पृ० ८६।
२. वही पृष्ठ ८९।
३. वही पृष्ठ ८८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लोक-कथा ही है। जिस प्रकार उदयन, विक्रमादित्य, भोज और हाल को लेकर अनेक लोक-कथायें प्रचलित हैं, उसी प्रकार बीसलदेव के सम्बन्ध में भी यह कथा प्रचलित होगी, जिसे नरपति नाल्ह ने इस काव्य का आधार बनाया है। ऐसी ही ऐतिहासिक काव्य-कृतियों के सम्बन्ध में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है—"वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्तियों को पौराणिक या काल्पनिक कथा-नायक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी-शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है—जैसे राम, बुद्ध, कृष्ण आदि और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप करके निजंधरी कथाओं का आश्रय बना दिया गया है—जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल...। सब मिलाकर ऐतिहासिक काव्य काल्पनिक निजन्धरी कथानकों पर आश्रित काव्य से बहुत भिन्न नहीं होते।... भारतीय कवि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊँचाई तक ले जाना चाहता है।"[१] डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने भी कहा है—"ऐसी ऐतिहासिक कही जाने वाली कहानियाँ अपने मूल रूप में उतनी ही लोकाकर्षक और काल्पनिक होती हैं, जितनी सामान्य जन-जीवन की अन्य लोक-कथाएँ। इनमें केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम भर रहता है। इन नामों को लेकर लोक-कण्ठ इन्हें अपनी कल्पनागत एवं परम्परागत कथानक रूढ़ियों (मोटिफ़) में ढाल देता है।"[२] 'बीसलदेव' रास' ऐसा ही काव्य है। अतः इसको ऐतिहासिक काव्य न मानकर लोक-काव्य मानना चाहिए।

'बीसलदेव रास' के कथानक का गठन एवं विकास भी लोक-कथाओं के सदृश हुआ है। कवि ने लोक-कथाओं में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियों को अपनाया है।

लोक-कथाओं में नायक-नायिका के वियोग का कारण प्रायः अन्य नारी में चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण, वस्तु-दर्शन से उत्पन्न आसक्ति व्यंग्यपूर्ण ताना एवं अहं पर की गई चोट होती है। इस काव्य में अन्तिम कथानक रूढि अपनाई गई है। विवाह के तुरन्त बाद ही सुहागरात के दिन राजा बीसलदेव अपने वैभव के सम्बन्ध में गर्वोक्ति करता है कि "मेरे समान अन्य कोई भूपाल नहीं है, क्योंकि मेरे यहाँ साँभर से नमक निकलता है, मैं अजमेर में बैठा हुआ राज्य करता हूँ, किन्तु मेरे राज्य का विस्तार जैसलमेर तक है और मेरे यहाँ लाख घोड़ों पर जीन कसी जाती है।" रानी राजमती उसके इस अहं पर इस प्रकार चोट करती है:—

"गरब न करि हो सइंभरि वाल।
तो सरिखा अवर घणा रे भूआल॥
एक उड़ीसा कउ धणी।
× × ×
तिउं आं घरि उग्रहइ हीराकइ षांणि॥" —(बीसलदेव रास, पृष्ठ ११०)

बस राजा बीसलदेव उड़ीसा जाने का निश्चय कर लेता है। रानी अनेक अनुनय-विनय करती है, अपने हाव-भाव आदि से रिझाने का प्रयत्न करती है, ज्योतिषी के माध्यम से कुछ दिन रोक रखती है, जिससे सम्भवतः उसका मन उसकी यौवन-श्री में रम जाये तथा अपनी जिठानी द्वारा भी उसे समझाने का प्रयत्न करती है, किन्तु उसका निश्चय अटल रहता है और वह हीरों के लिए उड़ीसा की ओर प्रस्थान कर ही देता है।

---

१. हिन्दी साहित्य, पृ० ६८-७१—पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी।
२. पद्मावत में लोक तत्व—डा० रवीन्द्र 'भ्रमर', पृ० ६३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बीसलदेव रास में लोकतत्त्व

डॉ० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'

नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रास' हिन्दी साहित्य का आदि कालीन काव्य-ग्रंथ है। इसकी अनेक उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका रचना काल सं० १०७३ और सं० १३७७ के मध्य विभिन्न तिथियों में निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है।

नरपति नाल्ह वस्तुतः लोक कवि था। वह अधिक शिक्षित भी प्रतीत नहीं होता। इसीलिए उसके काव्य में कलात्मक सौन्दर्य, भाषा सौष्ठव एवं अलंकृत भाव व्यंजना का अभाव है। उसने लोक-रंजन के लिए इस प्रेम-कहानी को कहा या गाया है, जैसा कि उसने स्वयं ही कहा है—

"दूसरइ कड़वइ गणपति गाइ।
नवण करी नइ लागुं जी पाइ॥"[१]

तथा "नाल्ह रसायण रस भरि गाइ।"[२]

और "जूठडड कवित्त कहइ कुलहीण।
नाल्ह बरवाणइ वे कर जोड़ि॥"[३]

यही कारण है कि नरपति नाल्ह के बाद भी गायकों के कंठ में स्थान पाने के कारण इसमें सुविधानुसार पाठान्तर भी होता गया तथा छन्दों और कथांशों में भी वृद्धि होती रही, जिससे उसका मूल रूप उसी में लीन हो गया। लोक-कवि द्वारा लोक-रंजन के लिए गाई गई इस प्रेम-कहानी में इसीलिए लोकतत्त्वों का इतना आधिक्य है। अतः आदि काल के इस काव्य को हम लोक-काव्य की संज्ञा प्रदान करें, तो अनुपयुक्त न होगा।

'बीसलदेव रास" का कथानक ही लोक-कथा पर आधारित प्रतीत होता है। इसका नायक बीसलदेव एक ऐतिहासिक पुरुष है। इसलिए किसी विद्वान् ने उसे विग्रहराज तृतीय प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है, किसी ने विग्रहराज चतुर्थ। वास्तविकता यह है कि बीसलदेव, राजमती और भोज इन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों तथा कतिपय ऐतिहासिक स्थानों के उल्लेख के अतिरिक्त इस काव्य में कुछ भी ऐतिहासिक नहीं है। इसमें वर्णित घटनायें इतिहास से प्रमाणित नहीं होतीं तथा इसमें जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है, उनमें से कई स्थानों का तो विग्रहराज तृतीय के समय में अस्तित्व भी नहीं था और दहेज में दिये गये ये अनेक राज्य तो कभी भी राजा भोज के अधिकार में नहीं रहे। इसलिए इसके कथानक का आधार उस काल में प्रचलित कोई

---

१. बीसलदेव रास (सं० माताप्रसाद गुप्त), पृ० ८६।
२. वही पृष्ठ ८९।
३. वही पृष्ठ ८८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लोक-कथा ही है। जिस प्रकार उदयन, विक्रमादित्य, भोज और हाल को लेकर अनेक लोक-कथायें प्रचलित हैं, उसी प्रकार बीसलदेव के सम्बन्ध में भी यह कथा प्रचलित होगी, जिसे नरपति नाल्ह ने इस काव्य का आधार बनाया है। ऐसी ही ऐतिहासिक काव्य-कृतियों के सम्बन्ध में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है—"वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्तियों को पौराणिक या काल्पनिक कथा-नायक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी-शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है—जैसे राम, बुद्ध, कृष्ण आदि और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप करके निजंधरी कथाओं का आश्रय बना दिया गया है—जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल...। सब मिलाकर ऐतिहासिक काव्य काल्पनिक निजन्धरी कथानकों पर आश्रित काव्य से बहुत भिन्न नहीं होते।... भारतीय कवि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊँचाई तक ले जाना चाहता है।"[1] डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने भी कहा है—"ऐसी ऐतिहासिक कही जाने वाली कहानियाँ अपने मूल रूप में उतनी ही लोकाकर्षक और काल्पनिक होती हैं, जितनी सामान्य जन-जीवन की अन्य लोक-कथाएँ। इनमें केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम भर रहता है। इन नामों को लेकर लोक-कण्ठ इन्हें अपनी कल्पनागत एवं परम्परागत कथानक रूढ़ियों (मोटिफ़) में ढाल देता है।"[2] 'बीसलदेव' रास' ऐसा ही काव्य है। अतः इसको ऐतिहासिक काव्य न मानकर लोक-काव्य मानना चाहिए।

'बीसलदेव रास' के कथानक का गठन एवं विकास भी लोक-कथाओं के सदृश हुआ है। कवि ने लोक-कथाओं में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियों को अपनाया है।

लोक-कथाओं में नायक-नायिका के वियोग का कारण प्रायः अन्य नारी में चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण, वस्तु-दर्शन से उत्पन्न आसक्ति व्यंग्यपूर्ण ताना एवं अहं पर की गई चोट होती है। इस काव्य में अन्तिम कथानक रूढि अपनाई गई है। विवाह के तुरन्त बाद ही सुहागरात के दिन राजा बीसलदेव अपने वैभव के सम्बन्ध में गर्वोक्ति करता है कि "मेरे समान अन्य कोई भूपाल नहीं है, क्योंकि मेरे यहाँ साँभर से नमक निकलता है, मैं अजमेर में बैठा हुआ राज्य करता हूँ, किन्तु मेरे राज्य का विस्तार जैसलमेर तक है और मेरे यहाँ लाख घोड़ों पर जीन कसी जाती है।" रानी राजमती उसके इस अहं पर इस प्रकार चोट करती है:—

"गरब न करि हो सइंभरि वाल।
तो सरिखा अवर घणा रे भूआल॥
एक उड़ीसा कउ घणी।
× × ×
तिउं आं घरि उग्रहइ हीराकइ षांणि॥" —(बीसलदेव रास, पृष्ठ ११०)

बस राजा बीसलदेव उड़ीसा जाने का निश्चय कर लेता है। रानी अनेक अनुनय-विनय करती है, अपने हाव-भाव आदि से रिझाने का प्रयत्न करती है, ज्योतिषी के माध्यम से कुछ दिन रोक रखती है, जिससे सम्भवतः उसका मन उसकी यौवन-श्री में रम जाये तथा अपनी जिठानी द्वारा भी उसे समझाने का प्रयत्न करती है, किन्तु उसका निश्चय अटल रहता है और वह हीरों के लिए उड़ीसा की ओर प्रस्थान कर ही देता है।

---

१. हिन्दी साहित्य, पृ० ६८-७१—पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी।
२. पद्मावत में लोक तत्व—डा० रवीन्द्र 'भ्रमर', पृ० ६३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उड़ीसा-गमन से पूर्व भी कवि ने एक कथानक-रूढ़ि का प्रयोग किया है और वह है राजमती के पूर्व-भव का वृत्तान्त। उड़ीसा के वैभव का वर्णन करने पर राजा जिज्ञासा करता है कि "जिसका जन्म जैसलमेर में हुआ, जो परिणीत होकर अजमेर आ गई और जिसकी आयु अभी बारह बरस की है, उसे उड़ीसा के वैभव का ज्ञान कैसे हुआ ?"[१] रानी बताती है—"मैं पूर्व जन्म में हिरनी थी, वन-प्रदेशों में विचरण करती हुई एकादशी का निर्जला व्रत रखती थी, व्रत के ही किसी दिन एक आखेटक ने मेरा वाण से वध किया, जगन्नाथ के द्वार पर मेरा प्राणान्त हुआ, मृत्यु-समय शंख-चक्र-गदाधारी जगन्नाथ ने मुझे दर्शन दिया, मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझे पूर्व देश में जन्म न देना, क्योंकि वहाँ के लोग भक्ष्य-अभक्ष्य खा जाते हैं। फलतः मैं जैसलमेर में उत्पन्न हुई, पर मुझे पूर्व-जन्म का वृत्तान्त ज्ञात है।[२] मृत्यु के समय मारवाड़ में ही सुन्दरी कन्या के रूप में जन्म लेने का वरदान माँगती है :—

"जनम मांगिउं स्वामी मारू कइ देसि।
राजकुँवरि अनइ रूप असेसि।
रूप निरूपम मेदिनी॥
पहिरणइ लोवड़ी झीणइ रे लंकि।
आछी गोरी घण पातली।
अहर प्रवालीय नइ दाडिम दंत॥"[३]

उसी के अनुरूप वह पृथ्वी में अनुपम सुन्दरी के रूप में जन्म लेती है, जो तन्वंगी है, जिसकी कटि क्षीण है, जिसके अधर प्रवाल जैसे तथा दाँत दाड़िम के समान हैं।

नायिकाओं के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए प्रायः कुटनियों के प्रयोग की भी रूढ़ि रही है। कुटनियाँ नायिका को प्रेम-पथ से विचलित करने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु नायिका दृढ़ रहती है और उसका प्रेम और भी पुष्ट हो जाता है। 'बीसलदेव रास' में भी कुटनी राजमती के पास आती है और उसे फुसलाकर किसी अपूर्व मित्र से मिलाने का प्रलोभन देती है। उसकी बात सुनकर राजमती क्रोधित होकर उसकी पीठ पर पटला उठाकर मारती है तथा उसके प्रति इस प्रकार अपना आक्रोश व्यक्त करती है :—

"पेट फड़ावउं धारड कूटणी
कोकडं देवर अरु बडउ जेठ
काढ़उं जीभ जिण बोलियउ।
नाक सरीसा काटउं दूनिउ होठ"—बीसलदेव रास, पृ० १६६

कुटनी अपना सा मुंह लेकर चली जाती है। कुटनी का प्रयोग प्रायः प्रतिनायक अथवा नायिका के प्रति आकर्षित अन्य व्यक्ति उसे अपनी ओर उन्मुख करने के लिए करता है। 'बीसलदेव रास' में इस प्रकार का कुछ भी उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने इसका प्रयोग केवल रूढ़ि के परिपालनार्थ किया है।

कथानक-रूढ़ियों में किसी अद्भुत प्रदेश का वर्णन भी सम्मिलित है, जिसमें सब कुछ विचित्र ही होता

---

१. बीसलदेव रास, पृ० १११।
२. वही, पृष्ठ १११-११५।
३. वही, पृ० ११४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। प्राय: ऐसे प्रदेश में नायक या उसके जन भूल कर पहुंच जाते हैं तथा उस प्रदेश के अद्‌भुत क्रिया-कलाप को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। 'बीसलदेव रास' के कथानक में कवि को ऐसा कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए उसने इस रूढ़ि का प्रयोग उड़ीसावर्णन में ही कर लिया है। राजमती का सन्देशवाहक पण्डित उड़ीसा पहुँचकर देखता है :—

"जठइ मानिजइ बलद नइ हल वहइ गाइ।
मांड पीजइ कण राखिजइ।
तठइ लाल विहूणी बाजइ छइ घांटि।
नाहर चोर नवि लगाए बाटि॥"—बीसलदेव रास, पृ० १८२

वहाँ बैल की मान्यता है और गाय हल में जोती जाती है, लोग माँड पी जाते हैं और चावल छोड़ देते हैं, वहाँ बिना लटकन के ही घंटे बजते हैं तथा मार्ग में चोर और सिंह नहीं सताते हैं।

लोक-कथाओं में ऐसे सिद्ध पुरुषों की सिद्धि का भी वर्णन होता है, जो उनके बल से क्षण भर में ही इच्छित स्थान पर पहुँच जाते हैं तथा किसी को दिखाई नहीं देते। 'बीसलदेव रास' में भी ऐसे योगी का वर्णन है, जिसे गुटिका विद्या सिद्ध है। उसके बल से वह पलक मारने भर की देर में चाहे जिस देश में पहुँच सकता है।[१] राजा बीसलदेव अपने लौटने का समाचार रानी राजमती के पास इसी योगी द्वारा भेजता है, जो तुरन्त ही राजभवन में पहुँच जाता है।[२] बीसलदेव रास' की किसी-किसी हस्तलिखित प्रति में योगी के परकाय-प्रवेश तथा पक्षी होने आदि रूढ़ियों का भी उल्लेख किया गया है।[३]

सन्देशवाहकों के लिए सन्देश भेजने वाले की सहिदानी तथा सन्देश पाने वाले के अभिज्ञान का वर्णन भी कथानक-रूढ़ियों में आता है। 'बीसलदेव रास' में अभिज्ञान का वर्णन किया गया है: रानी राजमती अपने सन्देशवाहक पण्डित से बीसलदेव के अभिज्ञान का वर्णन करती है।[४] राजा बीसलदेव रानी के अभिज्ञान का योगी से वर्णन करते हुए इस प्रकार कहता है :—

"कोमल पदम छइ धण केरे हाथ।
मूँगफली जिसी आंगुली।
उणरा कठण पयउहर काजली रेख
बोलती बोल छइ आकुली
दाँत दाडिम धण चीता कम लंकि॥"—बीसलदेव रास, पृ० १९७

कोमल पद्म के समान उसके हाथ हैं, मूंगफली जैसी उँगलियाँ हैं। उसके उरोज कठोर हैं, जिन पर काली रेखायें हैं। उसके दाँत दाड़िम के समान और कटि चीता की कटि के समान है। उसकी वाणी से आकुलता व्यक्त हो रही होगी।

कथानक रूढ़ियों में षड्‌ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह-वेदना-वर्णन भी सम्मिलित है।

---

१. बीसलदेव रास, पृ० २८७।
२. वही, पृ० १९८।
३. वही, पृ० ३५८।
४. वही, पृ० १७६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'बीसलदेवरासो' में बारहमासा की पद्धति को अपनाया गया है। सभी महीनों का वर्णन करते हुए इन की उद्दीपनी शक्ति का विशेष वर्णन किया है। चैत्र का वर्णन देखिए :—

"चेत्र मास चतुरंगी हे नारि।
प्रिय विण जीवइ किसइ अधारि।
कंचूयउ भीजइ जण हसइ।
सात सहेलिय बइठी छइ आइ।
दंत कबाड़्या नइ न रंग्या
चालउ सषी आपे षेलण जाइ।
आज दीसइ सु काल्हे नहीं।
म्हे किउं होली हे षेलण जां।
उलगाणइ की गोरडी
की आंगुली काढ़ता निगलीजइ बां।"—बीसलदेव लरास, पृ० १५४

चैत्र मास में नारियाँ चौरंगी हो गई हैं, किन्तु मैं प्रियतम के बिना किसके सहारे जीवित रहूँ। मेरी कंचुकी भीग जाती है और लोग हँसते हैं। सात सहेलियाँ अपने ओठों और नखों को रंजित करके आ बैठी हैं और मुझसे खेलने के लिए कहती हैं कि जो दिन (आयु) आज हैं, वे कल नहीं रहेंगे। किन्तु मैं होली खेलने कैसे जाऊँ। मैं तो प्रवासी की पत्नी हूँ। तुम मेरी उंगली पकड़कर पहुँचा पकड़ती हो।

बारहमासा के ही प्रसंग में कवि ने लोक-जीवन के कुछ दृश्यों तथा वस्तुओं का वर्णन करके भी लोक तत्त्वों का समावेश किया है। यथा, असाढ़ में नालों के प्रवाह का वर्णन,[१] वैशाख में फसल की लुनाई का वर्णन,[२] माघ मास में तुषार गिरने से वनस्पतियों के झुलसने का वर्णन[३] तथा आषाढ़ के प्रथम मेघ का वर्णन[४] आदि।

वियोग-वर्णन करते हुए रानी राजमती की जिन भावनाओं का वर्णन किया है, उनमें भी लोक-तत्त्व का आभास मिलता है। रानी राजमती कहती है कि मैं 'यदि रानी न बन कर जंगल में रोजरी या धवली गाय बन जाती, तो स्वच्छन्द घूमती, काली कोयल होती तो आम या चम्पे की डाल पर बैठती, इधर-उधर उड़ती और स्वेच्छापूर्वक द्राक्षा तथा अन्य फल खाती।'[५] यही नहीं, अपितु कृषक-नारी के जीवन के प्रति अनुरक्ति व्यक्त करते हुए कहती है—

"आंजणी काइं नि सिरजीय करतार।
षेत्र कमावती स्यउं भरतार॥
पहिरिण आछी लोवडी।
तुंग तुरीय जिमि भीडती गात्र।

---

१. बीसलदेव रास, पृ० १५७।
२. वही, पृ० १५५।
३. वही, पृ० १५१।
४. वही, पृ० १५७।
५. बीसलदेव रास, पृ० १६३ ड़

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साईंम लेती सामुही।
हंसि हंसि बूछती प्री तणी बात॥"—बीसलदेव रास, पृ० १६४

भगवान ने मुझे जाटनी क्यों नहीं बनाया, जिससे मैं अपने पति के साथ खेत कमाती। अच्छे ऊन के कपड़े पहिन कर ऊँचे घोड़े के समान अपने शरीर को स्वामी के शरीर से भिड़ाती अर्थात् आलिंगन करती और स्वामी को सामने से लेती तथा हँस-हँस कर उनकी बात पूछती। विरहिणी रानी की यह कामना लोक जीवन के प्रति कवि की रुचि को अभिव्यक्त करती है।

'बीसलदेव रास' के कथानक की समाप्ति भी लोक कथाओं की भाँति सुखान्त है। जिस प्रकार लोक-कथाओं में नायक-नायिका का मिलन हो जाता है और कथाकार अन्त में कहता है 'जिस प्रकार इनका मिलन हुआ हो, उसी प्रकार सभी का हो।' 'बीसलदेव रास' में भी अन्त में यही कामना की गई है :—

"जिउं राजा, राणी, सुं मिल्या।
तिम एण संसार मिलिज्यो सहु कोइ।"—बीसलदेव रास, पृ० २१४

इस प्रकार 'बीसलदेव रास' का कथा-संगठन एवं कथा-शिल्प लोक कथाओं के अनुरूप है। काव्य का ढाँचा ही उसे लोक-काव्य प्रमाणित करता है।

'बीसलदेव रास' का कथानक खण्ड काव्य के अनुरूप है। उसमें केवल विवाह, प्रवास और मिलन का ही वर्णन हुआ है। इसलिए समग्र लोक-जीवन को चित्रित करने का अवकाश तो कवि के पास नहीं है, फिर भी उसने लोक-जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। विवाह की वरेच्छा से लेकर विदा तक की प्रत्येक प्रक्रिया का विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन कवि ने किया है। विवाह की प्रत्येक क्रिया लोक जीवन के अनुसार ही सम्पन्न होती हैं। विवाह योग्य कन्या को देखकर भोज की रानी के मन में चिन्ता, पति से कन्या के लिए योग्य वर देखने का निवेदन, अजमेर के चौहान बीसलदेव के लिए लग्न सुपारी प्रेषित करना, वरेच्छा का उत्सव, गुड़ी उछालने की प्रथा, नेगियों को उपहार प्रदान करना, बरात का आगमन, तोरण मारना तथा द्वाराचार हथलेवा की विधि, चौक पूरना, शाखोच्चार ग्रन्थिबन्धन इसी क्रम में आते हैं। निर्जला एकादशी, गणेश चतुर्थी जैसे लोक व्रतों, फाल्गुन में होली खेलने तथा श्रावण में कजली खेलने नवरात्र में न्यौरता खेलने जैसे लोकोत्सवों के वर्णन हैं। लोक विश्वासों में शकुन अपशकुन, यात्रा विचार, देवी देवता तथा अन्य मान्यताएँ परिगणित की जाती हैं।

कवि ने लोकोक्तियों तथा नीति वाक्यों के प्रयोग बड़े रोचक किये हैं। जैसे—

"चन्दं कूडइ किउं ढाकियउ जाइ।"
"दव का दाधा हो कूपल लेइ।
जीभ का दाधा न पाल्हवइ॥"
"इध किम उबरइ मंजारि कइ फेरि।"

इस काव्य की भाषा भी लोकभाषा ही है। कवि ने तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर ही किया है। लोक-कण्ठ में रहने के कारण यद्यपि भाषा में एकरूपता तथा स्थिरता नहीं है तथापि मूल भाषा का आभास पाना कठिन नहीं है। कवि ने देशज एवं तद्भव शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। यथा—धण (स्त्री), विंद (वर), पषालिज्यो (प्रक्षालन), जुहारण (प्रणाम) डावडी (लड़की), कूकस (कुखाद्य), लोवडी (एक प्रकार का ऊनी कपड़ा), आकरी (खराब, कटु), पीडार (भैंस का बच्चा), जगीस (जिगीषा,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'बीसलदेवरासो' में बारहमासा की पद्धति को अपनाया गया है। सभी महीनों का वर्णन करते हुए इन की उद्दीपनी शक्ति का विशेष वर्णन किया है। चैत्र का वर्णन देखिए :—

"चेत्र मास चतुरंगी हे नारि।
प्रिय विण जीवइ किसइ अधारि।
कंचूयउ भीजइ जण हसइ।
सात सहेलिय बइठी छइ आइ।
दंत कबाड़्या नइ न रंग्या
चालउ सषी आपे षेलण जाइ।
आज दीसइ सु काल्हे नहीं।
म्हे किउं होली हे षेलण जां।
उलगाणइ की गोरडी
की आंगुली काढ़ता निगलीजइ बां।"—बीसलदेव लरास, पृ० १५४

चैत्र मास में नारियाँ चौरंगी हो गई हैं, किन्तु मैं प्रियतम के विना किसके सहारे जीवित रहूँ। मेरी कंचुकी भीग जाती है और लोग हँसते हैं। सात सहेलियाँ अपने ओठों और नखों को रंजित करके आ बैठी हैं और मुझसे खेलने के लिए कहती हैं कि जो दिन (आयु) आज हैं, वे कल नहीं रहेंगे। किन्तु मैं होली खेलने कैसे जाऊँ। मैं तो प्रवासी की पत्नी हूँ। तुम मेरी उंगली पकड़कर पहुँचा पकड़ती हो।

बारहमासा के ही प्रसंग में कवि ने लोक-जीवन के कुछ दृश्यों तथा वस्तुओं का वर्णन करके भी लोक तत्त्वों का समावेश किया है। यथा, असाढ़ में नालों के प्रवाह का वर्णन,[१] वैशाख में फसल की लुनाई का वर्णन,[२] माघ मास में तुषार गिरने से वनस्पतियों के झुलसने का वर्णन[३] तथा आषाढ़ के प्रथम मेघ का वर्णन[४] आदि।

वियोग-वर्णन करते हुए रानी राजमती की जिन भावनाओं का वर्णन किया है, उनमें भी लोक-तत्त्व का आभास मिलता है। रानी राजमती कहती है कि मैं 'यदि रानी न बन कर जंगल में रोजरी या धवली गाय बन जाती, तो स्वच्छन्द घूमती, काली कोयल होती तो आम या चम्पे की डाल पर बैठती, इधर-उधर उड़ती और स्वेच्छापूर्वक द्राक्षा तथा अन्य फल खाती।'[५] यही नहीं, अपितु कृषक-नारी के जीवन के प्रति अनुरक्ति व्यक्त करते हुए कहती है—

"आंजणी काइं नि सिरजीय करतार।
षेत्र कमावती स्यउं भरतार॥
पहिरिण आछी लोवडी।
तुंग तुरीय जिमि भीडती गात्र।

---

१. बीसलदेव रास, पृ० १५७।
२. वही, पृ० १५५।
३. वही, पृ० १५१।
४. वही, पृ० १५७।
५. बीसलदेव रास, पृ० १६३ ड़

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साईंम लेती सामुही।
हंसि हंसि बूछती प्री तणी बात॥"—बीसलदेव रास, पृ० १६४

भगवान ने मुझे जाटनी क्यों नहीं बनाया, जिससे मैं अपने पति के साथ खेत कमाती। अच्छे ऊन के कपड़े पहिन कर ऊँचे घोड़े के समान अपने शरीर को स्वामी के शरीर से भिड़ाती अर्थात् आलिंगन करती और स्वामी को सामने से लेती तथा हँस-हँस कर उनकी बात पूछती। विरहिणी रानी की यह कामना लोक जीवन के प्रति कवि की रुचि को अभिव्यक्त करती है।

'बीसलदेव रास' के कथानक की समाप्ति भी लोक कथाओं की भाँति सुखान्त है। जिस प्रकार लोक-कथाओं में नायक-नायिका का मिलन हो जाता है और कथाकार अन्त में कहता है 'जिस प्रकार इनका मिलन हुआ हो, उसी प्रकार सभी का हो।' 'बीसलदेव रास' में भी अन्त में यही कामना की गई हैं :—

"जिउं राजा, राणी, सुं मिल्या।
तिम एण संसार मिलिज्यो सहु कोइ।"—बीसलदेव रास, पृ० २१४

इस प्रकार 'बीसलदेव रास' का कथा-संगठन एवं कथा-शिल्प लोक कथाओं के अनुरूप है। काव्य का ढाँचा ही उसे लोक-काव्य प्रमाणित करता है।

'बीसलदेव रास' का कथानक खण्ड काव्य के अनुरूप है। उसमें केवल विवाह, प्रवास और मिलन का ही वर्णन हुआ है। इसलिए समग्र लोक-जीवन को चित्रित करने का अवकाश तो कवि के पास नहीं है, फिर भी उसने लोक-जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। विवाह की वरेच्छा से लेकर विदा तक की प्रत्येक प्रक्रिया का विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन कवि ने किया है। विवाह की प्रत्येक क्रिया लोक जीवन के अनुसार ही सम्पन्न होती हैं। विवाह योग्य कन्या को देखकर भोज की रानी के मन में चिन्ता, पति से कन्या के लिए योग्य वर देखने का निवेदन, अजमेर के चौहान बीसलदेव के लिए लग्न सुपारी प्रेषित करना, वरेच्छा का उत्सव, गुड़ी उछालने की प्रथा, नेगियों को उपहार प्रदान करना, बरात का आगमन, तोरण मारना तथा द्वाराचार हथलेवा की विधि, चौक पूरना, शाखोच्चार ग्रन्थिबन्धन इसी क्रम में आते हैं। निर्जला एकादशी, गणेश चतुर्थी जैसे लोक व्रतों, फाल्गुन में होली खेलने तथा श्रावण में कजली खेलने नवरात्र में न्यौरता खेलने जैसे लोकोत्सवों के वर्णन हैं। लोक विश्वासों में शकुन अपशकुन, यात्रा विचार, देवी देवता तथा अन्य मान्यताएँ परिगणित की जाती हैं।

कवि ने लोकोक्तियों तथा नीति वाक्यों के प्रयोग बड़े रोचक किये हैं। जैसे—

"चन्दं कूडइ किउं ढाकियउ जाइ।"
"दव का दाधा हो कूपल लेइ।
जीभ का दाधा न पाल्हवइ॥"
"इध किम उबरइ मंजारि कइ फेरि।"

इस काव्य की भाषा भी लोकभाषा ही है। कवि ने तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर ही किया है। लोक-कण्ठ में रहने के कारण यद्यपि भाषा में एकरूपता तथा स्थिरता नहीं है तथापि मूल भाषा का आभास पाना कठिन नहीं है। कवि ने देशज एवं तद्भव शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। यथा—धण (स्त्री), विंद (वर), पषालिज्यो (प्रक्षालन), जुहारण (प्रणाम) डावडी (लड़की), कूकस (कुखाद्य), लोवडी (एक प्रकार का ऊनी कपड़ा), आकरी (खराब, कटु), पीडार (भैंस का बच्चा), जगीस (जिगीषा,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इच्छा), करह (ऊँट) षाल (नाला), कोकउं (पुकारूँ), जीमणी (दाहिनी), हेडाऊ (काफिला), अहिनाण (अभिज्ञान) रालतां (प्रवहमान), सांढिया (तीव्रगामिनी ऊँटनी) तथा मुलकइ (मुग्ध होती) आदि।

कवि की अलंकार-योजना में भी लोक-तत्त्व के दर्शन होते हैं। उसकी अप्रस्तुत योजना या तो रूढ़ है अथवा लोक-जीवन से गृहीत है। कतिपय अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—उपमा—'गोवल माहि जिसड परतिष्य गोविन्द।' 'सा घण कुरलइ मोर जिउं', 'मूँगफली जिसी आंगुली', 'दांत दाडिम धण चीता कय लंकि।' इनमें मूंगफली सी उंगली कितनी सटीक और नवीन है। रूढ़ न होते हुए भी लोक जीवन से गृहीत तथा रूप सादृश्य को स्पष्ट करने वाली है।

उत्प्रेक्षा—'जाणे हियडइ हरिणी हणी', जांणि करि बाछडइ स्युं मिली गाइ।'

अतिशयोक्ति—'राजा चालियउ परिणवा षेहाडंबर छाइयउ भाण।'

अपह्नुति—'राउ नहीं सखि भइंस पोडार'

अप्रस्तुत प्रशंसा—'रतन कचोलइ किम पाडइ भीष। इत्यादि

इस विवेचन से स्पष्ट है कि वस्तु-संगठन, शैली-शिल्प, वस्तु वर्णन, कला पक्ष इत्यादि में लोक तत्त्वों का इतना आधिक्य है कि 'बीसलदेव रास' को लोक काव्य कहना ही समीचीन है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कबीर व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व

श्री सुरेशचन्द्र मिश्र, एम० ए०
(हिन्दी, अर्थशास्त्र) साहित्यरत्न

कबीर साहब की जैसी बानी अलौकिक है वैसी ही उनकी लोकप्रसिद्ध जीवन कथा भी अलौकिक है। कबीरपंथियों में उनके विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। रामानन्द जी के आशीर्वाद से ब्राह्मण की विधवा पुत्री के बालक का जन्म होना, लहरतारा के किनारे से उठाकर नीरु-नीमा द्वारा पालन-पोषण किया जाना, पंचगंगा घाट पर रामानन्द जी से रामनाम की दीक्षा ग्रहण करना, सिकन्दर लोदी के दरबार में कबीर पर स्वयं को ईश्वर कहने का अभियोग लगाया जाना फलतः कबीरको नदी में फेंकना, अग्निकुण्ड में डालना तथा हाथी के समक्ष डालना आदि किम्वदन्तियां कबीर पंथियों में मिलती हैं। मुसलमान कबीरपंथी उनको शेष तकी का शिष्य बताते हैं किन्तु तर्क की कसौटी पर यह बात खरी नहीं उतरती। कबीर के साथ लोई का भी नाम लिया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थीऔर सदैव उसके साथ रहीं। कुछ लोग इसे उनकी विवाहिता स्त्री बतलाते हैं और कहते हैं कि उसके गर्भ से कमाल और कमाली नामक पुत्र-पुत्री की उत्पत्ति भी हुई। इसकी पुष्टि में यह पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं :—

बूढ़ा वंश कबीर का उपजा पुत्र कमाल।
हरि का सुमिरन छांड़ि के ले आया घर माल॥

कबीर का आविर्भाव १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था उनके जन्म के संबंध में कबीरपंथियों में यह उक्ति प्रसिद्ध है :—

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेष्ठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥

इनके परलोकवास की तिथि १५०५ बताई जाती है।

संवत पन्द्रह सौ पचोतरा मगहर कीनौ गौन।
माघ सुदि एकादशी रल्यौ पौन में पौन॥

मुहसन फनी ने फारसी इतिहास ग्रन्थ "तवारीखे दविस्ता" में इन्हें रामानन्द का शिष्य एकेश्वर-वादी और जुलाहा बताया है।

वस्तुतः कबीर और उनकी कोटि के अन्य सन्तों की जीवन-कथाएं तथाकथित इतिहास की वस्तु नहीं हैं। संतों की जाति और कुल नहीं देखा जाता है उनका ज्ञान-साहित्य ही दर्शनीय और मननीय होता है। उन्होंने कब और कहाँ किस कुल में पंचतत्त्व का चोला धारण किया और त्यागा इसका विशेष महत्व नहीं है।

कबीर अपने युग की देन थे। यह युग धार्मिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से संक्रमण काल था। धार्मिक दृष्टि से वैदिक मूल्य ह्रासोन्मुख थे। देश की दक्षिण परिधि पर तीक्ष्ण बौद्धिक आन्दोलन प्रस्थानत्रयी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पर आधारित शांकर दर्शन की प्रतिक्रिया में उठ खड़ा हुआ था। दक्षिण के आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद या मायावाद के प्रति बौद्धिक एवं शास्त्रार्थपरक प्रतिक्रिया की और प्रस्थानत्रयी का भक्तिपरक भाष्य प्रस्तुत किया। वस्तुतः भक्ति रूढ़ जीवन मूल्यों के प्रति क्रांति, श्रेण्य, शास्त्रीय एवं वर्गवादी दर्शन के प्रति असंतोष एवं अर्द्धमृत तथा बिखरी हुई शक्तियों का पुनरुत्थान है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार कबीर दास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है। कबीरदास की रचनाएं साखी रमैनी, सबद के रूप में प्राप्त हैं। कबीर साहब के नाम से प्रचलित विभिन्न कृतियों की संख्या बहुत बड़ी है। रेवरेण्ड वेस्टकोट इनकी ८२ कृतियां मानते हैं तथा डा० रामकुमार वर्मा ५६ मानते हैं। कबीर साहब की जो रचनाएँ हैं हमें आज उपलब्ध हैं वे विभिन्न संग्रहों के रूप में हैं अधिकतर पद, साखियाँ, रमैनियाँ हैं इन से कुछ तो 'पंचवानी', 'सर्वगी' आदि ग्रन्थ जैसे संग्रह ग्रंथों में मिलती हैं। अस्तु, कबीर ने जो कुछ कहा अपने अनुभव से ही कहा दूसरों की बात उन्होंने नहीं कही और न पढ़-पढ़ कर ही कहा :

"विद्या न पढ़ौं बाद नहिं जानौं।" में यही भाव अव्यक्त हैं।

उन्होंने जो कुछ कहा अनूठा कहा किसी का जूठा नहीं कहा। कबीर के तत्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन या विश्लेषण के द्वारा नहीं प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही मापी जा सकती है। कबीर की वानी में जहाँ हम ज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरूपण पाते हैं वहाँ योग का गूढ़ातिगूढ़ भेद भी हमें मिलता है और भक्ति का गंभीर रहस्यवाद भी है, वेदान्त भी उनके साथ पूरा उतरता है तो सूफी सिद्धान्त भी उसमें ढल जाते हैं।

कबीर की वे रचनाएँ जिनमें वे ढोंगियों, धर्मध्वजों, मजहवी ठेकेदारों के खिलाफ बगावत की आवाज बुलन्द करते हैं खड़ी बोली या रेखता शैली में हैं। ठीक इसके विपरीत कबीर जहाँ अपने सहज रूप में आत्म-निवेदन प्रणपत्ति या आत्मा परमात्मा के मधुर मिलन के गीत गाते हैं उनकी रचनाओं का माध्यम ब्रजभाषा हो जाती है। डा० चाटुर्ज्या और रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि रमैनी और सबद में गेय पद हैं जिनकी भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें यत्रतत्र पूरबी बोली का पुट है। ब्रजभाषा का एक पद द्रष्टव्य है :—

"हौं बलि कब देखोंगी तोहि।
अहनेस आतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापी मोहि॥
नैन हमारे तुम्हको चाहैं, रती न माने हानि।
विरह अगिनि तन अधिक जरावैं ऐसी लेहु विचारि॥
सुनहु हमारी दादि गुसाईं अब जनि करहु अधीर।
तुम धीरज, मैं आतुर स्वामी काचे भाड़े नीर॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ मन नहिं बांधे धीर।
देह छतां तुम मिलहु कृपा करि आरितवंत कबीर॥"

कबीर के कुछ पद तो सूरदास के पदों की भांति ही ब्रजभाषा की निधि हो गये हैं विशुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग उनमें दर्शनीय होता है एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'अब हरि हूँ अपनी करिलीनों।
प्रेम भगति मेरो मन भीनों।
जरै सरीर अंग नहिं मोरो, प्रान जाइ तौ नेह न तोरों।
चयंतामणि कंत पठाये ठठोली, मन दे राम लियो निरमोली।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रह्म खोजत जनम गवायो, सोई राम घट भीतर पायो।
कहे कबीर छुटी सब आसा, मिल्यो राम उपज्यौ विसवासा।।"

कबीर ने बहुत थोड़े छप्पय लिखे हैं। छप्पयों की भाषा मूलतः व्रज है। यह व्रज का अपना छन्द है। एक छप्पय प्रस्तुत है :—

"मन नहिं छाड़े विषै विषै न छाड़े मन कों।
इनको इहे सुभाव पूरि लागी जुग जन कौ।
खंडित मूल विनास कहो किम विगतहं कीजे।
ज्यूं जल में प्रतिविम्ब त्यूं सकल रामहिं जानी जै।
सो मन सो तन सो विषै सो त्रिभुवन पति कहूं कस।
कहे कबीरा चन्दहुनरा ज्यों जलपूरया सकल रस।"

कबीर के कतिपय दोहे भी व्रजी में लिखे हुए हैं :—

यह तन जारौं मसि करों लिखों राम को नाम।
लेखनि करुं करंक की लिखि लिखि राम पठाउं।
कबीर पीर परावनी पंजर पीर न जाइ।
एक जु पीर पिरीत की रही करेजा छाइ।

कबीर के काव्य का वर्ण्य विषय आध्यात्मिक विचार हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पद्धति, उलटवांसियां, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि विविध साधनों का सहारा लेना पड़ा है। कबीर ने प्रतीक रूप में दाम्पत्य प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। आत्मा वधू की विह्वलता को इस पंक्ति में तनिक सुनिये—

"कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसांई।"
"हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया।"

अपनी अनुभूति को चमत्कारिक ढंग से गोपनीय रखते हुए अभिव्यंजित करने के लिए कबीर ने उलटवांसियों की रचना की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"कैसे नगरि करौं कुट बारी।
चंचल पुरुषि बिचरवन नारी।
बैल बियाई गाई भई बांझ।
बछरा दूहे तीन्यूं सांझ।
मकड़ी घरि मांखी छछिहारी।
मांस पसारि चील्ह रखवारी।
मूसा खेवट नाव विलइया।
मेंढक सोवै सांप पहरिया।
नित उठि स्याल सिंघ सूं जूझे।
कहे कबीर कोई विरला बूझै।"

कबीर ने अपने धर्म को सहज धर्म का नाम दिया है ताकि सहज की प्राप्ति के लिए कठोर साधना की आवश्यकता न हो। वे कहते हैं कि—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पर आधारित शांकर दर्शन की प्रतिक्रिया में उठ खड़ा हुआ था। दक्षिण के आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद या मायावाद के प्रति बौद्धिक एवं शास्त्रार्थपरक प्रतिक्रिया की और प्रस्थानत्रयी का भक्तिपरक भाष्य प्रस्तुत किया। वस्तुतः भक्ति रूढ़ जीवन मूल्यों के प्रति क्रांति, श्रेण्य, शास्त्रीय एवं वर्गवादी दर्शन के प्रति असंतोष एवं अर्द्धमृत तथा बिखरी हुई शक्तियों का पुनरुत्थान है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार कबीर दास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है। कबीरदास की रचनाएं साखी रमैनी, सबद के रूप में प्राप्त हैं। कबीर साहब के नाम से प्रचलित विभिन्न कृतियों की संख्या बहुत बड़ी है। रेवरेण्ड वेस्टकोट इनकी ८२ कृतियां मानते हैं तथा डा० रामकुमार वर्मा ५६ मानते हैं। कबीर साहब की जो रचनाएँ हैं हमें आज उपलब्ध हैं वे विभिन्न संग्रहों के रूप में हैं अधिकतर पद, साखियाँ, रमैनियाँ हैं इन से कुछ तो 'पंचवानी', 'सर्वंगी' आदि ग्रन्थ जैसे संग्रह ग्रंथों में मिलती हैं। अस्तु, कबीर ने जो कुछ कहा अपने अनुभव से ही कहा दूसरों की बात उन्होंने नहीं कही और न पढ़-पढ़ कर ही कहा :

"विद्या न पढ़ौं बाद नहिं जानौं।" में यही भाव अव्यक्त हैं।

उन्होंने जो कुछ कहा अनूठा कहा किसी का जूठा नहीं कहा। कबीर के तत्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन या विश्लेषण के द्वारा नहीं प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही मापी जा सकती है। कबीर की बानी में जहाँ हम ज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरूपण पाते हैं वहाँ योग का गूढ़ातिगूढ़ भेद भी हमें मिलता है और भक्ति का गंभीर रहस्यवाद भी है, वेदान्त भी उनके साथ पूरा उतरता है तो सूफी सिद्धान्त भी उसमें ढल जाते हैं।

कबीर की वे रचनाएँ जिनमें वे ढोंगियों, धर्मध्वजों, मजहबी ठेकेदारों के खिलाफ बगावत की आवाज बुलन्द करते हैं खड़ी बोली या रेखता शैली में हैं। ठीक इसके विपरीत कबीर जहाँ अपने सहज रूप में आत्म-निवेदन प्रणपत्ति या आत्मा परमात्मा के मधुर मिलन के गीत गाते हैं उनकी रचनाओं का माध्यम ब्रजभाषा हो जाती है। डा० चाटुर्ज्या और रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि रमैनी और सबद में गेय पद हैं जिनकी भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें यत्रतत्र पूरबी बोली का पुट है। ब्रजभाषा का एक पद द्रष्टव्य है :—

"हौं बलि कब देखोंगी तोहि।
अहनेस आतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापी मोहि॥
नैन हमारे तुम्हको चाहैं, रती न माने हानि।
विरह अगिनि तन अधिक जरावैं ऐसी लेहु विचारि॥
सुनहु हमारी दादि गुसाईं अब जनि करहु अधीर।
तुम धीरज, मैं आतुर स्वामी काचे भाड़े नीर॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ मन नहिं बांधे धीर।
देह छतां तुम मिलहु कृपा करि आरितवंत कबीर॥"

कबीर के कुछ पद तो सूरदास के पदों की भांति ही ब्रजभाषा की निधि हो गये हैं विशुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग उनमें दर्शनीय होता है एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'अब हरि हूँ अपनी करिलीनों।
प्रेम भगति मेरो मन भीनों।
जरै सरीर अंग नहिं मोरो, प्रान जाइ तौ नेह न तोरों।
चयंतामणि कंत पठाये ठठोली, मन दे राम लियो निरमोली।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रह्म खोजत जनम गवायो, सोई राम घट भीतर पायो।
कहे कबीर छुटी सब आसा, मिल्यो राम उपज्यौ विसवासा।।"

कबीर ने बहुत थोड़े छप्पय लिखे हैं। छप्पयों की भाषा मूलतः ब्रज है। यह ब्रज का अपना छन्द है। एक छप्पय प्रस्तुत है :—

"मन नहिं छाड़े विषै विषै न छाड़े मन कों।
इनको इहे सुभाव पूरि लागी जुग जन कौ।
खंडित मूल विनास कहो किम विगतह कीजे।
ज्यूं जल में प्रतिविम्ब त्यूं सकल रामहिं जानी जै।
सो मन सो तन सो विषै सो त्रिभुवन पति कहूं कस।
कहे कबीरा चन्दहुनरा ज्यों जलपूरया सकल रस।"

कबीर के कतिपय दोहे भी ब्रजी में लिखे हुए हैं :—

यह तन जारौं मसि करों लिखों राम को नाम।
लेखनि करुं करंक की लिखि लिखि राम पठाउं।
कबीर पीर परावनी पंजर पीर न जाइ।
एक जु पीर पिरीत की रही करेजा छाइ।

कबीर के काव्य का वर्ण्य विषय आध्यात्मिक विचार हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पद्धति, उलटवांसियां, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि विविध साधनों का सहारा लेना पड़ा है। कबीर ने प्रतीक रूप में दाम्पत्य प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। आत्मा वधू की विह्वलता को इस पंक्ति में तनिक सुनिये—

"कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसांई।"
"हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया।"

अपनी अनुभूति को चमत्कारिक ढंग से गोपनीय रखते हुए अभिव्यंजित करने के लिए कबीर ने उलटवांसियों की रचना की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"कैसे नगरि करौं कुट बारी।
चंचल पुरुषि बिचरवन नारी।
बैल बियाई गाई भई बांझ।
बछरा दूहे तीन्यूं सांझ।
मकड़ी घरि मांखी छछिहारी।
मांस पसारि चील्ह रखवारी।
मूसा खेवट नाव विलइया।
मेंढक सोवै सांप पहरिया।
नित उठि स्याल सिंघ सूं जूझे।
कहे कबीर कोई विरला बूझै।"

कबीर ने अपने धर्म को सहज धर्म का नाम दिया है ताकि सहज की प्राप्ति के लिए कठोर साधना की आवश्यकता न हो। वे कहते हैं कि—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पर आधारित शांकर दर्शन की प्रतिक्रिया में उठ खड़ा हुआ था। दक्षिण के आचार्यों ने शंकर के अद्वैतवाद या मायावाद के प्रति बौद्धिक एवं शास्त्रार्थपरक प्रतिक्रिया की और प्रस्थानत्रयी का भक्तिपरक भाष्य प्रस्तुत किया। वस्तुतः भक्ति रूढ़ जीवन मूल्यों के प्रति क्रांति, श्रेण्य, शास्त्रीय एवं वर्गवादी दर्शन के प्रति असंतोष एवं अर्द्धमृत तथा बिखरी हुई शक्तियों का पुनरुत्थान है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार कबीर दास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है। कबीरदास की रचनाएं साखी रमैनी, सबद के रूप में प्राप्त हैं। कबीर साहब के नाम से प्रचलित विभिन्न कृतियों की संख्या बहुत बड़ी है। रेवरेण्ड वेस्टकोट इनकी ८२ कृतियां मानते हैं तथा डा० रामकुमार वर्मा ५६ मानते हैं। कबीर साहब की जो रचनाएँ हैं हमें आज उपलब्ध हैं वे विभिन्न संग्रहों के रूप में हैं अधिकतर पद, साखियाँ, रमैनियाँ हैं इन से कुछ तो 'पंचवानी', 'सर्वगी' आदि ग्रन्थ जैसे संग्रह ग्रंथों में मिलती हैं। अस्तु, कबीर ने जो कुछ कहा अपने अनुभव से ही कहा दूसरों की बात उन्होंने नहीं कही और न पढ़-पढ़ कर ही कहा :

"विद्या न पढ़ौं बाद नहिं जानौं।" में यही भाव अव्यक्त हैं।

उन्होंने जो कुछ कहा अनूठा कहा किसी का जूठा नहीं कहा। कबीर के तत्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन या विश्लेषण के द्वारा नहीं प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही मापी जा सकती है। कबीर की बानी में जहाँ हम ज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरूपण पाते हैं वहाँ योग का गूढ़ातिगूढ़ भेद भी हमें मिलता है और भक्ति का गंभीर रहस्यवाद भी है, वेदान्त भी उनके साथ पूरा उतरता है तो सूफी सिद्धान्त भी उसमें ढल जाते हैं।

कबीर की वे रचनाएँ जिनमें वे ढोंगियों, धर्मध्वजों, मजहबी ठेकेदारों के खिलाफ बगावत की आवाज बुलन्द करते हैं खड़ी बोली या रेखता शैली में हैं। ठीक इसके विपरीत कबीर जहाँ अपने सहज रूप में आत्म-निवेदन प्रणपत्ति या आत्मा परमात्मा के मधुर मिलन के गीत गाते हैं उनकी रचनाओं का माध्यम ब्रजभाषा हो जाती है। डा० चाटुर्ज्या और रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि रमैनी और सबद में गेय पद हैं जिनकी भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें यत्रतत्र पूरबी बोली का पुट है। ब्रजभाषा का एक पद द्रष्टव्य है :—

"हौं बलि कब देखोंगी तोहि।
अहनेस आतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापी मोहि॥
नैन हमारे तुम्हको चाहैं, रती न माने हानि।
विरह अगिनि तन अधिक जरावैं ऐसी लेहु विचारि॥
सुनहु हमारी दादि गुसाईं अब जनि करहु अधीर।
तुम धीरज, मैं आतुर स्वामी काचे भाड़े नीर॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ मन नहिं बांधे धीर।
देह छतां तुम मिलहु कृपा करि आरितवंत कबीर॥"

कबीर के कुछ पद तो सूरदास के पदों की भांति ही ब्रजभाषा की निधि हो गये हैं विशुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग उनमें दर्शनीय होता है एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'अब हरि हूँ अपनी करिलीनों।
प्रेम भगति मेरो मन भीनों।
जरै सरीर अंग नहिं मोरो, प्रान जाइ तौ नेह न तोरों।
चिंतामणि कंत पठाये ठठोली, मन दे राम लियो निरमोली।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रह्म खोजत जनम गवायो, सोई राम घट भीतर पायो।
कहे कबीर छुटी सब आसा, मिल्यो राम उपज्यो विसवासा।।"

कबीर ने वहुत थोड़े छप्पय लिखे हैं। छप्पयों की भाषा मूलतः व्रज है। यह व्रज का अपना छन्द है। एक छप्पय प्रस्तुत है :—

"मन नहिं छाड़े विषै विषै न छाड़े मन कों।
इनको इहे सुभाव पूरि लागी जुग जन कौ।
खंडित मूल विनास कहो किम विगतह कीजे।
ज्यूं जल में प्रतिविम्व त्यूं सकल रामहिं जानी जै।
सो मन सो तन सो विषै सो त्रिभुवन पति कहूं कस।
कहे कबीरा चन्दहुनरा ज्यों जलपूरया सकल रस।"

कबीर के कतिपय दोहे भी व्रजी में लिखे हुए हैं :—

यह तन जारौं मसि करों लिखों राम को नाम।
लेखनि करुं करंक की लिखि लिखि राम पठाउं।
कबीर पीर परावनी पंजर पीर न जाइ।
एक जु पीर पिरीत की रही करेजा छाइ।

कबीर के काव्य का वर्ण्य विषय आध्यात्मिक विचार हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक पद्धति, उलटवांसियां, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि विविध साधनों का सहारा लेना पड़ा है। कबीर ने प्रतीक रूप में दाम्पत्य प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। आत्मा वधू की विह्वलता को इस पंक्ति में तनिक सुनिये—

"कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसांई।"
"हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया।"

अपनी अनुभूति को चमत्कारिक ढंग से गोपनीय रखते हुए अभिव्यंजित करने के लिए कबीर ने उलटवांसियों की रचना की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"कैसे नगरि करौं कुट बारी।
चंचल पुरुषि बिचरवन नारी।
बैल बियाई गाई भई बांझ।
बछरा दूहे तीन्यूं सांझ।
मकड़ी घरि मांखी छछिहारी।
मांस पसारि चील्ह रखवारी।
मूसा खेवट नाव विलइया।
मेंढक सोवै सांप पहरिया।
नित उठि स्याल सिंघ सूं जूझे।
कहे कबीर कोई विरला बूझै।"

कबीर ने अपने धर्म को सहज धर्म का नाम दिया है ताकि सहज की प्राप्ति के लिए कठोर साधना की आवश्यकता न हो। वे कहते हैं कि—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सहज सहज सब कोई कहे सहज न चीन्हे कोइ।
जिन सहजे विषया तजी सहज करी जे सोइ॥

निष्कर्षतः मानवतावादी कबीर आडम्बर विरोधी पाखंडों और वाह्याचारों के आलोचक थे। हिन्दू और तुर्क सभी के दोषों का ज्ञापन कराकर उन्हें सत्य मार्ग की ओर उन्मुख करना उनका उद्देश्य था, नर में नारायण को देखना ही उनकी सच्ची आस्तिकता थी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हास्य और व्यंग का स्वरूप

डा० गिरिराजशरण अग्रवाल

एम० ए०, पी-एच० डी०

हँसना मानव का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण गुण है। साधारणतः जिनके चेहरों पर मौत जैसी उदासी छायी रहती है, जो सदैव रोनी सूरत बनाए बैठे रहते हैं, धीरे-धीरे उनसे सामाजिकों का संपर्क कम होता चला जाता है; परंतु जो मनुष्य हास्य के कारण अपने वातावरण को जीवंत बनाए रखते हैं, वे शीघ्र ही आस-पास के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

निःसंदेह, विनोदी मन की अभिव्यक्त मुद्रा के रूप में हास्य मानव की अमूल्य निधि है; परंतु अचानक किसी हँसते हुए व्यक्ति से यह पूछा जाए कि हँसी क्या है? तो उसकी हँसी ही रुक जाए। क्योंकि हास्य को परिभाषित करना एक टेढ़ी खीर है।

हास्य का स्वरूप-विवेचन करते हुए अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं परंतु 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' की कहावत ही चरितार्थ हुई है।

हास्य-विषयक भारतीय दृष्टिकोण की परख करते समय सर्वप्रथम भरत का दृष्टिकोण ही हमारे सामने आता है। अपने नाट्यशास्त्र के रस-प्रकरण में भरत ने शृंगार-रस को प्रमुखता प्रदान करते हुए हास्य को शृंगार का अनुकरण बताया है[1] और इस अनुकरण में विकृति को प्रधानता देते हुए हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

विपरीतालंकारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः॥
विकृताचारैर्वाक्यैरंगविकारैश्च विकृतवेषैश्च।
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः॥[2]

अर्थात् हास्य का उद्रेक विकृत अलंकार, विकृत आचार, विकृत अभिधान, विकृत वेश, विकृत आकार, विकृत वाणी आदि द्वारा होता है। ये विकृतियाँ अभिनेता में हों या वक्ता में या अन्य किसी में, यदि इनका संकेत या वर्णन मन में आनंद उत्पन्न करे तो हास्य रस की सफल सृष्टि माननी चाहिए।

हास्य के विवेचन में परवर्ती आचार्यों ने भी भरत का ही आधार ग्रहण किया है। साहित्य दर्पण के तृतीय परिच्छेद में आचार्य विश्वनाथ ने कहा कि जहाँ विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंगभंगी आदि के देखने-सुनने से 'हास' स्थायीभाव की पुष्टि होती है, वहाँ हास्य रस होता है।[3]

---

१. नाट्यशास्त्र—भरत ६।४०।
२. वही, ६।४९-५०।
३. साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ ३।२१४-२१६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सहज सहज सब कोई कहे सहज न चीन्हे कोइ।
जिन सहजे विषया तजी सहज करी जे सोइ॥

निष्कर्षतः मानवतावादी कबीर आडम्बर विरोधी पाखंडों और वाह्याचारों के आलोचक थे। हिन्दू और तुर्क सभी के दोषों का ज्ञापन कराकर उन्हें सत्य मार्ग की ओर उन्मुख करना उनका उद्देश्य था, नर में नारायण को देखना ही उनकी सच्ची आस्तिकता थी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हास्य और व्यंग का स्वरूप

डा० गिरिराजशरण अग्रवाल

एम० ए०, पी-एच० डी०

हँसना मानव का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण गुण है। साधारणतः जिनके चेहरों पर मौत जैसी उदासी छायी रहती है, जो सदैव रोनी सूरत बनाए बैठे रहते हैं, धीरे-धीरे उनसे सामाजिकों का संपर्क कम होता चला जाता है; परंतु जो मनुष्य हास्य के कारण अपने वातावरण को जीवंत बनाए रखते हैं, वे शीघ्र ही आस-पास के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

निःसंदेह, विनोदी मन की अभिव्यक्त मुद्रा के रूप में हास्य मानव की अमूल्य निधि है; परंतु अचानक किसी हँसते हुए व्यक्ति से यह पूछा जाए कि हँसी क्या है? तो उसकी हँसी ही रुक जाए। क्योंकि हास्य को परिभाषित करना एक टेढ़ी खीर है।

हास्य का स्वरूप-विवेचन करते हुए अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं परंतु 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' की कहावत ही चरितार्थ हुई है।

हास्य-विषयक भारतीय दृष्टिकोण की परख करते समय सर्वप्रथम भरत का दृष्टिकोण ही हमारे सामने आता है। अपने नाट्यशास्त्र के रस-प्रकरण में भरत ने शृंगार-रस को प्रमुखता प्रदान करते हुए हास्य को शृंगार का अनुकरण बताया है[1] और इस अनुकरण में विकृति को प्रधानता देते हुए हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

विपरीतालंकारैर्विकृताचाराभिधानवेषैश्च।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः॥
विकृताचारैर्वाक्यैरंगविकारैश्च विकृतवेषैश्च।
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः॥[2]

अर्थात् हास्य का उद्रेक विकृत अलंकार, विकृत आचार, विकृत अभिधान, विकृत वेश, विकृत आकार, विकृत वाणी आदि द्वारा होता है। ये विकृतियाँ अभिनेता में हों या वक्ता में या अन्य किसी में, यदि इनका संकेत या वर्णन मन में आनंद उत्पन्न करे तो हास्य रस की सफल सृष्टि माननी चाहिए।

हास्य के विवेचन में परवर्ती आचार्यों ने भी भरत का ही आधार ग्रहण किया है। साहित्य दर्पण के तृतीय परिच्छेद में आचार्य विश्वनाथ ने कहा कि जहाँ विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंगभंगी आदि के देखने-सुनने से 'हास' स्थायीभाव की पुष्टि होती है, वहाँ हास्य रस होता है।[3]

---

१. नाट्यशास्त्र—भरत ६।४०।
२. वही, ६।४९-५०।
३. साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ ३।२१४-२१६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री रामचंद्रगुणचंद्र ने भी अपने नाट्यदर्पण में विकृति को ही हास्य का मूल कारण बताया है—

विकृताचार - जल्पांगाकल्पविस्मापनोद्भवः।
हास्योऽस्याभिनयो नासास्पन्दाश्रुजठरग्रहे :॥[1]

दशरूपककार धनंजय ने विकृति को ही मान्यता देते हुए इतनी बात और जोड़ी कि आकृति-वाणी या वेश की विकृति अपनी भी हो सकती है और दूसरे की भी। उनके अनुसार अपनी या दूसरे की विकृत आकृति-वाणी या वेश को आलंबन मानकर हास्य का पोषण होता है—

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः॥[2]

इस दृष्टि से, हास्य रस विशेष रूप से विकृतियुक्त आलंबन के स्वरूप पर निर्भर है। संस्कृत की इसी विचारधारा को हिंदी के रीतिकालीन आचार्य कवियों ने भी ग्रहण किया। धीरे-धीरे पाश्चात्य-साहित्य के प्रभाव से हास्य के स्वरूप में परिवर्तन आया और साथ ही हास्य की परिभाषाओं में भी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हास्य रस के भाव 'हास' को सुखात्मक बताया और उसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की—

"हास यों तो केवल मन का एक वेग मात्र है, पर भावों में जिस हास को स्थान दिया गया है, वह ऐसा है जिसके आश्रयगत होने पर श्रोता या दर्शक को भी रस रूप हास की अनुभूति होती है। वह आलंबन प्रधान होता है। यों ही प्रसन्नता के कारण—जैसे शत्रु के प्रति अपनी सफलता—जो हँसी आती है, वह भाव की कोटि में नहीं, वह मन की उमंग या शरीर का व्यापार-मात्र है, उसके प्रदर्शन से श्रोता या दर्शक के हृदय में हास की अनुभूति नहीं हो सकती।"[3]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय विद्वानों ने यह स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया कि हास्य केवल विकृत वेश और वाणी का प्रदर्शन नहीं, कुछ और भी है।

डा० एस० पी० खत्री ने हास्य की आत्मा की चर्चा करते हुए कहा है कि इसका संबंध अविच्छिन्न रूप से मानवी विचारधाराओं से है, "हास्य की विशिष्ट आत्मा का विचरण-क्षेत्र मानवी विहार-क्षेत्र रहा है और इसी क्षेत्र में वह फले-फूलेगी।"[4] आगे चलकर डा० खत्री ने बताया है, "जब कभी हमारे सम्मुख शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक तथा नैतिक पीड़ा रहित कार्य अथवा घटनाएं अपने साधारण और अभिमत स्तर से गिरती हुई दिखायी देगी और जिसके फलस्वरूप किसी प्रकार की क्षति न होगी, हास्य के आविर्भाव में सहायक होगी।"[5]

इसी प्रकार श्री जी० पी० श्रीवास्तव के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति साधारण मनुष्यत्व के दर्जे से अपने कर्मों द्वारा गिर जाता है, तब उसका यह पतन उसे हमारी दृष्टि में नक्कू बनाकर उपहास योग्य कर देता है। क्योंकि ईश्वर ने मानवीय स्वभाव ऐसा बना रखा है कि वह अपने से किसी को भिन्न पाते ही उस पर

---

१. नाट्यदर्पण १२।११४, सूत्र १६८।
२. दशरूपक, ४ प्रकाश/७५।
३. रसमीमांसा—प्र० सं०, पृ० १९५।
४. हास्य की रूप रेखा, पृ० ३२।
५. हास्य की रूपरेखा, पृ० १६८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ठिठौली करता है। इस हँसने वाली भिन्नता की उत्पत्ति पतन से होती है, जिसका कारण गुणों की कमी या अवगुणों की ज्यादती है।"[१]

इस प्रकार भारतीय दृष्टि हास्योद्रेक में आलंबन की विकृति पर निर्भर करती है।

विदेशी विद्वानों में हास्य के विवेचन का सर्वप्रथम प्रयास अरस्तू (३८४-३२२ बी० सी०) का है। उन्होंने हास्य को असंगति के रूप में परिभाषित किया है।[२] उनके पश्चात् अनेक विद्वानों ने मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण कर हास्य के मूल कारणों की खोज की, जिनके आधार पर अनेक सिद्धांतों ने जन्म लिया परन्तु उनमें कोई भी सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं है। हाँ, वे एक-दूसरे के पूरक अवश्य हैं।

उत्कर्ष का सिद्धांत––प्रायः लोगों की असफलता और उनकी कमियों पर उन्हें किसी प्रकार की अलाभकर स्थिति में पाकर अथवा उन्हें किसी दुर्भाग्य का सामना करते देख कर हम हँसते हैं। हास्य से उत्पन्न होने वाला यह आनंद हमारी उत्कर्ष की भावनाओं से उद्भूत होता है।[३] इस 'अनायास उत्कर्ष के सिद्धांत' का प्रतिपादन हाब्स (१५८८-१६७९ ई०) ने किया। उनके अनुसार अपने में अचानक किसी उत्कर्ष को देखकर उसे पूर्ण की दुर्बलताओं की समता में रखकर जो उत्कर्ष व्यंजक उल्लास होता है, वही हास्य का कारण है। हाब्स का विचार है कि हमें हँसी इसलिए आती है, क्योंकि हमारे मन में दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठता का भाव होता है और बहुधा हम सोचते हैं कि हम पहले की अपेक्षा इस समय श्रेष्ठ हैं। मूर्ख को देखकर इसलिए हँसी नहीं आती कि वह मूर्ख है वरन् इसलिए कि हम उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हैं।

हाब्स के सिद्धांत को आधार मानकर अलैक्जेंडर बेन (१८१८-१९०३ ई०) ने यह तर्कपूर्ण विचार रखा कि हास्य का आविर्भाव तभी होगा जब कोई ऐसा व्यक्ति हीनता अथवा अधोगति को प्राप्त हो जो स्वयं कोई गर्वपूर्ण भाव-भंगी बनाए हुए हो परंतु साथ ही वह किसी अन्य तीव्र भावना का प्रसार न करे।[४]

असंगति का सिद्धांत––वास्तव में पतन और हीनता के इस सिद्धांत में सभी प्रकार के हास्य को समाहित करने वाली व्यापकता नहीं है। अनेक हास्य-लेखकों ने हास्य के लिए वैषम्य और असंगति की सहायता प्राप्त की है। उनके विचार से पतन अथवा हीनता नहीं वरन् असंगति हास्य का प्रधान-तत्त्व है। इमेन्युयेल कांट (१७२४-१८०४ ई०) ने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जब कोई अपेक्षायुक्त कल्पना अचानक अस्तित्वविहीन हो जाती है, उस समय होने वाली मनोविकारजन्य क्रिया ही हास्य है।[५]

बेन जॉनसन (१५७३-१६३७ ई०), हैजलिट (१७७८-१८३० ई०), आर्थर शॉपेन हावर (१७८८-१८६० ई०), लीकॉक (१८६९-१९४४ ई०) ने भी हास्य के लिए असंगति पर अधिक बल दिया। इनके

---

१. हास्यरस, पृ० ९।

२. Encyclopedia International, Vol 9, p. 39

३. Collier's Encyclopedia Vol. 12, p. 355

४. Laughter results from the degradation of some person or interest possessing dignity in circumstances that excite no other strong emotion." Alexander Bain, Quoted in Toaster's Hand Book p VIII.

५. An affectiom arising from sudden transformation of a strained expectation into nothing. Immanuel Kant. Quoted in collier's Encyclopedia. Vol. 12, p. 356

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री रामचंद्रगुणचंद्र ने भी अपने नाट्यदर्पण में विकृति को ही हास्य का मूल कारण बताया है—

विकृताचार - जल्पांगाकल्पविस्मापनोद्भवः।
हास्योऽस्याभिनयो नासास्पन्दाश्रुजठरग्रहे :॥[1]

दशरूपककार धनंजय ने विकृति को ही मान्यता देते हुए इतनी बात और जोड़ी कि आकृति-वाणी या वेश की विकृति अपनी भी हो सकती है और दूसरे की भी। उनके अनुसार अपनी या दूसरे की विकृत आकृति-वाणी या वेश को आलंबन मानकर हास्य का पोषण होता है—

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः॥[2]

इस दृष्टि से, हास्य रस विशेष रूप से विकृतियुक्त आलंबन के स्वरूप पर निर्भर है। संस्कृत की इसी विचारधारा को हिंदी के रीतिकालीन आचार्य कवियों ने भी ग्रहण किया। धीरे-धीरे पाश्चात्य-साहित्य के प्रभाव से हास्य के स्वरूप में परिवर्तन आया और साथ ही हास्य की परिभाषाओं में भी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हास्य रस के भाव 'हास' को सुखात्मक बताया और उसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की—

"हास यों तो केवल मन का एक वेग मात्र है, पर भावों में जिस हास को स्थान दिया गया है, वह ऐसा है जिसके आश्रयगत होने पर श्रोता या दर्शक को भी रस रूप हास की अनुभूति होती है। वह आलंबन प्रधान होता है। यों ही प्रसन्नता के कारण—जैसे शत्रु के प्रति अपनी सफलता—जो हँसी आती है, वह भाव की कोटि में नहीं, वह मन की उमंग या शरीर का व्यापार-मात्र है, उसके प्रदर्शन से श्रोता या दर्शक के हृदय में हास की अनुभूति नहीं हो सकती।"[3]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय विद्वानों ने यह स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया कि हास्य केवल विकृत वेश और वाणी का प्रदर्शन नहीं, कुछ और भी है।

डा० एस० पी० खत्री ने हास्य की आत्मा की चर्चा करते हुए कहा है कि इसका संबंध अविच्छिन्न रूप से मानवी विचारधाराओं से है, "हास्य की विशिष्ट आत्मा का विचरण-क्षेत्र मानवी विहार-क्षेत्र रहा है और इसी क्षेत्र में वह फले-फूलेगी।"[4] आगे चलकर डा० खत्री ने बताया है, "जब कभी हमारे सम्मुख शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक तथा नैतिक पीड़ा रहित कार्य अथवा घटना अपने साधारण और अभिमत स्तर से गिरती हुई दिखायी देगी और जिसके फलस्वरूप किसी प्रकार की क्षति न होगी, हास्य के आविर्भाव में सहायक होगी।"[5]

इसी प्रकार श्री जी० पी० श्रीवास्तव के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति साधारण मनुष्यत्व के दर्जे से अपने कर्मों द्वारा गिर जाता है, तब उसका यह पतन उसे हमारी दृष्टि में नक्कू बनाकर उपहास योग्य कर देता है। क्योंकि ईश्वर ने मानवीय स्वभाव ऐसा बना रखा है कि वह अपने से किसी को भिन्न पाते ही उस पर

---

१. नाट्यदर्पण १२।११४, सूत्र १६८।
२. दशरूपक, ४ प्रकाश/७५।
३. रसमीमांसा—प्र० सं०, पृ० १९५।
४. हास्य की रूप रेखा, पृ० ३२।
५. हास्य की रूपरेखा, पृ० १६८।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ठिठौली करता है। इस हँसने वाली भिन्नता की उत्पत्ति पतन से होती है, जिसका कारण गुणों की कमी या अवगुणों की ज्यादती है।"[१]

इस प्रकार भारतीय दृष्टि हास्योद्रेक में आलंबन की विकृति पर निर्भर करती है।

विदेशी विद्वानों में हास्य के विवेचन का सर्वप्रथम प्रयास अरस्तू (३८४-३२२ वी० सी०) का है। उन्होंने हास्य को असंगति के रूप में परिभाषित किया है।[२] उनके पश्चात् अनेक विद्वानों ने मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण कर हास्य के मूल कारणों की खोज की, जिनके आधार पर अनेक सिद्धांतों ने जन्म लिया परन्तु उनमें कोई भी सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं है। हाँ, वे एक-दूसरे के पूरक अवश्य हैं।

उत्कर्ष का सिद्धांत––प्रायः लोगों की असफलता और उनकी कमियों पर उन्हें किसी प्रकार की अलाभकर स्थिति में पाकर अथवा उन्हें किसी दुर्भाग्य का सामना करते देख कर हम हँसते हैं। हास्य से उत्पन्न होने वाला यह आनंद हमारी उत्कर्ष की भावनाओं से उद्भूत होता है।[३] इस 'अनायास उत्कर्ष के सिद्धांत' का प्रतिपादन हाब्स (१५८८-१६७९ ई०) ने किया। उनके अनुसार अपने में अचानक किसी उत्कर्ष को देखकर उसे पूर्ण की दुर्बलताओं की समता में रखकर जो उत्कर्ष व्यंजक उल्लास होता है, वही हास्य का कारण है। हाब्स का विचार है कि हमें हँसी इसलिए आती है, क्योंकि हमारे मन में दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठता का भाव होता है और बहुधा हम सोचते हैं कि हम पहले की अपेक्षा इस समय श्रेष्ठ हैं। मूर्ख को देखकर इसलिए हँसी नहीं आती कि वह मूर्ख है वरन् इसलिए कि हम उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हैं।

हाब्स के सिद्धांत को आधार मानकर अलैक्जेंडर बेन (१८१८-१९०३ ई०) ने यह तर्कपूर्ण विचार रखा कि हास्य का आविर्भाव तभी होगा जब कोई ऐसा व्यक्ति हीनता अथवा अधोगति को प्राप्त हो जो स्वयं कोई गर्वपूर्ण भाव-भंगी बनाए हुए हो परंतु साथ ही वह किसी अन्य तीव्र भावना का प्रसार न करे।[४]

असंगति का सिद्धांत––वास्तव में पतन और हीनता के इस सिद्धांत में सभी प्रकार के हास्य को समाहित करने वाली व्यापकता नहीं है। अनेक हास्य-लेखकों ने हास्य के लिए वैषम्य और असंगति की सहायता प्राप्त की है। उनके विचार से पतन अथवा हीनता नहीं वरन् असंगति हास्य का प्रधान-तत्त्व है। इमेन्युयेल कांट (१७२४-१८०४ ई०) ने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जब कोई अपेक्षायुक्त कल्पना अचानक अस्तित्वविहीन हो जाती है, उस समय होने वाली मनोविकारजन्य क्रिया ही हास्य है।[५]

बेन जॉनसन (१५७३-१६३७ ई०), हैजलिट (१७७८-१८३० ई०), आर्थर शॉपेन हावर (१७८८-१८६० ई०), लीकॉक (१८६९-१९४४ ई०) ने भी हास्य के लिए असंगति पर अधिक बल दिया। इनके

---

१. हास्यरस, पृ० ९।

२. Encyclopedia International, Vol 9, p. 39

३. Collier's Encyclopedia Vol. 12, p. 355

४. Laughter results from the degradation of some person or interest possessing dignity in circumstances that excite no other strong emotion." Alexander Bain, Quoted in Toaster's Hand Book p VIII.

५. An affectiom arising from sudden transformation of a strained expectation into nothing. Immanuel Kant. Quoted in collier's Encyclopedia. Vol. 12, p. 356

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अनुसार चित्र, चरित्र, भाव, विचार अथवा भाषा के अवयवों के वैषम्य से हास्य का जन्म होता है। किसी वस्तु की सत्ता में एक असंतुलन (Disharmony in the setting of a thing) हमें हँसाता है।

असंगति का विचार करते ही इतना स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस वस्तु या व्यक्ति की असंगति पर हमें हँसी आती है उसका संतुलित रूप हमारे मस्तिष्क में अवश्य होगा। इसलिए किसी वस्तु को कैसा होना चाहिए और वह कैसी है, इस बात में भेद करके हम हँसते हैं।

तनाव से मुक्ति का सिद्धांत––इस सिद्धांत के अनुसार हास्य का मुख्य कारण न उत्कर्ष की भावना है और न असंगति की चिंता वरन् संघर्ष और नियंत्रण से मुक्ति की भावना है। इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति तब होती है जब अचानक किसी अवरोध से हमें मुक्ति मिल जाती है। अधिकतर घोर परिश्रम तथा थकान के कार्य में लगे व्यक्ति उस समय अट्टहास कर उठते हैं जबकि उनकी परेशानी अचानक समाप्त हो जाती है। इस सिद्धांत को विकसित करने और प्रधानता प्रदान करने में सिगमंड फ्रायड (१८५६-१९३९ ई०) की मनोवैज्ञानिक खोजों ने विशेष सहायता प्रदान की।

हम अपने मन की सभी प्रकार की वृत्तियों तथा अपने सभी आवेगों को समाज के बंधन के कारण रोके रखते हैं, विशेष रूप से इसलिए कि इनके प्रदर्शन करने पर समाज हमारा तिरस्कार न करे। फ्रायड ने इन आंतरिक निषेधों को, जो हमें अपने बहुत से आवेगों को खुली छूट देने से रोकते हैं, 'सेंसर' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार हास्य सेंसर को ठगने का एक साधन है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक मेक्डूगल (१८७१-१९३८ ई०) का कहना है कि मनुष्य सहानुभूतिशील प्राणी है। तनिक-तनिक-सी बात पर वह दुःखी हो उठता है। प्रकृति ने उसे दुःख से बचाने के लिए हास्य की योजना की है। किसी ऐसे अनिष्ट से, जिस पर रोना हम व्यर्थ समझते हैं, हँसी का उद्रेक होता है। हम यह जानते हैं कि यदि हम नहीं हँसते तो यही अनिष्ट हमारे लिए कष्टप्रद सिद्ध होता है।[१]

इस सिद्धांत के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि सभी प्रकार की हँसी का मूल वेदना नहीं होती। समाज में वेदना-शून्य हास्य भी हो सकता है। इसलिए इस सिद्धांत को पूर्ण नहीं कहा जा सकता परंतु इतना निश्चित है कि इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि में अनेक रोमांसवादी कवियों के भाव कार्य करते हैं।[२]

यांत्रिक क्रिया––पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विवेचित हास्य का प्रकरण फ्रांसीसी विद्वान् बर्गसाँ के उल्लेख के बिना अधूरा ही रहेगा। बर्गसाँ (१८५९-१९४१ ई०) ने हास्य को परिभाषा में बाँधने के स्थान पर इस बात की खोज की कि हँसी क्यों आती है? उनके अनुसार हास्य के आलंबन को समाज-प्रिय (श्रद्धेय, श्रद्धाभाव समन्वित) नहीं होना चाहिए; हँसी उड़ाए जाने का उसे ज्ञान नहीं होना चाहिए एवं घटना, शब्दावली और पात्र में यांत्रिक-क्रिया (Automatism) आवश्यक है। डा० गुलाबराय ने शारीरिक यांत्रिक क्रिया का एक सुंदर उदाहरण दिया है––"फोन पर एक पुलिस इंसपेक्टर महोदय बात कर रहे थे। दूसरे

---

१. Some maladjurtment, Something inappropriate, which would displeasc us if we did not laugh at it. William Mc Dougall, Argument of Laughter p. 144

२. Our sincerest laughter with some pain in fraught.—Shelley
"To a skylark" from Palgravis Golden Treasury Book IV

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

छोर पर एक सुपरिंटेंडेंट साहब ने कहा कि मैं एस० पी० बोल रहा हूँ। तुरंत इंसपेक्टर साहब का हाथ ऊपर उठकर फौजी मुद्रा में हो गया।"[१]

हम क्यों हँसते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में विभिन्न विद्वानों के मतों से इतना अवश्य ही स्पष्ट होता है कि हास्य के मूल में कहीं न कहीं असंगति या वैषम्य अवश्य विद्यमान है।

हास्य के विभिन्न भेदोपभेदों में विनोद (ह्यमर) और व्यंग्य (सेटायर) दो भिन्न कोटि के भाव हैं परंतु इनमें कहीं न कहीं संबंध भी है।

विनोद करुणासिक्त हास है, सजलहास है, मुक्तहास है। इसमें आलोचना, उपहास तथा जुगुप्सा के लिए अवसर नहीं। यह हास्य हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति की हल्की-सी रेखा लिए रहता है। जहाँ हास्य में ममता रहती है, जिस पर हम हँसें वह हमारा प्रिय भी हो, ऐसा हास ही विनोद है। जार्ज मेरिडिथ ने लिखा है कि हास्यास्पद की हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में संतुलन नहीं खोना चाहिए। जिसकी हँसी उड़ायी जाए, उससे प्रेम भी किया गाए।[२]

विनोद का कोई निहित लक्ष्य नहीं। उसका उपयोग सामाजिक अवगुणों के संशोधन के लिए नहीं होता। यह केवल आत्मनिवेदन है। यह उस शिक्षक की भाँति नहीं जो अपने विद्यार्थियों के सन्मुख प्रतिदिन नैतिकता के विषय पर तर्कपूर्ण भाषण करता है और अनैतिक कार्यों को देखकर क्रोध और भर्त्सनापूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है। श्रेष्ठ विनोद मैत्री का पोषक और वैमनस्य का शोषक होगा। वास्तव में विनोद मानसिक आनंद का अमरकोष है।

व्यंग्य का स्वरूप-विवेचन

मेरिडिथ ने व्यंग्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यदि आप हास्यास्पद का इतना मजाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाए तो आपका हास्य-व्यंग्य की कोटि में आ जाएगा।[३]

प्रो० जगदीश पाण्डेय ने व्यंग्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, "जब हास्य विशुद्ध आनंद या रंजन की भावना को छोड़कर प्रयोजननिष्ठ हो जाता है, वहाँ वह उपहास (व्यंग्य) का मार्ग पकड़ लेता है। हास्य के आलंबन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य उपहास कहलाता है।"[४]

इस प्रकार व्यंग्य किसी व्यक्ति, समाज, संस्था अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा उनके दुर्गुणों का उद्घाटन करता है, उन पर आक्षेप करता है। इसका लक्ष्य केवल हँसाना मात्र नहीं होता वरन् इसका अभिप्राय किसी वस्तु का विरोध करना भी होता है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य की प्रयोजन निष्ठता को प्रकट करते हुए लिखा है कि "सच्चा

---

१. हिंदुस्तान-व्यंग्यविनोद विशेषांक, २८ मार्च १९५४, रसराज हास्य और उसके विभिन्न रूप।
२. Meridith, An Essay on comedy, p. 134
३. Meridith, An Essay on comedy, p. 133
४. हास्य के सिद्धांत और मानस में हास्य, पृ० १०१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अनुसार चित्र, चरित्र, भाव, विचार अथवा भाषा के अवयवों के वैषम्य से हास्य का जन्म होता है। किसी वस्तु की सत्ता में एक असंतुलन (Disharmony in the setting of a thing) हमें हँसाता है।

असंगति का विचार करते ही इतना स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस वस्तु या व्यक्ति की असंगति पर हमें हँसी आती है उसका संतुलित रूप हमारे मस्तिष्क में अवश्य होगा। इसलिए किसी वस्तु को कैसा होना चाहिए और वह कैसी है, इस बात में भेद करके हम हँसते हैं।

तनाव से मुक्ति का सिद्धांत—इस सिद्धांत के अनुसार हास्य का मुख्य कारण न उत्कर्ष की भावना है और न असंगति की चिंता वरन् संघर्ष और नियंत्रण से मुक्ति की भावना है। इस प्रकार हास्य की उत्पत्ति तब होती है जब अचानक किसी अवरोध से हमें मुक्ति मिल जाती है। अधिकतर घोर परिश्रम तथा थकान के कार्य में लगे व्यक्ति उस समय अट्टहास कर उठते हैं जबकि उनकी परेशानी अचानक समाप्त हो जाती है। इस सिद्धांत को विकसित करने और प्रधानता प्रदान करने में सिगमंड फ्रायड (१८५६-१९३९ ई०) की मनोवैज्ञानिक खोजों ने विशेष सहायता प्रदान की।

हम अपने मन की सभी प्रकार की वृत्तियों तथा अपने सभी आवेगों को समाज के बंधन के कारण रोके रखते हैं, विशेष रूप से इसलिए कि इनके प्रदर्शन करने पर समाज हमारा तिरस्कार न करे। फ्रायड ने इन आंतरिक निषेधों को, जो हमें अपने बहुत से आवेगों को खुली छूट देने से रोकते हैं, 'सेंसर' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार हास्य सेंसर को ठगने का एक साधन है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक मेक्डूगल (१८७१-१९३८ ई०) का कहना है कि मनुष्य सहानुभूतिशील प्राणी है। तनिक-तनिक-सी बात पर वह दुःखी हो उठता है। प्रकृति ने उसे दुःख से बचाने के लिए हास्य की योजना की है। किसी ऐसे अनिष्ट से, जिस पर रोना हम व्यर्थ समझते हैं, हँसी का उद्रेक होता है। हम यह जानते हैं कि यदि हम नहीं हँसते तो यही अनिष्ट हमारे लिए कष्टप्रद सिद्ध होता है।[१]

इस सिद्धांत के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि सभी प्रकार की हँसी का मूल वेदना नहीं होती। समाज में वेदना-शून्य हास्य भी हो सकता है। इसलिए इस सिद्धांत को पूर्ण नहीं कहा जा सकता परंतु इतना निश्चित है कि इस सिद्धांत की पृष्ठभूमि में अनेक रोमांसवादी कवियों के भाव कार्य करते हैं।[२]

यांत्रिक क्रिया—पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विवेचित हास्य का प्रकरण फ्रांसीसी विद्वान् बर्गसाँ के उल्लेख के बिना अधूरा ही रहेगा। बर्गसाँ (१८५९-१९४१ ई०) ने हास्य को परिभाषा में बाँधने के स्थान पर इस बात की खोज की कि हँसी क्यों आती है? उनके अनुसार हास्य के आलंबन को समाज-प्रिय (श्रद्धेय, श्रद्धाभाव समन्वित) नहीं होना चाहिए; हँसी उड़ाए जाने का उसे ज्ञान नहीं होना चाहिए एवं घटना, शब्दावली और पात्र में यांत्रिक-क्रिया (Automatism) आवश्यक है। डा० गुलाबराय ने शारीरिक यांत्रिक क्रिया का एक सुंदर उदाहरण दिया है—"फोन पर एक पुलिस इंसपेक्टर महोदय बात कर रहे थे। दूसरे

---

१. Some maladjurtment, Something inappropriate, which would displeasc us if we did not laugh at it. William Mc Dougall, Argument of Laughter p. 144

२. Our sincerest laughter with some pain in fraught.—Shelley
"To a skylark" from Palgravis Golden Treasury Book IV

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

छोर पर एक सुपरिंटेंडेंट साहब ने कहा कि मैं एस० पी० बोल रहा हूँ। तुरंत इंसपेक्टर साहब का हाथ ऊपर उठकर फौजी मुद्रा में हो गया।"[१]

हम क्यों हँसते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में विभिन्न विद्वानों के मतों से इतना अवश्य ही स्पष्ट होता है कि हास्य के मूल में कहीं न कहीं असंगति या वैषम्य अवश्य विद्यमान है।

हास्य के विभिन्न भेदोपभेदों में विनोद (ह्यमर) और व्यंग्य (सेटायर) दो भिन्न कोटि के भाव हैं परंतु इनमें कहीं न कहीं संबंध भी है।

विनोद करुणासिक्त हास है, सजलहास है, मुक्तहास है। इसमें आलोचना, उपहास तथा जुगुप्सा के लिए अवसर नहीं। यह हास्य हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति की हल्की-सी रेखा लिए रहता है। जहाँ हास्य में ममता रहती है, जिस पर हम हँसें वह हमारा प्रिय भी हो, ऐसा हास ही विनोद है। जार्ज मेरिडिथ ने लिखा है कि हास्यास्पद की हँसी उड़ाने तथा उससे प्रेम करने में संतुलन नहीं खोना चाहिए। जिसकी हँसी उड़ायी जाए, उससे प्रेम भी किया गाए।[२]

विनोद का कोई निहित लक्ष्य नहीं। उसका उपयोग सामाजिक अवगुणों के संशोधन के लिए नहीं होता। यह केवल आत्मनिवेदन है। यह उस शिक्षक की भाँति नहीं जो अपने विद्यार्थियों के सन्मुख प्रतिदिन नैतिकता के विषय पर तर्कपूर्ण भाषण करता है और अनैतिक कार्यों को देखकर क्रोध और भर्त्सनापूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है। श्रेष्ठ विनोद मैत्री का पोषक और वैमनस्य का शोषक होगा। वास्तव में विनोद मानसिक आनंद का अमरकोष है।

व्यंग्य का स्वरूप-विवेचन

मेरिडिथ ने व्यंग्य के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यदि आप हास्यास्पद का इतना मजाक उड़ाते हैं कि उसमें आपकी दयालुता समाप्त हो जाए तो आपका हास्य-व्यंग्य की कोटि में आ जाएगा।[३]

प्रो० जगदीश पाण्डेय ने व्यंग्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, "जब हास्य विशुद्ध आनंद या रंजन की भावना को छोड़कर प्रयोजननिष्ठ हो जाता है, वहाँ वह उपहास (व्यंग्य) का मार्ग पकड़ लेता है। हास्य के आलंबन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य उपहास कहलाता है।"[४]

इस प्रकार व्यंग्य किसी व्यक्ति, समाज, संस्था अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा उनके दुर्गुणों का उद्घाटन करता है, उन पर आक्षेप करता है। इसका लक्ष्य केवल हँसाना मात्र नहीं होता वरन् इसका अभिप्राय किसी वस्तु का विरोध करना भी होता है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य की प्रयोजन निष्ठता को प्रकट करते हुए लिखा है कि "सच्चा

---

१. हिंदुस्तान-व्यंग्यविनोद विशेषांक, २८ मार्च १९५४, रसराज हास्य और उसके विभिन्न रूप।
२. Meridith, An Essay on comedy, p. 134
३. Meridith, An Essay on comedy, p. 133
४. हास्य के सिद्धांत और मानस में हास्य, पृ० १०१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों को सही रूप में देखता है और अपने व्यंग्यवाण से उसे वेधता रहता है। उसका उद्देश्य समाज का परिशोधन होता है। वह व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता वल्कि उन छिछली मान्यताओं का पर्दाफाश करता है जिसमें औसत या उसके नीचे का मनुष्य उलझकर असत् आचरण से विरत होने के प्रलोभन का शिकार होता रहता।[१]

व्यंग्यकार प्रायः छिपकर प्रहार करता है अतः व्यंग्य करते समय वह सुरक्षित रहता है। उसके वाक्य से दुहरे अर्थ की प्रतीति होती है। अतः वह आहत से यह कह सकता है कि मैं आप पर नहीं वरन् किसी अन्य पर प्रहार कर रहा हूँ। परंतु व्यंग्य खतरे से खाली नहीं है। तनिक सी देर में ही यह अश्लीलता की परिधि में आ सकता है और साधारण व्यवहार की सीमा का उल्लंघन कर सकता है।

साधारण रूप से व्यंग्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक विषाक्त और दूसरा मधुर। विषाक्त में व्यंग्य कठोर होकर विषैले वाण जैसा आक्रमण करता है जवकि मधुर में विनोद अथवा मीठे कटाक्ष से लज्जित। एक में विरोध की भावना होती है तो दूसरे में मीठी मार। श्रेष्ठ व्यंग्य में परिहास और आलोचना दोनों का समन्वय होता है। रिचर्ड गारनेट के अनुसार हास्य के विना व्यंग्य गाली के समान है।[२] यदि व्यंग्य में केवल वैर या शत्रुता होगी तो उसमें इतनी हिंसा आ जाएगी कि हँसी के कहीं दर्शन न होंगे। इसलिए व्यंग्य का रूप हास्य मिश्रित होना चाहिए क्योंकि मखौल उड़ाकर किसी के हृदय को दुःखाया जा सकता है परंतु व्यंग्यात्मक हास्य द्वारा त्रुटि वताकर भी व्यंग्य के आलंवन के हृदय को दुखाया नहीं जाता वरन् वह स्वयं ही अपनी गलती का अनुभव करके अपने किए पर जी खोलकर हँसता है और अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। किसी भी व्यंग्यात्मक-हास्य-लेखक को यह वात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि उसका उद्देश्य स्वस्थ टीका-टिप्पणी को हास्य के आवरण में लपेटकर इस प्रकार प्रस्तुत करना है जिस प्रकार रोगी को स्वास्थ्यलाभ के लिए 'शुगर कोटेड कुनैन' दी जाती है।

व्यंग्य किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य करके न किया जाए। व्यंग्य के प्रत्येक दर्शक या श्रोता को ऐसा आभास होना चाहिए कि यह व्यंग्य उसी को लक्ष्य करके किया जा रहा है।

व्यंग्य का क्षेत्र केवल वर्तमान होता है। वर्तमान पर किया गया व्यंग्य उपयोगी और प्रभावकारी होता है। किसी मृत व्यक्ति पर किए गए व्यंग्य को हम श्रेष्ठ नहीं मानते। इस दृष्टि से अतीत व्यंग्य की सीमा से वाहर आ जाता है। भविष्य के लिए भी वर्तमान स्थिति का आश्रय लेना होता है। इसलिए वर्तमान रूढ़ियों, समस्याओं और व्यक्तियों पर किया गया व्यंग्य ही श्रेष्ठ होता है।

हास्य और व्यंग्य में अंतर

हास्य और व्यंग्य के विवेचन के अनंतर यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि व्यंग्य भी हास्य का एक अंग है तथापि दोनों में कुछ ऐसे मूलभूत अंतर हैं जिनकी ओर दृष्टिपात करना परमावश्यक है।

व्यंग्य की प्रयोजननिष्ठता स्पष्ट है। कोई भी व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों, असंगतियों, धार्मिक पाखंडों, आडंवरों, मिथ्याचारों, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि को अपना लक्ष्य वनाकर व्यंग्य का प्रयोग करता

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वेढव वनारसी अंक, जनवरी ६९, पृ० २२।

२. Encyclopedia Britannica, 14th Edition.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। इस प्रयोग में प्रहार की भावना स्पष्ट रूप से निहित रहती है और उद्देश्य इन बुराइयों को समाप्त करना होता है परंतु हास्य का कोई प्रयोजन अथवा लक्ष्य नहीं होता। इसमें मात्र आनंद की भावना प्रधान होती है। समाज-सुधार इसका उद्देश्य नहीं होता।

हास्य में जहाँ सहानुभूति की स्निग्धधारा प्रवाहित होती रहती है वहाँ व्यंग्य, घृणा, क्रोध, विरोध आदि प्रदर्शित करने का अस्त्र मात्र है। कई बार व्यंग्य का अनुचित प्रयोग करके लेखक इतनी मार्मिक, तीखी और कटु आलोचना करता है कि श्रोता-पाठक तिलमिला उठता है। उसमें सहानुभूति, दया, उदारता के भाव समाप्त हो जाते हैं, यहाँ तक कि व्यंग्य निंदा की सीमा तक आ जाता है। परंतु हास्य में असहिष्णुता अथवा तिरस्कार नहीं होता। यह हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति की हल्की-सी रेखा लिए रहता है। जार्ज मेरिडिथ ने तो हास्य के आलंबन के प्रति करुणा होन भी आवश्यक माना है।[१]

हास्य का उद्देश्य मनोरंजन और आनंद है तो व्यंग्य मूलतः हास्यात्मक प्रहार है जो तीखी चोट करता है। हास्य के लिए हास्य की भूमिका बनाई जा सकती है परंतु व्यंग्य के लिए व्यंग्य की भूमिका वैमनस्य में परिवर्तित हो सकती है। हास्य सहज व्यक्तित्व का विकसित रूप है तो व्यंग्य गंभीर व्यक्तित्व का तीखा स्वभाव। हास्य मन का विलास है तो व्यंग्य मन की प्रहार आयोजना। एक में मीठापन है तो दूसरे में चर-पराहट।

हास्य-व्यंग्य का संबंध

हास्य और व्यंग्य के पारस्परिक अंतर को देखकर मन में ऐसी धारणा बन सकती है कि इन दोनों का परस्पर संबंध नहीं हो सकता, दोनों का प्रयोग और व्यवहार-क्षेत्र अलग-अलग है क्योंकि एक मीठी शक्कर है तो दूसरी कुनैन की कड़वी गोली। कड़वे-मीठे का क्या साथ? परंतु ऐसी धारणा नितांत भ्रमपूर्ण है।

हम यह मानते हैं कि हास्य का व्यापार आनंद प्रदान करना है। हम अपनी निराशा और व्यथित भावना का निराकरण करने के लिए हास्य का आश्रय ग्रहण करते हैं। परंतु हर समय बिना किसी कारण हँसने वाले व्यक्ति को हम पागल की संज्ञा देते हैं। ऐसा हास्य अनुपयोगी श्रेणी में गिना जाता है और परिपक्व बुद्धि का कोई व्यक्ति उससे लाभ नहीं उठा सकता।

दूसरी ओर व्यंग्य का लक्ष्य समाज-सुधार है। इस व्यंग्यकार समाज की गंदगी और सड़ांध को दूर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। परंतु यह कार्य इस प्रकार किया जाए कि दूसरों पर उसकी छींटें पड़ें या व्यक्ति मुंह सिकोड़ने लगें तो सफाई करने का यह ठीक ढंग नहीं होगा अर्थात् यदि समाज-सुधार की भावना से किया गया व्यंग्य निंदा की कोटि तक पहुँच गया है तो उसका उतना अधिक सौम्य प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना सरलता और सादगी से समझाने पर पड़ेगा। एक बात और भी है। हास्य और व्यंग्य दोनों को ही समझने वाले बौद्धिक वर्ग के व्यक्ति होते हैं। इसलिए कोई भी वर्ग निंदा सहन नहीं करेगा और परिणाम परस्पर कटुता और शत्रुता में बदल जाएगा।

हास्य को हम शक्कर के समान मीठा मानते हैं परंतु केवल मीठे का प्रयोग भी हमारे स्वास्थ्य के लिए

---

१. Meridith, An Essay on comedy, p 137

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों को सही रूप में देखता है और अपने व्यंग्यवाण से उसे वेधता रहता है। उसका उद्देश्य समाज का परिशोधन होता है। वह व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता वल्कि उन छिछली मान्यताओं का पर्दाफाश करता है जिसमें औसत या उसके नीचे का मनुष्य उलझकर असत् आचरण से विरत होने के प्रलोभन का शिकार होता रहता।[१]

व्यंग्यकार प्रायः छिपकर प्रहार करता है अतः व्यंग्य करते समय वह सुरक्षित रहता है। उसके वाक्य से दुहरे अर्थ की प्रतीति होती है। अतः वह आहत से यह कह सकता है कि मैं आप पर नहीं वरन् किसी अन्य पर प्रहार कर रहा हूँ। परंतु व्यंग्य खतरे से खाली नहीं है। तनिक सी देर में ही यह अश्लीलता की परिधि में आ सकता है और साधारण व्यवहार की सीमा का उल्लंघन कर सकता है।

साधारण रूप से व्यंग्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक विषाक्त और दूसरा मधुर। विषाक्त में व्यंग्य कठोर होकर विषैले वाण जैसा आक्रमण करता है जवकि मधुर में विनोद अथवा मीठे कटाक्ष से लज्जित। एक में विरोध की भावना होती है तो दूसरे में मीठी मार। श्रेष्ठ व्यंग्य में परिहास और आलोचना दोनों का समन्वय होता है। रिचर्ड गारनेट के अनुसार हास्य के विना व्यंग्य गाली के समान है।[२] यदि व्यंग्य में केवल वैर या शत्रुता होगी तो उसमें इतनी हिंसा आ जाएगी कि हँसी के कहीं दर्शन न होंगे। इसलिए व्यंग्य का रूप हास्य मिश्रित होना चाहिए क्योंकि मखौल उड़ाकर किसी के हृदय को दुःखाया जा सकता है परंतु व्यंग्यात्मक हास्य द्वारा त्रुटि वताकर भी व्यंग्य के आलंवन के हृदय को दुखाया नहीं जाता वरन् वह स्वयं ही अपनी गलती का अनुभव करके अपने किए पर जी खोलकर हँसता है और अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। किसी भी व्यंग्यात्मक-हास्य-लेखक को यह वात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि उसका उद्देश्य स्वस्थ टीका-टिप्पणी को हास्य के आवरण में लपेटकर इस प्रकार प्रस्तुत करना है जिस प्रकार रोगी को स्वास्थ्यलाभ के लिए 'शुगर कोटेड कुनैन' दी जाती है।

व्यंग्य किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य करके न किया जाए। व्यंग्य के प्रत्येक दर्शक या श्रोता को ऐसा आभास होना चाहिए कि यह व्यंग्य उसी को लक्ष्य करके किया जा रहा है।

व्यंग्य का क्षेत्र केवल वर्तमान होता है। वर्तमान पर किया गया व्यंग्य उपयोगी और प्रभावकारी होता है। किसी मृत व्यक्ति पर किए गए व्यंग्य को हम श्रेष्ठ नहीं मानते। इस दृष्टि से अतीत व्यंग्य की सीमा से वाहर आ जाता है। भविष्य के लिए भी वर्तमान स्थिति का आश्रय लेना होता है। इसलिए वर्तमान रूढ़ियों, समस्याओं और व्यक्तियों पर किया गया व्यंग्य ही श्रेष्ठ होता है।

हास्य और व्यंग्य में अंतर

हास्य और व्यंग्य के विवेचन के अनंतर यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि व्यंग्य भी हास्य का एक अंग है तथापि दोनों में कुछ ऐसे मूलभूत अंतर हैं जिनकी ओर दृष्टिपात करना परमावश्यक है।

व्यंग्य की प्रयोजननिष्ठता स्पष्ट है। कोई भी व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों, असंगतियों, धार्मिक पाखंडों, आडंवरों, मिथ्याचारों, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि को अपना लक्ष्य वनाकर व्यंग्य का प्रयोग करता

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वेढव वनारसी अंक, जनवरी ६९, पृ० २२।

२. Encyclopedia Britannica, 14th Edition.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। इस प्रयोग में प्रहार की भावना स्पष्ट रूप से निहित रहती है और उद्देश्य इन बुराइयों को समाप्त करना होता है परंतु हास्य का कोई प्रयोजन अथवा लक्ष्य नहीं होता। इसमें मात्र आनंद की भावना प्रधान होती है। समाज-सुधार इसका उद्देश्य नहीं होता।

हास्य में जहाँ सहानुभूति की स्निग्धधारा प्रवाहित होती रहती है वहाँ व्यंग्य, घृणा, क्रोध, विरोध आदि प्रदर्शित करने का अस्त्र मात्र है। कई बार व्यंग्य का अनुचित प्रयोग करके लेखक इतनी मार्मिक, तीखी और कटु आलोचना करता है कि श्रोता-पाठक तिलमिला उठता है। उसमें सहानुभूति, दया, उदारता के भाव समाप्त हो जाते हैं, यहाँ तक कि व्यंग्य निंदा की सीमा तक आ जाता है। परंतु हास्य में असहिष्णुता अथवा तिरस्कार नहीं होता। यह हृदयहीनता का हास्य नहीं होता वरन् प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति की हल्की-सी रेखा लिए रहता है। जार्ज मेरिडिथ ने तो हास्य के आलंबन के प्रति करुणा होन भी आवश्यक माना है।[१]

हास्य का उद्देश्य मनोरंजन और आनंद है तो व्यंग्य मूलतः हास्यात्मक प्रहार है जो तीखी चोट करता है। हास्य के लिए हास्य की भूमिका बनाई जा सकती है परंतु व्यंग्य के लिए व्यंग्य की भूमिका वैमनस्य में परिवर्तित हो सकती है। हास्य सहज व्यक्तित्व का विकसित रूप है तो व्यंग्य गंभीर व्यक्तित्व का तीखा स्वभाव। हास्य मन का विलास है तो व्यंग्य मन की प्रहार आयोजना। एक में मीठापन है तो दूसरे में चर-पराहट।

हास्य-व्यंग्य का संबंध

हास्य और व्यंग्य के पारस्परिक अंतर को देखकर मन में ऐसी धारणा बन सकती है कि इन दोनों का परस्पर संबंध नहीं हो सकता, दोनों का प्रयोग और व्यवहार-क्षेत्र अलग-अलग है क्योंकि एक मीठी शक्कर है तो दूसरी कुनैन की कड़वी गोली। कड़वे-मीठे का क्या साथ? परंतु ऐसी धारणा नितांत भ्रमपूर्ण है।

हम यह मानते हैं कि हास्य का व्यापार आनंद प्रदान करना है। हम अपनी निराशा और व्यथित भावना का निराकरण करने के लिए हास्य का आश्रय ग्रहण करते हैं। परंतु हर समय बिना किसी कारण हँसने वाले व्यक्ति को हम पागल की संज्ञा देते हैं। ऐसा हास्य अनुपयोगी श्रेणी में गिना जाता है और परिपक्व बुद्धि का कोई व्यक्ति उससे लाभ नहीं उठा सकता।

दूसरी ओर व्यंग्य का लक्ष्य समाज-सुधार है। इस व्यंग्यकार समाज की गंदगी और सड़ांध को दूर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। परंतु यह कार्य इस प्रकार किया जाए कि दूसरों पर उसकी छींटें पड़ें या व्यक्ति मुंह सिकोड़ने लगें तो सफाई करने का यह ठीक ढंग नहीं होगा अर्थात् यदि समाज-सुधार की भावना से किया गया व्यंग्य निंदा की कोटि तक पहुँच गया है तो उसका उतना अधिक सौम्य प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना सरलता और सादगी से समझाने पर पड़ेगा। एक बात और भी है। हास्य और व्यंग्य दोनों को ही समझने वाले बौद्धिक वर्ग के व्यक्ति होते हैं। इसलिए कोई भी वर्ग निंदा सहन नहीं करेगा और परिणाम परस्पर कटुता और शत्रुता में बदल जाएगा।

हास्य को हम शक्कर के समान मीठा मानते हैं परंतु केवल मीठे का प्रयोग भी हमारे स्वास्थ्य के लिए

---

१. Meridith, An Essay on comedy, p 137

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हानिकर होगा, दूसरी ओर जूड़ी को दूर करने वाली कुनैन की कड़वी गोलियाँ भी सीधे ढंग से निगलना कठिन होता है अतः मेरे विचार से यदि समाज की जूड़ी को दूर करने के लिए व्यंग्य रूपी कुनैन की गोलियाँ हास्य की शर्करा में लपेटकर खिलाई जाएं तो बिना किसी कष्ट के समाज व व्यक्तियों का कल्याण होगा।

महात्मा कबीर ने अपने काव्य में समाज पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किए हैं। यहाँ तक कि उनकी चोटें भीगे कपड़े से भी अधिक कठोर हो गई हैं। परंतु क्या हम उनके इतने तीक्ष्ण व्यंग्यों को पचा पाए? यदि कबीर ने अपने इन व्यंग्यों को हास्य के आवरण में लपेटकर समाज को दिया होता तो उसका रूप आज दूसरा ही होता।

वास्तव में वही व्यंग्य श्रेष्ठ होता है जिसका आलंबन भी उस पर हँस दे और बुरा न माने। व्यंग्य इस प्रकार का होना चाहिए जिस प्रकार खुजली जो हाथ को काटती हुई सी लगती है परंतु काटती नहीं। मनुष्य को अनुभव होता है कि कोई चीज धीरे-धीरे उसके हाथ को काट रही है तो भी उसे उस कटन में आनंद का अनुभव होता है। इसी प्रकार के व्यंग्य से मनुष्य और समाज का सुधार हो सकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उपसर्ग अनुशीलन

डॉ० आनन्दस्वरूप पाठक

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी० एच डी०, साहित्यरत्न साहित्याचार्य

शब्दों में विशिष्ट अर्थों तथा अर्थच्छायाओं (Shades) को निहित करने वाला प्रमुख कारक (Factor) उपसर्ग है। उपसर्ग शब्द, उप उपसर्गपूर्वक सृज् धातु में घञ् प्रत्यय का योग करने से बना है, इसका अर्थ निकट छोड़ा हुआ होता है। संस्कृत में उपसर्ग के लिए गि (देवनंदिन) प्रादि (चन्द्र) और उपेन्द्र (हरिनामामृत व्याकरण, जीव गोस्वामी) शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार उपसर्ग अव्यय का एक भेद है जिसका प्रयोग धातु के पूर्व किया जाता है। पाणिनी का "उपसर्गाः क्रियायोगे" और वार्तिककार का "क्रियाविशेषकः उपसर्ग" इसी तथ्य के परिचायक हैं। उपसर्गों के प्रयोग से धातु के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। निम्नलिखित पंक्तियों में यही भाव सोदाहरण व्यक्त किया गया है :—

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार संहार विहार परिहारवत्॥"

यास्क के मतानुसार भी उपसर्ग अर्थविशेष के आधानकर्ता हैं :—

"आख्यातसुपगृह्यार्थं विशेषनिभे तस्यैव सृजन्तीत्युपसर्गाः॥"

शाकटायन के धातुपाठ में उपसर्गों के निम्नलिखित तीन कार्य बतलाये गये हैं :—

"धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गस्त्रिधा गतिः॥"

वर्द्धमान (१) धात्वर्थ में परिवर्तन (२) धात्वर्थ का अनुवर्त्तन (३) धातु के अर्थ में विशिष्ट अर्थ का द्योतन तथा (४) उपसर्ग का निरर्थक प्रयोग, ये चार उपसर्ग के कार्य मानते हैं, जैसा कि उनकी इस कारिका से सुस्पष्ट है :—

"धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेवविशिनष्टयोऽनर्थकोन्यः प्रयुज्यते॥"

उपसर्गों के कार्य से ही सम्बन्धित प्रश्न उपसर्गों के अर्थों का है। उपसर्गयुक्त विविध अर्थवान शब्दों को देखकर इस शंका का उत्पन्न हो जाना सहज ही है कि उपसर्ग स्वयं अर्थवान होते हैं अथवा नहीं। यही प्रश्न संस्कृत वैयाकरणों के समक्ष भी उपस्थित हुआ था और वे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। शाकटायन, भर्तृहरि कैयट तथा नागेशभट्ट के मतानुसार उपसर्गों का अपना कोई अर्थ नहीं होता है किन्तु गार्ग्य और यास्क उपसर्गों को अर्थयुक्त मानते हैं। शाकटायन का अभिमत है कि उपसर्ग स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होकर किसी अर्थ का प्रकाशन नहीं करते हैं वे सर्वदा आख्यातों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं अतएव उनका अपना कोई अर्थ नहीं है। स्पष्ट शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि उपसर्ग अर्थ के द्योतक हैं वाचक नहीं हैं। उपसर्ग जिन क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं उन्हीं के अर्थों को द्योतित करते हैं, स्वयं किसी ऐसे अर्थ का कथन नहीं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करते जो उस क्रिया से भिन्न हो जिसके साथ वे प्रयोग में लाए गये हैं। अतएव सुस्पष्ट है कि उपसर्ग के लगने से जिस अर्थ का प्रकाशन होता है वह उपसर्ग का अर्थ न होकर आख्यात का ही अर्थ होता है। उपसर्ग तो अर्थ का द्योतन उस प्रकार करते हैं जिस भाँति कि घर में रखा हुआ सामान दीपक द्वारा द्योतित होकर दृष्टिगत होने लगता है, परन्तु अन्धकार में भी वह सामान वहीं विद्यमान होता है। अतएव उपसर्गों को अर्थ का वाचक न मानकर शाकटायन ने द्योतक ही माना है। उनका मत है कि :—

"न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुः।"

नैरुक्त आचार्य गार्ग्य का अभिमत है कि नाम, आख्यात आदि पदों की भाँति उपसर्गों के भी स्वतंत्र अर्थ होते हैं, उपसर्ग अर्थ के वाचक हैं। उनका तर्क है कि आख्यातों में उपसर्गों के संयोग से जो अर्थभिन्नता आ जाती है वह उपसर्गों के वियोग से हट जाती है; अतएव अन्वयव्यतिरेक से वही उपसर्ग का अर्थ है। ऋक् प्रातिशाख्यकार भी उपसर्गों को अर्थ का वाचक ही मानते हैं। पदों की परिभाषा देते हुए उन्होंने उपसर्गों के इस पक्ष की ओर भी इंगित किया है :—

"क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्वाभिधायकं नाम निपात पादपूरणम्॥"

और भी—"उपसर्गो विशेषकृत" (वाजसनेयी प्रातिशाख्य ८।५४)

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने उक्त दोनों मतों का उल्लेख करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि धातु और उपसर्ग मिलकर अर्थ का बोध कराते हैं। उपसर्ग धातु में शक्ति का आधान करते हैं अतएव उपसर्गों को सहकारी समझना चाहिए :—

"स वाचको विशेषाणां सम्भवाद् द्योतकोऽपि वा।
शक्त्याधानाय धातोर्वा सहकारी प्रयुज्यते॥" (वाक्य, २।१९०)

उपसर्गों को अर्थ के द्योतक मानने वालों का पक्ष प्रबलतर है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने "गतिर्गतौ" सूत्र के भाष्य में यह स्पष्ट किया है कि धातु में ही उपसर्गों का अर्थ अन्तर्निहित रहता है, उपसर्ग उसे द्योतित करते हैं। "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" से भी यही ध्वनि निकलती है कि धातुपाठ में परिगणित अर्थों से इतर भी धातुओं के अर्थ होते हैं। उपसर्ग उन प्रच्छन्न अर्थों को मात्र द्योतित करते हैं।

गंगेश ने तत्वचिंतामणि में नैयायिकों के मत का निर्देश देते हुए उपसर्गों को अर्थ का द्योतक ही माना है। उन्होंने द्योतकता की व्याख्या करते हुए बताया है कि, इसका अर्थ तात्पर्यग्राहकता शक्ति है, 'स्था' धातु का अर्थ ठहरना है, उसी में 'प्र' उपसर्ग लगाने से प्रस्थान का अर्थ 'जाना' हो जाता है। वे इस अर्थ विपर्यय को उपसर्गों का द्योतकत्व या तात्पर्यग्राहकता शक्ति मानते हैं, उनका मत है कि 'स्था' धातु का 'गमन' भी एक अर्थ है। गंगेश का मत है कि :—

"उपसर्गास्तु द्योतकाः न वाचकाः।"

(तत्वचिंतामणि)

पाणिनी का सूत्र "अधिपरी अनर्थकौ" (अष्टा० १।४।९३) भी इसी बात को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करता है, अध्यागच्छति, पर्यागच्छति दोनों का अर्थ 'आता है' केवल इतना ही है, यहाँ उपसर्गों के प्रयोग से कोई अर्थान्तर नहीं हुआ है।

अर्थद्योतकत्व सिद्धान्त के प्रतिपादक शाकटायन का यह कथन कि उपसर्ग स्वतंत्ररूप में अर्थ का कथन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नहीं करते हैं लौकिक संस्कृत और हिन्दी आदि में सत्य है, पर वैदिक संस्कृत में उक्त कथन के अपवाद भी मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"उद उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं विमध्यमं श्रथाय वयम् आदित्या व्रते तवानागसोऽदियते स्याम्"

इस मंत्र में उत् तथा अव् उपसर्ग ऊपर और नीचे खोलो अर्थ के वाचक हैं। यास्क गार्ग्य के मत के पोषक हैं, उन्होंने लिखा है कि उपसर्ग विविध प्रकार के अर्थों को प्रकृष्ट रूप से कहते हैं निरुक्त में यास्क ने अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

"एवम् उच्चावचान् अर्थान् प्राहुः।"

संस्कृत में निम्नलिखित उपसर्ग माने गये हैं :—

"प्र, परा; अप, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत; अभि, प्रति, परि, उप ।

संस्कृत में किसी आख्यात के पूर्व तीन उपसर्गों तक का प्रयोग होता है, किन्तु कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें चार-चार उपसर्ग भी लगते हैं। जैसे :—

संव्यपाश्रित=सं+वि+अप+आ+श्रि

समभिव्याहरण—सम+अभि+वि+आ+हृ+अन्

कभी कभी एक उपसर्ग का भी एक ही शब्द में दो बार प्रयोग देखा गया है :—

प्र-प्रजनन　　उपोपवेशन

अध्यधिक्षेप　　अत्यतिक्रम

वस्तुतः संस्कृत और हिन्दी की उपसर्ग सम्बन्धी परिभाषा में पर्याप्त अन्तर है, इतना ही नहीं वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की उपसर्ग सम्बन्धी मान्यताएँ भी पृथक्-पृथक् हैं। लौकिक संस्कृत के विषय में पाणिनी का नियम है "ते प्राग्धातो" (१।४।७९) अर्थात् उपसर्ग का प्रयोग धातु से अव्यवहित पूर्व में होना चाहिए। किन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु से पृथक् हुआ है और ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु के पश्चात् हुआ है महाभारत में भी ऐसे कतिपय प्रयोग मिलते हैं उदाहरण प्रस्तुत है :—

(क) पूर्व व्यवहित प्रयोग

तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते (ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१)
अधिविश्वे विषक्ताः (महा० आदि० ३।६२)
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचयत् (महा०द्रोण० २३।८१)

(ख) पर व्यवहित प्रयोग

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं सं स्थास्नुचारिषु। (महा० द्रोण० १०।६८)

वैदिक भाषा में ऐसे उदाहरणों की बहुलता को देखकर पाणिनी ने "छन्दसि परेऽपि", "व्यवहिताश्च" (१।४।८०, ८१) इन दो सूत्रों की रचना की ओर उनके पर प्रयोग तथा व्यवहित प्रयोग को भी विहित माना है। लौकिक संस्कृत में वे उपसर्ग का प्रयोग नाम (संज्ञादि) के साथ भी करते हैं किन्तु उस स्थिति में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करते जो उस क्रिया से भिन्न हो जिसके साथ वे प्रयोग में लाए गये हैं। अतएव सुस्पष्ट है कि उपसर्ग के लगने से जिस अर्थ का प्रकाशन होता है वह उपसर्ग का अर्थ न होकर आख्यात का ही अर्थ होता है। उपसर्ग तो अर्थ का द्योतन उस प्रकार करते हैं जिस भाँति कि घर में रखा हुआ सामान दीपक द्वारा द्योतित होकर दृष्टिगत होने लगता है, परन्तु अन्धकार में भी वह सामान वहीं विद्यमान होता है। अतएव उपसर्गों को अर्थ का वाचक न मानकर शाकटायन ने द्योतक ही माना है। उनका मत है कि :—

"न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुः।"

नैरुक्त आचार्य गार्ग्य का अभिमत है कि नाम, आख्यात आदि पदों की भाँति उपसर्गों के भी स्वतंत्र अर्थ होते हैं, उपसर्ग अर्थ के वाचक हैं। उनका तर्क है कि आख्यातों में उपसर्गों के संयोग से जो अर्थभिन्नता आ जाती है वह उपसर्गों के वियोग से हट जाती है; अतएव अन्वयव्यतिरेक से वही उपसर्ग का अर्थ है। ऋक् प्रातिशाख्यकार भी उपसर्गों को अर्थ का वाचक ही मानते हैं। पदों की परिभाषा देते हुए उन्होंने उपसर्गों के इस पक्ष की ओर भी इंगित किया है :—

"क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्वाभिधायकं नाम निपात पादपूरणम्॥"

और भी—"उपसर्गो विशेषकृत" (वाजसनेयी प्रातिशाख्य ८।५४)

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने उक्त दोनों मतों का उल्लेख करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि धातु और उपसर्ग मिलकर अर्थ का बोध कराते हैं। उपसर्ग धातु में शक्ति का आधान करते हैं अतएव उपसर्गों को सहकारी समझना चाहिए :—

"स वाचको विशेषाणां सम्भवाद् द्योतकोऽपि वा।
शक्त्याधानाय धातोर्वा सहकारी प्रयुज्यते॥" (वाक्य, २।१९०)

उपसर्गों को अर्थ के द्योतक मानने वालों का पक्ष प्रबलतर है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने "गतिर्गतौ" सूत्र के भाष्य में यह स्पष्ट किया है कि धातु में ही उपसर्गों का अर्थ अन्तर्निहित रहता है, उपसर्ग उसे द्योतित करते हैं। "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" से भी यही ध्वनि निकलती है कि धातुपाठ में परिगणित अर्थों से इतर भी धातुओं के अर्थ होते हैं। उपसर्ग उन प्रच्छन्न अर्थों को मात्र द्योतित करते हैं।

गंगेश ने तत्वचिंतामणि में नैयायिकों के मत का निर्देश देते हुए उपसर्गों को अर्थ का द्योतक ही माना है। उन्होंने द्योतकता की व्याख्या करते हुए बताया है कि, इसका अर्थ तात्पर्यग्राहकता शक्ति है, 'स्था' धातु का अर्थ ठहरना है, उसी में 'प्र' उपसर्ग लगाने से प्रस्थान का अर्थ 'जाना' हो जाता है। वे इस अर्थ विपर्यय को उपसर्गों का द्योतकत्व या तात्पर्यग्राहकता शक्ति मानते हैं, उनका मत है कि 'स्था' धातु का 'गमन' भी एक अर्थ है। गंगेश का मत है कि :—

"उपसर्गास्तु द्योतकाः न वाचकाः।"

(तत्वचिंतामणि)

पाणिनी का सूत्र "अधिपरी अनर्थकौ" (अष्टा० १।४।९३) भी इसी बात को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करता है, अध्यागच्छति, पर्यागच्छति दोनों का अर्थ 'आता है' केवल इतना ही है, यहाँ उपसर्गों के प्रयोग से कोई अर्थान्तर नहीं हुआ है।

अर्थद्योतकत्व सिद्धान्त के प्रतिपादक शाकटायन का यह कथन कि उपसर्ग स्वतंत्ररूप में अर्थ का कथन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नहीं करते हैं लौकिक संस्कृत और हिन्दी आदि में सत्य है, पर वैदिक संस्कृत में उक्त कथन के अपवाद भी मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"उद उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं विमध्यमं श्रथाय वयम् आदित्या व्रते तवानागसोऽदियते स्याम्"

इस मंत्र में उत् तथा अव् उपसर्ग ऊपर और नीचे खोलो अर्थ के वाचक हैं। यास्क गार्ग्य के मत के पोषक हैं, उन्होंने लिखा है कि उपसर्ग विविध प्रकार के अर्थों को प्रकृष्ट रूप से कहते हैं निरुक्त में यास्क ने अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

"एवम् उच्चावचान् अर्थान् प्राहुः।"

संस्कृत में निम्नलिखित उपसर्ग माने गये हैं :—

"प्र, प्रा; अप, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत; अभि, प्रति, परि, उप ।

संस्कृत में किसी आख्यात के पूर्व तीन उपसर्गों तक का प्रयोग होता है, किन्तु कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें चार-चार उपसर्ग भी लगते हैं। जैसे :—

संव्यपाश्रित=सं+वि+अप+आ+श्रि

समभिव्याहरण—सम+अभि+वि+आ+हृ+अन्

कभी कभी एक उपसर्ग का भी एक ही शब्द में दो बार प्रयोग देखा गया है :—

प्र-प्रजनन　　उपोपवेशन

अध्यधिक्षेप　　अत्यतिक्रम

वस्तुतः संस्कृत और हिन्दी की उपसर्ग सम्बन्धी परिभाषा में पर्याप्त अन्तर है, इतना ही नहीं वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की उपसर्ग सम्बन्धी मान्यताएँ भी पृथक्-पृथक् हैं। लौकिक संस्कृत के विषय में पाणिनी का नियम है "ते प्राग्धातोः" (१।४।७९) अर्थात् उपसर्ग का प्रयोग धातु से अव्यवहित पूर्व में होना चाहिए। किन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु से पृथक् हुआ है और ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु के पश्चात् हुआ है महाभारत में भी ऐसे कतिपय प्रयोग मिलते हैं उदाहरण प्रस्तुत है :—

(क) पूर्व व्यवहित प्रयोग

तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते (ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१)

अधिविश्वे विवक्ताः (महा० आदि० ३।६२)

सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचयत् (महा०द्रोण० २३।८१)

(ख) पर व्यवहित प्रयोग

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं सं स्थास्नुचारिषु। (महा० द्रोण० १०।६८)

वैदिक भाषा में ऐसे उदाहरणों की बहुलता को देखकर पाणिनी ने "छन्दसि परेऽपि", "व्यवहिताश्च" (१।४।८०, ८१) इन दो सूत्रों की रचना की ओर उनके पर प्रयोग तथा व्यवहित प्रयोग को भी विहित माना है। लौकिक संस्कृत में वे उपसर्ग का प्रयोग नाम (संज्ञादि) के साथ भी करते हैं किन्तु उस स्थिति में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करते जो उस क्रिया से भिन्न हो जिसके साथ वे प्रयोग में लाए गये हैं। अतएव सुस्पष्ट है कि उपसर्ग के लगने से जिस अर्थ का प्रकाशन होता है वह उपसर्ग का अर्थ न होकर आख्यात का ही अर्थ होता है। उपसर्ग तो अर्थ का द्योतन उस प्रकार करते हैं जिस भाँति कि घर में रखा हुआ सामान दीपक द्वारा द्योतित होकर दृष्टिगत होने लगता है, परन्तु अन्धकार में भी वह सामान वहीं विद्यमान होता है। अतएव उपसर्गों को अर्थ का वाचक न मानकर शाकटायन ने द्योतक ही माना है। उनका मत है कि :—

"न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुः।"

नैरुक्त आचार्य गार्ग्य का अभिमत है कि नाम, आख्यात आदि पदों की भाँति उपसर्गों के भी स्वतंत्र अर्थ होते हैं, उपसर्ग अर्थ के वाचक हैं। उनका तर्क है कि आख्यातों में उपसर्गों के संयोग से जो अर्थभिन्नता आ जाती है वह उपसर्गों के वियोग से हट जाती है; अतएव अन्वयव्यतिरेक से वही उपसर्ग का अर्थ है। ऋक् प्रातिशाख्यकार भी उपसर्गों को अर्थ का वाचक ही मानते हैं। पदों की परिभाषा देते हुए उन्होंने उपसर्गों के इस पक्ष की ओर भी इंगित किया है :—

"क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्वाभिधायकं नाम निपात पादपूरणम्॥"

और भी—**"उपसर्गो विशेषकृत"** (वाजसनेयी प्रातिशाख्य ८।५४)

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने उक्त दोनों मतों का उल्लेख करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि धातु और उपसर्ग मिलकर अर्थ का बोध कराते हैं। उपसर्ग धातु में शक्ति का आधान करते हैं अतएव उपसर्गों को सहकारी समझना चाहिए :—

"स वाचको विशेषाणां सम्भवाद् द्योतकोऽपि वा।
शक्त्याधानाय धातोर्वा सहकारी प्रयुज्यते॥" (वाक्य, २।१९०)

उपसर्गों को अर्थ के द्योतक मानने वालों का पक्ष प्रबलतर है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने "गतिर्गतौ" सूत्र के भाष्य में यह स्पष्ट किया है कि धातु में ही उपसर्गों का अर्थ अन्तर्निहित रहता है, उपसर्ग उसे द्योतित करते हैं। "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" से भी यही ध्वनि निकलती है कि धातुपाठ में परिगणित अर्थों से इतर भी धातुओं के अर्थ होते हैं। उपसर्ग उन प्रच्छन्न अर्थों को मात्र द्योतित करते हैं।

गंगेश ने तत्वचिंतामणि में नैयायिकों के मत का निर्देश देते हुए उपसर्गों को अर्थ का द्योतक ही माना है। उन्होंने द्योतकता की व्याख्या करते हुए बताया है कि, इसका अर्थ तात्पर्यग्राहकता शक्ति है, 'स्था' धातु का अर्थ ठहरना है, उसी में 'प्र' उपसर्ग लगाने से प्रस्थान का अर्थ 'जाना' हो जाता है। वे इस अर्थ विपर्यय को उपसर्गों का द्योतकत्व या तात्पर्यग्राहकता शक्ति मानते हैं, उनका मत है कि 'स्था' धातु का 'गमन' भी एक अर्थ है। गंगेश का मत है कि :—

"उपसर्गास्तु द्योतकाः न वाचकाः।"

(तत्वचिंतामणि)

पाणिनी का सूत्र "अधिपरी अनर्थकौ" (अष्टा० १।४।९३) भी इसी बात को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करता है, अध्यागच्छति, पर्यागच्छति दोनों का अर्थ 'आता है' केवल इतना ही है, यहाँ उपसर्गों के प्रयोग से कोई अर्थान्तर नहीं हुआ है।

अर्थद्योतकत्व सिद्धान्त के प्रतिपादक शाकटायन का यह कथन कि उपसर्ग स्वतंत्ररूप में अर्थ का कथन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नहीं करते हैं लौकिक संस्कृत और हिन्दी आदि में सत्य है, पर वैदिक संस्कृत में उक्त कथन के अपवाद भी मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"उद उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं विमध्यमं श्रथाय वयम् आदित्या व्रते तवानागसोऽदियते स्याम्"

इस मंत्र में उत् तथा अव् उपसर्ग ऊपर और नीचे खोलो अर्थ के वाचक हैं। यास्क गार्ग्य के मत के पोषक हैं, उन्होंने लिखा है कि उपसर्ग विविध प्रकार के अर्थों को प्रकृष्ट रूप से कहते हैं निरुक्त में यास्क ने अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

"एवम् उच्चावचान् अर्थान् प्राहुः।"

संस्कृत में निम्नलिखित उपसर्ग माने गये हैं :—

"प्र, प्रा; अप, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत, अभि, प्रति, परि, उप ।

संस्कृत में किसी आख्यात के पूर्व तीन उपसर्गों तक का प्रयोग होता है, किन्तु कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें चार-चार उपसर्ग भी लगते हैं। जैसे :—

संव्यपाश्रित=सं+वि+अप+आ+श्रि

समभिव्याहरण—सम+अभि+वि+आ+हृ+अन्

कभी कभी एक उपसर्ग का भी एक ही शब्द में दो बार प्रयोग देखा गया है :—

प्र-प्रजनन　　उपोपवेशन

अध्यधिक्षेप　　अत्यतिक्रम

वस्तुतः संस्कृत और हिन्दी की उपसर्ग सम्बन्धी परिभाषा में पर्याप्त अन्तर है, इतना ही नहीं वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की उपसर्ग सम्बन्धी मान्यताएँ भी पृथक्-पृथक् हैं। लौकिक संस्कृत के विषय में पाणिनी का नियम है "ते प्राग्धातो" (१।४।७९) अर्थात् उपसर्ग का प्रयोग धातु से अव्यवहित पूर्व में होना चाहिए। किन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु से पृथक् हुआ है और ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु के पश्चात् हुआ है महाभारत में भी ऐसे कतिपय प्रयोग मिलते हैं उदाहरण प्रस्तुत है :—

(क) पूर्व व्यवहित प्रयोग

तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते (ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१)
अधिविश्वे विषक्ता (महा० आदि० ३।६२)
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचयत् (महा०द्रोण० २३।८१)

(ख) पर व्यवहित प्रयोग

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं सं स्थास्नुचारिषु। (महा० द्रोण० १०।६८)

वैदिक भाषा में ऐसे उदाहरणों की बहुलता को देखकर पाणिनी ने "छन्दसि परेऽपि", "व्यवहिताश्च" (१।४।८०, ८१) इन दो सूत्रों की रचना की ओर उनके पर प्रयोग तथा व्यवहित प्रयोग को भी विहित माना है। लौकिक संस्कृत में वे उपसर्ग का प्रयोग नाम (संज्ञादि) के साथ भी करते हैं किन्तु उस स्थिति में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करते जो उस क्रिया से भिन्न हो जिसके साथ वे प्रयोग में लाए गये हैं। अतएव सुस्पष्ट है कि उपसर्ग के लगने से जिस अर्थ का प्रकाशन होता है वह उपसर्ग का अर्थ न होकर आख्यात का ही अर्थ होता है। उपसर्ग तो अर्थ का द्योतन उस प्रकार करते हैं जिस भाँति कि घर में रखा हुआ सामान दीपक द्वारा द्योतित होकर दृष्टिगत होने लगता है, परन्तु अन्धकार में भी वह सामान वहीं विद्यमान होता है। अतएव उपसर्गों को अर्थ का वाचक न मानकर शाकटायन ने द्योतक ही माना है। उनका मत है कि :—

"न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुः।"

नैरुक्त आचार्य गार्ग्य का अभिमत है कि नाम, आख्यात आदि पदों की भाँति उपसर्गों के भी स्वतंत्र अर्थ होते हैं, उपसर्ग अर्थ के वाचक हैं। उनका तर्क है कि आख्यातों में उपसर्गों के संयोग से जो अर्थभिन्नता आ जाती है वह उपसर्गों के वियोग से हट जाती है; अतएव अन्वयव्यतिरेक से वही उपसर्ग का अर्थ है। ऋक् प्रातिशाख्यकार भी उपसर्गों को अर्थ का वाचक ही मानते हैं। पदों की परिभाषा देते हुए उन्होंने उपसर्गों के इस पक्ष की ओर भी इंगित किया है :—

"क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्वाभिधायकं नाम निपात पादपूरणम्॥"

और भी—"उपसर्गो विशेषकृत" (वाजसनेयी प्रातिशाख्य ८।५४)

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने उक्त दोनों मतों का उल्लेख करते हुए अपना यह मत व्यक्त किया है कि धातु और उपसर्ग मिलकर अर्थ का बोध कराते हैं। उपसर्ग धातु में शक्ति का आधान करते हैं अतएव उपसर्गों को सहकारी समझना चाहिए :—

"स वाचको विशेषाणां सम्भवाद् द्योतकोऽपि वा।
शक्त्याधानाय धातोर्वा सहकारी प्रयुज्यते॥" (वाक्य, २।१९०)

उपसर्गों को अर्थ के द्योतक मानने वालों का पक्ष प्रबलतर है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने "गतिर्गतौ" सूत्र के भाष्य में यह स्पष्ट किया है कि धातु में ही उपसर्गों का अर्थ अन्तर्निहित रहता है, उपसर्ग उसे द्योतित करते हैं। "अनेकार्था हि धातवो भवन्ति" से भी यही ध्वनि निकलती है कि धातुपाठ में परिगणित अर्थों से इतर भी धातुओं के अर्थ होते हैं। उपसर्ग उन प्रच्छन्न अर्थों को मात्र द्योतित करते हैं।

गंगेश ने तत्वचिंतामणि में नैयायिकों के मत का निर्देश देते हुए उपसर्गों को अर्थ का द्योतक ही माना है। उन्होंने द्योतकता की व्याख्या करते हुए बताया है कि, इसका अर्थ तात्पर्यग्राहकता शक्ति है, 'स्था' धातु का अर्थ ठहरना है, उसी में 'प्र' उपसर्ग लगाने से प्रस्थान का अर्थ 'जाना' हो जाता है। वे इस अर्थ विपर्यय को उपसर्गों का द्योतकत्व या तात्पर्यग्राहकता शक्ति मानते हैं, उनका मत है कि 'स्था' धातु का 'गमन' भी एक अर्थ है। गंगेश का मत है कि :—

"उपसर्गास्तु द्योतकाः न वाचकाः।"

(तत्वचिंतामणि)

पाणिनी का सूत्र "अधिपरी अनर्थकौ" (अष्टा० १।४।९३) भी इसी बात को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करता है, अध्यागच्छति, पर्यागच्छति दोनों का अर्थ 'आता है' केवल इतना ही है, यहाँ उपसर्गों के प्रयोग से कोई अर्थान्तर नहीं हुआ है।

अर्थद्योतकत्व सिद्धान्त के प्रतिपादक शाकटायन का यह कथन कि उपसर्ग स्वतंत्ररूप में अर्थ का कथन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नहीं करते हैं लौकिक संस्कृत और हिन्दी आदि में सत्य है, पर वैदिक संस्कृत में उक्त कथन के अपवाद भी मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

"उद उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं विमध्यमं श्रथाय वयम् आदित्या व्रते तवानागसोऽदियते स्याम्"

इस मंत्र में उत् तथा अव् उपसर्ग ऊपर और नीचे खोलो अर्थ के वाचक हैं। यास्क गार्ग्य के मत के पोषक हैं, उन्होंने लिखा है कि उपसर्ग विविध प्रकार के अर्थों को प्रकृष्ट रूप से कहते हैं निरुक्त में यास्क ने अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

"एवम् उच्चावचान् अर्थान् प्राहुः।"

संस्कृत में निम्नलिखित उपसर्ग माने गये हैं :—

"प्र, प्रा; अप, सम, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत; अभि, प्रति, परि, उप ।

संस्कृत में किसी आख्यात के पूर्व तीन उपसर्गों तक का प्रयोग होता है, किन्तु कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें चार-चार उपसर्ग भी लगते हैं। जैसे :—

संव्यपाश्रित=सं+वि+अप+आ+श्रि

समभिव्याहरण—सम+अभि+वि+आ+हृ+अन्

कभी कभी एक उपसर्ग का भी एक ही शब्द में दो बार प्रयोग देखा गया है :—

प्र-प्रजनन उपोपवेशन

अध्यधिक्षेप अत्यतिक्रम

वस्तुत: संस्कृत और हिन्दी की उपसर्ग सम्बन्धी परिभाषा में पर्याप्त अन्तर है, इतना ही नहीं वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की उपसर्ग सम्बन्धी मान्यताएँ भी पृथक्-पृथक् हैं। लौकिक संस्कृत के विषय में पाणिनी का नियम है "ते प्राग्धातो" (१।४।७९) अर्थात् उपसर्ग का प्रयोग धातु से अव्यवहित पूर्व में होना चाहिए। किन्तु वैदिक संस्कृत में ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु से पृथक् हुआ है और ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ उपसर्ग का प्रयोग धातु के पश्चात् हुआ है महाभारत में भी ऐसे कतिपय प्रयोग मिलते हैं उदाहरण प्रस्तुत है :—

(क) पूर्व व्यवहित प्रयोग

तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते (ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१)
अधिविश्वे विषक्ता' (महा० आदि० ३।६२)
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचयत् (महा०द्रोण० २३।८१)

(ख) पर व्यवहित प्रयोग

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं सं स्थास्नुचारिषु। (महा० द्रोण० १०।६८)

वैदिक भाषा में ऐसे उदाहरणों की बहुलता को देखकर पाणिनी ने "छन्दसि परेऽपि", "व्यवहिताश्च" (१।४।८०, ८१) इन दो सूत्रों की रचना की ओर उनके पर प्रयोग तथा व्यवहित प्रयोग को भी विहित माना है। लौकिक संस्कृत में वे उपसर्ग का प्रयोग नाम (संज्ञादि) के साथ भी करते हैं किन्तु उस स्थिति में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पाणिनी उन्हें उपसर्ग नाम से अभिहित नहीं करते हैं वे उन्हें निपात कहते हैं। यथा निर्वाराणसी (वाराणसी के बाहर गया हुआ) उपगु (गौ के समीप) प्राध्यापक (श्रेष्ठ अध्यापक) में प्रयुक्त निर, उप, प्र उपसर्ग न होकर पाणिनी के मतानुसार निपात है।

प्राचीन आर्यभाषा के वैदिक और लौकिक रूप दोनों में उपसर्गों पर विचार करने के उपरान्त भाषा के अग्रिम चरण मध्य भारतीय आर्य भाषा में जिसे प्राकृत और अपभ्रंश कहते हैं, उपसर्गों की स्थिति पर विचार करना अनिवार्य है। उनमें उपसर्गों का प्रयोग संस्कृत की भाँति केवल क्रियाओं के साथ ही सीमित न रह कर अन्य संज्ञादि पदों के साथ होने लगा था संस्कृत की भाँति ही प्राकृतों में भी उपसर्ग अव्ययों के भेद के रूप में माने जाते रहे। उनमें अर्थ के विभिन्न भावों का द्योतन इनका कार्य रहा है। पालि में उपसर्गों की संख्या वीस है। वे इस प्रकार हैं :—

प, परा, नि, नी, उ, दु, सं, वि, अव, अनु, परि, अभि, अधि, पति, सु, आ, अति, अपि, अप, उप,

अन्य प्राकृतों में भी प्रायः ये ही उपसर्ग प्रयोग में लाए जाते हैं।

हिन्दी को उपसर्गों का रिक्थ अपनी सभी पूर्वज भाषाओं से प्राप्त हुआ है किन्तु उस रिक्थ को हिन्दी के अनुकूल वनाकर सौंपने का श्रेय अपभ्रंश को ही है। अपभ्रंश में निम्नलिखित उपसर्ग हैं जिनका पूर्व प्रयोग क्रिया और संज्ञादि (नाम) के साथ होता है :—

प, परा, अव, (अप) अप, सं, अणु, अव, निर, नि, णि, दू, दु, वि, अ, आ, अहि, (अधि) अइ, सु, उ, ऊ, अहि, (अभि) पडि, परि, उव, उ (उप) अ सम्परिवर्तक अण।

हिन्दी में उपसर्गों की परिभाषा तथा संख्या दोनों में ही पर्याप्त विशेषता का समावेश हुआ है। भाषा-शास्त्र के विकास के युग में हिन्दी में उपसर्गों की भाषाशास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है :—

"शब्द के जिस अंश में स्वतंत्र अस्तित्व द्योतक कोई अर्थ नहीं होता और वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होने की क्षमता जिनमें नहीं होती तथा जो प्रकृति (मूल प्रकृति, अथवा व्युत्पन्न प्रकृति अथवा पद प्रकृति) के आश्रय से उसके पूर्व आकर अर्थवान होते हैं उन्हें उपसर्ग कहते हैं।"[१]

हिन्दी में उपसर्गों के प्रयोग ने एक और नई दिशा ली, प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में जहाँ उपसर्गों का प्रयोग केवल क्रियाओं के साथ ही होता था वहाँ हिन्दी में उसका विपर्यय दृष्टिगोचर होता है हिन्दी की क्रियाओं के साथ प्रायः उपसर्गों का प्रयोग नहीं होता है। ऐसे उदाहरण अल्प हैं जहाँ हिन्दी की क्रिया में उपसर्ग लगता है। हिन्दी के संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण प्रातिपदिकों[२] के साथ तथा कतिपय धातुओं के साथ उपसर्ग का प्रयोग होता है। हिन्दी में निम्नलिखित २५ उपसर्ग हैं :—

उपसर्ग		शब्द
(१)	अ	अचाह, अचेत
(२)	अन	अनवन, अनमेल
(३)	अल	अलमस्त

१. हिन्दी में प्रत्यय विचार, उप्रैति, मुरारीलाल, पृ० २३।

२. प्रतिपदं स्थितं प्रातिपदिकं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

	उपसर्ग	शब्द
(४)	उ[१]	उबर, उबट
(५)	उ[२]	उथला, उनींदा
(६)	उन	उन्नीस, उन्तीस
(७)	औ	औगुन, औगढ़
(८)	कु	कुराज, कुराही
(९)	दर	दरअसल, दरहकीकत
(१०)	दु	दुराज, दुसह
(११)	नि	निडर, निकम्मा, निधड़क
(१२)	पर	परदादा, परनानी
(१३)	फिल	फिलहाल
(१४)	ब	बखूबी, बतौर
(१५)	बर	बरखिलाफ, बरकरार
(१६)	बहर	बहरहाल
(१७)	बा	बाकायदा, बावजूद
(१८)	बे	बेडोल, बेधड़क, बेखटके
(१९)	बै	बैराग, बैवर्ण
(२०)	ला	लावारिस, लाजबाब
(२१)	स	सजल, सपरिवार
(२२)	सब	सबरजिस्ट्रार
(२३)	सर	सरपंच, सरताज
(२४)	सु	सुकवि, सुजान, सुघड़
(२५)	हम	हमदर्द, हमराह

भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण, से, उपसर्ग ऐसे आबद्ध अंश हैं जिनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता, किन्तु उपसर्ग को अर्थ का वाचक मानने वालों के अनुसार तो निम्नलिखित भी उपसर्गों के अन्तर्गत आते हैं—

	उपसर्ग	शब्द
(१)	अध	अधबुना, अधकच्चा
(२)	ऐन	ऐनवख्त, ऐनमौका
(३)	कम	कमअक्ल, कमउम्र, कमसिन
(४)	खुश	खुशदिल, खुशहाल, खुशकिस्मत
(५)	गैर	गैरमुल्क, गैर लोग
(६)	ना	नापसंद
(७)	बद	बदनाम, बदकिस्मत, बदमिजाज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पाणिनी उन्हें उपसर्ग नाम से अभिहित नहीं करते हैं वे उन्हें निपात कहते हैं। यथा निर्वाराणसी (वाराणसी के बाहर गया हुआ) उपगु (गौ के समीप) प्राध्यापक (श्रेष्ठ अध्यापक) में प्रयुक्त निर, उप, प्र उपसर्ग न होकर पाणिनी के मतानुसार निपात है।

प्राचीन आर्यभाषा के वैदिक और लौकिक रूप दोनों में उपसर्गों पर विचार करने के उपरान्त भाषा के अग्रिम चरण मध्य भारतीय आर्य भाषा में जिसे प्राकृत और अपभ्रंश कहते हैं, उपसर्गों की स्थिति पर विचार करना अनिवार्य है। उनमें उपसर्गों का प्रयोग संस्कृत की भाँति केवल क्रियाओं के साथ ही सीमित न रह कर अन्य संज्ञादि पदों के साथ होने लगा था संस्कृत की भाँति ही प्राकृतों में भी उपसर्ग अव्ययों के भेद के रूप में माने जाते रहे। उनमें अर्थ के विभिन्न भावों का द्योतन इनका कार्य रहा है। पालि में उपसर्गों की संख्या वीस है। वे इस प्रकार हैं :—

प, परा, नि, नी, उ, दु, सं, वि, अव, अनु, परि, अभि, अधि, पति, सु, आ, अति, अपि, अप, उप,

अन्य प्राकृतों में भी प्रायः ये ही उपसर्ग प्रयोग में लाए जाते हैं।

हिन्दी को उपसर्गों का रिक्थ अपनी सभी पूर्वज भाषाओं से प्राप्त हुआ है किन्तु उस रिक्थ को हिन्दी के अनुकूल वनाकर सौंपने का श्रेय अपभ्रंश को ही है। अपभ्रंश में निम्नलिखित उपसर्ग हैं जिनका पूर्व प्रयोग क्रिया और संज्ञादि (नाम) के साथ होता है :—

प, परा, अव, (अप) अप, सं, अणु, अव, निर, नि, णि, दू, दु, वि, अ, आ, अहि, (अधि) अइ, सु, उ, ऊ, अहि, (अभि) पडि, परि, उव, उ (उप) अ सम्परिवर्तक अण।

हिन्दी में उपसर्गों की परिभाषा तथा संख्या दोनों में ही पर्याप्त विशेषता का समावेश हुआ है। भाषा-शास्त्र के विकास के युग में हिन्दी में उपसर्गों की भाषाशास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है :—

"शब्द के जिस अंश में स्वतंत्र अस्तित्व द्योतक कोई अर्थ नहीं होता और वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होने की क्षमता जिनमें नहीं होती तथा जो प्रकृति (मूल प्रकृति, अथवा व्युत्पन्न प्रकृति अथवा पद प्रकृति) के आश्रय से उसके पूर्व आकर अर्थवान होते हैं उन्हें उपसर्ग कहते हैं।"[१]

हिन्दी में उपसर्गों के प्रयोग ने एक और नई दिशा ली, प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में जहाँ उपसर्गों का प्रयोग केवल क्रियाओं के साथ ही होता था वहाँ हिन्दी में उसका विपर्यय दृष्टिगोचर होता है हिन्दी की क्रियाओं के साथ प्रायः उपसर्गों का प्रयोग नहीं होता है। ऐसे उदाहरण अल्प हैं जहाँ हिन्दी की क्रिया में उपसर्ग लगता है। हिन्दी के संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण प्रातिपदिकों[२] के साथ तथा कतिपय धातुओं के साथ उपसर्ग का प्रयोग होता है। हिन्दी में निम्नलिखित २५ उपसर्ग हैं :—

	उपसर्ग	शब्द
(१)	अ	अचाह, अचेत
(२)	अन	अनवन, अनमेल
(३)	अल	अलमस्त

१. हिन्दी में प्रत्यय विचार, उप्रैति, मुरारीलाल, पृ० २३।

२. प्रतिपदे स्थितं प्रातिपदिकं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

	उपसर्ग	शब्द
(४)	उ[1]	उबर, उबट
(५)	उ[2]	उथला, उनींदा
(६)	उन	उन्नीस, उन्तीस
(७)	औ	औगुन, औगढ़
(८)	कु	कुराज, कुराही
(९)	दर	दरअसल, दरहकीकत
(१०)	दु	दुराज, दुसह
(११)	नि	निडर, निकम्मा, निघड़क
(१२)	पर	परदादा, परनानी
(१३)	फिल	फिलहाल
(१४)	ब	बखूबी, बतौर
(१५)	बर	बरखिलाफ, बरकरार
(१६)	बहर	बहरहाल
(१७)	बा	बाकायदा, बावजूद
(१८)	बे	बेडोल, बेघड़क, बेखटके
(१९)	बै	बैराग, बैवर्ण
(२०)	ला	लावारिस, लाजवाब
(२१)	स	सजल, सपरिवार
(२२)	सब	सबरजिस्ट्रार
(२३)	सर	सरपंच, सरताज
(२४)	सु	सुकवि, सुजान, सुघड़
(२५)	हम	हमदर्द, हमराह

भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण, से, उपसर्ग ऐसे आबद्ध अंश हैं जिनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता, किन्तु उपसर्ग को अर्थ का वाचक मानने वालों के अनुसार तो निम्नलिखित भी उपसर्गों के अन्तर्गत आते हैं—

	उपसर्ग	शब्द
(१)	अध	अधबुना, अधकच्चा
(२)	ऐन	ऐनवख्त, ऐनमौका
(३)	कम	कमअक्ल, कमउम्र, कमसिन
(४)	खुश	खुशदिल, खुशहाल, खुशकिस्मत
(५)	गैर	गैरमुल्क, गैर लोग
(६)	ना	नापसंद
(७)	बद	बदनाम, बदकिस्मत, बदमिजाज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पाणिनी उन्हें उपसर्ग नाम से अभिहित नहीं करते हैं वे उन्हें निपात कहते हैं। यथा निर्वाराणसी (वाराणसी के बाहर गया हुआ) उपगु (गौ के समीप) प्राध्यापक (श्रेष्ठ अध्यापक) में प्रयुक्त निर, उप, प्र उपसर्ग न होकर पाणिनी के मतानुसार निपात है।

प्राचीन आर्यभाषा के वैदिक और लौकिक रूप दोनों में उपसर्गों पर विचार करने के उपरान्त भाषा के अग्रिम चरण मध्य भारतीय आर्य भाषा में जिसे प्राकृत और अपभ्रंश कहते हैं, उपसर्गों की स्थिति पर विचार करना अनिवार्य है। उनमें उपसर्गों का प्रयोग संस्कृत की भाँति केवल क्रियाओं के साथ ही सीमित न रह कर अन्य संज्ञादि पदों के साथ होने लगा था संस्कृत की भाँति ही प्राकृतों में भी उपसर्ग अव्ययों के भेद के रूप में माने जाते रहे। उनमें अर्थ के विभिन्न भावों का द्योतन इनका कार्य रहा है। पालि में उपसर्गों की संख्या बीस है। वे इस प्रकार हैं :—

प, परा, नि, नी, उ, दु, सं, वि, अव, अनु, परि, अभि, अधि, पति, सु, आ, अति, अपि, अप, उप,

अन्य प्राकृतों में भी प्रायः ये ही उपसर्ग प्रयोग में लाए जाते हैं।

हिन्दी को उपसर्गों का रिक्थ अपनी सभी पूर्वज भाषाओं से प्राप्त हुआ है किन्तु उस रिक्थ को हिन्दी के अनुकूल बनाकर सौंपने का श्रेय अपभ्रंश को ही है। अपभ्रंश में निम्नलिखित उपसर्ग हैं जिनका पूर्व प्रयोग क्रिया और संज्ञादि (नाम) के साथ होता है :—

प, परा, अव, (अप) अप, सं, अणु, अव, निर, नि, णि, दू, दु, वि, अ, आ, अहि, (अधि) अइ, सु, उ, ऊ, अहि, (अभि) पडि, परि, उव, उ (उप) अ सम्परिवर्तक अण।

हिन्दी में उपसर्गों की परिभाषा तथा संख्या दोनों में ही पर्याप्त विशेषता का समावेश हुआ है। भाषा-शास्त्र के विकास के युग में हिन्दी में उपसर्गों की भाषाशास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है :—

"शब्द के जिस अंश में स्वतंत्र अस्तित्व द्योतक कोई अर्थ नहीं होता और वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होने की क्षमता जिनमें नहीं होती तथा जो प्रकृति (मूल प्रकृति, अथवा व्युत्पन्न प्रकृति अथवा पद प्रकृति) के आश्रय से उसके पूर्व आकर अर्थवान होते हैं उन्हें उपसर्ग कहते हैं।"[१]

हिन्दी में उपसर्गों के प्रयोग ने एक और नई दिशा ली, प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में जहाँ उपसर्गों का प्रयोग केवल क्रियाओं के साथ ही होता था वहाँ हिन्दी में उसका विपर्यय दृष्टिगोचर होता है हिन्दी की क्रियाओं के साथ प्रायः उपसर्गों का प्रयोग नहीं होता है। ऐसे उदाहरण अल्प हैं जहाँ हिन्दी की क्रिया में उपसर्ग लगता है। हिन्दी के संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण प्रातिपदिकों[२] के साथ तथा कतिपय धातुओं के साथ उपसर्ग का प्रयोग होता है। हिन्दी में निम्नलिखित २५ उपसर्ग हैं :—

उपसर्ग		शब्द
(१)	अ	अचाह, अचेत
(२)	अन	अनवन, अनमेल
(३)	अल	अलमस्त

१. हिन्दी में प्रत्यय विचार, उप्रेति, मुरारीलाल, पृ० २३।

२. प्रतिपदं स्थितं प्रातिपदिकं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

	उपसर्ग	शब्द
(४)	उ[१]	उवर, उवट
(५)	उ[२]	उथला, उनींदा
(६)	उन	उन्नीस, उन्तीस
(७)	औ	औगुन, औगढ़
(८)	कु	कुराज, कुराही
(९)	दर	दरअसल, दरहकीकत
(१०)	दु	दुराज, दुसह
(११)	नि	निडर, निकम्मा, निघड़क
(१२)	पर	परदादा, परनानी
(१३)	फिल	फिलहाल
(१४)	ब	बखूबी, बतौर
(१५)	बर	बरखिलाफ, बरकरार
(१६)	बहर	बहरहाल
(१७)	बा	बाकायदा, बावजूद
(१८)	बे	बेडोल, बेघड़क, बेखटके
(१९)	बै	बैराग, बैवर्ण
(२०)	ला	लावारिस, लाजवाब
(२१)	स	सजल, सपरिवार
(२२)	सब	सबरजिस्ट्रार
(२३)	सर	सरपंच, सरताज
(२४)	सु	सुकवि, सुजान, सुघड़
(२५)	हम	हमदर्द, हमराह

भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण, से, उपसर्ग ऐसे आवद्ध अंश हैं जिनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता, किन्तु उपसर्ग को अर्थ का वाचक मानने वालों के अनुसार तो निम्नलिखित भी उपसर्गों के अन्तर्गत आते हैं—

	उपसर्ग	शब्द
(१)	अध	अधबुना, अधकच्चा
(२)	ऐन	ऐनवख्त, ऐनमौका
(३)	कम	कमअक्ल, कमउम्र, कमसिन
(४)	खुश	खुशदिल, खुशहाल, खुशकिस्मत
(५)	गैर	गैरमुल्क, गैर लोग
(६)	ना	नापसंद
(७)	बद	बदनाम, बदकिस्मत, बदमिजाज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उपसर्ग		शब्द
(८)	बिन	बिनजान, बिनमौके
(९)	बिला	बिलाकसूर
(१०)	भर	भरपेट
(११)	हर	हरसाल

हिन्दी की कुछ क्रियाओं में भी उपसर्गों का पूर्व प्रयोग होता है, कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

क्रिया	उपसर्ग युक्त शब्द
चल	अचल
टल	अटल
समझ	अनसमझ
गढ़	सुगढ़

हिन्दी में कतिपय शब्द ऐसे भी हैं जिनमें उपसर्ग का प्रयोग मूलरूप में ही होता है उपसर्ग वियुक्त शब्द का प्रयोग होता ही नहीं हैं। जैसे—

निपूता—नि+पूता
बेचैनी—बे+चैनी
दुबला—दु+बला
उथला—उ+थला

इनके पूता, चैनी, बला और थला का स्वतंत्र प्रयोग कहीं भी भाषा में दृष्टिगत नहीं होता है।

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्द ऐसे हैं जिनका हिन्दी में स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया जाता है। उनका प्रयोग हिन्दी भाषा में उपसर्गवत् ही होता है। जैसे—

अधः—	अधः पतन	अधः+पतन
	अधोगति	अधः+गति
प्राक्—	प्राक् कथन	प्राक्+कथन
	प्रागैतिहासिक	प्राक्+ऐतिहासिक
अंतर—	अन्तरराज्यीय	अन्तर+राज्यीय
	अन्तरप्रान्तीय	अन्तर+प्रान्तीय
बहु—	बहुप्रचलित	बहु+प्रचलित
	बहुचर्चित	बहु+चर्चित
	बहुविवाह	बहु+विवाह

एक उपसर्ग कभी प्रशंसा का अर्थ देता तो कभी वही कुत्सार्थक बन जाता है। जैसे—

अभिकथन (allegation)	कुत्सार्थक
अभिभाषण	प्रशंसार्थक

निष्कर्षतः संस्कृत से आगत उपसर्गों की परम्परा में अनेक परिवर्तन परिवर्धन और विकास हुए हैं जो बहुविध हैं। विश्लेषण के उपरान्त इनके अद्यावधि प्रच्छन्न अनेक आयामों पर आलोक प्रक्षेप कर विद्वान् ज्ञान के क्षेत्र को विस्तीर्ण कर सकते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कश्मीरी भाषा और लिपि

डा० कृष्णा रैणा

एम. ए., पी.-एच. डी.

कश्मीर को 'कशीर' और यहाँ की भाषा को 'कोशुर' कहा जाता है। कश्मीरी भाषा मुख्यतः कश्मीर घाटी में बोली जाती है, इसके बोलने वालों की संख्या लगभग १५ लाख है। प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' के मतानुसार इस भाषा के लिए कश्मीरी नाम का सर्वप्रथम उल्लेख अमीर खुसरो की 'नुहसिपिन्ह' में मिलता है परन्तु कश्मीर में १७वीं शती तक इसे 'देशभाषा' या 'भाषा' नाम से ही सूचित किया जाता रहा।[1] कश्मीरी भाषा कब और कैसे प्रचलित हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार कश्मीरी वास्तव में एक 'दरद' भाषा है परन्तु इसके दक्षिण में बोली जाने वाली भारतीय आर्य भाषाओं ने इसे अत्यधिक प्रभावित किया है। कश्मीर प्रदेश दो सहस्र वर्ष तक संस्कृत भाषा का मुख्य केन्द्र रहा है; अतः यहाँ की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि कश्मीरी की शब्दावली संस्कृत से मिलती-जुलती है जिसके फलस्वरूप कुछ लोग इसे भ्रमवश संस्कृत से निकली हुई भाषा मानते हैं वरन् यह एक दर्दी भाषा है।[2] दर्दी भाषा या पैशाची हिन्द-ईरानी की एक उपशाखा है। इस भाषा का क्षेत्र पामीर और पश्चिमोत्तर पंजाब के बीच पड़ता है। भाषा गठन की दृष्टि से यह ईरानी और भारतीय आर्य के मध्यमार्ग

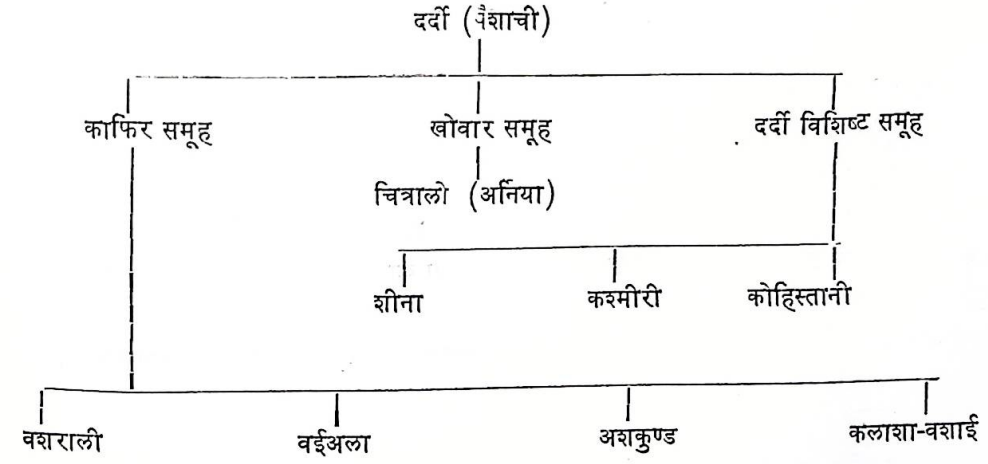

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम खण्ड, सं० २०१५ वि०, पृ० २१०।

२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, वा० ८, भाग २, ग्रियर्सन, संस्करण १९१९, पृष्ठ २५३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की है।[1] दर्दी या पैशाची भाषाओं के कई समूह हैं—काफिरी, खोवारी और दर्दी विशिष्ट। इनकी कई उपशाखाएँ हैं। काफिरी समूह की उपभाषाएँ वशराली, वईअला, अशकुण्ड और कलाशा वशाई है। खोवारी में चित्राली या अर्निया आती हैं। दर्दी विशिष्ट में शीना, कश्मीरी और कोहिस्तानी आती हैं। यह निम्न विभाजन से और स्पष्ट होता है :—

प्रो० पुष्प कश्मीरी की दरद परिवार की सन्तान बताना युक्तियुक्त नहीं मानते हैं। उनके अनुसार ग्रियर्सन के मत का समर्थन कम हो पाता है विशेषकर क्रियापदों और सर्वनाम की दृष्टि से प्रो० पुष्प निम्न तथ्य प्रस्तुत करते हैं :—

१. कश्मीरी क्रियापदों का विकास एक ऐसी संश्लेषण पद्धति पर होता रहा है जो भारत की दूसरी आधुनिक भाषाओं में प्रचलित नहीं है जैसे 'हावुन' (दिखाना) के भिन्न रूप देखने से स्पष्ट होता है।

२. कश्मीरी भाषा में जो घोष-महाप्राण ध्वनि का अभाव है वह सिन्धी और पश्तो में भी मिलता है।

३. विल्हण, कल्हण, शितिकण्ठ और श्रीवर आदि की साक्षियों से स्पष्ट होता है कि कश्मीरी भाषा भी उन्हीं परिस्थितियों और प्रभावों का परिणाम है जिनसे गुजराती, मराठी, बंगला, हिन्दी और उर्दू का विकास हुआ है।

प्रो० पुष्प अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संभवतः कश्मीरी का उद्गम वह पैशाची है जिसे ब्राह्मण ग्रन्थों में उदीच्य कहा गया है।[2] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्जा कश्मीरी को भारतीय आर्य समूह की भाषा नहीं, वरन् एक दर्दी भाषा मानते हैं।[3] इस दर्दी समूह की भाषाएँ भारत के सुदूर पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश तथा भारत अफगान के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती है। इनके तीन वर्ग हैं :—

१. कश्मीरी, शीना और कोहिस्तानी

२. खोवार चित्राली

३. कलाशा, गवरबत्ती, परी, लघमानी, दीरीतिराही, वै, वासी, वेरी, अशकुन्द आदि ग्रियर्सन ने इन भाषाओं एवं बोलियों के समूह को एक स्वतंत्र समूह माना है और भारतीय ईरानी को तीन भागों में विभाजित किया है—

१. पश्चिम की ईरानी

२. पूर्व की भारतीय आर्य

३. उत्तर में दर्दी भाषाएँ।

दर्दी भाषाएँ भारतीय आर्य की अपेक्षा ईरानी कुल के निकटतर हैं जिनका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। केवल हिन्दू एवं बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण कश्मीरी भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध हिन्दू भारत तथा उसकी संस्कृत भाषा से रहा है। दर्दी भाषाओं के ध्वनि एवं रूप तत्व की मूल भावना भी भारतीय आर्य संस्कृत से भिन्न है और बर्बर बोलियों के रूप में उनका इतिहास भी भिन्न है। अतएव इन्हें मुख्य भारतीय आर्य समूह से

---

१. कश्मीर का लोक-साहित्य, मोहनकृष्ण दर, सं० १९६३, पृ० ४१।
२. कश्मीरी भाषा और साहित्य, सं० १९५६ ई०, पृ० २।
३. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, द्वितीय संस्करण १९५७, पृ० १३६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भिन्न गिनना ही युक्तियुक्त होगा।[१] कश्मीरी भाषा का उद्भव इबरानी से भी माना जाता है।[२] मान्यता यह है कि प्राचीन समय में यहूदियों का समूह अपने देश सीरिया से निकलकर यहाँ आ बसा था, यह समूह अपने साथ अपनी भाषा भी लाया था इनके अनुसार कश्मीरी में किसी पुरुष के नाम के साथ आदरसूचक जो "जू" शब्द जैसे रामजू, लालजू, मानजू आदि लगाया जाता है वह यहूदियों की भाषा का ही प्रभाव है क्योंकि जू (Jew) यहूदियों को ही कहते हैं परन्तु यह कोई दृढ़ आधार नहीं है। 'जू' शब्द ब्रजभाषा में भी प्रयुक्त होता है। श्री अमल सरकार ने भी कश्मीरी को दर्द परिवार की भाषा माना है।[३] जब तक कोई अन्य मत दृढ़ आधार प्रस्तुत न करे तब तक ग्रियर्सन मत का ही समर्थन करना उचित है। भौगोलिक सीमा समीप होने के कारण कश्मीरी भाषा और रूसी भाषा में कई शब्द एक समान हैं जैसे 'समावार' आदि।

कश्मीरी भाषा के विकास के चिह्न १२वीं शताब्दी से ही प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध कश्मीरी इतिहासकार कल्हण ने सन् ११५० के लगभग 'राजतरंगिणी' की रचना की है, जिसमें कल्हण ने यहाँ के तीर्थ और नदियों के संस्कृत नाम न देकर कश्मीरी प्रचलित नामों का उल्लेख किया है। राजतरंगिणी में लिद्दर, तुलमुला, दिगोम, खोनमुह आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है जो उसी रूप में आज भी प्रचलित हैं। इससे स्पष्ट है कि १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही कश्मीरी भाषा का विकास हो चुका था।

१. कश्मीरी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ :—कश्मीरी एक संयोगात्मक भाषा है। शब्दों में सुर की भिन्नता के कारण अर्थ में भी परिवर्तन आता है :—

वर=दरवाज़ा।
बर्=दुःखी होना
ब'र=दरार
वुर=फर्श के रोम
वुर्=लकड़ी पर रन्दा देने से जो पतला छिलका उठता है।
वेर=मिट्टी की छोटी दीवार
वीर्अ=लकड़ी की गेन्द
वार=बोझ

२. अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कश्मीरी भाषा की वर्णमाला में स्वरों की संख्या अधिक है। इसी कारण कश्मीरी को लिपिबद्ध करने में कठिनाई का अनुभव होता है। कश्मीरी भाषा की स्वर व्यवस्था जटिल है।

३. कश्मीरी भाषा में अनेकार्थवाची शब्दों का आधिक्य है—

(अ) खूर=नाई का उस्तरा
खूर=पाँव की एड़ी
खूर=नौका चलाने का चप्पू

---

१. वही, पृष्ठ १४५।
२. 'तामीर' पत्रिका, अंक अक्टूबर १९५७ तथा जनवरी १९५८।
३. हैण्ड बुक आफ लैंग्वेजिज एण्ड डाइलैक्टस ऑफ इंडिया, अमल सरकार, सं० १९६४, पृ० ६१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Babu Vrindavandas Abhinandan Granth Collection, Lucknow

खूर=कालीन बनाते समय आवश्यक यंत्र

(आ) आँर=आलू बुखारा

आँर=भूमि के अन्दर उगने वाली सब्जियों का कठोर भाग

आँर=सर्प का कुंडलाकार में बैठना

आँर=घास का विशेष गोलाकार

आँर=लोहे का एक अस्त्र जो कलाकारों के काम आता है।

४. कश्मीर में हिन्दू और मुसलमान एक ही भाषा 'कश्मीरी' बोलते हैं परन्तु रूप दोनों के भिन्न हैं। हिन्दुओं की कश्मीरी में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है जैसे श्रान (स्नान), न्यशतुर (नक्षत्र), न्यन्दर (निद्रा), क्रूद (क्रोध), न्यरमल (निर्मल) आदि। मुसलमानों की कश्मीरी में फारसी शब्द जैसे ख़त, नज़र, हख, साफ़, ख़लथ आदि। यह भिन्नता शब्दावली तक ही सीमित नहीं है अपितु हिन्दुओं और मुसलमानों की कश्मीरी भाषा का उच्चारण भी भिन्न है जैसे :—

हिन्दू उच्चारण	मुसलमानी उच्चारण	अर्थ
ब्रोर	ब्योर	बिल्ली
क्रूर	क्यूर	कुआँ
पंछ	पांछ	पाँच
दह	दाह	दस
प्रार	प्यार	प्रतीक्षा करना
खारुन	खालुन	ऊपर लाना

स्पष्ट है कि मुसलमानों के उच्चारण में कठोर वर्णों का आधिक्य नहीं है।

५. साधारणतः जब एक भाषा की शब्दावली कोई दूसरी भाषा अपनाती है तो अपने प्रवाहानुकूल उन शब्दों की ध्वनि परिवर्तित होती है। कश्मीरी भाषा में भी ऐसे शब्दों की प्रचुरता है जिनका ध्वनि परिवर्तन हुआ है परन्तु मूल अर्थ वही है :—

मूल शब्द	कश्मीरी	हिन्दी अर्थ
आर्द्रः (संस्कृत)	ओदुर	गीला
एला (सं०)	ऑल	इलायची
कुलाल (सं०)	क्राल	कुम्हार
दन्तः (सं०)	दन्द	दान्त
गुर्ज़ (फारसी)	गरवंज	लकड़ी का चौखटा
मज़दूर (फारसी)	मजूर	नौकर
काग़ज़ (अरबी)	काकज़	कागज़

६. कश्मीरी वर्णमाला में एक वर्ण "च" का भी प्रयोग होता है जैसे चूर (चोर), चामन (पनीर), चोर (चार)। यह ध्वनि मराठी भाषा में भी है।

७. कश्मीरी भाषा में सघोष महाप्राण व्यंजन ध्वनियों का अभाव है अघोष महाप्राण का नहीं। वहाँ के उच्चारण में ख, छ, ठ, थ, और फ है परन्तु घ, झ, ढ, ध, भ नहीं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, L

कश्मीरी भाषा की लिपि

कश्मीरी भाषा की मूल लिपि शारदा लिपि है। इसमें लिखा प्राचीन कश्मीरी साहित्य आज भी उपलब्ध है। शारदा लिपि 'ब्राह्मी लिपि' से व्युत्पन्न है। उत्तरी ब्राह्मी को ही ईसा की चौथी शताब्दी में गुप्त लिपि की संज्ञा मिली और इसके अक्षरों तथा स्वरों की मात्राओं की कुटिल आकृतियों के कारण इसका नाम कुटिल रखा गया। इसका प्रचार छठीं से नवीं शताब्दी तक रहा। सी से नागरी और शारदा लिपियाँ निकली हैं।

कश्मीर प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी शारदा मानी जाती है, जिससे यह स्थान 'शारदा देश' या 'शारदा-मण्डल' भी कहलाता है। कश्मीरी भाषा की लिपि भी शारदा लिपि कही जाती है। इसके प्राचीन शिलालेख दानपात्र, सिक्के तथा हस्तलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं। ईसवी सन् की ८वीं शताब्दी के राजा मेरुवर्मा के लेखों से यह ज्ञात होता है कि उस समय तक तो पंजाब में भी कुटिल लिपि का प्रचार था जिससे बाद में शारदा लिपि बनी। शारदा लिपि का सबसे प्रथम लेख सराहन (चम्बा राज्य) की प्रशस्ति है जिसकी लिपि १०वीं शताब्दी के आसपास की है। यही समय शारदा लिपि की उत्पत्ति का माना जा सकता है।

शारदा लिपि में विशेष ध्वनियों को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष चिह्न हैं।[1] अतः कश्मीरी भाषा के लिए यह उपयुक्त लिपि है। शारदा और नागरी लिपि के कई वर्ण जैसे उ, ऊ, क, ढ, य और व एक समान हैं। शारदा लिपि की अपनी वर्णमाला है जिसमें सोलह स्वर और चौंतीस व्यंजन हैं।

पठानों के शासन काल में शारदा लिपि में लिखने पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। उसी समय से कश्मीरी के लिए फारसी लिपि का प्रचलन हुआ है। शारदा लिपि के लिए टंकन-यंत्र का अभाव है अतः इसमें प्रकाशन कार्य संभव नहीं है। आधुनिक युग में कश्मीरी जनता का अल्पांश ही इस लिपि से परिचित है। कश्मीरी भाषा को लिखित रूप देने के लिए शारदा के अतिरिक्त रोमन, फारसी और देवनागरी लिपि का भी प्रयोग होता है। ग्रियर्सन के अनुसार कश्मीरी स्वरों का क्रम बड़ा जटिल है। कई स्वर तीन या उससे भी अधिक रूपों में उच्चरित होते हैं जिसके लिए उन्होंने कुछ चिह्न भी बनाये हैं जिनकी व्याख्या उनकी ही पुस्तक में मिलती है।[2] श्री जियालाल कौल ने अपनी पुस्तक कश्मीरी लिरिक्स में रोमन लिपि को ही अपनाया है।

कश्मीरी साहित्य का अत्यधिक अंश फारसी लिपि में उपलब्ध है परन्तु उच्चारण की दृष्टि से यह लिपि भी उपयुक्त नहीं है। इस लिपि में वर्ण-संख्या कम है अतः चिह्नों का अधिक प्रयोग इसको जटिल बना रहा है। कहीं-कहीं इसमें मात्राओं का प्रयोग भी नहीं होता और पाठक को मस्तिष्क का सारा बल लगाकर उच्चारण स्वयं ढूंढना पड़ता है। कल्चर्ल अकादमी, कश्मीर से प्रकाशित प्रायः समस्त पुस्तकें इसी लिपि में उपलब्ध हैं।

कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग कश्मीर के राजा गुलाबसिंह के शासन-काल में हुआ। उस समय से लेकर कश्मीरी हिन्दू प्रायः इसी लिपि का प्रयोग करते हैं। फारसी और रोमन लिपि से देवनागरी लिपि कश्मीरी भाषा के लिए अधिक उपयुक्त है परन्तु शारदा का स्थान यह भी नहीं ले सकती है। आज तक देवनागरी लिपि के कश्मीरी भाषा में प्रयुक्त तीन रूप उपलब्ध हैं :—

---

१. ऐसे ऑन कश्मीरी ग्रामर, ग्रियर्सन, सं० १८९९, पृ० ३०।
२. ए मैन्युअल ऑफ दि कश्मीरी लैंग्वेज, भाग १, ग्रियर्सन, सं० १९११, पृ० १५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१. श्री सिरीकण्ठ तोषखानी द्वारा निर्मित रूप।

२. श्री जियालाल कौल जलाली द्वारा निर्मित रूप।

३. रूपान्तर सभा द्वारा निर्मित रूप।

इन तीनों रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें सरल को भी जटिल बनाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी कठिनाई यह है कि टंकन-यन्त्र की दृष्टि से ये तीनों रूप उपयुक्त नहीं हैं। 'तुर' और 'तूर' को क्रमशः 'तु'र' और 'तू'र' लिखा जा सकता है। 'अग्' का प्रयोग 'अग्छ' के लिए श्री जलाली महोदय ने 'अ' के साथ 'ग' की आधी मात्रा लगाकर किया है जिसको कश्मीरी से अपरिचित व्यक्ति 'अग्छ' ही पढ़ लेगा 'अ'छ' नहीं। इसी प्रकार श्री तोषखानी का लिखा हुआ 'दुद' साधारण 'द्वोद' लिखा जा सकता है और इसमें किसी विशेष चिह्न लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। चिह्नों के लिए अर्धविराम (,) और विन्दु (.) का प्रयोग सरलतापूर्वक किया जा सकता है। उपर्युक्त कठिनाइयों को समाप्त करने के लिए कश्मीरी नागरी लिपि को निम्न रूप दिया जा सकता है :—

अ'	अ'छ	नेत्र
आ'	आ'स	मुख
तु'	तु'र	टुकड़ा
तू'	तू'र	शीत
द्वो	द्वोद	दूध
न्वो	न्वोश	बहू
ओ'	नोर'	बाजू
च़	च़ामन	पनीर
छ़	छ़ाय	प्रतिबिम्ब

यह पूर्व प्रयुक्त रूपों से सरल भी है और टंकन यन्त्र के अनुकूल भी है। इन चिह्नों के प्रयोग से कश्मीरी ध्वनियाँ व्यवस्थित और सरल ढंग से प्रस्तुत की जा सकती हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कारक और विभक्ति की संकल्पना

⊙

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

एम. ए., डी. लिट्.

कारक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'करनेवाला' √ 'कृ+ण्वुल्'=कारक। व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से 'कारक' शब्द एक प्रकार से 'कर्त्ता' (√कृ+तृच्) शब्द का पर्यायवाची है। "विभक्ति" शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'विभाग' या 'हिस्सा'—वि+√भज्+क्तिन्=विभक्ति। किन्तु व्याकरणशास्त्र में 'कारक' और 'विभक्ति' नाम के पारिभाषिक शब्दों की संकल्पना तथा परिभाषा भिन्न है।

व्याकरण में 'कारक' और विभक्ति' शब्द बहुत प्राचीन काल से अपनी विशिष्ट परिभाषाओं के साथ तथा विशिष्ट संकल्पनाओं के साथ प्रयुक्त होते चले आये हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी (ई० पूर्व ३५० वर्ष) के कारकों और विभक्तियों के स्वरूप-विश्लेषण पर विचार करें तो पता चलता है कि पाणिनि अर्थपरक दृष्टि से ही 'कारक' शब्द को प्रयुक्त करता है। पाणिनि की दृष्टि में 'रामः हतवान्' वाक्य का 'रामः' पद ही कर्ताकारक नहीं है, अपितु 'रामेण हतो वाली' वाक्य का 'रामेण' पद भी कर्ताकारक है। इसीलिए पाणिनि ने अष्टाध्यायी में सूत्र लिखा—'कर्तृकरणयोस्तृतीया,' (अष्टा० २।३।१८) अर्थात कर्त्ता और करण कारकों में तृतीया विभक्ति होती है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि—'रामेण वाणेन हतो वाली' वाक्य में 'राम' कर्त्ताकारक और 'बाण' करण कारक हैं, लेकिन विभक्ति दोनों की तृतीया ही है—राम+एन=रामेण। बाण+**एन**=बाणेन (**'एन'** विभक्ति है, 'रामेण' पद है) अर्थात् विभक्ति पद का वह रूपान्तर है जो किसी विभाजन को सूचित करता हैं। वैसे कुछ विभक्तियाँ ऐसी भी हैं जो शब्द रूप तो प्रकट करती है; किन्तु उस शब्द-रूप में कोई कारक भी हो, ऐसी बात सदैव संभव नहीं। "बालकस्य पिता अत्रास्ति" के 'बालकस्य' में षष्ठी विभक्ति तो है, किन्तु इस पद में कोई कारक नहीं है, क्योंकि इस कारक का सम्बन्ध क्रिया से अवश्य होना चाहिए—"क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्।" उक्त वाक्य में 'अस्ति' क्रिया है। इस 'अस्ति' से 'पिता' पद का तो सम्बन्ध है, लेकिन 'बालकस्य' का नहीं। हाँ 'बालकस्य' का सम्बन्ध 'पिता' से तो है। 'पिता' से बालक' के सम्बन्ध को 'स्य' सूचित कर रहा है। इसी आधार पर संस्कृत वैयाकरणों ने छह ही कारक माने हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण। विभक्तियों की संख्या सात मानी है। पाणिनि आदि वैयाकरणों के मतानुसार षष्ठी विभक्ति तो है, लेकिन 'सम्बन्ध' नाम का कोई कारक नहीं।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में कौन सी विभक्ति किस कारक में आती है इसके लिए कुछ सामान्य सूत्र लिखे गये हैं:—

"प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा"—(अष्टा० २।३।४६) (प्रातिपदिक का अर्थ, लिंग, परिमाण या वचन बतलाने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है)।

"कर्मणि द्वितीया"—(अष्टा० २।३।२) (कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति आती है)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"चतुर्थी संप्रदाने"—(अष्टा० २।३।१३) (संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति आती है)।

"अपादाने पंचमी"—(अष्टा० २।३।२८) (अपादान कारक में पंचमी विभक्ति आती है)।

"सप्तम्यधिकरणे च"—(अष्टा० २।३।३६) (अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति आती है)।

किन्तु 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (अष्टा० २।३।१८) जैसे विशिष्ट सूत्रों द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि कर्त्ता कारक में और करण कारक में तृतीया विभक्ति भी होती है। निम्नांकित वाक्य के 'रामेण' और 'बाणेन' में तृतीया विभक्ति है। किन्तु 'राम' कर्ता कारक है। और **'बाण'** करण कारक है—"**रामेण बाणेन हतो बाली**"। इतना ही नहीं; 'बाली' प्रथमा विभक्ति में है, लेकिन कर्म कारक है।

'कर्मणि द्वितीया' (अष्टा० २।३।२) सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि "अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्" जैसे—'हरिं भजति'। यहाँ क्रिया कर्मानुसार नहीं है। किन्तु कर्मानुसार क्रिया आने पर वह कर्म कारक प्रथमा विभक्ति में आता है जैसे—**'हरिः सेव्यते'**। इस वाक्य का 'हरिः' पद कर्म कारक है, लेकिन प्रथमा विभक्ति में है। इसलिए सदैव यह मानना कि कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति ही आती है, ठीक नहीं है। 'सः कटं करोति' में 'कटं'[1] द्वितीया विभक्ति है और कर्म कारक है। अतः कर्मकारक प्रथमा में भी आता है और द्वितीया में भी। इसी प्रकार "रामः रावणं हतवान्" में **'रामः'** प्रथमा विभक्ति है और कर्त्ता कारक है अतः सिद्ध है कि कर्त्ता कारक में प्रथमा विभक्ति और तृतीया विभक्ति—दोनों ही आती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत-वैयाकरणों के मतानुसार 'कारक' और 'विभक्ति' पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं। दोनों की संकल्पनाएँ भी भिन्न हैं। 'कारक' अर्थ का अनुगामी है तो 'विभक्ति' शब्द-रूप की अनुगामिनी है। इसीलिए पाणिनि के व्याख्याकारों ने 'कर्म' को कारक ही कहा है, विभक्ति नहीं कहा। 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' (अष्टा० १।४।४९) की व्याख्या में कहा गया है कि 'कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्' (=कर्म कर्ता का ईप्सिततम होता है।)[2] कारकों की परिभाषा करते हुए पाणिनि लिखते हैं—(१) स्वतंत्रः[3] कर्त्ता' (अष्टा० १।४।५४) (=क्रिया का स्वतंत्र संपादक कर्ता होता है) (२) 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' (अष्टा० १।४।४९) [कर्त्ता का मध्यम इष्ट कर्म होता है।] (३) 'साधकतमं करणम्' (अष्टा० १।४।४२) (क्रिया का परम साधक करण होता है)। (४) "कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्" (अष्टा० १।४।३२) (क्रिया जिसके लिए होती है वह सम्प्रदान होता है)। (५) ध्रुवमपायेऽपादानम (अष्टा० १।४.२४) (क्रिया जिससे अलग हो या निकले वह अपादान होता है) (६) आधारोऽधिकरणम् (अष्टा० १।४।४५) (क्रिया का जो आधार हो वह अधिकरण होता है)

संस्कृत के वैयाकरणों ने कुल छह ही कारक बताये और 'कारकाणिषट्' की परम्परा चलती रही। पाणिनि के उक्त सूत्र इसके साक्ष्य में हैं।

ईसा के ३५० वर्ष पूर्व पाणिनि ने कारक और विभक्ति की दो भिन्न-भिन्न संकल्पनाएँ बताते हुए

---

१. 'कटम्' में—अम् प्रत्यय कर्मकारकत्व तथा एकवचनत्व का सूचक है।

२. 'त्वं गच्छ' में 'त्वं' कर्ता है। स्वतंत्र है जाए या न जाए। वाक्य में न भी हो तो कोई खास बात नहीं। अतः क्रिया के करने में या न करने में जो स्वतंत्र सत्ता रखता है, वाक्य में वही कर्ता होता है।

१. "चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश" (ऋक्० ४।५८।३)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection. Digitized

लिखा कि संस्कृत भाषा में छह कारक और सात विभक्तियाँ हैं—(१) कारक—कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण (२) विभक्तियाँ—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमी। अर्थात् छह कारकों और सात विभक्तियों का व्याकरणिक विश्लेषण किया गया।

पतंजलि (ई० पू० २०० वर्ष) ने भी शब्द-महादेव की व्याख्या करते हुए ऋग्वेद के मंत्र में आये हुए 'सप्त हस्तासो' का अर्थ सात विभक्तियाँ किया है।

सारांश यह है कि सुबन्त पदों के प्रमुख विभाग सात निश्चित हुए और क्रिया से सम्बद्ध होना 'कारक' का प्रमुख लक्षण माना गया।

हिन्दी की जन्मदात्री अपभ्रंश भाषा कुछ-कुछ विश्लिष्टता की ओर बढ़ रही थी। बारहवीं शताब्दी की रचना 'संदेशरासक' में अब्दुर्रहमान ने लिखा—"सव्व हियउ महु दुक्खि भरिउ पूरिउ अहिउ" (संदेश-रासक ३।१९७)। इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार हो सकता है—

"सर्वं हृदयं दुःखे भरितं अधिकं पूरितम्।"

संस्कृत 'दुःखे' में 'दुःख' में अधिकरण कारक और 'दुःखे' (दुःख+ए) में सप्तमी विभक्ति बतायी जा सकती है। लेकिन अपभ्रंश के 'दुक्खिमहु' में समस्या दूसरी है। यहाँ 'दुःख' को अधिकरण कारक और 'दुक्खि' को सप्तमी विभक्ति बताया जा सकता है; लेकिन विश्लिष्टावस्था में उसके पीछे जो 'महु' है, उसे क्या बताना चाहिए? यदि संस्कृत 'मध्ये' का विकास ही 'महु' है तो हम उसे अव्यय या निपात कह सकते हैं। जैसे **'सः गृहं प्रति गच्छति'** में 'गृहं' द्वितीया विभक्ति और 'प्रति' निपात है। कारक की दृष्टि से 'गृह' कर्म कारक भी है।

विभक्ति-प्रत्ययों के साथ-साथ अनुगामी निपातों अर्थात् परसर्गों की स्थिति व्रजभाषा और अवधी में भी मिलती है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में लिखा है—

"बार बार मोहि लागि बोलावा।"—(बाल० २७५।१)

उक्त अर्द्धाली में 'मोहि' द्वितीय विभक्ति है या कहिए कि चतुर्थी विभक्ति है, लेकिन फिर भी 'लागि' परसर्ग और लगा हुआ है। **'मोहि लागि'** (मेरे लिए) के समानान्तर तुलसी दास की अवधी में 'धनहि लागि' भी प्रयोग हो सकता है। यहाँ 'धनहि' को चतुर्थी विभक्ति और 'लागि' को निपात या परसर्ग कहा जा सकता है। 'धन' को संप्रदान कारक कह सकते हैं।

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में 'धनहि लागि' का रूपान्तर होगा—'धन के लिए।' अब प्रश्न उठता है कि यदि "मोहन धन के लिए परिश्रम करता है" वाक्य के 'धन के लिए' में कारक, विभक्ति आदि को बताना पड़े तो हिन्दी के वैयाकरण को क्या व्यवस्था देनी चाहिए?

ऐसी स्थिति में व्यवस्था देने के लिए हिन्दी के वैयाकरण एकमत नहीं हैं।

इस प्रसंग में हिन्दी-भाषाशास्त्रियों को दो प्रमुख सर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) पाश्चात्य भाषा शास्त्र से अप्रभावित हिन्दी भाषाशास्त्रि-वर्ग जिसमें स्व० पं० कामताप्रसाद गुरु तथा आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी प्रमुख हैं। (२) पाश्चात्य भाषाशास्त्र से प्रभावित हिन्दी-भाषाशास्त्रि-वर्ग जिसमें डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० आर्येन्द्र शर्मा, डॉ० उदयनारायण तिवारी, डा० हरदेव बाहरी आदि प्रमुख हैं।

पं० कामताप्रसाद गुरु का 'हिन्दी व्याकरण' सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व पादरी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आदम साहब का एक व्याकरण 'हिन्दी-व्याकरण' के नाम से प्रकाशित हो चुका था। उसमें 'कारक' शब्द का ही प्रयोग है। 'विभक्ति' शब्द का कहीं उल्लेख भी नहीं है। सन् १९२२ ई० में उत्तर-प्रदेश के शिक्षा विभाग ने हिन्दी-मिडिल की पाँचवीं, छठी और सातवीं कक्षाओं के लिए 'हिन्दी-मिडिल-व्याकरण' प्रकाशित कराया था। इसके बाद सन् १९५८ ई० में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कृत 'हिन्दी-शब्दानुशासन' को 'नागरी प्रचारिणी सभा', वाराणसी ने प्रकाशित किया।

संस्कृत-वैयाकरणों की परम्परा चली आ रही थी—'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' अर्थात् वाक्य की क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध है, उसे कारक कहते हैं।

"अयोध्या के राजा रघु ने अपने **राज्य** में **राजकोष** से लाखों **रुपये** अपने **हाथों** से **ब्राह्मणों को दिये**।"

उक्त वाक्य की 'दिये' क्रिया से सीधा सम्बन्ध 'रघु'[१]; रुपये,[२] हाथों,[३] 'ब्राह्मणों',[४] 'राजकोष',[५] और 'राज्य'[६] पदों का है। अतः ये क्रमशः कर्ता, कर्म,करण, संप्रदान, अपादान, और अधिकरण कारक हैं। 'अयोध्या' में कोई कारक नहीं, क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध 'दिये' क्रिया से न होकर, संज्ञा, 'राजा' से है। उक्त छह कारकों की व्यवस्था संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार है, जिसका समर्थन आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने भी अपने 'शब्दानुशासन' (सन् १९५८ ई०) में किया है।

सन् १९२० ई० में पं० कामताप्रसाद गुरु ने 'कारक' शब्द की संकल्पना में परिवर्तन कर दिया। उन्होंने अपने हिन्दी-व्याकरण में लिखा—

"संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है, उस रूप को कारक कहते हैं।'

—(हिन्दी-व्याकरण अनु० ३०४)

पं०कामताप्रसाद गुरु ने 'कारक' की परिभाषा में क्रिया से संबन्ध वाले मुख्य लक्षण को परिवर्तित करके उसके स्थान 'पर किसी दूसरे शब्द के साथ संबन्ध' कर दिया। उसी परिभाषा के आधार पर "अयोध्या के राजा रघु ने...दिये" वाक्य के 'अयोध्या के' में संबंध कारक मात्र जाने लगा। संभवतः गुरुजी पर यह अँगरेजी-व्याकरण का प्रभाव था, जिसमें एक कारक 'पजैसिव केस' के नाम से भी है। गुरुजी के अनुसार हिन्दी में आठ प्रकार के कारक और आठ प्रकार की विभक्तियाँ हैं। उदाहरण—

कारक	विभक्तियाँ
(१) कर्ता	—(१) ने
(२) कर्म	—(२) को
(३) करण	—(३) से
(४) संप्रदान	—(४) को
(५) अपादान	—(५) से

---

१. 'रघु' देना क्रिया के संपादक हैं, अतः कर्त्ता हैं। २. रुपये देना रघु का अभीष्ट है अतः रुपये कर्म हैं। ३. देने का काम हाथों से किया गया है, अतः साधन रूप 'हाथ' करण है। ४. देने की क्रिया ब्राह्मणों के लिए संपन्न हुई है, अतः ब्राह्मण संप्रदान है। ५. देने की क्रिया राजकोष से दूर (अलग) होती हुई सम्पन्न हुई है, अतः राजकोष अपादान है। ६. देने की क्रिया राज्य में हुई है, अतः राज्य अधिकरण है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कारक	विभक्तियाँ
(६) सम्बन्ध	—(६) का, के, की
(७) अधिकरण	—(७) में, पर
(८) सम्बोधन	—(८) हे, अजी, अहो, अरे।

पं० कामताप्रसाद गुरु को अग्रणी नेता स्वीकारते हुए 'हिन्दी-मिडिल-व्याकरण' (सन् १९२२) के लेखक ने भी कारक की परिभाषा लगभग उसी प्रकार से लिखी और आठ कारक तथा आठ विभक्तियाँ ही मानीं। हिन्दी-मिडिल-व्याकरण का लेखक विभक्तियों को 'कारक-चिह्न' भी लिखता है। वह कारक की परिभाषा इस प्रकार लिखता है—

"वाक्य में संज्ञाओं की अवस्था को कारक कहते हैं। कारक से यह जाना जाता है कि अमुक संज्ञा का सम्बन्ध वाक्य की क्रिया अथवा दूसरे शब्द के साथ किस प्रकार है।"[१]

गुरुजी के व्याकरण का प्रभाव हिन्दी-व्याकरण के अध्येताओं पर इतना पड़ा कि आगे चलकर कारक और विभक्ति की संकल्पना एक हो गयी। 'कर्त्ता-कारक' और 'प्रथमा-विभक्ति' में कोई अन्तर न रहा। चाहे कोई 'कर्त्ता-कारक' कहे या 'प्रथमा-विभक्ति'; दोनों का एक अर्थ समझा जाने लगा। संस्कृत-परंपरा से प्राप्त छह कारकों में आगे चलकर सम्बन्ध कारक तथा सम्बोधन कारक और सम्मिलित हो गये और कुल कारक-संख्या आठ हो गयी।

जहाँ तक 'विभक्ति' शब्द की संकल्पना का प्रश्न है, वहाँ यह कहा जा सकता है कि पं० कामताप्रसाद गुरु और आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी संज्ञा-सर्वनाम के साथ आने वाले **'ने' 'को', 'से', 'को', 'से', 'में', 'पर'** आदि को विभक्तियाँ कहते हैं। खड़ी-बोली हिन्दी के संदर्भ में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने सम्बन्ध-विभक्ति और सम्बन्ध-प्रत्यय को लेकर बड़ी मौलिक और निर्भ्रान्त संकल्पना प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि—"राम के चार गौएँ हैं" वाक्य में 'के' सम्बन्ध-विभक्ति है, लेकिन "राम के चार बैल मेरे अधिकार में हैं" वाक्य में 'के' सम्बन्ध-प्रत्यय हैं।[२]

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने विभक्तियों के दो भेद माने हैं—(१) विश्लिष्ट विभक्ति (२) संश्लिष्ट विभक्ति।

खड़ी बोली हिन्दी में 'को' विश्लिष्ट विभक्ति है और ब्रज तथा अवधी में 'हि' संश्लिष्ट विभक्ति है। जैसे—'बालक को' में 'को' विश्लिष्टावस्था (पृथक् स्थिति) में है; लेकिन 'बालकहि' में 'हि' संश्लिष्टावस्था (मिश्रित स्थिति) में है। खड़ी बोली में भी 'मुझको' में 'को' विश्लिष्ट विभक्ति है, लेकिन 'मुझे' में 'ए' संश्लिष्ट विभक्ति है। यदि 'मुझको' का 'को' संश्लिष्ट स्थिति में होता तो 'मुझ ही को' प्रयोग न होता।

मान लीजिए कि खड़ी बोली हिन्दी का एक वाक्य इस प्रकार है—

"सब कोई मुझे समदरशी कहता है।"

---

१. हिन्दी-मिडिल-व्याकरण, एजूकेशन डिपार्टमेंट, यूनाइटेड, प्रोविंसेज़ सन् १९२२ ई०, पृ० २८।

२. देखिए आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, हिन्दी-शब्दानुशासन, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् २०१४, पृ० १३०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उक्त वाक्य की 'मुझे' की-'ए' आचार्य वाजपेयी के मतानुसार संश्लिष्ट विभक्ति है। इसी आधार पर निम्नांकित अर्द्धाली के **'मोहि'** की 'हि' भी संश्लिष्ट विभक्ति ही होगी।

"समदरसी **मोहि** कह सब कोऊ"--(रामचरितमानस, किष्कि०. ३।८)

यदि उक्त अर्द्धाली का अनुवाद कोई खड़ी बोली में इस तरह करता है--"सब कोई **मुझको** समदर्शी कहता है।" तो इसमें 'मुझको' के 'को' को आचार्य वाजपेयी के मतानुसार विश्लिष्ट विभक्ति बताना पड़ेगा। वाजपेयी जी का यह भी कहना है कि एक ही विभक्ति कई कारकों में आ सकती है। जैसे—

(१) "मैं राम को जानता हूँ।"—यहाँ 'को' विभक्ति कर्म कारक में है।

(२) "राम को घर जाना है।"—यहाँ 'को' विभक्ति कर्त्ताकारक में है।

प्रथम वाक्य का **'राम'** कर्मकारक है। द्वितीय वाक्य का **'राम'** कर्त्ता कारक है।

पाश्चात्य भाषाशास्त्र से प्रभावित भाषाशास्त्रि-वर्ग के कुछ विद्वानों का मत पं० कामताप्रसाद गुरु और आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के मतों से भिन्न है।

डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० उदयनारायण तिवारी आदि का मत है कि 'मुझको' का **'को'** तो परसर्ग है और 'मुझे' की--'ए' विभक्ति है। उनके मत से 'विभक्ति' कारकीय अवस्था को सूचित करने वाला प्रारूप है जो संश्लिष्टावस्था में रहता है। लेकिन 'परसर्ग' विश्लिष्टावस्था में निर्दिष्ट संज्ञा या सर्वनाम के पीछे आया करता है। अँगरेज़ी **'पोस्टपोज़ीशन'** के स्थान पर उस वर्ग ने 'परसर्ग' का प्रयोग करना प्रारम्भ किया था। संस्कृत की परंपरा में तो उसे 'निपात' (अव्यय) भी कहा जा सकता है। अँगरेज़ी भाषा में संज्ञा-सर्वनाम के साथ 'प्रीपोज़ीशन' आते हैं, लेकिन हिन्दी भाषा में पोस्टपोज़ीशन प्रयुक्त होते हैं। अँगरेज़ी में **'अपटू सेविन'** और हिन्दी में **'सात तक'**। हिन्दी के निम्नांकित वाक्यों में 'को' परसर्ग विश्लिष्टावस्था में हैं—(१) हमें संथालों इत्यादि को प्रेम की दृष्टि से देखना चाहिए। (२) तुम अपने भाई, बहिन और भतीजे ही **को** यहाँ ले आते।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि **'मोहि'** की 'हि' तो आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तथा डॉ० बाबूराम सक्सेना आदि के मतानुसार 'विभक्ति' है ही लेकिन 'मुझको' का **'को'** क्या है? क्या आचार्य वाजपेयी के अनुसार इसे 'विभक्ति' कहना अधिक वैज्ञानिक है अथवा डॉ० सक्सेना के अनुसार 'परसर्ग' कहना समीचीन है?

मान लीजिए कि निम्नांकित एक वाक्य में **'अयोध्या के'** पदों के विश्लेषण के लिए आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और डॉ० बाबूराम सक्सेना को दिया जाता है, तो वे किस प्रकार विश्लेषण करेंगे?

"अयोध्या के राजा ने लाखों रुपये ब्राह्मणों को दिये।" उपर्युक्त वाक्य के **'अयोध्या के'** **'के'** को आचार्य वाजपेयी 'विभक्ति' न बताकर 'सम्बन्ध-प्रत्यय' बताएँगे। पं० कामताप्रसाद गुरु के अनुसार यही **'के'** विभक्ति है। भाषावैज्ञानिक तथ्य-निर्णय के आधार पर पं० कामताप्रसाद गुरु का मत तो भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध होता है। कारण यह है कि उन्होंने जिन कारकीय चिन्हों को विभक्तियाँ कहा है, वे प्रायः सब शाश्वत रूपेण

---

१. देखिए--**'ने' परसर्ग का व्यवहार खड़ी बोली हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है।"**
—(डा० उदयनारायण तिवारी, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, सं० २०१२ वि०, पृ० ४३९)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अक्षुण्ण रहने वाले हैं। उनके साथ पूर्वावस्था में आने वाली संज्ञाओं के लिंग-वचन परिवर्तित होने पर निम्नांकित हिन्दी-वाक्यों के अन्तर्गत उनमें परिवर्तन नहीं हो रहा। जैसे—

(१) **लड़की को** यहाँ ला। **लड़कियों को** यहाँ ला (सं० बालिकां अत्रानय। बालिका: अत्रानय)

(२) **लड़के को** यहाँ ला। **लड़कों को** यहाँ ला (सं० बालकं अत्रानय। बालकान् अत्रानय)।

उपर्युक्त वाक्यों में 'को' विभक्ति मानी जा सकती है। लेकिन निम्नांकित वाक्यों में 'के' की स्थिति देखिए—

(१) **अयोध्या का** राजा दान करता है। (सं०—अयोध्या: राजा दानं करोति।)

(२) अयोध्या **के** राजा दान करते हैं। (सं०—अयोध्या: राजान: दानं कुर्वन्ति।)

(३) **अयोध्या की** रानी दान करती है। (सं०—अयोध्या: राज्ञी दानं करोति।)

(४) अयोध्या **की** रानियाँ दान करती हैं। (सं०—अयोध्या: राज्ञ: दानं कुर्वन्ति।)

सर्वत्र 'अयोध्या:' पदों में पदान्त 'आ:' अक्षुण्ण है, लेकिन संस्कृत वाक्यों के समानान्तर हिन्दी-वाक्यों में 'का' परिवर्तनशील है। अत: इसे विभक्ति मानना वैज्ञानिक नहीं। विभक्ति अक्षुण्ण रहती है। इस पर पश्चात आगत पद के लिंग-वचन का प्रभाव नहीं पड़ता। इसीलिए आचार्य वाजपेयी उक्त **'का'**, **'के'**, **'की'** को प्रत्यय कहते हैं विभक्ति नहीं कहते। निम्नांकित वाक्यों की 'के' आचार्य वाजपेयी जी **के** मतानुसार विभक्ति अवश्य है, क्योंकि वह पश्चात् आगत पद के लिंग-वचन के प्रभाव से दूर है—

(१) उस लड़के **के** चार गायें हैं।

(२) उन लड़कों **के** चार-बैल हैं।

(३) उस लड़की **के** एक गाय है।

(४) उन लड़कियों **के** एक बैल है।

'के' के साथ-साथ् **'का'**, **'की'**, 'के' का विश्लेषण जो आचार्य वाजपेयी के द्वारा व्यक्त किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य वाजपेयी जी की दृष्टि और मत गुरु जी की दृष्टि और मत की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक हैं और तथ्यपूर्ण हैं। लेकिन डॉ० सक्सेना द्वारा अवधी के **'केर'** (पु०) और **'केरि'**[1] (स्त्री०) को परसर्ग बताया जाना असंगत है। 'परसर्ग' जब अँगरेजी 'पोस्ट पोजीशन' का अनुवाद है, तब तो वह 'प्रीपोज़ीशन का विलोम हुआ। अँगरेज़ी में जहाँ 'प्रीपोज़ीशन' आता है, वहाँ हिन्दी में 'पोस्टपोज़ीशन'। प्रीपोज़ीशन अपरिवर्तनशील होते हैं, अत: पोस्टपोज़ीशन भी अपरिवर्तनशील होना चाहिए।

" The song of Mohan the daughter of Mohan" में of अक्षुण्ण है, लेकिन 'मोहन का पुत्र', 'मोहन की पुत्री' में 'का' परिवर्तनशील है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब किसी स्थल पर साथ-साथ **'हि'** और **'कहँ'** आएँ तो उनका विश्लेषण किस तरह अधिक वैज्ञानिक है ?

तुलसी ने लिखा है—

"सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा।"—(रामचरितमानस, अर० १६।१०)।

(अर्थात् सब कुछ मुझको जानता है और सेवा में दृढ़ रहता है।)

---

१. इवोल्यूशन आफ अवधी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९३७, पृ० २१७)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसी प्रकार 'हि' और 'लागि' साथ-साथ आएँ तो विश्लेषण क्या करना संगत है ?

उदाहरण—

"बार बार मोहिं लागि बोलावा"—(रामचरित मानस बालकाण्ड २७५।१)।

(अर्थात् बार-बार **मेरे लिए** बुलाते हैं।)

आचार्य वाजपेयी के अनुसार **"मोहिं कहँ"** में 'हि' संश्लिष्ट विभक्ति और 'कहँ' विश्लिष्ट विभक्ति है। इसी प्रकार **'मोहि लागि'** में 'हि' संश्लिष्ट विभक्ति और **'लागि'** विशिष्ट विभक्ति है। अर्थात् 'हि' और 'लागि' दोनों ही विभक्तियाँ हैं।

यहाँ संस्कृत की द्वितीया एकवचन सूचक—अम् और अवधी की द्वितीया सूचक 'हि' का अन्तर समझ लेना चाहिए। संस्कृत के अन्यपुरुषीय सर्वनाम पद 'तम्' (=उसको) का-अम् तो एकवचन और द्वितीया का सूचक है। उसी प्रकार 'तान्' (=उसको) का आन भी बहुवचन और द्वितीया का सूचक है लेकिन अवधी के 'ताहि' (=उसको) का-हि केवल द्वितीया का सूचक है। 'ति-हहि' (=उनको) का 'हि' भी द्वितीया का सूचक है। जैसे—

"बाली ताहि मारि गृह आवा"—(रामचरित मानस, किष्कि० ६।१०)।

"तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी"—(रामचरित मानस, किष्कि० ७।१)।

डा० सक्सेना के मतानुसार **'मोहि कहँ'** में **'हि'** विभक्ति और **"कहँ"**[1] परसर्ग है। इसी प्रकार **'मोहि लागि'** में 'हि' विभक्ति और **'लागि'** परसर्ग है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी अपने 'व्रजभाषा-व्याकरण' में **लागि** आदि को परसर्ग ही कहा है।

भारतीय भाषाशास्त्र की परम्परा में 'विभक्ति' शब्द की एक प्राचीन निश्चित संकल्पना चली आ रही है कि विभक्ति प्रतिपादिकीय पदान्त-तत्व है। जैसे 'बालकम्' पद में—अम्। किसी पद में एक विभक्ति के बाद दूसरी विभक्ति तो होती नहीं। फिर हिन्दी में अथवा व्रज, अवधी आदि में **'मोहि लागि'** में 'हि' के साथ 'लागि' को भी विभक्ति कहना कुछ असंगत-सा लगता है। संस्कृत की परंपरा की रक्षा करते हुए यों कहा जा सकता है कि 'मोहि लागि' में 'हि' विभक्ति और 'लागि' निपात् (अव्यय) हैं। निपात के लिए अँगरेज़ी-परंपरा के 'परसर्ग' शब्द को ग्रहण किया जाए तो हम कह सकते हैं कि 'हि' विभक्ति और **'लागि'** परसर्ग है। 'सः गृहं प्रति गच्छति' में भी द्वितीयान्त 'गृहं' का 'अम्' विभक्ति और **प्रति** निपात (अव्यय) है। यदि **'प्रति'** को हम 'विभक्ति' कहेंगे तो भ्रान्तिमूलक होगा। प्राचीन संकल्पना में भी बाधा पड़ेगी। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' के व्याख्याकार भट्टोजिदीक्षित भी 'गंगाया':' के अन्तिम 'याः' को विभक्ति ही बताते हैं।'पारे मध्ये षष्ठ्यावा' (अष्टा० २।१।१८) की व्याख्या में कहा गया है—"पारमध्य शब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येते। गंगायाः मध्यात्=गंगामध्यात्।" यहाँ 'षष्ठ्यन्तेन सह' का अर्थ है—षष्ठ्यन्तेन पदेन सह=षष्ठी विभक्ति है। अन्त में जिसके, उस पद के साथ। हेमचन्द्र ने भी विभक्ति का अर्थ 'विभक्ति-प्रत्यय' ही किया है। वह ८।४।३४५ सूत्र की व्याख्या में लिखता है—

'अपभ्रंश षष्ठ्या विभक्तित्याः प्रायो लुग् भवति' (सिद्ध हेम० ८।४।३४५।१)। सं०—गजानां

---

१. इवोल्यूशन आफ अवधी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९३७, पृ० २१५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कुंभान्=अप० गय कुम्भइँ। पुं० 'कुम्भान्' का अपभ्रंश में 'कुंभइँ' होता है। त० **'कमलानि'** का भी अपभ्रंश में 'कमलइँ'[१] रूप होता है।

मराठी में भी कर्म कारक की सूचक एक वचन में **'ला'** और वहुवचन में **'ना'** विभक्तियाँ हैं। ये परसर्ग नहीं, क्योंकि परसर्ग एक प्रकार से शुद्ध् अव्यय हैं। मराठी में--**मुलाला** (=लड़के को); **मुलांना** (=लड़कों को)। संस्कृत में--वालकम्; वालकान्। मरा० ला=सं० अम्। मरा० ना=सं० आन्।

अतः प्राचीन संकल्पना को सुरक्षित रखते हुए हम कह सकते हैं कि **'मोहि लागि'** में **'हि'** विभक्ति है और **'लागि'** निपात (अव्यय) है। विभक्ति संश्लिष्ट होती ही है और निपात विश्लिष्ट (पृथक्) होता है आधुनिक पाश्चात्य भाषाशास्त्र के प्रभाव में आकर कहें तो ऐसा कहा जा सकता है कि **'मोहि लागि'** में **'हि'** विभक्ति और 'लागि' परसर्ग है। परसर्ग विश्लिष्टावस्था में होता है और अपरिवर्तित दशा में भी रहता है। ये दोनों लक्षण लागि में मिलते भी हैं। अतः **'हि'** को विभक्ति और **'लागि'** को परसर्ग कहना अधिक वैज्ञानिक है। परिनिष्ठित खड़ी वोली हिन्दी के संज्ञापदों के केवल रूपों पर ही विचार करें तो आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार केवल **तीन कारक** ही सिद्ध होते हैं (१) अविकारी कारक, (२) विकारी कारक। (३) सम्वोधन कारक।

	एकवचन	वहुवचन
(१)	अविकारी कारक-- घर, लड़का, किताव।	घर, लड़के, किताबें
(२)	विकारी कारक-- घर, लड़के, किताव।	घरों, लड़कों, किताबों।
(३)	सम्बोधन--घर! लड़के किताव!	घरों, लड़कों, किताबों!

साहित्यिक खड़ी वोली में तो नहीं, हां हिन्दी की जनपदीय उपभाषाओं (व्रज, अवधी, आदि) में हमारे समक्ष ऐसी समस्याएँ वहुत सी आ सकती हैं। अतः भाषाविज्ञान में सैद्धान्तिक पारिभाषिक शब्दावली की संकल्पना ऐसी निश्चित होनी चाहिए, जिससे हिन्दी और उसकी जनपदीय वोलियों अथवा अन्य भाषाओं पर भाषाशास्त्रीय दृष्टि से काम करने वालों को सुविधा रहे।

---

१. अपभ्रंश की यही 'अइँ' विभक्ति' हिन्दी में--एँ हो गयीं है जो पुस्तकें, खाटें आदि के स्त्रीलिंग वहुवचनीय (ऋजु अवस्था में) रूपों में समुपस्थित है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गीति काव्य का प्रथम कवि 'उमापति'

डॉ० केशवदेव शर्मा

वेदान्ताचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०

"पद" का काव्यरूप में उद्गम मध्ययुगीय भाषा साहित्य की एक मान्य विशिष्टता है जिसका श्रेय संस्कृत के उपजीव्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत को ही दिया जा सकता है। वैष्णव धर्म के अभ्युदय काल में वैष्णव कवियों ने राधामाधव की लीला के चिन्तन की अवसर पर पदशैली में अपने काव्य का प्रणयन किया। राधा-कृष्ण की उपासना के साथ संगीत का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध रहा है। इन संगीतमय पदों के माध्यम से वैष्णव कवि अपने भावों को पूर्ण वैभव के साथ प्रकट करने में सफल हुए हैं। हिन्दी भाषा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत अनेक विभाषाएँ स्थान बनाए हुए हैं। इस धारणा के आधार पर यदि वैष्णव पदावली के हिन्दी आदि प्रवर्तक का अन्वेषण करें तो अनेक तथ्य हमारे सन्मुख उपस्थित होना स्वाभाविक है।

हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वानों का कथन है कि ब्रजभाषा के प्रथम पदकर्ता विष्णुदास से मैथिली पदकर्ता विद्यापति तथा बंगला पदकर्त्ता चण्डीदास प्राचीनतर हैं किन्तु इनके आविर्भावकाल से पूर्व एक और पदकर्त्ता हो चुके हैं, जिन्होंने वैष्णव पद-साहित्य के रूप में अपूर्व निधि हिन्दी 'पद' प्रेमियों को प्रदान की है। इनका नाम है उमापति। ये मिथिला के राजा नाथदेव (१०९८-११३५) की पीढ़ी के चौथे राजा हरिदेव के आश्रित कवि थे। अतः इनका आविर्भाव चतुर्दश शती का प्रथम चतुर्थांश (१३२० वि० के समीप) हो सकता है।

उमापति ने संस्कृत में 'पारिजात हरण' नाटक की रचना की जिसमें अनेक गीत अनेक रागों में निवद्ध कर रचे हैं। उमापति संगीत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने हिन्दी में वैष्णव पदावलि की रचना की है जिसमें माधुर्य के साथ प्रसाद का मिश्रण है। यही कारण है कि उनके गीत अत्यन्त रससिक्त बन गए हैं। यथा—सत्यभामा की विरहदशा का वर्णन उसकी सखी सुमुखी श्रीकृष्ण के सन्मुख कर रही है—

कि कहन माधव तनिक विशेषे। अपनहु तनु धनि पाव कलेशे।
आपनु क आनन आरसि हेरी। चातक भरम कांप कत बेरी।
भरमहु नियकर उर पर आनी। परसै तरस सरसीरुह जानी।
चिकुर-निकर निय नयन निहारी। जलधर जाल जानि हिय हारी।
अपन वचन पिकरव अनुमागे। हरी हरी तेहु परितेजय पराने।
माधव आवहु करीय समधागे। सुपुरुष निठुर रहय न निदाने।
सुमति उमापति मन परमाने। माहेशरि देइ हिन्दूपति जाने।

सत्यभामा विरह सन्तप्ता है अत. उसके शरीर से उत्पन्न भय का स्वरूप विचारणीय है। जिसका अनुमान करके आश्चर्यचकित होना पड़ता है। सत्यभामा दर्पण में अपना मुख निहारती है, जिसे वह चन्द्रमा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

समझती है तथा भय से कम्पित हो उठती है। अपने ही केशपाश को देखकर नीलधरा की भ्रान्ति से उसका दिल बैठने लगता है। अपने ही वचनों को कोकिला की ध्वनि (पिकरव) मान बैठती है। विरहिणी की ऐसी दशा क्या अत्यौक्तिकता की द्योतक नहीं है?

श्रीकृष्ण का सत्यभामा का मान भंग करने के लिए मनाना—

जब सत्यभामा मान का परित्याग नहीं करना चाहती है तो श्रीकृष्ण अपना दोष स्वीकार कर लेते हैं तथा सत्यभामा से दण्ड देने के लिये आग्रह करने लगते हैं तथा कहते हैं—

मानिनि मानव जओं मोर दोसे
शास्ति करिय बरु न करिअ रोसे।
भौंह कमान विलोकन बाने
बंधह विधुमुख कय समधाने।
पीन पयोधर गिरिवर साथी
बाहु फांस धनि धरु मोहि बांधी।
को परिणति भय परसनि होई
भूषण चरण कमल देह मोही।
सुमति 'उमापति' मन परमाने
जगमाता देह हिन्दूपति जाने।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि मानिनि यदि मेरा ही दोष है तो मुझे दण्ड दो, क्रोध न करो। हे विधु-वदनि: अपने कमान रूप भ्रूको साध कर वाण सदृश्य तीखे कटाक्ष छोड़ो तथा मुझे विद्ध कर दो। पीन पयोधर रूपी पर्वतों में मुझे साध कर अपनी भुजारूप पाश में जकड़कर बांध लो। मैं इस दण्ड को सहन करने के लिए सतत उद्यत हूँ।

कवि उमापति के ऊपर प्रसिद्ध गीतिकार जयदेव का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यही कारण है कि उमापति के द्वारा रचित ऐसे अनेक पद प्राप्त होते हैं जिन्हें साक्षात जयदेव के गीतों का अनुकरण रूप ही माना जा सकता है। ऊपर सत्यभामा के 'मान' का चित्रण प्रस्तुत किया है: जिसके साम्य में **गीत -गोविन्द** का यह पद दिया जा सकता है:—

सत्यमेववासि यदि सुदति, मयि कोपिनी।
देहि स्वर-नरवर शर-घातम्।
धरय भुजबंधनं जनय रद खण्डनम्।
येन वा भवति सुख जातम्।

तात्पर्य यह है कि हे सुदति राधिके। यदि तुम वास्तव में मेरे ऊपर क्रुद्ध हो, तो मेरे शरीर पर तीक्ष्ण नख रूप वाणों का प्रहार करो। मुझे अपनी भुजाओं के बन्धन में डाल दो। अपने दांतों से मेरे अधर आदि अंगों का खण्डन करो, जिससे तुम्हें सुख मिले। अपराधी को उसके अपराधों के लिए वाण-प्रहार, बंधन तथा शस्त्रों द्वारा शरीरघात आदि दण्ड दिए जा सकते हैं। मैं भी इन दण्डों को प्राप्त करने के लिए तैयार हूँ। क्योंकि इन दण्डों का रूप श्रृंगारिक होने के कारण रस पोषक है, शोषक नहीं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Babu Vrindavan Das Collection, Lucknow

कवि उमापति ने भी जयदेव के ये ही भाव अपने पदों में स्पष्ट किए हैं इस प्रकार कवि उमापति गीति-काव्यकार के रूप में एक उत्कृष्ट स्थान रखते हैं। अब तक यह धारणा थी कि कवि विद्यापति ही हिन्दी के आदि पदकर्ता या प्रथम गीतिकार हैं किन्तु अब यह धारणा नितान्त भ्रमात्मक सिद्ध हो चुकी है तथा प्रमाणों के द्वारा यह सत्य सिद्ध होचुका है कि उमापति हिन्दी-जगत के प्रथम गीति काव्यकार हैं। वंगला के प्राचीन पदावलि-संग्रहों में उमापति उनके पाश्चात् इतनी ख्याति प्राप्त कर गए कि उमापति के व्यक्तित्व को कुछ फीका कर दिया कुछ भी हो उमापति ही एक ऐसे गीतिकाव्यकार हैं जिनके गीतों को मौलिक माना जा सकता है तथा जिनके ऊपर संस्कृत गीतिकाव्यकारों की पूर्ण छाप है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कवियित्री ताजकृत बीबी-बांदी का झगड़ा

क्षेत्रपाल शर्मा

एम० ए०

भक्ति साहित्य में ताज का नाम अपना विशेष महत्व रखता है। उसकी 'हों तौ मुगलानी पै हिन्दुआनी ह्वै रहोंगी मैं' वाली पंक्ति आस्था का चरमोत्कर्ष है। कायमखानी कुलोद्भव नवाब फदनखाँ की पुत्री और बादशाह अकबर की पत्नी ताज श्री कृष्ण की परम उपासिका और पुष्टि सम्प्रदायी भक्त थीं। पुष्टि सम्प्रदायी होने के कारण उनकी व्रज और व्रजराज में अत्यन्त श्रद्धा थी—मृत्यु के उपरान्त उनकी समाधि व्रज के जती-पुरा गांव में श्रीनाथ जी के मन्दिर के पास बनाई गई। ताज ने सवैये कवित्त दोहे और धमार प्रचुर संख्या में लिखे हैं। पुष्टि सम्प्रदाय में इनकी साढ़े बारह धमार मान्य हैं। इनकी रचनाओं का वर्ण्य विषय कृष्ण भक्ति है।

खोज के वातायनों से अनेक तथ्यों पर आलोक पड़ता है। कुछ दिनों पूर्व ताज कृत 'बीबी बांदी का झगड़ा' नामक पुस्तक विद्वानों की दृष्टि में आई है। इस पुस्तक की कथावस्तु साधारण जीवन की एक घटना है एक मीराँ आदम नाम का व्यक्ति अपनी बीबी के यौवन के ढल जाने पर अपनी बाँदी से प्रेम करने लगता है बीबी बांदी के झगड़े का मूल कारण यह अवैध प्रेम है। इस पुस्तक का प्रारम्भ इन पंक्तियों से होता है :—

कथा तरंग उकति मति आई।
उकति युकति की माल बनाई।
नारी बहुत जि कहत पखाने।
सो कछु थोरे इहि महि आने।
आगम बात हांसी सुनि आवै।
रोवत मानस ताज हँसावै।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि यह कथा उक्ति युक्ति शैली में रची गई है और इसमें महिलाओं द्वारा लोक प्रचलित अनेक उपख्यानों अर्थात् कहावतों का प्रयोग है, इस रचना का उद्देश्य दार्शनिक या धार्मिक उपदेश देना नहीं है अपितु उसका उद्देश्य मनोरंजन मात्र है जैसा कि'रोवत मानस ताज हँसावे" इस पंक्ति में सुव्यक्त है।

झगड़ा साहित्य पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें प्राप्त हैं—झगड़ा साहित्य रोचक साहित्य है। वस्तुतः यह क्लब लिट्रेचर का ही एक प्रकार है। हलका फुलका साहित्य लिखने की जो परम्परा हिन्दी में अमीर खुसरो से प्रारंभ हुई यह उसी की एक कड़ी थी। सोने रत्ती के झगड़े से तो सभी परिचित हैं जिसमें रत्ती सोने को पाप का मूल ठहराती है और सोना काले मुंह की रत्ती के सम्पर्क को ही अपने अधःपतन का कारण बतलाता है—"सोना कहै सुनार से उत्तम मेरी जात, काले मुंह की चिरमिठी तुली हमारे साथ" वाला कथानक जनप्रिय

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कहानी है—जैसा कि सुस्पष्ट है कि इन झगड़ों में अधिकतर रोचक संवाद होते हैं। बीबी बाँदी का झगड़ा भी रोचक संवादों की शृंखला है, ताज ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में 'उकति युकति की माल बनाई' कह कर इसे स्पष्ट कर दिया है।

लोक जीवन में उपखानों को लिपिबद्ध करने की परम्परा प्रचलित ब्रज साहित्य में बहुत समय से चली आ रही है। जगदानन्द कृत "उपखान भागवत दशम स्कन्ध, शिवसहाय कृत—लोकोक्ति कौमुदी श्री शिवलाल कृत—जुक्ति समूह तथा जवाहर मल कृत—उपखान पचासा इसी परम्परा में आते हैं। कवियित्री ताज के बीबी बांदी के झगड़े में सौ से अधिक स्त्रियों द्वारा व्यवहृत उपखान प्रयुक्त हुए हैं—ताज ने उपखानों के लिए पखान शब्द का प्रयोग किया है—गढ़वाल की ओर पखान शब्द उपखान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ताज की रचना का उद्देश्य भी इन उपखानों को लिपिबद्ध करना है।

नारी बहुत जि कहत पखाने।
सो कछु थोरे इहि महि आने।

बीबी और बांदी के झगड़े में अनेक उपखान मिलते हैं जैसे—

काढ़ी सट्टों ज्यों दूध की माखी,
आंखि मूंदि अंधियारी करै।
चोरी कौ गुड मीठौ लागै
जांघ उघारे लाजन मरिए
चांद न कूडै ढांका रहै
धुनिया नया मूंज की तांत
दोनों हाथै ताली बजै
जो गुड खाय सो कान विंधावै
चंदा एकु सवा लखु तारे—— आदि

इस पुस्तक में झगड़े की समाप्ति साजन और सजनी के मेल में इस प्रकार होती है

तेल ते पानी करै बांदी लंगर ढीठ
साजन साजन रति गये झूठे भये बसीठ
कुल की सरम है औरे बंदु
ताज कहां लौं जोरे छंदु
मीरां के काजै किया सांचा सोचु कराई
झूठै माया मोह सौं सबै रहै पछिताई॥

अंत में पुष्पिका दी गई है :—

इस प्रकार के ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि ब्रजभाषा में केवल ऐसे पारमार्थिक साहित्य का ही सृजन नहीं हुआ जो उत्तम वर्ग के लिए ही हितकारी हो अपितु समाज के मध्यम और सामान्य वर्ग के लिए भी रोचक साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है ताज कृत बीबी बांदी का झगड़ा इस रोचक साहित्य का उत्कृष्ट नमूना है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेमयोगिनी मीराँ

कु० लक्ष्मी मिश्रा
एम० ए०, बी० एड०

"मैं गिरधर के रंगराती, सैयाँ मैं गिरधर के रंगराती,
पंचरंग चोला पहिरि सखी मैं झुरमुट रमवा जाती
झुरमट मांहि मिल्यो साँवरो खोल मिलीं तन गाँती।"

"खोल मिली तन गाँती"––निरावरण, निरावगुंठित, बाबरी, दीवानी, मीरा, संसार की अद्भुत प्रेम-कथाओं की प्रधान नायिका मीरा, प्रेम के संसार में और संत-भक्ति संसार में एक अमर नाम, अमर ज्योति है।

मेवाड़ देश के मेड़ता में मीरा का जन्म संवत् १५५५ के लगभग हुआ। ये मेड़तिया के राठौर रणसिंह की पुत्री थीं। इनकी माता का देहान्त बहुत बचपन में हो गया था किन्तु मीरा के पति कौन हैं? इस सत्य को वह अपने जीवन में ही मीरा को समझा गयीं थीं।

एक बार एक बारात आई। बारात में दूल्हे को देखकर भोली बालिका मीरा माँ से सहज प्रश्न कर उठी––"माँ मेरा दूल्हा कौन है?" मीरा के भोले भाव से विमुग्ध माँ ने भी सहज ही संकेत से उत्तर दिया वह रहा तेरा दूल्हा। संकेत में प्रदर्शित वह दूल्हा था भगवान कृष्ण की मूर्ति; पुनश्च एक बार एक साधु मीरा के घर पर पधारे। साधु से पास अत्यधिक आकर्षक मोहक प्यारी कृष्ण की मूर्ति थी। कृष्ण मूर्ति को देख कर बाल-स्वभाव वश मीरा ललचा उठी। साधु ने मूर्ति माँगी परन्तु मूर्ति नहीं मिली। उसकी अप्राप्ति पर मीरा को अत्यधिक पीड़ा हुई, परन्तु यह भला कैसे हो सकता था कि मीरा को मूर्ति न मिलती, पत्नी को पति न मिलता। अस्तु, अप्रत्याशित ही दूसरे दिन साधु स्वयं ही मूर्ति लिये मीरा के पास पहुँचे। साधु का मीरा के पास स्वयं मूर्ति ले आने के पीछे केवल एक यही रहस्य था कि रात्रि में भगवान कृष्ण ने साधु को स्वयं ही स्वप्न में मीरा को मूर्ति प्रदान करने का आदेश दिया था।

पालन-पोषण के समय संस्कारों का प्रभाव भी कुछ कम प्रबल नहीं होता। मीरा का पालन किया था दादाराव दूदा जी ने। वे स्वयं नितान्त वैष्णव कृष्ण-भक्त थे। अतः शिशुकाल से ही मीरा को संस्कार रूप कृष्ण भक्ति की प्राप्ति हुई। उस पर साधु द्वारा प्राप्त मोहिनी मूर्ति मीरा के नयनों में समायी रहती। जिसके कारण रात्रि दिवस वह कृष्ण मूर्ति के समक्ष विभिन्न भाव लीलाओं से भरित क्रीड़ाएँ किया करती। शिशुकाल से ही कृष्णभक्ति में विभोर मीरा का विवाह १८ वर्ष की अवस्था में अनायास उदयपुर के राणा साँगा के ज्येष्ठ कुँवर भोजराज के साथ हो गया। यद्यपि मीरा का दाम्पत्य जीवन आनन्दपूर्ण था परन्तु फिर भी बचपन के प्यारे कौतुक नहीं भूले थे। कृष्ण की मूर्ति ने उन्हें पूर्वानुरक्त कर अपनी सुधि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बिसरने नहीं दी। फलतः उनके अनुराग का, कृष्ण प्रीति का उफान दिनों-दिन बढ़ती बाढ़ के सदृश उमड़ता ही रहा। उसी प्रीति की तन्मयता में उन्होंने लोक-लाज, कुल-मर्यादा सभी कुछ त्याग दिये। थोड़े ही समय के पश्चात् पति का देहान्त हो गया और तब मीरा पूर्णतः कृष्ण-भक्त हो गयीं, पूर्णतः प्रेम दीवानी। वह संतों की मंडली में नाचती, संतों की भीड़ लगी रहती। उनकी इसी गति-विधि से घरवालों का व्यवहार उनके प्रति कठोर होता गया। अंततः, राणा ने विष का प्याला भेजा। मीरा उसे प्रभु का चरणामृत समझकर पी गयीं। पिटारी में साँप भेजा गया तो उसे प्रभु का उपहार रूप हार समझकर निर्भीक अपने गले में धारण कर लिया। उनकी ऐसी अनन्य कृष्णानुरक्ति पर सम्बन्धियों द्वारा प्रेरित कोई भी बाधा प्रहार न कर सकी।

भगवद्भक्ति के क्षेत्र में मीरा का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। आचार्य शुक्ल के अनुसार मीरा के पदों में 'माधुर्य भाव की प्रधानता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से तो 'मीरा के पदों में अपूर्व भाव-विह्वलता, आत्म-समर्पण का भाव अभिव्यक्त है। कुछ पदों में तो निर्गुण भावना के दर्शन भी होते हैं जो मीरा के निर्गुणोपासक होने का संकेत करते हैं यथा—

'तुम बिच मो बिच अन्तर नाहीं
मेरेपिया मो मांहि बसत हैं। अद्वैतता का आभास कराता है।
'अटल रहे अविनासी'
गगन मंडल पर सेज पिया की

'किस विध मिलना होय' के रूप में उनकी आत्मा उस अनिर्वचनीय ब्रह्म की प्राप्ति को व्याकुल दिखाई देती है। यहीं पर उनके काव्य में पूर्ण रहस्यवाद का उदय होता है। यत्र-तत्र तत्कालीन हठयोग का प्रभाव भी दृष्टिगत है। इसके अतिरिक्त उनके पदों में निर्गुण संतों की पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग भी मिलते हैं। सत्गुरु, शून्यमहल, निरंजन, 'झिरमिट खेलने जाना' तथा 'सत्गुरु' मिलने से संयम का भागना आदि आदि।

मीरा मुख्यतः सगुणोपासिका हैं। उन्होंने कृष्ण के मधुर रूप की उपासना की है। किन्तु जब उनकी गूढ़तम अन्तर-अनुभूति अंतस्थल को चीरकर अपनी स्थिति स्थिर न कर सकी तो उन्होंने उस निर्गुण को भी अवश्य चाहा है जो भौतिक प्रपंचों से परे एकरस, एकरूप और निर्मुक्त है। 'आ अपनी गैल बता जा रे" भाव से प्रेरित अलौकिक प्रेम की दीवानी मीरा ने अपने उद्गारों द्वारा मुक्तावस्था का वह संदेश दिया है जो सदा-सर्वदा जाग्रत-जीवन्त और दीप्तमय है।

मीरा का व्यक्तित्व अपनी रचनाओं में इतना स्पष्ट है कि वे वस्तुतः अपनी भक्ति-भावना में किसी से प्रभावित हुई नहीं ज्ञात होतीं। मीरा ने तो केवल व्यक्तिगत ईश्वर की भावना रखी है जिसमें रूप सौन्दर्य और प्रेमाभिव्यक्ति है। पदों में इष्टदेव का वर्णनात्मक रूप भी नहीं। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि उन्होंने सन्तमत के अनुसार ईश्वर की भक्ति की है। सम्भव है संतों की भक्तिसाधना का प्रभाव उन पर पड़ा हो। ऐसे पदों में संतमत में प्रयुक्त रूपक और शब्दावली का ही प्रयोग इस रूप में प्राप्त है।

'नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहब पाऊँ री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री।
त्रिकुटीमहल में बना है झरोखा, वहाँ मैं झाँकी लगाऊँ री
सुन्नमहल में सुरत जगाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और भी—

सुरत निरत का दिवला सँजोले मनसाकी करले बानी
प्रेम हठी का तेल मँगाले, जगे रह्या दिन राती।"

मीरा श्री कृष्ण की अनन्य सेविका थीं। वह उनके कमल चरणों को त्यागकर स्वर्ग भी नहीं चाहतीं। कृष्ण वियोग उनके लिए असह्य है। वे सदा श्याम का सुन्दर रूप देखने को आतुर हो भाव विभोर गा उठती हैं—

'बसो मेरे नैनन में नन्दलाल
मोहनी मूरत सांवरी सूरत, नैना बने बिसाल।"

मीरा की भक्ति के दो ही प्रधान पक्ष हैं विनय और विरह। इन्होंने नारी की सम्पूर्ण मर्यादा रखते हुए नारी, प्रकृति, प्रेम और विरह प्रेम और भक्ति का पवित्र, सुन्दरतम रूप प्रस्तुत किया है। इसी भाव से अपने इष्टदेव गिरधर गोपाल की भक्ति में वे अनायास कभी-कभी नाच उठी हैं।

"मीरा नाची रे
पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे
मैं तो अपने नारायण की, आपहि हो गई दासी रे
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी रे॥"

मीरा के समस्त पदों में यद्यपि व्यक्तिगत प्रेमभाव का ही चित्रण है, उनका प्रेम लौकिकता लिए हुए भी है, क्योंकि उनके कथनानुसार गिरधर-नागर से पूर्व जन्म का सम्बन्ध है जो जन्मजात है। इसी भाव से ही इन्होंने इष्ट को प्रिय भरतार,प्रेम प्यारा, जन्म-जन्म का साथी आदि सम्बोधन से सम्बोधित किया है। कहीं कहीं अपने भगवान का उल्लेख प्रियतम, योगी, सगुण, ब्रह्म, प्रणयलीलाकारी आदि रूपों में भी किया है।'

"मीरा ने माधुर्य भाव से अपनी भक्ति-भावना का स्वरूप निर्धारित किया और स्वयं विरहिणी बनकर अपने आराध्य श्री कृष्ण से प्रणय की भिक्षा माँगी यही कारण है कि उनकी कविता में गीति-काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।"

मीरा ने इन्हीं समस्त भावों से गिरधर गोपाल को रिझाया, उन्हें अपना लिया, और सदैव ही गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व, अपने पति के रूप में देखती रहीं केवल मात्र इस विश्वास भाव से—

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई,
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥'

मीरा ने शृंगाररस में अपनी लेखनी डुबोकर अपने भावों का प्रकाशन किया परन्तु शृंगार में वासना की दुर्गंध कहीं भी नहीं है। वहाँ तो केवल विशुद्ध आत्मनिवेदन है और वह भी आध्यात्मिक ही सांसारिक नहीं। आध्यात्मिक दृष्टि से मीरा के ब्रह्म-विषयक विचार विशद हैं। मीरा का ब्रह्म कोई साधारण ब्रह्म नहीं, उसके विभिन्न रूप तथा नाम हैं। वह सर्वव्यापी है। उसी का अंश ही एक आत्मा का रूप है। उसके कर्म अनन्त हैं। जीवात्मा विषयक विच ार तो मीरा के 'गीता' से ही साम्य रखते हैं। मीरा का विचार है कि मानव जीवन का उद्देश्य कर्म करना है। कर्मानुसार ही मनुष्य सुख दुःख भोगता है यथा—

"कर्मगति टारै नाहिं टरै" भाव से ही अनुप्राणित मीरा गा उठती है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'कर्मगति न्यारी संतों कर्म गति न्यारी
बड़े-बड़े दीये मरगन कूं बन बन फिरत उघारी रे।
उज्ज्वल बरन दीनी बगुलन कूं, कोयल कर दीनी कारी रे।

और भी— 'कर्म गति टारै नाहिं टरै
सतवादी हरिचन्द से राजा, नीच घर नीर भरे
पाँच पांडु और सती द्रौपदी हाड़ हिमालै गरै।"

दार्शनिक भाव से मीरा के लिए यह संसार मिथ्या है। 'झूठा कुलरा जाती।' उनकी दृष्टि में बाह्या-डम्बर बुरे हैं क्योंकि सभी आडम्बर आत्मा को अशुद्ध करने वाले हैं। अतः, मीरा की दृष्टि में 'सत्य' ही संसार का स्वामी है।

सत्य के समक्ष बाह्य शृंगार का कोई महत्व नहीं, क्योंकि—

झूठा सब आभूषण री सांचो पिया जी पीति
झूठा पट पटम्बरा रे झूठा दिखाणी चीर
साची पिया जी री गूदड़ी जामें निरबल बहै सरीर।"

अनुभूति में विरह की तीव्रतम विक्षिप्तता, शारीरिक कृशता और दौर्बल्य का अनुभव स्वाभाविक है। मीरा का विरह वर्णन निज का है अतः स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण है। उनके काव्य में तो उन्हीं के विरहोद्गार परिलक्षित होते हैं। वस्तुतः, मीरा का विरह मार्मिक एवं गम्भीर है। उसमें विद्यापति की भाँति सम्भोग शृंगार की वासना की छाया तक नहीं। मीरा का विरह सूर आदि से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी है :

की "रैन अँधेरी विरह घेरी, तारा गणत निसि जात
लै कटारी कंठ चीरूँ करुँगी अपघात
पाट न खोल्या, मुख न बोल्या, साँझ लगा परभात
अबोलना में अवधि बीती, काहे की कुसलात।"

"यह विरह की सच्ची कहानी है। अन्धकारमय रजनी है। प्रियतम मौन है। हृदय में विरह ज्वाला है। बेचारी विरहिणी आकाश के तारों पर दृष्टि डालकर उन्हें गिन रही है। सन्ध्या से प्रभात तक न प्रियतम आए और न द्वार ही खुला और न मुख से ही एक शब्द भी कहा। सम्पूर्ण समय मौन में ही व्यतीत हो गया" यद्यपि यह एक विरहिणी की स्वाभाविक मार्मिक उक्ति है परन्तु इसमें आध्यात्मिक तत्व की व्यथा सन्निहित है। यदि 'पाट' का अर्थ माया के परदे के रूप में स्वीकार किया जाए तो सम्पूर्ण पद आध्यात्मिक कलेवर ग्रहण कर लेगा और फिर इस रूप में भौतिकता में अलौकिकता ही व्यंजित हो उठेगी।

मीरा के काव्य में प्रेम और प्रेम-विरह की पीर ही सर्वत्र प्रकट है। उन्होंने उदार सहज रूप में प्रेम के दोनों पक्षों (संयोग एवं वियोग) का गान किया। किंतु संयोग के पद कम ही प्राप्त हैं। वे तो हृदय में ही उस 'छलिया' से मिलती हैं।

'जिनका पिया परदेस बसत है लिख-लिख भेजें पाती'
मोरा पिया मोरे हृदय बसत है, न कहुँ आती जाती।'

परन्तु यह संयोगानुभूति भी अधिक देर तो नहीं ठहरती और फिर 'वियोगिनी' का कंठ प्रिय से व्याकुल भाव से प्रश्न कर उठता है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ऐसी लगन लगायें तू जीसी
तुम देख्यो बिन कल न परत हैं तलफ-तलफ जय जीसी।"

मीरा की प्रणयानुभूति और विरह पीड़ा की अभिव्यक्ति जहाँ सुन्दर रहस्यवाद की भावना से ओत-प्रोत है वहाँ उस ब्रह्म को हृदय में बसने वाला बताकर उस 'अविनासी' से मिलती है। देखिए न––

'मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं ना कहुँ आती न जाती
चन्दा जायगा। सूरज जायगा, जायेगी धरण अकासी
पवण पानि दोनु तहीं जाँयगे, अटल रहे अविनासी।"

उनका यह रहस्यवाद अत्यन्त सरल और स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्त है। उसमें कहीं भी दुरूहता-जटिलता नहीं वरन् नारी हृदय की साधना का सच्चा सहज-सुन्दर प्रतिविम्ब है।

इस प्रकार मीरा एक मधुर-कंठी कोकिल सी बैठकर अपने गिरधर गोपाल की प्रीति से गुंजित गीत गाती हैं पर पृथ्वी पर नहीं वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर, स्वर्ग के कुछ पास ही, "सत्यतः मीरा जैसी कवियित्री को पाकर भक्तिकाल मानों स्वयं ही कृतकृत्य हो गया है। जितनी तन्मयता, पीर, आत्मविश्वास, अनन्य निष्ठा, और प्रेम सरित की अविरल अमरधारा मीरा की पदावली में वही, इतनी किसी भी अन्य संत-भक्त नारी कवियित्री के पदों में नहीं।" निश्चय ही, हिन्दी साहित्य में उच्च-पद पर मीरा का स्थान एवं अधिकार निरुपमेय एवं अक्षुण्ण है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा : माधुर्य का ध्वनितात्विक आधार

डॉ० चन्द्रभान रावत
एम. ए., पी-एच. डी.

प्रास्ताविक

एक पंक्ति सुनाई पड़ती है : 'ब्रजभाषा की सी मिठलौनी कहाँ !' अर्थात् ब्रजभाषा की जो सौंदर्य तात्विक विशेषता रेखांकित की जा सकती है, वह उसकी 'मधुरता' है। वंश भास्कर के रचयिता सूर्यमल्ल[1] ने इसे स्वीकार किया है।[2] एक ओर ब्रजभाषा भक्तिसार माधुर्य की संवाहिका के रूप में समादृता रही और दूसरी ओर यह 'बादशाही बोली' के रूप में प्रतिष्ठित हुई।[3] इस प्रकार ब्रजभाषा की एक 'नैज' विशेषता की धारणा बनी पनपी।

सैद्धांतिक रूप से कुछ विद्वान् भाषा की कुछ निजी विशेषता के सिद्धांत को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं।[4] यह विशेषता भाषा-संरचना के विभिन्न स्तरों पर प्रकट होती है। भाषा की प्रकृति के साथ जुड़कर ये विशेषताएँ उस भाषा की शैली के निर्माण में योग देती हैं। इस रूप में व्यक्तिगत सीमा से परे राष्ट्रीय शैली की भी बात की जाती है।[5] इन भाषागत और शैलीगत विशेषताओं के कारण एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद संभव नहीं होता।[6] दूसरी ओर ऐसे विद्वान हैं जो भाषा की वैयक्तिक विशेषता को मात्र व्यक्तिगत अभिरुचि से संबद्ध करके इस मत की वैज्ञानिकता को अस्वीकृत करते हैं। एक भाषा में किसी अन्य भाषा से अधिक सौंदर्य या माधुर्य है, यह मानना व्यक्तिपरक है, वस्तुपरक नहीं। इससे केवल

---

१. वंश भास्कर के टीकाकार कृष्णसिंह बारहट ने सूर्यमल्ल को 'भाषा' का आदि कवि कहा है--
देवबानि में आदि कवि जिम हुव बल्मक जात।
सूर्यमल्ल भाषा सुकवि सम मत तिमहिमनात।। वंश ३२५७।३७।

२. पुर दिल्ली ग्वालेर पुर बीज ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरी तिन की मधुर बिसेस।

३. 'अकबर कंपोज्ड डिस्कस इन ब्रजभाषा एण्ड इफ् एनी इंडो आर्यन लैंग्वेज कुड बी लैबेल्ड एज बादशाही बोली इन नार्थ इंडिया, इट वाज सर्टेनली ब्रजभाखा।' डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, इंडोआर्यन एण्ड हिन्दी, पृष्ठ १८०-१८१।

4. John Lotz, Symbols make man, Psycholinguistics, p. 1-15.

5. Eric H. Lenneberg and F. M. Roberts, The Language of Experience Psycholinguistics, pp. 496.

६. इस सिद्धान्त के लिए द्रष्टव्य : E. H. Lenneberg 'Congnition in Ethnolinguistics" Language (29; 263-471) तथा 'A note on Cassirer Philosophy of Language'. (Philosophy and Phnomenonological Research, 15, 512-522).

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उस वैशिष्ट की सूचना मिलती है जो किसी भाषा के किसी विशेष संस्कृति, धर्म, राजनैतिक वर्ग या भावात्मक संदर्भों से संबद्ध हो जाने के कारण प्राप्त होता है। इसका स्रोत वाह्य है, भाषा की आंतरिक संरचना में नहीं। मध्यकाल में एक भाषा की दूसरी भाषा से सौंदर्य परक विशिष्टता घोषित करने की प्रवृत्ति ही विशेष रही।[१]

कभी-कभी एक ही भाषा के बोलीगत या वर्गगत भेदों के प्रति भी इसी प्रकार की संधारणाएं जमने लगती हैं। किसी बोली की सौन्दर्य तात्विक प्रतिष्ठा कुछ वाह्य कारणों से हो जाती है। इस विशेषता का आंतरिक संरचना के आधार पर कदाचित ही विश्लेषण किया जाता है। परिनिष्ठित बोली का अधिक अलंकरण और संस्करण भी होने लगता है। फलतः उसकी उपयोगितापरक प्रेरणात्मक और सौंदर्यतात्विक संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं।

बोली या भाषा की विशिष्ट स्थिति एक विशिष्ट भाव या विषय की अभिव्यक्ति के संदर्भ में हो जाती है। इस विषय की विवृत्ति के लिए उस भाषा के प्रयोग की अनिवार्यता का एक सामूहिक विश्वास दृढ़ होने लगता है। किसी भाषा या बोली के किसी साहित्य-विधा के साथ बंध जाने के फलस्वरूप भी उस भाषा के संबंध में यह दृष्टि जन्म ले सकती है। किन्तु आज के भाषा-विज्ञानी के सामने यह प्रश्न बना रह जाता है कि कोई सौंदर्य तात्विक विशेषता भाषा की प्रकृति से संबद्ध होती है अथवा कवि-साधना-जन्य। वस्तुतः कवि भाषा की सौंदर्यतात्विक संभावनाओं का अन्वेषण भाषा की प्रकृति के आधार पर ही कर सकता है। भाषा के रूपों का नवीन विकास एक सीमा तक ही संभव होता है।

यह निर्विवाद है कि ब्रजभाषा को जो सौंदर्य तात्विक वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ उसके लिए वाह्य कारण बहुत कुछ उत्तरदायी हैं। शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश की भाषिक और साहित्यिक परंपरा का रिक्थ इसे प्राप्त हुआ। मध्यदेश की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति इसे प्राप्त हुई जिसके कारण यह अन्तर्क्षेत्रीय प्रसार कर सकी। साहित्य शास्त्र में 'रस-राज' की प्रतिष्ठा हुई और उसका वहन करने की क्षमता ब्रजभाषा में लक्षित हुई। राजस्थान और बुंदेलखंड की सामंतीय शक्तियों ने इसको आश्रय दिया। मुगल दरबार में यह 'बादशाही बोली' बनी। वैष्णव-भक्ति-आंदोलन का सशक्त संदर्भ भी इसको प्राप्त हुआ। धार्मिक दृष्टि से घोषणा की गई—मांगी 'मचल- मचल जामें मांगी हरि माखन रोटी' पद, गीत, ध्रुपद जैसी विधाओं

---

१. M. Pei, The story of Language (Philadelphia, 1949) PP. 254-55; Voices of Man. New York, 1962 P. 93. संस्कृत काव्यशास्त्र में संस्कृत से प्राकृत को अधिक मधुर-कोमल मानने के आग्रह चलते मिलते हैं।

क. अमिअं पाउअ कव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कहँ ण लज्जन्ति। हाल : गाथा सप्तशती, २।

ख. ललिए महु रक्खरए जुवई जण बल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइअ कब्बे को सक्कइ सक्कअं पढिउम्॥ (वज्जालग्गं)

ग. परुसा सक्कअ बंधा पाउअ बंधो वि होइ सुउ भारो।
पुरुस महिलाणं जेत्ति अभिहन्तरं तेत्तियभिमाणम्। राजशेखर : कर्पूरमंजरी।

घ. वाणी प्राकृत समुचित रसा बलेनैव संस्कृतं नीता। गोवर्द्धनः आर्या सप्तशती १।५२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा : माधुर्य का ध्वनितात्विक आधार

डॉ० चन्द्रभान रावत
एम. ए., पी-एच. डी.

प्रास्ताविक

एक पंक्ति सुनाई पड़ती है : 'ब्रजभाषा की सी मिठलौनी कहाँ !' अर्थात् ब्रजभाषा की जो सौंदर्य तात्विक विशेषता रेखांकित की जा सकती है, वह उसकी 'मधुरता' है। वंश भास्कर के रचयिता सूर्यमल्ल[1] ने इसे स्वीकार किया है।[2] एक ओर ब्रजभाषा भक्तिसार माधुर्य की संवाहिका के रूप में समादृता रही और दूसरी ओर यह 'बादशाही बोली' के रूप में प्रतिष्ठित हुई।[3] इस प्रकार ब्रजभाषा की एक 'नैज' विशेषता की धारणा बनी पनपी।

सैद्धांतिक रूप से कुछ विद्वान् भाषा की कुछ निजी विशेषता के सिद्धांत को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं।[4] यह विशेषता भाषा-संरचना के विभिन्न स्तरों पर प्रकट होती है। भाषा की प्रकृति के साथ जुड़कर ये विशेषताएँ उस भाषा की शैली के निर्माण में योग देती हैं। इस रूप में व्यक्तिगत सीमा से परे राष्ट्रीय शैली की भी बात की जाती है।[5] इन भाषागत और शैलीगत विशेषताओं के कारण एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद संभव नहीं होता।[6] दूसरी ओर ऐसे विद्वान हैं जो भाषा की वैयक्तिक विशेषता को मात्र व्यक्तिगत अभिरुचि से संबद्ध करके इस मत की वैज्ञानिकता को अस्वीकृत करते हैं। एक भाषा में किसी अन्य भाषा से अधिक सौंदर्य या माधुर्य है, यह मानना व्यक्तिपरक है, वस्तुपरक नहीं। इससे केवल

---

१. वंश भास्कर के टीकाकार कृष्णसिंह बारहट ने सूर्यमल्ल को 'भाषा' का आदि कवि कहा है--
देववानि में आदि कवि जिम हुव बल्मक जात।
सूर्यमल्ल भाषा सुकवि सम मत तिमहिमनात।। वंश ३२५७।३७।

२. पुर दिल्ली ग्वालेर पुर बीज ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनायक गिरी तिन की मधुर विसेस।

३. 'अकबर कंपोज्ड डिस्कस इन ब्रजभाषा एण्ड इफ् एनी इंडो आर्यन लैंग्वेज कुड बी लैबेल्ड एज बादशाही बोली इन नार्थ इंडिया, इट वाज सर्टेनली ब्रजभाखा।' डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, इंडोआर्यन एण्ड हिन्दी, पृष्ठ १८०-१८१।

4. John Lotz, Symbols make man, Psycholinguistics, p. 1-15.

5. Eric H. Lenneberg and F. M. Roberts, The Language of Experience Psycholinguistics, pp. 496.

६. इस सिद्धान्त के लिए द्रष्टव्य : E. H. Lenneberg 'Congnition in Ethnolinguistics" Language (29; 263-471) तथा 'A note on Cassirer Philosophy of Language'. (Philosophy and Phnomenonological Research, 15, 512-522).

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उस वैशिष्ट की सूचना मिलती है जो किसी भाषा के किसी विशेष संस्कृति, धर्म, राजनैतिक वर्ग या भावात्मक संदर्भों से संबद्ध हो जाने के कारण प्राप्त होता है। इसका स्रोत वाह्य है, भाषा की आंतरिक संरचना में नहीं। मध्यकाल में एक भाषा की दूसरी भाषा से सौंदर्य परक विशिष्टता घोषित करने की प्रवृत्ति ही विशेष रही।[१]

कभी-कभी एक ही भाषा के बोलीगत या वर्गगत भेदों के प्रति भी इसी प्रकार की संधारणाएं जमने लगती हैं। किसी बोली की सौन्दर्य तात्विक प्रतिष्ठा कुछ वाह्य कारणों से हो जाती है। इस विशेषता का आंतरिक संरचना के आधार पर कदाचित ही विश्लेषण किया जाता है। परिनिष्ठित बोली का अधिक अलंकरण और संस्करण भी होने लगता है। फलतः उसकी उपयोगितापरक प्रेरणात्मक और सौंदर्यतात्विक संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं।

बोली या भाषा की विशिष्ट स्थिति एक विशिष्ट भाव या विषय की अभिव्यक्ति के संदर्भ में हो जाती है। इस विषय की विवृत्ति के लिए उस भाषा के प्रयोग की अनिवार्यता का एक सामूहिक विश्वास दृढ़ होने लगता है। किसी भाषा या बोली के किसी साहित्य-विधा के साथ बंध जाने के फलस्वरूप भी उस भाषा के संबंध में यह दृष्टि जन्म ले सकती है। किन्तु आज के भाषा-विज्ञानी के सामने यह प्रश्न बना रह जाता है कि कोई सौंदर्य तात्विक विशेषता भाषा की प्रकृति से संबद्ध होती है अथवा कवि-साधना-जन्य। वस्तुतः कवि भाषा की सौंदर्यतात्विक संभावनाओं का अन्वेषण भाषा की प्रकृति के आधार पर ही कर सकता है। भाषा के रूपों का नवीन विकास एक सीमा तक ही संभव होता है।

यह निर्विवाद है कि ब्रजभाषा को जो सौंदर्य तात्विक वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ उसके लिए वाह्य कारण बहुत कुछ उत्तरदायी हैं। शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश की भाषिक और साहित्यिक परंपरा का रिक्थ इसे प्राप्त हुआ। मध्यदेश की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति इसे प्राप्त हुई जिसके कारण यह अन्तर्क्षेत्रीय प्रसार कर सकी। साहित्य शास्त्र में 'रस-राज' की प्रतिष्ठा हुई और उसका वहन करने की क्षमता ब्रजभाषा में लक्षित हुई। राजस्थान और बुंदेलखंड की सामंतीय शक्तियों ने इसको आश्रय दिया। मुगल दरबार में यह 'बादशाही बोली' बनी। वैष्णव-भक्ति-आंदोलन का सशक्त संदर्भ भी इसको प्राप्त हुआ। धार्मिक दृष्टि से घोषणा की गई—मांगी 'मचल- मचल जामें मांगी हरि माखन रोटी' पद, गीत, ध्रुपद जैसी विधाओं

---

१. M. Pei, The story of Language (Philadelphia, 1949) PP. 254-55; Voices of Man. New York, 1962 P. 96. संस्कृत काव्यशास्त्र में संस्कृत से प्राकृत को अधिक मधुर-कोमल मानने के आग्रह चलते मिलते हैं।

क. अमिअं पाउअ कव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति।
कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कहँ ण लज्जन्ति। हाल : गाथा सप्तशती, २।

ख. ललिए महु रक्खरए जुवई जण बल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइअ कब्बे को सक्कइ सक्कअं पढिउम्॥ (वज्जालग्गं)

ग. परुसा सक्कअ बंधा पाउअ बंधो वि होइ सुउ भारो।
पुरुस महिलाणं जेत्ति अभिहन्तरं तेत्तियभिमाणम्। राजशेखर : कर्पूरमंजरी।

घ. वाणी प्राकृत समुचित रसा बलेनैव संस्कृतं नीता। गोवर्द्धनः आर्या सप्तशती १।५२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के साथ भी व्रजभाषा का संबंध हो गया। इसका वस्तु-विधान माधुर्य से लवालव हो उठा। आभीर, गुर्जर, गोप जैसी निश्छल जातियों की अभिव्यक्तिपरक सरलता और अनगढ़ता भी इसे प्राप्त हुई। इन्हीं सब कारणों से व्रजभाषा का सौंदर्यतात्विक वैशिष्ट स्थापित हो गया। जब साहित्य शास्त्रीय श्रृंगार भक्तिशास्त्रीय 'माधुर्य' में परिणत होने लगा तो प्रायः श्रृंगार में प्रयुक्त बिंब और प्रतीकों को थोड़ी भंगिमा के साथ माधुर्य की अभिव्यक्ति में भी प्रयुक्त किया जाने लगा। साथ ही प्राकृत और अपभ्रंश की जिन विकासमूलक प्रवृत्तियों को काव्य के लिये उपयुक्त कहा गया, वे व्रजभाषा में और भी स्पष्ट हो उठीं। इन्हीं अन्तर्बाह्य कारणों से व्रजभाषा के लालित्य और माधुर्य के संस्कार मान्य हुए। 'निराला' जैसे नाद-सौंदर्य के पारखी ने व्रजभाषा के इस वैशिष्ट को स्वीकार किया : "व्रजभाषा साहित्य के विचार से बड़ी मधुर भाषा है। इसके शब्द टूटते हुए इतने मुलायम हो गये हैं जिससे अधिक कोमलता आ सकती।"[१] उन्होंने आगे कुछ उदाहरणों से अपनी बात को पुष्ट किया : "व्रजभाषा ने अपने क्रियाओं के रूपों में भी विशेष श्रुतिकोमलता दिखलाई है। 'लाभ करते' की तुलना में 'लहत', 'मुड़ते' की तुलना में 'मुरत', 'पाते' की अपेक्षा 'पावत' विशेष श्रुति-मधुर हैं[२]।"

१. काव्य शास्त्र में ध्वनि माधुर्य

१.१. मूल संधारणा—सामान्य भाषा में ध्वनि-प्रयोग सार्थक इकाइयों की निर्मिति में होता है। ध्वनियों पर अध्यारोपित लयात्मक और रागात्मक गुण सार्थक इकाइयों को कुछ अतिरिक्त भाव छायाएँ प्रदान करते हैं। काव्यभाषा में ध्वनितत्व का उपयोग एक विशिष्ट शैली के निर्माण में भी होता है। इसमें अर्थ निरपेक्ष ध्वनि विधान का शैलीकरण अर्थ संदर्भ के साथ सहअस्तित्व रखता है। सौंदर्यतात्विक ध्वनि नियोजन की प्रविधियों द्वारा भाषा में एक ऐसी सौंदर्यमूलक ध्वनि व्यवस्था उभरने लगती है जो सामान्य अर्थ और काव्यार्थ के बीच सेतु का काम करती है। इस प्रकार एक नवीन अर्थ इकाई जन्म लेती है। इसी आधार पर ध्वनिग्रामीय सौंदर्य, छन्द संगीत तत्व, पढ़न्त, काकु तथा ध्वनि प्रयोग का सांदर्भिक औचित्य जैसे पारिभाषिक काव्यशास्त्र में उभरने लगते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में भी ध्वनिप्रविधियों के संबंध में कुछ सिद्धांत निर्धारित हुये। दूसरी ओर भाषा विज्ञान में भी शैली तत्व के अन्तर्गत काव्य में प्रयुक्त ध्वनि-तत्व का विश्लेषण होने लगता है।[३]

भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जब काव्यगत ध्वनि व्यवस्था पर विचार किया तो उनकी दृष्टि में एक ओर संस्कृत जैसी परिनिष्ठित, परिवर्तन की संभावनाओं से रहित, शास्त्रीयता से बोझिल, जटिल सन्धि नियमों से शासित और व्यंजनबहुल व्यवस्था वाली भाषा थी, और दूसरी ओर स्वर बहुल, अपेक्षाकृत

---

१. प्रबंध पद्य पृष्ठ, १४-१५।

२. वही, पृष्ठ, १०१।

३. A. W. Groot, 'Phonetics in its relation to Aesthetics.' in 'Mannual of Phonetics' (Ed. L. Kaiser, 195/) Amsterdam, P. 385

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अनगढ़, गीति तत्व की जीवंत संभावनाओं से युक्त प्राकृत भाषा थी। आचार्यों की ध्वनि संधारणा में संस्कृत के कुछ ध्वनि-संयोजनों की अस्वीकृति और कुछ प्राकृत ध्वनि व्यवस्था की स्वीकृति झलकती है।

१. २. कोमलता : मधुरता

व्यक्त-अव्यक्त रूप से आचार्यों का ध्वनि सौंदर्य निरूपण उनके श्रृंगारपरक संस्कारों से प्रभावित रहा। इसीलिए कोमलता और मधुरता से संबंधित ध्वनियों का विवेचन अधिक किया गया है। भामह ने ध्वनियों के कुछ संधिजन्य विकासों को कठोर कहा। त वर्गीय ध्वनियों का शकार के साथ प्रयोग नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की संधियों से—च्छ का उद्‌गम होता है,[१] जो सुनने में कठोर है। विसर्ग संधि-जन्य—ओ (मनः+रथ=मनोरथ) ध्वनि का भी भामह ने वर्णन किया है।[२] झ-य (=पंचमाक्षर रहित, वर्णमाला की शेष बीस ध्वनियों) के पश्चात् यहि-'ह्' वर्ण हो तो पूर्ववर्ती वर्ण का सवर्ण[३] हो जाता है। यह भी श्रुत-पारुष्य के कारण वर्जित है। कुंतक ने भी वर्ण्यवस्तु के साथ वर्ण्यवस्तु के औचित्य को सिद्धांततः माना है।[४] किसी भी प्रसंग में अनुचित वर्ण्य योजना श्रुतिपेशल नहीं हो सकती।

कठोर ध्वनियों के वर्णन के संबंध में कुछ किंवदंतियाँ भी मिलती हैं। मगध के एक राजा शिशुनाग ने अपने महल के भाषाव्यवहार में आठ ध्वनियों का प्रयोग वर्जित कर दिया था।[५] ट, ठ, ड, ढ, श, ष, ह, और क्ष। इस प्रकार मूर्धन्य, ऊष्म, महाप्राण एवं संयुक्त ध्वनि कठोर मानी गयी हैं। मथुरा के एक राजा कुविन्द ने भी अपने यहाँ कठोर ध्वनियों का प्रयोग वर्जित कर दिया था।[६] कुन्तल देश के राजा सात-वाहन को संस्कृत के कठोर ध्वनि विधान की अपेक्षा प्राकृत ध्वनियाँ मृदुतर प्रतीत होती थीं।

ध्वनियों के उच्चारण भी कोमल, कठोर, मधुर-कटु हो सकते हैं। ल/र के संबंध में राजशेखर ने लिखा है कि लकार का बलपूर्वक उच्चारण अ रकार का अर्ध रेफ के समान पढ़ना चाहे नैयायिकों और वैया-करणों को शोभा देता हो, कवि का आदर तो इनके मधुर कोमल उच्चारण के कारण ही होता है।[७] इसका तात्पर्य यह है कि इन दोनों ध्वनियों का एक मृदुल मधुर उच्चारण कवि समाज में प्रचलित था। साथ ही 'ल' की अपेक्षा 'र' की कोमलता अधिक मान्य थी। ब्रज भाषा में ल > र की प्रवृत्ति/ल/के मृदुलीकरण का ही परिणाम हो। रेफयुक्त संयुक्त रूपों का प्राकृत अपभ्रंश की स्थिति में सबसे अधिक समीकरण और सरली-करण हुआ था। प्राकृत ध्वनि विकास की इस प्रवृत्ति को सौंदर्यमूलक महत्व देते हुए रेफ के उच्चारण को कठोर बतलाया गया है। धीरे-धीरे कोमल और कठोर ध्वनियों की सामान्य संधारणाओं में वृत्ति, गुण और रीति के विवेचन में सैद्धांतिक रूप ग्रहण किया।

---

१. काव्यालंकार ६।६०।
२. वही ६।६१।
३. वाक्+हानि=वाग्घानि : पद+हति=पद्धति।
४. हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, २।२ वृत्ति।
५. राजशेखर : काव्य मीमांसा अध्याय १०, पृष्ठ १२३।
६. राजशेखर : काव्य मीमांसा अध्याय १०, पृष्ठ १२३।
७. वही, अध्याय-७, पृष्ठ ८३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१.३. मधुरावृत्ति

भरत के अनुसार 'भारती वृत्ति'[१] नाटकीय भाषा व्यापार है। जो उत्तम पात्रों द्वारा प्रयुक्त (=संस्कृत) है। यह स्त्रियों के लिए वर्जित है।[२] अग्निपुराण ने विस्तार करते हुए भारती वृत्ति में प्राकृत को भी समेटा—"वाक् प्रधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिता।"[३] भरत के अनुसार भारती 'शब्द वृत्ति' है। उद्भट ने इसे रसानुगुण शब्द व्यवहार के सिद्धांत में बांधकर कोमला, परुषा, और उपनागरिका—यह त्रिविध वर्गीकरण किया। इस प्रकार शब्द-व्यवहार के स्थान पर वर्ण व्यवहार की प्रतिष्ठा हुई। रुद्रट ने पहले वृत्ति विवेचन समास के आधार पर किया और वृत्तियों का नामकरण भौगोलिक आधार पर किया।[४] पीछे अनुप्रास प्रकरण में उन्होंने वर्ण-प्रयोग के आधार पर पांच वृत्तियों का परिगणन किया। मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता और भद्रा।[५] इस प्रकार ध्वनियों के आधार पर वृत्ति निर्णय प्रचलित हुआ।

मधुरावृत्ति के संबंध में कहा गया कि इसमें स्पर्शों के पूर्ववर्गीय नासिक्य व्यंजन प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार सानुनासिक वातावरण मधुरा की प्रमुख पहचान के रूप में स्वीकृत हुआ। संयुक्त लकार का भी प्रयोग अपेक्षित है। ह्रस्व स्वर के व्यवधान से युक्त रकार णकार भी आते हैं। रुद्रट ने प्रायः संयुक्त ध्वनियों के आधार पर वृत्तियों का परस्पर अलगाव सिद्ध किया। 'परुषा' में कठोर संयुक्त ध्वनियों के उदाहरण दिये।[६] इससे यह सहज अनुमेय है कि मधुरा में संयुक्त वर्ण योजना का अभाव ही मान्य था। केवल नासिक्य प्रकृति के संयुक्त व्यंजन रह सकते थे। 'ललिता' में लघु ध्वनियों के विन्यास, घ, ध, र, स ध्वनियों का बाहुल्य और असंयुक्त/ल्/ध्वनि का प्रयोग आवश्यक माना गया।[७] ल् की ध्वनि के द्वित्व और सामान्य रूप के आधार पर मधुरा और ललिता को भिन्न किया गया है। उदाहरण में ल/र ध्वनियाँ अधिक हैं। रुद्रट ने संयुक्त और असंयुक्त ध्वनियों को वृत्ति विवेचन का मुख्य आधार बनाया।

मधुर संदर्भ में केवल नासिक्य और वर्गीय व्यंजन के संयुक्त रूप आ सकते थे। शेष संयुक्त रूप मधुरा में प्रायः वर्जित और परुषा में आवश्यक हैं।[८] असंयुक्त ध्वनियों में से मूर्धन्य ध्वनियों को मधुर परिवेश से यथासंभव बाहर रखने के लिए कहा गया। लघु असंयुक्त, विशेष रूप से/र/,/ल/,/स/ध्वनियाँ ललित संदर्भों के उपयुक्त हैं।[९] मधुरा ललिता और कोमला वृत्तियों की ध्वनि संबंधी मान्यताएँ परस्पर विनिमेय रहीं।

---

१. शेष तीन वृत्तियाँ कैशिकी (ग्रेसफुल मोड ऑफ एक्शन) आर्भटी (वायलेंट मोड ऑफ एक्शन) तथा सात्वती (एक्शन ऑफ मेंटल मूड्स) हैं।

२. ना० शा० २२।२५।

३. अग्नि० ३४०।६।

४. काव्यालंकार २।३, ४; नामकरण=पांचाली, लाटीया, गौड़ीया। वामन ने भी नामकरण की यही पद्धति अपनायी।

५. काव्यालंकार २।१८-३१।

६. लिप्सा, कुत्सित, कर्म, क्रम, हं, ह्री आदि। काव्यालंकार २।२६।

७. वही २।१९।

८. काव्यालंकार २।२६।

९. रुद्रट काव्यालंकार २।२९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

१.४. माधुर्य गुण

संस्कृत काव्य शास्त्र के क्षेत्र में दस और तीन गुण मानने वाली दो परंपरायें मिलती हैं।[१] तीन गुण वाली परंपरा ने गुण निरूपण का आधार समास रखा।[२] दण्डी ने मिला-जुला आधार स्वीकार किया।[३] दण्डी ने श्लेष, समता और सुकुमार गुणों का निरूपण वर्ण विन्यास के आधार पर किया है। 'श्लेष' में अल्पप्राण वर्णों के प्रयोग से उत्पन्न शिथिलता के अभाव की बात कही गयी है।[४] 'समता' में एक ही प्रकार की शैली का प्रयोग होता है। वर्णानुसार यह मृदु, स्फुट, और मृदु-स्फुट हो सकती है। मृदु वर्ण ये हैं : ह्रस्व स्वर, वर्ग के अन्त्यक्षर तथा दन्त व्यंजन। स्फुट में विकट[५] और मृदु स्फुट में मिली-जुली योजना रहती है।[६] 'सुकुमार' वर्णों का प्रायः प्रयोग होता है। बीच में निष्ठुर वर्ण आ सकते हैं। इस प्रकार दण्डी ने मृदु ध्वनियों की धारणा को ग्रहण किया।

माधुर्य 'गुण को दण्डी ने शब्दार्थ गुण माना। अर्थात् इसमें ध्वनियाँ और अर्थ दोनों ही मधुर होने चाहिए। इस प्रकार संरचना की दृष्टि से माधुर्य की दृष्टि विशिष्ट हो जाती है।

१.५. रीति : सिद्धांत और माधुर्य

रीति का विवेचन कुछ आचार्यों ने समास के आधार पर किया।[७] और कुछ ने अनुप्रास के आधार पर।[८] कुछ आचार्य मिश्रित आधार को लेकर चले।[९] दण्डी की योजना इस प्रकार की प्रतीत होती है : समाधि-गुणआलंकारिक व्यवहार; ओजसमास; वर्ण-माधुर्यअनुप्रास। यह भी मिश्रित प्रणाली है। भामह ने वैदर्भी में कोमल वर्णों का प्रयोग आवश्यक माना है।[१०] अन्य आचार्यों के वैदर्भी रीति निरूपण का सार यह है : वैदर्भी विदर्भ देश से संबद्ध; ललितात्मिका (एलीगेंट मोड ऑफ एक्सप्रेशन); मधुराक्षर विन्यास: प्रायः समासाभाव : सभी गुणों का समावेश : प्रसाद माधुर्य की विशेषता : कैशिकी वृत्ति से संबद्ध शृंगार हास्य के लिए उपयुक्त। इस प्रकार वैदर्भी के निरूपण में मधुर और कोमल ध्वनियों से संबंधित सभी मान्यताएँ समाविष्ट हैं।

---

१. भामह ३ गुणों को मानकर चले और भरत तथा दण्डी १० गुणों को। दस गुणों वाली परंपरा वैदर्भों की और ३ गुणों वाली काश्मीरियों की थी। वी० राघवन, शृंगार प्रकाश, पृष्ठ २९३।

२. भामह : काव्यालंकार २।१।

३. दण्डी काव्यादर्श १।४१, ४२ इनमें वर्ण, शब्द, अर्थ को आधार माना गया है।

४. काव्यादर्श १।४३।

५. स्फुट वर्ण ये हैं : दीर्घ स्वर, ओष्ठ वर्ण एवं ठ् ड् श ष और ह।

६. काव्यादर्श १।४७।

७. रुद्रट इसी प्रकार के आचार्य हैं।

८. रीति को वृत्त्यानुप्रास के रूप में माना गया। मम्मट का नाम इस संबंध में उल्लेखनीय है।

९. राजशेखर ने समास अनुप्रास और यौगिक तीन तत्वों के आधार पर रीति का विवेचन किया। भोज और अग्निपुराण की भी पद्धति मिश्रित है।

१०. काव्यालंकार १।३४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ऊपर के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत के आचार्यों ने मधुर के निरूपण में कठोर ध्वनियों को निषिद्ध किया और मधुर कोमल एवं ललित ध्वनियों को स्वीकृत। अपने विशिष्ट संदर्भों में दोनों का औचित्य भी रहता है। निषेध पक्ष में इन ध्वनियों या ध्वनि संयोगों का वर्जन रहा :—

१. **कुछ सन्धिजन्य विकास :** तवर्ग+श=च्छ : विसर्ग संधिजन्य—ओ (मनः+रथ+मनोरथ); पंचमाक्षर रहित वर्णमाला की शेष ध्वनियों के पश्चात् ह वर्ण होने पर पूर्ववर्ती सवर्ण हो जाता है। (वाक्+हानि-वाग्घानि)।

२. **संयुक्त वर्ण :** क्ष तथा अधिकांश संयुक्त ध्वनियाँ।

३. रकार का रेफ के समान एवं द्वित्व

४. **उच्चारण** लकार का कठोर और रकार का रेफ के समान उच्चारण।

५. दीर्घ स्वर

६. मूर्धन्य ध्वनियाँ : ट, ठ, ड, ढ, ण, ष।

७. ओष्ठ्य वर्ण

८. श, ह

मधुर संदर्भों के लिए स्वीकृत ध्वनियाँ ये हैं :—

क. मधुर ध्वनियाँ : नासिक्य+स्पर्श, संयुक्त लकार;

ह्रस्वस्वर के व्यवधान से रकार और णकार

ख. ललित ध्वनियाँ : लघु वर्ण; घ, ध, र, स; असंयुक्त ल।

ग. कोमल ध्वनियाँ : ह्रस्व स्वर; वर्ग के अन्त्यक्षर; दन्त्य-व्यंजन।

वृत्ति, गुण और रीति के विवेचन में जो सौंदर्यतात्विक आकृतियाँ स्वीकृत हुईं, वे ब्रजभाषा के ध्वनि विधान में विकसित हुईं। इस विकास-क्रम में निषिद्ध ध्वनियों का निराकरण और स्वीकृत ध्वनियों का वरण सहज स्वाभाविक हो गया। इसी दृष्टि से ब्रज भाषा की ध्वन्यात्मक प्रकृति पर आगे विचार किया गया है।

२. माधुर्य : स्वर स्तर

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि व्यंजनों की अपेक्षा स्वर ध्वनियाँ अधिक कोमल संगीतात्मक और लचीली होती हैं। ब्रजभाषा की प्रकृति स्वर बहुल है।[1] इसके शब्द प्रायः स्वरांत हैं। शब्दान्त दीर्घ स्वर संगीतात्मक संभावनाओं में वृद्धि करते हैं इसलिये ब्रजभाषा संगीत के माध्यम के रूप में भी स्वीकृत रही। नीचे ब्रजी के स्वर विधान की कतिपय विशेषताओं का परिचय दिया गया है जिनका सौंदर्य तात्विक महत्व है।

२.१. स्वरान्त पद रचना

ब्रजी की पद रचना दीर्घ स्वरांत भी है और ह्रस्व स्वरांत भी। दीर्घस्वरान्त पद आकारान्त या औकारान्त हैं, और ह्रस्व स्वरांत उकारान्त।

---

१. **डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : "भारत की आर्य बोलियों में, स्वर ध्वनि बहुलता थी। ब्रजभाषा भी इस स्वर बहुलता के कारण (क्योंकि इसके सब शब्द स्वरान्त होते थे) विशेषतया श्रुति मधुर भाषा है।" निबंध संग्रह, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ११०-११]**

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२.१.१. आकारान्त पद

सामान्यरूप से पदों की आकारान्तता खड़ी बोली की विशेषता है। किंतु पद के अन्त में आने वाला /-आ/प्रायः शिथिल, अघोष या लुप्त हो जाता है। फलतः अकारान्त शब्द व्यंजनान्त होने के संकट में पड़ जाते हैं। स्वरांतता की रक्षा के लिए अन्त्य/-अ/का दीर्घीकरण कर दिया जाता है। उदाहरण के लिये/गोपाला/[१] 'गोपाल',/मोहना/[२] 'मोहन',/दरसना/[३] 'दर्शन',/मगना /[४] 'मग्न' शब्दों को लिया जा सकता है। नयन के स्थान पर/नयना ~ नैना।[५] जैसे रूप अधिक सुन्दर लगते हैं।

/-आ/के स्थान पर/-व/का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है जैसे 'नाचत नटवा मोर सुधंग अंग, तैसे वाजत मेह मृदंग।'[६] यह रूप पूर्वी अंचल के समकक्ष है।

इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप स्वरांत संगीतात्मकता अक्षुण्ण बनी रहती है। यह आकारान्तता उससे भिन्न है जो खड़ी बोली में संस्कृत के विसर्ग से विकसित मिलती है। यहाँ स्वर सुरक्षा की अथवा सौंदर्य वृद्धि की प्रच्छन्न प्रवृत्ति है।

२.१.२. औकारान्त पद

खड़ी बोली के सपाट-/-आ/प्रत्यय की अपेक्षा/-औ/गोलाकार होने के कारण अधिक ललित-कोमल माना जाता है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मुख्य अंतर अधिक है।[७] वैसे ब्रजी के निरूपण में /-ओ ~ औ/ दोनों की स्थिति मानी गई है।[८] इनमें से प्रथम कनौजी की ओर बढ़ने पर मिलती है और द्वितीय पश्चिमी ब्रज में। साहित्य में धीरे-धीरे औकारान्त प्रवृत्ति अधिक लोकप्रिय होती गयी, जो/-ओ/की अपेक्षा मदुलतर है।

इस प्रवृत्ति का विकास प्राकृत युग से ही हुआ है। प्राकृतों की एक प्रवृत्ति विसर्ग > ओ की थी।[९] बहु-वचन रूप विसर्ग के लोप से आकारान्त रह गये।[१०] कुछ बोलियों में आज भी यह संरचना मिलती है।[११] क्रिया-

---

१. परमानंददास, हस्तलिखित पद संग्रह, पद-७०।
२. कृष्णदास, हस्तलिखित पद संग्रह, पद-१२३ (डॉ० दीनदयाल गुप्त)
३. अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पद-२८।
४. नन्ददास, वही, पद-३९।
५. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल, सूरदास मदन मोहन, पद-५।
६. भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी पद-६८०।
७. डॉ० चाटुर्ज्या : भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृष्ठ १८४।
८. कैलॉग, ग्रामर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेज, पृष्ठ-१२८।
९. पुत्रः आगतः > पुत्तो आगतो। विसर्ग संस्कृत में पुलिंग एक वचन का प्रत्यय है।
१०. पुत्राः आगताः > पुत्ता आगता
११. रा० ए०—लड़को आयो 'लड़का आया' तथा ब० व० लड़का आया 'लड़के आये' गुजराती और सौराष्ट्री में भी यही प्रवृत्ति मिलती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संरचना के अतिरिक्त संबंध कारक भी ओकारान्त मिलते हैं।[१] यह ओकारान्त प्रकृति प्रायः सभी प्राकृतों की थी।[२] मागधी की भी यही प्रकृति थी पर आज मागधी से विकसित पूर्वी बोलियों में यह रूप नहीं मिलता।[३] ब्रजी, राजस्थानी, गुजराती और सिन्धी क्षेत्र में यह प्रवृत्ति मिलती है। भविष्य रचना भी ओकारान्त होती है।[४] /-आ/प्रत्यय वाला क्षेत्र कुरुजनपद से कुरु जांगल (वांगर) होता हुआ पंजाब के अंत तक चला गया है।

राजस्थानी की /-ओ/ वाली प्रकृति ब्रज क्षेत्र में कुछ सीमित हो गयी है। संबंध कारक और क्रिया रूपों की रचना में तो दोनों क्षेत्र समान हैं किंतु ब्रज में कुछ आकारान्त संज्ञारूप भी मिलते हैं : राजस्थानी 'राम को छोरो'=ब्रजी० राम को छोरा'; राज० 'थारो छोरो'=ब्रजी० तेरो छोरा।' इस प्रकार ब्रजी की प्रकृति मिश्रित है। आकारान्त रूप कौरवी बोली के सान्निध्य के कारण हो सकते हैं। इस प्रवृत्ति की दृष्टि से पांचाली और कनौजी ब्रजी के समीप हैं।[५] आकारान्त संज्ञायें जहाँ हिन्दी बहुवचन में एकारान्त हो जाती हैं वहाँ ब्रजी में आकारान्त ही रहती है।[६] ब्रजी की भाँति पांचाली (कनौजी) भी मिश्रित प्रकृति की है।[७] किंतु इन दोनों में एक प्रवृत्तिगत अंतर यह है कि ब्रजी में ओ>औ की प्रवृत्ति मिलती है[८] कनौजी में नहीं।

इस प्रकार ब्रजी की क्रिया, संज्ञा, विशेषण की रचना औकारान्त है।[९] औ अपनी विवृत्ति, और गोलाई और अन्य स्थिति के कारण अत्यन्त संगीतात्मक है। इस प्रवृत्ति का सौंदर्यतात्विक मूल्यांकन किया गया है। ओ में गोलाई तो है, पर निवृत्ति नहीं। इसके स्थान पर औ का विकास माधुर्य के अनुकूल है।

२.१.३. उकारान्त पद

यह ब्रजभाषा की प्रमुख प्रवृत्ति है, जो एक दीर्घ शृंखला की कड़ी भी है।[१०] दस प्रवृत्ति का संबंध आभी-

---

१. राज० को=गुज० नो=हि० का; राज० का=गुज० ना=हि० के।

२. पं० किशोरीदास वाजपेयी : भारतीय भाषा विज्ञान, पृष्ठ १५३।

३. वही।

४. राज०--छोरो जायगो 'छोरा जायेगा'। सार्वनामिक विशेषण भी तेरो, मेरो आदि मिलते हैं। पूर्व की ओर चलने पर इस प्रत्यय का लोप होता चलता है।

५. लरिकवा आओ है 'लड़का आया है।'

६. ब्रजी--छोरा गये=हि० 'लड़के गये।' राज० में बहुवचन रूप आकारान्त ही है।

७. पांचाली एक ओर ब्रज से मिली है दूसरी ओर खड़ी बोली के मुरादाबादी क्षेत्र से। उधर अवधी से भी उसकी सीमा मिलती है। इस लिये यहाँ-आ और औ दोनों की झलक है। किशोरीदास वाजपेयी, भारती भाषा विज्ञान० १८१।

८ यह प्रवृत्ति परवर्ती है। प्राकृतों में औकारान्त रूप नहीं मिलते। डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा साहित्य और उसका साहित्य, पृष्ठ-२३९।

९. आधुनिक ब्रजी में संयुक्त क्रिया का एक रूप ओकारान्त भी बन जाता है : । गयौ+औ। । गयो। 'गया था'। पश्चिमी ब्रजी के क्षेत्र में इसका भी रूप / गयौ / ही मिलता है। केवल अंत्य / औ / की दीर्घता में वृद्धि हो जाती है।

१०. द्रष्टव्य : मेरा लेख 'उकार बहुला प्रवृत्ति की परंपरा और ब्रज की 'बोली', भारतीय साहित्य, अक्टूबर १९५६, पृष्ठ ६५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रादि जातियों से जोड़ा जाता था।[१] सभी मध्यकालीन भाषाओं की यह एक विशेषता थी।[२] विशेष रूप से यह पश्चिमी प्राकृतों में मिलती है।[३] ध्वनि विकास की अन्य प्रवृत्तियों के कारण[४] उकारान्तता ही उकार बहुलता में भी वृद्धि होती गयी। प्राकृत अपभ्रंश में जो शब्द रूप उकारान्त नहीं थे, वे भी ब्रजी में उकारान्त हो गये हैं।[५] विदेशी भाषाओं से आगत शब्दों के साथ भी यह प्रत्यय प्रयुक्त होता है।[६] संज्ञाओं के साथ-साथ विशेषण भी उकारान्त हो गये : सुंदरु, लालु। वर्तमान कालिक कृदन्त से व्युत्पन्न क्रिया रूप भी उकारान्त होते हैं। जैसे ।जातु।'जाता', ।वसतु। 'वसता'। स्वरांत क्रिया धातुओं के आज्ञावाचक रूपों की रचना में ।-उ। की सहायता ली जाती है।[७] इस प्रकार ब्रजी की रूप रचना और शब्दावली उकारान्त और उकार बहुला हो जाती है।

ब्रजी का ।-उ। भी संगीतात्मक महत्व रखता है। खड़ी बोली के सपाट ।-अ। की अपेक्षा गोलाकार ।-उ। अधिक कोमल और कलात्मक है। स्वरों की इस गोलाई के कारण बंगला आदि पूर्वी भाषाएँ ललित-कोमल मानी जाती हैं। उकारान्त होने के कारण ही तेलुगु अधिक मधुर और संगीतात्मक कही जाती है। यहाँ भी ब्रजी की यह प्रकृति देश के पूर्वाञ्चल की भाषाओं के समकक्ष है।

२.२. विवृत्तोन्मुख स्वर विकास

उच्चतर मध्य, अग्र अगोलीकृत स्वर ।ए। का विकास निम्नतर मध्य, अग्र स्वर ।ऐ। में हो जाता है, और उच्चतर मध्य पश्च गोलीकृत स्वर ।ओ। का विकास निम्नतर मध्य पश्च स्वर /औ/ में। इस आधार पर परिनिष्ठित हिन्दी और ब्रजी का विभेद भी होता है। √दे-का ब्रजी में √दै—मिलता है। सहायक क्रिया 'है' के महाप्राणत्व का लोप होकर ब्रजी में ।ऐ। ही रह जाता है। उदाहरण : रामु ऐ='राम है।' स्वर संकोचन की प्रवृत्ति के कारण भी निम्नतर मध्य स्वर विकसित होता है : प्रा० दीसइ > ब्रजी दीसै : कहइ> कहै : आवइ > आवै, सर्वहिं> सबइ> सबै 'सबको'। इन्हीं प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ।ओ।> ।औ। हो जाता है।

सानुनासिक होने पर उच्चतर मध्य स्वरों की प्रकृति निम्नतर होती जाती है। उच्च स्वरों की अपेक्षा निम्न स्वर संगीत और माधुर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

२.३. स्वरों का ह्रस्वीकरण

जैसा कि पहले देखा जा चुका है ह्रस्व स्वर काव्यशास्त्र में मृदु माने गये हैं।[८] ब्रज में स्वरों के ह्रस्वीकरण

---

१. ना० शा० १७।४९, ५४, ५५।

२. प्राकृतों में अः> ओ के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अः> उ के उदाहरण भी मिल जाते हैं। नियम प्राकृत में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। द्रष्टव्य : मेरी 'मथुरा जिले की बोली', पृष्ठ ४६-४८।

३. डा० चटर्जी ओ० डे० ऑफ बंगाली लैंग्वेज, पृष्ठ १२६।

४. मध्यग-व-> उ-की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इस पर आगे विचार किया गया है।

५. सं० सर्व> प्रा० सव्व> ब्र० सब; सं० ग्राम> प्रा० गाम> ब्र० गामु।

६. दरबार> दरबारु; नसीब> नसीबु, होश> होसु।

७. √-जा-से।जाउ। 'जा',√खा-से ।खाउ। 'खा',√ले-से । लेउ। उकारान्तता मिलती है।

८. द्रष्टव्य प्रस्तुत लेख—१.५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संरचना के अतिरिक्त संबंध कारक भी ओकारान्त मिलते हैं।[१] यह ओकारान्त प्रकृति प्रायः सभी प्राकृतों की थी।[२] मागधी की भी यही प्रकृति थी पर आज मागधी से विकसित पूर्वी बोलियों में यह रूप नहीं मिलता।[३] ब्रजी, राजस्थानी, गुजराती और सिन्धी क्षेत्र में यह प्रवृत्ति मिलती है। भविष्य रचना भी ओकारान्त होती है।[४] /-आ/प्रत्यय वाला क्षेत्र कुरुजनपद से कुरु जांगल (वांगर) होता हुआ पंजाब के अंत तक चला गया है।

राजस्थानी की /-ओ/ वाली प्रकृति ब्रज क्षेत्र में कुछ सीमित हो गयी है। संबंध कारक और क्रिया रूपों की रचना में तो दोनों क्षेत्र समान हैं किंतु ब्रज में कुछ आकारान्त संज्ञारूप भी मिलते हैं : राजस्थानी 'राम को छोरो'=ब्रजी० राम को छोरा'; राज० 'थारो छोरो'=ब्रजी० तेरो छोरा।' इस प्रकार ब्रजी की प्रकृति मिश्रित है। आकारान्त रूप कौरवी बोली के सान्निध्य के कारण हो सकते हैं। इस प्रवृत्ति की दृष्टि से पांचाली और कनौजी ब्रजी के समीप हैं।[५] आकारान्त संज्ञायें जहाँ हिन्दी बहुवचन में एकारान्त हो जाती हैं वहाँ ब्रजी में आकारान्त ही रहती है।[६] ब्रजी की भाँति पांचाली (कनौजी) भी मिश्रित प्रकृति की है।[७] किंतु इन दोनों में एक प्रवृत्तिगत अंतर यह है कि ब्रजी में ओ>औ की प्रवृत्ति मिलती है[८] कनौजी में नहीं।

इस प्रकार ब्रजी की क्रिया, संज्ञा, विशेषण की रचना औकारान्त है।[९] औ अपनी विवृत्ति, और गोलाई और अन्य स्थिति के कारण अत्यन्त संगीतात्मक है। इस प्रवृत्ति का सौंदर्यतात्विक मूल्यांकन किया गया है। ओ में गोलाई तो है, पर निवृत्ति नहीं। इसके स्थान पर औ का विकास माधुर्य के अनुकूल है।

२.१.३. उकारान्त पद

यह ब्रजभाषा की प्रमुख प्रवृत्ति है, जो एक दीर्घ शृंखला की कड़ी भी है।[१०] दस प्रवृत्ति का संबंध आभी-

---

१. राज० को=गुज० नो=हि० का; राज० का=गुज० ना=हि० के।

२. पं० किशोरीदास वाजपेयी : भारतीय भाषा विज्ञान, पृष्ठ १५३।

३. वही।

४. राज०--छोरो जायगो 'छोरा जायेगा'। सार्वनामिक विशेषण भी तेरो, मेरो आदि मिलते हैं। पूर्व की ओर चलने पर इस प्रत्यय का लोप होता चलता है।

५. लरिकवा आओ है 'लड़का आया है।'

६. ब्रजी--छोरा गये=हि० 'लड़के गये।' राज० में बहुवचन रूप आकारान्त ही है।

७. पांचाली एक ओर ब्रज से मिली है दूसरी ओर खड़ी बोली के मुरादाबादी क्षेत्र से। उधर अवधी से भी उसकी सीमा मिलती है। इस लिये यहाँ-आ और औ दोनों की झलक है। किशोरीदास वाजपेयी, भारती भाषा विज्ञान० १८१।

८ यह प्रवृत्ति परवर्ती है। प्राकृतों में औकारान्त रूप नहीं मिलते। डा० शिवप्रसाद सिंह, सूरपूर्व ब्रजभाषा साहित्य और उसका साहित्य, पृष्ठ-२३९।

९. आधुनिक ब्रजी में संयुक्त क्रिया का एक रूप ओकारान्त भी बन जाता है : । गयौ+ओ। । गयो। 'गया था'। पश्चिमी ब्रजी के क्षेत्र में इसका भी रूप / गयौ / ही मिलता है। केवल अंत्य / औ / की दीर्घता में वृद्धि हो जाती है।

१०. द्रष्टव्य : मेरा लेख 'उकार बहुला प्रवृत्ति की परंपरा और ब्रज की 'बोली', भारतीय साहित्य, अक्टूबर १९५६, पृष्ठ ६५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रादि जातियों से जोड़ा जाता था।[१] सभी मध्यकालीन भाषाओं की यह एक विशेषता थी।[२] विशेष रूप से यह पश्चिमी प्राकृतों में मिलती है।[३] ध्वनि विकास की अन्य प्रवृत्तियों के कारण[४] उकारान्तता ही उकार बहुलता में भी वृद्धि होती गयी। प्राकृत अपभ्रंश में जो शब्द रूप उकारान्त नहीं थे, वे भी ब्रजी में उकारान्त हो गये हैं।[५] विदेशी भाषाओं से आगत शब्दों के साथ भी यह प्रत्यय प्रयुक्त होता है।[६] संज्ञाओं के साथ-साथ विशेषण भी उकारान्त हो गये : सुंदरु, लालु। वर्तमान कालिक कृदन्त से व्युत्पन्न क्रिया रूप भी उकारान्त होते हैं। जैसे ।जातु।'जाता', ।वसतु। 'वसता'। स्वरांत क्रिया धातुओं के आज्ञावाचक रूपों की रचना में ।-उ। की सहायता ली जाती है।[७] इस प्रकार ब्रजी की रूप रचना और शब्दावली उकारान्त और उकार बहुला हो जाती है।

ब्रजी का ।-उ। भी संगीतात्मक महत्व रखता है। खड़ी बोली के सपाट ।-अ। की अपेक्षा गोलाकार ।-उ। अधिक कोमल और कलात्मक है। स्वरों की इस गोलाई के कारण बंगला आदि पूर्वी भाषाएँ ललित-कोमल मानी जाती हैं। उकारान्त होने के कारण ही तेलुगु अधिक मधुर और संगीतात्मक कही जाती है। यहाँ भी ब्रजी की यह प्रकृति देश के पूर्वाञ्चल की भाषाओं के समकक्ष है।

२.२. विवृत्तोन्मुख स्वर विकास

उच्चतर मध्य, अग्र अगोलीकृत स्वर ।ए। का विकास निम्नतर मध्य, अग्र स्वर ।ऐ। में हो जाता है, और उच्चतर मध्य पश्च गोलीकृत स्वर ।ओ। का विकास निम्नतर मध्य पश्च स्वर /औ/ में। इस आधार पर परिनिष्ठित हिन्दी और ब्रजी का विभेद भी होता है। √दे-का ब्रजी में √दै—मिलता है। सहायक क्रिया 'है' के महाप्राणत्व का लोप होकर ब्रजी में ।ऐ। ही रह जाता है। उदाहरण : रामु ऐ='राम है।' स्वर संकोचन की प्रवृत्ति के कारण भी निम्नतर मध्य स्वर विकसित होता है : प्रा० दीसइ > ब्रजी दीसै : कहइ> कहै : आवइ > आवै, सवहिं> सवइ> सवै 'सबको'। इन्हीं प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ।ओ।> ।औ। हो जाता है।

सानुनासिक होने पर उच्चतर मध्य स्वरों की प्रकृति निम्नतर होती जाती है। उच्च स्वरों की अपेक्षा निम्न स्वर संगीत और माधुर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

२.३. स्वरों का ह्रस्वीकरण

जैसा कि पहले देखा जा चुका है ह्रस्व स्वर काव्यशास्त्र में मृदु माने गये हैं।[८] ब्रज में स्वरों के ह्रस्वीकरण

---

१. ना० शा० १७।४९, ५४, ५५।

२. प्राकृतों में अः> ओ के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अः>उ के उदाहरण भी मिल जाते हैं। नियं प्राकृत में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। द्रष्टव्य : मेरी 'मथुरा जिले की बोली', पृष्ठ ४६-४८।

३. डा० चटर्जी ओ० डे० ऑफ बंगाली लैंग्वेज, पृष्ठ १२६।

४. मध्यग-व-> उ-की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इस पर आगे विचार किया गया है।

५. सं० सर्व> प्रा० सव्व> ब्र० सब; सं० ग्राम> प्रा० गाम> ब्र० गामु।

६. दरबार> दरबारु; नसीब> नसीबु, होश> होसु।

७. √-जा-से।जाउ। 'जा',√खा-से ।खाउ। 'खा',√ले-से । लेउ। उकारान्तता मिलती है।

८. द्रष्टव्य प्रस्तुत लेख–१.५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की प्रवृत्ति भी मिलती है। छन्द शास्त्र में सभी दीर्घ स्वरों का ह्रस्व उच्चारण स्वीकृत रहा है।[१] ।ए। तथा ।ओ। का ह्रस्व उच्चारण मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं की प्रमुख विशेषता रही है।[२] दीर्घता का ह्रास पादान्त और पाद मध्य हो सकता है। पादान्त ह्रस्वीकरण अधिक लोकप्रिय रहा। क्योंकि तुक रचना अन्त में ही होती है। तुक रचना का बन्धन अधिक जटिल होता है। तुक का स्वरूप ध्वन्यात्मक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दीर्घ या ह्रस्व सौंदर्य और उसके सांदर्भिक औचित्य का समावेश होता है।[३] ।ए। और ।ओ। के ह्रस्वोच्चरित रूप [एँ] [ओं] व्रजी की भी विशेषता है।[४] सूरसागर के निम्नलिखित उदाहरणों से इस प्रवृत्ति को उदाहृत किया जा सकता है :

ए >एँ--

प्रभु [तें] रौ बचन भरोसौ साँचौं[५]
दर दर लोभ लागि लि [एँ] डोलति नाना स्वाँग बनावैं[६]
कि [तें] दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।[७]

ओ> ओं

अर्थ काम [दों] उ रहैं दुवारैं धरम मोक्ष सिर नावैं।[८]
जो [कों] उ प्रीति करै पद-अंबुज उर मंडत निरमोलक हार।[९]
कपट लोभ वाके [दों] उ भैया ते घर के अधिकारी।[१०]

उपर्युक्त दो लघूच्चरित रूपों के अतिरिक्त अन्य दीर्घस्वरों ।आ।,।ई।, ।ऐ। के भी ह्रस्व रूप साहित्य में मिलते हैं।[११]

अन्त्य दीर्घ स्वर।आ। के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति भी मिलती है : "रेखा> रेख ~रेह, धन्या> धन~ धनि, वामा> वाम, वार्ता> वात, आशा> आस, लज्जा> लाज, भुजा> भुज आदि।

---

१. बौद्ध संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का स्वर व्यत्यय अधिक प्राप्त होता है।

२. नियम और उदाहरण के लिये द्रष्टव्य : वाणीभूषण १।६; प्राकृत पिंगल १।४।

३. हेमचन्द्र ने छन्दानुशासन के आरंभ में ही इस तत्त्व की ओर संकेत किया है--"वंशस्थकादि-चरणान्त-निवेशितस्य गत्वं लघोः न हि तथा श्रुति शमदायि।"

४. डा० कैलाशचन्द्र भाटिया : व्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ १२४।

५. सू० सा० १।३२।

६. वही, १।४२।

७. वही १।५२।

८. सू० सा० १।४०।

९. वही १।४१।

१०. वही १।१७३।

११. प्रेमनारायण टंडन, सूर की भाषा, पृष्ठ ६२।६५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२.४. स्वर शृंखलाएँ

एक से अधिक स्वरों का बिना किसी व्यंजन ध्वनि के व्याघात के एक साथ आना स्वर शृंखला है। संस्कृत में स्वर संयोग नहीं मिलते थे। मध्यकालीन प्राकृतों में जब स्वर मध्यग व्यंजन लुप्त होने लगे और स्वर एक दूसरे के समीप आकर अपनी शृंखलाएँ बनाने लगे। ब्रज भाषा तथा हिन्दी की अन्य बोलियों में, परिनिष्ठित हिन्दी की अपेक्षा स्वर संयोग की स्थितियाँ अधिक रहीं।[1] परिनिष्ठित हिन्दी विकासक्रम से कुछ हटकर तत्सम बहुल हो गयी है। इसीलिए उसका स्वर बाहुल्य भी कम हो गया है। ब्रजभाषा मध्यकालीन स्वरबहुल भाषाओं की परम्परा में आती है।

स्वर शृंखला दो स्वरों की भी हो सकती है और दो से अधिक स्वरों की भी।

२.४.१. दो स्वरों की शृंखला[2]——इस तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

प्रथम स्वर	द्वितीय स्वर											
		अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	एँ	ऐ	ओ	ओं	औ
	अ			+	+	+	+	+	+	+			
	आ			+	+	+	+	+			+		
	इ	+	+			+		+	+	+			
	ई												
	उ	+	+	+	+			+					
	ऊ												
	ए			+	+	+	+	+					
	एँ							+					
	ऐ							+	+				
	ओ			+	+	+	+						
	ओं			+		+		+					
	औ	+		+									

---

१. अन्य प्रादेशिक बोलियों में भी खड़ी बोली की अपेक्षा स्वर-संयोग की स्थितियां अधिक हैं। भोजपुरी के स्वर-संयोगों के लिए द्रष्टव्य : डा० विश्वनाथप्रसाद, फोनेटिक एंड फोनोलॉजिकल स्टडी ऑफ भोजपुरी (१९५०) पृ० ११८-११९। इस पुस्तक में ७२ स्वर संयोग माने गये हैं। अवधी में २४ स्वर-संयोग माने गये हैं: डा० बाबूराम सक्सेना, एवोलूशन ऑफ अवधी, (१९३६)।

२. यह तालिका डा० कैलाशचन्द्र भाटिया की 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन' पुस्तक, पृष्ठ १२८ से ली गयी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बोल चाल की ब्रजी में इनसे कुछ अधिक ही स्वर-संयोग मिलते हैं।[१] दीर्घ स्वरों, लघूच्चरित रूप और उनके संयोग साहित्यिक ब्रजी की विशेषता है।

२.४.२. दो से अधिक स्वरों की शृंखला

दो से अधिक स्वरों की शृंखला दो प्रकार की मिलती है: एक श्रुतियुक्त शृंखला और दो संयोजक (जंकचर) या विवृत्ति (हिआएटस) से युक्त शृंखला। प्रथम प्रकार की शृंखला एक ही शब्द में आयी ध्वनि की बनती है और दूसरे संयुक्त पदों की।

२.४.२.१. श्रुतियुक्त त्रिस्वर शृंखला

इस शृंखला में ।इ।, ।ई।, ।उ। अथवा ।ऊ। की स्थिति अवश्य रहती है। इन्हीं के द्वारा क्रमशः [य] और [व] श्रुतियां जन्म लेती हैं। कुछ उदाहरण ये हैं :

।इ आ ई। : ।सि आई।=[स् इ^{य} आई] 'स्याही'

।इ आ ऊ। : ।पि आऊ।=[प् इ^{य} आ ऊ] 'प्याऊ'

।अ ऊ आ। : ।कौआ।=[क् अ उ^{व} आ] 'कौआ'

डॉ० प्रेम नारायण टंडन ने सूर की भाषा से कुछ उदाहरण दिये हैं। इनमें श्रुति का संकेत नहीं किया गया है, पर श्रुति का तत्त्व ध्वनिवैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थित अवश्य है।[२]

कुछ ऐसे शब्द रूप भी प्राप्त होते हैं, जिनमें शब्द+प्रत्यय की स्थिति है। स्वरांत द्वि-स्वरान्त शब्दों के साथ स्वर या द्विस्वर प्रत्यय संबद्ध होकर त्रिस्वर शृंखला की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इनमें श्रुति का प्रवेश भी हो जाता है। नीचे कुछ उदाहरण दिये गये हैं।

२.४.२.२. क्रिया+ऐकान्त प्रत्यय—[जइयै]=।जइ^{य} ऐ।; [पइयै]=।पइ^{य} ऐ।, इसी प्रकार [करइयै], [बिछइयै], [मँगइयै], [दुरइयै], [अधिकइयै] आदि शब्द हैं। इनको ग्रंथों में श्रुतियुक्त ही लिखा गया है। वस्तुतः [ये] अथवा [यै] भी ।ऐ। या ।ए। के श्रुतियुक्त रूप ही हैं।[३]

२.४.२.३. संयोजक वाली त्रिस्वर-शृंखला

स्वरांत पदों के साथ प्रायः [-ई] ('केवलार्थक) ही']-[ऊ] '(समेतार्थक) भी', ।ऐ। 'है' 'को' का प्रयोग त्रिस्वर शृंखला का कारण बनता है। पद और प्रत्यय के बीच विवृत्ति [+] रहती है। बोलचाल की ब्रजी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—

।आ ई ई।	: ।राई+ई।	'राई ही'
।इ ए ई।	: ।दीए+ई।	'दीपक ही'
।आ ऊ ई।	: ।नाऊ+ई।	'नाई ही'

---

१. द्रष्टव्य. 'मेरी मथुरा जिले की बोली', पृष्ठ १२२।

२. सूर की भाषा, पृ० ७०-७१।

३. ऐसे रूपों के लिये द्रष्टव्य, सू० सा० १।२३९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

।आ उ ई।	: ।दा उ+ई।	'दाँव ही'
। ई औ ई।	: ।ही औ+ई।	'हृदय ही'
। आई ऐ।	: ।भाई+ऐ ।	'भाई को'
। ई ए ऐ।	: । दी ए+ऐ।	'दीपक को'
। आऊ ऐ।	: । ताऊ+ऐ।	'ताऊ को'
। आईऊ।	: । ताई+ऊ।	'ताई भी'
। ई एऊ।	: । ही ए+ऊ।	'हृदय भी'

इस प्रकार ब्रजभाषा में स्वर शृंखला तीन स्वरों वाली भी हो सकती है। श्रुति और संयोजक शृंखला को वैज्ञानिक दृष्टि से तोड़ते अवश्य हैं, पर श्रुति का उच्चारण शिथिल और संयोजक के 'मौन अस्तित्व' होने के कारण स्वर शृंखला शैली और प्रभाव की दृष्टि से अविच्छिन्न ही रहती है। भाषा का स्वरात्मक वातावरण इन दोनों तत्वों से वाधित नहीं होता।

२.५. अनुनासिकता

भारोपीय भाषाओं की सानुनासिक प्रकृति प्राचीन[१] और नवीन[२] विद्वानों ने स्वीकार की है। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रवृत्ति का सौंदर्य तात्त्विक मूल्य स्वीकार किया गया है। यह पहले देखा जा चुका है। ब्रजभाषा ध्वनि विज्ञान की एक प्रमुख प्रवृत्ति सानुनासिकता है। इसके माधुर्य का यह प्रमुख ध्वन्यात्मक आधार है। भाषा की कोमलता और माधुर्य की दृष्टि से स्वर-ध्वनियों का नासिक्यीकरण[३] महत्वपूर्ण है। कुछ पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों में इस प्रवृत्ति को चिह्नित भी किया गया है।[४] नासिक्यीकरण को चिह्नित करना एक अनुभूत प्रवृत्ति की स्वीकृति ही है।

स्वरों का नासिक्यीकरण वद्ध भी होता है और मुक्त भी।

२.५.१. बद्ध नासिक्यीकरण

पार्श्ववर्ती उपस्थित या लुप्त नासिक्य वर्णों के प्रभाव से स्वरों का पश्चगामी या पुरोगामी नासिक्यी-करण् ब्रज भाषा की विशेषता है।

२.५.१.१. पश्चगामी नासिक्यीकरण

यह प्रवृत्ति पुरोगामी प्रक्रिया से अधिक मिलती है। । काँन। 'कान', । जाँमवंत। 'जामवंत', । हनूंमाँन। 'हनुमान'। स्रोंनित। 'शोणित', । तुँम। 'तुम' आदि।

---

१. ऋग्वेद प्रातिशाख्य (शाकल्य) १।२६, पाणिनी, ८।४।५७।

२. डेनियल जोन्स ने भी यह तथ्य स्वीकार किया है।

३. इनके उच्चारण में स्वरत्व के लिये अनिवार्य सांस मुंहसे निकलती है और अनुनासिकत्व के लिए अनिवार्य साँस नाक से निकलती है।

४. विशेष रूप से ।आ। को चिह्नित करने की प्रवृत्ति मिलती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मध्यवर्ती नासिक्यीकरण स्वरमध्यवर्ती नासिक्य व्यंजन अथवा नासिक्य व्यंजन के व्यंजन गुच्छ् में प्रथमांश होने पर सम्पन्न होता है। मध्यकालीन भाषाओं में स्वरमध्यग-म->-व-की प्रवृत्ति मिलती है। इस क्रम में पूर्ववर्ती स्वर भी सानुनासिक हो जाता है : । चाँवण्ड । 'चामुंड' : । रोंव[1] । 'रोम'। स्वर मध्यग नासिक्य व्यंजन युक्त व्यंजन गुच्छ के प्रभाव से सानुनासिक होने के उदाहरण ये हैं : अमृत > अंब्रित : अमृत सर > अँम्बरसर, आम्र > आँम ।[2] स्वर मध्यग (म्+व) की स्थिति के उदाहरण : दिगम्वर > दिगँम्भर√ दिगँभर : कदम्ब > कदँभ। संस्कृत न+म > म+न के पूर्ववर्ती स्वर का भी नासिक्यीकरण हो जाता है। सन्मुख > सम्मुख ~ समुँहीं ~ साँमुईं ~ सउँह ~ सउँही ~ साँही।

२.५.१.२. पुरोगामी मध्यवर्ती नासिक्यीकरण

इसके कुछ उदाहरण ये हैं : मूंसा 'चूहा', माँथा, नाँथ 'नाथ', सुमुँखि । बोलचाल में भी यह प्रवृत्ति मुखर है : । तैं नैं। 'तूने' : । तैं नैं ई ।='तूने ही'। यदि ।ई। 'ही' को ।-नैं। से पहले रखा जाये तो यह नासिक्य नहीं होता : । छोरा ई नैं। 'लड़के ही ने' ~। छोरा नैं-ई। 'लड़के ने ही'।

२.५.२. मुक्त नासिक्यीकरण

पद के मध्य या अन्त में घटित होने वाली इस प्रक्रिया के ध्वन्यात्मक कारण नहीं संभवतः मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं।[3] अर्थात् किसी नासिक्य ध्वनि के प्रभाव से यह परिवर्तन नहीं होता।

२.५.२.१. मध्य में

यह नासिक्यीकरण स्वर पूर्व या व्यंजन पूर्व हो सकता है। ग्रियर्सन ने इसका संयुक्त व्यंजन से पूर्व घटित होना माना है।[4] आँसू > अश्रु; मूंछ > श्मश्रु आदि में यही प्रवृत्ति है। साँस < श्वास, फाँस < पाश, चाँप < चाप जैसे उदाहरणों में संयुक्त व्यंजन पूर्व होने की अनिवार्यता नहीं है। यह विवृत्ति या स्वर-विच्छेद (हाइएटस) के रूप में आकर[5] दो स्वरों को अलग भी करता है : कूँ आँ < कू अ अ < कूपक में यही कारण

---

१. यह और आगे की सूची डा० सिद्धेश्वर वर्मा के आधार पर दी गई है—जर्नल ऑफ द डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता यूनीवर्सिटी, खण्ड-१८, पृष्ठ १-२०।

२. पुरानी हिन्दी में आँवहिं, अँबराउँ जैसे रूप भी मिलते हैं।

३. Nasalty, the tendency which was already present in the language was an involuntary device to cover the defects of pronouncing an unfamiliar word and in the case of familiar words was a means of rendering more open the penult or antipenult of palysyllabic words, and a concomitant of possibly increased vocalic length of monosyllabic words." (Jr. of the Dept. of Latters, Calcutta University, Vol. XVIII, p. 10).

४. JRAS, 1922, p. 383.

५. सिंधी में भी यह प्रवृत्ति है : ट्रम्प, सिंधी ग्रामर, १५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रतीत होता है। जूंआँ < जूया ~जूवा < यूका में भी यही प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रवृत्ति का इतिहास पुराना है[1]। नासिक्यीकरण बहुधा विवृत स्वरों का किया जाना है। अ। का नासिक्यीकरण सबसे अधिक मुखर है।

२.५.२.२. अन्त में

।सौं।~सैं 'से' आदि अंत मुक्त नासिक्यीकरण के उदाहरण हैं। ब्रजभाषा के हस्तलिखित ग्रंथों में भी इनको चिह्नित किया गया है : । ए।, । ऐ।, तथा । आ। जैसे विवृतोन्मुख स्वरों के नासिक्यीकरण को चिह्नित किया गया है। । इ। तथा । उ। को प्रायः यों ही छोड़ दिया गया है।

।—ऐं। ब्रजी में एक प्रत्यय भी है। कुछ क्रिया विशेषणों में इसका प्रयोग मिलता है : । बैठें। 'बैठे हुये'। गएँ। 'गये हुए' आदि रूपों में यह क्रिया के साथ संबद्ध है। स्थानवाचक रूप ये हैं : । पाछें।~। पीछें। 'पीछे'। 'आगें। 'आगे' आदि। हस्तलिखित ग्रंथों में यह भी नासिक्यांकित मिलते हैं।

कुछ अव्यय। —हूँ। 'भी' से युक्त भी मिलते हैं : । अजहूँ~अजहुँ। 'आज भी'। कतहूँ।, कहीं-न-कहीं' । कबहूँ~कबहुँ। जब कभी आदि। कारक चिन्हों के अनुस्वरांत रूप भाषा के सानुनासिक वातावरण को सघन बनाते हैं। कैं। 'के यहाँ'; । कौं~कूं। 'को', । सों~सूं~सैं। 'से' आदि।

। आ। मध्य स्थिति की अपेक्षा अन्त्य नासिक्यीकरण से कम प्रभावित होता है। अंत्य स्थिति में। ओ, औ, ए, इ, उ। आदि ध्वनि ग्राम अधिक नासिक्यीकृत होते हैं। प्रातिशाख्यों में 'अभिधान' की चर्चा मिलती है।[2] वक्ता अन्त्य अक्षर या वर्ण का पूर्ण उच्चारण करना नहीं चाहता अथवा बलाघात के क्षीण होने के कारण अंत्य उच्चारण शिथिल हो जाता है। संभवतः स्वरों का अन्त्य नासिक्यीकरण इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

स्वरों के नासिक्यीकरण की यह प्रवृत्ति संस्कृत में बोल चाल के रूपों में संभवतः प्रचलित होगी किंतु परिनिष्ठित लेखन और उच्चारण में इसका अस्तित्व नहीं मिलता इसीलिए सानुनासिक स्वरों की ओर काव्यशास्त्र के आचार्यों ने संकेत नहीं किया। मध्यकालीन भाषाओं[3] से ब्रजभाषा तक और कुछ-कुछ हिन्दी तक भी यह प्रवृत्ति चली आयी और यही ब्रजभाषा के माधुर्य का प्रमुख आधार बन गयी है। ब्रजभाषा साहित्य में इसकी स्थिति आरंभ से ही है।[4]

२.५३. नासिक्य व्यंजन > अनुनासिक स्वर

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है।[5] नासिक्यव्यंजन और नासिक्य व्यंजनों पर आधारित

---

१. इसका सम्बन्ध डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने वैदिक से जोड़ा है। "This intervocalic masalization in Hndi, Lahanda, Sindhi, seems to be an inheritence from Vedic, though, We donot find Striking cases of the phenomenon in pali and PKT. Perhaps it occured in AP.....though it was not so transcribed."
(ऊपर उद्धृत, पृष्ठ १८) डा० ग्रियर्सन ने इनका संबंध प्राकृतों से ही माना था JRAS, 1922, p. 384.

२. ऋग्वेद प्रातिशाख्य २।१३।

३. पिशेल, प्राकृत व्याकरण, पैरा १८०।

४. डा० शिवप्रसाद सिंह : सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य पृ० २४२-४४।

५. द्रष्टव्य प्रस्तुत प्रबंध १.५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संयुक्त व्यंजन मधुर और कोमल माने गये थे। ब्रज भाषा में इन व्यंजनों का भी मृदुलीकरण स्वरों की अनुनासिकता में मिलता है। ङ > ँ :श्रृंगार: > सिगार; अ > ँ अञ्चल > आँचल; ण > ङ पण्डित > पाँडे; न > : आनन्द > आनँद;[१] सँताप > सँताप।[२] म > ँ : सम्पूर्ण > सँपूरन।[३] कभी-कभी पूर्वस्वर के क्षतिपूरक दीर्घीकरण के साथ नासिक्यांश की सहस्थिति मिलती है : पाँडे < पण्डित; छाँड़ौ < छँडउ; आँकुस < अंकुश।

२.५४. नासिक्य स्वर : ध्वनि ग्रामीय स्थिति

ब्रजी में उदासीन तथा फुस्फुसाहट वाले स्वरों को छोड़कर शेष सभी स्वरों के सानुनासिक रूप मिलते हैं : अँगिया, आँखि, नाहिं, भईं, कुँवर, ऊँचौ, सैंत, नैंकु, मोकों, क्यौं आदि। इनकी स्थिति मात्र संस्वनात्मक (एलोफोनिक) नहीं है, यह ध्वनि ग्रामीय है, जो निम्नलिखित स्वल्पान्तर युग्मों से स्पष्ट है।

।ई।: ।ईं।: ।गई। 'गई' (एक०) ।गईं। 'गईं' (वहु०)
'ऐ।: ।ऐं।: ।पैठ। 'ज्ञान' ।पैंठ। 'पैंठ'
।आ।: ।आँ।। ।आग। 'अग्नि' ।आँग। 'अंग'
।ऊ।: ।ऊँ।। ।जूआ। 'जुआ' ।जूँआँ। 'जूं'
।औ।: ।औं।: ।गौ। 'गया' ।गौं। 'स्वार्थ'
।अ।: ।अँग।: ।अगार। 'आगे' ।अँगार। 'अंगार'
।इ।: ।इँ।: ।सिगार।[४] 'सिगरेट' ।सिँगार। 'श्रृंगार'
।उ।: ।उँ।: ।पाउ। 'एक पाव' ।पाँउँ। 'पैर'।[५]

नासिक्य स्वरों की ध्वनिग्रामीय और संस्वनात्मक स्थिति के कारण ब्रजी की सानुनासिक प्रकृति सिद्ध हो जाती है। इसका सौंदर्यतात्विक मूल्य है। सामान्य स्वरों की भांति सानुनासिक स्वरों के संयुक्त रूप भी मिलते हैं।

२.५५. सानुनासिक स्वर संयोग

ब्रजी की ध्वन्यात्मक मधुरता को यह प्रवृत्ति द्विगुणित कर देती है। सानुनासिक स्वर संयोग का द्वितीयांश सानुनासिक होता है, और वही इस रूप में चिह्नित भी होता है। इसके प्रभाव से पूर्ववर्ती स्वर भी अनुनासिक हो जाता है और सानुनासिक स्वर श्रृंखला सम्पन्न हो जाती है। अग्रेलिखित तालिका द्रष्टव्य है :

---

१. सू० सा० १०।३६।
२. वही ३।१३
३. वही।
४. यह स्वल्पान्तर युग्म साहित्य में संगृहीत नहीं है।
५. विस्तार के लिए द्रष्टव्य : 'मथुरा जिले की बोली' पृष्ठ १२१-१२२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection Lucknow

प्रथम स्वर	द्वितीय स्वर								
		अ	अँ	इँ	ईं	उँ	ऊँ	ऐँ	ऐं
	अ							+	+
	आ				+	+	+	+	
	आँ					+			
	इ							+	
	ई							+	
	उ		+					+	
	उँ	+							
	ए					+			
	ओ						+		

तालिका में प्रदर्शित स्वर संयोग सूर साहित्य के इन उदाहरणों से प्रमाणित होते हैं : । भऐं।[१] 'हुए' । इहाँउ।[२] 'यहाँ भी' । गुसाईं।[३] [गुसाँईं] 'गोस्वामी" । ठाऊँ।[४] [ठाँउँ] 'स्थान'। गाँऊँ।[५] [गाँऊँ] 'गाऊँ'; । लाऐं।[६] [लाँऐं] 'लावें'। दिऐं।[७] 'दिये'। कुँअँर।[८] 'कुंवर' । भुअँग।[९] 'साँप' । हरुऐं।[१०] 'हलके', । देऊँ।[११] 'दूं" । सोऊँ।[१२] 'सोऊँ' ।

उपर्युक्त उदाहरणों में से सानुनासिक स्वर के पूर्व सघोष व्यंजन+स्वर; या सकार+स्वर होने पर पूर्व स्वर भी प्राय: सानुनासिक हो जाता है।

२.५.६. रूप रचना में अनुनासिक प्रत्यय

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया और क्रिया-विशेषण की रचना में अधिकांश नासिक्य प्रत्ययों अथवा विभक्तियों का प्रयोग होता है। इसके परिणामस्वरूप नासिक्य स्वर-ध्वनियों की क्षिप्रता में वृद्धि होती है।

---

१. सू० सा०, २।२२; २. सा० ३।२, ३. वही १-१४७, ४. वही, १-१२८, ५. वही १-१६६; ६. वही १-१४६, ७. वही २-६, ८. वही ४०९४, ९. वही ३७७५, १०. वही १०-२५७, ११. वही ३-१३, १२. वही १-५१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संयुक्त व्यंजन मधुर और कोमल माने गये थे। व्रज भाषा में इन व्यंजनों का भी मृदुलीकरण स्वरों की अनुनासिकता में मिलता है। ङ>ँ :शृंगार:>सिगार; अ>ँ अञ्चल>आँचल; ण>ङ पण्डित>पाँडे; न>: आनन्द>आनँद;[1] सँताप>सँताप।[2] म>ँ : सम्पूर्ण>सँपूरन।[3] कभी-कभी पूर्वस्वर के क्षतिपूरक दीर्घीकरण के साथ नासिक्यांश की सहस्थिति मिलती है : पाँडे<पण्डित; छाँड़ौ<छँडउ; आँकुस<अंकुश।

२.५४. नासिक्य स्वर : ध्वनि ग्रामीय स्थिति

व्रजी में उदासीन तथा फुस्फुसाहट वाले स्वरों को छोड़कर शेष सभी स्वरों के सानुनासिक रूप मिलते हैं : अँगिया, आँखि, नाहिं, भई, कुँवर, ऊँचौ, सैंत, नैंकु, मोकों, क्यौं आदि। इनकी स्थिति मात्र संस्वनात्मक (एलोफोनिक) नहीं है, यह ध्वनि ग्रामीय है, जो निम्नलिखित स्वल्पान्तर युग्मों से स्पष्ट है।

।ई।: ।ईं।: ।गई। 'गई' (एक०) ।गईं। 'गईं' (बहु०)
'ऐ।: ।ऐं।: ।पैठ। 'ज्ञान' ।पैंठ। 'पैंठ'
।आ।: ।आँ।।। आग। 'अग्नि' ।आँग। 'अंग'
।ऊ।: ।ऊँ।।। जूआ। 'जुआ' ।जूँआँ। 'जूं'
।औ।: ।औं।: ।गौ। 'गया' ।गौं। 'स्वार्थ'
।अ।: ।अँग।: ।अगार। 'आगे' ।अँगार। 'अंगार'
।इ।: ।इँ।: ।सिगार।[4] 'सिगरेट' ।सिँगार। 'शृंगार'
।उ।: ।उँ।: ।पाउ। 'एक पाव' ।पाँउँ। 'पैर'।[5]

नासिक्य स्वरों की ध्वनिग्रामीय और संस्वनात्मक स्थिति के कारण व्रजी की सानुनासिक प्रकृति सिद्ध हो जाती है। इसका सौंदर्यतात्विक मूल्य है। सामान्य स्वरों की भांति सानुनासिक स्वरों के संयुक्त रूप भी मिलते हैं।

२.५५. सानुनासिक स्वर संयोग

व्रजी की ध्वन्यात्मक मधुरता को यह प्रवृत्ति द्विगुणित कर देती है। सानुनासिक स्वर संयोग का द्वितीयांश सानुनासिक होता है, और वही इस रूप में चिह्नित भी होता है। इसके प्रभाव से पूर्ववर्ती स्वर भी अनुनासिक हो जाता है और सानुनासिक स्वर शृंखला सम्पन्न हो जाती है। अग्रेलिखित तालिका द्रष्टव्य है :

---

१. सू० सा० १०।३६।
२. वही ३।१३
३. वही।
४. यह स्वल्पान्तर युग्म साहित्य में संगृहीत नहीं है।
५. विस्तार के लिए द्रष्टव्य : 'मथुरा जिले की बोली' पृष्ठ १२१-१२२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection Lucknow

प्रथम स्वर	द्वितीय स्वर								
		अ	अँ	इँ	ईं	उँ	ऊँ	ऐँ	ऐं
	अ							+	+
	आ				+	+	+	+	
	आँ					+			
	इ							+	
	ईं							+	
	उ		+					+	
	उँ	+							
	ए					+			
	ओ						+		

तालिका में प्रदर्शित स्वर संयोग सूर साहित्य के इन उदाहरणों से प्रमाणित होते हैं : । भऐं ।[१] 'हुए' । इहाँउ ।[२] 'यहाँ भी' । गुसाईं ।[३] [गुसाँईं] 'गोस्वामी" । ठाऊँ ।[४] [ठाँउँ] 'स्थान'। गाँऊँ ।[५] [गाँऊँ] 'गाऊँ'; । लाऐं ।[६] [लाँऐं] 'लावें' । दिऐं ।[७] 'दिये' । कुँअँर ।[८] 'कुंवर' । भुअँग ।[९] 'साँप' । हरुऐं ।[१०] 'हलके', । देऊँ ।[११] 'दूं" । सोऊँ ।[१२] 'सोऊँ' ।

उपर्युक्त उदाहरणों में से सानुनासिक स्वर के पूर्व सघोष व्यंजन+स्वर; या सकार+स्वर होने पर पूर्व स्वर भी प्राय: सानुनासिक हो जाता है।

२.५.६. रूप रचना में अनुनासिक प्रत्यय

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया और क्रिया-विशेषण की रचना में अधिकांश नासिक्य प्रत्ययों अथवा विभक्तियों का प्रयोग होता है। इसके परिणामस्वरूप नासिक्य स्वर-ध्वनियों की क्षिप्रता में वृद्धि होती है।

---

१. सू० सा०, २।२२; २. सा० ३।२, ३. वही १-१४७, ४. वही, १-१२८, ५. वही १-१६६; ६. वही १-१४६, ७. वही २-६, ८. वही ४०९४, ९. वही ३७७५, १०. वही १०-२५७, ११. वही ३-१३, १२. वही १-५१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२.५.६.१. संज्ञा की रूप-रचना

संज्ञा की सविभक्तिक और कारकीय, दो प्रकार की रचना मिलती है। सविभक्तिक रचना में {–हिं], [-ऐं] तथा [-आँ] प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। द्वितीया (कर्म) की रचना के उदाहरण ये हैं : । उहिं।[१] 'उसको', । गोविंदहिं।[२] 'गोविंद को', । गोपालै।[३] 'गोपाल को'। अधिकरण की रचना में भी । ऐं। अथवा । आँ। का प्रयोग होता है। जैसे : । पालनैं।[४] 'पालने में', । हिंडोरैं।[५] 'हिंडोले में'। । कनियाँ।[६] 'गोद में'। । पनिआँ।[७] 'पानी भरने को' कर्म की रचना है। यदि अंतिम दो उदाहरणों के अंत्य स्वर को मात्र शब्द विस्तार माना जाये तो यह कहा जायेगा कि आँकारान्त निर्विभक्तिक पद सविभक्तिक रूप में प्रयुक्त होते हैं।

कुछ संज्ञाओं के अंत में अकारण विस्तार के कारण । आँ। आ जाता है। इससे शुद्ध मृदु मधुर अर्थ व्यंजित होता है। उदाहरण ये हैं : । बहिआँ। 'बाँह', । बिरिआँ। 'बेला', । छहिआँ। छैआँ। 'छाया' ('नाहिंन बसत तिहारी छैआँ'), । मथनिआँ। 'मथानी' और । लगनिआँ। 'लग्न' ।इन स्त्रीलिंग शब्दों के अतिरिक्त पुल्लिग शब्द भी आँकारान्त विस्तार करते हैं। पनिआँ। 'पानी', । दतिआँ।[८] 'दाँत', । मोहनिआँ। 'मोहन' आदि। इनमें से बीच का उदाहरण इस प्रक्रिया से स्त्रीलिंग बन गया है। इस प्रत्यय के द्वारा लघुता या कोमलता व्यक्त होती है जैसे : । धनुहिआँ।[९] 'छोटा धनुष' तथा । पनहिआँ।[१०] 'छोटे जूते'।

इस प्रत्यय का प्रयोग संज्ञा की बहुवचन रूपरचना में भी होता है : अलि से । अलिआँ।, गली से । गलिआँ, । रँगरलिआँ। आदि। वात्सल्य संदर्भ में सूर ने लघुता या मृदुता की सूचक इस प्रकार की पदावली का प्रयोग किया है। जहाँ नासिक्यांश रूप रचना सम्पन्न करता है, वहाँ मृदुता और मधुरता का भी द्योतक है।

२.५.६.२. सानुनासिक कारक चिह्न

संबंध को छोड़कर सभी कारक चिन्ह ब्रजी में सानुनासिक हैं।

क. कर्ता : । नैं।~। ऐं। : तैंनैं। 'तूने' : । कारैं।[११] 'काले (नाग) ने', । सकटैं ।[१२] 'शकट ने।'

---

१. सू० सा० ४।५।

२. वही २।१३।

३. 'अपने बाल गोपालैं रानी जू पालने झुलावै।' (चतुर्भुजदास : अष्टछाप परिचय, पृ० २७६, पद-३)।

४. 'प्यारी लाड़िलौ पालने झूलैं। (कृष्णदास : वही, पृ० २३०, पद, २०)।

५. सू० सा० भाग-२, पद २६८८।

६. सूरदास मदन मोहन, अकबरी दार के हिन्दी कवि, पृष्ठ४४७, पद-१।

७. 'जमुना जाति ही हौं पनिआँ' भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० ३२९, पद ५२०।

८. 'हरसित देखि दूध की दतिआँ' सू० सा० १०।८२।

९. सू० सा० ९।१९।

१०. वही।

११. । ताकी माता खाई कारैं। 'उसकी माता को काले (नाग) ने खा लिया।'

१२. । सकटैं गरब बढ़ायौ। 'शकट ने गर्व बढ़ाया।'

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ख. **कर्म** : । कौं ~कूँ ~कुँ ।[1] 'को'। । ऐं। का भी कर्मकारकीय प्रयोग मिलता है।[2]

ग. **करण** : । तैं ~सुं ~सूं ~सौं ~सेंती ।[3] इस रचना में ।-ऐं। का प्रयोग भी मिलता है।। सूतैं।[4] 'सूत से'

घ. **सम्प्रदान** : इसके निरनुनासिक और सानुनासिक दोनों रूप मिलते हैं। पर । कुँ ~कूँ ~कौं। का ही बाहुल्य है।

ङ. **अपादान** : इसके भी निरनुनासिक रूपों की अपेक्षा सानुनासिक रूपों का बाहुल्य मिलता है।। तें ~ तैं। चिन्ह अधिक लोकप्रिय रहे।[5] । सौं। का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है। 'परवत सौं इहिं देहु गिराइ।'[6]

च. **अधिकरण** : इसके चिह्न ये हैं : । पहिं ~पाहीं। 'पर' तथा । मँझार ~मँझारि ~मँझारे ~माँझ ~माँह ~माँहि ~माँहीं ~माँहैं ~माँहँ ~महुँ ~महिआँ ~में ~मैं ~मौं। 'में'।[7]

।-ऐं। विभक्ति पर आधारित रूप ये हैं : । द्वारैं[8]। 'द्वार पर', । माथैं।[9] 'माथे पर'; । करेजैं।[10] 'कलेजे में', । सरनैं।[11] 'शरण में'। कहीं-कहीं । हिं। से युक्त रूप भी मिलते हैं : । ब्रजहिं।[12] 'ब्रज में'।

छ. सम्बन्ध कारक सानुनासिक संरचना का अपवाद है। कुछ शब्द भी कारकवत प्रयुक्त होते हैं। जैसे—। आगैं। 'अपादान', । तरैं। 'अधिकरण' ये भी अनुस्वारांत ही हैं।

२.५.६.३. सार्वनासिक रूप रचना

सर्वनामों के मूल रूपों में से उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष एक वचन सानुनासिक हैं। साहित्य में । हौं।[13] उ० एक० और । तूँ।[14] मध्यम० एक० प्रयुक्त मिलते हैं। इसका कारकीय रूप। तैं।है। जैसे "ग्वालिनि

---

१. ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित सूर सागर में / कौं / का ही प्रयोग है, किंतु अन्यत्र दूसरे रूप भी मिलते हैं। सू० सा० ९।१७१-१७३ आदि।

२. /आजु गई कछु काज घरैं / (सू० सा० १०।७६); / तौहू धरै न मन में ज्ञानैं / (ज्ञान को) वही ४।१२।

३. द्रष्टव्य : डा० प्रेमनारायण टण्डन, सूर की भाषा, पृ० १६१।

४. ।किंहि गयंद बाँध्यौ सुनि मधुकर पदुम नाल के काँचे सूतैं / सू० सा० ३९१६।

५. सू० सा० सभा संस्करण में/तें/ का ही प्रयोग किया गया है।

६. सू० सा० ७।२।

७. उदाहरणों के लिए द्रष्टव्य : सूर की भाषा, पृ० १६६-१७०।

८. द्वारैं भीर गोप गोपिन की। सू० सा० १०।२१।

९. माथैं मुकुट। सू० सा० १०।१९।

१०. बतियाँ छिदि-छिदि जाति करेजैं। सू० सा० ३८४७।

११. तब सुरपति हरि सरनैं गयौ। सू० सा० ८।७।

१२. ब्रजहिं बसै आपहिं बिसरायौ। वही १६८७।

१३ हौं संग साँवरे के जैहौं। सू० सा०, पद १६६८। पुराने साहित्य में इसका पूर्व रूप / हउँ / भी मिलता है। प्रद्युम्न चरित्र, ७०२।

१४. जसुं रावण हारा तूं दई। छिताई वार्ता ४।६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तैं मेरी गेंद चुराई"[1] और "धन्य जसोदा धन्य तैं कौन पुन्य कीने।"[2] इसका अर्थ है 'तूने' जिस प्रकार संज्ञा की रूप रचना नासिक्य स्वर प्रत्ययों के आधार पर होती है उसी प्रकार सर्वनाम की भी होती है। उदाहरण के लिए नीचे उत्तम पुरुष एक० सर्वनाम की रूपतालिका प्रस्तुत है।

मैं~हौं 'मैं'
मैंहूँ,~मैं हुँ 'मैं भी'
मैं हीं,~हों हीं 'मैं ही'
मोंहीं, 'मुझको'
मेंरैं, 'मेरे यहाँ'
मोकौं,~मोकूं,~मोकँहँ, 'मुझको'
मोतैं,~मोसौं,~मोसूं,~मोसैं, 'मुझसे'
मोहि, महियाँ,~मोहि, माँझ ~मोमैं, 'मुझ में'
अन्य सर्वनामों की सानुनासिक रचना का इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

२.५.६.४. विशेषण रचना

कुछ विशेषणों में अकारण अन्त्य स्वर विवृत और नासिक्य हो जाते हैं। जैसे। छठैं।[3] 'छठवें' । थोरैं।[4] 'थोड़े', । सूनैं[5]। 'सूने'। यह सानुनासिक विकृति संभवत: विभक्तियों के घुल-मिल जाने का परिणाम है।

बलात्मक सानुनासिक प्रत्यय ।-हुँ। तथा ।-हिं। हैं। । एकहुँ आँक।, । आठहुँ सिधि।, । अतिहिं पुनीत। चार हूँ जुग।, आदि प्रयोग सूर साहित्य में मिलते हैं।[6]

[-औयों] प्रत्यय वाले विशेषण भी ब्रजी की विशेषता है। क्रिया धातु या नाम धातु के साथ संलग्न होकर ये विशेषणों की रचना करते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :[7]

√ढरक्-+ [औंयौं]√औंह्यौं।=। ढरकौंयौं।~। ढरकौह्यौं। 'ढालू'
√हँस्-+ [औंहे] । हँसौंहे। 'हंसते हुए'
√ललच्-+[औंहे]=। ललचौंहे। 'ललचाते हुए'
√लज्-+[औंहीं]=। लजौंहीं। 'लज्जाशील'

सूर में यह प्रयोग अत्यन्त मधुर है : 'बतियाँ तुतरौंहीं।'[8] 'नैन लजौंहैं'[9]

---

१. कुंभनदास, विद्याविभाग, काँकरौली, पद १४०।
२. नंददास, अष्टछाप परिचय, पृष्ठ ३२६, पद ३८।
३. छठैं मास इन्द्री प्रगटावैं। सू० सा० ३।१३।
४. सुत बांधति दधि माखन थोरैं। वही १०।३४४।
५. गये स्याम ग्वालिनि घर सूनैं। वही १०।३१७।
६. सूर की भाषा, पृ० ३००-३०१।
७. मथुरा जिले की बोली, पृष्ठ १८९।
८. सू० सा० १०।२९४। ९. वही।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विशेषणों की एक संरचना यह मिलती है : धातु+[-ऐंम्-]+[-आ ए ई]=विशेषण। [-ऐंम्-] के प्रभाव से अन्त्य।आ। भी सानुनासिक हो जाता है।

√कतर्-+[-ऐंम्-]+[आ]=। कतरैंमाँ। 'कटा हुआ'

√ढर्-+[-ऐम्-]+[आ]=। ढरैंमाँ। 'ढलवाँ'

√चढ़्-+[-ऐंम्-]+[-आ]=। चढ़ैंमाँ। 'चढ़े हुए'

इन विशेषणों का प्रयोग दोनों लिंगों के विशेष्यों के साथ हो सकता है।

२.५.६.५. क्रिया की रूप रचना

क्रिया की संरचना में प्रयुक्त होने वाले सानुनासिक प्रत्ययों की तालिका इस प्रकार है :

[-ईँ]—वहु० स्त्री० वर्त० कृदन्त : । चीततिं।[१] 'चीततीं हैं।'

[-ईं]—वहु० स्त्री० भूत० कृ० : ।उपजीं।,[२] । गवनीं।[३] 'गई'।

[-उँ]—संभावनार्थ : । देंउँ। 'दूं'

[-ऊँ]—उत्तम० एक० संभावना : । जिवाऊँ।[४] 'खाना खिलाऊँ'

[-ऐं]—अन्य० वहु० वर्त० अनिश्चय : । स्रवैं।[५] 'स्रवित होती हैं।'

संहरैं, 'संहार करते हैं।' पूर्वकालिक कृदन्त : । निसि भरों। 'रात होने पर' आदि।

[-ओं]—भूतकालिक प्रत्यय का प्रयोग । -न्-। के पश्चात् होता है : ।दीन्हों।~। दीनों। 'दिया'

[-औं]—संभावित रूपों की रचना में प्रयुक्तः । करौं।[६] तथा । पसारौं।[७] 'पसारूँ'

[-हिं]—वर्त० अनिश्चय । देहिं।[८] 'देती हैं'।

[-हौं]—भविष्य संरचना में प्रयुक्त । जैहौं।[९] 'जाऊँगी'

उत्तम० वहु० तथा अन्य० वहु० में । जैहैं। जैहे रूप मिलते हैं।

यह सहायक क्रिया भी है :। लागत हौं।[१०] 'लगती हूँ। । ऊँ। तथा । औं। वाले रूपों में स्वतंत्र वैविध्य मिलता है। साहित्य की प्रवृत्ति । औं। वाले रूपों की ओर है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजी की रूप रचना में सानुनासिक तत्व मुखर और

---

१. सू० सा० १०।३२

२. वही ४।४।

३. वही १०।३२।

४. वही ८।८।

५. वही १०।३०।

६. 'कहा करौं मोसौं कहौ सबहीं' सू० सा०, प्रथम भाग, १४२३।

७. सू० सा० १०३७।

८. वही ५।३।

९. हौं सँग साँवरे के जैहौं। सू० सा०, भाग-१, १६६८।

१०. तेरे माई लागत हौं री पैयाँ। चतुर्भुज दास, अष्टछाप परिचय, पृ० २८६, पद ४७।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रमुख है। यह तत्व ब्रजभाषा के माधुर्य के लिये बहुत कुछ उत्तरदायी है। क्रिया विशेषणों की सानुनासिक रचना पर पहले विचार किया जा चुका है।

३. माधुर्य : व्यंजन स्तर

यह सत्य है कि किसी भाषा की मधुरता और कोमलता का मापदण्ड स्वर ध्वनियाँ होती हैं, क्योंकि स्वरों में श्वास प्रवाह निर्बाध रहता है, और कुछ परिस्थितिजन्य अपवादों को छोड़कर स्वर के उच्चारण में अनिवार्यतः घोषतत्व रहता है। इसके फलस्वरूप उसकी नादात्मकता व्यंजन से अधिक होती है। इसके अतिरिक्त यह भी सर्वमान्य है कि व्यंजनों की अपेक्षा स्वरों में मुखरता (Sonority) भी अधिक होती है।[१] पिछले विवरण से यह स्पष्ट होता है कि स्वरों एवं नासिक्य स्वरों के बाहुल्य के कारण ब्रजी में मुखरता और संगीतात्मकता पर्याप्त मात्रा में है। व्यंजन के विकास की भी कुछ ऐसी स्थितियाँ ब्रजभाषा में परिलक्षित होती हैं, जिनके कारण इसका माधुर्य सिद्ध हो जाता है।

कोमलता और मधुरता की दृष्टि से संस्कृत के आचार्यों ने व्यंजनों की भी कोटियाँ की हैं। इनको दृष्टि में रखते हुए ब्रजभाषा के व्यंजन स्तरीय माधुर्य को देखना प्रबंध के इस विभाग में अभीष्ट है।

३.१. व्यंजन लोप

यह विकासविधि मध्यकाल में ही पर्याप्त स्थान बना चुकी थी। इसीलिए प्राकृतों को गीति काव्य के लिये अधिक उपयुक्त भी कहा गया था। ब्रजभाषा में भी एक सीमा तक वही परंपरा जीवित है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यंजनों की कठोरता कम होती है, भाषा स्वर-बहुल बनती है, और कठोर माने जाने वाले संयुक्त व्यंजन भी समाप्त हो जाते हैं।

कभी-कभी तो व्यंजन पूर्णतः लुप्त हो जाता है जैसे—समुद्र > समद। अधिकांश उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें व्यंजनों के स्थान पर पहले अर्धस्वर। य।, । व। आते हैं और पीछे इनका विकास क्रमशः । इ। और । उ।[३] में हो जाता है। इस प्रकार के उदाहरण 'प्राकृत पैंगलम्' में भी मिलते हैं।[४] जैसे—भेउ (२२०।२ भेव < भेद) आउ (५५२।४ < आव < आयाति), ठाउ (२३६।५ ठावँ < ठाभ < स्थान); < पसाउ (२५७।६ < पसाव < प्रसाद) घाउ (५०४।२ < घाव < घातः)। संदेश रासक में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। उपर्युक्त शब्द ब्रजी के साहित्यिक एवं क्षेत्रीय रूप में मिल जाते हैं।

---

१. द्रष्टव्य : प्रस्तुत प्रबंध २.५.२.२।

२. डेनियल जोन्स, एन आउटलाइन आफ इंग्लिश फोनेटिक्स (कैम्ब्रिज १९५०, पृ० ५४)।

३. । व > उ ब्रजी की विशेष प्रवृत्ति है। डॉ० चाटुर्ज्या, वर्ण रत्नाकर, पैरा-१८। यह विशेषता प्रारंभिक मैथिली की भी है। संदेस रासक और ब्रजी में यह प्रवृत्ति समान रूप से मिलती है। हरिवल्लभ मायाणी संदेश रासक की भूमिका, पैरा-३३। पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं की भी यह विशेषता है (वर्ण रत्नाकर पैरा-१८)।

४. डा० शिवप्रसादसिंह, सू० पू० ब्रजभाषा और साहित्य, पृ० १०२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्यंजन के स्थान। य ~ इ । हो जाने के कुछ उदाहरण ये हैं : पसाइ ~ पसाय < प्रसाद, पयालि < पाताल, सयल > सकल, सायर < सागर, अमिय < अमृत; हिय < हृदय, राय < राज।

। व। व्यंजन या तो । उ । में परिवर्तित हो जाता है अथवा लुप्त हो जाता है। वैसे प्रथम रीति ही अधिक प्रचलित रही है। कभी-कभी संयुक्त रूपों में भी व > उ की प्रवृत्ति मिलती है : स्वरूप > सुरूप[1] य > इ के पश्चात् स्वर संकोच की प्रवृत्ति से विवृत्त स्वर भी हो जाता है : जय > जइ > जै; भय > भइ > भै आदि।

३.२. व्यंजनों का मृदुलीकरण

३.२.१. मूर्धन्य ध्वनियों का विकास : जैसा कि पहले देखा जा चुका है, संस्कृत काव्यशास्त्र में मूर्धन्य ध्वनियों को कठोर कहकर उनको मधुर संदर्भों में त्याज्य ठहराया गया है। ब्रजभाषा में इन ध्वनियों का विकास कोमल ध्वनियों में होता है।

क. ण > न––यह प्रवृत्ति ब्रजी को प्राकृत और अपभ्रंश से अलग करती है। ब्रजी में ण की ध्वनि-ग्रामीय स्थिति समाप्त ही हो गयी।[2] राजस्थान के कुछ ब्रजभाषा कवियों में मूर्धन्य नासिक्य प्रचलित रहा।[3] कहीं-कहीं स्थानीय विशेषता के रूप में भी इसकी स्थिति है।[4] किंतु ब्रजभाषा के साहित्य से इसका पूर्ण वहिष्कार कर दिया गया है। यहाँ गनपति (गणपति) सरन (शरण), मानिक (माणिक्य) वीन (वीणा) गुन (गुण) आदि ही सुनाई पड़ते हैं।

ख. ड > र––खोरि < प्रा० खोडि; चूरौ < प्रा० चूडल्लउ; ऊजर < उज्जड; झार < झाड़; खरी < खड़ी; जोरि < जोड़ि; पर्‌यौ < पड्‌यौ ~ पड़ा; वीरा < वीड़ा < वीटिका; थोरौ > थोड़ा > थोडइ स्तोक, करोर < करोड़ < कोटि; फारइ < फाडइ; दारिम < दाड़िम आदि में ड ~ ड़ > र की प्रवृत्ति मृदुलीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

ग. ट > र––भट > भर; कर्‌हाइ√करहैया < कटाह।

घ. ठ > ढ़ ––मठ > मढ़। मड़ैया भी इसी से विकसित प्रतीत होता है।

ङ. ष > स––भूषण > भूसन; भीष्म > भीसम आदि।

इस प्रकार मूर्धन्य ध्वनियों का विकास ब्रजी में माधुर्यानुकूल हुआ है। पूर्वी क्षेत्र की विहारी और वंगाली भाषाओं से विकास की इन दिशाओं का साम्य है।

३.२.२. मं > वँ––इस विकास में । म।, । व। और अनुस्वार के रूप में विभाजित हो जाता है। इससे व्यंजन का मृदुलीकरण और वातावरण की अनुनासिकता में वृद्धि होती है: कँवलु < कमलम्; भँवइ < भँमइ < भ्रमति; साँवरो < श्यामल; भँवर < भ्रमर।

३.२.३. ल > र––बंगाली में इसके विपरीत र > ल की प्रवृत्ति मिलती है किंतु विहारी आदि बोलियों

---

१. परमानंद सागर, २०४।

२. डा० चाटुर्ज्या उक्ति व्यक्ति स्टडी पैरा-२२; ब्रजभाषा (डा० धीरेन्द्र वर्मा, पैरा-१०५)।

३. सूर्यमल्ल के वंशभास्कर में इसका प्रयोग सर्वत्र तो नहीं पर कहीं-कहीं तत्समों के आग्रह, अपभ्रंश शैली के प्रयोग या राजस्थानी की प्रकृति के कारण मिल जाता है।

४. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा पैरा-१०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मेंल>रही है। वास्तव में। र। का उच्चारण पुराने समय में मूर्धा से ही माना जाता था।[१] पीछे इसका विकास दन्त्य-वर्त्स्य माना गया।[२] यह विकास मूर्धन्य के मृदुलीकरण से ही संबद्ध है।[३] संस्कृत काव्यशास्त्र में रेफ का उच्चारण तो कठोर माना गया है किंतु। र। का सामान्य उच्चारण कठिन नहीं है। । ल। का एक कठोर उच्चारण भी काव्यशास्त्र में उल्लिखित है। इसी काव्यशास्त्रीय संदर्भ में। ल्। की अपेक्षा। र। का उच्चारण कोमल माना जा सकता है।

ब्रजी में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं : आमरौ<आमलक ओखरी<प्रा० ओक्खल; रावर~राउर<रावल<राजकुल; आरसु<आलस्य; हिवारौ<हिमालय। सूर की 'बातन भुरइ राधिका भोरी' पंक्ति में मुख्य सौंदर्य ल>र का है।

३.२.४. व>ब—ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है। शिक्षाग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है।[४] आधुनिक बोलियों में ही नहीं, संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्य और अभिलेखों में भी इस प्रवृत्ति के प्रमाण मिलते हैं।[५] आज यह प्रवृत्ति पूर्वी भारत की भाषाओं और बोलियों में मिलती है।[६] पश्चिमी क्षेत्र की कुछ बोलियों में। व। ध्वनि कुछ सुरक्षित है।[७] उत्तर पश्चिम में इस विकास का नितांत अभाव नहीं है।[८] भौगोलिक वितरण के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस प्रवृत्ति का संबंध केवल पूर्वी क्षेत्र की मध्यकालीन भाषाओं से जोड़ा था किंतु परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति सर्वत्र मिलती है।[९]

ब्रजभाषा की यह प्रवृत्ति पूर्णतः अपवाद रहित है। पश्चिमी या परिनिष्ठित हिन्दी में। व। की ध्वनि सुरक्षित है। ब्रजी बुंदेली और कनौजी इस प्रवृत्ति की दृष्टि से समान हैं। एक प्रकार से ब्रजी पश्चिमी और पूर्वी व>ब प्रवृत्ति वाली भाषाओं के बीच एक कड़ी है।

ध्वनि का यह विकास मृदुल और मधुर है या नहीं इसका कोई वस्तुपरक प्रमाण तो नहीं है। इसके विपरीत काव्यशास्त्र में ओष्ठ्य वर्ग की ध्वनियों को कोमल नहीं माना गया है। किंतु यह तो निश्चय कहा

---

१. पाणिनीय शिक्षा का विवरण इसी प्रकार का है। डा० सिद्धेश्वर वर्मा, क्रिटिकल स्टडीज इन द फोनिटिक अब्जर्वेशंस ऑफ इण्डियन ग्रामेरियन्स, पृ० ७।

२. यह प्रातिशाख्यों का मत है। (वही)।

३. यह भी ब्रजी की एक प्रमुख विशेषता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, पैरा-१०९।

४. शिक्षा संग्रह, बनारस संस्कृत सीरिज (१८९३) माण्डवी शिक्षा।

५. It is now well known that this change of initial 'v' into 'b' has occured in several modern dialects. But the Phenomenon has occured even in the classical Skt., inscriptions of Gupta-Period.

(डा० सिद्धेश्वर वर्मा, फोनेटिक आब्जर्वेशन्स ऑफ इण्डियन ग्रामरियन्स, पृ० १३०)।

६. उड़िया, बिहारी, बंगाली में व>ब की प्रवृत्ति स्पष्ट और निरपवाद है।

७. सिन्धी लहंदी, गुजराती और मराठी में इसकी सुरक्षा मिलती है।

८. डोगरी, मगरवाही, पश्चिमी पहाड़ी में व>ब विकास के चिह्न मिलते हैं।

९. स्वयंभू रामायण ३१।३; पुष्पदंत, आदि पुराण २३०।३१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जा सकता है कि । व । की अपेक्षा । व । का उच्चारण सुकर है। वच्चा भी । व । का उच्चारण पीछे सीखता है, और । व । का आरंभ में ही सीख लेता है।

३.२.५. य > ज

इस प्रवृत्ति की दृष्टि से भी पूर्वी अंचल की भाषा-बोलियों के समीप है। कुछ संयुक्त रूपों या भूत-कालिक कृदंतों[1] को छोड़कर शेष स्थितियों में । य । का । ज । में परिवर्तन हो जाता है। जैसे : जस < यश, कारज < कार्य, जवन < यवन, सुजस < सुयश आदि।

। य । की अपेक्षा । ज । ध्वनि भी सुकर और कोमल दिखलाई पड़ती है।

३.२.६. श > स

इस प्रवृत्ति को पश्चिमी अपभ्रंश बोलियों की विशेषता मानकर, इसे पूर्वी और पश्चिमी बोलियों की विभाजक रेखा के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। पूर्वी बोलियों में स, ष > श की प्रवृत्ति मिलती है किंतु विहारी बोलियाँ इस प्रवृत्ति की दृष्टि से ब्रजी के ही समीप हैं। कुछ विद्वान इसको पूर्वी और पश्चिमी की भेदक प्रवृत्ति न मानकर परिनिष्ठित अपभ्रंश में श > स की प्रवृत्ति को ही मुख्य मानते हैं। "यद्यपि दोहा कोशों और चर्यापदों की भाषा में 'श' ध्वनि का अस्तित्व पाया जाता है, तथापि इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि यह उन ग्रंथों की भाषा की विशेषता है, क्योंकि इस नियम का पालन सर्वत्र नहीं किया गया है। जहाँ कहीं क्षेत्रीय प्रभाव है वहाँ ष, श > स पाया जाता है, अन्यथा इन तीनों के स्थान पर 'स' (परिनिष्ठित अपभ्रंश परम्परा के अनुसार) कर दिया गया है और कहीं तीनों का अस्तित्व पाया जाता है।"[2] ब्रजभाषा के सम्पूर्ण साहित्य में यह प्रवृत्ति निरपवाद रूप से प्राप्त होती है।

काव्य शास्त्र में । स । ध्वनि मधुर संदर्भों के लिए अधिक उपयुक्त मानी गयी है। इसलिए विकास की इस प्रक्रिया को सौंदर्यतात्विक महत्व प्राप्त हो जाता है। आसा < आशा; ससि < शशि; निसिकर < निशि-कर; अतिसय < अतिशय जैसे शब्दों के कारण ब्रजभाषा की व्यंजन विधि मधुर हो जाती है।

३.२.७. सघोषीकरण

अघोष ध्वनियों की अपेक्षा सघोष ध्वनियाँ अधिक कोमल और मधुर मानी जाती हैं। ब्रजभाषा में अघोष ध्वनियों का परिवर्तन न्यूनाधिक रूप में सघोष ध्वनियों में हो जाता है।

क > ग के उदाहरण ये हैं : सगुन < शकुन, सुग्गा ~ सुग ~ सुआ < शुक; लोग < लोक; भगत < भक्त, सिगरे < सकल, प्रगट ~ परगट < प्रकट।

ट > ड ~ ड़ ~ र के उदाहरण ये हैं : घोड़ा ~ घोरा < घोटक; अखाड़ौ ~ अखारौ < अक्षवाट।

छ > ज ~ झ के उदाहरण ये हैं : बूझना = पूछना (पृच्छ) जूठौ < उच्छिष्ट। इन उदाहरणों से प्रवृत्ति का संकेत मिलता है।

---

१. राख्यौ, दयौ, (ज्यों, त्यों = क्रि० वि०)।

२. जगदीश प्रसाद कौशिक, अपभ्रंश भाषा के क्षेत्रीय भेद : समस्या और समाधान, ना० प्र० पत्रिका वर्ष ७०, अंक-२, पृ० ९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

३.३. संयुक्त व्यंजन > असंयुक्त व्यंजन

काव्य शास्त्रीय संधारणा के अनुसार संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ कोमल और मधुर अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में बाधक बनती हैं। केवल नासिक्य ध्वनियों से संयुक्त रूप कुछ कोमल माने गये थे। मध्यकालीन भाषाओं में जहाँ संस्कृत के स्वर मध्यग व्यंजनों के लोप की प्रवृत्ति मिलती है, वहाँ संयुक्त व्यंजनों की समाप्ति की प्रवृत्ति भी कम सशक्त नहीं रही।

आरंभिक पिंगल में प्राकृताभास के लिए या संदर्भगत आवश्यकता के अनुसार संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। शैलीगत यह वैशिष्ट्य परवर्ती साहित्य में भी मिल जाता है। 'वंशभास्कर' की भाषा में प्राकृत मिश्रण की सचेतन प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप संयुक्त व्यंजनों वाले रूप मिल जाते हैं। शुद्ध ब्रजदेशीया को संयुक्त वर्णों से कवि ने सयत्न बचाया है। प्राकृत मिश्रित ब्रजी में ये रूप आये हैं : लग्गे 'लगे', वज्जरन, अट्ठ, चउत्थी, सज्ज, लक्कत, हक्कत, फतमल्ल, अप्पमल्ल आदि।' इन सारे प्रयोगों को सचेतन शैली प्रक्रिया से संबद्ध करके ही देखना चाहिए। जहाँ प्राकृताभास उपस्थित होता है, वहाँ छप्पय छंद ही सबसे अधिक जमा है।[१]

कुछ शब्दों में संयुक्त वर्णों और असंयुक्त वर्णों के बीच स्वतंत्र वैविध्य भी मिलता है : पुकार ~ पुक्कार, एक ~ इक ~ इक्क; चौथी ~ चुत्थी छ ~ छट्ठी, सात ~ सत्त, आठ ~ अट्ठ, लाख ~ लक्ख। संयुक्त वर्ण प्रायः समीकरण वाली पूर्व स्थिति के हैं।[२] इनका प्रयोग शैली की दृष्टि से ही हुआ है।

३.३.१. आदि स्थित संयुक्त व्यंजन

पद के आरंभ में केवल [य], [व] से संयुक्त रूप मिल सकते हैं,[३] अन्य संयुक्त रूप व्यंजन-लोप की प्रक्रिया से समाप्त कर दिये जाते हैं। स्पर्श > परस, भ्रमर > भंवर, प्रिय > पिय आदि उदाहरणों से यह प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

ऋ का उच्चारण। र। के समान हो गया था। इसलिये इस मात्रा से युक्त आदि स्थित व्यंजन को स्वरागम की पद्धति से सामान्य कर दिया गया। नृत्यत, > निरतत, हृदय > हिरदै में यही प्रवृत्ति दिखलाई पड़ रही है। त्रिया > तिरिया, प्रवीण > परवीन, शुद्ध। र। से संयुक्त रूपों के विकास के उदाहरण हैं।

पद के आदि में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन को निरस्त करने की एक और पद्धति आदि स्वरागम है। अस्तुति < स्तुति; अस्नान < स्नान इसी < वृत्ति के द्योतक हैं। इससे भी ब्रजी की स्वर-बहुलता में वृद्धि होती है। साथ ही संयुक्त व्यंजन की आदि स्थिति भी समाप्त हो जाती है।

आदि में भी स्वर भक्ति के उदाहरण मिलते हैं : परस < स्पर्श; दुआर ~ दुवार < द्वार।

३.३.२. स्वर मध्यग संयुक्त व्यंजन :

स्वर-मध्यग संयुक्त व्यंजन को समाप्त करने की तीन प्रविधियाँ मिलती हैं : मध्य स्वरागम या स्वर-भक्ति, सरलीकरण और नासिक्य व्यंजन का सानुनासिकता में विकास।

---

१. वंशभास्कर ३१५३।२२, ४०६।२६।

२. कट्टि, दुग्ग, हत्थ, कज्ज।

३. ग्यारह, स्वाद आदि। स्वप्न > सपना में इसके प्रति भी असहिष्णुता प्रकट होती है। स्वर्ग > सुरग ~ सरग भी ऐसा ही उदाहरण है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

३.३.२.१. मध्य स्वरागम

इस प्रक्रिया के दो सौंदर्यतात्त्विक परिणाम निकलते हैं : संयुक्त व्यंजन को कर्कशता से भाषा की मुक्ति और भाषा की स्वर-बहुलता में वृद्धि। प्राचीन काल के ध्वनिविद् भी इस प्रवृत्ति का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। मध्यकाल में आकर यह प्रवृत्ति प्रमुख हो गई। ब्रजभाषा तक यह प्रवृत्ति निरंतर वर्द्धमान रही

क. र~ल+संघर्षी

इस परिस्थिति में स्वर भक्ति की स्थिति संस्कृत ध्वनिवदों ने भी स्वीकार की है।[१] पालि और प्राकृत में र+व्यंजन का विकास समीकरण के भी आश्रित रहा[२] और स्वर भक्ति के भी।[३] पालि में प्राय: समीकरण ही मिलता है।[४] । अ । ~ । इ । का आगम होता था।[५] इस प्रकार संघर्षी ध्वनियों से पूर्व स्वरभक्ति होना भारतीय भाषाओं में नियमित सा रहा।[६] स्वरभक्ति का स्वर । ऐ । के समान भी उच्चरित माना गया है।[७] हो सकता है इसी का विकास । इ । में हो गया हो। संभवत: ह्रस्व स्वर । अ ।, । इ ।, तथा । उ । के द्वारा स्वर-भक्ति सम्पन्न होती थी। प्राकृत युग में । ह । के पूर्व । अ । और । स । के पूर्व । इ । अधिक आते हैं।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जब रेफ युक्त व्यंजनों को कठोर मानने का लक्षण दिया तो संभवत: उनकी दृष्टि में यही विकास प्रवृत्ति लक्षित रही होगी। ब्रजभाषा में । अ । के आधार पर स्वरभक्ति सम्पन्न हुई है। जैसे : वर्ष > बरस; दर्शन > दरसन।

ख. र्+स्पर्श व्यंजन

मारगि[८] < मार्ग; पूरन < पूर्ण; बरन < वर्ण; पर्ण < परन[९] दुरदैव < दुर्दैव; आयुरबल[१०] आयुर्बल। बोलचाल में 'मार्ग' का । मारिगु। भी मिलता है। और सूरकालीन ब्रजभाषा में । मारग । भी : 'काहे को रोकत मारग सूधौ।'

ग. स्पर्श+संघर्षी

अप्सरा > अपछरा[११]; उत्साह > उतसाह; (उछाह भी)

घ. संघर्षी+स्पर्श

भीष्म > भीसम ~ भीषम; कृष्ण > किसन।

---

१. तैत्ति० प्रातिशाख्य २१।१५; अथर्व प्राति० १।१०२; वाजसनेयी प्राति० ४।१७। उदाहरण : दर्श-> दरिश, अर्हा > अरिहा।

२. गर्जति > गज्जति; गर्दभ > गद्दभ; गर्भ > गब्भ।

३. वर्ष > बरिष; कर्ष > करिष; अर्हत् > अरिह।

४. दर्शन > दस्सन।

५. यह प्रवृत्ति मुख्यत: र+ह की स्थिति में मिलती है।

६. डा० सिद्धेश्वर वर्मा : फोनिटिक ऑबजरवेशंस आफ इंडियन ग्रैमेरियन्स, पृ० १३४।

७. केशवी शिक्षा, प्रतिज्ञा सूत्र २।३। दर्शतम् > दरेशतम्।

८. लक्ष्मण सेन पद्मावती कथा-६१।

९. परमानंद सागर २०२।

१०. छिताई वार्ता-८। ११. छिताई वार्ता-१३१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ड. स्पर्श+स्पर्श

मुगती[१] ~ मुकति,[२] सबद शब्द आदि।

च. स्पर्श+नासिक्य

जतन < यत्न; सपनो < स्वप्न; पदमावति[३] पद्मावती; बिधन < विघ्न; अगिनी < अग्नि; मगन[४] < मग्न।

छ. स्पर्श+पार्श्विक

सुकल[५] शुक्ल।

इस प्रकार स्वर मध्यग संयुक्त व्यंजनों को स्वर भक्ति की पद्धति से असंयुक्त कर दिया जाता है। इस पद्धति का सौंदर्यतात्विक महत्व सर्वस्वीकृत है।

३.३.२.२. संयुक्त व्यंजन > समीकृत व्यंजन > सरलीकृत व्यंजन

पहले संयुक्त व्यंजन को समीकरण की पद्धति से द्वित्व अथवा दीर्घ व्यंजन के रूप में विकास-दिशा मिली। जब ध्वन्यात्मक वैषम्य का संक्रमण समत्व में हुआ, तब स्थिति कुछ मृदुल अवश्य हुई, चाहे व्यंजन लोप के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्वर बहुलता और स्वर शृंखला में प्राप्त मृदुलता से यह कम हो। व्यंजन की दीर्घता (द्वित्व) की अपेक्षा स्वरों की दीर्घता अधिक रुचिकर है। आगे के विकास क्रम में सरलीकरण की प्रवृति ने दीर्घ व्यंजनों को ह्रस्व और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को प्रायः दीर्घ कर दिया। समीकरण जन्य द्वित्व व्यंजन में लुप्त व्यंजन का स्मारक रहा। किंतु सरलीकरण जन्य स्वर के दीर्घीकरण में लुप्त व्यंजन का वह स्मारक भी समाप्त हो गया। इस प्रवृत्ति के बीज तो अपभ्रंश में ही जम गये थे पर इसका पूर्ण प्रतिफलन बारहवीं शती के पश्चात् विकसित होने वाली ब्रजी जैसी बोलियों में हुआ।

पश्चिमी क्षेत्रों में समीकरणजन्य व्यंजन द्वित्व कुछ-कुछ बना रहा।[६] किंतु पूर्व की ओर चलने पर सरलीकरण सामान्य नियम बनता जाता है। ब्रजी में सरलीकरण का ही नियम है। इस दृष्टि से यह पूर्वी क्षेत्र के समान है। प्राकृत पैंगलम् जैसी पुरानी रचना में सरलीकृत रूप पर्याप्त मिलते हैं।[७]

---

१. छीहल बावनी-४।

२. मुकति आये मंदे में मेली। सूर।

३. प्रद्युम्न चरित-४।

४. परमानंद सागर २०५, ६।

५. वही, २०८।

६. डा० चाटुर्ज्या, : "हिन्दी में हमें काम, हाथ, कल, सच कुछ, नथ, रत्ती, चद्दर, उम्मेद आदि रूप मिलते हैं, जब कि उन्हें भाषा नियम के अनुसार काल, साच कूछ, नाथ, राती, चादर तथा उमेद होना चाहिए था, किंतु अंतिम शब्दों में व्यंजन-द्वित्व सुरक्षा का मूल कारण पंजाबी का प्रभाव है।" (भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ १२४)।

७. आछे (४६२।२, < अच्छइ < अक्षति) करीजे (४०२।२, < करिज्जइ < क्रियते) चाम (४३९।-२, < चर्म आदि रूप इसके उदाहरण हैं। साहित्यिक ब्रजी में भी ये प्रचलित हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सरलीकरण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं : जूठो < *जुष्ट < उच्छिष्ट; बूढ़ो < बुड्ढ < वृद्ध; तासु < तस्य; फागु < फग्गु; काज < कज्ज < कार्य; कीजइ < किज्जइ < क्रियते। जुत < युक्त जैसे शब्दों में पूर्ववर्ती स्वरों का दीर्घीकरण भी नहीं हुआ।

३.३.२.३. नासिक्य+अन्य व्यंजन > ँ + व्यंजन

संस्कृत के काव्यशास्त्र में इस प्रकार के संयोग (नासिक्य+व्यंजन) को अन्य संयुक्त रूपों से मधुर माना गया है। किंतु ब्रजभाषा में इस नासिक्य व्यंजन के स्थान पर शुद्ध सानुनासिकता आ जाती है, जो पूर्ववर्ती स्वर के दीर्घीकृत या सामान्य रूप के साथ संलग्न हो जाती है। यह मधुरता की दिशा में आगे का कदम ही है। इस प्रकार के संयुक्त रूपों के प्रथम नासिक्यांश को अनुस्वार कहकर बिंदी से व्यक्त कर दिया जाता किंतु वास्तव में अनुस्वार ऊष्म और अंतस्थ ध्वनियों के पूर्व ही आता है।[1] शेष स्थितियों में वह वर्गीय व्यंजन ही है। इस वर्गीय व्यंजन का विकास अनुनासिकता में होता है। जिस स्वर के साथ यह अनुनासिकता संबद्ध होती है, उसका दीर्घीकरण अनिवार्य नहीं वैकल्पिक है। उदाहरण ये हैं : वंशी > बाँसुरी, पंक्ति > पाँति, पण्डित > पाँड़े, इनमें स्वर का दीर्घीकरण भी है। गोविन्द > गोविंद, रंग > रँग, नन्द > नँद जैसे उदाहरणों में स्वर का दीर्घीकरण नहीं हुआ।

३.४. संयुक्त ध्वनि > असंयुक्त ध्वनि

क्ष > छ। ख : क्षत्री > छत्री; नक्षत्र > नछत्र, यक्ष > जच्छ; क्षत्री > खत्री, रक्षपाल > रखवारौ; वृक्ष > रुख आदि। त्य > च; मृत्यु > मीचु। ध्य > झ : युद्धय > जुज्झ > जूझ; सन्ध्या > संझा ~ साँझ ~ संजा। त्स > छ: उछंग ~ उच्छंग उत्संग।

उपर्युक्त विवेचन से ब्रजभाषा का माधुर्य के ध्वन्यात्मक आधार का स्पष्टीकरण हो जाता है। इस माधुर्य का कारण केवल यह नहीं है कि ब्रजी में मधुर संदर्भ अधिक रूपायित हुए हैं। ब्रजी की ध्वन्यात्मक प्रकृति का विकास भी इस प्रकार हुआ कि यह मधुर संदर्भों की संवाहिका बन सकी। विकास की कुछ सरणियाँ तो प्राकृत अपभ्रंश युग की हैं और कुछ आगे बढ़ कर ब्रजभाषा को और अधिक मधुर-सुकुमार बना देती हैं। नासिक्य व्यंजनों का सानुनासिक स्वरों में अर्द्ध-संवृत स्वरों का अर्द्ध विवृत स्वरों में विकास भी मधुरतर है। प्राकृतों में मूर्द्धन्य ध्वनियों का बाहुल्य माधुर्य की अभिव्यक्ति को बाधित करता था। ब्रजी में मूर्द्धन्य व्यंजनों का भी मृदुलीकरण हुआ। द्वित्व व्यंजनों के बाहुल्य के कारण प्राकृतों का वातावरण सरल-सुंदर नहीं था। ब्रजी ने इस वातावरण को भी सरल कर दिया। इस प्रकार ब्रजी में माधुर्य की अभिव्यंजना के लिए उपयुक्त प्रविधियाँ स्वत: विकसित हुईं। ब्रजी के ध्वन्यात्मक विकास की कुछ प्रवृत्तियाँ पूर्वी अंचल की भाषा-बोलियों के समीप हैं। कई शताब्दियों तक ब्रजभाषा अपने स्वाभाविक माधुर्य के कारण ऐहिक शृंगार और पारलौकिक माधुर्य के माध्यम के रूप में गृहीत रही।

---

१. Emereau, The Nasnal Phonemes of sanskrit, (Language, 22, 1946) Allen Phonetics in Ancient India, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ९४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज-गौरव : ग्वालकवि

डॉ० भगवान सहाय पचौरी
एम. ए., पी-एच. डी.

संस्कृत में सामान्यतः दो कोटि के आचार्य हुए : १. मौलिक उद्भावक और २. व्याख्याता। भरत, भामह, दण्डी आदि आचार्यों ने काव्य शास्त्र के विविध अंगों के सम्बन्ध में अपनी-अपनी मौलिक उद्भावनाएं की हैं। अतएव ये मौलिक उद्भावक आचार्यों की कोटि में आते हैं। मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि ने उपर्युक्त आचार्यों के प्रतिपादित सिद्धान्तों की व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। अतः ये आचार्यों की द्वितीय श्रेणी में गणनीय हैं। हिन्दी में बात कुछ और ही रही। हिन्दी के आचार्य कहे जाने वाले केशवादि कवियों ने मौलिक उद्भावनाएं तो की ही नहीं, अपने पूर्ववर्ती संस्कृताचार्यों द्वारा स्थापित सिद्धान्तों की व्याख्याएं करने में वे प्रायः असफल-असमर्थ रहे। अधिकांश हिन्दी कवियों ने काव्यशास्त्र के गूढ़-शुष्क-सिद्धान्त-प्रधान दुरूह विषयों को पूर्ण मनोयोग भी नहीं दिया। अंगुलियों पर गणनीय जिन कतिपय पंडितों ने इस विषय को तनिक गम्भीरता से ग्रहण भी किया, तो वे भी प्रायः उनकी तलस्पर्शी मार्मिक व्याख्याएं नहीं कर पाये। अतः हिन्दी में आचार्यों की एक पृथक् ही परिपाटी बनती है। एक तो वे आचार्य थे, जो संस्कृत के लक्षण-उदाहरणों के सीधे अनुवाद हिन्दी में रूपांतरित करते रहे। दूसरे वे जो लक्षण तो संस्कृत के शास्त्र पर आधृत लिखते रहे किन्तु उदाहरण अपने स्वतंत्र लिख-लिखकर अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन करते रहे। तीसरे आचार्य वे हैं जो संस्कृत ग्रन्थों के लक्षणों को आत्मसात् करते हुए इतिहास-परक और विमर्शात्मक विवेचन करते हुए अपने और पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरण देकर विषय को स्पष्टता और स्वच्छतापूर्वक व्याख्याएं देकर सुलझाते रहे। इन अन्तिम कोटि के कवियों ने पद्य को अपनी व्याख्या में जहाँ अस्पष्ट होते देखा तो गद्य के माध्यम से भी वस्तु-विषय को स्पष्ट करने की भरपूर चेष्टा की। वस्तुतः हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने कवि-शिक्षक होने की सार्थकता ही सिद्ध की। परन्तु जिन्होंने मात्र कवि-शिक्षक कर्म करके ही अपने आचार्य-कर्त्तव्य की इतिश्री न समझी और अतल गहराइयों में उतरकर सिद्धान्तों की परख की, मनोयोगपूर्वक व्याख्याओं के मौलिक मोती निकाल कर हिन्दी को प्रदान किए, वास्तव में वे ही हिन्दी के आचार्य कहलाने के अधिकारी हैं। इस सारणी में एक अग्रणी नाम है कुलपति मिश्र का। इन्होंने गद्य को भी व्याख्या का माध्यम बनाकर कुछ गहरी डुबकियाँ लगाईं। इसी परम्परा को भिखारीदास ने अग्रसर किया। ग्वाल ने इसी परम्परा में सर्वाधिक गहराइयों में उतर कर विस्तृत गद्य व्याख्याएं दीं, इतिहास सम्मत प्राणवान विमर्श दिये और हिन्दी के ही नहीं संस्कृत के भी सर्वमान्य आचार्यों एवं व्याख्याकारों के सिद्धान्तों को आत्मसात करते हुए अपने स्वतंत्र तर्कसम्मत मतों की उपस्थापनाएं कीं। उपेक्षित लक्षण ग्रन्थों को भी वे प्रथम बार अपने पांडित्यपूर्ण विवेचन में स्थान दे पाये और इस प्रकार हिन्दी काव्य शास्त्र को अद्यतन स्वरूप प्रदान करने का श्रेय मिलता है महाकवि ग्वाल को।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस कवि के ग्रन्थों की अनुपलब्धता ने हिन्दी काव्यशास्त्र की अधुनातन उपलब्धियों पर जो परदा डाल रखा था, वह आज उठ गया है। ग्वाल साहित्य के अनावृत होने पर हिन्दी काव्यशास्त्र का पुर्नमूल्यांकन आज की आवश्यकता बन गई है। अतएव सूत्र रूप में यहाँ ग्वाल के आचार्यत्व का मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता है।

एक आचार्य के दुर्वह-दुरूह कर्म का निर्वाह करने की ग्वाल में कितनी प्रतिभा, क्षमता और निपुणता थी, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसने रीतिशास्त्र पर ही पूरे छै ग्रन्थ लिखे—१. रसिकानन्द [१८७९ वि०], २. रसरंग [सं० १९०४ वि०], ३. बलवीर विनोद [सं० १९०४ वि०], ४. कवि दर्पण [सै० १८९१ वि०], ५. प्रस्तार प्रकाश [सं० १९०३ वि०] और ६. साहित्यानन्द [सं० १९०५ वि०]।

काव्यशास्त्र का कोई अंग ग्वाल के कार्यक्षेत्र की परिधि से बाहर नहीं रहा। अन्यान्य हिन्दी आचार्यों की भाँति चर्विति-चर्वण अथवा पिष्टपेषण की परम्परा का यहाँ निर्वाह नहीं हुआ। जो विषय एक ग्रन्थ में स्वच्छ और स्पष्ट न हो सका उसे परवर्ती ग्रन्थ में पुनः नवीन दृष्टि से कवि ने सँजो कर रख दिया है: यहाँ तक कि ग्रन्थों का आकार वृहत से वृहतर होता चला गया। 'साहित्यानन्द' इस कवि का और हिन्दी रीति साहित्य का आकार, प्रौढ़ता एवं गुण की दृष्टियों से विशालतम और अन्तिम रीति ग्रन्थ है, जिसमें रीति के सर्वाङ्ग का विशदता, स्वच्छता, स्पष्टता, विमर्श एवं पूर्णता पूर्वक पाण्डित्यपूर्ण विवेचन मिलता है।

यहाँ प्रमाण स्वरूप संस्कृत और हिन्दी के ऐसे आचार्यों और कवियों की नामावली देना उचित दीखता है, जिनके मतों को मूल या अनुदित रूप में ग्वाल ने खण्डन अथवा मण्डन के लिये अपने ग्रन्थों में अंगीकृत किया है—

संस्कृत—भरताचार्य [नाट्यशास्त्र], भामह [काव्यालंकार], दण्डी [काव्यादर्श], रुद्रट [काव्यालंकार], रुद्रभट्ट [श्रृंगार तिलक], आनन्दवर्धन [ध्वन्यालोक], अभिनव गुप्त [ध्वन्यालोक की लोचन टीका], राजशेखर [कर्पूरमंजरी एवं काव्य मीमांसा], धनंजय [दशरूपक], भोज [श्रृंगार प्रकाश], मम्मटाचार्य [काव्य प्रकाश], जयदेव [चन्द्रालोक], विद्याधर [एकावली], विश्वनाथ [साहित्यदर्पण], भानुदत्त [रसमंजरी], भानुमिश्र [रसतरंगिणी] रूप गोस्वामी [भक्ति रसामृत सिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि], अप्पय दीक्षित [कुवलयानन्द], वैद्य नाथ सूरि [अलंकार चन्द्रिका], पंडित राज जगन्नाथ [रस गंगाधर], विश्वेश्वर पण्डित [अलंकार प्रदीप], वात्सायन [कामसूत्र], कोक्कोक [रति रहस्य], श्री हर्ष [रत्नावली], पिंगलाचार्य [पिंगल], अमर सिंह [अमरकोश], एकाक्षरी भारती [वृत्ति, वेणी संवर्त्त], कुमार सम्भव, वीरचरित्र आदि।

हिन्दी—केशवदास (रसिक प्रिया, कवि प्रिया एवं राम चन्द्रिका), चिन्तामणि (कवि कुल कल्पतरु), देव (काव्य रसायन, भवानी विलास, भाव विलास एव प्रेमतरंग), भिखारीदास (काव्यनिर्णय), मतिराम (रसराज), बिहारी (सतसई), कुलपति मिश्र (रस रहस्य), जसवंतसिंह (रसमंजरी), हरचरण दास (सभा प्रकाश और (कवि वल्लभ), पद्माकर (जगत्विनोद), ठाकुर, श्रीपति (काव्य सुधाकर), नरवर पति रामसिंह (रस विनोद), परमेश, सुन्दर, दयानिधि, दयाल, बैरीसाल (भाषा भरण), उदयनाथ कवीन्द्र, बलभद्र (नखशिख), सूरतिमिश्र (अमर-चन्द्रिका और नखशिख), दूलह (कविकुलकंठाभरण) आदि।

हिन्दी आचार्यों का अनुसरण न करते हुए ग्वाल ने संस्कृत के प्रायः सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों का मंथन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

किया और सभी का अपने विवेचन में उपयोग किया है। फिर भी इसके प्रमुखतम ये आधार ग्रन्थ हैं--नाट्य शास्त्र, काव्य प्रकाश, रसमंजरी, रस तरंगिणी, कामसूत्र, रति रहस्य, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द और पिंगल। रीति कवियों के विरुद्ध एक आरोप यह भी है कि वे एक या दो आधार ग्रन्थ लेकर ही ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त हो जाते थे और यह कि वे संस्कृत वाङ्मय का तलस्पर्शी ज्ञान नहीं रखते थे। यह आरोप वहुत अंशों में सत्य भी है। किन्तु ग्वाल के रीति ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य से दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि उसने प्रायः सम्पूर्ण संस्कृत काव्य शास्त्र का तो गूढ़ अध्ययन किया ही था, निरुक्ति पर भी उन्हें अच्छा अधिकार प्राप्त था। यही नहीं हिन्दी के पूर्ववर्ती रीति ग्रन्थकारों की रचनाओं का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन कर रखा था, तभी तो वह संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी कवियों को भी अनकेत्र उद्धृत कर सके। संस्कृत और भाषा के अगाध वाङ्मय का आमूल आलोड़न करके ग्वाल ने जिस सन्तुलित समन्वित हिन्दी काव्यशास्त्र का सृजन किया, उसे देखकर विद्वान् आश्चर्य करेंगे। ग्वाल की अध्ययन-गरिमा के विषय में आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन उचित ही है कि "हिन्दी रीति शास्त्र की परम्परा में संस्कृत आधार ग्रन्थों का कदाचित सवसे अधिक आलोड़न करने वाले यह ही (ग्वाल) हुए हैं।[1] संस्कृत साहित्य के व्यापक अध्ययन ने ग्वाल में अटूट आत्मविश्वास उत्पन्न कर दिया था, जिसके कारण वे दृढ़ता पूर्वक हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत आचार्यों के सिद्धान्तों पर भी अपना सूक्ष्म निर्णय देने में सफल हुए। मम्मट जैसे स्वनामधन्य व्याख्याकार के दोष निरूपण को वड़े आत्मविश्वास के साथ चुनौती दे सके। स्पष्टोक्ति में इस कवि ने रंचमात्र भी चूक नहीं की। ईमानदारी इस कवि में इतनी है कि उसने संस्कृत आचार्यों के ऋण को भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकारा है। विवादास्पद स्थलों पर उसने नितान्त वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है। प्रथमतः हिन्दी के लक्षणों का उल्लेख किया गया है। यथा :

'प्रथम प्रमान भरताचार्य का मत--विभाव, अनुभाव, संचारी भाव इन करिथाई भाव व्यंग ठियो रस आनन्द स्वरूप प्रगट होत है।

अथ अभिनवगुप्ताचार्य कौ मत--नाट्य काव्य देखि सुनि आवरण विगत होंय अरु आनन्द रूप प्रकाशित चैतन्य सोई रस होत है।

अथ काव्य प्रकाश कौ मत--कारन कारज सहायक ये मिलि फिर प्रगट होंय थाई भाव सो रस। कारन कारज सहायक इन हीं को नाट्य शास्त्र में विभाव अनुभाव कहत हैं अरु भावादिक में एक हीं होय जहां और भावना की कल्पना करि लीजियत है।

अथ साहित्य दर्पण कौ मत--स्वयं प्रकाश आनंद स्वरूप शुद्धता अखण्ड ज्ञान रहित ब्रह्मानंद स्वादतुल्य ऐसौ रस होत है। --रसिकानंद ४।१

इसके पश्चात् विमर्श चलता है और अंत में कवि ने अपने नवीन मत की उपस्थापनाएं की हैं, जिन्हें अथ हमारौ मत' या 'हमारौ नवीन मत' करके पृथक लिखा है।

हिन्दी के पूर्ववर्ती आचार्यों ने संस्कृत के साथ जहाँ न्याय नहीं वरता वहाँ इस कवि ने अपने अकाट्य तर्कों द्वारा उनके साथ वैमत्य रखते हुए नवीन भाष्य दिये हैं और 'नवीन लक्षण' शीर्षक के साथ अपनी परिभाषायें लिखी हैं। कुलपति मिश्र द्वारा प्रतिपादित काव्य-परिभाषा को ग्वाल ने अपना तर्क पूर्ण मत प्रस्तुत

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत : दूसरा भाग, सं० २०२३ वि० पृ० ६१०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

किया है।[1] इससे कवि के ज्ञान एवं उसकी आलोचना शक्ति का पता चलता है। अमरकोश[2] के उद्धरणों और वेद[3] के वाक्यों से भी कवि ने अपने कथनों की पुष्टि की है। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट के परस्पर विरोधी कथनों की भी कवि ने कविदर्पण में एक स्थान पर आलोचना की है, और उसे केवल अपने ज्ञान बल पर खंडित करने का प्रयास किया है।[4] ग्वाल का यह प्रयास उनके आत्म विश्वास का द्योतक है। यहाँ कवि का आशय काव्य-प्रकाशकार की कमियों की ओर संकेत करने का है, जिनकी ओर किसी भी टीकाकार ने

---

१. देखिए लेखक के शोध प्रबन्ध का पृ० १९४

२. विकारो भावसो भाव शोध प्रबन्ध : पृ० २४८

३. 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' आदि साहित्यानन्द चतुर्थ स्कन्ध शोध : पृ० २५३

४. कवि दर्पण में दोष प्रसंग में काव्य प्रकाश पर इस प्रकार विमर्श प्रस्तुत करते हैं :—

पाठी काव्य प्रकाश के तिनसों प्रश्न हमार।
मम्मट से या सिंधु को करो लेख उद्धार॥
केतिक ऐसे प्रश्न हैं सुनो बिदुष चित्त सुद्ध।
है उनहीं के लेखसों उनको देख विरुद्ध॥
केते केवल प्रश्न ही करियत बुद्धि विचार।
काहू टीका में न जो प्रश्न न उत्तर सार॥
लक्षन जो असमर्थ कौ मिलत अवाचक मांहि।
संस्कार हत आदि तें जात वाक्य क्यों नांहि॥
लिख्यौ अपुष्ठारथ जहाँ दोष और गुन होइ।
तहाँ अधिक पद होत है दोष और गुन सोइ॥
कियौ अधिक पद गुन जहाँ तहाँ कथित गुन होई।
तजिकै पक्ष विचारियौ नीके करि बुधि लोइ॥
अर्थ साँहि संदिग्ध कौ उदाहरन जो ढार।
तापै व्यक्ति विभाव की होत सकष्ट निहार॥
एक लज्जा अस्लील हौ लिखौ अर्थ के माँहि।
ग्वाल अनर्गल दुहुन के उदाहरन है नाँहि॥
जो न अर्थ में सम्भवै तौ लिखनौ का हेत।
दूजै क्यों किस अर्थ गुन ग्लान अशुभ कहि चेत॥
जहाँ सलेष आदिक विषै निहितारथ गुन होत।
तहाँ असमर्थ न होत गुन किहि का न बुध गोत॥

केतिक इति—केतिक प्रश्न ऐसे हैं कि इनके लेखसों इनहीं मै विरुद्धता आवै है। केते केवल प्रश्न ही हैं। लक्षन इति—लक्षन असमर्थ कौ लिख्यौ है—'यदर्थ पठ्यते न च तत्र तस्य शक्ति' याकौ अर्थ—जा निमित्त पढ़िये न तहाँ ताकी सक्ति होय ऐसौ लिख्यौ सो यह अवाचक में मिल्यौ क्योंकि जन्तु शब्द अदाता में पढ्यौ तहाँ ताकी शक्ति नहीं याते असमर्थ भयौ चाहिये ताते लक्षन में इतनी न्यूनता है जहाँ जानियत पढ़ियै तहाँ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ध्यान आकृष्ट नहीं किया। इस न्यूनता को केवल ग्वाल की सूक्ष्म बुद्धि ने देखा था। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्वाल जिस आत्मविश्वास, दृढ़ता, योग्यता और व्युत्पन्नता के साथ संस्कृत के आचार्यों की आलोचना करते हैं और रीतिशास्त्र में वे जितने गहराइयों में उतरे हैं उतना निष्णात रीति का कोई अन्य आचार्य सम्भवतः नहीं दिखाई देता। उन्होंने रीति के जिस अंग को भी पकड़ा उसे मनोयोग के साथ पूरा-पूरा निभाने का सफल प्रयत्न किया। इस विषय में डा० महेन्द्र कुमार का कथन हमारे मत की कुछ सीमा तक पुष्टि करता है। वे लिखते हैं—"उनकी विवेचन शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यथा स्थान संस्कृताचार्यों का मत देकर उसे तर्क की कसौटी पर कसते हैं और अपने मत की स्थापना करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उनमें संस्कृत के आचार्यों की आलोचना करने का साहस और प्रतिभा दोनों थीं। इनकी विवेचना शैली की दूसरी विवेचना यह है कि इन्होंने लक्षण और उदाहरण यद्यपि कुवलयानंद और चन्द्रलोक की शैली पर दिये तथापि यदि विषय इन्हें स्पष्ट होता हुआ दिखाई नहीं दिया तो ब्रजभाषा गद्य में उसकी व्याख्या भी कर दी है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इस व्यक्ति ने आचार्य कर्म को अत्यन्त मनोयोग के साथ ग्रहण किया है।"[१]

जब दूषण की चर्चा चली तो लगते हाथ यहाँ यह भी निवेदन कर दिया जाय कि कवि ने इस प्रसंग को भी रस, अलंकार की भाँति गहराई पूर्वक ग्रहण किया है। साहित्यानन्द में सामान्यतः और कविदर्पण में विशेषतः केशव, विहारी आदि हिन्दी के मान्य रससिद्ध कवियों के अनेक प्रसिद्ध छन्दों को ग्वाल ने शास्त्र की कसौटी पर कसा और उनको सदोष बतलाते हुए निर्दुष्ट बनाकर रखा है। कविदर्पण में रचना की पृष्ठभूमि में कवि की यही इच्छा बलवती दिखाई देती है कि सभी कवियों ने अपनी-अपनी कविता को शुद्ध करने की प्रार्थना विद्वानों से की है, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। और मैं 'ग्वाल' इन को निर्दुष्ट बनाकर दिखाऊंगा,[२] और यह सच है कि कवि ने अपनी इस प्रतिज्ञा का अनुपालन किया है।

ताकी अल्प शक्ति होय—ऐसो—कह्यौ चहियत है यही असमर्थ शब्द के अर्थ हैं और जाकौ नहीं है काहू रीति ते वाचक में अशाचक सस्कार हत इति-गत संस्कृत औ निरर्थक औ असमर्थ ये तीनों वाक्य में नहीं होते हैं जैसो लिख्यो है परन्तु इसके कारन लिख्यौ क्यों नहीं ये वाक्य में होते हैं तो सो कुछ खोलो नही ताते याकौ निरनय हम लिखत हैं ये तीनों वाक्य में बनायें तो बनि सकें हैं परन्तु इनमें ते दोय तो नहीं हू वै सकैं। गत संस्कृत औ निरर्थक—क्योंकि इनके बनाने का कारन अति मूर्खत्व है। छंद में एक ठौर संस्कृत चूकैं तो चूकैं भी। एक ठौर निरर्थक पद पड़ि जाय तो भी पड़ि जाय। वाक्य भर में चूकें ऐसौ नहीं सकें। कोई पद चूकि कै कहै तौ वाक्य होय सो ऐसी भूल पंडितन ते नहिं हो सकें हैं। बालक या बाबरों या अमली कहें तो आश्चर्य नहीं। आगे रह्यौ असमर्थ सो यह दूषन निहितार्थ तो न्यून है। जहाँ निहितार्थ होयगौ। वहाँ असमर्थ क्यों न होयगौ। या हेत ते असमर्थ वाक्य में भी है सकै हैं। और निहितार्थवत् गुन भी है सकै है। अब तीनों के गुन वाक्य में दिखाइत हैं।" कवि दर्पण ७।३२।४२ तथा टीका

१. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास पृष्ठ भाग सं० डा० नगेन्द्र : पृ० ३८१—३८२।

२. लिखित चले आये सबै अगिले सुकवि अपार।
भूल होइ सो लखि सुकविलीजौ ताहि सुधार॥
कवित पुराने घरन कौ कारन यह सुविचार।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रस, अलंकार और पिंगल के निरूपण के प्रसंग में यह दिखाया जा चुका है कि ग्वाल ने अपने विवेचन में पर्याप्त ईमानदारी से काम लिया है। रस और अलंकार पर अच्छे विचार विमर्श किये गये हैं। मुख्यतः रस प्रसंगों में ग्वाल ने परंपरा के साथ-साथ चलते हुए भी नए आयामों की प्रतिष्ठापना की है और कहीं-कहीं परम्परा को नकारा भी है। उदाहरणार्थ हिन्दी के किसी रीति कवि ने रूप गोस्वामी द्वारा प्रतिस्थापित भक्ति-रस को ग्रहण नहीं किया है। भक्ति-रसामृत-सिन्धु और उज्ज्वल-नील-मणि से भक्ति उपासना के सख्य, दास्य और वात्सल्य रसों के निरूपण को रस विवेचन में प्रथम वार अंगीकार करने वाले आचार्य ग्वाल हैं। इससे रस निरूपण का अद्यतन समाहृत रूप बना। इस प्रसंग में दूसरी नवीन बातें ग्वाल ने यह कीं कि रीति परम्परा के विरुद्ध चल कर उन्होंने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र सर्व "भाव" निरूपण रस से पहले किया है तदनन्तर रस का प्रसंग उठाया। रस भावों से उद्‌बुद्ध होता है, प्रायः भाव या रस से पूर्व वर्णन करना तर्क सम्मत और समीचीन भी है। मित्र-अमित्र रसों की चर्चा हिन्दी के बहुत कम कवियों ने की है। ग्वाल ने अपने ग्रन्थों में इस प्रसंग को भी निभाया है। इस कवि ने नायिका की परिभाषा को भी अपनी सूझ से नया रंग देने का प्रयत्न किया है।[1] अलंकार के स्वरूप को भी कवि ने नये दृष्टि विन्दु से देखा है।[2] अधिकांश रीति कवियों ने अर्थालंकारों का ही वर्णन किया है। ग्वाल ने अब तक के सभी अर्थालंकारों का विशद वर्णन करते हुए शब्दालंकारों को भी विवृत किया है। पिंगल निरूपण में पिंगलाचार्य का अनुगमन करते हुए कवि ने परम्परा का ही पालन किया है। शब्द शक्ति पर कवि ने जम कर लिखा है।

जिन काव्यांगों के वर्णन में ग्वाल की वृत्ति विशेष रूप से नहीं रमी है, उनमें रीति के अन्य आचार्यों ने भी रुचि नहीं दिखाई और वे हैं रीति, गुण, वृत्ति और शृंगारेतर रस। ग्वाल ने भी इनका वर्णन आनुषंगिक कर दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—"हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए हैं वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे। उनके अपर्याप्त लक्षण साहित्य शास्त्र का सम्यक् बोध कराने में असमर्थ हैं। आगे चलकर वे लिखते हैं कि अपनी ओर से उन्होंने न तो अलंकार क्षेत्र में कुछ मौलिक विवेचन किया, न रस क्षेत्र में।[3] डा० नगेन्द्र ने भी आचार्य शुक्ल की इस धारणा की पुष्टि की है।[3] इस क्षेत्र में ग्वाल ने मौलिक उद्‌भावनाएँ तो नहीं कीं परन्तु जैसा कि हम इनके रीति निरूपण और आचार्यत्व के प्रसंग में निष्कर्ष निकाल चुके हैं वे एक समर्थ आचार्य हैं और उन्होंने आचार्यत्व कर्म को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया और मनोयोगपूर्वक निभाया है। साहित्यशास्त्र के सर्वाङ्ग पर इन्होंने बहुत कुछ लिखा और विशदता एवं स्वच्छन्दतापूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया है। रस-विवेचन से पहले मनोवैज्ञानिक आधार पर भाव वर्णन की वरीयता, रस सिद्धान्त की अनुशीलनात्मक और खंडन-मंडनात्मक विवेचना, भक्ति सम्प्रदाय के सख्य, दास्य और वात्सल्य रसों की हिन्दी में प्रथम वार विवृति, अलंकार सम्बन्धी नवीन दृष्टि, शास्त्रीय कसौटी पर कसकर हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों

दोष दिखाइ बनाइ पद दीयौ ताहि सुधार॥

१. साहित्यानन्द-स्कन्ध ४।

२. वही स्कन्ध १६।

३. देखिए, देव और उनकी कविता, पृष्ठ ३०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के काव्य-दोषों का सप्रमाण निर्दुष्टीकरण, लम्बी-लम्बी गद्य वार्ताओं और टीकाओं का सिद्धान्त-विवेचन में प्रचुरता के साथ प्रयोग आदि ग्वाल के आचार्यत्व कर्म की विशेषताएं हैं जिनके सर्वांशतः दर्शन केशव, चिन्तामणि, देव, मतिराम, भिखारीदास, जनराज, कुलपति मिश्र, गोविन्द, प्रतापसाहि आदि के निरूपण में भी नहीं मिलते। गद्य का प्रयोग कुलपति मिश्र, भिखारीदास, गोविन्द, प्रतापसाहि आदि कतिपय आचार्यों ने किया है परन्तु बहुत सीमित रूप में। पिंगल का ग्वाल के अतिरिक्त बहुत ही कम कवियों ने निरूपण किया है। इस कथन की आवृत्ति करने से हमारा अभिप्राय इस बात पर बल देने का है कि ग्वाल की दृष्टि और विवेचन पद्धति सर्वथा नवीन है और वैज्ञानिक भी। अतः मौलिक कहलाने की अधिकारिणी है। यह एक सफल आचार्य की सूझ-बूझ मात्र की ही परिचायक नहीं, बल्कि उसकी विषय की गहरी पैठ, पाण्डित्य-प्रखरता और निर्भीक आलोचना शक्ति पर भी प्रकाश डालने को पर्याप्त है। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[1] और डा० महेन्द्रकुमार[2] की तथ्यपूर्ण निष्पत्तियों से मेरी ग्वाल विषयक उक्त प्रतिष्ठापनाओं की अंशतः पुष्टि हो जाती है।

हिन्दी में आचार्यों के तीन वर्ग मिलते हैं—१. मम्मट और विश्वनाथ आदि की शैली पर काव्य के दशांग का विवेचन करने वाले आचार्य, २. शृंगार तिलक और रसमंजरी आदि के अनुसार केवल शृंगार रस और उसके प्रधान आलम्बन नायिका का वर्णन करने वाले आचार्य और ३. चन्द्रालोक और कुवलयानन्द आदि के आधार पर अलंकार मात्र का निरूपण करने वाले आचार्य। ग्वाल ने काव्य के सर्वाङ्ग का विवेचन किया है, अतएव स्पष्टतः उनका स्थान पहले वर्ग के अंतर्गत आता है। इस वर्ग में उनके प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी आचार्य हैं—केशव, चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, पदुमनदास, देव, कुमारमणि, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, जनराज, जगतसिंह, गोविन्द और प्रतापसाहि।

केशव को संस्कृत रीति शास्त्र को हिन्दी में उतारने का ऐतिहासिक श्रेय प्राप्त है। इन्होंने अलंकार और रस सम्प्रदायों की हिन्दी में प्रतिष्ठापना की। ग्वाल ने अनेकत्र इनकी मान्यताओं का प्रमाण रूप में उल्लेख करते हुए उनका आभार स्वीकार किया है और अनेकत्र इनके छन्दों को शास्त्रीय पद्धति से सदोष ठहराते हुए निर्दुष्ट भी बनाकर दिखाया है। इससे सिद्ध होता है कि ग्वाल में केशव के पाण्डित्य के प्रति मान्यता भी है और उनके कवित्व के प्रति आलोचक और सुधारक दृष्टि भी। केशव के लक्षण जहाँ अस्पष्ट है और अस्वच्छ हैं, वहाँ ग्वाल के स्पष्ट और स्वच्छ। ग्वाल का पिंगल निरूपण तथा गद्य प्रयोग उसे केशव से और ऊँचा उठा देते हैं। पाण्डित्य में दोनों लगभग समान रूप से पारंगति रखते हैं, परन्तु ग्वाल ने आचार्यत्व कर्म का केशव से कहीं अधिक गम्भीरता से निर्वाह किया है।

चिन्तामणि ने दो चार स्थानों पर गद्य का आश्रय लेकर स्वनिर्मित लक्षणोदाहरणों का समन्वय मात्र दिखाया है, ग्वाल की भाँति शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत नहीं किया। चिन्तामणि की अधिकाधिक सामग्री संस्कृत का प्रायः दुरूह अनुवाद मात्र है, अतः लक्षण और उदाहरण स्वच्छ नहीं है। परन्तु चिन्तामणि का मम्मट

---

१. "कवि रूप में ग्वाल कवि का महत्व चाहे उतना न हो पर रीति ग्रन्थकार के रूप में इनका पूरा महत्व माना जाना चाहिए।" हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ६१।

२. "यह कहने में संकोच नहीं होता कि आचार्यत्व निरूपण की दृष्टि से चिन्तामणि, कुलपति आदि की परम्परा के कवि हैं।" हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, पृष्ठ भाग, पृष्ठ ३८२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की पद्धति पर किया गया प्रथम प्रयास महत्व रखता है। ग्वाल के युग तक यह परम्परा पर्याप्त मँज चुकी थी। अतः यदि ग्वाल उनसे अच्छा विवेचन कर सके तो विशेष आश्चर्य की बात नहीं। चिन्तामणि रीति के शैशव काल के आचार्य हैं जबकि ग्वाल उसके प्रौढ़काल के। जो भी हो ग्वाल उनसे बहुत आगे हैं।

मम्मट की आधार परम्परा में कुलपति मिश्र ने आचार्यत्व को यत्किंचित् गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया गद्य का भी थोड़ा-थोड़ा आश्रय लिया और शास्त्रीय विवेचन भी किया, परन्तु यह ग्वाल की तुलना में परिमाण और गुण में कुछ -कुछ हलका है। कुलपति ने भी ग्वाल की भाँति मम्मट और विश्वनाथ आदि आचार्यों पर आक्षेप किये हैं, परन्तु दोनों के ही आक्षेप प्रायः विवादास्पद एवं अव्यवस्थित हैं। ग्वाल ने कुलपति के सिद्धान्तों के प्रमाणस्वरूप अनेकत्र उल्लेख किये हैं और उनके रससिद्धान्त का तर्कपूर्ण खण्डन करके अपने मत की प्रतिष्ठा भी की है। दोनों ही शास्त्रविद् पण्डित हैं। दोनों के लक्षण और उदाहरण स्वच्छन्न हैं, परन्तु एक तो ग्वाल का विषय-क्षेत्र व्यापक है, दूसरे इन्होंने विस्तृत गद्य का अपने विवेचन में लाभ उठाया है तीसरे उन्होंने भक्ति सम्प्रदाय तक के रस सिद्धान्त को अपनाकर शास्त्र को अद्यतन बनाया और चौथे पिंगल का भी उन्होंने विशद विवेचन किया है। कुल मिलाकर ग्वाल में कुलपति से अधिक विशेषताएँ हैं। हिन्दी को उनकी देन कुलपति से निश्चित रूप से अधिक है।

पदुमनदास रीति के सामान्य विविधांग निरूपक आचार्य हैं इनका रीति निरूपण अत्यन्त संक्षिप्त और शास्त्रीय विवेचन सामान्य कोटि का है। सम्पूर्ण विवेचन "काव्य मंजरी" के ७१६ दोहों में समाप्त हो गया है। गुण, परिमाण और विवेचन की शास्त्रीय पद्धति के निर्वाह में वे कहीं भी ग्वाल के समकक्ष नहीं ठहरते।

विषय क्षेत्र की दृष्टि से देव ग्वाल की तुलना में आने योग्य हैं, परन्तु आचार्य कर्म को ग्वाल के समान गम्भीरता और मनोयोगपूर्वक देव ग्रहण नहीं कर सके। ग्वाल पाण्डित्य के धनी आचार्य हैं तो देव सूक्ष्म एवं गहरी रस चेतना के अधिकारी आचार्य। देव में कहीं-कहीं निरर्थक विस्तार का आग्रह है, जबकि ग्वाल, उसी की प्रौढ़ विवेचना करके सिद्धान्तों की स्थिरता देने के पक्ष में है, ग्वाल आचार्य पहले हैं और तदनन्तर कवि देव कवि पहले हैं और तत्पश्चात् आचार्य। आचार्य रूप में ग्वाल देव से पर्याप्त आगे हैं।

चिन्तामणि और कुलपति मिश्र के पश्चात् शास्त्रीय विवेचन की शुद्धता के विचार से कुमारमणि का नाम प्रथम आता है। इनकी भाषा ग्वाल की भाषा से अधिक सरल और स्पष्ट हैं। भले ही इनमें ग्वाल की सी मौलिक धारणाओं का अभाव है परन्तु विवेचन में भाषा शैथिल्य, जो कहीं-कहीं ग्वाल में परिलक्षित है, कुमारमणि में देखने को नहीं मिलता। परन्तु ग्वाल का विषय क्षेत्र कुमारमणि से अधिक विस्तृत एवं व्यापक है। ग्वाल का विवेचन कुमारमणि के विवेचन से अधिक विशद और प्रौढ़ है। जो समन्वयक दृष्टि ग्वाल के विवेचन में पाई जाती है, कुमारमणि में उसका अभाव है।

कुलपति मिश्र के पश्चात् ग्वाल के समान अत्यन्त पांडित्यपूर्ण विवेचन करने वाले और पूर्ववर्ती कवियों तक के उद्धरण देने में संकोच न करने वाले आचार्य श्रीपति आते हैं। श्रीपति में ग्वाल के समान ही पांडित्य, प्रतिभा, साहित्यनिपुणता, आलोचना शक्ति और निर्णय देने का साहस मिलता है। इनका विषय क्षेत्र ग्वाल के समान ही व्यापक है परन्तु ये पिंगल नहीं लिख पाये। विवेचन विस्तार और समन्वय की दृष्टि से भी ग्वाल को इनसे ऊँचा उठा देती है।

गद्य का यत्र तत्र आश्रय लेकर लक्षण-उदाहरण लिखने वाले आचार्य सोमनाथ शास्त्र का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत नहीं कर सके। उनका उद्देश्य सुकुमार बुद्धि पाठकों के लिए काव्यशास्त्रीय सामग्री प्रस्तुत

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

करना था. न कि गम्भीर विवेचन। इनकी काव्य-शास्त्र सामग्री कहीं-कहीं अत्यन्त संक्षिप्त और अपूर्ण रह गई है परन्तु भाषा सरल और स्वच्छ है। दोष प्रकरण नहीं के बराबर है। रस प्रकरण विशद है। विषय क्षेत्र ग्वाल के समान व्यापक है। सोमनाथ ने शास्त्र के दशांग का वर्णन किया है पिंगल निरूपण नहीं हुआ है। ग्वाल की विशेषताएं इनमें देखने को नहीं मिलतीं। पांडित्य की दृष्टि से भी ग्वाल से इनकी तुलना नहीं बैठती।

भिखारीदास ने काव्य शास्त्र के विवेचन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करके कुलपति मिश्र और श्रीपति की शास्त्रीय विवेचना पद्धति को आगे बढ़ाया। इन्होंने काव्य के व्यापक क्षेत्र में कार्य किया और सफलता पूर्वक गद्य वार्तिकों का आश्रय लेकर विवेचन को स्पष्ट किया। दास के आचार्यत्व की विशेषताएँ हैं—मौलिक भावनाओं की प्रस्तुति का प्रयास, हिन्दी भाषा का आदर्श सामने रखकर ग्रन्थ निर्माण, व्यवहारिक विवेचन और तर्क सम्मत धारणाएँ ग्वाल में भी कुछ ऐसी ही विशेषताएं मिलती हैं। दास काव्य का लक्षण नहीं दे पाए। इनकी शक्ति के प्रसंग भी अपूर्ण हैं। इनकी कुछ अन्य विषय सामग्री भी अपूर्ण है। कतिपय स्थलों पर भाषा शैथिल्य भी उनके विवेचन में आ गया है। ग्वाल की भांति काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों का ये परिपक्व विवेचन नहीं कर पाए परन्तु इन्होंने पिंगल को अवश्य ग्वाल की भाँति विशद एवं विस्तृत रूप से निरूपित किया है। दास का छन्दोऽर्णव पिंगल महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। गद्य की विशदता, भाषा की स्पष्टता, शास्त्रीय खण्डन-मण्डन पद्धति आदि का आद्योपान्त निर्वाह कुछ विषयों में ग्वालकवि दासजी से कुछ आगे है, परन्तु दास के कुछ सिद्धान्तों के उल्लेख करके ग्वाल ने उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की है। अतः ग्वाल के आगे दास के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। दोनों ही अपने-अपने युग के प्रसिद्ध रीति ग्रन्थकार हैं।

जनराज साधारण आचार्य हैं। इनका विषय क्षेत्र ग्वाल के समान ही व्यापक है। रीति का विवेचन सामान्यतः परम्परा के निर्वाहार्थ ही हुआ है। इनके शास्त्र निरूपण में शास्त्रीय तर्कपूर्ण विवेचना का प्रायः अभाव है। इन्होंने कोई नवीन धारणा स्थापित नहीं की। ग्वाल के शास्त्रीय निरूपण की विशेषताएं इनमें दुर्लभ हैं।

जगतसिंह का रीति निरूपण सामान्य कोटि का है। काव्यांग में दोष प्रकरण किंचित् विस्तार के साथ और शेष अंगों का साधारण वर्णन हुआ है। ग्वाल के समान व्यवस्थित शास्त्रीय विवेचन का इनमें अभाव पाया जाता है परन्तु इनकी भाषा ग्वाल की भाषा से अधिक सरल और स्पष्ट हैं परन्तु अनेक क्षेत्रों में ग्वाल इनसे आगे हैं।

गोविन्द (रसिक गोविन्द) आचार्यत्व की दृष्टि से ग्वाल के अग्रवर्ती हैं। साहित्य शास्त्र पर इनका अच्छा अधिकार है। इनके अधिकांश लक्षण गद्य में होने के कारण स्वच्छ हैं और सुकुमार बुद्धि के पाठकों के उपयुक्त हैं। इन्होंने शास्त्र को अत्यन्त संक्षेप में निपुणतापूर्वक बोधगम्य बनाने का सफल प्रयास किया है। ग्वाल की भाँति ये गम्भीरतापूर्वक शास्त्रीय उहापोह के पचड़े में नहीं पड़े। इनके उदाहरण ग्वाल के उदाहरणों से सुन्दर बन पड़े हैं। ग्वाल की भाँति इतर पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों के छन्दों को इन्होंने उदाहृत करने में संकोच नहीं किया। काव्य के दशांग का इन्होंने एक सफल काव्य पण्डित की भाँति विवेचन किया है। गोविन्द कवि पहले हैं और आचार्य बाद में और ग्वाल मूलतः आचार्य हैं तदनन्तर कवि। कुछ स्थलों को गोविन्द चलता कर गये हैं जबकि ग्वाल ने प्रत्येक विषय को गम्भीर विवेचन का विषय बनाया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रतापसिंह उत्कृष्ट कोटि के रसवादी कवि और सामान्य कोटि के आचार्य हैं। ये काव्यशास्त्रीय विषय से भलीभाँति अवगत थे। इनके अधिकांश उदाहरण शास्त्र सम्मत, विशुद्ध और काव्य के उत्कृष्ट आदर्श हैं। ग्वाल की सी विवेचन प्रतिभा और विषय की विशदता का इनमें भी अभाव है। प्रतापसिंह का महत्व उनकी सूक्ष्म रस चेतना के कारण अधिक है। काव्य के अन्य क्षेत्रों में उनकी गति है, गहरी पैठ नहीं। इनका शास्त्र गम्भीर शास्त्रीय विवेचन का थोड़ा बहुत आभास मात्र देता है तथापि इनका आचार्यत्व प्रभावित करनेवाला हैं परन्तु ग्वाल के आचार्यत्व के आगे पर्याप्त हलका पड़ता है।

उपसंहार

ग्वाल ने संस्कृत तथा हिन्दी के पूर्ववर्ती और समसामयिक आचार्यों के रीति सिद्धान्तों को प्रमाण रूप में ग्रहण किया।

संस्कृत एवं हिन्दी के ऐसे आचार्यों के मतों को ग्वाल ने निर्भीकता एवं तटस्थतापूर्वक तर्क सम्मत रीति से खंडित करते हुए अपनी निजी उपस्थापनाएं की हैं, जिनसे उनका पांडित्यपूर्ण साहस प्रकट होता है।

ग्वाल ने कहीं-कहीं संस्कृत के व्याख्याकारों की पद्धति पर चल कर संस्कृत एवं हिन्दी के कई-कई आचार्यों के मतों पर एकत्र इतिहासानुशील की शैली में विचार किया है।

अपने मत को जहाँ स्पष्ट होते हुए नहीं पाया, वहाँ कवि ने कई-कई पृष्ठों में लम्वी गद्य टीकाओं एवं वार्त्ताओं का आश्रय लिया है।

ग्वाल ने संस्कृत एवं हिन्दी शास्त्र ग्रन्थों का निगूढ़ अध्ययन किया है। अपने प्रतिपाद्य पर उन्हे इतना अधिकार प्राप्त है कि संस्कृत के मम्मटाचार्य और हिन्दी के कुलपति आदि उद्भट आचार्यों के कतिपय मत-सिद्धान्तों को अपनी प्रज्ञा की कसौटी पर कसते हुए उनसे वैमत्य स्थापित किया है।

ग्वाल ने अपना मत तर्क-प्राण एवं वैज्ञानिक दिया है। कवि को जहाँ प्रामाण्य-साक्ष्य मिला है, वहाँ किसी भी पूर्ववर्ती दिग्गज को खंडित करने में कवि को हिचक नहीं हुई। कहीं कहीं तो उनकी खंडन-मंडन पद्धति कुछेक विद्वानों को उद्धतापूर्ण लग सकती है। किन्तु तर्क को आँच नहीं।

ग्वाल ने काव्य के दशांग का निरूपण किया है। इस दृष्टि से ग्वाल हिन्दी के इने-गिने आचार्यों में से एक हैं।

ग्वाल के लक्षण और उदाहरण प्रायः स्वच्छ और सुबोध हैं जहाँ आवश्यकता समझी है, उन्होंने वहाँ पूरक ब्रजभाषा गद्य-वार्ताओं के माध्यम से अपनी पूरी वात कह दी है।

ग्वाल ने आचार्यत्व कर्म को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया और सतर्कता एवं मनोयोगपूर्वक उसे निभाया है।

इस कवि को अपने विषय पर पूर्ण अधिकार था, जिससे वह काव्य शास्त्र की शिक्षा के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर सका। इनके ग्रन्थों के पाठक का शास्त्र-ज्ञान अधूरा नहीं रह सकता।

ग्वाल रीति के परवर्ती आचार्य थे। इस नाते आचार्य निरूपण में उनसे जो जो अपेक्षाएं की जा सकती थीं, उनका उनमें समाहार मिलता है।

उन्होंने मौलिक उद्भावनाएं तो नहीं कीं। रीति के किसी भी कवि से यह संभव नहीं हुई, परन्तु

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

खन्डन-मन्डन गत तर्कपूर्ण व्याख्याओं तथा निष्कर्षों का उनके शास्त्र में प्राचुर्य मिलता है। लक्षणों को नया रंग देकर सटीक बनाने के भी प्रयत्न उनमें परिलक्षित होते हैं।

उनके लक्षण संस्कृत-ग्रन्थों पर आधृत हैं, परन्तु उदाहरण उनके अपने हैं और कहीं-कहीं एक से अधिक संख्या में भी हैं यही नहीं, अपनों के अतिरिक्त अन्य हिन्दी कवियों के छन्दों को भी उन्होंने प्रचुरता से उदाहृत करने में संकोच नहीं दिखाया।

परम्परा को कहीं कहीं नकारते हुए उन्होंने नये आयामों की भी प्रतिष्ठापना की है। इससे उनके काव्य शास्त्र में उस युग के प्रतिपादित समस्त संस्कृत और हिन्दी शास्त्र का समाहार हो गया है।

एक विशद पीठिका पर विशुद्ध आचार्यत्व की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य दिखता है। वे पंडितराज जगन्नाथ की परम्परा के हिन्दी के प्रथम और अन्तिम व्याख्याकार आचार्य ठहरते हैं। आलोचकों का यह मत कि हिन्दी में व्याख्याकार आचार्य नहीं है, ग्वाल के अध्ययन से उचित नहीं ठहरता। ग्वाल ने हिन्दी को निजी शास्त्र दिया और आचार्यत्व भी। इनके आचार्यत्व के आलोक में हिन्दी शास्त्र के पुनर्मूल्यांकन की आज बड़ी आवश्यकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भारतीय आर्य भाषाओं में अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की परम्परा

आचार्य डा० श्रीपति शर्मा जोशी
[एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी०]

प्राचीन काल में सभ्यता की होड़ में अग्रसर मुख्य संस्कृतियाँ मिस्र, रोम वेबीलोनिया तथा भारत (आर्यावर्त) की थीं। इन संस्कृतियों ने विश्व को ज्ञान-विज्ञान की महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान की। इनमें पूर्व प्रदेश-स्थित आर्यावर्त की संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति थी। आगा हैदर हुसैन ने कहा है कि आरम्भिक सभ्यता और संस्कृति का स्थान अगर कोई हो सकता है तो वह हिन्दुस्तान है। एक अन्य इतिहासकार का मत है—

"Aryan religion must have migratid to Asia minor direct from India not through Persia."

वे ईरानियों को भी आर्यों की दूसरी धारा का अंग मानते हैं, जिनका कार्यकलाप वैदिक ऋचाओं में वर्णित असुरों जैसा है। एक ऋचा में उनके उत्तरीय, दूसरी में क्षौर, पद्धति एवं तीसरी में युद्ध क्रन्दन 'हेलय' से यह पृथकता स्पष्ट हो जाती है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा का स्पष्ट मत है कि ईरान के निवासी स्वयं आर्यों का भारत से पश्चिम की ओर वहिर्गमन मानते हैं।

आर्यों के पारसीकों या ईरानियों से सम्बन्ध एवं पश्चिम का इतिहास हमें ऋग्वेद में भी मिल जाता है "शतमहं तिरिन्दरे सहस्रं पर्शावाददे" मंत्र इस तथ्य का साक्षी है। पाणिनि ने पर्शु नामक आयुधजीवी संघ का "पैश्वादि योधेयादिभ्यो अणञौ" सूत्र में उल्लेख किया है। डा० आर० भाण्डारकर का विश्वास है—

"Parsus are certainly the Parsis or old Parsians and Asuras the Assyrians"

वाल्मीकि रामायण और बौद्ध काल में आर्यों एवं पारसीकों का निकट सम्पर्क पाया जाता है। भारत एवं ईरान के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सम्बन्धों की अविच्छिन्न परम्परा को अनेक विद्वानों ने सप्रमाणसिद्ध किया है। "वाह्लीक भाषोदीचानां खशानांच स्वदेशजाः" से बलख का आर्यों से प्राचीन सम्बन्ध सिद्ध होता है। भारत तथा ईरान के निवासियों के पूर्वज आर्य ही थे। ईरान का नामकरण स्वयं इस बात का प्रमाण है। 'आर्यायनम्' या 'आर्याणाम्' का अपभ्रंश ही 'ऐर्यानम' है, जो कालान्तर में ईरान हो गया है। अवेस्ता में अरमुज्द (असुरमहत्) द्वारा ज्ञात किया हुआ प्रथम स्थान 'ऐर्यानम्' कहलाया जिसे उसके पुजारी 'ऐर्य' कहते थे। हेलानिकस नामक इतिहास लेखक फारस को 'एरिया' कहता है। दसवीं शताब्दी ई० पू० के असीरी पुरालेखों में संकेत है कि आर्यजनों का ईरान में आगमन बहुत पहले का नहीं जान पड़ता। इस प्रकार यह मत भी इन दोनों जातियों के सम्पर्क को ३००० वर्ष प्राचीन तो सिद्ध कर ही देता है। प्राचीन वैदिक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भाषा तथा पुरातन फारसी के सादृश्य से जान पड़ता है कि पारसीक आर्यों एवं भारतीय आर्यों को अलग हुए अधिक समय नहीं हुआ था। अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषा की तुलना से यह निष्कर्ष निकलता है कि अतीत में आर्य संस्कृति के चिह्न ईरान में असंदिग्ध रूप से विद्यमान थे। अवेस्ता का 'हफ्तहिन्दवः' ऋग्वेद के 'सप्त सिन्धवः' से पूर्णतः मेल खाता है। दारा के शिलालेखों के आधार पर ईरान के आर्य निम्नलिखित वर्गों एवं उपवर्गों में विभक्त थे जो हेरोडोटस कृत विभाजन से भी मिलते जुलते हैं—**मीड़, पशियन्स, हिकनियन, पार्थियन, आर्यन, डेजियन,** अरोकोटियन (पुश्तो, वैक्ट्रियन (आख्तरी) सोदियन (फा० सुद), वोरास्मियन (रूबारिन्मियन), मार्गियन, सगार्शियन।' इनमें वे से रेखांकित का क्रमशः संस्कृत, मद्र, पारसीक, (पर्शु या पार्शव), पार्थव, आर्य एवं सुग्ध के साथ पूर्ण साम्य है।

समय बदला। भारतीय आर्यों की शक्ति क्षीण हुई या इतिहास ने करवट ली और फारस वालों का सितारा चमका। ५५८-५३० ई० पू० में साइरस ने गेडरोशिया के मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। काबुल घाटी में उसे बहुत सफलता मिली। डेरियस (५१८ ई० पू०-४८७ ई० पू०) ने सिन्धु घाटी पर विजय प्राप्त की।

किसी देश पर विदेशी शासन की स्थापना ऐसा तथ्य है कि कोई देश उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। विभिन्न क्षेत्रों में अवश्यम्भावी होने वाले प्रभाव की भाँति पर्यटकों एवं व्यापारियों द्वारा कुछ शब्द अस्थायी रूप से आते और चले जाते हैं पर शासन स्थापना के बाद अन्य वस्तुओं के साथ साथ उनमें से अनेक स्थायी रूप से भाषा के अविभाज्य अंग बन जाते हैं। भारत में मुसलमानों का आगमन ईसा की आठवीं शती के प्रथम चरण से आरम्भ हो गया था। तभी उन्होंने सिन्ध पर विजय प्राप्त की, पर राजनीतिक दृष्टि से अरबों की सिन्ध-विजय इस्लाम और भारत के इतिहास में एक महत्वहीन घटना थी: पर शनैः-शनैः मुसलमानी प्रभाव पश्चिमी प्रान्तों (अफगानिस्तान, सिन्ध और पंजाब) पर पड़ने लगा था। देश के केन्द्रीय भाग अर्थात् दिल्ली पर उनकी शासनस्थापना ११९२ ई० में हुई जब कि मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान को पराजित किया और राज्य का कार्यभार अपने योग्यतम गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंप दिया तभी से यहाँ शासकों के द्वारा उनके शब्दों का भी विविध क्षेत्रों में प्रचलन हुआ, किन्तु शब्द ग्रहण की यह परम्परा और भी पुरानी बतायी जाती है—

भारतीय भाषाओं में फारसी के शब्द सम्भवतःईसवी काल के आरम्भ से आने लगे होंगे, जब शाक्य एवं अन्य आप्रवासियों के नवीन उत्साह उन्हें अपने साथ लाये होंगे। बाद में पंजाब फारस के प्रभाव के अन्तर्गत आ गया। इसके अतिरिक्त भारत और ईरान में किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध बराबर बना रहा, यहाँ तक कि अजन्ता की एक गुफा में भी भारतीय राजदरबार में फारस के दूत के आगमन का दृश्य है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त अधिकतम फारसी शब्द और प्रशासनिक शब्द फारसी के मुगल दरबारों की भाषा हो जाने के बाद आये। आर्यों ने अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में कभी संकोच नहीं किया। कुमारिल भट्ट ने कहा है कि आर्य विदेशी भाषाओं के शब्द छाँट लेते थे और आवश्यक परिवर्तन के बाद संस्कृत में बदल लेते थे।

शासन स्थापना के उपरान्त शब्द ग्रहण की परम्परा में राजनीतिक प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। अब भारत की सभी भाषा जाने अनजाने फारसी शब्द भंडार से श्रीवृद्धि करने में गौरव अनुभव करने लगीं। तुलसी, सूर, मीरा, केशव, बिहारी, पद्माकर, सेनापति आदि सभी की रचनायें फारसी-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अरबी शब्दों से अलंकृत हैं। तुलसी ने मानस के कलिवर्णन में तत्कालीन राजनीतिक दुर्व्यवस्था का विशद वर्णन किया गया पर तुर्कों के शब्दों के बहिष्कार की चर्चा नहीं चलायी अपितु उनको सादर ग्रहण भी कर लिया। दरबार, साहब, गनी, गरीबनवाज, बख्शीश आदि हजारों शब्द इनके ग्रन्थों में गौरव प्राप्त कर सके हैं। चन्दवरदायी ने तो खुले आम प्रतिज्ञा की और उसको निभाया—

"उक्ति धर्मविशालस्य राजनीति नवं रसम्,
षट् भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया॥"

आचार्य भिखारीदास ने नियम बना कर फारसी शब्दों के व्यवहार की अनुमति दी :

"ब्रज भाषा भाषा रुचिर कहे सुमति सब कोय।
मिले संस्कृत फारिसिहु सो अति प्रघट जु होय।"

मुसलमानों के शासन ने हिन्दी में विदेशी शब्दों का प्रयोग भाषा में अनिवार्य सा ही बना दिया था। कश्मीरी ब्राह्मणों, कायस्थों में तो फारसी का प्रचार गीता रामायण की भाँति प्रतिष्ठित हो गया था। आबेहयात में लिखा है—पन्द्रहवीं सदी में सिकन्दर लोदी के जमाने में कायथ फारसी पढ़कर शाहीदफ्तर में दाखिल हुए और अब इन लफ्जों को उनकी जबानों पर आने का ज्यादा मौका मिला यह प्रभाव यहीं नहीं रुक गया बल्कि और व्यापक हुआ, हिन्दुओं की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक महत्ता को कम न होने देने के लिए समय समय पर विशिष्ट हिन्दुओं ने अपने ढंग पर काम किया; हिन्दुओं में फारसी की शिक्षा बढ़ जाने के कारण अथवा किसी अन्य विचार से १५८१ ई० में राजा टोडरमल ने महकमा माल के दफ्तर हिन्दी के बदले फारसी में कर दिये। इस प्रकार शासकों के राजनीतिक एवं कानूनी शब्द जनसामान्य में स्वतः प्राधान्य पा गये। तब जनसामान्य ने शासकों की भाषा अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रसन्न या अन्यमनस्क होकर स्वीकार कर ली हो और उसमें प्रयुक्त अनेक कठिन या सरल शब्द ग्रहण कर लिए हों तो आश्चर्य ही क्या ? **धार्मिक परिस्थितियाँ**—विजेता द्वारा उसका धर्म ग्रहण करने का प्रश्न विजित के समक्ष तलवार द्वारा या धन द्वारा बाध्यता की स्थिति में आता है। इस्लाम का भारत में प्रचार तलवार के बल पर जितना हुआ उतना धन के बल पर नहीं। सामाजिक हीनता से मुक्ति एवं प्रेम-प्रसंग पूर्ति के लिए भी धर्मपरिवर्तन होता है। हिन्दुओं में इन परिस्थितियों से बाध्य होकर नहीं अपितु पड़ोसी के रूप में कतिपय धार्मिक क्षेत्र के शब्द समाविष्ट हो गये और जो उनके साहित्य में भी आ गये। नमाज, बन्दा, खुदा, अल्लाह, बन्दगी, सलाम, आदाब-अर्ज आदि ऐसे ही कुछ शब्द हैं। मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा लिखित 'आखिरी कलाम' इस्लाम सिद्धान्त का ग्रन्थ होने के फलस्वरूप ऐसे शब्दों से भरपूर है, पर कबीर, मंझन आदि बहुत थोड़े कवियों ने कुछ ही धार्मिक विदेशी शब्दों का हिन्दी में प्रयोग किया है। प्रारम्भिक धार्मिक क्षेत्र में घृणा आदि के कारण कुछ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन भी आ जाता है जैसे 'काफिर' शब्द का अर्थ वस्तुतः ईश्वर की सत्ता नकारने वाला व्यक्ति है किन्तु मसलमान प्रायः हिन्दुओं को काफिर मानते हैं अतः हिन्दुओं ने भी कहीं कहीं इसका रूपान्तर' काफर कर दिया है और अर्थ मुसलमान।

हिन्दुओं ने यवन शासन भले ही स्वीकार कर लिया पर यह निश्चित है कि इस्लाम की ओर कभी प्रवृत्त नहीं हुए क्योंकि हिन्दू धर्म में बुद्धिवाद एवं तर्क को जितना अवसर प्राप्त है, इस्लाम में उसका सहस्रांश भी नहीं अतः भारतीय साहित्य में इस्लाम संबंधी शब्दों की संख्या नगण्य ही रह पायी। **भौगोलिक परिस्थितियाँ**—यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भूगोल और इतिहास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी स्थान

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की भौगोलिक परिस्थिति ने वहाँ के धर्म, संस्कृति, खानपान, वेशभूषा, इतिहास एवं साहित्य को अनिवार्य रूप से प्रभावित किया है। पड़ोसी की वस्तुओं के नाम, रीति रिवाज भाषा में स्थायी महत्व प्राप्त कर लेते हैं। फारस और भारत दो पड़ोसी देश रहे हैं और उनका सम्बन्ध दीर्घ काल से किसी न किसी रूप से चला आ रहा है अतः यह कैसे सम्भव हो सकता था कि जीवन के विविध क्षेत्रों में दोनों देश परस्पर प्रभावित न होते। ये दोनों देश समान कटिबन्धों में स्थित हैं। अतः गेहूँ, मक्का, जौ आदि फसलें दोनों देशों में सामान्य हैं। फिर इन देशों में एक ही नस्ल के लोगों का उद्गम स्थान रहा है और दोनों देशों की स्थिति पास-पास है। ऐसी स्थिति में यदि भारतीय भाषाओं में ईरान की भाषा फारसी के हजारों शब्द प्रचलित हो गये तो कोई अनहोनी घटना नहीं मानी जा सकती।

भौगोलिक परिस्थिति सम्पर्क की कई विधाओं को प्रभावित करती है। धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं व्यापारिक सम्पर्क भौगोलिक स्थिति पर सब से अधिक निर्भर करता है। यही कारण है कि उत्तर भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी से उतनी प्रभावित नहीं हुई जितनी फारसी से, क्योंकि अंग्रेजी से हमने प्रायः संज्ञा शब्द ही ग्रहण किये हैं जबकि फारसी से संज्ञा, विशेषण, क्रिया एवं अव्यय शब्द भी ग्रहण किये। भौगोलिक स्थिति उच्चारण यन्त्रों को भी प्रभावित करती है। भाषा सम्बन्धी आवश्यकतायें कुछ ऐसी भी आवश्यकतायें हैं जो वाह्य जीवन की अपेक्षा आन्तरिक जीवन से सम्बद्ध होती हैं। राजनीतिक, धर्म और व्यापार सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जहाँ हम विदेशी शब्द ग्रहण करते हैं वहाँ भाषा की अपनी विशिष्ट आवश्यकतायें होती हैं जिनके कारण हमें विदेशी शब्द ग्रहण करने होते हैं। ये कारण निम्न-लिखित कुछ हैं—

(१) शब्दों का अभाव—एक भाषा में किसी वस्तु या भाव का द्योतक शब्द न होने के कारण अन्य भाषाओं से शब्द लेने पड़ते हैं जैसे फारसी के 'जलेबी' और अरबी का 'हलवा' इसके उदाहरण है।

(२) विदेशी शब्दों की सरलता—अपनी भाषा में कठिन शब्द के स्थान पर विदेशी भाषा के सरल शब्द को उच्चारण की सुविधा के लिए प्रायः ग्रहण कर लिया जाता है।

(३) विदेशी शब्दों की सरसता भी देशी शब्दों को कभी कभी प्रयोग से निष्कासित कर देती हैं।

(४) भावों की उचित अभिव्यंजना—किसी विदेशी भाव को, प्रकट करने की दशा में उपयुक्त शब्दों की खोज करते समय कई वार विदेशी शब्दों को अपनाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार हम सही भाव अपने श्रोताओं या पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकते हैं। विहारी की 'किवुलनुमा लौं दीठि' जो अभि-व्यंजना है, वह सम्भवतः अपने किसी कृत्रिम शब्द से न हो पाती। कभी कभी अपने भावों को प्रकट करने के लिये भी कवि और लेखक अलंकारों के लिए विदेशी भाषाओं से उपमान लेकर साहित्य को सम्पन्न बनाते हैं। उनके द्वारा इस प्रकार अभिनव एवं चमत्कारिक भावाभिव्यंजन के माध्यम से पाठकों का समुचित मनोरंजन ही होता है। वीरता के लिए 'रुस्तम', प्रेम के लिए 'पतंग', 'लैला मजनूं' शीरीं-फरहाद', लम्बाई के लिए 'सरु' का प्रयोग करके घिसी-पिटी लकीरों से वाहर निकलने का स्तुत्य प्रयास है।

दूसरों का आकर्षण—अन्य भाषा-भाषियों को अपनी भाषा के प्रति आकृष्ट करने के लिए भी कभी कभी हम अपनी रचनाओं में उनके अतिप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं और वाद में उन्हें अपनी भाषा का प्रेमी वना लेते हैं। हिन्दी लेखकों ने अपनी इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप अमीर खुसरो, जायसी, रहीम और रसखान को हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियों में ला विठाया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस प्रकार उपर्युक्त परिस्थितियों ने हिन्दी साहित्य को फारसी के शब्द ग्रहण करने को बाध्य कर दिया था। बाद में अंग्रेजी के आने पर हमने अंग्रेजी के भी हजारों शब्दों का प्रयोग किया। सुविधानुसार हिन्दी में हिन्दी, फारसी, फारसी हिन्दी, फारसी-अरबी, अरबी-फारसी का शब्द-सांकर्य भी अबाधगति से आता रहा। बढ़ई गिरी, घड़ी-साज, तकियाकलाम, गरीब नवाज आदि इस वर्ण-सांकर्य के ही उदाहरण हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हेमचन्द्र के उदाहरणों की भाषा यद्यपि अपभ्रंश है परन्तु उसमें ब्रजभाषा की प्रकृति स्पष्टतः दृष्टि-गोचर होती है।[1]

हेमचन्द्र की अपभ्रंश की समस्त स्वर ध्वनियाँ जिनमें ह्रस्व ऐ और ओ भी सम्मिलित हैं, ब्रजभाषा को रिक्थ स्वरूप मिली है। कारक विभक्ति 'हि' का प्रयोग जो अपभ्रंश में करण और अधिकरण कारक में होता था, ब्रजभाषा को यहीं से प्राप्त हुआ है और ब्रजभाषा में यह प्रयोग करण, अधिकरण और सम्प्रदान कारकों के लिए पाया जाता है। ब्रजभाषा के माँझ, माँहि का पूर्वरूप मज्झें और 'ऊपर' 'पै' 'पर' का पूर्वरूप 'उप्परि' तथा ब्रजभाषा के 'तें' का पूर्वरूप 'तण' 'तणेण'—इसी हेम अपभ्रंश से ब्रजभाषा में आया है।

संक्रान्तिकालीन ब्रजभाषा (१२००-१४००)

संक्रान्तिकालीन ब्रजभाषा का रूप "सन्देश रासक" (१२वीं शती—अब्दुलरहमान कृत) प्राकृत पैंगलम् (१२से १४ शती तक की रचनाएँ) पृथ्वीराज रासो तथा प्रद्युम्नचरित (१३५४ ई० सधारुकृत) में मिलता है। इस अवस्था में हमें ब्रजभाषा की तीन शैलियों के दर्शन होते हैं—अवहट्ठ, पिंगल तथा औक्तिक। अवहट्ठ और पिंगल ब्रजभाषा की साहित्य शैलियाँ थीं और औक्तिक लोक की बोली विषयक पिंगल की अपेक्षा अवहट्ठ में प्राचीन साहित्य एवं भाषा परम्परा का अनुसरण अधिक मिलता है और औक्तिक शैली में लोक भाषा तथा लोक परम्परा का। सन्देश रासक तथा प्राकृत पैंगलम् अवहट्ठ शैली की, रासउ पिंगल की तथा प्रद्युम्न चरित औक्तिक शैली की कृतियाँ कही जा सकती हैं। (१) प्रद्युम्न चरित में इस शैली का आद्याभास मिलता है, इसकी भाषा से ज्ञात होता है कि चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक ब्रजभाषा का स्पष्ट और व्यवस्थित रूप निर्मित हो चुका था।

अवहट्ठ शैली

"प्राकृत पैंगलम की भाषा में ध्वनि और रूप दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन ब्रज के प्रयोगों का बाहुल्य है। वाक्य विन्यास की दृष्टि से तो यह भाषा ब्रज के और निकट दिखाई पड़ती है। निर्विभक्तिक प्रयोग वर्तमान कृदन्तों का सामान्य वर्तमान में प्रयोग, सर्वनामों के अत्यन्त विकसित रूप इसे ब्रजभाषा का पूर्वरूप सिद्ध करते हैं। क्रिया के भविष्यत काल के रूप में यद्यपि इस काल तक 'गा' वाले रूप नहीं दिखाई पड़ते किन्तु 'आविह' 'करिह' आदि में 'ह' प्रकार के रूपों का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा में 'गा' प्रकार के रूप भी मिलते हैं परन्तु 'ह' प्रकार के 'चलि है' 'करि है' आदि रूप भी बहुत मिलते हैं।" प्राकृत पैंगलम् की भाषा में प्राचीन ब्रजी के तत्व विद्यमान हैं, ब्रजभाषा के सर्वनामों के (ता, का, वा, या, जा आदि) के बीज बिन्दु इसमें मिलते हैं, तथा 'जु' अव्यय का प्रयोग भी मिलता है।

पिंगल शैली

प्राकृत पैंगलम् में पिंगल (या ब्रजभाषा की चारणशैली) भाषा का किंचित रूप मिलता है किन्तु,

---

१. ब्रजभाषा का विकास—डा० उप्रेति, मुरारीलाल—मध्यकालीन हिन्दी भाषा-अवधी और ब्रज खण्ड २, पृष्ठ २।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पृथ्वीराज रासो, विजयपाल रासो, श्रीधर का रणमल्ल छन्द ही वस्तुतः इसके महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ध्वनितत्व, वाक्यगठन रूप तत्व की दृष्टि से ब्रजभाषा के अनेक वीज विन्दु इनमें निहित हैं। यद्यपि इस चारणशैली की ब्रजभाषा में कृत्रिमता वहुत है संस्कृत के तत्सम शव्दों के प्रयोग हैं तथापि इसमें आत्मा ब्रज की है। यह दरवारों की साहित्यिक कृत्रिम भाषा थो और वोली जाने वाली ब्रजभाषा से भिन्न थी परन्तु भाषातात्विक दृष्टि से और साहित्यिक दृष्टि से इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

औक्तिक शैली

जिस समय राजदरवारों में पिंगल पनप रही थी उसी अवधि में (१२ से १४ शती के मध्य) शूर-सेन प्रदेश या मध्यप्रदेश में लोकभाषा भी विकसित हो रही थी। इस अवधि में औक्तिक वोलियों के कुछ ग्रन्थों की रचनाएँ भी हुईं। ब्रजभाषा का भी औक्तिक रूप विकसित हुआ यह रूप प्राकृत पैंगलम् की विकसित भाषा का जैसा ही था किन्तु पिंगल की कृत्रिमता से अलिप्त था। यद्यपि ब्रजभाषा का कोई औक्तिक ग्रन्थ तो प्राप्त नहीं है परन्तु राजस्थानी और गुजरात के औक्तिक ग्रन्थ ब्रजभाषा के निकट की भाषा होने के कारण ब्रजभाषा के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यही औक्तिक रूप निखर कर विष्णुदास, सूर आदि अष्टछाप के कवि तुलसी एवं रीतिकालीन कवियों में दृष्टिगत हुआ प्राचीन ब्रजभाषा में तीन लिंग होते थे। ग्रियर्सन ने भी लिग्विस्टिक सर्वे में नपंसुक लिंग प्रयोगों की ओर निर्देश किया है। संग्रामसिंह ने भी वालशिक्षा (वि० सं० १३३६) में लिखा है कि :—

"लिंगु तीन (पुलिंग स्त्री लिंगु, नपुंसक लिंगु। भलु पुलिंगु भलो स्त्रीलिंग। भलुंनपुंसक लिंग।[1]

१२वीं से १४वीं शती की इस अवधि में उक्त तीनों प्रकार की शैलियों के प्रयोग से ब्रजी के विकास की मुख्यतः ये प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। स्वर संकोचन, व्यञ्जनद्वित्व का सरलीकरण मध्यग व का उ में परिवर्तन अनुस्वार का ह्रस्वीकरण आदि ध्वन्यात्मक विशेषताएँ तथा निर्विभक्तिक कारकों के प्रयोग की प्रवृत्ति, परसर्गों का विकास और उनमें विविधता, सर्वनाम के विविध रूपों के प्रयोग निश्चित वर्तमान में तिङन्त+सहायक क्रिया का प्रयोग, भविष्यत काल में 'ह' वाले रूपों का प्रयोग, संयुक्त काल और संयुक्त क्रिया का प्रयोग आदि।[2]

साहित्य में यह अवधि भक्तिकाल व रीतिकाल के नाम से सुज्ञात है, इस काल की रचनाओं के अव-लोकन के उपरान्त ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा में ऋ-और ऌ का प्रयोग नहीं होता अतएव रितु, रिजु आदि शब्दों का प्रयोग होता है। श, ण, क्ष और ड क्रमशः स, न, ख और र में परिवर्तित हो जाते हैं जैसे ससि खन (क्षण) झगरो आदि। मध्यवर्तीय य और व क्रमशः ए और ओ में परिवर्तित होते हैं जैसे नैन (नयन), भौन (भवन) आदि, वर्गों के पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित होते हैं तथा पंकज, कंप, छंद, आदि। ब्रज-भाषा के शब्द रूपों में ओकारान्त प्रवृत्ति प्रवल है झगरो, छोटो, खोटो, आदि। यही प्रवृत्ति सर्वनामों के सम्वन्धकारक रूपों में तथा क्रिया के भूतकालिक कृदन्त रूपों में मिलती है उदाहरणार्थ तुम्हारी, मेरो, गयो, खायो, पीयो आदि। ओकार की भाँति उकार-बहुला प्रवृत्ति भी ब्रजभाषा में मिलती है जैसे खेलु, पूतु

---

१. सूरपूर्व ब्रजभाषा—डा० शिवप्रसाद सिंह पृ० ३४९।

२. वाल शिक्षा संज्ञा प्रक्रम—प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० २०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जासु, तासु ब्रजभाषा के मध्यम पुरुष एक वचन कर्ता के साथ क्रिया में इकार का आगम हो जाता है जैसे करि, विचरि, सुमरि, तजि, हठि आदि।

उत्तरमध्यकाल में भी उक्त सभी प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। इस काल का ब्रजभाषा साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। इस युग की भाषा सर्वोत्कृष्ट प्रौढ़ प्राञ्जल एवं परिनिष्ठित है। यही पूर्व और उत्तर मध्य काल ब्रजभाषा के चरमोत्कर्ष का काल है। इस मध्यकाल में भारत के ब्रजभाषेतर प्रदेशों के लोगों ने रचनाएँ की हैं जिनमें प्रान्तीय पुट एवं भाषा में अनुकरणपरक प्रयोग हैं जो वहु प्रयुक्त एवं अल्पप्रयुक्त दोनों प्रकार के तो हैं ही कुछ प्रयोग अप्रयुक्त भी मिल जाते हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा में गद्य भी लिखा गया है।

ब्रजभाषा का आधुनिक काल अठारह सौ से प्रारम्भ होता है। इस युग के लगभग एक सौ पिचत्तर वर्षों तक ब्रजभाषा का साहित्य के क्षेत्र में एकमात्र आधिपत्य रहा। श्रेष्ठ रचनाओं में भाषा के सवाँर-सुधार के अनेक प्रयत्न हुए। श्री लल्लू जी लाल के समय से तो पारस्परिक शैली को त्याग कर ब्रजभाषा ने नवीन शैली को भी अपनाया। शैली तत्व के साथ साथ भाषा में भी परिष्कार आया, वाक्य गठन के अभिनव प्रयोग हुए। खड़ी वोली के प्रचार से सं० १९७५ के पश्चात् ब्रजभाषा का स्थान धीरे धीरे खड़ी वोली लेती चली गई। इसका आशय यह कदापि नहीं कि ब्रजभाषा रचना होना वन्द हो गया, आज भी ब्रजभाषा के सहस्रों कवि और साहित्यिक अवस्थित हैं। आधुनिक ब्रजभाषा के सात रूप मिलते हैं :—

(१) केन्द्रीय ब्रज—अलीगढ़, मथुरा पश्चिमी आगरा।
(२) वुन्देली से प्रभावित ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में वोली जाती है।
(३) भदावरी ब्रज—आगरा का पूर्वी भाग एवं ग्वालियर में।
(४) जयपुरी से प्रभावित ब्रज—भरतपुर और उसके दक्षिण में वोली जाती है।
(५) सिकरवारी ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पूर्व में।
(६) जादोवाटी ब्रज—करौली तथा चम्वल के भूभाग में।
(७) कन्नौजिया ब्रज—एटा, तहसील अनूपशहर और तहसील अतरौली।

खड़ी बोली का ब्रजभाषाकरण

आधुनिक ब्रजभाषा में खड़ी वोली के प्रयोगों को आत्मसात् करने की नवप्रवृत्ति आई है जो वोलचाल और लिखित दोनों ही रूपों में विद्यमान है। 'आधुनिक वोलचाल की ब्रजभाषा पर स्टैन्डर्ड हिन्दी का प्रभाव दिन दिन वढ़ता चला जाता है। व्याकरण रूप, शव्द समूह यहाँ तक कि वाक्य विन्यास में भी इस प्रभाव की छाया देखी जा सकती है। आगरा जिले की वोली के नमूनों से स्पष्ट पता चलता है कि इस क्षेत्र के काफी शिक्षित और संस्कृत लोग अव भी आपस की वोलचाल में ब्रजभाषा का प्रयोग करना पसन्द करते हैं, पर उनके भाव आधुनिक चिन्तन से सम्वद्ध हैं जिन्हें ठेठ ब्रजभाषा में समुचित रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इसका फल यह होता है कि वक्ता के विचार तो स्टैण्डर्ड हिन्दी की शैली से लिये होते हैं पर उन्हें ब्रजभाषा में ढाला जाता है'।[1]

---

१. खड़ी वोली का ब्रजभाषाकरण—डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी-राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ५०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा की रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति पनप रही है 'पूंछरी कौ लौठा' में तो ऐसे प्रयोगों की प्रबलता है।

आज भी ब्रजभाषा का प्रयोग करने वाले और बोलने वालों की संख्या संसार के अनेक राष्ट्रों की भाषाओं के बोलने वालों से अधिक है, आज भी यह जीवन्त भाषा है। इसमें रचना करने वालों की संख्या सहस्रों में है तथा साम्प्रतिक युग की सभी विधाओं का साहित्य सृजन होता है। भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोग, नवीन शिल्प और नव शब्दावली का समावेश, इसे प्रत्यात्मक रूप में उन्नत पथ पर प्रगामी बना रहा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जासु, तासु ब्रजभाषा के मध्यम पुरुष एक वचन कर्ता के साथ क्रिया में इकार का आगम हो जाता है जैसे करि, विचरि, सुमरि, तजि, हठि आदि।

उत्तरमध्यकाल में भी उक्त सभी प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। इस काल का ब्रजभाषा साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। इस युग की भाषा सर्वोत्कृष्ट प्रौढ़ प्राञ्जल एवं परिनिष्ठित है। यही पूर्व और उत्तर मध्य काल ब्रजभाषा के चरमोत्कर्ष का काल है। इस मध्यकाल में भारत के ब्रजभाषेतर प्रदेशों के लोगों ने रचनाएँ की हैं जिनमें प्रान्तीय पुट एवं भाषा में अनुकरणपरक प्रयोग हैं जो बहु प्रयुक्त एवं अल्पप्रयुक्त दोनों प्रकार के तो हैं ही कुछ प्रयोग अप्रयुक्त भी मिल जाते हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा में गद्य भी लिखा गया है।

ब्रजभाषा का आधुनिक काल अठारह सौ से प्रारम्भ होता है। इस युग के लगभग एक सौ पिचत्तर वर्षों तक ब्रजभाषा का साहित्य के क्षेत्र में एकमात्र आधिपत्य रहा। श्रेष्ठ रचनाओं में भाषा के सवाँर-सुधार के अनेक प्रयत्न हुए। श्री लल्लू जी लाल के समय से तो पारस्परिक शैली को त्याग कर ब्रजभाषा ने नवीन शैली को भी अपनाया। शैली तत्व के साथ साथ भाषा में भी परिष्कार आया, वाक्य गठन के अभिनव प्रयोग हुए। खड़ी बोली के प्रचार से सं० १९७५ के पश्चात् ब्रजभाषा का स्थान धीरे धीरे खड़ी बोली लेती चली गई। इसका आशय यह कदापि नहीं कि ब्रजभाषा रचना होना बन्द हो गया, आज भी ब्रजभाषा के सहस्रों कवि और साहित्यिक अवस्थित हैं। आधुनिक ब्रजभाषा के सात रूप मिलते हैं :—

(१) केन्द्रीय ब्रज—अलीगढ़, मथुरा पश्चिमी आगरा।
(२) बुन्देली से प्रभावित ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में बोली जाती है।
(३) मदावरी ब्रज—आगरा का पूर्वी भाग एवं ग्वालियर में।
(४) जयपुरी से प्रभावित ब्रज—भरतपुर और उसके दक्षिण में बोली जाती है।
(५) सिकरवारी ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पूर्व में।
(६) जादोवाटी ब्रज—करौली तथा चम्बल के भूभाग में।
(७) कन्नौजिया ब्रज—एटा, तहसील अनूपशहर और तहसील अतरौली।

खड़ी बोली का ब्रजभाषाकरण

आधुनिक ब्रजभाषा में खड़ी बोली के प्रयोगों को आत्मसात् करने की नवप्रवृत्ति आई है जो बोलचाल और लिखित दोनों ही रूपों में विद्यमान है। 'आधुनिक बोलचाल की ब्रजभाषा पर स्टैन्डर्ड हिन्दी का प्रभाव दिन दिन बढ़ता चला जाता है। व्याकरण रूप, शब्द समूह यहाँ तक कि वाक्य विन्यास में भी इस प्रभाव की छाया देखी जा सकती है। आगरा जिले की बोली के नमूनों से स्पष्ट पता चलता है कि इस क्षेत्र के काफी शिक्षित और संस्कृत लोग अब भी आपस की बोलचाल में ब्रजभाषा का प्रयोग करना पसन्द करते हैं, पर उनके भाव आधुनिक चिन्तन से सम्बद्ध हैं जिन्हें ठेठ ब्रजभाषा में समुचित रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इसका फल यह होता है कि वक्ता के विचार तो स्टैण्डर्ड हिन्दी की शैली से लिये होते हैं पर उन्हें ब्रजभाषा में ढाला जाता है'।[1]

---

१. खड़ी बोली का ब्रजभाषाकरण—डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी-राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ५०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा की रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति पनप रही है 'पूंछरी कौ लौठा' में तो ऐसे प्रयोगों की प्रबलता है।

आज भी ब्रजभाषा का प्रयोग करने वाले और बोलने वालों की संख्या संसार के अनेक राष्ट्रों की भाषाओं के बोलने वालों से अधिक है, आज भी यह जीवन्त भाषा है। इसमें रचना करने वालों की संख्या सहस्रों में है तथा साम्प्रतिक युग की सभी विधाओं का साहित्य सृजन होता है। भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोग, नवीन शिल्प और नव शब्दावली का समावेश, इसे प्रत्यात्मक रूप में उन्नत पथ पर प्रगामी बना रहा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जासु, तासु ब्रजभाषा के मध्यम पुरुष एक वचन कर्ता के साथ क्रिया में इकार का आगम हो जाता है जैसे करि, विचरि, सुमरि, तजि, हठि आदि।

उत्तरमध्यकाल में भी उक्त सभी प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। इस काल का ब्रजभाषा साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। इस युग की भाषा सर्वोत्कृष्ट प्रौढ़ प्राञ्जल एवं परिनिष्ठित है। यही पूर्व और उत्तर मध्य काल ब्रजभाषा के चरमोत्कर्ष का काल है। इस मध्यकाल में भारत के ब्रजभाषेतर प्रदेशों के लोगों ने रचनाएँ की हैं जिनमें प्रान्तीय पुट एवं भाषा में अनुकरणपरक प्रयोग हैं जो बहु प्रयुक्त एवं अल्पप्रयुक्त दोनों प्रकार के तो हैं ही कुछ प्रयोग अप्रयुक्त भी मिल जाते हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा में गद्य भी लिखा गया है।

ब्रजभाषा का आधुनिक काल अठारह सौ से प्रारम्भ होता है। इस युग के लगभग एक सौ पिचत्तर वर्षों तक ब्रजभाषा का साहित्य के क्षेत्र में एकमात्र आधिपत्य रहा। श्रेष्ठ रचनाओं में भाषा के सवाँर-सुधार के अनेक प्रयत्न हुए। श्री लल्लू जी लाल के समय से तो पारस्परिक शैली को त्याग कर ब्रजभाषा ने नवीन शैली को भी अपनाया। शैली तत्व के साथ साथ भाषा में भी परिष्कार आया, वाक्य गठन के अभिनव प्रयोग हुए। खड़ी बोली के प्रचार से सं० १९७५ के पश्चात् ब्रजभाषा का स्थान धीरे धीरे खड़ी बोली लेती चली गई। इसका आशय यह कदापि नहीं कि ब्रजभाषा रचना होना बन्द हो गया, आज भी ब्रजभाषा के सहस्रों कवि और साहित्यिक अवस्थित हैं। आधुनिक ब्रजभाषा के सात रूप मिलते हैं :—

(१) केन्द्रीय ब्रज—अलीगढ़, मथुरा पश्चिमी आगरा।
(२) बुन्देली से प्रभावित ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में बोली जाती है।
(३) भदावरी ब्रज—आगरा का पूर्वी भाग एवं ग्वालियर में।
(४) जयपुरी से प्रभावित ब्रज—भरतपुर और उसके दक्षिण में बोली जाती है।
(५) सिकरवारी ब्रज—ग्वालियर के उत्तर पूर्व में।
(६) जादोवाटी ब्रज—करौली तथा चम्बल के भूभाग में।
(७) कन्नौजिया ब्रज—एटा, तहसील अनूपशहर और तहसील अतरौली।

खड़ी बोली का ब्रजभाषाकरण

आधुनिक ब्रजभाषा में खड़ी बोली के प्रयोगों को आत्मसात् करने की नवप्रवृत्ति आई है जो बोलचाल और लिखित दोनों ही रूपों में विद्यमान है। 'आधुनिक बोलचाल की ब्रजभाषा पर स्टैन्डर्ड हिन्दी का प्रभाव दिन दिन बढ़ता चला जाता है। व्याकरण रूप, शब्द समूह यहाँ तक कि वाक्य विन्यास में भी इस प्रभाव की छाया देखी जा सकती है। आगरा जिले की बोली के नमूनों से स्पष्ट पता चलता है कि इस क्षेत्र के काफी शिक्षित और संस्कृत लोग अब भी आपस की बोलचाल में ब्रजभाषा का प्रयोग करना पसन्द करते हैं, पर उनके भाव आधुनिक चिन्तन से सम्बद्ध हैं जिन्हें ठेठ ब्रजभाषा में समुचित रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इसका फल यह होता है कि वक्ता के विचार तो स्टैण्डर्ड हिन्दी की शैली से लिये होते हैं पर उन्हें ब्रजभाषा में ढाला जाता है'।[1]

---

१. खड़ी बोली का ब्रजभाषाकरण—डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी-राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ५०५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा की रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति पनप रही है 'पूंछरी कौ लौठा' में तो ऐसे प्रयोगों की प्रबलता है।

आज भी ब्रजभाषा का प्रयोग करने वाले और बोलने वालों की संख्या संसार के अनेक राष्ट्रों की भाषाओं के बोलने वालों से अधिक है, आज भी यह जीवन्त भाषा है। इसमें रचना करने वालों की संख्या सहस्रों में है तथा साम्प्रतिक युग की सभी विधाओं का साहित्य सृजन होता है। भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोग, नवीन शिल्प और नव शब्दावली का समावेश, इसे प्रत्यात्मक रूप में उन्नत पथ पर प्रगामी बना रहा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

खुसरो का जनकाव्य

⊙

श्री महावीर सिंह शर्मा

उर्दू के शेर को लोग किसी भी उपयुक्त अवसर पर सुना कर जहाँ अपनी बहुज्ञता का परिचय देते हैं वहाँ सभी का मनोरंजन भी करते हैं। उर्दू के शेरों की नाजुक खयाली और कवि का उक्ति वैचित्र्य जहाँ वाक् चातुरी का प्रतिदर्श होता है वहाँ उसमें जनमनग्राहकता भी प्रचुर मात्रा में होती है और वह श्रोता और पाठक के मानस पटल पर सहज ही अल्पायास से अंकित हो जाता है। भारतीय साहित्य नीति रचनाओं के क्षेत्र में, जिसमें मनोरंजन का अभाव रहता है पर मनोज्ञता बहुलांश में होती है, प्रभूत समृद्ध है। ज्ञान और मनोरंजन दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध प्रकीर्ण साहित्य जिसे क्लब लिट्रेचर की कोटि में लिया जा सकता है की रचना हिन्दी में अल्पमात्रा में हुई है। विदेशी साहित्य ऐसी रचनाओं से भरापूरा है। इसका कारण तो यह है कि भारतीय मानस अध्यात्म की ओर प्रवृत्त था, उसे ऐहिक सुखों और लिप्साओं में रुचि न थी। फलतः भारत में ऐसा साहित्य प्रचुरमात्रा में सृजित नहीं हुआ परन्तु उसका सर्वथा अभाव भी नहीं रहा। हिन्दी के आदिकाल में इस विधा को पनपाने के प्रयास किये गये थे। उनके मूल में प्रेरणा फारसी और अरबी के साहित्य की ही रही परन्तु आपाततः वे भारतीय ही थे। वैभव और राजसी वातावरण में पोषित एवं जीवन यापन करने वाले कवि अमीर खुसरो हिन्दी के एक ऐसे कवि थे जिन्होंने जन मानस को उल्लसित करने वाले काव्य की रचना की। उन्होंने जहाँ सामान्य ज्ञानवान व्यक्तियों के लिए रचना की वहाँ स्त्रियों और बच्चों के मनोरंजन के लिए भी, साहित्यिक मानदण्डों के अनुसार वह श्रेष्ठ कोटि का तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनमें अश्लीलता की गंध आती है यद्यपि वह श्लील साहित्य है पर श्लीलता की सीमा का उल्लंघन उसमें पदे पदे दृष्टिगत होता है। खुसरो के इसी प्रकार के साहित्य का परिचय निम्न पंक्तियों में नीचे प्रस्तुत है :—

(१) कसके छाती पकड़े रहे। मुंह से बोले न बात कहै।
ऐसा है कामिनि का रंगिया। ऐ सखि साजन ना सखि अंगिया।

(२) पड़ी थी मैं अचानक चढ़ आयो। जब उतर्‌यो तो पसीनो आयो।
सहम गई नहिं सकी पुकार। ऐ सिख साजन ना सखि बुखार॥

(३) बन ठन के सिंगार करे। घर मुंह पर मुंह प्यार करे।
प्यार से मोपै देत है जान। ए सखि साजन ना सखि पान॥

(४) छोटा मोटा अधिक सोहाना। जो देखे सो होय दिवाना।
कभी वह बाहर कभी वह अंदर। ऐ सखि साजन ना सखि बंदर॥

(५) वाको रगड़ा नीको लागे। चढ़े जोबन पै मजा दिखावै।
उतरत मुंह का फीका रंग। ऐ सखि साजन ना सखि भंग।

(६) रात समय वह मेरे आवे। भोर भये वह घर उठ जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा। ऐ सखि साजन ना सखि तारा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(७) लौंड़ी भेज उसे बुलवाया। नंगी होकर मैं लगवाया।
हमसे उससे हो गया मेल। ए सखि साजन ना सखि तेल॥

(८) मोको तो हाथी को भावे। घटे बढ़े पर मोय न सुहावे।
ढूंढ़ ढांढ़ के लाई पूरा। क्यों सखि साजन ना सखि चूड़ा॥

(९) न्हायधोय सेजमेरी आयो। ले चूंमा मुंह मुंहहिं लगायो।
इतनी बात पै थुक्कम थुक्का। ए सखि साजन ना सखि हुक्का॥

(१०) सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भये तब बिछुरन लागा।
वाके बिछुरत फटै हिया। ए सखि साजन ना सखि दीया॥

(११) मेरा मुंह पौंछे मोकों प्यारे करे। गरमी लगें तो बयार करे।
ऐसा चाहत सुन यह हाल। ए सखि साजन ना सखि रूमाल॥

(१२) सेज पड़ी मेरी आंखों आया। डाल सेज मोहिमजा दिखाया।
किससे कहू, मजा मैं अपना। ए सखि साजन ना सखि सपना॥

(१३) वाट चलत मोरा अचरा गहे। मेरी सुने न अपनी कहे।
ना कुछ मोसो झगड़ा झांटा। ए सखि साजन ना सखि कांटा॥

(१४) धमक चढ़ै सुध बुध विसरावे। दाबत जांघ बहुत सुख पावै।
अति बलवंत दिनन का थोड़ा। ए सखि साजन न सखी घोड़ा॥

(१५) उठा दोनों टांगन बिच डाला। नाप तोल में देखा भाला।
मोल तौल में है वह महंगा। ए सखि साजन ना सखि लंहगा॥

(१६) आठ अंगुल का है वह असली। उसके हड्डी ना उसके पसली।
लटा धारी गुरु का चेला। ए सखि साजन ना सखि केला॥

(१७) देखन में वह गांठ गठीला। चाखन में वह अधिक रसीला।
मुंख चूंमूं तो रस का भांडा। ए सखि साजन ना सखि गांडा॥

(१८) उमड़ घुमड़ कर वह जो आया। अंदर मैंने पलंग बिछाया।
मेरा वाका लागा नेह। ए सखि साजन ना सखि मेह॥

(१९) मुख मेरा चूमत दिन रात। होठैं लागत कहत नहीं बात।
जासे मेरी जगत में पत। ऐ सखि साजन ना सखि नथ॥

(२०) सगरी रैन छतिअन पर राखा। रंग रूप सब वाका चाखा।
भोर भई जब दिया उतार। ए सखि साजन ना सखि हार॥

(२१) हुमक हुमक पकड़े मेरी छाती। हंस हंस मैं वा खेल खिलाती॥
चौक पड़ी जो पायो खड़का। ए सखि साजन ना सखि लड़का॥

इसी प्रसंग में दिल्ली की भटियारिन चम्मू के विषय में लिखा हुआ एक ढकोसला उद्धृत करना विषयानुकूल होगा। ढकोसला इस प्रकार है :—

"औरों की चौपहरी बाजे। चम्मू की अठपहरी।
बाहर का कोई कोई आए नांही। आएँ सारे सहरी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

खुसरो का जनकाव्य

श्री महावीर सिंह शर्मा

उर्दू के शेर को लोग किसी भी उपयुक्त अवसर पर सुना कर जहाँ अपनी बहुज्ञता का परिचय देते हैं वहाँ सभी का मनोरंजन भी करते हैं। उर्दू के शेरों की नाजुक खयाली और कवि का उक्ति वैचित्र्य जहाँ वाक् चातुरी का प्रतिदर्श होता है वहाँ उसमें जनमनग्राहकता भी प्रचुर मात्रा में होती है और वह श्रोता और पाठक के मानस पटल पर सहज ही अल्पायास से अंकित हो जाता है। भारतीय साहित्य नीति रचनाओं के क्षेत्र में, जिसमें मनोरंजन का अभाव रहता है पर मनोज्ञता बहुलांश में होती है, प्रभूत समृद्ध है। ज्ञान और मनोरंजन दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध प्रकीर्ण साहित्य जिसे क्लव लिट्रेचर की कोटि में लिया जा सकता है की रचना हिन्दी में अल्पमात्रा में हुई है। विदेशी साहित्य ऐसी रचनाओं से भरापूरा है। इसका कारण तो यह है कि भारतीय मानस अध्यात्म की ओर प्रवृत्त था, उसे ऐहिक सुखों और लिप्साओं में रुचि न थी। फलतः भारत में ऐसा साहित्य प्रचुरमात्रा में सृजित नहीं हुआ परन्तु उसका सर्वथा अभाव भी नहीं रहा। हिन्दी के आदिकाल में इस विधा को पनपाने के प्रयास किये गये थे। उनके मूल में प्रेरणा फारसी और अरबी के साहित्य की ही रही परन्तु आपाततः वे भारतीय ही थे। वैभव और राजसी वातावरण में पोषित एवं जीवन यापन करने वाले कवि अमीर खुसरो हिन्दी के एक ऐसे कवि थे जिन्होंने जन मानस को उल्लसित करने वाले काव्य की रचना की। उन्होंने जहाँ सामान्य ज्ञानवान व्यक्तियों के लिए रचना की वहाँ स्त्रियों और बच्चों के मनोरंजन के लिए भी, साहित्यिक मानदण्डों के अनुसार वह श्रेष्ठ कोटि का तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनमें अश्लीलता की गंध आती है यद्यपि वह श्लील साहित्य है पर श्लीलता की सीमा का उल्लंघन उसमें पदे पदे दृष्टिगत होता है। खुसरो के इसी प्रकार के साहित्य का परिचय निम्न पंक्तियों में नीचे प्रस्तुत है :—

(१) कसके छाती पकड़े रहे। मुंह से बोले न बात कहै।
ऐसा है कामिनि का रंगिया। ऐ सखि साजन ना सखि अंगिया।

(२) पड़ी थी मैं अचानक चढ़ आयो। जब उतर्‌यो तो पसीनो आयो।
सहम गई नहिं सकी पुकार। ऐ सिख साजन ना सखि बुखार॥

(३) बन ठन के सिंगार करे। घर मुंह पर मुंह प्यार करे।
प्यार से मोपै देत है जान। ए सखि साजन ना सखि पान॥

(४) छोटा मोटा अधिक सोहाना। जो देखे सो होय दिवाना।
कभी वह बाहर कभी वह अंदर। ऐ सखि साजन ना सखि बंदर॥

(५) वाको रगड़ा नीको लागे। चढ़े जोबन पै मजा दिखावै।
उतरत मुंह का फीका रंग। ऐ सखि साजन ना सखि भंग।

(६) रात समय वह मेरे आवे। भोर भये वह घर उठ जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा। ऐ सखि साजन ना सखि तारा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(७) लौंड़ी भेज उसे बुलवाया। नंगी होकर मैं लगवाया।
हमसे उससे हो गया मेल। ए सखि साजन ना सखि तेल॥

(८) मोको तो हाथी को भावे। घटे बढ़े पर मोय न सुहावे।
ढूंढ़ ढांढ़ के लाई पूरा। क्यों सखि साजन ना सखि चूड़ा॥

(९) न्हायधोय सेजमेरी आयो। ले चूंमा मुंह मुंहहिं लगायो।
इतनी बात पै थुक्कम थुक्का। ए सखि साजन ना सखि हुक्का॥

(१०) सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भये तब बिछुरन लागा।
वाके बिछुरत फटै हिया। ए सखि साजन ना सखि दीया॥

(११) मेरा मुंह पौंछे मोकों प्यारे करे। गरमी लगें तो बयार करे।
ऐसा चाहत सुन यह हाल। ए सखि साजन ना सखि रूमाल॥

(१२) सेज पड़ी मेरी आंखों आया। डाल सेज मोहिमजा दिखाया।
किससे कहू मजा मैं अपना। ए सखि साजन ना सखि सपना॥

(१३) वाट चलत मोरा अचरा गहे। मेरी सुने न अपनी कहे।
ना कुछ मोसो झगड़ा झांटा। ए सखि साजन ना सखि कांटा॥

(१४) धमक चढ़ै सुध बुध विसरावे। दाबत जांघ बहुत सुख पावै।
अति बलवंत दिनन का थोड़ा। ए सखि साजन न सखी घोड़ा॥

(१५) उठा दोनों टांगन बिच डाला। नाप तोल में देखा भाला।
मोल तौल में है वह महंगा। ए सखि साजन ना सखि लंहगा॥

(१६) आठ अंगुल का है वह असली। उसके हड्डी ना उसके पसली।
लटा धारी गुरु का चेला। ए सखि साजन ना सखि केला॥

(१७) देखन में वह गांठ गठीला। चाखन में वह अधिक रसीला।
मुंख चूंमूं तो रस का भांडा। ए सखि साजन ना सखि गांडा॥

(१८) उमड़ घुमड़ कर वह जो आया। अंदर मैंने पलंग बिछाया।
मेरा वाका लागा नेह। ए सखि साजन ना सखि मेह॥

(१९) मुख मेरा चूमत दिन रात। होठैं लागत कहत नहीं बात।
जासे मेरी जगत में पत। ऐ सखि साजन ना सखि नथ॥

(२०) सगरी रैन छतिअन पर राखा। रंग रूप सब वाका चाखा।
भोर भई जब दिया उतार। ए सखि साजन ना सखि हार॥

(२१) हुमक हुमक पकड़े मेरी छाती। हंस हंस मै वा खेल खिलाती॥
चौक पड़ी जो पायो खड़का। ए सखि साजन ना सखि लड़का॥

इसी प्रसंग में दिल्ली की भटियारिन चम्मू के विषय में लिखा हुआ एक ढकोसला उद्धृत करना विषयानुकूल होगा। ढकोसला इस प्रकार है :—

"औरों की चौपहरी बाजे। चम्मू की अठपहरी।
बाहर का कोई कोई आए नांही। आएँ सारे सहरी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साफ साफ कर आगे राखे, जा मे नाहीं तूसल।
औरों के जहाँ सींक समाए, चम्मू के बहाँ मूसल॥

इस चम्मू भटियारिन के पास नगर के लुच्चे लफंगे भांग पीने जाते थे और जब कभी अमीर खुसरो उधर से निकलते थे वह हुक्का लेकर सामने खड़ी हो जाती थी। एक दिन उसने अमीर खुसरो से कहा कि बंदी के नाम पर भी कुछ कह दें। तब ही अमीर खुसरो ने यह ढकोसला लिखा। उन दिनों बादशाह के महल पर चौपहरी नौबत बजती थी पर चम्मू के यहाँ आठों पहर भांग घुटती रहती थी। भांग इतनी गाढ़ी बनती थी कि लोग कहते थे कि इसमें मूसल भी खड़ा रह सकता है। उक्त ढकोसला बड़ा जनप्रिय बना और अमीर खुसरो के सम्पर्क से चम्मू भटियारिन अमर हो गई।

स्त्रियों और बच्चों के लिए भी अनेक रचनाएँ अमीर खुसरो ने रचीं जो अत्यन्त रुचिकर हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नीराजना

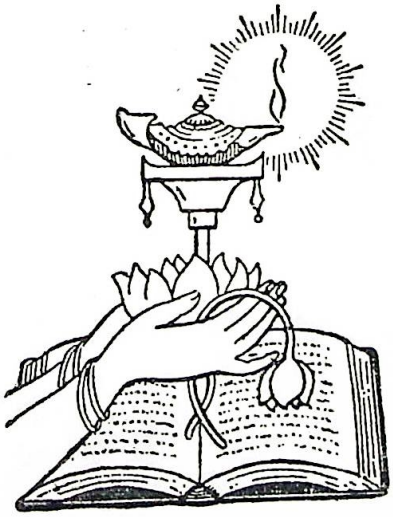

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सांख्यदर्शन की दृष्टि से पुष्टिमार्गीय सेवा का महत्व

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल

एम० ए०, पी-एच० डी०

पुष्टिमार्ग मुख्यतः भक्ति मार्ग है। भक्ति ने वेदान्त का बाना इसी मार्ग में पहना है। यद्यपि स्थूल दृष्टि से सिद्धान्त और व्यवहार में भेद है अतः दृष्टि से हम दर्शन और भक्ति के लिए 'शुद्धाद्वैत' और 'पुष्टिमार्ग' इन दो शब्दों का व्यवहार करते हैं, किन्तु सिद्धान्त यदि व्यवहार का रूप नहीं लेता तो वह निकम्मा ही रहता है और वाग्विलास मात्र है, जो केवल कल्पना की पटरी पर चलता है। पुष्टिमार्ग में त्रिविध सेवा—राग, भोग और शृंगार की व्यवस्था सेवा-पद्धति को पूर्ण दार्शनिक बनाने के लिए ही है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए हमें आचार्य वल्लभ के प्रमुख दार्शनिक दृष्टिकोणों पर विचार करना होगा। आचार्य शुद्धाद्वैत के प्रवर्त्तक हैं। उनकी दार्शनिक निष्ठा सांख्यनिष्ठा है। यह सांख्य निष्ठा आचार्य के प्रस्थान चतुष्टयों[1] में से 'श्रीकृष्णवाक्य' अर्थात् गीता एवं समाधि भाषा श्रीमद्भागवत के आधार पर विशेष रूप से है। सांख्य दर्शन पर महाभारतकार की भी गहरी आस्था है अतः गीता में 'ज्ञानयोगेनसांख्यानां' भगवान् के श्रीमुख से कहला कर महाभारत के मोक्षधर्म पर्व में अनेक अध्यायों में सांख्य की चर्चा बड़े समारोह और विस्तार से की गई है। श्रीमद्भागवत का एकादश स्कन्ध संपूर्ण भागवत का उपसंहार है। उसमें पूर्व के सभी स्कन्धों की संपूर्ण दार्शनिक विचारधाराओं का उपसंहार रूप से पुनर्विचार हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण की स्वीय निष्ठा भी सांख्य दर्शन में बताई गई है। वे अपनी नित्य जीवन चर्या में प्रकृति से परे प्रधान पुरुषेश्वर का ध्यान करते हैं।[2] इस प्रकार सांख्य दर्शन का भारतीय साहित्य में सर्वोच्च स्थान है। महाभारत में कहा गया है कि कपिल आदि भगवद् विभूतियों ने इसका प्रतिपादन किया है, इस सिद्धान्त में किसी प्रकार की भूल नहीं, वरन् गुण ही गुण हैं, दोषों का सर्वथा अभाव है।[3] सांख्य योगी चौबीस तत्वों का निरूपण करते हैं और इनसे ऊपर पच्चीसवां तत्व आत्मा का बोध प्राप्त करते हैं। आत्म तत्व के बोध के पूर्व इन्द्रिय, मन और बुद्धि के नियामक तत्व-सतोगुण, रजोगुण-तमोगुणादि के व्यापारों की विस्तृत चर्चा के कारण सांख्य शास्त्र अन्य शास्त्रों

---

१. वेदा श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि। त० दी० नि०

२. ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम्। १०।६९।३०
एकं स्वयं ज्योति। १०।७०।५

३. विहितंयतिभिः सर्वैः कपिलादिभिरीश्वरैः।
यस्मिन् न विभ्रमा केचिद् दृश्यन्तमनुजर्षभ।
गुणाश्च यस्मिन् बहवो दोष हानिश्च केवला॥ महा० मोक्ष० ३०१।३-४

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से बुद्धिगम्य हो जाता है। ये त्रिगुण बुद्धि के धर्म हैं आत्मा के नहीं। उसमें भी तमोगुण उसका प्रधान आश्रय है।[1] तमोगुण ही जीवात्मा को शाश्वत आनंद पद अथवा मोक्षबुद्धि से वंचित रखता है। कहा जाता है—'सहस्रेषु नरः कश्चिन्मोक्ष बुद्धि समाश्रितः।' तमोगुण ही मन समेत ग्यारह इन्द्रियों को दुःखरूप-शब्द स्पर्शादि विषयों में फँसाता है। और बुद्धि उसमें प्रधान सहायक होती है। इसीलिए जीवात्मा के देह को दोषायतन कहा गया है।[2] काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास ये पांच दोष शरीर के हैं। आचार्य वल्लभ ने भी सहज, देशज, कालज, संयोगज, स्पर्शज पांच दोषों को स्वीकार किया है। ये पांचों ही इन्द्रिय—मन-बुद्धि को प्रभावित करते हुए इन्हें सदोष बनाते हैं। इस प्रकार वल्लभ की पांच दोषों की कल्पना सांख्यमतानुकूल ही है, और इन पांचों का अन्तर्भाव अन्ततोगत्वा सहज-देशज आदि दोषों में ही हो जाता है। दोषों में सब से महान् दोष मोह है जो घोर तमोगुण का परिणाम है। सांख्य में मोह का आश्रय अथवा कारण तमोगुण है और लोभ के आश्रय अथवा कारण इन्द्रियों के विषय हैं।[3]

दोषों की इस अनिवार्यता और अपरिहार्यता का गहरा अनुभव सभी भक्त्याचार्यों ने किया है। शांकर वेदान्त में जीव के अज्ञान और तज्जन्य दोषों की बड़ी निन्दा है। वेदान्त ने भी इनको अनिवार्य मान कर इतना दुस्त्यज माना है कि जीव को साधन-पथ में निराशा आने लगती है। शांकरी वेदान्त का प्रवेश-द्वार ही इतनी उच्च भूमि पर स्थित है कि साधक प्रवेश द्वार की भूमि तक पहुंचते-पहुंचते या तो समाप्त हो लेता है या समाप्तप्राय हो जाता है। पहुंच भी जाय तो पतन का भय तो लगा ही रहता है। निर्गुण सन्तों ने उस राह को रपटीली और स्थिति की भूमि को 'गगन मंडल' बताया है। 'सुरदुर्लभपदादपि' पतन की इस मयावही भूमिका पर जाने का साहस फिर भला किसे होगा। दारागारपुत्र आप्त और वित्त की मोहमयी भवाटवी से सकुशल निकलना और इनकी चिन्ता व्याली से पिण्ड छुड़ाना कम से कम शांकरी वेदान्त मार्ग से यदि नितान्त असंभव नहीं तो दुस्तर अवश्य है। इसीलिए भक्त्याचार्यों को भक्ति के राजमार्ग पर चलने चलाने का आग्रह स्वीकारना पड़ा। वल्लभ पूर्व आचार्यों ने भक्तिमार्ग के अवलंबन के लिए वैदिकी-तान्त्रिकी क्रियायोगों का विधान किया है।[4] अर्चा विग्रह की स्थापना में श्रद्धा रखना श्रेष्ठ बताया है।[5] किन्तु वल्लभ पूर्व भक्ति सिद्धान्तों में शास्त्रीय मर्यादा का कटघरा भक्त और भगवान् को जीवन में बहुत दूर तक और बहुत देर तक एकाकार नहीं होने देता। शास्त्र मर्यादा और उपास्य-उपासक भेद का द्वैत आराध्य से प्रेमाद्वैत की स्थिति लाने में बहुत विलंब कर देता है। अतः अभीष्ट तन्मयता का त्वरित नुस्खा इन वल्लभपूर्व भक्त्याचार्यों के पास साधक कठिनाई से पाता है।

---

१. बुद्धिं तमसि संसक्तां तमो रजसि संश्रितम्। ३०१-२२
२. पंचदोषान प्रमोदेहे प्रवदन्ति मनीषिणः। मोक्ष० ३०१-५५
३. मोहं तमसि संयुक्तं लोभमर्थेषु संश्रितम्। मोक्ष० ३०१-१९
४. (अ) नाना तंत्र विधानेन कलावपि यथा शृणु। भाग० ११।५।३१
५. वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रत धारणम्।
ममार्चास्थापने श्रद्धास्वतः संहत्य चोद्यमः। भाग० ११।११।३७-३८

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आचार्य वल्लभ का विलक्षण भक्तिमार्ग[1] इस दृष्टि से सब से आगे बाजी मार ले जाता है। अन्य उपासना मार्ग में तांत्रिक क्रियाओं की बहुलता और उपासना पद्धति की जटिलताओं से मानव बुद्धि मोह-ग्रस्त हो जाती है। यदि सांसारिकता से नहीं तो कम से कम क्रियापद्धति का मोह और वर्णाश्रमाचार का मूढ़ाग्रह तो साधक को अटकाए ही रखता है। इस स्थिति में साधक या तो लक्ष्य पर पहुंच नहीं पाता या कमर तोड़ विलम्ब के कारण निराश हो जाता है। इसका उपचार वल्लभ भक्ति मार्ग में सरलता से मिल जाता है। आचार्य ने पुष्टि मार्ग में 'सेवा तत्व' को बहुत ही महत्व दिया है। ब्रह्म सम्बन्ध या दीक्षा के उपरान्त साधक की संज्ञा 'सेवक' हो जाती है। वह शिष्य नहीं सेवक है। 'सेवक सो जो करे सेविकाई' के सिद्धान्तानुसार यह सेवा केवल गुरु या आचार्य की नहीं आचार्य प्रदत्त सेव्य निधि की है। उसी का वह 'सेवक' होता है और उनकी 'ममार्चा स्थापने श्रद्धा' के अनुसार अपने श्रद्धेय अर्चा विग्रह को जिस संप्रदाय में 'स्वरूप' संज्ञा दी जाती है[2] –लेकर सेवा मार्ग में प्रवृत्त होता है।

स्वरूप सेवा की विधि पुष्टिमार्ग में देश-काल-पात्रानुकूल रहती है। संप्रदाय का वार्ता साहित्य इसका प्रमाण है। वहां किसी विशिष्ट आचार, विशिष्ट सेवा प्रकार, विशिष्ट साधन व्यापार, विशिष्ट व्यवहार अथवा शैली विशेष का आग्रह नहीं केवल सेवक का 'भाव' ही मुख्य है। हृद्गत श्रद्धामय 'भाव' पर ही आचार्य का सर्वाधिक बल है। 'भाव' भावना से सिद्ध होता है।[3] इसीलिए आचार्य ने संन्यास निर्णय में लिखा है— 'भावना साधनं यत्र'[4] भावना ही साधन है वही प्रेम को पुष्ट करती है। और प्रेम-परित्याग अथवा सर्वस्व त्याग की सिद्धि की ओर ले जाता है। सर्वस्व त्याग ही श्रेष्ठ सेवक का लक्षण है। श्रेष्ठ सेवक में ही चरम आज्ञाकारिता (श्रोतुमिच्छा-शुश्रूषा) का पूरा स्वरूप घटित होता है। पुष्टि मार्ग में यही 'सेवा' प्रमुख है। भगवत्सेवा का यह मार्ग सेवा-निष्ठा और भावाधीन सेवा के ही कारण तंत्र प्रधान अन्य उपासनादि भक्ति मार्गों से विलक्षण हो गया है।

स्वरूप प्रतिष्ठा में सेवक अपने सेव्य भगवत्स्वरूप से अपना कोई न कोई व्यक्तिगत नाता-रिश्ता या सम्बन्ध स्वकीय मानसिक रुचि के बल पर स्थापित कर लेता है। भले ही वह सम्बन्ध माता, पिता, गुरु, स्वामी, पति किसी भी रूप में हो, इस निज सम्बन्ध स्थापन से उसकी भाव-निष्ठा पुष्ट होती चलती है। भाव-निष्ठा के क्रमशः पोषण के साथ साथ सेवा में निखार या सौष्ठव के साथ सेवा-विस्तार पर आस्था स्वयमेव ही जम जाती है और सेवक के लिए उसके अपने सेव्य (भगवत्स्वरूप) निजजन हो जाते हैं।

पुष्टिमार्ग में सेवा तीन प्रकार की है। तनुजा, वित्तजा और मानसी। भगवन्मंदिर में स्वरूप के उत्थापन से ले कर शृंगार, भोग-आरती से लेकर शयन पर्यन्त की सेवा 'तनुजा' है। यह शयन पर्यन्त की स्वरूप

---

१. गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने आचार्य वल्लभ को 'विलक्षण भक्ति मार्ग' का प्रवर्तक बताते हुए अन्य उपासना मार्ग में अति मुग्ध व्यक्तियों के मोह का निवारक बताते हुए उन्हें विलक्षण भगवन्मार्ग का अनुभवी बताया है। देखो—सर्वो स्तो० श्लोक सं० २४ उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकः। भक्ति-मार्गेसर्व मार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत्।

२. संप्रदाय में स्वरूप और मूर्ति में भेद है। सेव्य स्वरूप साक्षात् भगवान् हैं, वे प्रतीक मात्र नहीं।

३. भावोभावनया सिद्धः।

४. सं० नि० श्लोक १०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सेवा सेवक के देहेन्द्रिय अन्तःकरण का भगवद् योग है। देह-इद्रिय-मन के भगवद्-संयोग के कारण इनके अर्थों (विषयों) की सात्विक तृप्ति स्वयमेव होती चलती है। साधारणतः इन्द्रियां और मन अपने प्रिय विषयों को सरलता से नहीं छोड़ते। इन्हें अपने अपने विषय तो चाहिए ही चाहिए। पुष्टिमार्गीय त्रिविध सेवा-पद्धति में भगवद्विनियोग के माध्यम से सभी इन्द्रियों को अपने अपने विषयों की उपलब्धि होती है। समस्त इन्द्रियों में बलवती इन्द्रिय जिह्वा है। कहा भी है, 'जितंसर्वजितेरसे।' जिह्वा की तृप्ति भगवान् को समर्पित विविध नैवेद्यों के उपरांत उन विविध प्रकार के भगवत्प्रसादों से जिस प्रकार होती है; वैसी जिह्वालौल्य के वश बनाए पदार्थों से नहीं। फिर सुखद बात यह है कि सेवक का लक्ष्य अपने प्रभु को समर्पण करना और खिलाना ही रहता है, इस प्रकार पुष्टिमार्गीय भोग सेवा में प्रभु ही मुख्य हैं सेवक का जिह्वालौल्य तो धीरे-धीरे गौण होता चलता है। राग सेवा में सेवक को कीर्तन माध्यम से श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति मिलती है। परंतु संगीत की तानबाजी से सेवक का ध्यान हट कर उसका मन प्रभु के नाम-कीर्तन, गुण-कीर्तन और लीला-कीर्तन पर टिकने लगता है। तीसरी प्रमुख इन्द्रिय नेत्र है। नेत्रों में स्वरूपासक्ति सौन्दर्यासक्ति रहती है। भगवान् की शृंगार सेवा में सेवक को अपने नेत्रों के प्रिय विषय सौन्दर्यासक्ति की असीम संप्राप्ति होने के साथ साथ सेवक की भगवद् आसक्ति को प्रतिक्षण बढ़ावा मिलता चलता है। इन्द्रियार्थों की तृप्ति के साथ सेवा-क्रियाबहुल और क्रिया प्रधान होने से सेवक की देह निरालस्य और मन निरुद्ध होता चलता है। इस प्रकार देहेन्द्रियों की सात्विक व्यस्तता से काम क्रोधादि तामसी भावों का उपशमन हो जाता है। तामसी भावों के उपशमन होते ही सेवा का चरम रूप-मानसी सेवा का आविर्भाव हो जाता है। आचार्य ने 'मानसी सेवा' ही साधक की सर्वश्रेष्ठ स्थिति बताई है—'मानसी सा परामता।' इस प्रकार सांख्य योग में कहे गए देहेन्द्रिय मन और बुद्धि का सात्विक विनियोग जितना पुष्टि मार्गीय सेवा-पद्धति में है उतना अन्यत्र नहीं। चित्त की प्रवणता मन का प्रोत्थित होना ही तो सांख्य दर्शन, योग दर्शन अथवा वेदान्त दर्शन का लक्ष्य है। उसके लिए इन दर्शनों ने जिन जटिल कुटिल उपायों की चर्चा की है उसके लिए आचार्य ने अपने विलक्षण भक्तिमार्ग में ऋजुतम उपाय का सरलतम संकेत दे दिया है। वे कहते हैं—"कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परामता।"[१] अर्थात् कृष्ण सेवा सदा करनी चाहिए, मानसी तो सर्वोत्तम है। मानसी-सेवा की सिद्धि के लिए ही वे कहते—'चेतस्तत्प्रवणं तत्सिद्धये तनुवित्तजा।'[२] सेवा की परिभाषा ही यह है कि चित्त सेव्य में प्रोत्थित (तन्मय) हो जाय। उसके लिए एकमात्र साधन देह और वित्त का विनियोग ही है। सेवा का फल है—ततः संसारदुःखस्यनिवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्।[३] संसार के दुःखों से निवृत्ति और भगवत्स्वरूप का ज्ञान। इस प्रकार पुष्टिमार्ग मुख्यतः सेवा मार्ग है जिसमें सेवा तत्व को वैज्ञानिक पद्धति से दर्शन की कोटि में स्थिर कर दिया गया है।

---

१. सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक १।
२. सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक २।
३. सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हित चौरासी : एक दिव्य भक्ति-काव्य

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

श्री हितहरिवंशजी रचित चौरासी पदों के संग्रह का नाम 'हित चौरासी' है। राधावल्लभ सम्प्रदाय का मूल ग्रंथ यही है। इसी ग्रंथ के आधार पर परवर्ती भक्त-महात्माओं ने राधावल्लभीय तत्व को हृदयंगम किया है। इस सम्प्रदाय में इस ग्रंथ को मूलाधार मान कर सब से अधिक सम्मान दिया जाता है। इस ग्रंथ के चौरासी पदों में हरिवंशजी ने ब्रजभाषा का समस्त माधुर्य उड़ेल दिया है।

इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्राचीन प्रति सत्रहवीं शती की मिलती है। चौरासी शब्द के कारण प्रारम्भ में कुछ लोगों की ग्रंथ को बिना देखे ऐसी धारणा रही कि यह ग्रंथ चौरासी भक्तों का वर्णन करने के लिए लिखा गया है। किन्तु भक्तों के चरित्र वर्णन से इसका प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो शुद्ध रसपद्धति से लिखा गया मुक्तक पदों का संकलन है, जिसे राधा-भावपरक प्रेमलक्षणा-भक्ति का ग्रंथ ही कहा जाना चाहिए। चौरासी योनियों में चक्कर काटने वाले प्राणी को मुक्त करने के लिए चौरासी पदों का संकलन किया गया, ऐसा भी कुछ विद्वान् मानते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इसका नाम 'हरिवंश चौरासी' और अन्य नाम 'हित चौरासी धनी' भी दिया है और इसे चौरासी भक्तों की कथा का वर्णन करने वाला बताया है। यह उल्लेख खोज-रिपोर्ट में दो स्थलों पर हुआ है।[1] किन्तु अद्यावधि राधावल्लभ सम्प्रदाय के किसी ग्रंथ में या किसी प्राचीन हस्तलिखित वाणी में कहीं ऐसा उल्लेख उपलब्ध नहीं हुआ कि श्री हरिवंशजी ने 'हित चौरासी धनी' नाम से कोई भक्त-चरित्र लिखा था। सम्भव है कि किसी महानुभाव ने ग्रंथ का अवलोकन किए बिना यह सूचना दी हो या इस नाम से कोई जाली ग्रंथ रच कर हितहरिवंशजी के नाम से ख्यात किया हो। कुछ भी हो, यह सब मिथ्या और निर्मूल है अतः 'हित चौरासी' को भक्त-कथा न समझ कर मुक्तक पद शैली से लिखा हुआ रसमार्गीय ग्रंथ ही समझना चाहिए।

खोज-रिपोर्टों में हितहरिवंशजी रचित 'हित चौरासी' की अनेक हस्तलिखित प्रतियों के उपलब्ध होने की सूचना है जो पहले मृषावाद का स्वयं खंडन कर देती है। लेखक ने स्वयं वृन्दावन में तीन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं जो तीन सौ वर्ष प्राचीन हैं और अपने स्वरूप, आकार-प्रकार, वर्ण-विन्यास, कागज आदि के बाह्याकार से ही पुरानी प्रतीत होती हैं।

साम्प्रदायिक विद्वेष-भावना के कारण कुछ लोगों ने हित चौरासी को सूरदास की रचना सिद्ध करने

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण--प्रथम भाग, सम्पादक-बाबू श्यामसुन्दरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ ४८-१२०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का भी प्रयास किया है जिसे समस्त ऐतिह्य की अवहेलना करने वाला मिथ्या प्रयास ही समझना चाहिए। सरस्वती पत्रिका में पटना-निवासी एक गोस्वामी महोदय ने कल्पित नाम से 'हित चौरासी और सूरदास' शीर्षक लेख लिखकर पांच पदों का ज्यों का त्यों सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस वाली प्रति) से उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उनके रचयिता सूरदास जी थे। अपने पक्ष में युक्ति देते हुए लिखा कि हितहरिवंश जी की मातृ-भाषा बोलचाल की भाषा ब्रज नहीं थी। वे देवबन्द (सहारनपुर) के रहने वाले थे। परिपक्व आयु में वृन्दावन आकर इतनी प्रांजल भाषा लिखना उनके लिए सुगम न था। अतः हित चौरासी के पद सूरदास प्रणीत हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय वालों ने जबरदस्ती उन्हें अपना कर हित चौरासी नाम दे दिया है। किन्तु उन्होंने न तो ऐतिहासिक प्रमाणों की छानबीन की चेष्टा की और न किसी परम्परा का अनुसंधान किया। साम्प्रदायिक तथा साहित्यिक दोनों परम्पराओं में हितहरिवंश रचित 'हित चौरासी' ग्रंथ हितजी के समय से ही प्रसिद्ध हुआ चला आ रहा है। इस ग्रंथ को उपजीव्य मान कर सेवक जी, व्यासजी, ध्रुवदास जी ने उसके सिद्धान्तों का भाष्य, टीका, वृत्ति आदि लिखी थी। यदि चौरासी के पद उस समय से ही प्रसिद्ध न होते तो इन महानुभावों को उसके अनुगमन का आश्रय कैसे मिलता।

एक और प्रबल तर्क यह है कि 'हित चौरासी' नाम संख्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है। अर्थात् यह चौरासी पदों का ही संग्रह हो सकता है। सूरदास के पदों की संख्या अद्यावधि निश्चित नहीं है। यदि वे पांच या छः पद चौरासी के न हो कर सूरदास के माने जायें तो ग्रंथ के नाम की सार्थकता नहीं रहती। अतः हित चौरासी में जो पद संकलित हैं वे तो प्रारम्भ से इसी रूप में चले आ रहे हैं। पक्षपात या प्रमादवश लिपिकारों ने इन पदों को सूर की रचनाओं में 'छाप परिवर्तन' कर के समाविष्ट कर दिया है। यथार्थ में वे हितहरिवंशजी की ही रचना है।

हित चौरासी एक मुक्तक पद-रचना है जिसमें भाववस्तु का कोई व्यक्त कोटिक्रम नहीं है। समय प्रबन्ध की दृष्टि से कुछ महानुभावों ने कालक्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है जो अनिवार्य रूप से मान्य नहीं कही जा सकती। श्री रूपलाल गोस्वामी ने हित चौरासी के पदों को समय-प्रबन्ध में इस प्रकार वर्गीकृत किया है—

१. सुरतान्त समय अर्थात् मंगला के १९ पद
२. शैया समय के १९ पद
३. रास के १७ पद
४. वन विहार के ३ पद
५. स्नान शृंगार के ४ पद
६. राजभोग (शैया विहार) के २ पद
७. वसंत वर्णन के २ पद
८. होरी वर्णन के २ पद
९. फूल डोल-झूलन का १ पद
१०. मलार के ४ पद
११. संभ्राम-मान के १३ पद

कुल योग—८६

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इन वर्गीकरण की एक त्रुटि तो बहुत ही स्पष्ट है कि कुछ ऐसे पद हैं जिन्हें किसी एक वर्ग में सर्वतोभावेन समाविष्ट नहीं किया जा सकता। उनकी भावना इतनी संश्लिष्ट है कि न तो हम उसे सुरतान्त कह सकते हैं, न वन-विहार और न रास।

हित चौरासी का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से अन्तरंग भावना से सम्बन्ध रखता है। शृंगार रस की पृष्ठ भूमि पर उन विषयों को इन पदों में हितहरिवंशजी ने प्रस्तुत किया है जो राधावल्लभ सम्प्रदाय के मेरुदंड हैं। अर्थात् राधाकृष्ण का अनन्य प्रेम, नित्यविहार, रासलीला, भक्तिभावना, प्रेम में मान-विरह की स्थिति, राधावल्लभ का यथार्थ स्वरूप, नित्यविहार चतुर्व्यूहात्मक अवयवों का वर्णन आदि ही इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपाद्य है। हम प्रमुख विषयों के स्पष्टीकरण के लिए सोदाहरण उन पर विचार विमर्श प्रस्तुत करते हैं।

हित-चौरासी का प्रथम पद राधावल्लभीय प्रेम-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला सैद्धान्तिक पद है। इसमें एक ओर तत्सुखी भाव की स्थापना है तो दूसरी ओर जलतरंग के समान अद्वैतभाव के साथ रहने वाले प्रिया प्रियतम के प्रगाढ़ और अविच्छेद्य प्रेम का संकेत है।

प्रेम-सिद्धान्त की स्थापना में हितहरिवंशजी ने किसी लौकिक-वैदिक मर्यादा का आश्रय नहीं लिया है। उनका प्रेम नैसर्गिक रूप से जिस दिशा में प्रवाहित होता है उसे लोक या शास्त्र की सीमाएँ बांध नहीं सकतीं।

प्रीति न काहू की कानि विचारै।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै॥
ज्यौं सरिता सावन जल उमगत सनमुख सिंधु सिधारै।
ज्यौं नादहि मन दिए कुरंगनि प्रकट पारधी मारै॥
हितहरि वंश हिलग सारंग ज्यौं शलभ शरीरहि जारै।
नाइक निपुन नवल मोहन विनु कौन अपनपौ हारै॥

—हित चौरासी, पद सं० ४२

सच्चे और निरवद्य प्रेम की पहचान यही है कि प्रेमी के हृदय में जब अपने आराध्य के प्रति दृढ़-आसक्ति उदय होती है तब उसे उचित-अनुचित का विचार विवेक नहीं रहता। अपने प्रेमास्पद के लिए प्रेमपरवश हो जो कुछ भी करता है, ठीक ही करता है। लोक, वेद, शास्त्र सब मर्यादायें उसके लिए प्रेमी के आगे तुच्छ और हेय प्रतीत होती हैं। गोपियों के प्रेम का वर्णन इसी कोटि में आता है। वे श्याम की मुरली-ध्वनि सुन कर सब प्रकार की मर्यादाओं का उल्लंघन कर भाग खड़ी हुईं, 'सुधिबुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगौरी लाय।' इसी प्रेम को माधुर्यभक्ति का प्राण माना गया है।

प्रेम-राज्य में मान-सम्मान, पद-मर्यादा, छोटा-बड़ा, धनी-निर्धन किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। सकल लोक चूड़ामणि श्रीकृष्ण प्रेम के राज्य में प्रविष्ट होते ही अपने अस्तित्व को अकिंचन जैसा मानते हैं। प्रेम में दैन्य और कार्पण्य ही शोभा देता है। इस प्रेम की महिमा बताते हुए कहा है—

प्रीति की रीति रंगीलोई जानैं।
जद्यपि सकल लोक चूड़ामणि दीन अपनपौ मानैं॥
जमुना पुलिन निकुंज भवन में मान मानिनी ठानैं।
निपट नवीन कोटि कामिनि कुछ धीरज मनहिं न आनैं॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का भी प्रयास किया है जिसे समस्त ऐतिह्य की अवहेलना करने वाला मिथ्या प्रयास ही समझना चाहिए। सरस्वती पत्रिका में पटना-निवासी एक गोस्वामी महोदय ने कल्पित नाम से 'हित चौरासी और सूरदास' शीर्षक लेख लिखकर पांच पदों का ज्यों का त्यों सूरसागर (वेंकटेश्वर प्रेस वाली प्रति) से उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उनके रचयिता सूरदास जी थे। अपने पक्ष में युक्ति देते हुए लिखा कि हितहरिवंश जी की मातृ-भाषा बोलचाल की भाषा ब्रज नहीं थी। वे देवबन्द (सहारनपुर) के रहने वाले थे। परिपक्व आयु में वृन्दावन आकर इतनी प्रांजल भाषा लिखना उनके लिए सुगम न था। अतः हित चौरासी के पद सूरदास प्रणीत हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय वालों ने जबरदस्ती उन्हें अपना कर हित चौरासी नाम दे दिया है। किन्तु उन्होंने न तो ऐतिहासिक प्रमाणों की छानबीन की चेष्टा की और न किसी परम्परा का अनुसंधान किया। साम्प्रदायिक तथा साहित्यिक दोनों परम्पराओं में हितहरिवंश रचित 'हित चौरासी' ग्रंथ हितजी के समय से ही प्रसिद्ध हुआ चला आ रहा है। इस ग्रंथ को उपजीव्य मान कर सेवक जी, व्यासजी, ध्रुवदास जी ने उसके सिद्धान्तों का भाष्य, टीका, वृत्ति आदि लिखी थी। यदि चौरासी के पद उस समय से ही प्रसिद्ध न होते तो इन महानुभावों को उसके अनुगमन का आश्रय कैसे मिलता।

एक और प्रबल तर्क यह है कि 'हित चौरासी' नाम संख्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है। अर्थात् यह चौरासी पदों का ही संग्रह हो सकता है। सूरदास के पदों की संख्या अद्यावधि निश्चित नहीं है। यदि वे पांच या छः पद चौरासी के न हो कर सूरदास के माने जायें तो ग्रंथ के नाम की सार्थकता नहीं रहती। अतः हित चौरासी में जो पद संकलित हैं वे तो प्रारम्भ से इसी रूप में चले आ रहे हैं। पक्षपात या प्रमादवश लिपिकारों ने इन पदों को सूर की रचनाओं में 'छाप परिवर्तन' कर के समाविष्ट कर दिया है। यथार्थ में वे हितहरिवंशजी की ही रचना है।

हित चौरासी एक मुक्तक पद-रचना है जिसमें भाववस्तु का कोई व्यक्त कोटिक्रम नहीं है। समय प्रबन्ध की दृष्टि से कुछ महानुभावों ने कालक्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है जो अनिवार्य रूप से मान्य नहीं कही जा सकती। श्री रूपलाल गोस्वामी ने हित चौरासी के पदों को समय-प्रबन्ध में इस प्रकार वर्गीकृत किया है—

१. सुरतान्त समय अर्थात् मंगला के १९ पद
२. शैया समय के १९ पद
३. रास के १७ पद
४. वन विहार के ३ पद
५. स्नान शृंगार के ४ पद
६. राजभोग (शैया विहार) के २ पद
७. वसंत वर्णन के २ पद
८. होरी वर्णन के २ पद
९. फूल डोल-झूलन का १ पद
१०. मलार के ४ पद
११. संभ्राम-मान के १३ पद

कुल योग—८६

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इन वर्गीकरण की एक त्रुटि तो बहुत ही स्पष्ट है कि कुछ ऐसे पद हैं जिन्हें किसी एक वर्ग में सर्वतोभावेन समाविष्ट नहीं किया जा सकता। उनकी भावना इतनी संश्लिष्ट है कि न तो हम उसे सुरतान्त कह सकते हैं, न वन-विहार और न रास।

हित चौरासी का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से अन्तरंग भावना से सम्बन्ध रखता है। शृंगार रस की पृष्ठ भूमि पर उन विषयों को इन पदों में हितहरिवंशजी ने प्रस्तुत किया है जो राधावल्लभ सम्प्रदाय के मेरुदंड हैं। अर्थात् राधाकृष्ण का अनन्य प्रेम, नित्यविहार, रासलीला, भक्तिभावना, प्रेम में मान-विरह की स्थिति, राधावल्लभ का यथार्थ स्वरूप, नित्यविहार चतुर्व्यूहात्मक अवयवों का वर्णन आदि ही इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपाद्य है। हम प्रमुख विषयों के स्पष्टीकरण के लिए सोदाहरण उन पर विचार विमर्श प्रस्तुत करते हैं।

हित-चौरासी का प्रथम पद राधावल्लभीय प्रेम-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला सैद्धान्तिक पद है। इसमें एक ओर तत्सुखी भाव की स्थापना है तो दूसरी ओर जलतरंग के समान अद्वैतभाव के साथ रहने वाले प्रिया प्रियतम के प्रगाढ़ और अविच्छेद्य प्रेम का संकेत है।

प्रेम-सिद्धान्त की स्थापना में हितहरिवंशजी ने किसी लौकिक-वैदिक मर्यादा का आश्रय नहीं लिया है। उनका प्रेम नैसर्गिक रूप से जिस दिशा में प्रवाहित होता है उसे लोक या शास्त्र की सीमाएँ बांध नहीं सकतीं।

प्रीति न काहू की कानि विचारै।
मारग अपमारग वियकित मन को अनुसरत निवारै॥
ज्यौं सरिता सावन जल उमगत सनमुख सिंधु सिधारै।
ज्यौं नादहि मन दिए कुरंगनि प्रकट पारधी मारै॥
हितहरि वंश हिलग सारंग ज्यौं शलभ शरीरहि जारै।
नाइक निपुन नवल मोहन विनु कौन अपनपौ हारै॥

—हित चौरासी, पद सं० ४२

सच्चे और निरवद्य प्रेम की पहचान यही है कि प्रेमी के हृदय में जब अपने आराध्य के प्रति दृढ़-आसक्ति उदय होती है तब उसे उचित-अनुचित का विचार विवेक नहीं रहता। अपने प्रेमास्पद के लिए प्रेमपरवश हो जो कुछ भी करता है, ठीक ही करता है। लोक, वेद, शास्त्र सब मर्यादायें उसके लिए प्रेमी के आगे तुच्छ और हेय प्रतीत होती हैं। गोपियों के प्रेम का वर्णन इसी कोटि में आता है। वे श्याम की मुरली-ध्वनि सुन कर सब प्रकार की मर्यादाओं का उल्लंघन कर भाग खड़ी हुईं, 'सुधिबुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगौरी लाय।' इसी प्रेम को माधुर्यभक्ति का प्राण माना गया है।

प्रेम-राज्य में मान-सम्मान, पद-मर्यादा, छोटा-बड़ा, धनी-निर्धन किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। सकल लोक चूड़ामणि श्रीकृष्ण प्रेम के राज्य में प्रविष्ट होते ही अपने अस्तिव को अकिंचन जैसा मानते हैं। प्रेम में दैन्य और कार्पण्य ही शोभा देता है। इस प्रेम की महिमा बताते हुए कहा है—

प्रीति की रीति रंगीलोई जानैं।
जद्यपि सकल लोक चूड़ामणि दीन अपनपौ मानैं॥
जमुना पुलिन निकुंज भवन में मान मानिनी ठानैं।
निपट नवीन कोटि कामिनि कुछ धीरज मनहिं न आनैं॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यौं आन आन सौं बानैं।
हितहरिवंश चतुर कोई लालहिं छाड़ि मेंड़ पहिचानैं॥

--हित चौरासी, पद सं० ४१

इस पद में रंगीले श्याम को प्रीति का पारखी तत्ववेत्ता ठहराया गया है किन्तु अन्तिम चरण में, 'चतुर सोई लालहिं छाड़ि मेंड पहिचानै' कह कर प्रेम की स्थिति को ऊपर उठाने वाला सिद्धान्त झलक रहा है। इस चरण में स्पष्ट संकेत है कि हितहरिवंशजी के मत में 'उपास्य तत्व केवल परात्पर प्रेम तत्व' ही है। प्रिया प्रियतम (राधाकृष्ण) इसी प्रेमोपासना के अन्तर्गत रहते हैं इसलिए 'मेंड पहिचानना' अर्थात प्रेम की यथार्थ मर्यादा को समझने वाला ही प्रेमी हो सकता है। कृष्ण को प्रेम करने मात्र से प्रेम की प्राप्ति नहीं होती वरन् उससे भी आगे प्रेम को समझना अनिवार्य है, यही प्रच्छन्न भाव इस पद में तात्विक शैली से रखा गया है।

नित्यविहार का वर्णन करने वाले आचार्यों में श्री हरिवंशजी का स्थान मूर्धन्य है। आपने ही सबसे पहले नित्यविहार की सैद्धान्तिक रूप से स्थापना की और उसे अपने पदों में गेय बना कर प्रस्तुत किया। ब्रजलीला का गान करने वाले सूरदास आदि कवियों ने जब निकुंज लीला की ओर कदम बढ़ाया तो उन्हें प्रकाश स्तम्भ की भांति हितहरिवंशजी की नित्यविहार-पद्धति से मार्ग-प्रदर्शन मिला।

नित्यविहार के वर्णन शृंगार-रस की शैली से ही प्रस्तुत होते हैं। लौकिक शृंगार में जिस प्रकार प्रिया-प्रियतम एक दूसरे के प्रेमपाश में आवद्ध हो कर रतिक्रीड़ा आदि करते हैं और अंत में सुरत प्रसंग आदि काम-भोग में उनकी रति का पर्यवसान होता है ऐसे ही राधा और कृष्ण के नित्यविहार में दाम्पत्य भाव से प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन होता है। यह प्रेम, काम की समस्त चेष्टाओं से परिपूर्ण होने पर भी लौकिक कामवासनामय नहीं माना जाता क्योंकि अन्तरंग भावना में इसका पक्ष आध्यात्मिक ही स्वीकार किया जाता है। जो पद नित्यविहार सम्बन्धी हित चौरासी में या अन्य महानुभावों की वाणियों में मिलते हैं, उनका शाब्दिक धरातल लौकिक दृष्टि से शृंगारमय ही प्रतीत होगा, किन्तु भावना के उदात्तीकरण द्वारा ही उनका आध्यात्मिक रूप अन्तः नेत्रों के सम्मुख आ सकता है। नित्यविहार के अनेक पद हित-चौरासी में हैं--

प्रात समै दोऊ रस लम्पट सुरत जुद्ध जय जुत अति फूल।
श्रम वारिज घन विन्दु वदन पर भूषण अंगहि अंग विकूल॥
कछु रह्यौ तिलक, शिथिल अलकावलि बदन कमल मानो अति मूल।
हित हरिवंश मदन रंग संगि रहे नैन बैन कटि, शिथिल दुकूल॥

--हित चौरासी, पद सं० ३

निकुंज-लीला के संभ्रम और सूक्ष्म मान-विरह को चित्रित करने वाला सुन्दर पद द्रष्टव्य है--

आजु निकुंज मंज में खेलत नवलकिशोर नवीन किशोरी।
अति अनुपम अनुराग परसपर सुनि अभूत भूतल पर जोरी॥
विद्रुम फटिक विविध निर्मित घर नव कर्पूर पराग न थोरी।
कोमल किशलय शयन सुपैशल तापर श्याम निवेशित गोरी॥
मियुन हास परिहास परायन पीक कपोल कमल पर झोरी।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीवी बंधन मोचत डोरी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हरि उर मुकुर विलोकि अपनपो विभ्रम विकल मानयुत मोरी।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधन पिय प्रतिबिम्ब जनाय निहोरी॥
नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि ललितादिक देखत दुरि चोरी।
हित हरिवंश करत करधूनन प्रणयकोप मालावलि तोरी॥

--हित चौरासी, पद सं० ७

इस पद में सूक्ष्म मान का वर्णन है—रति-क्रीड़ा-परायण मिथुन, मनोहर भुजबंधन में आवद्ध हुए थे कि सहसा राधा की दृष्टि प्रियतम के हृदय-मकुर पर चली गई और उसमें अपना ही प्रतिबिम्ब देख कर उन्हें भ्रम हुआ कि कृष्ण के हृदय तो कोई और स्त्री घर किए हुए है। बस इसी भ्रमवश वह मानवती हो गई। तब कृष्ण ने उनके चिबुक को स्पर्श कर के प्रेमपूर्वक वस्तुस्थिति का बोध कराया। ललिता आदि सखियां इस विहार-रस को निकुंज रंध्रों से देख कर अपना जीवन सार्थक कर रही हैं।

रूप-सौन्दर्य चित्रण की दृष्टि से हित-चौरासी के पद भक्तिकालीन कवियों में श्रेष्ठतम कहे जा सकते हैं। यद्यपि नखशिख वर्णन भक्ति काव्य का प्रतिपाद्य विषय नहीं है फिर भी उपास्य का विग्रह मूर्तिमन्त करने के लिए आनुषंगिक रूप से नशशिख वर्णन का प्रसंग भक्ति-काव्य में आ ही जाता है। सूरदास ने तो राधा और कृष्ण दोनों का सांगोपांग रूप-चित्रण किया है तथा नखशिख की शास्त्रीय परिपाटी का भी निर्वाह कर दिखाया है। हितहरिवंशजी की रचना वहुत सीमित है अतः व्योरेवार चित्रण का इसमें न्यून ही अवकाश है फिर भी थोड़े शब्दों में अति सशक्त, व्यापक और सर्वाङ्गपूर्ण चित्रण देख कर आश्चर्य होता है। नखशिख का आभास देता हुआ राधाकृष्ण का सुन्दर रूप निम्नलिखित पद में प्रस्फुटित हो रहा है—

ब्रजनवतरुणि कदम्ब, मुकुटमणि श्यामा आजु बनी।
नखशिख लों अंग-अंग माधुरी मोहे श्याम धनी॥
यों राजत कबरी गूंथित कच, कनक कंज बदनी।
चिकुर चंद्रकनि बीच अर्ध विधु मानो ग्रसित फनी॥
सोभग रस शिर श्रवत पनारी, पिय सीमन्त ठनी।
भृकुटि काम कोदंड, नैन रस, कज्जल रेल अनी॥
तरल तिलक, ताटंक गंड पर, नासा जलज मनी।
बसन कुंद, सरसाधर पल्लव प्रीतम मन शमनी॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सांवल बिन्दु कनी।
प्रीतम प्राण रतन संपुट कुच कंचुकि कसवि तनी॥
भुज मृनालबल हरत बलय जुत परस सरस अवनी।
श्याम शीश तरुमनी भिडवारी रची रुचिर रवनी।
नाभि गंभीर, मीन मोहन मग खेलन कौं हू दनी।
कृश कटि, पशु नितम्ब, किंकिणि व्रत, कदली खंभ जघनी॥
पद अम्बुज जाचक जुत, भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव-नव माय विलोभि माम हम विहरत वर करनी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हित हरिवंश प्रशंसित श्यामा कीरत विशद घनी।
गावत श्रवनन सुनत सुखाकर विश्व दुरित दमनी॥

--हित चौरासी, पद सं० २९

उपर्युक्त पद का नखशिख-वर्णन यद्यपि रूढ़ शैली का है किन्तु उसकी दो विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—प्रथम तो संक्षेप में एक ही उपमान के द्वारा उपमेय को चमत्कृत किया गया है, दूसरे शिखा अर्थात् कबरी से प्रारम्भ कर के नख अर्थात् जावकयुक्त चरणों तक समस्त अंगों को इस पद में हितहरिवंशजी ने समेटा है। इतना संक्षिप्त किन्तु सर्वांगपूर्ण, सारयुक्त नखशिख वर्णन बहुत कम कवियों की लेखनी से निःसृत हुआ है।

इसी प्रकार का दूसरा चित्र है जिसमें राधा का शृंगार-प्रसाधन सहित वर्णन किया है—

आवति श्री वृषभानु दुलारी।
रूपराशि अति चतुर शिरोमणि अंग-अंग सुकुमारी।
प्रथम उबटि, सज्जन करि, सज्जित नील वरन तन सारी।
गुंथित अलक तिलक कृत सुन्दर, सेंदुर मांग संवारी॥
मृगज समान नैन अंजन जुत रुचिर रेख अनुसारी।
अटिल लवंग ललित नासापर, दसनावली कृतकारी।
श्रीफल उरज, कंसुभी कंचुकी कसि ऊपर हार छवि न्यारी।
कृश कटि, उदर गंभीर नाभि पुट, जघन नितम्बनि भारी॥
हित हरिवंश जुगल करनी गज विहरत बन पिय प्यारी॥

--हित चौरासी, पद सं० ४५

इस पद में रूप-वर्णन से पहले सौन्दर्य और प्रसाधन के साथ स्नान, उबटन-वस्त्रधारण आदि का वर्णन किया गया है। उसके बाद क्रमशः अंगों की शोभा का आलंकारिक पद्धति से वर्णन है। यद्यपि इसमें न तो कोई नूतन उपमान है और न कोई वचन-वक्रता ही, किन्तु समूचे पद में सौन्दर्य की छटा अवश्य प्रतिच्छादित हो रही है। मृगछौने के समान नेत्र और मृणाल-दंड के समान भुजाओं का वर्णन परम्परायुक्त होने पर भी उक्त पद में नवीन सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा है।

रूप-सौन्दर्य चित्रित करने वाले लगभग एक दर्जन पद हित चौरासी में हैं जिनमें नखशिख का कहीं सम्पूर्ण रूप से और कहीं कोई विशेष अंग उभार के साथ वर्णित हुआ है—

रुचिर राजत वधू कानन किशोरी।
सरस षोडश किये, तिलक मृगमद दिये, मृगज लोचन, उबटि अंग शिर खोरी॥
गंड पंडीर मंडित, चिकुर चन्द्रिका मेदिनी, कबरि गूंथित सुरंग डोरी।
श्रवन तांटक के चिबुक पर बिन्दु है, कसूंभि कंचुकि दुरै उरज फल कोरी॥
वलय कंकन दोति, नखन जावक जोति, उदर गुनरेख, घट नील कटि थोरी।
सुभग जघनस्थली क्वणित किंकिनि भली, कोक संगीत रस सिंधु झकझोरी॥
विविध लीला रचित, रहसि हरिवंश हित, रसिक सिरमौर राधारमन जोरी।
भृकुटि निर्जितमदन, मंदसस्मित वदन, किये रस विवस घनस्याम पिय गोरी॥

--हित चौरासी, पद सं० ६७

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रूप-चित्रण में नेत्रों का वर्णन हित चौरासी में सब से अधिक हुआ है। नेत्रों का सौन्दर्य, प्रभाव, मोहकता, आकर्षण आदि विविध भावों को नेत्र सम्बन्धी पदों में व्यक्त किया गया है। हम नेत्र-सम्बन्धी समस्त पदों को उद्धृत न कर के केवल दो-तीन पदों के सौन्दर्य की ओर रसिकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं—

खंजन, मीन, मृगज, मद मेटत कहा कहौं नैनन की बातें।
सुनि सुन्दरी कहा लौं सिखई मोहन वसीकरन की घातें॥
वंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण श्याम सित रचे कहांते।
डरत न हरत परायो सर्वसु मृदु मधु मिवभा दिक दृग पातें॥
नैक प्रसन्न दृष्टि पूरण करि नहीं मो तन चित यो प्रमदातें।
हित हरिवंश हंस कल गामिनि भावै सो करहु प्रेम के नाते॥

—हित चौरासी, पद सं० ७३

राधा के नेत्र समस्त उपमानों को तिरस्कृत करने वाले हैं—खंजन, मीन, मृगछौना सब का नेत्र-विषयक सौन्दर्य-मद राधा के नेत्र चूर-चूर कर देते हैं। मोहन-वशीकरण की विद्या में राधा के नेत्र प्रवीण हैं। नेत्र-सौन्दर्य के लिए जो विशेषण प्रस्तुत किए गए हैं उसकी सार्थकता सराहनीय है—तिरछे, निडर, चंचल और नुकीले नेत्र तीनों वर्णों से (अरुण, स्याम, सित) संयुक्त हैं। दूसरों का सर्वस्व (मन) हरण करने में इन नेत्रों को तनिक भी भय नहीं लगता—मीठी मादक चोट कर के केवल दृष्टिपात से ही सब को मुग्ध कर लेते हैं। ऐसे आकर्षक नेत्रों की एक नज़र के लिए श्रीकृष्ण भी लालायित हो उठे हैं और एक दृष्टि का वरदान मांगते हैं। परवर्ती कवियों ने इस पद के भाव को कई रूपों में अपने काव्य में स्थान दिया है।

एक अन्य पद में श्रीकृष्ण के रूप-रसपान-लोभी नेत्रों का वर्णन है। श्रीकृष्ण के नेत्र-रूपी भ्रमर राधा के मुख-कमल के रस में अटक कर अन्यत्र कहीं जाना ही नहीं चाहते। जब कभी पलक-सम्पुट में अलक-लट के बीच में आ जाने से अन्तराल होता है तभी व्याकुल हो जाते हैं। एक पल का अदर्शन इन्हें शतकल्प के समान प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के कानों में कमल, आँखों में अंजन, कुचों में मृगमद बन कर भी शान्ति नहीं पाते। अर्थात् उनमें रूप और प्रेम की तृषा निरन्तर बढ़ती रहती है। इसलिए श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के नाभि-सरोवर की मीन बनने की कामना करते हैं ताकि निरन्तर वहीं रहने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

नैननि पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुण अनियारे अग्रभाग बन्यो अंजन॥
रुचिर मनोहर वक्र विलोकनि सुरत समर दल गंजन।
हितहरिवंश कहत न बनै छवि सुख समुद्र मनरंजन॥

—हित चौरासी, पद संख्या २२

हे राधे! तुम्हारे सुन्दर नेत्रों पर मैं कोटि-कोटि खंजन पक्षियों को न्योछावर करता हूँ। तुम्हारे ये नेत्र सुन्दर, चंचल, चपल, अरुण और अनियारे (कोरदार) तीव्र पैने हैं। उनके अग्रभाग में अंजन लगा हुआ है। इन नयनों का रुचिर, मनोहर एवं कटाक्षपूर्ण अवलोकन ही सुरत युद्ध में विपक्षी दल का मंथन करने वाला है। अर्थात् इन नेत्रों की एक चितवन से ही प्रतिपक्षी परास्त हो कर तुम्हारे रूप पर रीझ कर रह जायगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हित हरिवंश प्रशंसित श्यामा कीरत विशद घनी।
गावत श्रवनन सुनत सुखाकर विश्व दुरित दमनी॥

—हित चौरासी, पद सं० २९

उपर्युक्त पद का नखशिख-वर्णन यद्यपि रूढ़ शैली का है किन्तु उसकी दो विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—प्रथम तो संक्षेप में एक ही उपमान के द्वारा उपमेय को चमत्कृत किया गया है, दूसरे शिखा अर्थात् कबरी से प्रारम्भ कर के नख अर्थात् जावकयुक्त चरणों तक समस्त अंगों को इस पद में हितहरिवंशजी ने समेटा है। इतना संक्षिप्त किन्तु सर्वांगपूर्ण, सारयुक्त नखशिख वर्णन बहुत कम कवियों की लेखनी से निःसृत हुआ है।

इसी प्रकार का दूसरा चित्र है जिसमें राधा का शृंगार-प्रसाधन सहित वर्णन किया है—

आवति श्री वृषभानु दुलारी।
रूपराशि अति चतुर शिरोमणि अंग-अंग सुकुमारी।
प्रथम उबटि, सज्जन करि, सज्जित नील बरन तन सारी।
गुंथित अलक तिलक कृत सुन्दर, सेंदुर मांग संवारी॥
मृगज समान नैन अंजन जुत रुचिर रेख अनुसारी।
अटिल लवंग ललित नासापर, दसनावली कृतकारी।
श्रीफल उरज, कंसुभी कंचुकी कसि ऊपर हार छवि न्यारी।
कृश कटि, उदर गंभीर नाभि पुट, जघन नितम्बनि भारी॥
हित हरिवंश जुगल करनी गज विहरत बन पिय प्यारी॥

—हित चौरासी, पद सं० ४५

इस पद में रूप-वर्णन से पहले सौन्दर्य और प्रसाधन के साथ स्नान, उबटन-वस्त्रधारण आदि का वर्णन किया गया है। उसके बाद क्रमशः अंगों की शोभा का आलंकारिक पद्धति से वर्णन है। यद्यपि इसमें न तो कोई नूतन उपमान है और न कोई वचन-वक्रता ही, किन्तु समूचे पद में सौन्दर्य की छटा अवश्य प्रतिच्छादित हो रही है। मृगछौने के समान नेत्र और मृणाल-दंड के समान भुजाओं का वर्णन परम्परायुक्त होने पर भी उक्त पद में नवीन सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा है।

रूप-सौन्दर्य चित्रित करने वाले लगभग एक दर्जन पद हित चौरासी में हैं जिनमें नखशिख का कहीं सम्पूर्ण रूप से और कहीं कोई विशेष अंग उभार के साथ वर्णित हुआ है—

रुचिर राजत वधू कानन किशोरी।
सरस षोडश किये, तिलक मृगमद दिये, मृगज लोचन, उबटि अंग शिर खोरी॥
गंड पंडीर मंडित, चिकुर चन्द्रिका मेदिनी, कबरि गूंथित सुरंग डोरी।
श्रवन ताटंक के चिबुक पर बिन्दु है, कसूंभि कंचुकि दुरै उरज फल कोरी॥
वलय कंकन दोति, नखन जावक जोति, उदर गुनरेख, घट नील कटि थोरी।
सुभग जघनस्थली क्वणित किंकिनि भली, कोक संगीत रस सिंधु झकझोरी॥
विविध लीला रचित, रहसि हरिवंश हित, रसिक सिरमौर राधारमन जोरी।
भृकुटि निर्जितमदन, मंदसस्मित वदन, किये रस विवस घनस्याम पिय गोरी॥

—हित चौरासी, पद सं० ६७

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रूप-चित्रण में नेत्रों का वर्णन हित चौरासी में सब से अधिक हुआ है। नेत्रों का सौन्दर्य, प्रभाव, मोहकता, आकर्षण आदि विविध भावों को नेत्र सम्बन्धी पदों में व्यक्त किया गया है। हम नेत्र-सम्बन्धी समस्त पदों को उद्धृत न कर के केवल दो-तीन पदों के सौन्दर्य की ओर रसिकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं—

खंजन, मीन, मृगज, मद मेटत कहा कहौं नैनन की बातें।
सुनि सुन्दरी कहा लौं सिखई मोहन वसीकरन की घातें॥
वंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण श्याम सित रचे कहांते।
डरत न हरत परायो सर्वसु मृदु मधु मिवमा दिक दृग पातें॥
नैक प्रसन्न दृष्टि पूरण करि नहीं मो तन चित यो प्रमदातें।
हित हरिवंश हंस कल गामिनि भावै सो करहु प्रेम के नाते॥

—हित चौरासी, पद सं० ७३

राधा के नेत्र समस्त उपमानों को तिरस्कृत करने वाले हैं—खंजन, मीन, मृगछौना सब का नेत्र-विषयक सौन्दर्य-मद राधा के नेत्र चूर-चूर कर देते हैं। मोहन-वशीकरण की विद्या में राधा के नेत्र प्रवीण हैं। नेत्र-सौन्दर्य के लिए जो विशेषण प्रस्तुत किए गए हैं उसकी सार्थकता सराहनीय है—तिरछे, निडर, चंचल और नुकीले नेत्र तीनों वर्णों से (अरुण, स्याम, सित) संयुक्त हैं। दूसरों का सर्वस्व (मन) हरण करने में इन नेत्रों को तनिक भी भय नहीं लगता—मीठी मादक चोट कर के केवल दृष्टिपात से ही सब को मुग्ध कर लेते हैं। ऐसे आकर्षक नेत्रों की एक नजर के लिए श्रीकृष्ण भी लालायित हो उठे हैं और एक दृष्टि का वरदान मांगते हैं। परवर्ती कवियों ने इस पद के भाव को कई रूपों में अपने काव्य में स्थान दिया है।

एक अन्य पद में श्रीकृष्ण के रूप-रसपान-लोभी नेत्रों का वर्णन है। श्रीकृष्ण के नेत्र-रूपी भ्रमर राधा के मुख-कमल के रस में अटक कर अन्यत्र कहीं जाना ही नहीं चाहते। जब कभी पलक-सम्पुट में अलक-लट के बीच में आ जाने से अन्तराल होता है तभी व्याकुल हो जाते हैं। एक पल का अदर्शन इन्हें शतकल्प के समान प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के कानों में कमल, आँखों में अंजन, कुचों में मृगमद बन कर भी शान्ति नहीं पाते। अर्थात् उनमें रूप और प्रेम की तृषा निरन्तर बढ़ती रहती है। इसलिए श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के नाभि-सरोवर की मीन बनने की कामना करते हैं ताकि निरन्तर वहीं रहने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

नैननि पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुण अनियारे अग्रभाग बन्यो अंजन॥
रुचिर मनोहर वक्र विलोकनि सुरत समर दल गंजन।
हितहरिवंश कहत न बनै छवि सुख समुद्र मनरंजन॥

—हित चौरासी, पद संख्या २२

हे राधे! तुम्हारे सुन्दर नेत्रों पर मैं कोटि-कोटि खंजन पक्षियों को न्योछावर करता हूँ। तुम्हारे ये नेत्र सुन्दर, चंचल, चपल, अरुण और अनियारे (कोरदार) तीव्र पैने हैं। उनके अग्रभाग में अंजन लगा हुआ है। इन नयनों का रुचिर, मनोहर एवं कटाक्षपूर्ण अवलोकन ही सुरत युद्ध में विपक्षी दल का मंथन करने वाला है। अर्थात् इन नेत्रों की एक चितवन से ही प्रतिपक्षी परास्त हो कर तुम्हारे रूप पर रीझ कर रह जायगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हित हरिवंश प्रशंसित श्यामा कीरत विशद घनी।
गावत श्रवनन सुनत सुखाकर विश्व दुरित दमनी॥

—हित चौरासी, पद सं० २९

उपर्युक्त पद का नखशिख-वर्णन यद्यपि रूढ़ शैली का है किन्तु उसकी दो विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—प्रथम तो संक्षेप में एक ही उपमान के द्वारा उपमेय को चमत्कृत किया गया है, दूसरे शिखा अर्थात् कबरी से प्रारम्भ कर के नख अर्थात् जावकयुक्त चरणों तक समस्त अंगों को इस पद में हितहरिवंशजी ने समेटा है। इतना संक्षिप्त किन्तु सर्वांगपूर्ण, सारयुक्त नखशिख वर्णन बहुत कम कवियों की लेखनी से निःसृत हुआ है।

इसी प्रकार का दूसरा चित्र है जिसमें राधा का शृंगार-प्रसाधन सहित वर्णन किया है—

आवति श्री वृषभानु दुलारी।
रूपराशि अति चतुर शिरोमणि अंग-अंग सुकुमारी।
प्रथम उबटि, सज्जन करि, सज्जित नील बरन तन सारी।
गुंथित अलक तिलक कृत सुन्दर, सेंदुर मांग संवारी॥
मृगज समान नैन अंजन जुत रुचिर रेख अनुसारी।
अटिल लवंग ललित नासापर, दसनावली कृतकारी।
श्रीफल उरज, कंसुभी कंचुकी कसि ऊपर हार छवि न्यारी।
कृश कटि, उदर गंभीर नाभि पुट, जघन नितम्बनि भारी॥
हित हरिवंश जुगल करनी गज विहरत बन पिय प्यारी॥

—हित चौरासी, पद सं० ४५

इस पद में रूप-वर्णन से पहले सौन्दर्य और प्रसाधन के साथ स्नान, उबटन-वस्त्रधारण आदि का वर्णन किया गया है। उसके बाद क्रमशः अंगों की शोभा का आलंकारिक पद्धति से वर्णन है। यद्यपि इसमें न तो कोई नूतन उपमान है और न कोई वचन-वक्रता ही, किन्तु समूचे पद में सौन्दर्य की छटा अवश्य प्रतिच्छादित हो रही है। मृगछौने के समान नेत्र और मृणाल-दंड के समान भुजाओं का वर्णन परम्परायुक्त होने पर भी उक्त पद में नवीन सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा है।

रूप-सौन्दर्य चित्रित करने वाले लगभग एक दर्जन पद हित चौरासी में हैं जिनमें नखशिख का कहीं सम्पूर्ण रूप से और कहीं कोई विशेष अंग उभार के साथ वर्णित हुआ है—

रुचिर राजत वधू कानन किशोरी।
सरस षोडश किये, तिलक मृगमद दिये, मृगज लोचन, उबटि अंग शिर खोरी॥
गंड पंडीर मंडित, चिकुर चन्द्रिका मेदिनी, कवरि गूंथित सुरंग डोरी।
श्रवन ताटंक के चिबुक पर बिन्दु है, कसूंभि कंचुकि दुरै उरज फल कोरी॥
वलय कंकन दोति, नखन जावक जोति, उदर गुनरेख, घट नील कटि थोरी।
सुभग जघनस्थली क्वणित किंकिनि भली, कोक संगीत रस सिंधु झकझोरी॥
विविध लीला रचित, रहसि हरिवंश हित, रसिक सिरमौर राधारमन जोरी।
भृकुटि निर्जितमदन, मंदसस्मित वदन, किये रस विवस घनस्याम पिय गोरी॥

—हित चौरासी, पद सं० ६७

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रूप-चित्रण में नेत्रों का वर्णन हित चौरासी में सब से अधिक हुआ है। नेत्रों का सौन्दर्य, प्रभाव, मोहकता, आकर्षण आदि विविध भावों को नेत्र सम्बन्धी पदों में व्यक्त किया गया है। हम नेत्र-सम्बन्धी समस्त पदों को उद्धृत न कर के केवल दो-तीन पदों के सौन्दर्य की ओर रसिकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं—

खंजन, मीन, मृगज, मद मेटत कहा कहौं नैनन की बातें।
सुनि सुन्दरी कहा लौं सिखई मोहन वसीकरन की घातें॥
वंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण श्याम सित रचे कहांते।
डरत न हरत परायो सर्वसु मृदु मधु मिवमा दिक दृग पातें॥
नैक प्रसन्न दृष्टि पूरण करि नहीं मो तन चित यो प्रमदातें।
हित हरिवंश हंस कल गामिनि भावै सो करहु प्रेम के नाते॥

—हित चौरासी, पद सं० ७३

राधा के नेत्र समस्त उपमानों को तिरस्कृत करने वाले हैं—खंजन, मीन, मृगछौना सब का नेत्र-विषयक सौन्दर्य-मद राधा के नेत्र चूर-चूर कर देते हैं। मोहन-वशीकरण की विद्या में राधा के नेत्र प्रवीण हैं। नेत्र-सौन्दर्य के लिए जो विशेषण प्रस्तुत किए गए हैं उसकी सार्थकता सराहनीय है—तिरछे, निडर, चंचल और नुकीले नेत्र तीनों वर्णों से (अरुण, स्याम, सित) संयुक्त हैं। दूसरों का सर्वस्व (मन) हरण करने में इन नेत्रों को तनिक भी भय नहीं लगता—मीठी मादक चोट कर के केवल दृष्टिपात से ही सब को मुग्ध कर लेते हैं। ऐसे आकर्षक नेत्रों की एक नज़र के लिए श्रीकृष्ण भी लालायित हो उठे हैं और एक दृष्टि का वरदान मांगते हैं। परवर्ती कवियों ने इस पद के भाव को कई रूपों में अपने काव्य में स्थान दिया है।

एक अन्य पद में श्रीकृष्ण के रूप-रसपान-लोभी नेत्रों का वर्णन है। श्रीकृष्ण के नेत्र-रूपी भ्रमर राधा के मुख-कमल के रस में अटक कर अन्यत्र कहीं जाना ही नहीं चाहते। जब कभी पलक-सम्पुट में अलक-लट के बीच में आ जाने से अन्तराल होता है तभी व्याकुल हो जाते हैं। एक पल का अदर्शन इन्हें शतकल्प के समान प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के कानों में कमल, आँखों में अंजन, कुचों में मृगमद बन कर भी शान्ति नहीं पाते। अर्थात् उनमें रूप और प्रेम की तृषा निरन्तर बढ़ती रहती है। इसलिए श्रीकृष्ण के नेत्र राधा के नाभि-सरोवर की मीन बनने की कामना करते हैं ताकि निरन्तर वहीं रहने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

नैननि पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुण अनियारे अग्रभाग बन्यो अंजन॥
रुचिर मनोहर वक्र विलोकनि सुरत समर दल गंजन।
हितहरिवंश कहत न बनै छवि सुख समुद्र मनरंजन॥

—हित चौरासी, पद संख्या २२

हे राधे! तुम्हारे सुन्दर नेत्रों पर मैं कोटि-कोटि खंजन पक्षियों को न्योछावर करता हूँ। तुम्हारे ये नेत्र सुन्दर, चंचल, चपल, अरुण और अनियारे (कोरदार) तीव्र पैने हैं। उनके अग्रभाग में अंजन लगा हुआ है। इन नयनों का रुचिर, मनोहर एवं कटाक्षपूर्ण अवलोकन ही सुरत युद्ध में विपक्षी दल का मंथन करने वाला है। अर्थात् इन नेत्रों की एक चितवन से ही प्रतिपक्षी परास्त हो कर तुम्हारे रूप पर रीझ कर रह जायगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हितहरिवंशजी ने चौरासी में रास-विषयक १७ पद लिखे हैं जिनमें भावनापरक रास का वर्णन है। भागवत पुराण में जिस रास का वर्णन 'रास-पंचाध्यायी' के अन्तर्गत हुआ है वैसा विवरणात्मक रास चित्रण यहां नहीं है। कृष्ण का मुरली बजाना और गोपियों का मुग्ध हो कर उनके पास शरद्-यामिनी में घरबार छोड़ कर आना किसी आख्यानात्मक शैली से कहीं नहीं आया है। यहाँ रास नित्य विहार की ही एक स्थिति है। राधा और कृष्ण अपने विनोद के लिए यमुना-पुलिस पर रास रचते हैं और वहाँ कृष्ण मुरली बजाते हैं, युवतियाँ नृत्य करती हैं और राधाकृष्ण का सम्मोहक, मिलन होते-होते लीला समाप्त होती है। रास प्रारम्भ होने से पूर्व एक सखी राधिका के पास आकर उसे सूचना देती है कि हे राधे! तेरे लिए कलिन्दजा के किनारे कृष्ण ने रास रचा है—

चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान।
रास रच्यो श्याम तट कलिन्दनन्दिनी॥
निर्तत युवती समूह रागरंग अति कुतूह।
बाजत रसमूल मुरलिका अनन्दिनी॥
वंशीवट निकट जहां परम रमनि भूमि तहाँ।
सकल सुखद मलय बहै वायु मन्दिनी॥
जाती ईषद विकास, कानन अतिशय सुवास।
राका निशि शरद मास विमल चन्दिनी॥
नरवाहन प्रभु निहार लोचन भरि घोष नारि।
नखशिख सौन्दर्य काम दुख निकन्दिनी॥
विलसहिं भुज ग्रीव मेलि भामिनि सुख सिन्धु झेलि।
नव निकुंज श्याम केलि जगत वन्दिनी॥

—हित चौरासी, पद सं० १२

श्री हरिवंशजी की वाणी भक्ति रस से आप्लावित मुक्त गेय पदों का संग्रह है। भक्तिभावना से अनुप्राणित इन पदों में शास्त्रानुमोदित काव्य-सौष्ठव का संधान करना इन पदों की मूल भावना के साथ अन्याय करना होगा किन्तु भावुक एवं सहृदय भक्तों की रसस्निग्ध वाणी केवल शिवत्व से ही परिपूर्ण नहीं होती वरन् सत्य और सौन्दर्य को भी अपने अंचल में छिपाये रहती है। अतः काव्योत्कर्ष के समस्त अलंकृत उपकरण उसमें अनायास आ जाते हैं। भक्त-कवि की उक्ति का प्रभाव केवल उसके मंगल विधान के कारण ही नहीं होता अपितु उक्ति-सौन्दर्य के कारण भी होता है। यही कारण है कि निर्गुण मार्ग से भक्ति पथ का उन्मेष करने वाले कबीर और नानक जैसे महात्माओं की रचनाओं में भी काव्य-सौन्दर्य की निसर्ग-सिद्ध छटा देखने में आती है। श्री हितहरिवंशजी तो माधुर्य भक्ति की रसधारा के उन्नायकों में थे, अतः आपकी वाणी से यदि काव्य सौन्दर्य की निर्झरिणी प्रवाहित हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

काव्य की आत्मा रस है, हरिवंशजी की वाणी के मूलाधार की रस ही है। काव्य रस सहृदयों के चित्त को विस्फारित एवं चमत्कृत करता हुआ अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है, हरिवंशजी की वाणी का रस भी रसिक भक्तों को प्रेम-विह्वल कर के आनंद-विभोर बना देता है। काव्यानन्द ब्रह्मानन्द-सहोदर है, हरिवंशजी की वाणी का आनन्द साक्षात् ब्रह्मानन्द का ही रूप है। काव्य के लौकिक आलम्बन नायक-नायिका,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रति, हास, शोक आदि भावों को उद्‌बुद्ध करने में सहायक होते हैं, भक्तवाणी का आलम्बन लौकिक नायक-नायिका होकर आमुष्मिक रति (राधाकृष्ण रति) को जाग्रत कर चित्त को शाश्वत शान्ति प्रदान करता है। भक्ति रस को स्वीकार करने वाले मर्मी भक्तों के मत में भक्ति-काव्य का चरम उद्देश्य दिव्य-प्रेम के मार्ग से रसिक भक्तों को भव-बंधन से मुक्त कर उन्हें एक ऐसे आनन्दलोक में ले जाना है जहां सांसारिक मायावी प्रपंच के बंधन उच्छिन्न हो जाते हैं। भक्त के मन में एकान्त अनाविल राधाकृष्ण रति का अपार पारावार लहराने लगता है। उस अगाध और अपार भक्ति सागर में कूद पड़ने के बाद संसार सागर के कूल किनारे विलीन हो जाते हैं, सांसारिक मर्यादाएं ढह जाती हैं और भक्त का मन विशुद्ध आत्म चैतन्य में लीन हो कर शाश्वत आनन्द की उपलब्धि करने लगता है।

वंशी के अवतार श्री हितहरिवंशजी की यह विशेषता है कि उनकी वाणी रूपी वंशी का निःस्वन राधा के गुणानुवाद के लिए इतना कोमल और स्निग्ध रूप ले कर सरस पदों के माध्यम से गूंजा कि उसमें वर्णित राधा नख से शिख तक सौन्दर्य और प्रेम की मंजुल मूर्ति बन कर भक्तजन के लिए आराधना की विषय बन गई। हितहरिवंशजी की वाणी के स्पर्श से कलाओं का शृंगार पवित्र हो गया। भावों की मनोमुग्धकारी छटा से शृंगार का उज्ज्वल रूप निखार पा कर कान्तिमय हो उठा और शृंगार का माधुर्य-मंडित रूप समस्त व्रजमंडल में अनुकरण का विषय बन गया। हितजी ने कविता का आश्रय केवल साधन की दृष्टि से ग्रहण किया था, उनका साध्य तो राधा भक्ति द्वारा आत्मतृप्ति था। रस विशेष की प्रतीति के लिए वे पद-रचना में लीन नहीं हुए थे। स्वानुभूत रस की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने काव्य का वाह्य श्रुतिमधुर संगीत अपनाया है, राधा का गुणगान जिन पदों का महत् उद्देश्य हो उनमें दीप्ति, कान्ति, ओज और माधुर्य भाव का अभाव कैसे हो सकता है।

काव्य रस की शास्त्रीय कसौटी पर यदि हरिवंशजी के पदों को कसा जाय तो और विभाव, अनुभाव, संचारी आदि के संयोग से साहित्यिक शैली द्वारा रस निष्पत्ति की प्रक्रिया को चरितार्थ किया जाय तो भी हम उन्हें भक्ति रस या शृंगार रस की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण पाते हैं। हिन्दी के भक्ति-साहित्य में भक्ति रस की शास्त्रीय व्याख्या नहीं मिलती किन्तु भक्ति का वर्णन रस-पद्धति पर ही हुआ है। अतः भक्ति रस-स्थापित करने वाले 'उज्ज्वल नीलमणि' और 'भक्ति रसामृत सिन्धु' आदि ग्रन्थों के आधार पर हम भक्तों की वाणी का रस-विवेचन कर सकते हैं।

भक्ति रस पांच प्रकार का माना जाता है—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर।

मधुर को ही शृंगार या उज्ज्वल रस की संज्ञा दी जाती है। मधुर रस के रूढ़ और अधिरूढ़ दो भेद हैं। महिषीगण रूढ़भाव से अनुरक्त होती हैं और अधिरूढ़ भाव की अधिष्ठातृ हैं गोपियां। इस अधिरूढ़ महाभाव को भी दो प्रकार का माना गया है। संयोग दशा में यह 'मादन' कहलाता है और विप्रलम्भ में 'मोहन'। जिस प्रकार काव्यशास्त्र में शृंगार रस के दो भेद हैं वैसे ही भक्तिरस निष्ठ शृंगार भी संयोग और विप्रलम्भ भेद से द्विविध हैं। सम्भोग शृंगार के अनन्त रूप हैं किन्तु विप्रलम्भ के चार प्रकार माने गए हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और प्रेम-वैचित्र्य।

भक्ति-रस का स्थायीभाव कृष्ण-रति या 'राधाकृष्ण-रति' या 'राधाकृष्ण प्रेम' है। हरिवंशजी की भक्ति में शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य को स्थान न होने से केवल मधुर भाव ही बचता है। ऐश्वर्य ज्ञान के लिए भी हरिवंशजी की भक्ति में स्थान नहीं है। अतः राधाकृष्ण का केवल माधुर्य-मंडित रूप ही

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रति उद्‌बुद्ध करने का कारण है और वही स्थायी भाव के रूप में प्रतिष्ठित होता है। इस रस के आलम्बन राधा और कृष्ण (नायक-नायिका) हैं। राधाकृष्ण स्वकीया-परकीया-भाव-निर्विशेष होने पर भी परस्पर अनन्य भाव से अनुरक्त हैं अतः वे आलम्बन के समस्त धर्मों से युक्त हैं। अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा यहां यही नवीनता है कि कृष्ण राधा प्रेम के लिए लालायित होकर राधा की अर्चना-वन्दना करने में लीन देखे जाते हैं। कान्ता-शिरोमणि राधा अनिंद्य सुन्दरी एवं समस्त गुणों से उपेत होने के कारण कृष्ण के लिए भी आराध्या बनी रहती हैं। निर्मल उज्ज्वल रस और प्रेम की आकार रूप, गुण, शील से सबको मोहित किए रहती हैं। हर्षादि आठों सात्विक भाव और सहज प्रेम से उद्‌भूत विलास, ललित, कुट्टमित, विब्बोक आदि भावउनके भूषण हैं। वंशीरव आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हैं। अनुभावों के अन्तर्गत विलुंठित, गीत, अट्टहास, कटाक्ष आदि हैं। स्वेद, स्तम्भ, रोमांचादि सात्विक भावों में स्वीकार किए गए हैं। संचारी या व्यभिचारियों की गणना ३३ है और वे सभी वर्णित भी हुए हैं —

निम्नलिखित पद में रस-परिपाक के विविध अंग देखे जा सकते हैं—

मंजुल कलकुंज देश, राधा हरि विशद देश,
राका नभ कुमुद बंधु, शरद यामिनी ।।
श्याम लदुति कनक अंग, विहरत मिलि एक संग,
नीरद मणि नील मध्य लसत दामिनी ।।
अरुण पीत नवदुकूल, अनुपम अनुराग मूल
सौरभ युत शीत अनिल मंदगामिनी ।।
किसलय दल रचित शैन, बोलत पिय चाटु बैन,
मान सहित प्रतिपद प्रतिकूल कामिनी ।।
मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीविहार,
वेपथुयुत नेति नेति वदति भामिनी ।।
नरवाहन प्रभु सुकेलि, वहुविधिभर भरत केलि,
सौरत रस रूप नदी जगत पावनी ।।

—हित चौरासी, पद सं० ११

उक्त पद में विहार का दृश्य वर्णित हुआ है। शरद् पूर्णिमा की रात को राधाकृष्ण सुन्दर वेश धारण कर वनविहार कर रहे हैं। कृष्ण धीरोदात्त नायक हैं और राधा नायिका हैं। भक्त के लिए राधाकृष्ण आलम्बन हैं। शरद् पूर्णिमा की एकान्त रात्रि, सौरभयुत शीत अनिल, किसलय दल रचित शयन आदि उद्दीपन विभाव हैं। राधा का 'मान सहित प्रतिपद' यह मानसिक अनुभाव है और वेपथुयुत होना सात्विक भाव है। इस प्रकार विभावादि से परिपुष्ट होकर राधाकृष्ण-रति स्थायी भाव को प्राप्त होती है।

श्री हरिवंशजी संस्कृत भाषा के पण्डित ही नहीं, निसर्ग-सिद्ध कवि भी थे। संस्कृत के लालित्य और सौकुमार्य की छटा उनके राधासुधानिधि ग्रंथ में देखी जा सकती है। संस्कृत भाषा में पारंगत होने पर भी उनकी नैसर्गिक अभिव्यक्ति का रूप हमें उनकी व्रजभाषा की पद-रचना में ही दृष्टिगत होता है। जो माधुर्य सौकुमार्य, प्रवाह, भावव्यंजकता, प्रांजलता और प्रेषणीयता उनके हित चौरासी ग्रंथ में है उसका अर्द्धांश भी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection. CC-0. In Public Domain.

राधासुधानिधि में नहीं मिलता। हित चौरासी में पदों का पाठ करने के साथ ही मन में उस भाषा की प्रेषणीयता और भावग्राहिणी क्षमता के कारण अभिव्यंग्य का, वर्ण्य विषय का चित्र मूर्तिमान् हो जाता है। ब्रजभाषा का जैसा समृद्ध और प्रांजल रूप हितहरिवंश जी की वाणी में प्रस्फुटित हुआ है वैसा किसी अन्य भक्त कवि की रचना में नहीं हुआ। हमारे इस कथन को कदाचित् पक्षपातपूर्ण समझा जाय और सूरदास तथा नन्ददास जैसे सुप्रसिद्ध कवियों की ब्रजभाषा को उनसे बढ़कर बताया जाय किन्तु समीक्षा की कसौटी पर हमारा कथन खरा उतरेगा सूरदास की भाषा में ब्रजभाषा का आंचलिक पुट है, लोक-भाषा के अधिक समीप होने के कारण मसृण और परिष्कृत शब्दों की ओर उनका झुकाव नहीं है। नन्ददास ने अवश्य शब्द-चयन में परिष्कार पर बल दिया है और शब्द-मैत्री तथा ध्वन्यात्मक नाद सौन्दर्य को अपना कर 'नन्ददास जड़िया' का पद पाया है, किन्तु नन्ददास की भाषा में हितहरिवंश के समान समृद्धता नहीं है। संस्कृत की तत्सम पदावली को ब्रजभाषा के प्रवाह में ढालने की कला में हरिवंशजी को अद्भुत क्षमता प्राप्त है। वे ब्रजभाषा के क्रियापद तथा विभक्तियों के योग से ही सारे पद को सत्सम शैली के ढांचे में इन सौष्ठव के साथ जड़ते हैं कि पाठक भावधारा में बहने के साथ पदावली के लालित्य पर भी मुग्ध हो उठता है। संस्कृत-कवि जयदेव की पदावली से विद्यापति ने प्रभाव ग्रहण किया था। हरिवंशजी ने जयदेव और विद्यापति दोनों की पदावली से प्रभाव ग्रहण करके उसे ब्रजभाषा के कलेवर में अभिनव रूप दिया। शब्द मैत्री समीचीन वर्णविन्यास, नाद सौन्दर्य, चित्रात्मकता, संगीतात्मकता और प्रांजलता हरिवंशजी की ब्रजभाषा के उल्लेख्य गुण हैं जो उनको ब्रजभाषा के भक्त-कवियों में मूर्धन्य पर आसीन करने में पूरी तरह सहायक होते हैं।

काव्य की भाषा सरस, कोमल, मधुर और मसृण होने के साथ ही सुबोध, सार्थक, सहज, सरल और सुसम्बद्ध होनी चाहिए। रसानुकूल भाषा ही चित्ताकर्षक और हृदयद्रावक होती है। जो भाषा संवेदन के स्वरूप को मूर्त्त रूप देकर उसे अन्तर्नेत्रों के समक्ष उपस्थित कर सकती है वही पाठक की रागात्मक वृत्तियों को उच्छ्वसित करने में भी समर्थ होती है। ऐसी भाषा के साथ शैली में चारुता, सामंजस्यपूर्ण और प्रभावोत्पादकता का होना भी अनिवार्य है। भाषा और शैली के इस समन्वय पर ही अभिव्यक्ति में भावों के प्रेषणीय बनाने की क्षमता उत्पन्न होती है। हरिवंशजी की भाषा और शैली को उपर्युक्त कसौटी पर हम सर्वतोभावेन खरा पाते हैं।

सुन्दर वर्णों (अक्षरों) से निर्मित शोभन शब्दों के आधान द्वारा काव्य का वाह्य कलेवर दीप्त हो उठता है। कोमल, मधुर और सरस वर्णों के योग से जो शब्द बनते हैं उनका प्रभाव मन को झंकृत करने वाला और चिरस्थायी होता है। हरिवंशजी के पदों में वर्ण-विन्यास का सौष्ठव अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा है—

विद्रुम फटिक विविध-निर्मित धर नव कर्पूर पराग न थोरी।
कोमल किशलय शयन सुपैशल तापर श्याम निवेशित गोरी॥

उपर्युक्त पंक्तियों में मोटे अक्षरों में छपे शब्दों का वर्ण-विन्यास इतना मधुर और सरस है कि शब्दों में तदनुकूल भाव्य-व्यंजना अपने आप समाविष्ट हो गई है। किशलय, शयन, सुपैशल और निवेशित का सानुप्रासिक रूप अपने शुद्ध तत्सम रूप को और अधिक निखारने वाला है।

वन की कुञ्जनि कुञ्जनि डोलनि।
निकसत निपटें सांकरी वीथिन परसत नाहिं निचोलनि।
विलुलित शिथिल श्याम छूटी लट राजत रुचिर कपोलनि॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस पद में ब्रजभाषा के तद्भव रूपों का ग्रहण हुआ है।

'डोलनि' शब्द डोलने-फिरने से बना है जो विहार-विचरण का ध्वन्यार्थ व्यंजित करता है। निकसत, निपट, सांकरी, परसत, निचोलनि, राजत, रुचिर, कपोलनि आदि शब्दों का वर्ण-विन्यास इतना मनोज्ञ है कि ब्रजभाषा की सुन्दर शब्द योजना का मनोमुग्धकारी रूप प्रस्तुत करके पाठक को लुभा लेता है। निचोल और कपोल का वर्ण विन्यास संदर्भ में इतना अर्थव्यंजक है कि इनके स्थान पर इनका कोई दूसरा पर्याय काम नहीं दे सकता। छूटी लटों के लिए शिथिल पदों की योजना द्रष्टव्य है।

शब्द-मैत्री तो हरिवंशजी की वाणी का प्राण है। तत्सम शब्दों के साथ ब्रजभाषा के लोक-प्रचलित सामान्य शब्दों को एक पंक्ति में बिठा कर उनकी अभिव्यंजना को द्विगुणित करने की जैसी कला आपके पदों में परिलक्षित होती है वैसी भक्त-कवियों में अन्यत्र दुर्लभ है—

'कल कंकन किंकन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायो।'
'हित हरिवंश सुनि लाल लावन्य भिदे प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी॥'
'कोमल कुटिल अलक सुठि सोभित अवलम्बित युग गंडन।'
गलित कुसुम वैनी, सुनि री सारंग नैनी, छूटी लट अचरा वदति अलसानी॥
अलस जुत इतरात रंग मगे भये निशि जागर मखिन मलिन री।
शिथिल पलक में उठति गोलक गति, विंध्यो मोहन मृग सकत चलि नारी॥

इन पंक्तियों में ब्रजभाषा के शब्द तत्सम पदावली के साथ जिस सुन्दर मैत्री धर्म का निर्वाह कर रहे हैं वह मन को मोहने वाला रूप है। धुनि, सचु, लावन्यभिदे, सुठि सोभित, सारंगनैनी, अचरा, अलसानी, इतरात, विंध्यो आदि शब्द ब्रजभषा के प्राकृत रूप में संस्कृत शब्दों के साथ ऐसे हिल मिल गये हैं कि उनके साथ यदि उनका तत्सम रूप रख दिया जाय तो पद का समस्त सौन्दर्य समाप्त हो जायगा। यही कुशल कवि की सफल शब्द-मैत्री है।

शब्द-मैत्री का दूसरा रूप अर्थात् ब्रजभाषा के वाक्य-विन्यास में तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हरिवंशजी की वाणी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विकल भानजुत मोरी।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधत प्रिय प्रतिबिम्ब जनाई निहोरी॥

पद का प्रवाह ब्रजभाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है किन्तु शब्द-योजना में तत्सम पदावली का प्राधान्य है। यह मैत्री ब्रजभाषा को अधिक सुहाती है—

मोहन मन मथत मार, परसत कुचि, नीवि, हार।
वेपथुयुत नेति नेति वदति भामिनी॥
नरवाहन प्रभु सुकेलि, बहुविधि भर भरत झेलि।
सौरत रस रूप नदी जगत पावनी॥

इस पद के शब्द संस्कृत के होने पर भी वाक्य-योजना की दृष्टि से ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे ये

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्रजभाषा के ही हों। 'नेति-नेति वदति भामिनी' और 'सौरत रस रूप नदी जगत पावनी' तो पूरे वाक्यांश ही संस्कृत पदावली से भरे हैं किन्तु उनका प्रवाह इतना नैसर्गिक है कि व्रजभाषा-भाषी के लिए ये उसके अपने घर के से हैं।

श्री हितहरिवंश रचित हित चौरासी का हमने ऊपर की पंक्तियों में संक्षेप में विवेचन किया है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से अभी तक इनके साहित्य का मूल्यांकन नहीं हुआ। फलतः हिन्दी साहित्य के इतिहासों में हितजी का सम्प्रदाय प्रवर्तक के रूप में नामोल्लेख मात्र ही उलपब्ध होता है। भक्त कवि के रूप में उन्हें उचित सम्मान् नहीं दिया जाता। हमारी यह निश्चित धारणा है कि यदि हितहरिवंशजी के व्रज-भाषा साहित्य का विधिवत् अध्ययन-अनुशीलन किया जाए तो वह काव्य-सौष्ठव तथा माधुर्यभाव का श्रेष्ठतम साहित्य सिद्ध होगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सूरति मिश्र कृत 'काव्य-सिद्धान्त' और लाल कवि की अज्ञात टीका

डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित
एम० ए०, पी-एच० डी०

सूरति मिश्र की प्रसिद्धि रीतिकाल के प्रमुख आचार्य एवं कवि के रूप में है, किन्तु हिन्दी साहित्य के अद्यतन इतिहास उनके संबंध में विशेष जानकारी नहीं दे पाते। यहाँ तक कि नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग ६' इस बात का भ्रम उत्पन्न करता है कि उनके नाम पर कथित ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं होते। इसी प्रकार सद्य: प्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'रीति कवियों की मौलिक देन' के लेखक डा० किशोरीलाल भी यही राग अलापते हैं। इसके विपरीत तथ्य यह है कि सूरति मिश्र के ग्रंथ उत्तरप्रदेश, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश तक ही नहीं गुजरात प्रदेश तथा महाराष्ट्र तक बिखरे पड़े हैं। स्वयं हमें विगत पांच वर्ष के अनवरत श्रम से उनके 'श्रीनाथ विलास' तथा 'भक्तमाल' नामक ग्रंथों के अतिरिक्त समस्त ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं और एकाध ग्रंथ के अतिरिक्त समस्त ग्रंथों की १५-१५, १६-१६ प्रतियाँ हमें प्राप्त हैं और अभी भी मिलती जा रही हैं। सूरति मिश्र ग्रंथावली के संपादन के लिए की गई अपनी शोध-यात्राओं के दौरान, सौभाग्य से, हमें उनके अन्य ग्रंथों की प्रतियों के साथ-साथ उनकी प्रतिष्ठा का प्रमाण उपस्थित करने वाली लाल कवि की वह टीका भी प्राप्त हुई है जो सूरति मिश्र के 'काव्य-सिद्धान्त' पर लिखी गई है। हिन्दी-संसार अभी तक इस टीका से अनभिज्ञ है।

अब तक हमारे देखने में 'काव्य-सिद्धान्त' की १६ प्रतियाँ आई हैं। इनमें से ६ प्रतियाँ अंशत: सटीक हैं। इन प्रतियों का लिपिकाल तथा प्राप्ति स्थान इस प्रकार है—

१. काव्य-सिद्धान्त सार्थ, लि० का० सं० १८०२, संख्या ११२८, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
२. काव्य-सिद्धान्त—लि० का० सं० १८१५, प्राप्ति-स्थान-पाटण, गुजरात।
३. काव्य-सिद्धान्त—लि० का० सं० १८५७, सं० ४७३, क० मुंशी इंस्टिट्यूट, आगरा।
४. काव्य-सिद्धान्त—लि० का० सं० १९१३, सं० ३६७, साहित्य-संस्थान, उदयपुर।
५. काव्य-सिद्धान्त—लि० का० सं० १९२५, सं० २२६३, राजस्थान पु० म०, जयपुर।
६. काव्य-सिद्धान्त—लि० का० अज्ञात, सं० १८९८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

इस विवरण से स्पष्ट है कि ये सटीक प्रतियाँ सं० १८०२ से लेकर १९२५ के बीच १२३ वर्ष में फैली हुई हैं। जोधपुर की प्रति भी इसी बीच की संभावित है। काल-क्रम की दृष्टि से लाल कवि की टीका सं० १९०५ की रचित है और चौथे स्थान पर रखी जा सकती है। उसे मिला कर प्राप्त टीकाओं की संख्या ७ हो जाती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इन टीकाओं के विषय में कुछ बातें विशेषतया ध्यान देने योग्य हैं। लाल कवि की टीका के अतिरिक्त एक तो किसी भी प्रति में टीका होने का उल्लेख है तो केवल पहली प्रति में और वह भी लेखक की ओर से नहीं, संग्रहकर्ता की ओर से तालिका में है। दूसरे, लाल कवि कृत टीका ग्रंथ की आद्यन्त टीका कही जा सकती है, जबकि इन प्रतियों में टीका-भाग यत्र-तत्र ही आता है। तीसरे, कुछ प्रतियों में कुछ अंश की टीका की गई है तो कुछ में कुछ की। उदाहरणतः, ११ वें दोहे की टीका सं० १, २, ३ तथा ६ में एक-सी मिलती है, किन्तु सं० ४-५ में टीका दी ही नहीं गई है। परन्तु यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जिन स्थलों पर समानता है और वह अधिकांश पर है वहाँ वर्त्तनी-भेद के अतिरिक्त कोई भेद नहीं है। छुटपुट रूप में की गई यह टीका आरंभिक ७४ छन्दों के बाद ही समाप्त हो जाती है हमारा विचार है कि यह टीका वस्तुतः वार्त्ता मात्र है और स्वयं सूरति मिश्र ही इसके लेखक भी हो सकते हैं। यही कारण है कि इन प्रतियों को न टीका कहा गया है न किसी टीकाकार का नाम ही इनसे जुड़ा है। सूरति मिश्र अपने ग्रंथों में अन्यत्र भी ऐसा करते रहे हैं। ऐसी स्थिति में 'काव्य-सिद्धान्त' की यदि कोई स्वतन्त्र टीका है तो वह एकमात्र यही लाल कवि की टीका है, जिसे हिन्दी-जगत् के सामने आने का अभी तक अवसर नहीं मिला।

लाल कवि ने यह टीका मूल दोहों को उद्धृत करते हुए बड़े विस्तार से प्रस्तुत की है। इस टीका के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसका लेखक बहुपठित अधिकारी विद्वान् है। काव्यशास्त्र का उसने केवल संस्कृत ग्रंथों से ही नहीं अपने पूर्ववर्ती हिन्दी ग्रंथों से भी गहरा अध्ययन किया है। उसकी टीका विस्तृत होने के साथ ही पूर्वाचार्य का आधार ग्रहण करती हुई चलती है। लेखक ने अपनी पुष्टि में जिन आधार ग्रंथों का उल्लेख किया है, वे हैं—काव्य-रसायन, सूरसागर, रसिकप्रिया, शृंगार-तिलक, काव्य-कलानिधि, अमरकोश, काव्य-प्रकाश, रस-रहस्य, अभिधान-चिन्तामणि, साहित्यसुधार्णव, साहित्य-शिरोमणि, साहित्य-दर्पण तथा काव्यार्णव आदि। इनमें संस्कृत तथा हिन्दी के शास्त्र-ग्रन्थों के साथ संस्कृत शब्दकोशों और सूरसागर का नाम भी आ गया है, जिससे लेखक के विपुल ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। उक्त नामों में केशवदास, देव कवि तथा कुलपति मिश्र की रचनाओं का नाम वैसी ही बहुलता के साथ प्रयुक्त हुआ है जैसी बहुलता के साथ रुद्रभट्ट, मम्मट तथा विश्वनाथ के ग्रंथों का नाम लिया गया है। इसके अतिरिक्त काव्य-कलानिधि, साहित्य-सुधार्णव, साहित्य-शिरोमणि तथा काव्यार्णव नामों से निश्चित नहीं किया जा सकता कि इनके लेखक कौन हैं। इनमें से कुछ नाम तो इतिहास में उल्लिखित ही नहीं हैं, और जो हैं उनका निश्चय करना भी सहज नहीं है। हो सकता है 'साहित्य-शिरोमणि' सं० १८९३ में लिखित निहाल कवि का और 'काव्यार्णव' सं० १८६६ में लिखित राजा संग्रामसिंह का ग्रंथ हो।

कुछ हो, इस टीका से जहाँ लाल कवि के विशेष अधीत होने का परिचय प्राप्त होता है वहीं सूरति मिश्र के महत्व की स्वीकृति और १९०५ तक अर्थात् २०० वर्ष बाद भी केशवदास की रचनाओं के अध्ययन का प्रमाण प्राप्त होता है। केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक न मानने के लिए परवर्ती काल में उनके प्रभाव को अस्वीकार करने का बहाना ढूँढ़ने वाले विद्वानों को चुनौती देने वाले प्रमाणों में लाल कवि की टीका भी एक प्रमाण उपस्थित करती है।

लाल कवि ने टीकाकार का पूरा काम करते हुए मूल विषय का विवेचन, उसकी पुष्टि और अलंकार आदि का निर्देश आदि सब काम किए हैं। परन्तु यह लाल कवि हैं कौन? इस जिज्ञासा का समाधान भी तो होना चाहिए। सौभाग्य से इसी टीका-ग्रंथ के आरंभिक अंश तथा प्रथम प्रबोध के अन्त में आए हुए विवरण

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

से कवि का परिचय भी थोड़ा-बहुत प्राप्त हो ही जाता है। आरंभिक अंश से इस टीका का रचनाकाल आदि जानने में सहायता मिलती है। आरंभ के ५ दोहों में लेखक ने मंगलाचरण, ग्रंथनाम, रचनाकाल और इसके महत्व की सूचना इस प्रकार दी है—

मंजुल मुकट मयूर छवि जित मनमथ अभिराम।
ब्रज ललना लालित जयति सरस रूप घनस्याम ॥२॥
टीका काव्य सिद्धांत पै करत सुकवि यह लाल।
गुण जपत गौरीस के चरन सरोरुह लाय ॥३॥
५ ० ९ १
संवत् हर मुष व्योम निध विधु प्रमोद रविवार।
मास भाद्रपद आद तिथ गुर प्रसाद सुषसार ॥४॥
टीका यहै प्रमान कर जो प्रमान कर याहि।
पढ़हि प्रेम उर लाय कै सो सब काव्य सराहि ॥५॥

पहला दोहा मूल ग्रंथ से लिया गया है, अतः हमने उसे यहां नहीं दिया। लाल कवि के इस विवरण से ज्ञात होता है कि वे शिव के पूजक हैं, कृष्ण की जयजयकार वे सूरति मिश्र के मंगलाचरण के मेल में करते हैं। वह इस रचना को स्पष्टतः टीका नाम से अभिहित करते हैं तथा इसका रचनाकाल भाद्रपद मास की आदि तिथि, रविवार सं० १९०५ बताते हैं।

दुर्भाग्य से हमें इस टीका ग्रंथ की केवल एक ही प्रति प्राप्त हो सकी है, जिसमें केवल २२ पात्र हैं। यहाँ तक केवल वाच्य-लक्ष्य-व्यंग्य उत्तम काव्य के लक्षण-भाग तक की टीका ही की जा सकी है। इसे लेखक ने 'प्रथम प्रबोध' की संज्ञा दी है, जिससे प्रतीत होता है कि उसने संपूर्ण ग्रंथ की टीका की होगी और उसे विषयानुक्रम से 'प्रबोध' नामक अध्यायों में विभक्त किया होगा। प्राप्त प्रति की समाप्ति ऐसी जगह होती है कि उसके बाद आगे के संभावित प्रबोध का कोई भी अंश उस पन्ने पर नहीं आया है। अतः यह भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हमें जो प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण ही है या लेखक ने स्वयं ही इसके बाद टीका का प्रयास नहीं किया। यह शंका इसलिए कि 'प्रथम प्रबोध' के अन्त में लेखक ने एक छप्पय में अपना पूरा परिचय दे डाला है। इसकी पूरे ग्रंथ की समाप्ति से पूर्व कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हो सकता है लेखक ने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि श्री हर्ष के समान प्रत्येक प्रबोध के अन्त में यह परिचय देने का विचार किया हो। यह अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सिद्ध श्री महाकवि सूरत कृते काव्यसिद्धान्ते वाच्य-लक्ष्य-व्यंग्य उत्तम काव्य निरूपणं ॥छप्पय॥

श्रीगुरु चन्द्र कृपाल कृपाहिय विमल बुद्धिवर।
यह सिद्धान्त सुकाव्य करिय टीका सु चित्त धर॥
भट्ट भव्य मथुरास्य नव्य रुच जुक्त उक्त कृत।
दुज तैलंग विष्यात सकल विद्या विनोद जत॥
कुल काव्य कल्प सुरराज ज्यौं मिहीलाल सुत इछ्छद।
कवि लाल कियव प्रामाणिका काव्य अंग ध्वन सिछछद ॥१॥

सिद्धि श्री विबुधवृंद वंदनीय श्री मथुरास्य मिहीलाल भट्टात्मज श्री गुरुचरणारविंद मधु मकरंद मत्त

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मलिंद लाल कवि कृत काव्यसिद्धान्त टीका प्रामाणिकायां वाचक लक्ष्य व्यंग्यादि उत्तम काव्य वर्णनों नाम प्रथमः प्रबोधः।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक मथुरा निवासी भट्ट तैलंग मिहीलाल का पुत्र था। इतिहास से मिहीलाल पद्माकर भट्ट के पुत्र ठहरते हैं। लाल कवि ने जिस प्रकार अपने वंश का सम्मान उल्लेख किया है वैसा गौरव-कथन पद्माकर की परम्परा में बैठता भी है। स्वयं पद्माकर भट्ट ने अपने 'राम-रसायन' तथा 'जगद्विनोद' नामक ग्रंथों में लिखा है—"यदि सिद्धि श्री मथुरास्थ मोहनलाल भट्टात्मज कवि पद्माकर विरचितं।" पद्माकर भट्ट के वंशज डा० भालचन्द्रराव तैलंग ने स्पष्टतः लिखा ही है कि इस वंश के मूलपुरुष मधुकर भट्ट से आरंभ होने वाली चार शाखाओं में से दूसरी शाखा वल्लभाचार्य जी की शिष्य-परम्परा में आकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा विकसित हुई और इसी समुदाय के अन्य दो प्रसिद्ध समुदाय हुए जो क्रमशः गोकुलस्थ तथा मथुरास्थ कहलाए। मथुरास्थ शाखा आगे चल कर उत्तरप्रदेश तक फैली और उसके प्रमुख केन्द्र साग, बांदा, जयपुर, बीकानेर बने रहे। इस वंश को दतिया में जमीन आदि भी मिली थी, जहां से हमें लाल कवि की यह टीका प्राप्त हुई है।

मिहीलाल, जिनका नाम 'पद्माकर श्री' में डा० तैलंग कहीं मिहीलाल लिखते हैं और कहीं महीलाल, के पुत्रों के नाम क्रमशः वंशीधर, गदाधर, चन्द्रधर तथा लक्ष्मीधर बताए जाते हैं। वंशीधर जी के सबसे छोटे भाई लक्ष्मीधर, डा० तैलंग के अनुसार 'श्रीधर' नाम से कविता किया करते थे। इनका रचनाकाल सं० १८८४ से सं० १९३२ के बीच पड़ता है। दतिया-नरेश महाराज भवानीसिंह की बड़ी सरकार गोविंदकुंअर कवि गदाधर की शिष्या रहीं।[1] किन्तु इससे तो लाल कवि के परिचय में कुछ भी हाथ नहीं लगता। डा० तैलंग ने स्वयं कहीं भी पद्माकर के पौत्र या मिहीलाल के पुत्र के रूप में किसी 'लाल' कवि का उल्लेख नहीं किया। तब यह लाल कवि कौन हैं जो गर्वपूर्वक अपने को मिहीलाल सुत घोषित करता है और परिचय से अपने को पद्माकर भट्ट के वंश से जोड़ता है?

लाल कवि के परिचय की समस्या के यत्किंचत् समाधान के लिए अभी तक हमारे हाथ केवल दो ही सूत्र आ सके हैं। एक है नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट और दूसरा है डा० मोतीलाल मेनारिया लिखित 'राजस्थान का पिंगल साहित्य।'

१९०६ ई० की खोज-रिपोर्ट से लाल कवि का अन्य नाम लक्ष्मीधर ठहरता है। इसके अनुसार यह सं० १९१२ के पूर्व वर्तमान थे और जयपुर के राजा रामसिंह के आश्रित थे। इसके अनुसार ये 'भारतसार' के लेखक हैं, जिसकी प्राप्त प्रति का लिपिकाल सं० १९१२ बताया गया है। इस ग्रंथ में महाभारत के विराट् पर्व और उद्योग पर्व की कथा वर्णित है। संख्या १८८ ए पर अन्य विवरण अप्राप्त होने की सूचना दी गई है तथा केवल इतना बताया गया है कि इसकी प्रति दतिया के कवि श्री गौरीशंकर जी के पास उपलब्ध है।

'राजस्थान का पिंगल साहित्य', द्वि० संस्करण, में लक्ष्मीधर, लाल कवि, लक्ष्मीधर भट्ट तथा श्रीधर भट्ट नाम से चार कवियों का क्रमशः १६९, २१७ तथा २४३ पृष्ठ पर उल्लेख हुआ है। वह इस प्रकार है—

१. पृ० १६९, सं० ९२, लक्ष्मीधर, जयपुर। नि० का० सं० १७२७, ग्रं० भारतसार, वि० जयपुर के महाराजा रामसिंह प्रथम के आश्रित, वि० इनका उपनाम 'लाल' था।

---

१. पद्माकर श्री—पृ० १०९, ११० तथा ११२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

२. पृ० २१७, सं० ३०१, लाल कवि-जयपुर। नि० का० सं० १८९८, ग्रं० विवेकरस, विशेष-वृत्त ज्ञात नहीं।

३. पृ० २४३, सं० ३५४, श्रीधर भट्ट-जयपुर। नि० का० सं० १९०९, ग्रं० भारतसार और राजेन्द्र-चिन्तामणि, वि० ये पद्माकर के वंशज थे।

४. पृ० २४३, सं० ३५५, लक्ष्मीधर भट्ट-जयपुर। नि० का० सं० १९१०, ग्र० गज सालोत्र और यह सालोत्र। वि० पद्माकर के पौत्र थे।

इस विवरण से पता चलता है कि मेनारिया जी के मत से 'भारतसार' दो भिन्न लेखकों ने लिखा—एक लक्ष्मीधर ने और दूसरे श्रीधर भट्ट ने। इसी प्रकार लाल कवि नाम के दो कवि हुए किन्तु इनमें से एक भी पद्माकर का वंशज नहीं है। साथ ही पद्माकर के वंशज और पौत्र श्रीधर भट्ट और लक्ष्मीधर दो पृथक् व्यक्ति हैं। ध्यान देने की बात है कि सं० २, ३, ४ कवियों का रचनाकाल १-२ वर्ष के अन्तर से ही पड़ता है, किन्तु जिस लक्ष्मीधर का उपनाम मेनारिया जी ने 'लाल' कवि बताया है उसका रचनाकाल अवश्य २०० वर्ष पीछे तक घिसट गया है। स्पष्ट है कि यह कवि 'काव्यसिद्धान्त' का टीकाकार हो ही नहीं सकता, क्योंकि स्वयं सूरति मिश्र के अनुसार काव्यसिद्धान्त की रचना सं० १७९८ में हुई है—

जललदीन परकास को सुभ सप्तमि अवतार।
सत्रहसै अठानवै कातिक सुद बुधवार॥१००॥

और लाल कवि की इसकी टीका भी सं० १९०५ की है। किन्तु अन्तिम तीन का रचनाकाल अवश्य वही है जो डा० तैलंग के अनुसार लक्ष्मीधर उपनाम 'श्रीधर' का है।

डा० तैलंग 'पद्माकर श्री' में लक्ष्मीधर और श्रीधर की एकता तो स्थापित करते हैं किन्तु इनका 'लाल' उपनाम नहीं बताते। मेनारिया जी ने श्रीधर लिखित दो पुस्तकें मानी हैं तो डा० तैलंग 'राजेन्द्र चिन्तामणि' के स्थान पर 'गजेन्द्र चिन्तामणि' का उल्लेख करते हैं और उनके 'भारतसार' के अतिरिक्त इनके 'दशकुमारचरित' तथा 'भर्तृहरि शतक' नामक संस्कृत से अनूदित दो काव्य-ग्रंथ और बताते हैं।[1]

इतिहास या वंश-परम्परा में पद्माकर के पौत्रों में किन्हीं श्रीधर और लक्ष्मीधर का एक-साथ किन्तु अलग-अलग होना वर्णित नहीं है। इससे लगता है कि डा० तैलंग ने जो दोनों को एक ही माना है, वह ठीक ही है और ना० प्र० सभा की रिपोर्ट तथा मेनारिया जी के द्वारा दिए गए सांकेतिक विवरण विशेष वृत्त के अभाव में इन्हें पृथक् ही मानते हों किन्तु यह उचित नहीं है।

डा० मेनारिया ने प्रथम लक्ष्मीधर को 'लाल' कवि और महाराजा रामसिंह प्रथम का आश्रित केवल सभा की रिपोर्ट के आधार पर मान लिया है। उन्होंने स्वयं उनका ग्रंथ देखा हो ऐसा नहीं जान पड़ता। सभा को उनके तथा कथित 'भारतसार' की जो प्रति उपलब्ध हुई वह १८५५ ई० अर्थात् सं० १९१२ की प्रतिलिपि है। सभा ने महाराजा रामसिंह का संबंध किस आधार पर जोड़ा, यह स्पष्ट नहीं है। किन्तु यह स्मरणीय है कि जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह नाम के एकमात्र वही राजा नहीं हुए जिनको सभा और मेनारिया जी

---

१. पद्माकर श्री—पृ० ११०।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ने मान लिया बल्कि सन् १८३३ ई० में उत्पन्न दूसरे महाराजा रामसिंह इतिहास में विशेष प्रतापी और प्रसिद्ध रहे हैं और इनका राज्य-काल सन् १८५७ से सन् १८८० अर्थात् सं० १९१४ से सं० १९३७ तक रहा है। उक्त लक्ष्मीधर 'श्रीधर' उपनाम 'लाल' कवि का रचनाकाल भी सं० १८८४ से १९३२ तक माना गया है। अतएव इस बात की बहुत संभावना है कि ये इन द्वितीय महाराजा रामसिंह के आश्रित भी रहे हों और यदि मेनारिया जी द्वारा उल्लिखित प्रथम लक्ष्मीधर के विषय में लाल कवि होने का कोई लिखित पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है तो यह सभा और डा० मेनारिया का सहज भ्रम भी हो सकता है। जो हो, इतना बहुत स्पष्ट है कि 'काव्य-सिद्धान्त' के टीकाकार लाल कवि १९०५ वि० के आसपास अवश्य थे और वे पद्माकर के वंशज तथा उनके पौत्र थे। आश्चर्य ही है कि उनकी इस टीका के संबंध में अभी तक इतिहास मौन है और स्वयं उनके वंशज डा० तैलंग को भी उनके विषय में कोई सूचना नहीं है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मीरा के काव्य में प्रेम का स्वरूप

डा० रमेश आंगिरस
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रेम ही मानव मन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाव है। प्रेम से ही मानव की आत्मा का महत्व सिद्ध होता है। प्रेम के क्षेत्र में अहम् भाव रह ही नहीं सकता। भक्ति के क्षेत्र में भी प्रेम का अस्तित्व बना रहता है। भक्ति की परिधि प्रेम और श्रद्धा से ही पूरी होती है।

प्रेम की यही सिद्धि भक्ति की सिद्धि है। भक्ति के क्षेत्र में प्रेम का भाव अपनी लौकिक स्थिति में नहीं रहता, उदात्तता की परिष्कृत और समुन्नत स्थिति के चरम बिन्दु को स्पर्श कर के अपनी भव्य सत्ता का परिचय देता है। ऐसी स्थिति में भक्त को "समस्त जग जीवन का सार प्रेम है" केवल मात्र इसी की प्रतीति करने को उत्सुक होता है, अपने प्रियतम के चरणों में सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर होता है। मीरा के निम्न पद में यही स्थिति परिलक्षित होती है—

राणा जी थे क्याभं राखी म्हांसूं बैर।
थे तो राणा जी म्हांने इसड़ा लागो ज्यों बच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागे, त्याग्यो थांरो बसनो सहर॥
कागज टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर॥

मीरां के प्रेमभाव का वर्णन करते हुए श्री नाभादास जी ने "भक्तमाल" में इस प्रकार कहा है—

सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट, कलियुगहिं दिखायो।
निर अंकुस अति निडर, रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो।
भक्ति निसान बजाय के, काछू ते चांही लजी।
लोकलाज, कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी॥

तथा ध्रुवदास ने मीरां का परिचय इस प्रकार दिया है—

लाज छांड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कानि।
सोई मीरा जगविदित प्रगट भक्ति की खानि॥
ललिता हू लई बालिकै, तासों अति हेत।
आनन्द सो निरखत फिरै, वृन्दावन रस खेत॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नृत्यत नूपुर बांधि कै, नाचत लै करतार।
हियो भक्तिनि मिली, तृन सम गन्यौं संसार॥
बंधुनि विष ताका दियौ, करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयों, तब लागे पछितानि॥

श्रीकृष्ण प्रेम की दीवानी मीरां का यह काव्य चित्र मीरां के हृदय की सात्विकता का परिचायक है।

प्रेम के अध्याय का एक और कटु पक्ष संसार का विघ्न-संतोषी व्यवहार है। संसार के अधिकांश व्यक्ति दो प्रेमियों के मध्य दीवार बन कर खड़े होने में ही अपने जीवन की सफलता मानते हैं किन्तु सच्चा प्रेम ऐसी बाधाओं और विघ्नों की चिन्ता नहीं करता। सत्य की अपार शक्ति से ओतप्रोत प्रेमी का सच्चा प्रेम लुकछिप कर नहीं, बल्कि मीरां की तरह डंके की चोट होता है—

माई री म्हा लियां गोविन्दा मोल।
थें कहयां छाणे म्हां कां चोड्ड लियां बजन्ता ढोल॥
थे कहयां मुंहोधो, म्हां कहयां सस्तो, लिया री तराजां तोल।
तण वारो म्हां जीवन वारां, वारां अमोलक मोल॥
मीरां कूं प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जन्म का कोल॥

सच्चा प्रेम लोकनिन्दा और कुल की मर्यादा की भी कोई चिन्ता नहीं करता। प्रेम के आलोकमय क्षेत्र में स्वच्छन्द विचरण करने वालों को लौकिक मर्यादाएं एवं बन्धन अखरते हैं और अन्ततः उसे लोक की आलोचना और कटूक्तियों की टीका स्वीकार करना पड़ता है। उसके अन्तस् में छिपे हुए प्रेमोद्गार लौकिक बन्धनों के लौकिक स्तरों से कहीं अधिक ऊँचे तक उछालें मारते हैं। प्रेमोन्माद के ताप में लौकिक बन्धन और बाधाएँ एक एक कर के निरसित होती रहती हैं और तब प्रेमी का उन्मुक्त हृदय सहज ही गा उठता है—

माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बांध पग घुंघरू, लोकलाज तज नाची॥

× × ×

म्हां गिरधर रंग राती सैयां म्हां।

प्रेम के कंटीले मार्ग का पथिक जीवनदान देने का पाठ स्वयं ही सीख लेता है। उसके लिए मरण में ही जीवन की सार्थकता होती है। मीरां ने भी अपनी पदावली में एक बार नहीं, अनेक बार अपने आराध्य के चरणों में "तन मन धन" न्यौछावर करने का संकल्प लिया है।

"प्रेम की पीड़ा मीठी होती है। क्योंकि अभिलाषा की पूर्ति की आशा से मन काल्पनिक आनंद लूटता है अतृप्त तृष्णा की मधुरपीड़ा का अनुभव करते समय व्यक्ति अपना "स्व" भूल जाता है, आनन्दानुभूति के कारण उसे वेदना प्रिय मालूम होती है और वेदना को प्रेम का मूल मानता है एवं अपनी प्रीति की अमरता में विश्वास करता है।" मीरां को भी अपने प्रियतम के मिलन की पूरी आशा एवं विश्वास है—

आजु शुण्डा हरि आवांरी, आवांरी मण भावांरी।
धरिणा आवां गेउ लखावां, बाण पड्या ललचा वांदी॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

णेणा म्हारा कहचा णा माणा, णीर झरयां निश जावांरी।
काँई करया कहु णा बस म्हारी, णा म्हारे पंख उड़ावां री॥
मीरां रें प्रभु गिरधर नागर, बाट जोहा थें आवां दी।

अपने प्रियतम के वियोग में मीरां, सुखानुभूतियों की संचित सुखद स्मृतियों में छिपा हुआ अभूतपूर्व सुख और आनन्द लूटती है। पूर्वानुभूति का सुख ही विरह दग्ध मन का एकमात्र सम्बल होता है। मीरां भी ऐसी ही सुखद स्मृतियों में खो जाना चाहती हैं—

होरी खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रज नारी॥
चन्दन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुं, देत सबन पै डारी॥
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तंह दै दैकै करतारी॥
फागु जू खेलत रसिक सांवरो, बाढ्यो रस व्रज भारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी॥

प्रेम और वेदना चिरसंगी होते हैं। वेदना अर्थात् विरह में ही प्रेम का जन्म होता है, विरह के ताप में ही प्रेम का रूप निखरता है। वास्तविकता तो यह है कि विरह की स्थिति में प्रेम का प्रकाशन सामान्य से कहीं अधिक प्रतिक्रिया लिए होता है। मीरां के निम्न पद में यही "प्रतिक्रिया" परिलक्षित होती है—

मैं तो गिरधर के घर जाऊं।
गिरिधर म्हांरों सांचों प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं॥
रैण पडे तब ही उठि जाऊं, भोर गये उठि आऊं।
रैण दिना वाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि रिझाऊं॥
जो पहिरावे सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण विण पल न रहाऊं॥
जनां बैठावें तितही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊं।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊं॥

विरह की कष्टपूर्ण स्थिति में प्रेमिका अपने प्रियतम को अपनी "प्रेम की पीर" से अवगत कराती है, उसकी मनुहार करती है, नाना प्रकार के प्रलोभन और आकर्षण उपस्थित करती है किन्तु फिर भी प्रियतम के दर्शन नहीं होते। इस दृष्टि से मीरां के निम्न पद उल्लेखनीय हैं—

विरह-अभिव्यक्ति :

स्याम विणा सखि रह्याणा जावां।
तण मण जीवण प्रीतम वारया, थारे रूप लुभावां।
खाण पाण म्हाणे फीकां सो लागां नैण रहां मुरझावां।

थका हुआ और पराजित मन भाग्यवादी बन जाता है और फिर प्रेम-व्यापार में असफल हुआ प्रेमी अपनी असफलता को "कर्मों की गति" मान कर संतोष कर लेता है बल्कि कहना तो यह चाहिए कि उसे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संतोष करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बार बार असफलता की तिक्तता को चखने वाला विरही-मन सहजही भाग्य पर भरोसा करने लगता है। उसके अन्तस् में यह धारणा जम जाती है कि जीवन के प्रत्येक सुख-उल्लास की प्राप्ति "कर्मों की गति" पर निर्भर करती है। मीरां ने भी कर्मों की इस गति का वर्णन करते हुए कहा है कि—

करम गत टारां नाही टरां।
सतवादी हरिचन्दा राजा, डोम घर णीरां भरां।
पांच पांडु री राणी, द्रुपता, हाड़ हिमालां गरां।
जाग कियां बलि लैण इन्द्रासण, जायां पाताल परां।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर बिखरु अमित करां।

इस प्रकार जहाँ सफल प्रेमी के लिए सारा संसार अपार आनन्दमय हो जाता है और उसे चतुर्दिक उल्लास और स्वर्गिक सुख ही दीखता है वहाँ असफल प्रेमी के लिए यह अपार वैभव-सम्पन्न संसार तृणवत् हो जाता है। उसके विरही-मन में भविष्य के प्रति आस्था और वर्तमान के प्रति धैर्य नहीं रह पाता। समूचा जीवन एक निरर्थक इकाई सा बन जाता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीरां की प्रेम-साधना एक दीर्घ-यात्रा सी रही है जिसका आरम्भ तो प्रियतम के रूप-सौन्दर्य के प्रति गहरी आसक्ति से हुआ और उसका अन्त, मानव-जीवन के उस पड़ाव पर हुआ जिसे मानव-मात्र ने अपनी पराजय, भग्नाशा और अतृप्ति का तीर्थस्थल माना है और जिसे बोल-चाल की भाषा में "करमगति" अथवा "भाग्य" जैसे सुन्दर नामों से अभिहित किया जाता है। इस दीर्घ-यात्रा में मीरां के समक्ष अनेक बाधाएं और कठिन घड़ियां आईं, उल्लास और हर्ष के भी कुछ क्षण आए और फिर अन्ततः विरह की, कभी भी समाप्त न होने वाली गहरी अंधेरी रात भी आई। मीरां की प्रेम-साधना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यही कही जा सकती है कि उसके भीतर मीरां के अन्तस् का स्वच्छन्द और उन्मुक्त विलास अवश्य मिलता है। एक दिव्य माधुर्य, एक मीठी सी पीड़ा, एक थका हुआ पराजित मन-मीरां की प्रेम-साधना की दीर्घ-यात्रा के यही तीन मील के पत्थर हैं। जिनके मध्य मीरां ने अपने प्रियतम के प्रणय-सुख का अमृत छका है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चाँचर का ब्रज साहित्य में उद्भव और विकास

डा० नजीर मुहम्मद
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी) पी-एच० डी०

"चाँचर" सामूहिक लोक नृत्यों से संबन्धित एक लोक गीत ही है। चाँचर रूप का संस्कृत रूप "चर्चरी" है। संस्कृत में चर्चरी शब्द का ही प्रयोग हुआ है। यही "चर्चरी" शब्द प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में चच्चरी या चाचरी नाम से प्रयोग हुआ है। (चाँचरी सं० चर्चरी > प्रा० चच्चरी > चाचरी > चाँचरी) और इसे गीत नृत्य पूर्वक समूह में गायन करने की पद्धति कहा गया है—प्राकृतापभ्रंशादि भाषायां चच्चरी, चाचरी इति नाम्ना संस्कृत भाषायां च चर्चरी इति संज्ञया प्रसिद्धा या गीत नृत्य पूर्वकान क्रीडन गुम्फनादि पद्धति प्राचीना परिज्ञायते।[1]

चर्चरी शब्द के अर्थ में विविधता रही है। एक अन्य उद्धरण में चर्चरी को वसन्तकाल में सुन्दर वाद्य-गान कर के मधुर निर्घोष से श्रुति सुख देने वाला कहा गया है—

"अन्नयायं समागओ वसन्त समओ। सुह-सुह सुवन्तचच्चरी तूर महुर निग्घोसो।"[2]

एक अन्य स्थान पर चर्चरी को वसंत गान बताया गया है वसंत में किंकिर आदि निम्नवर्ग के व्यक्तियों की टोलियाँ तूर्य आदि वाद्य यन्त्रों को बजा कर चर्चरी प्रस्तुत करती थीं।

दिट्ठो य-पवज्ज माणयां वसंत चच्चरी तूरेणं नच्च मारोहि-किंकरगणेहि एरावणगओ विय तिय सुकुमार परियरिओ देवराओक्ति।[3]

चर्चरी शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में और भी प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, इन उल्लेखों में चर्चरी सम्बन्धी अर्थों में अन्तर है। चर्चरी का एक अर्थ गीत विशेष भी किया गया है श्री हेमचन्द्राचार्य अभिधान चिन्तामणि में लिखते हैं—

"शुभाकल्या चर्चरी समे चारुमतये अनया।"[4]

अपभ्रंश के चर्चरी ग्रन्थों के भाष्यों में चर्चरी की टीका करते हुए टीकाकार श्री जिनपाल उपाध्याय

---

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी, पृष्ठ ११४, सी० डी० दलाल भूमिका भाग।

२. इसके बाद वसन्त समय आ पहुँचा। यह चर्चरी तूर्य वाद्य के मधुर निर्घोष से श्रुतिसुख देने वाला है समराइच्च कहा : प्रो० हर्मज जैकोवी द्वारा संपादित, पृ० ६३६।

३. समराइच्च कहा : प्रो० जैकोबी, पृ० ६३८।

४. अभिधान चिन्तामणि (२–१८७) : हेमचन्द्राचार्य।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ने लिखा है कि यह भाषा निबद्ध गान नाच-नाच कर गाया जाता है। चर्चरी शब्द का अर्थ उस चौक से भी किया जाता है जहाँ इकट्ठे हो कर लोग नृत्य सहित गाना गाते हैं।

संस्कृत में चर्चरी का अर्थ हाथ की ताल की आवाज भी है। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में चर्चरी शब्द के कई अर्थ दिए हैं। 'पाइयसद्दमहंरणवो', नामक प्राकृत के शब्द-कोष में भी चर्चरी के अनेक प्राचीन अर्थ प्राप्त होते हैं। हिन्दी शब्द सागर में भी इन्हीं कोश ग्रन्थों के अर्थों का समर्थन किया गया है। चर्चरी का वर्णन एक छंद विशेष के रूप में भी किया गया है। प्राकृत पिंगल में इसे चर्चरी छन्द कहा गया है। छन्द-सूत्र (८-१६) में इसका नाम विबुध प्रिया है।

हेमचन्द्राचार्य विरचित छन्दोनुशासन में चर्चरी का लक्षण इस प्रकार है—आदि में रगण, फिर सगण फिर एक लघु तदनन्तर ताल आदि गुरु त्रिकल मध्य में हों। फिर एक गुरु एक लघु और एक गुरु, दो लघु, एक गुरु, एक लघु और एक गुरु। वहाँ पर उद्धृत पद्य निम्न प्रकार है—

आइ रग रत्थण काहल ताल दिज्जहु मल्लहा।
सद्धहार पसन्त विण्णवि सव्व लोअ विबुज्झिआ॥
वेविका हल हार पूरहु संख कंकण सोहणा।
णाअरुअ भणन्त सुन्दरि चच्चरी मणमोहना॥[1]

हेमचन्द्राचार्य जी ने एक अन्य स्थान पर रथ्या वर्णनात्मक छन्द में किंचित् परिवर्तन करके ही चर्चरी छन्द का निर्माण बताया है।[2] आचार्य जगन्नाथ प्रसाद "भानु" ने इसे चर्चरी छन्द कहा है और इसका लक्षण 'र स ज ल भ र' गणों के योग से बताया है।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी चर्चरी को गान विशेष मानते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल चाँचर को फागुन या विवाहोत्सव में होने वाला अँडिया रास या एक प्रकार का नृत्य बताते हैं।

गुजराती साहित्य में चर्चरी शब्द का प्रयोग दो या दो से अधिक मार्गों के मिलन के लिए हुआ है।

संगीत के एक राग को भी एक चर्चरी राग कहा जाता है। उपर्युक्त वर्णनों तथा प्रसंगों द्वारा चर्चरी के विविध अर्थों की सूचना मिलती है। इसके आवश्यक तथ्यों पर निम्न प्रकार दृष्टिपात किया जा सकता है।

१. यह उल्लास प्रधान क्षणों में गाया जाने वाला एक गीत विशेष है।

२. चर्चरी एक प्रकार का गान विशेष है। जिसमें नृत्य ताल समन्वित फागुन की वासन्तिक सुषमा का समावेश होता है।

३. निम्न वर्ग की गायक टोलियों के लिए भी यह प्रयोग किया गया है।

४. ताली बजा कर विशेष ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य को भी चर्चरी कहते हैं।

---

१. छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) २३१।
२. छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) अध्याय ७।४६ रथ्यावर्णक छन्द का सूत्र।
छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) अध्याय ७।४७ चच्चरीचच्चरीणंः।
ठत्रैरिति चतुर्दशभिरष्ठभिश्च यदिश्चेत् तथा तदैव रथ्यावर्णकं चच्चरी।
३. छन्द प्रभाकर : आ० जगन्नाथ प्रसाद भानु (नवीं आवृत्ति, पृ० १८८)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चाँचर का ब्रज साहित्य में उद्भव और विकास

डा० नजीर मुहम्मद
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी) पी-एच० डी०

"चाँचर" सामूहिक लोक नृत्यों से संबन्धित एक लोक गीत ही है। चाँचर रूप का संस्कृत रूप "चर्चरी" है। संस्कृत में चर्चरी शब्द का ही प्रयोग हुआ है। यही "चर्चरी" शब्द प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में चच्चरी या चाचरी नाम से प्रयोग हुआ है। (चाँचरी सं० चर्चरी > प्रा० चच्चरी > चाचरी > चाँचरी) और इसे गीत नृत्य पूर्वक समूह में गायन करने की पद्धति कहा गया है—प्राकृतापभ्रंशादि भाषायां चच्चरी, चाचरी इति नाम्ना संस्कृत भाषायां च चर्चरी इति संज्ञया प्रसिद्धा या गीत नृत्य पूर्वकान क्रीडन गुम्फनादि पद्धति प्राचीना परिज्ञायते।[1]

चर्चरी शब्द के अर्थ में विविधता रही है। एक अन्य उद्धरण में चर्चरी को वसन्तकाल में सुन्दर वाद्य-गान कर के मधुर निर्घोष से श्रुति सुख देने वाला कहा गया है—

"अन्नयायं समागओ वसन्त समओ। सुह-सुह सुवन्तचच्चरी तूर महुर निग्घोसो।"[2]

एक अन्य स्थान पर चर्चरी को वसंत गान बताया गया है वसंत में किंकिर आदि निम्नवर्ग के व्यक्तियों की टोलियाँ तूर्य आदि वाद्य यन्त्रों को बजा कर चर्चरी प्रस्तुत करती थीं।

दिट्ठो य-पवज्ज माणयां वसंत चच्चरी तूरेणं नच्च मारोहि-किंकरगणेहि एरावणगओ विय तिय सुकुमार परियरिओ देवराओक्ति।[3]

चर्चरी शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में और भी प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, इन उल्लेखों में चर्चरी सम्बन्धी अर्थों में अन्तर है। चर्चरी का एक अर्थ गीत विशेष भी किया गया है श्री हेमचन्द्राचार्य अभिधान चिन्तामणि में लिखते हैं—

"शुभाकल्या चर्चरी समे चारुमतये अनया।"[4]

अपभ्रंश के चर्चरी ग्रन्थों के भाष्यों में चर्चरी की टीका करते हुए टीकाकार श्री जिनपाल उपाध्याय

---

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी, पृष्ठ ११४, सी० डी० दलाल भूमिका भाग।

२. इसके बाद वसन्त समय आ पहुँचा। यह चर्चरी तूर्य वाद्य के मधुर निर्घोष से श्रुतिसुख देने वाला है समराइच्च कहा : प्रो० हर्मज जैकोवी द्वारा संपादित, पृ० ६३६।

३. समराइच्च कहा : प्रो० जैकोबी, पृ० ६३८।

४. अभिधान चिन्तामणि (२–१८७) : हेमचन्द्राचार्य।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ने लिखा है कि यह भाषा निबद्ध गान नाच-नाच कर गाया जाता है। चर्चरी शब्द का अर्थ उस चौक से भी किया जाता है जहाँ इकट्ठे हो कर लोग नृत्य सहित गाना गाते हैं।

संस्कृत में चर्चरी का अर्थ हाथ की ताल की आवाज भी है। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में चर्चरी शब्द के कई अर्थ दिए हैं। 'पाइयसद्दमहंरणवो', नामक प्राकृत के शब्द-कोष में भी चर्चरी के अनेक प्राचीन अर्थ प्राप्त होते हैं। हिन्दी शब्द सागर में भी इन्हीं कोश ग्रन्थों के अर्थों का समर्थन किया गया है। चर्चरी का वर्णन एक छंद विशेष के रूप में भी किया गया है। प्राकृत पिंगल में इसे चर्चरी छन्द कहा गया है। छन्द-सूत्र (८-१६) में इसका नाम विबुध प्रिया है।

हेमचन्द्राचार्य विरचित छन्दोनुशासन में चर्चरी का लक्षण इस प्रकार है—आदि में रगण, फिर सगण फिर एक लघु तदनन्तर ताल आदि गुरु त्रिकल मध्य में हों। फिर एक गुरु एक लघु और एक गुरु, दो लघु, एक गुरु, एक लघु और एक गुरु। वहाँ पर उद्धृत पद्य निम्न प्रकार है—

आइ रग रत्थण काहल ताल दिज्जहु मल्लहा।
सद्धहार पसन्त विण्णवि सव्व लोअ विबुज्झिआ॥
वेविका हल हार पूरहु संख कंकण सोहणा।
णाअरुअ भणन्त सुन्दरि चच्चरी मणमोहना॥[1]

हेमचन्द्राचार्य जी ने एक अन्य स्थान पर रथ्या वर्णनात्मक छन्द में किंचित् परिवर्तन करके ही चर्चरी छन्द का निर्माण बताया है।[2] आचार्य जगन्नाथ प्रसाद "भानु" ने इसे चर्चरी छन्द कहा है और इसका लक्षण 'र स ज ल भ र' गणों के योग से बताया है।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी चर्चरी को गान विशेष मानते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल चाँचर को फागुन या विवाहोत्सव में होने वाला अँडिया रास या एक प्रकार का नृत्य बताते हैं।

गुजराती साहित्य में चर्चरी शब्द का प्रयोग दो या दो से अधिक मार्गों के मिलन के लिए हुआ है।

संगीत के एक राग को भी एक चर्चरी राग कहा जाता है। उपर्युक्त वर्णनों तथा प्रसंगों द्वारा चर्चरी के विविध अर्थों की सूचना मिलती है। इसके आवश्यक तथ्यों पर निम्न प्रकार दृष्टिपात किया जा सकता है।

१. यह उल्लास प्रधान क्षणों में गाया जाने वाला एक गीत विशेष है।

२. चर्चरी एक प्रकार का गान विशेष है। जिसमें नृत्य ताल समन्वित फागुन की वासन्तिक सुषमा का समावेश होता है।

३. निम्न वर्ग की गायक टोलियों के लिए भी यह प्रयोग किया गया है।

४. ताली बजा कर विशेष ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्य को भी चर्चरी कहते हैं।

---

१. छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) २३१।
२. छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) अध्याय ७।४६ रथ्यावर्णक छन्द का सूत्र।
छन्दोनुशासन (हेमचन्द्राचार्य) अध्याय ७।४७ चच्चरीचच्चरीण्णैः।
ठत्रैरिति चतुर्दशभिरष्ठभिश्च यदिश्चेत् तथा तदैव रथ्यावर्णकं चच्चरी।
३. छन्द प्रभाकर : आ० जगन्नाथ प्रसाद भानु (नवीं आवृत्ति, पृ० १८८)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

५. नगर के आनन्द प्रधान मन मोहक स्थानों पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि को चर्चरी कहा गया है।

६. वसंत में गाया जाने वाला शुद्ध वसंत गीत है।

७. मंगल पर्वों पर आनन्दोत्पत्ति करने वाला मनोहारी गान है।

८. यह एक प्रकार का छन्द विशेष है जो विभिन्न ग्रन्थों में शास्त्रीय छन्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

९. यह एक लोक गीत का प्रकार विशेष था।

१०. चर्चरी एक प्रकार का राग था। जिसको परवर्ती साहित्य में चर्चरी राग नाम से अभिहित किया गया।

उपर्युक्त अनेक उदाहरणों और तथ्यों पर विचार करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चर्चरी शृंगार प्रधान काव्य रूप है जिसे साधारण जनता वसंत ऋतु में नृत्य के साथ गाया करती थी।

चाँचर अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित काव्य रूप है। इसके प्राचीनता के अनेक प्रमाण संस्कृत में चर्चरी तथा प्राकृत और अपभ्रंश चच्चरी, चाँचरि आदि शब्दों के रूप में मिल जाते हैं। महाकवि कालिदास विरचित विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थांक में प्रयुक्त अनेक अपभ्रंश पद्यों को चर्चरी कहा गया है यदि यह पद प्रक्षिप्त नहीं तो चर्चरी की परंपरा अत्यन्त प्राचीन सिद्ध हो सकती है। बाणभट्ट ने अपनी रचना कादम्बरी में अनेक स्थानों पर चर्चरी गान का वर्णन किया है। वसन्तोत्सव के अवसर पर नृत्य ताल लय के साथ होते हुए चर्चरी गान के विषय में उनके अनेक उल्लेख हैं। श्री हर्ष विरचित रत्नावली नाटिका के आरंभ में भी हमें चर्चरी गायन का उल्लेख मिलता है।[1] अपभ्रंश के वीर कवि (वि० सं० १०७६) ने "जम्बु सामिचरिउ" में वसन्तोत्सव का वर्णन करते समय तरुणियों द्वारा प्रस्तुत किए गए चर्चरी का उल्लेख किया गया है।[2] धनेश्वर सूरि द्वारा विरचित प्राकृत सुर सुन्दरी चरिय नामक ग्रन्थ में चच्चरी का उल्लेख मिलता है। उसके कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं—

दो एरिसे वसंत दिसि-दिसि पसरंत पर हुयासद्दा।
वित्थरिय चच्चरी रव मुहरिय उज्जाणं भूभागे।।[3]
भयण महूसव-तुट्ठो गायइ इव चच्चरि जत्थ।[4]
चच्चरि-सद्द वच्चतं वहु-वायणं।[5]

श्री चन्द्र (वि० सं० ११२३) के रत्न करकण्ड शास्त्र में भी चच्चरी का उल्लेख हुआ है। सं० ११९९ में लक्ष्मणगणि ने सुपासगाह चरिय नामक ग्रन्थ में वाराणसी नगरी का वर्णन करते समय चर्चरी का उल्लेख किया है—

---

१. अये यथायमयि हन्यमानमृदु मृदंगानुगत गीत मधुरः पुरः पौराणां समुचारित चर्चरी ध्वनि स्तथा तर्कयामि। रत्नावली काल का संस्करण, पृ ९।

२. चच्चरि बंधि विरइउ सरसु। जम्बुसामि चरिउ १ का ४।

३. सुर सुन्दरी चरिय ३।५४।

४. सुर सुन्दरी चरिय ३।१८।

५. सुर सुन्दरी चरिय ३।३१५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तवणीय दंड वसिय चीआँसुय-धय सहस्स रमणीया।
रमणीय रसणि हरिस पारंभिय चच्चरी गीया।[1]

उल्लेख मिलता है कि सोमप्रभ ने १२वीं शताब्दी में वसंतकाल में चर्चरी का गायन सुना था।[2] १३वीं शताब्दी के जिनदत्त सूरि नामक जैन संत कवि ने लोक प्रचलित चर्चरी और रासक जाति के गीतों को अपनाया था। १३वीं शताब्दी के लक्खड़ नामक कवि ने आगरा के समीप यमुना तट पर बसे हुए राय वड्डिय नामक नगर के चौराहे को चर्चरी ध्वनि से परिपूर्ण देखा था।[3] सं० १२४१ में सोमप्रभ सूरि विरचित कुमारपाल प्रतिबोध में भी चर्चरी का उल्लेख मिलता है—

अइ पहु कचाइ वसंत समउ जो, संजाणिअ सयलजण चिन्तपय ओ।
उल्लसिय रुक्ख पवाल जसु पसरंत चारु चच्चरि च मासु॥[4]

इस प्रकार जैन साहित्य में चर्चरी का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है। अब्दुल रहमान विरचित संदेश रासक नामक अपभ्रंश काव्य में चर्चरी का पद देखिए—

चच्चाँरहि गेउ मुणि कीरवि तालु
नरिभयह खउव्व वसंत कालु
घण निविड़हार परिखिल्लरोहि,
रुण झुण रउ मेहल किंकिरगीह।[5]

ढोला मारूरा में भी चर्चरी का प्रसंग आया है—

फागुण मासि वसंत सत आयउ जइन सुणक्कि,
चाचरिउइ मिस खेलती होली भंयावरु॥[6]

चौपायन में मुल्ला दाऊद ने भी चाँचर शब्द का प्रयोग किया है—

बाजहिं भेरि सींग औ तूरा। परमा चाचर रकत सिंदूरा।[7]

इतने प्रामाणिक प्रकरणों के प्रस्तुत होने पर यह तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि चाँचर काव्य रूप की लम्बी परंपरा रही है।

संत साहित्य में चाँचर काव्य रूप में प्रथम रचना हमें कबीर बीजक में प्राप्त होती है, इसमें चाँचर शीर्षक में दो पद्य संगृहीत हैं।

---

१. सुपानसाइ चरिय २३।५५।
२. पसरन्त चारु चच्चरिय भालु। जनपद वर्ष १ अंक, ३, पृ० ५।
३. जउणा सणइ उत्तर तडित्य राय वड्डिय। जदपद वर्ष १ अंक,३ पृ० ६।
४. कुमारपाल प्रतिबोध : सोमप्रभ सूरि, पृष्ठ ५४४।
५. जैन गुर्जर कवि—प्रस्तावना पृ० ५९।
(चर्चरी गाकर ताल सहित नृत्य करके अपूर्व वसंत काल नृत्य करता आता है घन निविड़ तारावली खेलती स्त्रियों की मेखला की किंकणी बड़े रुनझुन शब्द करती थीं)।
६. ढोला मारूरा दोहा, पद १४५।
७. चंदायन पृ० १५६ पद १३७ सं० परमेश्वरी लाल गुप्त।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कबीर की चाँचर में भी लोकप्रिय गान के प्रिय रस शृंगार का वर्णन है। नृत्य के साथ गा गा कर होली खेलते हुए दिखाया गया है।[1] अन्त में राम नाम का उपदेश है।

इस प्रकार होली के आस पास गाए जाने वाले गीत के सहारे कबीर ने अपना ज्ञानोपदेश किया है।

कबीर के अनन्तर सन्त और भक्त दोनों प्रकार के कवियों में चाँचर शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। यद्यपि कबीर के समान चाँचर को काव्य रूप मान कर पद रचना कुछ कवियों ने ही की है, परन्तु वसन्त और होली का वर्णन करते समय चाँचर शब्द का प्रयोग बहुतों ने किया है, महाकवि जायसी पद्मावत में वसन्त का वर्णन करते समय नाच-कूद के साथ चाँचर की भी चर्चा करते हैं—

"खिनहिं चलहिं खिन चाँचर होई।
नाच कूद भूला सब कोई॥[2]"

एक अन्य स्थान पर जायसी ने 'होइ फागु मलि चाँचरि जोरी' लिखा है। यहाँ चाँचर शब्द का प्रयोग नृत्य प्रधान गीत के लिए है।

सूरदास जी ने चाँचर शब्द का प्रयोग खेल के अर्थ में किया है। वे कहते हैं—

"मानों मदन मंजरी लीन्हें, कोर करत मल गोलै।
सूरदास सब चाँचरी खेलें, अपने-अपने टोलैं॥[3]

परमानन्द जी एक पद में चाँचर खेल का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"माधौ चाँचर खेल ही खेलतरी जमुना के तीर।
बिच-बिच गोपी बनी बीच-बीच री वे बने मुरारि।
सरकत मनि कंचन मनि माला री जानों गुही सँवारि॥"[4]

कवि नन्ददास ने भी चाँचर शब्द का प्रयोग होली के वातावरण का वर्णन करने में खेल के लिए किया है—

"चाँचर पैन लगे नर नारी।
डफ बाजै अरु करतल तारी॥"[5]

इसी प्रकार—

"इक दिसि बर ब्रज बाला इक दिसि मोहन मदन-गोपाला।
चाँचर देति परस्पर छबि सों कहिन परत तिहिं काला॥"

ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने फागुन मास की वासन्तिक शोभा का वर्णन करने में तथा होली के वातावरण का दृश्य उपस्थित करने में चाँचर शब्द का प्रयोग किया है—

---

१. कबीर बीजक—कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति हरक बाराबंकी पृष्ठ ८६।
२. पद्मावत—सं० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (द्वितीयावृत्ति), पृ० २१५।
३. सूरसागर (ना० प्र० सभा पद संख्या ३४७५)।
४. परमानन्द सागर, पृष्ठ ३२६, पद ९१६।
५. नन्ददास ग्रन्थावली, दूसरा खंड, ना० प्र० सभा, पृ० ४२१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

घनानन्द जी अपने कवित्त में वर्णन करते हुए कहते हैं—

"चाँचरि चौपदी हुतौ औसर ही माचति, पै-
चिन्ता की चहल चित लगिए रहति है।"

इसी प्रकार—

"मची है चुहुल चहुँ ओर चोंप चाँचरि सों,
कासों कहौं, सहौं हों वियोग झकझोर कों।"

व्रज-भूमि का सुन्दर रूप प्रस्तुत करने के लिए ही चाँचर का प्रयोग हुआ है—

"ठौर-ठौर चाँचर चुहुल मची चंगन की,
अंगन की औरै दसा औरै रूप छायौ है।"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीराम और सीता के होली खेलने के बड़े सरस पद गीतावली में दिए हैं। इनमें दिखाया गया है कि सीता जी के साथ स्त्रियाँ पट-भूषण पहने हरी बेंत हाथ में लिए चाँचर गाती हुई होली खेल रही हैं—

"उत जुवति जूथ जानकी संग। पहरे पट भूषण सरस रंग।
लिए हरी बेंत सोधै विभाग। चाँचरि झूमक कहैं सरस राग॥"

सन्त गुलाल साहब ने चाँचर शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया है—

१. गीत—

पाँच पचीस मिलि चाँचर गावहिं प्रभु जी की बलिहारी। (गुलाल साहब की बानी, पद ३)
ऊठत लहरि अनंत राग तहँ, अनुभौ चाचरि गाई। (गु. बा. पद १६)
पाँच सखी मिलि चाँचरि गावहिं सुरति सों निरल भर्‌यौ री। " (१२)
दसौ दिसा चाँचरि धुनि होवे तत्त अबीर उड़ाई। " (१८)
पाँच सखी मिलि चाँचरि गावहिं सहज कै फाग बनोरी। " (२९)

२. गीत की ध्वनि—

दसौ दिसा में चाचरि उठत मारू प्रेम बजाई। " (७)
गगन मंडल में चाचरि ऊठत उघट ताल भरि गाई। " (२३)

३. क्रीडा—

प्रेम नेम चाचरि रच्यो पुलकि-पुलकि प्रभु पास।
विकसि कमल चाचरी रच्यो हैं दुंद उठायो नभ छाई।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि चाँचर दीर्घ-काल से साहित्य में प्रयोग होता रहा है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की सरणियों को पार करता हुआ यह हिन्दी भाषा तक आया है। हिन्दी साहित्य में इसका प्रयोग लोक साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करने वाले कवियों ने अधिक किया है। व्रज-भाषा में इसका बहुल प्रयोग है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कवि रहीम कृत नगर-शोभा

डा० बालकृष्ण अकिंचन
एम० ए०, पी-एच० डी०

अकबर एक क्रान्तिदर्शी सम्राट था। दक़यानूसी पुरातनता पर उसे बहुत विक्षोभ होता था। बुर्के की बन्द बैरकों में बाहरी विश्व से विच्छिन्न मुसलमान स्त्रियों की दशा पर उसे और भी अधिक तरस आता था। उसने एक ऐसे बाजार की योजना बनाई थी जिसमें नारियों का ही साम्राज्य, उन्हीं का प्रबन्ध तथा उन्हीं का प्रशासन होता था। इसी बाजार का नाम मीना बाजार पड़ा था। यहाँ नारियाँ ही दुकान सजातीं, नारियाँ ही सौदे बेचतीं और नारियाँ ही पहरा देती थीं। तात्पर्य यह है कि सभी छोटे-बड़े कार्य स्वयं नारियों द्वारा ही सम्पन्न होते थे। बाजार क्या लगता, मूर्तिमान नारी-नगर ही साकार हो उठता था। यहाँ शाही हरम की रमणियाँ पधारती थीं, सरदारों के परिवारों की स्त्रियाँ उपस्थित होती थीं तथा समादृत पौरांगनायें भी आती थीं। सूई से लेकर तलवार तक का व्यापार होता था। सब से अधिक व्यापार होता था हृदयों का। युवक-युवती, कुमार-कुमारी तथा स्त्री-पुरुष इस यौवन महोत्सव में भाग लेने तथा सौन्दर्य सरोवर में अवगाहन करने को लालायित रहते थे। वस्तुओं के आदान-प्रदान के साथ युवक और युवतियों के हृदयों का आदान-प्रदान भी खूब चलता था। राजकुमार सलीम के हृदय में नूरजहाँ के भोले किन्तु भाले जैसे सौन्दर्य की तीखी चोट यहीं पड़ी थी और यहीं घटी थी वह जगत प्रसिद्ध कबूतर उड़ाने वाली घटना।

सम्राट स्वयं हरम की बेगमों तथा सरदारों की बहू बेटियों के साथ मिल कर बातचीत करते तथा पुरस्कारों एवं भेंटों का आदान-प्रदान किया करते थे। कभी कभी तो सम्राट द्वारा सरदारों के युवकों के लिए जोड़ी भी निश्चित कर दी जाती थी। आवश्यकता होने पर राज्य-कोष से ही उनका विवाह भी सम्पन्न करा दिया जाता था। युवक-युवतियों की छेड़-छाड़ नेत्र बाणों की छूट-छाट तथा मधुर मुस्कानों का आदान-प्रदान, रसिक हृदय रहीम ने यहाँ न जाने कितनी बार देखा होगा। इस मीना बाजार में रहीम का प्रवेश निरापद था। उसे अकबर ने पुत्रवत् पाला-पोसा था। मीना बाजार तो क्या शाही हरम तक में वे बेरोक आ-जा सकते थे। ललना-लावण्य की लोल लहरियों से परिपूर्ण मीना बाजार के सौन्दर्य सरोवर ने रसिक हृदय रहीम की आत्मा में प्रवेश पा लिया होगा। उसे कविहृदय भी प्राप्त था और प्रतिभा भी। उपयुक्त अवसर पाकर तरुण रहीम के मानस निर्झर से कविता फूट पड़ी। उसने नारियों के उस नगर की शोभा को अपनी 'नगर शोभा' के, शब्दों की सुरम्य पिटारियों में संजो दिया। रसिकवर रहीम की कृपा से ही उस सौन्दर्य सुधा का क्वचिदाभास आज हमें भी प्राप्त है।

नगर शोभा के आरम्भ में मंगलाचरण के दो दोहे इस बात के प्रमाण हैं कि यह एक स्वतंत्र कृति है। इसकी खोज का श्रेय पं० मायाशंकर याज्ञिक को है। कृति का परिचय कराते हुए वे लिखते हैं इसके

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होने पर भी कविता की भाषा, उसकी प्रौढ़ता और भाव देखने से यह ग्रन्थ रहीम का ही जान पड़ता है। 'शृंगार सोरठ' की भाषा से इसकी भाषा मिलती भी है। सब से विश्वस्त प्रमाण यह है कि पुस्तक के आदि में लिखा है—'अथ नगर शोभा नवाब खानखाना-कृत'।[१]

अब यहाँ शंका उठ सकती है कि, ये 'नवाब खानखाना' कौन हैं? क्या ये 'खानखाना', मिर्ज़ा नवाब अब्दुर्रहीम खानखानां ही हैं या कोई अन्य खानखाना? यह प्रश्न स्वाभाविक है क्योंकि खानखाना एक उपाधि थी और नवाब एक आदर सूचक शब्द। यह तो ठीक है कि मुगल प्रशासन में अनेक खानखाना हुए और अनेक नवाब, किन्तु प्रस्तुत कृति के आरम्भ में जिस नवाब खानखाना का उल्लेख है वह रहीम के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए नहीं है, यह एक निभ्रान्ति सत्य है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. समस्त मुगल शासन काल में रहीम के अतिरिक्त कोई अन्य खानखाना ऐसा नहीं हुआ जो कवि हो।

२. किसी भी खानखाना ने हिन्दी में काव्य सृष्टि नहीं की।

३. खानखाना से पूर्व नवाब शब्द जिस व्यक्ति के लिए जोड़ने की प्रथा है वह व्यक्ति रहीम ही है अन्य कोई नहीं। तत्कालीन कवियों के कथन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[२]

४. कृति की भाषा शैली और रहीम की भाषा शैली एक ही है। अतः निश्चित ही नवाब खानखाना का तात्पर्य रहीम से है और नगर शोभा रहीम की कृति है।

नगर शोभा में विभिन्न धंधों में संलग्न रमणियों का वर्णन है। सर्वप्रथम दो दोहों में मंगलाचरण है। यहाँ उस अनन्त सौन्दर्य राशि के 'आदि रूप' की 'अस्तुति' में अपनी 'लघु मति' को असमर्थ मानता हुआ कवि, इस नानारूपात्मक जगत में उसी 'आदि रूप' की झलक देख कर नेत्रों की कुछ तृप्ति प्राप्त करता है।[३]

---

१. मायाशंकर याज्ञिक : रहीम रत्नावली (तृ० स० काशी), पृ० १९

२. सकल गुण परीक्षणैक सीमा
(क) गिरिवनराज नवाबखानखाना। (रुद्रकवि, खानखाना चरितम्)
(ख) खानखाना नवाब हो। मोहि एचम्भो ए।
मायो किमि गिरि मेरु मन, साढ़ तिहस्सी देह।—(जड़ा कवि)
(ग) नवल नवाब खानखाना जू तिहारी मास, भागे देस-पति धुनि सुनत निसान की।
नवल नवाब खानखानाजू तिहारे डर, परी है खलक खैल मैल जहूँ तहूँ जू।—गंग कवि

३. आदि रूप की परम दुति, घट घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ॥१॥
नैन तृप्ति कुछ होत है, निरखि जगत की भांति।
जाहि ताहि में पाइयत, आदि रूप की कांति॥२॥
मायाशंकर याज्ञिक : रहीम रत्नावली (तृ० स० काशी), पृ० २८।
(दोहे के अन्तिम पंक्ति में वही दार्शनिकता विद्यमान है जो जायसी की पद्मावत के सरोवर स्नान प्रकरण में)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यह मंगलाचरण बहुत ही साभिप्राय एवं उपयुक्त है। कवि ने रचना के प्रारम्भ में ही रूप-वर्णन में अपनी आसक्ति प्रदर्शित कर दी है। मंगलाचरण के पश्चात् कवि ब्राह्मणी से लेकर भंगिन तक के रूप सौन्दर्य का वर्णन बड़ी शिष्टता, तल्लीनता तथा काव्यात्मकता के साथ करता है।

नगर शोभा का विषय

ब्राह्मणी और भंगिन के बीच खतरानी, जौहरिन, कायथनी, बढ़इन, सुनारिन, बनैनी, रंगरेजिन बनजारिन, लुहारिन, गूजरी, कसाइन, तेलिन, भटियारी, तुर्कनी, सक्की, नटनी, चमारी, घसियारी इत्यादि लगभग ७० जाति की कुलांगनाओं का वर्णन १४२ दोहों में किया गया है। औसतन एक जाति या उद्योग के लिए दो दोहे व्यवहृत हुए हैं। जहां उन्होंने आवश्यक समझा है वहाँ दो से अधिक और जहाँ आवश्यकता नहीं समझी वहाँ एक ही दोहे से काम चला लिया है। सर्वप्रथम 'गंगा रूप के समान', 'परजापति', 'परमेश्वरी', ब्राह्मणी के 'परम पाप पल में हरन' करने वाले रूप का वर्णन न केवल ब्राह्मणों के जातिगत गौरव तथा हिन्दू समाज के अनुकूल है वरन् ब्राह्मणों के प्रति रहीम के हृदय की श्रद्धा का भी द्योतक है। रूप वर्णन की कतिपय विशेषतायें दर्शनीय हैं।

प्रत्येक जाति के उद्योग से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों का प्रयोग कर रहीम सुन्दर तथा अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने में कभी नहीं चूकते। कायस्थों का कार्य प्रायः नौकरी करना है। अतः वे उससे मैन की सैन द्वारा छाती की पाती में प्रेमाक्षर लिखवा कर प्रिय के बांचने के लिए भिजवाते हैं।[1] सुनार का काम स्वर्ण से पड़ता है। अतः सुनारिन का परिचय 'परम रूप कंचन बरन' कह कर देते हैं।[2] कुम्हार का काम गधे की पीठ पर बान के बुने सुरवों में मिट्टी भरना है। अतः कुम्हार की कुमारिका के कुचद्वय को कठोर (मिट्टी से भरे) उलटे सुरवे बताया गया है।[3] ठठेरन के शरीर की बनावट का क्या कहना? उसके कुच तो छोटी लुटिया सरीखे हैं और नितम्ब बड़े लोटे जैसे।[4] इसी प्रकार शाक-भाजी बेचने वाली काछिन के कुचों को 'भाटा', जैसे पुष्ट, अधरों को गाजर जैसे लाल तथा भजाओं को मूली जैसी श्वेत चित्रित किया गया है।[5] बन्दूक, तीर तथा रणक्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले क्षत्रिय की वधू का चित्रण देखिए—

राज करत रजपूतई, देख रूप के दीप।
कर घूंघट पट ओट के आवत पियहि समीप ॥५९॥
सोभित मुख धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटैं बंदूकची, भौंहें रूप कमान ॥६०॥

---

१. याज्ञिक रहीम; रत्नावली दो० सं० ९ तथा १०, पृ० २८।
कैथिन के ऊपर लिखा बरवा भी मिलता है—
परदवार तन नाजुक, कैथिन नारि।
शंक धरे घूंघट दृग, चली निहारि॥ रहीम रत्नावली, पृ० ३१।
२. रहीम रत्नावली दो० सं० १५, पृ० २८।
३. वही, दो० सं० २७, पृ० ३०।
४. वही, दो० सं० १०७, पृ० ३६।
५. वही, दो० सं० ३६, पृ० ३१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इत्र बेचने वाली गंधिनी का, माजू, कुटली आदि से काम पड़ता है। अतः रहीम ने उसके शरीर में ही सारी सामग्री उपस्थित करा दी है—

सुरंग बसन तन गांधिनी, देखत दृगन अघाय।
कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन आय ॥५७॥

रहीम सौन्दर्य को किसी जाति विशेष का जन्म-सिद्ध अधिकार नहीं समझते। वे कुलीन तुर्कनी के सौन्दर्य से भी प्रभावित होते हैं और तथाकथित नीच डोमनी के रूप से भी। वे-चूहरी-चमारी तक का हाथ थाम कर गले लगाने को फतवा दे देते हैं—

हरी भरीगुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
वाके अधर कपोल को, चुवो परै जिमि रंग ॥१४१॥
प्रेम लता सी लहलही, धरै पैम संयोग।
कर गहि गरै लगाइये हरै विरह को रोग ॥१४२॥

उन्हें चमारी से सहानुभूति है। वे खूब समझते हैं कि धन के अभाव में निर्धन चमारी का यौवन केवल दो दिन का खेल है। इसी प्रकार बेचारी घसियारी के 'थोड़ी अवस्था' में ही यौवन त्याग बैठने का उल्लेख रहीम जिस भाषा में करते हैं उससे उनके हृदय की भावना सहज ही समझी जा सकती है—

चोरत चित चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज ॥१३२॥
घासिनि थोरे दिनन की, बैठी जोबन त्यागि।
थोरे ही बुझ जात है, घास जराई आगि ॥१२५॥

रूप वर्णन के अनुकूल शब्दावली का प्रयोग ही नहीं किया गया वरन् उन्होंने कामिनियों के कार्य-व्यापार में उनके भिन्न-भिन्न जाति तथा उद्योगों की प्रत्यक्ष झलक देखी है। उदाहरण के लिए धुनी का वर्णन उपस्थित किया जा सकता है। उसका व्यवहार बड़ा ही अद्भुत है। जब 'काम पराक्रम' के कारण उसके हृदय की तांत बज उठती है तब वह सुरति समय में काम-शैथिल्य के कारण रूई के समान कोमल होकर पिय के शरीर से इस प्रकार लिपट जाती है जिस प्रकार धुनी हुई रूई के रेशे तांत से।[1] तीर कमान बनाने वाली का क्रिया-कलाप भी दर्शनीय है—

करै गुमान कमागरी, भौंह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खेंचई, फिर कमान सी जाई ॥४७॥
जो गातहै पिय रस परस, रहे रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, विरह अगिन में सेक ॥४८॥

---

१. **धुनियाइन धुनि रैनि दिन, धरै सुरति की भांति।**
वाकौं राग न बूझहीं, कहा बजावै तांति ॥९६॥
काम पराक्रम जब करे, छुवत नरम हो जाइ।
रोम रोम के बदन में, रूई सी लपटाइ ॥९७॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नगर शोभा में नारी रूप का चित्रण करते समय रहीम का मन रम-रम गया है। वे गजरे गूंथने वाली, कोमल मालिन पर भी 'सौ जान से फिदा' हैं और क्रूर कर्मा कसाइन पर भी। पटअन के कमरबन्द का रंग बिरंगा रेशमी फुंदना तो उनके हृदय में कोटि-कोटि घात किए डालता है —

पाटम्बर पटइन पहर, सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छांड़हीं, वा पटवा की हाट ॥५३॥
रस रेसम बेचत रहै, नैन सैन की सात।
फूंदी पर को फ़ोन्दना, करै कोटि जिय घात ॥५५॥

नगर शोभा में शृंगार के उत्कृष्ट चित्र उतारे गए हैं। कहीं तो 'प्रेम अंग आधीन चिरवादारिनी के 'सारी निसि पिय संग' रहने का उल्लेख हुआ है।[1] और कहीं 'पिय के संग अंगड़ाती' हुई नगारचनी (नक्कास बजाने वाली की) के घर 'आधी रात रति-पति की नौबत बजने का।[2] कहीं रंगरेजिन के मुख पर 'सुरतान्त का रंग' देखा गया है।[3] तो कहीं वेश्या की विपरीत रति का सुख।'[4] एक ओर तो उनकी जिलेदारनी सेज पर नाक मोड़ती[5] और दूसरी ओर 'जोवन मद मदमाती' कलवारी छाती भी छूने नहीं देती।[6]

नगर शोभा में नख शिख वर्णन तो क्रमपूर्वक नहीं है किन्तु 'केहरिकटि', 'थोरे थोरे उठे', 'कठोर कुच', 'गाढ़े नितंब', 'सुरंग अधर' इत्यादि प्रायः सभी प्रमुख मादक अंगों का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रसंगों में आ अवश्य गया है। इनमें भी सब से अधिक कथन उरोजों का ही हुआ है। जंघा, कपोल तथा ग्रीवादि को रहीम प्रायः भूल गए हैं।

नगर शोभा में उत्तान शृंगार तथा रमणी रूप का वर्णन तो है किन्तु उसकी भाषा कहीं अश्लील नहीं है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

जुकिहारी जौवन लिये, हाथ फिरै रस हेत।
आपुन मांस चखाइ कै, रक्त आन को लेत ॥८४॥

इस दोहे का अपना मांस तथा अन्य का रक्त, अश्लील यौन व्यापारों की ओर संकेत कर सकते हैं परन्तु शब्दावलि कहीं अश्लील नहीं है। इसी प्रकार—

परम ऊजरी गूजरी दहयो सीस पै लेई।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नेक न देइ ॥३३॥

यहाँ पर 'सो रस' से अश्लील भाव का संकेत लिया जा सकता है किन्तु यही शब्द उस अश्लीलता से रक्षा भी कर रहा है। इस प्रकार के वर्णन रहीम की प्रकृति तथा व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है न तो ये अन्य रचनाओं में विद्यमान हैं और न इस रचना में सर्वत्र ही। किन्तु जो भी हैं उनके लिए दरबारी वातावरण उत्तरदायी था। दरबारी ही नहीं, उस युग के योगी तक भी भ्रष्ट थे।

ऐसे योगी बाल बढ़ाए, मुद्रा तथा शृंगी इत्यादि धारण किए जनता पर आतंक जमाते हुए शिकार की ताक में घूमा करते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करने वाला 'जोगन' का रूप वर्णन देखिए—

---

१. दो० १३६। २. दो० १०२।
३. दो० १९। ४. दो० ८२।
५. दो० ११४। ६. दो० ३१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मुख पै बैरागी अलक, कुच सींगी विष बैन।
मुद्रा धारै अधर के मूंद ध्यान सों नैन ॥६४॥

चीता पालना उस समय एक विशेष धन्धा बन गया था।[1] भाट लोग प्रशंसात्मक दोहा, चौपाई, कवितादि गा-गा कर सुनाया करते थे।[2] समाज में त्यौहार बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते थे। होली की मस्ती में तो मीठी-मीठी गालियां भी चलती थीं।

भारा बरन सु कूँजरी, बेचै सोवा साग।
निलज भई खेले सदा, गारी दै दै फाग ॥३३॥

नगर शोभा का काव्य शास्त्रीय विवेचन

रस, अलंकार, छंद, गुण, दोष, भाषा इत्यादि की दृष्टि से किसी कृति का विवेचन, काव्य शास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत आता है। इस दृष्टि से देखने पर यह कृति शृंगार रस की एक उत्तम रचना सिद्ध होती है। उपर्युक्त पंक्तियों में कृति के विषय एवं भाव पक्ष का पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है और यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि यहाँ कवि का उद्देश्य भिन्न भिन्न जाति की नारियों का सौन्दर्य चित्रण मात्र है। इन चित्रणों में रहीम को पर्याप्त सफलता मिली है। उन्होंने नारी सौन्दर्य के सुन्दर चित्र उतारे हैं। कहीं कहीं तो इन चित्रों में पूर्ण रस भी विद्यमान रहता है। उदाहरण के लिए 'सबुनीगरनि' के प्रसंग से दो दोहे लिए जा सकते हैं—

थोरे थोरे कुच उठी, थोपन की उर सींव।
रूप गर में देत है, मैन मन्दिर की नींव ॥९२॥
करत बदन सुख सदन पै, घूँघट नेत्रन छांह।
नैननि मूँदे पग धरै, भूहन आरे माह ॥९३॥

यहाँ आलम्बन दूर खड़ा हुआ नागरिक है और आश्रय है सबुनीगरनि। घूंघट डालना, नेत्र मूंदना, पग बढ़ाना आदि अनुभाव हैं तथा लज्जा संचारी है। उसका 'सुख सदन बदन' तथा सौन्दर्य के नगररूपी शरीर में कामदेव के मन्दिर की आधार शिला रखने वाले (साबुन की बट्टियों के समान) दो गोल गोल कठोर पत्थर रूपी 'थोरे थोरे' उठे हुए छोटे कुच उद्दीपन की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत कर रहे हैं। इस दोहे में— विभावानुभाव संचारी के संयोग से शृंगार रस की स्पष्ट निष्पत्ति हो रही है।

रस के सभी अंग सभी दोहों में स्पष्ट न होते हुए भी उनमें पर्याप्त आकर्षण विद्यमान है। रहीम को नायिका के जिन क्रिया कलापों का चित्रण विशेष प्रिय प्रतीत होता है उसे काव्यशास्त्रीय भाषा में 'अनुभाव' कहा जाता है। आचार्य कवि देव ने अनुभाव के सम्बन्ध में कहा है—

---

१. चीतावानी देखि कै, विरही रहे लुभाइ।
गाड़ी को चीतो मनो, चले न अपने पाय ॥१२०॥

२. भाटन भटकी प्रेम की, हट की रहै न गेह।
जोबन पर अटकी फिरै, जोरत तरक सनेह ॥६५॥
मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख लौन।
आपुन जोबन रूप की, अस्तुति करै न कौन ॥६६॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आनन नैन प्रसन्नता, चलि चितौनि मुसकानि।
ये अनुभाव शृंगार के, अंग-भंग जिय जानि॥ भाव विलास

इस दृष्टि से हम देखते हैं कि, डोमनी, नटनी, खटीकनी, सबनीगरनी आदि के प्रसंग विशेष महत्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ यहाँ डोमनी प्रसंग के तीन दोहे उद्धृत किए जाते हैं :—

लेत चुराय डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कुछ लेत है, वांकी तिरछी तान॥६७॥
नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हंसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ॥६८॥
चेरी माती मैन की, नैन सेन के भाइ।
संक भरी जंभुवाइ कै, भुज उठाय अंगराई॥६९॥

यहाँ पर देव के अनुसार, सूधे मुख न रहना, झुकि-हंसि-मुरि मुसक्याना, नैन सैन के भाव भरे अन्दाज़ के साथ भुज उठा कर सशंक एवं सलज्ज भाव से अंगड़ाना व जंभुवाई लेना आदि अत्यन्त सुन्दर तथा सरस अनुभाव हैं। शोभा नगर की नायिकाओं के ये अनुभाव इतने मादक हैं कि उन्हें देख कर तथा उनके प्रेम रस का पान कर कोई नागरिक तो खड़ा-खड़ा ही झूम जाता है और कोई चलता-चलता बेसुध हो जाता है। ऐसी सरस पुरबालाओं को देख कर नेत्रों का व्रत नैम तज देना ही स्वाभाविक है संयमी बने रहना नहीं—

बाजीगरनि बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत वाको रस रसन, तजत नैन व्रत नेम॥११८॥
पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहै, एक परै मत खोइ॥११९॥

इन वर्णनों में हम रहीम के रसिक हृदय की झलक देख सकते हैं। इन्हें पढ़ कर इतना स्पष्ट हो जाता है कि इनका रचयिता कोई तरुण व्यक्ति है।

भाषा—नगर शोभा में व्रजभाषा अपने अकृत्रिम रूप में प्रकट हुई है। मधुर भावों की व्यंजना करते समय कवि कोमल एवं सरस शब्दों का प्रयोग करता है और विशेषता यह है कि यह शब्द चयन लेखनी से अनायास निकलता जाता है—

अंजन चख चंदन बदन सोभित सेन्दुर भंग।
अंगनि रंगसुरंग कै काढै अंग अनंग॥
थोरे थोरे कुच उठी थोपन की उर सीव।
रूप नगर में देत है मैन मंदिर की जीव॥

कहीं-कहीं तो उनकी भाषा सुन्दर फोटोग्राफी करने में समर्थ सिद्ध हुई है। बिहारी की याद दिलाने वाले तीर सरस गतिमान चित्र उपस्थित हैं—

नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हंसि मुरि मुस्कयाइ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ॥
चेरी मांती मैन की नैन सैन के माय।
संक भरी जंभुवाइ कै भुज उठाय अंगराय।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धरो भरो धरि सीस पर, विरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बांधिकै, लेजू लै ज्यों जाइ॥

नगर शोभा की भाषा में मुहावरे

रहीम ने 'नगर शोभा' के दोहों में मुहावरों का प्रयोग करने का भी प्रयत्न किया है। 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' तथा 'दो दिन का चमड़े का सिक्का चलाना' हमारे समाज के प्रसिद्ध मुहावरे हैं। ये प्रयोग रहीम के काल में भी प्रचलित थे। उनके निम्नलिखित दोहे इन्हीं मुहावरों से प्रेरणा लेकर लिखे गए प्रतीत होते हैं—

धोबन लुबधी प्रेम की, ना घर रहे न घाट।
देत फिरै घर घर जगर, लुगरा धरै लिलाट॥१३७॥
चोरत चित चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज॥१३९॥

ऊँट और बकरी का यह प्रयोग भी उल्लेखनीय है—

सरवानी विपरीत रस, किय चाहै न डराय।
दुरै न विरहा को दुरयो, ऊंट न छाग समाइ॥१३२॥

तेलिन के प्रसंग में 'तेली के बैल' का उल्लेख करना भी रहीम नहीं भूले हैं—

बेलन तिली सुवास कै, तेलनि करै फुलेल।
विरही दृष्टि कियो फिरै, ज्यों तेली को बैल॥४१॥

'नगर शोभा' ब्रज भाषा की कृति है। हां, यह भाषा सूर, तुलसी और नन्ददास के समान तो क्या स्वयं रहीम की अन्य रचनाओं के भी समान सशक्त नहीं है। उसमें खड़ी बोली के प्रयोग पर्याप्तरूपेण प्राप्त हैं। जिस अधिकरण कारक 'पर' का प्रयोग हम खड़ी बोली में करते हैं उसके लिए ब्रज भाषा में 'पै' का प्रयोग होता था और आज भी होता है। रहीम ने 'पै' का प्रयोग किया तो है परन्तु अपेक्षाकृत कम और 'पर' का प्रयोग अधिक।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के कथनानुसार "रहीम की नगर शोभा से स्पष्ट है कि विभिन्न जाति की स्त्रियों का इस प्रकार वर्णन करना विदेशियों के संसर्ग के कारण भारतवर्ष में फैला। इस प्रकार के वर्णन भारतीय काव्य शिष्टता के विरुद्ध पड़ते हैं और काव्य की सर्वमान्य शिष्टता से बाह्य हैं। काव्य अजायब घर नहीं है जिसमें देश-विदेश की विभिन्न जातियों की सामग्री इकट्ठा की जाए। इसके वर्णन अधिक शृंगारी हैं।"

अब हम स्पष्टतः निम्नलिखित सारांश निकाल सकते हैं—

१. 'नगर शोभा' यथा नाम तथा गुण रखती है। इस रचना में नगर नवेलिनों के सौन्दर्याकर्षण का वर्णन है। वैसे नगर की शोभा में नारियों का हाथ उतना नहीं होता जितना भवन-पथ-उद्यानादि का, किन्तु उन पार्थिव उपकरणों का वर्णन रहीम ने नहीं किया। अतः रचना के लिए 'नगर नारि शोभा' शीर्षक अधिक उपयुक्त हो सकता था।

२. कृति में 'दोहे' छन्द का प्रयोग किया गया है। कलेवर की दृष्टि से रहीम की अन्य कृतियों की भांति यह भी एक छोटी-सी रचना है। दोहा-संख्या केवल १४२ है। अन्त में कोई संकेत ऐसा नहीं जिसके अनुसार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow.

यह समझा जा सके कि १४२ वें दोहे पर ही कृति समाप्त है। हलवाइन, मालिन आदि कई प्रमुख जाति की स्त्रियों का वर्णन इन दोहों में नहीं आया है। अतः सम्भव है रहीम ने कुछ और भी दोहे या बरवै रचे हों।

इसी प्रसंग पर कुछ बरवै भी पण्डित याज्ञिक को मिले थे। भाव, भाषा, प्रसंग तथा रचना कौशल की कसौटी पर कसने से वे रहीम के ही सिद्ध होते हैं। इनमें कुछ नवीन नायिकाओं का भी वर्णन है और कुछ नगर शोभा की नायिकायें भी हैं। समान जाति वर्णन के बरवों को उसी प्रसंग में तथा नवीन नायिविषयक बरवों को प्रथक से देने में कृति में कुछ पूर्णता आ सकती है। अतः बरवों और दोहों का एक साथ सम्पादन किया जा सकता है।

इस रचना ने हिन्दी काव्य में एक नवीन परम्परा को जन्म दिया। जाति तथा उद्योगों के अनुसार विभिन्न नायिकाओं का वर्णन प्रस्तुत करने वाली यह प्रथम काव्य कृति है। बाद में इसी के आधार पर देव तथा रसलीन आदि ने अपने एतद्विषयक काव्य रचनायें प्रस्तुत की हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सन्त कवि सूर स्वामी और उनका काव्य

डॉ० गोपालबाबू शर्मा

एम० ए०, पी-एच० डी०

जनश्रुति के अनुसार श्री सूर स्वामी का जन्म अलीगढ़ जिले के अन्तर्गत हाथरस नगर के समीप परताप नामक गाँव में हुआ।

सूर स्वामी श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। वे अविवाहित थे और वैराग्य के प्रति उनके मन में शैशवावस्था से ही लगाव था। कहा जाता है कि हाथरस के प्रसिद्ध सन्त श्री तुलसी साहब एक बार घूमते हुए परताप गाँव पहुँचे। सूर स्वामी उस समय कुटी कर रहे थे। उन्हें देख तुलसी साहब ने कहा, "अरे सूर! क्या तू कुटी ही करता रहेगा?" यह सुन कर सूर स्वामी उठ खड़े हुए। उन्हें आत्मबोध हुआ। वे उसी समय से तुलसी साहब के साथ हो लिए और उनकी सेवा में रहने लगे।

श्री सूर स्वामी सन्त तुलसी साहब के प्रमुख शिष्य थे। स्वयं सूर स्वामी ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर यह बात स्वीकार की है—

(क) सूर के तारन तरन गुरु स्वामी तुलसी साहेब दातार।

(ख) सूर लीने चरन तुलसी गुरु के,
जिन धुर की बात सुझाइया जी।

सूर स्वामी अपढ़ और जन्मान्ध थे। उनके गुरु सन्त तुलसी साहब ने उन्हें नेत्र-ज्योति प्रदान की थी। इस विषय में 'रत्नसागर' में प्रकाशित श्री तुलसी साहब के जीवन चरित्र के अन्तर्गत लिखा है, "...इसी तरह प्रसिद्ध है कि आपके (तुलसी साहब) गुरुमुख (शिष्य) सूर स्वामी थे जो निपट अनपढ़ और जन्म के अन्धे थे उनको भी एक दिन आज्ञा की कि ग्रंथ पढ़ो और उनके उज़र करने पर डाँटा तो सूर स्वामी की आँखों में जोति आ गई और वह पढ़ने लगे।"[१]

मन्दिर श्री तुलसी साहब, हाथरस के वर्त्तमान महन्त श्री सन्त प्रकाशदास द्वारा भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। वे लिखते हैं, "श्री तुलसी साहब अन्धे नहीं थे। हाँ, उनके गुरुमुख (शिष्य) श्री सूर स्वामी अवश्य अन्धे थे और उन्हें श्री तुलसी साहिब के आशीर्वाद से नेत्र-ज्योति प्राप्त हुई थी।"[२]

श्री तुलसी साहब के पश्चात् श्री सूर स्वामी ही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। सूर स्वामी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हैं। यथा—

श्री सूर स्वामी काफी हृष्ट-पुष्ट और लम्बे-चौड़े थे। कहते हैं कि एक बार इन्होंने ज़िला फैजाबाद

---

१. रत्नसागर : बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, चौथी बार, मई १९१९ ई०, पृष्ठ २।

२. महन्त श्री सन्त प्रकाशदास द्वारा लेखक को लिखा गया पत्र, दिनांक १५-११-६६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के अन्तर्गत किसी गाँव में सत्संग कराने के लिए पदार्पण किया। वहाँ जिस मकान में इनको ठहराया जाना था, उसका द्वार काफी छोटा था और सिर झुका कर ही उसे पार कर अन्दर पहुँचा जा सकता था। अतएव उपस्थित स्वागतार्थी जन-समुदाय ने उनसे निवेदन किया, "महाराज, सिर झुका कर प्रवेश करें।" सूर स्वामी ने यह सुना, पर वे मौन रहे। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि सूर स्वामी बिना किंचित् झुके सीधे ही दरवाजे को पार कर अन्दर चले गए।

सूर स्वामी की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। एक बार श्री तुलसी साहब भावावेश में थे और उनके मुख से 'बानियाँ' निःसृत हो रही थीं। उनका एक शिष्य उन 'बानियों' को लिखता जाता था। यकायक उसे बाहर जाने की आवश्यकता हुई। उसने सूर स्वामी को संकेत दिया और चला गया। सूर स्वामी तुलसी साहब की 'बानियों' को सुनते रहे और बाद में उन्होंने उस शिष्य के लौट आने पर उसे सारी 'बानियों' को ज्यों का त्यों लिखवा दिया।

श्री सूर स्वामी की मृत्यु हाथरस में सम्वत् १९३३ (सन् १८७६ ई०) में फाल्गुन वदी १, मंगलवार को हुई। इस सम्बन्ध में मन्दिर श्री तुलसी साहेब के सन्निकट स्थित उनके समाधि-भवन पर निम्नलिखित लेख अंकित है—

"सन्त नाम

श्री सत गुरु साहेब की दया सकल सन्तन की दया श्री सूर स्वामी साहेब का चोला छूटा फागुन वदी १, मंगलवार संमत १९३३..."।

श्री सूर स्वामी जी के जन्मकाल का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनका कोई चित्र भी उपलब्ध नहीं जिससे उनकी आयु के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सके। हाँ, जनश्रुति के अनुसार मृत्यु के समय उनकी अवस्था ७५ वर्ष के लगभग थी। इस दृष्टि से उनका जन्म-काल १८०१ ई० (मृत्यु सन् १८७६ ई०—आयु ७५ वर्ष=१८०१ ई०) ठहरता है।

श्री सूर स्वामी की काव्य-रचना स्फुट रूप में है। उनकी स्फुट रचनाएँ अप्रकाशित हैं तथा मन्दिर श्री तुलसी साहब, किला द्वार, हाथरस में वर्तमान विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में उपलब्ध हैं।

श्री सूर स्वामी के काव्य का विषय अध्यात्म है। अपने आध्यात्मिक विचारों के अन्तर्गत उन्होंने ब्रह्म, जीवात्मा, जगत् आदि का वर्णन किया है, जो सन्तों की विचार-परम्परा के अनुगत ही है। ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन सूर स्वामी इस प्रकार करते हैं—

सत गुरु से ध्यान लगा जिसका,
तिसकी गति बरन न जात है जी।
सुरति सुनि सब्द में जाइ मिली,
मन बुधि जहँ गम नहिं पात है जी॥

सूरस्वामी के काव्य में प्रेम-भावना के भी दर्शन होते हैं। उन्होंने आत्मा को प्रियतमा तथा परमात्मा को प्रियतम मान कर दोनों के मध्य प्रेम-सम्बन्ध स्थापित किया है। उनकी यह प्रेम-भावना उच्चादर्श से परिपूर्ण है—

करना चाहे मिलाप तो कीजै ऐसा,
धर से सीस उतार के दीजिये जी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गुरु-महिमा का वर्णन सूर स्वामी ने स्थान-स्थान पर किया है। यथा—

(क) एक आस विस्वास राख,
गुरु पार करै भव-सागरिया।

(ख) गुरु के चरन गहौ,
छांडि सकल छल तज कुल जग की लाज।

ऊँच-नीच का भेद-भाव त्याग कर सन्तोष, क्षमा आदि गुणों को धारण करने का नीति-उपदेश भी सूर स्वामी के काव्य में मिलता है—

यारो ऐसी बात को कीजिए नित,
जिस बात से साहिब पाइया जी।
ऊँचाई नीचाई को दूर धरो कर
गम छिमा को लाइया जी।

श्री सूरस्वामी के काव्य में दो रसों का वर्णन हुआ है—शान्त तथा शृंगार। शान्तरस की प्रधानता है—

ऐसो री फिर मिलन समाज।
तन दुरलभ सत संग दुरलभ कह, काल करै सो आज॥
गुरु के चरन गहो छाँड़ि सकल छल तज कुल जग की लाज।
काम क्रोध मद लोभ तजो सब सुनि गुर गगन अवाज॥

शृंगार रस के अन्तर्गत वियोग पक्ष को प्रधानता मिली है। आत्मा को प्रियतमा तथा परमात्मा को प्रियतम मान कर विरह-भावना की सुन्दर अभिव्यक्त की गई है—

पल पल दृगन से री ठरक ठरक परत नीर,
विरह अति दारुन पीर पिया की सतावै री।
प्रेम की उमंग छाई रहंत बदन दिन राति,
कासे कहूँ बात कछू कहंत न आवै री॥

श्री सूर स्वामी के काव्य की भाषा मुख्यतः ब्रजभाषा है। यथा—

मिल कर बिछुड़न कौ बड़ौ दुख भारी,
कहा कहूं कछु कहत न आवै,
वोही जानै ये दरद जिसपै गुजरा री॥
प्रथम लगन जो करत में लागत नीकी,
पुनि परी मुस्किल निभानी विरहन को,
बिन पिया दरस फिरत व्याकुल तन,
निस दिन रहत दृगन जल जारी री॥

भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द तथा तदभव शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। उदाहरणार्थ—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(क) महिमा अगम अपार सन्त की,
कहत नेति श्रुति आखरिया।
(ख) सब तज री भज नाम अधार,
नाम समान और कछु नाहीं जोग जग्य आचार।

अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग सूर स्वामी ने अपनी भाषा में खूब किया है। यथा

(क) मुहब्बत महबूब से कीजिये ऐसी,
सनमुख सदा दरसाईया जी।
(ख) सूर मेहर करै तुलसी गुरु जब,
साहेब के रंग में भीजिये जी।

भाषा में कहीं-कहीं खड़ी बोली का स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है।

(क) मुहब्बत महबूब से कीजिए ऐसी...
(ख) सत्गुरु से ध्यान लगा जिसका...

सूर स्वामी ने अपने काव्य में मुख्यतया गेय पद-शैली को अपनाया है। यह शैली अत्यन्त सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण है। एक उदाहरण लीजिए—

एक तो जगत की सरम भरमावै,
दूजै विरह सतावै, तीजे हरष न आवै,
सूर सुरति बड़ भागी, जो पिता के हित लागी
वर पायो तुलसी सतगुरु दाता री।

काव्य-रचना अधिकांशतः पदों में हुई है। प्रायः प्रत्येक पद किसी-न-किसी राग-रागिनी से सम्बद्ध है। 'पद' के अतिरिक्त 'झूलना' छन्द को भी ग्रहण किया गया है।

सूर स्वामी काव्य सन्तों की भाँति सहज सौन्दर्य से युक्त है, उसे अलंकारों के कृत्रिम सौन्दर्य से सजाने की चेष्टा बिल्कुल नहीं की गई है। जहाँ कहीं अलंकारों का समावेश हुआ है, निष्प्रयास ही हुआ है। इस प्रकार के अलंकारों में अनुप्रास एवं रूपक प्रमुख हैं। अनुप्रास और रूपक अलंकार के उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत हैं—

(क) सोई सखी सयानी होय,
सरन सतगुरु की गही।
(ख) गुन की गुलाल आस अबिर उड़ाऊँगी।

श्री सूर स्वामी हिन्दी सन्त कवियों की शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनकी रचनाएँ न तो प्रकाशित ही हैं और न सुव्यवस्थित रूप से संगृहीत ही। यही कारण है कि वे साहित्य-प्रेमियों की दृष्टि से ओझल रहे हैं। प्रकाशित होने पर सूर स्वामी का काव्य साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चैतन्य संप्रदाय की ब्रज को देन

डा० श्याम शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं उन्नयन में ब्रज का महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रज के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं भाषा व साहित्य की दृष्टि से भारतीय संस्कृति के लिए ब्रज का योगदान महत्वपूर्ण है। उसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि ब्रज भारतीय संस्कृति के उद्भव स्थान मध्यदेश का हृदयस्थल होने से भारतीय संस्कृति का भी केन्द्र स्थल रहा है। भारतीय संस्कृति में जब भी संक्रमण काल आया, ब्रज उस संक्रमण का केन्द्रभूत रहा एवं उससे सदैव प्रभावित हुआ है। भले ही भारत से बाहर का कोई प्रभाव-विशेष हो या बाहर उत्तर या दक्षिण से कोई लहर उठी हो—वह भारत के मध्यदेश ब्रज में आकर ही घनीभूत हुई। यही कारण है कि ब्रज या मथुरा मण्डल समय-समय पर हिन्दू, जैन, बौद्ध, मुसलमान आदि सभी का कार्यक्षेत्र तथा गढ़ बना रहा है और सभी के सांस्कृतिक उपादानों से समृद्ध हुआ है। आज 'ब्रज', ब्रज संस्कृति एवं ब्रज साहित्य कहने पर ब्रज का जो रूप अभिव्यक्त होता है, उसका सीधा सम्बन्ध मध्यकालीन पुनरुत्थान के बाद के ब्रज से है। कारण कि मध्यकाल से पूर्व का ब्रज जिसका निर्माण ब्रजेश श्री कृष्णचन्द के द्वारा हुआ या जिसका पुराण, धार्मिक उपाख्यान एवं इतर ग्रंथों में वर्णन हुआ है, वह केवल पुरावृत्त के रूप में मननीय रह गया है। किन्तु मध्य काल के बाद आविष्कृत एवं प्रतिष्ठित ब्रज की सांस्कृतिक आध्यात्मिक तथा भावनात्मक संवेदनाएँ इतनी प्रभविष्णु हैं कि आज भी ब्रजजनपद तथा धार्मिक जन-मानस उनसे तरंगित एवं ओतप्रोत है।

मध्यकाल में वैष्णव धर्म के आन्दोलन भारत के भिन्न-भिन्न अंचलों से उद्भूत होकर ब्रज में समाविष्ट हुए। अतएव ब्रज भागवत धर्म का केन्द्र हो गया। किन्तु क्योंकि ब्रज के संस्थापक एवं निर्माता ब्रजराज श्री कृष्णचन्द्र हैं। ब्रज का समस्त वातावरण कृष्ण-भावना से आन्दोलित है। अतः ब्रज का सांस्कृतिक परिवेश सदैव राधाकृष्णमय बना रहा। आधुनिक ब्रज भी राधाकृष्ण-केन्द्रित है। आधुनिक ब्रज की समस्त परंपराएँ तथा मान्यताएँ, आस्था एवं विश्वास सर्वविध राधाकृष्णमय हैं। अतएव आधुनिक ब्रज, ब्रज संस्कृति एवं ब्रज साहित्य व्यापक रूप में राधा-कृष्ण से अनुप्राणित है।

ब्रज का सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा साहित्यिक पुनरुद्धार एवं पुनर्निर्माण वस्तुतः चैतन्य सम्प्रदाय के द्वारा हुआ। चैतन्य से पूर्व वैष्णव जगत में जिस धार्मिक चेतना, दार्शनिक दृष्टि तथा भक्ति के कर्मकाण्ड का विकास हो चुका था, चैतन्य ने उसकी संवेगात्मकता को चैतन्य किया। चैतन्य सम्प्रदाय के द्वारा भक्ति-भावना के उन्नयन से ब्रज संस्कृति को अभिनव रूप प्राप्त हुआ। अतः ब्रज का जो रूप आज हमें प्राप्त है, उसका अधिक श्रेय चैतन्य सम्प्रदाय को है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चैतन्य सम्प्रदाय बंगाल में उत्पन्न होने के कारण गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय भी कहलाता है। "परन्तु चैतन्य सम्प्रदाय का शास्त्रीय रूप, विधि-विधानों की व्यवस्था, भक्ति शास्त्र के सिद्धान्तों का निर्णय बंगाल में न होकर सुदूर वृन्दावन में विद्वान् गोस्वामियों के द्वारा किया गया।[1] चैतन्य मतानुयायियों ने ब्रज को ही अपना क्षेत्र बनाया और प्रमुखतः ब्रज में ही चैतन्य सम्प्रदाय का सर्वतोमुखी सुव्यवस्थित विकास हुआ। ब्रज में चैतन्य संप्रदाय के विकास की प्रमुखतः तीन प्रक्रियाएँ थीं : (१) संगठनात्मक, (२) सांस्कृतिक तथा (३) सर्जनात्मक। तीनों दृष्टियों से यह विकास उल्लेखनीय है।[2] ब्रज में चैतन्य सम्प्रदाय का यह विकास दूसरे शब्दों में ब्रज का सांस्कृतिक पुनरुद्धार एवं पुर्ननिर्माण ही था।

चैतन्य सम्प्रदाय ने बड़ी ही निष्ठापूर्वक, सुसंगठित होकर ब्रज में जो सर्वाधिक महत्व के कार्य किए, उनसे ब्रज की संस्कृति का जीवन्त, विशद एवं हृदस्पर्शी रूप अभिष्कृत हुआ है। ब्रज संस्कृति तथा साहित्य पर अमिट प्रभाव डालने वाले चैतन्य सम्प्रदाय के ये कार्य निम्न प्रकार से हैं—

(१) ब्रज के सांस्कृतिक स्थानों का पुनरुद्धार एवं पुर्ननिर्माण सम्बन्धी कार्य तथा सांस्कृतिक परम्पराओं को पुनरुज्जीवित करने वाले कार्य।

(२) भक्तिपरक, आध्यात्मिक, शास्त्रीय तथा साहित्यिक ग्रंथों की रचना।

उपर्युक्त सभी कार्य ब्रज संस्कृति के लिए इतने महत्वपूर्ण सिद्ध हुए कि आज ब्रज में सर्वत्र चैतन्य सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान में ब्रज का जो भी सांस्कृतिक, दार्शनिक, धार्मिक तथा साहित्यिक रूप उपलब्ध है, वह अधिकांश में चैतन्य सम्प्रदाय की देन है। ब्रज के तीर्थ, मन्दिर, उत्सव, उपासना पद्धति, परम्पराएँ, मान्यताएँ तथा साहित्य आदि सभी पर चैतन्य संप्रदाय का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

ब्रज संस्कृति के पुनरुद्धार एवं पुर्ननिर्माण के कार्य :

यद्यपि चैतन्य महाप्रभु ने आचार्य के रूप में स्वयं तो किसी मत या सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा नहीं की, बल्कि व्यावहारिक रूप से यह कार्य उनके अनुयायी आचार्यों ने किया। श्री चैतन्य का आविर्भाव १४८५ ई० में नवद्वीप में हुआ। श्री चैतन्य को भक्ति का आस्वाद कराने का श्रेय माधवेन्द्रपुरी के शिष्य ईश्वरपुरी को है।[1] माधवेन्द्रपुरी स्वयं माध्व संप्रदाय के महान विद्वान् आचार्य थे। उन्होंने कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार किया और यह माना जाता है कि "कालान्तर में उनके भक्तिसिद्धान्त को और समृद्ध करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने गौड़ीय सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की।"[2] चैतन्य चरितामृत के अनुसार श्री माधवेन्द्रपुरी ब्रज में आये और गोवर्धन में श्रीनाथ के देव विग्रह का प्राकट्य किया। श्री माधवेन्द्रपुरी ने उनका नाम 'गोपाल' रख कर, उनकी सेवा का आरंभिक आयोजन किया था। बाद में श्री वल्लभाचार्य ने उसी देव विग्रह का नाम श्री गोवर्धननाथ अथवा श्रीनाथ जी रखा[3] और अद्वितीय प्रतिष्ठा दी। अतः यह मानना ठीक ही है कि "मथुरावृन्दावन के तीर्थोद्धार के महत्वपूर्ण कार्य को आरम्भ करने का श्रेय माधवेन्द्रपुरी को है।"

श्री माधवेन्द्रपुरी की शिष्य परंपरा में दीक्षित श्री चैतन्य महाप्रभु परम भागवत, भावुक तथा अत्यन्त संवेदनशील कृष्णभक्त थे। नवद्वीप में ही उन्हें यह इच्छा हुई कि श्रीकृष्ण के लीलास्थल 'ब्रज' की यात्रा की

---

१. भागवत संप्रदाय : बलदेव उपाध्याय, पृ० ५०४।

२. देखें—डा० श्याम शर्मा का लेख : ज्ञानदा : वैब्रज भव अंक : मथुरा,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जाय। ब्रज का हृदयस्थल वृन्दावन माना गया है, किन्तु उस समय यह लीलाधाम वृन्दावन लता-पताओं से आच्छन्न सघन निर्जन वन बना हुआ था। ब्रज के अन्य लीलास्थल भी अज्ञात थे। अतः महाप्रभु चैतन्य ने सर्वप्रथम लगभग सं० १५६८ में श्री लोकनाथ चक्रवर्ती तथा श्री भूगर्भ गोस्वामी को वृन्दावन एवं अन्य लीलास्थलों की खोज के लिए भेजा। लेकिन उन्हें इस कार्य में विशेष सफलता नहीं मिली। सं० १५७५ में स्वयं महाप्रभु ब्रज में पधारे। ब्रज में आकर उन्होंने मथुरा में अक्रूर घाट पर निवास किया। मथुरा के विश्राम घाट तथा भूतेश्वर, गोकर्ण आदि के दर्शन किए। तदनन्तर गोवर्धन, गाँठोली, राधाकुण्ड एवं वृन्दावन आदि गए। कहा जाता है कि इसी समय सर्वप्रथम महाप्रभु ने लुप्तप्राय राधाकुण्ड का उद्धार किया।

इसके उपरान्त चैतन्य सम्प्रदाय के प्रमुख आधार स्तम्भ षड् गोस्वामी श्रीरूप, श्री सनातन, श्री गोपाल भट्ट, श्री रघुनाथदास, श्री रघुनाथ भट्ट तथा श्री जीव गोस्वामी ब्रज में आये। इसके अतिरिक्त चैतन्य देव के निष्ठावान् सेवक श्री लोकनाथ चक्रवर्ती, भूगर्भ चक्रवर्ती तथा मधु गोस्वामी भी ब्रज में पधारे। गौडीय विद्वानों के प्रयास के फलस्वरूप ही 'सांस्कृतिक ब्रज का स्वरूप' निश्चित हुआ है। विशेषकर षड्-गोस्वामियों ने ब्रज के सांस्कृतिक रूप को सामने लाने तथा सुस्थिर बनाने के लिए अनेक कार्य किए। श्री रूप ने मथुरा-वृन्दावन यात्रा की और ब्रज-वास करने लगे। श्री रूप ने इष्टदेव श्री गोविन्ददेव जी के प्राचीन श्री विग्रह का गोमा टीले से सं० १५९२ में प्राकट्य किया और इसी सम्प्रदाय के अनुगत राजा मानसिंह ने लाल पत्थर का गोविन्द जी का भव्य विशाल मन्दिर बनवाया, जो न केवल धार्मिक दृष्टि से, अपितु वास्तुकला की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्री रूप के ज्येष्ठ भ्राता श्री सनातन भी परम कृष्ण भक्त थे। ये स्थायी रूप से ब्रजवास करने लगे। ये प्रायः नन्दग्राम, गोकुल और महावन में और विशेष-तया राधाकुण्ड और वृन्दावन में निवास करते थे। श्री सनातन ने ही वृन्दावन में श्री **मदनमोहन** जी की सेवा प्रचलित की। बाद में इनके भक्तों ने इनके लिए कालियदह के निकट के द्वादशादित्य टीले पर मन्दिर बनवाया, जो कि वृन्दावन के प्राचीन मंदिरों में अन्यतम है।

गोस्वामी श्री गोपाल भट्ट भी परम वैष्णव थे। कहा जाता है कि ये शालिग्राम की शिला की सेवा करते थे। एक बार इनकी भक्ति भावना के कारण इच्छानुरूप शिला मुरली मनोहर के रूप में परिवर्तित हो गयी और बाद में यही श्री विग्रह श्री **राधारमण** जी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनका अभिषेक सं० १५९९ में हुआ। वृन्दावन में आज भी श्री राधारमण जी का विशाल मन्दिर है। श्री रघुनाथदास गोस्वामी राधाकुंड पर रह कर अनन्य वैराग्य एवं भक्ति भाव में तल्लीन रहते हुए रूप-सनातन के कार्यों को पूर्ण करने में लगे रहे। श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी ने श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार अपने सुमधुर कण्ठ द्वारा कथा के माध्यम से किया।

षड् गोस्वामियों में श्री जीव का स्थान अन्यतम है। यह रूप-सनातन के अनुज के पुत्र थे। सं० १५९८ में वृन्दावन आकर स्थायीवास किया तथा अपने पितृव्य से वैष्णव साहित्य का गूढ़ अध्ययन किया। इन्होंने सं० १५९९ में श्री **राधादामोदर** जी की सेवा प्रचलित की। शृंगार वट पर स्थित यह मंदिर आज भी वृन्दावन की, विशेषतः चैतन्य संप्रदाय की अमूल्य निधि है। इसके पृष्ठ भाग में जीव, रूप तथा कृष्णदास कविराज की समाधियाँ हैं तथा सनातन द्वारा सेवित गिरिराज जी की शिला है। यहीं एक जीर्ण इमली का वृक्ष है, जहाँ, किंवदन्ती के अनुसार वृन्दावन आने पर श्री चैतन्य ने विश्राम किया था।

वृन्दावन में वंशीवट पर श्री गोपीनाथ जी का प्राचीन एवं भव्य मंदिर है। ब्रज के इतिहासकार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ग्राउज के अनुसार यह मंदिर सं० १६४६ में बना। श्री गोपीनाथ जी मधु गोस्वामी के उपास्य थे। आज भी मंदिर के निकट मधु गोस्वामी जी की समाधि स्थित है। श्री लोकनाथ जी तथा श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के उपास्य श्री राधाविनोद जी तथा श्री गोकुलानन्द जी का मंदिर श्री राधारमण जी के मंदिर के पास में स्थित है। इसमें श्री चैतन्य द्वारा श्री रघुनाथ गोस्वामी को प्रदत्त ऐतिहासिक गोवर्धन शिला भी स्थित है। यहीं श्री राधावल्लभ के मंदिर के पास में ही श्री गदाधर भट्ट जी के उपास्य श्री राधामदन मोहन जी का मंदिर स्थित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वृन्दावन में प्राचीन मंदिरों के निर्माण एवं स्थापना में चैतन्य सम्प्रदाय का प्रमुख हाथ रहा है।

जैसा कि हम लिख चुके हैं श्री चैतन्यदेव ने ब्रज-वास के समय मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड, कामवन, गोकुल तथा महावन आदि अनेक स्थानों की यात्रा की थी। परन्तु क्योंकि वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड को अपने निवास, पावन कीर्तन तथा उद्धार आदि करके विशेष महत्व प्रदान किया, अतः चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी भी इन्हीं स्थानों पर विशेष रूप से छाये रहे। राधाकुण्ड जैसे विशिष्ट तीर्थ का प्राकट्य स्वयं महाप्रभु ने किया, अतः वृन्दावन के बाद चैतन्य सम्प्रदाय का दूसरा प्रमुख 'गढ़' राधाकुण्ड ही रहा। श्री सनातन गोस्वामी यद्यपि नन्दग्राम, गोकुल, महावन में भी रहे, पर राधाकुण्ड एवं वृन्दावन ही उनके प्रमुख निवास स्थल थे। इन सभी स्थानों पर उनकी भजन कुटियाँ बनी हुई हैं। श्री रघुनाथ गोस्वामी तो स्थायी रूप से राधाकुण्ड पर ही निवास करते थे और वहीं उनका देहावसान भी हुआ। आज भी वहीं उनकी समाधि बनी हुई है। श्री प्रबोधानन्द जैसे विद्वान् वृन्दावनस्थ अक्रूरघाट पर रहते थे। वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। चैतन्य चरितामृत के रचयिता श्री कृष्णदास कविराज वृन्दावन एवं राधाकुण्ड में ही रहे और उन्होंने अपना अंतिम समय तो श्री रघुनाथ गोस्वामी जी के साथ राधाकुण्ड में ही व्यतीत किया। बंगदेश में ब्रज संस्कृति और ब्रज भावना को प्रचारित करने वाले श्री नरोत्तमदास भी प्रायः वृन्दावन तथा राधाकुण्ड में निवास करते रहे।

'ब्रज संस्कृति' के वर्तमान रूप को स्थिर करने के लिए चैतन्य संप्रदाय के विद्वान भक्त श्री नारायण भट्ट ने जो कार्य किए, वे 'ब्रज के सांस्कृतिक इतिहास' में सदैव सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहेंगे। श्री भट्ट (जं० सं० १५८८ वै० शु० १४) प्रतिभाशाली दाक्षिणात्य विद्वान् थे। जब वे सं० १६०२ में ब्रज में पधारे, उस समय राधाकुण्ड तथा वृन्दावन आदि स्थानों पर रह रहे चैतन्य संप्रदाय के प्रमुख भक्त एवं विद्वान् महाप्रभु चैतन्य के आदेशानुसार ब्रज के सांस्कृतिक स्थलों के उद्धार तथा श्रीकृष्ण भक्ति प्रचार में लगे हुए थे। उसी बीच श्री नारायण भट्ट ने इस कार्य को असाधारण प्रतिभा के साथ सुविस्तृत परिवेश में पूर्णता प्रदान की। श्री भट्ट राधाकुण्ड पर श्री मदनमोहन जी की सेवारत श्रीगदाधर पंडित के शिष्य एवं श्रीसनातन के कृपाभाजन श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी के अनुगत थे। अतः श्री भट्ट ने भी सर्वप्रथम राधाकुण्ड को ही निवास स्थल बनाया, और यहाँ १२ वर्ष तक रहने के उपरान्त ऊँचे ग्राम चले गए तथा वहाँ गृहस्थ जीवन प्रारम्भ किया।

श्री नारायण भट्ट चरितामृत के अनुसार उन्होंने लगभग ६० ग्रंथों की रचना की। ब्रज संस्कृति का व्यापक रूप से उद्धार करने की दृष्टि से इनके ग्रंथों में 'ब्रज भक्ति विलास', ब्रज गुणोत्सव चन्द्रिका', बृहत्-ब्रजगुणोत्सव', ब्रजोत्सवाह्लादिनी', 'ब्रज दीपिका', ब्रज महोदधि' एवं ब्रज प्रकाश ग्रंथों का सर्वाधिक महत्व हैं। ये सभी ग्रंथ राधाकुण्ड-निवासकाल में ही रचे गये। इनमें ब्रज के समस्त वन, उपवन, तीर्थ एवं लीलास्थल तथा ब्रज के देवी-देवताओं की महिमा का सुविस्तृत, पांडित्यपूर्ण प्रमाणिक वर्णन एवं ब्रज के परंपरागत व्रत

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उत्सव आदि का उद्धार किया गया है। श्री भट्ट ने व्रज संस्कृति से सम्बद्ध उपर्युक्त साहित्य रचना ही नहीं की, अपितु अपने योग्य नेतृत्व में विभिन्न मंदिरों में, व्रज के तीर्थों में प्राचीन परंपरा का प्रवर्तन किया और आज भी व्रज के अधिकांश मंदिरों में व्रत-उत्सव आदि की उसी परंपरा का निर्वाह होता है।

व्रजयात्रा-प्रवर्तन——इसके अतिरिक्त व्रज के वैभव एवं स्वरूप को अभिव्यक्त करने एवं महत्व प्रतिपादन के लिए 'व्रज यात्रा' का प्रवर्तन तथा प्रचार किया।

रासलीलानुकरण——श्रीभट्ट का सर्वाधिक महत्वपूर्णकार्य था अपने आराध्य व्रजराज श्री कृष्ण के लीलानुकरण पर 'रास' का प्रचलन तथा रास मण्डलों का निर्माण। मथुरा मण्डल के प्रसिद्ध पुरातत्वविद् एवं इतिहासकार श्रीग्राउज़ ने व्रज यात्रा के प्रवर्तन तथा रासलीला को व्यवस्थित एवं स्थिर रूप देने का श्रेय श्री नारायण भट्ट को दिया है। यह कार्य व्रज संस्कृति के लिए बड़ा ही महत्व का था। इससे जहाँ एक ओर भावुक भक्तों को सहज ही भक्ति का अवलम्बन मिला, वहाँ व्रज के संगीत[1] तथा अभिनय-कला का उद्धार हुआ।

ग्रंथ-निर्माण——चैतन्य सम्प्रदाय के अनुगत भक्त असाधारण पांडित्य के धनी भी थे। माना जाता है कि स्वयं चैतन्य ने न तो कोई विशेष ग्रंथों की रचना की, और न संप्रदाय स्थापना के उद्देश्य से आचार्य परंपरा के सदृश कोई विशेष कार्य किया। श्री चैतन्य के चार छोटे-छोटे स्तोत्रों को चैतन्य सम्प्रदाय के वीत-राग साधु (हमारे परम श्रद्धेय) स्व० बाबा कृष्णदास ने 'श्री महाप्रभु ग्रंथावली' के नाम से प्रकाशित कराया है। यह शिक्षाष्टक, प्रेमरसायनस्तोत्र, युगलपरिकरस्तोत्र तथा श्री राधारमणमंजरी——इन चार स्तोत्रों का संकलन है। इनमें शिक्षाष्टक तो अवश्य महाप्रभु की कृति मानी जाती है, पर अन्य स्तोत्रों की प्रामाणिकता विचारणीय है। किन्तु, स्वयं चैतन्य देव ने भले ही कोई ग्रंथ विशेष न लिखा हो, पर उनके विचारों को चैतन्य देव के निष्ठावान विद्वान अनुयायियों ने विशाल बहुमूल्य साहित्य के रूप में निबद्ध किया है।

प्रभावपूर्ण, व्यवस्थित तथा व्यापक ढंग से चैतन्य संप्रदाय के लिए शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक ग्रंथों की रचना का दार्शनिक विचारों की स्थापना का तथा भक्ति-भावना के प्रचार का कार्य षड्गोस्वामियों ने किया। धर्म-दर्शन से सम्बद्धरूप-जीव-सनातन द्वारा रचित यह विशाल साहित्य व्रज एवं वैष्णवदर्शन के लिए अमूल्य एवं अनुपम देन है। यह साहित्य अनेक रूपात्मक है। समान्यतः षड् गोस्वामियों का यह साहित्य संस्कृत में है तथा काव्य, नाटक आदि ललित साहित्य तथा व्याकरण एवं कोश ग्रंथ, जीवन चरित तथा विरुदावली, भक्ति दर्शन सम्बन्धी शास्त्रीय एवं दार्शनिक ग्रंथ, संकलन एवं व्याख्या आदि के ग्रंथों के रूप में हैं। इनमें ललित माधव, विदग्धमाधव, नाटक चन्द्रिका, हंसदूत, उद्धव सन्देश, दानकेलि कौमुदी, पद्यावली, मथुरा महिमा, श्रीकृष्ण लीलास्तव आदि के अतिरिक्त महत्वपूर्ण विशिष्ट ग्रंथों में हरि भक्तिविलास, वृहद् भागवतामृत, वैष्णवतोषिणी, भक्ति रसामृतसिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि, लघु भागवतामृत, षट्सन्दर्भ एवं गोपालचम्पू आदि हैं, जो कि प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा परम आदर की दृष्टि से देखे एवं पढ़े जाते हैं। इन अमूल्य ग्रंथों ने व्रज के अन्य समकालीन एवं परवर्ती वैष्णव समुदाय, उसके धर्म-दर्शन, भावना तथा मान्यताओं को समधिक रूप में प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ गो० विट्ठलनाथ जी के राधाभाव सम्बन्धी विचारों पर चैतन्य सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट है। उधर राधाबल्लभीय भक्तिशास्त्रीय ग्रंथों पर भी पर्याप्त प्रभाव है।

---

१. नृत्यं वाद्यं च गीतं च त्रयः संगीतमुच्यते।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विशेष रूप से भक्ति रसामृत सिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि एवं हरिभक्ति विलास ये तीन ऐसे ग्रंथ हैं, जो भक्ति दर्शन तथा भक्ति के कर्मकाण्ड एवं भक्तिरस के असाधारण प्रामाणिक एवं विश्वकोश हैं। बाद में श्रीप्रबोधानन्द, कर्णपूर, नारायण भट्ट, विश्वनाथ चक्रवर्ती एवं बलदेव विद्याभूषण आदि विद्वानों ने भी चैतन्यसम्प्रदाय की उसी दार्शनिक एवं शास्त्रीय परंपरा के अनुरूप भक्तिभूषण सन्दर्भ, भक्ति विवेक, भक्तिरस तरंगिणी, साधनदीपिका, गोविन्द भाष्य, सिद्धान्तरत्न तथा प्रमेयरत्नावली आदि अनेक ग्रंथों की रचना की।

उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इन विद्वानों ने 'संगीत माधव', आनन्द वृन्दावन चम्पू, अलंकार कौस्तुभ, प्रेमांकुर नाटक, कृष्ण भावनामृत काव्य आदि अनेक साहित्यिक ग्रंथों की रचना की, तो प्रबोधानन्द रचित वृन्दावन-महिमामृत जैसे सांस्कृतिक ग्रंथ भी इसी समय लिखे गए। उक्त ग्रंथों की रचना प्रायः ब्रजमण्डल में होने पर भी संस्कृत में ही हुई; और आश्चर्य रहा है कि इस बीच ब्रजभाषा में इस संप्रदाय की बहुत कम रचनायें हुईं। जो ब्रजभाषा की रचना थीं भी उनका अस्तित्व ही इन संस्कृत ग्रंथों के प्रभाव से आच्छन्न होगया।

चैतन्य संप्रदाय के इन आचार्यों ने चैतन्यदेव की विचारधारा को तत्कालीन विद्वान्-बहुल सुप्रतिष्ठत धार्मिक समाज में संस्थापित किया। इन आचार्यों ने श्रीकृष्ण प्रेम को मनोवैज्ञानिक रूप दे डाला तथा उसी के अनुरूप उसका विवेचन किया।[1] यही कारण है कि चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति रस से सम्बन्धित विचार-धारा बड़ी सटीक बन पड़ी है। चैतन्य संप्रदाय का यह साहित्य ब्रज में तथा ब्रज के बाहर सर्वत्र समस्त वैष्णव जगत में प्रामाणिक एवं मान्य रहा है। दार्शनिक ग्रंथों के प्रणेता वृन्दावनस्थ ये विद्वान् ही तत्कालीन चैतन्य संप्रदाय के संगठन को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे।

चैतन्य संप्रदाय की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इस नव वैष्णव-धर्म की सिद्धान्त अट्टालिका की नींव में लोक, पांडित्य, भक्ति और अध्यात्म चारों के क्रांतिकारी तत्व समन्वित थे।[2] चैतन्य दर्शन की संरचना में इन्हीं तत्वों का प्रमुख हाथ रहा है। चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति, साधना एवं तत्ववाद तथा उपासना आदि में अध्यात्म एवं लोकगत तत्वों के समन्वय की सफल सार्थक चेष्टा की गई है। यूँ तो बाद में चैतन्यदेव को भी अवतार मान लिया गया है। विशेषतः नदियावासियों ने चैतन्यदेव के जीवन-काल में ही उन्हें ईश्वरत्व की परंपरा में बिठा दिया था।[3] यह प्रवृत्ति मध्यकाल की प्रमुख प्रवृत्ति मानी गई है।[4] डा० कपिलदेव के अनुसार गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य भी (आलोक) मध्यकाल में एक ओर तो उपास्य देव श्रीकृष्ण के अवतार माने गए और दूसरी ओर गुरु-परम्परा में स्वयं उपास्य और अवतारी रूप में मान्य हुए हैं।[5] चैतन्यदेव का अवतार राधा-कृष्ण का सम्मिलित रूप माना गया है। श्री रूप ने इसी अवतारी रूप का स्मरण किया है[6] और बाद में तो चैतन्य चन्द्रोदय तथा चैतन्य चरितामृत आदि संस्कृत एवं बंगला

---

१. Early History of the Vaishnava Faith & movement in Bengal : By S. K. De. 1942 p. 23-24. **भक्ति साहित्य में मधुरोपासना, से उद्धृत।**

२. ब्रज साहित्य का इतिहास डा० सत्येन्द्र, पृ० १७१।

३. १६ वीं शती के हिन्दी बंगाली कवि : डा० रत्नकुमारी, पृ० १७२।

४. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : डा० कपिलदेव, पृ० ५८८।

५. वही, पृ० ५८८-९१।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आदि में इसी आधार पर अनेक रचनायें हुईं। किन्तु यह सब चैतन्यदेव के भावुक एवं प्रभावपूर्ण व्यापक व्यक्तित्व के कारण उनके भक्तों ने अपने श्रद्धातिरेक के कारण ही किया। अन्यथा चैतन्य संप्रदाय राधा-कृष्णोपासक संप्रदाय है। चैतन्य चरितामृत के अनुसार राधाकृष्ण का माधर्य ही भागवत का सार है।[६] भक्ति दर्शन के क्षेत्र में चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त ब्रज संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण देन हैं। इसके अनुसार आराध्य भगवान श्रीकृष्ण हैं। उनका धाम वृन्दावन है। ब्रज गोपिकाओं की रमणीय उपासना ही उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है तथा प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है।[१] कुछ विस्तार से, चैतन्यसम्मत वैष्णव-दर्शन की मान्यताएँ एवं सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) श्रीकृष्ण ही पूर्ण-ब्रह्म, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा परात्पर भगवतत्व हैं।[२]

(२) तत्वभूत श्रीकृष्ण सविशेष एवं सशक्तिक हैं। अनन्त-शक्ति सम्पन्न होने पर भी इनमें तीन शक्ति प्रमुख हैं—स्वरूप शक्ति, माया शक्ति एवं जीव शक्ति। श्री जीव गोस्वामी के शब्दों में ये अन्तरंग, वहिरंग तथा तटस्थ भी कहलाती हैं।[३] इनमें स्वरूप शक्ति (अन्तरंग) सर्वश्रेष्ठ है। इसी के द्वारा भगवान अपनी लीला का विस्तार करते हैं।

(३) श्रीकृष्ण का स्वरूप सत् चित् आनन्दमय होने से उनकी शक्ति भी ह्लादिनी, सन्धिनी एवं संवित्-त्रिविध कल्पित की गई है।[४] इनमें सन्धिनी माया तथा तटस्थ जीव शक्ति है, और ह्लादिनी राधारूप हैं। यह ह्लादिनी शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ है। यह परम मधुर शक्ति है। यह श्रीराधा के रूप में भगवान को आनन्द देती है तथा भक्ति के रूप में लीलारस का आस्वाद करा के भक्त को आनन्द देती है।

(४) अतः चैतन्य संप्रदाय के अनुसार भक्त का साध्य न तो राधात्व की प्राप्ति है, न गोपीत्व की प्राप्ति। बल्कि भक्त का साध्य है भगवान की लीला का आस्वाद।

(५) चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने शक्ति-विलास के आधार पर ही धाम, लीला, रूप एवं परिकर आदि की कल्पना की है। शक्ति सिद्धान्त की तर्कपूर्ण परिकल्पना को दार्शनिक आधार बना कर ब्रज में व्याप्त परस्पर विरोधी वैष्णव साधना से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का समाधान एवं समन्वय स्थापित किया है।

(६) राधातत्व के सम्बन्ध में चैतन्य दर्शन में महत्वपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया है। राधा ह्लादिनी की अधिष्ठात्री हैं[५] जो सर्वातिशायि पूर्ण शक्ति भी हैं।[६] राधाकृष्ण एक रूप होते हुए भी लीला रस की दृष्टि

---

१. स्तवमाला।

२. "माधुयेई भगवत्तार सार।"

३. आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधू वर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमान्पुमर्थो महान्, श्री चैतन्य महाप्रभोमतमिदं तत्रादरो नः परः॥

४. द्रष्टव्य—भागवत १।३।२८; ब्रह्मसंहिता ५-१; तत्त्व सन्दर्भ तथा चैतन्यचरितामृतः
"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारण कारणम्॥"

५. भगवत सन्दर्भः, पृ० ६५।

६. चै० चरि० ली० परि० ८, पृ० १४९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

से राधा में प्रेम की सर्वाधिक शक्ति है। अतः राधा मूल कान्ता शक्ति है।[१] श्री राधा का प्रेम सर्वातिशायी है।[२] वह महाशक्ति स्वरूप, अतएव समस्त शक्ति, ऐश्वर्य एवं माधुर्य के आधार श्रीकृष्ण राधा के वशवर्ती हैं। अतएव राधा श्रीकृष्ण की महाभावस्वरूपिणी मानी गई हैं। प्रेम की आदर्श भूता व्रज गोपियाँ ह्लादिनी शक्ति स्वरूप होने के कारण श्रीराधा का कायव्यूह रूप है।[३] सेवा के प्रकार एवं भेद से गोपियों के दो भाग हैं : सखी एवं मंजरी।[४] किन्तु श्रीराधा सभी गोपियों से श्रेष्ठ हैं।[५]

(७) श्रीकृष्ण की भगवता को प्रतिपादित करते हुए चैतन्य संप्रदाय के अनुयायी भक्त विद्वानों ने श्रीकृष्ण लीला की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इसके अन्तर्गत पूर्व प्रचलित 'कान्ताभाव' के भागवत-सम्मत गोपीभाव एवं लोकसिद्ध राधाभाव (सखी भाव) इन दोनों आदर्शों का दार्शनिक दृष्टि से समन्वय स्थापित किया गया है। और यह वैष्णव धर्म दर्शन के लिए चैतन्य संप्रदाय की महत्वपूर्ण देन है।[६]

(८) उपासना की दृष्टि से—श्रीकृष्ण के व्रज, मथुरा तथा द्वारका धामों में व्रज और उसमें भी गोपिकाओं को श्रीकृष्ण की प्रियाओं में श्रेष्ठता प्रदान कर के परकीया भाव को महत्व दिया गया है।[७] इसके कारण चैतन्य संप्रदाय में हृदयस्पर्शी, विरह प्रधान रसात्मकसाहित्य का भी प्रचुर सर्जन हुआ है।

(९) चैतन्य सम्प्रदाय में प्रेमा एवं मधुरा भक्ति के मार्ग को ही मान्यता दी है। यूँ तो भारत में प्राचीन समय से प्रचलित वैष्णव संप्रदायों में सगुण भक्ति को प्रमुख साधन माना है। किन्तु, महाप्रभु चैतन्य के द्वारा जिस भक्ति-भागीरथी का प्रवाह गतिमान हुआ, वह अत्यन्त मधुर था। इसके अनुसार "व्रजवासियों द्वारा की गई भगवत प्रीति का अनुसरण करने वाली रागात्मिका प्रीति को रागानुगा भक्ति कहा गया है।[८] श्री रूप के शब्दों में यही वह भक्ति है जो भगवान को तथा उनके प्रियजनों को भी प्रेमपूर्ण कर के अपने वश में कर लेती है। अतएव यह कृष्णाकर्षिणी मानी गई है।[१०] श्रीकृष्णाकर्षिणी भक्ति में प्रेमा भक्ति अन्यतम है। चैतन्य भक्ति सिद्धान्त के विवेचन में इसी प्रेमा भक्ति के आस्वादन प्रकार तथा स्थायी-

---

१. श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तरत्न संग्रह (हिन्दी०), पृ० ९०।

२. वही, पृ० ९१।

३. श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तरत्न संग्रह (हिन्दी०), पृ० ९१-९२।

४. वही ९३।

५. वही पृ० ९७।

६. वही पृ० १०३।

७. वही, कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि चै० सं० में 'राधा' का प्राधान्य परवर्ती काल में हुआ (स्नातक : राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० २०३। (यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते पर हमें वर्तमान में जो साहित्य उपलब्ध है उसमें राधा का प्राधान्य है इसमें सन्देह नहीं है।

८. चैतन्य संप्रदाय में सखी भाव के सारतत्व को स्वीकार किया है। श्री रूप ने सखियों को ५ भागों में विभक्त किया है सखी नित्यसखी प्राणसखी-प्रियसखी-परमश्रेष्ठसखी (देखो उज्ज्वल नीलमणि)।

९. प्रारम्भ में इस संप्रदाय में स्वकीया भाव का प्राधान्य माना गया है रूप-जीव-सनातन स्वकीया-वादी थे पर बाद में परकीयावाद का प्राधान्य हो गया। संभवतः यह सहजिया वैष्णवों का प्रभाव था।

१०. "विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु। रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भाव "रति" के प्रकार के आधार पर समस्त सूक्ष्मशास्त्रीय विवेचन किया गया है। चैतन्य संप्रदाय सम्मत माधुर्य भक्ति में जहाँ नवधा भक्ति का पूर्ण समावेश है, वहाँ प्रेमाभक्ति के प्रीति आदि पाँचों प्रकारों की चरम परिणति भी होती है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'मधुरोपासना' के सन्दर्भ में लिखा है कि यह किसी साधक और उसके उपास्य के बीच प्रगाढ़ रागात्मक संबंध सीमित करने वाली प्रेमाभक्ति का ही अन्यतम रूप है।[1] माधुर्य भक्ति ही पराभक्ति कही गई है। लोक में जिसे शृंगार कहते हैं, अलौकिक होने के कारण इसे मधुर कहते हैं। भगवद्विषयक शृंगार होने पर मधुररस हो जाता है और भक्तिशास्त्र की मर्यादा के अनुरूप इसे शृंगार नहीं कहा जा सकता।[2]

(१०) अचिन्त्य शक्तिवाद--षड् गोस्वामियों में प्रमुख प्रकाण्ड दार्शनिक श्री जीव गोस्वामी ने चैतन्य मत को दार्शनिक सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित किया। श्री जीव ने चैतन्य मत को 'अचिन्त्य भेदाभेद' माना है। उनके बाद कविराज श्रीकृष्णदास ने उसे और भी व्यापक समर्थन दिया और १८वीं शती में ब्रह्मसूत्र पर 'गोविन्द भाष्य' नामक भाष्य श्री बलदेव विद्याभूषण द्वारा लिखा गया।[3] इनके अनुसार अचिन्त्य भेदाभेद का तात्पर्य है कि जीव का स्वरूप है श्रीकृष्ण का नित्यदासत्व। श्रीकृष्ण विभुचित् हैं, जीव अणुचित् है। अतः दोनों में धर्म-चेतना की दृष्टि से अभेद है। परन्तु विभु एवं अणु में भेद भी है। इस प्रकार परमात्मा एवं जीवात्मा के स्वरूप का यह भेदाभेद सिद्धान्त है। यह सब श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति रूप है।[4]

श्री जीव गोस्वामी के अनुसार[5] श्रीकृष्ण में स्वरूप आदि उनकी शक्तियों से अभिन्न रूप से चिन्तन अशक्य होने से भेद है तो उनसे भिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य होने से अभेद प्रतीत होता है। अतः शक्ति और शक्तिमान् में भेदाभेद स्वीकार किए गए हैं और ये दोनों 'अचिन्त्य शक्ति के कारण' ही अचिन्त्य माने गए हैं। श्री रूप के शब्दों में अचिन्त्य एवं अनन्त शक्ति के कारण उस एक श्रीकृष्ण में एकत्व-पृथक्त्व तथा अंशत्व-अंशित्व का रहना कथमपि अयुक्त नहीं है।[6] यह अचिन्त्य शक्ति इस संप्रदाय की वह अचूक एवं अमोघ शक्ति है जिससे धाम-परिकर-लीला आदि से सम्बद्ध अनेक समस्याओं का समाधान भी बड़ा सुकर हुआ है।

(११) अन्य वैष्णव दर्शनों के समान चैतन्य दर्शन भी परिणामवादी है। किन्तु इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम विशेषता है : समन्वय की भावना। दूसरी विशेषता है : परम्परा के प्रति आग्रह। यही कारण है कि जब हरिदासी तथा राधावल्लभ संप्रदाय आदि ने अपनी रहस्यानुभूति के आधार पर या स्वानुभव के आधार पर ही तत्वदर्शन की व्याख्या की है। वल्लभदर्शन में स्वीकृत प्रमाणचतुष्टय के अतिरिक्त

---

१. भक्तिरसामृत सिन्धु पू० वि० ल० १।१ए २०।

२. भक्ति साहित्य में मधुरोपासना : परशुराम चतुर्वेदी पृ० ८५।

३. मध्यकालीन धर्मसाधना : हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २५३।

४. स्व० बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वालों द्वारा प्रकाशित।

५. "जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास। कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेदः प्रकाश।"

६. विशेष द्रष्टव्य : भगवत्सन्दर्भ : जीवगोस्वामीः "स्वरूपाद्यभिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वात् भेदः भिन्नत्वेन चिन्तयितुम शक्यत्वाद् अभेदश्च प्रतीयते इति शक्ति शक्तिमतोभेदाभेदौ अंगीकृतौ। तां च अचिन्त्यौ। स्वमते तु अचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्य शक्तित्वात्। वही।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

स्वानुभव को भी स्वीकारा है; जबकि चैतन्य संप्रदाय में 'भागवत' ही एकमात्र प्रमाण है। इन्होंने प्रत्येक क्षण एवं स्थल पर धर्मदर्शन तथा तत्वों की प्रतिष्ठा के लिए प्रमाणों का संकलन किया है। इसका कारण यह है कि चैतन्यदेव की प्रामाणिक विस्तृत कृति न होने से, उनके विचारों को प्रमाणों से पुष्टि कर के सुप्रतिष्ठित करने की सार्थक एवं सफल चेष्टा की है।

(१२) चैतन्य संप्रदाय में भी अन्य वैष्णव संप्रदायों के समान ज्ञान एवं योग से भक्ति को श्रेष्ठ माना है। क्योंकि भक्ति से भगवान वश में हो जाते हैं। भक्ति में गोप-बन्धुओं का प्रेम इनका आदर्श है। श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा का नाम ही प्रेम है।[1] चैतन्य संप्रदाय में भक्ति का आधारतत्व प्रेमाभक्ति है। प्रेमाभक्ति की चरम परिणति कृष्ण रूप में राधा के महाभाव की अनुभूति एवं उपलब्धि है। चैतन्य संप्रदाय के अनुसार भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति-सार्ष्टि, सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य एवं सायुज्य–पाँच प्रकार की मानी गई है। अहैतुकी भक्ति का पथिक भक्त पहली चार प्रकार की मुक्ति का ही प्रयत्नशील रहता है।

भक्ति के रूप-प्रकार के आधार पर वैधी, रागा, भक्ति आदि अनेक भेदोपभेद किए गए हैं। इनमें रागानुगा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

भक्ति साधना की दृष्टि से 'हरिनाम कीर्तन' प्रमुख माना गया है।[2] 'हरिनाम कीर्तन' श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्ति का सहज उपाय है। इसके अतिरिक्त लीला-स्मरण तथा ध्यान को भी अत्यधिक महत्व दिया गया है। अतएव चैतन्य संप्रदाय में इससे सम्बद्ध प्रचुर साहित्य का सर्जन संस्कृत, बंगला तथा हिन्दी में हुआ है।

(१३) **भक्तिरस**—श्री रूप ने सर्वप्रथम भक्ति को काव्यशास्त्रीय रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए साहित्य शास्त्र के ग्रंथों की रचना में अपनी असाधारण प्रतिभा एवं पांडित्य का उपयोग किया है। श्री रूप ने भक्तिरसामृत सिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि तथा नाटक चंद्रिका आदि अमूल्य ग्रंथ रत्न रचे।

इससे पूर्व काव्यशास्त्र में भक्ति की रसवत्ता की स्वीकृति नहीं थी। श्री रूप आदि ने सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष के आधार पर भक्ति के रसत्व की भावात्मकता निरूपित करते हुए मनोवैज्ञानिक विवेचना के द्वारा उसे 'रस स्थिति' की पूर्णता प्रदान की है।

● ●

---

१. "एकत्वं च पृथक्त्वं च..." लघुभागवतामृतः १।५०।

२. कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छाधरेप्रेमनाम।"

३. "भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवधा भक्ति...तारमध्ये सर्वश्रेष्ठनाम संकीर्तन।" इत्यादि।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

केरल का ब्रजभाषा साहित्य

श्रीमती आनन्द लक्ष्मी अय्यर
एम० ए०

संस्कृत के पश्चात भारत में यदि कोई भाषा सर्वप्रिय बनी तो वह ब्रजभाषा ही थी। शोध के वातायनों से आज नवीन तथ्यों पर जो प्रकाश पड़ा है उससे ज्ञात होता है कि साम्प्रतिक भारत के लगभग सभी प्रदेशों के निवासियों ने ब्रजभाषा में रचना की है। केरल में भी ब्रजभाषा में कविता करने वाले अनेक कवियों की रचनाएं प्राप्त हुई हैं। इन अहिंदी भाषी प्रान्त के कवियों की ब्रजभाषा रचना को ब्रजभाषा के अन्य कवियों की कविता के मापदण्ड से मापना अनौचित्यपूर्ण होगा। अतएव उनके काव्य का सही मूल्यांकन उनके काल की परिस्थितियों के परिवेश और परिसर में करना ही न्याय-संगत है।

इस अनूप प्रदेश केरल में आज से लगभग दो शताब्दी पूर्व ब्रजभाषा में रचना की गई, यह तथ्य एकदम आश्चर्यचकित कर देता है। केरल में ब्रजभाषा की रचना का प्राचीनतम उदाहरण मलयालम के महाकवि कलक्कत्त कुंचन नंपियार के 'स्यमन्तकम्' नामक खण्डकाव्य में प्राप्त होता है। इस काव्य में सत्यभामा और कृष्ण के विवाह के समय ब्राह्मण भोजन का वर्णन है उसमें अनेक प्रान्तों के ब्राह्मण अपनी अपनी भाषाओं में बोलते हैं तमिलनाडु का ब्राह्मण तमिल बोलता है तो काशी का ब्राह्मण ब्रजभाषा बोलता है। वह 'मेसू लाओ, केला लाओ, सुपारी लाओ, तरकारी लाओ' आदि बोलता है। यह वर्णन लगभग बीस पंक्तियों में है जो ब्रजभाषा में लिखी गई है।

केरल के प्राचीन सरकारी अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजनयिक आवश्यकताओं के लिए 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग अठारहवीं शताब्दी में होने लगा था। यह समय टीपू सुलतान के केरल आक्रमण के बाद का था। केरल के त्रिवेन्द्रम हस्तलिखित ग्रन्थागार में उपलब्ध ग्रन्थ सं० ६०७८ तथा ग्रन्थ सं० २२५०४ ए० ताड़पत्र पर लिखित हिन्दी मलयालम कोश हैं। इनमें हिन्दी के दक्खिनी रूप के शब्दों के अर्थ मलयालम में दिए गये हैं, पर ब्रजभाषा की शब्दावली ही इनमें पर्याप्त अंशों में उपलब्ध है। जैसे—

चित्तर नक्कास चित्रं
उपकार अहिंसाना उपकारं
छमा माफ सबूरो क्षमिवकुक

ये रचनाएं दो सौ वर्ष पुरानी होनी चाहिए।

ब्रजभाषा के निष्णात कवि स्वाति तिरुनाल हैं। स्वाति तिरुनाल का नाम महाराज राम वर्मा था। इनका जन्म तिरुवितांकुर के राजकुल में सन् १८१८ में हुआ था। ये स्वातिनक्षत्र में उत्पन्न हुए थे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस कारण इन्हें स्वातितिरुनाल के नाम से अभिहित किया जाता है। ये मलयालम और संस्कृत के भी सुकवि थे।

तिरुवितांकुर का यह राज परिवार भगवान पद्मनाभ का भक्त था अतएव आपने-अपने रचित पदों में 'पद्मनाभ' की छाप लगाई है। आपके ब्रज काव्य की रचना का उद्देश्य आपका भक्ति भाव और संगीत प्रेम था।

कविवर राम वर्मा की भक्ति धारा किसी सम्प्रदाय विशेष के कगारों में बंधकर प्रवाहित नहीं हुई प्रत्युत उसमें कृष्ण, राम और शिव सभी के प्रति भक्ति परिलक्षित होती है।

कृष्णपरक कविताएं लिखते समय कवि की दृष्टि कृष्णभक्त कवियों द्वारा प्रतिपादित कृष्ण-जीवन के सभी रसमय स्थलों पर गई है। किशोर और बालकृष्ण ही कवि के उपास्य हैं। स्वाति तिरुनाल ने उनके ललित और मधुर जीवन को ही चित्रित किया है। कृष्ण का राजनैतिक जीवन भक्त कवि के हृदय को नहीं मोह सका है। उन्होंने विनय, रूपमाधुरी, वंशीवादन, बाललीला कालियमर्दन, रास, उद्धव गोपी संवाद आदि विषयों पर पद रचना की है। कृष्ण के बालजीवन का वर्णन कवि की लेखनी से बड़ा सहज और स्वाभाविक बन पड़ा है। बाललीला के पदों में बालसुलभ सरलता निखरी बिखरी हुई है। बालकृष्ण गायें चराने नहीं जाना चाहते हैं, यशोदा न जाने का कारण पूछती है। बालक सरल ढंग से बतला देता है कि मां ये गोपियां मुझे अपने पीवरस्तनों से भींच देती हैं। इस प्रसंग में गोपियों का बालकृष्ण को नैनों सैनों से मना करना कितना मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है—

(राग विहाग)

मैं तो नहीं जाऊँ जननी जमुना के तीर।
इतनी सुन के मात जसोदा पूछत मनोहर से।।
क्यों नहिं जावत धेनु चरावन बालक कह हम से।
कहत हरी सब ग्वालिन मिल हमें भींजत घन कुच से।।
जब सब लाजभरी ब्रजवासिन कहैं न कहो, दृग से।
तो भी कहत सबै मधुसूदन बोलत जसुमति से।
जब तब गोपिन सब हरि के मुख ढांकत निज कर से।।
ऐसी लीला कोटि कियौ कैसे जाय मधुवन से।
पद्मनाभ प्रभु दीन उधारण पालौ सब दुःख से।।

केरल के कदली और नारिकेल वृक्षों के वैभव में जीवन-यापन करने वाला कवि यमुना पुलिन के कदम्ब वृक्षों के नीचे बांसुरी बजाते हुए कृष्ण की अनोखी छवि को कल्पना के नेत्रों से निहार कर उसे यथावत् अंकित करने में समर्थ रहा है। उसके हृदय में रमी छवि के तनिक दर्शन तो कीजिए—

(राग धनाश्री)

जमुना किनारे प्यारी कदम तर मोहन।
बांसुरी बजावै सखी कुंज भवन में।।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मोर पिंछ गले माला मकराकृति कुंडल।
मुकटादिक भूषन सोभा देत तन में॥
पद्मनाभ दीनबन्धु मेरो ताप हरो प्रभु।
गोपीनाथ गिरधर राजो मेरे मन में॥

योगमाया सी मुरली के प्रभाव से भी कवि परिचित है, उसके मन के साथ सुर मुनि और ब्रज की नारी सभी वंशी की तान से विमोहित हो चुके हैं—

करुणा निधान कुंज के विहारी
तुम्हारी बंसी मेरो मन हारी
इस बंसी से सुर मुनि मोहे
मोह गई सारी ब्रज की नारी।

कृष्ण के भक्तिकालीन स्वरूप के साथ कविवर स्वाति तिरुनाल ने कृष्ण का रीतिकालीन स्वरूप भी प्रस्तुत किया है। प्रातःकाल खण्डिता नायिका के घर पर जब कृष्ण आते हैं तो उनका स्वरूप देखते ही बनता है। परतिय के साथ रमण करने के कारण उनके ओठों पर काजल लगा हुआ है। मस्तक पर महावर लगा है, हृदय पर माला का चिह्न अंकित है, वह स्वयं सोलह शृंगार करके कृष्ण की बाट जोहती रहीं, सरोवरों में कुमुदिनी कुम्हला गई परंतु कृष्ण नहीं आए। ज्ञात होता है कि किसी अन्य ब्रजयुवति के भाग जागे हैं। इतने पर भी गोपी को अपने मनभावन का रूप कोटि कोटि मनोजों को लज्जित करने वाला प्रतीत होता है—

(राग भैरवी)

आये गिरधर द्वारे मेरे गोरी।
अंजन अधर ललाट महावर नयन उनींदे चल आये।
रमन समय प्रभु छल बल करिकै कौन तिया कूं बिरमाये।
बिन गुण माल विराजत हिय में दृढ़ गलबैया सुख पाये।
सोला सिंगार करि फूलन के हार लिये विविध सुगन्ध से मन भाये।
बैठी थी मो मन के साथी कुमुद सरोवर कुम्हलाये।
सुख के कारण दुख के निवारण मधुवन मुरली धुन गाये।
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी कोटि भयन तन छवि छाये।

कवि ने राम विषयक पदों की भी रचना की है। लंका पर विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त राम अयोध्या में आते हैं, वधाइयां बजती हैं, गांव गांव में मंगल गायन होते हैं राम राज्यसिंहासन पर बैठते हैं माता कौशल्या आरती उतारती हैं इन भावों को कवि के शब्दों में सुनिए—

(राग काफी)

अवध सुखदाई अब बाजै बधाई।
रतन सिंहासन ऊपर रघुपति सीता सहित सुहायो।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राम भरत सुमित्रानन्दन ठाड़े चामर चतुर डुलायो।
गाम गाम जन मंगल गावत देवन बजायो।
राम, रावण मारे असुर सबु मारे, राज विभीषण पायो।
मात कौसल्या करत आरती निज मन बांछित पायो।
राम पद्मनाथ प्रभु ! फणि पर शायी त्रिभुवन सुखकारी आयो।

'विश्वेश्वर दरशन कर काशी' कहकर कवि काशी विश्वनाथ को भी अपने अर्चना पुष्प अर्पित करता है।

कवि ने सांसारिक प्रेमी प्रेमिकाओं के हृदय में भी झांक कर देखा है, उनके मन की भावनाओं को समझा है, उनकी संजोई हुई साधों का गहराई में पैठ कर अध्ययन किया है। चन्द्रिकास्नात ग्रीष्म की यामिनी में नायक को प्रसन्न कर अपना मनोवांछित पाने की उसकी नायिका की इच्छा पर तो दृष्टि डालिए—

(राग सुरती)

भई लो पिया चांदनी रात, अब रहियो मेरे साथ।
बिजनी से पौन डुलावूं भुज में भुजहिं मिलाऊँ।
सब फूल हार बनावूं मन भर भर भूषण पाऊँ।
तन मो अबीर लगाऊँ अंगिया के कोर खुलाऊँ।
दिन के वियोग बुझाऊँ तौसे, चुनरी हमारी रंगाऊँ।।

स्वाति तिरुनाल की रचना को देखकर सहज ही यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि ये रचना किसी मलयालम भाषी की है उसमें उत्कृष्ट कवित्व प्रतिभा और संगीत का पुनीत गुम्फन है। उनकी रचना में यत्र तत्र खड़ी बोली के शब्द भी आ गये हैं ज्ञात होता है कि यह दक्खिनी का प्रभाव है। कवि को काव्यशास्त्र और संगीतशास्त्र का समीचीन ज्ञान था, इस श्लिष्ट पद रचना में साधारण अर्थ के अतिरिक्त विभिन्न रागों के नामों का उल्लेख भी दर्शनीय है—

सोहनी स्वरूप कान्त मुख तेज दीप चन्द
चले चाल नट विभास श्री मल्हार बन में
मणि रंग गुण फूल बाण ए मन सौ रटूं कान्हडो
स्वरूप लागे सारंग मन में
गुजरी हिंडोल झूल जिससे अठान छोड़
तेरौ ही स्वरूप श्याम ! पद्मनाभ तन में।

अर्वाचीन युग में भी केरल में अनेक व्यक्ति ब्रजभाषा में रचना करते हैं। देव केरलीय की ब्रज-भाषा रचनाएं अत्यन्त रोचक और उत्कृष्ट होती हैं। अतीव गौरव की बात तो यह है कि सुदूर दक्षिण में स्थित केरल प्रान्त में, आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व, मलयालम भाषाभाषियों का, ब्रजभाषा का रससिद्ध कवि होना ब्रजभाषा की सर्वप्रियता का परिचय देता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मालवी लोक साहित्य पर ब्रज लोक साहित्य का प्रभाव

मदन भगीरथ शर्मा

उत्तर भारत की भाषाओं तथा बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि प्रा० आ० भाषा ही भारतीय आर्य भाषाओं के विविध स्तरों अर्थात् वैदिक, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश से होती हुई आधुनिक आर्य भाषाओं में परिणत हुई है। वैदिक संस्कृत और फिर लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। समय की प्रगति के साथ-साथ विभिन्न प्राकृतें अस्तित्व में आईं और उनसे क्रमशः विभिन्न अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ।

हिन्दी का जन्म १००० ई० के लगभग हुआ। भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक है। ग्रियर्सन ने इस समस्त भूभाग को पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी में विभाजित किया है। इसमें पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत ब्रजभाषा आती है और मालवी उसकी निकटवर्ती भाषा है इस प्रकार ब्रज और मालवी का घनिष्ठ संबंध है।

वस्तुतः जिसे हम आज हिन्दी कहते हैं वह एक समन्वयात्मक परिनिष्ठित भाषा है, जिसमें अनेक बोलियों तथा भाषाओं का समावेश है। हिन्दी की कुछ बोलियाँ इतनी समृद्ध एवं विकसित रही हैं कि उन्हें भाषा कहा जाता है और उनमें समृद्ध साहित्य का सृजन हुआ है। ब्रजभाषा एक ऐसी ही अत्यन्त समृद्ध, विकसित, प्रौढ़ एवं सशक्त साहित्यिक भाषा है। यह ब्रज मंडल की भाषा है। इसे गंगा-यमुना की पवित्र यज्ञभूमि की भाषा होने के कारण अंतर्वेदी भी कहते हैं। ब्रजमंडल का क्षेत्र साधारणतः आधुनिक मथुरा जिला है जिसके अन्तर्गत कृष्ण की लीलाभूमि गोकुल तथा वृन्दावन हैं। किन्तु ब्रजभाषा का क्षेत्र इससे बहुत अधिक व्यापक है। ग्रियर्सन के अनुसार ब्रज का विस्तार निम्नलिखित प्रदेशों में है—उत्तर प्रदेश का मथुरा, आगरा, अलीगढ़, बुलन्दशहर बदायूं, बरेली, एटा तथा मैनपुरी के जिले, पंजाब के गुड़गांव जिले का पूर्वी भाग, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश के ग्वालियर के पश्चिमी भाग। इस समय ब्रज के बोलने वालों की संख्या १ करोड़ २३ लाख है और लगभग ३८,००० वर्गमील के क्षेत्र में इसका विस्तार है।

ब्रज भाषा पश्चिमी हिन्दी की श्रेष्ठ प्रतिनिधि भाषा है। इसका केवल व्याकरण संबंधी विशेषताओं की दृष्टि से ही महत्व नहीं है, बल्कि प्रौढ़ साहित्यिक स्वरूप एवं अन्य भाषाओं तथा बोलियों पर प्रभाव की दृष्टि से भी इसका महत्व अधिक है। यों तो ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग बहुत पहले से मिलता है किन्तु साहित्य में इसका व्यवस्थित प्रयोग १६वीं शताब्दी से आरंभ हुआ। ब्रजक्षेत्र में गौड़ीय वैष्णव और वल्लभ संप्रदाय अथवा पुष्टि मार्ग के केन्द्रों की स्थापना हुई। इसके परिणामस्वरूप ब्रज का प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत एवं विशद होता गया। ब्रजभाषा की परंपरा सतत् एवं समृद्ध रही

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। समस्त मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की व्रजभाषा के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। जो हिन्दी का श्रेष्ठ काव्य है, वह भक्ति काव्य है, जिसमें कृष्ण काव्य की प्रधानता है, और कृष्ण काव्य तथा व्रजभाषा पर्याय बन गये हैं। सूरदास साहित्यिक व्रजभाषा के शीर्षस्थ कवि हुए। उन्होंने तथा अष्टछाप के भक्तकवियों ने उत्कट भक्ति-भावना से प्रेरित हो जिस पुनीत, मधुर एवं आह्लादकारी वाणी द्वारा लोक मानस को आनंदित, उल्लसित तथा रस-विभोर किया वह व्रज भाषा है। कृष्ण भक्ति की मधुर रचनाओं द्वारा समृद्ध परंपरा के परिणामस्वरूप व्रज-भाषा समस्त हिन्दी प्रदेश की प्रधान साहित्यिक भाषा बन गयी। १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में समस्त रीतिकालीन साहित्य, व्रज में ही लिखा गया। बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम, घनानंद आदि कवियों ने जिस परिष्कृत, मनोरम एवं मधुर वाणी में शृंगार के सुंदर एवं अनुपम चित्र प्रस्तुत करके प्रेम की भाव-धारा से सबका हृदय आप्लावित कर दिया, वह व्रज भाषा ही है। इस प्रकार व्रज भाषा तथा साहित्य ने समस्त लोकमानस एवं लोकसाहित्य को प्रभावित किया है, प्रेरित किया है एवं रूपायित किया है। इनमें मालवी पर यह प्रभाव और भी व्यापक है।

मालवी मालव प्रदेश की बोली है। यह वर्तमान मध्य प्रदेश के उज्जैन तथा इंदौर डिवीजनों के क्षेत्र में बोली जाती है और भोपाल, ग्वालियर के कुछ भागों में भी इसका मिश्रित रूप प्रचलित है। मालवी के आसपास बोली जाने वाली अनेक बोलियाँ अथवा भाषाएं हैं जिनमें प्रमुख हैं, राजस्थानी, बुंदेली, निमाड़ी, गुजराती और मराठी। इन सभी का मालवी पर थोड़ा बहुत प्रभाव है, किन्तु आनुपातिक दृष्टि से व्रज तथा राजस्थानी ने मालवी पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है।

मालवी और व्रज की पारस्परिक तुलना एवं प्रभाव का विवेचन करने पर यह परिलक्षित होगा कि मालवी मालव प्रदेश के लोक जीवन में मुख्यतः बोलचाल में प्रयुक्त होती है, उसका बोली रूप ही है। किन्तु व्रज भाषा का बोली रूप के अतिरिक्त एक समृद्ध, विकसित प्रौढ़ भाषा का रूप भी है और वह श्रेष्ठ एवं उदात्त साहित्य की प्रभावी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है। व्रज साहित्यिक भाषा है, और मालवी लोक साहित्य की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम ही है।

जब हम लोक साहित्य के संवर्ग में विचार करने लगते हैं तो लोक साहित्य की हिन्दी साहित्य कोश में दी गई यह व्याख्या सहज ही हमारे सामने आ जाती है—"वास्तव में लोक साहित्य वह मौलिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रति-बिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचनाचैतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्तर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।" इस प्रकार मालवी लोक साहित्य, अन्य प्रदेशों के लोक साहित्यों के समान ही विकसित एवं रूपायित हुआ है और मालव के लोक जीवन, सांस्कृतिक चेतना तथा सामाजिक विकास को अपने में समाहित किये हुए हैं। मालवी लोक साहित्य में यहां के लोक जीवन की सहज एवं सरल झांकियां परिलक्षित होती हैं।

वैसे मालव प्रदेश के सुशिक्षित व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन में हिन्दी के खड़ी बोली रूप का प्रयोग करते हैं और यहां के साहित्यकारों ने वर्तमान परिनिष्ठित हिन्दी में सुंदर साहित्यिक रचनाएं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की हैं, किन्तु मालवी लोक साहित्य का अपना स्वतंत्र स्वरूप भी है जो यहां के लोकगीतों में विशिष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

लोक साहित्य के विभिन्न अंग होते हैं, यथा—लोकगीत, लोककथा, लोककहानी, चुटकुले, कहावतें, पहेलियां, मंत्र आदि। मालवी लोक साहित्य में ये सभी स्वरूप दृष्टिगत होते हैं और इन सभी पर ब्रज लोक साहित्य के संबंधित स्वरूपों का पर्याप्त प्रभाव है। उदाहरण के लिए "लांगुर" अथवा "लांगुरिया" ब्रज में गाये जानेवाले देवी के गीतों का एक प्रकार है। 'लांगुर' अथवा "लांगुरिया" इन गीतों में एक पात्र के रूप में जाता है और अपनी विचित्रता तथा नवीनता के कारण अधिक आकर्षक लगता है। लांगुर के प्रत्येक गीत में 'लांगुर' अथवा 'लांगुरिया' शब्द टेक के रूप में प्रयुक्त होता है। इन गीतों में प्रेम भी अभिव्यक्त होता है और हास्य तथा व्यंग्य भी। स्त्रियाँ इन गीतों में "लांगुर" पर पति-भाव का आरोप करती हैं।

मालवी लोकगीतों में यह योजना यथावत् उपलब्ध होती है जो निश्चित ही ब्रज के प्रभाव के परिणामस्वरूप है।

लोक साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है बोली और इस दृष्टि से देखने पर मालवी बोली पर ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। ब्रज भाषा में हिन्दी 'आ' प्रत्यय के बदले 'औ' प्रत्यय ही प्रयुक्त होता है। मालवी में भी 'आ' के बदले 'ओ' प्रत्यय का ही अधिकांशतः प्रयोग होता है; जो स्पष्ट ही ब्रज का प्रभाव है। इस दृष्टि से मालवी ब्रजभाषा के बिलकुल निकट है, वह खड़ी बोली से प्रभावित प्रतीत नहीं होती। निम्नलिखित उदाहरणों से यह तथ्य सिद्ध होता है—

(१) मालवी में संज्ञा रूपों में प्रायः 'ओ' प्रत्यय लगता है, जैसे—आटो (हिन्दी आटा), किरायो (हिन्दी किराया), भाड़ो (हिन्दी भाड़ा) आदि।

(२) मालवी में सर्वनाम के रूपों पर ब्रज के सर्वनाम-रूपों का बहुत अधिक प्रभाव है। मालवी में हिन्दी 'मैं' के लिए 'मैं' और 'हूं' प्रयुक्त होते हैं, यह 'हूं' ब्रज के 'हौं' का ही रूप है। ब्रज में 'वह' का कर्म संप्रदान में रूप 'विसे' होता है, मालवी में भी 'विसे' ही होता है, जैसे 'विसे' (उसे) समझाई दीजो।' संबंधवाची सर्वनामों में ब्रज के 'मेरो' 'तेरो' आदि मालवी में 'मेरो' या 'म्हारो', 'तेरो' या थारो आदि तथा 'अपणों' (हिन्दी अपना) रूप प्रयुक्त होते हैं।

(३) विशेषण के रूपों पर यह प्रभाव सबसे अधिक दृष्टिगत होता है। जैसे—ब्रज में 'भलो' (हिन्दी भला), 'अच्छो' (हिन्दी अच्छा) रूप होता है; मालवी में भी बिलकुल इसी प्रकार से 'भलो', 'अच्छो' 'घणों' (हिन्दी बहुत), पढ़्यो-लिख्यो (हिन्दी पढ़ा-लिखा), आदि का प्रयोग होता है।

(४) मालवी के सभी भूतकालिक क्रिया रूपों में 'औ' का प्रयोग सर्वाधिक है, यथा—गयो थो (गया था), आयो थो (आया था), चल्यो गयो (चला गया); कह्यो थो (कहा था), देख्यो थो (देखा था), सुण्यो (सुना)।

(५) कृदंत रूपों में भी यह नियम चलता है, जैसे—मार्‌यो (मारा), दौड्‌यो (दौड़ा), भाग्यो (भागा), लायो (लाया), आदि।

(६) अतीत क्रिया बोधक संज्ञा तथा क्रिया बोधक संज्ञा में ब्रज में 'देनो', 'करनो', 'दियो' आदि रूप प्रयुक्त होते हैं; मालवी में ठीक इसी प्रकार से 'देनो' या 'देणो', 'करनो' या 'करणों', 'दियो', आदि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रूप प्रचलित हैं। अतीत काल के कृदंत का रूप वस्तुतः 'यौ' प्रत्ययांत होता है, जैसे ब्रज और मालवी दोनों में मार्‌यो (हिन्दी मारा)। यह 'य' वस्तुतः संस्कृत के भूतकालिक कृदंत 'इ' का अवशेष है।

(७) णिजंत—यह क्रिया के रूपों में 'आव' प्रत्यय संयुक्त करके बनाया जाता है, किन्तु दोनों णिजंत के प्रयोग में 'बाव' या 'वा' लगता है। इस तरह 'चलनो' के लिए 'चलावनो' तथा दोहरे णिजंत के रूप में 'चलवानों' होगा। मालवी में भी ठीक इसी प्रकार से ये रूप प्रयुक्त होते हैं, यथा 'म्हारे खेत में हल चलवानों या जोतवाणों है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि विषयवस्तु अथवा प्रतिपाद्य एवं अभिव्यक्ति के स्वरूप तथा माध्यम दोनों ही दृष्टियों से मालवी लोक साहित्य को ब्रज ने प्रभावित एवं रूपायित किया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि घासीराम व्यास

रामचरण हयारण 'मित्र'

स्व० श्री घासीराम का जन्म प्राकृतिक सौन्दर्य से विमण्डित केदारगिरि के प्रांगण में अविरल गति से प्रवाहित कल-कल-निनादिनी महाभागे सत्यव्रती 'सुखनइ' सरिता के तट बसी हुई मधुपुरी (मऊ-रानीपुर) जि० झांसी को गोद में कर्मकाण्ड के पंडित श्री मदनमोहनलाल व्यास के गृह में वि० सं० १९६० अनन्त चतुर्दशी को हुआ था—और मृत्यु राष्ट्रीय आन्दोलन में वि० सं० १९९९ वैसाख शुक्ल प्रतिपदा दिनांक १६ अप्रैल सन् १९४२ में झांसी जिला जेल से मुक्त होने के पश्चात्।

दिनांक ११ दिसम्बर सन् १९२१ के प्रातः मु० दूद दई की इमली के प्रांगण में माता राधारानी ने भारत माता की जय बोलते हुए अपने ज्येष्ठ पुत्र घासीराम व्यास के हाथ में राष्ट्रीय ध्वज देकर और भाल पर रोली का तिलक लगाकर तथा आंचल (यह प्रथा आज भी पुत्र के द्वारा किसी विजय के प्रस्थान करने के समय बरती जाती है) डालकर कहा—बेटा इस राष्ट्रीय ध्वज की लाज रखना। तब उपस्थित जन समूह के नेत्रों में अश्रु छलक पड़े। माता के चरण स्पर्श करते समय व्यास जी की वाणी से सहज स्वाभाविक भाव मातृभूमि के प्रति दृढ़ता से कविता में मुखरित हो पड़े—

प्रण कर निकले हैं शीश को हथेली धर,
प्राण रहते न पग पीछे को पछेलेंगे।
अरि के समक्ष दुरलक्ष लक्ष गोलियों के,
समर समक्ष निज वक्ष पर झेलेंगे।
'व्यास' भारतीय शान्ति क्रान्ति का अपूर्व पाठ
देगें पढ़ा विश्व को समोद स्वत्व ले लेंगे।
घसेंगे दुधारों पर नाचेंगे कटारों पर,
आरों पर चलेंगे अंगारों पर खेलेंगे।

जलूस जब लाल बाजार पहुंचा तब अंग्रेजी पुलिस ने आन्दोलनकारियों को दफा १७ एक्ट १४ के अनुसार घासीराम व्यास, रामनाथ त्रिवेदी, ठाकुरदास टंटा और छौआ पंडा को गिरफ्तार करके झांसी जेल भेज दिया, जहां दिनांक १५ दिसम्बर सन् १९२१ को जिला मजिस्ट्रेट ने प्रशासन भंग के दोषारोपण में छै छै मास का दंड देकर जेल भेज दिया और एक माह पश्चात् सबको, आगरा जेल को भेज दिया।

व्यास जी की यहां कृष्णकांत मालवीय और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से भेंट हुई। व्यास जी इस समय केवल सत्रह वर्ष के थे वे ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे। यह उनकी रचनाओं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Lucknow

का प्रारंभिक काल था। धीरे-धीरे उनकी लेखनी सशक्त हो गई और वे प्रौढ़ रससिद्ध कवि हो गये।

यहां हम व्यास जी के विशेषकर ब्रजभाषा साहित्य पर ही प्रकाश डालेंगे। खड़ी बोली के साहित्य पर नहीं। बुन्देलखण्ड में इस समय दो साहित्यिक अखाड़े थे, एक गंगाधर व्यास छतरपुर (म० प्र०) दूसरा दुर्गा पुरोहित का मऊरानीपुर (उ० प्र०) इन दोनों अखाड़ों द्वारा विशेष महोत्सव पर ब्रज-भाषा साहित्य की संस्थाओं के सदस्यों द्वारा प्रतियोगिता के रूप में पाठ किया जाता था। जिसके जय-पराजय का निर्णय नायिका भेद का उचित उत्तर प्राप्त न होने पर होता था। इन अखाड़ों (फड़) के ही कारण अखाड़ों के प्रमुख कवि। कविता, सवैया, और शेर लिखा करते थे। यह ब्रजभाषा साहित्य आज भी सहस्रों की संख्या में बुन्देल के साहित्य प्रेमियों के पास अप्रकाशित रूप में सुरक्षित है। व्यास जी गंगाधर व्यास के अखाड़े के प्रमुख कवि थे।

बुन्देलखण्ड के अनेक मूर्धन्य कवियों ने नायिका भेद का विवेचन किया है। उसी शृंखला में स्व० बासीराम व्यास आते हैं जिन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष काल में ब्रजभाषा का उत्कृष्ट साहित्य साहित्य जगत को दिया। अब व्यास जी के नायिका भेद के दो छन्द प्रस्तुत हैं—

भाती है न भांति भांति भवन प्रभाती भव्य,
रतन अभाती 'व्यास' सुजस भगाती है।
गाती है सजाती नाहिं भूषन बताती सबै,
दूषन सुजाती जाती तन कुम्हलाती है।
लाती है सुनैन नीर पलन लगाती पल,
छोभन छकाती भूल भूल भ्रम छाती है।
छाती है सुताती, कल पाती कलपाती नाहिं,
बाल अधराती नाहिं गाती क्यों प्रभाती है।

× × ×

लहलही ललित लवंग लतिकान लोल,
गहब गुलाब गोल गुल महदी को है।
करन कनेर है चमेली प्रति केर कुन्द,
कलि कचनार औ अनार अबली को है।
'व्यास' कहैं सुमन सरोज मोतियों में सोय,
मौलसिरी सिरस कमोदिनी जुही को है।
सेवती निवारी केतकीन फुलवारिन खौं,
लाल भयो काल आज भाल मालती को है।

अब आप ब्रजांगनाओं के विशुद्ध प्रेम का चयन लीजिये, वे ज्ञानी उद्धव को व्यंग किन्तु मधुर शब्दों में अपनी सरल साधना और विरह वेदना का परिचय दे रही हैं—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हम योग कुयोग कों जानें कहा,
रसना रस-रास रसालिनीं हैं।
गुन हीन गमारिनीं ग्वारिनीं हैं,
पर प्रीति प्रतीत की पालिनी हैं।
द्विज 'व्यास' कहैं तुम ऊधौ सुनो,
सदा सीधी सुचाल सुचालिनी हैं।
भली भूखी रहैं कै चुगैं मुकता,
हम मानस राज मरालिनी हैं।

योग कौ सोच न सोच वियोग कौ,
सोच न भोग दिभोग भुवानी।
चिंता कहा भई दूबरी देह कहा-
दुबिधा भई कूबरी रानी।
'व्यास' न प्रीति प्रतीति की भीत,
पै श्याम की देख दशा ये दिवानी।
दाह दहै हियरे में यहीं हियरे-
बसकैं हियरे कीं न जानी।

व्यास जी ने अपने जीवन के ३९वें वसंत ही केवल इस बुन्देल-वसुन्धरा की गोद में बिताये, जिसमें १५ वर्ष खेल कूद, अध्ययन और शेष २४ वर्ष राष्ट्रीय आन्दोलन एवं साहित्य सेवा में। व्यास जी द्वारा रचित १. वीरज्योति, २. जवाहर ज्योति, ३. श्याम सन्देश, ४. अर्चना (प्रकाशित,) ५. जीवन ज्योति, ६. विजय ग्लानि, ७. भक्ति संकेत, ८. लवकुश, ९. बालकृष्ण चरित्र, १०. रुक्मिणी मंगल, ११. चक्रव्यूह १२. कर्ण, १३ ऋतु विचार, (अप्रकाशित) पुस्तकें उपलब्ध हैं।

व्यास जी ने अपने सक्रिय योग द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में योग प्रदान किया है और अपनी लेखनी द्वारा साहित्य सृजन करके साहित्य जगत की सेवा की है।

इन दोनों कार्यों के प्रति राष्ट्रीय और साहित्यिक जनता सदा सर्वदा उनकी ऋणी रहेगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

काव्याचार्य ब्रजेश के काव्य में शब्दालंकार

डा० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

कवि से काव्य श्रवण के समय हम अर्थ को बाद में ग्रहण करते हैं, पहले उसके उच्चारण को सुनते हैं। शब्दालंकार भाषा को अधिक आकर्षक और मोहक बना देते हैं। भाषा के कलेवर को अलंकृत कर देते हैं। जिससे भाषा कर्णप्रिय तथा सुखद लगती है। ब्रजभाषा के कवियों ने अर्थ चमत्कार के साथ साथ शब्द चमत्कार पर बराबर ध्यान दिया है। शब्दालंकारों का चमत्कार प्रायः सभी ब्रजभाषा के कवियों ने अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। ब्रजेश जी के काव्य में शब्दालंकारों की योजना अतीव मन-मोहक तथा शोभनीय है।

रीतिकालीन कवियों में अनुप्रास अलंकार के प्रति विशेष मोह दिखाई देता है। सवैया और घनाक्षरी की अनुप्रास युक्त पदावली पाठकों को मंत्रमुग्ध कर देती है। ब्रजेश जी भी रीतिकालीन परम्परा के कवि थे। अनुप्रास के प्रति उनमें विशेष मोह था। निम्नस्थ छन्द में अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है।

वृन्दावन वीथिन ब्रजेश ब्रज बल्लभ कौ
बसि कै विनोद के बलित बतराति जाति।
हेरि हेरि मुख भ्रू मरोरि दृग जोरि जोरि
नांसका सिकोरि कोरि विधि इतराति जाति।
भावन के संग में सुभावन के संग मन
भावन के संग में मनोज मदमाति जाति।
हरे हरे हार में हरति ही हरिण नयनी
हरे हरे हेरत हँसति हरसाति जाति॥

भाव व्यंजना के लिए वीप्सा एक आवश्यक उपकरण माना गया है। अनेक भाव ऐसे भी होते हैं जिनका प्रकाशन शब्दों की आवृत्ति द्वारा व्यक्त किया जाता है। वीप्साओं के प्रयोग से भाषा में प्रवाह एवं गति उत्पन्न होती है ब्रजभाषा के कवियों ने वीप्साओं द्वारा व्यंजना में अधिक सफलता प्राप्त की है। प्रौढ़ आगतपतिका नायिका के चित्रण में प्रयुक्त वीप्साएँ निम्नलिखित घनाक्षरी में दर्शनीय है :—

आयौ पति प्रात यह बात खोरि खोरि फैली
जोरि जोरि बसन जरीन के बिछाये देति।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कहत ब्रजेश पौरि पौरि प्रति आलिन सों
कोरि कोरि भाँति गृह आंगन सजाये देति।
झोरि झोरि विरह प्रवास को प्रवीन तिय
घोरि घोरि सौरभ धरी में बरताये देति।
छोरि छोरि भूषन बसन रंग बोरि बोरि
तोरि तोरि माल मनि मानिक लुटाये देति॥

भावोत्कर्ष तथा भाषा में लालित्य और चमत्कार लाने के लिए कविजन यमक अलंकार को अपनाते हैं। ब्रजेश जी के ग्रन्थ "रस रसांग निर्णय" में यमक के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। विरहाकुल बाला के चित्रण में प्रयुक्त यमक अलंकार का चमत्कार देखिए :—

रहौं बैठि आसन कहाँ लौं औंधि आसन में
आसुन वितीतैं दिन आसुन अन्हाए री।
कहत ब्रजेश कल पलना परति हाय
पलना परति केहू पलना झुलाए री।
वारि जात मैन तन काहू पै न वारि जात
होत कहा वारिजात पातन बिछाए री।
हेरि वनमालो वनमालो मन भाए आली
आए वनमाली वनमाली वैन आए री।

१—आसन—आसन, आशाओं में, शीघ्र, अश्रु।
२—पलना—क्षण, पलकें, झूला।
३—वारिजात—जलाना, निवारण करना, कमल।
४—वनमाली—जलराशि, उपवन के माली, बादल, कृष्ण।

ब्रजेश जी के काव्य में कुछ ऐसे छंद भी हैं जिनमें अनुप्रास एवं यमक दोनों की योजना एक साथ प्रस्तुत की गयी है। किन्तु इस योजना से छंद में न तो शैथिल्य आने पाया है और न कृत्रिमता अपितु झंकार, सरसता और सजावट आ गयी है। निम्नलिखित छंद देखिये—

कुवलय हरन सोभा कुवलै सरन फूले,
कुवलै दरन मन वेमुद खुदै भयो।
कहत ब्रजेश गंध बहत महक मंजु,
चहक चकोरन के पुंज प्रमुदै भयो।
मल्लिकान मोहित मधुव्रत करत गान,
आन तजि मान माननीन तै जुदै भयो।
चारु चैत चारुता है चारु चौंक चन्द्रमुखी,
चारु चन्द्रिका है चारु चन्द्रमा उदै भयो।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रस्तुत घनाक्षरी के प्रथम दो चरणों में 'कुवलय' शब्द की आवृत्ति तीन बार हुई है जिसके अर्थ क्रमशः 'कमल', 'कुमुद' और 'कुवलयापीड हाथी' हैं। अस्तु यमक अलंकार है। छंद के अन्तिम दो चरणों में वृत्यनुप्रास का चमत्कार है।

श्लेष

श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भाषा की व्यंजना शक्ति को बढ़ाता है। समर्थ कवि श्लेष अलंकार द्वारा एक छंद के कई-कई अर्थ प्रस्तुत करते हैं। ब्रजेश जी के काव्य में श्लिष्ट शब्दों का उत्तम ढंग से प्रयोग हुआ है। निम्नलिखित सवैया पठनीय हैं:—

नायक हैं रत्नाकर गेह के पावक नेह सदा मन भाये।
त्यों द्विजराज के हेती ब्रजेश हृदै मधि हंसजा सों हरषाये।
आदर देत अनन्त जिन्हैं गुण के युत गोकुल पाल न गाये।
ऐसे महेश हैं कै मथुरेश हैं कैधों रमेश नरेश गनाये।

१. इस छंद के तीन अर्थ हैं प्रथम अर्थ शंकर जी संबंधी है। शंकर जी कुवेर के नायक हैं। अग्नि से उन्हें स्नेह है। वे चन्द्रमा के हितैषी हैं और हृदय में परमेश्वर का निवास है। अनन्त शेष जिनको समादर देते हैं तथा जो तमोगुण युक्त हैं। वे इन्द्रिय-समूह का पालन करने वाले नहीं हैं।

२. द्वितीय अर्थ कृष्ण संबंधी है। कृष्ण जी लक्ष्मी के पति हैं। अग्नि के स्नेही अर्थात् अर्जुन जिनको प्रिय हैं। गरुड़ जिनका हितैषी है तथा जो यमुना से प्रसन्न रहते हैं। अनन्त बलदेव जी जिन्हें समादर देते हैं। जो नाना प्रकार के गुणों से युक्त हैं तथा जो गायों के पालक हैं, ऐसे श्रीकृष्ण जी हैं।

३. तृतीय अर्थ रियासत कालाकांकर (उ० प्र०) के राजा रमेश सिंह विषयक है। जो नाना प्रकार के रत्नों के गृह के पति हैं। शंकर जी उन्हें सदैव भाते हैं। जो ब्राह्मणों के हितैषी हैं। योगीजन जिनसे सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। पण्डितगण जिन्हें समादर देते हैं तथा जो काव्य-गुणों से युक्त हैं। जो गायों के समूह का पालन करने वाले हैं, ऐसे राजा रमेश सिंह हैं।

वस्तुतः ब्रजेश जी के काव्य में शब्दालंकारों की छटा दर्शनीय है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजी का ऐतिहासिक काव्य--गढ़ पथैनारासौ

डा० विष्णुचन्द पाठक
एम० ए०, पी-एच० डी०

युद्ध एवम् ऐतिहासिक सामग्री से भरपूर 'गढ़पथैना रासौ' अभी तक पाण्डुलिपियों में बन्द रहकर विद्वानों की दृष्टि से दूर रहा है। उसमें १८३३ वि० में लड़े गये युद्ध का वर्णन है।[१] यह युद्ध आधुनिक भरतपुर नगर से बत्तीस मील पूर्व पथैना ग्राम में वहां के वीरों और सहादत अली के मध्य हुआ था। भरतपुर के राजा सुजान सिंह के अंगरक्षक शार्दूल सिंह के पुत्रों के अदम्य उत्साह तथा उद्भट वीरता का वर्णन इस रासौ में मिलता है। ३९५ छन्दों में परिमित सम्पूर्ण रासौ तीन जंगों में विभाजित है। इसमें प्रथम जंग के दो खंड (४७ तथा ७१ छन्द) द्वितीय के तीन खंड (२३-३६-३५ छन्द) तृतीय के छह खंड (१२-१०-३६-२३-३५-४६) हैं।

कवि चतुरानन ने 'पथैना रासौ' का प्रारम्भ सरस्वती तथा गणपति स्मरण से किया है।[२] मंगलाचरण के उपरान्त शार्दूल सिंह का वंशवर्णन है।

'गढ़ पथैना रासौ' युद्ध काव्य है। इसलिए इसमें वीररस को ही विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। ब्रजभाषा के युद्धकाव्यों में वीरत्व उत्पन्न करने के लिए अमृतध्वनि तथा महाअमृतध्वनि छन्दों का प्रयोग करते हैं। यह शैलीगत ओज है। कवि चतुराराय ने 'पथैना रासौ' में युद्ध के लिए उमड़ती सेना के उत्साह का सुन्दर वर्णन किया है, एक उदाहरण प्रस्तुत है—

खल खण्ड ने खुरेल आये मूच्छ ऊँचे को किये।
द्वै-द्वै धरें तरवार तीखी चाव लखि कौ हिये॥
तेहि साथ आयो मर्द इक वह सीसराम सुभाय कै।
जो जंग रंग उमंग में जुर जात कालह भाय है॥

बलवान तोफा आइयौ लै साथ चाहर संग ही।
जो सबै समरथ बती अरि काटि डारै जंग ही॥

---

१. संमत ठारह सौ तेतीस के माह मास सुद ग्यास।
अली सहादत खान ने तजौ आगरौ बास॥
२. सुमरन सारद माय कौ गनपत कौ सिर नाई।
छंद पथैने कौ कियौ चतुराराय बनाई॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तेहिं पुट्ठि डागुर भातरे भर भूरि-भूरि उमंग ही।
जह वेग पनवारी गई लै चले खग्ग उद्दंग ही॥

पथैना रासौ से यह भी प्रमाणित होता है कि अटारहवीं शती तक जाटों में जौहर भी किया जाता था।

गावत गीत सुहावने चलि आई वहि थान।
जहाँ खड़े रन रस सने वीर बहादुर ज्वान॥
कीनी आरती पतिन की मंद-मंद मुसकाई।
मिलै नाथ सुरलोक में हमहु वेगै धाई॥
कियै मात सब सुतन के टीके चार बनाई।
रन कंकन बाधे भुजा चले तुरत सिर नाई॥

रासौकार ने स्वयं इस युद्ध में भाग लिया था अतएव उनके युद्धवर्णन सटीक एवं अनुभव पर आधारित हैं।

दिये दोय खांडे गिरायो सीस आगे।
पर्‌यो तुर्क धरती बढ्‌यो नाई आगे॥
महाघोर घमसान की रारि मंडी।
चलै बान कम्मान छूटै भुसंडी॥
सपर जंग भारी मडीरै नगर ती।
मनौ काटि कुंदा दिये डारि धरती॥

पथैना गाँव में अभी कुछ वर्ष पहले तक दुर्ग से पूर्व की ओर बरना का वृक्ष था। इस युद्ध के अवसर पर उक्त वृक्ष के निकट पथैना के वीरों ने भीषण मोर्चा बन्दी की थी।

धौंकत सिंघ कुमार जुद्ध को सनमुख धायौ।
तह ठाकुर रतनेस पास कत्तेहू आयौ॥
साहब सिंघ कुमार औरे नाहरसिंघ बंका।
दानसिंघ अरु पद्म जीव जिनके नहि संका॥
खूटैत एक तोफा जहां कह चतुरा सामिल भयौ।
बरना बारे मोरचा इन सबन कठिन भौ हरात्‌यो॥

वही—प्रथम जंग—खण्ड ३.६.२१

उपर्युक्त उदाहरण से प्रमाणित है कि कवि ने युद्ध के अवसर पर अपनी पैनी दृष्टि से एक-एक वीर के करतबों को देखा है। यहाँ पर धौंकत सिंह, रतनसिंह, दानसिंह, पद्मसिंह, चतुरराय (स्वयं कवि) का वर्णन है।

'पथैना रासौ' के पात्रों का उल्लेख इस युग के इतिहास संबंधी ग्रन्थों में उपलब्ध है। कवि चतुरा-राय ने शार्दूलसिंह का अपनी कृति में स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। शार्दूलसिंह का उल्लेख 'सुजान

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चरित्र' में भी है। शार्दूलसिंह के अतिरिक्त 'पथैना रासो' में किसनसिंह, पहोपसिंह, देवीसिंह, भेदसिंह, जेतसिंह, मानसिंह का नाम विशेष रूप से आया है। किसन सिंह, पहोपसिंह तथा भेदसिंह की 'सुजान चरित्र' में शार्दूलसिंह के वीर पुत्रों के रूप में स्थान प्राप्त हुआ है। किसन सिंह का उल्लेख गुलाब कवि ने 'करहियौ कौ रायसो' में भी किया है। भेदसिंह, पहोपसिंह तथा किसनसिंह, सुजान सिंह के साथ दिल्ली युद्ध में साथ थे। 'पथैना रासो' में उद्धृत प्रस्तुत पंक्तियों के आधार पर भी इस काव्य की ऐतिहासिकता को बल मिलता है—

हम दिल्ली केउ बार लूटी और लूटो आगरौ।
कोकारारी गंगापार मंडी संग सफतर जंग के।
केउ बार दखीन सौ लरै बड़े तोप तीर तुफंग के।

ब्रजभाषा में केवल शृंगार के गीत ही नहीं गाये गये हैं, अपितु जीवन की विकराल कर्मभूमि की यथार्थ अभिव्यक्ति भी हुई है। अज्ञात काव्य 'गढ़ पथैना रासो' इसका ज्वलन्त प्रमाण है। अठारहवीं शताब्दी के ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास भी इस काव्य में छुपा पड़ा है। ब्रज के दैनिक जीवन की रीति-रिवाजों की स्पष्ट झांकी इस काव्य में है।

'गढ़ पथैना रासो' की समाप्ति कवि प्रस्तुत कवित्त के साथ करता है—

गज सौ छुड़ायो हरि ग्राह कौ कलेश देख।
ध्रुव की पुकार सुनि आप हरि आयो जू।
जैसे प्रह्लाद कू छुड़ायो हरनाच्छन ते।
अघासुर उदर ते निकास गोप ग्वाल दीने।
तैसई पथैनो मलेच्छ सौ बचायो जू।
जैसेई पुकारे सारदूल के सपूत पूत।
ताहि समय चक्र लै उमड़ि हरि आये जू।

'ब्रजभूमि में 'गढ़ पथैना रासो' के समान अपार साहित्य पांडुलिपियों में बिखरा पड़ा हुआ है। मुझे 'गढ़ पथैना रासो' की पाण्डुलिपि देखने का अवसर शार्दूलसिंह के वंशज रिटायर्ड तहसीलदार श्री गंगा सिंह के पास मिला।[1]

---

१. श्री गंगासिंह , गंगाबिहार-अनाह दरवाजा-भरतपुर।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रासलीला

⊙

श्रीमती सुधा भार्गव
एम० ए० (अर्थशास्त्र, हिन्दी), एल-एल० बी०

रासलीला भारतीय साहित्य का एक अत्यन्त रसमय अंग है। संस्कृत के पुराण साहित्य से लेकर आज के भारत की समस्त भाषाओं तक में रासलीला विषयक अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं। हिन्दी साहित्य तो रासलीला के मधुर पदों से संगीतमय बन गया है। भक्तिकाल के कवियों ने 'रास पंचाध्यायी' आदि काव्य लिखकर तथा रीतिकाल के कवियों ने स्फुट पद दोहे सवैये आदि की रचना करके रास साहित्य को अति समृद्ध बनाया है। रास शब्द का अर्थ लिखते हुए कोशकार श्री रामचन्द्र वर्मा ने इसे प्राचीन काल के गोपों की एक क्रीड़ा लिखा है जिसमें वे घेरा बांध कर नाचते थे। कतिपय विद्वान् रास शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'रासक' शब्द से जोड़ते हैं तथा उसका सम्बन्ध मण्डल रासक से मानते हैं। भरत-मुनि के अनुसार:—

"ताल रासक नामस्यात् च त्रेधा रासकं स्मृतम्।
दंड रासमेकंतु तथा मंडल रासकम्॥"

मण्डल रासक में वृत्ताकार गोल बनाकर स्त्री और पुरुष समूह नृत्य करते हैं। कतिपय विद्वान् हल्लीसक को रास का पूर्वरूप मानते हैं। वात्स्यायन के टीकाकार यशोधर ने हल्लीसक के विषय में लिखा है कि—

"मण्डलेन च यत्स्त्रीणां नृत्य हल्लीसकं तु तत्।
नेता तत्र भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥"

श्रीधर स्वामी ने उसकी व्याख्या 'रासो नाम बहुनर्तकी युक्तो नृत्य विशेषः' लिखी है। वस्तुतः साहित्यकारों की उन युक्तियों को विद्वानों के मनन के हेतु छोड़कर उस शब्द की व्युत्पत्ति "रसानाम समूहो रासं" समझ लें तो अर्थ बहुत स्पष्ट एवं रासलीला के लेखक भक्तों के अनुरूप हो जाता है।

जहाँ तक रासलीला के कथानक का प्रश्न है यह सर्वजन विश्रुत है। शरद् पूर्णिमा की चन्द्रिका स्नात रात्रि में वृन्दावन के पुनीत प्रांगण में श्रीकृष्ण के मन में रास रचने का विचार आया। श्रीकृष्ण ने अपनी वंशी उठायी और अमृतमय वादन किया। वंशी की तान को सुनते ही आत्मविस्मृत गोपियाँ तन मन की सुधि भूल समस्त क्रियाकलाप को अधूरा ही छोड़कर श्रीकृष्ण के पास पहुँच गयीं। श्रीकृष्ण ने सरल भाव से उन्हें पातिव्रत धर्म का उपदेश देकर लौट जाने का आग्रह किया किन्तु गोपियों ने किसी मर्यादा को स्वीकार नहीं किया। तब श्रीकृष्ण ने मंडल बनाकर रास रचाया जिसमें श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण कर लिये तथा दो दो गोपियों के मध्य एक एक कृष्ण तथा दो दो कृष्णों के मध्य एक एक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

गोपी हो गये और उस मंडल के मध्य में श्रीकृष्ण और राधिका हो गये। उस समय रास के संगीत और नृत्य ने चर-अचर जड़-चेतन सभी को रस विभोर कर दिया, यहाँ तक कि यमुना का जल उलटा बहने लगा और चन्द्र स्थिर हो गया। रास विलास जिस समय अपनी उत्कृष्टता पर था उसी समय श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और गोपिकायें कृष्ण के वियोग में विलखने लगीं। इस कथानक में श्रीकृष्ण और गोपियों के मिलन का पूर्ण रसोद्दीपक उपकरणों से युक्त वर्णन किया गया है। इससे सहज ही यह भ्रान्ति हो जाती है कि रास श्रीकृष्ण की काम-प्रेम की शृंगार रसपूर्ण लीला है, इसका आध्यात्मिकता से कोई सरोकार नहीं है, किन्तु भक्तों के अनुसार यह ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति मार्ग की सोपान है। इसके आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों अर्थ करके भक्त भगवान के स्वरूप को हृदयस्थित करते हैं। सुविदित है कि भक्त कवि पहले भक्त हैं बाद में कवि हैं। अतएव वे अक्षरशः वैष्णव भक्ति के सिद्धान्तों में आस्था रखते हैं। वैष्णवों के अनुसार रासस्थल वृन्दावन दिव्य, अवतरित एवं प्रकट तीन प्रकार का है। उसी क्रम से रास भी रहस्यात्मक रसात्मक और अनुकरणात्मक तीन प्रकार का है। रहस्यात्मक रास गोलोक-स्थित दिव्य वृन्दावन में होता है इसे परब्रह्म श्रीकृष्ण ऋचारूपी गोपियों के साथ दिव्य यमुना के तट पर सतत करते रहते हैं। रसात्मक रास द्वापर में वृन्दावन में अवतरित कृष्ण ने ऋचावतार गोपियों के साथ किया था। अनुकरणात्मक रास का संगीत नृत्य के रूप में वैष्णव भक्तों ने श्रीकृष्णलीला के अनुकरणके रूप में भक्तिरस का विस्तार करने के लिए आरंभ किया था। जो आज भी ब्रज प्रदेश में रास मंडलियों द्वारा किया जाता है।

अनुकरणात्मक रास का प्रारंभ पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के मध्य हुआ माना जाता है। अनुमान लगाया जाता है कि हिन्दी के भक्त कवि तानसेन के संगीत गुरु स्वामी हरिदास जी ने इसका प्रारंभ किया था—

"स्वामी हरिदास रसरास को बखान सकै।
रसिकता की छाप जोई जाइ मध्य पाई है॥"

कुछ विद्वानों का मत है कि श्री घमण्डदेव ने इसका प्रारंभ किया है। श्री ग्राउस महोदय ने श्री नारायण भट्ट को रास का आरंभकर्ता बतलाया है।

"It was diciple Narayana Bhatta, who first established Vanyatra and Raslila."

रासलीला के विभिन्न प्रतीकार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। ब्रह्मविद्यावादी ज्ञानमार्गी रासलीला में 'तत्वमसि' का विधान पाते हैं। इनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण 'तत्' पदार्थ है और गोपांगनाएँ 'त्वं' पदार्थ हैं। इन दोनों का परस्पर संश्लेषण कामलीला नहीं है। यथार्थ में अंतरंग दृष्टि से यह जीव और ब्रह्म का अद्भुत संयोग है।[1]

योग शास्त्र के आधार पर अनहद नाद भगवान की वंशी ध्वनि है, नाड़ियाँ गोपियाँ हैं, कुण्डलिनी राधा हैं, मस्तिष्कगत सहस्रार कमल वृन्दावन है जहाँ आत्मा परमात्मा का सुखमय मिलन होता है। जहाँ पहुँच कर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की शक्तियाँ सुरम्य रास रचती हुई नृत्य किया करती हैं—[2]

---

१. श्री भगवत्तत्व—श्री करपात्री, पृ० २१८।
२. रासलीला में आध्यात्मिक तत्व—श्री बल्देव प्रसाद मिश्र—कल्याण, अगस्त १९३१, पृ० १९४।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रासलीला मनुष्य तथा विश्व का परमात्मा के साथ सम्बन्ध प्रकट करती है। कृष्ण सूर्य हैं और गोपीजन किरण हैं। सूर्यस्थ किरणें सूर्य के बाहर निकलती हैं और पुनः सूर्य में प्रवेश कर जाती हैं। वृत्ताकार सूर्य सदैव गतिमान हैं, यही रहस्य रासलीला में सिद्ध किया गया है। वस्तुतः कृष्ण वैदिक विष्णु और सूर्य के विकसित रूप हैं।[१]

ब्रज के भक्ति सम्प्रदायों का मत है कि यह भगवान के दर्शन की छठी दशा है। पांचवीं दशा में साधक अपनी देहसुधि भूल जाता है। 'पांचे भूले देह सुधि, छठी दसा रस भाव की।"

रासलीला का अन्य प्रयोजन जीव कल्याण है। सांसारिक जीव प्रेम के पथ पर चलता हुआ 'काम' में ही अपने भोग विलास की इति श्री समझ बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप संसार के आवागमन के बन्धन में पुनः पुनः फँसना होता है। इस रासलीला द्वारा वह काम विजय की भावना पोषित करके काम-जय रूप फल को प्राप्त करता है।[२]

रास का रंगमंच कोई विशेष प्रकार का नहीं होता। एक सिंहासन पर श्रीराधाकृष्ण विराजते हैं। तथा अन्य आसन्दियों पर गोपियाँ बैठती हैं। उनके सामने १५-२० फुट लम्बा और १०-१२ फुट चौड़ा स्थान नृत्य के लिए खाली रहता है। एक ओर पखावज हारमोनियम, सारंगी, किन्नरी झाँझ आदि वाद्यों को लेकर वादक मण्डली बैठती है। इसके पश्चात् दर्शक लोग बैठते हैं। जब पर्दा हटता है तो युगल सरकार (श्रीराधाकृष्ण) के दर्शन होते हैं। जय जय की ध्वनि के साथ आरती वन्दना आदि होती है। आरंभ में श्रीकृष्ण अपने पास में बैठी हुई श्रीराधा से रास में चलने की प्रार्थना करते हैं।

"सब द्वारन कूँ छाँड़िकें गह्यौ तुम्हारो द्वार।
हे वृषभानु की लाड़िली मेरी ओर निहार॥"

"हे श्री किशोरी जी आपके नित्य रास कौ समय ह्वै गयौ है। आप कृपा करकै रास मण्डल में पधारौ।"

तब श्री जी उनके हाथों को पकड़कर उत्तर देती हैं—

"प्यारे रास, बिलास कौ, मोहिं बड़ौ उत्साह।
चलौ चलें सब सखिन मिल, नव निकुंज के माँह॥"

और श्रीकृष्ण के गले में बाँहें डाल देती हैं। गायन प्रारम्भ होता है सभी गोपियाँ खड़ी हो जाती हैं तथा मण्डल बनाकर रास प्रारम्भ हो जाता है।

तदुपरान्त सभी सम्मिलित रूप से नृत्य करते हैं कभी कृष्ण कभी राधा कभी राधाकृष्ण दोनों और अन्त में सामूहिक नृत्य होता है।

हाँजी रच्यौ रास रंग, हाँजी रच्यौ रास रंग स्याम सबहिन सुख दीनों।
मुरली धुनि कर प्रकास, खग मृग सुन रस उदास,
युवतिन तज गेह बास बनहिं गवन कीनों।
मोहे सुर, असुर, नाग, मुनि जन मन गये जाग

---

१. रासलीला का स्वरूप और महत्व—डा० विजयेन्द्र स्नातक—ब्रजभारती, वर्ष १६, अंक ७ पृ० २।
२. वही।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सिव, सारद, नारदादि, थकित भये ग्यानी।
अमरागन, अमर नारि, आईं लोकन बिसारि
ओक लोक त्याग कहत धन्य धन्य बानी।
थकित भयौ गति समीर, चन्द्रमा भयौ अधीर
तारागन लज्जित भये, मारग नहिं पावैं।
उलटि जमुना बहत धार, सुन्दर तन सज सिंगार
सूरज प्रभु संग नारि, कौतुक उपजावैं। हाँजीं

रास का वर्णन सबसे प्राचीन हरिवंशपुराण जो कि चौथी शताब्दी का माना जाता है उससे लेकर विष्णुपुराण-भागवत पुराण-ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि में दिया गया है, परन्तु उनमें राधा का कहीं नाम भी नहीं है। गर्ग संहिता जयदेव कृत गीतगोविन्द विल्वमंगल कृत कृष्णकर्णामृत मित्रमिश्रकृत 'आनन्द कन्द चम्पू' आदि में रास का वर्णन मिलता है।

हिन्दी साहित्य में सूरदास, नंददास आदि ने 'रासपंचाध्यायी' लिखी है। रास विषयक अनेक स्फुट पद भी लिखे हैं। इनके अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य सभी कवियों ने श्री हितहरिवंश, आसकरन, गदाधर मिश्र, सूरदास मदनमोहन, गदाधार भट्ट, स्वामी, हरिदास, हरीराम, व्यास, बिहारिनदास, नागरीदास, चन्दसखी, चाचा वृन्दावनदास, गंगाबाई आदि अनेक कवियों ने रास विषयक सहस्त्रों विष्णु पदों की रचना करके संगीत और साहित्य दोनों की अपार श्रीवृद्धि की है।

रासलीला धार्मिक कृत्य है। ये खुले राज मार्गों या जनवीथिकाओं में नहीं होती है। यह कृष्ण भक्तों का आनन्द रहस्य है जो सार्वजनिक स्थलों पर नहीं होता है। तदपि अनेक मुसलमान कवियों और कवियित्रियों ने रासलीला के पद लिखे हैं। भाग्यवश कुछ विदेशी दर्शकों जैसे जेम्स टॉड, ब्रोटन तथा ग्राउज आदि ने इन रास लीलाओं का आनन्द लाभ किया है। अमरीकी विद्वान श्री नारविन हईन हैवन का रासलीला के सम्बन्ध में मत है कि—

"भारतवर्ष के सभी प्राचीन नाटक, यह सत्य है कि नाम से तो धार्मिक हैं किन्तु रासलीला में केवल रूढ़ि के लिए ही धर्म की छाया नहीं रहती वह नितांत भक्तिपूर्ण भावावेशों का समीकरण है। इसके दर्शक भी भक्तहृदय होते हैं जो अपने इष्टदेव का लीलामृत पान करने के इच्छुक होते हैं एन्द्रिक आमोद-प्रमोद ग्रहण करने वाले नहीं। इस प्रकार रासलीला सामूहिक उल्लास के कुप्रभाव से सदा सुरक्षित रही है।"[१]

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यदि हिन्दी के रासलीला सम्बन्धी पदों और रचनाओं का अध्ययन किया जाये तो वह निश्चित ही रस की सरिता का अवगाहन होगा।

---

१. रासलीला के विदेशी दर्शक—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ९१६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आधुनिक ब्रज-गद्य-धारा

डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

आज तक 'हिन्दी गद्य का विकास' साहित्य के इतिहासों में अपूर्ण रूप में ही विवेचित हुआ है। हिन्दी गद्य का विकास केवल खड़ी बोली गद्य का ही विकास नहीं है, वरन् ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि हिन्दी की उपभाषाओं का गद्य भी इसके अन्तर्गत आता है। ब्रजभाषा गद्य की धारा ब्रजभाषा काव्य की परम्परा के साथ ही प्रवाहित हुई किन्तु इसका बहुत-सा साहित्य काल के प्रवाह में नष्ट हो गया और बचा हुआ विद्वानों की दृष्टि से ओझल रह गया। ब्रजभाषा गद्य का जो साहित्य उपलब्ध है वह विषय की दृष्टि से तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहली श्रेणी धार्मिक गद्य साहित्य की है, दूसरी साहित्यिक गद्य रचनाओं की और तीसरी उपयोगी रचनाओं की। ब्रजभाषा के धार्मिक गद्य का संबंध भक्ति-काल से विशेष है, जिसमें पुष्टिमार्ग का विपुल वार्ता साहित्य निर्मित हुआ, पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद हुए, आचार्यों एवं भक्तों ने अपने धर्म-सिद्धान्तों के प्रचार के लिए वचनिकाएं एवं भाष्य प्रस्तुत किए। साहित्यिक श्रेणी का ब्रजभाषा गद्य उत्तरमध्यकाल या शृंगार काल में प्रधानतया काव्य ग्रन्थों की टीकाओं में प्रयुक्त हुआ है। इनका निर्माण संस्कृत की टीका शैली पर हुआ। इस श्रेणी की स्वतन्त्र मौलिक काव्यशास्त्रीय रचनाएँ भी हैं, किन्तु उनमें पद्य का प्राधान्य है। उपयोगी श्रेणी का ब्रजभाषा गद्य वैद्यक, ज्योतिष, सामुद्रिक, शालिहोत्र, कोकशास्त्र, भूगोल, गणित आदि विषयों की रचनाओं में मिलता है।

रूप की दृष्टि से उपरोक्त ब्रजभाषा गद्य को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—पहला मौलिक या स्वतन्त्र गद्य और दूसरा परतन्त्र गद्य।

ब्रजभाषा गद्य के साहित्यिक स्वरूप को पूर्ण रूप से समझने एवं अध्ययन की सुविधा के लिए हमने उसके साहित्य रचनाकाल को साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर तीन कालों में इस प्रकार विभक्त किया है—

(१) आविर्भावकाल—विक्रमी १६वीं शती से पूर्व अर्थात् संवत् १५०० से पूर्व।

(२) विकास एवं उत्कर्षकाल—संवत् १५०० से १८५० तक। इसे दो उपविभागों में बांटा जा सकता है। ये उपविभाग इस प्रकार हैं—

(अ) पूर्व विकास एवं उत्कर्षकाल—संवत् १५०० से संवत् १७०० तक।

(आ) उत्तर विकास एवं उत्कर्षकाल—संवत् १७०१ से संवत् १८५० तक।

(३) ह्रास काल—संवत् १८५१ से प्रारम्भ।

अब हम इन कालों में रचित ब्रजभाषा गद्य-साहित्य का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(१) आविर्भावकाल--व्रजभाषा गद्य की रचना कब से प्रारम्भ हुई, यह निश्चय करना कठिन है; क्योंकि प्राचीन गद्य-साहित्य नष्ट हो चुका है या अनुपलब्ध है किन्तु १६वीं शती के व्रजभाषा गद्य के वार्ता ग्रन्थों में गद्य के विकसित रूप को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका आविर्भाव बहुत पहले हुआ होगा। इस अंधकार युग या आविर्भावकाल की जो गद्य रचनाएं बताई जाती हैं, वे अध्ययन करने पर 'पूर्व विकास एवं उत्कर्ष काल' की ठहरती हैं। दसवीं शताब्दी के आसपास का कहा जाने वाला नाथपंथी व्रजभाषा गद्य विक्रमी सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व का नहीं ठहरता। पृथ्वीराज रासो की व्रजभाषा गद्य की वचनिकाएं इस अन्धकार युग को प्रकाशित करने में चिनगारी का काम करती हैं, किन्तु इनका समय भी १५५० विक्रमाब्द से पूर्व का नहीं है। अतः आज भी हम व्रजभाषा गद्य के आविर्भावकाल के संबंध में अनुमान ही लगा सकते हैं निश्चित कुछ नहीं कह सकते। जब तक इस काल की कोई प्रामाणिक रचना नहीं मिल जाती, हम इस काल के गद्य साहित्य के रूप एवं भाषा के संबंध में कोई निर्णय नहीं ले सकते।

(२) अ--**व्रजभाषा गद्य का पूर्व विकास एवं उत्कर्ष काल**--संवत् १५०० से संवत् १७०० विक्रमाब्द तक। इस काल में व्रजभाषा गद्य-साहित्य-रचना की मूल प्रेरणा धार्मिक एवं साम्प्रदायिक भावना और विशेष रूप से कृष्णभक्ति रही। व्रज-भाषा के गद्य-साहित्य के विकास और उत्कर्ष का प्रमुख श्रेय वल्लभ-सम्प्रदाय के वार्ता-साहित्य को है। इस वार्ता-साहित्य की साफ-सुथरी भाषा एवं स्थिर गद्य शैली को देखकर यह धारणा भी पुष्ट होती है कि व्रजभाषा-गद्य की प्राचीन परम्परा रही होगी और उसमें बहुत-सी रचनाएं भी हुई होंगी जो आज प्राप्त नहीं हैं।

इस युग का व्रजभाषा गद्य मूलतः दो प्रकार का है—

पहला प्रकार—मौलिक स्वतन्त्र गद्य—जो वल्लभ सम्प्रदाय के वचनामृतों, चौरासी एवं दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताओं तथा अन्य वार्ता ग्रन्थों, एवं अन्य सम्प्रदायों की धार्मिक सैद्धान्तिक रचनाओं, कथाओं, प्रबन्ध-काव्य की वचनिकाओं, पद्यात्मक दार्शनिक रचनाओं की वार्ता, पत्रों, इश्तहारों तथा मन्दिरों के शिलालेखों में मिलता है।

दूसरे प्रकार का परतन्त्र गद्य टीका, वचनिका, अनुवाद, छायानुवाद, टिप्पण-टिप्पणी, भाव-भावना और तिलक-वार्ता आदि में मिलता है। इस साहित्य का विशद विवेचन मैंने अपने 'व्रजभाषा गद्य का विकास' नामक शोधप्रबन्ध में किया है।

व्रजभाषा गद्य के इस पूर्व उत्कर्ष काल में मौलिक-स्वतन्त्र गद्य की रचनाएं परतन्त्र गद्य की रचनाओं की अपेक्षा बहुत अधिक हुईं। इस युग का गद्य प्रमुख रूप से धार्मिक एवं साम्प्रदायिक प्रेरणा से अनुप्राणित है। वैष्णव सम्प्रदायों की प्रेरणा से रचित वार्ता एवं गद्य एवं सिद्धान्त वचनिका के रूप में प्रस्तुत हुआ गद्य कहीं-कहीं ललित भी है। नाथपंथी साधुओं का सिद्धान्त कथनात्मक गद्य अनलंकृत है एवं साहित्यिक दृष्टि से उसका महत्व नहीं है। शुद्ध साहित्य की दृष्टि से इस युग के वार्ता-साहित्य का गद्य एवं पं० बनारसीदास जैन का दार्शनिक निबन्धात्मक गद्य ही महत्वपूर्ण ठहरते हैं। इस युग में परतन्त्र गद्य टीका, भाव-भावना, वचनिका आदि अनेक रूपों में मिलता है। हरिराय जी के भाव प्रकाश को छोड़कर शेष रचनाएं प्रायः टीकापरक हैं। भावप्रकाश व्याख्यापरक वार्ताग्रन्थ है जो मौलिक शैली से कृतयु एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इस युग के प्रमुख मौलिक गद्यकारों में महाप्रभु वल्लभाचार्य, दामोदर जैन,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री हितहरिवंश, गंगाबाई, गो० विट्ठलनाथ, गो० गोकुलनाथ जी, नाभादास, नाभाअली, गो० दामोदरवर जी, जैन कवि बनारसीदास, मुकुन्ददास, वैकुण्ठमणि शुक्ल, रूपरसिकदेव, दामोदरस्वामी, श्री हरिराय जी आदि प्रमुख हैं। इस युग में परतन्त्र गद्य लेखकों में गोसाईं विट्ठलनाथ, श्रीधर स्वामी, ताराचन्द, राजमल्ल जैन, गो० गोकुलनाथ, किशोरदास, परमहंस विष्णुपुरी, हरिराय जी तथा गोपेश्वर जी प्रमुख हैं।

(२) आ—ब्रजभाषा गद्य का उत्तर विकास एवं उत्कर्षकाल—संवत् १७०० से सं० १८५० तक। इस काल में ब्रजभाषा गद्य के विकास की पूर्ववर्ती परम्परा चलती रही। इस युग में मौलिक रचनाएं उतनी नहीं हुईं जितनी परतन्त्र रचनाएं रची गईं। परतन्त्र रचनाओं की प्रमुख प्रेरणा भी साहित्यिक भावना थी। यों धार्मिक एवं साम्प्रदायिक ग्रन्थों के रूपान्तर एवं व्याख्यात्मक टीकाएं भी निर्मित होती रहीं। इस युग में गद्य के क्षेत्र में टीकाओं का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। मौलिक-गद्य की रचनाएं धार्मिक एवं साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं, उनमें साहित्यिकता का अभाव है। वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त इस युग में राधावल्लभीय तथा अन्य कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के भक्तों तथा जैन एवं नाथपंथी साधुओं ने ब्रजभाषा गद्य में सिद्धान्त एवं दृष्टान्त कथन किया। इनका गद्य प्रायः अललित, अनलंकृत एवं तथ्य कथनात्मक है। दो तीन लेखकों जैसे अनन्य अलि आदि को छोड़कर शेष सभी का गद्य व्यावहारिक श्रेणी का है।

इस काल का टीका साहित्य अपना विशेष साहित्यिक महत्व रखता है। इसमें व्यावहारिक समीक्षा अर्थात् काव्यगत विशेषताओं का उद्घाटन भी मिलता है। इसलिए कहीं-कहीं ये टीकाएं बड़ी मार्मिक हैं आधुनिक व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत रचनाओं की जिन विशेषताओं की मीमांसा की जाती है, वे किसी न किसी रूप में इन टीकाओं में मिलती हैं। ब्रजभाषा गद्य के टीका-साहित्य की समीक्षा में अपनापन है। इसकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाओं में मौलिकता है। उसकी अपनी शैली है जो संस्कृत साहित्य की परम्परा में पल्लवित हुई है। इस काल की अधिकांश टीकाएं ब्रजभाषा के काव्य ग्रन्थों की हैं। विशेष रूप से महप्रभु हित हरिवंश के 'हित चतुरासी' और बिहारीलाल की 'बिहारी सतसई' की कुछ गद्य-टीकाएं अत्यन्त विशद, व्याख्यात्मक एवं चमत्कारपूर्ण हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में प्रौढ़ टीका-साहित्य का निर्माण हुआ है। इस काल में रीतिशास्त्र के आचार्यों ने अपने पद्य-गद्य मय काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में तिलक, वार्ता, वचनिका आदि के रूप में स्फुट रूप से व्याख्यात्मक गद्य का भी प्रयोग किया। ऐसे लेखकों में आचार्य भिखारीदास, सोमनाथ प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों की गणना की जाती है। ऐसा ही स्फुट गद्य संस्कृत से ब्रजभाषा में रूपान्तरित 'गोविन्द-हुलास नाटक' तथा विदग्ध माधव नाटक में भी मिलता है।

(३) **ब्रजभाषा गद्य का ह्रास काल**—सं० १८५१ से प्रारम्भ—ब्रजभाषा गद्य की परम्परा ह्रास काल में भी चलती रही किन्तु इस काल में मुद्रणालय की सुविधा तथा अन्य कारणों एवं परिस्थितियों से खड़ी बोली का साहित्य क्षेत्र में प्रभुत्व स्थापित हो गया। ईसाई धर्म प्रचारकों, आर्यसमाजी तथा अन्य समाज सुधारकों के प्रोत्साहन से खड़ी बोली गद्य की समुचित उन्नति हुई। लार्ड वेलेजली द्वारा संवत् १८५७ में स्थापित फोर्ट विलियम कालिज ने भी खड़ी बोली को विशेष प्रोत्साहन दिया। इसके साथ ही पाश्चात्य वैज्ञानिक आविष्कार हिन्दी-साहित्य में जिस नवीन दृष्टिकोण को जन्म दे रहे थे, उससे भी खड़ी बोली गद्य की उन्नति हुई। खड़ी बोली हिन्दी प्रदेश में जातीय भाषा के रूप में फैली। पाश्चात्य प्रभावापन्न नई चेतना को आत्मसात करने के लिए साहित्य में गद्य-रूप को प्रमुखता मिली।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इस प्रकार समय का प्रभाव गद्य को महत्व दे रहा था। तत्कालीन ऐसी परिस्थितियों में ब्रजभाषा गद्य-साहित्य इस नई चेतना को समाहित न कर सका। इसीलिए जो कवि ब्रजभाषा का उत्कर्ष चाह रहे थे वे भी अपनी गद्य रचना खड़ी बोली में प्रस्तुत कर रहे थे। स्वयं भारतेन्दु जी ने ऐसा ही किया। इसके साथ ही खड़ी बोली की सर्वप्रियता बढ़ रही थी। इन्हीं सब कारणों से ब्रजभाषा-गद्य का इस युग में ह्रास हुआ।

ब्रजभाषा गद्य के इस ह्रास काल का अध्ययन हम दो शीर्षकों में सुविधापूर्वक कर सकते हैं। एक तो ह्रासकाल का प्रथम चरण सं० १८५१ से १९२९ तक और दूसरा चरण या आधुनिक काल सं० १९३० से आज तक।

ब्रजभाषा गद्य का आधुनिककाल या आधुनिक ब्रज-गद्य-धारा--ब्रजभाषा में गद्य-निर्माण की परम्परा आज भी चल रही है किन्तु वह उतनी समृद्ध नहीं जितनी खड़ी बोली गद्य की है। आधुनिक काल में भी ब्रजभाषा के प्रेमी साहित्यकार इस भाषा के भंडार को अपनी गद्य रचनाओं से भर रहे हैं। ब्रजभाषा के आधुनिक गद्यकार नाट्य रूपक, कथासाहित्य, अनुवाद, कृष्णभक्ति संबंधी संवाद, रासलीला आदि का निर्माण कर रहे हैं। ब्रजभाषा गद्य के विकास में इस काल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सहयोग आकाशवाणी का है जिसके प्रोत्साहन से बहुत-सी गद्य रचनाएं ब्रजभाषा में निर्मित एवं प्रसारित हुईं। आधुनिक काल के प्रमुख ब्रजभाषा-गद्यकार ये हैं—सर्वश्री अनूप शर्मा रूप, आदर्श कुमारी यशपाल, चिम्मनलाल गोस्वामी, कल्याण प्रसाद शर्मा किशोरी, चन्द्रभान राधे-राधे, पातीराम अध्यापक, झम्मनलाल अग्रवाल, जगदीशप्रसाद, रामगोपाल शर्मा, रामनारायण अग्रवाल, श्रीकृष्णदास अग्रवाल, सत्यवती जैतली आदि।

श्री अनूप शर्मा आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र के देहाती कार्यक्रम के संचालक थे। आपने 'फेरि मिलिवो' नामक चम्पू काव्य की रचना ब्रजभाषा पद्य एवं गद्य में की जिस पर आपको देव पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथा अत्यन्त मौलिक रूप में ललित ढंग से प्रस्तुत की गई है। इस रचना में कथात्मक अंश मुख्यतः गद्य में और वर्णनात्मक पद्य में लिखा गया है।

पं० कल्याणप्रसाद शर्मा 'किशोरी' वृन्दावन की रासलीलाओं से संबंधित लीला लेखक हैं। इनके गद्य-लेख 'सर्वेश्वर' मासिक पत्रिका में जून, १९५८ से सितम्बर १९६२ तक धाराप्रवाह रूप से प्रकाशित होते रहे हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—गोपाल गोचारन, अवतार लीला, नंदोत्सव, पूतना-मोक्ष, महादेव लीला, स्वप्नमिलन, प्रत्यक्ष मिलन, जसोदा द्वारा श्रीकृष्ण को शिक्षा, अलौकिक विवाह, श्री ब्रजेन्द्रनन्दन की बारात, श्री राधा विदा, परस्पर होरी तथा युगल अवतार आदि। ये वर्णन प्राचीन कृष्ण भक्ति काव्य पर आधारित हैं। 'गोपाल का गोचारन' प्रसंग से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

'कल तुम्हें अवश्य ही गैया चरायवे भेजूंगो। कारण कि जातें बहुत से कामन की सिद्धि ह्वै जायगी। प्रथमतौ दुष्ट कंस कौ अत्याचार इतनौ बढ़ि गयौ है कि साधु ब्राह्मण, गउन की सेवा की जगह दुःख दै रह्यौ है जा समय गौ अनाथ और दुःखी ह्वै के अपने गोपाल की बाट जोह रही हैं कि हमारौ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रखवारौ ग्वारिया कृष्ण हमारे संग कब वन कूं चलै और बिनकूं अपनौ दूध पिवाय कैं खूब बलवान बनाय दें।"[1]

कल्याण एवं कल्याण कल्पतरु के सम्पादक श्री चिम्मनलाल गोस्वामी ने श्री राधा माधव चिन्तन के सोलह गीतों का ब्रजभाषा गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। इस अनुवाद में शुद्ध साहित्यिक ठेठ ब्रजभाषा प्रयुक्त है। ब्रज के ग्राम्य-साहित्य में आज भी 'ब्रजभाषा गद्य' का मौखिक रूप मिलता है। बहुत-सा ग्राम-साहित्य लिपिबद्ध भी हुआ है। डा० सत्येन्द्र जी[2] ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। ग्राम साहित्य के अन्तर्गत गांव के मनुष्यों का मौखिक उद्‌गार साहित्य है। जो कुछ आज वे मुख से कहते हैं वह अपने बड़े-बूढ़ों से कई पीढ़ियों से सुनते आए हैं तथा उसका उपयोग मनोरंजन या ज्ञानवर्द्धन के लिए करते आए हैं। यह अनेक प्रकार का होता है यथा ग्राम कहानी। ग्राम कहानी साधारण मनोरंजक, जाति-विषयक, धर्म विषयक, त्यौहार विषयक, अन्ध विश्वास संबंधी, कहावत व्याख्या संबंधी तथा पद्यबद्ध कहानियां भी होती हैं। ब्रज की ग्राम कहानियों में व्रत संबंधी कहानियां, उपदेशात्मक धार्मिक अनुष्ठान संबंधी गाथाएं, बुझौवल कहानियां, पंचतन्त्रीय कहानियां तथा लघु छंद कहानियां प्रमुख हैं। मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्ति साहित्य का विशेष महत्व है। सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

ब्रज की लोक कहानियाँ

ब्रज में कहानियों का अखंड भंडार है। इन कहानियों में से कुछ का संग्रह ब्रज-साहित्य मंडल, मथुरा द्वारा 'ब्रज की लोक कहानियां' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इन कहानियों के संकलनकर्त्ताओं ने इनमें भाषा के लोकप्रचलित एवं प्राचीन रूप को प्रतिष्ठित किया है। लोहवन से प्राप्त एक प्रसिद्ध कहानी 'यारू होइ तौ ऐसौ होइ' श्री चन्द्रमान 'राधे-राधे' द्वारा प्रस्तुत की गई है।[3]

इस कहानी का प्रारम्भ इस प्रकार है—'एकु राजा के लरिका और बढ़ई के बेटा में यारई ई। एक दिनां दोनों सिकार खेलिवे गए। जांत जांत भौत दूरि निकरि गए। गरमी कौ बखतु और रस्ता की थकानि, राजा के बेटा ऐ प्यास लगी। थोरी सी दूरि पै कहा देखें कै चील और कउआ मडराइ रहे एँ। बढ़ई के बेटा नैं कही। 'यार! होइ न होइ म्वां पानी जरूर मालिम परतुऐ।' राजा के बेटा ने कही 'तौ तौ यार! तू जा और मेरे काजें पानी ला। नंई तो मैं यांई अपने प्रान छोड़ि दुंग्गो।

ब्रज की 'लोक कहानियाँ' लिखने वालों में श्री पातीराम अध्यापक, अकबरपुर का नाम प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्ध लोककहानियां ये हैं—आंधरौ और रचोंदुआ, ठाकुर रामप्रसाद, कोरिया की मेहमानी, चार यार,

---

१. कल्याण प्रसाद किशोरी।
२. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र।
३. ब्रजभारती संवत् २००२ अंक ४, पृ० १९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक ठाकुर की चतुराई आदि।[1] इन्होंने एक हास्यरस की लोककहानी ब्रह्मचारी दिल सुख देहाती से सुनकर संकलित की है।[2]

श्री मनोहर शर्मा चतुर्वेदी ने ब्रज की एक लोककथा के आधार पर 'यै रितु रूसिवे की नाहीं' नामक गल्प लिखी। इसका प्रारम्भ बड़ा काव्यात्मक है—'मधु-मयी राति की जोवन-क्रीड़ा, उद्दाम लालसा बनकें हिरदे में न पेंठन पाई ही कि अपनी अलसाई भई आंखिन में अंसुआंन कौ अरघ भरि कें मालती ने माधव को बिदा कीन्हों। पति के परदेस गमन पै अनेक तियान कों रोवत बानें देख्यौ ऐ और विनें देखि कै बु हँसी ऊँऐ। पै, जब बौ पति नाम के प्रांनी कों जांनती ऊ नाइनी।'[3]

श्री ब्रजकिशोर पाठक ने 'झिलमिला जोगी' नामक लोक कहानी लिखी।[4] इसका प्रारम्भ इस प्रकार है—'एक नगरिया में एकु राजा रहतौ। बाकी एकु रानी हती, वाके सात कुमार है और गुन सांतौ कुमारन कौ ब्याहु है गयो हतौ। बा राजा ने राज में परजा सब तरियां ते सुखी ही।'[4]

श्री कृष्णदास अग्रवाल, अंड़ीग ने एक पृष्ठ की लघु 'ग्राम्य कहानी' लिखी।[5]

श्रीकृष्णदास जी का 'गांव की बोलचाल' नामक एक संवादात्मक लेख भी छपा है। इसमें मुहावरों का बहुत प्रयोग है।

ब्रजभाषा गद्य में कहानी लिखने वाली दो लेखिकाएं विशेष प्रसिद्ध हैं—सौ० सत्यवती जैतली तथा आदर्श कुमारी यशपाल। सौ० सत्यवती जैतली ने 'सुखिया कौ लाला'[6] नामक एक लोक कहानी प्रस्तुत की। कहानी का प्रारम्भ इस प्रकार है—

"एक बड़ौ लौभी बनिआं और घर के मामलेन में बड़ौ फड़कदम रैहतो। काऊ राहते पईसाय निकारनौई नाय चाहो। जब बंजी फिरबे कूं जांतो तौ अपनी बहू ते कहै जाऔ कै 'देख रोटी जब करियौ जब मैं बगदि आऊं।" बु बिचारी रोज जबई रोटी करै जब बनियां बगदि आवै का।"

श्रीमती आदर्श कुमारी ने 'बांदी की चतुराई' नामक लोक कथा प्रस्तुत की।[7] 'बांदी की चतुराई कहानी का प्रारंभ इस प्रकार है—

"एक राजा ओ। बाकै कोई सन्तान नांई। एक दिना सवेरे ई एक भंगिन झारिवे कूं आई। जैसेंई बान राजा कौ म्हौं देखो, चट्ट ही थूकि दओ। राजा नें जि बात देखि लई और भंगिन कूं बुलवाइ कै पूछी,—'चौं-री, जि तौ बताइ कि तैनें मेरो म्हौं देखि कै थूकौ चौं?"

---

१. ब्रज की लोक कहानियों में संकलित।
२. ब्रजभारती, सं० २००८, वि० अंक १, पृ० ३९।
३. वही, सं० १९९९ अंक ११, पृ० १६।
४. ब्रजभारती, सं० २००४, अंक २, पृ० ३४।
५. वही, सं० १९९८ अंक ४, पृ० २६-२७।
६. ब्रजभारती, सं० २००४, अंक २, पृ० ३४।
७. ब्रजभारती, सं० २००१, अंक ६, पृ० ७।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की गीति कहानी

गीति कहानी का प्रारम्भ गद्य में होता है और बाद में यह पद्य का रूप धारण कर लेती है। डा० सत्येन्द्र का कथन है कि—"ब्रज में कितनी ही ऐसी कहानियां प्रचलित हैं, जिनमें पद्यात्मकता होती है। यह पद्यात्मकता अनेक रूप की होती है, और अनेक रूपोंवाली कहानियां इसके उपयोग से अनेकरूपता प्राप्त करती हैं। किसी कहानी में (१) पद्य बीच-बीच में काम में लाया जाता है। उसका कुछ कथानक ही पद्यात्मक होता है। (२) किसी में केवल कुछ कथन ही पद्य में होता है। (३) किसी में केवल चुटीले स्थल ही पद्यात्मक रूप ग्रहण करते हैं। (४) कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं, जो पूरी की पूरी पद्य में मिलती हैं।

ऐसी एक कहानी 'दौल वाले कौए' की है। कहानी का आरंभ तो सीधी-सादी भाषा में होता है, पर तुरन्त ही बाद में वह पद्य का रूप धारण कर लेता है। उसके रूप को ठीक ठीक पद्य भी नहीं कहा जा सकता। पद्य के कितने ही गुण इसमें नहीं मिलेंगे। मात्रा और अक्षरों का संतुलन उतना नपा-तुला नहीं, पद की तुलना में पद भी एक से वचन के नहीं, चरणों की सीमा कुछ है ही नहीं। प्रति पद पर कम से कम एक चरण बढ़ता जाता है। पद्य नहीं, तो गीत उससे भी कम हैं। संगीतात्मकता उसमें कथा के ढंग की विलक्षणता के कारण बिलकुल ही नहीं मानी जा सकती। हर बार कहानी का पूर्व कथित अंश दुहराया जाता है और तब उसी प्रवाह में उसमें आरम्भ में कुछ चरण जोड़ दिये जाते हैं—कुछ क्या, एक ही। इस प्रकार परम्परा बनाती हुई क्रमशः कहानी अपने चरण पर पहुँचती है। वहीं तक पद्यात्मकता रहती, फिर उलटे क्रम से लौट पड़ती है। यह लौट सब साधारण भाषा में—गद्य में होती है।[1]

यह कहानी बालकों के मनोरंजन के लिए लिखी गई है तथा सुखांत है। ब्रज की ग्राम कहानी बड़े रोचक ढंग में विविध पदार्थों और पशुओं का पारस्परिक संबंध और स्वभाव की विशेषता सिखा देती है।

वर्तमान काल में ब्रजप्रदेश से प्रकाशित होने वाली कुछ पत्रिकाएं भी ब्रजभाषा गद्य के लिए विशेष स्तम्भ रखती हैं। 'ब्रजभारती' पत्रिका में भी प्रारम्भ में 'सम्पादक के नाम पत्र' ब्रजभाषा गद्य में प्रस्तुत हुए।

सर्वप्रथम श्री सोमनाथ नागर का एक पत्र चैत्र बदी ३ सं० १९९७ का लिखा संवत् १९९८ के दूसरे अंक में छपा। पत्र का प्रारम्भ इस प्रकार है—

श्रीमान् सम्पादक जू ब्रजभारती, मथुरा।

"ब्रज-भारती को पहलो अंक बाजार सूं लैकै बाँच्यौ। रसमयी ब्रजभाषा की सेवा को तिहारो मनसूबा बहुत नीकौ है, ब्रजभाषा की सेवा श्री ब्रजराज की ही सेवा है। मैं आशा करूं हूं कि यह पत्रिका अपने विचारे भये मारग पै उन्नति करेगी।"

---

१. ब्रजभारती, सं० २००३, अंक सं० ७, ८, ९, पृ० ३९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'सर्वेश्वर' मासिक पत्रिका में भी कई वर्ष तक 'ब्रजभाषा गद्य' के लिए एक विशेष स्तम्भ रहा जिसमें श्री कल्याण प्रसाद शर्मा 'किशोरी' रास लीलाएं तथा इनसे संबंधित अन्य प्रकार के गद्य लेख लिखते रहे। पुष्टिमार्ग से सम्बन्धित 'वल्लभ विज्ञान' मासिक पत्र में भी यदा-कदा व्याख्या रूप में ब्रजभाषा गद्य प्रयुक्त होता है।

पुष्टिमार्ग में आज भी ब्रजभाषा का पुरुषोत्तम भाषा के रूप में प्रयोग होता है। श्री विद्या विभाग, श्रीनाथद्वारा से अब भी प्रतिवर्ष 'उत्सव तथा व्रतन की टीप' नाम से प्रत्येक वर्ष पुस्तिकाएं प्रकाशित होती हैं। इनमें ब्रजभाषा गद्य में ही तिथि, वार एवं उत्सव तथा व्रतों का निर्णय रहता है।

ब्रजभाषा गद्य में रचित "पूंछरी की लौठा" "मनसुखा" शीर्षक उपन्यास एक नई विधा के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। ये उपन्यास एक उत्कृष्ट कृति है। इसमें उपन्यास के तत्वों का समुचित विकास हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग में भी ब्रजगद्यधारा प्रवाहित हो रही है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पूंछरी कौ लौठा : कुहरे में रंगीन चीख

डा० सुषमा अग्निहोत्री
एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी साहित्य के गत दो कथादशकों के चेहरे अब अपनी पूरी पहचान के साथ उभर आए हैं। दोनों दशकों की संवेदनाओं का वैभिन्य ही उनकी पहचान बन गया है। छठवें दशक की कथा-पीढ़ी की संवेदना को लेकर लिखा गया एक लघु उपन्यास 'पूंछरी कौ लौठा' ब्रजभाषा में लिखा प्रथम उपन्यास है। इस नाते तो उपन्यास एक महत्वपूर्ण प्रयास है ही। साथ ही उपन्यास की भाव-एवं शिल्पगत योजना की कुछ अपनी निजी उपलब्धियाँ हैं जिससे यह प्रयास सार्थक बन पड़ा है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है। उपन्यास की संवेदना छठे दशक तक की कथा-संवेदना पर आधारित है। क्योंकि उपन्यास जिस प्रेम-कथा को लेकर चलता है। उसकी परिणति यौन तृप्ति में न होकर राष्ट्रीयता और देशभक्ति के लिए त्याग के आदर्श में होती है। 'पूंछरी' गांव की प्रेमिका 'गौरी' 'स्याम' पर आसक्त है। विवाह के पूर्व से ही दोनों में परस्पर प्रेम है। वृन्दावन में विवाह हो जाने के बाद भी यदा-कदा अवसर की तलाश करते हुए दोनों की आँखें मिल जाती हैं।[1] संक्षिप्त बातें भी हो जाती हैं।[2] एकांत में खुलकर बातें करने का अवसर मिलता है। 'गौरी' के पति की मृत्यु के बाद जब 'स्याम' गौरी के भाई धनपत के साथ गौरी की हवेली में आने-जाने लगता है तब। पति की मृत्यु के बाद गौरी के सीधे-सादे दिल दिमाग पर दो ही छायाएँ तैरती रहती हैं। एक तो अपने आदर्श पति की मरणासन्न स्थिति में कही बातें। उनकी प्रेरणा से उनकी राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग देने की इच्छा, और दूसरे सास-ससुर के कठोर अनुशासन में सारी यातनाओं में सहानुभूति का एकमात्र केंद्र 'स्याम' या स्याम की छाया। पर इतना सब होते हुए भी गौरी 'स्याम' की प्राप्ति के लिए विद्रोह करने का साहस नहीं जुटा पाती। वरन् एक कायर और भीरु प्रेमिका की तरह सोचती है कि "चली अच्छौ भयौ। आँ आमतौ तौ बाऊ कौ जे लोग अपमान करते।"[3] इतना ही नहीं गौरी सास ससुर के अत्याचारों को घूँघट

---

१. हिरदे क हिरदे की पैंहचान होत्यं। . . . गौरी . . . इतनी सुन्दर। स्याम के करेजा में दर्द सौ उठ्यौ। बु सोच रह्यौ गौरी आवै तौ बात करूँ। और गौरी आई। . . . औचक बाने वा जगै देख्यौ और पल भर कूं वाकी आँखि स्याम की आँखिन ते जाय मिलीं। (पूंछरी कौ लौठा, पृ० २१)।

२. वही।

३. वही, पृ० ५९। जब कि सातवें दशक की कथा-संवेदना के कहानीकारों की नायिकाएँ तो अपनी माँ के सामने प्रेमी साथी का हाथ पकड़ने और हाथ पकड़ कर अपने निजी कमरे में अंदर लेने में भी नहीं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के अन्दर आँसू बहाकर सहती रहती है।[1] यद्यपि उसमें छटपटाहट भी है— "कहा करूँ। सबरे सपने बहे जाय रहे हैं।"[2] पर उसके मन में मर्यादा और समाज का जो भय है, उसने उसे बाँध रखा है। विवशता की यह निराशा यहाँ तक है "वह अपनी तमन्नाओं से ही घृणा करने की बात सोचने लगती है। "आज मैं जा अनभबै करि रई ऊँ कै मेरे मन में पूरी-पूरी घृना भर जाय। फिर, मैं चाहूँ तौ बी आजाद नांय है सकूं, जि मोय मालिमैं।"

'स्याम' में थोड़ा विद्रोह दिखाई देता है पर वह पूरा सक्रिय नहीं हो पाता। दूसरे स्याम पुरुष है अतः उसका यह विद्रोह पुरानी संवेदना के लिए चुनौती नहीं बनता। और गौरी ऐसा कोई कार्य नहीं कर पाती। एक बार जब गौरी अचानक स्याम के दरवाजे पर खड़ी दिखाई देती है।[3] तो पाठक को कुतूहल-जन्य चौंक का धक्का-सा लगता है। एक संभावना मन में हल्के-से उभरती है कि शायद अब प्रेमसंदर्भ सूत्र तेजी से गहरा रंग ले लेगा। 'स्याम' के फैले हाथ. . . .और उन हाथों के बीच शिथिल हो जाने की क्रियायें इसका संकेत देने लगती हैं। पर तभी कथा आदर्शवादी मोड़ ले लेती है। गौरी की आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की तमन्ना पूरी होने लगती है और प्रेम क्रियाएँ आदर्श दर्शक की तरह चुप हो बैठ जाती हैं। गौरी रणबाला के रूप में प्रस्तुत होकर भारतीय नारी का आदर्श निभाती है।[3] इस प्रकार पाठक का कौतूहल चुप हो जाता है। कथानक के अंत में स्याम के गौरी के[4] प्रति प्रेमल मनोवेगों की व्यंजना करायी गई है[5] और अंत में 'स्याम' में सती का आदर्श दिखाया गया है।[6]

इस सबके बावजूद लेखक की सफलता इस बात में है कि उसकी संवेदना समय और परिवेश से सामञ्जस्य कर सकी है। उपन्यास के कथ्य के लिए लेखक ने स्वाधीनता आंदोलन का जो ऐतिहासिक समय और ग्रामीण वातावरण का जो परिवेश चुना है, उनका यथार्थ यही है, जिसका प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास की संवेदना तो सातवें दशक से पूर्व की कथा संवेदना है पर लेखक जिस संवेदना को लेकर चला है उसकी संयोजना और उसके निर्वाह में लेखक को सफलता मिली है। इस सबकी सफल अभिव्यक्ति वह कर सका है।

हिचकतीं (द्रष्टव्य गिरिराज किशोर की 'चूहे' तथा दूधनाथ सिंह की 'सब ठीक हो जायेगा' की स्त्री और 'फ्राक वाला घोड़ा और निकर वाला साईस' (गिरिराज किशोर) की प्रेमी स्त्री अपने प्रेम व्यापार में पूरी तरह स्वतंत्र हैं। पति की उपस्थिति उनके लिए उपेक्षा की चीज बनी हुई है।

१. 'गौरी घूंघट मारि रही, भीतरई-भीतर आँसून की धार।'

२. वही ६९।

३. "कौन ? . . .गौ. . .री ?" "हाँ. . .अब मैं सबरौ रिस्तौ-नांतौ तोरिकैं आई ऊँ। . . .अब मैं सब के सामने खड़ी है कैं, कह सकुं—मेरौ जो कछू ऐ बु स्यामैं।" वही पृ० ९१।

४. वही, पृ० ९१।

५. "स्याम की बाँह में गोली लगी पर बाय तौ चिन्ताई गौरी की। . . .स्याम ने गौरी कूं हिलायौ-डुलायौ". . ."स्याम ने देख्यौ—गौरी की पसली गोली छिदी भई परीं।" (वही, पृ० ९९)।

६. गौरी से अंतिम मिलन के बाद स्याम गौरी की समाधि पर अपने हाथों से सींचे पौधे (रायबेल) का फूल चढ़ाता है। और वहाँ चबूतरे पर घण्टों बैठे-बैठे गौरी की यादों में खोया रहता है। (द्रष्टव्य ९९-१००)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसके अतिरिक्त उपन्यास की कुछ शैली-शिल्प गत उपलब्धियाँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

"ब्रिजबासीन के हिरदै कौ तार-तार बज उठै पूँछरी के लौठा कौ नाम सुनिकैं।"[१] जैसी काव्यात्मक उक्तियों के चाहे जितने उदाहरण जुटाए जा सकते हैं। छोटे और सूचीपरक दीर्घ विवविधान, सुन्दर अप्रस्तुतों तथा विपर्यय की प्रविधियों द्वारा भाषा को प्रेषणीय एवं सौंदर्य तात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बनाया गया है। कहीं कहीं विंदु रेखाओं का प्रयोग विंब निर्माण में किया गया है।[२] गौरी की प्रेमल मनोदशा की अभिव्यक्ति के लिए छोटा-सा विंब प्रस्तुत हुआ है; "होट म्हौं बनायकैं इठलामती भई, होंट गोल करिकें गौरी नैं बतायौ।"[३]

सूची शैली में दीर्घ विंब-निर्माण के उदाहरणों में गौरी के इस सौंदर्य-विंब को देखा जा सकता है—

"पीछैं ते वानैं गौरी बैठी देखी। लत्तान पैं कछू गीलौपन हो।

वारन पैं ऊ एक-आद पानी की बूंद मोती की तरह चमकि रही और गोल-गोल बाँह—नई धुबी भई धोबती, मन बड़ौ आकर्षित भयौ।....गौरी को मुख—जैसे कमल सरोवर में डुवाय कैं निकास्यौ होय—कै चन्द्रमा कूं अमृत धोयौ होय।"[४]

इसी प्रकार अप्रस्तुतों में कुछ उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते हैं।

प्रस्तुत	अप्रस्तुत
१. सुंदर पर अविवाहित गौरी की चञ्चल अल्हड़ता	१. (क) चञ्चल हिरनी और (ख) वन की हिरनी जो संकोच हीन हो।[५]
२. प्रेमिका गौरी की शांति और आनंददायक हँसी	२. निर्मल फुहारा[६]
३. इस हँसी की प्रतिक्रिया स्वरूप मिला आनंद	३. इस फुहारे में स्नान का आनंद[७]

आनंदानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए संजोये इस अप्रस्तुत की यह संरचना—एक ही अप्रस्तुत में गुंफित दो अप्रस्तुत अनुभूति के उत्कर्ष के स्तरों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

---

१ वही, पृ० ११

२. 'घनपत...थैला...पुलस।' विंदु रेखांशों के इर्द-गिर्द रखे इन शब्दों से लेखक एक पुराना विंब : मेले में घनपत का मिलना, छुपाने के लिए थैला देना, पुलिस का आना और फिर स्याम द्वारा खेला गया नाटक, थैले को छुपा लेने में प्राप्त सफलता; का विंब उभारना चाहता है।

३. वही, पृ० १३।

४. वही, पृ० १२।

५. वही।

६.७ "गौरी हँसी—हँसी तो हँसी, स्याम बा हँसी के निरमल फुहारे में इस्नान करि रह्यो" वही, पृ० १३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दुःखद अनुभूति में लाचारी का अनुभव=समुद्र में उठती लहरों में व्यंजित मिलता है।[१]

सबसे अधिक प्रयोग क्रियाओं के विपर्यय द्वारा किये गए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—"स्याम तौ कौतुहल में बूड़ि रह्यो।"[२] तथा—

"अंग-अंग चंचल, सो चंचलता ने स्याम के हिरदे कूं और मथि दयौ।" (जैसे प्रचलित प्रयोगों के अलावा कुछ और अच्छे प्रयोग भी मिलते हैं जैसे— "एक वीस बाईस वर्ष कौ छोरा अपनी रस्ताऐं समेंटतु लम्मे-लम्मे डग धरिकैं—चल्यौ जाय रह्यो ओ।"[३] इसमें रास्ता नापने के प्रचलित प्रयोग के स्थान पर रास्ता 'समेटना' क्रिया का प्रयोग ब्रज का आंचलिक प्रयोग है। इसी तरह उत्सुक आँखों में 'रस का झांकना' का सुन्दर प्रयोग है,[४] और आंखों के अंदर झाँकते इस रस को पीने का विपर्यय लेखक की गहन संवेदना के साथ उसकी सफल शिल्प मर्मज्ञता का परिचय देता है। यहाँ उत्सुक 'श्याम' को बताकर आंखों के साथ मानवीय विशेषण 'उत्सुक' का प्रयोग विशेष है। तथा आँखों में किसी रस का 'झाँकना' शब्द से मानवीकरण और फिर उस रस को पुनः पीने द्वारा मानवीकरण से फिर वस्तुकरण के प्रयोग से ही भाषा का सौंदर्य तात्त्विक मूल्य बढ़ गया है। इन प्रयोगों में बिम्बात्मकता भी है—"पर जैसे काऊ ने वाके मन की जि वात झट्ट मसल डाली होय।"[५] में अरूप शब्द 'बात' के साथ 'मसल' डालने की क्रिया का संयोग करने में विपर्यय के साथ-साथ मसलने की क्रिया का बिंब मन पर विशेष प्रभाव डालता है।[५]

इस प्रकार भाषा के स्तर पर किए गए इन प्रयोगों द्वारा लेखक अपनी अभिव्यक्ति सुस्पष्ट बनाने में पूर्ण सफल प्रतीत होता है।

'पूंछ री कौ लौठा' है—ब्रज का एक देवता। ऐसा देवता जिसका नाम सुनते ही ब्रजवासियों का हृदय मचल उठता है दर्शन के लिए। उपन्यास में 'पूंछरी' तो है—'गौरी' जो सारे तूफानों के बीच 'पूंछ' की तरह से 'स्याम' से जुड़ी हुई है। और उसका 'लौठा' (देवता) है—'स्याम'। इन दोनों का प्रेम, प्रेमसूत्र की योजना और परिणति परिस्थितियों के कुहरे में रंगीन चीख का बनकर प्रस्तुत हुई है। दोनों घायल हैं। खून की धाराएँ वह रही हैं। खून की वहती धाराओं के बीच गौरी का 'स्याम' से प्रेमालाप कुछ इसी प्रकार की अनुभूति दे जाता है। साथ ही आज के युग में ब्रजभाषा में उपन्यास लेखन का यह प्रयोग, कुहरे में भाषागत नवीन और आंचलिक क्रान्तियुक्त पदन्यास है जो प्रयोग-निर्वाह-स्तर पर दुरूह तो है पर जैसी कि उपन्यास की उपलब्धियां हैं. उसे देखते हुए आकर्षक भी है। कुल मिलाकर उपन्यास पठनीय और लेखन स्तर पर सराहनीय एवं अनुकरणीय प्रयास है।

---

१. गौरी तौ जैसे अपने घर मेंई आयकैं घिरि गई। हिरदे में ते लाचारी कौ अनभव-समन्दर की तरैं उठतौ सो आँसून के रूप में बह जांते (वही, पृ० ६२)।

२. वही पृ० १२।

३. वही, पृ० ५।

४. "गौरी की भायेली देखि रहीं, जा मारै स्यामनेंऊ अपनी आँखि झपकी और आँखिन मेंतें झाकिबे बारे रस-भाव कूँ भीतरई पीकें बु गौरी कूँ सहज भाव ते देखिबे लग्यौ।" वही पृ० २१।

५. वही, पृ० २३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज काव्य में होली

⊙

कन्हैयालाल चंचरीक

ब्रजभाषा काव्य में होली वर्णन अत्यन्त मधुर और रसमय अंग है। प्रवन्धकाव्यों में यत्र-तत्र होली के प्रासंगिक वर्णन मिलते हैं पर ब्रजी के स्फुट काव्य में तो होली सम्वन्धी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। होली सम्वन्धी इन रचनाओं में जहाँ उच्चकोटि की साहित्यिकता के दर्शन होते हैं वहाँ कल्पना भी उत्कृष्टता पर दम भरती है और इनका एक आध्यात्मिक पक्ष भी है। सत्य तो यह है कि ब्रज का जनजीवन इन रचनाओं में कृष्ण-राधा और गोपियों के व्याज से चित्रित किया गया है। लोक-जीवन के सामान्य जाने-पहचाने रागरंग और होली की रंगरलियों को कृष्ण-गोपी और राधा की अठखेलियों में चित्रित करने का प्रयास ही ब्रजकाव्य का होली वर्णन है। होली के अवसर पर ब्रज में गायन-वादन और लोकनृत्य होते हैं, अवीर, गुलाल, उड़ाये और लगाये जाते हैं तथा रंगभरी होली खेली जाती है। इन सभी के वर्णन कवियों की चित्र विधायिनी लेखनी से सुन्दर वन पड़े हैं—

अष्टछाप के कवि **नन्ददास** जी ने रोरी, अवीर, गुलाल, चोवा और केसर से होली खेलते हुए किशोर और किशोरी को कितने रसविभोर रूप में चित्रित किया है, उनकी बाँकी झाँकी तो निहारिए—

आजु हरि खेलत फागु बनी।
इत गोरी रोरी भरि भोरी उत गोकुल कौ धनी॥
चोवा कौ ढोवा भरि राख्यो केसर कीच घनी।
अबीर गुलाल उड़ावत गावत, सारी जात सनी॥
हाथन लसत कनक पिचकारी ग्वालन छूट छनी।
नंददास प्रभु होरी खेलत मुरि मुरि जात अनी॥

कविवर **ध्रुवदास** जी ने ताल, मृदंग, डफ, वीन, और हुडक वाद्य वजाते हुए, गुलाल उड़ाते हुए, झटका पटकी करते और हो हो होरी गाते होली की मंडली का आनन्दोल्लास अपने पद में वर्णित किया है—

खेलत फाग अधिक छवि पावैं।
नवल किशोर किशोरी रंग भरे सुरंग सुगंध गुलाल उड़ावैं॥
ताल मृदंग हुडक डफ बीना सखी चहुँ ओर बजावैं।
लटकनि झटकनि पटकनि करननि बचननि हो हो होरी गावैं॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

यह रसीली होली तन को ही रंग से रसमय नहीं करती है अपितु मन भी इसमें रस विभोर हो जाता है, कृष्ण से नेत्र मिलते ही कृष्ण के रंग में रंग जाता है। श्री आनंदघन ने इसी भाव को होली की रचना में इस प्रकार व्यक्त किया है—

रसिक छैल नन्द कौ री नैनन में होरी खेले।
भरि अनुराग दृष्टि पिचकारी आन अचानक मेले॥
और कहाँ लगि कहौं सखी री सब विधि करत भावती केलै।
रूम झूम रसिया आनंद घन रिझे रिझे रस झेले॥

× × ×

जैसा जनजीवन में होता है वैसे ही कृष्ण और उनके साथी सीधे ढंग से होली नहीं खेलते। वे गोपियों की आँखों में गुलाल फेंकते हैं, आँखों की ओर ही रंग की पिचकारी मारते हैं। इस स्थिति में हुरियारिन की विवश दशा हो जाती है। श्री नागरी जी की गोपी कृष्ण से विनय करती हुई यह अचगरी करने को मना करती है—

लाल गुलाल हमारी अंखियन में जिन मारो जू।
बदन चन्द्रमा नैन चकोरी इन अंतर जिन पारौ जू॥

× × ×

कुंकुम रंग सो भर पिचकारी तकि नैननि जिन मारो जू।

ब्रज की स्त्रियां भी होली में अचगरी करने वाले पुरुषों को मजा चखा देती हैं।

कविवर पद्माकर की गोपियाँ कृष्ण को पकड़ लेती हैं, मनमानी करती हैं, खूब अबीर डालती हैं, मुंह पर गुलाल मलती हैं और व्यंग भरे शब्द भी कहती हैं कि फिर होली खेलने आना—

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मनकी 'पद्माकर' ऊपर नाथ अबीर की झोरी॥
छीनि पीताम्बर लै लकुटी सु विदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसकाय लला फिर आइयो खेलन होरी॥

होली के अवसर पर ब्रज की अबलाओं का सबल रूप उभर कर आता है, जब गलियों में होली का रागरंग मच रहा होता है और रंग गुलाल उलीचे जा रहे होते हैं तब उनका झुंड "होरी है होरी है" की ध्वनि करता है—

ठाकुर कवि के शब्दों में गोपियों की एक मण्डली द्वारा कृष्ण को घेरने का दृश्य देखिए—

दौरी लै गुलाल ब्रजबाल चारों ओरन ते।
होरी लाल होरी लाल होरी लाल होरी है॥

ठाकुर कवि की एक ग्वालिन ने तो कृष्ण को केशर की कीच में ही सराबोर कर दिया—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रंग सों मांच रही रस फाग फुरी गलियाँ त्यौं गुलाल उलीच में।
जाय एकैं न इतै न उतै सो घिरे नर नारि सनेह रंगीच में॥
'ठाकुर' ऐसो उमाह मचो भयो कौतुक एक लखीन के बीच में।
रंग भरी रस माती गुवालि गोपालहिं लै गिरी केसर कीच में॥

होली में कृष्ण की ही नहीं गोपियों की भी दशा दर्शनीय हो जाती है। रसखान की गोपी के शब्दों में—

खेलि होरी ब्रजगोरी का किशोर संग
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइगो।
कुंकुम की मार वा पै रंगनि उछार उड़े
बुक्का औ गुलाल लाल लाल बरसाइगो॥
छोड़ै पिचकारिन अमारिन विगोइ छोड़ै
तोड़े हिय हार धार रंग बरसाइगो।
रसिक सलोनो रिझवार रसखानि आजु
फागुन में औगुन अनेक दरसाइगो॥

कृष्ण और गोपियों की होली के वर्णन के अतिरिक्त लोक जीवन की होली के चित्र भी कवियों ने खींचे हैं। बिहारी कवि ने होली वर्णन करते हुए सौतिया डाह का चित्र खींचा है। नायक नायिका के दृगों पर पिचकारी से रंग डालता है किन्तु नायक की अन्य प्रेमिकाओं के नेत्र गोरोचन जैसे लाल हो जाते हैं...

छिरके नाह नवोढ दृग करि पिचकारी जल जोर।
रोचन रंग लाली भई तिय तिय लोचन कोर॥

होली ब्रज में मात्र हिन्दुओं का ही त्यौहार नहीं है, वर्ग और धर्म की दीवारें इस पर्व में कहीं आड़े नहीं आतीं हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख सभी परस्पर होली खेलते हैं और आनन्दोल्लास मनाते हैं, होली का केवल सांसारिक आनन्द और मनोरंजन का पक्ष ही नहीं है वरन इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है जो ब्रजभाषा के सूफी कवि शाहबरकत उल्लाह 'बेखी' के शब्दों में इस प्रकार है—

सुख सानी होरी हम देखी खेलत लालन के संग प्यारी।
पांच पचीस छाड़ के दौरी, ग्यान रंगन में बोरी सारी॥
ध्यान राग बाजो अनहद को, ब्रह्म जोत दीपे उजियारी।
परे मिहिरै कुंज में डारयो आवागमन सार पिचिकारी॥
लाल गुलाल अबीर दरस छवि देखत नाचत ज्यों मतवारी।
ऐसे खेलियै पेमी तन मन धन कीजे बलिहारी॥

होली के साथ कुछ लोक रीतियाँ भी बँधी हुई हैं। उनका वर्णन कवियों ने अपने काव्य में यथा-प्रसंग किया है—नन्ददास ने चाँचर के सम्बन्ध में लिखा है कि—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चाँचर देन लगी ब्रज वीथिन सुभग रंग उपजाय।
गावन लागी ग्वालिन गारी सुन्दर लाल लगाय॥

और भी—

चाँचर में चाँचर सौ चितवन नवल तियन के नैन

ब्रज की होली पारस्परिक अनुराग की द्योतक है, जिस नारी से होली खेली जाती है उसके लिए फगुआ देना पड़ता है जिसमें मिठाई, रवड़ी, पान, वस्त्र आदि आवश्यक हैं। कृष्ण द्वारा भेजे हुए फगुआ को गोपी ने सिर चढ़ा कर लिया है।

फगुआ कुँवरि कान्ह बहु दीन्हों।
प्रेम प्रीति करि माथै लीन्हो॥

इस प्रकार ब्रजकाव्य के होली वर्णन में कवियों ने जनता के द्वारा किये जाने वाले राग-रंगों को कृष्ण पर आरोपित करके अनेक भाँति से बहुविध वर्णन किये हैं। जो प्रेम और श्रेय बन गये हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा का सार्वदेशिक रूप

निशेन्दु ओझा

"ब्रजभाषा भाषा ललित कलित कृष्ण की केलि।
या ब्रजमंडल में उगी ताकी घर घर बेलि॥
ह्यहीं सों चहुँदिश विस्तरी पूरब पच्छिम देस।
उत्तर दक्षिण लों गई ताकी छटा असेस॥"

—राधाचरण गोस्वामी

भाषामणि ब्रजभाषा सुदीर्घ काल तक उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा तो बनी ही रही; किन्तु देश के अन्य भागों में भी इसका प्रभाव पहुँचा। सुदूर दक्षिण के द्रविड़ भाषा-भाषी प्रान्तों में भी ब्रजभाषा में रचनाएँ हुईं, पूर्व के आसाम-बंगाल आदि प्रदेशों ने भी इसके पल्लवन में अपना योग दिया, गुजरात महाराष्ट्र आदि पश्चिमी प्रदेशों ने भी ब्रजभाषा में कृष्ण के गुणों का गायन कर स्वयं को पुनीत बनाया। किम् बहुना समस्त भारत ने अपनी सात्विक भावना को ब्रजभाषा के माध्यम से व्यक्त कर कृष्ण परक रचनाएं कीं। हिन्दी की विविध उपभाषा और बोलियों के क्षेत्र में भी अपना पूर्ण सहयोग दिया। अवधी क्षेत्र ने भी ब्रजभाषा के साहित्य को समुन्नत बनाने में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अपना अमूल्य योगदान किया। नरोत्तम दास, चिन्तामणि, बेनी, भूषण, मतिराम, भिखारीदास, तोषनिधि, रसलीन, बेनी-प्रवीन, ठाकुर, चन्द्रशेखर वाजपेयी, आदि प्राचीन तथा महाराज रघुराज सिंह, बाबा रघुनाथदास, देवीप्रसाद राय 'पूर्ण', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', बचनेस मिश्र, अनूप शर्मा, हरदयालु सिंह आदि आधुनिक युगीन कवियों का ब्रजभाषा सेवा कार्य विदित है। बुन्देलखण्डी क्षेत्र के हरीराम व्यास, केशवदास, बिहारी, श्रीपति, रसनिधि, बोधा, ठाकुर, वियोगी हरि, नाथूराम माहौर, नवीवख्श फलक आदि का योगदान तो अविस्मरणीय है। कुमायूंनी और गढ़वाली के क्षेत्र के मोलाराम का 'गढ़ राजवंश' तो ब्रजी की अनुपम कृति है। भोजपुरी मैथिली और मगही क्षेत्र के कबीर, रघुनाथ, सेवक, गिरधरदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दीनदयालगिरि, अम्बिकादत्त व्यास, प्रेमघन, बलबीर, हरिऔध, प्रसाद, रामकृष्ण व्यास आदि का ब्रजभाषा काव्य भी श्रेष्ठ काव्य की कोटि का है। राजस्थानी क्षेत्र के सुन्दर दास, दादूदयाल, मीराबाई, छीहल, वृन्द, सुन्दर कुंवरि, चन्द्रकला बाई, नागरीदास, जोधराज आदि ने भी स्तुत्य ब्रजभाषा रचनाएँ करके ब्रजभारती के भंडार को आपूरित किया है। बंगाल के गोविन्ददास और ज्ञानदास जैसे कवियों ने ब्रजभाषा में पद्य रचनाएं प्रस्तुत की हैं। आसाम के शंकरदेव माधव देव, गुजरात के जेठालाल आदि तथा महाराष्ट्र के नामदेव

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

त्रिलोचन आदि की ब्रजभाषा रचनाएँ सर्वविश्रुत हैं। साहित्य भाषा के रूप में सुप्रतिष्ठित ब्रजभाषा के कालक्रम के कारण तथा अनुषंगी भाषाओं के साहचर्य एवं प्रभाव के कारण विविध रूप मिलते हैं जिन पर रचयिताओं की अपनी भाषाओं का प्रभाव सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होता है उसी कारण डा० ग्रियर्सन ने ब्रजभाषा को हिन्दी के अभिजात साहित्यिक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित प्रधानतम बोली (डाइलेक्टास प्रेसिपुआ) कहा है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में "ब्रजभाषा बारह सौ से अठारह सौ पचास ईसवी तक के सुदीर्घ काल के अधिकांश भाग में सारे उत्तरी भारत मध्य भारत तथा राजपूताना और कुछ हद तक पंजाब की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही। इस भाषा को वन्दनीय स्थान प्राप्त हुआ, आचार्य वल्लभ ने इसे 'पुरुषोत्तम भाषा' के नाम से अभिहित किया, जनता ने इस बोली को इतना आदर प्रदान किया कि इसे 'ब्रजभाषा' की उच्च पदवी मिली। हिन्दीतर प्रदेशों की इसी ब्रजभाषा सेवा का सामान्य परिचय नीचे दिया जा रहा है—

जम्मू और कश्मीर

दत्तकवि—जम्मू के राजा रणजीत सिंह के राजपुरोहित दत्तू ब्रजभाषा के सफल कवि थे। आप भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। दत्तू कवि ने महाभारत के द्रौणपर्व का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था। द्रौणपर्व का अन्य नाम 'वीर विलास' भी है। पुस्तक दोहे चौपाई में लिखी गई है। आपकी अन्य रचनाएँ 'बारहमाह' तथा 'ब्रजराजपंचाशिका' हैं। राजकुमार ब्रजराज की जयप्राप्ति सम्बन्धी कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

"राखे उपकारी अपकारी से निकारि डारे
जो तौ हितकारी तासों राखी रीत-प्रीत की।
मीतन को दीनी थिर संपदा अनेक भांत
संपा के समान कीनी संपदा अमीत की।
डूँगर जलंधर के भूत नत कन्धर हैं
मानस निदेश जाकी प्रभुता परीत की
बल्लभ किशोरी जन बल्लभ दया तैं 'दत्त'
देस देस दौरी चहूँ द्रोही रनजीत की॥"

आपने द्रौणपर्व का रचना काल निम्न प्रकार बताया है—

संवत वसु सीस वसु सीस सुक्ल पक्ष मधुमास।
वीरवर तिथ पंचमी, बख्यौ वीर विलास॥[1]

केशोदास—कश्मीरी ब्राह्मण थे तथा पटियाला के दरबारी कवि थे। आपने "वार राजा अमरसिंह की" नामक रचना में अमर सिंह और भटियारों के युद्ध का वर्णन लिखा है। इसमें महाराज के चरित्र

---

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० चन्द्रकांत बाली, पृ० ३२२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के अतिरिक्त 'हुकुमकौर' का चरित्र भी सुन्दर ढंग से अंकित किया गया है। रचना में कवित्त सवये छप्पय, भुजंगप्रयात आदि छन्दों का प्रयोग है। उदाहरण—

"कियो जुद्ध को साज चोंप सों गढ़ी बनाई।
कई सहस्र दल जुरे विषमता खोर दिखाई।
भयो इकट्ठो देस अधिक आजुथ संजुत्ते।
खड्ग बंदूक कमान तीर बरछी को सुत्ते।
जब कहते बात अभिमान की जाये कुछु संका नहीं॥
फोजदारपंज गये त्रास तिन नहिं मानौं।
कई बेर सनमुख जुद्ध तिनही सौं ठानौं।
अत भटी प्रबल प्रचंड भूमि भारथ मचायो।
दुस्मन को दल जीत कोट जिह कब्ज करायो॥
कवि के सौरास सुप्रकास जग तेजवंत जुग जियौ।
जस बाढ़य संसार में अमरसिंह साका कियौ॥"[1]

असम

शंकरदेव—शंकरदेव को असमिया साहित्य के आदि कवि का गौरवास्पद स्थान प्राप्त है। साथ ही वे असम में व्रजभाषा के अग्रदूत के रूप में भी सुख्यात हैं। आपका जन्म १४४९ ई० (१५०६ संवत्) में नोवगंग जिले के वारदोना ग्राम में हुआ था। शंकरदेव ने दो बार तीर्थ यात्राएँ कीं। इसी प्रसंग में वे व्रज में भी आए। आपने वरगीतों की रचना की है। डा० नेयोग के मतानुसार उन्होंने पहले व्रजभाषा में वरगीतों की रचना वदरिकाश्रम में की थी। उनका एक वरगीत प्रस्तुत है—

ध्रु०— "गोपिनी प्रान काहेनों गयो रे गोविन्द
हामु पापिनी पुनु पेखवो नाहिं आर मोहि वदन अरविन्द।"
पद—"कवन भाग्यवती, भयो रे सुपरभात आजु भेटन सुख चांदा।
उगत सूर दूर भयो रे गोविन्द भयो गोप बन्धु आन्धा।
आजु मथुरापुरे मिलन महोत्सव माधव माधव मान।
गोकुल के मंगल दूर गयो नाहिं बाजत बेनु विषान।
आजु जात नागरी भरि मुख पंकज मधुपाना।
हमारि बन्ध विधि हाते हरल निधि कृष्णा किंकर रस माना॥"

माधवदेव—शंकरदेव के शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से व्रजभाषा मे रचना की है। आप सूरदास जी के समीपवर्ती थे। आप व्रज में नहीं आए थे किन्तु फिर भी व्रजभाषा रचना में प्रवीण थे। आपकी व्रजभाषा शंकरदेव की अपेक्षा स्पष्टतर है। माधवदेव का एक "वरगीत" नीचे दिया जा रहा है—

---

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, : पं० चन्द्रकांत बाली, पृ० ३६८

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"हरि को नाम निगम कूँ सार।
सुमरि आदि अन्य जाति पावत भव नदी पार।
पापी अजामिल हरि को सुमरि नाम आभास।
अंतये कर्म को बन्ध छाँड़ि पावल वैकुण्ठ वास।
जानि आहे लोक हरि को नामे करु विसवास।
सकल वेद को तत्व कहिए पुरुष माधवदास॥"

गुजरात

ब्रज और गुजरात का परम्परागत घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक श्रीकृष्ण की लीलाभूमि है तथा दूसरी उसकी कर्मभूमि। भाषा पक्ष की दृष्टि से भी हिन्दी की विभाषाओं में ब्रजभाषा ही गुजराती के अति-निकट है। अतएव गुजरात में ब्रजभाषा काव्य लिखने की पुष्ट परम्परा रही है। गुजराती के आदिकवि नरसी मेहता इस परम्परा के अग्रणी हैं। उनके उपरान्त भालण, विष्णुदास, मेहा, केशवदास, कृष्णदास, सायांझूला, अखोजी, मेहरामणसिंह, दलपतराय, वंशीधर, ब्रह्मानंद, दयाराम, दलपतराम डाह्याभाई, दीन दरवेश, कुंवरजी वैद्य आदि शताधिक कवियों की अजस्र श्रृंखला साम्प्रतिक युग तक चली आ रही है। वर्तमान युग में भी गोविन्द गिल्लाभाई जैसे रससिद्ध कवि गुजरात में ब्रजभाषा के भंडार को भरते रहे हैं। कविवर ब्रह्मानन्द (१७७२-१८४९) की एक रचना नीचे दी जा रही है—

"नारी से जमपुरि निकट, सबै निकट तन साज।
कुबुद्धि निपट अन्तर कुटिल, नख शिख कपटन लाज॥
नख शिख कपट न लाज, झपट ले जात नरन कूं।
हिम्मत बल हर लेत, देत संताप जरन कूं॥
भाखत ब्रह्मानन्द विबुध जन जुओ विचारी।
सबै विकट तन साज, निकट जमपुर से नारी॥"

बिहार

ब्रजभाषा के साहित्य भंडार को भरने में बिहार का स्थान भी बहुत महत्वपूर्ण है। बिहार ब्रज-भाषा की सेवा अनेक शतियों से करता रहा है। सर्वश्री सोन कवि, कृष्णकवि, दरिया साहब, दलेलसिंह, धरणीदास, प्रबलदास, भूधर दास, मंगनी राम, रामपति, लोचन, हलधर दास, अचल कवि, अजब दास, ईशकवि, उमानाथ, कृष्णकवि, गुमानी तिवारी, चन्द्रकवि, चन्द्रमौलि मिश्र, दयानिधि, दिनेश द्विवेदी, मानिक चन्द दुबे आदि कवियों ने ब्रज भारती को अर्चना पुष्प चढ़ाये हैं। श्री चन्द्रमौलि मिश्र की एक रचना नीचे प्रस्तुत है—

"काम कली सी लली वृषभानु की, संग अली के हुती जहाँ वैसी।
आये तहाँ बनि नंद कुमार, तिन्हैं लखि मार की ज्योति अनैसी॥
मौलि धरे ब्रजमौलि सो मोक्ति, लवंग की मंजरी मंजुल तैसी।
देखत राधिका के मुखचंद, गहिं दुति है दिन चंद की तैसी॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

तमिलनाडु

ब्रजभाषा की जनप्रियता का ज्वलन्त उदाहरण तमिलनाडु प्रदेश में भी ब्रजभाषा के माध्यम से रचना किया जाना है। शिवाजी के पुत्र ने तंजौर को अपनी राजधानी बनाया था। वे साहित्यिक प्रवृत्ति के थे। उन्होंने "राधावंशीधर विलास" और "विश्वातीत विलास" दो यक्षगानों की ब्रजभाषा में रचना की। ये यक्षगान सरस्वती महल ग्रंथालय, तंजौर में अभी विद्यमान हैं तथा १९६१ में मुद्रित भी हो चुके हैं। यक्षगान नाट्यनृत्य (डान्सड्रामा) होते हैं।

विश्वातीत विलास की देवनागरी पाण्डुलिपि में नांदी के उपरान्त सूत्रधार के वचन निम्नप्रकार हैं—

"सूत्रधार वचनं। अइसे नाट्यारंभ करें। विश्वातीत विलास नाटक सुकवि विरचित सो नाटक इस रंगभूमि बीच गोलरी भाषा भूषित हम नृत्य कर चाहे। याकें सकल विघ्न हरन को कवियिष्ठ देवता स्तुति करे देखो।"

इन यक्षगानों में ब्रजभाषा आधारिक भाषा है तथा उसमें दक्षिण में प्रयुक्त तात्कालिक हिन्दी की शब्दावली एवं प्रयोगों का भी समाहार है। सुदूर दक्षिण में ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग किया जाना निश्चित ही भाषा के प्रति जनभावना की अभिरुचि का प्रदर्शक है।

कर्णाटक

दक्खिनी के कुछ कवियों ने ब्रजभाषा का स्फुट प्रयोग किया है। उनकी कतिपय रचनायें तो बड़ी मनोहारी बन पड़ी हैं। इब्राहीम आदिल शाह के 'नवरस' को तो ब्रजभाषा का ही ग्रन्थ कहा जाता है। अली आदिल शाह द्वितीय की रचनाओं में ब्रजभाषा का गहरा प्रभाव है। उनका कविनाम 'शाही' था। शाही की रचना 'कुलियात शाही' का एक उदाहरण नीचे अंकित है—

"बड़े बड़े नैनन तें, थोड़े थोड़े सैनन सों
भरे भरे बैनन तें कहै मोसों बात।
खड़े खड़े देखन में चल चल केनन सों
हँसि हँसि लाज करे मुड़ि मुड़ि जाति है।
गोरे गोरे दंडन में कारे कारे फूँद सोहैं
आँचर की ओट गात धर के लजात हैं
पेखत मदन रस पेय को समुंदर करि
जहाज लाज मोती भर ल्यात है॥"

केरल

केरल के 'स्यमंतकम्' काव्य में हिन्दी और ब्रजभाषा की शब्दावली का प्रयोग, हिन्दी मलयालम कोश की ताड़पत्र पर लिखित रचनाओं में हिन्दी और ब्रज की शब्दावली का उल्लेख तथा कविवर रामवर्मा 'स्वाति तिरुनाल' की रचनाओं आदि से ज्ञात होता है कि सुदूर प्रदेश केरल में भी ब्रजभाषा को साहित्यिक माध्यम के रूप में विद्वानों ने अपनाया था। "स्वाति तिरुनाल" की एक रचना नीचे दी जा रही है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"आये गिरधर द्वारे मेरे जोरी।
जंजन अधर ललाट महावर नयन उनींदे चल आये।
रमन समय प्रभु छलबल करिकै कौन तिया कूँ बिरमाये।
बिन गुन माल बिराजत हिय में दृग गलैबया सुख पाये।
सोला सिंगार करि फूलन के हार लिए विविध सुगन्ध से मन भाये।
बैठी थी मो मन के साथी कुमुद सरोवर कुम्हलाये।
सुख के कारन दुख कै निवारण मधुवन मुरली धुन गाये।
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी कोटि मयन तन छविछाये॥"

पंजाब

ब्रज प्रदेश का निकटवर्ती होने के कारण पंजाब में ब्रजभाषा की कविता प्रचुर मात्रा में हुई है। इसका प्रमुख कारण सिख गुरुओं तथा पंजाब स्थित राज्यों के नरेशों द्वारा ब्रजभाषा के रचनाकारों को प्रश्रय देना भी है। उन्होंने तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप अन्तर्राज्यीय भाषा ब्रजभाषा को यथोचित मान्यता दी, एवं ब्रजभाषा के विद्वानों की उपस्थिति से अपने दरबारों को अलंकृत किया। वहाँ के मतों और सम्प्रदायों के प्रवर्तकों, प्रचारकों, गुरुओं तथा अनुयायिओं ने भी अपने विचारों की अभिव्यक्ति का साधन ब्रजभाषा को ही बनाया। श्री चन्द्रकान्त बाली ने 'पंजाब का हिन्दी-साहित्य' में कृपाराम (हिततरंगिनी) गुरुगोविन्दसिंह, बाबा लाल, सहजाराम, टहकन, भाई मनीसिंह, अमृतराय, अणीराय, संत रेण, सन्तदास, छिब्बर निचिल दास, गुलाबसिंह, हरीराम, सुखसिंह अमीरदास, मुकुन्दसिंह, रसपुंज, रलहरि संतोषसिंह, बुधसिंह, साहब सिंह उमादास, तोषहरि, वसन्तसिंह कीरतसिंह, हरनाम, फतेसिंह, लालसिंह, वंशीकवि, मैन कवि, दलसिंह, दित्तेराय, गणेशसिंह, नारायण स्वामी, राजा टोडरमल, चतुरदास, प्रह्लादकवि, जयकृष्ण, अनेमानम सरस्वती, जयकृष्ण भेजनी, लछीराम, तनसुखराम, गिरधारी, घन्नसिंह, मंगलकवि, आलमशाह, सुन्दरकवि, ग्राहनदास, हरदयाल, दाशमशाह, किशोरीदास, जयसिंह, गंगाराम, रामदास, मोहरकवि, अद्वैतानन्द, ब्रह्म, जैसिंह सैनी रामसिंह रंगीला, सेवासिंह जाट, मूलसिंह लहरी, भावानसिंह, बनूडी, निहालसिंह, प्रभानिधि, महाराज फतेसिंह आदि के नाम दिए हैं।

श्री अमीरदास कृत एक छन्द नीचे दिया जा रहा है—

तरनि तनूजा तीर सुखद समीरधीर
खगन की भीर हियौ हरि हरखत है।
मंजुल निकुंज में गुंजनि दुरफेन की
आनन्द के पुंजनि पराग परखत है।
बांकी बल्लरीन को बितान सो बिलोकियत
परम पुनीत अहिम्न करखत है।
मौन मन भाइ तहाँ अमीर सुखदाई जहाँ
स्याम घन चपला, से रस बरसत है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

महाराष्ट्र

भानुदास—आपका जन्म १५५५ वि० है। आपने पंढरपुर के विट्ठल की मूर्ति की स्थापना की आप भक्त हृदय थे। आपकी एक प्रभाती नीचे दी जा रही है—

"उठहु तात मात कहे रजनी को तिमिर गयो,
मिलत बाल सकल ग्वाल सुन्दर कन्हाई।
जागहु गोपाल लाल जागहु लाल जननी बलि जाई।
संगी सब फिरत बन, तुम बिनु नहिं छूटत धेनु
तजहु सयन कमल नयन, सुन्दर सुखदाई।
मुँह पै पट दूर कीजो जननी को दरस दीजो।
दधि खीर मांग लीजो खांड़ औ मिठाई।
झपत झपत श्याम राम सुन्दर मुख तव ललाम।
थाती की छूट कुछु भानुदास भाई॥"

इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में तो व्रजभाषा में रचना करने वालों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है जो आधुनिक काल तक अजस्रभाव से प्रवाहित रही है।

आन्ध्र

आन्ध्र के निवासियों ने तो वस्तुतः व्रजभाषा को अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी वल्लभाचार्य जी स्वयं आन्ध्रनिवासी थे उनके वंशजों ने और उनके सम्प्रदाय के अनुयायियों ने व्रजभाषा साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए जो अथक प्रयत्न किये वे सर्वविदित हैं। पद्माकर जैसे रससिद्ध कवि देने का श्रेय आन्ध्र को ही है।

उक्त प्रमाणों के आधार पर इसी निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि व्रजभाषा को सार्वदेशिक स्नेह प्राप्त था जो संस्कृत के उपरान्त मात्र व्रजभाषा को ही मिला है हिन्दी भी आज तक उसे प्राप्त करने में असमर्थ रही है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजके तीन प्रमुख रसियाकार

डा० वसन्त यमदग्नि
एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रज में प्रचलित लोक गायकी की रचनाओं को छन्द विशेष अथवा गायन-परम्परा विशेष के परिधान में आल्हा, ढोला, निहालदे, चौबोला, लावनी, रसिया, लोकगीत आदि के विविध रूपाकारों में प्रसिद्धि प्राप्त है। इन रचनाओं का सीधा सम्बन्ध लोक-जीवन से है। लोक-जीवन से संपृक्त होने के कारण वे लोक-मानस में इस प्रकार घुल-मिल गयी हैं कि आज इसके मूल लेखक का परिचय पाना भी प्रायः दुष्कर हो गया है। प्रस्तुत निबन्ध में ब्रजभाषा के कतिपय ऐसे गीतकारों (रसियाकारों) का उनकी रचनाओं के माध्यम से साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनकी रचनाएँ आज उनकी निजी सम्पत्ति न रह कर ब्रज की लोक थाती बन चुकी हैं।

ब्रज की लोकधुनों पर गेय रचनाओं की रचना करने की प्राचीन परम्परा रही है। महाकवि सूर, कुम्भनदास, नन्ददास, हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट, हरिव्यास वेदाचार्य, चन्दसखी, चाचा वृन्दावनदास नागरी दास, गोस्वामी पुरुषोत्तम, ललित किशोरी नारायण स्वामी आदि की भक्ति-परक रचनाएँ इस दिशा में विशेष अवलोकनीय हैं। आधुनिक काल में भी ज्ञात-अज्ञात अनेक गीतकार इस परम्परा का निर्वाह करते परिलक्षित होते हैं। नन्दगांव-बरसाना के छोटे लाल, विशनदास, लछीराम, धर्मसिंगा के श्यामा सखी, गोवर्धन के गुनीजन, घासी राम, छीतरराम, कमई के स्वामी मेंवश्याम, छाता के स्वामी, कुँवरपाल, मथुरा के नत्थीलाल, प्यारेलाल, दाऊजी के श्याम, भरतनी, जगन, डींग के चुन्नीलाल, वृन्दावन के कृष्ण गोपाल दीक्षित, जादौ उस्ताद, पं० बिहारीलाल सीतानाथ वाले, रामचन्द्र, हरी उस्ताद, रमेश गौतम, बाबा प्रेमानन्द, जयराम देव, कल्याण प्रसाद किशोरी, माट के सनेहीराम, आगरा के बाबूलाल, लाचारी राम, सरीधी के पातीराम, जाबरे के शिवराम, हाथरस के लल्लू भजना, चिरंजी, पन्नालाल तथा खिच्चो आटेवाले, बाबूराम शर्मा, भरतपुर के पतोला नत्थन पुरोहित, छेदालाल चतुर्वेदी, कासगंज के जानकी प्रसाद आदि से अनेक नाम इस परम्परा में परिगणित किये जा सकते हैं, जिन्होंने ब्रज की लोकधुनों के माध्यम से अपनी रचनाओं को संवारा-निखारा है। यहाँ हम ब्रज के तीन रसियाकारों के साहित्यिक-सौष्ठव पर एक दृष्टि-निपात करते हैं।

घासीराम—लगभग ७०-८० वर्ष पूर्व गोवर्धन जिला मथुरा में घासीराम नाम से दो महानुभाव हुए हैं, जिनकी ख्याति रसिया-रचनाकार के रूप में विद्यमान है। इनमें एक घासीराम बड़े बाजार, गोवर्धन के निवासी थे और दूसरे का सम्बन्ध गोवर्धन के दस बिसा मुहल्ला से था। प्रथम घासीराम स्वयं रसिया लेखक थे; परन्तु द्वितीय घासीराम रसिया लेखक न होते हुए भी अपने अखाड़े के गुरु होने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के कारण रसिया लेखक के रूप में ख्यात थे। घासीराम अखाड़े के समर्थ रसिया लेखक वस्तुतः छीतरमल थे, जो अपनी रचनाओं में श्रद्धान्वित होकर घासीराम की छाप दिया करते थे।[1] इनके रसियाओं की विषयवस्तु प्रायः कृष्णलीलाओं से सम्बद्ध थी, जिसके कारण आधुनिक रासमंच पर भी इन रचनाओं की अत्यधिक उपादेयता है। संगीत की तुला पर इनकी सभी रसिया-रचनाएँ खरी हैं। उदाहरणार्थ दान-लीला से सम्बद्ध रसिया का एक अंश यहाँ उद्धृत है—

गोपी वचन—

इकली घेरी बन में आय श्याम तैंने कैसी ठानी रे, कैसी ठानी रे श्याम तैंनें०।
श्याम मोय वृन्दावन जानौं, लौट कैं बरसाने आनौं मेरी कर जोरे की मानौं।
जो कहूँ होय अबार, लड़ैं घर ननद जिठानी रे, कैसी ठानी रे श्याम तैंनें०।

कृष्ण वचन—

दान दधि कौ तू दैजा मोय, दान बिन (ग्वालिन) जान न दऊँगो तोय
नहीं तकरार बहौत सी होय।
जो इनकार करै तेरी होयगी ऐंचातानी रे, कैसी ठानी रे श्याम तैंनें०॥

घासीराम के गीतकार की उपर्युक्त पंक्तियाँ गोपीकृष्ण के निश्छल हृदय की सार्थक अभिव्यक्ति हैं। इनमें भाषा की प्रवाहमयता के साथ सम्वादोचित पटुता एवं लाघव की व्यवस्था है। 'श्याममोय वृन्दावन जानो' शब्दावली में यदि गोपी की एक लाचारी है तो 'दान दधि कौ तू दै जा मोय, दान विन जान न दऊँगो तोय' में श्याम का दृढ़ संकल्प है। 'ऐंचातानी' शब्द-प्रयोग से तो गीतकार ने उस समस्त दृश्यावली को ही समुपस्थित कर दिया है, जहाँ एक ओर कृष्ण खड़े गोपियों से दधि दान माँग रहे हैं और दूसरी ओर गोपियों का समूह अपनी लाचारी व्यक्त करता किंकर्तव्य विमूढ़-सा अस्थिर बना रहता है। यही तो लोककवि की चित्रविधायिनी क्षमता का चमत्कार है।

शब्दों के प्रयोग में सुकवि घासीराम की लेखनी अत्यन्त पटु है।

जसोदा सुनि भाई! तेरे लाला नैं माँटी खाई।
अद्भुत खेल सखन संग खेल्यौ, इतनौं सौ माँटी कौ डेल्यौ।
तुरत श्याम ने मुख में मेल्यौ, जाने गटक गटक गटकाई॥
जसोदा सुनि०

घासीराम जी की उपर्युक्त पंक्तियों में माँटी खाते हुए श्याम का जहाँ रूप-चित्र उभरता है, वहाँ माँटी के धीरे-धीरे कण्ठ से नीचे उतरने (गटकने) का एक ध्वनि चित्र भी श्रवणगोचर होता है। इसी रसिया की अन्य पंक्तियों में—

माखन कूँ कबहुँ नाँय नाँटी
क्यों लाला तैंने खाई माँटी

---

१. 'घासीराम नाम कौ यश कछु छीतर मल नैं गायौ" : रसिया ब्रजविहार, पृ० ३२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धमकावै जसुदा लै साँटी
जाय नैक दया नाँय आई ।।जसोदा सुनि०

रेखांकित शब्दों का एकत्र प्रयोग संगीतात्मकता हेतु उचित नाद-सौन्दर्य की सृष्टि तो करता ही है, साथ ही ब्रज के उस सहज निश्छल वातावरण का दिग्दर्शन भी कराने में समर्थ होता है, जहाँ माता यशोदा और उनके बालकृष्ण ब्रजांगनाओं के बीच बिना किसी औपचारिकता के व्यवहार करते हैं।

शब्दों के चयन में कुशाग्रबुद्धि इस लोक-गायक के रसियों की भाषा सरलतम होते हुए भी भाव-सम्पदा के वहन में अत्यन्त गम्भीर है। श्री कृष्ण की ब्रजलीलाएँ इन्होंने रच-पच कर गायी हैं। निकुंज लीलाओं की छद्म-परिकल्पना में इनके रसिया एक लघु प्रबन्ध काव्य का सौरस्य ही प्रदान कर देते हैं। विविध छद्मों की परिपोषक मालिन, रंगरेजिन, लिलिहारिन, सुनारिन, एवं जोगिन आदि निकुंज लीलाओं से सम्बद्ध इनकी विभिन्न रसिया-रचनाएँ आज भी लोक-कण्ठ की अपनी निधि हैं। श्री कृष्ण की विविध लीलाओं के अतिरिक्त गिरिराज महिमा, गोकुल-वृन्दावन महिमा, ब्रज परिक्रमा भक्त चरित वर्णन एवं साधारण जीव विषयक चेतावनियाँ इनके रसियों के अवान्तर विषय हैं।

सनेही राम

आधुनिक काल के रसियाकारों में सनेहीराम जी की रसिया-रचनाएँ अपनी विशिष्ट स्वर लहरी एवं भाव-सम्पदा के कारण लोक स्तर पर अत्यधिक ग्राह्य हैं। कर्म से किसान किन्तु स्वभाव से परम भागवत सनेही सनेहीराम जी का सम्बन्ध मथुरा जिले की माँट तहसील से है। प्रतिदिन वृन्दावनस्थ श्री विहारी जी महाराज के दर्शन करना और उनकी विविध लीलाओं का गान करना इनकी दैनिक चर्या का अभिभाज्य अंग था। इनकी रसिया-रचनाओं में भाव का एक विशिष्ट संगुम्फन होता है। अनुभूति की तीव्रता इनमें बरबस पदार्पण करती प्रतीत होती है। इनकी समस्त रचनाओं में यद्यपि श्रीमद्भागवत के कथासूत्रों को ही अनुस्यूत किया गया है, तथापि इनमें रंग सनेही राम जी की मौलिक, प्रतिभा के बल पर ही भरा गया है। उदाहरण के लिए मृत्तिका भक्षण लीला से सम्बन्धित इनकी रसिया-रचना का एक अंश द्रष्टव्य है—

नाहीं करी हमनु बहुतेरी ज्या की समझ न आई
तेरे लाला नें ब्रज रज खाई, सुनि मैया री ।।टेक।।
बन में अकेलौ खेलै ग्वालन कौ छोड़ि साथ,
कोऊ देइ गारी जौर कोऊ कूँ चलावै लात,
दाऊ ते कहत तेरी कबहुँ न मानूँ बात जी ।।
सुनि मैया री ।।टेक।।

माता के समक्ष ग्वालबालों द्वारा श्याम की शिकायत हुई परन्तु पुत्र स्नेह में निमग्न मातृ-हृदय ने उसे अनसुना कर दिया। फिर क्या था, सनेहीराम जी की मौलिक कल्पना ने स्थिति को अधिक गम्भीर बनाने के लिए घटना के गवाहों को भी उपस्थित किया। वे कहने लगे—

अचक अचक हम जौरें ते निहार्‌यौ जाइ
हाथऊ में डेल श्याम बैठ्‌यौ बैठ्‌यौ माँटी खाइ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हमनैं कही कै तेरी मैया तें कहिंगे जाइ
जबइ करतु लराई ।। सुनि मैया री ।।टेक।।

गवाहों ने देखी बात कही। इस पर भी माता यशोदा ने जब यह सुन लिया कि उसका लड़का श्याम अब उसकी अपनी भी अवहेलना करने लगा है तब माता के सहज अहं का उद्‌बोधन भला क्यों कर रुक सकता था। सभी स्थिति बदल गयी और तुरन्त ही ब्रजरानी अपने हरि से पूछ ही जो बैठी—

सुनत ही माँटी कौ नाम ब्रजरानी दौरी आई।
पकरि हरी के हाथ, कैसें तैंने माँटी खाई।
मैंने समझायों बौरे तेरी समझ न आई जी ।।तेरे लाला नैं।।

सखाओं की शिकायत और माता यशोदा की ताड़ना फिर भला चंचल बालकृष्ण क्यों न कोई बहाना बनाते। गीत आगे बढ़ता है—

ठुनकि ठुनकि तुतलाइ कैऊ बोले श्याम।
मैंने नाएँ माँटी खाई नाहक लगायौ नाम ।।
दिये हैं सिखाय ग्वाल, दाऊजी के किये काम।
झूठी आनि भिड़ाई ।। तेरे लाला नैं।।

श्याम के तोतले बोलों को सुनकर मातृ-हृदय पसीज गया। श्याम सुन्दर को भी अपनी बिगड़ती बात बनती नजर आई। फिर भला वे चुप क्यों रहते? कहने लगे—

मैया तेरे आगें बोलैं नाँय बन में दिखामैं जोर।
संग हू के ग्वाल बाल दाऊजी की होंय ओर।
अपनी बडाई करें मोते कहैं आयौ चोर जी ।।

इतना ही नहीं, श्री कृष्ण अपनी सफाई के साथ-साथ बलदाऊ पर प्रत्यारोपण भी लगाते हैं। सनेही राम जी ने इन्हें इस प्रकार शब्दायित किया है—

बन में अकेलौ मोइ छोड़ि देइ बलदाऊ।
बोलि लेइ ग्वाल-बाल संग नाय राखै काऊ।
फेरि डरपावै ज्या बन में ते आयौ हाऊ।
ज्या की करति बड़ाई ।।तेरे लाला नैं।।

कृष्ण की ओर से स्पष्टीकरण तो हुआ परन्तु माँ से कृष्ण बलराम के स्वभाव छुपे नहीं थे। सम्भवतः इसीलिये उन्होंने कहा था—

साँचौ बलराम मेरौ झूठ हू न बोलि जानें।
तू तौ है लबार कृष्ण तेरी बात कौन मानें।
म्हौंड़ौ तौ दिखाइ कहाँ ते सीख्यौ है तू माँटी खानो जी ।।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

माता के इस कथन पर कृष्ण अपने मुखारविन्द को खोलते हैं और सृष्टि का सम्पूर्ण वैभव उजागर हो जाता है।

सनेही राम जी का मूल स्वर भक्तिमय है परन्तु यह भक्ति शान्तरस की भक्ति न होकर ब्रजभाव के अनुकूल सख्यभाव की भक्ति है जहाँ उनका कवि अपने आराध्य श्याम को भी सुनाते नहीं चूकता। 'ओढ़ लई लोई तौ कहा करैगो कोई' प्रसिद्ध लोकोक्ति का आश्रय देते हुए से एक सांस में ही वाल्मीकि, सदना, नामदेव, मीरा, शबरी आदि के उद्धार पर व्यंग्य वाण छोड़ते हुए कह ही देते हैं—

मेरी बेर तानि कैं दुपट्टा सोये प्यारे श्याम।
देखत बाट तिहारी, मेरी टेर सुनौ गिरिधारी ।।टेक।।

और यदि श्याम यह कहैं कि सनेही राम की आवाज दूरी के कारण उन तक नहीं पहुंच पाती अथवा इस दूरी को तय करने के लिए किसी वाहन की अपेक्षा है, तव गीतकार की तार्किक बुद्धि उनसे प्रश्न करती हुई उनकी पोल खोलने के लिये भी तत्पर हो जाती है—

गज की अवाज कैसें द्वारिका में जाइ भई।
नंगे पाँय धायौ कहाँ ते असवारी गई।।
मति खुलबावै बात सब तेरी साँची भई जी।

श्याम की ओर से यदि अव सामर्थ्य के अभाव का वहाना हो तब भी कवि का स्पष्ट कथन है—

गोवर्धन धारी तैंने कालीनाथ नाथि लियौ।
द्वारिका के बासी मैंने तेरौइ सहारौ लियौ।।
गावैं सूरदास कैसें चेरौ अपनाइ लियौ।
लोग हँसैं दै तारी। मेरी टेर सुनौ गिरिधारी।।

संक्षेप में सनेहीराम जी के गीतों में जहाँ कथाप्रबन्ध की सुष्ठु नियोजना है, वहाँ भावाभिव्यक्ति का भी अनेकविध लाघव है। भाषा की प्रांजलता, शैली की ऋजुता एवं अनुभूति की तीव्रता इनके गीतों का आभूषण है, जो छन्द की विशिष्ट नियोजना द्वारा भावुक हृदय को सर्वदा आकर्षित करती रहेगी। इनके गीतों का वर्ण्य विषय यद्यपि पौराणिक ही है, परन्तु उसके प्रस्तुतीकरण में सनेहीरामजी का अपना वैशिष्ट्य है, जिसके लिए ब्रजभाषा रसियाकारों में वे सदा स्मरणीय रहेंगे।

स्वामी मेघश्याम

आधुनिक युग के रसियालेखकों में मेघश्याम जी का अग्रगण्य स्थान है। स्वामी जी के व्यक्तित्व में एक मस्त फक्कड़, और परिश्रमी सच्चे ब्रजवासी का प्रतिनिधित्व मिलता है। आपका जन्म कमई गाँव के स्वामी मदन लाल जी के यहाँ विक्रम सम्वत् १९५७ की आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को हुआ था। इनके संस्कारी स्वभाव ने ब्रज साहित्य के भण्डार की अनेकविध श्रीवृद्धि की है। स्वामी जी के रसिया तो रास मंच के प्राण ही हैं। अनुकरणात्मक लीलाओं के प्रदर्शन में आज प्रायः सभी रासमण्डलियाँ इनकी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लिखी रसिया रचनाओं का उपयोग करती हैं। इन रसियों की शब्द नियोजना, प्रसंगोद्भावना, अनुभव व्यंजना, वातावरण सर्जना—सभी कुछ निराली है। संगीतात्मकता की दृष्टि से इन रसियों का वर्ण-वर्ण थिरकता-सा प्रतिभासित होता है। इन रसियों की विषयवस्तु यद्यपि श्रीकृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध है फिर भी इनमें ऐसे अनेक छविचित्र भरे पड़े हैं जिनसे ब्रज-संस्कृति की गौरवमयी झाँकी नेत्रों के सम्मुख बरबस ही खिंची चली जाती है। ब्रज के दायरे में झोका खाती, इठलाती, बारी सी उमरि वाली गजगामिनी का एक छवि-चित्र उद्धृत है—

छबीली तेरी चितवन में चित भूल्यौ री।
झोकाखाय चलै डगरे में मनौंननमथ गजझूल्यौरी॥

॥ छबीली तेरी० ॥

चाल है गयंद कटि केहरी लटक लट,
अँगिया उतंग कुच पीठ घुँघरारे कच,
हिये में हमेल कछु घूम-सी रही है मच जी॥

॥ छबीली तेरी० ॥

सारी जरतारी की किनारी में कसुंभी रंग।
झनर झनर करैं बाजूबंद नीचे जंग।
बारी सी उमरि गोरी अबही ते ऐसे ढंग।
रूप कमल सम फूल्यौ री॥

॥ छबीली तेरी० ॥

इन रचनाओं में जहाँ रूप-चित्रों की अपूर्व मादकता है वहाँ उनमें ब्रज-संस्कृत की स्वाभाविक निश्छलता भी अवलोकनीय है। छोटी सी उमर की यह नवेली जहाँ रूप की राशि है, वहाँ वह रूप के लोभी बाजारू 'रहचटों' को फटकारने में भी समर्थ है। स्वामी मेघश्याम जी की युग दृष्टि से रंगी पाग बाँधकर पूजाधीश बने बाजारों में रूप की रहचटी करने वाले ओझल नहीं हुए हैं। गोपीकृष्ण के बहाने स्वामी जी ने ऐसे रहचटों पर अच्छी फबती कसी है।

क्यों रोकै उतपाती दधि बेचन जाती।
लाज न आवै छाछ पिवैया डोलै बन्यौ बराती।
राती पाग सीस, बनि बैठ्यौ पूजाधीस।
नित मिलैं तोसे बीस रूप रहचटे हजार॥

उपर्युक्त पंक्तियों में समाज के अवाञ्छित तत्त्व की भर्त्सना करना ही गीतकार को अभीष्ट रहा प्रतीत होता है। उनकी युग सापेक्ष दृष्टि में कृष्ण भी देश प्रेम का बाना लेकर ही गोपियों की व्यंग्योक्तियों का उत्तर देते हैं। यथा—

कमरी हमारी तीन लोक तेऊ न्यारी।
तू तौ जानै का गँवारी पावै देव हू न पार।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पार पायौ नाहिं शेष इन्द्र अज हू महेस।
मेरौ ग्वारिया कौ भेस देस प्रेम कौ प्रचार।
चट दऊँगो कंस पछार श्याम कामरि में गुन भारी।।

यह तो रही गोपी-कृष्ण की बात। मथुरागमन का प्रयोजन भी श्री कृष्ण के द्वारा माता यशोदा को भिजवाये गये सन्देश में जन्म-भूमि की लाज रखना ही स्वामी जी द्वारा बताया गया है श्रीकृष्ण को अपनी जन्मभूमि का गौरव है वहाँ के माखन का बल है। वे कहते हैं—

जन्म भूमि की लाज राखिवे तेरौ पूत सिधारौ।
तुच्छ असुर का करैं डरै मति ब्रज के माखन में बल भारौ।।
गैया दुखी होंन न पावैं बाबानन्द सम्हारौ।
ब्रजबासिन की चरन धूरि ते श्याम न कबहुं रहैगौ न्यारौ।।

मेघश्याम जी के युगवेत्ता की दृष्टि कृष्णलीलाओं की युगसापेक्षता से विरत कदापि नहीं रही है। उन्होंने तथ्य के दर्शन किये हैं परन्तु उसमें कलाकार की तूलिका ने युगीन रंगों की अत्यन्त कुशलता से उभारा है। यही कारण है कि पारम्परिक कथा प्रसंगों के वर्णन में भी वे नवीन उद्भावनाओं का सम्बल सारोपण कर सके हैं। परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण गिरिवरधारी हैं; परन्तु स्वामी मेघश्याम जी की कल्पना तो देखिए यहाँ श्री राधा ने श्याम सुन्दर को गिरिवर समेत सदा अपनी भौंह की कोर पर धारण कर रखा है। यथा—

गिर कौं पुजाय इन्द्र यग्य कौ मिटाय।
लियौ ब्रज कौं बचाय मेंट ब्याल अग्नि ब्याधि।
मेंटि गर्व आयौ मैंने गिरि कौं उठायौ।
एक गोपी नें सुनायौ तेरी सब झूठी साध।
राधानें गिरधर समेत लियौ धारि भोंह की कोर।।

गुजरिया के औगुनों के गिनाते हुए श्याम की वाक् चातुरी तो देखिये।

गारी दै बुलायें तारी दै दै कै नचामें।
लोभ दही कौ दिखामें सब करबामें काम।।
काम घर कौ कराय सूखौ देहिं टरकाय।
फेरि अगूंठा बताय दै हिं माखन के नाम।
माखन माँगू तौ अचक लगाय जाय पलक मार तारी।।

इसी प्रकार राधा के 'अनियारे रतनारे नवल नेत्रों' का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने नखशिख वर्णन की प्राचीन परम्परा का नवीनीकरण इस प्रकार किया है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नवल नैन अनियारे रतनारे राधे!
चितवनि चुगौ चुगाय,
चपल खग पकरि पींजरनि पारे।
खंजन नवीन, किधौं मानसर मीन दोऊ,
कमल कलीन पै कुलीन अलि कारे।
कोर गुंज मुखवारे मृग शावक डरारे,
मैंने शायक करोर भौंह धनुही पै धारि
मारें चोट ओट घूँघट की
ये दृग कमलनैन तिहारे॥

मेघाच्छादित चन्द्र के दर्शन तो कीजिए—

झीनी झीनी अतिरंग भीनी चोखी चटक चुनरिया में
नैना तरसि रहे दरसन कौं छिप रह्यौ चन्द बदरिया में
छिपि रह्यौ चन्द मुख, कछु तिरछौंहे रुख
रुख की ललाई तापै लटकी लटक लट
कारी घुँघरारी करै मन पै झपट
पट ओट चोट कर निधरक दुबकी पलक पिटारी में।

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग में भी मेघश्याम जी सिद्धहस्त हैं। इनके रसियों में गोपियाँ कहीं 'पानी में आग लगाकर' 'अँगूठा दिखाती हैं' तो कहीं श्याम सुन्दर को 'सूखा टरका देती' हैं। कहीं श्याम गोपियों के 'फूफा लगने' की नटखटी करते हैं तो कहीं वे माँ यशोदा के लिए 'वृद्धा की अन्ध लकुटिया' बन जाते हैं। गोपियों के 'घनेरे गुणों को पेट में धरना' तो उनके लिये साधारण सी बात है। कहीं संसार की असारता 'मकड़ी के जाले' से तुलती नज़र आती है तो कहीं 'बारू की भीति' के रूप में संसार की प्रीति ढलती दृष्टिगत होती है। कहीं 'प्रेम की वजरियाँ में' 'नयनों की मार' 'तलवार की धार' सी प्रतीत होती है तो मीठे गोरस को देखकर मुंह में पानी भरने लगता है।

निष्कर्षतः यह कहना असंगत न होगा कि स्वामी मेघश्याम जी के रसियों में जहाँ भानुभूति की तीव्रता है वहाँ भावों की गहनता भी विद्यमान है। विषयवस्तु का नाटकीय निबन्धन इन रसियाओं की विशेष उपलब्धि है।

स्वामी मेघश्याम जी के रसियों की आत्मा जितनी विशद एवं रंग-विरंगी है, उनका शरीर भी उतना ही कलात्मक है। शब्दचयन, अलंकरण एवं मुहावरे आदि के प्रयोग की दृष्टि से इन रचनाओं में व्रज का वातावरण पूर्णरूपेण परिव्याप्त है। संगीतात्मकता की दृष्टि से इन रचनाओं का कलेवर पूर्णतः व्यवस्थित है। लोकधुनों का स्वरूप व्रज की परम्परा के सर्वथा अनुकूल है। स्वामी जी ने प्राचीन ट्यूनों को लिया है वहाँ उनमें अनेक नवीन प्रयोग भी किये हैं। स्वामी जी ने इस दृष्टि से जितना अपनी परम्परा से लिया है उतना उसे नयी दिशा में दिया भी है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के लोक गायक–सुखई

⊙

बाबूराम पालीवाल

दुनियां में गिरतारी बहुत भये,
सुखलाल की धुनि कछु न्यारी।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन
चारों पटिया मथि डारी॥
जेठ लगत शनिवार सातें को सुरपुर पहुंच गये।
तेरी कुदरत की बलिहारी है भगवान।
विधि सों न बसियाय,
गति जानी न जाय,
दुख भयो है अघाय,
दुनिया पछिताय।
तेने विलखत छोड़े चेला,
तेरो उड़ि गयो हंस अकेला।

यह वह होली है जिसे सुखई के शिष्यों ने सन् १९४४ में सुखई के निधन पर विलाप करते हुये सम्मिलित रूप से गाया था। इससे लोक गायक की लोकप्रियता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। सुखई कुछ ऐसे-वैसे गायक नहीं थे, उनकी ध्वनि कुछ अलग ही थी; तभी तो उन्होंने पूरब पश्चिम उत्तर दक्खिन चारों ओर के क्षेत्र को मथ डाला था और अपने क्षेत्र अद्वितीय ख्याति प्राप्त की थी। स्वाभाविक ही है कि ऐसे लोकप्रिय गायक के निधन पर दुनिया को असीम दुःख हो और वह केवल पछता कर रह जाय।

सुखई का जन्म आगरे जिले की वाह तहसील में शुकलपुरा नामक ग्राम में हुआ था और उनकी मृत्यु खैरामालौनी नामक ग्राम में हुई थी। ये स्थान ब्रज प्रदेश के एक छोर पर जाकर पड़ते हैं। ब्रज की पूर्वी सीमा बटेश्वर तक चली गई है और ये ग्राम बटेश्वर के निकट ही हैं। इस क्षेत्र को साधारण बोलचाल में भदावर कहते हैं। वास्तव में ब्रज के पूर्वी भाग का नाम भदावर ही है। यहां की अपनी एक विशेष प्रकार की होली की परम्परा है जिसे राजपूती होली कहके पुकारा जाता है। आगरे जिले की वाह, फतिहाबाद, फीरोजाबाद और आगरा तहसीलों तथा मैनपुरी जिले की शिकोहाबाद तहसील तथा इसके आसपास के क्षेत्र में राजपूती होली का बहुत प्रचलन है। इस क्षेत्र के नामी 'होरि-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हार' सालभर के परिश्रम और सूझ-बूझ के बाद प्रतिवर्ष होली की नई तर्ज निकालते हैं और उसी तर्ज पर उस वर्ष अपनी अनेक भावों को व्यक्त करने वाली होलियों की रचना करते और गाते हैं। विभिन्न ख्यातनामा 'होरिहारों' की उस वर्ष की होली की तर्ज निकल आने के बाद होली के दिनों में इस क्षेत्र का किसान प्रकृति के साथ साथ आनन्द और उल्लास में तन्मय हो जाता है। गांव खेत खलिहान सभी कुछ तो मानो गाने से लगते हैं। युवक इधर उधर चौपालों या अधियानों के निकट बैठे राजपूती होली की तानें छेड़ते हैं और वातावरण को रसमय बनाते हैं। सुखई भी इस क्षेत्र का ऐसा होरिहार था जिसने अपनी होलियों के द्वारा इस क्षेत्र के किसानों को रसमय बनाया।

सुखई का वास्तविक नाम सुखलाल था परन्तु जन जीवन में वे सुखई करके ही विख्यात हैं। ये जाति के कायस्थ थे और पटवारीगीरी इनका पैतृक पेशा था परन्तु उन्मुक्त वातावरण और तबियत की मस्ती ने सुखलाल को पटवारीगीरी छोड़ने और सुखई नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए विवश किया।

ये दिन को तो पटवारीगीरी का काम करते और रात को मस्ती में आकर होली गाते। रात के जागरण का प्रभाव दिन पर पड़ता और वे दिन में भी अपनी खुमारी में ही रहते। कभी कभी सरकारी कागज़ों पर भी यदि उन्हें होली की कोई नई पंक्ति सूझ जाती तो लिख डालते।

एक दिन अपनी खुमारी में आकर किसी खाते में लिख डाला 'झमकि अटरिया चढ़ि गई' और उसके बादही लिखा पन्ना छप्पन पै क्योंकि इस खाते का अगला हवाला पन्ना छप्पन पर दिया हुआ था। सुखलाल तो यह लिखकर भूल गये परन्तु जब कागजात उनके अफसर के सामने गये तो उन्होंने पढ़ा 'झमकि अटरिया चढ़ गई पन्ना छप्पन पै'। उन्होंने इसे बार बार पढ़ा और जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो उलझे। झुंझलाहट में सुखलाल को बुलाकर कहा 'यह क्या लिखा है।' सुखलाल ने देखा तो मुस्करा कर कहने लगे कुछ नहीं हजूर योंही होली की कड़ी लिख गई है। अफसर बहुत नाराज हुआ और कहा 'या तो पटवारीगीरी करो या होली गाओ' दोनों काम नहीं कर सकते। कलाकार का स्वाभिमान जाग्रत हो गया। उसने पटवारीगीरी से त्यागपत्र दे दिया और मुक्त होकर बस होरी लिखने और गाने लगे।

कहना नहीं होगा कि सुखई ने अपने समय में अद्वितीय ख्याति प्राप्त की। वे हर वर्ष नई नई तर्जें निकालते और विभिन्न भावों को व्यक्त करने वाली होलियां रचते और गाते। जहां उनकी अनेक होलियां पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं वहां वे युगधर्म के प्रति भी सचेत थे और सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर होली की रचना भी करते थे। वे जन जीवन के कटु सत्यों से पूरी तरह परिचित थे। तभी तो मंहगाई के कारण किसान की जो दुर्दशा हुई उसका चित्रण सुखई ने अपनी होली में इस प्रकार किया है—

एसों की साल बड़ी बोदी राम जाने कैसे कटेगी।
तीन सेर को नाज़ बिकतु ए, चार सेर को चारो,
लेत में छाती फटत है।
बिकि जाय थरिया गड़ई॥
भैंसिया बैल जे–तुम्हें याद हो न याद हो–
जे द्वै रुपया रोज खात है।
टोटे में कूंड जात है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'तुम्हें याद हो न याद हो' की तर्ज की यह होली उस साल इतनी लोकप्रिय हुई थी कि भदावर के गांव गांव में लड़के और युवा बस इसी होली को गाते हुये मिलते थे।

इसी प्रकार स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित होकर सुखई ने एक साल गाया था—

चरखा मंगवाई दे मेरे पिया न्हेंनो काति कें ल्हेंगा बनाइ लऊंगी।
मौड़ी मौड़नि पे कुरता कमीज नहीं ए एक धोती तुमकूं बनाइ दऊंगी॥

कपड़ा पैदा नहीं कंटरोल गयो आय
हे भगवान तेरी कुदरत की बलिहारी मोरी जान–
काहे काहे चीज को बन्दोवस्त करयो जाय
जापे देखो तापे रही तेजी धाय
खुलि जायगी भारत की पोलें
रहिं जाओगे चूतर खोलें।

यह नहीं कि सुखई केवल अपने प्रदेश की समस्याओं ही से प्रभावित होते थे वरन देश विदेश की अन्यान्य घटनाओं का उनके कवि हृदय पर प्रभाव पड़ता था। देश में लगभग २०-२१ वर्ष पहिले आये हुए भूकम्प का चित्रण सुनिये—

धरती थर थर थररात है उठ रहे तोफान हें
कानुपुर, कासी, इल्हाबाद लो लुकसान हें॥
गई घबराय बम्बई
रही नायं कछु सम्मई
पटना, दरभंगा बीचि दीखि रही-हरे हरे-दीखि रई जलोजथा
डूबि रही मुंगेर, मुजफ्फरपुर जाने कहां बिलानो
फटि गई नेपाल किलानों

इस प्रकार सुखई ने अपनी होलियों में युगधर्म को पूरी तरह अपनाया है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि युग युग का धर्म उनसे अछूता रहा हो। मानव की कोमल भावनाओं के उद्घाटन में भी सुखई किसी से पीछे नहीं थे। सुखई की विप्रलम्भ श्रृंगार की एक होली की कुछ पंक्तियां सुनिये—

चन्दा बेइमान अधरमी सिव कोई जाने
लै लै आग जहूत ए
मेरे रंग रंग जुबन चुऊतए

न जाने कितने कवियों ने विरह में चांदनी को आग के समान बताया है परन्तु सुखई के कथन में जो वक्तृता है वह अनूठी ही है। चांद के प्रति विरहिणी के रोष और खोज को व्यक्त करने वाली सुखई की शब्द चातुरी पर बिना रीझे नहीं रहा जा सकता।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसी प्रकार महाभारत के प्रसिद्ध आख्यान चक्रव्यूह भंजन को लेकर कवि ने जो होली गाई थी उसे सुनिये। अभिमन्यु की मां सुभद्रा अभिमन्यु को सम्बोधित करके कहती है—

उमर नादान है बेटा दूध के दांत हू ना टूटे।
पिता तेरे घर नाहिंने करम सब भांति यों फूटे॥
बारह बरस विरत रत मां दुखिया के सूरज को टेको है।
अब तू आंखिन तें देखो है॥

माता के हृदय की ममता व्यग्रता और छटपटाहट का कैसा सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है।

सच्चा कलाकार भूत के प्रति ज्ञानवान, वर्तमान के प्रति सचेत और भविष्य के प्रति द्रष्टा होता है सुखई में ये तीनों बातें पूरी मात्रा में मिलती हैं। भूतकाल के आख्यानों को लेकर कवि ने जनमन का रंजन किया, वर्तमान गतिविधियों से प्रभावित होकर उसने जनमन में प्रेरणा भरी और भविष्य द्रष्टा होकर उसने गाया—

दो हजार सम्वत में रवि जाने कहा करेगो।
कलजुग के आधे सामान में गृहन परेगो॥
भगवान प्रगट होइंगे दुष्टन को मारन कों।
अरु लहू खून सों धरनि पटे।
कइयो सैर वीरान होइंगे॥

द्वितीय विश्व युद्ध से दस वर्ष पूर्व सुखई की यह घोषणा उसके भविष्यद्रष्टा कलाकार होने का पूरा प्रमाण प्रस्तुत करती है।

सुखई ने अपने जीवन में हजारों होलियां लिखी हैं जो ब्रज प्रदेश के पूर्वी भाग अर्थात् भदावर के जनजीवन की धमनियों के रक्त को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करती थीं परन्तु अब समय के साथ साथ वे विस्मृति के गर्त में जा रही हैं। क्या यह सम्भव नहीं कि ब्रज के इस लोकप्रिय गायक की होलियों का संकलन हो सके और उन्हें मुद्रित कराकर सदैव के लिये सुरक्षित किया जा सके।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की लोक-कलाएँ

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

मध्यदेश का हृदय ब्रजमंडल है, जो अत्यन्त प्राचीन काल से सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। भारतीय संस्कृति, कला एवं साहित्य पर ब्रज की अमिट छाप है। मनोभावों की कुशल अभिव्यक्ति ही तो कला है। अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम हो सकते हैं और इन माध्यमों की भिन्नता ही कलाओं को जन्म देती है। जो मूलतः अखण्ड है। ब्रज धर्म-भूमि है और विभिन्न कलाओं का संगम भी है। ब्रज में कला और धर्म परस्पर संगुंफित हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि किसका प्राधान्य है। प्राचीनकाल से ही ब्रज प्रकृति की रम्यस्थली है। प्रागैतिहासिक काल से ही ब्रज की महत्ता रही है। यमुना के चतुर्दिक शूरसेन प्रदेश के विस्तीर्ण भूभाग को दीर्घकाल तक जो गौरव प्राप्त हुआ है, वह प्राचीनकाल में प्रसिद्ध अन्य स्थान—अयोध्या, उज्जयिनी, काशी, पाटलिपुत्र आदि को भी प्राप्त नहीं हुआ। यही कारण है कि प्राचीनकाल से ही ब्रज संगीत, काव्य, मूर्ति, चित्र तथा वास्तुकलाओं का केन्द्र रहा है, जिसके द्वारा उस उन्नतिशील युग के जन-जीवन की झांकी मिलती है। ब्रज के केन्द्र मथुरा में स्थापित पुरातत्व संग्रहालय में वास्तुकला तथा मूर्तिकला के अद्भुत नमूने प्राप्त होते हैं। इन मूर्तियों के आधार पर ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि ब्रज की सांस्कृतिक देन अद्भुत रही है। इन कलाओं के क्षेत्र में ब्रज का कोई सानी नहीं है। संगीत कला का भी ब्रज केन्द्र रहा है। इसके फलस्वरूप हरिदास जैसे संगीतज्ञ सन्त इस भूमि पर अवतरित हुए। साहित्य के क्षेत्र में तो ब्रज की देन अद्वितीय है। यहाँ विवेच्य विषय कलाएँ हैं अतएव ललित कलाओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास की पृष्ठभूमि में ब्रज की लोक-कलाओं का विवेचन ही अभीष्ट है। शिल्प के क्षेत्र में वृन्दावन के गोविंददेव, मदन मोहन तथा शाह जी के मन्दिर अनुपम हैं। भरतपुर, डीग के भवन, कुसुम सरोवर, नन्दगाँव, बरसाने के मन्दिर तथा मथुरा का शिवताल वास्तुकला के अद्भुत नमूने हैं।

'लोक-कलाओं' के विस्तृत क्षेत्र में उपयोगी कलाएँ भी आ सकती हैं। इस दिशा में भी ब्रज क्षेत्र अनेक उपयोगी कलाओं का गढ़ कहा जा सकता है। ये कलाएँ ही लघु उद्योगों के रूप में ब्रज क्षेत्र के गाँव-गाँव में फैली हुई हैं। कलाओं के ललित रूप में अनेक ललित कलाएँ ली जा सकती हैं।

लोक-धुनें विशेषकर रसिया, नृत्य में रासलीला से लेकर चाँचर आदि सैकड़ों प्रकार के नृत्य, नाटक के क्षेत्र में भगत-नौटंकी आदि लोक-नाट्य ब्रजभूमि की अमर देन हैं जिनमें से प्रत्येक विषय स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है। यहां ब्रज की केवल उन कलाओं का उद्घाटन किया जा रहा है जो ब्रज के लोकजीवन में घुल-मिल गई हैं। इन कलाओं को लोक-जीवन से पृथक करना असंभव है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साँझी

यह लोकोत्सव आश्विन मास की प्रतिपदा से पितृपक्ष भर चलता है। पुराणों के अनुसार राधा-रानी को प्रसन्न करने के लिए एक दिन संध्या को श्रीकृष्ण ने फूलों की सजावट की थी इसलिए इसका नाम सांझी पड़ गया। इस समय इसके अनेक रूप प्रचलित हैं। कन्याओं के व्रत के रूप में भी इस त्यौहार का प्रचलन है। इससे कन्याएँ प्रतिदिन गोबर से लीपकर सूर्यास्त से पूर्व आरती के लिए साँझी तैयार करती हैं। लोक में सहज प्राप्त उपकरणों से गोबर, मिट्टी, रोली, फूल, चूना, कौड़ी, शीशे के टुकड़े, पीतर पत्री, मिट्टी के खिलौने आदि से दीवालों पर चित्रांकन करती हैं। गोबर की पृष्ठभूमि पर विभिन्न फूलों द्वारा अनेक प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। ये आकृतियाँ प्रतीकात्मक भी होती हैं, जैसे—

सतिया=स्वस्तिक—कल्याणवाची

सात बिन्दियां=सप्तऋषि

ये कलाकृतियाँ अपनी-अपनी निराली सूझबूझ की द्योतक होती हैं और अन्तिम दिन 'कोट' बनाया जाता है जिसमें कला का विशेष चमत्कार प्रदर्शित किया जाता है। साँझी के चारों ओर मोर-हाथी, खजूर, कंघी, कौआ, माली-मालिन आदि बनाकर सजाती हैं। संध्या समय इनकी आरती उतारती हैं और भोग लगाया जाता है। विवाहोपरान्त पहले वर्ष कन्या को साँझी खेलने का अधिकार होता है। साँझी के इस लोक प्रचलित त्यौहार में कला के साथ गीत का भी संयोग हो गया है।

सांझी का दूसरा रूप है रंगों से निर्मित 'सांझी' जिसका प्रचार विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरों में है। इसमें किसी बड़े अथवा छोटे चबूतरे पर विभिन्न रंगों से कृष्ण की लीलाओं का चित्रांकन किया जाता है। यह अपेक्षाकृत अधिक सुसंस्कृत एवं कलात्मक है। इसमें हर रंग के लिए कागज के चित्र काटे जाते हैं और अनेक रंग के ब्लाक की छपाई की भाँति अनेक कटे हुए चित्रों की सहायता से चित्रांकन किया जाता है। यह चित्रांकन मंदिरों तक ही सीमित नहीं है वरन् ब्रज के घरों में बालक छोटी-छोटी चौकियों पर इनको बनाते हैं और चित्रों का अपनी रुचि और प्रतिभा के अनुसार चुनाव कर कटिंग करते हैं। इसमें लोकरुचि के अनुसार अब सामाजिक चित्र भी प्रस्तुत किये जाते हैं। कृष्ण की लीलाएँ तो अब केवल मन्दिरों तक ही सीमित हो गई हैं। मथुरा में कृष्णगंगा घाट, गौघाट, ज्योतिषी बाबा की हवेली, तथा विभिन्न मन्दिर इसके प्रसिद्ध स्थान रहे हैं। साँझी कला वस्तुतः रूप-सर्जन या रूपांकन कला की जननी है। चबूतरे के अतिरिक्त तेल पर भी रंगों की सहायता से चित्रांकन किया जाता है। यह विधि अपेक्षाकृत कठिन है। यह कला धीरे-धीरे नष्ट हो रही है।

ब्रजक्षेत्र कृष्ण की जन्मभूमि है। प्राचीन काल में जैसा ब्रज का रमणीय वर्णन शास्त्रों में मिलता है उससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से ब्रज अद्वितीय था। धीरे-धीरे यह प्रकृति-शोभा नष्ट होती गई। वनों की ओर तो कुछ वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के राज्यपाल कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने ही ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप बड़ी संख्या में वृक्ष लगाये गये हैं। प्राकृतिक शोभा के अभाव में कृत्रिम रूप से बंगलों का निर्माण किया जाने लगा होगा। बंगला वस्तुतः उस एक तले मकान को कहा जाता है जिसकी छतें पिरेमिडनुमा हों और साथ ही जिसमें उद्यान का आनन्द लेने के लिए पर्याप्त भूमि छूटी हुई हो। ठाकुर जी को भी विशेष ताप से बचाने के लिए ग्रीष्म ऋतु में विशेषकर बंगला बनाये जाने लगे जिसमें फूलपत्तियों और केले का विशेष प्रयोग किया जाता है। कालान्तर में यह प्रथा सखी सम्प्र-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दायों के मन्दिरों में फैल गई। ग्रीष्म में बंगले विशेष रूप से बनाये जाते हैं। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को उनकी पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत कर मोहक दृश्य उपस्थित किये जाते हैं। वृन्दावन तो इस कला का गढ़ है। बंगलों के निर्माण में सामान्यतः फूलों का आधिक्य रहता है जिसमें श्वेत रंग से सुगंधित चमेली व बेला उल्लेखनीय हैं। केले द्वारा किया गया कार्य तो संगमरमर जैसा प्रतीत होता है। यमुना-कुंज, कदम्ब के वृक्ष, नौका-विहार, आदि अनेक दृश्य उपस्थित किये जाते हैं।

बंगले निर्माण की कला केवल कृष्ण के मन्दिरों तक ही सीमित नहीं है वरन् शिव, राम आदि मन्दिरों में भी प्रचलित है।

थापे

ब्रज में सभी मांगलिक अवसरों तथा त्यौहारों पर घरों में थापे बनाने की प्रथा है, विशेष रूप से व्रतानुष्ठानों, त्यौहारों तथा संस्कारों पर ये अवश्य बनाये जाते हैं। दीवालों तथा भूमि पर चित्र लिखे जाते हैं जिनकी पूजा होती है। इन चित्रों में कोई देवता हों यह आवश्यक नहीं। ब्रज लोक-जीवन के मर्मज्ञ विद्वान डा० सत्येन्द्र ने इनको आठ भागों में विभाजित किया है। (१) चीतने, (२) थापे, (३) धरने (४) भरने, (५ काढ़ने, (६ लिखने, (७) खोदने, (८) जमाने। इन में से चीतनों तथा थापों में लोकजीवन पर्याप्त मात्रा में रहता है। चीतने सामान्यतः 'चित्र-चितर' का रूप है। ये सभी एक प्रकार से लोक-चित्रांकन की विधियां हैं। सभी उत्सवों पर किसी न किसी रूप में दीवाल पर इनको अंकित किया जाता है पर विशेष रूप श्रावणी में सोना या सरमन बनाया जाता है। ओध द्वादशी पर भी चीतने बनाये जाते हैं। क्वार शुक्ल प्रतिपदा से न्यौराते प्रारम्भ होने के अवसर पर द्वार पर न्यौरता बनाया जाता है। मांगलिक व्रत 'करवाचौथ' को तो विभिन्न प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं जिसमें जातिगत तथा स्थानगत पर्याप्त भेद होता है। इन चित्रों में अभिप्रायों का भी आधिक्य रहता है। सबसे अधिक अभिप्राय करवाचौथ में ही बनाये जाते हैं जैसे वढ़, गणेश, अक्षयवट, बहिन, गौर, गोवर्धन, पढैली, तुलसी, बिछुए, बरुए, कुम्हारिन, मृत पति, स्याहू, करुएवाली, चौकी, स्वस्तिक, मन्दिर द्वार, चौपड़िया, छवरिया, पांच दौरानी, जिठानी, सरमन, कांवरि, कृष्ण को सिर पर ले जाते हुए वसुदेव, हनुमान, कुम्हारिन के साथ कुम्हार करवे वाले, तोता-तोती, चौक, अर्घ्य, देती हुई स्त्री, त्रिशूलधारणी देव, तराजू। इस चित्र की कला का मर्म कल्याण भावना है जिससे प्रेरित होकर पति-सेवा में रत पत्नी अपने कुटुम्ब के कल्याण के हेतु साधना करती है। कला के साथ कहानियां भी प्रचलित हैं, इस प्रकार वह मंगलमय त्यौहार लोक में अत्यधिक प्रचलित है। कला पहले है कि धार्मिक अभिप्राय पहले यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

करवा चौथ के बाद इन त्यौहारों में होई (अहोई आठें) तथा दिवाली पर विशेष चित्रांकन होता हैं। दीवाली का पर्व तो कलाओं का अक्षय श्रोत हैं। विभिन्न प्रकार के कलात्मक अलंकरण इस दिन किये जाते हैं। प्रातःकाल ही सफाई के बाद भूमि-अलंकरण किया जाता है। अनेक प्रकार के चित्र, डिजाइन घर व आंगन में बनाये जाते हैं। देहरी पर विशेष रूप से सजावट होती है। गेरू, हिरमिच तथा लाल रंग सर्वाधिक चलते हैं। विभिन्न देवी-देवताओं के प्रतीकात्मक चित्र, मंत्र-तंत्र भी रंगों से दीवारों पर लिखे जाते हैं। ये प्रायः सौभाग्यसूचक होते हैं। अनेक प्रकार के भित्तिचित्र भी तैयार किये जाते हैं। यह त्यौहार विशेष रूप से कलात्मक हैं जिस दिन खिलौने व मिठाइयां भी विशेष कलात्मक होती हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भैयादूज पर कुछ स्थानों पर चित्रांकन किया जाता है। विशेष घरों में देवठान (देवोत्थान) के अवसर पर भी थापे दिये जाते हैं। होली पर विशेष सजावट होती है। इस यांत्रिक युग में महिलाओं को अब इतना अवकाश कहाँ कि प्रातःकाल उठकर कई घंटे इन कार्यों को दें, अतः अब मुद्रित चित्र बाजार में बिकने लगे हैं जिनको खरीदकर काम चला लिया जाता है। इस विधि से समय की बचत अवश्य हो जाती है पर सांस्कृतिक ह्रास हो रहा है साथ ही जीवन में से कला का महत्त्व समाप्त होता जा रहा है। कला जीवन को उदात्त बनाती है, कला का अभाव जीवन को नीरस बना देता है।

ब्रज लोकजीवन में कला धर्म तथा संस्कृति से आबद्ध है। कला धार्मिक से निजत्व की ओर उन्मुख हुई है। इस ओर ध्यान दिलाते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है, 'कला पहले धार्मिक हुई और फिर निजत्व में मग्न हो गई। पर इस स्थिति में भी वह उस लोक-मानस से रहित नहीं हो पायी। क्या काव्य, क्या संगीत, क्या मूर्ति, सभी कलाएँ जिस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती हैं, वह सौन्दर्य एक प्रकार की आध्यात्मिकता से अभिभूत रहता है। विविध प्रकार की रेखाओं से और रंगों से जो चित्र बनते हैं, विविध सामग्रियों से जो मूर्ति बनती है, विविध उपादानों से जो वाद्य निर्मित होते हैं उन सबमें कलाकार अपनी निजी अनुभूतियों को गूंथकर उन कलाकृतियों में जिस अनोखे और नवीन सौन्दर्य को पाता है वह मूलतः उसी लोकमानस से संबंधित रहता है।'

लोकजीवन में कलाएँ बहुत गहराई तक प्रवेश कर गई हैं। त्यौहारों पर बननेवाले पकवानों में इनका रूप देखा जा सकता है। गुंजियों तथा गूंजों के कितने रूप लोक में प्रचलित हैं यह भी खोज का विषय हो सकता है। प्राचीन परम्परा से आये हुए वस्त्रों में कलात्मकता के दर्शन किये जा सकते हैं। इधर विदेशी संस्कृति का प्रभाव तेजी से पड़ता जा रहा है जिसके फलस्वरूप लोकजीवन ही विकृत नहीं हो रहा वरन् लोक कलाएँ भी विकृत होती जा रही हैं। नगरों के जीवन में तो यह कलाएँ ह्रासोन्मुख हैं यह चिन्ता का विषय है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की वास्तु तथा मूर्तिकला

प्रो० डा० कृष्णदत्त वाजपेयी

ब्रज क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत तथा ब्रज भाषा-साहित्य का विकास एक दीर्घकाल तक हुआ। यह प्राप्त बहुसंख्यक शिलालेखों, अभिलिखित मुद्राओं, सिक्कों तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से इस बात की पुष्टि होती है कि ब्रज में भाषा और साहित्य के नाना रूपों का उद्भव और विकास शताब्दियों तक होता रहा।

साहित्य के अतिरिक्त वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नाट्य के विविध रूपों का सृजन भी ब्रज की उर्वर सांस्कृतिक भूमि में हुआ। ब्रज का मुख्यनगर मथुरा एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान रहा है। यहां ईसवी सन् से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्तिकला का प्रारंभ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला-केन्द्रों में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कलाशैली बन गई थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्तरूप हमें मथुरा की प्राचीनकला में दिखाई पड़ता है। शुंग-मित्र, शक और कुषाणवंशी राजाओं के शासन-काल में मथुरा में वास्तुकला तथा मूर्तिकला को अधिक विकसित होने का सुयोग प्राप्त हुआ। उस समय से वैदिक, जैन तथा बौद्ध-भारत के इन तीनों प्रधान धर्मों को यहां के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ-साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ईसवी पूर्व पहली शती से लेकर गुप्त काल के अन्त तक उक्त तीनों धर्मों से सम्बन्धित कलावशेष ब्रज में बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गुप्तकाल के बाद भी ब्रज में मूर्तिकला और वास्तुकला की उन्नति कई शताब्दियों तक जारी रही, यद्यपि उसमें पहले जैसा निजस्व न रहा। दिल्ली सल्तनत के लगभग सवा तीन सौ वर्षों के आधिपत्यकाल में इस कलात्मक विकास में गतिरोध उत्पन्न हुआ। मुगल काल में अकबर के समय ब्रज में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ, उसके फलस्वरूप साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का फिर से उद्धार हो सका।

वास्तु : जैन-बौद्ध स्तूप तथा विहार

वैदिक धर्म के एक मुख्य केन्द्र के रूप में मथुरा की विशेष प्रसिद्धि उत्तर-वैदिककाल से हो गई थी। कालांतर में जैन तथा बौद्ध मतावलंबियों ने भी इस प्रमुख धार्मिक स्थल को अपने धर्मों के विकास के लिए बहुत उपयुक्त पाया। उन्होंने यहां अपने केन्द्र स्थापित किए। इन दोनों धर्मों से संबंधित बहुत से कलावशेष मथुरा और ब्रज के अन्य स्थानों से प्राप्त हुए हैं। मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त एक मूर्ति की चौकी पर खुदे हुए द्वितीय शती के एक लेख से पता चला है कि उस समय से बहुत पहले मथुरा में एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप को 'देव निर्मित स्तूप' कहा गया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भैयादूज पर कुछ स्थानों पर चित्रांकन किया जाता है। विशेष घरों में देवठान (देवोत्थान) के अवसर पर भी थापे दिये जाते हैं। होली पर विशेष सजावट होती है। इस यांत्रिक युग में महिलाओं को अब इतना अवकाश कहाँ कि प्रातःकाल उठकर कई घंटे इन कार्यों को दें, अतः अब मुद्रित चित्र बाजार में बिकने लगे हैं जिनको खरीदकर काम चला लिया जाता है। इस विधि से समय की बचत अवश्य हो जाती है पर सांस्कृतिक ह्रास हो रहा है साथ ही जीवन में से कला का महत्त्व समाप्त होता जा रहा है। कला जीवन को उदात्त बनाती है, कला का अभाव जीवन को नीरस बना देता है।

ब्रज लोकजीवन में कला धर्म तथा संस्कृति से आबद्ध है। कला धार्मिक से निजत्व की ओर उन्मुख हुई है। इस ओर ध्यान दिलाते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है, 'कला पहले धार्मिक हुई और फिर निजत्व में मग्न हो गई। पर इस स्थिति में भी वह उस लोक-मानस से रहित नहीं हो पायी। क्या काव्य, क्या संगीत, क्या मूर्ति, सभी कलाएँ जिस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती हैं, वह सौन्दर्य एक प्रकार की आध्यात्मिकता से अभिभूत रहता है। विविध प्रकार की रेखाओं से और रंगों से जो चित्र बनते हैं, विविध सामग्रियों से जो मूर्ति बनती है, विविध उपादानों से जो वाद्य निर्मित होते हैं उन सबमें कलाकार अपनी निजी अनुभूतियों को गूंथकर उन कलाकृतियों में जिस अनोखे और नवीन सौन्दर्य को पाता है वह मूलतः उसी लोकमानस से संबंधित रहता है।'

लोकजीवन में कलाएँ बहुत गहराई तक प्रवेश कर गई हैं। त्यौहारों पर बननेवाले पकवानों में इनका रूप देखा जा सकता है। गुंजियों तथा गूंजों के कितने रूप लोक में प्रचलित हैं यह भी खोज का विषय हो सकता है। प्राचीन परम्परा से आये हुए वस्त्रों में कलात्मकता के दर्शन किये जा सकते हैं। इधर विदेशी संस्कृति का प्रभाव तेजी से पड़ता जा रहा है जिसके फलस्वरूप लोकजीवन ही विकृत नहीं हो रहा वरन् लोक कलाएँ भी विकृत होती जा रही हैं। नगरों के जीवन में तो यह कलाएँ ह्रासोन्मुख हैं यह चिन्ता का विषय है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की वास्तु तथा मूर्तिकला

प्रो० डा० कृष्णदत्त वाजपेयी

ब्रज क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत तथा ब्रज भाषा-साहित्य का विकास एक दीर्घकाल तक हुआ। यह प्राप्त बहुसंख्यक शिलालेखों, अभिलिखित मुद्राओं, सिक्कों तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से इस बात की पुष्टि होती है कि ब्रज में भाषा और साहित्य के नाना रूपों का उद्भव और विकास शताब्दियों तक होता रहा।

साहित्य के अतिरिक्त वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नाट्य के विविध रूपों का सृजन भी ब्रज की उर्वर सांस्कृतिक भूमि में हुआ। ब्रज का मुख्यनगर मथुरा एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान रहा है। यहां ईसवी सन् से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्तिकला का प्रारंभ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला-केन्द्रों में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कलाशैली बन गई थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्तरूप हमें मथुरा की प्राचीनकला में दिखाई पड़ता है। शुंग-मित्र, शक और कुषाणवंशी राजाओं के शासन-काल में मथुरा में वास्तुकला तथा मूर्तिकला को अधिक विकसित होने का सुयोग प्राप्त हुआ। उस समय से वैदिक, जैन तथा बौद्ध-भारत के इन तीनों प्रधान धर्मों को यहां के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ-साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ईसवी पूर्व पहली शती से लेकर गुप्त काल के अन्त तक उक्त तीनों धर्मों से सम्बन्धित कलावशेष ब्रज में बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गुप्तकाल के बाद भी ब्रज में मूर्तिकला और वास्तुकला की उन्नति कई शताब्दियों तक जारी रही, यद्यपि उसमें पहले जैसा निजस्व न रहा। दिल्ली सल्तनत के लगभग सवा तीन सौ वर्षों के आधिपत्यकाल में इस कलात्मक विकास में गतिरोध उत्पन्न हुआ। मुगल काल में अकबर के समय ब्रज में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ, उसके फलस्वरूप साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का फिर से उद्धार हो सका।

वास्तु : जैन-बौद्ध स्तूप तथा विहार

वैदिक धर्म के एक मुख्य केन्द्र के रूप में मथुरा की विशेष प्रसिद्धि उत्तर-वैदिककाल से हो गई थी। कालांतर में जैन तथा बौद्ध मतावलंबियों ने भी इस प्रमुख धार्मिक स्थल को अपने धर्मों के विकास के लिए बहुत उपयुक्त पाया। उन्होंने यहां अपने केन्द्र स्थापित किए। इन दोनों धर्मों से संबंधित बहुत से कलावशेष मथुरा और ब्रज के अन्य स्थानों से प्राप्त हुए हैं। मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त एक मूर्ति की चौकी पर खुदे हुए द्वितीय शती के एक लेख से पता चला है कि उस समय से बहुत पहले मथुरा में एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप को 'देव निर्मित स्तूप' कहा गया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वर्तमान कंकाली टीले की भूमि पर उक्त स्तूप के निर्माण-समय से लेकर प्रायः ११०० ईसवी तक जैन इमारतों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। बौद्ध इमारतें भी यहां बड़ी संख्या में बनी। सम्राट अशोक, कनिष्क तथा अन्य शक-कुषाण शासकों द्वारा मथुरा नगर और उसके आस-पास कितने ही स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया। जब चौथी शती में चीनी यात्री फाह्यान मथुरा आया तब उसने यमुना नदी के दोनों किनारों पर बीस बौद्ध विहारों को देखा। उसने यहां के छह बड़े बौद्ध स्तूपों का भी उल्लेख किया है। मथुरा से प्राप्त शिलालेखों से अब तक अनेक बौद्ध विहारों का पता चला है।

खेद है कि इन बौद्ध विहारों में से एक भी इस समय नहीं बचा। इन इमारतों के निर्माण में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग होता था। उनका प्रकार सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों में प्राप्त बौद्ध विहारों-जैसा रहा होगा। मथुरा में कुषाण काल में सबसे अधिक विहारों का निर्माण हुआ, जैसा कि तत्कालीन अभिलेखों से प्रकट होता है।

ब्रज के प्राचीन बौद्ध एवं जैन स्तूप भी ईंट और पत्थर के बने हुए थे। इनमें सबसे नीचे एक चौकोर आधार बनाया जाता था। उसके ऊपर प्रायः गोलाकार रचना (अंड) होती थी। शीर्ष पर दंड (यष्टि) के सहारे छत्र रहता था। कभी-कभी छत्रों की संख्या तीन या अधिक होती थी। स्तूप का बाहरी भाग विविध भांति के उत्कीर्ण शिला-पट्टों से सजाया जाता था। स्तूप की परिक्रमा के लिए उसके चारों ओर प्रायः पाषाण का बाड़ा बनाया जाता था, जिसे वेष्टनी या वेदिका कहते थे। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर खड़े खम्भे आड़े पत्थरों (सूची) द्वारा जोड़े जाते थे। खम्भों के सिरों पर जो पत्थर रखे जाते थे वे 'उष्णीष' या 'मूर्धस्य पाषाण' कहलाते थे। वेष्टनी या वेदिका के ये सभी पत्थर विविध भांति की उकेरी हुई मूर्तियों और अलंकरणों से युक्त होते थे। भीतर जाने-आने के लिए वेदिका में प्रायः चारों दिशाओं में एक-एक तोरण-द्वार बना रहता था।

स्तूपों में तीर्थंकरों या भगवान् बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों के पवित्र अवशेष (हड्डी, राख नख, बाल आदि) रखे जाते थे। जब बुद्ध का देहावसान (निर्वाण) हुआ तब उनके अवशेषों को आठ भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक के ऊपर एक स्तूप की रचना की गई। सके बाद स्तूप-निर्माण की परम्परा जारी रही। सम्राट् अशोक के लिए कहा जाता है कि उसने भारत के विभिन्न स्थानों पर ८४,००० स्तूपों का निर्माण कराया। प्रसिद्ध है कि उसने मथुरा में भी कई बड़े स्तूप बनवाये। इनमें से तीन का उल्लेख चीनी यात्री हुएन-सांग ने किया है। इस यात्री ने बुद्ध भगवान् के साथियों के अवशेषों पर निर्मित स्तूपों की भी चर्चा की है। अशोक और उसके बाद निर्मित कुछ भग्नावशिष्ट स्तूप सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों में विद्यमान हैं। इनमें कई तो बहुत विशाल हैं। मथुरा में समय-समय पर छोटे-बड़े जिन स्तूपों की रचना की गई उनमें से कई के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।

हिन्दू मन्दिर

उपर्युक्त जैन तथा बौद्ध इमारतों के अतिरिक्त ब्रज में हिन्दू मन्दिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। इन मन्दिरों की निर्माण-शैली स्तूपों से भिन्न थी। स्तूपों की रचना मृत व्यक्ति के पवित्र अवशेषों के ऊपर की जाती थी। वाल्मीकि रामायण में सम्भवतः इसी कारण उनके लिए 'श्मशान चैत्य नाम आया है। परन्तु मन्दिर को देवताओं के निवासस्थान के रूप में माना जाता था। इसीलिए उन्हें देवालय कहा जाता था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मंदिर के भीतर एक या अनेक देवों की मूर्तियों का होना तथा उनकी पूजा होना अनिवार्य माना जाता था। मंदिर की रचना में शिखर का प्रदर्शन विशिष्टता का द्योतक माना जाने लगा। शिखर का यह भाव सुमेरु, त्रिकूट, कैलाश आदि पर्वतों से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। मंदिर के वहिर्भाग को प्रायः विविध अलंकरणों तथा देव, यक्ष, किन्नर अप्सरादि की प्रतिमाओं से सजाया जाता था। मथुरा में सम्भवतः जैनों तथा बौद्धों के स्तूपों का निर्माण मंदिरों के बनने से कुछ पहले प्रारम्भ हुआ। यहां हिन्दुओं के सबसे प्राचीन जिस मंदिर का उल्लेख मिला है वह राजा शोडास के राज्यकाल में निर्मित हुआ। ऐसा एक सिरदल पर उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात हुआ है। इस लेख में लिखा है कि वासुदेव-कृष्ण का चतुःशाला मंदिर, तोरण तथा वेदिका का निर्माण वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महाक्षत्रप शोडास के शासन-काल में सम्पन्न हुआ। यह मंदिर उस स्थान पर बनवाया गया जहां भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। हो सकता है कि इसके पहले श्रीकृष्ण का कोई मंदिर मथुरा में रहा हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला। अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक कुषाण-कालीन मूर्तियां ब्रज में मिली हैं। सम्भव है कि उनमें से कुछ के मंदिरों का निर्माण उस समय या उसके कुछ पहले प्रारम्भ हो गया हो। गुप्तकाल में मथुरा में हिन्दू मंदिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर 'परम भागवत' चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में एक भव्य मंदिर की रचना की गई। चीनी यात्री हुएन सांग ने अपने समय में मथुरा के अनेक हिन्दू मंदिरों के अस्तित्व का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते थे।

दुर्भाग्य से मथुरा में प्राचीन स्थापत्य का कोई ऐसा समूचा उदाहरण आज नहीं बचा, जिससे हम धार्मिक इमारतों, प्रासादों या साधारण मकानों की निर्माण-शैली की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकते। इमारती पत्थर एवं अन्य अवशेषों के रूप में थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है जिसके आधार पर हम मथुरा की कुछ इमारतों की रूपरेखा इस प्रकार दे सकते हैं—प्राचीन प्रासाद या बड़े मकान कई तलों के होते थे। उनमें नीचे के खण्ड से ऊपर जाने के लिए जीने (सोपान मार्ग) होते थे। मकानों में बैठक का कमरा, स्नानागार, भोजन-गृह, शयन-गृह, शृंगार-कक्ष और अन्तःपुर प्रायः अलग-अलग होते थे। यथास्थान खिड़कियां (गवाक्ष) भी होती थीं।

मकानों में जो चौखट, दरवाजे, खम्भे आदि लगाए जाते थे उन्हें लता-वृक्ष, पशु-पक्षी, कमल, मंगलघट, कीर्तिमुख, स्वस्तिक आदि अलंकरणों तथा विविध देवी-देवताओं, यक्ष-किन्नरों, सुपर्ण-विद्याधरों आदि की प्रतिकृतियों से अलंकृत किया जाता था। ईंट की बनी इमारतों की बाहरी दीवालों पर अनेक प्रकार की बेल-बूटेदार ईंटें लगाई जाती थीं, जिन पर धार्मिक एवं लौकिक दृश्यों के कलात्मक चित्रण होते थे।

ग्यारहवीं शती के आरम्भ में मथुरा के विशाल मंदिरों को बड़ी क्षति पहुंची, महमूद गजनवी के मीर मुंशी अलउत्बी के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा में हिन्दू मंदिरों की संख्या बहुत बड़ी थी। मथुरा को जीतने के बाद महमूद द्वारा कितने मंदिर धराशायी किए गए और उनकी मूर्तियां तोड़ी गईं। मंदिरों की अपार संपत्ति लूटकर महमूद गजनी लौटा।

बारहवीं शताब्दी में मथुरा और उसके आस-पास अनेक बड़े मंदिर थे। जिनका विध्वंश मुसलमान आक्रान्ताओं ने किया। इनमें राजा विजयपाल देव द्वारा ११५० ई० में श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर बनवाया

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection Trust Collection, Lucknow

गया प्रसिद्ध केशव-मंदिर भी था। बारहवीं शती से लेकर मुगल सम्राट अकबर के समय तक व्रज में नए मंदिरों का निर्माण नहीं के बराबर रहा। अकबर और जहांगीर के समय में मथुरा-वृन्दावन में कुछ मंदिर तथा अन्य इमारतें बनीं, जिनमें से कई अब भी विद्यमान हैं।

मूर्तिकला

प्राचीन भारतीय दर्शन में ईश्वर के सगुण रूप को प्रधानता दी गई है। भगवान् कृष्ण की लीलाभूमि व्रज में सगुण उपासना को महत्व प्राप्त होना स्वाभाविक था। यहां के साहित्य और शिल्प-कला में श्रीकृष्ण के विविध चरित्रों का आलेखन दीर्घकाल तक होता रहा। साथ ही हिन्दू धर्म के अन्य देवी-देवताओं को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया। ईसवी पूर्व दूसरी शती से लेकर प्रायः बारहवीं शती-तक मथुरा में हिन्दू देवों की प्रतिमाएं बड़ी संख्या में बनाई जाती रहीं। गुप्तवंशी शासक भागवत धर्म के अनुयायी थे। इस धर्म ने सहिष्णुता और समन्वय की जो भावना फैलाई उसका प्रभाव तत्कालीन शिल्पकला पर भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भागवत धर्म-संबंधी मूर्तियों के साथ-साथ शैव मूर्तियां भी मथुरा के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं। मध्यकाल से व्रज में पौराणिक धर्म की प्रधानता होने से यहां की मूर्तिकला में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

मथुरा में कंकाली टीला तथा व्रज के कई स्थानों से जैन-धर्म संबंधी विशाल शिल्प सामग्री भी प्राप्त हुई है। इसी प्रकार शुंग-काल के आरंभ से लेकर गुप्तकाल के अन्त तक के जो बौद्ध अवशेष यहां मिले हैं उनसे बौद्ध धर्म के क्रमिक विकास का पता चलता है। व्रज के विविध धार्मिक सम्प्रदायों में थोड़ा बहुत मतभेद स्वाभाविक था पर वे आपस में मिलकर रहते थे। हम देखते हैं कि व्रज के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में भारत के सभी धर्मों को साथ-साथ विकसित होने का अवसर शताब्दियों तक मिला। यहां की समन्वयात्मक संस्कृति ने इन धर्मों के पारस्परिक भेद-भावों को दूर करने में उल्लेखनीय योग दिया।

भारत का एक प्रमुख धार्मिक तथा कला केन्द्र होने के नाते मथुरा को बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। ईरान, यूनान और मध्य एशिया के साथ मथुरा का संबंध बहुत समय तक रहा। तक्षशिला की तरह मथुरा नगर भी विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक बड़ा केन्द्र हो गया। इसके फलस्वरूप विदेशी कला की अनेक विशेषताओं को कलाकारों ने ग्रहण किया और उन्हें देशी तत्वों के साथ मिलाने में कुशलता का परिचय दिया। तत्कालीन एशिया तथा यूरोप की संस्कृति के अनेक उपादान मथुरा-कला के साथ घुल-मिल गए। कुषाण-कालीन मथुरा की मूर्तिकला में हमें यह बात प्रत्यक्ष देखने को मिलती है।

प्राचीन व्रज में मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में प्रायः लाल बलुए पत्थर का प्रयोग होता था। यह पत्थर व्रज में तांतपुर, फतहपुर सीकरी, रूपवास, बयाना आदि स्थानों में मिलता है और मूर्ति गढ़ने में मुलायम होता है। इस पत्थर पर प्रायः सफेद चित्तियां रहती हैं। कुछ खानों से निकला हुआ पत्थर सफेद दागों से रहित, बहुत बढ़िया किस्म का होता है।

पौराणिक देव—मूर्तियां

पौराणिक हिन्दू मूर्तिकला के विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बहुत ऊंचा है। यहीं सर्वप्रथम अनेक देवों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। पौराणिक देवी-देवताओं के मूर्ति विज्ञान के अध्ययन के लिए यहां की कला में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है। मथुरा नगर के अतिरिक्त महावन (प्राचीन गोकुल),

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सतोहा, नगला, बयाना कामवन आदि स्थानों से प्राचीन हिन्दू मूर्तियां मिली हैं। कामवन मध्यकाल में हिन्दू मूर्तिकला का एक वड़ा केंद्र हो गया था। यहां अनेक वड़े मंदिर थे, जिनके ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं। जो कलापूर्ण मूर्तियां कामवन में मिली हैं उनमें शिव, हरगौरी, सूर्य महिषमर्दिनी दुर्गा, विराट् रूप विष्णु शेषशायी आदि की प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका निर्माण ईसवी सातवीं से लेकर दसवीं शती तक विशेषतः गुर्जर-प्रतीहारों के शासक काल में हुआ।

जैन मूर्तियां

मथुरा में जैन मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल के पहले से होने लगा था। इस नगर के पश्चिम में कंकाली टीला नामक स्थान जैन धर्म का वहुत वड़ा केन्द्र था। १८८९ से १८९१ तक इस टीले की खुदाई की गई, जिसमें लगभग १५०० कलावशेष प्राप्त हुए। ये सभी लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। ये ईसवी पूर्व प्रथम शती से लेकर लगभग ११०० ई० तक के हैं। ऐसी वड़ी संख्या में इतनी प्राचीन जैन मूर्तियां भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलीं।

मथुरा-कला में प्राप्त जैन मूर्तियों को तीन मुख्य भागों में वाँटा जा सकता है—१. तीर्थंकर प्रतिमायें, २. देवियों की मूर्तियां तथा ३. आयागपट्ट आदि।

बौद्ध मूर्तियां

भारत में भगवान बुद्ध का पूजन कुषाण काल के कई शताब्दी पहले आरंभ हो चुका था। पर वह उनके चिन्हों की पूजा तक ही सीमित था। बुद्ध की मूर्ति का निर्माण नहीं हुआ था। शुंगकाल के अन्त तक हम यही स्थिति पाते हैं सांची, भारहुत, बोधगया सारनाथ आदि स्थानों से उस समय तक की जितनी वौद्ध कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं उन पर वोधि वृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप, भिक्षापात्र आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्तरूप में भगवान बुद्ध का पूजन कहीं नहीं। मथुरा से भी जो प्राचीन मूर्तियां मिली हैं उन पर इन चिन्हों का पूजन मिलता है। मथुरा में हिन्दुओं के वलराम आदि देवों तथा जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। वौद्ध धर्मानुयायियों में भी अपने देव को मानव-प्रतिमा के रूप में देखने की उमंग का उठना स्वाभाविक था। मथुरा के कुषाण शासक मूर्ति-निर्माण के प्रेमी थे और उस समय यहां भक्ति-प्रधान महायान धर्म प्रवल हो उठा था। फल-स्वरूप कुषाण-काल में मथुरा के शिल्पियों द्वारा भगवान् वुद्ध की मानव-मूर्ति का निर्माण हुआ। इधर गांधारप्रदेश में भी वौद्ध मूर्तियां वड़ी संख्या में वनाई जाने लगीं। मथुरा से प्राप्त वुद्ध और वोधिसत्व की प्रारम्भिक प्रतिमाएं प्रायः विशालकाय मिली हैं जैसी कि यक्ष-मूर्तियां मिलती हैं। कला के विकास के साथ साथ मूर्तियां अधिक सुन्दर वनने लगीं। मथुरा में गुप्त काल में निर्मित वुद्ध की कुछ प्रतिमाओं में वाह्य सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक गाम्भीर्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

ज्ञान या सम्वोधि प्राप्त होने के पहले वुद्ध की संज्ञा 'वोधिसत्व' थी और उसके वाद 'वुद्ध' हुई इन दोनों की मूर्तियों में अन्तर यह है कि वोधिसत्व को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलंकृत राजवेश में दिखाया जाता है, पर वुद्ध को इनसे रहित केवल वस्त्र (चीवर) धारण किए हुए। वुद्ध के सिर पर वालों का जटाजूट (उष्णीष) रहता है, जो उनके वुद्धत्व या ज्ञानसंपन्न होने का सूचक है। दोनों प्रकार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की मूर्तियां मथुरा में या तो खड़ी मिलती हैं या पद्मासन में बैठी हुई। द्वितीय प्रकार की मूर्तियां कुषाण-काल में अधिक मिलती हैं। गुप्तकालीन मूर्तियां प्रायः खड़ी उपलब्ध हुई हैं।

इन धार्मिक मूर्तियों के अतिरिक्त शक-कुषाण शासकों की कई प्रतिमाएं ब्रज से मिली हैं। इनमें कुषाण सम्राट् विम कैडफाइसेस तथा कनिष्क की अभिलिखित प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। मथुरा के स्तूपों के चारों ओर बनी वेदिकाओं पर लोकजीवन के अत्यन्त मनोरंजक चित्रण मिले हैं। इनमें आकर्षक भावभंगिमाएं प्रदर्शित करती हुई अप्सराओं या सुर-सुन्दरियों के आलेखन विशेष उल्लेखनीय हैं। अप्सराओं के अतिरिक्त ब्रज के कलाकारों ने यक्ष, किन्नर, सुपर्ण नाग आदि की प्रतिमाओं का भी प्रभावोत्पादक ढंग से आलेखन किया।

मिट्टी की भी बहुसंख्यक मूर्तियां ब्रज के विभिन्न भागों से मिली हैं। विभिन्न युगों के नागरिक तथा ग्रामीण जीवन पर ये रोचक प्रकाश डालती हैं। शुंग काल से लेकर गुप्त युग तक बनी मृण्मूर्तियों की संख्या अधिक है। ये या तो हाथ से गढ़कर बनाई जाती थीं या सांचों द्वारा। मौर्यकालीन मिट्टी की कुछ प्रतिमाएं मातृदेवियों की हैं। मुख्य कक्षों को सजाने के लिये तथा बच्चों के खेलने के लिये विविध प्रकार के खिलौने बनाये जाते थे। मथुरा में आनेवाले विदेशियों की भी अनेक आकृतियां प्राप्त हुई हैं। गुप्तकालीन मृण्मूर्तियां आकार में बड़ी हैं।

मथुरा कला का प्रभाव देशव्यापी रहा। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वह आदृत हुई। कुषाण-कालीन माथुरी कला में मानव-शरीर का चारुत्व-तत्व मूर्तिमान हो उठा। इस काल में धर्म को आकर्षक लौकिक रूप प्रदान करना मथुरा के शिल्पियों की महती देन है। गुप्तकाल में वाह्य सौन्दर्य के साथ आंतरिक आनन्द का समन्वय मथुरा के कलाकारों ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने मथुरा की ओर विशेष ध्यान दिया।

गुप्तयुग में उत्तर तथा मध्य भारत में अनेक कलाकेन्द्र विकसित हुए उनकी मूर्तिकला पर मथुरा-शैली का प्रभाव परिलक्षित है। अहिच्छत्रा, सारनाथ, देवगढ़, विदिशा, एरण नचना, भुमरा आदि स्थलों की गुप्तकालीन कला का अध्ययन इस दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

उत्तर-पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिण भारत में भी मथुरा की मनोरंजक कला-शैली आदृत हुई। वैदिक, जैन तथा बौद्ध धर्मों से संबंधित मूर्ति शास्त्र की अनेक विधाओं का प्रारम्भ मथुरा में हुआ। उसका विकास क्रमशः भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। गुर्जर-प्रतिहार, गाहड़वाल तथा पालवंशी शासकों ने गुप्तकालीन कला के अनेक तत्वों का संवर्धन किया। ये तत्व भारतीय सीमाओं को लांघकर दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में भी व्याप्त हुए।

ब्रज की वास्तु तथा मूर्तिकला न केवल राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास की जानकारी में सहायक हैं, अपितु शुद्ध कलात्मक दृष्टि से भी उसका वैशिष्ट्य है। ब्रज के कलाकारों ने सौदर्य तथा श्रृंगार के उदात्त तत्वों को मूर्त रूप देकर उन्हें शाश्वत रमणीयता से विभूषित किया। ब्रज की कला भारतीय कला के इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज में नृत्य और रास–पुरातात्विक साक्ष्य

रमेशचन्द्र शर्मा

भारतीय वाङ्मय में नृत्य का उल्लेख आदिकाल से मिलता है और पुरातत्व भी उसका साक्षी है किन्तु रास की प्राचीनता सन्दिग्ध है फलतः पुरातात्विक प्रमाणों का भी अभाव है। वैदिक साहित्य में नृत्य आमोद-प्रमोद के साधनों में से एक था। ऋग्वेद के ऋषि ने उषा की तुलना उस नर्तकी से की है जो अपने नग्न स्तनों को हिलाती थिरकती आती है—अधिपेशांसि वपते नृतुरि वापोर्णते वक्ष उजस्र वर्जहम [ऋ० १. ८२. ४] झांझ मजीरे [आघाटि १०।११४६।२] दुन्दुभि [१।२८।५] एवं तन्तुवाय जैसे कर्करि [२।४३।३] वीणा या वाण [१०।३२।४] और सुषिर वाद्य जैसे नाली [१०।१३५।७] का भी उल्लेख है। सिन्धु संस्कृति से प्राप्त अबसे लगभग साढ़े चार हजार वर्ष पुरानी नर्तकी की कांस्य प्रतिमा उक्त मन्त्र की सुन्दर पुष्टि करती है तक्षशिला के मीर माउण्ट से निकली प्राङ्मौर्यकालीन गुटिका को भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के १०८ कारणों में वर्णित स्थितियों में से एक का चित्रण करते बताया है। कालान्तर का भारतीय शिल्प नृत्य के दृश्यों से भरा पड़ा है। ब्रज में प्राचीनतम सांस्कृतिक अवशेष कुछ ताम्रयुगीन उपकरणों के रूप में मिले हैं किन्तु उन पर नृत्य का कोई अंकन नहीं है। तत्पश्चात भूरे रंग के काली रेखाओं से चित्रित पात्र भी मानवाकृतियों से सर्वथा शून्य है। प्राङ्मौर्ययुगीन मृण्मूर्तियां स्त्री आकृतियों का प्रतिनिधित्व अवश्य करती हैं किन्तु इनमें किसी नृत्य मुद्रा का खोज निकालना संभव नहीं है। मौर्यकालीन मिट्टी की स्त्री आकृतियां अनेक आभूषण और सुन्दर केश विन्यास से व्यवस्थित हैं किन्तु उन्हें भी नर्तकी अथवा नृत्य मुद्रा में मान लेना निष्पक्ष अध्ययन नहीं होगा। अवश्य ही मौर्य-युगीन सजी धजी इन गुड़ियों ने ब्रज शिल्प में नृत्य के विकास में अच्छी पृष्ठभूमि का निर्वाह किया होगा। उत्तर मौर्य काल की दो कला कृतियां पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित हैं जिनमें एक पर-खम से मिला विशालकाय यक्ष है और दूसरी नगला झींग से पिछले दिनों मिली यक्षी हैं जिनमें नृत्य का कोई आभास नहीं है। शुंग काल अथवा दूसरी शताब्दी ई० पू० से हमें ब्रज की मिट्टी तथा प्रस्तर कला में नृत्य भाव ही नहीं वाद्य तथा संगीत का भी अंकन मिलने लगता है।

किन्तु पुरातात्विक सामग्री के अभाव का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि यहां के लोकजीवन में नृत्य अथवा रंगमंच का भाव सहसा शुंग काल में प्रविष्ट हो गया और उसके पूर्व इसका प्रचलन नहीं था। पांचवीं शती ई० पू० में जन्मे पाणिनि ने अष्टाध्यायी में संगीत, वाद्य कर्म [४-४-५५-५६] को तो शिल्प माना ही है, नृत्य [३, १. १४५] और गायन [३. १. १४६-१४७] को भी शिल्प की कोटि में रखा है। नृत्य के साथ मद्रक, झर्झर [४. ४. ५५-५६] तथा वीणा का भी उल्लेख कई सूत्रों में किया है। वीणा के तारों से निकली ध्वनि पणन् कही गई है स्वणो वीणायां च [३. ३. ६५] अभिनय के लिए नाद्य शब्द

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

का प्रयोग है [४. ३ १२९] अष्टाध्यायी से लगभग १५० वर्ष बाद लिखे कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य को संगीत का अंग माना है। २. २७। ईसा से पहले लिखे गये जातक कथानकों में तूर्य शब्द से वृन्द वाद्य का बोध कराया गया है। तूर्य में भाग लेने वाले को तूर्यांग कहते थे। ४.।२२।. दो बाजों की संगति या जोड़ भी मिलाया जाता था जैसे मृदंग और पणव की संगति को मार्दंगिक-माणविकम कहते थे। कहीं कहीं पांच वाद्य वादक एक साथ बजाते थे जिन्हें पंचांगिक तूर्य। जा० १.३२। बोलते थे इनमें वीणावादिनी स्त्री, पाणिवादक, माड्डुकि झाझंरिक और वांशिक सम्मिलित थे। दर्दर तथा, कुम्भदूनिक अथवा घटद्दर शब्दों से ज्ञात होता है कि संगीत महोत्सव में मिट्टी के बने वाद्य यन्त्र भी बनाये जाते थे (जा० ६।२७६)। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र किस युग की रचना है यह बड़ा विवादास्पद है तथापि अधिकतर विद्वान् इसे ईसा से पूर्व ही मानते हैं इसमें नृत्य व नाट्य का सांगोपांग वर्णन है।

इस प्रकार शुंग तथा पूर्ववर्ती साहित्य ने नृत्य एवं अन्य ललित कलाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया और व्रज का पुरातत्व भी इससे अछूता न रहा। यह निर्विवाद तथ्य है कि शुंगयुगीन मथुरा कला पर मध्यप्रदेश की भरहुत शैली की छाप पड़ी। वहां से मिले एक नृत्य दृश्य को अभिलेख में मम्मद या साडक कहा है 'साडकं सम्मदं तुर देवानं' इसमें नृत्य, गीत और वाद्य तीनों की समष्टि है। यह कोई हर्षोत्सव प्रतीत होता है। इस प्रकार के अनेक दृश्य हमें व्रज के प्राचीन स्थापत्य में मिलते हैं। शुंग कालीन एक स्तम्भ भाग [मथुरा संग्रहालय सं० आई ११] उत्कीर्ण नृत्य दृश्य में किसी सभ्रान्त युगल के सम्मुख एक स्त्री नाच रही है और उसकी संगति ढोलक, मृदंग, वीणा द्वारा दी जा रही है। इसी के एक अन्य में एक स्त्री को नृत्य के लिए सजाया जा रहा है। उसके दोनों हाथ ऊपर उठे सिर पर टिके हैं और एक पुरुष उसका कटि वस्त्र बांध रहा है। इसी युग का वह वेदिका स्तंभ बड़ा प्रसिद्ध है [जे० २] जिस पर एक नर्तकी पूरी सजधज के साथ थिरकती सी मंचोन्मुख होना चाहती है। उसका केश पाश बड़ा कलात्मक है शरीर अनेक आभूषणों से विभूषित है। पैरों में पैंजनियां हैं। इससे व्रजभूमि के अब से २१०० वर्ष पुराने विकसित रंग मंच का बोध होता है। इससे ऋग्वेद में वर्णित नर्तकी के हाव भावों का सहसा स्मरण हो आता है। इसी युग की एक अन्य प्रसिद्ध कलाकृति मथुरा के प्रसिद्ध प्राचीन जैन तीर्थ कंकाली टीले से मिली है जिसमें भगवान् कृष्णदेव की सभा में नीलांजना अप्सरा का नृत्य दिखाया है। कुछ लोग अन्य वाद्य यंत्रों से संगीत भी दे रहे हैं। यह दृश्य बड़ा आकर्षक व भावपूर्ण है। इसमें रंगमंच का पूर्णरूप भी दर्शनीय है। दो स्तंभों के मध्य अप्सरा नाच रही है उसके दाहिने ओर पाणविक है और बाईं ओर मार्दगिक। दूसरे व तीसरे खम्भे के बीच पार्श्व में एक व्यक्ति ढोलक बजा रहा है और दो अन्य व्यक्तियों के वाद्य यन्त्रों का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। रंग मंच के ऊपर खपरैलनुमा छत है। पूर्व कुषाण और कुषाण युग में नृत्य व संगीत के अनेक दृश्य मिलते हैं। पंच तन्त्री वीणा लिए इंद्र के गायक सखा पंचशिख गन्धर्व का प्रभूत अंकन है। ललित विस्तर में मथुरा की प्रसिद्ध गणिका वासवदत्ता का सविस्तार वर्णन है जो कालान्तर में आचार्य उपगुप्त की शिष्या बन गई। गणिकाओं का भी प्राचीन युग में सम्मान का स्थान था। कामसूत्र [१. ३. ७] के अनुसार वेश्याएं शील, रूप, गुण से युक्त तथा ललित कलाओं के प्रयोग से गणिका का स्थान प्राप्त कर समाज में आदृत होती है। उन्हें अनेक धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करते बताया है। गणिकाएं कमी-कमी कुल परम्परा के साथ चलती थीं। ज्येष्ठा गणिका लगा शोभिका की पुत्री कनिष्ठा गणिका वसु ने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भगवान महावीर की स्मृति में एक देविकुल अर्थात मन्दिर, एक सभा भवन, एक प्याऊ तथा एक शिलापट्ट स्थापित किया [मथुरा संग्रहालय सं० क्यू २]। इस अभिलिखित आयागपट्ट में दो स्त्रियां नृत्यमुद्रा में स्तूप का स्पर्श करती दिखाई गई हैं संभवः है इनमें से एक लवणशोभिका और दूसरी वसु हो।

कंकाली टीले से ही मिला एक अन्य आयोग पट शिवयशा ने स्थापित किया था जो फल्गुयश नामक नर्तकी की पत्नी थी। यह अब राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है। इसमें अंकित स्तूप के दोनों ओर दो तरुणियां नृत्य वेश में अंकित है ये शिरोभूषण, ग्रैवेयक, स्तनहार, मेखला चूड़ियां व भारी खड़ुए पहने हैं। शरीर पर हल्का झीना वस्त्र है किन्तु आवक्ष निर्वसन है। कुछ आयोग पटों में चक्र अथवा स्वस्तिक के चारों एक स्वतंत्र शोभा पट्टी में दिक् कुमारियां बड़ा जूड़ा बांधे, विशालदुकूल, अधोवस्त्र व अनेक आभूषणों से युक्त हो बड़ी गतिपूर्ण मुद्रा में हैं जो नृत्य की स्वाभाविक मुद्रा है। एक प्रस्तर पर भगवान महावीर के जन्म से पूर्व की उस घटना का अंकन करता है जब देवताओं के अनुरोध पर इन्द्र ने सन्तति के अभिरक्षक देवता नैगमेश द्वारा ब्राह्मण स्त्री देवनन्दा के गर्भ से महावीर के भ्रूण को क्षत्राणी त्रिशला के गर्भ में प्रतिष्ठापित किया। इस महान कार्य की समाप्ति पर देवांगनाएं हर्षोन्मुख हो नाचने लगीं उनका नृत्योत्सव मनोहारी ढंग से इस कुषाण युगीन कलाकृति में अंकित किया है जो अब राज्य संग्रहालय, लखनऊ में विद्यमान है। इसमें तीन स्त्रियां मूढ़े पर बैठी वाद्य यंत्र बजा रही हैं। एक के हाथ में वीणा से मिलता एक तन्तु वाद्य है अन्य दो पीठ किए हैं अतः बाजों का अनुमान नहीं लगता, चार स्त्री भिन्न मुद्राओं में नाच रही हैं। एक प्रस्तर खण्ड उस घटना का चित्रण करता है जब दो नाग राजाओं नन्द और उपनन्द ने भगवान बुद्ध का जन्म के पश्चात प्रथम अभिषेक किया। उस समय देवताओं ने हर्ष पंचतूर्यों को बजाया। इनमें पांच वाद्य यंत्रों में क्रमशः वंशी, मृदंग, वीणा, ढोल और शंख है। इस प्रकार सुषिर अनवद्ध तथा तत् तीनों प्रकार के वाद्य यंत्रों की पंचतूर्य में समष्टि थी। कुषाण काल अर्थात् पहली व दूसरी शताब्दी में हमें अन्तःपुर के कुछ दृश्य मिलते हैं जिनमें नृत्य व संगीत भी प्रिय विषय हैं। महोली की पौर से मिली एक द्वार शाखा [पी० ७९] पर एक कक्ष में तीन स्त्रियां हैं जिनमें एक वंशी बजा रही है, एक सप्त तन्त्री वाद्य यन्त्र लिए हैं और तीसरी खरताल जैसी कोई चीज अपने दाहिने हाथ में बजाती दीखती है।

कुषाण युग के वेदिका स्तम्भ मथुरा शैली के अनन्य रत्न हैं। इनमें स्त्री आकृतियों को बड़ी उत्तमता से उकेरा गया है। शालभंजिका कहीं जाने वाली रमणियां वृक्ष के नीचे नृत्य मुद्रा में स्थित रहती हैं उनके शरीर का लावण्य और भाव-भंगियां तत्कालीन प्रमोदी समाज की अच्छी परिचायक है। एक स्तम्भ के ऊपरी भाग पर एक पुरुष किसी वंशीवादक किशोर को बलपूर्वक कहीं ले जाने की चेष्टा कर रहा है संभव है किसी संगीत गोष्ठी के लिए यह हठ निमन्त्रण हो। कुछ स्तम्भों में रमणियों को द्विधा दिखाया है सुन्दर शरीर वेषभूषा और नृत्य मुद्रा से जहां अत्यन्त कमनीय और आकर्षक दीखती है वहीं खड्ग धारण करने से वे कंटकाकीर्ण गुलाब के फूल की भाँति केवल दर्शन मात्र के लिए हैं। प्रतीत होता है कि ये अन्तःपुर कन्यायें राजा का मनोविनोद और अंग रक्षण दोनों कर्तव्यों का पालन करती थी। कुछ कला समीक्षक उनके माध्यम से खड्ग नृत्य का अंकन मानते हैं। भगवान् बुद्ध की जीवन लीलाओं में मारधर्षण के प्रसंग में नृत्य का चित्रण कुषाण युगीन कलाकार का प्रिय विषय था। उनकी तपश्चर्या भंग करने के लिए मार ने अनेक सुन्दरियों की सहायता से तपस्थली को रंगस्थली बना

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दिया। तत्कालीन बौद्ध साहित्य में इन रमणियों की विलास चेष्टाओं का प्रभूत वर्णन है। शिल्पियों ने काम की इन सहचरियों को कलात्मकता से अंकित किया है। यहां यह स्पष्ट कर देना प्रसंगानुकूल होगा कि कुषाण युग समृद्धि, सुख, वैभव की दृष्टि से स्वर्ण युग था। ललित कलाओं का भी यहां अभूतपूर्व पल्लवन व उन्नयन हुआ। इस युग में प्रणीत वात्स्यायन के कामसूत्र में ६४ कलाओं का उल्लेख है जिनमें प्रथम गीत द्वितीय वाद्य और तृतीय नृत्य बताये हैं। सूची में इन्हें सर्वोपरि स्थान देते से इन तीनों कलाओं के सामाजिक महत्व पर प्रकाश पड़ता है [कामसूत्रम् १।३।१५]।

रास—आइए अब पुरातत्व के परिवेश में थोड़ा रास का विवेचन हो जाय। रास का मूल शब्द रस समस्त ललित कलाओं के शरीर का प्राण है। किन्तु रस से रास और वह भी व्रज में प्रचलित वर्तमान परम्परा से सम्बन्धित रास किस युग में आरम्भ हुआ, बड़ा विवादास्पद है। प्रायः विद्वान् श्रीमद्-भागवत की रास पंचाध्यायी से ही इसकी उत्पत्ति और विकास मानते हैं। व्रज के अनेक लीला केन्द्र व रास मण्डलियां अधिकांशतः उसी परंपरा का निर्वाह कर रही हैं। किन्तु श्रीमद्भागवत का प्रणयन-काल अनिश्चित काल होने से काल सम्बन्धी गुत्थी नहीं सुलझा सकते हैं। कुछ विद्वान् तो इसे ९वीं शताब्दी का मानते हैं। संस्कृत शब्द कोषों में गोपियों और कृष्ण का सम्वेतनृत्य रास बताया है। शब्द कल्पद्रुम में रास को 'गोपीनां क्रीड़ा भेदः' कहा है [पृ० १५८] ब्रह्म वैवर्त पुराण के प्रकृतिखण्ड के २५वें अध्याय में कार्त्तिकी पूर्णिमा को सौ गोप और सौ गोपियों का नृत्य रासमण्डल मना है।

कार्तिकी पूर्णिमायां च कृत्या तु रासमण्डलम् ।
गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ।।

विष्णु पुराण के पंचम खण्ड के १३वें अध्याय में भी रास का वर्णन है। किन्तु प्राचीनता की दृष्टि से सबसे प्रामाणिक हरिवंश पुराण है जिसे उत्तर कुषाण युगीन रचना माना जाता है। इसमें रास शब्द तो नहीं आया है किन्तु वर्णन पूर्ण रूप से रास का ही है—

तास्तु पंक्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्यः कृष्ण चरितं दन्दशो गोप कन्यकाः ।।

हरिवंश/विष्णु पर्व अ० २०/२५

अर्थात् गोपियां मण्डलाकार पंक्ति बनाकर खड़ी होतीं और प्रत्येक गोपी के बाद एक कृष्ण थे। यहां द्वन्द्वशः शब्द का विशेष महत्वपूर्ण है जो महारास की कुंजी है। रास के प्रचलन के कुछ अप्रत्यक्ष संकेत जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में मिलते हैं। व्रज में कौमुदी महोत्सव का उल्लेख है जो आश्विन या कार्त्तिकी पूर्णिमा को रात्रि में सम्पन्न होता था। आवश्यक चूर्णि के अनुसार अर्हद्दास ने इस उत्सव का विशेष आयोजन किया। इसमें नगर की समस्त स्त्रियां भाग लेती थीं। कामसूत्र में 'कौमुदी जागरः' [१. ४.२७] नामक उत्सव का प्रचलन बताया है जो आश्विन पूर्णिमा की रात्रि को छिटकती चांदनी में मनाया जाता था। इसी प्रकार वात्सायन की उद्यान क्रीड़ा [१. ४. १४] और रास की पृष्ठभूमि एक ही है। कामसूत्र [२. १०.१२] में आए हल्लीसक शब्द की व्याख्या करते हुए अभिनव गुप्त ने स्पष्ट किया है कि हल्लीसक क्रीडनैरिति। इसी को जयमंगला टीका में यशोधर ने बताया है कि एक नायक का अनेक स्त्रियों के साथ घेरा बांध कर नृत्य करने को हल्लीसक कहते हैं। जैसे श्रीकृष्ण-गोपियों का नृत्य। इस प्रकार यदि हल्लीसक को रास का पर्याय मान लिया जाय तो दूसरी शताब्दी ई० तक रास की परम्परा पहुंचती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

किन्तु विल्सन ने विष्णु पुराण का अध्ययन करते हुए नाट्यशास्त्र का एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें रास शब्द आया है, [पृ० ४२४] इसमें ६४ युग्मों द्वारा ताल व लय से युक्त नृत्य का प्रदर्शन रास माना है—

अनेक नर्त्तकी योज्यं चित्र ताल लयान्वितम।
आचतुः षष्टि युग्मत्याद्रासकं मसृणोद्धतम् ॥

रास शब्द का ईसा से पूर्व प्रचलन हुआ हो अथवा नहीं किंतु ब्रज के शुंग कालीन कतिपय मृत्तिका फलक स्त्री व पुरुषों का समवेत अंकन करते हैं। ये प्रणय या आसक्त भाव में भी दिखाई देते हैं। सबसे कुतूहलपूर्ण वह फलक है जिसमें एक पुरुष दो स्त्रियों के साथ एड़ी उठा कर नृत्य में लीन है [३४. २४७४] किंतु रास की इस संक्षिप्त झलक का विकास नहीं हो पाता और हम १२०० वर्ष तक रास के पुरातात्विक अवशेषों से वंचित रहते हैं कारण जो भी हो किन्तु स्थिति यथार्थ है। सत्य के इस दीर्घ आयाम को पार कर जब पुरातत्व व शिल्प का छात्र महावन के चौरासी खम्भा मन्दिर के मध्य युगीन खम्भों की आत्मा को टटोलता है तो कुछ भग्न मानवाकृतियां उसके सम्मुख थिरकने सी लगती है और अधिक परिश्रम करने पर उसे स्पष्ट होगा कि इनमें से एक पुरुष दूसरी स्त्री और फिर पुरुष व स्त्री आकृतियों की पुनरावृत्ति है उनकी गति और ओज भी सराहनीय है। काश कि स्तम्भों पर उत्कीर्ण यह रास मण्डली सुरक्षित होती और रास के विकास का हमें यथार्थ सन्देश सुना पाती। ब्रज के रास के वर्तमान स्वरूप के प्रवर्तन का श्रेय मध्ययुगीन वैष्णव आचार्यों को है जिन्होंने श्रीकृष्ण की लीलाओं का साक्षात्कार कर जनमानस में उनका प्रचलन किया। किन्तु मुस्लिम शासन की मूर्ति विरोधी नीति के फलस्वरूप ब्रज का शिल्प मौन हो गया और कागज, भित्ति और पट अथवा पिछवइयों में रासमण्डल का अंकन होता रहा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मथुरा कला में वाद्य यंत्र

शिवदयाल त्रिवेदी

संगीत का जन्म कब और कैसे हुआ विद्वानों में यह एक विवादास्पद विषय रहा है। फिर भी लगता है मनुष्य सभ्यता के अपने प्रथम चरण से ही संगीत वादन से विमोहित होता आ रहा है। प्रारम्भ में वह प्रकृतिजनित संगीत-कलरव, गुंजन, कम्पन, गर्जन आदि से प्रभावित हुआ होगा और शनैः शनैः उसने इनका कृत्रिम प्रयोग स्वान्तःसुखाय प्रारम्भ किया होगा। प्राग् ऐतिहासिक युग के दरी चित्रों में नृत्य एवं वाद्यों के प्रयोग के दृश्य अंकित है।[1] मोहन जोदड़ो के उत्खनन से नर्तकी की मूर्ति उपलब्ध हुई है। वाद्ययंत्रों का प्रचलन भी इस समय अवश्य रहा होगा। वैदिक साहित्य में मृदंग, वीणा, डमरू आदि वाद्ययंत्रों का उल्लेख है। रामायण और महाभारत महाकाव्यों में भी अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों की चर्चा की गई है। उदयन वीणा का बहुत अच्छा वादक था जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाया करते थे। पूर्ववर्ती और अनुवर्ती संस्कृत साहित्य में इस बात के अनेक प्रमाण बिखरे पड़े हैं जहां अनेक वाद्ययंत्रों का उल्लेख हुआ है।

पुरातत्व भी वाद्ययंत्रों के प्रचलन, काल, देश, परिस्थिति आदि का अध्ययन करने में सहायक है। मथुरा की प्रस्तर मूर्तिकला में वाद्ययंत्रों का अंकन शुंगकाल से ही मिलने लगता है और मध्यकाल तक अनवरत रूप से प्रचलित रहता है। श्री जोशी[2] का यह कथन कि शुंगकाल में वाद्य संगीत के अधिक प्रमाण नहीं मिलते, समीचीन नहीं लगता क्योंकि शुंग काल में ही वाद्ययंत्रों एवं नृत्योत्सवों के अनेक अंकन मथुरा-कला में मिलते हैं। हिन्दू, बौद्ध व जैन तीनों धर्मों से संबंधित कला-अंकनों में विभिन्न वाद्यों को स्थान मिलता है। हिन्दुओं के आयुधों, बौद्धों के पंचतूर्य एवं जैनों की देव-दुन्दभी में कतिपय वाद्यों का समावेश हुआ है। इसके अतिरिक्त जुलूसों, नृत्योत्सवों तथा अन्य अवसरों पर भी इन वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार वाद्यों के चित्रण के दो स्वरूप हुए एक तो धार्मिक दूसरा धर्मेतर दृश्यों में लोकरंजनार्थ। प्रस्तर प्रतिमाओं में इन वाद्ययंत्रों के बार-बार उकेरने से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्राचीन ब्रज क्षेत्र में इसका पर्याप्त प्रचलन था और लोग आमतौर पर इनसे परिचित थे। काल और परिस्थिति के अनुसार वाद्यों के रूप, आकार आदि में समय समय पर परिवर्तन भी होता रहा।

अध्ययन की सुविधा के लिए हम वाद्ययंत्रों को प्रयोग के आधार पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) तत् (२) सुषिर (३) अवनद्ध।

१. तत् वाद्य यंत्र—इसके अन्तर्गत वे वाद्य आते हैं जिन्हें तार या तांत लगाकर बजाया जाता

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला पृ० १४

२. श्री उमेश जोशी—भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० १४७ व १४९।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। वीणा इनमें प्रमुख है जिसका कि अंकन अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। वेदों में इसके अनेक नाम मिलते हैं और कला में विविध रूप भी। वीणा स्त्री और पुरुष समान रूप से बजाते थे। वीणा का प्रारम्भिक प्रकार एक नाव की तरह बनावट में होता था जिसका कि एक सिरा कुछ ऊंचा उठा रहता था और यही रूप कुछ भिन्नताओं के साथ गुप्तकाल तक प्रचलित रहा। मथुरा कला में पंचतंत्री और शततंत्री वीणा के अंकन मिलते हैं। बुद्ध के प्रथमाभिषेक अंकन (००. एच० २) में जिन वाद्ययंत्रों को दिखाया गया है उनमें वीणा भी है। यह पंचतंत्री वीणा है जिसके पांच तारों को स्पष्ट गिना जा सकता है। एक अन्य छोटे से प्रस्तर खण्ड (००. जी० ४८) में एक स्त्री परंपरागत निर्मित वृक्ष के नीचे बैठकर वीणा बजाती हुई दिखाई गई है। वीणा का वही प्राचीन स्वरूप है। इसमें बहुत से तंत्र दिखलाई पड़ते हैं। संभवतः यह शततंत्री वीणा है। इसका प्रयोग नृत्योत्सवों पर भी होता था इसका प्रमाण हमें शुंगकाल के प्राप्त ऊर्ध्वपट्ट (आई० ११) पर अंकित एक दृश्य से होता है जिसमें एक व्यक्ति वीणा बजाते हुए खड़ा है। मथुरा संग्रहालय के ही एक और ऊर्ध्वपट पर अंकित दृश्य में एक स्त्री मोढ़े पर बैठी हुई बहुत सुन्दर ढंग से वीणा बजा रही है। दूसरी स्त्री सामने के मोढ़े पर बैठी हुई सम्भवतः गा रही है। पार्श्व में खड़ी हुई एक स्त्री वंशी बजा रही है। (पी० ७९) राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित एक शिलापटट्[1] (सं० जे० ६२६) के एक और नैगमेश द्वारा महावीर के भ्रूण परिवर्तन का दृश्य है और दूसरी ओर नृत्य गायन का। दूसरी ओर वाले दृश्य में वीणा का भी सुन्दर अंकन है। यह शिलापट्ट दूसरी शताब्दी का है और मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुआ था। इसी टीले से प्राप्त एक और प्रस्तर खण्ड[2] में अंकित पुरुष जो देखने से विदेशी जैसा लगता है वीणा बजा रहा है और एक एक स्त्री दोनों ओर परिचर्या में खड़ी है। इस प्रकार वीणा के अंकन प्राप्त होते हैं।[3] गुप्तकाल में तो वीणा का अंकन मुद्राओं पर भी हुआ। मध्यकाल में इसका स्वरूप पूर्ण बदल गया था। उत्तर मध्यकाल की मूर्तियों में तो वीणा आधुनिक सितार की तरह बनाई गई है। यह आकृति पाल शैली की सरस्वती मूर्तियों के हाथों में दिखलाई जाने वाली वीणा के अनुरूप है।

सुषिर वाद्य—मुख द्वारा वायु के दबाव का प्रयोग करके जो वाद्य बजाये जाते हैं उन्हें सुषिर कहते हैं। मथुरा कला में अंकितहोने वाले इस श्रेणी के वाद्य हैं—वंशी, शंख, तुरही आदि हैं। वंशी का अंकन शुंग काल से ही प्रारम्भ हो जाता है। सांची में एक व्यक्ति अंग्रेजी की उल्टी वी की तरह का वाद्य मुंह से बजा रहा है। वंशी का अंकन अमरावती और अजन्ता में भी हुआ है। इसे बांसुरी भी कहा जाता है। क्योंकि बांस की बनती है। इसे उत्तर मध्यकाल में मुरली भी कहा जाने लगा। इसमें स्वर के लिए छः से आठ तक छेद होते थे और मुख के समानान्तर दाहिनी ओर को पट करके बजाई जाती थी। आज भी प्रायः उसका वही रूप प्रचलित है। जो प्राचीन काल में था। कृष्ण के साथ वंशी का अंकन तो बहुत बाद की बात है परन्तु यह इस क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय थी, इसके अनेक प्रमाण मथुरा-कला के माध्यम से प्रकट होते हैं। बुद्ध के प्रथमाभिषेक (०० एच० २) के पांच वाद्यों में वंशी को ऊपर की ओर

---

१. श्री वी० ए ० स्मिथ—दि जैन स्तूप एण्ड अदर एन्टीकुटीज फलक सं० XVIII

२. वही, फलक सं० XXXIII चित्र २।

३. मथुरा संग्रहालय के अन्य अंकनों में भी वीणा का प्रदर्शन हुआ है पर उनका आकार आदि प्रायः एक सा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रदर्शित किया गया है। इसमें बने हुए आठ छिद्र भी स्पष्ट हैं। कुषाण काल के ही अन्य छोटे से प्रस्तर खण्ड में एक स्त्री को वंशी बजाते हुए दिखलाया गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियां भी वंशी वादन में कितनी रुचि लेती थीं (एफ-१७)।

शंख एक समुद्री जीव के मृत शरीर का शुष्क रूप है और इसे धार्मिक अनुष्ठानों, जुलूसों आदि सुअवसरों पर बजाया जाता था। इसके ऊपरी भाग में गरारेदार छिद्र होता है जिसमें फूंक मार कर ध्वनि की जाती है। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि एक ही प्रकार का स्वर इससे ,निकल सकता है पर ऐसा नहीं है। संगीत पारिजात के अनुसार वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है, उसमें मुख का छिद्र बेर के बराबर होता है तथा उसके ऊपर पतली धातु का कलश लगाते हैं। इस कलश को मुख में रख कर शंख को वाद्य की भांति बजाया जाता है।[१] मथुरा कला में शंख दो रूपों में प्रयुक्त हुआ है आयुध रूप में और दूसरे वाद्य कोटि में। विष्णु के हाथ में शंख को आयुध रूप में प्रारम्भ से ही दिखाया गया है और वे इसे विविध रूप से धारण किये हुए हैं।[२] पूर्व मध्यकाल से तो इसका अंकन आयुध पुरुष रूप में भी होने लगा।[३] परन्तु शंख यहां निश्चेष्ट है। इसे मथुरा कला शैली में वाद्य के रूप में कार्यरत भी दिखलाया गया है। एक शिलापट्ट (०० आई० ३८) पर अंकित वितत वाद्यों के साथ एक व्यक्ति शंख बजा रहा है। वह कितनी तेजी से उसमें स्वर दे रहा है, यह उसके अंकन की स्थिति से ही स्पष्ट हो जाता है। शंख को एक मांगलिक चिन्ह के रूप में भी अंकित किया जाता रहा है। यह शंख निधि का प्रतीक है। हाल ही में प्राप्त एक छत्र में अन्य मांगलिक चिन्हों के साथ शंख को भी अंकित किया गया है।[४] लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित एक वेदिका स्तम्भ पर अंकित शंख से मुद्रायें निकलती दिखलाई गई हैं।

लखनऊ संग्रहालय में एक छोटे से प्रस्तर खण्ड[५] पर एक स्त्री मुख से वाद्य यंत्र बजा रही है जो बिलकुल 'माउथ आरगन' जैसा ही है। एक पंक्ति में बराबर बराबर दूरी पर आठ स्वरछिद्र बने हुए हैं। यह कुषाणकालीन मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई थी। इसका अर्थ है कि इतने प्राचीन काल में भी बृजवासियों को इस वाद्य यंत्र का ज्ञान था जिसे आज आधुनिक समझा जाता है।

तुरही का अंकन भी मथुरा कला में मिलता है।

अनवद्ध वाद्य—अनवद्ध या अनद्ध वाद्य चमड़े से मढ़े और अन्दर से पोले होते हैं। इन्हें हाथ या किसी अन्य वस्तु से पीट पीट कर बजाया जाता है। मथुरा कला में अंकित मृदंग, ढोलक, ढप, मंजीरा, झांझ, डमरू आदि वाद्य इस श्रेणी में आते हैं। मृदंग का अंकन सांची से ही प्रारम्भ हो जाता है। मृदंग

---

१. श्री चुन्नीलाल 'शेष' द्वारा लिखित 'अष्ट छाप के वाद्ययंत्र' से उद्धृत।
२. डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी—प्रारम्भिक विष्णु मूर्तियों का एक अध्ययन।
संग्रहालय—पुरातत्व पत्रिका अंक २, पृष्ठ ११ रेखा चित्र ११।
३. डा० जितेन्द्रनाथ बनर्जी—'डेवलेपमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी' द्वितीय संस्करण पृष्ठ ५३७।
४. श्री आर० सी० शर्मा—'न्यू रेयर स्कल्पचर्स इन मथुरा म्यूजियम'
संग्रहालय-पुरातत्व पत्रिका पृ० ७४ चित्र ३।
५. डा० वी० एस० अग्रवाल—'स्टडीज इन इन्डियन आर्ट पृ० १७२, चित्र १०२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आकार में ढोलक से कुछ लम्बा होता है। शुंगकाल के ऊर्द्धपट्ट (आई० ११) में एक व्यक्ति के पास दो वाद्य यंत्र रखे हैं एक को बायें हाथ से ढोलक की तरह बजा रहा है जब कि दाहिने हाथ से दूसरे वाद्य को तबले की तरह बजा रहा है। तबला को मध्यकालीन उत्पत्ति समझा जाता है। सम्भव है कि इसका यही स्वरूप इस काल में प्रचलित हो भले ही उसे इस नाम से उस समय न जानते हों। यह मृदंग और ढोलक संयुक्त रूप से बजाने का भी अभ्यास हो सकता है। बुद्ध के प्रथमाभिषेक (एच० २) में भी न केवल ढोलक का ही अंकन है अपितु इसके बजाने के लिए एक टेढ़ी चोप भी प्रदर्शित की गई है। अलग से मृदंग का अंकन भी बहुत सुन्दर हुआ है। एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण नगर द्वार से पूजनार्थ जुलूस निकल रहा है (आई० ३८) इनमें तीन व्यक्तियों के हाथ में ढप है। ढप पीटने के लिए इनके हाथों में ताड़ने की वस्तु भी है। ढप गोल आकार का चर्म से मढ़ा वाद्य यंत्र होता था। यह छोटे बड़े भी होते थे जैसा कि इस पट्ट के अंकन में दिखाया गया है। मंजीरा भी अनवद्ध या वितत् वाद्यों में आता है। दो बराबर के यन्त्रों को आपस में टकराकर बजाया जाता है, जिनसे झनकार निकलती है। इनके भी बड़े और छोटे आकार होते थे जिनका अंकन मथुरा कला में मिला है। डमरू का अंकन गुप्तकाल से प्रारम्भ हो जाता है।

इस प्रकार वाद्य यन्त्रों के अनेक अंकन मथुरा कला में मिले है जिन सब का उल्लेख छोटे से लेख में संभव नहीं है। वस्तुतः इस विषय पर एक वृहद् शोध की आवश्यकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का काम्यकवन

श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश'

भारतवर्ष के वन अपने अंचल में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों और पौराणिक उपाख्यानों को छिपाये हुए हैं। ब्रज का काम्यक वन भी जिसे जनभाषा में आज कामा, कमई या कामवन कहते हैं पौराणिक और ऐतिहासिक धार्मिक और राजनैतिक महत्व का स्थल रहा है। वाराहपुराण में लिखा है कि—

"चतुर्थम् काम्यकवनं वनानांवनमुत्तमम्।
ततो गत्वा नरो देवि ममलोकमहीयते॥"

वैष्णव सम्प्रदाय में इसे "आदि वृन्दावन" कहा जाता है यहाँ वृन्दावन की अधीश्वरी वृन्दा देवी का भी मन्दिर है। यहाँ व्योमासुर अघासुर आदि की गुफाएँ भी हैं। पुराणों के अनुसार कामवन तीर्थों का वन है यहाँ चातुर्मास में समस्त तीर्थ निवास करते हैं इसी कारण ही आज भी यहाँ समस्त प्रमुख तीर्थों के नाम के स्थल हैं। जिनकी शोध और पुनर्निर्माण का कार्य शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्री वल्लभाचार्य तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री निम्बार्काचार्य ने किया था। इसी कारण आज शतियों से इन दोनों सम्प्रदायों के आचार्यों के नेतृत्व में सहस्रों नरनारी भारत के कोने कोने से आकर ब्रजयात्रा करते हुए यहाँ निवास करते हैं।

महाभारत वनपर्व में उल्लेख मिलता है कि द्यूत में पराजित पांडव महर्षि धौम्य से स्वस्ति आशीर्वचन प्राप्त कर विप्रों के साथ काम्यक वन में आए थे—

"ततः कृतस्वस्त्ययना धौम्येन सह पाण्डवा।
द्विज संघे परिवृता प्रययुः काम्यकं वनम्॥"

पांडवों से मिलने हेतु विदुर, संजय भी इस वन में आए थे। भीमसेन ने वकासुर के भाई किर्मीर राक्षस का जो यहाँ ही निवास करता था वध किया था। कामवन में पाण्डव, कुन्ती तथा श्रीकृष्ण की प्रतिमाएँ भी हैं।

काम्यकवन और काम्यक नगर की प्राचीनता का प्रमाण एक शिलालेख से लगता है। उसमें यहाँ गुर्जर प्रतिहारवंश के शासन का भी उल्लेख है। यह शिलालेख वर्तमान कामवन के चौरासी खम्बा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है आठवीं शती के इस लेख में गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के राजाओं की वंशावली तथा उनकी एक रानी वत्सलिका द्वारा विशाल विष्णु मन्दिर बनाने का वर्णन है। यह ब्राह्मीलिपि में लिखा हुआ है। आठवीं शती का यह मन्दिर बहुत कलात्मक था इसके स्तम्भों पर गणेश, काली, नरसिंह, नाग, नागपत्नियों आदि की मूर्तियां उकेरी हुई थीं। १८८२ में सर एलेक्जैन्डर कनिंघम ने इस ध्वस्त मन्दिर को देखा था और लिखा था कि यह भवन अब भी २०० खम्भों पर बना हुआ है। पर आज तो

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चौरासी खम्भा नाम ही रह गया है संभवतः आज खम्भों की इतनी संख्या भी नहीं है। इस मन्दिर का प्रवेश द्वार मध्य में नहीं है इससे ज्ञात होता है कि इसकी लम्बाई चौड़ाई पहले अधिक थी। दरवाजे के दक्षिण में लगभग २५ फुट की दूरी पर सुल्तान अल्तमश का बनवाया हुआ एक द्वार है जिस पर फारसी में स्पष्ट अंकित एक लेख है। तेरहवीं शती में काम्यकवन एक विकसित नगर था और वहाँ आक्रमण करके एक प्रस्तर लेख लगवाकर अल्तमश ने अपनी छाप लगा दी। ७५४ हिजरी अर्थात् १३५३ में फीरोज-शाह तुगलक ने कामवन नगर पर आक्रमण करके विष्णु मन्दिर को ध्वस्त कर दिया और प्रवेश द्वार के निकट के एक खम्भे पर अपना नाम भी अंकित करा दिया। जहाँ विष्णु प्रतिमा विराजमान थी वहाँ ७ फुट ऊंचा और ४ फुट चौड़ा महरावदार दरवाजा बनवाकर कुरान की आयतें लिखवा दीं तथा बराबर ही मुअज्जन के लिए नमाज का ५ फुट ऊंचा सीढ़ीदार चबूतरा भी बनवा दिया। चौरासी खम्बे के चौक की लम्बाई ५२ फुट तथा चौड़ाई ५० फुट है। किसी समय यह ब्रज का महत्वशाली मंदिर था।

कामवन की प्राचीनता का परिचायक कामेश्वर शिव का मन्दिर भी अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। जनश्रुति है कि इस शिवलिंग की स्थापना श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने की थी। ब्रज के चार शिव-लिंगों १. नंदगाँव में नन्दीश्वर, २. वृन्दावन में गोपेश्वर, ३. गोवर्धन में चकलेश्वर, ४. कामवन में कामेश्वर में इनका स्थान है। भारत के चार महाश्मशानों में (काशी, कामाख्या, काश्मीर, काम्यक) यहाँ के श्मशान का स्थान है। इससे स्वतः सिद्ध है कि यह स्थान शैव और शाक्तों का गढ़ रहा होगा। घाटा नामक स्थान से प्राप्त एक शिलालेख से कामेश्वर के मन्दिर की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। गुर्जर प्रतिहारवंश के राजा भोजदेव द्वारा कामेश्वर शिव के मन्दिर को भूमि देने का इस लेख में उल्लेख है। यह २४ पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। इसमें पाशुपत शैव सम्प्रदाय के पुजारी द्वारा पूजा किये जाने का भी निर्देश है।

वर्तमान में यह शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का प्रमुख गढ़ है। श्री विट्ठलनाथ जी के पुत्र श्री रघुनाथ जी ने अपने पिता के सात विग्रहों में से एक विग्रह गोकुलचन्द्रमा जी की स्थापना की थी उनका मन्दिर आज भी यहाँ विद्यमान है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का काम्यकवन

श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश'

भारतवर्ष के वन अपने अंचल में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों और पौराणिक उपाख्यानों को छिपाये हुए हैं। ब्रज का काम्यक वन भी जिसे जनभाषा में आज कामा, कमई या कामवन कहते हैं पौराणिक और ऐतिहासिक धार्मिक और राजनैतिक महत्व का स्थल रहा है। वाराहपुराण में लिखा है कि—

"चतुर्थम् काम्यकवनं वनानांवनमुत्तमम्।
ततो गत्वा नरो देवि ममलोकमहीयते ॥"

वैष्णव सम्प्रदाय में इसे "आदि वृन्दावन" कहा जाता है यहाँ वृन्दावन की अधीश्वरी वृन्दा देवी का भी मन्दिर है। यहाँ व्योमासुर अघासुर आदि की गुफाएँ भी हैं। पुराणों के अनुसार कामवन तीर्थों का वन है यहाँ चातुर्मास में समस्त तीर्थ निवास करते हैं इसी कारण ही आज भी यहाँ समस्त प्रमुख तीर्थों के नाम के स्थल हैं। जिनकी शोध और पुनर्निर्माण का कार्य शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्री वल्लभाचार्य तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्री निम्बार्काचार्य ने किया था। इसी कारण आज शतियों से इन दोनों सम्प्रदायों के आचार्यों के नेतृत्व में सहस्रों नरनारी भारत के कोने कोने से आकर ब्रजयात्रा करते हुए यहाँ निवास करते हैं।

महाभारत वनपर्व में उल्लेख मिलता है कि द्यूत में पराजित पांडव महर्षि धौम्य से स्वस्ति आशीर्वचन प्राप्त कर विप्रों के साथ काम्यक वन में आए थे—

"ततः कृतस्वस्त्ययना धौम्येन सह पाण्डवा।
द्विज संघे परिवृता प्रययुः काम्यकं वनम् ॥"

पांडवों से मिलने हेतु विदुर, संजय भी इस वन में आए थे। भीमसेन ने वकासुर के भाई किर्मीर राक्षस का जो यहाँ ही निवास करता था वध किया था। कामवन में पाण्डव, कुन्ती तथा श्रीकृष्ण की प्रतिमाएँ भी हैं।

काम्यकवन और काम्यक नगर की प्राचीनता का प्रमाण एक शिलालेख से लगता है। उसमें यहाँ गुर्जर प्रतिहारवंश के शासन का भी उल्लेख है। यह शिलालेख वर्तमान कामवन के चौरासी खम्बा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है आठवीं शती के इस लेख में गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के राजाओं की वंशावली तथा उनकी एक रानी वत्सलिका द्वारा विशाल विष्णु मन्दिर बनाने का वर्णन है। यह ब्राह्मीलिपि में लिखा हुआ है। आठवीं शती का यह मन्दिर बहुत कलात्मक था इसके स्तम्भों पर गणेश, काली, नरसिंह, नाग, नागपत्नियों आदि की मूर्तियां उकेरी हुई थीं। १८८२ में सर एलेक्जैन्डर कनिंघम ने इस ध्वस्त मन्दिर को देखा था और लिखा था कि यह भवन अब भी २०० खम्भों पर बना हुआ है। पर आज तो

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चौरासी खम्भा नाम ही रह गया है संभवतः आज खम्भों की इतनी संख्या भी नहीं है। इस मन्दिर का प्रवेश द्वार मध्य में नहीं है इससे ज्ञात होता है कि इसकी लम्बाई चौड़ाई पहले अधिक थी। दरवाजे के दक्षिण में लगभग २५ फुट की दूरी पर सुल्तान अल्तमश का बनवाया हुआ एक द्वार है जिस पर फारसी में स्पष्ट अंकित एक लेख है। तेरहवीं शती में काम्यकवन एक विकसित नगर था और वहाँ आक्रमण करके एक प्रस्तर लेख लगवाकर अल्तमश ने अपनी छाप लगा दी। ७५४ हिजरी अर्थात् १३५३ में फीरोज-शाह तुगलक ने कामवन नगर पर आक्रमण करके विष्णु मन्दिर को ध्वस्त कर दिया और प्रवेश द्वार के निकट के एक खम्भे पर अपना नाम भी अंकित करा दिया। जहाँ विष्णु प्रतिमा विराजमान थी वहाँ ७ फुट ऊंचा और ४ फुट चौड़ा महरावदार दरवाजा बनवाकर कुरान की आयतें लिखवा दीं तथा बराबर ही मुअज्जन के लिए नमाज का ५ फुट ऊंचा सीढ़ीदार चबूतरा भी बनवा दिया। चौरासी खम्बे के चौक की लम्बाई ५२ फुट तथा चौड़ाई ५० फुट है। किसी समय यह ब्रज का महत्वशाली मंदिर था।

कामवन की प्राचीनता का परिचायक कामेश्वर शिव का मन्दिर भी अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। जनश्रुति है कि इस शिवलिंग की स्थापना श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने की थी। ब्रज के चार शिव-लिंगों १. नंदगाँव में नन्दीश्वर, २. वृन्दावन में गोपेश्वर, ३. गोवर्धन में चकलेश्वर, ४. कामवन में कामेश्वर में इनका स्थान है। भारत के चार महाश्मशानों में (काशी, कामाख्या, काश्मीर, काम्यक) यहाँ के श्मशान का स्थान है। इससे स्वतः सिद्ध है कि यह स्थान शैव और शाक्तों का गढ़ रहा होगा। घाटा नामक स्थान से प्राप्त एक शिलालेख से कामेश्वर के मन्दिर की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। गुर्जर प्रतिहारवंश के राजा भोजदेव द्वारा कामेश्वर शिव के मन्दिर को भूमि देने का इस लेख में उल्लेख है। यह २४ पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। इसमें पाशुपत शैव सम्प्रदाय के पुजारी द्वारा पूजा किये जाने का भी निर्देश है।

वर्तमान में यह शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का प्रमुख गढ़ है। श्री विट्ठलनाथ जी के पुत्र श्री रघुनाथ जी ने अपने पिता के सात विग्रहों में से एक विग्रह गोकुलचन्द्रमा जी की स्थापना की थी उनका मन्दिर आज भी यहाँ विद्यमान है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बुद्धकालीन ब्रज में यक्ष

मधुकर पिपलायन

बौद्ध ग्रन्थों में भारत के सोलह जनपदीय राज्यों की चर्चा की गई है। इनमें शूरसेन जनपद तथा इसकी राजधानी मथुरा का नाम भी आया है। बुद्ध के समय मथुरा में राजा अवन्ती पुत्र राज्य करता था, किन्तु बौद्ध-साहित्य में इस राजवंश का क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं होता। बौद्धोत्तर साहित्य भी इस शृंखला को जोड़ने वाली कोई स्पष्ट कड़ी प्रस्तुत नहीं करता।

बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध अपने धर्म के प्रचार के लिए निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे। अपने इस भ्रमण में वे ब्रजमंडल तक दो बार आये थे। "अंगुत्तर निकाय" के अनुसार उन्होंने अपना बारहवाँ वर्षावास ब्रजमंडल के वेरंजा नामक स्थान पर किया था। उत्तर ब्रजमंडल में अलीगढ़ तथा एटा के बीच वेरंजा की पहचान हो चुकी है। इस स्थान की पुष्टि यहाँ पर हुए उत्खनन में प्राप्त भगवान बुद्ध की सुन्दर प्रतिमा के प्राप्त होने से हो चुकी है। वेरंजा से बुद्ध मथुरा भी पहुंचे थे। दूसरी बार वे अपने परिनिर्वाण से कुछ समय पूर्व मथुरा आये थे और अपने प्रिय शिष्य आनंद के साथ रुरुमंड पर्वत पर ठहरे थे। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान भरतसिंह उपाध्याय ने इस स्थान की पहचान ब्रज के प्रसिद्ध गोवर्धन पर्वत से की है।

निम्नलिखित बौद्ध-ग्रंथ भगवान बुद्ध के मथुरा आगमन की पुष्टि करते हैं।

(१) गिलगिट (काश्मीर) में प्राप्त संस्कृत त्रिपिटिक,
(२) विमानवत्थु की अट्टकथा,
(३) अंगुत्तर निकाय का वेरंजक ब्राह्मण सुत्त,
(४) दिव्यावदान,
(५) चीनी यात्री हुएनसाँग का यात्रा-विवरण,

मथुरा के यक्ष

वैदिक काल में हमें यक्षों के अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। रामायण में भी यक्षों की कोई चर्चा नहीं आई है। महाभारत में हमें यक्ष दिखाई देते हैं। महाभारत के वनपर्व में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद प्रसिद्ध है जिसमें युधिष्ठिर अपनी वाक्-चातुरी से यक्ष को प्रसन्न करता है। इतिहासकारों के अनुसार वर्तमान महाभारत की रचना किसी एक काल और किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं हुई है। उसका बहुत कुछ भाग बुद्ध काल के पश्चात का है। इस प्रकार बुद्धकाल में ही हमें यक्षों की स्थिति का स्पष्ट प्रमाण सर्वप्रथम मिलता है। बुद्धोत्तर काल में तो संस्कृत साहित्य, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों आदि में यक्षों का उल्लेख पर्याप्त रूप में आया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भगवान् बुद्ध जब मथुरा पहुँचे तो वहाँ की राजनैतिक स्थिति अच्छी नहीं थी। सर्वत्र यक्षों का आतंक छाया हुआ था। पूरे ब्रजमंडल में उनकी बस्तियाँ फैली हुई थीं। वहाँ के जन साधारण उनसे भयभीत थे। वेरंजा के वर्षावास के समय ही भगवान बुद्ध को यक्षों के आतंक का आभास हो चुका था। कहते हैं कि स्वयं ब्रज के लोगों ने भगवान् बुद्ध से मथुरा में आने तथा यक्षों के आतंक को शांत करने के लिए प्रार्थना की थी।

यक्षों को धर्मोपदेश

मथुरा के वर्तमान गोकर्णेश्वर टीले के आस पास यक्षों का नेता गर्दभ अपने ५०० अनुयायियों के साथ रहता था। तिमिसिका यक्षिणी भी यहीं अपने ५०० अनुयायियों के साथ रहती थी। इनका यहाँ इतना आतंक था कि इस ओर किसी के आने जाने की हिम्मत तक नहीं होती थी। इनके कारण यहाँ के ब्राह्मणों का प्रभाव भी बहुत कम हो गया था। भगवान बुद्ध ने यहाँ जाकर न केवल गर्दभ यक्ष को शांत किया बल्कि उसे बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में लेकर सन्मार्ग पर आरूढ़ किया। पालि त्रिपिटिक के 'सगाथ वग्ग' के "यक्ख संयुक्त" में बुद्ध द्वारा यक्षों की शंका का समाधान कर उन्हें सद्धर्म में दीक्षित होने का उल्लेख आया है।

मथुरा के ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के आगमन की खबर सुनकर बड़े खिन्न थे। उनको ज्ञात था कि बुद्ध के आगमन से उनके धर्म का ह्रास होगा और उनके धर्म-प्रचार के कारण समाज में उनका महत्व भी कम हो जायगा। उस समय नीलभूति नामक ब्राह्मण मथुरा का बड़ा प्रकांड पंडित था। सभी ब्राह्मणों ने उससे विनती की कि वह भगवान बुद्ध के आने पर शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित करे। किंतु जब नीलभूति को यह ज्ञात हुआ कि भगवान बुद्ध ने गर्दभ यक्ष तथा उनके अनुयायी यक्षों को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया है, वह बड़ा प्रभावित हुआ और उसने भगवान् बुद्ध के खान-पान तथा निवास की व्यवस्था करके अपना आभार प्रदर्शित किया।

अंगुत्तर निकाय के 'मधुरिय सत्तं' से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् बुद्ध को मथुरा का जीवन रुचिकर नहीं लगा, तथा उन्हें यहाँ पाँच प्रकार के अवगुण ही दिखायी दिये। वे अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं—

"पञ्चमे भिक्खवे अदीनवा मधुरायां। कतमे पञ्च ?
बिसमा बहुरजा, चंड सुनखा, बाल यक्खा, दुल्लभ पिण्डा।"

(हे भिक्षुओं! मथुरा में पाँच दोष हैं—वहाँ के मार्ग विषम हैं, वहाँ बहुत धूल है, वहाँ के कुत्ते बड़े भयंकर हैं, वहाँ अज्ञानी यक्ष रहते हैं तथा वहाँ भिक्षा मिलने में कठिनाई होती है।)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध मथुरा की यात्रा से अधिक प्रभावित नहीं हुए थे। उन्हें वहाँ के धूल भरे वीहड़ रास्ते तथा वहाँ का जन-जीवन, जहाँ भिक्षा मिलने में भी कठिनाई हो, अच्छा नहीं लगा था। सद्धर्म प्रचार में भी उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। केवल क्रूर यक्षों को ही वे अनुयायी बना पाये थे। किंतु कालान्तर में इन यक्षों के बुद्ध, धम्म एवं संघ के प्रति आस्था के कारण ही जब चीनी यात्री हुएनसाँग ने भारत यात्रा की थी, मथुरा एक बौद्ध-तीर्थ के रूप में सिद्ध हो चुका था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बुद्धकालीन ब्रज में यक्ष

मधुकर पिपलायन

बौद्ध ग्रन्थों में भारत के सोलह जनपदीय राज्यों की चर्चा की गई है। इनमें शूरसेन जनपद तथा इसकी राजधानी मथुरा का नाम भी आया है। बुद्ध के समय मथुरा में राजा अवन्ती पुत्र राज्य करता था, किन्तु बौद्ध-साहित्य में इस राजवंश का क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं होता। बौद्धोत्तर साहित्य भी इस शृंखला को जोड़ने वाली कोई स्पष्ट कड़ी प्रस्तुत नहीं करता।

बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध अपने धर्म के प्रचार के लिए निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे। अपने इस भ्रमण में वे ब्रजमंडल तक दो बार आये थे। "अंगुत्तर निकाय" के अनुसार उन्होंने अपना बारहवाँ वर्षावास ब्रजमंडल के वेरंजा नामक स्थान पर किया था। उत्तर ब्रजमंडल में अलीगढ़ तथा एटा के बीच वेरंजा की पहचान हो चुकी है। इस स्थान की पुष्टि यहाँ पर हुए उत्खनन में प्राप्त भगवान बुद्ध की सुन्दर प्रतिमा के प्राप्त होने से हो चुकी है। वेरंजा से बुद्ध मथुरा भी पहुंचे थे। दूसरी बार वे अपने परिनिर्वाण से कुछ समय पूर्व मथुरा आये थे और अपने प्रिय शिष्य आनंद के साथ रुरुमंड पर्वत पर ठहरे थे। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान भरतसिंह उपाध्याय ने इस स्थान की पहचान ब्रज के प्रसिद्ध गोवर्धन पर्वत से की है।

निम्नलिखित बौद्ध-ग्रंथ भगवान बुद्ध के मथुरा आगमन की पुष्टि करते हैं।

(१) गिलगिट (काश्मीर) में प्राप्त संस्कृत त्रिपिटिक,
(२) विमानवत्थु की अट्टकथा,
(३) अंगुत्तर निकाय का वेरंजक ब्राह्मण सुत्त,
(४) दिव्यावदान,
(५) चीनी यात्री हुएनसाँग का यात्रा-विवरण,

मथुरा के यक्ष

वैदिक काल में हमें यक्षों के अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। रामायण में भी यक्षों की कोई चर्चा नहीं आई है। महाभारत में हमें यक्ष दिखाई देते हैं। महाभारत के वनपर्व में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद प्रसिद्ध है जिसमें युधिष्ठिर अपनी वाक्-चातुरी से यक्ष को प्रसन्न करता है। इतिहासकारों के अनुसार वर्तमान महाभारत की रचना किसी एक काल और किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं हुई है। उसका बहुत कुछ भाग बुद्ध काल के पश्चात का है। इस प्रकार बुद्धकाल में ही हमें यक्षों की स्थिति का स्पष्ट प्रमाण सर्वप्रथम मिलता है। बुद्धोत्तर काल में तो संस्कृत साहित्य, पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों आदि में यक्षों का उल्लेख पर्याप्त रूप में आया है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भगवान् बुद्ध जब मथुरा पहुँचे तो वहाँ की राजनैतिक स्थिति अच्छी नहीं थी। सर्वत्र यक्षों का आतंक छाया हुआ था। पूरे ब्रजमंडल में उनकी बस्तियाँ फैली हुई थीं। वहाँ के जन साधारण उनसे भयभीत थे। वेरंजा के वर्षावास के समय ही भगवान बुद्ध को यक्षों के आतंक का आभास हो चुका था। कहते हैं कि स्वयं ब्रज के लोगों ने भगवान् बुद्ध से मथुरा में आने तथा यक्षों के आतंक को शांत करने के लिए प्रार्थना की थी।

यक्षों को धर्मोपदेश

मथुरा के वर्तमान गोकर्णेश्वर टीले के आस पास यक्षों का नेता गर्दभ अपने ५०० अनुयायियों के साथ रहता था। तिमिसिका यक्षिणी भी यहीं अपने ५०० अनुयायियों के साथ रहती थी। इनका यहाँ इतना आतंक था कि इस ओर किसी के आने जाने की हिम्मत तक नहीं होती थी। इनके कारण यहाँ के ब्राह्मणों का प्रभाव भी बहुत कम हो गया था। भगवान बुद्ध ने यहाँ जाकर न केवल गर्दभ यक्ष को शांत किया बल्कि उसे बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में लेकर सन्मार्ग पर आरूढ़ किया। पालि त्रिपिटिक के 'सगाथ वग्ग' के "यक्ख संयुक्त" में बुद्ध द्वारा यक्षों की शंका का समाधान कर उन्हें सद्धर्म में दीक्षित होने का उल्लेख आया है।

मथुरा के ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के आगमन की खबर सुनकर बड़े खिन्न थे। उनको ज्ञात था कि बुद्ध के आगमन से उनके धर्म का ह्रास होगा और उनके धर्म-प्रचार के कारण समाज में उनका महत्व भी कम हो जायगा। उस समय नीलभूति नामक ब्राह्मण मथुरा का बड़ा प्रकांड पंडित था। सभी ब्राह्मणों ने उससे विनती की कि वह भगवान बुद्ध के आने पर शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित करे। किंतु जब नीलभूति को यह ज्ञात हुआ कि भगवान बुद्ध ने गर्दभ यक्ष तथा उनके अनुयायी यक्षों को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया है, वह बड़ा प्रभावित हुआ और उसने भगवान् बुद्ध के खान-पान तथा निवास की व्यवस्था करके अपना आभार प्रदर्शित किया।

अंगुत्तर निकाय के 'मधुरिय सत्तं' से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् बुद्ध को मथुरा का जीवन रुचिकर नहीं लगा, तथा उन्हें यहाँ पाँच प्रकार के अवगुण ही दिखायी दिये। वे अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं—

"पञ्चमे भिक्खवे अदीनवा मधुरायां। कतमे पञ्च ?
बिसमा बहुरजा, चंड सुनखा, बाल यक्खा, दुल्लभ पिण्डा।"

(हे भिक्षुओं! मथुरा में पाँच दोष हैं—वहाँ के मार्ग विषम हैं, वहाँ बहुत धूल है, वहाँ के कुत्ते बड़े भयंकर हैं, वहाँ अज्ञानी यक्ष रहते हैं तथा वहाँ भिक्षा मिलने में कठिनाई होती है।)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध मथुरा की यात्रा से अधिक प्रभावित नहीं हुए थे। उन्हें वहाँ के धूल भरे वीहड़ रास्ते तथा वहाँ का जन-जीवन, जहाँ भिक्षा मिलने में भी कठिनाई हो, अच्छा नहीं लगा था। सद्धर्म प्रचार में भी उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। केवल क्रूर यक्षों को ही वे अनुयायी बना पाये थे। किंतु कालान्तर में इन यक्षों के बुद्ध, धम्म एवं संघ के प्रति आस्था के कारण ही जब चीनी यात्री हुएनसाँग ने भारत यात्रा की थी, मथुरा एक बौद्ध-तीर्थ के रूप में सिद्ध हो चुका था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की यक्षनगरी

जातकों में ऐसी अनेक कथायें आई हैं जिनमें यक्षों के जंगलों में सामूहिक रूप से बड़ी संख्या में रहने के प्रमाण मिलते हैं। यक्षों के इस प्रकार सामूहिक-निवास के अलावा जातकों में किसी यक्ष नगरी की भी चर्चा आयी है। एक कथा में ५०० व्यापारी सामान से भरी हुई बैलगाड़ियों में सवार होकर जा रहे थे। कुछ यक्षिणियाँ इनको लुभाकर यक्ष नगरी में ले गयीं। २०० व्यापारी तो इनके चंगुल से भाग निकले किंतु ३०० व्यापारियों को इन यक्षिणियों ने अपने प्रेम-जाल में फँसा कर खा डाला।

इस कथा से यक्षों के क्रूर और नर भक्षी होने का आवास मिलता है। जातक कथाओं में हमें यक्षों के भयंकर और सौम्य दोनों रूप मिलते हैं। किंतु यथार्थ यह है कि यक्ष जाति बड़ी बलवान साहसी और सुन्दर थी। सद्धर्म के अनुरक्षक के रूप में यह बौद्ध संस्कृति में आज तक चिर स्मरणीय है। यक्षिणियाँ अपने अपूर्व सौंदर्य तथा रूप-लावण्य के कारण आज भी साहित्य और लोक-कथाओं में याद की जाती हैं।

मथुरा के बहुलावन क्षेत्र में वर्तमान जखन गाँव को ब्रज की यक्ष नगरी माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त वृन्दावन और भांडीरवन जहाँ क्रमशः वेंदा यक्षिणी और भंडीर यक्ष का निवास था यक्षों के प्रमुख केन्द्र रहे थे।

मथुरा के प्रमुख यक्ष-यक्षिणियाँ

(१) **मणिभद्र यक्ष**—मथुरा के परखम गाँव के आस-पास इसका निवास-स्थान था। यह बड़ा धनाढ्य यक्ष था तथा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद इसने दान पारिमिता का अनुपालन करके बड़ा सुयश पाया था। इसी कारण इसकी पूजा कालान्तर में कुबेर के सखा के रूप में होने लगी। मथुरा कला में इसकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ बनायी गयीं और उनको चैत्यों में प्रतिष्ठित करके पूजा जाने लगा। परखम ग्राम में ही प्राप्त मणिभद्र की सुन्दर प्रतिमा संग्रहालय में रखी हुई है। पालि त्रिपिटिक के 'संयुक्त निकाय' में मणिभद्र यक्ष का वर्णन श्रद्धालु उपासक के रूप में हुआ है। नाथ सम्प्रदाय के 'उपासक दशासूत्र' में मणिभद्र के चैत्य के होने का भी प्रमाण मिलता है। मथुरा के प्रसिद्ध "दाऊजी" के मंदिर में जो मूर्ति है उसके संबंध में इतिहासकारों का विचार है कि वह मणिभद्र की ही प्रतिमा है जो कालान्तर में वहाँ प्रतिष्ठित करके बलदाऊ के रूप में पूजी जा रही हैं।

(२) **भंडीर यक्ष**—मथुरा के बायें तट पर स्थित भांडीर वन बुद्धकालीन भंडीर यक्ष का निवास-स्थान था। आज भी ब्रजवासी यहाँ के "भांडीर कूप" में स्नान करके "भांडीर वट" की परिक्रमा करना पुण्य समझते हैं। सद्धर्म में इस यक्ष के दीक्षित होने के कारण मध्यकाल तक यह स्थान बौद्ध तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रहा था।

(३) **गर्दभ और तिमिसिका**—इन यक्ष और यक्षिणियों का निवास-स्थान मथुरा के गोकर्णेश्वर टीले के आस-पास था। गर्दभ यक्ष और तिमिसिका यक्षिणी भगवान बुद्ध के उपदेश से प्रभावित हुए थे और ये अंजलिबद्ध अपने १००० यक्ष-यक्षिणियों सहित बुद्ध धर्म में दीक्षित होकर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे। इसी का यह परिणाम था कि मथुरा में यक्षों का आतंक बहुत कुछ कम हो गया था।

(४) **आलिका मधा और वेंदा यक्षिणियाँ**—ब्रज के प्रसिद्ध वृन्दावन का नाम वेंदा नामक यक्षिणी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के निवास-स्थान के कारण पड़ा है। गिलगिट के लेख से प्रमाणित होता है कि वेंदा नामक यक्षिणी अपने समय में बड़ी शक्ति सम्पन्न थी। आलिका, मघा और वेंदा कालान्तर में देवी-देवताओं की तरह के रूप में पूजी जाने लगी। प्राचीन काल में वेंदा का मंदिर भी यहाँ था।

ब्रज में यक्षोपासना

जब भगवान बुद्ध मथुरा आये यहाँ यक्षोपासना का बड़ा जोर था। यक्ष पूजा में मद्य, माँस, पुष्प, दीप, नैवेद्य के साथ गायन-वादन का विधान था। दीपावली वार्षिक यक्ष पूजा के रूप में मनायी जाती थीं। इनके अनुयायी ब्रजमंडल में बहुत थे। यक्षों को प्रसन्न करने के लिए उनके अनुयायी बच्चों को पकड़कर ले जाते थे और उनकी बलि चढ़ा देते थे। लोगों का विश्वास था कि बलि न मिलने पर यक्ष कुपित हो जाते हैं। इस प्रकार यक्षोपासना जन-साधारण में भय और श्रद्धा दोनों के साथ-साथ प्रचलित थी।

भगवान् बुद्ध ने अनेक उपद्रवी यक्षों को उपदेश देकर सद्धर्म में दीक्षित किया था। पालि त्रिपिटिक में ऐसे कई स्थल हैं जब यक्षों ने अपने आतंक को त्याग कर अंजलिबद्ध होकर सद्धर्म की शरण ली है। बुद्ध के मथुरा आगमन पर सामूहिक रूप से यक्षों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था तथा वे पंचशील का पालन करके लोक-कल्याण के कार्य में लग गये। इसके कारण ही कालान्तर में यक्षों के उत्पात और उत्पीड़न का अन्त हो गया। मूर्तिकारों ने प्रसिद्ध यक्षों की प्रतिमाएँ बनायीं। बड़े बड़े चैत्य और विहारों का निर्माण किया गया तथा उनमें इन यक्षों की मूर्तियों को प्रतिष्ठित किया गया। जिन स्थानों पर यक्षों के चैत्यों का निर्माण हुआ वे स्थान ब्रज में महास्थान, स्थान या 'थान' कहलाये। काल के चक्र के साथ ये चैत्य नष्ट हो गए, मूर्तियां खंडित हो गयीं किंतु वे 'थान' आज भी पूज्यनीय बने रहे। ऐसे ही 'थानों' पर जखैया या जाख के मेले के रूप में आज भी लोग एकत्र होकर उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं।

मथुरा के आस पास निम्न स्थानों पर यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो वहाँ पर आज तक पूजी जाती रही थी।

(१) परखम यक्ष,
(२) बरोदा यक्ष,
(३) मथुरा गाँव में मनसा यक्षिणी
(४) नोह गाँव में प्राप्त यक्ष

ये मूर्तियाँ मथुरा कला की अपूर्व देन है जो सफेद चित्तियों वाले लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। यह पत्थर रूपबास, ताँतपुर और बयाना की पहाड़ियों से निकाला हुआ है। ये मूर्तियाँ सुख-समृद्धि की प्रतिनिधि हैं तथा आनंदरूप का द्योतक हैं। यक्षोपासना आज भी ब्रजमंडल में "जखैया की जात" (यक्ष यात्रा) के रूप में प्रचलित है। माघ महीने के चारों रविवारों को लगने वाला महावन में जखैया का मेला सबसे प्रसिद्ध है जिसे ब्रज मंडल में यक्षोपासना का अवशिष्ट स्वरूप कहा जा सकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज की यक्षनगरी

जातकों में ऐसी अनेक कथायें आई हैं जिनमें यक्षों के जंगलों में सामूहिक रूप से बड़ी संख्या में रहने के प्रमाण मिलते हैं। यक्षों के इस प्रकार सामूहिक-निवास के अलावा जातकों में किसी यक्ष नगरी की भी चर्चा आयी है। एक कथा में ५०० व्यापारी सामान से भरी हुई बैलगाड़ियों में सवार होकर जा रहे थे। कुछ यक्षिणियाँ इनको लुभाकर यक्ष नगरी में ले गयीं। २०० व्यापारी तो इनके चंगुल से भाग निकले किंतु ३०० व्यापारियों को इन यक्षिणियों ने अपने प्रेम-जाल में फँसा कर खा डाला।

इस कथा से यक्षों के क्रूर और नर भक्षी होने का आवास मिलता है। जातक कथाओं में हमें यक्षों के भयंकर और सौम्य दोनों रूप मिलते हैं। किंतु यथार्थ यह है कि यक्ष जाति बड़ी बलवान साहसी और सुन्दर थी। सद्धर्म के अनुरक्षक के रूप में यह बौद्ध संस्कृति में आज तक चिर स्मरणीय है। यक्षिणियाँ अपने अपूर्व सौंदर्य तथा रूप-लावण्य के कारण आज भी साहित्य और लोक-कथाओं में याद की जाती हैं।

मथुरा के बहुलावन क्षेत्र में वर्तमान जखन गाँव को ब्रज की यक्ष नगरी माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त वृन्दावन और भांडीरवन जहाँ क्रमशः वेंदा यक्षिणी और भंडीर यक्ष का निवास था यक्षों के प्रमुख केन्द्र रहे थे।

मथुरा के प्रमुख यक्ष-यक्षिणियाँ

(१) **मणिभद्र यक्ष**—मथुरा के परखम गाँव के आस-पास इसका निवास-स्थान था। यह बड़ा धनाढ्य यक्ष था तथा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद इसने दान पारिमिता का अनुपालन करके बड़ा सुयश पाया था। इसी कारण इसकी पूजा कालान्तर में कुबेर के सखा के रूप में होने लगी। मथुरा कला में इसकी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ बनायी गयीं और उनको चैत्यों में प्रतिष्ठित करके पूजा जाने लगा। परखम ग्राम में ही प्राप्त मणिभद्र की सुन्दर प्रतिमा संग्रहालय में रखी हुई है। पालि त्रिपिटिक के 'संयुक्त निकाय' में मणिभद्र यक्ष का वर्णन श्रद्धालु उपासक के रूप में हुआ है। नाथ सम्प्रदाय के 'उपासक दशासूत्र' में मणिभद्र के चैत्य के होने का भी प्रमाण मिलता है। मथुरा के प्रसिद्ध "दाऊजी" के मंदिर में जो मूर्ति है उसके संबंध में इतिहासकारों का विचार है कि वह मणिभद्र की ही प्रतिमा है जो कालान्तर में वहाँ प्रतिष्ठित करके बलदाऊ के रूप में पूजी जा रही हैं।

(२) **भंडीर यक्ष**—मथुरा के बायें तट पर स्थित भांडीर वन बुद्धकालीन भंडीर यक्ष का निवास-स्थान था। आज भी ब्रजवासी यहाँ के "भांडीर कूप" में स्नान करके "भांडीर वट" की परिक्रमा करना पुण्य समझते हैं। सद्धर्म में इस यक्ष के दीक्षित होने के कारण मध्यकाल तक यह स्थान बौद्ध तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रहा था।

(३) **गर्दभ और तिमिसिका**—इन यक्ष और यक्षिणियों का निवास-स्थान मथुरा के गोकर्णेश्वर टीले के आस-पास था। गर्दभ यक्ष और तिमिसिका यक्षिणी भगवान बुद्ध के उपदेश से प्रभावित हुए थे और ये अंजलिबद्ध अपने १००० यक्ष-यक्षिणियों सहित बुद्ध धर्म में दीक्षित होकर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे। इसी का यह परिणाम था कि मथुरा में यक्षों का आतंक बहुत कुछ कम हो गया था।

(४) **आलिका मधा और वेंदा यक्षिणियाँ**—ब्रज के प्रसिद्ध वृन्दावन का नाम वेंदा नामक यक्षिणी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के निवास-स्थान के कारण पड़ा है। गिलगिट के लेख से प्रमाणित होता है कि वेंदा नामक यक्षिणी अपने समय में बड़ी शक्ति सम्पन्न थी। आलिका, मघा और वेंदा कालान्तर में देवी-देवताओं की तरह के रूप में पूजी जाने लगी। प्राचीन काल में वेंदा का मंदिर भी यहाँ था।

ब्रज में यक्षोपासना

जब भगवान बुद्ध मथुरा आये यहाँ यक्षोपासना का बड़ा जोर था। यक्ष पूजा में मद्य, माँस, पुष्प, दीप, नैवेद्य के साथ गायन-वादन का विधान था। दीपावली वार्षिक यक्ष पूजा के रूप में मनायी जाती थीं। इनके अनुयायी ब्रजमंडल में बहुत थे। यक्षों को प्रसन्न करने के लिए उनके अनुयायी बच्चों को पकड़कर ले जाते थे और उनकी बलि चढ़ा देते थे। लोगों का विश्वास था कि बलि न मिलने पर यक्ष कुपित हो जाते हैं। इस प्रकार यक्षोपासना जन-साधारण में भय और श्रद्धा दोनों के साथ-साथ प्रचलित थी।

भगवान् बुद्ध ने अनेक उपद्रवी यक्षों को उपदेश देकर सद्धर्म में दीक्षित किया था। पालि त्रिपिटिक में ऐसे कई स्थल हैं जब यक्षों ने अपने आतंक को त्याग कर अंजलिबद्ध होकर सद्धर्म की शरण ली है। बुद्ध के मथुरा आगमन पर सामूहिक रूप से यक्षों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था तथा वे पंचशील का पालन करके लोक-कल्याण के कार्य में लग गये। इसके कारण ही कालान्तर में यक्षों के उत्पात और उत्पीड़न का अन्त हो गया। मूर्तिकारों ने प्रसिद्ध यक्षों की प्रतिमाएँ बनायीं। बड़े बड़े चैत्य और विहारों का निर्माण किया गया तथा उनमें इन यक्षों की मूर्तियों को प्रतिष्ठित किया गया। जिन स्थानों पर यक्षों के चैत्यों का निर्माण हुआ वे स्थान ब्रज में महास्थान, स्थान या 'थान' कहलाये। काल के चक्र के साथ ये चैत्य नष्ट हो गए, मूर्तियां खंडित हो गयीं किंतु वे 'थान' आज भी पूज्यनीय बने रहे। ऐसे ही 'थानों' पर जखैया या जाख के मेले के रूप में आज भी लोग एकत्र होकर उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं।

मथुरा के आस पास निम्न स्थानों पर यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो वहाँ पर आज तक पूजी जाती रही थी।

(१) परखम यक्ष,
(२) बरोदा यक्ष,
(३) मथुरा गाँव में मनसा यक्षिणी
(४) नोह गाँव में प्राप्त यक्ष

ये मूर्तियाँ मथुरा कला की अपूर्व देन है जो सफेद चित्तियों वाले लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। यह पत्थर रूपबास, ताँतपुर और बयाना की पहाड़ियों से निकाला हुआ है। ये मूर्तियाँ सुख-समृद्धि की प्रतिनिधि हैं तथा आनंदरूप का द्योतक हैं। यक्षोपासना आज भी ब्रजमंडल में "जखैया की जात" (यक्ष यात्रा) के रूप में प्रचलित है। माघ महीने के चारों रविवारों को लगने वाला महावन में जखैया का मेला सबसे प्रसिद्ध है जिसे ब्रज मंडल में यक्षोपासना का अवशिष्ट स्वरूप कहा जा सकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के पोखर, कूप तथा सरोवर

ले० (श्रीमती) डा० हर्षनन्दिनी भाटिया

ब्रज-प्रदेश की प्राकृतिक छटा का क्या कहना ! यह अत्यन्त ही मनमोहक है। राधा-कृष्ण की इस पवित्र लीलास्थली के कण-कण में प्रेम बिखरा हुआ है। इसकी धूलि से प्रेम की सुगन्ध आती है। कृष्ण भक्ति की बेल इसी पवित्र धूलि से अंकुरित होकर ब्रज में चारों ओर फैली हुई है। इस आनन्दमयी भूमि के बीच में श्री यमुना मंथर गति से कल-कल करती हुई बह रही है। नीला और स्वच्छ जल ब्रज की शोभा द्विगुणित कर रहा है। इसके किनारे-किनारे कदम्ब के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। ये फूलों से लदे हुए हैं और भ्रमर इन पर गुंजार कर रहे हैं।

ब्रज-प्रदेश तो वन-उपवनों का ही पर्यायवाची बन गया है। यहाँ की शोभा बढ़ाने में अनेक पोखर, कूप, कुण्ड, तीर्थ, घाट और सरोवर आदि हैं। इनके चारों ओर हरे-भरे वृक्ष लगे हुए हैं जो पथिकों को सघन छाया देते हैं। स्थान-स्थान पर पोखर, कूप और सरोवर हैं। ये ब्रज-वासियों को सुविधा और आनन्द प्रदान करते हैं। इनका धार्मिक महत्व भी है। इनका सम्बन्ध किसी न किसी कृष्ण-लीला की स्मृति से जुड़ा हुआ है।

ब्रज में जहाँ कुएँ कम होते थे, पोखर से ही काम चलाया जाता था। वर्षा का जल किसी बड़े गड्ढे में इकट्ठा होकर भर जाता था और वही पोखर कहलाती थी। कुएँ बनवाने में तो समय और धन व्यय होता था और गहराई का अधिक ध्यान रखना पड़ता था, किन्तु पोखर तो स्वतः और सहज ही बन जाता थी। इसका जल मानव तथा पशु सभी ग्रहण कर सकते हैं।

ब्रज में कुसुमोखरि, अंजनोखरि, पीली पोखरि, पियास की पोखरि, हरि जी की पोखरि, मानोखरि तथा सांकरी खोरि आदि का उल्लेख मिलता है।

कुसुमोखरि—यह गोवर्धन के समीप स्थित है। इसमें आस-पास हरियाली अधिक है। सुना जाता है कि प्राचीनकाल में इस कच्ची पोखर में सहस्रों कमल खिले रहते थे। उन पर सदा भ्रमरावलि गुंजार करती रहती थी। चारों ओर नाना प्रकार के पक्षियों का कलरव होता था। महारास के समय कृष्ण ने इसी पोखर से कमल पुष्प लेकर श्री राधारानी का शृंगार किया था। एक दिन काले भंवरे को गोपियों ने कृष्ण समझा और कुसुम पोखर के पास जाकर भ्रमर कृष्ण के साथ विहार करने लगीं। गोपियों की भावना सत्य सिद्ध हुई वह भ्रमर के रूप में कृष्ण ही थे।

अब इसकी वर्तमान स्थिति में तथा स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। इसको अब पक्का बनवा दिया गया है।

ब्रज में अब यह 'कुसुम सरोवर' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

इसका वर्णन आगे सरोवरों में किया जायगा।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अंजनोखरि—नन्दगांव से आगे चलकर, 'करहला' उपवन में यह पोखर है। इसे 'अंजनौंखटि' भी कहते हैं। नन्दनन्दन ने यहाँ श्री राधा के नयनों में अंजन लगाया था और इसके किनारे बैठकर भौंहें भी सुधारी थीं। यहाँ की हरी भूमि पर आराम करके लाड़िली जी ने अपना श्रम दूर किया और सुख प्राप्त किया था। अतः इस गाँव का नाम 'अंजनौख' पड़ गया। इसे अंजनोखारी भी कहते हैं। ब्रजवासी इसे 'अनोंख' या 'अजोख' भी कह देते हैं। इसे कुछ ब्रजवासी 'किशोरी कुण्ड' के नाम से भी जानते हैं।

पीरी पोखरि—पीरी पोखर बरसाने में है। यहाँ राधा जी खेला करती थीं तथा स्नान किया करती थीं। एक बार उनकी सखियों ने पीला उबटना लगाकर उनको स्नान कराया, जिससे पोखर का रंग पीला हो गया। उसी दिन से यह पीरी पोखर के नाम से प्रसिद्ध हो गई। भादों सुदी ३ संवत् १६२४ में श्री विट्ठलनाथ जी ने भी यहाँ स्नान किया था। लवनियाँ ब्राह्मणों ने पत्थर लगवाकर इसे अब पक्का करवा दिया है। प्रिया जी का सम्बन्ध होने के कारण अब इसे 'प्रिया कुण्ड' भी कहने लगे हैं।

पियास की पोखर—ब्रजभाषा में इसे 'पियासी पोखर' ही कहते हैं। यह करहला उपवन में ही है। इसके पास के गाँव को पिसायो गाँव या पियासा वन कहते हैं। इस गाँव में श्री राधा जी ने श्रीकृष्ण जी को तृषा से व्याकुल देखकर जल पान कराया था। कृष्ण जी की प्यास बुझानेवाली पोखर 'पियास की पोखर' कहलाई।

हरि जी की पोखर और ईश्वर ग्वाल की पोखर नन्दगाँव में है। हरि जी की पोखर पर कृष्ण अपनी गायें ले जाते थे और उन्हें पानी पिलाते थे। ईश्वर ग्वाल की पोखर के पास रहनेवाले ग्वाल परिवार अब गोवर्द्धन में रहते हैं।

भानोखरि—यह बरसाना गाँव में स्थित है। पत्थर के घाट वाले ताल को सब लोग 'भानोखरि' कहते हैं। जैसा कि नाम से ही विदित होता है—यह श्री राधा जी के पिता वृषभान जी के नाम से ही प्रसिद्ध हो गई है। इसके पास ही 'कीरति कुंड' है। भानोखरि के किनारे पर जल महल है। इस महल के दरवाजे पोखर के ऊपर ही खुले हुए हैं। इसे रूप राम कटारे ने स्नान की सुविधा के लिए बनवाया था।

सांकरी खोरि—यह भी बरसाना गांव में स्थित है। यह प्रेम सरोवर के पास ही है। यहाँ पर कृष्ण जी गोपियों से दान लिया करते थे। दो बड़े और छोटे पर्वत के बीच में बरसाना स्थित है। दोनों पर्वत जहाँ मिलते हैं वहाँ एक ऐसी तंग घाटी है कि पैदल भी केवल एक आदमी इकहरा होकर बड़ी कठिनाई से निकल पाता है। संकरी होने के कारण इसे सांकरि खोरि कहते हैं। घाटी के पास ही यह पोखर स्थित है। इसके साथ ही चिन्ताखोरि नामक पोखर का भी उल्लेख किया गया है।

गेंदाखरि, चांदोखरि, धानोखरि और समोखरि के नाम भी पोखरों में ही मिलते हैं, किन्तु अब प्राचीन रूप का नवीनीकरण हो गया है। पक्के बन जाने के कारण नाम में भी स्वतः ही परिवर्तन आ जाता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९५४ से सन् १९५६ ई० तक पोखरों को गहरा कराया, पक्का कराया और सफाई का कार्य भी किया। इस कार्य में सरकार ने व्यय भी किया और ब्रजवासियों ने श्रमदान आन्दोलन के अन्तर्गत कार्य करके देश के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। इस प्रकार के श्रमदान आन्दोलन जनता में जागृति को बढ़ावा देते हैं, जनता का मनोबल संतुलित रखते हैं और निर्माण कार्य में भी सहयोग देते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अब हम ब्रज के 'कूप' की ओर चलें।

मध्यकाल में संवत् १६२४ में श्री जगतनन्द ने अपनी पुस्तक 'ब्रज वस्तु-वर्णन' में ब्रज के अनेक कूपों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

ब्रज में लख दस कूप हैं, सप्त-समुद्रहि जान।
नन्दकूप अस इन्द्रकूप, चन्द्रकूप करि मान॥
एक कूप भाँडीर कौ, करणबेध कौ कूप।
कृष्णकूप आनन्दनिधि, बेनुकूप सुखरूप॥
एक जु कुब्जाकूप है, गोपकूप लखि लेहु।
"जगतनन्द" बरनन करत, ब्रज सों करहु सनेह॥

जगतनन्द जी के वर्णन के अनुसार 'सप्तसमुद्र कूप' नन्दकूप, इन्द्रकूप, चन्द्रकूप, भांडीरकूप, करणवेध कूप, कृष्णकूप, बेनुकूप, कुब्जा कूप तथा गोप कूप उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु काल में बाबू तोताराम जी ने अपनी पुस्तक 'ब्रज-विनोद' में भी इसी प्रकार के कूपों की एक सूची दी है, उसमें केवल 'दृगीकूप' का अधिक उल्लेख है। जगतनन्द जी ने दृगीकूप का वर्णन नहीं किया है, क्योंकि इसके स्थान विशेष का पता नहीं लग पाया है।

सप्त सामुद्रिक कूप—इसका नाम 'विमलोदक कूप' भी है। कहा जाता है कि इस कूप का जल जाड़े में गर्म और गर्मी में ठण्डा रहता है। यह कूप सदा जल से भरा रहता है। इसका जल वर्षा काल में न तो बढ़ता ही है और न ग्रीष्म ऋतु में सूखता ही है। वराह पुराण १५७।२४।२५ में इसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—

"हैमंते तु भवेच्चोष्णां सीतलं ग्रीष्मके भवेत्।
न वर्धते च वर्षासु ग्रीष्मे चापि न हीयते॥"

सप्त सामुद्रिक कूप को धार्मिक महत्व भी दिया गया है। कहा जाता है कि इस कूप में स्नान करने से स्वर्गलोक प्राप्त होता है और इसमें मरने से भी वैकुण्ठ मिलता है। यह कूप विमला देवी के नाम पर प्रसिद्ध हो गया है। यहां शृंगार करके राधा-कृष्ण सकेत वन गये।

इस कूप के साथ ही 'चतुः सामुद्रिक कूप' का नाम भी लिया जाता है। कहते हैं कि इस कूप में स्नान करने से मनुष्य को देवताओं के साथ रहने का लाभ मिलता है।

नन्द कूप—नन्द कूप का उल्लेख दो स्थानों पर मिलता है—एक तो कामवन और दूसरे महावन में। यह जनश्रुति है कि नन्दबाबा इस कुएँ पर प्रातःकाल दन्तधावन के लिए प्रतिदिन आते थे। यह कूप ब्रज के प्रधान कूपों में से है।

इन्द्र कूप—इन्द्र वैदिक देवताओं में शिरोमणि माने जाते थे। ब्रज में एक स्थान का नाम 'इन्द्रौली' है। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ राजा इन्द्र का राज्य था, जो गोवर्द्धन क्षेत्र तक विस्तृत था। इन्द्र सम्बन्धी कुछ चिन्ह भी ब्रज में मिलते हैं। जैसे—जतीपुरा में ऐरावत कुण्ड है यह इन्द्र सम्बन्धी स्मृति सुरक्षित किये हुए है। चन्द्र सरोवर में दो भारी और बड़े आकार के पत्थर मिलते हैं। ये दुंदुभि के समान हैं। इन्हें इन्द्र के औंधे नगाड़े कहा जाता है। यहीं पर इन्द्र कूप है। आदिबद्री स्थान में अखलगंगा परि-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मदिरा स्थान है। कहा जाता है कि इन्द्र यहां से श्रीकृष्ण की गाय और बछड़े चुराकर ले गया था और इसी कुएँ में छिपा दिये थे। यह जनश्रुति भी है कि इन्द्र ने ब्रज पर आक्रमण करने से पूर्व इसी कूप का पानी पिया था और यहाँ से चलकर ही ब्रज पर आक्रमण किया था। परसौली में सिंहासन घटिया पर इन्द्र ने सारी गायों और बछड़ों को देकर श्रीकृष्ण के चरणों में पड़ गया है। श्रीकृष्ण जी ने प्रसन्न होकर इन्द्र की पीठ ठोंकी और पीताम्बर उढ़ाया तथा पाग के पेच भी बाँधे हैं।

चन्द्र कूप—इसका अनुमान चन्द्रसरोवर के पास ही लगाया जाता है। इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता। मांट में चाँदपुर स्थान पर भी एक कुएँ का नाम 'चन्द्रकूप' कहा जाता है।

भाँडीर कूप—माँट के निकट भद्रवन है। भद्रवन से आगे भांडीर वन है। यमुना के किनारे कुछ ऊपर को वढ़कर छाहरी गाम है। यहाँ बेर, हींसे और कटीले वृक्षों की बड़ी झाड़ी है। यही भांडीर वन के नाम से प्रसिद्ध है। इस वन के पास ही एक मन्दिर और एक धर्मशाला तथा एक कूप है। यही कूप भांडीर कूप कहलाता है। बाहर की ओर एक भांडीरवट है। मन्दिर में दर्शन करने के वाद बट के नीचे वैठकर भोजन करते हैं और भांडीर कूप का पानी पीते हैं। इस बट वृक्ष तक कृष्ण, बलराम और श्रीदामा होड़ वदकर दौड़ा करते थे। यहाँ राधा-मोहन, गुपाल और महादेव के तीन मन्दिर हैं।

करण वेध कूप—यह कूप महावन में स्थित है। यहाँ पर श्री गर्गाचार्य जी ने कृष्ण जी का नामकरण किया था और कान छेदे थे।

कृष्ण कूप—कृष्ण कूप का दो स्थानों पर उल्लेख आता है। एक तो मथुरा में कटरा केशवदेव के समीप है और दूसरा लोहबन में है। कृष्ण कूप में यशोदा जी ने कृष्ण जी को स्नान कराया था।

वेणु कूप—वृन्दावन में वेणु कूप है। इसके विषय में यह जनश्रुति है कि कृष्ण ने गोचारण के समय अपनी वेणु द्वारा पृथ्वी से जल निकाल कर अपने प्रिय सखाओं की तृषा को शान्त किया था। श्रीकृष्ण ने चरण पहाड़ी पर चढ़कर त्रिभंगी मुद्रा में मधुर ध्वनि में वेणु बजाई थी। इस कारण ही इस कूप का नाम वेणु कूप पड़ा।

कुब्जा कूप—मथुरापुरी में भूतेश्वर के पास वलभद्र कुण्ड है। यहाँ से आगे ही दिल्ली की सड़क पर कुब्जा कूप है। श्रीकृष्ण ने कुब्जा कूबरी का कूबर दूर किया था, इस कारण इस कूप का नाम कुब्जा कूप प्रसिद्ध हो गया।

गोप कूप—महाबन शहर में रमणरेती के बीच में एक छोटा सा उपवन है। उसके बीच में ही 'गोप कूप' है। उपवन में उत्तम पीपल के वृक्ष हैं। उनमें से एक वृक्ष के नीचे ही गोप कूप है। इस कुएँ के निकट ही दो गोपियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, इस कारण ही यह गोप कूप कहलाया। यह कूप लोहबन में स्थित है।

इन दस कूपों के अतिरिक्त ब्रज में अन्य कूपों का उल्लेख भी मिलता है, किन्तु कुछ कम प्रसिद्ध हो पाते हैं, इससे नाम गिनने में रह जाते हैं। यों ये भी कम महत्वपूर्ण नहीं। ललिता कूप, दृगी कूप, कर्ण कूप, पनिहारी कूप और सखी कूप।

ललिता कूप—कोकिलावन उपवन के पश्चिमी भाग में 'ललिता कूप' है। यह राधा जी की प्रिय-सखी ललिता जी के नाम पर रखा गया है। ललता ने स्वयं ही यहां पर ठाकुर जी को स्नान कराया था। इसके पास महादेव जी का मन्दिर है।

महाबन में कर्णकूप है। यहां कृष्ण ने राधाजी को कुण्डल पहनाया था। ऊँचागाँव में सखी कूप

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। संकेत वन के पनिहारी ग्राम में 'पनिहारी कूप' है।

मथुरा जिले में पीने के पानी की विकट समस्या रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुओंमें में पानी बहुत गहराई पर मिलता है। अतः अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अधिकांश कुओं का पानी काला होता है और कुछ कुओं का पानी खारी ही निकलता है, जो पीने के काम में नहीं आ सकता। खारी पानी निकलने का कारण बताया जाता है कि किसी मुनि ने कुछ क्षेत्र में पानी न मिलने के कारण खारी होने का श्राप दे दिया था।

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इस ओर ध्यान देकर प्रगति की ओर कदम बढ़ाने का प्रयास किया है। मार्च, १९५२ तक पीने के पानी के १४६ नये कुए बनाये गए और ८६ कुओं की मरम्मत की गई। मार्च,१९५६ तक ४०४ नये कुऐं बनाये गए और १०३० कुओं की मरम्मत की गई। १९५६ में १२ नलकूप बनाये गए। अब तो ब्रज में गली-गली में नलकूप नगरपालिका द्वारा लगाये गये हैं, तब पानी की समस्या का निवारण हो पाया है।

अब सरोवर की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। ब्रज के मुख्य सरोवर पाँच ही मिलते हैं। ये हैं—मान सरोवर, कुसुम सरोवर, पान सरोवर, चन्द्रसरोवर और प्रेम सरोवर।

मान सरोवर—गिरिराज जी के मध्य भाग में गोवर्द्धन नगर मान सरोवर के तट पर ही बसा हुआ है। यह सरोवर जयपुर के राजा मानसिंह द्वारा बनवाया गया है। अतः उनके नाम पर यह मानसरोवर कहलाने लगा। इसका 'मानसीगंगा' नाम भी बहुत प्रचलित है। कहा जाता है कि प्रारम्भ में मानसी गंगा विष्णु भगवान के मन से प्रकट हुई हैं बाद में राजा मानसिंह ने इसे पक्का बनवाया। भरतपुर के महाराजा भी बहुत बार धन लगाकर इसका जीर्णोद्धार करा चुके हैं।

मान सरोवर एक बहुत बड़ा सरोवर है। यहाँ से गिरिराज पर्वत के टुकड़े दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें पक्की सीढ़ियां बनी हुई हैं। स्नान करने का पक्का घाट है।

गोवर्द्धन की परिक्रमा करके मानसी गंगा में स्नान करने से सारी थकान दूर हो जाती है और फिर बड़ी जोर से भूख लगती है। परिक्रमा करते हुए स्त्रियाँ कुछ पंक्तियाँ गाती जाती हैं—

'मैं तो गोवर्द्धन कूं जाऊँ मेरी वीर नाय माने मेरौ मनुआ।
जतीपुरा ते आइ गोवर्द्धन, मानसी गंगा न्हाऊँ।
मेरी वीर नाय माने मेरौ मनुआ।

दिवाली पर यहाँ दीपमालिका का मेला होता है। हजारों पुरुष स्त्रियाँ और बच्चे मानसरोवर में स्नान करने और दीपक जलाने के लिए दूर-दूर से आते हैं। मानसरोवर के चारों ओर यात्री लोग दीपकों की पंक्तियाँ रखते जाते हैं। जल में दीपकों की परछाईं पड़ने से दुगनी पंक्तियाँ हो जाती हैं। अतः यहाँ की शोभा भी द्विगुणित हो जाती है। असंख्य पंक्तिबद्ध दीपकों की झलमलाहट जब जल में पड़ती है तो मानसी गंगा की विचित्र शोभा दीख पड़ती है। इस तीर्थस्थल की परिक्रमा और स्नान विख्यात हैं। यहाँ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है।

मानसिंह राजा के पिता जी ने मानसिंह ग्राम के निकट ही हरदेव जी का मन्दिर भी बनवाया था। यह बहुत बड़ा मन्दिर है। अकबर के राज्य में ही आमेर के राजा भगवान दास जी ने बनवाया था। मानसी गंगा के दूसरी ओर दो छतरी हैं। एक राजा रणधीर सिंह की और दूसरी राजा बलदेवसिंह जी की।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ऐसा कहा जाता है कि मानसीगंगा में परिक्रमा के बाद स्नान करने से मनोकामना पूर्ण होती है। तथा सभी तीर्थों में भ्रमण करने का फल प्राप्त होता है।

कुसुम सरोवर—गोवर्द्धन में ही राधाकुण्ड के निकट ही एक बहुत बड़ा बाग है। बाग में ही एक कृत्रिम झील है। यही कुसुम सरोवर है। यह प्रारम्भ में एक छोटी सी पोखर के रूप में थी। उसी को पक्का बनवाकर कुसुम सरोवर का रूप दे दिया गया है। इसमें पहले कमल उत्पन्न होते थे। इस कारण इसे 'पुष्पवन' भी कहा जाता है। यहाँ पुष्प चयन करके राधा जी की सखियों ने युगल विहारी अर्थात् राधा और कृष्ण दोनों का ही शृंगार किया था।

कुसुम सरोवर ब्रज का एक बहुत विशाल सरोवर है। यह सरोवर ४६० फुट वर्गात्मक है। यह स्थापत्य कला एक उत्कृष्ट नमूना है। इसके चारों ओर लता, वृक्ष और सुन्दर-सुन्दर वेल लगी हुई हैं। इसके घाट, छतरी, बुर्ज आदि की शोभा दर्शनीय है। यह सरोवर गहरा भी है। इसके घाट पर चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ हैं। इसे भरतसिंह के राजा जवाहर सिंह ने बनवाया था। कहते हैं कि महाराजा जवाहरसिंह की ही छतरी बनने को थी, वही रह गयी। मुस्लिम-आक्रमण के कारण निर्माण-कार्य में विघ्न पड़ गया और फिर कभी नया कुछ भी नहीं बन पाया।

इसके आस-पास कई इमारतें और छतरी हैं। इसके पश्चिमी भाग में महाराजा सूरजमल की छतरी है। पास ही उनकी दोनों रानियाँ-रानी हंसिया और किशोरी रानी की छतरी भी है। ये भी भरतपुर के ही राजा थे। इन्होंने भी घाट पक्के बनवाये।

पान-सरोवर—यह नन्दगांव में स्थित है। खिरिणी के बाग से कुछ आगे बढ़कर 'पान सरोवर' है।' इस सरोवर में सदा निर्मल जल भरा रहता था। अतः श्रीकृष्ण महाराज यहाँ गायों को पानी पिलाने के लिए लाते थे। बर्दमान की रानी ने सन् १७४७ ई० में इसको पक्का बनवाया था। इस सरोवर की लम्बाई ८१० फीट और चौड़ाई ३७८ फीट है। इसका आकार जहाज की भाँति है। कभी-कभी नन्दबाबा भी गायों को लेकर यहाँ आते थे।

ब्रज के परम प्रसिद्ध सरोवरों में से यह एक नन्दगाम का 'पानसरोवर' है।

चन्द्र सरोवर—यह सरोवर परसौली में स्थित है। यहाँ श्रीकृष्ण ने राधा तथा गोपियों के साथ रास रचाया था। रात्रि को ब्रह्मरजनी कर दिया, अर्थात् रात्रि छह मास की बना दी और विहार करते रहे।

यह सूरदास जी का जन्मस्थान होने के कारण यहाँ अनेक साहित्यिक कार्यक्रम होते रहते हैं। साहित्य-प्रेमी अधिकतर आते हैं। आकर स्नानादि भी करते हैं।

प्रेम सरोवर—बरसाना में प्रेमसरोवर स्थित है। यहाँ कृष्ण और राधा की प्रथम स्नेह की परस्पर बातचीत हुई थी, इस कारण यह प्रेम सरोवर नाम से प्रसिद्ध हो गया। बाद में रूपराम कटारे ने कुटुम्ब की स्त्रियों के स्नान की सुविधा के लिए तथा जल विनोद करने के लिए यह सरोवर पक्का बनवाया। यह गाजीपुर गाम में है। इसके आगे एक बाग है जिसमें रूपराम के भाई हेमराज की छतरी बनी हुई है। इसमें रासलीला होती है।

इन सरोवरों के अतिरिक्त वृन्दाबन के रंगजी के मन्दिर में एक विशाल पुष्करणी है यहाँ जेठ सुदी १५ को गज और ग्राह की लड़ाई दिखाई जाती है। नारायण सरोवर और हंस सरोवर का भी उल्लेख मिलता है। नारायण सरोवर पेंठा में और हंस सरोवर संकेत वन में स्थित है। यहाँ पक्षी कलरव किया करते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है। संकेत वन के पनिहारी ग्राम में 'पनिहारी कूप' है।

मथुरा जिले में पीने के पानी की विकट समस्या रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुओंमें में पानी बहुत गहराई पर मिलता है। अतः अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अधिकांश कुओं का पानी काला होता है और कुछ कुओं का पानी खारी ही निकलता है, जो पीने के काम में नहीं आ सकता। खारी पानी निकलने का कारण बताया जाता है कि किसी मुनि ने कुछ क्षेत्र में पानी न मिलने के कारण खारी होने का श्राप दे दिया था।

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इस ओर ध्यान देकर प्रगति की ओर कदम बढ़ाने का प्रयास किया है। मार्च, १९५२ तक पीने के पानी के १४६ नये कुए बनाये गए और ८६ कुओं की मरम्मत की गई। मार्च,१९५६ तक ४०४ नये कुऐं बनाये गए और १०३० कुओं की मरम्मत की गई। १९५६ में १२ नलकूप बनाये गए। अब तो ब्रज में गली-गली में नलकूप नगरपालिका द्वारा लगाये गये हैं, तब पानी की समस्या का निवारण हो पाया है।

अब सरोवर की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। ब्रज के मुख्य सरोवर पाँच ही मिलते हैं। ये हैं—मान सरोवर, कुसुम सरोवर, पान सरोवर, चन्द्रसरोवर और प्रेम सरोवर।

मान सरोवर—गिरिराज जी के मध्य भाग में गोवर्द्धन नगर मान सरोवर के तट पर ही बसा हुआ है। यह सरोवर जयपुर के राजा मानसिंह द्वारा बनवाया गया है। अतः उनके नाम पर यह मानसरोवर कहलाने लगा। इसका 'मानसीगंगा' नाम भी बहुत प्रचलित है। कहा जाता है कि प्रारम्भ में मानसी गंगा विष्णु भगवान के मन से प्रकट हुई हैं बाद में राजा मानसिंह ने इसे पक्का बनवाया। भरतपुर के महाराजा भी बहुत बार धन लगाकर इसका जीर्णोद्धार करा चुके हैं।

मान सरोवर एक बहुत बड़ा सरोवर है। यहाँ से गिरिराज पर्वत के टुकड़े दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें पक्की सीढ़ियां बनी हुई हैं। स्नान करने का पक्का घाट है।

गोवर्द्धन की परिक्रमा करके मानसी गंगा में स्नान करने से सारी थकान दूर हो जाती है और फिर बड़ी जोर से भूख लगती है। परिक्रमा करते हुए स्त्रियाँ कुछ पंक्तियाँ गाती जाती हैं—

'मैं तो गोवर्द्धन कूं जाऊँ मेरी वीर नाय माने मेरौ मनुआ।
जतीपुरा ते आइ गोवर्द्धन, मानसी गंगा न्हाऊँ।
मेरी वीर नाय माने मेरौ मनुआ।

दिवाली पर यहाँ दीपमालिका का मेला होता है। हजारों पुरुष स्त्रियाँ और बच्चे मानसरोवर में स्नान करने और दीपक जलाने के लिए दूर-दूर से आते हैं। मानसरोवर के चारों ओर यात्री लोग दीपकों की पंक्तियाँ रखते जाते हैं। जल में दीपकों की परछाईं पड़ने से दुगनी पंक्तियाँ हो जाती हैं। अतः यहाँ की शोभा भी द्विगुणित हो जाती है। असंख्य पंक्तिबद्ध दीपकों की झलमलाहट जब जल में पड़ती है तो मानसी गंगा की विचित्र शोभा दीख पड़ती है। इस तीर्थस्थल की परिक्रमा और स्नान विख्यात हैं। यहाँ आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है।

मानसिंह राजा के पिता जी ने मानसिंह ग्राम के निकट ही हरदेव जी का मन्दिर भी बनवाया था। यह बहुत बड़ा मन्दिर है। अकबर के राज्य में ही आमेर के राजा भगवान दास जी ने बनवाया था। मानसी गंगा के दूसरी ओर दो छतरी हैं। एक राजा रणधीर सिंह की और दूसरी राजा बलदेवसिंह जी की।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ऐसा कहा जाता है कि मानसीगंगा में परिक्रमा के बाद स्नान करने से मनोकामना पूर्ण होती है। तथा सभी तीर्थों में भ्रमण करने का फल प्राप्त होता है।

कुसुम सरोवर—गोवर्द्धन में ही राधाकुण्ड के निकट ही एक बहुत बड़ा बाग है। बाग में ही एक कृत्रिम झील है। यही कुसुम सरोवर है। यह प्रारम्भ में एक छोटी सी पोखर के रूप में थी। उसी को पक्का बनवाकर कुसुम सरोवर का रूप दे दिया गया है। इसमें पहले कमल उत्पन्न होते थे। इस कारण इसे 'पुष्पवन' भी कहा जाता है। यहाँ पुष्प चयन करके राधा जी की सखियों ने युगल विहारी अर्थात् राधा और कृष्ण दोनों का ही शृंगार किया था।

कुसुम सरोवर ब्रज का एक बहुत विशाल सरोवर है। यह सरोवर ४६० फुट वर्गात्मक है। यह स्थापत्य कला एक उत्कृष्ट नमूना है। इसके चारों ओर लता, वृक्ष और सुन्दर-सुन्दर वेल लगी हुई हैं। इसके घाट, छतरी, बुर्ज आदि की शोभा दर्शनीय है। यह सरोवर गहरा भी है। इसके घाट पर चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ हैं। इसे भरतसिंह के राजा जवाहर सिंह ने बनवाया था। कहते हैं कि महाराजा जवाहरसिंह की ही छतरी बनने को थी, वही रह गयी। मुस्लिम-आक्रमण के कारण निर्माण-कार्य में विघ्न पड़ गया और फिर कभी नया कुछ भी नहीं बन पाया।

इसके आस-पास कई इमारतें और छतरी हैं। इसके पश्चिमी भाग में महाराजा सूरजमल की छतरी है। पास ही उनकी दोनों रानियाँ-रानी हंसिया और किशोरी रानी की छतरी भी है। ये भी भरतपुर के ही राजा थे। इन्होंने भी घाट पक्के बनवाये।

पान-सरोवर—यह नन्दगांव में स्थित है। खिरिणी के बाग से कुछ आगे बढ़कर 'पान सरोवर' है।' इस सरोवर में सदा निर्मल जल भरा रहता था। अतः श्रीकृष्ण महाराज यहाँ गायों को पानी पिलाने के लिए लाते थे। बर्दमान की रानी ने सन् १७४७ ई० में इसको पक्का बनवाया था। इस सरोवर की लम्बाई ८१० फीट और चौड़ाई ३७८ फीट है। इसका आकार जहाज की भाँति है। कभी-कभी नन्दबाबा भी गायों को लेकर यहाँ आते थे।

ब्रज के परम प्रसिद्ध सरोवरों में से यह एक नन्दगाम का 'पानसरोवर' है।

चन्द्र सरोवर—यह सरोवर परसौली में स्थित है। यहाँ श्रीकृष्ण ने राधा तथा गोपियों के साथ रास रचाया था। रात्रि को ब्रह्मरजनी कर दिया, अर्थात् रात्रि छह मास की बना दी और विहार करते रहे।

यह सूरदास जी का जन्मस्थान होने के कारण यहाँ अनेक साहित्यिक कार्यक्रम होते रहते हैं। साहित्य-प्रेमी अधिकतर आते हैं। आकर स्नानादि भी करते हैं।

प्रेम सरोवर—बरसाना में प्रेमसरोवर स्थित है। यहाँ कृष्ण और राधा की प्रथम स्नेह की परस्पर बातचीत हुई थी, इस कारण यह प्रेम सरोवर नाम से प्रसिद्ध हो गया। बाद में रूपराम कटारे ने कुटुम्ब की स्त्रियों के स्नान की सुविधा के लिए तथा जल विनोद करने के लिए यह सरोवर पक्का बनवाया। यह गाजीपुर गाम में है। इसके आगे एक बाग है जिसमें रूपराम के भाई हेमराज की छतरी बनी हुई है। इसमें रासलीला होती है।

इन सरोवरों के अतिरिक्त वृन्दाबन के रंगजी के मन्दिर में एक विशाल पुष्करणी है यहाँ जेठ सुदी १५ को गज और ग्राह की लड़ाई दिखाई जाती है। नारायण सरोवर और हंस सरोवर का भी उल्लेख मिलता है। नारायण सरोवर पेंठा में और हंस सरोवर संकेत वन में स्थित है। यहाँ पक्षी कलरव किया करते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के लोकोत्सव और पर्व

मोहन स्वरूप भाटिया

जनपद विशेष के लोक पर्व एवं उत्सवों में वहां की संस्कृति की विशिष्टता का भी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से रसिक शिरोमणि नटनागर श्रीकृष्ण की लोकरंजिनी लीलाओं से अनुप्राणित 'सात बार और नौ त्यौहार' की पावन भूमि ब्रज प्रदेश के लोक पर्व और उत्सवों का अन्यतम महत्व है। प्रस्तुत लेख में मथुरा की सीमाओं से सम्बद्ध ब्रज मंडल के कुछ प्रमुख लोक पर्व एवं उत्सवों का विवरण दिया जा रहा है।

ब्रज में प्रचलित इन लोक पर्व एवं उत्सवों में अधिकांश देवी देवताओं से सम्बन्धित हैं। सामान्यतः लोक पर्व और उत्सव मूलतः धर्म से सम्बद्ध होते ही हैं। कुछ पर्व और उत्सव लोकमानस के मनोरंजन और उत्सव प्रियता के परिचायक हैं। कुछ लोक विश्वास के आधार पर मनाये जाते हैं। और कुछ विशुद्ध धार्मिक भावनाओं से प्रतिपादित हैं। यद्यपि उनका आधार है तथापि वे लोक द्वारा प्रदत्तरूप में प्रचलित हैं। कुछ लोकोत्सव एवं पर्व किसी घटना विशेष से परम्परित हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पर्व एवं उत्सव ऐसे भी मनाए जाते हैं जिनका आदि स्वरूप कुछ भी रहा हो, वर्तमान में उनका अस्तित्व विशुद्ध लोकप्रणीत है।

प्रस्तुत लेख में मथुरा की सीमाओं से सम्बद्ध ब्रज मंडल के कुछ प्रमुख लोक पर्व एवं उत्सवों का विवरण दिया जा रहा है।

चैत्र में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक नव दुर्गाओं में देवी की पूजा की जाती है। भक्तगण विभिन्न स्थानों पर प्रतिष्ठित देवियों-जालपा, ज्वाला, कैला तथा नगरकोट, करौली, बैलोन, घौलाढ़ि, नरी सेमरी, कमलवास, साँचौली, तरोली, बढ़पुर आदि स्थानों की माता के नाम से अभिहित की जाने वाली देवियों में से अपनी इष्ट देवी की जात करने के लिए जाते हैं। अनेक स्थानों पर देवी के मेले और 'फूलडोल' भी होते हैं। अष्टमी अथवा नवमी को 'कन्या लौगुर' को भोजन कराया जाता है।

चैत्र शुक्ला नवमी को रामनवमी के उपलक्ष में भी स्थान स्थान पर 'फूलडोल' होते हैं।

चैत्र कृष्ण सप्तमी को बासौड़ा पुजता है। यह शीतला के पूजन का पर्व है। 'बासोडा' से एक दिन पूर्व पूरी, पुआ, नेवज, चावल, आदि बिना छुकी हुई सामग्री बनाई जाती है और दूसरे दिन प्रातः शीतला माता का भोग लगाया जाता है। चैत्र में माता निकलती है इसलिए शीतला को प्रसन्न करने के लिए यह आयोजन किया जाता है। पूजन के पश्चात् घर लौटने पर मुख्य प्रवेश द्वार पर हल्दी से सांतिए बाडे जाते हैं और पूजन से बची सामग्री काले कुत्ते को खिला दी जाती है।

चैत्र कृष्ण नवमी को वृन्दावन में सुप्रसिद्ध रथ का मेला होता है। प्रातः रंगजी के मन्दिर से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भगवान रंगनाथ की रथ पर सवारी निकलकर बगीचे में जाती है। दूसरे दिन रात्रि को आतिशबाजी होती है और तीसरे दिन मध्यान्ह में 'गेंद बच्ची' का खेल होता है। यह रामानुज सम्प्रदाय का उत्सव है और १० दिन तक चलता है किन्तु रथ निकलने और आतिशबाजी के दिन मेले की धूमधाम रहती है।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को 'अलख बाबा' का मेंला होता है।

वैशाख शुक्ला तृतीया को वृन्दावन में अक्षय तृतीया (अखतीज) का मेला होता है। पूर्णिमा को मथुरा में 'वन विहार' की परिक्रमा लगती है।

आषाढ़ शुक्ला एकादशी देवशयनी एकादशी को मथुरा वृन्दावन की परिक्रमा लगती है।

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को गोवर्धन में मुड़िया पूनों का विशाल मेला लगता है। इस दिन हजारों नर-नारी गोवर्धन की परिक्रमा लगाते हैं।

श्रावण में रक्षाबन्धन, नाग पंचमी, हरियाली मावस, पवित्रा एकादशी के पर्व मनाये जाते हैं। श्रावण के शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'हरियाली तीज' का लोक पर्व तो बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह नव विवाहिता एवं कुलवधुओं का मधुरतम पर्व है। हरियाली तीज के दिन स्त्रियां मिट्टी की गौरा और महादेव की प्रतिमाएं बनाती हैं, उनका शृंगार करती हैं और पुआ-पापड़ी आदि का भोग लगाती हैं। सायंकाल उन्हें किसी नदी, तालाव आदि में 'सिरा' दिया जाता है। इसके पश्चात् तीज खेली जाती है। हरियाली तीज पर भुजरियां (जौ तथा गेहूँ) बोने की भी परम्परा है। रक्षाबन्धन के दिन ये भुजरियाँ किसी नदी, तालाब पोखर या कुएं में सिरा दी जाती हैं।

मन्दिरों में घटाओं और हिंडोलों के मेले होते हैं जिनमें दूर-दूर से दर्शनार्थी आते हैं।

भादों में जन्माष्टमी का पर्व सबसे प्रमुख है। ब्रज में जहाँ के चप्पे-चप्पे में कृष्ण लीलाओं की स्मृतियां बिखरी पड़ी हैं, इस महोत्सव पर अनुपम छटा होती है और ब्रज के घर-घर में, आंगन में बधाइयां गूँज उठती हैं। जन्माष्टमी के दिन स्त्रियाँ अपने घरों के मन्दिरों को खूब सजाती हैं। रात्रि को बारह बजे भगवान कृष्ण के जन्म के समय सालिगराम की बटिया को खीरे में से निकाल कर भगवान् का जन्म किया जाता है। जन्माष्टमी के दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरों में नन्द महोत्सव मनाया जाता है। इसे लोक में 'दधिकांदो' कहते हैं। इस दिन मन्दिरों के पुजारी आदि नन्दबाबा तथा यशोदा का वेश धारण कर भगवान् को पालना झुलाते हैं, गोप ग्वालों के रूप में हर्षोन्मत्त हो एक दूसरे पर दही दूध उछालते हुए मन्दिर के प्रांगण में दही दूध की कीच मचा देते हैं और 'नन्द के आनन्द भये, जय कन्हैयालाल की' का तुमुल उद्घोष करते हुए प्रेम विभोर हो जाते हैं।

वृन्दावन में इस दिन सायंकाल रंग के मन्दिर में 'लठा का मेला' होता है। मेले में एक मोटे लट्ठ को स्निग्ध पदार्थों से चिकना बनाया जाता है और उस पर एक घेरा लगाकर फल, मिठाई, वस्त्र, नारियल आदि टांग देते हैं। लट्ठे के पास बनाये गये मचान से लट्ठे पर खिलाड़ियों के दल जब इस लट्ठे पर चढ़कर उक्त वस्तुएं प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तब उन पर पास में बनाये गए मचान से टेसू के फूलों से बने रंग की वर्षा की जाती है। खिलाड़ी एक रस्सी को पकड़ कर एक दूसरे के कंधे पर चढ़ते हुए ऊपर तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। जो दल ऊपर तक पहुंच जाता है वह पुरस्कार की वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशी को मथुरा के निकट मधुवन (महोली) में एक मेला होता है। भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को चट्टा चौथ (गणेश चतुर्थी) मनाई जाती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के लोकोत्सव और पर्व

मोहन स्वरूप भाटिया

जनपद विशेष के लोक पर्व एवं उत्सवों में वहां की संस्कृति की विशिष्टता का भी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से रसिक शिरोमणि नटनागर श्रीकृष्ण की लोकरंजिनी लीलाओं से अनुप्राणित 'सात वार और नौ त्यौहार' की पावन भूमि ब्रज प्रदेश के लोक पर्व और उत्सवों का अन्यतम महत्व है। प्रस्तुत लेख में मथुरा की सीमाओं से सम्बद्ध ब्रज मंडल के कुछ प्रमुख लोक पर्व एवं उत्सवों का विवरण दिया जा रहा है।

ब्रज में प्रचलित इन लोक पर्व एवं उत्सवों में अधिकांश देवी देवताओं से सम्बन्धित हैं। सामान्यतः लोक पर्व और उत्सव मूलतः धर्म से सम्बद्ध होते ही हैं। कुछ पर्व और उत्सव लोकमानस के मनोरंजन और उत्सव प्रियता के परिचायक हैं। कुछ लोक विश्वास के आधार पर मनाये जाते हैं। और कुछ विशुद्ध धार्मिक भावनाओं से प्रतिपादित हैं। यद्यपि उनका आधार है तथापि वे लोक द्वारा प्रदत्तरूप में प्रचलित हैं। कुछ लोकोत्सव एवं पर्व किसी घटना विशेष से परम्परित हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पर्व एवं उत्सव ऐसे भी मनाए जाते हैं जिनका आदि स्वरूप कुछ भी रहा हो, वर्तमान में उनका अस्तित्व विशुद्ध लोकप्रणीत है।

प्रस्तुत लेख में मथुरा की सीमाओं से सम्बद्ध ब्रज मंडल के कुछ प्रमुख लोक पर्व एवं उत्सवों का विवरण दिया जा रहा है।

चैत्र में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक नव दुर्गाओं में देवी की पूजा की जाती है। भक्तगण विभिन्न स्थानों पर प्रतिष्ठित देवियों-जालपा, ज्वाला, कैला तथा नगरकोट, करौली, बैलोन, घौलाढ़ि, नरी सेमरी, कमलवास, साँचौली, तरोली, वढ़पुर आदि स्थानों की माता के नाम से अभिहित की जाने वाली देवियों में से अपनी इष्ट देवी की जात करने के लिए जाते हैं। अनेक स्थानों पर देवी के मेले और 'फूलडोल' भी होते हैं। अष्टमी अथवा नवमी को 'कन्या लौगुर' को भोजन कराया जाता है।

चैत्र शुक्ला नवमी को रामनवमी के उपलक्ष में भी स्थान स्थान पर 'फूलडोल' होते हैं।

चैत्र कृष्ण सप्तमी को बासौड़ा पुजता है। यह शीतला के पूजन का पर्व है। 'बासोडा' से एक दिन पूर्व पूरी, पुआ, नेवज, चावल, आदि बिना छुकी हुई सामग्री बनाई जाती है और दूसरे दिन प्रातः शीतला माता का भोग लगाया जाता है। चैत्र में माता निकलती है इसलिए शीतला को प्रसन्न करने के लिए यह आयोजन किया जाता है। पूजन के पश्चात् घर लौटने पर मुख्य प्रवेश द्वार पर हल्दी से सांतिए बाडे जाते हैं और पूजन से बची सामग्री काले कुत्ते को खिला दी जाती है।

चैत्र कृष्ण नवमी को वृन्दावन में सुप्रसिद्ध रथ का मेला होता है। प्रातः रंगजी के मन्दिर से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भगवान रंगनाथ की रथ पर सवारी निकलकर बगीचे में जाती है। दूसरे दिन रात्रि को आतिशबाजी होती है और तीसरे दिन मध्यान्ह में 'गेंद बच्ची' का खेल होता है। यह रामानुज सम्प्रदाय का उत्सव है और १० दिन तक चलता है किन्तु रथ निकलने और आतिशबाजी के दिन मेले की धूमधाम रहती है।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को 'अलख बाबा' का मेंला होता है।

वैशाख शुक्ला तृतीया को वृन्दावन में अक्षय तृतीया (अखतीज) का मेला होता है। पूर्णिमा को मथुरा में 'वन विहार' की परिक्रमा लगती है।

आषाढ़ शुक्ला एकादशी देवशयनी एकादशी को मथुरा वृन्दावन की परिक्रमा लगती है।

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को गोवर्धन में मुड़िया पूनों का विशाल मेला लगता है। इस दिन हजारों नर-नारी गोवर्धन की परिक्रमा लगाते हैं।

श्रावण में रक्षाबन्धन, नाग पंचमी, हरियाली मावस, पवित्रा एकादशी के पर्व मनाये जाते हैं। श्रावण के शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'हरियाली तीज' का लोक पर्व तो बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह नव विवाहिता एवं कुलवधुओं का मधुरतम पर्व है। हरियाली तीज के दिन स्त्रियां मिट्टी की गौरा और महादेव की प्रतिमाएं बनाती हैं, उनका शृंगार करती हैं और पुआ-पापड़ी आदि का भोग लगाती हैं। सायंकाल उन्हें किसी नदी, तालाब आदि में 'सिरा' दिया जाता है। इसके पश्चात् तीज खेली जाती है। हरियाली तीज पर भुजरियां (जौ तथा गेहूँ) बोने की भी परम्परा है। रक्षाबन्धन के दिन ये भुजरियाँ किसी नदी, तालाब पोखर या कुएं में सिरा दी जाती हैं।

मन्दिरों में घटाओं और हिंडोलों के मेले होते हैं जिनमें दूर-दूर से दर्शनार्थी आते हैं।

भादों में जन्माष्टमी का पर्व सबसे प्रमुख है। ब्रज में जहाँ के चप्पे-चप्पे में कृष्ण लीलाओं की स्मृतियां बिखरी पड़ी हैं, इस महोत्सव पर अनुपम छटा होती है और ब्रज के घर-घर में, आंगन में बधाइयां गूंज उठती हैं। जन्माष्टमी के दिन स्त्रियाँ अपने घरों के मन्दिरों को खूब सजाती हैं। रात्रि को बारह बजे भगवान कृष्ण के जन्म के समय सालिगराम की बटिया को खीरे में से निकाल कर भगवान् का जन्म किया जाता है। जन्माष्टमी के दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरों में नन्द महोत्सव मनाया जाता है। इसे लोक में 'दधिकांदो' कहते हैं। इस दिन मन्दिरों के पुजारी आदि नन्दबाबा तथा यशोदा का वेश धारण कर भगवान् को पालना झुलाते हैं, गोप ग्वालों के रूप में हर्षोन्मत्त हो एक दूसरे पर दही दूध उछालते हुए मन्दिर के प्रांगण में दही दूध की कीच मचा देते हैं और 'नन्द के आनन्द भये, जय कन्हैयालाल की' का तुमुल उद्घोष करते हुए प्रेम विभोर हो जाते हैं।

वृन्दावन में इस दिन सायंकाल रंग के मन्दिर में 'लठा का मेला' होता है। मेले में एक मोटे लट्ठ को स्निग्ध पदार्थों से चिकना बनाया जाता है और उस पर एक घेरा लगाकर फल, मिठाई, वस्त्र, नारियल आदि टांग देते हैं। लट्ठे के पास बनाये गये मचान से लट्ठे पर खिलाड़ियों के दल जब इस लट्ठे पर चढ़कर उक्त वस्तुएं प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तब उन पर पास में बनाये गए मचान से टेसू के फूलों से बने रंग की वर्षा की जाती है। खिलाड़ी एक रस्सी को पकड़ कर एक दूसरे के कंधे पर चढ़ते हुए ऊपर तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। जो दल ऊपर तक पहुंच जाता है वह पुरस्कार की वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशी को मथुरा के निकट मधुवन (महोली) में एक मेला होता है। भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को चट्टा चौथ (गणेश चतुर्थी) मनाई जाती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

भाद्रपद शुक्ला छठ को सतोहे में देवछठ का मेला लगता है। पुत्र कामना की इच्छा से स्त्रियां यहां शान्तुन बिहारी का दर्शन कर कृष्ण कुण्ड में स्नान करती हैं। बल्देव में भी देवछठ (बल्देवछठ) का प्रसिद्ध मेला होता है।

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी की रावल (मथुरा से लगभग ३ मील दूर गोकुल के पास) बरसाना तथा वृन्दावन में राधाष्टमी उत्सव विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। बरसाने में तो राधाष्टमी से पूर्णमासी तक रासलीलाओं के आयोजन होते हैं और बूढ़ी लीला का मेला लगता है। वृन्दावन में स्वामी हरिदास जी की गद्दी मौनीदास जी की टट्टी पर संगीत समाज होता है और भक्तजनों को पूड़ी तथा अरवी का महीनों न बिगड़ने वाला शाक वितरित किया जाता है।

ब्रज में भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा से अमावस्या तक 'सांजी' की पूजा की जाती है। सांजी दीवाल पर गोबर की सहायता से बनाई जाती है और उसे फूल, आटा, रोली आदि से सुसज्जित किया जाता है।

प्रतिदिन सायंकाल सांजी की पूजा कर उसकी आरती उतारी जाती है। आरती के पश्चात् चने फूले से सांजी का भोग लगाया जाता है। सांजी की पूजा अविवाहिता कन्याएं करती हैं किन्तु विवाह होने के पश्चात् प्रथम वर्ष वे अन्तिम बार सांजी का उद्यापन करती हैं।

आश्विन मास में नवरात्र पर्व का प्रमुख आकर्षण 'न्यौरता खेलना' है। न्यौरता पूजन की समस्त प्रक्रिया एक खेल के समान होती है। 'न्यौरता' मूलतः देवी या गौरी के कुमारी रूप में पूजन का पर्व है। ब्रज में नवरात्र के प्रथम दिन आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को मिट्टी का न्यौरता स्थापित किया जाता है। यह कुछ इस प्रकार का होता है। दीवाल के सहारे मिट्टी की एक गुफा सी बनाकर उसके एक ओर सात तथा इसकी ओर पांच अर्ध गोलाकार सीढ़ियां सी बनाई जाती हैं। इस गुफा के ऊपर दो भुजाएं तथा नीचे की ओर पैर बनाये जाते हैं और सीढ़ियों के निकट शिव पार्वती की आकृति बनाती है।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही तारों की छांह में बालिकाएं स्नान करके न्यौरता के निकट आकर बैठ जाती हैं और मिट्टी की छोटी छोटी सूच्याकार 'गौर' बनाकर सीढ़ियों जैसे बने स्थान पर चढ़ाती हैं। गौर चढ़ाने के पश्चात् वे किसी जल पात्र अथवा न्यौरता के निकट खोदे गए गड्ढे पर 'गौर' रखकर उसमें गौरी की झांई (झांकी') देखने की उपक्रम करती हैं। नवमी अथवा कहीं-कहीं विजयादशमी के दिन गौरा (शिव) और पार्वती का विवाह रचाया जाता है। इसे न्यौरता न्यौरती या सुमरा सुमरिया का विवाह कहा जाता है।

आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से विजयादशमी अथवा शरद् पूर्णिमा तक ब्रज में टेसू झांझी के खेल खेले जाते हैं। वस्तुतः ये खेल टेसू और झांझी के प्रति पूजन के ही रूप हैं। जिन्हें बालक बालिकाओं से सम्बद्ध होने एवं टेसू और झांझी की खिलौने जैसी प्रतिमाओं के कारण ही खेल कहा जाता है।

'टेसू' का पुतला मिट्टी और बांस की तीन लकड़ियों से बनाया जाता है। मिट्टी की एक हंडिया को जिसके चारों ओर छोटे-छोटे छिद्र अथवा फूल आदि खुदे रहते हैं, झांझी कहते हैं।

टेसू के सम्बन्ध में प्रचलित एक किंवदन्ती के अनुसार उसे भीम का प्रपौत्र तथा घटोत्कच का पुत्र कहा जाता है। कुछ लोक उसे अर्जुन का पुत्र बब्रूवाहन का प्रतीक मानते हैं। झांझी के विषय में कहा जाता है कि वह नरकासुर राक्षस की लड़की थी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बालक-बालिकाएं रात्रि को टेसू तथा झांझी लेकर घरों और दूकानों से अनाज तथा द्रव्य संग्रह करने के लिए जाते हैं।

एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है कि टेसू का नरकीसुर की कन्या झांझी से प्रेम हो गया था और दोनों ने विवाह-सूत्र में आवद्ध होने का निश्चय भी कर लिया था। किन्तु श्रीकृष्ण द्वारा 'टेसू' का मस्तक काट लेने के कारण उनका विवाह नहीं हो सका और झांझी ने टेसू के वियोग में प्राण तज दिये। श्रीकृष्ण जी को जब यह पता चला तब उन्होंने दोनों के मिट्टी के पुतले बनवा कर उनका विवाह रचाया था। दशहरा अथवा शरद् पूर्णिमा को जिस दिन रास खेल की समाप्ति होती है, टेसू तथा झांझी के गीत गाकर संगृहीत किए गए द्रव्य से खरीदे गए खील, बताशे आदि से पूजन होता है और उन्हें किसी नदी, तालाब या कुएं में सिरा दिया जाता है।

कार्तिक में ब्रज में भोर होने से पूर्व ही तारों की छांह में जगकर स्त्रियां भजन गाती हुई स्नान के लिए चल पड़ती हैं और किसी नदी, तालाब अथवा कुए आदि पर जाकर स्नान करती हैं और राई दमोदर (राधा दामोदर) तथा तुलसी शालिग्राम की पूजा करती हैं। पूजन के पश्चात् गीत गाए जाते हैं और कुछ कहानियां कही जाती हैं। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक पूरे मास पर्यन्त यही क्रम चलता रहा है।

कार्त्तिक स्नान की परि समाप्ति पर कार्त्तिक पूर्णिमा को अथवा उससे पूर्व एकादशी को भगवान् विष्णु की प्रतिमा शालिग्राम व तुलसी के साथ बड़ी धूमधाम से विवाह रचाया जाता है।

कार्त्तिक स्नान मुख्यतः एक अर्द्धलौकिक अनुष्ठान है।

कार्त्तिक कृष्णा अष्टमी को अहोई आठें का पर्व मनाया जाता है। दीवाल पर गेरू से अहोई काढ़ी जाती हैं। स्त्रियाँ इस दिन व्रत रहती हैं और अहोई का पूजन कर चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन करती हैं। इस दिन राधा कुण्ड में एक मेला भी लगता है। जिनके सन्तान नहीं होती है वे यहां कृष्ण कुण्ड में अर्धरात्रि को अपनी स्त्रियों के साथ गांठ जोड़कर नहाते हैं।

अहोई आठें की भांति ही स्त्रियां सौभाग्य संरक्षण के लिए करवा चौथ का व्रत करती हैं। चावल के लेपन से दीवाल पर करवा चौथ काढ़ी जाती है। सायंकाल चन्द्रमा निकलने से कुछ समय पूर्व स्त्रियां करवा चौथ और गौर का पूजन करती हैं। मिट्टी के बने करुवों पर पुआ या पापड़ी रखकर भोग लगाया जाता है और चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन करती हैं।

कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी को गोपाष्टमी मनाई जाती है। ब्रज की केन्द्र स्थली मथुरा में उस दिन गोचारण लीला होती है जिसमें भगवान् कृष्ण गौ चराने जाते हैं। दूसरे दिन अक्षय नवमी की परिक्रमा लगती है और तीसरे दिन दशमी को रंगेश्वर पर कंस वध का मेला होता है। कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की एकादशी 'देवउठान एकादशी' को युगल जोड़ी की परिक्रमा लगती है। कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी से पूर्णिमा तक मथुरा जिले के तरौली गांव में ग्रामीण क्षेत्र का प्रसिद्ध 'स्वामी का मेला' लगता है।

कार्त्तिक के कृष्ण पक्ष की अमावस्या की दीपावली का महापर्व और दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को ब्रज में गोवर्धन पूजन तथा अन्नकूट महोत्सव मनाने की परम्परा प्रचलित है। इस दिन घरों में भूमि पर गोबर के 'गोबर्धन' बनाए जाते हैं जिसके अन्तर्गत गोवर्धन की एक मानवाकार, प्रतीकाकृति बनाकर उसकी टूंडी में घी, दूध, खील बताशे, मिठाई आदि भर देते हैं। इसके निकट

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ही चक्की, चूल्हा, लड़ामनी हँड़िया आदि बना देते हैं तथा आगे की ओर कुछ गूजरी, लाठी लिए एक ग्वालिया और एक कुत्ते की आकृति बनाते हैं। गोवर्धन के भाल पर एक दीपक जला कर रख दिया जाता है तथा उसके चारों ओर रुई के फाहे लगी सींकें गाड़ दी जाती हैं जिनका आशय बन तथा वृक्षों से होता है। रात्रि को हल्दी चावल से तिलक कर के अठावरी आदि से गोवर्धन की पूजा की जाती है और पांच या सात परिक्रमा लगाई जाती है। परिक्रमा लगाते समय जल छोड़ते जाते हैं और फूंकनी, घंटा या थाली बजाते हुए उछलकूद कर गाते हैं:

'मानसी गंगा श्री हरदेव, गिरवर की परिक्रमादेव' और पूजा के समय गाया जाता है:

'उठरे गोरघन पूजूं तोय औरू करूँ तेरौ आरती'

'अन्नकूट' में भगवान का विविध व्यंजनों द्वारा भोग लगाया जाता है।

गोवर्धन पूजा के दूसरे दिन यमद्वितीया या 'भैया दूज' का पर्व मथुरा के विश्राम घाट पर मनाया जाता है।

यमुना स्नान के पश्चात् स्त्रियाँ भूमि लीपकर चौक पूरती हैं और गोबर की गौर बनाकर उनके सिर पर रुई और कपास से बनी 'आब' रखती हैं। इसके पश्चात् यमद्वितीया से सम्बन्धित लोककथाएं कही जाती हैं।

अगहन में देवउठान का पर्व मुख्य है। इस दिन घरों में भूमि लीप कर आंगन के बीच में 'देव उठान' के चित्र काढ़े जाते हैं। रात्रि को देवताओं को जगाया जाता है और उनकी पूजा की जाती है।

पौष शुक्ला पंचमी को 'संकशंत' (मकर संक्रान्ति) का त्योहार मनाया जाता है।

माघ में कृष्णपक्ष की अमावस्या को गरुण गोविन्द का मेला होता है। बसन्त पंचमी पर ब्रज मंडल में अनेक स्थानों में मेले लगते हैं जिसमें ब्रजवासी पीत वस्त्र धारण कर ऋतुराज का स्वागत करते हैं। मथुरा में यमुना के पास दुर्वासा का मेला, तथा वृन्दावन में बसन्ती कमरे का मेला लगाता है। घरों में गुड्डा गुड़ियों का पूजन किया जाता है। मन्दिरों में बसन्त पंचमी से भगवान् के शृंगार में गुलाल का प्रयोग होने लगता है।

महावन में माघ के रविवार को 'जखेया का मेला' जुड़ता है।

फाल्गुन में तो ब्रज मंडल में स्थान-स्थान पर उत्सवों की शृंखला सी लग जाती है। फाल्गुन कृष्णा एकादशी को मानसरोवर पर राधारानी का मेला जुड़ता है। यहां मानबिहारी भगवान् श्रीकृष्ण का फूलडोल सजाया जाता है।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को 'बम्मोला चौदस' (शिवरात्रि) का पर्व मनाया जाता है। इस दिन शिव मन्दिरों में स्त्रियां 'जेंहर' (जल से भरे घड़े) तथा पुरुष 'कावर' (कांच की एक विशेष प्रकार की शीशियों में गंगाजल) चढ़ाते हैं।

फाल्गुन होली का महीना होता है, अतः राधा कृष्ण की प्रेमभरी पिचकारियों से सरोबोर ब्रज भूमि में होली के रस रंग की वर्षा होने लगती है और गीत-संगीत के आयोजन होने लगते हैं।

फाल्गुन शुक्ला नवमी को बरसाने में 'लठा होली' होती है जिसमें बरसाने की गोपिकाएँ नन्दगांव के हुरिहारों पर लाठियाँ बरसाती हैं और वे उन्हें ढालों पर रोकते हैं। दूसरे दिन दशमी को नन्दगांव में भी नन्दगांव की गोपियों और बरसाने के गुसाइयों के मध्य इसी प्रकार की होली होती हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

फाल्गुन शुक्ला एकादशी को मन्दिरों में 'रंगभरनी एकादशी' की धूम मचती है। फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को फारैन नामक स्थान में प्रहलाद का मेला होता है जिसमें एक पण्डा प्रहलाद कुन्ड में स्नान कर जलती हुई होली में से निकलता है।

होली की यह धूमधाम ब्रज में भी बनी रहती है। चैत्र के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अनेक गांवों में 'फूलडोल' के मेले होते हैं। चैत्र कृष्णा द्वितीया को दाऊजी का प्रसिद्ध हुरंगा होता है। जतीपुरा, आन्यौर, कोटवन, आव, बठैन, मुखराई आदि अनेक स्थानों में इसी प्रकार के हुरंगे होते हैं।

ब्रज मंडल में मनाए जाने वाले इन लोक पर्व और उत्सवों में 'शिवं' की अविच्छिन्न परम्परा अंतर्निहित हैं। ब्रज मंडल के ये लोकपर्व और उत्सव ब्रज के जन-जीवन को सक्रिय बनाए हुए हैं और ब्रज की जीवित लोक-संस्कृति के प्रतीक हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज के फूलडोल एवं फूलबँगले

⊙

श्यामसुन्दर चतुर्वेदी

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) साहित्याचार्य, पुराणेतिहासाचार्य

संस्कृत का दोलोत्सव ही हिन्दी का फूलडोल है। इस उत्सल का सम्बन्ध विशेषतः श्रीकृष्ण से है। होलिकोत्सवजन्य श्रम की निवृत्ति के लिए केशव का दोलाधिरोहण दोलोत्सव कहलाता है। शब्दकल्प-द्रुम में इसका विवेचन 'दोलयतेऽस्मिन्, श्रीकृष्णेन इति दोलः' किया गया है।

पौराणिक परम्परा के अनुसार फाल्गुन चैत्र एवं वैशाख मास में यह उत्सव मनाया जाता है। पद्मपुराण के (पाताल खण्ड) अनुसार फाल्गुन शुक्लपक्ष की चतुर्दशी अथवा प्रतिपदसन्धि युता पौर्णमासी दोलाधिरोहण का अवसर है।

"विशेषतः कलियुगे दोलोत्सव विधीयते
फाल्गुने च चतुर्दश्यामष्टमे यामसेइके
अथवा पौर्णमास्यां तु प्रतिपत्सन्धि सम्मितौ।।"

यह उत्सव तीन पांच अथवा एकादश दिन पर्यन्त चलता था।

"एकादश्यां समारभ्य पंचम्यन्तं समापयेत।
पंचाहानि त्र्यहाणि स्युर्दोलोत्सबो विधीयते।।"

गरुड़ पुराण के अनुसार यह पूरे महीने तक चलने वाला उत्सव है।

'चैत्रेक्र मासि सिते पक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिम्।
दोलारूढं समभ्यर्च्य मासमान्दोलयेत कलौ।।'

'हरिभक्तिविलास' में चैत्र की द्वादशी तृतीया एवं पूर्णमासी का विधान वर्णित है:—

"चैत्रस्य शुक्ल द्वादश्यां प्रातः कृत्यं समाप्य च।
नित्य पूजां विधायाऽथ कुर्याद्दोलोत्सवं व्रजी।
चैत्रे मासि सिते पक्षे तृतीयायां रमापतिम्।
दोलारूढं समभ्यर्च मासमान्दोलयेत कलौ।।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दोलोत्सव का सविधि विस्तृत वर्णन स्कन्दपुराण (उत्कल खंड अध्याय ४२) में उपलब्ध है। उत्कल देश के राजा इन्द्रद्युम्न ने वृन्दावन में इस उत्सव का आयोजन किया था जिसमें प्रथम दिन विशेष अर्चन द्वितीय दिन शोभायात्रा तथा तृतीय दिन दोलाधिरोहण सम्पन्न किया गया था।

"राजर्षिणेन्द्रद्युम्नेन कारिता पूर्वमेव हि,
वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्त सारस वारिणि।"

आज भी सभी वैष्णव सम्प्रदायों के कृष्णमन्दिरों में दोलोत्सव ससमारोह सम्पन्न होता है विशेषतः पुष्टिमार्गीय एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

मन्दिरों में बनने वाले ये फूलबँगले बड़ी भक्ति भावना तथा परिश्रम से बनाये जाते हैं, कलात्मकता उच्चकोटि की होती है, मन्दिर के जगमोहन प्रधानदेव के कक्ष के बाह्य भाग में बनाये जाते हैं और सजाकर लगाये जाते हैं। इन फूल बंगलों में रायबेल और मोंगरे की कलियों तथा जुही, चमेली, गुलाब कदम आदि सुगन्धित पुष्पों का उपयोग होता है। इन फूलबँगलों को इस कला के विशेषज्ञ बनाते हैं पर पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में फूलघर के सेवक तथा मुखिया लोग बनाते हैं। वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में मनमोहक नेत्रघ्राणसुखद फूलबँगले धराये जाते हैं। वल्लभकुल के मन्दिरों में फूलडोल के उत्सव होली के दूसरे तीसरे दिन उपरान्त ही प्रारंभ हो जाते हैं। चैत्र वदी द्वितीया को इष्टदेव को गुलाब का बंगला बनाया जाता है तथा उनका गुलाब की पत्तियों का शृंगार किया जाता है तथा तदुपरान्त अक्षयतृतीया तक प्रायः फूलबँगले बनाये जाते हैं।

वैशाख शुक्ला तृतीया से आषाढ़ी पूर्णिमा तक के फूलबँगलों में सन्ध्या आरती से आगामी दिन की मंगला आरती तक ठाकुर जी फूलबँगलों में विराजते हैं।

फूलबँगला ब्रज की स्वतंत्र एक पुष्पकला है जिसमें बहुलांश में श्वेत कलिकाओं और पुष्पों तथा अल्पांश में विभिन्न रंगों के पुष्पों का उपयोग किया जाता है। कलियों से विविध प्रकार की लताएँ पशु-पक्षियों वृक्षादि की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। इनका आश्रय काष्ठ या बांस की खपच्चों के साँचे होते हैं जिन पर लोहे के चोभे ठुके हुए होते हैं। उन पर पुष्पकलिकाओं से द्वार, तोरण, छज्जे, जाली, झरोखे, देहरी, सरदल, इकदरी, तिदरी, बारहदरी, चौखम्भा, अठखम्भा शिखर बुर्जियाँ आदि बनाई जाती हैं। इष्टदेव को मुकुट काछनी माल कछ टिपारा, धोती उपरना तनिया आडबन्द आदि पुष्प निर्मित ही धारण कराये जाते हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय के अतिरिक्त निकुंज सेवा भावना वाले निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय तथा राधारमन सम्प्रदाय में भी सुन्दर फूलबँगले तथा फूलमंडली होती है। वृन्दावन के बिहारी जी के मन्दिर में फूलबँगलों के अभिकल्प (डिजाइन) पत्थर पर उकेरे हुए हैं। कृष्ण अनुरागी ब्रजवासियों द्वारा भी फूलडोल उत्सव मनाये जाते हैं। लोकोत्सव के रूप में नववर्ष प्रतिपदा (चैत्र शुक्ला १) को मथुरा में किशोरीरमण कालेज की ओर वाली सभी बगीचियों और अखाड़ों पर फूलडोल होते हैं और वीड़ावताशे का प्रसाद मिलता है। चैत्र शुक्ला छठ को यमुना जी का फूलडोल होता है अष्टमी को चामुण्डा देवी का फूलडोल रामनवमी को रामजी द्वारे के राममन्दिर का फूलडोल तथा एकादशी को भूतेश्वर के फूलडोल होते हैं। फूलबँगले में विराजे हुए श्रीकृष्ण की छबि तो निहारिये—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

फूलन कौ मुकुट बन्यौ, फूलन कौ पिछौरा तन्यौ
सोहति अति प्यारौ बर फूलन कौ सिंगार।
कंठ फूल बागौ, फेंटा फूल, फूल गादी गँदुवा फूल,
हँसि बैठे हैं स्यामा स्याम सोभा कौ नहिं पार
फूलन के आभूषन, फूलन के वसन विराजत
फूलन के फौंदा, फूलन के उर हार
नंददास प्रभु फूलन निरखति सुधिबुधि भूले
सुक सारद नारद रटति बार बार॥

व्रज में युगलस्वरूप की आराधना है।

"गौरतेजो विनायस्तु श्यामतेजः समर्चयेत।
पठेत वा ध्यायते वापि स भवेत पातकी शिवे॥

अतएव कवियों ने परम आराध्या राधा के स्वरूप एवं शृंगार का भी उसी तल्लीनता से वर्णन किया है। कृष्ण को वश में करने वाली राधा की पुष्पों से सज्जित बांकी झांकी तो कीजिए—

फूलन सों बैनी गुही, फूलन की अँगिया,
फूलन की सारी मानों फूली फुलवारी।
फूलन की दुलरी हुमेल हार फूलन के,
फूलन की चंपमाल, फूलन गजरा री।
फूलन के तरौंना, कुंडल लसें फूलन के,
फूलन की किंकिनी सरस सँवारी
फूल महल में फूली श्रीराधा,
फूलन फबौ 'नंददास' जाय बलिहारी॥

फूलबँगले का वर्णन भी कवियों ने रसमय ढंग से किया है। बँगले में प्रयुक्त फूलों को तो देखिए—

बैठे लाल फूलन के चौबारे।
कर्वुक बकुल मालती चम्पा केतकी नवल निवारे।
जाई जुही केवरौ, कूजौ, रायबेल महकारे॥

फूलबँगले की शोभा अवर्णनीय होती है चारों ओर फूल ही फूल दृष्टिगोचर होते हैं—

आली फूल कौ हिंडोलौ बनौ फूल रही जमुना।
फूलन के खंभा दोऊ फूलन की डाँडी चारु।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना।
फूली सखी चहुँ ओरें, फूल रहे गगना।
नंददास ठाकुर फूलें फूल भयो अँगना॥

फूलबंगले की पच्चीकारी का अनुमान इस छन्द से लगाया जा सकता है—

फूलन के महल बने फूलन वितान तने
फूलन के छज्जे, झरोखा, फूलन किवार हैं।
फूलन की गादी गुंदी, तकिया सुफूलन के
बैठे स्यामास्याम तहाँ शोभा अपार है।
फूलन के बसन औ अभूषन सुफूलन के
फूलन के फौंदा, औ फूलन उर हार हैं।
नंददास प्रभु फूले, निरखति सुधि बुधि भूले
सुकदेव, सारद, नारद रटति बार बार हैं।

फूलबँगला, फूलडोल और फूलमंडली व्रज की लोकोत्सव परम्परा की अनुपम देन है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज में शरद ऋतु की महिमा

डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

एम० ए० पी-एच० डी०

शरद की रात जब आवै ए तो ब्रज में ऐसी भाव मानेऐं कि आज भगवान् के रास के दिन आय गयो। आज की रात मेंई ब्रज के बाजेन की ध्वनि ते ब्रह्माण्ड भरि गयोओ। रासलीला के बाजे कम थोरई ए अनेकन है। डफ, मुरचंग, वीन, मृदंग डिमडिमी, तवला, सारंगी, सितार, झालर, मंजीरा, डमरू, मुरली, वांसुरी, करवीन, जिहाज, मुद्दवर, तम्बूरा, ढोलक, ढोल, सुरमंडल, सुरवीन, सहनाई, सुरनाई, सुरही-ताल, अडवी, वजवी, असर टुन्तुमी, जलतरंग, नफीरी, खंजरी, खड़ताल, जिलकरनाई, कानूर किन्नरी, चंग, उपंग, घुनछाई, मंजीरा, अलगोजा, झाझ, वेणु, मुरज, इकतोरे, करताल, आदि बाजे एक संग बजे तो भुवनन को पूरिवो ठीक ही है।

दरसनन की भावना में ब्रजवासिन को आज ये भावना होये कि चारों ओर डफन की घोर, दुन्दुभी को सौर, मृदंग की परन, वीन की वजन, खंजरी की घुमकन, तवलन की गुमकन, डमरू की डमकन, मंजीरन की खमकन, करताल की खड़कन, तानन की तमकन, सुरमंडल की सुरन, सुरवीन की जुरन, सितारे की इचन, सारंगी की खिचन, मुरली की वजन में गोपिन के मुखते ये सुर निकसि रहे हैं—

आ आई आति आ आ नटति च विपिनं मन्दवावरितं आ।
आ आ आ एति कृष्णः पुनरिह निगदन् सालसांग ननर्त।
थो दिक दां दां किट किट कवझे थोक्क थो दिक्क आरे।
झेन्द्रां झेन्द्रां किडि गिडि किडिधां झेवक झे झेक्क झें झें॥
थो दिक द्रां द्रां दृमि दृमि हमिधा का कृझें झेकझेन्द्रा
भागत्यैवं नटति स हरिश्चारु पाठ प्रबन्धम्॥

बादर में चमकती विजुरी की तरियां श्याम रंग में रंगी। ललिता अपने कंगनन कूं खनकावती मानो आज हूं—गाय रही ए:—

झां झां कुर्वत् कनकवलये धुन्वती पाणिपादौ।
तां सां मध्यात् सपदि ललिता प्यागता कृष्ण कान्ता।
श्यामे रंगे तडिदिव घने नृत्यतीत्यं वदन्ती।
थैं थैं थो थो तिगड़ तिगड थैं थैं थौं थौं तथैथा॥

और विशाखा जी की मधुर वानीऊसंग में कोइलन कूंमात करैए:—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दृमि दृमि दृमि धों धों मृदंगाद्य वाद्यैः
कृणति कृणत् वीणा शब्द मिश्रं विशाखा
नटति झणण झंरात् कार्यलंकार जाला
द्रगिडि द्रगिडि थैं थैं थो तथोथो ब्रुवाणा।।

आज तो सब कुछ सफेद ए। पुष्य को संबंध ई सफेद ते ए। कोइल, भौंरा, कुरंग, सब के सब सफेद हैं।

दोहा—कोकिल भृंग कुरंग पिक चातक वृक्ष सफूल।
वृन्दावन अरु मोर सब स्वेतमये सुख मूल।।

मंदिरन में घरन में सवरो सिंगार सफेद ई होये—

मोतिया के फूलन को मुकुट धरावें, पाडल की पाग बनावें।
केवड़ा के फूलन की कलंगी, गुलतुर्रा के तुर्रा, कदम्ब के फूलन के
कुंडल, जुही के फूलन को जामा फिरंग के फूलन को फेंटा, पीत
चमेली को पटुका, धाय के फूल की धोती, कुन्दन के फूल की झाजन,
सुन्दरे के फूलन की सांगर, केतकी के फूलन को कठुला, रायवेल
औ मोतिया के फूलन की मूंदरी, जवारे के फूलन की पौंची, कनकवेल
और गुलाब के बाजूबन्द, दुपहरिया के फूलन के नग पहिरावेंगें।

श्री लाडिली जी को सिंगार हू शरद् में सफेद रग को ही भावै ए औ गहने ऊ सफेद सोभायमान लगें ऐं—

जाफरान के फूलन की झांझन, छुई की छेलकड़ी सहदेई के फूलन की सांकर, सेरती की सांठ, अनार के फूलन की अनवट, केतकी के फूलन के कड़े, कचनार के फूलन के कठला, हारसिंगार के फूलन के हार, निरगिस के फूल की नत्थ, मोरसरी की मोमली वसना के फूलन की विचकन्नी, कमलन के कन्नफूल, वेला के फूलन का वेंना, वावूना की वेंदी, सूरजमुखी के फूल को सीस फूल, चमेली की चंद्रिका, कुन्द के फूलन की कंचुकी चांदनी रात में देखतेई बनैए। आजुकौ चन्द्रमा ऊ देखें ई बनैए। भगवान् रासलीला कौ मन करिकें, वन में पधारे ए सो चन्द्रमा वनठन कें ब्रज में उदै भयेए। पूर्व दिसा कौ स्वामी इन्द्र देवता है ये चन्द्रमा ने ताके मुख कौं रंजित कर दिये ए। जां तरियां कोई नायक अपनी प्यारी नायिका के मुख में केसर कुंकुम को लेप करै। अर्थात् चन्द्रमा ने ये दिखायो ओ कि मैं तुम्हारी पुरखा ओ औ बुढ़ापे में ऊपर नायिका ते क्रीड़ा में संकोच नांय करौं तो तुम तो किशोर हो अभी इन गोपिकान के संग रमण करौ। याई तैं ब्रज-वासी चन्द्रमा को वरनन करते थके नांय हैं।" कोई तो कहै कि ये चन्द्रमा गोपिन के अनुराग की गठरिया है। कोऊ कहै कि ये गोपिकान के कटाच्छन ते बचायवें को ढ़ालै। कोऊ कहै कि सिंगार को दरपन ए। अथवा ये पिया पीतम के बैठिवे को सिंहासन ए अथवा गोपिन के मुख को व्याज ए अथवा गोपिन को भूसन धरिवे कों पात्र ए।

जो कछु पढ़े लिखे ऐं वे यों कहें कि ये चन्द्रमा मानो तेज धाम ते गिरयो तेज की विंदुए। या निराट् को नेत्र खुलौए या सतोगुन की गडरिया ए या आकासब्रह्म कौ कमल छदै फूल उठ्यो ए, संसार वृक्ष कौ ये फूल ए कोई या कौं काम कौ निसान मानै है तो कोई काम कौ तकिया (क्योंकि ये उद्दीपक है)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कोई याकौं सौन्दर्य की खान माने ए और कोऊ तारागणन के धरिवै को टिपारो तो कोई आनन्द सरोसर कौ कमल मानै हैं।

सरद् ते शिक्षा–

या सरत् ऋतु ते अनेकन पते की बातें अ मिलै ये कोरी सुन्दर ई नां हिनै यामें बड़े रहस् भरे ऐं यातें वेद व्यास जैसे विश्व विख्यात विद्वान ने भागवत जैसी बड़ी भारी पोथी में याकि महिला कों गान कियो ऐ।

सरद ते निर्मल आकास होय है और निर्मल ही पानी होय और बड़ी अच्छी हवा लगे है।

१. कमलन की उत्पत्ति ते जलासमन के जल अपनी सहज़ स्वच्छता कूं प्राप्त है गये। जैसे योग ते जो भ्रष्ट भये योगी तिन के चित्त जा प्रकार फिर योग करिवे ते निर्मल होयें।

२. या ऋतु में आकास के बादल नष्ट होंय, वर्षाकाल में जो अनन्त जीव पैदा होंय ते नष्ट होय, पृथ्वी की पंक नष्ट होय, जनल को मटमैलोपन नष्ट होय है। ये ऐसें नष्ट होय जैसे भगवान् की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थ और संन्यासिन के कष्ट और असुमन कों कर देय है।

संक्षेप में या ते ये शिक्षा मिले ऐं–

१. मनुष्य कों अपनी प्रकृति में ही रहनो चाहिये,

नीरज की उत्पत्ति ते नीर प्रकृति भाव कों प्राप्त भये नीरज कौ अर्थ ए—'रज रहित' सो रजोगुन त्यागनो चहिये। या पुत्र पैदा भये ते पिता ऋण मुक्त होय सो नीर ऋण मुक्त है गये क्योंकि, नीरज-कमल पैदा भये हैं वेई नीर के पुत्र ए।

२. कृष्ण भक्ति करनौ चाहिये। या तो असुभ दूर होय है सरद से पंक दूर होय है।

३. त्याग करनौ चाहिये—

जैसे सरद में बादल सर्वस्व त्याग के शुभ्र वरन ते सोभायमान होय ऐसे ही जो त्याग करे हैं ताकी सोभा होय है। कारोपन ही पाप है। सफेद पुण्य को प्रतीक है।

४. अन्तः सारवान होने चाहिये। यामैं पर्वतन के झरनान को दृष्टान्त है। वे कहूँ पानी देय है कहूँ नाहिं।

५. आयु की क्षीणता कूं समझ लें।

जो या कूं नहीं समझे वो कष्ट उठावें जैसे थोड़े जल में मत्स्य दुःखी होय।

६. इन्द्रियन पै संयम करनो चाहिये—

जो संयम करैए वो दुःखी नहीं होय यदि इन्द्रियन जीती तो दरिद्र कुटुम्बी की भांति दुःख भोगनो पड़े हैं।

७. अंहता-ममता को त्याग करनौ चाहिये—

या में समुद्र को दृष्टान्त है। सरद के आगमन के समय समुद्र को पानी स्थिर रहे हैं। वाय न पानी के कम परिवे को दुःख है और न आयवै की खुसी।

८. अपने काम को दृढ़ता तै करनो चाहिये।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जैसे किसान पानी के बांधनते खेती को पानी लेय है।

९. सब के दुःख दूर करवो ही आनन्द है।

शरद के सूर्य कौ ताप बड़ोई कठोर होय है पै चन्द्रमा जो जलन को अधिपति हैं। सबके सुख दिये हैं ताप हरे हैं ऐसे ही सबके नाम हरवे में ही लाभ है।

१०. निर्मल चित्त करनौ चाहिये—

सरद में आकास के तारे बड़े ही निर्मल होंयहें ऐसे ही जैसे शब्द ब्रह्म के दरसनते योंगी कौ चित निर्मल होय। या प्रकार शरद ऋतु ते अनेक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वैष्णव मंदिरों में सेवा-भोग और शृङ्गार

⊙

डा० गोपाल शर्मा

ब्रज की संस्कृति में अनेक संप्रदाय पनपे हैं, इन सम्प्रदायों ने जो रूढ़ियाँ और परंपराएँ स्थापित की हैं वे कई दृष्टियों से अनूठी हैं। वैष्णव मंदिरों में विशेष रूप से वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में सेवा भोग और शृंगार का एक नियामक व्यवहार-शास्त्र ही है जिसमें पारंगत हुए विना मंदिरों की पूजा-व्यवस्था में प्रवेश नहीं मिलता। पूजा अथवा भगवान की प्रतिमा का स्पर्श करने के अधिकारी या तो वल्लभकुल के गोस्वामी महिला-पुरुष होते हैं अथवा गुजराती या काठियावाड़ी ब्राह्मणों का एक वर्ग। प्रधान पुजारी को 'मुखिया' कहते हैं वह वास्तव में प्रतिमा, पूजा और उत्सवों से संबंधित सभी सोने चांदी और जवाहरात के आभूषणों, कीमती वस्त्रों, पात्रों और अन्य सामग्री का विश्वसनीय प्रभारी होता है तथा पूजा क्षेत्र से संबंधित सभी छोटी बड़ी व्यवस्थाओं और औपचारिकताओं का निर्देशक होता है। पूजा-परक अन्य कामों के कर्मचारी 'भीतरिया' कहलाते हैं। ये मुखिया के सभी कार्यों में सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कार्य करने वाले (जैसे जल एकत्र करना) जलघड़िया 'फूलघरिया' इत्यादि कहलाते हैं। इन नामों में संस्कृत के प्रत्यय नहीं हैं। मंदिर में पूजा से संबंधित छोटे-बड़े सभी कार्य 'सेवा' कहलाते हैं। भगवत्सेवा के अनेक पक्ष हैं। फूलघर की सेवा, सागघर की सेवा, जलघड़ा आदि में बाहर से सभी वैष्णव भाग ले सकते हैं। पूजागृह और बाहर की सेवा में भक्तों और पुजारियों को बगलबंडी और धोती अनिवार्य रूप से पहिननी होती है। गोस्वामियों और मुखियाओं को एक 'इकालाई' या उपरणा कंधों पर डालना पड़ता है। गले में तुलसी की माला, मस्तक पर तिलक भी अत्यत आवश्यक माना जाता है।

मंदिरों में दैनन्दिन रूप से आठ दर्शनों का विधान है। दर्शनों की चर्चा करते समय हमें कुछ धार्मिक आस्थाओं की ओर ध्यान देना होगा। कृष्ण, वैष्णवों के आराध्य हैं उनकी मान्यता है कि कृष्ण स्वयं भगवान हैं, संसार के स्रष्टा और अधिष्ठाता हैं। वे चाहे बालरूप में हों, गोवर्धनधारी हों, चतुर्भुज विष्णु के रूप में हों वे राजाधिराज हैं उनकी दिनचर्या के जितने विभिन्न क्रम विन्दु हैं जैसे जागरण, कलेवा, वस्त्राभरण धारण करना, भोजन इत्यादि ये सब भक्तों के लिए निवेदन और श्रद्धा के अवसर हैं जैसे प्रजा अपने राजा या बादशाह के दैनिक व्यवहार की झांकियां देखने को उत्सुक रहती है उसी तरह वैष्णवभक्त जन भी दिन की विभिन्न क्रिया कलापों के दर्शन करके अपने को धन्य मानते हैं और प्रायः मोटे तौर पर अपने व्यवहार को भी उसी प्रकार अनुशासित करते हैं।

सेवा का आरंभ बहुत सवेरे हो जाता है और मंदिर के किसी ऊंचे गुम्बद से विभिन्न प्रकार की सूचनात्मक घोषणाएं आरंभ हो जाती हैं। मंदिर के अहाते के द्वार के ऊपर नगाड़ों के साथ शहनाई पर भैरव, आसावरी आदि प्रातःकालीन राग बजते हुए सुनाई दें, तो समझें कि भगवान रात के विश्राम के बाद

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जागे हैं और जागरण के पश्चात् वे भक्तों को दर्शन देंगे। इस दर्शन के नाम हैं : मंगला आरती अर्थात् अब आराध्य की दिन-चर्या प्रारंभ हो गई है। इस दर्शन के समय आराध्य को धोती उपरणा हल्के वस्त्र पहनाए जाते हैं। पहनाने को वैष्णव भाषा में 'धराना' कहते हैं। इसके सिवा उन्हें पुष्पमालाएँ भी धराई जाती हैं तथा अन्य उपचारों के बाद आरती द्वारा इस दर्शन की समाप्ति होती है। इसके बाद प्रातःकालीन कलेवा प्रस्तुत किया जाता है फिर शृंगार किया जाता है जिसमें अनेक प्रकार के रत्नाभूषण, मालाएं और विभिन्न मूल्यवान वस्त्र, माथे अर्थात् श्रीमस्तक पर स्वर्ण और हीरक तिलक, नाक में नक-बेसर, कानों में कुंडल, सिर पर कलगी युक्त पगड़ी मुकुट पहनाए जाते हैं। हाथों में छड़ी और नालयुक्त कमल होते हैं। इसके पश्चात् 'राजभोग' के दर्शनों की तैयारी होती है। तैयारी के पूर्व आराध्य के सम्मुख उत्कृष्ट स्वादिष्ट भोजन प्रस्तुत किया जाता है, इसे भोग लगाना कहते हैं। इसकी घोषणा किसी ऊँचे स्थान से भण्डारी करता है—'इसे कहते हैं—मण्डारी बोला'। इसके बाद ही नगाड़े बजते लगने हैं और दर्शनों के कुछ पहले शहनाई-वादन आरंभ हो जाता है और प्रभात के उत्तरकालीन राग बजाए जाते हैं जिनमें सारंग और उसके प्रकार प्रधान होते हैं। प्रसाद के आरोग लेने के बाद उसे मंदिर के मूर्तिकक्ष से हटा लिया जाता है और तब 'राजभोग' दर्शन होते हैं। दर्शन में मुख्यतः आराध्य को पान के बीड़े प्रस्तुत किए जाते हैं। छड़ियाँ धराई जाती हैं, दर्पण दिखाया जाता है, पीठ के आसपास तकिए रखे जाते हैं और अन्त में आरती की जाती है। इन आरतियों के अधिकारी भी गोस्वामी कुल के लोग अथवा मुखिया ही होते हैं।

मध्याह्न में, विश्राम के बाद के दर्शनों के नाम हैं : उत्थापन अर्थात् भगवान का आराम करने के बाद जागरण भोग सन्ध्या आरती और शयन। इन सब दर्शनों में कालोचित सेवा-क्रिया-कलाप होते हैं। प्रत्येक दर्शन में प्रतिमा को विभिन्न वस्त्राभूषण मालाओं आदि से सुसज्जित किया जाता है और दर्शन की सारी अवधि में सितार, तानपूरा, हारमोनियम, मृदंग-पखावज आदि के साथ कीर्तन होते हैं। इनमें सूर-दास और अष्टछाप के अन्य कवियों के अवसरोचित पद गाए जाते हैं। सायंकाल उत्थापन के समय वीणा-वादन ही कीर्तन का स्थानापन्न होता है। कीर्तन, वाद्य-वादन सभी शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों में आबद्ध होते हैं।

दर्शनों के समय भीड़ को नियंत्रित करने के लिए मंदिरों में झापड़िया भी होते हैं जिनके पास लगभग चार अंगुल की एक सफेद कपड़े की पट्टी होती है जिसको घुमा-घुमा कर दर्शनार्थियों को बैठाया जाता है अथवा पंक्तिबद्ध किया जाता है। हमारे मंदिरों में आरती का बहुत अधिक महत्व होता है क्योंकि यह भगवान की आराधना का चरम क्षण माना जाता है। घृत से उद्दीप्त बत्तियों के प्रकाश में प्रतिमा की वर्धमान आभा से 'श्रीजी' के लीलाधर रूप में विशेष निखार उद्भासित होता है। यह समर्पण और तादात्म्य का क्षण है। इसके बाद वैष्णव जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थानों को लौटते हैं।

दर्शनों की इस दैनिक आवृत्ति के सिवाय विशेष अवसरों पर विशेष दर्शनों की व्यवस्था भी की जाती है। सबसे महत्वपूर्ण तो श्रावण के डोल की झांकियां हैं जबकि मंदिर के आंगन में जल भर कर यमुना बनाई जाती हैं उनमें कमल और अन्य प्रकार के फूल डाले जाते हैं। सुन्दर छोटी-छोटी नावें छोड़ी जाती हैं और सोने-चांदी, रंग-विरंगे कांचों से जड़े हुए, फूल अथवा कदली रम्भों से बनाए गये हिंडोलों पर भगवान विराजते हैं। समयानुकूल वस्त्राभूषण धराए जाते हैं। आपको हस्तशिल्प मालीगिरी और कलात्मक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सज्जा के इतने अद्‌भुत नमूने कदाचित ही किसी उपासना-पद्धति में प्राप्त हों। इसी प्रकार वर्ष में गोवर्धन पूजा के दिन कई आराध्यों की प्रतिमाएं एक ही प्रधान केन्द्र में लाई जाती हैं जैसा कि श्रीनाथद्वारा में होता है और उसे वल्लभ संप्रदाय वाले एक महान पर्व मानते हैं। इस दिन भारतीय भोज्य सामग्री के विविध रूप देखते ही बनते हैं। शाकाहारी भोजन में इतने प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जाती है जिसकी कल्पना बहुत कम लोग कर पाते हैं। इन सामग्रियों की विशेषता इस बात से है कि इसमें अन्तर्प्रान्तीय विविधता होती है इसके अतिरिक्त 'भात' का एक विशाल पर्वत तैयार किया जाता है जिसे एक छोटा-मोटा गोवर्धन ही मानना चाहिए और यह सब सामग्री इस 'भात' के महापिण्ड के चारों ओर सजाई जाती है। इस पूरे आयोजन को 'अन्नकूट' कहा जाता है। यहां मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूं कि जगन्नाथ के 'भात' की तरह इस 'भात' की प्राप्ति, वर्ग और संप्रदाय के बन्धन से मुक्त होती है साथ ही अन्नकूट के दर्शन सभी के लिए खुले होते हैं। इससे भी बढ़ कर एक बात यह है कि दर्शनों के बाद वह 'भात' का पहाड़ भीलों के लिए खुल जाता है जो दौड़ कर उसकी ओर भागते हैं और उसे लूटते हैं। आदिवासियों के साथ वैष्णवों का यह समन्दय बहुत ही अद्‌भुत है।

वैष्णव मंदिरों की भोग संबंधी अपनी रूढ़ियां हैं और विभिन्न मंदिरों में भोज्य सामग्री अपनी श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध है। श्रीनाथजी मंदिर के बड़े-बड़े लड्डू और मोटी पूड़ियां, द्वारिकाधीश की खोये पूड़ियां आदि अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है और वे देशभर में वैष्णवों के लिए पार्सल द्वारा भी भेजी जाती हैं। उन्हें महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। भोग सामग्री की अन्य विशेषता यह है कि उसमें दक्षिण के भोज्य पदार्थ भी कुछ संस्कार के द्वारा स्वीकृत किए गए हैं। कुछ पदार्थ रसम सरीखे होते हैं, कुछ सब्जियां दक्षिण के तरीके पर बनाई जाती हैं और 'भात' का प्रधान्य तो है ही। इसका प्रधान कारण यह है कि वल्लभ संप्रदाय के आचार्य मूलतः दक्षिण के थे, किन्तु अधिकांश रूप से गुजराती ब्राह्मणों की मंदिर में प्रधानता के कारण रसोई और भोज्य सामग्री पर उनका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'भोग के संबंध में एक पूरा पाकशास्त्र है; उनके सजाने और प्रस्तुत करने की भी नियत विधियां हैं। भगवान को आरोगने के लिए जो सामग्री प्रस्तुत की जाती है वह इस प्रकार है। मंगला के समय मलाई-दार-दूध, ग्वाल के समय खोये की सामग्री, राजभोग में सम्पूर्ण रसोई उत्थापन और भोग के समय विभिन्न फल और संध्याआरती तथा शयन के समय कढ़ी साग और भात।

मुझे कभी-कभी इस बात का बड़ा आश्चर्य होता है और मैं इसे हिंदू मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का एक रूप ही मानता हूं कि मंदिरों में शृंगार की परंपरा में 'पातशाही', वस्त्राभूषणों को विशेष स्थान दिया गया है। जामा और अगरखा, पगड़ी कमरबंद आदि कुछ फारसी प्रवृत्ति के वस्त्र-सज्जा के प्रकार हैं। भगवान को एक बादशाह की तरह ही सजाया जाता है और महाराणाओं की तरह ही पगड़ी पर पर कलगियां लगाई जाती हैं और मुकुट बांधे जाते हैं। बड़े-बड़े हारों मुक्ताओं, मणियों और अन्य बहुमूल्य रत्नों के आभूषण, राज दरबारों में प्रचलित आभूषणों के ही प्रतिरूप हैं। जूतियां भी जरी की, जड़ाऊ होती हैं और रूप में उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि मुस्लिम बादशाह या रियासती शासक मध्ययुगीन इतिहास काल में पहनते थे।

पर्वों, प्रस्तावों और ऋतुओं के अनुसार प्रतिमाओं को, अनेक रंग के वस्त्र पहनाए जाते हैं अर्थात् वसंत ऋतु में केसरिया, वर्षा में आसमानी, विशेष अवसरों पर जरी के अथवा सुनहरी रंग के। इस सीमित

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

निबंध में सब बातों का ब्यौरा देना तो सम्भव नहीं है परन्तु इस परंपरा से अपरिचित लोगों को मैं यह अवश्य सूचित करना चाहूँगा कि भगवत् सेवा-शास्त्र में मानव कलाओं का सूक्ष्म, ललित समन्वय और परिपाक कुशलता की जिस चरम सीमा तक वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में प्राप्त होता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। पूजा का व्यवहार-शास्त्र कितना सूक्ष्म तंतुओं से बुना गया है कभी-कभी आज की परिस्थितियों में उन्हें निभाना कठिन हो गया है। व्यावहारिक यथार्थवाद के युग में इस आराधना केंद्रित कलावृत्ति को चाहे आज हम व्यर्थ भले ही समझें किन्तु भारत के खास-खास केंद्रों में इस संप्रदाय ने जिन विशिष्टताओं को जन्म दिया है उनका पुनरुद्धार करने में और उनको विश्व के सामने लाने में विदेशी उत्सुकता और सक्रियता दिखा रहे हैं। नाथद्वारे के कलाकारों के संबंध में अमरीकी पत्र 'स्पन' में एक मार्मिक सचित्र निबंध छपा है जो मेरे कथन की समुचित पुष्टि करता है।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से साभार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा का गौरवपूर्ण अतीत और भविष्य की सम्भावनाएँ

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम०ए०, डी०लिट्०

ब्रजभाषा प्रायः समस्त उत्तराखण्ड की जन-भाषा एवं काव्यभाषा रही है। यही वह पवित्र वाणी है जिसमें आनन्द-कन्द भगवान श्रीकृष्णचंद्र ने मंचलि मंचलि कर माखन-रोटी मांगी थी।

अमीर खुसरो के कविता-काल संवत् १३४० के आसपास से ब्रजभाषा के काव्य का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध है। विगत ७०० वर्षों की कालावधि में न मालूम कितने सहृदय साहित्यकारों ने इस लोकपावनी भागीरथी में अवगाहन करके अपनी वाणी को कृतकृत्य किया है!

पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में ब्रजभाषा का अतीत अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल को जो स्वर्णकाल कहा जाता है, उसका कारण ब्रजभाषा का स्वर्ण साहित्य ही है। सूरदास, नन्ददास प्रभृति अष्टछाप के कवि, नरोत्तमदास, रसखान, मीरा आदि अनेक भक्त कवियों ने ब्रजभाषा के माध्यम से भक्ति-सुरसरी की शत-सहस्र धाराएं वहाई हैं। रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ब्रजभाषा में विनय पत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, कवितावली सदृश श्रेष्ठ रचनाएं प्रस्तुत करके अपनी वाणी को पवित्र किया।

जिस समय समस्त भारतवर्ष मुगलों एवं यवनों के अत्याचारों से आक्रांत था, जिस समय लोगों में गज की टेर सुन कर आने वाले खरारि के एवं द्रौपदी का आर्त्तनाद सुनकर आनेवाले मुरारि के प्रति विश्वास डिग गया था, उस समय इस भाषा के महात्मा कवियों ने ब्रजमाधुरी द्वारा जन-मानस को सरस सुहावना बनाया और दशों दिशाओं में जगन्मोहन की मधुर मुरली सुनाई। सूरदास के पूर्ववर्ती कवि बैजूबावरा का यह पद देखिए जिसमें शृंगार और भक्ति की यमुना-गंगा श्यामल-धवल हिलोरें लेती हुई दिखाई देती हैं—

मुरली बजाइ रिझाइ लई मुख मोहनतें।
गोपी रीझि रही रस-तांनन सां, सुध-बुध सब विसराई।
धुनि सुनि मन मोहे मगन भई देखत हरि आंनन।
जीव जंतु पसुपंछी सुर नर मुनि मोहे, हरे सब प्रानन
'बैजू' बनवारी बंसी अधर धरि वृन्दावन-चंद
बस किए सुनतहि कांनन।

'रीतिकाल' में ब्रजभाषा काव्य के अन्तर्गत काव्यशास्त्र विषयक विशद निरूपण उपलब्ध होता है। कहा जाता है कि इस काल का काव्य कामुकता के कलुष से कलुषित है। हम तो इतना ही कह सकते हैं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कि यह मत दृष्टि भेद का ही परिणाम है। रीतिकाल के काव्य में यथास्थान वासना की गंध अवश्य है, परन्तु उसके पीयूष-पयोधि में श्रेष्ठ रत्नों का ही बाहुल्य है। किसी को यह काव्य बुरा और दुराचार-युक्त भले ही दिखाई पड़े, परन्तु भक्तों को तो यह काव्य प्राणों से भी अधिक प्यारा है। कविवर बिहारीलाल ने तो डंके की चोट पर कहा है कि—

ब्रजवासिन कौ उचित धन, सो धन रुचित न कोइ।
सुचित न आयौ सुचितई, कहौ कहां ते होइ॥

परकीया आदि नायिकाएं गोपों की प्रेम-मदमाती गोपिकाएं हैं। श्रीकृष्ण ने इनके साथ रासक्रीड़ा की। अतः कवियों ने भी इस विषय को अपनी कीर्त्तनशैली के अन्तर्गत कर लिया। अलौकिक प्रेम की टिप्पणी में मतिराम की परकीया ऐसी नायिका का प्रेम-विषयक यह कथन सुन लीजिए—

क्यों इन नैनन सों निरसंक हैं, मोहन कौ तनपानिप पीजै।
नेंकु निहारें कलंक लगै, इहि गांव बसें कछु कैसे कै जीजै॥
होत रहै मन यो 'मतिराम' कहूं बन जाई बड़ौ तय कीजै।
है बनमाल हिये लगिए अरु है मुरली अधरा-रस लीजै॥

रीतिकाल के प्रमुख श्रृंगारी कवि 'देव' का वैराग्य पूर्ण यह कथन सुनकर कौन कहेगा कि ये कवि श्रृंगार के कर्दम में ही लिप्त रहते थे, इन्होंने श्रृंगार के उज्ज्वल पक्ष का साक्षात्कार नहीं किया था?

हाइ कहां कहौं चंचल या मन की गति में मति मेरी भुलानीं।
हौं समुझाई कियों रस-भोग, न देवतऊ तिसना बिनसांनी॥
दाड़िम, दाख रसाल सिता मधु ऊख पिए ऊर पियूष से पांनी।
पै न तऊ तरुनी-तिय के अधरांन के पीवे की प्यास बुझानी॥

रीतिकाल में सूक्तिकार कवियों की भी एक लम्बी नामावली है। इनमें वृंद, घाघ, वैताल और गिरिधर कवि के नाम अग्रगण हैं। इनमें गिरिधर कवि की नीतिपरक कुण्डलियां उत्तर भारत के कोने-कोने में प्रचलित हैं—

बाहर के अन्तर सोई, आगे पाछे एक।
जो ना समझे बात यह, ताके पिता अनेक॥
ताके पिता अनेक तथा जायों तिस माता।
जहां जहां वह जाइ तहां तहां लहै असांता॥
कह गिरिधर कविराय एक चिद बानन जाहर।
सो ऊरध सोई अरथ सोई पुनि अंतर बाहर॥

गिरिधर कवि के समान वृन्द और वैताल ने भी मानव जीवन के विविध उदात्त पक्षों को अपनी कोमल वाणी को संस्पर्श प्रदान किया है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्विवेदी युगीन ब्रजभाषा के कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उद्धवशतक' में यद्यपि आधुनिक पद्धति की ऊहापोह एवं आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषणशीलता का अभाव है तथापि व्यापकत्व की दृष्टि से वह सर्वथा आधुनिक है। 'उद्धवशतक' के ऊपर आधुनिक विज्ञान-जन्य संदेहशीलता की यह छाप स्पष्ट है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े विस्व मांहि हेरैं हूं न पैये जाहि,
ताहि त्रिकुटी में नैन मूंदि लखिवो कहौ॥

सर्वव्यापी को छोटी सी जगह में बन्द करके देखने की बात कितनी बेतुकी हो सकती है, गोपियों ने कदाचित उद्धव को यही बताने का प्रयत्न किया है।

द्विवेदी युग में राजनीतिक रंग मंच पर दो अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं—मंचूरिया के युद्ध में रूस पर जापान की विजय तथा वंग-भंग-आन्दोलन की सफल परिणति। इनके फलस्वरूप एशिया-वासियों का आत्म-विश्वास जाग्रत हो उठा था और भारत का सोया हुआ पौरुष जाग उठा था। भारतेन्दु युग में देश भक्ति की जो तलवार राजभक्ति के म्यान में रखी हुई थी, वह द्विवेदी युग में नंगी शमशीर के रूप में बाहर आ गई थी। चारों ओर भारत, भारतमाता और भारतीयता का जयघोष सुनाई देने लगा था। ब्रजभाषा के देशप्रेमी कवि अपने अतीत गौरव की गरिमा से अभिभूत हो उठे थे। बाबू श्री राधाकृष्ण दास जी स्वतन्त्रता की आन पर बन-बन मारे फिरते रहने वाले राणाप्रताप का स्मरण करते हुए कहते हैं कि—

तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि स्वाधीनता को प्रबल सत्रु करि व्यर्थ।
अनेकन कष्ट सहि।

ब्रज कोकिल कवि सत्यनारायण स्वतन्त्रता की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

जय जय जय स्वतंत्रते प्यारी।
तुवगति, नर मति समझ सकल नहिं अखिल लोक ते न्यारी।

'कविरत्न' ने भारत के अतीत का गौरवगान किया, वर्त्तमान के प्रति क्षोभ व्यक्त किया तथा भारत के कण-कण के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया। उनकी स्वदेश भक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना का यह उदात्त स्वरूप देखते ही बनता है—

सब मिलि पूजिय भारत माई।
जाकी निर्मल कीर्ति-कौमुदी छिटकि चहूं दिसि छाई।
+ + +
प्रिय स्वदेश व्यापार-अर्घ जल सिंचन करहु बनाई
जपहु मुदित मन सत्य मंत्र बन्देमातरम् सुहाई।

वियोगी हरि ने भी इसी युग में काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी देश-भक्ति की सुधा-धारा उनके रोम-प्रति रोम से निस्सृत होती हुई दिखाई देती है।

एक ओर स्वाधीनता सीसु दूसरी ओर।
जो दो में भावै तुम्हैं भरिसो लेहु अंकोर॥
चाहौं जो स्वाधीनता सुनौ मन्त्र मन लाय।
बलि-वेदी पै निज करनि, निज सिरु देहु चढ़ाय॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वियोगी हरि की वाणी में निहित स्वाधीनता की भावना कालांतर में सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के रूप में फलवती बनी—

तुच्छ स्वर्ग गिन तु जो इक स्वतन्त्रता काजु।
बस वाही के हाथ है, आज हिन्द की लाजु॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने नारी-जागरण के प्रति अपना योग-दान करते हुए जाति-प्रेमिका, देश-प्रेमिका, जन्मभूमि प्रेमिका, लोक-सेविका आदि अभिनव नायिकाओं की उद्भावना की। समाज की रूढ़ियों द्वारा ग्रस्त एवं परम्पराओं से प्राप्त शोषण द्वारा त्रस्त नारी के प्रति आस्था प्रकट करते हुए हरि-औध ने नारी की मुक्ति के लिए आवाज़ उठाई—

पकि पकि रहि हैं पकरि कै करेजौ को लौं,
कलपि कलपि कौ लौ बासर बिताइ है॥

\+ \+ \+

कौ लौं ह्वै हैं बलि बलवान रुचि बेदिका पै,
भारत की बाला कौ लौ अबला कहाई है?

ब्रजभाषा के प्रेमी कवि 'हरिऔध' छुआछूत जैसी कुप्रथा के प्रति भी जागरूक दिखाई देते हैं—

इतनो हूं समुझत नहीं तऊ बनत हैं पूत।
जाको कहत अछूत है बासैं कैसी छूत॥

काव्य जगत के 'वादों के नक्कारखाने में ब्रजमाधुरी की बांसुरी की आवाज कुछ दब-सी गई है। परन्तु इस वंशी की मधुर ध्वनि में हमको आधुनिकता का सरगम स्पष्टतः सुनाई देता है।

ब्रजभाषा के गद्य का इतिहास भी कम गौरवपूर्ण नहीं है। ब्रजभाषा का जो गद्य-साहित्य हमारे सम्मुख है उसे हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। धार्मिक श्रेणी और साहित्यिक श्रेणी। धार्मिक का सम्बन्ध भक्ति-काल से विशेष है, जिसमें दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता आदि वार्त्ताएं बनीं, पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद हुए, आचार्यों तथा भक्तों ने अपने धर्म को लोगों पर प्रकट करने के लिए भाष्य किए वा गद्य ग्रन्थ लिखे। साहित्यिक श्रेणी का गद्य रीति में प्रधानतः टीकाओं के लिए गृहीत हुआ। इसमें कुछ मौलिक रचनाएं भी हैं जिनका सम्बन्ध साहित्य से है। वैद्यक, ज्योतिष, शालहोत्र आदि विषयों को लेकर भी कुछ रचनाएं प्रस्तुत की गईं।

धार्मिक रचनाएं अधिकांशतः साम्प्रदायिक रहीं और इनका सम्बन्ध श्रीकृष्ण से रहा। राम को लेकर भी कुछ गद्य ग्रन्थ लिखे गये। नाभादास कृत 'अष्टयाम' में राम की दिनचर्या का वर्णन है। ब्रजभाषा में लिखित नाथ सम्प्रदाय के भी कुछ गद्य ग्रन्थ मिलते हैं। 'गोरखसार' इसी वर्ग का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ब्रजभाषा गद्य में किए गए कुछ संस्कृत नाटकों के अनुवाद भी मिलते हैं।

आजकल भी अनेक श्रेष्ठ कवि विविध विषयों पर ब्रजभाषा में रचना करते हुए देखे जा सकते हैं। प्राचीन पद्धति पर नखशिख-वर्णन का अमृतलाल चतुर्वेदी कृत यह सौन्दर्य-वर्णन द्रष्टव्य है—

छुप्पौ है छपाकर हू छाकि के छबीली छटा
सुन्दरि सुमेष रेख डारी केटि नैन पै।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

केकिन कटाने कंठ केहरि छटानी कटि
कोकिल रूठानी मृदु मोद भरे बैन पै।
मुरि सकुचानि मुसकानि गति मंद मंद
लोटि लुट जात क्यों न सनेह सनी सैज पै।
मीनन कों बारौ मृग मुक्तन निछारि डारों
जारौं कंज खंजन नबेली नीके नैन पै।

हमारे उदीयमान नवयुवक कवि सोम ठाकुर ब्रजभूमि और ब्रजचंद का गुणगान करते हुए देखे जा सकते हैं—

ब्रजधाम महा अभिराम जहां घनश्याम से आनंद रासी भये।
ब्रज व्योम के सोम गोविन्द कलानिधि राधिका प्रेम प्रकासी भये॥
हम कौन से दान दये जु अबे नद नंदन के अभिलाषी भये।
किन्ह पूरव पुण्य प्रतापन सो ब्रज में जनमें ब्रजवासी भये॥

हमारे तोताराम 'पंकज' ने नायिका-भेद का आधुनिकीकरण करके न्यू नायिका भेद का निरूपण किया है—

घनश्याम अस्थाना प्रणीत बादल और बिजली का यह वर्णन देखते ही बनता है जिसमें नवीन और प्राचीन उपमाओं की गंगा-यमुनी का मनोहारी दर्शन होता है—

झूमर से सीस पै, असीस-सी सुहागिन पै
रागिनी पै झूमत-सितार जैसी बीजुरी।
सागर में पोत सी कपोत सी मयूरिनु में,
व्याउली सी चूरी झनकार जैसी बीजुरी
स्याम की अधर-बिनु, रेनु में सरित जिनि
मेघन की म्यान में कटार जैसी बीजुरी
सहज बिबस बिबस अंग उन्नत कनक सृंग
संकर जटा में गंगा धार जैसी बिजुरी।

दक्षिण भारत में मिलने वाले ब्रजभाषा के कतिपय ग्रन्थ भी हमारे इस कथन का समर्थन करते हैं कि ब्रजभाषा काव्य उत्तर और दक्षिण के विरोध को मिटाने में सक्षम रहता है और यदि हम उसकी सम्भावनाओं के प्रति जागरूक रहें, तो वह हमें विकास के पथ पर ले जाने में सर्वथा समर्थ सिद्ध होगा।

श्री वहीद रमजान ने खुसरो पर शोधकार्य के सिलसिले में पता लगाया कि लगभग १०० मुसलमान कवियों ने फारसी लिपि में ब्रजभाषा की रचनाएँ लिखी हैं।

पटना में स्थित खुदाबख्श लाइब्रेरी में फारसी लिपि में लिखे हुए अनेक ब्रजभाषा के ग्रन्थ मौजूद हैं। इनके आधार पर ब्रजभाषा से हमारे विचार से फारसी के जानकार हिन्दी के कुछ विद्वान यदि इस ओर प्रवृत्त हो जाएँ, तो ब्रजभाषा साहित्य में अनेक नवीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत हो जाएं।

ब्रजभाषा के अनेक कवियों को हम भूल गए हैं। इनमें अनेक कवि ऐसे हैं जिनकी कतिपय रचनाएं किसी समय में प्रकाशित हुआ करती थीं और आज वे हमारे लिए सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो गए हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा साहित्य में शोधकार्य का एक क्षेत्र 'उपेक्षित कवि' भी हो सकता है। हम यदि हिन्दी की पुरानी पत्रकाओं—हरिश्चन्द्र, चन्द्रिका, ब्राह्मण, सरस्वती, मर्यादा, सुधा आदि का अध्ययन करें, तो ब्रजभाषा में रचना करनेवाले अनेक नाम हमारे सामने आएंगे। इस प्रकार के कवियों का अध्ययन जिलेवार किया जाए तो यह कार्य सरल भी हो जाए और इसमें गम्भीरता भी आ जाएगी।

प्रतिकूल प्रभावों के कारण ब्रजभाषा-काव्य सरिता की गति अवरुद्ध ही नहीं हो गई है, बल्कि उसके अवयव भी छिन्न-भिन्न हो गये हैं यही कारण है कि इस प्रेम-पयोधि के रस-रत्नों के सुधारस-पान से हम वंचित बने हुए हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम पूरी शक्ति के साथ इस काव्य सागर के मन्थन में प्रवृत्त हो जाएँ—

सघन सजन घनश्याम अब दीजे रसु बरसाइ।
जासों ब्रजभाषा-लता, हरी-भरी लहराय॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का उदारवादी दृष्टिकोण

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

ब्रज क्षेत्र ने भारत के इतिहास को अत्यन्त मूर्तिमान योगदान दिया है। यहाँ का इतिहास रोमांचक रहा। संगीत, साहित्य, स्थापत्य, शिल्प, हस्त-कौशल, चित्रकला तथा राष्ट्र की विविध प्रवृत्तियों में ब्रज का अनूठा योगदान है। चाहे संगीत का विषय हो, चाहे शिल्प का, चाहे साहित्य हो या राजनीति ब्रज का जो सांस्कृतिक क्षेत्र है, उसे आप भारत के इतिहास से निकाल दीजिये और फिर आप देखिये कि भारत की संस्कृति कितनी रीती हो जाती है। भगवान श्रीकृष्ण को लेकर साहित्य, संगीत और शिल्प ने क्या-क्या नहीं दिया, परन्तु हम इस समय ब्रज की इन बहुचर्चित उपलब्धियों का उल्लेख करना अपना अभीष्ट नहीं समझते। हमें जरूरत है इस बात को समझने की कि ब्रज में जो कुछ हुआ, क्या वह नितान्त आकस्मिक था या उसकी ओर कोई पृष्ठभूमि थी। क्यों ब्रजभाषा में इतना सुंदर, मनोहर, रसदायी साहित्य और संगीत प्रदान किया? क्यों ब्रज में ऐसी सुन्दर मूर्तियां बनीं? क्या कारण था कि मथुरा तीन लोक से न्यारी हो गई और ब्रज में जो हुआ वह अन्य जगह दिखाई नहीं देता था और आज भी नहीं दिखाई देता।

मैं यह तो नहीं मानता कि ब्रज क्षेत्र में हमारे जो पूर्वज पैदा हुए, वे देश के अन्य भागों में पैदा होनेवाले लोगों से अधिक अच्छे थे यानी विद्या, बुद्धि या चरित्र में उत्तम थे। पर यह अवश्य मानता हूँ कि इस क्षेत्र में जो हमारे पूर्वज थे, उनका दृष्टिकोण अड़ोस-पड़ोस के निवासियों की अपेक्षा कुछ अधिक उदार था। हो सकता है कि वह जिस समूह से आये थे, उनका दृष्टिकोण कुछ भिन्न था या यह भी हो सकता है कि इस धरती के पुण्य प्रताप ने उनके विचारों को बदल दिया। लोग मानते हैं कि प्रकृति मनुष्य के विचारों पर बहुत व्याप्त प्रभाव डालती है। ब्रज में यमुना मैया, बड़े शान्त भाव से अपने मीठे और पुष्ट जल का वरदान देती चली आई है। ब्रज में गिरिराज गोवर्द्धन में और उनकी सुरम्य वनस्थली ने लोगों को प्रकृति के वात्सल्यमयी अंचल में बैठने और घूमने के लिये पूरा अवसर प्रदान किया। ब्रज की भूमि उपजाऊ है। कम से कम जब से हलधर बलराम ने अपनी नोक से जमुना की धारा को मोड दिया, ब्रज में लक्ष्मी बरसती रही। इसलिये यहाँ का किसान प्रारम्भ से ही सुखी रहा और ऐसा नाचता गाता रहा कि उसके लोकगीत और लोक-नृत्य सारे देश में आज भी अपनी सानी नहीं रखते। इसीलिये ब्रज की भूमि दूध-दही, मक्खन और घी का भण्डार होती रही। यहां के पशु हृष्ट-पुष्ट और दुधारू होते हैं। और जिस भूमि में दूध-दही की नदियां बहने लगें, वहां पर सिवाय रस के उद्रेक के और क्या हो सकता है।

जहाँ मुख मीठा होने लगे, वहाँ पर वाणी में कठोरता या कडुआपन कैसे आ सकता है। इसीलिये कहा गया,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पिंगल उपनामक गिरा जिनकी मधुर विशेष,
पुर दिल्ली और ग्वालियर बीच ब्रजादिक देश ।

प्रत्येक देश की संस्कृति उसकी भूमि की उपज ब्रज की संस्कृति की भी यही विशेषता है। अब जब ब्रज में रेगिस्तान उमड़ता चला आ रहा है, ब्रजवासियों का हृदय भी रूखा-सूखा हो रहा है। परन्तु यदि हम प्रारंभ से आज तक के ब्रज के इतिहास को देखें तो एक बात बड़ी स्पष्ट नजर आती है, वह ये कि ब्रज-वासियों में हमेशा मनुष्य को उसकी भावनाओं और उसके व्यक्तित्व को आदर और सम्मान दिया ब्रज में यद्यपि सज्जा और सजावट की कोई कमी नहीं थी, परन्तु हृदय की भावना को साज-सज्जा के ऊपर सदैव स्थान दिया है। तभी तो यहाँ की लकुटी और कामरिया पर तीनों पुरों का राज्य न्योछावर हो सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ब्रज की इस भावना को, ब्रज की इस आत्मा के, न केवल सर्वोत्तम प्रतीक थे, बल्कि वे इसके सर्वोच्च प्रचारक भी थे। ब्रज की भूमि में जो विशुद्ध मानवीय विशाल उदारवादी, सबको समान समझने वाला, सबको अपना समझने वाला दृष्टिकोण था, उसका भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी जीवन में परिपालन करके दिखाया और फिर भगवान श्रीकृष्ण न केवल ब्रज के वरन् सारे देश के आदर्श बन गये। ब्रज के साहित्य के निखार का, ब्रज की कला के प्रसार का यही रहस्य है कि मनुष्य की एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना को असीमित कर भगवान ने ब्रजवासियों को साहित्य, संगीत, कला, दर्शन और जीवन के विविध अंगों में क्षितिज तक फैलने के साधन उपलब्ध कर दिये। जिसका परिणाम यह हुआ कि छोटा-सा ब्रज इस विशाल भारतवर्ष और उससे भी दूर दूर ऐसा छा गया कि आज संसार के इतिहास, साहित्य अथवा दर्शन, कला अथवा कौशल किसी से भी आप उसे भुला नहीं सकते।

मेरी यह मान्यता है कि ब्रजभूमि भगवान श्रीकृष्ण के जन्म से पहले ही अपनी इन प्रवृत्तियों के लिये प्रसिद्ध था और यही कारण है कि मैं भगवान श्रीकृष्ण को ब्रज की संस्कृति का चरम उत्कर्ष मानता हूँ, आदि उन्नायक नहीं। यह कहना भी ठीक ही है कि भक्ति उपजी द्राविड़ि यानी द्रविड़ देश में भक्ति का बड़ा उत्कर्ष हुआ और वहां से लौटकर वह उत्तर भारत में श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री मध्वा-चार्य, श्री रामानंद, श्री कबीर, श्री रूप व सनातन गोस्वामी तथा स्वामी प्राणनाथ जैसे उन्नायकों द्वारा लाई गई। लेकिन यदि हम बहुत दूर न जाकर श्री मद्भागवत तथा अन्य पुराणों को ही पढ़ें, जो वर्तमान भक्ति सम्प्रदाय के मूलाधार ग्रन्थ कहे जाते हैं, तो हमको पता लगता है कि इस देश के प्रथम भक्त ध्रुव ने यमुना नदी के निकट मधुबन में आकर भगवान की भक्ति की थी और नारायण के दर्शन किये थे। नारायण पूजा अथवा पंचरात्र का विधान ईसा की किसी भी शताब्दी में कहीं भी शुरू हुआ हो, परन्तु भारत की जितनी भी मान्यताएं हैं, उनके आधार पर प्रथम मानव ने नारायण भक्ति और नारायण दर्शन का सौभाग्य इस ब्रज की ही पवित्र भूमि में प्राप्त किया। जिस समय नारद ने ध्रुव को यह सलाह दी कि वे मधुबन में जाकर तपस्या करे, उस समय उन्होंने यह भी कहा था कि यह एक ऐसा पवित्र स्थान है, जहाँ पर बहुत से ऋषि तपस्या करते हैं। वे कौन से ऋषि थे और उनके आश्रमों में कौन सा सन्देश मिला, इसका कोई संकेत नहीं, परन्तु उपनिषद एक संकेत देते हैं, जब वे देवकी पुत्र कृष्ण को घोर आंगिरस का शिष्य बताते हैं। अब प्रश्न उठता है कि यह आंगिरस कौन थे। आंगिरस स्पष्टतः अंगिरा ऋषि या उनके वंशज ही हो सकते हैं। प्राचीनकाल में एक नाम सैकड़ों वर्षों तक आता है। वशिष्ठ और व्यास अनेक राजाओं के काल में उपस्थित होते हैं। इतिहासकारों ने उसका अर्थ यही निकाला कि ये नाम पारिवारिक नाम हैं, व्यक्ति-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सूचक नहीं हैं। और पिता, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र उसी कुल नाम से ज्ञात होते रहे हैं। अगर इस परिपाटी को हम आंगिरस के ऊपर लागू करें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आंगिरस उन अंगिरा ऋषि की सन्तान हैं, जिनके मुख से सबसे पहले वेद प्रकट हुआ। अब कौन वेद पहला है और कौन बाद का, यह भी विवादास्पद है। वेद चार हैं, ऋक, यजु, साम और अथर्व। यह भी माना गया है कि वेद व्यास ने इन वेदों का संपादन किया है और इन्हें संहिताबद्ध किया है। वेद व्यास से पहले चारों वेद मिले हुए हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं, जो तीन ही वेदों को प्रधानता देते रहे और अथर्ववेद को इन्होंने मान्यता नहीं दी। इसीलिये अथर्व वेद चौथा वेद कहलाता है। भारत में त्रि का जो महत्व था, उसका प्रयोग सबसे पहले वेदों के लिये किया गया। फिर तो त्रिवेदी, त्रिपाठी, त्रिमूर्ति, बृहत्रयी आदि अनेक नामकरण हुए। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अथर्व को इसलिये पृथक् वेद नहीं माना जाता था कि उसमें अन्य वेदों के बहुत से मन्त्र हैं। वैदिक भाषा में अथर्व अथवा अथर्वन का अर्थ पुराना या बूढ़ा माना जाता है। अथर्ववेद के रचयिता अंगिरा और अथर्वन नामक दो ऋषि कहे जाते हैं। इनमें अंगिरा, ऋग्वेद के भी रचयिता हैं। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि अथर्वन टाइटिल है और उससे मन्तव्य अंगिरा ऋषि का है, क्योंकि वही सबसे पुराने आदि ऋषि माने जाते हैं, जिन्होंने वेदों का उन्नयन किया। इस प्रकार अंगिरा ही अथर्ववेद के रचयिता हैं। और एक मान्यता तो यह है कि मूल वेद का नाम ही अथर्ववेद है। और बाद में जब उसके विषय वार खंड संपादित कर दिये गये, तो ज्ञान पक्ष वाला ऋग्वेद कर्मकाण्ड वाला यजुर्वेद, संगीत वाला साम वेद कहलाया। जो शेष मन्त्र बच गये, जिनका विषयवार एक वेद के रूप में संपादन करना कठिन लगा, क्योंकि उनमें विविध विषय थे तथा ऋग्वेद के जो कुछ सर्वोत्तम मन्त्र थे, उनको अथर्ववेद में रखा गया और उसे पुराना वेद कहकर स्वीकार किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ लोगों ने केवल तीन वेदों का अध्ययन करना पर्याप्त समझा और कुछ लोगों ने चार का। ब्रज क्षेत्र में अंगिरा का महत्व था। या यों कहिये कि उनका सम्मान था और वहां चारों वेदों का प्रणयन हुआ।

ब्रज की संस्कृति में वेद को लाने का हमारा अभीष्ट यह बताना है कि ब्रज का मूलाधार क्या है। अथर्व वेद अत्यन्त व्यावहारिक और वैज्ञानिक मन्त्रों का संग्रह है। प्रत्येक व्यक्ति की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं का भी उसमें ध्यान रखा गया। और कभी कभी तो अथर्ववेद को पढ़ने से ऐसा लगता है, जैसे हम वनस्पति शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र अथवा जीव शास्त्र का अध्ययन करते हैं। हमारी दृष्टि में अथर्व वेद का आधार साधारण मनुष्य का स्वस्थ जीवन है, जो प्राचीन ऋषि अंगिरा की विशेष देन है। वह विचार धारा ब्रज में प्रस्फुटित हुई हो, या नहीं, मेरा मन तो यह मानने को भी कहता है, परन्तु इसका प्रमाण देना कठिन है। परन्तु पनपी यहां वह खूब। जिसके परिणामस्वरूप ब्रज के दृष्टिकोण में एक विशेषता आ गई।

एक अत्यन्त प्राचीन कथा भक्त अंबरीश की है। भक्त अंबरीश ने जिनके नामपर मथुरा में अंबरीश टीला अब भी विख्यात है, विष्णु भगवान की भक्ति की। एक दिन उन्होंने दुर्वासा ऋषि को भोजन का निमन्त्रण दे दिया, परन्तु ऋषि को स्नान में देर होते देखकर और सूर्य के अस्त होने के भय के कारण पारायण कर लिया, जिससे नाराज होकर दुर्वासा ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया। उस समय भगवान विष्णु के चक्र सुदर्शन ने दुर्वासा का पीछा कर उन्हें बाध्य किया कि वे अंबरीश से माफी माँग लें। इस कथा का ब्रज के जीवन से बहुत सम्बन्ध है। यह घटना भगवान कृष्ण के जन्म से बहुत पहले हुई थी। परन्तु

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसने सिद्ध कर दिया कि ब्रज में उस समय भी परिपाटी अथवा ऊपरी शिष्टाचार के अधिक मनोभावना को महत्व दिया जाता था। और शायद आज भी असली ब्रज वही है और वहां ही है, जहाँ भावना प्रधान है।

अंबरीश के बाद मथुरा के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति के दर्शन होते हैं, और वे हैं, यदुवंश के रत्न मधु। मधु के नामसे ही मधुवन या मधुरापुरी की स्थापना हुई। मधु नाम था या उपनाम, यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु इस नाम में ब्रज में जो मिठास छोड़ी, उसके लिये ब्रज और मथुरा आज भी विख्यात हैं। बोली में मिठास है, ठठोली में मिठास है और यहां की बोली का मिठास तो अवर्णनीय है। मधु कितना शक्तिशाली था, इसका परिचय पुराणों में उपलब्ध्व दो तीन गाथाओं से मिलता है। जब मधु को यह पता लगा कि रावण ऋषियों, देवताओं और मनुष्यों की बहू बेटियों को उठाकर ले जाता है, तो मधु ने अकेले ही मथुरा से जाकर लंका पर चढ़ाई की और रावण की बहन कुम्भीनसी को उठाकर ले आया। कुम्भकरण और मेघनाथ बैठे देखते ही रहे और कुछ कर नहीं सके। मधु का राज्य ब्रज क्षेत्र से लेकर द्वारिका में सौराष्ट्र तक फैला हुआ था और यदुवंशी अपनी प्रबल नौसेना के लिये विख्यात थे। इसलिये मधु को लंका जाने के लिये जंगलों की खाक नहीं छाननी पड़ी। वह जलमार्ग से लंका गया होगा और वहाँ से कुम्भीनसी को ले आया। जब रावण ने यह समाचार सुना, तो वह बड़े क्रोध में आकर विशाल फौज सजाकर मथुरा आया, लेकिन जब वहां उसने मधु के ठाट-बाट देखे तो उसकी हिम्मत लड़ने की नहीं पड़ी। उसने अत्यन्त कौशल से अपनी बहन को बुलाया और सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। उसकी बहन ने उसे जब अपने पति का पराक्रम बताया, तो रावण ने यह प्रयास किया कि मधु को अपना सहायक बनाकर देवताओं से लड़ा जाय, लेकिन मधु ने रावण की खातिर तो की, पर देवता के विरुद्ध लड़ाई में वह सम्मिलित नहीं हुआ, क्योंकि इन्द्र उसके मित्र थे। मधु को शिव का शूल प्राप्त था, जो शत्रु को मारकर लौट आता था और सम्भवतः भारत में इस्पात का बना हुआ पहला अस्त्र था।

यादवों की भार्गवों के साथ बनती नहीं थी और उन्होंने राजा रामचन्द्र को मधु के पुत्र लवणासुर के विरुद्ध उभाड़ा। लवण को असुर की उपाधि देकर बहुत ही बुरे रूप में प्रकट किया गया, परन्तु वह स्पष्ट वक्ता था। इसीलिये लवण या खारा कहा गया था। उसने राजा राम को चुनौती दी थी कि यदि तुम अपने को चक्रवर्ती स्वीकार करना चाहते हो, तो मुझे पहले परास्त करो उस समय की मथुरा का जो वर्णन वाल्मीकि ने किया है, वैसा अयोध्या का भी नहीं किया। यमुना के तीर पर शोभित अर्द्धचन्द्र के नमूने पर बसी हुई मथुरा अपने जनपद के भोले निवासियों के कारण सबको आकर्षित करती थी। मथुरा के नगर और राजाओं की भारतीय साहित्यकारों ने एक सिरे से प्रशंसा की है। कालिदास ने रघुवंश में मथुरा के राजा के उज्ज्वल चरित्र और जलक्रीड़ाओं का जिक्र किया। महाकवि माघ ने भी ब्रजवासियों की उदारता, संगीत प्रेम और सौन्दर्य के वर्णन में कोई कसर नहीं रखी। बौद्ध और जैन आख्यानों में भी मथुरा का और ब्रज का इस प्रकार का वर्णन है। वहाँ ब्रज व्यापार और कौशल का केन्द्र है जहाँ पर देश विदेश के व्यापारी आते हैं और जहां भिक्षु उपगुप्त की सेवा के लिये वासवदत्ता जैसी सुन्दरियां इसी प्रकार आतुर मिलती हैं, जिस प्रकार अम्बपाली बुद्ध के लिये थी।

विशुद्ध दर्शन की दृष्टि से ब्रज ने प्रत्येक धर्म को अपना उदारवादी दृष्टिकोण प्रदान किया। यह आश्चर्य नहीं है कि जिस समय कर्मकाण्ड का बोलबाला था, भगवान कृष्ण ने कर्मयोग का सिद्धान्त

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दिया, जो आज भी उतना ही ताजा है, जितना कि महाभारत के काल में। भारतीय दर्शन में जो कुछ सर्वोत्तम है, वह गीता में आ गया है। जब भगवान बुद्ध के पश्चात् उनके चेलों में धार्मिक कट्टरता इतनी आ गई कि इस बात पर झगड़ा होने लगा कि नमक की थैली ऊपर रखी जानी चाहिये या नीचे, उस समय मथुरा के भिक्षु महादेव के नेतृत्व में वैशाली महासंगीति में महासांघिक सम्प्रदाय का जन्म हुआ। जिसमें बौद्ध धर्म को सन्यासियों के धर्म से बदलकर सांसारिकों का धर्म बना लिया। और लंका से लेकर जापान तक उसका विस्तार सम्भव कर दिया। बौद्धधर्म के एक दूसरे बड़े प्रचारक उपगुप्त थे। वे मथुरा के रहने वाले थे। उनकी प्रेरणा से ही सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और संसार के विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे।

जैन धर्म में भी मथुरा का योगदान कम नहीं है। जैन तीर्थंकार नेमिनाथ भगवान श्रीकृष्ण के भाई थे। मथुरा में ही जैन आगमों का वह प्रसिद्ध सम्पादन हुआ जो माथुरी वाचना के नाम से प्रसिद्ध है। जैन ग्रन्थ भी जिस भाषा में लिखे गये, वह ब्रजभाषा की पूर्ववर्त्ती शौरसेनी अपभ्रंश है और जैनियों के सबसे बड़े कवि व लेखक पुष्पदंत ब्रज या ब्रज के आसपास के रहने वाले हैं। पुष्पदंत ने कृष्ण लीला का जो वर्णन किया है, उससे लगता है कि ब्रज उन्हें बड़ा प्रिय था और सुदूर कर्नाटक से बैठे हुए भी वे उसे भूले नहीं। प्रसिद्ध जैन सुधारक अमितगताचार्य मथुरा के रहने वाले थे और आज भी मथुरा के निकट चौरासी में अनेकों प्रसिद्ध जैन मंदिर हैं। ब्रज का योगदान जैन सम्प्रदाय तक ही सीमित नहीं रहा। भारत में इस्लाम के प्रचार में सूफी सन्तों का बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने लोकगीतों और लोककथाओं के माध्यम से इस्लाम के बुनियादी विचारों का प्रचार किया। इन सूफी सन्तों में भारत में पैदा होने वाले सबसे प्रसिद्ध सन्त निजामुद्दीन औलिया थे, जो अजमेर के शेख मोईनुद्दीन चिश्ती के शिष्य फरीद शकरगंज के शिष्य थे। निजामुद्दीन औलिया बदायूं में पैदा हुए थे। और उन्होंने न केवल ब्रज भाषा में कविताएँ कीं. बल्कि ब्रज के संगीत के माध्यम से सूफी धर्म का प्रचार भी किया। इस्लाम में संगीत की मुमानियत समझी जाती थी, इसलिये जब मुल्लाओं ने उनसे पूछा कि इस्लाम के प्रचार के लिये आप इस देश की भाषा और संगीत का प्रयोग क्यों करते हैं, तो उन्होंने कहा कि यहाँ के लोगों के मधुर कंठ से गायन के कारण ईश्वरीय संदेश बहुत आसानी से हृदयंगम हो जाता है। अमीर खुसरो इन्हीं के शिष्य थे और सूफी सन्तों की एक बहुत बड़ी परम्परा निजामुद्दीन औलिया से चली। इनके शिष्य शेख सलीम के घर पर तो सम्राट जहांगीर का जन्म हुआ और ब्रज क्षेत्र से इसी परम्परा नज़ीर अकबरावादी जैसा कवि पैदा किया। जिसमें उर्दू कविता में एक नई जान डाल दी और उसे भारतीय भावनाओं और भारतीय संस्कृति के वाहक के रूप में प्रयोग किया।

ब्रज की यह लीलामही भूमि ही थी, जिसमें रहीम जैसे कट्टर तुर्कमानी मुसलमान को बज भाषा में प्रथम सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रस्तुत किया। इसी ब्रजभूमि में महाकवि रसखान ने श्रीकृष्ण प्रेम की प्रेरणा ली। और ताज तथा आलम जैसे कवि युगल पैदा हुए। जो कृष्ण की सूरत पर कुर्बान होकर मुगल होते हुए भी हिन्दू बनकर रहे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब काशी में लवंगी से विवाह करने के कारण पंडितराज जगन्नाथ को अस्वीकार कर दिया तो पंडितराज ने मथुरापुरी में अपना बुढ़ापा बड़े आनन्द से काटा। मौलाना हसरत मोहानी भी जब तक जीवित रहे, जन्माष्टमी के दिन मथुरा में श्रीकृष्ण दर्शन के लिये आते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस मथुरा पुराने यूनानियों, शकों और कुषाणों को धर्म में दीक्षित किया, उसने हिन्दू धर्म के आश्रय से किसी को वंचित नहीं किया। ब्रज की परम्परा यह थी कि आगरा के दरबार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

में हिन्दू मुसलमान इस तरह घुल-मिल गये थे कि आज तक यह निर्णय नहीं हो सका कि तानसेन हिन्दू थे या मुसलमान। और जब भारत की राजधानी आगरा से हटकर दिल्ली पहुंच गई, तो उसी समय मुगल सम्राटों की रीति नीति तथा धर्म-निरपेक्षता में फर्क आ गया। औरंगजेब ने तो अपने को इस्लामी शासक घोषित कर दिया।

यह आश्चर्य नहीं है कि ऋषि दयानन्द को जो गुजरात में पैदा हुए थे, मथुरा में ऐसे गुरु स्वामी बिरजानन्द मिले जो मूर्तिपूजा में पुराणों में तथा वेदों के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म ग्रन्थों में विश्वास नहीं करते थे। स्वामी बिरजानन्द अन्धे थे और दूसरों की सहायता पर ही निर्भर रह सकते थे। परन्तु उन्हें मथुरा जैसी पुरी में अपने मत के समर्थन शिष्य व संरक्षक दोनों ही प्राप्त थे। और स्वामी दयानन्द को तो वहां के एक प्रमुख रईस ज्योतिषी बाबा ने आश्रय और भोजन दोनों ही प्रदान किया।

बीसवीं शताब्दी में जब अलीगढ़ में सर सैयद अहमद खां ने एंग्लो ओरियन्टल कालेज की स्थापना की तो उसके धन देने वालों में ब्रज क्षेत्र के अनेक धनीमानी हिन्दू रईस व जमींदार थे।

धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, कला की दृष्टि से भी ब्रज क्षेत्र समन्वय प्रवृत्ति का प्रतीक रहा है। यहां पर शिल्प, स्थापत्य, चित्रकला और संगीत का समन्वय मिलता है। और इन सबका उद्देश्य मानव जीवन में प्रेम का रस का प्रसारण रहा है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का रास रंगमंच और उसका भारतीय ललित कलाओं पर प्रभाव

रास का आकर्षण

रास का सबसे बड़ा सौभाग्य यह रहा है कि उसे अपने मंच के लिए कृष्ण जैसा आकर्षक लोकनायक प्राप्त हुआ। भक्ति भावना के अनुसार समस्त संसार को नचाने वाला जिस मंच पर स्वयं नाचे उसके कलात्मक वैभव का क्या कहना? भगवान कृष्ण के चंचल, चपल, शोखी भरे नटखट व्यक्तित्व ने जहां रास रंगमंच की कथावस्तु में इन्द्रधनुषी रंग भरे हैं वहां उनके सुन्दरतम व्यक्तित्व ने इस मंच का सौंदर्य सम्पन्न किया है और इसे श्रद्धा और भावुकता का दृढ़ आधार दिया है। कृष्ण को रासमंच का नायक बनाने का फल रासमंच को यह मिला कि भक्तियुग और रीतियुग में लिखा गया साहित्य का वह सरस और अथाह भंडार जिसे हम हिन्दी-साहित्य का नवनीत कह सकते हैं बिना किसी प्रयत्न के रासमंच की कथावस्तु का चाकर बन गया और रासमंच ने इस महान् रस-रत्नाकर में से भी सुन्दरतम रत्नों को छांट कर अपनी मंचीय कथाओं का ताना-बाना तैयार किया। इसलिए कथासामग्री की दृष्टि से रासमंच भारत के सभी नाट्य और लोकनाट्य मंचों से अधिक समृद्धिशाली और वैभवसम्पन्न है। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, रहीम, रसखान सभी रास मंच के आगे अपनी साहित्य सम्पदा खोले खड़े हैं और रासमंच उसकी सर्वश्रेष्ठ निधियों में से भी छाँट कर और कसौटी लगाकर अपनी कथा-वस्तु के लिए सामग्री स्वीकार करता रहा है। रासमंच पर प्रस्तुत यह सर्वोत्कृष्ट साहित्य जब कथा का ताना-बाना पहन कर दमक उठता है तब उसकी चकाचौंध ही भावुक हृदयों को इतना विमुग्ध कर देती है और वह उसमें इतने आविर्भूत हो जाते हैं कि उन्हें रास में अभिनय की बारीकी, मंच की सज्जा या ऐसी दूसरी वस्तुओं पर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं रहता। एक भावुक दर्शक रासमंच पर सुमधुर कंठ से गाई गई इन रससिक्त सिद्ध वाणियों को आँख बंद करके एकाग्र भाव से कानों से सुनना अधिक पसन्द करता है; वह अपने नेत्रों को खोलकर उस समय अपनी दृष्टि को इधर उधर भटकाना नहीं चाहता।

यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यह है कि रास मंच पर प्रयुक्त होने वाला साहित्य स्वयं अपने आपमें इतना सशक्त और प्राणवान है कि उसने भारतीय जनजीवन को अपनी ओर आकृष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भक्तियुग में जब रास का उदय हुआ राज दरबारों में और जनजीवन में दो ही भाषाओं को सांस्कृतिक मान्यता उपलब्ध थी और वे भाषाएं थीं (१) फारसी (२) ब्रजभाषा। फारसी उस समय विजेताओं की और ब्रजभाषा विजित वर्ग की सांस्कृतिक भाषा थी जिसके साथ जन जीवन की आस्था और भावुकता जुड़ी थी। इसी कारण ब्रजभाषा का मंच होते हुए भी रास रंगमंच अपने उदयकाल से ही एक क्षेत्रीय रंगमंच न रह कर अखिल भारतीय रंगमंच बन गया था और कृष्णभक्ति आन्दोलन के साथ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साथ वह उन सभी क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त कर गया जहां कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की वाणी गूंजी थी। उत्तर प्रदेश के साथ साथ पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल बिहार और मध्य भारत आदि दूरस्थ प्रदेशों तक में भक्तियुग से आज तक रास के प्रति यह आकर्षण विशेष रूप से बना हुआ है।

भावुकों का मंच

रास ने विशेष रूप से इस देश में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया और ब्रज संस्कृति और ब्रज के लोक-जीवन की झांकी का पूरे देश में चित्रांकन किया, जिसने ब्रज के प्रति भारतीय जन के आकर्षण को बढ़ाया। आज भी रास के प्रति सामान्य जन का कितना आकर्षण है यह स्वयं श्रावण मास में वृन्दावन में देखा जा सकता है, जबकि पूरे देश में रास भक्तों का विशाल समूह वृन्दावन में सर्वत्र छाया रहता है। श्रावण मास में ब्रज की सभी प्रमुख मंडली वृन्दावन में एकत्रित हो जाती हैं और सुबह से रात्रि तक वृन्दावन के मंदिरों, बागों, आश्रमों और सार्वजनिक स्थानों में पग पग पर घुंघुरुओं की झनन-झनन गूंजती रहती है। कम से कम उस समय वृन्दावन में १५-२० रास मंडली अवश्य एकत्रित होती है जिनमें से हर मंडली कम से कम एक दिन में दो रास तो करती ही हैं, और जिस मंडलियों की अधिक मांग होती है वह उन दिनों एक दिन में चार चार, पांच-पांच रास करने को भी बाध्य कर दी जाती हैं। इन रासों में रास के भक्त सैकड़ों की संख्या में छाये रहते हैं। एक-एक रास में केवल भक्तों की न्यौछावर में ही ५० या १०० रुपये आ जाना उन दिनों साधारण सी बात है। वृन्दावन में श्रावण मास में रास के प्रति दर्शकों का उत्साह देख कर ही यह समझा जा सकता है कि आज भी देश के जन-साधारण की रासमंच में कितनी निष्ठा और भक्ति है।

ब्रजभाषा के संवाद

रास के इन दर्शकों में भारत के सभी अंचलों के जनता जनार्दन के प्रतिनिधि होते हैं और यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उन्हें रास मंच पर प्रयुक्त ब्रजभाषा के संवाद विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। जिस युग में रास का उदय हुआ उस समय तो ब्रजभाषा इस देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा थी ही, परन्तु यह रासमंच की एक परम्परा और रूढ़िवादिता के प्रति गहरी आस्था का ही एक सुखद फल है कि उसने रास में ब्रजभाषा के सांस्कृतिक गौरव को आज भी अक्षुण्ण रखा है और रास के ब्रजभाषा के संवाद आज ब्रज क्षेत्र से इतर क्षेत्र के निवासी को इस युग में भी रास की इस विशिष्टता के प्रति उसे विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। ब्रज की बोली का सहज मिठास जिसने अतीत में पूरे देश को प्रभावित किया, आज केवल रास के सम्वादों में ही एक धरोहर के रूप में रक्षित है। आज जब उस ब्रज माधुरी का चिर तृषित कोई पिपासु रास के रस में अवगाहन करता है तो वह ब्रज भाषा के इस मिठास में बार बार गोता लेकर अपनी आत्मा को शीतल और तृप्त करना चाहता है। इस प्रकार रास में रक्षित ब्रजभाषा की यह गद्य-संवाद परम्परा आज ब्रजभाषा के भारतीय सांस्कृतिक जन-जीवन से अलग हट जाने के बाद भी रास की एक बहुत ही मूल्यवान थाती बन गई है। ऐसे अनेक रास के दर्शक हैं जो ब्रजभाषा को सुन सुन कर अपने को तृप्त करने की ललक में ही रास रंगमंच के भक्त बने हुए हैं।

उक्त सब कारणों से आज भी रास रंगमंच अन्य क्षेत्रीय रंगमंचों से पृथक् और विशिष्ट है। इसने आरंभ से ही पूरे देश के जन जीवन को आकर्षित किया है। हमारी भारतीय कलाओं पर रास रंगमंच का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उस पर संक्षिप्त दृष्टिपात करने से यह तथ्य भली प्रकार सामने आ जाता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का रास रंगमंच और उसका भारतीय ललित कलाओं पर प्रभाव

रास का आकर्षण

रास का सबसे बड़ा सौभाग्य यह रहा है कि उसे अपने मंच के लिए कृष्ण जैसा आकर्षक लोकनायक प्राप्त हुआ। भक्ति भावना के अनुसार समस्त संसार को नचाने वाला जिस मंच पर स्वयं नाचे उसके कलात्मक वैभव का क्या कहना? भगवान कृष्ण के चंचल, चपल, शोखी भरे नटखट व्यक्तित्व ने जहां रास रंगमंच की कथावस्तु में इन्द्रधनुषी रंग भरे हैं वहां उनके सुन्दरतम व्यक्तित्व ने इस मंच का सौंदर्य सम्पन्न किया है और इसे श्रद्धा और भावुकता का दृढ़ आधार दिया है। कृष्ण को रासमंच का नायक बनाने का फल रासमंच को यह मिला कि भक्तियुग और रीतियुग में लिखा गया साहित्य का वह सरस और अथाह भंडार जिसे हम हिन्दी-साहित्य का नवनीत कह सकते हैं बिना किसी प्रयत्न के रासमंच की कथावस्तु का चाकर बन गया और रासमंच ने इस महान् रस-रत्नाकर में से भी सुन्दरतम रत्नों को छांटः कर अपनी मंचीय कथाओं का ताना-बाना तैयार किया। इसलिए कथासामग्री की दृष्टि से रासमंच भारत के सभी नाट्य और लोकनाट्य मंचों से अधिक समृद्धिशाली और वैभवसम्पन्न है। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, रहीम, रसखान सभी रास मंच के आगे अपनी साहित्य सम्पदा खोले खड़े हैं और रासमंच उसकी सर्वश्रेष्ठ निधियों में से भी छाँट कर और कसौटी लगाकर अपनी कथा-वस्तु के लिए सामग्री स्वीकार करता रहा है। रासमंच पर प्रस्तुत यह सर्वोत्कृष्ट साहित्य जब कथा का ताना-बाना पहन कर दमक उठता है तब उसकी चकाचौंध ही भावुक हृदयों को इतना विमुग्ध कर देती है और वह उसमें इतने आविर्भूत हो जाते हैं कि उन्हें रास में अभिनय की बारीकी, मंच की सज्जा या ऐसी दूसरी वस्तुओं पर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं रहता। एक भावुक दर्शक रासमंच पर सुमधुर कंठ से गाई गई इन रससिक्त सिद्ध वाणियों को आँख बंद करके एकाग्र भाव से कानों से सुनना अधिक पसन्द करता है; वह अपने नेत्रों को खोलकर उस समय अपनी दृष्टि को इधर उधर भटकाना नहीं चाहता।

यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यह है कि रास मंच पर प्रयुक्त होने वाला साहित्य स्वयं अपने आपमें इतना सशक्त और प्राणवान है कि उसने भारतीय जनजीवन को अपनी ओर आकृष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भक्तियुग में जब रास का उदय हुआ राज दरबारों में और जनजीवन में दो ही भाषाओं को सांस्कृतिक मान्यता उपलब्ध थी और वे भाषाएं थीं (१) फारसी (२) ब्रजभाषा। फारसी उस समय विजेताओं की और ब्रजभाषा विजित वर्ग की सांस्कृतिक भाषा थी जिसके साथ जन जीवन की आस्था और भावुकता जुड़ी थी। इसी कारण ब्रजभाषा का मंच होते हुए भी रास रंगमंच अपने उदयकाल से ही एक क्षेत्रीय रंगमंच न रह कर अखिल भारतीय रंगमंच बन गया था और कृष्णभक्ति आन्दोलन के साथ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साथ वह उन सभी क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त कर गया जहां कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की वाणी गूंजी थी। उत्तर प्रदेश के साथ साथ पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल बिहार और मध्य भारत आदि दूरस्थ प्रदेशों तक में भक्तियुग से आज तक रास के प्रति यह आकर्षण विशेष रूप से बना हुआ है।

भावुकों का मंच

रास ने विशेष रूप से इस देश में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया और ब्रज संस्कृति और ब्रज के लोक-जीवन की झांकी का पूरे देश में चित्रांकन किया, जिसने ब्रज के प्रति भारतीय जन के आकर्षण को बढ़ाया। आज भी रास के प्रति सामान्य जन का कितना आकर्षण है यह स्वयं श्रावण मास में वृन्दावन में देखा जा सकता है, जबकि पूरे देश में रास भक्तों का विशाल समूह वृन्दावन में सर्वत्र छाया रहता है। श्रावण मास में ब्रज की सभी प्रमुख मंडली वृन्दावन में एकत्रित हो जाती हैं और सुबह से रात्रि तक वृन्दावन के मंदिरों, बागों, आश्रमों और सार्वजनिक स्थानों में पग पग पर घुंघुरुओं की झनन-झनन गूंजती रहती है। कम से कम उस समय वृन्दावन में १५-२० रास मंडली अवश्य एकत्रित होती है जिनमें से हर मंडली कम से कम एक दिन में दो रास तो करती ही हैं, और जिस मंडलियों की अधिक मांग होती है वह उन दिनों एक दिन में चार चार, पांच-पांच रास करने को भी बाध्य कर दी जाती हैं। इन रासों में रास के भक्त सैकड़ों की संख्या में छाये रहते हैं। एक-एक रास में केवल भक्तों की न्यौछावर में ही ५० या १०० रुपये आ जाना उन दिनों साधारण सी बात है। वृन्दावन में श्रावण मास में रास के प्रति दर्शकों का उत्साह देख कर ही यह समझा जा सकता है कि आज भी देश के जन-साधारण की रासमंच में कितनी निष्ठा और भक्ति है।

ब्रजभाषा के संवाद

रास के इन दर्शकों में भारत के सभी अंचलों के जनता जनार्दन के प्रतिनिधि होते हैं और यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उन्हें रास मंच पर प्रयुक्त ब्रजभाषा के संवाद विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। जिस युग में रास का उदय हुआ उस समय तो ब्रजभाषा इस देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा थी ही, परन्तु यह रासमंच की एक परम्परा और रूढ़िवादिता के प्रति गहरी आस्था का ही एक सुखद फल है कि उसने रास में ब्रजभाषा के सांस्कृतिक गौरव को आज भी अक्षुण्ण रखा है और रास के ब्रजभाषा के संवाद आज ब्रज क्षेत्र से इतर क्षेत्र के निवासी को इस युग में भी रास की इस विशिष्टता के प्रति उसे विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। ब्रज की बोली का सहज मिठास जिसने अतीत में पूरे देश को प्रभावित किया, आज केवल रास के सम्वादों में ही एक धरोहर के रूप में रक्षित है। आज जब उस ब्रज माधुरी का चिर तृषित कोई पिपासु रास के रस में अवगाहन करता है तो वह ब्रज भाषा के इस मिठास में बार बार गोता लेकर अपनी आत्मा को शीतल और तृप्त करना चाहता है। इस प्रकार रास में रक्षित ब्रजभाषा की यह गद्य-संवाद परम्परा आज ब्रजभाषा के भारतीय सांस्कृतिक जन-जीवन से अलग हट जाने के बाद भी रास की एक बहुत ही मूल्यवान थाती बन गई है। ऐसे अनेक रास के दर्शक हैं जो ब्रजभाषा को सुन सुन कर अपने को तृप्त करने की ललक में ही रास रंगमंच के भक्त बने हुए हैं।

उक्त सब कारणों से आज भी रास रंगमंच अन्य क्षेत्रीय रंगमंचों से पृथक् और विशिष्ट है। इसने आरंभ से ही पूरे देश के जन जीवन को आकर्षित किया है। हमारी भारतीय कलाओं पर रास रंगमंच का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उस पर संक्षिप्त दृष्टिपात करने से यह तथ्य भली प्रकार सामने आ जाता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज का रास रंगमंच और उसका भारतीय ललित कलाओं पर प्रभाव

⊙

रास का आकर्षण

रास का सबसे बड़ा सौभाग्य यह रहा है कि उसे अपने मंच के लिए कृष्ण जैसा आकर्षक लोकनायक प्राप्त हुआ। भक्ति भावना के अनुसार समस्त संसार को नचाने वाला जिस मंच पर स्वयं नाचे उसके कलात्मक वैभव का क्या कहना? भगवान कृष्ण के चंचल, चपल, शोखी भरे नटखट व्यक्तित्व ने जहां रास रंगमंच की कथावस्तु में इन्द्रधनुषी रंग भरे हैं वहां उनके सुन्दरतम व्यक्तित्व ने इस मंच का सौंदर्य सम्पन्न किया है और इसे श्रद्धा और भावुकता का दृढ़ आधार दिया है। कृष्ण को रासमंच का नायक बनाने का फल रासमंच को यह मिला कि भक्तियुग और रीतियुग में लिखा गया साहित्य का वह सरस और अथाह भंडार जिसे हम हिन्दी-साहित्य का नवनीत कह सकते हैं बिना किसी प्रयत्न के रासमंच की कथावस्तु का चाकर बन गया और रासमंच ने इस महान् रस-रत्नाकर में से भी सुन्दरतम रत्नों को छांट कर अपनी मंचीय कथाओं का ताना-बाना तैयार किया। इसलिए कथासामग्री की दृष्टि से रासमंच भारत के सभी नाट्य और लोकनाट्य मंचों से अधिक समृद्धिशाली और वैभवसम्पन्न है। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, रहीम, रसखान सभी रास मंच के आगे अपनी साहित्य सम्पदा खोले खड़े हैं और रासमंच उसकी सर्वश्रेष्ठ निधियों में से भी छाँट कर और कसौटी लगाकर अपनी कथा-वस्तु के लिए सामग्री स्वीकार करता रहा है। रासमंच पर प्रस्तुत यह सर्वोत्कृष्ट साहित्य जब कथा का ताना-बाना पहन कर दमक उठता है तब उसकी चकाचौंध ही भावुक हृदयों को इतना विमुग्ध कर देती है और वह उसमें इतने आविर्भूत हो जाते हैं कि उन्हें रास में अभिनय की बारीकी, मंच की सज्जा या ऐसी दूसरी वस्तुओं पर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं रहता। एक भावुक दर्शक रासमंच पर सुमधुर कंठ से गाई गई इन रससिक्त सिद्ध वाणियों को आँख बंद करके एकाग्र भाव से कानों से सुनना अधिक पसन्द करता है; वह अपने नेत्रों को खोलकर उस समय अपनी दृष्टि को इधर उधर भटकाना नहीं चाहता।

यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यह है कि रास मंच पर प्रयुक्त होने वाला साहित्य स्वयं अपने आपमें इतना सशक्त और प्राणवान है कि उसने भारतीय जनजीवन को अपनी ओर आकृष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भक्तियुग में जब रास का उदय हुआ राज दरबारों में और जनजीवन में दो ही भाषाओं को सांस्कृतिक मान्यता उपलब्ध थी और वे भाषाएं थीं (१) फारसी (२) ब्रजभाषा। फारसी उस समय विजेताओं की और ब्रजभाषा विजित वर्ग की सांस्कृतिक भाषा थी जिसके साथ जन जीवन की आस्था और भावुकता जुड़ी थी। इसी कारण ब्रजभाषा का मंच होते हुए भी रास रंगमंच अपने उदयकाल से ही एक क्षेत्रीय रंगमंच न रह कर अखिल भारतीय रंगमंच बन गया था और कृष्णभक्ति आन्दोलन के साथ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साथ वह उन सभी क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त कर गया जहां कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की वाणी गूंजी थी। उत्तर प्रदेश के साथ साथ पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल बिहार और मध्य भारत आदि दूरस्थ प्रदेशों तक में भक्तियुग से आज तक रास के प्रति यह आकर्षण विशेष रूप से बना हुआ है।

भावुकों का मंच

रास ने विशेष रूप से इस देश में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया और ब्रज संस्कृति और ब्रज के लोक-जीवन की झांकी का पूरे देश में चित्रांकन किया, जिसने ब्रज के प्रति भारतीय जन के आकर्षण को बढ़ाया। आज भी रास के प्रति सामान्य जन का कितना आकर्षण है यह स्वयं श्रावण मास में वृन्दावन में देखा जा सकता है, जबकि पूरे देश में रास भक्तों का विशाल समूह वृन्दावन में सर्वत्र छाया रहता है। श्रावण मास में ब्रज की सभी प्रमुख मंडली वृन्दावन में एकत्रित हो जाती हैं और सुबह से रात्रि तक वृन्दावन के मंदिरों, बागों, आश्रमों और सार्वजनिक स्थानों में पग पग पर घुंघुरुओं की झनन-झनन गूंजती रहती है। कम से कम उस समय वृन्दावन में १५-२० रास मंडली अवश्य एकत्रित होती है जिनमें से हर मंडली कम से कम एक दिन में दो रास तो करती ही हैं, और जिस मंडलियों की अधिक मांग होती है वह उन दिनों एक दिन में चार चार, पांच-पांच रास करने को भी बाध्य कर दी जाती हैं। इन रासों में रास के भक्त सैकड़ों की संख्या में छाये रहते हैं। एक-एक रास में केवल भक्तों की न्यौछावर में ही ५० या १०० रुपये आ जाना उन दिनों साधारण सी बात है। वृन्दावन में श्रावण मास में रास के प्रति दर्शकों का उत्साह देख कर ही यह समझा जा सकता है कि आज भी देश के जन-साधारण की रासमंच में कितनी निष्ठा और भक्ति है।

ब्रजभाषा के संवाद

रास के इन दर्शकों में भारत के सभी अंचलों के जनता जनार्दन के प्रतिनिधि होते हैं और यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उन्हें रास मंच पर प्रयुक्त ब्रजभाषा के संवाद विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। जिस युग में रास का उदय हुआ उस समय तो ब्रजभाषा इस देश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा थी ही, परन्तु यह रासमंच की एक परम्परा और रूढ़िवादिता के प्रति गहरी आस्था का ही एक सुखद फल है कि उसने रास में ब्रजभाषा के सांस्कृतिक गौरव को आज भी अक्षुण्ण रखा है और रास के ब्रजभाषा के संवाद आज ब्रज क्षेत्र से इतर क्षेत्र के निवासी को इस युग में भी रास की इस विशिष्टता के प्रति उसे विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। ब्रज की बोली का सहज मिठास जिसने अतीत में पूरे देश को प्रभावित किया, आज केवल रास के सम्वादों में ही एक धरोहर के रूप में रक्षित है। आज जब उस ब्रज माधुरी का चिर तृषित कोई पिपासु रास के रस में अवगाहन करता है तो वह ब्रज भाषा के इस मिठास में बार बार गोता लेकर अपनी आत्मा को शीतल और तृप्त करना चाहता है। इस प्रकार रास में रक्षित ब्रजभाषा की यह गद्य-संवाद परम्परा आज ब्रजभाषा के भारतीय सांस्कृतिक जन-जीवन से अलग हट जाने के बाद भी रास की एक बहुत ही मूल्यवान थाती बन गई है। ऐसे अनेक रास के दर्शक हैं जो ब्रजभाषा को सुन सुन कर अपने को तृप्त करने की ललक में ही रास रंगमंच के भक्त बने हुए हैं।

उक्त सब कारणों से आज भी रास रंगमंच अन्य क्षेत्रीय रंगमंचों से पृथक् और विशिष्ट है। इसने आरंभ से ही पूरे देश के जन जीवन को आकर्षित किया है। हमारी भारतीय कलाओं पर रास रंगमंच का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उस पर संक्षिप्त दृष्टिपात करने से यह तथ्य भली प्रकार सामने आ जाता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

है कि रास ने भारतीय जीवन और कला के क्षेत्र में आरंभ से ही अपनी विशिष्टता को बनाये रखा है। हमारे साहित्य संगीत, मूर्तिकला और चित्रकला पर रास के प्रभाव की संक्षिप्त चर्चा करना इस दृष्टि से यहां अप्रासंगिक न होगा।

साहित्य और रास

भारत की उन सभी भाषा और बोलियों में जहाँ कृष्ण की चर्चा है वहां रास का वर्णन अवश्य हुआ है। यह वर्णन अधिकतर भावनात्मक या आत्म अनुभूति जन्य है क्योंकि भक्तों ने उसे ध्यानात्मक माना है तथा आत्मा में होने वाले ध्यानात्मक रास के दर्शक ही उन्हें अभीष्ट थे। आचार्य वल्लभ ने आरम्भ में इसी भावनात्मक रास को पुष्टि सम्प्रदाय में महत्व दिया था। यही कारण है कि अष्टछाप के कवियों के रास वर्णन यद्यपि अनुकरणात्मक रास के प्राण हैं परन्तु वे वास्तव में अनुकरणात्मक रास के सन्दर्भ में नहीं लिखे गये। परन्तु वृन्दावन में पल्लवित रसिक सम्प्रदायों में अनुकरणात्मक रास भी आराधनों का विषय था। इसलिये रसिक क्तों ने अनुकरणात्मक रास के भी विशद चित्रण किये हैं। इसलिए हमारे साहित्य में ऐसे वर्णनों का भी अभाव नहीं जहां राधा कृष्ण के माध्यम से रासरंगमंच के भाव्य वर्णन भी उपलब्ध हैं। हम इस प्रसंग का अधिक विस्तार न करके यहाँ उदाहरण स्वरूप चैतन्य सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त और श्रेष्ठ कवि कविराज कृष्णदास जी गोस्वामी के 'गोविन्द लीलामृतम्' की चर्चा करना चाहते हैं। यद्यपि यह ग्रंथ भी प्रकट में राधा कृष्ण के रासोत्सव का वर्णन करता है परन्तु हमारे मत से राधा कृष्ण का यह रास-वर्णन परोक्ष में उसी रास रंगमंच का वर्णन है जिसे आज हम ब्रज का लोक रंगमंच कहते हैं परन्तु भक्तियुग के आचार्यों ने रास की इस वर्त्तमान लोक परम्परा का शास्त्रीय ढंग से अलंकरण किया था यह 'गोविन्दलीलामृतम्' से भली प्रकार भासित होता है।

'गोविन्दलीलामृतम्' का रास-वर्णन

हमारे विचार से 'गोविन्दलीलामृतम्' रास के भक्तिकालीन स्वरूप को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इस दृष्टि से हम यहां रास पर म्परा के सन्दर्भ में इस ग्रंथ के रास-वर्णन का संक्षिप्त विश्लेषण आवश्यक समझते हैं। परन्तु इस रास वर्णन से पूर्व एक बार हम फिर यह और स्मरण दिला देना चाहते है कि लोकधर्मी परम्परा नाट्यधर्मी और नाट्यधर्मी परम्परा काल के प्रभाव से लोकधर्मी बनती रही हैं, हमारा रास-रंगमंच भी उसका अपवाद नहीं है।

लोकधर्मी और शास्त्रीय परम्पराएं

प्राचीन काल में रास एक लोकधर्मी संगीत नाट्य था, यह सर्वमान्य तथ्य है। कोई भी शास्त्रीय नाट्य परम्परा जब लोकजीवन में घुल मिल जाती है और लोक कलाकारों से प्रभावित होती है तब वह अपने शास्त्रीय रूप को अक्षुण्ण नहीं रख पाती। ठीक इसी प्रकार जब कोई लोक परम्परा उच्चकोटि के कलाकारों द्वारा अपना ली जाती है और वे उसको साज संवार कर एक स्तर पर स्थापित कर देते हैं तो वह एक शास्त्रीय रूपग्रहण कर लेती है। ऐसी दशा में वह लोक-कला मात्र नहीं रह जाती। रास के लम्बे जीवन-काल में उसे अपने रूप को सजाने और संवारने के ऐसे अनेक अवसर आये जिनके सूत्र प्राचीन वाङ्मय और लक्षण ग्रंथों में उपलब्ध रास के विवरणों में खोजे जा सकते हैं, परन्तु हम यहाँ उनकी फिर चर्चा न करके केवल यह कहना चाहते हैं कि ब्रज में जब भक्तियुग में रास का पुनर्गठन हुआ, तो उस समय रास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

की वह मूल परम्परा जो नटों द्वारा संचालित थी यद्यपि रास रंगमंच के निर्माताओं द्वारा आधार रूप में गृहीत की गई, परन्तु उन्होंने उस परम्परा को सजा संवार कर रास को जिस रूप में खड़ा किया उसका आधार भक्तिकालीन शास्त्रीय संगीत और शास्त्रीय नृत्य परम्परा ही थी। स्वामी हरिदासजी जैसे अमर संगीतज्ञ और बल्लभ जैसे दरबारी नर्तक का इस संगीत परम्परा और नृत्य परम्परा के निर्माण में हाथ था। श्रीनारायण भट्ट जी भी स्वयं अपने युग के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। यहां तक कि वह नारदजी के अवतार ही माने गये। ऐसी दशा में उनके द्वारा संरक्षित मंच रास लोक-मंच न था।

गीत गोविन्द के रास वर्णन की विशेषता

भक्तियुग में रास का जो शास्त्रीय रूप था हमारे विचार से 'गोविन्दलीलामृतम्' के रास-वर्णन का वही आधार है। शृंगार-रस से परिपूर्ण यह प्राचीन ग्रंथ गौड़ियां सम्प्रदाय की मान्यता के आधार पर रचा गया है जो अब तक सम्प्रदाय से इतर व्यक्तियों से गुप्त रखा जाता रहा था। उसे कुछ वर्ष पूर्व स्वर्गीय बाबा कृष्णदासजी ने प्रकाशित कर दिया है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से जहाँ ब्रज लोक-जीवन की भक्ति-कालीन परम्पराओं पर प्रकाश पड़ा है वहां भक्तिकाल में पुनर्गठित ब्रज के रास का क्या रूप था उसकी एक सांगोपांग झांकी भी सामने आई है। यद्यपि यह ग्रंथ साम्प्रदायिक भावना के अनुरूप राधाकृष्ण के क्रिया-कलापों की एक दिन की एक काव्यात्मक दैनन्दिनी है, परन्तु इस ग्रंथ के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी, ब्रज के अणु अणु और कण कण में ऐसे रमे हैं कि उन्होंने इसमें ब्रज-संस्कृति के जो चित्र यथास्थान उनके हैं, वे असाधारण हैं। यह ठीक है कि कविराज कृष्णदास जी के यह वर्णन अतिरंजनापूर्ण और काव्यगुणों से ओतप्रोत हैं परन्तु हम पुनः साग्रह कहना चाहते हैं कि उनका रास-वर्णन केवल कल्पना पर ही आधारित नहीं है वरन् उसमें तत्कालीन ब्रज के रास-रंगमंच के वास्तविक रूप का चित्रांकन भी अवश्य है। कविराज गोस्वामी को संगीत की रागों और तालों तथा नृत्य की पूरी परम्परा का ज्ञान था और इस ग्रंथ के अंतिम ३ अध्यायों में उन्होंने अपने उस ज्ञान के आधार पर राधाकृष्ण के रास के मिस हमारे विचार से तत्कालीन ब्रज की रास परम्परा का ही विस्तृत वर्णन किया है।

ब्रज के वर्तमान नित्यरास के क्रम की इस 'गोविन्दलीलामृत' से तुलना करने पर यह 'गोविन्दलीलामृतम्' स्वयं ही पुकार उठता है कि रस के असली रूप का मूल रहस्य मेरे मर्म में छिपा है। यदि आज के रास के मूल सांस्कृतिक स्तर की खोज करनी हो अथवा रास का पुनः प्राचीन भक्तियुग की परम्परा के अनुसार पुनर्गठन करना हो तो इस सब के लिए हमारे मत से 'गोविन्दलीलामृतम्' एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

गोविन्दलीलामृतम् के अनुसार रास

कविराज गोस्वामी का यह मत है कि भारत का प्राचीन हल्लीसक नृत्य ब्रज के रास में उसके एक रूप में गृहीत है। वे रास को हल्लीसक के अतिरिक्त भी अन्य कई तत्वों का सम्मिश्रण मानते हैं। उनके अनुसार रास का आरंभ पहले प्रकृति के सुरम्य वातावरण में वन विहार से होता है जिससे मनःस्थिति रास के वातावरण के अनुरूप हो जाय उसके उपरान्त क्रमशः चक्रभ्रमण (मंडलाकार) नृत्य, हल्लीसक नृत्य तथा इसके उपरान्त रास में युग्म नृत्य होता है। युग्म नृत्य के उपरान्त तांडव, लास्य तथा इसके उप-रान्त एकाकी नृत्य (कृष्ण का) होता है। सखियों द्वारा प्रबन्ध गान, नृत्य, रति, परिहास और अन्त में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जल केलि यह रास के कृष्ण द्वारा निर्धारित अंग हैं।[१] इस प्रकार रासमंच हल्लीसक नृत्य को अपने में एक अंग के रूप में ग्रहण करता है वहां साथ ही वह अपने साथ लास्य और तांडव की परम्पराओं तथा अन्य अनेक गायन-वादन की लोक-परम्पराओं का भी समन्वय करता है।

इस रास के रूप की आज की रास की मंचीय 'नित्यरास' परम्परा से यदि तुलना की जाय तो मंच पर पहले वृन्दावन की शोभा का वर्णन (वन-विहार) पुनः सखियों तथा राधाकृष्ण की रासमंत्रणा तदनन्तर मंडल नृत्य तथा अन्य वे सभी नृत्य रूप जो रास में अपने भग्नावशेष रूप में प्राप्त होते हैं, उनकी विधिवत चर्चा 'गोविन्दलीलामृतम्' में है। केवल जलक्रीड़ा ही उसमें से उपेक्षित है क्योंकि खुले मंच पर उसका आयोजन सम्भव नहीं था। ऐसी दशा में रास का यह वर्णन वर्तमान रासरंगमंच की नित्य-रास परम्परा से अद्भुत साम्य रखता प्रतीत होता है।

कविराज ने इस ग्रंथ के आरम्भ में रास का स्वरूप वर्णन किया है इसके उपरान्त गोपियों की सम्मति लेकर कृष्ण के वन विहार का और व्रज की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर वर्णन है। इस वन विहार में कृष्ण के वृन्दावन की प्रकृति से सूक्ष्म रागात्मक संबंधों का सरस वर्णन है। यह वन-विहार में केवल विहार मात्र ही नहीं इसमें सहगान का विशेष रूप से वर्णन है। श्रीकृष्ण वन भ्रमण में प्रकृति (चन्द्रमा, लता आदि) को लक्ष्य करके जो पद, वर्ण, शब्द, स्वर, ताल, लय, ग्राम, मूर्च्छना सहित गाते उसी गायन को ठीक उसी भांति सखियां शब्दों का थोड़ा हेर फेर करके इस प्रकार गा देती थीं कि वह प्रियाप्रियतम पर घटित होने लगता था। ऐसे अनेक काव्यात्मक उदाहरण कविराज ने नृत्यों में वर्णित किये हैं।[२]

कविराज ने इसके उपरान्त कृष्ण के वंशीवट पर पहुँच कर यमुना दर्शन का तथा फिर गोपियों से छेड़छाड़ करते यमुना पार जाने का और वहाँ चक्र के आकार के एक तीन नेमियों पर घूमने वाले परिधि पर गोपियों के साथ खड़े होकर नृत्यारंभ का वर्णन किया है। इस चक्र पर गोपियों और कृष्ण के हल्लीसस नृत्य का रास के एक अंग के रूप में कविराज ने नृत्य वर्णन किया है जो बड़ा चित्रमय है।[३]

इसके उपरान्त इस चक्र से उतर कर कृष्ण गोपियों सहित 'अनंगोल्लास' पुलिन पर पहुंचते हैं। अध्याय २२ के श्लोक ७० से इस पुलिन पर रास का वर्णन है।

रास के इस वर्णन की विशेषता यह है कि एक ओर जहां वह रास के परम्परागत रूप का वर्णन करता है वहां उसमें कवि प्रतिभा का पूर्णोत्कर्ष भी दर्शनीय है।

कृष्ण के गोपियों के साथ नृत्य और गायनों के वर्णन में कवि ने अपने संगीतशास्त्र के सूक्ष्म ज्ञान का स्थल स्थल पर परिचय दिया है। इस वर्णन के अनुसार रास में गाये जाने वाले मुख्य राग निम्न हैं।

---

१. सगणोऽरण्य-विवृतिचक्रममण-नर्तनम्।
हल्लीसकं युग्मनृत्यं ताण्डवं लास्यमेककम् ॥६॥
तत्प्रबन्धगानं च सन्नृत्यंरतिनर्मणी।
जल-खेलेत्यमन्येष रासांगानि व्यधात क्रमात् ॥७॥ गोविन्दलीलामृतम, पृ० ३८५।

२. श्रीकृष्ण गोविन्दलीलामृतम्, श्लोक ३२ से ४५ तक, पृ० ३४३ से ३४६ तक।

३. श्रीकृष्ण गोविन्दलीलामृतम्, श्लोक ५६ से ६८ तक, पृ० ३४९ से ३५२ तक।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राग के मुख्य राग

मल्हार, कर्णाटक, नट, सामकेदार, कामोद, भैरव, गान्धार, देशाग, वसंत और मालवराग जो कृष्ण और गोपियों ने गाये।

केवल गोपियों ने क्रमपूर्वक रास में जो राग गाये थे वे गुज्जरी, रामकली, गौरी, आसावरी, गुणकली तोड़ी, बिलावल, मंगल गुज्जरी, वराटिका, देशबराटिका, मागधी, कौशिकी, पाली, ललित, पटमंजरी, सुगाव सिन्दुरा।[1]

रास के साथ

रास में प्रयुक्त वाद्यों में कविराज ने मृदंग, डमरू, मण्डु, ममक, मुरली, पादिका, वंशी, मन्दिरा, करताल, विपंची, महती, वीणा, कच्छपी, करिनासिका, स्वरमंडलिकाव रुद्र वीणा आदि का उल्लेख किया है।[2] हो सकता है कि स्वामी हरिदास जी जैसे गुणियों के समय उक्त सब वाद्य रास के प्रयोग में आते हैं, परन्तु अब यह स्थिति नहीं है। इनमें से कुछ वाद्य तो अब कदाचित अज्ञात भी हो गए हैं।

रास की नृत्य-मुद्राएं

रास नृत्य में प्रयुक्त मुद्राओं का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि नृत्य के समय सर्प के फन, हंस की ग्रीवा, हस्तक (कच्छप आदि जन्तुओं की भांति हस्त मुद्रा बनाना) आदि मुद्राओं का गोपियों प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त पताका (अंगूठे को टेढ़ा कर तर्जनी के मूल में लगाना और अंगुलियों को सीधा फैला देना) त्रिपताका (अंगूठा व कनिष्ठ ऊंगली के अग्र भाग को मिलाकर तथा शेष तीन उंगलियों को फैलाकर) हंसास्य (हंस-मुख) यह मुद्रा तर्जनी मध्यमा व अंगूठे के अग्रभाग को मिलाकर बनाई जाती है) कर्तरी मुख (कैंची जैसी) शुकास्य (तोते के मुख जैसी) मृगशीर्ष (मृगशीश) सदंश खटकामुख, सूची मुख, अर्द्धचन्द्र, पद्मकोष, अहितुंडक (नागफणी) आदि मुद्राओं का प्रयोग किया।[3] आज भी रास नृत्यों में हस्तमुद्राओं पर ही सर्वाधिक जोर है, परन्तु उन मुद्राओं के रूप अस्पष्ट हो गये हैं।

रास नृत्य की तालें

नृत्यों में साजों पर जिन ३४ तालों का गोपियों ने प्रदर्शन किया कुछ ने ध्रुवताल, और मण्ठताल और कुछ ने इनके ठीक विपरीत तालों का प्रयोग किया। रास में इन तालों की नामावली कविराज ने यों गिनाई हैं—चंचत्पुट, चाचपुट, रूपक, सिंहनन्दन, गजलीला, एकताल, निप्सारी, अडड़क (आड़ताल) प्रतिमण्ठ, झम्प (झपताल) त्रिपुट, यदि नलकूबर, नुद्धट्ट, कुदृक, कक्लाख, उपाट्ट, दर्पण, राजकोलाहल, शचीप्रिय, रंगविद्याधर, बादक, अनुकूल, कंकण, श्रीरंग, कन्दर्प, षट्पितापुत्रक, पार्वतीलोचन, राजचूड़ा. मणि, जयप्रिय, रतिलील, त्रिभंगी, चच्चरत, बारविक्रम।

लेखक का कहना है कि ये ताल भी अतीत, अनागत व सम भेद से विविध होते हैं। इन तालों को

---

१. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ८५-८७।
२. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ८९-९०।
३. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ९१-९२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जल केलि यह रास के कृष्ण द्वारा निर्धारित अंग हैं।[१] इस प्रकार रासमंच हल्लीसक नृत्य को अपने में एक अंग के रूप में ग्रहण करता है वहां साथ ही वह अपने साथ लास्य और तांडव की परम्पराओं तथा अन्य अनेक गायन-वादन की लोक-परम्पराओं का भी समन्वय करता है।

इस रास के रूप की आज की रास की मंचीय 'नित्यरास' परम्परा से यदि तुलना की जाय तो मंच पर पहले वृन्दावन की शोभा का वर्णन (वन-विहार) पुनः सखियों तथा राधाकृष्ण की रासमंत्रणा तदनन्तर मंडल नृत्य तथा अन्य वे सभी नृत्य रूप जो रास में अपने भग्नावशेष रूप में प्राप्त होते हैं, उनकी विधिवत चर्चा 'गोविन्दलीलामृतम्' में है। केवल जलक्रीड़ा ही उसमें से उपेक्षित है क्योंकि खुले मंच पर उसका आयोजन सम्भव नहीं था। ऐसी दशा में रास का यह वर्णन वर्तमान रासरंगमंच की नित्य-रास परम्परा से अद्भुत साम्य रखता प्रतीत होता है।

कविराज ने इस ग्रंथ के आरम्भ में रास का स्वरूप वर्णन किया है इसके उपरान्त गोपियों की सम्मति लेकर कृष्ण के वन विहार का और व्रज की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर वर्णन है। इस वन विहार में कृष्ण के वृन्दावन की प्रकृति से सूक्ष्म रागात्मक संबंधों का सरस वर्णन है। यह वन-विहार में केवल विहार मात्र ही नहीं इसमें सहगान का विशेष रूप से वर्णन है। श्रीकृष्ण वन भ्रमण में प्रकृति (चन्द्रमा, लता आदि) को लक्ष्य करके जो पद, वर्ण, शब्द, स्वर, ताल, लय, ग्राम, मूर्च्छना सहित गाते उसी गायन को ठीक उसी भांति सखियां शब्दों का थोड़ा हेर फेर करके इस प्रकार गा देती थीं कि वह प्रियाप्रियतम पर घटित होने लगता था। ऐसे अनेक काव्यात्मक उदाहरण कविराज ने नृत्यों में वर्णित किये हैं।[२]

कविराज ने इसके उपरान्त कृष्ण के वंशीवट पर पहुँच कर यमुना दर्शन का तथा फिर गोपियों से छेड़छाड़ करते यमुना पार जाने का और वहाँ चक्र के आकार के एक तीन नेमियों पर घूमने वाले परिधि पर गोपियों के साथ खड़े होकर नृत्यारंभ का वर्णन किया है। इस चक्र पर गोपियों और कृष्ण के हल्लीसस नृत्य का रास के एक अंग के रूप में कविराज ने नृत्य वर्णन किया है जो बड़ा चित्रमय है।[३]

इसके उपरान्त इस चक्र से उतर कर कृष्ण गोपियों सहित 'अनंगोल्लास' पुलिन पर पहुंचते हैं। अध्याय २२ के श्लोक ७० से इस पुलिन पर रास का वर्णन है।

रास के इस वर्णन की विशेषता यह है कि एक ओर जहां वह रास के परम्परागत रूप का वर्णन करता है वहां उसमें कवि प्रतिभा का पूर्णोत्कर्ष भी दर्शनीय है।

कृष्ण के गोपियों के साथ नृत्य और गायनों के वर्णन में कवि ने अपने संगीतशास्त्र के सूक्ष्म गान का स्थल स्थल पर परिचय दिया है। इस वर्णन के अनुसार रास में गाये जाने वाले मुख्य राग निम्न हैं।

---

१. सगणोऽरण्य-विहृतिचक्रममण-नर्तनम्।
हल्लीसकं युग्मनृत्यं ताण्डवं लास्यमेककम् ॥६॥
तत्प्रबन्धगानं च सन्नृत्यंरतिनर्मणी।
जल-खेलेत्यमन्येष रासांगानि व्यधात क्रमात् ॥७॥ गोविन्दलीलामृतम, पृ० ३८५।

२. श्रीकृष्ण गोविन्दलीलामृतम्, श्लोक ३२ से ४५ तक, पृ० ३४३ से ३४६ तक।

३. श्रीकृष्ण गोविन्दलीलामृतम्, श्लोक ५६ से ६८ तक, पृ० ३४९ से ३५२ तक।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राग के मुख्य राग

मल्हार, कर्णाटक, नट, सामकेदार, कामोद, भैरव, गान्धार, देशाग, वसंत और मालवराग जो कृष्ण और गोपियों ने गाये।

केवल गोपियों ने क्रमपूर्वक रास में जो राग गाये थे वे गुज्जरी, रामकली, गौरी, आसावरी, गुणकली तोड़ी, बिलावल, मंगल गुज्जरी, वराटिका, देशबराटिका, मागधी, कौशिकी, पाली, ललित, पटमंजरी, सुगाव सिन्दुरा।[1]

रास के साथ

रास में प्रयुक्त वाद्यों में कविराज ने मृदंग, डमरू, मण्डु, ममक, मुरली, पादिका, वंशी, मन्दिरा, करताल, विपंची, महती, वीणा, कच्छपी, करिनासिका, स्वरमंडलिकाव रुद्र वीणा आदि का उल्लेख किया है।[2] हो सकता है कि स्वामी हरिदास जी जैसे गुणियों के समय उक्त सब वाद्य रास के प्रयोग में आते हैं, परन्तु अब यह स्थिति नहीं है। इनमें से कुछ वाद्य तो अब कदाचित अज्ञात भी हो गए हैं।

रास की नृत्य-मुद्राएं

रास नृत्य में प्रयुक्त मुद्राओं का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि नृत्य के समय सर्प के फन, हंस की ग्रीवा, हस्तक (कच्छप आदि जन्तुओं की भांति हस्त मुद्रा बनाना) आदि मुद्राओं का गोपियों प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त पताका (अंगूठे को टेढ़ा कर तर्जनी के मूल में लगाना और अंगुलियों को सीधा फैला देना) त्रिपताका (अंगूठा व कनिष्ठ ऊंगली के अग्र भाग को मिलाकर तथा शेष तीन उंगलियों को फैलाकर) हंसास्य (हंस-मुख) यह मुद्रा तर्जनी मध्यमा व अंगूठे के अग्रभाग को मिलाकर बनाई जाती है) कर्तरी मुख (कैंची जैसी) शुकास्य (तोते के मुख जैसी) मृगशीर्ष (मृगशीश) सदंश खटकामुख, सूची मुख, अर्द्धचन्द्र, पद्मकोष, अहितुंडक (नागफणी) आदि मुद्राओं का प्रयोग किया।[3] आज भी रास नृत्यों में हस्तमुद्राओं पर ही सर्वाधिक जोर है, परन्तु उन मुंद्राओं के रूप अस्पष्ट हो गये हैं।

रास नृत्य की तालें

नृत्यों में साजों पर जिन ३४ तालों का गोपियों ने प्रदर्शन किया कुछ ने ध्रुवताल, और मण्ठताल और कुछ ने इनके ठीक विपरीत तालों का प्रयोग किया। रास में इन तालों की नामावली कविराज ने यों गिनाई हैं—चंचत्पुट, चाचपुट, रूपक, सिंहनन्दन, गजलीला, एकताल, निप्सारी, अडड़क (आड़ताल) प्रतिमण्ठ, झम्प (झपताल) त्रिपुट, यदि नलकूबर, नुद्धट्ट, कुदृक, कक्लाख, उपाट्ट, दर्पण, राजकोलाहल, शचीप्रिय, रंगविद्याधर, बादक, अनुकूल, कंकण, श्रीरंग, कन्दर्प, षट्पितापुत्रक, पार्वतीलोचन, राजचूड़ा. मणि, जयप्रिय, रतिलील, त्रिभंगी, चच्चरत, बारविक्रम।

लेखक का कहना है कि ये ताल भी अतीत, अनागत व सम भेद से विविध होते हैं। इन तालों को

---

१. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ८५-८७।
२. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ८९-९०।
३. गीत गोविन्दलीलामृत, अध्याय २२ श्लोक ९१-९२।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ग्रह सहित समा, गोपुच्छिका व स्रोतोवहा नामक तीन यतियों सहित एवं निःशब्द व शब्दयुक्त दो भेदों सहित गोपियों ने बजाया। उन्होंने इन तालोंको वर्द्धमान और दीयमान दोनों आवर्त एवं मान सहित बजाया।[१]

रास के इस सामान्य वर्णन के उपरान्त २३वें अध्याय में कविराज गोस्वामी ने रास के नृत्य गायन और उसके क्रम का सांगोपांग वर्णन किया है, जिसकी विशेषता यह है कि वह लगभग व्रज में विद्यमान रास रंगमंच के नित्यरास के क्रम से एक दम मिलता जुलता है। वर्तमान रास रंगमंच के अभिनेता और दर्शकों की उपस्थिति का यदि वर्ग विभाजन किया जाय तो हम रास की उपस्थिति को ३ वर्गों में बांटेंगे (१) अभिनेता (२) समाजी (३) दर्शक। कविराज गोस्वामी ने भी अपने रास में इन तीनों वर्गों की ही उपस्थिति की चर्चा की है। वे लिखते हैं—

श्रीराधवा नृत्यति कृष्णचन्द्रे, गायन्त्य आसन् ललितादयस्तदा।
चित्रादयोऽन्या किल तालधारिका, वृन्दादयः सभ्यतया व्यवस्थिताः॥

इस वर्णन में राधाकृष्ण के नृत्य के साथ गायन में संलग्न गोपी अभिनेता वर्ग में तथा चित्रादि सखियां जो ताल देने वाली हैं समाजी वर्ग में तथा वृन्दा आदि सखियां जो दर्शक के रूप में नृत्य गान के गुण दोषों की विवेचक हैं प्रबुद्ध दर्शक वर्ग में हैं।

श्लोक ४, ५, ६ में कविराज ने रास के नृत्य का जो वर्णन किया है मानो वह ज्यों का त्यों व्रज के वर्तमान रास नृत्यों का ही वर्णन है। सर्वप्रथम सामूहिक मंडलाकार नृत्य और गायन का लगभग वैसा ही वर्णन है जैसा आज के नित्य रास का क्रम है। इसमें साज भी वर्तमान रास जैसे ही हैं जिनमें वीणा (अब सारंगी या हारमोनियम) मृदंग (अब पखावज या तबला) झांझ और वंशी वादन का ही उल्लेख है।

रास में समूह नृत्य के बाद पंक्तिबद्ध नृत्य का ठीक उसी रूप में उल्लेख है जैसा आज भी रासमंच पर मंडलाकार नृत्य के उपरान्त होता है। वर्तमान रास में प्रचलित 'पंक्तिबद्ध नृत्य' के समान ही यहां भी 'पंक्तिबद्ध नृत्य का' यह क्रम कृष्ण से ही आरंभ होता है।[२] पंक्ति से बाहर आते समय का प्रमूल है—

त त्ता तत्थे, हगति हक् तत्थं हक् तत्थं था

श्रीकृष्ण के पंक्तिबद्ध नृत्य के प्रमूल का उल्लेख इस ग्रंथ में यों है—

थो दिक् दां दां किट किट कणफें थोंक्कु थो दिक्कु आरे
झें द्रां झें द्रां किट किट किट धांक झेंकु झें झेंकु झें झेंम्।
थो दिक दां दां दृमि दृमि दृमि धांकांकु झें कांकु झें दा,
मागत्वैव नटति स हरिश्चारु-पाठ-प्रबन्धम् ॥७॥

---

१. श्री गोविन्दलीलामृतम् अध्याय २२ श्लोक ९३-१०१, पृ० ३५८-३५९।
२. कृष्णः श्रीमान्मुहुरिह समागत्य तासां स मदया-
नानाताल क्रमवशतया चालयन् श्रीपदाब्जे।
धुन्वन् पाणी नटति निगदनित्यमानन्दयंस्ता-
स्तत्ता तत्थेदृगति दृग त्यं दृक् तयं दृक् तथै था॥६॥ (श्लोक ६, अध्याय २३)।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कृष्ण के उपरान्त राधा के नूपुरों तथा आभूषणों के कलरव के साथ उनके पंक्तिबद्ध नृत्य के लिए आगे बढ़ने का वर्णन है—

राधा कृष्ण-द्युति घनचये चंचलेव स्फुरन्ती।
नृत्यन्तीत्थं गदति तथथै थैं तथै थै तथै था ॥८॥

उनके नृत्य के प्रमूल का कथन इस प्रकार है—

धां धां दृक् दृक् चड चड निडन णं निडा णं निनां नां।
तुत्तक् तुं तुं गडु गुडु गडु धां द्रां गुडु द्रां गडु द्राम्।
धेक धेक धो धो किरिट किरिट द्रां हृमि द्रां हृमि द्रा-
मामत्थैयं महुरिह मुदा श्री मदाशा ननर्त ॥९॥

इस पंक्तिबद्ध नृत्य में राधा के उपरान्त ललिता और फिर विशाखा के नृत्य का वर्णन है। इसके उपरान्त अन्य गोपियों के नृत्यों का उल्लेख है। उनके नृत्य के प्रमूल इस प्रकार हैं—

ललिता—थैं थैं थी थी तिगड़ तिगड़ थो तथै थो तथै ता।
विशाखा—दृगिति दृगिति दृक् थैं थो तथौ थी
अन्य गोपियाँ—(१) थैं या, तथैया, ततथै तथै या
(२) थैं, थैं, थैं, थैं, थैं, तथैं, थैं तथैं, था।
(३) थैं या थैं या, तथ, तथ, थैया, थैया, थैया, तिगड़ तथैया।

गोपियों के इस पंक्तिबद्ध नृत्य के उपरान्त राधाकृष्ण के एक दूसरे की प्रशंसा करते हुए युगल नृत्य का वर्णन है जिसका आवेग बढ़ जाने पर उसमें सब गोपियां (इन गोपियों में वे भी सम्मिलित हैं जो रास में अब तक वाद्य बजा रही थीं और आनन्दातिरेक में वे हाथों में साज उठाकर उन्हें बजाते हुए नृत्य करने लगीं) इस प्रकार समूह नृत्य के साथ रास में सामूहिक गायन के आरंभ का वर्णन है।

इस नृत्य की उत्कृष्टता, उसमें, ग्रीवा, हस्त, कंठ और नयनों के संचालन तथा मुद्राओं की मुकरता का तथा गायन की श्रेष्ठता का ग्रंथकार ने वर्णन किया है। जो गोपियां रास के पद को ध्रुवताल में गाते हुए अंतिम भाग आमांश तक ले गई श्रीकृष्ण ने उन गोपियों का विशेष सम्मान किया।[1]

हरिवंश पुराण की भांति इस रास में भी राधा द्वारा छालिक्य नृत्य प्रगट करने का उल्लेख है। कभी चूक जाने पर कृष्ण के गायक की भूल को भी वह नयनों की सेन से सुधारती कही गई हैं। रास के अन्त में इस ग्रंथ में राधाकृष्ण और गोपियों के विभिन्न नृत्यों का उल्लेख करते हुए कविराज अन्त में यहां तक कह देते हैं कि—

गीतं वाद्यञ्च नृत्यं विधि शिव रचितं यच्च वैकुण्ठलोके।
वल्लक्ष्मीकान्त लक्ष्मीचय नय-रचितं स्वेन यद्यत् प्रणीतम्
अन्यागम्यं यदाभिबुञ्जबरललना-नतृकीभिश्चसृष्टं
रासे कृष्णस्तदेतन्मुहुरिह कुतुकी सर्तमाभिर्ण्यतानीत् ॥

इस प्रकार कविराज गोस्वामी के इस रास-वर्णन से भक्तिकालीन रास की परम्परा के उत्कर्ष

---

१. श्लोक २६, अध्याय २३।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

विकास और निखार का सांगोपांग रूप नेत्रों के समक्ष आता है। यदि हम वृन्दावन के इस रास-वर्णन को हरिवंश पुराण के द्वारका क्षेत्र में आयोजित छालिक्य गीत वाले यादवों के उत्सव से मिलायें तो कालक्रम के इस लम्बे व्याघात के साथ साथ वृन्दावन और द्वारका की सांस्कृतिक दूरी भी इनमें नहीं दीखती। यह दोनों ही उत्सव एक ही सांस्कृतिक और कलात्मक परम्परा की कड़ी प्रतीत होते हैं।

जहाँ भारतीय साहित्य की विभिन्न भाषाओं में विभिन्न कवियों ने अनेक रूपों में रास का वर्णन किया है वहाँ कविराज जैसे समर्थ व्यक्तित्व ने ब्रज के भक्तिकालीन रास रंगमंच का सुन्दर चित्रण भी अपने ग्रंथ में कर दिया है।

संगीत

संगीत कला पर भी कृष्ण लीला का अक्षुण्ण प्रभाव है। उत्तर भारतीय संगीत तो पूरा ब्रजभाषामय है ही, कर्नाटक सगीत में भी कृष्ण की लीलाओं का गायन यथा समय होता है। जयदेव, चडीदास, विद्यापति और सूरदास के गेय पद तो भावुकों के कठहार हैं ही। बगाल के कीर्तन, गुजरात के हवेली संगीत, तथा ब्रज के समाज-संगीत जैसी सभी भक्ति संगीत परम्पराओं में राधाकृष्ण की अमिट छाप लगी हुई है। ध्रुपद, धमार, ख्याल और ठुमरी सभी में रासविहारी कृष्ण रमा हुआ है। रास के गीत भारतीय लोक साहित्य में भी सर्वत्र प्रचलित हैं। राजदरबारों से लेकर कुटी तक रास वर्णन का गायन हमारे संगीतज्ञ और जनता समान रुचि से सदैव करते रहे हैं। रास का व्यापक प्रभाव हमारे संगीत पर बहुत स्पष्ट है, अतः इस संबंध में अधिक चर्चा अपेक्षित नहीं है।

मूर्तिकला

आक्रान्ताओं के आक्रमणों से हमारी न जाने कितनी दुर्लभ कृतियां नष्ट हो गई हैं कौन जानता है। लगता है भगवान कृष्ण की कृतियों पर आक्रान्ताओं की अधिक वक्र दृष्टि रही परन्तु प्राचीन कथा के जो अवशेष खंडित मूर्तियों के रूप में उपलब्ध हैं वे परिमाण में कम होते हुए भी यह सिद्ध करने को पर्याप्त हैं कि ब्रज की रास लीलाओं से हमारे मूर्तिकार भी प्रेरणा लेते रहे हैं।

मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में दूसरी शताब्दी का एक शिलापट्ट है जिसमें वासुदेव जी द्वारा कृष्ण को गोकुल ले जाने का दृश्य अंकित है। यह संभवतः भगवान कृष्ण का सबसे प्राचीन चित्र है जो शिला पर उरेका हुआ है और भी उपलब्ध है। इसमें वासुदेव नवजात शिशु को एक सूप में रखे हैं। जमुना का पूर्ण उभार टेढ़ी रेखाओं द्वारा अंकित किया गया है। बीच में जल तन्तु भी चित्रित हुए हैं और पीछे नागराज कृष्ण की रक्षा करते हुए चलते दिखाये गये हैं।

इस शिलापट्ट के अतिरिक्त मथुरा संग्रहालय में बांये हाथ पर गोवर्धन उठाये हुए भगवान कृष्ण की एक और मूर्ति है जिसके नीचे ग्वाल बाल खड़े हैं। कालियदमन की एक मूर्ति भी मथुरा के कंस किले से प्राप्त हुई थी जो बहुत ही सुन्दर परन्तु अधिक टूटी हुई है। यह मूर्ति पांचवीं शताब्दी की है। कालिय-दमन की मथुरा से प्राप्त एक गुप्तकालीन मूर्ति लखनऊ के संग्रहालय में भी है। छठी शताब्दी की भी कई मूर्तियां मथुरा और उसके आस-पास मिली हैं। मथुरा से बाहर भी भगवान कृष्ण की मूर्तियां अनेक स्थलों पर प्राप्त हैं।

राजस्थान और मंडोर नामक स्थान पर कई पुरानी कृष्णलीला की कलाकृतियां मिली हैं। आमेर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संग्रहालय में 'केशिवध' की मूर्ति है। बीकानेर के पास मिले मिट्टी के सुन्दर खिलौनों में भी कृष्ण चरित का अंकन हुआ मिला है। इनमें से एक पर दानलीला का सुन्दर चित्रण है। पूर्वी बगाल के पहाड़पुर नामक स्थान पर भी मिट्टी की मूर्तियां मिली हैं इनमें से एक में कदम के नीचे कृष्ण वलराम धेनुक का वध करते दिखलाये गये हैं दूसरी पर यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार और तीसरी में मुष्टक चाणूर के साथ उनके युद्ध का दृश्य है। एक मूर्ति में राधा और कृष्ण अत्यन्त आकर्षक मुद्रा में खड़े हैं। इस प्रकार की यहां और भी अनेक मूर्तियां मिली हैं जो चौथी-पांचवीं शताब्दी की हैं। उड़ीसा के भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर में दही विलोती हुई जसोदा का माखन बालकृष्ण निकाल रहे हैं और नन्द विमुग्ध भाव से इस दृश्य को देख रहे हैं। यह मूर्ति ११वीं शताब्दी की हैं। झांसी के देवगढ़ में भी गुप्तकालीन कई कृष्ण की ब्रजलीलाओं की प्रतिमा हैं।

भगवान कृष्ण की लीलाओं का दक्षिण भारत में भी पर्याप्त चित्रण हुआ है। बादामी के पहाड़ी किले पर पूतनावध, शकट भंजन, प्रलंब, धेनुक, कंस आदि के वध के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। ऐलोरा के कैलाश मंदिर पर भी कृष्ण लीला के कई दृश्य हैं।

भारत से बाहर भी जावा आदि द्वीपों में कृष्णलीला का अंकन उपलब्ध है। लगभग यह वही सब लीलाए हैं जो रास की लीलाओं की कथावस्तु का निर्माण करती हैं। ऐसी दशा में यह मानना पड़ता है कि कृष्ण चरित को इस व्यापाक प्रचार का माध्यम बनाने में रास के मंच ने अनोखी भूमिका संपादित की है, क्योंकि द्वारकाधीश कृष्ण का अंकन ब्रजलीलाओं की तुलना में नगण्य है।

चित्रकला

भारतीय कला में ऐसे सहस्रों उल्लेखनीय चिन्ह हैं जिनमें रासलीलाओं की कथा अंकित है। गुजराती, राजस्थानी, मुगल, कांगड़ा, गुमेर, बसौली, गढ़वाली आदि सभी शैलियों में ये चित्र पर्याप्त मात्रा में अंकित हैं। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में तथा ब्रज के मंदिरों में तथा मथुरा के पोतराकुंड की ढहती हुई दीवालों पर रास तथा राधाकृष्ण की विविध रसभरी लीलाओं के अंकन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। कांगड़ा शैली के कृष्णलीला के चित्र तो बेजोड़ ही हैं। प्राचीन कवियों के काव्य के आधार पर भी कृष्णलीला के चित्रों का काफी अंकन हुआ है। जयपुर में कुंवर संग्रामसिंह जी के संग्रहालय में 'गीतगोविन्दम्' की जो चित्रावली है उसमें रास के दो सुन्दर चित्र हैं। राजदूत पेंटिंग्स में रास समारोह का एक सुन्दर चित्र प्रकाशित है जिसमें समस्त वातावरण ही गोपीमय है। रास की भावना को साकार करने वाला यह एक अद्वितीय चित्र है जिसमें ऊपर से देवगण पुष्प वर्षा कर रहे हैं। काशी के भारत कला भवन में भी रास के सुन्दर चित्र हैं जिनमें से एक पर सखियों के नाम भी अंकित हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में भगवान कृष्ण के रास से अंतर्धान होने का एक बहुत ही सुन्दर चित्र है जिसमें शरद चंद से देदीप्यवान यमुना के कूल पर हाथ फैलाये विव्हल गोपी अपने कृष्ण को खोज रही है।

पर्दों और पिछवाइयों में

चित्रों के साथ साथ पुराने पर्दों और पिछवाइयों में भी कृष्णलीला और रास के सुन्दर दृश्य उपलब्ध हैं। महाराज जयपुर के निजी संग्रह में एक ऐसा ही अनोखा चित्र है। श्री जगन्नाथ अहिवासी के अनुसार यह प्रायः १० हाथ लंबा और छः सात हाथ ऊंचा अंकन है। इसकी आकृतियां आदमकद हैं और दृश्य का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

संपुजन कुछ इस प्रकार हुआ है कि ऐसा लगता है मानो प्रत्यक्ष ही नयनों के समक्ष दृश्य उपस्थित है। इसमें बीच में राधाकृष्ण नृत्य कर रहे हैं और पश्वों में सखियां गा बजा रही हैं। नृत्य चित्र के रोम रोम में रम गया है।[1]

कपड़े पर तूलिका द्वारा अंकित और भी ऐसी अनेक पिछवाइयां मिली हैं जो विविध रंगों से चित्रित हैं। इनमें रास नृत्य तथा दानलीला आदि के अंकन हैं।

एक सवा सौ वर्ष पुराने रूमाल पर आपस में बातें करती हुई गोपियां जल भर कर लौटती चित्रित की गई हैं जिनके पास ही ग्वाल बाल ऊधम कर रहे हैं। इसी रूमाल के दूसरी ओर काशीराम कवि का यह छंद अंकित है—

देखा देखी भई तें सकुचि सब छूटि गई,
मिटी कुलकानि व कैसो घूंघट को करिबौ।
लगी टकटकी जब मिटी धकधकी,
गति थकी मति छकी ऐसो नेह को उधरिबो।
चित्र के से काढ़े, दोऊ ठाड़े रहे काशीराम,
नेक परवाह नहीं लोगन की लखिबो।
वंशी को बजैबो, नटनागर को भूलि गयो,
नागरि को भूलि गयो गागरि को भरिबो॥

इस प्रकार रास के रंगमंच का ललित कलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और उसमें भारतीय संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भाग लिया है। यह इस मंच की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धि है। भारतीय कला जगत और लोक जीवन पर रास का व्यापक प्रभाव है।

---

१. रासलीला : एक परिचय : पृष्ठ ५६।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला

⊙

डा० हरिकृष्ण देवसरे
एम ए० पी-एच० डी०

देश के सुदूर पश्चिमी सीमान्त के एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र कच्छ में हिन्दी की लालित्यपूर्ण बोली ब्रजभाषा के काव्य की शिक्षा देने के लिए किये गये ऐतिहासिक प्रयास का अपना विशिष्ट महत्व है। स्वराष्ट्रभाषा हिन्दी की लोकप्रियता और विकास तथा राष्ट्रीय एकता की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में इस पाठशाला का योगदान स्तुत्य है। कच्छ में मूलतः कच्छी बोली जाती है। यह सिन्धी के काफी निकट है। कच्छी की अपनी कोई लिपि नहीं है। किन्तु कच्छी के समानान्तर यहां गुजराती भी बोली जाती है। गुजराती और कच्छी दोनों का ही साहित्य अत्यंत समृद्ध है। फिर भी ब्रजभाषा काव्य के प्रति यहाँ के लोगों का विशिष्ट अनुराग अत्यंत प्रशंसनीय है। द्वारकाधाम के कारण गुजरात और कच्छ में कृष्णभक्ति का अत्यधिक प्रभाव है। यहाँ के अनेक संतों एवं कवियों ने कृष्ण लीलाओं और उनकी महिमा का गुणगान किया है। कच्छ के सुदूर के कोने में स्थित नारायण सरोवर में सन् १५३५ में वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य जी आये थे और उन्होंने श्रीमद्भागवत का पाठ किया था तथा ब्रजभाषा में उसका अर्थ समझाया था। उनकी बैठक आज भी वहां विद्यमान है।

ब्रजभाषा के साहित्य ने कच्छ को इतना प्रभावित किया कि उसे यहां राज्याश्रय प्राप्त हुआ और वह एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र में वह लगभग दो सौ वर्ष तक पुष्पित-पल्लवित होती रही।

कच्छ के महाराव लखपतसिंह जी कला और साहित्य के मर्मज्ञ और प्रेमी थे। उनके दरबार में कलाकारों एवं कवियों का जमघट लगा रहता था। महाराव की कलाप्रियता, सहृदयता और साहित्य-रसिकता का वर्णन करते हुए कवि फकीरचन्द ने लिखा था—

भयौ को या बखात में, लखपति सों रिझवार,
सब विद्या में निपुण अति, दुखभंजन दातार।
जादब कुल सिर मकुट मुनि, लखपति लख दातार,
मानो आयो जगत में, दूजो इन्द्र अवतार।
षट भाषा के जान कवि, कोई गायन के वृंद,
ता रस भीनो नित रहे, लखपति राउ नरिंद।
बुद्धि बुलंद गनेस सो, दानी करन समान,
पर दुखभाजन बीर सो, लखपति राउ सुजान।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhavan Vani Trust Collection, Lucknow

लखपति जी के दरबार में रामसिंह मालम नामक एक अत्यंत गुणी और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसने विदेश में जाकर स्थापत्य तथा शिल्पकला सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उसके ही निर्देशन में भुज में एक आलीशान महल निर्मित हुआ था, जिसका नाम 'आइना महल' रखा गया। आइना महल की संगमरमर की दीवारों में कांच लगे हुए हैं और दीवारों पर अत्यंत सुन्दर नक्काशी का काम किया गया है। महाराव लखपतसिंह जी का दरबार इसी महल में लगा करता था और अनेक कवि तथा कलाकार उसमें उपस्थित होते थे। महाराव स्वयं भी कविताएँ लिखते थे, इसलिए साहित्य मनीषियों का सुन्दर समागम होता था। उन्होंने जब राज्य शासन संभाला था, उस समय जो कवि आये थे उनमें जोधपुर के चरण कवि हमीरदान और भागमल ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया था और फलतः वे उनके कृपा-पात्र बनकर उनके दरबार में ही रहने लगे थे। इन कवियों की रचनाओं से प्रेरित और प्रभावित होकर महाराव ने उन्हें चार गांव भी दिये थे। इन कवियों ने ब्रजभाषा में 'लखपत पिंगल' तथा 'हमीरनाम माला' 'ब्रह्माण्ड पुराण आदि' ग्रंथों को जब पढ़ा तो उन्होंने निश्चय किया कि इस प्रकार के काव्य-ग्रन्थों की रक्षा तथा पठन-पाठन के लिए कोई स्थायी व्यवस्था होनी चाहिए। अपने कवि दरबारियों के साथ परामर्श करने के बाद उन्होंने यह निश्चय किया कि भुज में एक 'ब्रजभाषा पाठशाला' की स्थापना की जाये। किन्तु इस कार्य को संचालित करने के लिए उपयुक्त आचार्य का अभाव था। अंत में उन्होंने विशनगढ़ (राजस्थान) के जैन साधु कनककुशल को यह कार्य सौंपा और इस प्रकार सन् १७५० में भुज में ब्रजभाषा पाठशाला विधिवत स्थापित हो गयी। आचार्य कनककुशल संस्कृत और ब्रजभाषा के महान पंडित थे। महाराव ने उन्हें 'भट्टारक' की उपाधि से विभूषित किया था तथा ब्रजभाषा पाठशाला के प्रथम प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त किया था। इसके साथ ही आजीविका चलाने के लिए उन्हें तीन हजार वार्षिक आय वाला ग्राम 'रेहा' भी प्रदान किया था। ब्रजभाषा पाठशाला का सम्पूर्ण खर्च महाराव वहन करते थे।

कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला के सम्बन्ध में सर्वप्रथम अनुसंधान करने वाले, बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने गोविन्द गिल्ला भाई के एक हस्तलिखित ग्रंथ के आधार पर पाठशाला विषयक प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की। गोविन्दगिल्ला भाई के अनुसार 'कच्छ' के महाराजा श्री देशलजी के ई० १७०७ में एक कुमार का जन्म हुआ। उनका नाम लखपतसिंह रखा गया। वह जब चौंतीस वर्ष के हुये तब सन् १७४१ में गद्दी पर बैठे। वह बहुत उदार और विषय-विलासी थे। उनको कविता और गायन का शौक था। आप भी कविता लिखते थे। उन्होंने भुजनगर में कविता सीखने के लिए 'ब्रजभाषा पाठशाला' की स्थापना की है, और जैन साधु कनककुशल को भट्टारक की पदवी देकर ब्रजभाषा की कविता सिखवाने के लिए अध्यक्ष नियत किया, और खर्च के लिए दो तीन हजार रुपये की वार्षिक आय या उपज का एक 'रेहा' नामक गाँव बक्शीस दिया। भट्टारक श्री कनककुशल के शिष्य कुंवरकुशल महा-पंडित थे। उन्होंने राव लखपत के नाम से साहित्यमय एक वृहद्ग्रन्थ 'लखपत यशसिंधु' बनाया। वह बहुत उत्तम और पठनीय है। वह हमारे पास लिखा हुआ है। राव लखपतसिंह जी खुद भी कवि थे। उन्होंने 'लखपति शृंगार', 'लखपति मान मंजरी', रसतरंगिणी' 'मृदंग महोरा', 'रामसागर' आदि ग्रंथ लिखे हैं। यह सन् १८१७ में स्वर्गवासी हुए। वह कविता में अपना नाम 'लखमीधर' रखते थे।

आचार्य श्री कनककुशल की विद्वत्ता तथा उनकी यशकीर्ति के सम्बन्ध में निम्न पद प्रकाश डालता है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

पंडित प्रवीण परमारथ के बात पाऊँ
गुस्ता गंभीर गुन ज्ञान हूं के ज्ञाता हैं,
पांच व्रत पालें राग द्वेष दोऊ टालें,
आवे नर पास वांक् ज्ञान दा दाता है,
पंच सुमति तीन गुपति के संगी साधु,
पीहर छ काय के सुहाय जीव त्राता है,
सुगुरु प्रताप के प्रताप पद भट्टारक,
कनककुशल सूरि विश्व में विधाता है।

कनककुशल ने 'लखपति मंजरी' नाममाला नामक ग्रंथ की रचना की थी जिसमें २०२ पद हैं। आरंभ में १०२ पदों में कच्छ के जाडेजा वंश का इतिहास है और शेष १०० पदों की नाममाला है। पुस्तक का अंतिम पद इस प्रकार है—

लखपति जस सुमनस ललित, इक बरनी अभिराम,
सुकवि कनक कीन्हीं सरस, नामदास गुणधाम।
सुनत जासु हे सयस फल, कल्मस रहे न कोय,
मन जपि लखपति मंजरी, हरि दरसन ज्यों होय।

मुगल बादशाह शाहजहां के दरबारी कवि सुन्दर कृत 'सुन्दर शृंगार' की भाषा टीका भी कनककुशल ने महाराव लखपत के नाम पर ही की थी। ग्रंथ के आरंभ में उन्होंने लिखा था—

यह सुन्दर शृंगार की, रस दीपिका सुरंग,
रची देशपति राउ सुत, लखपति लहि रस अंग।

ब्रजभाषा पाठशाला में सभी के लिए प्रवेश द्वार खुले हुए थे। पाठशाला की शिक्षण-पद्धति, व्यवस्था और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो प्रमाण मिलते हैं, उनसे सिद्ध होता है कि यह एक अत्यंत सुव्यवस्थित, उन्नत और विकसित पाठशाला रही है। गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि दलपतराव डाह्याभाई ने 'बुद्धि प्रकाश' (गुजराती का सुप्रसिद्ध प्राचीन मासिक) के जुलाई सन् १८५८ के अंक में लिखा था—'भुज में पिछली कितनी ही पीढ़ियों से पहले कविता सिखाने की पाठशाला स्थापित की जा चुकी है। उसमें पढ़ानेवाले गोरजी हैं। उन्हें वहां के राज्य की ओर से वर्षासन मिलता है और पढ़ने के उपरान्त जैसी परीक्षा देते हैं वैसा ही शिरणाव मिलता है। इस प्रकार की कविता की पाठशाला समस्त गुजरात में अन्यत्र नहीं है और न देखने में आई, और न ही सुनने में। हमने सुना है कि इस पाठशाला में कविता सिखाने के लिए छोटे-बड़े कुल मिलाकर लगभग तीस ग्रन्थ हैं, उनमें से कुछ नाम याद हैं वे नीचे दिये गये हैं—१. भाषा व्याकरण, २. मान मंजरी नामक कोश, ३. अनेकार्थ मंजरी, ४. इन पुस्तकों में किसी एक को पढ़ना जरूरी है—(अ) छंद शृंगार पिंगल, चिंतामणि पिंगल, (इ) छंद भास्कर पिंगल, (ई) हमीर पिंगल, (उ) लखपति पिंगल, (ऊ) नागराज पिंगल, आदि। ५. भाषा-भूषण अलंकार का संक्षिप्त ग्रंथ, ६. वंशीधर-अलंकार का विस्तृत ग्रंथ, ७. कविप्रिया सटीक बड़ा ग्रंथ, जिसमें कविता के गुणगान व उसके गुण दोष का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

खुलासा है, ८. रस रहस्य (सटीक)—इसमें संक्षिप्त बातें व्यंजना, ध्वनि, लक्षण इत्यादि कविता के नियम दिये गये हैं, ९. काव्यकुतूहल—इसमें रहस्य की संक्षिप्त बातें बतायी गयी हैं, १०. रसिक-प्रिया-कविता के नव-रसों का मुख्यतः शृंगार रस का विवेचन है, ११. सुन्दर शृंगार, १२. बिहारी सतसई, १३. वृन्द सतसई, १४. देवीदास कृत राजनीति, १५. नाथूराम कृत, सुन्दर विलास, ज्ञान वर्णन का ग्रंथ, १६. ज्ञान समुद्र, १७. पृथ्वीराज रासो, १८. अवतार चरित, १९. कृष्णबावनी, २०. कवितबंध रामायण, २१. रामचन्द्रिका, २२. रागमाला, २३. सभ्यविलास।

कवि दलपतराम के इस विवरण से स्पष्ट है कि व्रजभाषा पाठशाला के पाठ्यक्रम में विविधता एवं मौलिकता थी। यहां अलंकार, रस, पिंगल आदि सभी का अध्ययन कराया जाता है। यह पाठशाला आवासीय थी। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पाँच वर्षों में पूरा होता था। छात्रों को अपने अध्ययन के अन्तिम वर्ष में किसी विषय पर बावनी लिखने के लिए कहा जाता था। अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्र को एक राजकीय प्रमाणपत्र दिया जाता था। यह प्रमाणपत्र नागरी लिपि में हिन्दी में होता था और उस पर 'व्रजभाषा काव्यशाला-महाराव श्री लखपतजी' की मुद्रा अंकित रहती थी। पाठशाला की यशकीर्ति के विषय में कवि दलपत राम के पुत्र न्हानालाल ने 'कवीश्वर दलपत' नामक ग्रंथ लिखा है, "काव्य कला की शिक्षा देने के लिए भुज में पाठशाला थी—आज भी है। कवियों की सर्जना करने वाली यह पाठशाला कदाचित दुनिया भर में अद्वितीय होगी। अनेक काव्यरसिक यहां शिक्षा प्राप्त कर राज दरबारों में राज-कवि हो गये हैं। इस काव्यशाला में काव्यशास्त्र सिखाया जाता है और जिस प्रकार बगीचा शास्त्र का शास्त्री उदीयमान बागवानों को ऋतुओं की धूपछांह से परिचित कराकर उन्हें फल-फूल का सेवन, पालन-पोषण, चयन और संग्रंथन सिखाता है, उसी प्रकार यहां रसोपासकों को नवरस की वाटिका में भ्रमण कराकर शिक्षा दी जाती है। कच्छ के महाराव का सिंहासन भुज में है, किन्तु कच्छ के महाराव का कीर्ति मुकुट तो कच्छ की पाठशाला है।"

व्रजभाषा पाठशाला में पढ़े हुए जिन कुछ कवियों की कीर्ति-पताका के विवरण उपलब्ध हुए हैं उनमें मायाराम चौहाण के पुत्र फकीरचन्द्र, लाल, कीर्तिकुशल, गंगकुशल और लक्ष्मी कुशल के नाम प्रमुख हैं। अपने ग्रंथ 'नृत्यसुधारस मंजरी', में फकीरचन्द्र ने नृत्यशास्त्र का विवेचन किया था—

मायाराम चहुआन सुत फकीरचन्द यह कीन्हीं,
नृत्यसुधा रस मंजरी चातुर चिप लख लीन्ही।
जब लग रवि शशि शुअथ गासात समन्दर माहि,
नृत्य सुधारस मंजरी तब लगि थिर जग माहिं।

व्रजभाषा पाठशाला में भट्टारक की उपाधि वंशानुगत रूप में देने की परंपरा डाली गयी थी। फलतः आचार्य कनककुशल के बाद उनके शिष्य कुंवरकुशल पाठशाला के प्रधानाचार्य बने। उन्होंने काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। उनके लिखे हुए यों तो आठ ग्रंथ प्रचलित हैं, जिनके नाम हैं—लखपति मंजरी, (यह मंजरी और यह ग्रंथ कनककुशल के इसी नाम के ग्रंथ से भिन्न हैं), पारसपति नाममाला, लखपति पिंगल, गौड पिंगल, लखपति जससिंधु, लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय, महाराव लखपति दुवावेत, माता नौ छन्द, किन्तु इनके अलावा कुंवरचन्द्र प्रकाश सिंह ने 'रागमाला' नामक एक अन्य ग्रंथ का भी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उल्लेख किया है, और इस प्रकार कुंवरकुशल के ग्रन्थों की संख्या नौ बतायी है। रागमाला में राग रागिनियों के स्वरूप तथा लक्षण दिए गये हैं उसमें दी गयी 'बरारी' रागनी का एक उदाहरण—

कानन में कुल है विराजे चार करनी को,
करके सु कंकन बजत मन भावने।
अलके हैं सीस परि फलके ललबानी की,
चीर है विचित्र हू और बीर छबि छावने।
अलि मन भाई सदा कंत सुखदाई सही,
ओपित अधिक सुर अनंग जगावने।
कहैं कुंवर ते लखलिंघ यासों रीझत हैं,
विदित 'बरीरी' याके बोल हैं सुहावने।

कुंवरकुशल के पश्चात भट्टारक की परंपरा में जो अन्य आचार्य हुए हैं उनके नाम हैं—वीर कुशल, जय कुशल, धर्म कुशल, वल्लभ कुशल तथा जीवन कुशल। किन्तु महाराव प्रागमलजी द्वितीय (सन् १८६०) के समय में पाठशाला के भट्टारक पद के लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिला। प्रागमलजी कच्छ में शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार करना चाहते थे और उन्होंने न केवल कच्छ में अनेक स्कूलों की स्थापना की बल्कि अनेक छात्रों को छात्र-वृत्ति देकर कच्छ के बाहर अध्ययन के लिए भेजा। स्वभावतः वह ब्रजभाषा पाठशाला के स्तर तथा स्वरूप को भी बनाये रखना चाहते थे। अस्तु भट्टारक की वंशानुगत परंपराओं में उपयुक्त व्यक्ति न मिलने पर उन्होंने वह परंपरा तोड़ दी और ब्राह्मण राज्य गुरु श्री प्राणजीवन त्रिपाठी को प्रधानाचार्य नियुक्त किया। प्राणजीवन त्रिपाठी ने 'काव्य प्रभाकर किंवा रुकमनी हरन' ग्रंथ की रचना की थी। उनके बारे में श्री गोविन्द गिल्लाभाई ने लिखा है—'प्राणजीवन त्रिपाठी श्रेष्ठ कवि थे। उनका रुक्मिनी हरण श्रेष्ठ एवं प्रौढ़ प्रबन्ध काव्य तो है ही, साथ ही साथ उसमें साहित्य शास्त्र के अनेक अंगों का भी निरूपण किया गया है। वह एक सफल आचार्य थे। उन्होंने अपनी शिक्षा द्वारा कई शिष्यों को अपने समकक्ष विद्वान् और कवि बना दिया था।'

श्री प्राणजीवन त्रिपाठी के शिष्यों में गोप, भैरवदान बेतजी, केशव हरसाह, हमीर आदि कवियों के नाम प्रख्यात हैं। गोप कवि ने भुज में स्थित 'हमीरसर' पर बावनी लिखी थी और उनसे प्रसन्न होकर तत्कालीन महाराव खेंगारजी ने उन्हें पाठशाला में शिक्षक के रूप में नियुक्त कर दिया था। भैरवदान बेतजी ने 'छंद विधि गति चंद्रिका', केशव हरसाह ने 'शब्द विभूषण' और हमीर ने 'शौर्य बावनी' नामक ग्रंथों की रचना की थी।

धीरे-धीरे इस पाठशाला की अवनति शुरू हुई। आचार्य के आपसी मतभेद, राज्य शासन में परिवर्तन तथा पाठशाला का खर्च चलाने की समस्या व इसकी अवनति के मुख्य कारण थे। पाठशाला की इमारतों में भी कई परिवर्तन हुए और अब तो उनमें से कोई भी अपने प्राचीन रूप में नहीं है। अब तो भुज में ब्रजभाषा पाठशाला की केवल स्मृतियां ही शेष हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज भाषा का चिट्ठी-पत्री साहित्य

बनवारी लाल पाठक

एम० ए० (हिन्दी संस्कृत, दर्शनशास्त्र) साहित्याचार्य, ज्योतिषाचार्य, सांख्ययोगाचार्य

पत्र शब्द का अर्थ पत्ता होता है। प्राचीन काल में, कागज के अभाव में भारतीय लोग, भूर्ज-पत्र, ताड़पत्र या अन्य वृक्षों के पत्तों पर अपनी चिट्ठियाँ लिखा करते थे। तभी से पत्ता वाचक पत्र शब्द चिट्ठी-पत्रियों का द्योतक बन गया। भारत में पत्र लेखन कला की सुदीर्घ और प्राचीन परम्परा मिलती है। संस्कृत और प्राकृत के काव्य, नाटक आख्यायिका, साहित्य और जातक ग्रन्थों में इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। उनमें कपोत, हंस आदि पक्षियों द्वारा पत्र-वहन के मनोरंजक वृत्तान्त भी हैं। मुगल काल में जब ब्रजभाषा समस्त उत्तर भारत की प्रमुख और प्रबुद्ध वर्ग की भाषा बन गई थी तब तक पत्र-वहन के साधनों में सुधार हो चुका था। पैदल हरकारे तथा घुड़सवारों द्वारा डाक ले जाने की व्यवस्था थी। उस समय पत्र लिखने की प्रथा पर्याप्त अंशों में चल पड़ी थी। संस्कृत के विद्वान् संस्कृत में पत्र लिखते थे, और प्रशासनिक पत्र फारसी में लिखे जाते थे, परन्तु जनसाधारण अपना पत्र-व्यवहार देसी भाषा ब्रज भाषा में ही करता था।

यद्यपि ब्रजभाषा के प्राचीन पत्र अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी प्राप्त पत्रों से तत्कालीन समाज के विचार और बोलचाल की भाषा का ज्ञान हो जाता है। ब्रजभाषा का प्राप्त चिट्ठी-पत्री साहित्य गद्य और पद्य दोनों में ही लिखा हुआ मिलता है। पद्य में लिखे हुए अनेक पत्र कर्णपरम्परा से प्राप्त होते हैं या पुस्तकों के अंक के रूप में विद्यमान हैं। ब्रजभाषा के पत्र मुख्यतः तीन प्रकार के हैं :—

१. श्रीमुख पत्रियाँ
२. व्यक्तिगत पत्र
३. राजकीय पत्र

श्रीमुख पत्रियाँ

धार्मिक सम्प्रदायों के आचार्य प्रवरों द्वारा अपने शिष्यों को लिखे गये पत्र श्रीमुख पत्रियाँ कहलाते हैं। इन पत्रियों में लम्बी चौड़ी भूमिका होती है जिसमें विशेषणों की लड़ी होती है तत्पश्चात् थोड़े से शब्दों में अभिप्राय कथन होता है। शिष्यों द्वारा प्रत्युत्तर स्वरूप भेजे गये पत्रों में भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है। पूज्यवाद आचार्यों के यशोल्लेख के उपरान्त पत्र लेखक की निज दैन्य भावना का प्रदर्शन इन पत्रों में पाया जाता है।

सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा लिखी जाने वाली 'श्रीमुख पत्रियों' का प्रारम्भ सिरनामे से होता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सिरनामा पत्र का भूमिका भाग है इसमें विशेषण बहुत शब्दावली का प्रयोग होता है, इसमें पत्र के प्रेषक और प्राप्तकर्ता का ही वर्णन पाया जाता है, सिरनामे में पत्र का उद्देश्य कथन नहीं होता है। श्री हित हरिवंश जी द्वारा १६वीं शताब्दी में अपने शिष्य विट्ठलदास को जो पत्र लिखा गया था उसमें सिरनामा इस प्रकार दिया गया है :—

"श्री सकल गुण संपन्न रसरीति वढावन चिरंजीव मेरे प्राणन के प्राण वीठलदास जोग्य लिखितं श्री वृन्दावन रजोपसेवी श्री हरिवंश जोरी सुमिरन वंचनों। जौरी सुमिरन मत्त रहौ। जौरी जो है सुख वरषत है। तुम कुशल स्वरूप हो। तिहारे हस्ताक्षर वारम्वार आवत हैं। सुख अमृत स्वरूप है। पत्री वांचत आनन्द उमड़ि चलै है। मेरी वुद्धि कौं इतनी शक्ति नहीं जो कहि सकौं पर तोहि जानत हौं।"

इन श्रीमुख मत्रियों में संस्कृत निष्ठ शब्दावली का प्रयोग मिलता है। धार्मिक पुट, सम्प्रदाय के इष्टदेव का स्मरण तथा उपदेशात्मक प्रवृत्ति इन पत्रियों की विशेषता है। पत्रों की भाषा से पद्यात्मकता का सहज आभास होता है श्री हरिवंश जी के इस पत्र में ये सभी प्रवृत्तियां स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं :—

"श्री वृषभानुनंदिनी जयति। जोग्य लिखितं श्री हरिवंश वीठलदास के कोटि अपराध में खेवी आगले पाछिले। वीठलदास मेरे प्राण हैं जो शास्त्र मर्यादा सत्य है और गुरु महिमा ऐसे ही सत्य है तो ब्रज-नव-तरुणि-कदम्व-चूडामणि श्री राधे तिहार स्थापे। गुरु मार्ग विषै अविश्वास अज्ञानी को होत है तातैं मर्यादा राखनौ तुम दोऊ सकल आनन्द वरसौ। वीठलदास कौ अहौ सींचनौ।"

निष्कर्षतः इन पत्रों में विशेषण बहुल सिरनामा, सम्प्रदाय-परक यत्किंचित विवरण और इष्टदेव के प्रति भक्तिभाव ही मिलता है। इनमें सामाजिक, राजनैतिक या व्यापारिक स्थितियों के विवरण की आशा करना व्यर्थ है।

पुष्टि सम्प्रदाय के कतिपय पत्र ऐसे हैं जिनमें प्रारम्भ का अंश संस्कृत में लिखा हुआ मिलता है तथा शेष पत्र ब्रजभाषा में लिखा गया है। १६वीं शताब्दी में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा लिखा गया पत्र इस तथ्य का साक्षी है। पत्र में लिखा हुआ है—

स्वति श्री विट्ठल दीक्षितानां धर्मसी वैष्णवेणु सायणकृष्णादासयाश्चाशिषः

"अपरंच तुम्हारे समाचार तुम्हारे पत्र तें पाये। सदा भगवत शरण रति रहिय ऐहिके दुख प्राप्ते हू मये भगवदीच्छा। (जानि) तादृशी निज करि भगवदाधीन अपुन हैं इह जाति के दुख न करनौ। स्वप्रभु चरणारविंद ऐहिके पारलौकिक जाति करि भजियहु किमधिकं।"

चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ वावन वैष्णवन को वार्ता आदि वार्ता साहित्य में गोस्वामियों और उनके शिष्यों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार की चर्चा मिलती है। वल्लभ सम्प्रदाय में ऐसे अनेक पत्रों का संग्रह है।

२. व्यक्तिगत पत्र

जन साधारण द्वारा लिखे हुए पत्र वैयक्तिक सम्पत्ति होने के कारण अधिक संख्या में नहीं मिल पाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी के एक वैयक्तिक ब्रजभाषा पत्र का अंश प्रस्तुत है।

"तुम्हारे पत्र खेपिया कासिद के हाथ समधियाने तें आयौ हो सो हम तुम पास पठयो है। जैसो

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Digitized by Sarayu Foundation Trust Collection, Lucknow

जाने तैसो उत्तर लिखियों। हम वारो पत्र हू तुमकों पठयो हैं पाछे जो तुम्हारो विचार होई सो करियो।"

सोलहवीं सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनमें बोलचाल की ब्रजभाषा का अनगढ़ रूप मिलता है। मुगल शासन के प्रभाव स्वरूप अरवी, फारसी के एकाध शब्द भी मिलते हैं। भाषा पंडिताऊपन लिए हुए है तथा व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी हैं। पत्रों की लेखन की विधि की एक विशिष्ट शैली है; सभी पत्र प्रायः उस शैली में ही मिलते हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के कारण कृत्रिमता आ गई है। परंतु भाषा भावों के संवहन में सक्षम है। श्री मुख पत्रियों में पत्र-लेखन की व्यवस्थित शैली के दर्शन होते हैं। जनसाधारण द्वारा लखित पत्रों में विभिन्न शैलियों का प्रयोग हुआ है।

३. राजकीय पत्र

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक ब्रजभाषा में पत्र लिखे जाते रहे हैं। अवध के एक राजकुमार ने सं० १८६८ में मथुरा के अपने तीर्थ पुरोहित को एक पत्र लिखा था। यह पत्र ब्रजभाषा के तत्कालीन स्वरूप के ज्ञान के लिए प्रस्तुत है :—

"सिद्धि श्री सर्व उपमा जोग्य श्री मथुरा सुथान श्री प्रोहित वेणीराम वा नंदराम जोग्य लिखी सिद्धि श्री महाराज कुंवर गजसिंह जू को पाइलागव वंचनों। आगे आपु जू के समाचार सदा नीके चाहिये। आपकी कृपा ते इहाँ छेम हैं वहुत दिनान ते कोई चिट्ठी नहीं आई सो अइसौ तुमको न चहिये। इहां अपन। घर को वास्ता जानिके चिठी पत्री हमेसा लिखत रहियो। अग्रे कि वहुना। मिती कुआर सुदि १५ वुधवार संवत १८६८।

धौलपुर नरेश के पुस्तकालय से भी कुछ प्राचीन पत्र प्राप्त हुए हैं। एक पत्र का कुछ अंश नीचे उद्धृत है :—

"सिद्धि श्रीराम महाराज को पाइलागव वंचने? पत्र नट प्रापौ सो वहुत दिनरैन गए हैं। मेह हमारे ग्राम मे वरसो हतो जाते गामिन गऊ वह गई हति।

कुछ पत्र पद्य में भी लिखे मिलते हैं। डुमराव (शाहावाद) के राजा नारायण मल्लदेव के द्वितीय पुत्र श्री प्रवलशाह द्वारा लिखा हुआ पद्यवद्ध पत्र प्राप्त है। आप एक अच्छे कवि थे। एक बार उन्हें औरंगजेव ने वन्दी वनाकर दिल्ली वुला लिया था। घर पर वे अपने दो पुत्रों को रामपति नामक मित्र के संरक्षण में छोड़ गये थे। पत्र का कुछ अंश नीचे उद्धृत है :—

कुसल इहाँ कुो जैसो जानत हौ नीके तुम, कुसल तुम्हारो रामा भारती जू चाहिये।
वालक दोऊ तो तुम्हें सौपे हैं पढ़ायो जू, खाकी चित्त छोड़ सों सुनावैं हम का कहिये।
ज्यों ज्यों डर आवत है होत हैं संताप हिए, को है हितू मेरौ लिखें हम जाहिये।
भाई अनैक अधिकारी द्विज दासीदास, लेत न खबरि दुख में न हित ताहिये।

अधिक कहौं हम क्यों लिखे दुख की वात वनाय।
वाँचत पैहो दुख मनहि, ताते कह्यो न जाय।
ज्यों क्यों हूँ विधि वाम तें तुच्छ वचैगो सीस।
पुनि पायन तर आइ है कृपा करहि जो ईस।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नहि अवलम्ब रह्यौ कछू, रही आस एक आय।
दई असीखा रावरी, ह्वै है वहै सहाय।
हित अनहित दोऊ बिपति में सहज परत हैं चीन्ह।
कर्या सिन्धु छोड़ाई है, गजमोचन जिन कीन्ह।

ब्रजभाषा में लिखित अधिकांश पत्र धार्मिक हैं, इन पत्रों से तत्कालीन परिस्थितियों पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है सम्प्रदायों के सेवक व्यापारी थे। वे देशी विदेशी व्यापारियों के सम्पर्क में अवश्य आते होंगे। उन्होंने अपने पत्रों में तत्कालीन स्थिति का वर्णन जरूर दिया होगा परन्तु दुर्भाग्य से ऐसे पत्र अप्राप्य हैं। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में १०६ वीं वार्ता में गोसाई जी के आदेश से एक और दस रुपये की हुंडी दिये जाने का निर्देश है। वार्ता में इस प्रकार लिखा है:—

"तब अधिकारी ने श्री गुसाईं जी सों विनती कीनी महाराज आपकों ब्रजवासी सूरत पठयो हतो सो पत्र तथा हुंडी तीसरे दिन ले आयो है। तब श्री गुसाईं जी पत्र वांचिके देखें तो तामें वैष्णवन ने समाचार लिखे हते सो सब जाने।"

ब्रजभाषा गद्य साहित्य के विकास में चिट्ठी-पत्री साहित्य के योगदान की समीचीन जानकारी के लिए महत्वपूर्ण पत्रों का संकलन करना परम आवश्यक है। इस हेतु धार्मिक सम्प्रदायों के ग्रन्थागारों, राजाओं के ग्रन्थागारों तथा वैयक्तिक ग्रन्थागारों की छानबीन वांछनीय है। यदि ब्रजभाषा में लिखे मुगलकालीन व्यापारियों, शिल्पियों, पर्यटकों और राजनीतिज्ञों के पत्र अनुसंधान करने के उपरान्त प्राप्त हो सकें तो तत्कालीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है और ये पत्र मार्कोपोलो, बर्नियर, टेवर्नियर, बावरी, हटन आदि विदेशी यात्रियों के विवरणों से भी अधिक मूल्यवान सिद्ध हो सकते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुखदेव कृत वाणिज्य नीति

डा० महेन्द्र कुमार

एम० ए० पी-एच० डी०, डी० लिट

भारत की अन्य प्राचीन भाषाओं के समान व्रजभाषा का यह दुर्भाग्य रहा है कि सुरक्षित न रह सकने के कारण इसके अनेक ग्रन्थ-रत्न नष्टप्राय हो गये और आज वे नाम-मात्र के लिए शेष हैं। मध्यकाल के अन्तर्गत एक ऐसा समय भी था जब यह भाषा समग्र भारत की काव्य-भाषा थी—प्रत्येक प्रान्त अथवा क्षेत्र का निवासी अपनी मातृभाषा अथवा बोली को छोड़कर इसमें कविता करना अपने लिए गौरव की बात समझता था। यही कारण है कि इसमें केवल काव्य की ही रचना नहीं हुई कविता से इतर उपयोगी साहित्य की भी रचना हुई—धर्म, दर्शन, ज्योतिष, गणित, वैद्यक, कृषि, शकुन-विचार आदि विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ आज पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय सम्बन्धी ग्रंथ भी इस भाषा में लिखे गये होंगे; कारण जन-साधारण के बीच इस व्यवसाय की चर्चा भी प्रायः होती ही रहती थी। इस बात के प्रमाण घाघ की अनेक उक्तियों में देखने के लिए मिलते हैं; यथा—

(१) उत्तम खेती मध्यम बान। अधम चाकरी भीख निदान।

(२) उधार काढ़ि ब्यौहार चलावै, छप्पर डारै तारौ।
सारे के संग बहिनी पठवै, तीनिनु कौ मुंह कारौ॥

केवल घाघ ही नहीं, व्रजभाषा के रससिद्ध कवि भी वाणिज्य-व्यवसाय सम्बन्धी अनेक बातों को अपनी रचनाओं के अन्तर्गत उपमानों के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। सूरदास की गोपियाँ उद्धव को बड़ा व्यापारी प्रमाणित करने के लिए जहाँ व्यापारियों के लोकप्रसिद्ध क्रिया-व्यापारों को अप्रस्तुतों की सहायता लेती हैं,[1] वहाँ कविवर विहारीलाल वाणिज्य की प्राविधिक बातों को अन्यन्त कौशल के साथ ग्रहण करते हैं—

---

१. दे०—आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञात जोग की ब्रज में आनि उतारी॥
फाटक दै कै हाटक माँगत, भोरौ निपट सुधारी।
धुरही तें खोटौ खायौ तें लिये फिरत सिर भारी॥
इनकें कहै कौन उहकावै, ऐसी कौन अनारी।
अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै, खारे कूप कौ बारी॥
ऊधौ जाहु सवारे ह्याँ तें, बेगि गहरु जनि लाबहु।
मुख-मागौ पैहौ सूरज-प्रभु, साहुहि आनि दिखावहु॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

(१) कुटिल अलक छटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु॥
लोभ लगे हरि रूप के, करी साँटि जुरि जाइ।
हौं इन बेची बीच हीं, लोइन बड़ी बलाइ॥

अस्तु, ब्रजभाषा में लिखा हुआ वाणिज्य-व्यवसाय सम्बन्धी एक स्वतंत्र ग्रंथ भी हमारे देखने में आया है। इसका नाम है 'वणिक-प्रिया' अथवा वाणिज्य-नीति' और इसके लेखक हैं सुखदेव नामक कोई कायस्थ। इसका रचना-काल सं० १७१७ वि० है। इसमें निजी अनुभव के आधार पर व्यापार सम्बन्धी अनेक नुस्खे बताये गये हैं। स्वयं कवि ने दावा किया है कि मैंने साठ वर्ष के अनुभव के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की है; जो इसके अनुसार व्यापार करेगा उसे घाटा नहीं होगा—

कवि सीधे संवत्सर साठ।
एहि मत चलै न परिहै घाट॥

'वाणिज्य-नीति' के आरम्भ में व्यापारियों—विशेषतः अनाज के व्यापारियों को सचेत करते हुए लेखक ने स्पष्टतः कहा है कि व्यापारी को यह मानकर चलना चाहिए कि वर्ष के बारहों मासों में कभी भी एक-सा व्यापार नहीं चलता—कुछ महीने ऐसे होते हैं जिनमें मंदी रहती है और कुछ ऐसे जिनमें "जिवारौ" अर्थात् महर्घ्यता—

कातिक चैत असाढ़ गनि गुनि निधरक ह्वै बैठि।
ये तीनों मंदे सदा, साहु जिवारौ जेठ॥

इसी प्रकार जो साहूकारी करते हैं उनके लिए उसका परामर्श है कि आषाढ़, श्रावण और भाद्रपद इन तीन मासों में (जबकि कृषक को कृषि के लिए धन की आवश्यकता होती है) वे लोग उधार पर धन दें और आश्विन तथा कार्तिक मासों में (जबकि धान्य घर में आने लगता है) अपने धन की उगाही करें—

काढ़ौ दाम असाड़ में सावन भादौं साहु।
कातिक क्वार किसान के द्वारे बैठि उगाहु॥

इसी सम्बन्ध में उन्होंने एक अन्य बात व्यापारियों के लिए यह कही है कि चूंकि भाद्रपद में अनाज सामान्यतः मन्दा रहता है और फाल्गुन मास में अत्यन्त महर्घ्य, अतः इनमें उसका क्रमशः क्रय और विक्रय किया जाना चाहिए—

भादौं माँहि अन्न ऐंचिए।
भागुन बखत देखि बेंचिए॥

कहना न होगा कि व्यापारियों के लिए यह परामर्श जितना महत्वपूर्ण है, उससे कहीं अधिक महत्त्व एवं तत्त्व की बात यह कही है कि जिस समय किसी वस्तु की मंदी (=सुकालु) हो अथवा उसका अकाल हो तो उसके ठीक छः मास पश्चात् निश्चय ही विपरीत स्थिति होगी—अर्थात् उसकी महर्घ्यता अथवा मन्दी, अतः व्यापारियों को यह तथ्य ध्यान में रखकर भड़सार करने और निकालने का निश्चय करना चाहिए—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सस्तो वस्तु मँहगी हुए मँहगी वस्तु सुकाल।
छठएँ मास फिरि आइहै यह सुकाल यह काल॥
यह सुकाल यह काल दोऊ जब आड़ौ।
वस्तु जिबारी बेंचि ऐंचि मंदी भरि भाँडौ॥
कहै सीख सुखदेव सहर सिंघासन हस्ती।
तहाँ बैठि मत बेंचि साहु सैंथो सब सस्ती॥

किन्तु यह नियम साधारण समय के लिए है। यदि ऋतु-वैपरीत्य के कारण खेती नष्ट हो जाय तो प्रत्येक दशा में महर्घ्यता ही होगी—

बरखा फागन की असुभ, अरु कुआरै जल जाइ।
बे बँध अन्न गदन में हर बिलान लगि जाइ॥
हरबिलान लगि जाइ कुहर तिल तिली सतावै।
राहर चनै तुसार धुंध महुआ दुख पावै॥
मँहगे जे उतपात परे खेती जरै परखा।
अवगुन गनहि न जाइ कहत पंडित बिख बरखा॥

इसी प्रसंग में व्यापारियों के लिए उन्होंने यह चेतावनी भरा परामर्श भी दिया है कि चूंकि अकाल एक अथवा दो वर्ष तक ही रहता है और दूसरे प्रति छः मास के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन होता रहता है, अतः व्यापारियों को अधिक लालच नहीं करना चाहिए—यदि थोड़ा लाभ भी मिल रहा हो तो उसे तुरन्त प्राप्त कर लेना चाहिए—

एक साल सूखा उभै मतौ मतन कौ मेर।
या सुकाल या काल कौ छठें महीना फेर॥
दियौ न फेरिय द्वार तें महामतौ कबि देइ।
संपति बाढ़ै न तु घटै लगन लाभ जौ लेइ॥
वस्तु बेचिए हाल पाल कबहूँ जनि राखौ।
नफ़ा दई जिहि वस्तु, वस्तु पर पैरवौ ताखौ॥
बैपारी मत मानि बहुत मैं सुनौ गँवाए।
दूने ह्वैहैं कालि आजु गनि लेहु सवाए॥

व्यापार में भड़सार का सर्वाधिक महत्त्व है। किन्तु भड़सार कब करनी चाहिए, किस वस्तु की की जानी चाहिए तथा वह वस्तु कैसी हो—इन तीनों बातों का जो व्यापारी ध्यान रखता है उसे सदैव लाभ होता है और जो इनमें कहीं भी चूक जाता है, वही घाटा उठाता है। सुखदेव जी का कहना है कि इन सात वस्तुओं में कभी घाटा नहीं हो सकता—

कौदौं गोहूँ नौन गर महुआ तिली कपास।
सात साहु सुखदेव कह ताकों करौ प्रकास॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कारण, ये घर-रसोई के अनिवार्य पदार्थ हैं। अपने इसी मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए तिली के विषय में वे कहते हैं—

तेल न बिचलै एक तिल तेल जिया कौ हाथ।
तिली तेरहौं रतन है, सेंथ कहत नरनाथ॥

सी प्रकार नमक के महत्त्व को बताते हुए वे कहते हैं—

और वस्तु लीजै नहीं, लीजै लरि-भिरि नौन।
नौन न कबहूँ छाँडियै होइ एक कौ पौन॥
यह मत जिन बाहर करौ कही कान लगि जात।
लीजै नौन सुकाल सब नफा अधिक दै जात॥

किन्तु उक्त सातौं वस्तुओं में जो सर्वाधिक सस्ती हो उसकी भड़सार सबसे पहले की जानी चाहिए—

सस्ती वस्तु जो मिलहिं बजार।
सात सु करन कही भड़सार॥

जहाँ तक भड़सार की वस्तु के गुण का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में वाणिज्य-नीतिकार बल देते हुए कहते हैं कि व्यापारी इस बात का विशेष ध्यान रखे कि अच्छी वस्तु ही भड़सार में रखी जाय; कारण एक तो वह ग्राहक को अपनी ओर अधिक आकृष्ट करती है और दूसरे महँगी भी बिकती है। उदाहरण के लिए गुड़ किस प्रकार का न भरा जाय तथा कैसा होना चाहिए यह बताते हुए वे कहते हैं—

कानौ कारौ साँवरौ साहु न सेंथि चिपारु।
रूखौ सूखौ ऊजरौ लीजौ दाना दारु॥

आगे, भड़सार में भरी गई उक्त वस्तुओं में से किसे कब बेचा जाय, यह रहस्य भी उन्होंने बड़े कौशल के साथ समझाया है। गुड़ और तिली के सम्बन्ध में उनका यह कथन द्रष्टव्य है—

गुर सेंथौ सौंदौ सदा सुगरु बताई धाम।
कमी कातिकै जानियौ लै फिरि करियौ दाम॥
दोउ पिया मानी तिली कहि सुकाल सुखदेव।
करौ रतन या रतन पर कर डराविनौ लेव॥
सूखि सवाई जाति है मंदी मिलै तौं ऐंचि।
औनौ डारि कनागते देखि दिवारी बेंचि॥

इसी प्रकार गेहूँ बेचने के लिए वे चैत्र और कार्तिक—इन दो मासों को सर्वाधिक उपयुक्त बताते हैं—

आठ पहर चौंसठ घरी इह रितु बारह मास।
गोहूँ नाज बजार में सवा गाहकी पास
चैत कातिकै बेचियै, मंदौ जिन अकुलाइ।
बिकी कौ दिन बाहरौ जाकौ बिकतौ पाइ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसके साथ एक सामान्य बात उन्होंने यह बताई है कि ज्येष्ठ मास ऐसा है कि उसमें प्रत्येक वस्तु महर्घ्य होती है, अतः इस मास में भड़सार की वस्तु को बेचकर लाभ अवश्वमेव कमाया जा सकता है—

तीनि लोक चारिहु दिसा, सुरनर एक विचार।
वस्तु जिवारी जेठ में पावस की दरकार॥
ग्रीषम रितु बरसै लछमी।
बेचौ वस्तु न आवै कमी॥

यदि इस काल में चूक हो जाती है तो कुछ समय तक मंदी रहने के कारण घाटा-ही-घाटा है—

वस्तु बेचियै जेठ में फिरि मंदौ ह्वै जाइ।
क्वार कढ़ै सागर परै तब कहुँ कछू बिकाइ॥

कारण, वर्षाकाल में ग्राहक सामान्यरूप से खरीदारी कम ही करता है—

कढ़ै न कोऊ बाहरौ कीच देखि दुख पाइ।
जल बरसै ज्वाला बुझै बिक्री गई सिराइ॥
चौमासे सुखदेव कहि ठहरि गाहकी जाइ।
वस्तु न कबहूँ बेचिये गहक बियौ बलाइ॥

खरीदा हुआ माल कहां और किस प्रकार बेचा जाइ, इस सम्बन्ध में सुखदेव ने दो बातें और बताई है। इनमें एक तो बड़े व्यापारियों के लिए है और दूसरी उनके लिए जो 'बंजी' करते हैं—स्थान-स्थान पर स्वयं जाकर अपने सीमित माल को बेचते फिरते हैं। वे कहते हैं कि बड़े व्यापारी को अपने घर से कम-से-कम एक कोस की दूरी पर जाकर किसी बड़े नगर में भाव का पता लगाना चाहिए और ठीक भाव पता लगने पर तुरंत ही अपना माल बेच देना चाहिए। बंजी करने वाले को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह बंजी करने के लिए किसी बड़े नगर में न जायें। उनके इस कथन का उद्देश्य स्पष्ट है कि बड़े नगर में उसे बड़े व्यापारियों से टकराना पड़ेगा और स्वभावतः घाटा हो जायगा। उक्त दोनों प्रकार के व्यापारियों के लिए उनका संदेश इस प्रकार है—

कोस एक आगै हैं जाउ। देखौ सुनौ नगर कौ भाउ।
वस्तु बजार माँझ डारिये। ताते ताउ सु बेंचि डारिये।
बनजारे से कहत हौं जब जब लायै जाइ।
बेंचत वस्तु बजार में जकें सु टोटा खाइ॥

ये बातें तो रहीं व्यापार में भड़सार करने तथा माल बेचने आदि सम्बन्धी। इसके अतिरिक्त सुखदेव ने दो बातें ध्यान में रखने के लिए और बताई हैं। इनमें प्रथम तो यह कि व्यापार में 'साझा" कमी न करे, कारण इसमें मित्र भी शत्रु हो जाता है—साझे का व्यापार प्रायः चलता नहीं है—

साझै दरज पलक में मित्र सत्रु ह्वै जाइ।
वस्तु अलहनैं तें गई सूंघि सूंघि भुस खाइ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साझौ सदन अधर्म को निस दिन पाप प्रवेस।
नाहि प्रतीति तौ देखिकर कहत सहस मुख सेस॥
साझौ जौ कोऊ करै दै परमेसुर बीच।
लोभ नसैनी नरक की, जहँ छिछलौ तहँ कीच॥

दूसरी बात यह है कि भले ही अधिक लाभ हो रहा हो फिर भी उधार कभी न दे। उधार देने से पूंजी और ब्याज तो जाती ही है, साथ में ग्राहक का दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है; इसके अतिरिक्त उगाही के लिए चक्कर व्यर्थ लगाने पड़ते हैं—

मुख सूखै माथौ चढ़ै भटकत टूटैं पाइं।
दुख उधार कौ जानियै करन तगादौ जाइ॥
हाल माल सबही रही रह्यौ न येकौ तार।
पूंजी गई अरु बैर भौ, जौ पै दियौ उधार॥
भूखन देत उधार घर बचन ब्याज-बिस्वास।
जान देत है खाटको करत पेट की आस॥
घर छूटै छूटै गली छूटै सहर बजार।
दरसन ही दुरलभ करै ऐसौ अवम उधार॥

यदि कोई कहे कि कागज कराके उधार दिया जाय तो वह भी ठीक नहीं; कारण उधार खानेवाला उसे कभी भी झुठला सकता है—

दै झूठे मीठे बचन कह उधार लै खाइ।
कोठन कोठन ज्यौ दुरै फिरिकै दियौ न जाइ॥
फिरिकै दियौ न जाइ भीर सौं करै भजाई।
उपद न कोऊ देइ ऐंचि माँगौ तौ लराई॥
अपनौ दै बुरुआस करै नीचै में रूठे।
कछु अंतर पर गए कहत ये कागद झूठे॥

अन्त में दो महत्त्वपूर्ण बातें और हैं जो 'वाणिज्यनीति' के अन्तर्गत कही गई हैं। प्रथम तो यही कि व्यापारी कभी भी आभूषण न गढ़ाये; और यदि गढ़ा भी ले तो उन्हें कभी रहन न रखे, कारण—

आभूषन न गढ़ाइयै पुंजी बिरानी पाइ।
गहनौ जिन गहनौ धरौ बूड़ि ब्याज में जाइ॥

वास्तव में आभूषण गढ़ाना व्यापारी के लिए हाथी बाँधने के समान है, क्योंकि इसमें हानि ही हानि है, लाभ प्रायः कम ही होता है—

हाथी गहनौ बनिक कौ बरजनीक नित सीख।
विद्या बाँभन भाट की पढ़ै तौ माँगै भीख॥

दूसरी बात यह है कि व्यापारी कभी भी अपने घर में घोड़ा बाँधकर न रखे—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इसके साथ एक सामान्य बात उन्होंने यह बताई है कि ज्येष्ठ मास ऐसा है कि उसमें प्रत्येक वस्तु महर्घ्य होती है, अतः इस मास में भड़सार की वस्तु को बेचकर लाभ अवश्वमेव कमाया जा सकत। है—

तीनि लोक चारिहु दिसा, सुरनर एक विचार।
वस्तु जिवारी जेठ में पावस की दरकार॥
ग्रीषम रितु बरसै लछमी।
बेचौ वस्तु न आवै कमी॥

यदि इस काल में चूक हो जाती है तो कुछ समय तक मंदी रहने के कारण घाटा-ही-घाटा है—

वस्तु बेचियै जेठ में फिरि मंदौ ह्वै जाइ।
क्वार कढ़ै सागर परै तब कहुँ कछू बिकाइ॥

कारण, वर्षाकाल में ग्राहक सामान्यरूप से खरीदारी कम ही करता है—

कढ़ै न कोऊ बाहरौ कीच देखि दुख पाइ।
जल बरसै ज्वाला बुझै बिक्री गई सिराइ॥
चौमासे सुखदेव कहि ठहरि गाहकी जाइ।
वस्तु न कबहूँ बेचिये गहक बियौ बलाइ॥

खरीदा हुआ माल कहां और किस प्रकार बेचा जाइ, इस सम्बन्ध में सुखदेव ने दो बातें और बताई है। इनमें एक तो बड़े व्यापारियों के लिए है और दूसरी उनके लिए जो 'बंजी' करते हैं—स्थान-स्थान पर स्वयं जाकर अपने सीमित माल को बेचते फिरते हैं। वे कहते हैं कि बड़े व्यापारी को अपने घर से कम-से-कम एक कोस की दूरी पर जाकर किसी बड़े नगर में भाव का पता लगाना चाहिए और ठीक भाव पता लगने पर तुरंत ही अपना माल बेच देना चाहिए। बंजी करने वाले को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह बंजी करने के लिए किसी बड़े नगर में न जायें। उनके इस कथन का उद्देश्य स्पष्ट है कि बड़े नगर में उसे बड़े व्यापारियों से टकराना पड़ेगा और स्वभावतः घाटा हो जायगा। उक्त दोनों प्रकार के व्यापारियों के लिए उनका संदेश इस प्रकार है—

कोस एक आगै हैं जाउ। देखौ सुनौ नगर कौ भाउ।
वस्तु बजार माँझ डारिये। ताते ताउ सु बेंचि डारिये।
बनजारे से कहत हौं जब जब लायै जाइ।
बेंचत वस्तु बजार में जकें सु टोटा खाइ॥

ये बातें तो रहीं व्यापार में भड़सार करने तथा माल बेचने आदि सम्बन्धी। इसके अतिरिक्त सुखदेव ने दो बातें ध्यान में रखने के लिए और बताई हैं। इनमें प्रथम तो यह कि व्यापार में 'साझा" कमी न करे, कारण इसमें मित्र भी शत्रु हो जाता है—साझे का व्यापार प्रायः चलता नहीं है—

साझै दरज पलक में मित्र सत्रु ह्वै जाइ।
वस्तु अलहनैं तें गई सूंघि सूंघि भुस खाइ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साझौ सदन अधर्म को निस दिन पाप प्रवेस।
नाहि प्रतीति तौ देखिकर कहत सहस मुख सेस॥
साझौ जौ कोऊ करै दै परमेसुर बीच।
लोभ नसैनी नरक की, जहँ छिछलौ तहँ कीच॥

दूसरी बात यह है कि भले ही अधिक लाभ हो रहा हो फिर भी उधार कभी न दे। उधार देने से पूंजी और ब्याज तो जाती ही है, साथ में ग्राहक का दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है; इसके अतिरिक्त उगाही के लिए चक्कर व्यर्थ लगाने पड़ते हैं—

मुख सूखै माथौ चढ़ै भटकत टूटैं पाइं।
दुख उधार कौ जानियै करन तगादौ जाइ॥
हाल माल सबही रही रह्यौ न येकौ तार।
पूंजी गई अरु बैर भौ, जौ पै दियौ उधार॥
भूखन देत उधार घर बचन ब्याज-बिस्वास।
जान देत है खाटको करत पेट की आस॥
घर छूटै छूटै गली छूटै सहर बजार।
दरसन ही दुरलभ करै ऐसौ अधम उधार॥

यदि कोई कहे कि कागज कराके उधार दिया जाय तो वह भी ठीक नहीं; कारण उधार खानेवाला उसे कभी भी झुठला सकता है—

दै झूठे मीठे बचन कह उधार लै खाइ।
कोठन कोठन ज्यौ दुरै फिरिकै दियौ न जाइ॥
फिरिकै दियौ न जाइ भीर सौं करै भजाई।
उपद न कोऊ देइ ऐंचि माँगौ तौ लराई॥
अपनौ दै बुरुआस करै नीचै में रूठे।
कछु अंतर पर गए कहत ये कागद झूठे॥

अन्त में दो महत्त्वपूर्ण बातें और हैं जो 'वाणिज्यनीति' के अन्तर्गत कही गई हैं। प्रथम तो यही कि व्यापारी कभी भी आभूषण न गढ़ाये; और यदि गढ़ा भी ले तो उन्हें कभी रहन न रखे, कारण—

आभूषन न गढ़ाइयै पुंजी बिरानी पाइ।
गहनौ जिन गहनौ धरौ बूड़ि ब्याज में जाइ॥

वास्तव में आभूषण गढ़ाना व्यापारी के लिए हाथी बाँधने के समान है, क्योंकि इसमें हानि ही हानि है, लाभ प्रायः कम ही होता है—

हाथी गहनौ बनिक कौ बरजनीक नित सीख।
विद्या बाँभन भाट की पढ़ै तौ माँगै भीख॥

दूसरी बात यह है कि व्यापारी कभी भी अपने घर में घोड़ा बाँधकर न रखे—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhavan Vani Trust Collection, Lucknow

घर घोरौ नहिं बानिये। दुख दलिद्र आयो जानिये॥
लंका सौ गढ़ लैहै खाइ। सुत कों सीख देति है माइ॥

और यदि मूल से बाँध भी ले तो हानि उठाकर भी बेच दे और पुनः लेने का नाम न ले—

बेचौ पाँच पचास कौ पुनि फिरि लीजौ नाइ।
घोरौ घरै न बाँधिये सब जागीर खिपाइ॥

कहने का अभिप्राय यही है कि ब्रजभाषा-साहित्य के अन्तर्गत अन्य विषयों के समान वाणिज्य-व्यापार से सम्बद्ध बातें अप्रस्तुतों के रूप में ही नहीं कही गईं, अपितु इन पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे गये। किन्तु या तो वे नष्ट हो गये या फिर अभी तक प्रकाश में नहीं आये। यदि इनको एकत्र करने का प्रयत्न किया जाय तो निश्चय ही एतद्विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होंगे और ब्रजभाषा-वाङ्मय की समृद्धि बढ़ेगी। सुखदेव की 'वाणिज्य-नीति' तो इस शृंखला की मात्र एक कड़ी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लाख—एक चमत्कारी कवि

⊙

हरि मोहनलाल श्रीवास्तव

भामह, दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ आदि संस्कृत के काव्याचार्यों ने रीति-ग्रन्थों का विशाल भांड़ार प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों में रस, अलंकार, ध्वनि आदि का अत्यन्त रोचक विवेचन लक्षण और उदाहरण शैली में किया गया है। हिन्दी साहित्य में आचार्य केशवदास के पांडित्य ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। चिन्तामणि, भूषण, देव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, सेनापति, पद्माकर आदि इस परम्परा के प्रमुख कवि हुए हैं। इन कवियों ने शृंगार को 'रसराज' के रूप में प्रमुखता देते हुए काव्यांगों का गम्भीर विवेचन किया है। शान्ति के उस युग में रीतिकालीन साहित्य के सौरभमय वातावरण में विलासमयी मादकता सर्वत्र छा गई। कवियों ने स्त्री-सौन्दर्य के अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण में सारी सूझ-बूझ लगा दी। दूर की कौड़ी लाने में एक होड़ सी लग गई। कवियों की कलाप्रियता ने मधुरता और संगीतात्मकता की अनुपम सृष्टि की। उनकी लोकप्रियता कुछ ऐसी बढ़ी कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी 'नायक-नायिका भेद' की चर्चा में रस लेने लगा।

सुन्दर और मनोरम दृश्यों के अलंकारिक चित्रण में तथा चमत्कारपूर्ण कल्पना की उड़ान में रीतिकालीन कवि बेजोड़ हैं। दोहा, कवित्त और सवैया जैसे छोटे मुक्तक छन्दों में उनकी प्रतिभा ने अनूठा रस भर दिया है। काव्य-कला की दृष्टि से रीतिकाल चरमोत्कर्ष एवं सर्वांगीण विकास का युग था, इसमें सन्देह नहीं। बस एक ही दोष रीतिकालीन सृजन के लिये बहुत बड़ा है कि उसमें विरामदायिनी विलासिता थी, जगानेवाली चेतना नहीं।

मुसलमान कवि रसखान ने 'सवैया' छन्द में भक्ति-रस की मधुरता भरी थी—

'कोटिक हू कलधौत के धाम
करील की कुंजन ऊपर वारौं'

ठाकुर, घनानन्द तथा मतिराम जैसे कवियों ने इसी सवैया छन्द में शृंगार की मदिरा भरना प्रारम्भ किया, और समय के अनुरूप बदली हुई लोकरुचि ने उनकी प्रतिभा को प्रोत्साहन भी प्रदान किया। रसखान की रचना जहाँ 'स्वांतः सुखाय' थी, वहाँ शृंगारी कवियों की रचना इसी लोक की किसी 'सुजान' को रिझाने के लिये थी। ठाकुर कवि कहते हैं—

वा निरमोहिनि रूप की रासि
जंऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहि बार विलोकि घरी घरी
सूरति तो पहिचानति ह्वै है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

घर घोरौ नहिं बानिये। दुख दलिद्र आयो जानिये॥
लंका सौ गढ़ लैहै खाइ। सुत कों सीख देति है माइ॥

और यदि मूल से बाँध भी ले तो हानि उठाकर भी बेच दे और पुनः लेने का नाम न ले—

बेचौ पाँच पचास कौ पुनि फिरि लीजौ नाइ।
घोरौ घरै न बाँधिये सब जागीर खिपाइ॥

कहने का अभिप्राय यही है कि ब्रजभाषा-साहित्य के अन्तर्गत अन्य विषयों के समान वाणिज्य-व्यापार से सम्बद्ध बातें अप्रस्तुतों के रूप में ही नहीं कही गईं, अपितु इन पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे गये। किन्तु या तो वे नष्ट हो गये या फिर अभी तक प्रकाश में नहीं आये। यदि इनको एकत्र करने का प्रयत्न किया जाय तो निश्चय ही एतद्विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होंगे और ब्रजभाषा-वाङ्मय की समृद्धि बढ़ेगी। सुखदेव की 'वाणिज्य-नीति' तो इस शृंखला की मात्र एक कड़ी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लाख—एक चमत्कारी कवि

हरि मोहनलाल श्रीवास्तव

भामह, दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ आदि संस्कृत के काव्याचार्यों ने रीति-ग्रन्थों का विशाल भांड़ार प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों में रस, अलंकार, ध्वनि आदि का अत्यन्त रोचक विवेचन लक्षण और उदाहरण शैली में किया गया है। हिन्दी साहित्य में आचार्य केशवदास के पांडित्य ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। चिन्तामणि, भूषण, देव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, सेनापति, पद्माकर आदि इस परम्परा के प्रमुख कवि हुए हैं। इन कवियों ने शृंगार को 'रसराज' के रूप में प्रमुखता देते हुए काव्यांगों का गम्भीर विवेचन किया है। शान्ति के उस युग में रीतिकालीन साहित्य के सौरभमय वातावरण में विलासमयी मादकता सर्वत्र छा गई। कवियों ने स्त्री-सौन्दर्य के अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण में सारी सूझ-बूझ लगा दी। दूर की कौड़ी लाने में एक होड़ सी लग गई। कवियों की कलाप्रियता ने मधुरता और संगीतात्मकता की अनुपम सृष्टि की। उनकी लोकप्रियता कुछ ऐसी बढ़ी कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी 'नायक-नायिका भेद' की चर्चा में रस लेने लगा।

सुन्दर और मनोरम दृश्यों के अलंकारिक चित्रण में तथा चमत्कारपूर्ण कल्पना की उड़ान में रीतिकालीन कवि बेजोड़ हैं। दोहा, कवित्त और सवैया जैसे छोटे मुक्तक छन्दों में उनकी प्रतिभा ने अनूठा रस भर दिया है। काव्य-कला की दृष्टि से रीतिकाल चरमोत्कर्ष एवं सर्वांगीण विकास का युग था, इसमें सन्देह नहीं। बस एक ही दोष रीतिकालीन सृजन के लिये बहुत बड़ा है कि उसमें विरामदायिनी विलासिता थी, जगानेवाली चेतना नहीं।

मुसलमान कवि रसखान ने 'सवैया' छन्द में भक्ति-रस की मधुरता भरी थी—

'कोटिक हू कलधौत के धाम
करील की कुंजन ऊपर वारौं'

ठाकुर, घनानन्द तथा मतिराम जैसे कवियों ने इसी सवैया छन्द में शृंगार की मदिरा भरना प्रारम्भ किया, और समय के अनुरूप बदली हुई लोकरुचि ने उनकी प्रतिभा को प्रोत्साहन भी प्रदान किया। रसखान की रचना जहाँ 'स्वांतः सुखाय' थी, वहाँ शृंगारी कवियों की रचना इसी लोक की किसी 'सुजान' को रिझाने के लिये थी। ठाकुर कवि कहते हैं—

वा निरमोहिनि रूप की रासि
जऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहि बार विलोकि घरी घरी
सूरति तो पहिचानति ह्वै है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Brindavan Vatika Trust Collection, Lucknow

'ठाकुर' या मन की परतीति है,
जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिये,
इतनो तो विशेष कै जानति ह्वै है।

और मतिराम की मधुरता देखिये--

कुन्दन को रंग फीको लगै,
झलकै अति चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनी में
मंजु विलासन की सरसाई।
को बिनु मोल बिकात नहीं,
'मतिराम' लखे मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै,
त्यों त्यों खरी निखरै सो निकाई॥

और इन प्रख्यात शृंगारी कवियों की तुलना में ही 'लाख' नामक एक बुन्देलखंडी कवि की रचना-चातुरी देखिये। बेचारे 'लाख' को प्रचार और विज्ञापन की सुविधा नहीं मिल सकी। फलतः हिन्दी संसार में उन्हें बहुत ही कम जाना गया है। किन्तु उनकी सशक्त रचना उन्हें गौरव का स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है—

रेशम डोर कदम्ब की डार पै,
डारें हती वनिता पुर की।
गावत राग उछाह भरी,
मनो कोयल पूर रही सुर की।
दै मिचकी इत तें उतकौं,
कवि 'लाख' कहें फिरकै मुरकी।
झुक झौंकन झूला चढ़े जबहीं,
तब ठोकर ठोड़ीं लगै दुर की।

झूले की पैंगों के साथ लाख कवि बुन्देली नायिका की ठोड़ी में दुर अर्थात् नथ की ठोकर लगने का मोहक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

प्रतिभा किसी जाति की सम्पत्ति नहीं होती। 'लाख' उपनामधारी ये कवि महानुभाव पिछले युग में दतिया राज्य के अन्तर्गत नदी गाँव नामक कस्बे के एक ढीमर (कहार) परिवार में हुए थे। उनका नाम लछमन था। उनके पिता गंगाधर जी महाराज भवानीसिंह के समकालीन थे। उनका परिवार 'सुराहीवरदार' कहलाने के गौरव से विभूषित था। 'सुराहीवरदार' वे लोग कहलाते थे, जो नरेश के लिये मदिरा ढालने वाली सुराही लेकर चलते थे अथवा उसे अपने नियंत्रण में रखने के लिये विश्वासपात्र समझे जाते थे। इस प्रकार संस्कारों से लाख कवि राज-दरबार के शृंगारी वातावरण से सम्बद्ध थे। उन्होंने अपने काव्य द्वारा अच्छी पीयूष वर्षा की है—कोई-कोई बात तो लाख रुपये की कही है। इस प्रकार उनका उपनाम बहुत अंशों में सार्थक है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

'लाख' कवि ने 'रसालय' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। 'रसालय' श्रृंगार रस का श्रेष्ठ ग्रंथ है, जिसकी रचना-शैली अनुप्रासमयी है।लाख के छन्द पिंगलशास्त्र के अनुसार सुगठित हैं, और उनमें बुन्देली बोली का मोहक सौन्दर्य अपने सहज स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। सुन्दर सूझ के धनी-मानी लाख कवि के कुछ कवित्त तो बहुत ही सशक्त बन पड़े हैं। बिल्कुल अतिशयोक्ति न होगी, यदि यह कहाँ जावे कि उनके कुछ छन्द तो ख्यातिप्राप्त कवियों से भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। छन्दों की बानगी अपने आप में सबल प्रमाण है।

कवि के प्रकांड पांडित्य का परिचय कराने वाला 'नायिका भेद' सम्बन्धी एक छन्द दर्शनीय है।

"भाहत निहारति भा प्राची दिशि राती लखि,
कौतुक विचित्र कियो बोल अलिवृन्द है।
आधिन कौं सुरकीन, आधिन असुर कीन,
मथनी में, वारि डारि थाप लियो सिन्द है।
कहै कवि 'लाख' भेद परत न जान कछु,
कौन गुरु लोगन सौं सीखौ यह फन्द है।
विन्ध्याचल रई शेषनौतनी रुचिररचि,
लागी री मथनि आप बनिकै गुविन्द है।

लाख का 'षट-ऋतु वर्णन' भी अनोखा है—

'डाल तैं उचार स्वर बिगुल बजावै अलि,
कोकिलान मुरची सुजानै रीत जंगी है।
किंसुक तिलंग सो उमंग कवि 'लाख' भरै,
गोरा से गुलाब लिये पौन तेग नंगी है।
कुंद कचनार आम कहना अनार जुही,
चंपा और चमेली बेली फौज बहुरंगी है।
संगी में न भूपत है मान गढ़ भंगी जंगी,
तेग ऋतुराज करै वन कौं फिरंगी है।
कैधौं कूल जालन के पानिप बुझाइ कर,
मैन मरसान रोप कीनी फिर तीछी है।
तन में तनक लगै जागै कवि 'लाख' कहै,
रोम-रोम पीर होत जैसे डसे बीछी है।
दिल की दरज मेटे मिल मनमोहन सौं,
मान बैन मानबौ तिहारी सखी ईछी है।
विरहिन के बृन्दन कौं बधिक बसंत भयो,
त्रिविध समीर वेग बहत तिरीछी है।

वसन्त-वर्णन के इसी क्रम में एक अन्य छन्द भी दर्शनीय है—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"गुंजत सुभौंर पुंज कंज मंजु फूलन पै,
आवै दरसात जोर शोर पवन वाज कौ।
भनै कवि 'लाख' मैन मुख फरमान दियौ,
टोर जोर डार गढ़ चढ़ बड़ लाज कौ।
गाड़ी पर ठाडी करै कोकिल अलाप ऐन,
अब को सँभारै बीर, ऊधम जौ आज कौ।
भोरो रहो पल्ला अब कीजियो न गल्ला कहू,
बिरही मुहल्ला पै हल्ला ऋतुराज कौ॥"

सम्वत् १९०० के लगभग रचे गये 'रसालय' नामक इस ग्रन्थ में कुछ छन्द महाराज भवानीसिंह की प्रशंसा में भी थे। खेद है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका। लाख कवि मोठ निगासी महन्त निधान गिरि से प्रभावित थे। महन्त जी के रचे हुए कई ग्रन्थ बताये जाते हैं। 'रसालय' की पांडुलिपि भी संभवतः इन्हीं महन्तजी के संग्रह में रही। यदि यह प्रकाश में आ पाता तो कोई कारण न था कि लाख भी रीतिकालीन कवियों में विशिष्ट ख्याति न प्राप्त करते। इस प्रतिभाशाली कवि के सम्बन्ध में विशेष खोज की आवश्यकता है। बुन्देलखण्ड में दूर-दूर तक लोगों को लाख के कुछ छन्द अब याद हैं, और दतिया में एक खँडहर उनकी स्मृति सँजोये हुए है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के चार कवि

डा० रामगोपाल चतुर्वेदी
एम० ए० पी०-एच० डी०

नवनीत जी चतुर्वेदी

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक प्रतिभाशाली कवियों और साहित्य साधकों का उल्लेख नहीं है। मामूली लोग भी अपने हथकण्डों से इन इतिहासों में स्थान पा गए। सीधे-सादे व्यक्ति जिन्हें अपना ढोल पीटना नहीं आता, अज्ञात रहते हैं। महाकवि नवनीतलाल ब्रजभाषा के ऐसे ही कवि थे।

कविवर नवनीतलालजी के शिष्यों को यथेष्ट कीर्ति मिली। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि रत्नाकरजी उन्हें अपना गुरु मानते थे और नवनीतजी का रत्नाकर जी पर असीम प्रेम था। दैवयोग से नवजीत जी को अपने अंतिम दिनों में रत्नाकर जी की मृत्यु का समाचार मिला। रोग-शैया पर पड़ उन्होंने अपनी वेदना यों व्यक्त की थी—

"उत्तम अनन्य पुरुषोत्तम दुलारो और,
अग्रवाल-बंस बीच हंस-तन धारो हों।
कहै नवनीत नवनीत से हृदयवारौ,
कविता उजारौ कवि ग्रंथ रखवारौ हौ।
चातुरी को चूरन सु सूर रस माधुरीकौ,
अबला बिचारी ब्रज भाषा को सहारौ हौ,
ओज कर मुदित मनोज सों सम्हारौ भारौं,
बारो रतनाकर हमारो प्रानप्यारो हौ।"

नवनीतजी प्राचीन परिपाटी के श्रेष्ठ कवि थे; आचार्य थे। उनकी रचनाओं में मौलिक सूझ-बूझ के दर्शन होते हैं। उनकी अनेक पुस्तकें आजतक अप्रकाशित हैं। 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम रत्न', 'स्नेह शतक', 'कुब्जा पचीसी', 'गोपी-प्रेम-पीयूष-प्रवाह', 'नवनीतोत्सव संग्रह', 'रहिमन शतक', 'काव्य प्रकाश', 'मूर्ख शतक', और 'श्यामांगा वयवभूषण' आदि कृतियों में उनके कवित्व की उत्कृष्ट झांकी मिलती है। खेद है कि 'कुब्जा-पचीसी', 'रहिमन शतक', 'मूर्ख शतक' आदि को छोड़ उनके सभी ग्रंथ आज तक प्रकाश में नहीं आ सके। उनके स्फुट कवित्त-सवैये भी हजारों की संख्या में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। वृद्धावस्था में दृष्टि क्षीण होने पर नवनीत जी बोलकर ही लिखाया करते थे। यही कारण है कि उन फुटकर कवित्त-सवैयों का अब कोई पता नहीं। हां, उनके भक्तों को कुछ कवित्त-सवैया आज भी याद हैं।

नवनीतजी की कविता का रसास्वादन अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनों में बहुतों ने किया। इस

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"गुंजत सुभौंर पुंज कंज मंजु फूलन पै,
आवै दरसात जोर शोर पवन वाज कौ।
भनै कवि 'लाख' मैन मुख फरमान दियौ,
टोर जोर डार गढ़ चढ़ बड़ लाज कौ।
गाड़ी पर ठाडी करै कोकिल अलाप ऐन,
अब को सँभारै बीर, ऊधम जौ आज कौ।
भोरो रहो पल्ला अब कीजियो न गल्ला कहू,
बिरही मुहल्ला पै हल्ला ऋतुराज कौ॥"

सम्वत् १९०० के लगभग रचे गये 'रसालय' नामक इस ग्रन्थ में कुछ छन्द महाराज भवानीसिंह की प्रशंसा में भी थे। खेद है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका। लाख कवि मोठ निगासी महन्त निधान गिरि से प्रभावित थे। महन्त जी के रचे हुए कई ग्रन्थ बताये जाते हैं। 'रसालय' की पांडुलिपि भी संभवतः इन्हीं महन्तजी के संग्रह में रही। यदि यह प्रकाश में आ पाता तो कोई कारण न था कि लाख भी रीतिकालीन कवियों में विशिष्ट ख्याति न प्राप्त करते। इस प्रतिभाशाली कवि के सम्बन्ध में विशेष खोज की आवश्यकता है। बुन्देलखण्ड में दूर-दूर तक लोगों को लाख के कुछ छन्द अब याद हैं, और दतिया में एक खँडहर उनकी स्मृति सँजोये हुए है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के चार कवि

डा० रामगोपाल चतुर्वेदी
एम० ए० पी०-एच० डी०

नवनीत जी चतुर्वेदी

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक प्रतिभाशाली कवियों और साहित्य साधकों का उल्लेख नहीं है। मामूली लोग भी अपने हथकण्डों से इन इतिहासों में स्थान पा गए। सीधे-सादे व्यक्ति जिन्हें अपना ढोल पीटना नहीं आता, अज्ञात रहते हैं। महाकवि नवनीतलाल ब्रजभाषा के ऐसे ही कवि थे।

कविवर नवनीतलालजी के शिष्यों को यथेष्ट कीर्ति मिली। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि रत्नाकरजी उन्हें अपना गुरु मानते थे और नवनीतजी का रत्नाकर जी पर असीम प्रेम था। दैवयोग से नवजीत जी को अपने अंतिम दिनों में रत्नाकर जी की मृत्यु का समाचार मिला। रोग-शैया पर पड़ उन्होंने अपनी वेदना यों व्यक्त की थी—

"उत्तम अनन्य पुरुषोत्तम दुलारो और,
अग्रवाल-बंस बीच हंस-तन धारो हों।
कहै नवनीत नवनीत से हृदयवारौ,
कविता उजारौ कवि ग्रंथ रखवारौ हौ।
चातुरी को चूरन सु सूर रस माधुरीकौ,
अबला बिचारी ब्रज भाषा को सहारौ हौ,
ओज कर मुदित मनोज सों सम्हारौ भारौं,
बारो रतनाकर हमारो प्रानप्यारो हौ।"

नवनीतजी प्राचीन परिपाटी के श्रेष्ठ कवि थे; आचार्य थे। उनकी रचनाओं में मौलिक सूझ-बूझ के दर्शन होते हैं। उनकी अनेक पुस्तकें आजतक अप्रकाशित हैं। 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम रत्न', 'स्नेह शतक', 'कुब्जा पचीसी', 'गोपी-प्रेम-पीयूष-प्रवाह', 'नवनीतोत्सव संग्रह', 'रहिमन शतक', 'काव्य प्रकाश', 'मूर्ख शतक', और 'श्यामांगा वयवभूषण' आदि कृतियों में उनके कवित्व की उत्कृष्ट झांकी मिलती है। खेद है कि 'कुब्जा-पचीसी', 'रहिमन शतक', 'मूर्ख शतक' आदि को छोड़ उनके सभी ग्रंथ आज तक प्रकाश में नहीं आ सके। उनके स्फुट कवित्त-सवैये भी हजारों की संख्या में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। वृद्धावस्था में दृष्टि क्षीण होने पर नवनीत जी बोलकर ही लिखाया करते थे। यही कारण है कि उन फुटकर कवित्त-सवैयों का अब कोई पता नहीं। हां, उनके भक्तों को कुछ कवित्त-सवैया आज भी याद हैं।

नवनीतजी की कविता का रसास्वादन अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनों में बहुतों ने किया। इस

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रसंग में इस शताब्दी के प्रथम दशक की एक घटना याद आती है। काशी कवि समाज के सभापति अम्बिकादत्त व्यास थे। समस्या थी "अरुण घटा में शशि निकसत आवै है।" अन्य कवियों ने कागज-कलम संभाली और लिखकर अपने कवित्त सुनाए।

नवनीत जी ने इसकी पूर्ति यों लिखाई थी—

"आई हों अनेकन उपायन सों घनश्याम,
दौरि दौरि मेरौ नाह मोहि ढुंढवावे हैं।
'नवनीत' नाहक निगोड़ी परोसिन हूं,
सोध कर मेरो तेरो कपट जनावे है॥
भादों बदी आठें की, अंधियारी निसि जान कान्ह,
कौतुक मिलाप अब हिय दुख पावै है।
फेर हूं मिलौंगी, अब जान दे सुजान प्यारे,
अरुण घटा तें शशि निकसत आवै हैं।

नवनीत जी के जीवन काल की ऐसी अनेक घटनाएं हैं। जहां-जहां वे जाते, अपनी वाणी का प्रसाद देते थे। कहते हैं एक बार किसी उर्दू शायर ने मोहब्बत की 'दाग न छूटने की अपनी शायरी में गिला की थी। नवनीत जी ने उसके जवाब में 'स्नेह शतक' से अपना यह कवित्त सुनाया—

"सूरस भिजोइ कुलकानि रेख खार देकें,
आतप लगनि जोग करिकें सफाई कौ,
'नवनीत' प्यारे अपवाद देगचा में भरि,
विरहागि भट्टी पै चढ़ाई सुरसाई कौ।
आसा सिर छांटि सुख साबुन किनारें धोइ,
करमनिकी कुदी काम कलफ बुराई कौ,
ढूंढत उपाय हाय मन कपरा में लग्यो,
छूटत न दाग ये सनेह, चिकनाई कौ।"

नवनीत जी ने किसी महाकाव्य की रचना नहीं की। महाकाव्य में किसी आख्यान या कथा का निर्वाह करने के लिए कवि को सीमित रहना पड़ता है। लेकिन नवनीत जी ने राधा-कृष्ण-विषयक और कुब्जा प्रसंग पर जो कुछ लिखा है, वह उनके काव्य-कौशल को स्थापित करने में पूर्ण समर्थ है। फुटकर कवित्तों में उनकी प्रतिभा का जो चमत्कार दीख पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। शृंगार विषयक उनके कुछ कवित्त बेजोड़ हैं। एक उदाहरण लीजिए—

सोहत चिबुक चारू तरूनी तिहार तिल,
विपत अलोल और अनूप उपमा जाकी,
नवनीत प्यारे रूपसिन्धु के सुधाकर में,
पियमन डूबि गयौ रंचक सिखा बाकी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कैधों काम-कंज पैरयो है अलि छौना एक
कीलि दियौ जौबन हनौज हद है ताकी,
कैधों प्रानप्यारी को बनाइकें विलोक्यो विधि,
टपकि परी है कैधों कलम विधाता की।

नवनीतजी प्राचीन परिपाटी के कवि होते हुए भी व्यापक दृष्टिकोण रखते थे। उन्होंने ब्रजभाषा में राष्ट्रीय कविताएं भी लिखीं। हर कवि में यह क्षमता नहीं होती कि समय की पुकार को सुन सके। नवनीतजी ने दीह-हीन किसान की दशा का कई कवितों में वर्णन किया है। देश की पराधीन अवस्था पर भी लिखा है। "होंहिगे मनोरथ सुफल सब जीवन के, भारत की भूमि पै सबै ही बलि जाएंगे" में उनकी आकांक्षा स्पष्ट है। किंतु राष्ट्रीय रचनाओं में उनकी प्रतिभा का वह रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, जो 'स्नेह शतक' जैसी उत्कृष्ट कृति में मिलता है।

नवनीतजी का जन्म मथुरा में संवत् १८१५ में हुआ, और मृत्यु १८८० में। उनके गुरु गंगादत्त जी ने सीरों में गंगा स्नान करते समय नवनीतजी को काव्य का मंत्र दिया था। स्नान कर ज्यों ही नवनीतजी बाहर आए, उन्होंने काव्यधारा का सूत्रपात श्री गणेशवंदना से किया था। श्रीगणेश वन्दना उनकी पहली कविता है।

ब्रजवासी बचनेश जी

"पद्मसिंह शर्मा के पत्र" नामक पुस्तक में कई जगह श्री देवी प्रसाद चतुर्वेदी के नाम का उल्लेख मिलता है। श्री देवीप्रसाद जी, औद्योगिक नगर फीरोजाबाद के निवासी थे। उन जैसे साहित्यमर्मज्ञ व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं है। ब्रजभाषा में उन्होंने अनेक सुन्दर कवित्त और सवैये लिखे। "बचनेश" उनका उपनाम है। इसी नाम से वह कविताएं लिखते रहे।

ईश कौं बखाने, भेद मानव के जाने,
जगतत्व पहिचाने श्रुति ज्ञान में सयाने हैं।
प्रेम में प्रवीण, रूप जांचत नवीन,
बच बोलत अदीन, निज मान सनमाने हैं।
बात के धनी हैं, छन्द कवित्त धनी हैं,
गुन अमित गनी हैं, बनी बनती अमाने हैं।
ऐते पर धूर डार, कुटल कुचाली कहैं
कुधन कमायें बिन खाक हू न जाने हैं।

जान परैं नहिं भेद सुदैव के,
का विधि सौं जग चक्र चलावै।
धूरन फूल मही करि के,
फुलबारिन कंटक पुंज बनावै।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

रंक कुबेर, व कुबेर को रंक,
मरे सुखियान के मा मिटावै।
सूबस बास उजार करै,
उजरै हिय बास बहोरि बसावै।

श्री देवीप्रसाद जी का जन्म सम्वत् १९३७ में फीरोजाबाद में हुआ तथा ८० वर्ष तक जीवित रहे।

स्व० रामनारायण चतुर्वेदी "रमनेश"

फूल तो दो दिन बहारे,
जां फिजां दिखला गये।
हसरत उन गुंचों पै है,
जो बिन खिले मुरझा गये।

कविवर "रमनेश" जी का जन्म सन् १९०८-९ और निधन ६ अक्तूबर, १९३६ को हुआ। २७-२८ वर्ष वे जिये। वे उत्कृष्ट कवि थे। ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर उनका समान अधिकार था। उनकी प्रारम्भिक रचनायें ब्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली की कवितायें तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। कवि-कर्म के लिये जो गुण आवश्यक हैं, उनमें वे पर्याप्त मात्रा में थे। संवेदन-शील हृदय और भाव-अभिव्यक्ति की क्षमता उनकी रचनाओं से प्रकट है।

उनकी अनेक कविताओं में विभिन्न रसों का अच्छा परिपाक हुआ है। भक्ति और करुण रस की कविताओं के अतिरिक्त उनकी शृंगार रस की कई रचनायें भी बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। किन्तु उनको यश राष्ट्रीय कविताओं से मिला।

ब्रजभाषा की उनकी अनेक कवितायें सहपाठी और मित्रों को याद हैं। कुछ कवित्त तथा सवैये पत्रों में छपे भी थे, किन्तु अधिकांश आज तक अप्रकाशित हैं। वह युग समस्या-पूर्ति का था। एक बार समस्या थी "कित सोवे"। इसकी पूर्ति देखिये—

"शीत परै अरु गात कटै,
अंधियारौ बढ़्यौ हम हाथ टटोवै।
तीरसी बूंद लगे माहौट की,
जीउ कपै सिगु छान चुचोवै।
बीतति राति खरी जमुहाति ही,
जागु पिया कबलौ हम जोवै।
खेंचि रजाई लई सिगरी,
निरदयी हम जात,
कहौं कित सोवै।"

"रमनेश" जी का पूरा नाम श्री रामनारायण चतुर्वेदी था। वे जीवट के आदमी थे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

श्री भगवानदत्तजी चतुर्वेदी

भगवानदत्त जी का जन्म सम्वत् १९५२ में हुआ था। उनके पिता का स्वर्गवास सम्वत् १९५९ में ही हो गया था। अतः उन्हें मां का स्नेह ही मिला। संभवतः इसी कारण उनकी रचनाओं में कोमल भावनाओं की अभिव्यंजना अच्छी हुई है। उनके काव्य-गुरु मथुरा के प्रसिद्ध कवि नवनीत जी थे। उन्हीं के आशीर्वाद से भगवानदत्त जी को काव्य-क्षेत्र में अच्छी ख्याति मिली है। इन कविताओं का कोई संकलन अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, आपकी कविता के नमूने प्रस्तुत हैं :—

भूतल में शांति सुधा रस बरसावै सुचि,
महिमा बढ़ावै रजनी में नभ अंक की।
सुख सरसावै है समान जड़ चेतन कों,
हरत अनीत घोर तिमिर अतंक की।
विमल प्रकास सब ठौर एक सौ ही करै,
नृप के महल चहें कुटी होय रंक की।
पर उपकार औ उदार व्यवहार ही सौं,
जग में अपार बढ़ी महिमा मयंक की।

देखकर वैभव बसंत को महीतल पै,
ग्रीसम तुरत उर डाह करिबे लग्यौ।
प्रबल ताप द्वारा दाबकें दिगंतन कौ,
दुखददुरत पंथ अनुसरि बेलग्यौ॥
बन उपबन गिरि गहन निकेतन में,
चेतन अचेतन के चैन हरिबेलग्यौ।
ऋतुराज सासन कौ आसन उखारि आज,
ग्रीसम जहान में प्रभाव भरिबे लग्यौ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के आधुनिक प्रबन्ध काव्य

रामजीत ओझा

ब्रजभाषा में अनेक प्रबंध काव्यों की रचना वीरगाथा काल, भक्तिकाल और रीतिकाल में हुई है जिसका वर्णन-विवेचन इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध है। किन्तु आधुनिक युगीन प्रबंध काव्यों की लिखित सूचना यत्र-तत्र अल्प मात्रा में मिलती है, यद्यपि आधुनिक युग में लिखे गए प्रबंध काव्यों की संख्या भी पर्याप्त है। इस निबन्ध में ब्रजभाषा के कतिपय प्रबंध काव्यों का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत है—

देशभक्त होरेशस

कविवर सत्यनारायण जी का अनूदित प्रबंध काव्य है। इसका प्रकाशन अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल ने किया है। इसका कथानक इटली से संबंधित है। राजा रोमुलस ने ७५३ ई० पूर्व रोम नगर की स्थापना की। इसकी सातवीं पीढ़ी में टारक्विनस सुपरबस (५१० ई० पूर्व) में हुआ, वह अत्याचारी था उसने लुक्रेसीया नामक एक प्रतिष्ठित रूपसी का सतीत्व नष्ट किया; वह कटार मार कर मर गई प्रजा और बिगड़ गई। उसने राजा को सकुटुम्ब रोम से बाहर निकाल दिया। इसने आसपास के राजाओं की सहायता से रोम पर आक्रमण किया। रोम टाइबर नदी के तट पर स्थित था। टाइबर नदी के दूसरी ओर जैनिकुलम् नामक रोमन किले को उन्होंने जीत लिया और रोम की ओर बढ़े। जब यह सूचना रोमवासियों को मिली तो उन्होंने निर्णय किया कि नदी के पुल को तोड़ दें। होरेशस अपने दो साथियों के साथ पुल के फाटक पर युद्ध रत होकर शत्रुसेना को रोकता रहा और इसी बीच रोमनों ने पुल को तोड़कर रोम की अन्यायियों से रक्षा की। शत्रु सेना के अत्याचारों से पीड़ित जनता का रोमांचकारी वर्णन सत्यनारायण जी के शब्दों में देखिए:—

"बैशाखी बल चलत चकित भयभीत वृद्धजन।
सोच युक्त अलसात गर्भवारी नारी गन।
हिलकि हिलकि माँ रोइ लाल मुखचंद निहारत।
हृदय लगे मसिकात सिसुहि चूमति पुचकारित।

डारि डारि डोलिन में रोगी गन कौं धाई।
सेवक लीये जात श्रमित तन मनमय पाई।
माजे जात किसान छांड़ि निज खेती पाती।
बिड़रे डोलत विकल हाथ में लिए दराती॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

देशभक्त सत्यनारायण जी की देशभक्ति की उद्दाम भावना सूचना देने वाले के शब्दों में दर्शनीय है:—

"ग्रसित मृत्य सब जीवन जो भवि पै तनधारी।
द्वै दिन आगे कबहु कबहु द्वै दिन पिछारी।
पितृ भस्महित, जो पुनीत तिन कीरति सानी।
एक मात्र संतोष देनि पुरखान निसानी।
पुण्य भूमि गौरव विस्तारक मठ देवन के।
धर्मभाव संचारक उपकारक, हित तिन के।
मृदुल हृदय जननी हित, जिनने गोद खिलायो।
पलना में पौढ़ाई रमकि सुख नींद सुआयो।
भामिनि हित जो करत सदा से वर सुखकारी।
वीर प्रसूता सुतहि प्याइ पय पालन हारी।
अरु कुमारियनु हित, पवित्रता जिन चहुं छाई।
हवन कुण्ड की अग्नि रखत जो सतति सुहाई।
परम पातकी कुटिल कर निर्लज्ज अपावन।
नीच सेकराटन सम सठ सौं तिन धरम बचावन।
प्रबल शत्रु अन रुचि स्वदेह जिन रन में त्यागी।
वीर लोक मसिकात जात वह जन बड़ भागी।।"

सत्यनारायण जी अंग्रेजी शासन से प्रसन्न न थे उन्होंने ग्रन्थ के अंत में आदर्श राज्य का रूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि:—

"प्रजा राज प्रिय राज प्रजा प्रिय निरमल राजै।
शत्रु नसत आपुसों आपु सुख भय शांति विराजै।।"

देशभक्त होरेशस की रचना में वे भारत की तत्कालीन स्थिति को नहीं भूले हैं उनकी हृदयगत भावना इन शब्दों में परोक्ष रूप से व्यक्त हुई है:—

"स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम प्राण पियारी।
मंद मंद मुसिकात चंद मुख करि उजियारी।
मंजु माधुरी मूर्ति सदय उर नित सरसानी।
देति दरस सत स्वतंत्रता जग जनति भवानी।।"

इस काव्य की भाषा ठेठ ब्रज है, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है, ओजगुण से समन्वित है। एक सौ पैंतीस छन्दों में रचित इस अनूदित रचना में मूल रचना का जैसा आनंद आता है यह सत्यनारायण जी की प्रारंभ की कृति है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रजभाषा के आधुनिक प्रबन्ध काव्य

रामजीत ओझा

ब्रजभाषा में अनेक प्रबंध काव्यों की रचना वीरगाथा काल, भक्तिकाल और रीतिकाल में हुई है जिसका वर्णन-विवेचन इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध है। किन्तु आधुनिक युगीन प्रबंध काव्यों की लिखित सूचना यत्र-तत्र अल्प मात्रा में मिलती है, यद्यपि आधुनिक युग में लिखे गए प्रबंध काव्यों की संख्या भी पर्याप्त है। इस निबन्ध में ब्रजभाषा के कतिपय प्रबंध काव्यों का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत है—

देशभक्त होरेशस

कविवर सत्यनारायण जी का अनूदित प्रबंध काव्य है। इसका प्रकाशन अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल ने किया है। इसका कथानक इटली से संबंधित है। राजा रोमुलस ने ७५३ ई० पूर्व रोम नगर की स्थापना की। इसकी सातवीं पीढ़ी में टारक्विनस सुपरबस (५१० ई० पूर्व) में हुआ, वह अत्याचारी था उसने लुक्रेसीया नामक एक प्रतिष्ठित रूपसी का सतीत्व नष्ट किया; वह कटार मार कर मर गई प्रजा और बिगड़ गई। उसने राजा को सकुटुम्ब रोम से बाहर निकाल दिया। इसने आसपास के राजाओं की सहायता से रोम पर आक्रमण किया। रोम टाइबर नदी के तट पर स्थित था। टाइबर नदी के दूसरी ओर जैनिकुलम् नामक रोमन किले को उन्होंने जीत लिया और रोम की ओर बढ़े। जब यह सूचना रोमवासियों को मिली तो उन्होंने निर्णय किया कि नदी के पुल को तोड़ दें। होरेशस अपने दो साथियों के साथ पुल के फाटक पर युद्ध रत होकर शत्रुसेना को रोकता रहा और इसी बीच रोमनों ने पुल को तोड़कर रोम की अन्यायियों से रक्षा की। शत्रु सेना के अत्याचारों से पीड़ित जनता का रोमांचकारी वर्णन सत्यनारायण जी के शब्दों में देखिए:—

"बैशाखी बल चलत चकित भयभीत वृद्धजन।
सोच युक्त अलसात गर्भवारी नारी गन।
हिलकि हिलकि माँ रोइ लाल मुखचंद निहारत।
हृदय लगे मसिकात सिसुहि चूमति पुचकारित।

डारि डारि डोलिन में रोगी गन कौं धाई।
सेवक लीये जात श्रमित तन मनमय पाई।
माजे जात किसान छांड़ि निज खेती पाती।
बिड़रे डोलत विकल हाथ में लिए दराती॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

देशभक्त सत्यनारायण जी की देशभक्ति की उद्दाम भावना सूचना देने वाले के शब्दों में दर्शनीय है :—

"ग्रसित मृत्य सब जीवन जो भवि पै तनधारी।
द्वै दिन आगे कबहु कबहु द्वै दिन पिछारी।
पितृ भस्महित, जो पुनीत तिन कीरति सानी।
एक मात्र संतोष देनि पुरखान निसानी।
पुण्य भूमि गौरव विस्तारक मठ देवन के।
धर्मभाव संचारक उपकारक, हित तिन के।
मृदुल हृदय जननी हित, जिनने गोद खिलायो।
पलना में पौढ़ाई रमकि सुख नींद सुआयो।
भामिनि हित जो करत सदा से वर सुखकारी।
वीर प्रसूता सुतहि प्याइ पय पालन हारी।
अरु कुमारियनु हित, पवित्रता जिन चहुं छाई।
हवन कुण्ड की अग्नि रखत जो सतति सुहाई।
परम पातकी कुटिल कर निर्लज्ज अपावन।
नीच सेकराटन सम सठ सौं तिन धरम बचावन।
प्रबल शत्रु अन रुचि स्वदेह जिन रन में त्यागी।
वीर लोक मसिकात जात वह जन बड़ भागी।।"

सत्यनारायण जी अंग्रेजी शासन से प्रसन्न न थे उन्होंने ग्रन्थ के अंत में आदर्श राज्य का रूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि :—

"प्रजा राज प्रिय राज प्रजा प्रिय निरमल राजै।
शत्रु नसत आपुसों आपु सुख भय शांति विराजै।।"

देशभक्त होरेशस की रचना में वे भारत की तत्कालीन स्थिति को नहीं भूले हैं उनकी हृदयगत भावना इन शब्दों में परोक्ष रूप से व्यक्त हुई है :—

"स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम प्राण पियारी।
मंद मंद मुसिकात चंद मुख करि उजियारी।
मंजु माधुरी मूर्ति सदय उर नित सरसानी।
देति दरस सत स्वतंत्रता जग जनति भवानी।।"

इस काव्य की भाषा ठेठ ब्रज है, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है, ओजगुण से समन्वित है। एक सौ पैंतीस छन्दों में रचित इस अनूदित रचना में मूल रचना का जैसा आनंद आता है यह सत्यनारायण जी की प्रारंभ की कृति है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Digitized by Sarayu Foundation Trust Collection, Lucknow

बुद्ध चरित्र आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'बुद्ध चरित' आधुनिक ब्रजभाषा में लिखित एक सरस प्रबंध काव्य है। आचार्य जी ने कवि आनोल्ड की 'लाइट आफ एशिया' के आधार पर इसकी रचना की है, वस्तुत: यह इस रचना का भावानुवाद है। सिद्धार्थ के जन्म से उनके निर्वाण तक का कथानक आठ सर्गों में निबद्ध कर विविध प्रचलित छंदों में वर्णित है। इस रचना में वर्णन अतिरोचक बन पड़े हैं, रूप चित्रण, प्रकृति चित्रण तथा मनोदशावर्णन अनुपम हैं। राजमहल की मद तथा निद्रा में अलस नारियों का चित्रण दर्शनीय है:—

"सोवतीं संभार बिन सोभा सरसाय गात
आधे खुले गोरे सुकुमार मृदु ओप घर।
चीकने चिकुर कहूँ बंधे हैं कुसुमदाम
कारे सटकारे कहूँ लहरत लंक पर।
सोवैं थकि हास औ विलास सों पसारि पाँय
जैसे कलकंठ रसगीत गाय दिनभर।
पंख बीच नाए सिर आपनों लखत तौ लौं
जौ लौं न प्रभात आय खोलन कहत स्वर।"

अशोक उत्सव में उपस्थित रूपसियों के रूप की झांकी तो निहारिए:—

"नृप द्वार कुमारि चलीं पुर की अंगराग सुगंध उडे गहरी।
सजि भूषण अंबर रंग बिरंग, उमंगन सों मनमाँहि भरी॥
कवरीन में मंजु प्रसून गुथे, दृगकोरन काजर लीक परी।
सित भाल पै रोचन बिन्दु लसै, पगजावक देख रची उछरी॥"

यह ग्रन्थ इस युग में प्रचलित ब्रजभाषा में लिखा गया है अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अत्यल्प है, प्रचलित भाषा में होने के कारण सहज बोधगम्य तथा रोचक है। अलंकारों का समीचीन प्रयोग एवं माधुर्य तथा प्रसाद से रोचकता द्विगुणित हो उठती है। भावानुवाद होते हुए भी मूलकृति से अधिक सुन्दर रचना है। ब्रजभाषा की मधुरिमा से कथानक प्राणवन्त हो गया है।

राम स्वयंवर—रीवां नरेश श्री रघुराज सिंह द्वारा लिखित यह महाकाव्य रीतिकालीन और आधुनिक कालीन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का निदर्शन है। रामस्वयंवर का सीमित कथानक वर्णन बहुल है। भक्ति और रीतिकाल की प्रवृत्तियों के प्रभाव से आप्लावित और आधुनिक काल की प्रवृत्तियों के संस्पर्श से युक्त इस काव्य ग्रन्थ में राम और उनके भाइयों के विवाह का वृत्तान्त दिया गया है। अनेक प्रसंग कथानक में छोड़ दिए गए हैं। वर्णन और लम्बी लम्बी सूची लेने की पद्धति को अपनाया है। रीतिकालीन वस्तुपरिगणन शैली जनक की वाटिका के प्रसंग में दर्शनीय है:—

दिल देव बालन के देखते बिहाल होत
सबै देख कालन के फूल फल छाए हैं।
और महिपालन की बालन की बातें कौन
रघुराज कौशलेश लालन लभाए हैं॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

राम के बाल्यकाल का वर्णन, लंकादहन, पुष्पवाटिका प्रसंग आदि रोचक और मार्मिक हैं:—

तुम स्यामल गौर सुनों दोउ लालन. आए कहाँ ते उरायन में
मिथिलेश की वाटिका में बिहरो, हियरो हरो हेरि सुभायन में
इत कौन पठायौ दया नहिं ल्यायौ, सुफूलन तौरो उपायन में
'रघुराज' कहुँ गड़ि जैहै लला, पुहपनि की पांखुरी पांयनि में॥

पावस, वसन्त, मृगया आदि के प्रसंग में प्रकृति वर्णन दिया गया है। श्रृंगार और वीररस का इस ग्रंथ में प्रमुख स्थान है, कवि इनके चित्रण में पूर्णतः सफल रहा है। संवाद योजना भी प्रसंगानुकूल है, वाग्पटुता, और उक्ति वैचित्र का चमत्कार है। भाषा साहित्यिक व्रज है, अवधी का प्रभाव है, वुन्देली तथा उर्दू की शब्दावली का भी प्रयोग है। प्रसाद, ओज और माधुर्य गुणों की त्रिवेणी का प्रवाह रसाप्लावित कर देता है। परम्पराभुक्त रामकथा की कथावस्तु में पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। रामचन्द्रिका का प्रभाव अधिक अंशों में है। व्रजभाषा के इस महाकाव्य में नूतन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति कवि के प्रिय अलंकार हैं।

उत्प्रेक्षाः—कुंडल कानन में लसैं मंजुल मकराकर।
मनहु सुछवि युग वापिकन, झलकत झष श्रृंगार॥

राम रसायन

राम रसायन श्री जानकी प्रसाद 'रसिकेस' (रसिक बिहारी) द्वारा रचित रामकथा विषयक महाकाव्य है। पारम्परिक रामकथा को कवि ने स्वोद्भूत मार्मिक प्रसंगों से रुचिकर बनाया है। रामजन्म के अवसर पर दशरथ के द्वार पर देवताओं की भीड़ लगती है, सभी अपना परिचय देते हैं, शंकर का परिचय द्रष्टव्य है:—

"आयो एक अम्बर के मारग दिगम्बर है, गावत सुढंग रंग छावत छटान तें।
कबहूँ दिखावै पंच आनन, दुरावै कबौं, तीय बनि जावै अरधंगी के नटान तें॥
'रसिक बिहारी' कबहूँ खड्ग त्रिशूलधारी, वीर पद चारी भुजा फेरत पटान तें।
कबै प्रगटावै भाल ज्वाल, दरशावै व्याल, कबौं वारिधारा सुभ छोड़त जटान तें॥"

रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित इस महाकाव्य के वर्णनों में चित्रोपमता है, कवि अस्त्रशस्त्र व्यंजन, राग-रागिनी, पशुपक्षी वृक्षलता गुल्म, फल फूलों का विशद वर्णन करता है। परशुराम लक्ष्मण संवाद, रामकेवट संवाद, अंगद-रावण संवाद, विवाह के समय राम और स्त्रियों का वार्तालाप अति रुचिकर संवाद है। कवि की संवाद योजना उत्कृष्टता पर दम भरती है। राम के मधुर स्वभाव का उपहास करते हुए स्त्रियाँ कहती हैं:—

"कोऊ हँसि बोलो, याते बोल अति मीठे भये, इनकी सुमाय इने खीर खाय जायो है।"

राम रसायन की भाषा, अवधी और वुन्देलखण्डी से प्रभावित साहित्यिक व्रजभाषा है। इस काव्य में दोहा, सोरठा, सवैया के साथ साथ इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, हरिगीतिका आदि विविध छन्दों का सुप्रयोग दर्शनीय है। अलंकारों के प्रयोग सरस बन पड़े हैं। शबरी प्रसंग का एक छन्द द्रष्टव्य है:—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"बैर बेर बेर तै सराहै बेर बेर बहु 'रसिक बिहारी' देत बंधु कंह फेर फेर।
चाखि चाखि भाषै यह बाहू ते महान मीठौ, लेहु तौ लखन यौं बखानत हैं हेर हेर।
बेर बेर देवें बेर सबरी सुबेर बेर तऊ रघुबीर बेर बेर तिहिं टेर टेर।
बेर जनि लाबो बेर बेर जनि लाबो, बेर बेर जनि लावो बेर लाओ कहैं बेर बेर॥

शबरी

श्री बचनेश मिश्र लिखित शबरी हरिजन समस्या से प्रेरित एक सामयिक रचना है। शबरी का कथानक परम्परानुक्त है, शबरी का छुआ हुआ एक तिनका मुनि के ऊपर गिर गया। मुनि के स्नान से पम्पा सरोवर का जल खारी हो गया, राम के स्नान करने से भी वह मीठा न हो सका केवल शबरी के स्नान से ही वह पूर्ववत् मधुर हुआ, यही कथानक का वर्ण्य विषय है।

शबरी के प्रकृति पोषित जीवन की झांकी कवि ने इन शब्दों में दी है:—

"विचरैं वन भील की भोरी लली, हरिनीन सों चौदसि धायबौ सीखी।
नखतावलि सों कहुं नैन लगाइबो, फूलन सों मसुकाइबौ सीखी।
रस भीजिबो पाछिली राति सों, ओस सों, आसुन कौ टपकाइबो सीखी।
मन दीबो चकोरन सों, पपिहान सों, एकहिकी रट लगाइबो सीखी।"

चित्रोपमता श्री बचनेश जी की विशेषता है। उन्होंने काव्य में शबरी के रूप का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करते हुए कैसा सुन्दर शब्द चित्र उपस्थित किया है:—

"लटकाये लटापटी लोनी लटैं
बन डोलति भील की डाबरिया।
दृढ़ तीखे दृगंचल चंचल से
कोउ रंग रंगी तन सांवरिया॥"

शबरी खण्डकाव्य में सजीव और सुयोजित संवाद, सुंदर प्रकृति वर्णन, भक्ति की गंभीर सरिता के साथ साथ उत्कृष्ट प्राणवान व्रजभाषा के दर्शन होते हैं। तद्भव और तत्सम शब्दावली का प्रयोग है। माधुर्य और प्रसाद की गंगाजमुनी धारा रसाप्लावित कर देती है। शबरी की अनन्यता का वर्णन इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है:—

"मौन है जाको सबै बरम्हाण्ड, प्रदीप जहाँ रवि चन्द उजारे।
पौन कौ पंखा फरासी चलै, 'बचनेस' जू झाडफनूस हैं तारे॥
माया नचै नित पातुर सी अनहद्द सी बजै घन नद्द नगारे।
ऐसे बड़े दरबार को छाँड़ि कहा कोउ जांचत दीन के द्वारे॥

निष्कर्षत : शबरी एक सरस और सफल खण्डकाव्य है।

अभिमन्यु वध

श्री रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' कृत खण्डकाव्य है। इसका कथानक महाभारत में वर्णित जनश्रुत आख्यान है। वस्तुतः इसके कथानक को ख्यानकल्प प्रवृत्त कहा जा सकता है। कवि ने कल्पना के प्रयोग द्वारा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ऊहात्मक वर्णन प्रस्तुत कर इसे पठनीय और मननीय बनाया है। सीमित पात्रों में सफलतापूर्वक विवेच्य का निर्वाह कवि की प्रतिभा का परिचायक है। एक छवि में अनेक रसों की विद्यमानता का अद्‌भुत वर्णन दर्शनीय है:—

"रासि रसराज की विराजि रही मूरति पै
मुद्रा मुख हास के बिलास की ढरी परै।
'सरस' बखानै, करुना की छांह कोयनि में
लोयनि में लाली रुद्रता की उतरी परै॥
बक्र भृकुटीनि में भयानकता भूरि भरी,
अद्‌भुत आभा सान्त भाव सौं झरी परै।
उर उभरी परै बीर रस की तरंग
अंगप्रति अंग सों उमंग उछरी परै॥

कवि के वर्णनों में चित्रोपमता है, रूपवर्णन, मनोदशा वर्णन, मुद्रावर्णन प्रकृति वर्णन मनोरम हैं; मुद्रावर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:—

"कम्पित सी है कै भई झम्पित सी दीप शिखा
वाम औरि औचकि सधूम ह्वै दवै लगी।
चाकि, जकि, थहरि, थिरानी यौं अनैसी लेखि
देखि मुख, ध्यावन ल्यौं सुरनि सबै लगी॥"

परिष्कृत ब्रजभाषा में ओज, प्रसाद और माधुर्य से समन्वित, सुंदर अलंकार प्रयोगों से सुसम्पन्न स्पष्ट भाव व्यंजना से आलोकित यह खण्डकाव्य ब्रजभाषा की अनुपम कृति है। कवि के अलंकार प्रयोग अनुपमेय हैं। सांग रूपक का एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

"प्रेम पय बन्धुता कौं कपट खटाई पाय।
द्वेष दधि खोटी लै खटाई जम्पौ धर में॥"

यह काव्य ब्रजभाषा के आधुनिक युगीन काव्यों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अर्वाचीन ब्रजभाषा प्रबन्ध-काव्य

डा० आनन्द स्वरूप पाठक
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी, साहित्यरत्न, साहित्याचार्य

ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों की सुदीर्घ एवं वृहत् परम्परा में आधुनिक युग का योगदान मात्र प्रशंसनीय ही नहीं अपितु युगांतरकारी भी है। भाषा, भाव, वर्ण्य विषय, वर्णन शैली, अभिव्यञ्जना, शिल्प आदि की दृष्टि से अर्वाचीन ब्रजभाषा प्रबन्धकाव्य परम्परामुक्त है। उन्हें इसी दृष्टि से ही परम्परामुक्त कहा जा सकता है कि वे परम्परागत विधा प्रबन्धकाव्य की शैली में लिखित हैं। आज के युग का प्रतिफलन उनमें पूर्णरूपेण हुआ है, युगीन चिन्तन धाराएँ चाहे वे सुधारवादी हों—चाहे राजनैतिक वैचारिक दृष्टि-कोण हो उनमें पूर्णरूपेण उभर कर आयी हैं। अर्वाचीन युग के कुछ प्रबन्ध काव्यों का पल्लवग्राही परिचय इस लघु प्रबन्ध का प्रतिपाद्य है। इनका तलस्पर्शी विवेचन न इस सीमित प्रबन्ध में संभव है और न वाञ्छनीय ही। इसका उद्देश्य ब्रज काव्यधारा के जीवन्त प्रवाह का मात्र बोध कराना है। निम्नलिखित प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त भी अनेक प्रबन्ध रचनाएँ भी ब्रजी में हुई हैं उनका विवेचन यथासमय अन्यत्र किया जायेगा।

रावण महाकाव्य—आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण के कथानक पर आधारित 'रावण महाकाव्य' श्री हरिदयालु सिंह जी की अनुपम कृति है। इसकी रचना सं० २००५ में हुई तथा सं० २००८ में यह ग्रन्थ आत्माराम एण्ड सन्स द्वारा प्रकाशित किया गया। महाकाव्य के अधिकांश लक्षण इस काव्य में मिलते हैं। मंगलाचरण के उपरान्त कथानक विन्ध्यवर्णन से प्रारम्भ होता है—

वन्दनीय भारत के मध्य कटि भाग माँहि
राजैं विन्ध्य भूधर की अटवी सुहाई है।
पूरबी और पच्छिमी सुघाटन लौं फैलीफवि
सुषमा न जाकी सारदा पै जाति गाई है।
मनौ मध्य देस को विभूषन यहैं है चारु
कैधों मंजु मेखला मही कौ पहराई है।
कैधों चतुरानन चतुर नै समेटि राखी
या में देवदेवन की निखिल निकाई है।

विन्ध्याटवी में स्थित एक सुरम्य सरोवर के निकट सघन विटप माला के नीचे सुमाली, केतुमती, प्रहस्त और कैकसी आकर बैठे। कैकसी के लिए वर ढूंढने के लिए वे लोग घर से निकले थे। संयोगवश कुबेर का पुष्पक विमान निकला, केतुमती ने अपनी पुत्री कैकसी का विवाह उसी के साथ करने का विचार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

व्यक्त किया पर सुमाली ने कहा कि कुबेर के पिता विश्रवा से यदि कैकसी का विवाह किया जाये तो कुबेर जैसा पुत्र होगा।

"कैकसी पियारी! अनुरोध कौं हमारे मानि
आजु ही मुनीस विस्रवा के पद लागौ जाय।
अरु तिन हीकौं निज नाह हिय माँह मानि
मन वच काय सौं चरन अनुरागो जाय।
सब बिधि सेवा सौं सँतोषि मुनिपुंगव कौं
धनपति सरिस प्रतापी सुत मांगो जाय।
जासौं गत गौरव बहुरि अपनावौ निज
जो पै भाग्यदोष सो बिहाय हमें भागो जाय।

मार्ग में नारद मुनि मिले उन्होंने कैकसी को बहुत कुछ समझाया, विष्णु से विवाह कराने का प्रस्ताव किया किन्तु कैकसी ने विश्रवा से ही विवाह करने का मत व्यक्त किया।

वे विश्रवा मुनि के आश्रम में गये समाधि टूटने पर विश्रवा ने कैकसी से वर मांगने को कहा :—

चेतना पाय कै पाँयनि पै परि
बोलीतिया भर लोचन बारी।
दरसन ही सौं कृतारथ है हों
भई फल चारिहूँ की अधिकारी।
देन जौं पाहौं हमें वरदान
तौ दीजिए जो रुचि होय हमारी।
जानत नाथ सबै मन की
अब पूरी करौ अभिलाष हमारी।

मुनि ने प्रसन्न होकर विभूति दी जिसके खाने से कैकसी को रावण, कुम्भकरण और विभीषण तीन पुत्र तथा शूर्पणखा नामक एक पुत्री की प्राप्ति हुई। तीनों पुत्रों ने घोर तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया। एक दिन माल्यवान के दरबार में प्रहस्त ने प्रसंगवश कहा कि लंका हमारी थी, कुबेर ने उस पर अधिकार कर लिया है। कुम्भकरण ने क्रोधित होकर कहा कि मैं उसे अभी पकड़े लाता हूँ। रावण ने उसे शान्त कर मामा प्रहस्त से अनुरोध किया कि आप स्वयं जाकर कुबेर से लंका छोड़ने को कहें। प्रहस्त लंका आया, कुबेर ने अतिथिशाला में उसे ठहराया तथा स्वयं पुष्पक विमान में बैठकर पिता के पास आया और लंका वापस करने सम्बन्धी प्रसंग बताया। विश्रवा ने कहा कि :—

कह मुनीस गढ लंक हो, सांचहु तिनको ठाम।
नाना मामा तासु रहि, भोग्यो भोग प्रकाम॥
हारि समर विष्णु सों, मानि चक्र की त्रास।
गये सबै पाताल, हम, दीन्हौं तुमहिं निवास॥

८४

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अब दसमुख समरथ भयौ तप कर विधि वर पाय।
जो ऐसे दैहो नहीं, बल सों लेय छिनाय॥

+ + +

लेहु अवधि त्रय मास की तुम दसमुख सो माँगि।
जाय बसहु अलकापुरी, तासु लंक गढ त्यागि॥

राक्षसों (रक्षा करने वाला अर्थ वाल्मीकि ने माना है) ने लंका पर अधिकार किया उसके टूटे भाग को मयदानव से बनवाया। मयदानव ने अपनी कन्याओं का विवाह रावण से कर दिया। रावण की स्त्री मन्दोदरी से मेघनाद तथा धान्यमालिनी से अक्षयकुमार का जन्म हुआ। जब मेघनाद कैलाश से लौटते हुए अपनी ननिहाल होकर आ रहा था, तब मार्ग में एक सरोवर में एक नक्र एक बालिका को खींचे ले जा रहा था। मेघनाद ने उसकी रक्षा की और उससे गंधर्व विवाह किया वह सुलोचना थी। एक दिन रावण को पुलस्त्य मुनि ने बताया कि देवताओं के अनुरोध पर विष्णु ने उसके नाना माली को मारा है तथा उसे गुप्तचरों से ज्ञात हुआ कि उत्तरापथ में मुनिगण अभिचार मंत्र जाप कर रावण का अनिष्ट साधन कर रहे हैं। रावण ने इस जनस्थान की प्रशासिका शूर्पणखा को बनाया। इसी समय राम लक्ष्मण वन में आए और मुनियों के उकसाने पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा वध की प्रतिज्ञा की। एक दिन रात्रि में शूर्पणखा उधर को निकल आई और लक्ष्मण ने उसके नाक कान काट लिए। तदुपरान्त राम की विजय तक का कथानक है। विभीषण द्वारा मंदोदरी को पटरानी बनाने के लिए प्रलोभन देने का वाल्मीकि सम्मत प्रसंग है लंका के ऐसे समाचारों को सुनकर मय दानव अपनी कन्याओं को ले गया और धान्यमालिनी के अरिमर्दन का जन्म हुआ। परशुराम ने उसे धनुर्विद्या सिखलाई। जब उसे ज्ञात हुआ कि उसके पिता रावण की मृत्यु का कारण विभीषण है तो अरिमर्दन ने लंका पर चढ़ाई की, विभीषण ने डरकर एक ओर तो सन्धि कर ली और दूसरी ओर लवकुश को लंका से सहायतार्थ बुलाया। इधर नाग नगरवासियों ने युद्ध रोकने की सलाह दी और अरिमर्दन लंका का अध्यक्ष बन गया।

महाकाव्य का कथानक वाल्मीकि रामायण पर आधारित है इसमें सत्रह सर्ग हैं, उत्कृष्ट टकसाली ब्रजभाषा का प्रयोग है। कवि ने महाकाव्य की अधिकांश रूढ़ियों का निर्वाह किया है। छन्द प्रयोग के सम्बन्ध में श्री शुकदेव बिहारी मिश्र का मत है कि :—

'रावण' में कवि ने ब्रजभाषा के पेटेण्ट छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें घनाक्षरी और सवैये बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। रौले और रूपमालाएँ भी सुन्दर आई हैं।"

रस के विषय में उनका मत है कि "रावण में यों तो सभी रसों का समावेश है परन्तु वीर और शृंगार की बहुलता है और इन्हीं रसों का पारिपाक भी हुआ है। कैकसी का रूप निरूपण कवि ने बड़ी सुन्दरतापूर्वक किया है।"

कैकसी के चलत गुलाब गुल लाला औ,
प्रवालनि बंधूकनि की सुषमा सकानी है।
त्योंही के कनद इन्दीवर अरविन्द वृन्द
चम्पक गुलाब की प्रभाई सकुचानी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उड़न मराल लागे गज अकुलान लागे
केहारी गुफान में लुकाइबे की ठानी है।
दाडिम औ श्रीफल करिन्दन के कुम्भ घट
बाकी छवि सामुहै भरत मानौ पानी है।

सातवें सर्ग में विरह विधुर मेघनाद द्वारा अपनी प्रेमिका सुलोचना के पास सन्देशहर के रूप में चन्द्र को भेजने का चन्द्रदूत प्रसंग अति ललित और मधुर है। एक छन्द प्रस्तुत है:—

धाय कै अंक में पौढी निसंक
सुलोचना कौं जुपै सोवत पैयो।
तौ विनती कौ इती मम मानि कै
प्रान प्रिया कौ न नेकु जगैयो।
मंद ही मंद सुधारस बिन्दु
सरोज से आनन पै बरसैयों।
यों सुकुमारी की नींदि निवारि
हमारो सनेह संदेशों सुनैयो।

यद्यपि महाकाव्य का कथानक वाल्मीकि से लिया गया है परन्तु कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा से उसे चमत्कार एवं सौन्दर्य से संजो दिया है। छन्दों के रसानुकूल चयन, गुण और वृत्ति के नितान्त मनोरम सामंजस्य भावानुकूल भाषा ने रचना को हृदयग्राहिणी बना दिया है। कवि अपने युग के प्रभाव से प्रभावित हुआ है। मुनिओं और राक्षसों के संघर्ष में १९४२ की क्रान्ति तथा शूर्पणखा के राज्य प्रशासिका बनाने में उसने सरोजिनी नायडू के गवर्नर होने की घटनाओं का आभास है।

कवि ने आशीर्वादात्मक मंगलाचरण से महाकाव्य का समापन किया है तथा उसमें समाप्ति के वर्गादि का भी निर्देश किया है:—

नित ही बधाई बजत रावन काव्य की रचना नई।
सिववदन नभ नभ नैन सवत पूस में पूरन भई।
जे पच्छपात विसारि याके पढन में मन लाइ हैं।
नूतन विचार प्रवाह या में अवसहि ते पाइ हैं।

तदुपरान्त कवि ने अपना परिचय देकर ग्रन्थ की समाप्ति की है:—

सीतापुर मण्डल अमीर अहमद खाँ के
राज में प्रसिद्ध महमूदावार ग्राम है।
वैश्य वंश भूषन अदूखन सबै ही भांति
मातादीन साह कौ सुवन अभिराम है।
कवि हरिनाथ तहाँ मुदित निवास करै
नन्दके कुमार जू कौं करत प्रनाम है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अब दसमुख समरथ भयौ तप कर विधि वर पाय।
जो ऐसे दैहो नहीं, बल सों लेय छिनाय॥

+ + +

लेहु अवधि त्रय मास की तुम दसमुख सो माँगि।
जाय बसहु अलकापुरी, तासु लंक गढ त्यागि॥

राक्षसों (रक्षा करने वाला अर्थ वाल्मीकि ने माना है) ने लंका पर अधिकार किया उसके टूटे भाग को मयदानव से बनवाया। मयदानव ने अपनी कन्याओं का विवाह रावण से कर दिया। रावण की स्त्री मन्दोदरी से मेघनाद तथा धान्यमालिनी से अक्षयकुमार का जन्म हुआ। जब मेघनाद कैलाश से लौटते हुए अपनी ननिहाल होकर आ रहा था, तब मार्ग में एक सरोवर में एक नक्र एक बालिका को खींचे ले जा रहा था। मेघनाद ने उसकी रक्षा की और उससे गंधर्व विवाह किया वह सुलोचना थी। एक दिन रावण को पुलस्त्य मुनि ने बताया कि देवताओं के अनुरोध पर विष्णु ने उसके नाना माली को मारा है तथा उसे गुप्तचरों से ज्ञात हुआ कि उत्तरापथ में मुनिगण अभिचार मंत्र जाप कर रावण का अनिष्ट साधन कर रहे हैं। रावण ने इस जनस्थान की प्रशासिका शूर्पणखा को बनाया। इसी समय राम लक्ष्मण वन में आए और मुनियों के उकसाने पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा वध की प्रतिज्ञा की। एक दिन रात्रि में शूर्पणखा उधर को निकल आई और लक्ष्मण ने उसके नाक कान काट लिए। तदुपरान्त राम की विजय तक का कथानक है। विभीषण द्वारा मंदोदरी को पटरानी बनाने के लिए प्रलोभन देने का वाल्मीकि सम्मत प्रसंग है लंका के ऐसे समाचारों को सुनकर मय दानव अपनी कन्याओं को ले गया और धान्यमालिनी के अरिमर्दन का जन्म हुआ। परशुराम ने उसे धनुर्विद्या सिखलाई। जब उसे ज्ञात हुआ कि उसके पिता रावण की मृत्यु का कारण विभीषण है तो अरिमर्दन ने लंका पर चढ़ाई की, विभीषण ने डरकर एक ओर तो सन्धि कर ली और दूसरी ओर लवकुश को लंका से सहायतार्थ बुलाया। इधर नाग नगरवासियों ने युद्ध रोकने की सलाह दी और अरिमर्दन लंका का अध्यक्ष बन गया।

महाकाव्य का कथानक वाल्मीकि रामायण पर आधारित है इसमें सत्रह सर्ग हैं, उत्कृष्ट टकसाली ब्रजभाषा का प्रयोग है। कवि ने महाकाव्य की अधिकांश रूढ़ियों का निर्वाह किया है। छन्द प्रयोग के सम्बन्ध में श्री शुकदेव बिहारी मिश्र का मत है कि :—

'रावण' में कवि ने ब्रजभाषा के पेटेण्ट छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें घनाक्षरी और सवैये बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। रौले और रूपमालाएँ भी सुन्दर आई हैं।"

रस के विषय में उनका मत है कि "रावण में यों तो सभी रसों का समावेश है परन्तु वीर और शृंगार की बहुलता है और इन्हीं रसों का पारिपाक भी हुआ है। कैकसी का रूप निरूपण कवि ने बड़ी सुन्दरतापूर्वक किया है।"

कैकसी के चलत गुलाब गुल लाला औ,
प्रवालनि बंधूकनि की सुषमा सकानी है।
त्योंही के कनद इन्दीवर अरविन्द वृन्द
चम्पक गुलाब की प्रभाई सकुचानी है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उड़न मराल लागे गज अकुलान लागे
केहारी गुफान में लुकाइवे की ठानी है।
दाडिम औ श्रीफल करिन्दन के कुम्भ घट
बाकी छवि सामुहै भरत मानौ पानी है।

सातवें सर्ग में विरह विधुर मेघनाद द्वारा अपनी प्रेमिका सुलोचना के पास सन्देशहर के रूप में चन्द्र को भेजने का चन्द्रदूत प्रसंग अति ललित और मधुर है। एक छन्द प्रस्तुत है:—

धाय कै अंक में पौढी निसंक
सुलोचना कौं जुपै सोवत पैयो।
तौ विनती कौ इती मम मानि कैं
प्रान प्रिया कौ न नेकु जगैयो।
मंद ही मंद सुधारस बिन्दु
सरोज से आनन पै बरसैयों।
यों सुकुमारी की नींदि निवारि
हमारो सनेह संदेशों सुनैयो।

यद्यपि महाकाव्य का कथानक वाल्मीकि से लिया गया है परन्तु कवि ने अपनी प्रखर प्रतिभा से उसे चमत्कार एवं सौन्दर्य से संजो दिया है। छन्दों के रसानुकूल चयन, गुण और वृत्ति के नितान्त मनोरम सामंजस्य भावानुकूल भाषा ने रचना को हृदयग्राहिणी बना दिया है। कवि अपने युग के प्रभाव से प्रभावित हुआ है। मुनिओं और राक्षसों के संघर्ष में १९४२ की क्रान्ति तथा शूर्पणखा के राज्य प्रशासिका बनाने में उसने सरोजिनी नायडू के गवर्नर होने की घटनाओं का आभास है।

कवि ने आशीर्वादात्मक मंगलाचरण से महाकाव्य का समापन किया है तथा उसमें समाप्ति के वर्गादि का भी निर्देश किया है:—

नित ही बधाई बजत रावन काव्य की रचना नई।
सिववदन नभ नभ नैन सवत पूस में पूरन भई।
जे पच्छपात विसारि याके पढन में मन लाइ हैं।
नूतन विचार प्रवाह या में अवसहि ते पाइ हैं।

तदुपरान्त कवि ने अपना परिचय देकर ग्रन्थ की समाप्ति की है:—

सीतापुर मण्डल अमीर अहमद खाँ के
राज में प्रसिद्ध महमूदावार ग्राम है।
वैश्य वंश भूषन अदूखन सबै ही भांति
मातादीन साह कौ सुवन अभिराम है।
कवि हरिनाथ तहाँ मुदित निवास करै
नन्दके कुमार जू कौं करत प्रनाम है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Vrindavan Das Trust Collection, Lucknow

गिरिजा गिरीस चलन रज पाहूबे की
जाके हिय माँहि अभिलाष निस याम है।

दैत्यवंश—रघुवंश के अनुकरण पर ब्रजभाषा के प्राचीन छन्दों और पुरानी परिपाटी में लिखित महाकाव्य है। इसमें वास्तविक कवित्व है अतएव यह चिर नवीन बन गया है। इस रचना पर कवि को देव पुरस्कार और रत्नाकर पुरस्कार मिले थे। इस रचना के मूल में कवि की यह धारणा रही है कि "मानव का अविकसित या अल्पविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव है। फलतः दैत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है जिसमें शारीरिक बल प्रचुर मात्रा में मौजूद है, क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है, परन्तु मस्तिष्क बल अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्रायः एक से अनुपात में किसी वर्ग में नहीं पाई जातीं। विकास क्रम में यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग में जैसे-जैसे मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है शारीरिक बल का ह्रास भी होता चला जाता है। छल प्रपंच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढ़े चढ़े हैं तो उनमें सरलता विश्वास, सत्यनिष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर से निर्बल हैं पर चतुर अधिक हैं, वे बात बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं। किन्तु साधारणतया लोग देवों में सद्गुणों और दैत्यों में असद्गुणों की भावना करते हैं किन्तु पौराणिक आख्यानों के पढ़ने सुनने वाले जानते हैं कि देवों में निरे दिव्य गुण ही नहीं हैं उनमें अन्य कमजोरियाँ भी हैं। कथानक श्रीमद्भागवत पर आधारित है जिसमें यथोचित कल्पना का पुट है। कवि ने इसे स्वीकार भी किया है:—

"पद अरविन्द सारदा के दोऊ ध्याय मंजु
सुमिरि महेश निज लेखनी उठाइहौं।
लै कै सार सकल पुरान काव्य नाटक कौ
आपुनी ही ओरते मैं कछुक मिलाइहौं।
या विधि पुरान की कथा कौ काव्यरूप दै कै
कविता प्रबीनन कौ मन बहराइ हौं।
याही व्याज देवनि के बंधु दैत्यवंसिनि कौ
रुचिर चरित्र चारु प्रमुदित गाइ हौं।"

दिति के पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु से भयभीत देवताओं ने विष्णु द्वारा दोनों का वध करवा दिया। दैत्यवंश परम्परा को भंग करने वाले प्रह्लाद को राज्य न दिया जाकर उसके पुत्र विरोचन को दिया गया। विरोचन देवताओं की चाल में आ गया और वृहस्पति के उकसाने पर वैकुण्ठ पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया। शुक्राचार्य ने दैत्यों को सतर्क कर विरोचन को सिंहासन से च्युत कर बलि को राजा बनाया। यही बलि दैत्यवंश काव्य का नायक (मध्यनायक) है (जिस प्रकार रघुवंश में राम हैं)। बलि भी देवताओं की चालों में आ जाते हैं, समुद्रमंथन होता है, देव वासुकी की पूंछ पकड़ते हैं और दैत्य उसका फण दैत्यों को इसमें महान कष्ट होता है। बटवारे में देव चालाकी करते हैं, लक्ष्मी, रंभा, गज,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

और अमृत आदि स्वयं लेना चाहते हैं तथा दैत्यों को वारुणी और विष देना चाहते हैं। दैत्य अमृतघट ले जाते हैं, देव रात में अमृत की चोरी करवा लेते हैं स्वयं बंटवारा करते हैं राहु देवों में जा बैठता है उसके दो खण्ड हो जाते हैं।

महाकाव्य के प्रथम सर्ग में दैत्यवंश का परिचय द्वितीय में इन्द्र की राजनीति एवं विरोचन से संवाद, तृतीय में समुद्रमंथन का विवरण चतुर्थ में लक्ष्मी स्वयंवर और अमृत एवं वारुणी पान व्याख्यात हैं। लक्ष्मी स्वयंवर अत्यन्त रोचक प्रसंग है इसमें सरस्वती लक्ष्मी के साथ जाती हैं और सभी का परिचय देती हैं, परिचयों में कवि की वचन-विदग्धता दर्शनीय है:—

ठानियो रारि पुलोमजा सौं जनि
औ अदिति कौं संतोषहि दीजियो।
पाय सुरेस सौ नायके आयु
सबै सुख जीवन के उत कीजियो।

ब्रह्मा का परिचय—

तीनहू लोक के ये करता
अरु चारहू वेद बनावन हारे।
दाढी भई सन सी सिगरी
सिर पै कहूँ केस न दीखत कारे।
नारद सौ इनकें है सपूत
तिहूँपुर ज्ञान सिखावन हारे।
प्रेम की पास में बाँधन कौ
तुम्हें बूढे बबा इतै हैं पगु धारे॥

मोहिनी रूपधारी भगवान का स्त्रीरूप वर्णन अत्यन्त मनोहर है। उनके बंटवारे का वर्णन तो देखिए:—

बारुनी कौं तिय हीरा कटौरी में
ढारि अदेवनि के ढिग ल्यावत।
त्योंही सुधा भरिके पुखराज
कटोरिया में सुरवृन्द छकावत।
या विधि चालनि कौ तिय की
नहिं ता समैं कोऊ तहाँ लखि पावत।
देत संतोष नहीं सबको
इमिछद्म तिया सुरकाज सजावत।

पंचम सर्ग में सभा आयोजन तथा देवासुरों का युद्ध हेतु प्रस्थान वर्णित है, षष्ठ सर्ग में देवासुर संग्राम और सप्तम में अमरावती अवरोध तथा माता के कथन पर इन्द्र का मानसरोवर में छिपना वर्णित है। विरह कातर इन्द्र हंस द्वारा अपना संदेश भेजता है। हंसदूत प्रसंग इस काव्य का अत्यन्त रोचक प्रसंग है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Babu Vrindavan Das Trust Collection, Lucknow

हौं सबै देवनि कौं अधिराज
कुभाग सौं पै निज राज बिहाई।
मातु तिया सुत बंधुनि त्यागि
बसे तट मानस के हम आई।
बीति गई बरसैं कितनी
तिनकी सुधि पै न अजौं लगि पाई।
यातैं हमारो संदेसो सखा
बनिता ढ़िग दीजियो तौ पहुँचाई।

अष्टम सर्ग में बलि का स्वागत तथा नवम में बलि द्वारा अश्वमेघ का वर्णन हैं :—

अस्वमेघ याजन करत, द्विज गन धरम धुरीन।
बलिहिं करावन मख लगे, सादर परम प्रवीन।

दशम सर्ग में वामन का जन्म और अदिति द्वारा अमरावती अवरोध का वर्णन है। एकादश सर्ग में वामन कश्यप संवाद और वामन का बलिवंचन के लिए प्रस्थान तक का कथानक है। द्वादश में बलि-वंचन का वर्णन है। बलि के यज्ञाश्व के रक्षार्थ बाहर गया हुआ बाणासुर जब लौटकर आता है तो बलि की राजधानी को दैत्य विहीन देखकर 'सोनितपुर' में अपनी राजधानी बनाता है। वहाँ उसके स्कन्द नामक पुत्र तथा ऊषा नामक कन्या का जन्म होता है। त्रयोदश सर्ग में ऊषा अनिरुद्ध का आख्यान है। कामपीडित ऊषा स्वप्न की बात अपनी सखी चित्रलेखा को बताती है:—

"तौ सौं दुराव की बात कहा
इमि भाख्यो ऊषा तेहि की दिसि हेरी।
सापने में घनुधारी लख्यो
जिन माल प्रसूननि मो गर गेरी।
अंक भर्‌यौ मोहि गाढे सखी।
करी नेह नही बतियाँ बहुतेरी।
पानि सरोजहिं धारि लखौ
धरकैं अजहूँ छतियाँ लखौ मेरी।"

हँसकर चित्ररेखा ने उत्तर दिया।

"दै है कहा हमको उपहार में
जो तुव पूरी करैं अभिलासैं"

वह अनिरुद्ध को पर्यंक सहित उड़ाकर ले आती है। उधर द्वारिका में अनिरुद्ध को गायब देखकर ढूँढ़ खोज होती है, ज्ञात होता है कि:—

बानासुर की सुता सहेली लै गई ताहि उडाई।
अरु तेहि निज अवरोध गेह में राख्यौ बाम दुराई।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चौदहवें सर्ग में अनिरुद्ध अन्वेषण तथा पन्द्रहवें सर्ग में श्रोणितपुर अवरोध का कथानक है बाणासुर सैन्य सजाकर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है शिव मार्ग में मिलते हैं युद्ध करने को मना करते हैं और कहते हैं :—

हर कह बान इन्हैं नहिं जानत ये त्रिलोक के स्वामी।
कैसे लरौ सामुहे इनके, विधि इनको अनुगामी।
याते मतौ हमारो येतो मानि अवसि सुत लीजै।
विधिवत मार कुमारहि हठ तजि ब्याह, उषा को दीजै॥

बाणासुर उत्तर देता है कि :—

चाहत नाथ सन्धि तौ पहले उनहि देउ लौटाई।
छाडौ युद्धभूमि नहिं तब लौं प्रभु पद कोटि दुहाई।
पावों समर वीरगति चाहै पाँव न पाछे दैहौं।
रन में पीठ दिखाय सत्रु कौ कुलहि कलंक न लैहौं।

यदु सेना लौटती है ऊषा अनिरुद्ध का विवाह होता है। सप्तदश सर्ग में विरोचन और बाणासुर का स्वर्गारोहण एवं अष्टादश सर्ग में स्कन्द का राज्य और प्रकृति वर्णन है।

प्रबन्ध काव्य होने के नाते वर्णनात्मकता मिलती है, कल्पना के सुन्दर पुट से उसमें रोचकता का तत्व सन्निविष्ट हो गया है। उत्कृष्ट ब्रजभाषा में लिखित इस महाकाव्य में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है, पुस्तक के अन्त में तिथि का भी निर्देश है।

उरध्याय सिव पद कंज यहि बर ग्रंथ की रचना खरी।
सुभ होलिका अलिचरण ग्रह रस इन्दु में पूरन करी॥

द्रौपदी दुकूल

ब्रजभाषा के रससिद्ध पीयूषवर्षी कवि श्री रामलला उपनाम 'लला' द्वारा रचित 'द्रोपदी दुकूल' अ० भा० ब्रज-साहित्य मंडल द्वारा श्री निवासदास पुरस्कार के द्रव्य से मुद्रित द्रोपदी चीरहरण संबंधी महाभारत के सभापर्व के कथानक पर आधारित एक खण्डकाव्य है। इसकी भूमिका ब्रजसाहित्य मंडल के भू० पू० अध्यक्ष तथा हिन्दी के सर्वविश्रुत कवि स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन ने लिखी है। खण्ड-काव्य का प्रारंभ इस मंगलाचरण से होता है—

राजन कौं राज महाराजन कौं महाराज
जदुराज राज की निवाज निधि बन्दौं मैं।
'लला कवि' द्वारिकापुरी की प्रतिभा की पुंज
सदन सनेह की विभाज निधि बन्दौं मैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Sarayu Trust Collection, Lucknow

हौं सबै देवनि कौं अधिराज
कुभाग सौं पै निज राज बिहाई।
मातु तिया सुत बंधुनि त्यागि
बसे तट मानस के हम आई।
बीति गई बरसैं कितनी
तिनकी सुधि पै न अजौं लगि पाई।
यातैं हमारो संदेसो सखा
बनिता ढ़िग दीजियो तौ पहुँचाई।

अष्टम सर्ग में वलि का स्वागत तथा नवम में वलि द्वारा अश्वमेघ का वर्णन हैं :—

अस्वमेघ याजन करत, द्विज गन धरम धुरीन।
बलिहिं करावन मख लगे, सादर परम प्रवीन।

दशम सर्ग में वामन का जन्म और अदिति द्वारा अमरावती अवरोध का वर्णन है। एकादश सर्ग में वामन कश्यप संवाद और वामन का वलिवंचन के लिए प्रस्थान तक का कथानक है। द्वादश में वलि-वंचन का वर्णन है। वलि के यज्ञाश्व के रक्षार्थ बाहर गया हुआ बाणासुर जब लौटकर आता है तो वलि की राजधानी को दैत्य विहीन देखकर 'सोनितपुर' में अपनी राजधानी बनाता है। वहाँ उसके स्कन्द नामक पुत्र तथा ऊषा नामक कन्या का जन्म होता है। त्रयोदश सर्ग में ऊषा अनिरुद्ध का आख्यान है। कामपीडित ऊषा स्वप्न की बात अपनी सखी चित्रलेखा को बताती है:—

"तौ सौं दुराव की बात कहा
इमि भाख्यो ऊषा तेहि की दिसि हेरी।
सापने में धनुधारी लख्यो
जिन माल प्रसूननि मो गर गेरी।
अंक भर्‌यौ मोहि गाढे सखी।
करी नेह नही बतियाँ बहुतेरी।
पानि सरोजहिं धारि लखौ
धरकैं अजहूँ छतियाँ लखौ मेरी।"

हँसकर चित्ररेखा ने उत्तर दिया।

"दै है कहा हमको उपहार में
जो तुव पूरी करैं अभिलासैं"

वह अनिरुद्ध को पर्यंक सहित उड़ाकर ले आती है। उधर द्वारिका में अनिरुद्ध को गायब देखकर ढूँढ़ खोज होती है, ज्ञात होता है कि:—

बानासुर की सुता सहेली लै गई ताहि उडाई।
अरु तेहि निज अवरोध गेह में राख्यौ बाम दुराई।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चौदहवें सर्ग में अनिरुद्ध अन्वेषण तथा पन्द्रहवें सर्ग में श्रोणितपुर अवरोध का कथानक है बाणासुर सैन्य सजाकर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है शिव मार्ग में मिलते हैं युद्ध करने को मना करते हैं और कहते हैं :—

हर कह बान इन्हैं नहिं जानत ये त्रिलोक के स्वामी।
कैसे लरौ सामुहे इनके, विधि इनको अनुगामी।
याते मतौ हमारो येतो मानि अवसि सुत लीजै।
विधिवत मार कुमारहि हठ तजि ब्याह, उषा को दीजै॥

बाणासुर उत्तर देता है कि :—

चाहत नाथ सन्धि तौ पहले उनहि देउ लौटाई।
छाडौ युद्धभूमि नहिं तब लौं प्रभु पद कोटि दुहाई।
पावों समर वीरगति चाहै पाँव न पाछे दैहौं।
रन में पीठ दिखाय सत्रु कौ कुलहि कलंक न लैहौं।

यदु सेना लौटती है ऊषा अनिरुद्ध का विवाह होता है। सप्तदश सर्ग में विरोचन और बाणासुर का स्वर्गारोहण एवं अष्टादश सर्ग में स्कन्द का राज्य और प्रकृति वर्णन है।

प्रबन्ध काव्य होने के नाते वर्णनात्मकता मिलती है, कल्पना के सुन्दर पुट से उसमें रोचकता का तत्व सन्निविष्ट हो गया है। उत्कृष्ट ब्रजभाषा में लिखित इस महाकाव्य में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है, पुस्तक के अन्त में तिथि का भी निर्देश है।

उरध्याय सिव पद कंज यहि बर ग्रंथ की रचना खरी।
सुभ होलिका अलिचरण ग्रह रस इन्दु में पूरन करी॥

द्रौपदी दुकूल

ब्रजभाषा के रससिद्ध पीयूषवर्षी कवि श्री रामलला उपनाम 'लला' द्वारा रचित 'द्रोपदी दुकूल' अ० भा० ब्रज-साहित्य मंडल द्वारा श्री निवासदास पुरस्कार के द्रव्य से मुद्रित द्रोपदी चीरहरण संबंधी महाभारत के सभापर्व के कथानक पर आधारित एक खण्डकाव्य है। इसकी भूमिका ब्रजसाहित्य मंडल के भू० पू० अध्यक्ष तथा हिन्दी के सर्वविश्रुत कवि स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन ने लिखी है। खण्ड-काव्य का प्रारंभ इस मंगलाचरण से होता है—

राजन कौं राज महाराजन कौं महाराज
जदुराज राज की निवाज निधि बन्दौं मैं।
'लला कवि' द्वारिकापुरी की प्रतिभा की पुंज
सदन सनेह की विभाज निधि बन्दौं मैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ताज निधि बन्दौं सुख साज निधि बन्दौं, गाज
निज जन काज की निवाज निधि बन्दौं मैं।
कौरव समाज बाज राखी द्रौपदी की लाज
ब्रजराज प्यारे की विराज निधि बन्दौं मैं॥

इसके उपरान्त कवि ने 'कथा संदर्भ' शीर्षक छन्दों में पूर्वकथा का निर्देश कर दिया है। आधिकारिक कथावस्तु मंत्रणा नामक सर्ग से प्रारंभ होती है यही इस काव्य का प्रथम सर्ग है। इस सर्ग में द्यूत का षड्यंत्र रचा जाता है कवि ने इस प्रसंग में विदुर के चरित्र को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है वे धृतराष्ट्र को द्यूत षड़यंत्र से बचाने में सचेष्ट दिखाये गये हैं पर पुत्र मोह में विदुर का कथन अप्रभावी ही सिद्ध होता है। कवि ने इस समय पर एक नीतिपरक छन्द प्रस्तुत किया है वह नीचे उद्धृत है:—

बोलिवौ बुरौ है सदा सांच सांच मन्त्रिन कौं
तोलिबौ बुरौ है सदा निज मति हेटा कौ।
'लला कवि' न्हायवौं बुरौ है ताते नीरन कौ
खायबौ बुरौ है संग विकट उघेटा कौ।
जायवौ बुरौं है नित्त नित्त कोस एक हू कौं
गाजौं बुरौ बादर कौ साजौ बुरौ जेठा कौ।
नारी कौ बिछोह बुरौ बैरिन कौ छोह बुरौ
कोह बुरौ कायर कौ मोह बुरौ बेटा कौ॥

'इन्द्रप्रस्थ' नामक द्वितीय सर्ग में इन्द्रप्रस्थ वर्णन युधिष्ठिर की सभा का वर्णन, वनवर्णन तथा उपवन वर्णन हैं जो कि प्राचीन वस्तुपरिगणन शैली में है। कौरव राज का युधिष्ठिर को पत्र भी इसी सर्ग में प्राप्त होता है। आगमन नामक तृतीय सर्ग में युधिष्ठिर के हस्तिनापुर गमन के प्रसंग में अशकुनों का वर्णन आगामी कष्ट के सूचक के रूप में सुवर्णित है। 'द्यूत' नमक पंचमसर्ग में कौरव सभा की भव्यता तथा द्यूत का वर्णन है। छठे 'करुणा' नामक अध्याय में द्रौपदी की करुण गुहार का मार्मिक वर्णन है:—

"चारों ओर बैठे मुख मोरि मोरि बैठे धीर।
अब यदुबीर बीर सरन तिहारी मैं।"

या

"पंचपति हार बैठे पंच पतहार बैठे
अब सरपंच पंचअलि कौ सहारौ तू।"

यदि सती की मर्यादा नष्ट हो गई तो नारी का यह अपमान पद्मजा लक्ष्मी को भी असह्य होगा:—

"जो न पदपद्म आय आरत निवारिस हौ तो
पद्म धर पद्मा न पद्म पद परसैगी॥"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

"मेरी लाज तेरी लाज तेरी लाज मेरी लाज।
मेरी लाज जायगी तौ तेरी लाज जायगी॥"

भगवत प्रतिज्ञा नामक सप्तम सर्ग में केशव की प्रतिज्ञा का वर्णन है:—

"भूमि पै सौं अंबर लौं अंबर बरन करौं।
द्रोपदी के अंबर कौं अंबर बिहारी अब॥"

अष्टम सर्ग में भगवान स्वयं चीरावतार धारण कर लेते हैं, इस सर्ग का नाम कवि ने 'चीर' लिखा है। इस सर्ग में कवि कल्पना का उदात्त रूप निखर कर आया है। कवि के ऊहात्मक कथन उत्कृष्टता पर दम भरते हैं। अपने प्रिय छन्द अमृतध्वनि का भी इसमें कवि ने प्रयोग किया है। एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

पट पट के रंग हेर बहु दुःसासन वरबंड।
'सुकवि' झटकन लग्यो चंड दंड अखंड।
चण्ड दंड अखंड दुलि दुलि तंड तुल तुल।
अंड्ड डुलि प्रति पाण्डुक् कुल हित खंड्व बल खुल।
गंडग् गुलि घुल भंगव् वजन उमंग घट घट।
अंग गहन भुजंगव् वहन जु रंगफ् पट पट॥

इस खंडकाव्य की भाषा टकसाली ब्रजभाषा है, रीतिकालीन प्रणाली पर इसकी रचना कवि ने की है। घनाक्षरी दोहा, सोरठा, छप्पय, रौला, कुण्डली, चल, करभ हंस, किरीट, मत्तगयंद, वानर मनहर, मच्छ, अमृतध्वनि आदि छन्दों का कवि ने प्रयोग किया है। श्री नवीन जी के विचारों में:—

"लला" कवि की रचना से संपर्क होते ही मुक्तक का आनंद उमड़ उठता है। शब्दावली का ओज, एक ही छन्द में कल्पना की उड़ान और उसका अनोखा समाधान तथा उतने ही छोटे छंद में रस से परिपाक का पूर्ण आस्वाद यही रचना के प्रत्येक कवित्त में हमें मिलता है। यही कारण है कि ग्रन्थ का प्रत्येक छंद प्राणवान है और पाठक को अपने ओज से आमूल हिला देता है। वहीं प्रबंध और कथा का सूत्र भी उनके साथ उलझा हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। फिर विषय वस्तु तो अद्भुत है ही।"

"कवि ने इस खण्डकाव्य में दो रुचियों का समन्वय उपस्थित किया है। एक रुचि मुक्तक रचनाओं में मिलने वाली चमत्कार कला से आनंदित होती है, दूसरी कथा परंपरा के कौतूहल और प्रबंध कौशल से प्रसन्न होती है।"

कवि ने द्रोपदी दुकूल की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है कि:—

"पीर की कहानी दीन भीरु की कहानी कही
चीर की कहानी जदुवीर की कहानी है।"

अंत में कवि ने रचना काल भी दिया है:—

"संवत् निधि शशि शशि सहस मधुसित प्रतिपद बुद्ध।
'सुकवि लला' पावन गिरा वरनौं चरित विशुद्ध॥"

कूबरी

कूबरी—कूबरी ब्रजभाषा का खण्ड काव्य है। इसके रचयिता श्री रामनारायण जी अग्रवाल हैं। श्री अग्रवाल जी की बहुमुखी प्रतिभा का प्रतिफलन इस काव्य में पदे पदे दृष्टिगोचर होता है। काव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है:—

८५

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मोरपच्छ बारे उरकच्छ में प्रतच्छ राज
मोरपच्छ कीजिये संम्हार काज दीजिये।
असरन सरन चरन में सरन दीजै
सारदा समेत नाथ जन पै पसीजिये।
'राम कवि' जानत न छंद रस रीति भेद
ए हो। रसराज के सिंगार सार दीजिये।
कुबरी कुअंगिनी संरंगिनी करी ही जासौं
ताही कृपा कोर सो इतै हू चितै लीजियै॥

खंडकाव्य का प्रारंभ पूर्व कथा से है। शूर्पणखा की राम को अंक लगाने की लालसा थी उसे कुबरी का जन्म देकर पूर्ण करने का वृत्तान्त कवि ने पूर्वकथा के रूप में दिया है:—

"बन पंचवटी बट के तट राजत पर्णकुटी में लखे सुखदाई।
तिन्हें मानि लियौ पति ता दिन सों मरजाद के बंध बँधे रघुराई।
मनुहार करी पचिहारि गई भरि कें भुज अंक न भेटन पाई।
अभिलास सोई भरपावन कारन जाई ये राम भये जु कन्हाई।

कुब्जा का ऐसी मथुरा नगरी में जन्म हुआ जहाँ रूप और वैभव बिखरा पड़ता था।

नृपराज की नाज भरी नगरी नविकै सुर कन्या जहाँ चलतीं।
बहु किन्नरी सुन्दरी नारी बनीं दबिकैं भरी त्रास जहाँ चलतीं।
वर अंधक बंस उजागरी नागरी ही नवरंगी वहाँ चलतीं।
ये कलंकिनी अंग सों हीन तहाँ कुबरी चलती तौ कहाँ चलती।

यदुवंशियों और कंस के पुरोहित गर्ग जी की कृपा कोर से वह कंस के राजदरबार में आ गई, विद्वान् गर्ग ने उसकी व्यथा को युक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया:—

संपति सुमेर की बसै है नगरी में त्यारी
राज में तुम्हारे आज सब ही सनाथ हैं।
दैन्य दुख दारिद निकारि पुर बाहिर तें
सब कौ सुरेस सौ बसायौ निज हाथ है।
एक ही कलंक अवसेस ये दरिद्रता की
राज में बची है जाकौ दूसरौ न साथ है।
अचरज मोय जाते राजन। दिखाई तोय
पारस पुरी में लोहं कूबरी अनाथ है॥

कंस ने पुरोहित की बात को शिरोधार्य करते हुये कहा कि:—

"आज सों घिसैगी यह चन्दन हमारौ नित्य
सांझ औ सकारे मम मस्तक चढ़ावैगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक स्वर्ण मुद्रा पाय नित्य ही करैगी चैन
चेरी है हमारी ये परम पद पावैगी ॥"

जीवन यापन की समुचित व्यवस्था होने के उपरान्त कुब्जा के मन में कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता 'पूर्वानुराग नामक सर्ग में यही कथा वर्णित है:—

सोन चिरैया सुघर सयानी
तू चुप बैठी कहा सुनति है, मेरी करुन अटपटी बानी।
कहि मत दीजो कंस राज सों सखि यह मेरी राम कहानी।
बिना निहारे हरि हलधर न तु अवसि जीव की है है हानी।
जनम जनम तोकों कोसूंगी का न करत जग आरत प्रानी।
सखि जो उड़त जाय वृन्दावन मिलै कहुँ तोय वे दधिदानी।
ढोक दूर ते चरन कमल की करि कहियो इतनी गुनखानी।
त्यारी दीन बन्धुता मोहन मथुरा नहिं बेमोल बिकानी ॥

मन की आस पूरी होती है, कृष्ण कंस के निमंत्रण पर मथुरा आते हैं, कुब्जा को मार्ग में जाते हुए देखकर कृष्ण का मित्र सुदामा उपहास करता है:—

बोलो सिरीदामा तबे स्याम के निकट जाय
देखलै कन्हैया यह जीवन की संगिनी।
कारे संग कारी की यों जोट नीकी मिली
काली के नथैया देख कारी ये भुजंगिनी।
ऐसी रूप बारी ब्रजभूमि में न एकौ मिलै
कहि बलराम सों कराऊँ आज भंगिनी।
मुरली के भार सों त्रिभंगी तू भयो है लला।
कूबर के भार बाले ये हूं है त्रिभंगिनी ॥

कृष्ण ने मित्र की बात सुनकर उसके आगे आये, कुबरी ने उन्हें चन्दन चर्चित किया, कृष्ण ने तत्काल उसके प्रेम और भक्ति का फल दिया:—

प्रीति कूं निहार डग एक धरि आगै स्याम
पाँयन के पंजे पर पंजौ एक धरि लीयो।
एक कर कंज धरि कटिपै कृपा पसार
दूसरे सों कूबरी कौ चिबुक पकीरि लियौ।
राम कवि 'ग्रीव करि ऊँची जो निहारी नेक
नैनन में नैन डारि मनहिं जकरि लियो।
चट चट चटक चटाक चटका सौ भयौ
झटका में खटका सों सूधौ कूब करि दियौ ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मोरपच्छ बारे उरकच्छ में प्रतच्छ राज
मोरपच्छ कीजिये सम्हार काज दीजिये।
असरन सरन चरन में सरन दीजै
सारदा समेत नाथ जन पै पसीजिये।
'राम कवि' जानत न छंद रस रीति भेद
ए हो। रसराज के सिंगार सार दीजिये।
कुबरी कुअंगिनी संरंगिनी करी ही जासौं
ताही कृपा कोर सो इतै हू चितै लीजियै॥

खंडकाव्य का प्रारंभ पूर्व कथा से है। शूर्पणखा की राम को अंक लगाने की लालसा थी उसे कुबरी का जन्म देकर पूर्ण करने का वृत्तान्त कवि ने पूर्वकथा के रूप में दिया है:—

"बन पंचवटी बट के तट राजत पर्णकुटी में लखे सुखदाई।
तिन्हें मानि लियौ पति ता दिन सों मरजाद के बंध बँधे रघुराई।
मनुहार करी पचिहारि गई भरि कें भुज अंक न भेटन पाई।
अभिलास सोई भरपावन कारन जाई ये राम भये जु कन्हाई।

कुब्जा का ऐसी मथुरा नगरी में जन्म हुआ जहाँ रूप और वैभव बिखरा पड़ता था।

नृपराज की नाज भरी नगरी नविकै सुर कन्या जहाँ चलतीं।
बहु किन्नरी सुन्दरी नारी बनीं दविकैं भरी त्रास जहाँ चलतीं।
वर अंधक बंस उजागरी नागरी ही नवरंगी वहाँ चलतीं।
ये कलंकिनी अंग सों हीन तहाँ कुबरी चलती तौ कहाँ चलती।

यदुवंशियों और कंस के पुरोहित गर्ग जी की कृपा कोर से वह कंस के राजदरबार में आ गई, विद्वान् गर्ग ने उसकी व्यथा को युक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया:—

संपति सुमेर की बसै है नगरी में त्यारी
राज में तुम्हारे आज सब ही सनाथ हैं।
दैन्य दुख दारिद निकारि पुर बाहिर तें
सब कौ सुरेस सौ बसायौ निज हाथ है।
एक ही कलंक अवसेस ये दरिद्रता की
राज में बची है जाकौ दूसरौ न साथ है।
अचरज मोय जाते राजन। दिखाई तोय
पारस पुरी में लोहं कूबरी अनाथ है॥

कंस ने पुरोहित की बात को शिरोधार्य करते हुये कहा कि:—

"आज सों घिसैगी यह चन्दन हमारौ नित्य
सांझ औ सकारे मम मस्तक चढ़ावैगी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एक स्वर्ण मुद्रा पाय नित्य ही करैगी चैन
चेरी है हमारी ये परम पद पावैगी ॥"

जीवन यापन की समुचित व्यवस्था होने के उपरान्त कुब्जा के मन में कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता 'पूर्वानुराग नामक सर्ग में यही कथा वर्णित है:—

सोन चिरैया सुघर सयानी
तू चुप बैठी कहा सुनति है, मेरी करुन अटपटी बानी।
कहि मत दीजो कंस राज सों सखि यह मेरी राम कहानी।
बिना निहारे हरि हलधर न तु अवसि जीव की है है हानी।
जनम जनम तोकौं कोसूंगी का न करत जग आरत प्रानी।
सखि जो उड़त जाय वृन्दावन मिलै कहुँ तोय वे दधिदानी।
ढोक दूर ते चरन कमल की करि कहियो इतनी गुनखानी।
त्यारी दीन बन्धुता मोहन मथुरा नहिं बेमोल बिकानी ॥

मन की आस पूरी होती है, कृष्ण कंस के निमंत्रण पर मथुरा आते हैं, कुब्जा को मार्ग में जाते हुए देखकर कृष्ण का मित्र सुदामा उपहास करता है:—

बोलो सिरीदामा तबे स्याम के निकट जाय
देखलै कन्हैया यह जीवन की संगिनी।
कारे संग कारी की यों जोट नीकी मिली
काली के नथैया देख कारी ये भुजंगिनी।
ऐसी रूप बारी ब्रजभूमि में न एकौ मिलै
कहि बलराम सों कराऊँ आज भंगिनी।
मुरली के भार सों त्रिभंगी तू भयो है लला।
कूबर के भार बाले ये हूं है त्रिभंगिनी ॥

कृष्ण ने मित्र की बात सुनकर उसके आगे आये, कुबरी ने उन्हें चन्दन चर्चित किया, कृष्ण ने तत्काल उसके प्रेम और भक्ति का फल दिया:—

प्रीति कूं निहार डग एक धरि आगै स्याम
पाँयन के पंजे पर पंजौ एक धरि लीयो।
एक कर कंज धरि कटिपै कृपा पसार
दूसरे सों कूबरी कौ चिबुक पकीरि लियौ।
राम कवि 'ग्रीव करि ऊँची जो निहारी नेक
नैनन में नैन डारि मनहिं जकरि लियो।
चट चट चटक चटाक चटका सौ भयौ
झटका में खटका सों सूधौ कूब करि दियौ ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Sarayu Trust Collection, Lucknow

कुबरी सुन्दर बन गई, कृष्ण कूबरी के घर पधारे, और उसे महारानी पद दिया :—

पड़ी चरन यों कूबरी नैन नेह उमगाय।
गहि बिसाल भुजबंध हरि लीनी कंठ लगाय।
लीनी कंठ लगाय हृदय की तपन बुझाई।
यों कूबरी ने महारानी की पदवी पाई।
धन्य भई जदुनन्द कण्ठ कंठा की सुलड़ी।
वासुदेव सिर चढ़ी कंस के पायन जु पड़ी।

उधर गोकुल की गोपियों में सौतिया डाह उत्पन्न हुआ, नाना प्रकार के आक्षेप और परसोकले ढ़ाले, कूबरी ने भी अपने प्रेम की गहनता के बल पर उद्धव को सन्देश लेकर भेजा :—

मो सौं बिगारौ व्यर्थ, न तुम सी मेरी ख्वारी।
मैं तो क्वांरी किन्तु तुर्महिं पति पूतन बारी।
तन मन सों हमने बरे केवल कृष्ण मुरारी।
पर तुम सब ही करि चुकी, अब तक द्वै भरतार करौ अब तीसरौ।

मथुरा पर जरासन्ध ने चढ़ाई की, मथुरा का वैभव ध्वस्त हुआ। श्रीदाम कूबरी के पास आए और उसे राधा के पास बरसाने में रहने की परामर्श दिया। वह कृष्ण की प्रतिमूर्ति राधा के निकट गई और इन शब्दों में राधा का अभिनन्दन किया :—

सेस सारदादिक बखानें गुन नारद यों
सनक सनन्दन जयति जगवन्दिनी।
जय रसराज की सिंगार सार, रंगनी जै
चरन सरन लै त्रिताप दाप खंडिनी।
'राम कवि' जिन पै मधुप ब्रजराज राजैं
चरन कमल ब्रजरज मकरंदिनी।
दैन्य द्वंद गंजनी सकल फंद भंजनी जै
भक्तन अनन्दनी जै वृषभानु नंदिनी॥

यादवों का अन्त होने पर कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाम व्रज में आते हैं कृष्ण के दिवंगत होने की सूचना प्राप्त कर कूबरी भी कृष्ण में विलीन हो जाती है।

भई बिदा यों स्याम की जन्मभूमि पै जाय।
केसव के सम्मुख खड़ी, नैनन नीर बहाय।
नैनन नीर बहाय देह की सुधि बिसराये।
आँखि आँखि में डारी प्रान में प्रान रमाये।
मिली ज्योति में ज्योति यों तन तजि वृन्दावन गई।
'राम' कहैं घनस्याम के चरत कमल भ्रमरी भई।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कूबरी के बारे में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि :—

"इसमें खण्ड काव्य और मुक्तक के तत्व समान रूप से समाहित हैं। कवि ने कई प्रकार के अलग अलग प्रयोग किए हैं जो समग्र रूप में भी सफल हैं। गीत शैली, कवित्त शैली सवैया तथा नंददास को भ्रमरगीत शैली सभी इसमें विद्यमान है। इन सबको समाहित करने वाला सूत्र कवि की अपनी भावना या भाव चेतना है जो पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर दिखाई देती है।

श्री नरेन्द्र शर्मा ने कूबरी काव्य के मर्म को इन शब्दों में व्यक्त किया है :—

कूबरी अयोध्या में भी थी, जिसका नाम मंथरा था। मंथरा का सुधार न हो सका उसकी कुमंत्रणा के कैसे कैसे परिणाम निकले। श्रीराम ने सब कष्टों को सहर्ष स्वयं झेल लिया। श्रीकृष्ण ने प्रेम देकर कूबरी को सुधार दिया। विकृति का बाह्यलक्षण भीतर के किसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है यह कहना कठिन है पर प्राकृतिक विषमता को समता में परिणत करने का उपाय प्रेम है। प्रेम और आनंद के स्वरूप ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण ही कूबरी का उपचार कर सकते थे। कुब्जा दासी निरंकुश वैभव और अहम्मन्य भौतिक प्रभुता की सेवा में नियुक्त थी। हाथ उसके चंदन घिसते थे कंस के लिए और मन रमा हुआ था श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में। गोविन्द ने उसकी सुन ली। उसे विकृत से प्रकृत और अन्ततः प्रकृत से उदात्त किया। आज के नगरों में बसी हुई कुबड़ी मानवता, जो वैभव और भौतिक शक्ति की दासी है, न जाने कबतक उबरेगी।

कूबरी आधुनिक ब्रजभाषा काव्य की प्रतिनिधि रचना है इसे राज्य श्री प्रकाशन मथुरा ने प्रकाशित किया है।

केशव

यह ब्रजभाषा में लिखित लघु प्रबन्ध काव्य है। इसके रचयिता श्री दाऊदयाल गुप्त हैं तथा भूमिका लेखक ब्रज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् ज्योतिषी राधेश्याम जी द्विवेदी हैं। सस्ता साहित्य भवन मथुरा ने पुस्तक का प्रकाशन किया है। मंगलाचरण के उपरान्त काव्य का प्रारंभ देवकी वसुदेव के विवाह से होता है। देवकी की विदा के समय अचानक आकाशवाणी होती है :—

"तब गाजि उठी नभ बानि उतै
मथुरेस। कहा तुमरे मन भायो।
अति नेह कियौ तुम देवकि सों
अब वेगि करौ हिरदै पछतायौ।
यहि 'बीरन बीरन' पास सुनैरी
भूल फल्यौ अरु हाय ठगायौ।
रे मूरख खेल रह्यौ कैसो यहि
चौं नागिन कूं दूध पिबायौ॥

और इस आकाशवाणी का निष्कर्ष इन शब्दों में कवि ने दिया है :—

"सुनि जाकौ हि अष्टम लाल महा
विकराल अरे तेरौ काल बनैगो।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

इन वाक्यों को सुनकर कंस ने देवकी वसुदेव को कारागार में डाल दिया तथा उनके सात बालकों को मार डाला अष्टम बालक को वसुदेव रात्रि में ही गोकुल में अपने मित्र नन्द गोप के घर पहुँचा आए तथा उनकी सद्य: उत्पन्न कन्या को ले आए। गोकुल से लौटते हुए वसुदेव की मनस्थिति का कितना यथा-तथ्य वर्णन कवि ने किया है:—

"घर नन्द के जाइ घुसे वसुदेव
महा मन तर्क कुतर्कउ कीन्हौ।
गहि कन्याए पूत सुवाइ तहाँ
मथुरा इँ चले डग लम्बोई दीन्हौ।
मग याद सलौनी सी सूरत ही
अँखियान सौं आँसूउ झर झर चीन्हौ।
फिर जान कै ईस विधान बली
तज सोच कूं धीर हिरदै धर लीन्हौ।"

बालकृष्ण के वर्णन में पूतनावध, शकटासुरवध ब्रह्माण्डदर्शन, उलूखललीला, यमलार्जुन मोक्ष, धेनुकासुर वध, वकासुरवध, कालियमर्दन, प्रलम्बासुरवध आदि का अल्पविवरणात्मक निर्देश करते हुए कवि ने चीरहरण लीला और गिरिराजधारण लीला का चार चार छन्दों में तथा महारास का आठ छन्दों में वर्णन किया है। एक छन्द प्रस्तुत है:—

"हरि जानि कैं प्रीति की रीति महान
गहे कर छेरत तान सुरीली।
निरखैं निज नाथ कौ रूप छयौ मद
निरतत भौंत भई अति ढ़ीली।
जब होस भयौ न लख्यौ पिय पास
निरास सवै अति आँखउ गीली।
तब खोजत गावत गीत चलीं
सब डोलत बन बन राह कँटीली।"

अक्रूर का वृन्दावन गमन, कृष्ण का मथुरा आगमन, रजकवध, दरजी का सत्कार आदि के उपरान्त माली से मालाओं के मूल्य को पूछने का प्रसंग है माली का उत्तर कितना सुन्दर बन पड़ा है:—

"झुक भूमि कैं मोद में बोलि पर्‌यो
होंइ न्यारेइ न्यारे तौ मोल लगाने।
तुम हू तौ प्रभु नहिं प्रानिन कूं
परलोक में एक-से देउ ठिकाने।"

और भी

तुम देखौ जि हार अगार धर्‌यौ
जामें हारसिंगार के फूल लगाये।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रभु भगती कौ बर जाकौ मोल रह्यौ
दुख सोक सबइ जानें दूर हटाये।
पारिजात कै संग हैं रंग बिरंग
जिमाल सुरग के हैं दाम धराये।
यहि बेला चमेली गुलाब गुथे
भवनीर भजावे के भाव बिकाये।"

कूबरी, प्रसंग का चारु चित्रण कवि ने अनेक छन्दों में किया जिसका अंत कच्चे बंधन में हुआ है:—

"सुनि स्याम ने सीस डुराइ कहीं
सुभगे! लखि नेह हिरदै सरसानौ।
तव गेह पै आए बिना न निठै
मै तौ काचेई बंधन आज बँधानौ।"

रंगभूमि प्रवेश कुवलयापीडमर्दन, चाण्डूर, मुष्टिक, शल, तोशल वध तथा कंसवध के उपरान्त उग्रसेन और देवकी वसुदेव की मुक्ति के प्रसंग हैं। काव्य का अन्त उग्रसेन के राज्याभिषेक द्वारा होता है

सुललित ब्रजभाषा में रचित यह काव्य प्रवन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों के गुणों से युक्त है, इसकी कथात्मकता में जहाँ गतिमयता है वहाँ प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र मुक्तक के रूप में भी स्वयं में पूर्ण है। एक सौ सैंतीस छन्दों में सीमित यह लघु काव्य कमनीय वन पड़ा है। प्रकाशन संवत २०२३ है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

उत्तरकालीन मुग़ल सम्राट और उनकी रचनायें

डा० शालिग्राम गुप्त

औरंगजेब-सा कट्टर गाजी-मुगलिया बादशाह भी हिन्दी का हितैषी था। उपयोगिता की दृष्टि से वह हिन्दी को मत्हत्व देता था और फारसी की रंगभरी कविता से कुछ परहेज करता था। उसकी दृष्टि में धर्म के विचार से हिन्दी का भी वही स्थान था जो फारसी का था। यही कारण है कि लोक मंगल और शासन के सुभीते के लिये वह हिन्दी को फारसी से कहीं अधिक उपयोगी और लाभप्रद समझता था।

औरंगजेब हिन्दी के कवियों को दरबार में सम्मान से रखता था और उनकी साधु एवं नीतिमयी कविता को प्रोत्साहन देता एवं भली भाँति उनका आस्वादन करता था। उसके सम्बन्ध में बख्तावर खाँ का कहना है कि औरंगजेब गद्य का अच्छा लेखक था। हिन्दी पद्यरचना में भी अभ्यस्त था किन्तु उसमें अधिक लीन नहीं होता था। कारण यह था कि कुरान मजीद में कहा गया है कि कवि झूठी बातों में मग्न होते हैं। अतएव वह उन्हीं काव्यों पर ध्यान देता था जिनमें सदाचार हो।

मुगलिया बादशाह औरंगजेब को विकट संगीत द्रोंही प्रसिद्ध किया गया है, पर यथार्थ कुछ और ही है। वह नृत्य संगीत का द्रोही नहीं, रागरंग अथवा भ्रष्ट और अश्लील गानों का विरोधी था। उन्हीं को रोकने के लिये उसने गद्दी पर बैठने के बाद ११वें वर्ष में शाही दरबार में गवैयों को अपने सामने गाने नाचने से मना कर दिया था।

हिन्दी के महत्व को दृष्टि में रखकर उसने मुगल राजकुमारों को हिन्दी की शिक्षा दिलाई। फलस्वरूप उसका सर्वप्रिय घुरीण पुत्र मुहम्मद आज़म शाह हिन्दी का कल्पतरु बना। पर हिन्दी के दुर्भाग्य से वह दो दिन से अधिक शासक न रह सका। तख्त के लिये मुअज्ज़म 'शाह आलम' से युद्ध करते हुए आगरे के समीप जाजमऊ नामक स्थान पर अपने दो पुत्रों के साथ १० जून १७०७ ई० को खेत रहा।

मुहम्मद आज़म शाह ब्रजभाषा का बड़ा भारी भक्त था, और उसी के अध्ययन के लिये जनाब मीरजा खाँ ने 'ताह फ़ातुल हिन्द' की रचना भी की थी। आज़मशाह के जूझ जाने से मुअज्ज़म 'शाह आलम' का कंटक दूर हुआ। औरंगजेब का छोटा पुत्र मुहम्मद कामवख्श तो उसकी चहेती उदयपुरी महल का पुत्र होने के कारण शोख हो गया था और अपने को बहुत कुछ समझने लगा था। 'दीन पनाह'

---

१. वेनिस के समकालीन यात्री मनूची के कथनानुसार उदयपुरी महल दाराशिकोह के हरम में रहने वाली जार्जिया देश की दासी थी। मुगल सम्राटों के लाख प्रयत्न करने पर भी उदयपुर के राणा-वंश ने जब अपनी एक पुत्री भी उनको नहीं दी तो इस खिज़ालक को मिटाने के लये औरंगजेब ने दारा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

के खिताब से उसने भी दो दिन के लिये हैदराबाद (दक्षिण) में राज्य कर लिया। पर अंत में वह उत्तराधिकार युद्ध में पकड़ा गया और घाव की कठोरता के कारण, उपचार करने पर भी ३ जनवरी १७०९ को जीवित न रह सका।

२० फरवरी १७०७ को औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुअज्ज़म (जन्मकाल ४ अक्टू० १६४३) जिसे राजकुमारावस्था में 'शाह आलम' की उपाधि प्रदान की गई थी, वहादुरशाह के नाम से ६६ वर्ष की अवस्था में मार्च १७०७ में आगरा के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। शाह आलम वहादुरशाह की वादशाहत केवल ५ वर्ष रही। २७ फरवरी १७१२ को ७१ वर्ष की लम्वी आयु में कालकवलित होने पर भी उसने अपने ५ वर्ष के शासनकाल में सिद्ध कर दिया कि वह आलमगीर का वेटा ही नहीं, उदार और सहृदय शाहजहाँ का पौत्र भी था। भाषा (व्रज) और संस्कृत से उसे प्रेम था। संगीत का शौक था और था समूची जनता के लिये उसके कोमल हृदय में स्थान। शाह आलम वहादुर शाह की हिन्दी निष्ठा के विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। वह एक हिन्दू माता की कोख से उत्पन्न हुआ था और हिन्दुस्तान को ही अपना घर भी समझता था। फिर वह हिन्दी को क्यों न अपनाता? 'वहादुर शाह' के नाम से उसकी अनेक रचनायें आज उपलब्ध हैं जो उसके हिन्दी प्रेम की गाथा गा रही हैं।

१७१२ में वहादुरशाह के आँख मूदते ही मुगलों पर विपत्ति के वादल टूट पड़े। चारों ओर घने अंधकार की वर्षा होने लगी। जुल्फिकार खाँ की सहायता से लड़ मिड़ कर किसी तरह अल्पवयस मुईजुद्दीन अपने तीनों भाइयों को युद्ध में यमलोक पहुँचा कर २९ मार्च १७१२ को जहाँदारशाह की उपाधि धारण करके राज्यारूढ़ हुआ तो केवल ९ माह के शासन काल में सुरापान एवं दुराचार के ऐसे जघन्य कारनामे छोड़ गया कि जिसको पढ़कर हैरत होती है। शासन का समस्त भार अपने वजीर जुल्फिकार खाँ के कंधों पर डालकर स्वयं प्रेयसी नर्तकी लाल कुँवर की जुल्फे पेंचों में फँस गया। उसे लाल कुँवर के आँचल में ही सब कुछ दिखाई देने लगा। त्रिलोक की इस झाँकी को छोड़कर राज्य की चिंता कौन करता? लाल कुँवर भी कोई नूरजहाँ न थी कि शासन की वागडोर सँभालती और सामंतों को मनमाना नाच नचाती। हुआ भी वही जिसकी तैयारी इस तरह हो रही थी।

जहाँदारशाह की प्रेयसी लाल कुंवर जो वस्तुतः एक वेश्या की लड़की थी, अत्यन्त चंचल रूपवती और सुरीली थी। उसकी माँ उसे शीरी लंका कहा करती थी। दिल्ली में उसका मकान तत्कालीन शाहजादों और अमीरों का केन्द्र स्थल था लेकिन उसकी माँ सदैव एक मोटे शिकार की खोज में रहती थी। अतः उसने उन हुस्न परस्तों में से जहाँवख्श को चुना जो तत्कालीन सम्राट जहाँदारशाह का ममेरा भाई था और था एक छैल छबीला तरहदार भी।

की हार के बाद उसकी उक्त रखैल को अपनी उपपत्नी बनाकर उसको 'उदयपुरी महल' का खिताब प्रदान किया था। वृद्धावस्था तक सम्राट उससे प्रेम करता रहा और सम्राट की मृत्यु तक वह उस पर अपना प्रभुत्व और सौन्दर्य प्रभाव बनाए रही। उसकी सुन्दरता के प्रभाव के कारण ही उसकी मद्यपान की आदत पर औरंगजेब ने कभी ध्यान नहीं दिया और उसके पुत्र कामबख्श (जन्मकाल २४ फरवरी १६६८ ई०) के अनेक अपराध क्षमा किए।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जहाँदार शाह ने लालकुंवर के रूपगुण की ख्याति सुनी तो वह बिन देखे ही उस पर आसक्त हो गया। उसके पिट्ठुओं ने लालकुंवर की माँ से सौदा पटा लिया। अतः एक बड़ी रकम देकर लालकुंवर एक रात गुप्त रूप से महल के अंदर पहुँचा दी गई। उक्त घटना के बाद जहाँदार शाह की जीवन चर्या इसके अतिरिक्त और कुछ न रही कि वह हर समय सुरापान में बदमस्त लालकुंवर की अगोश में पड़ा रहे। परिणामस्वरूप दरबार में डोम-मीरासी छा गए। लालकुंवर को 'इम्तियाज़ महल' की उपाधि से गौरवान्वित किया गया।

श्रीधर ने अपने 'जंगनामा' काव्य में जहाँदार शाह के दिल्ली दरबार की जो दशा थी, उसका सजीव चित्रण किया है। इस वर्णन का समर्थन फारसी ग्रंथों के आधार पर लिखे गए इरविन के इतिहास से भी हो जाता है। 'जंगनामा' के आधार पर जून १७१२ में जहाँदार शाह के लाहौर से दिल्ली पहुँचने एवं दिसम्बर १७१२ में दिल्ली से आगरा रवाना होने के समय तक दिल्ली में भोग विलास का साम्राज्य रहा। सर्वत्र अव्यवस्था छा गई। नगर में प्रत्येक मास में तीन बार प्रकाश किया जाता। जहाँदारशाह की प्रेयसी नर्तकी लालकुंवर के सम्बन्धी अमीर बनकर उच्च पदों पर नियुक्त कर दिये गए। वे स्वच्छंदता-पूर्वक देहली की सड़कों पर अवांछनीय कार्य करते फिरा करते। रात्रि में नीच गायक राजप्रासाद में बादशाह के साथ मदिरापान करते और उन्मत्त अवस्था में जहाँदारशाह का अपमान करते। पर वह लालकुंवर के भय से उन्हें कुछ न कहता था। (जंगनामा पंक्ति ६७२-९२)।

यह था रंग जहाँदारशाह की हुकूमत का। जिसने सबसे पहले मुगलिया खानदान में शराब और बदचलनी का प्रचलन किया। मुईजुद्दीन जहाँदारशाह-सा मन चला और मौज़ मुगल कविता न करे, यह हो नहीं सकता था, पर उसके पदों का संग्रह कहाँ है? जो है वह भी अल्प, अपूर्ण और भ्रष्ट है। फिर भी हम देखते हैं कि वह 'मौज़दीन' के नाम से कविता करता था। श्रीधर ने भी 'जंगनामा' (पंक्ति ३०-३१) में जहाँदारशाह के लिये—'मौज़दीन' का प्रयोग किया है—

तहाँ मीर जुमला मीर बुद्धि गंभीर बाहु विशाल।
मड़ि रह्यो 'मौजदीन' की कटक गहि करवाल॥

कहते हैं जहाँदारशाह की संत सूफियों से विशेष पटती थी। बात भी ठीक ही है, यदि जहाँदार शाह शाही शाह न बनकर सूफ़ी शाह बने होते तो उनका रंग और भी चोखा जमता और वह इश्क के अखाड़े में कुछ कर दिखाते। पर उनके भाग में तो तख्त के लिये शहीद होना बदा था। केवल ९ माह की हुकूमत करने के बाद अपने भतीजे फर्रुखसियर द्वारा वह कत्ल कर दिये गए।

फर्रुखसियर सैयद बंधुओं की सहायता से सिंहासनारूढ़ हुआ तो मुगल सल्तनत की आंतरिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। सैयद बन्धु ही रक्षक से भक्षक बन गए। किन्तु फर्रुखसियर को उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वह बेफ़िकर गुलछर्रे उड़ाने में मस्त था। जहाँदारशाह का अनुयायी होने के फलस्वरूप उसका भी उसी जैसा अन्त हुआ। सवा छः साल तक कुल मौज मज़ा कर पाया था कि १७१९ में एक दिन निज़ामुद्दीन खाँ जबरन शाही महल में दाखिल हुआ और बेगमों को मारपीट कर मालूम किया कि बादशाह कहाँ छिपा हुआ है? सुडौल सजीले जवान फर्रुखसियर को बेगमों के व्यूह से घसीट-घसीट कर घोर चीत्कार करने पर भी हुजरे से बाहर ले आया गया और उसकी आंखों में सलाइयाँ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

फेर दी गई। अंत में पानी के बिना तरसा-तरसा कर हद दर्जा बेदर्दी से गला घोंटकर मार डाला गया। इसका वर्णन ही क्या?

फर्रुखसियर ने अपने सवा छः साल के शासनकाल में मौज़मजा तो खूब किया किन्तु हिन्दी पदों की रचना भी उसने की या नहीं इसका ज्ञान हमें नहीं। कारण उसकी एक भी रचना आज उपलब्ध नहीं है।

'फर्रुखसियर के कत्ल के बाद सैयद बन्धुओं ने मुगलिया सल्तनत की शतरंजी बिसात पर दो शाहजादों को क्रमशः बादशाह बनाया। इनमें पहला रफ़ी उल्दरात, शाह आलम बहादुरशाह का पौत्र था, जो राज्याभिषेक के समय २० वर्ष का था। रंगमहल में प्रचुर भोग विलास और मदिरापान की अधिकता के कारण वह क्षयरोग से पीड़ित हो चार मास की बादशाहत करने पर ही कब्र में लेटने को मज़बूर हो गया। इसका छोटा भाई रफ़ी उल्ला सिंहासनारूढ़ होने के तीन मास पश्चात् १५ वर्ष की उम्र में ही दफ़न हो गया। ये हज़रत १३ साल के भी न थे कि सात-आठ बेगमों के शौहर बन चुके थे। इनकी दैनिक चर्या भी नृत्य संगीत, भोग विलास और मदिरापान के अतिरिक्त और कुछ न थी।

इस प्रकार फर्रुखसियर को खेला खेलाकर बधे जाने के बाद आलमगीरी गद्दी पर फूंक के बुल-बुले बैठते रहे। बात की बात में तीन-तीन शाहजादे बादशाह बने और फिर कहीं के न रहकर विलीन हो गए। अब चौथे मोहम्मद रोशन अख्तर की बारी आई। बेचारा उर्दू ए-मुअल्ला (लाल किला) से दूर किसी कोने में अपना जीवन बिता रहा था कि अचानक उसकी खोज हुई और वह २८ सितम्बर १७१९ को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया गया। वह जरा कड़ा पड़ा तो सैयद बंधुओं का काम तमाम हुआ और बाबरी जोश दिखाई देने लगा। पर अंत में वह भी 'रंगीला' निकला और सड़ी ठठरी में बल न ला सका।

कुछ भी हो मुहम्मदशाह रंगीला को संगीत से बड़ा प्रेम था। वह तोड़ी राग का इतना अनुरागी था कि उसके बारे में यह प्रवाद प्रचलित हो गया कि यदि नादिरशाह कल आना चाहता है तो आज ही आ जाये पर उसके टोड़ी राग में खलल न डाले। कहना न होगा कि उसकी रंगरेलियों के शासन काल (फरवरी १७३९) में ही क्रूर नादिरशाह ने देहली में कत्लेआम किया और बेगमों को नाचने के लिये मज़बूर किया था। नादिरशाही बर्बरता से मुगल साम्राज्य की रही सही प्रतिष्ठा भी जाती रही और मुहम्मदशाह को संगीतकला से विरक्ति सी हो गई।

रंगीला दरबार का महान कलावंत एवं संगीतज्ञ न्यामत खाँ 'सदारंग' था जिसने 'सदा रंगीला' के नाम से अंकित सहस्रों खयालों की रचना करके अपने आश्रयदाता रंगीला सम्राट को संगीत जगत में सदा के लिए अमर कर दिया। यद्यपि सदारंग प्रमुख वीणावादक एवं ध्रुपद गायक थे तथापि अपने विरोधियों को शान्त करने और रंगीला सम्राट को संतुष्ट करने के लिये उन्होंने सहस्रों खयालों का प्रणयन भी किया। गायिकाओं में प्रमुख कमलाबाई सम्राट की सभा में अपने गुणों के कारण सम्मानित थी। रंगीला के हृदय पर उसका अधिकार था। सम्राट की मुद्रा से अंकित सदारंग के खयाल वह बड़े सुन्दर ढंग से गाती थी।

जबतक मुगल बादशाहों की राजधानी ब्रजभूमि (आगरा) रही तब तक दरबार में ध्रुपद गायन का प्राधान्य रहा किन्तु दरबार के दिल्ली स्थानान्तरित होते ही स्थानीय खयाल गायकों की परम्परा ने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दरबार को भी अपने प्रभाव से अछूता न रखा। ध्रुपद के स्थान पर धीरे-धीरे खयाल गायन को प्रतिष्ठा मिली। रंगीला युग के कलावंत अदारंग, गुलाब खाँ, मनरंग एवं सदारंग आदि की रचनाओं के कारण संगीत जगत 'रंगीला' के नाम से चिर परिचित है किन्तु इस तथ्य को लोग कम ही जानते हैं कि मुहम्मद शाह संगीत प्रिय होने के साथ ही स्वयं भी संगीतज्ञ थे। उनके रचित अनेक गान यद्यपि आज काल-कवलित हो चुके हैं फिर भी जो कुछ उपलब्ध हैं उनमें से कुछ लोक सुलभ करने की दृष्टि से आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।[1]

मुहम्मद शाह रंगीला के शासन काल की सब से बड़ी बात जो कभी भुलाई नहीं जा सकती, यह है कि इसी के समय में मिर्ज़ा जयसिंह की देखरेख में अनेक भाषाओं से हिन्दी में ग्रंथ उल्थे किये गए तथा बैताल पचीसी और सिंहासन बत्तीसी का हिन्दी उल्था सर्वप्रथम इसी के समय में हुआ।

रंगीला सम्राट का जीर्ण शरीर अधिक दिन तक न चल सका। लगभग दो दशकों तक देश का शासन करने के पश्चात् २६ अप्रैल १७४९ को उसके इस रंग बिरंगी दुनिया से चल बसने पर उसकी भावती का लड़का अहमद शाह गद्दी पर बैठा। भला जिसका बाप ही रंगीला और जिसकी माँ नर्तकी रही हो वह शासन का काम कहाँ तक संभालता। फलतः उसको रागरंग की सूझी और अखाड़े की धूम मची। महल महिलाओं का कुंज बना और वह पुरुष की छाया से भी बचकर मौज करने लगा। इधर उसकी यह क्रीड़ा चल रही थी उधर उसकी रंगीली माँ नूरजहाँ बनने का स्वप्न देख रही थी। नतीजा यह हुआ कि अहमदशाह की आँखें फोड़ी गईं। वह सलीमगढ़ के किले के बंदीगृह में डाल दिया गया जहाँ १७५४ में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदशाह के पश्चात् जहाँदार शाह के पुत्र सुल्तान अजीजुद्दीन आलमगीरसानी बादशाह हुए। आलमगीरी फकीरी उनमें भी कुछ थी। इसी फकीरी के धोखे में उनकी जान गई। उससे कहा गया कि कंधार का एक सिद्ध फकीर आया है, उसका दर्शन करना चाहिए। आलमगीर दर्शन के लिये पहुँचा तो निर्दयता के साथ भोंक भोंक कर मार डाला गया और नग्नदशा में बाहर पशुओं के लिये फेंक दिया गया।

आलमगीर सानी की भाषानीति वही परम्परागत थी। उसके शासन में भी हिन्दी की प्रतिष्ठा बनी रही तथा दरबार में हिन्दी कवैयों को सम्मान प्राप्त रहा। आलमगीर सानी ने अनेक हिन्दी पद 'अजीजुद्दीन' की छाप से रचे जो आज भी उसके हिन्दी प्रेम की गाथा गा रही है।

'अजीजुद्दीन' के पुत्र मिर्ज़ा अब्दुल अली गौहर थे जो अब्दुल ज़फरजलालुद्दीन मुहम्मद शाह आलम सानी द्वितीय के नाम से १७५९ में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए। शाह आलम द्वितीय यद्यपि स्वयं सूफ़ी कवि थे तथापि एक हिन्दू माँ के पुत्र होने के कारण शरदोत्सव, दीपावली, गोधन, सरस्वती पूजा तथा होली आदि उत्सव बड़े धूमधाम से मनाते थे। वे संगीत कला के विशेष प्रेमी होने के साथ ही उर्दू, खड़ीबोली, फारसी एवं व्रज आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। मिर्ज़ा, रफ़ी, सौदा आदि उर्दू शायर उनके समकालीन थे जिनसे समय समय पर वह अपनी शायरी का इसलाह करवाते थे। संगीतज्ञ

---

१. विशेष विवरण के लिये देखें—प्रस्तुत लेखकके लेखक का लेख—'मुहम्मद शाह रंगीला की रचनायें'; सरस्वती : मार्च १९७०। पृष्ठ २१४-१५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुरभावन मिश्र एवं कवि ठाकुर बुन्देलखण्डी के अतिरिक्त 'रानी केतकी की कहानी' के प्रसिद्ध रचयिता सैयद इंशा अल्ला खाँ भी इनके आश्रय में बहुत दिनों तक रहे। शाह आलम को बचपन से ही कविता में रुचि थी। उन्होंने उर्दू फ़ारसी, और हिन्दी तीनों ही भाषाओं में साहित्य-रचना की। उर्दू शायरी में उनका तखल्लुस 'आफ़ताब' और हिन्दी में 'शाह आलम' मिलता है। 'आज़ाद' देहलवी ने शाह आलम प्रणीत चार उर्दू गद्यदीवान बताये हैं जो अब प्राप्त नहीं हैं। प्राप्त ग्रंथों में 'दीवाने-फ़ारसी' और 'दीवाने उर्दू' के अतिरिक्त हिन्दी (खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा) काव्य संग्रह 'नादिराति शाही' मिलता है जो साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने योग्य है।

'नादिराति शाही' को सर्वप्रथम इमतियाज़ अली खाँ 'आरसी' ने सन् १९४४ में हिन्दुस्तानी प्रेस, रामपुर से प्रकाशित किया था। सम्राट शाह आलम साही द्वितीय के आदेश से यह ग्रंथ १७९७ ई० में लिपिवद्ध किया गया था। कवि के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ 'सवै रसन को धाम है', क्योंकि इसमें उर्दू, फारसी और हिन्दी में ६९८ कवित्त, गज़ल एवं दोहरा आदि ९ शीर्षकों में कहे गए हैं। प्रायः सभी पद राग और ताल में बाँधे गए हैं। 'नादिराति शाही' में 'आफ़ताब' तखल्लुख के साथ ४६ गज़लें उर्दू और फारसी में हैं तथा १४४ कवित्त एवं दोहे 'शाह आलम' की छाप लिए हिन्दी में हैं। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से 'शाह आलम' की छाप लिए कवित्त एवं दोहरे उल्लेखनीय हैं, जिनमें दीपावली, गोधन पूजा, होली, सरस्वती पूजा, शरद ज्योत्स्ना एवं नायिका भेद सम्बन्धी पद हैं। शाह आलम सानी की काव्य प्रतिभा का प्रमाण उनकी कुछ रचनायें उत्तरकालीन मुगल सम्राटों की हिन्दी रचनाओं के साथ ही हिन्दी-जगत् के सम्मुख यहाँ सर्वप्रथम प्रस्तुत किया जा रहा है:—

आज़म शाह के पद

१. भैरव-तिताल

बार बार वरजी तोहिं यत कौन चतुराई।
ज्यों ज्यों प्यारे की प्रकृति त्यों ही, पिय चलिये अब याही में बड़ाई।
धन तेरो रूप सोहाग भाग, याते सौंते घट हू लागे माई।
धन तेरो लहनो जाके 'साह आज़म' कृपा करे सुखदाई।

२. गांधार-चौताल

प्रकट चतुर वर नैना री तेरे किधों खंजन कमल फसे।
कहे कटाक्ष मात पिता मुख सुख सागर
जो पंकज छाय सरोवर में, मीन करत कलोल।
किधों चंद दवे सुतन गोदन बैठो
कजरी भोंहे डाडी कर पुतरीन होय
दोउ पल कीनो आली री
तामें री विध अनूप रूप जोबनन छवि तोल।
मुख सुख सलिल बिच दो नाव फिरत भाव भरी
बरनी चोप सोहत किधौं जुग कुरंग
फन्दे हो अंजन फंद खुलत न खोल।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दरबार को भी अपने प्रभाव से अछूता न रखा। ध्रुपद के स्थान पर धीरे-धीरे खयाल गायन को प्रतिष्ठा मिली। रंगीला युग के कलावंत अदारंग, गुलाव खाँ, मनरंग एवं सदारंग आदि की रचनाओं के कारण संगीत जगत 'रंगीला' के नाम से चिर परिचित है किन्तु इस तथ्य को लोग कम ही जानते हैं कि मुहम्मद शाह संगीत प्रिय होने के साथ ही स्वयं भी संगीतज्ञ थे। उनके रचित अनेक गान यद्यपि आज काल-कवलित हो चुके हैं फिर भी जो कुछ उपलब्ध हैं उनमें से कुछ लोक सुलभ करने की दृष्टि से आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।[1]

मुहम्मद शाह रंगीला के शासन काल की सब से बड़ी बात जो कभी भुलाई नहीं जा सकती, यह है कि इसी के समय में मिर्ज़ा जयसिंह की देखरेख में अनेक भाषाओं से हिन्दी में ग्रंथ उल्थे किये गए तथा बैताल पचीसी और सिंहासन बत्तीसी का हिन्दी उल्था सर्वप्रथम इसी के समय में हुआ।

रंगीला सम्राट का जीर्ण शरीर अधिक दिन तक न चल सका। लगभग दो दशकों तक देश का शासन करने के पश्चात् २६ अप्रैल १७४९ को उसके इस रंग विरंगी दुनिया से चल वसने पर उसकी भावती का लड़का अहमद शाह गद्दी पर बैठा। भला जिसका बाप ही रंगीला और जिसकी माँ नर्तकी रही हो वह शासन का काम कहाँ तक संभालता। फलतः उसको रागरंग की सूझी और अखाड़े की धूम मची। महल महिलाओं का कुंज बना और वह पुरुष की छाया से भी बचकर मौज करने लगा। इधर उसकी यह क्रीड़ा चल रही थी उधर उसकी रंगीली माँ नूरजहाँ बनने का स्वप्न देख रही थी। नतीजा यह हुआ कि अहमदशाह की आँखें फोड़ी गईं। वह सलीमगढ़ के किले के बंदीगृह में डाल दिया गया जहाँ १७५४ में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदशाह के पश्चात् जहाँदार शाह के पुत्र सुल्तान अजीजुद्दीन आलमगीरसानी बादशाह हुए। आलमगीरी फकीरी उनमें भी कुछ थी। इसी फकीरी के धोखे में उनकी जान गई। उससे कहा गया कि कंधार का एक सिद्ध फकीर आया है, उसका दर्शन करना चाहिए। आलमगीर दर्शन के लिये पहुँचा तो निर्दयता के साथ भोंक भोंक कर मार डाला गया और नग्नदशा में बाहर पशुओं के लिये फेंक दिया गया।

आलमगीर सानी की भाषानीति वही परम्परागत थी। उसके शासन में भी हिन्दी की प्रतिष्ठा बनी रही तथा दरबार में हिन्दी गवैयों को सम्मान प्राप्त रहा। आलमगीर सानी ने अनेक हिन्दी पद 'अजीजुद्दीन' की छाप से रचे जो आज भी उसके हिन्दी प्रेम की गाथा गा रही है।

'अजीजुद्दीन' के पुत्र मिर्ज़ा अब्दुल अली गौहर थे जो अब्दुल ज़फरजलालुद्दीन मुहम्मद शाह आलम सानी द्वितीय के नाम से १७५९ में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए। शाह आलम द्वितीय यद्यपि स्वयं सूफ़ी कवि थे तथापि एक हिन्दू माँ के पुत्र होने के कारण शरदोत्सव, दीपावली, गोधन, सरस्वती पूजा तथा होली आदि उत्सव बड़े धूमधाम से मनाते थे। वे संगीत कला के विशेष प्रेमी होने के साथ ही उर्दू, खड़ीबोली, फारसी एवं व्रज आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। मिर्ज़ा, रफ़ी, सौदा आदि उर्दू शायर उनके समकालीन थे जिनसे समय समय पर वह अपनी शायरी का इसलास करवाते थे। संगीतज्ञ

---

१. विशेष विवरण के लिये देखें—प्रस्तुत लेखकके लेखक का लेख—'मुहम्मद शाह रंगीला की रचनायें'; सरस्वती : मार्च १९७०। पृष्ठ २१४-१५।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुरभावन मिश्र एवं कवि ठाकुर बुन्देलखण्डी के अतिरिक्त 'रानी केतकी की कहानी' के प्रसिद्ध रचयिता सैयद इंशा अल्ला खाँ भी इनके आश्रय में बहुत दिनों तक रहे। शाह आलम को बचपन से ही कविता में रुचि थी। उन्होंने उर्दू फ़ारसी, और हिन्दी तीनों ही भाषाओं में साहित्य-रचना की। उर्दू शायरी में उनका तखल्लुस 'आफ़ताब' और हिन्दी में 'शाह आलम' मिलता है। 'आज़ाद' देहलवी ने शाह आलम प्रणीत चार उर्दू गद्यदीवान बताये हैं जो अब प्राप्त नहीं हैं। प्राप्त ग्रंथों में 'दीवाने-फ़ारसी' और 'दीवाने उर्दू' के अतिरिक्त हिन्दी (खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा) काव्य संग्रह 'नादिराति शाही' मिलता है जो साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने योग्य है।

'नादिराति शाही' को सर्वप्रथम इमतियाज़ अली खाँ 'आरसी' ने सन् १९४४ में हिन्दुस्तानी प्रेस, रामपुर से प्रकाशित किया था। सम्राट शाह आलम साही द्वितीय के आदेश से यह ग्रंथ १७९७ ई० में लिपिबद्ध किया गया था। कवि के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ 'सबै रसन को धाम है', क्योंकि इसमें उर्दू, फारसी और हिन्दी में ६९८ कवित्त, गज़ल एवं दोहरा आदि ९ शीर्षकों में कहे गए हैं। प्रायः सभी पद राग और ताल में बाँधे गए हैं। 'नादिराति शाही' में 'आफ़ताब' तखल्लुख के साथ ४६ गज़लें उर्दू और फारसी में हैं तथा १४४ कवित्त एवं दोहे 'शाह आलम' की छाप लिए हिन्दी में हैं। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से 'शाह आलम' की छाप लिए कवित्त एवं दोहरे उल्लेखनीय हैं, जिनमें दीपावली, गोधन पूजा, होली, सरस्वती पूजा, शरद ज्योत्स्ना एवं नायिका भेद सम्बन्धी पद हैं। शाह आलम सानी की काव्य प्रतिभा का प्रमाण उनकी कुछ रचनायें उत्तरकालीन मुगल सम्राटों की हिन्दी रचनाओं के साथ ही हिन्दी-जगत् के सम्मुख यहाँ सर्वप्रथम प्रस्तुत किया जा रहा है:—

आज़म शाह के पद

१. भैरव-तिताल

बार बार वरजी तोहिं यत कौन चतुराई।
ज्यों ज्यों प्यारे की प्रकृति त्यों ही, पिय चलिये अब याही में बड़ाई।
धन तेरो रूप सोहाग भाग, याते सौंते घट हू लागे माई।
धन तेरो लहनो जाके 'साह आज़म' कृपा करे सुखदाई।

२. गांधार-चौताल

प्रकट चतुर वर नैना री तेरे किधों खंजन कमल फसे।
कहे कटाक्ष मात पिता मुख सुख सागर
जो पंकज छाय सरोवर में, मीन करत कलोल।
किधों चंद दवे सुतन गोदन बैठो
कजरी भोंहे डाडी कर पुतरीन होय
दोउ पल कीनो आली री
तामें री विध अनूप रूप जोबनन छवि तोल।
मुख सुख सलिल बिच दो नाव फिरत भाव भरी
बरनी चोप सोहत किधौं जुग कुरंग
फन्दे हो अंजन फंद खुलत न खोल।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

किधों जुगल मंजीर पलक पाट मूंदत खोलत काम भंडारी
'साह आजम' के हुकम ते तोल देत जात
बिब कटाक्ष हीरा मुक्ताहल सों तोल तोल मोल अमोल।

३. धनाश्री मुलतानी—तिताला

मा हमरा बालमुवा सलोना मन भावना पिथवा पाइला।
'शाह आजम' की मोहनी मूरत चितवन में लुभावना।

४. पूरिया धनाश्री—चौताल

रिसानी सी हों कछुक रिसानी तिहारे रूप बालम मोपै समाए हो।
जकी थकी क्यों रहत जात, तुमारे उनींदे आए लख, मेरे अंग अलसाए हो।
दृगन में लाली और असुआ काहे ते प्यारी
तुम बहोरंग रचे देख ए चरण सकुचाए हो।
और कछू जिन बूझो 'शाह आजम',
तुम जो जम्मात याते मेरो मन भरमाए हो।

५. पूरिया धनाश्री—तिताल

बालम आयोरी हम चीनो री।
'शाह आजम' पिय की मोहनी मूरत चितवन में कछु कीनो री।

६. परज—तिताल

थोरे रे दिन की नवल दुल्हैया नयो योवन नयो रंग।
नई प्रीत रीत नए आभूषण 'शाह आजम' के संग।

७. धानी—खेमटा

तोरी अखियाँ लजानी मोकूं मार डारिस रे।
शाह आजम पिया मन में बसत है, तन मन जियरा वार डारी रे।

८. सोरठ—एक ताल

अब तुम कैसे अचानक गहेली पनियाँ भरत,
करकी कराई बोलन लागी, बँगरी गई लो मुरक।
बाट घाट मग रोकत टोकत, पैंडे चलत नीको अटक भटक।
अपनी बार रसिया तुम तो जावो कैसे के सरक।
रस बहियाँ बिनसे करत, जाओ जाकी लागी नई चटक।
घरक 'शाह आजम' छांड दे, मइकूं घर जान दे लंगर ढीठ तुरक।

९. परज—चौताल

वारण निखारो री आली नवसत सिंगार सों।
प्यारो मोह लियो चोपन अत, निरख निरख मारग रहे जो तुव तन।
दिरगन अंजन खंजन, देह मंजन कर कर भूषण पहरे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्यारी वेग बस कर ले तू रूप जोबन गुण बानक बन।
पिय समीप तुव पल पल बरख से जात हैं।
क्यों न जाय अपने रस पगाय अनुराग बढ़ाय लेहो उन मन।
'शाह आजम' की प्यारी तेरे जोत सकल सोतें रहे दब जाय।
ऐसे जैसे दब जात तरैयन जोत शशी उदय होत गगन।

१०. सिन्धु --धमार

झगरा मैं क्यों ठानोंगी, पिया मोरा इन सोतनियाँ वश कीनो।
तुम बिन मेरो और कौन है ऐसे सुघर प्रवीनो।
याहू बास को बसवो कठिन है सौतन के आधीनो।
'आजम' पिया सों विनती करत है मैं तेरे ही रंग भीनो।

मुअज्जम : शाह आलम 'बहादुर शाह' के पद

१. भैरव--तिताल

प्यारी बोली तू चलरी।
हौं हितू भई, कहत हों तोसों मान जिन गहे।
नीची नार कहा कर रही सुन्दर, ऊँचे चिते नेक मो तन,
जो है तेरे जिय में सो तू वेग उतर देहे।
सब ही तियन में तोही सो भाव रहे,
पिय जिय की तासो तू हठ कर हिए न रहे।
'शाह बहादुर' अति विचित्र तासो रस ही रसनि वहे।

२. भैरव--तिताल

प्यारी तेरो प्यारो आयो।
प्यारी प्यारी बातें कर प्यारे कों मनाइये।
अनेक भांतन कर प्यारे को रिझाइये।
आली ऐसो प्यारो कहां घर बैठे पाइये।
लाइए समुझाइए कौन भाँतन कर सुखदे बुलाइये।
शाह बहादुर तेरे रस बस भए अनरस कर कर सौतन हँसाइये।

३. देशी-टौड़ी सवारी

आज नयना रस ही भरे मतवारे चलत।
दिगन धों कटाक्षन भरे ऐसे अलसत पिया प्यारे।
रूप चतुर मानो मुक्ता संवारे,
जौवन थिर में फिरत दुरारे, नेक हू न ठहरारे जतन कर हारे।
पानप सेत रंग करारे अनुबेधे मन बेधत न्यारे।
यह छवि देख 'साह बहादुर' रीझत थकित भए जो ससि चकवारे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Brindavan Vasi Trust Collection, Lucknow

४. देशी रौड़ी-स्वर फाख्ता

घरी घरी तू काहे मेरे आवत माई,
इत उनकी बातें आन आन मोसों कहत बनाई।
तेरे हित चित की हों नीके जानत,
पै मानत नाहीं न कछु लाग लगाई।
'शाह हबादुर' की हौं करूँ टहल,
जौं उन चाही, सोई लगी मैं लगाई।

५. गूजरी—चौताल

तू हठ छोड़ दे री लाल कहे सोई कीजे।
तेरे रूसे सोते सब फूलत बाद ही को कत कीजे।
अधर कोप किए, भृकुटी मोहन तन, असुअन अचरा भीजे।
'शाह बहादुर' सौ क्यों न बन आई जिनकी मया से जीजे।

६. गुर्जरी सुरफ़ाख्ता

तेरो सो निरत, तोहि बन आवै, साँची मोहन राय।
उरप तिरप लाग डाट, सहस सुध अंग देशी दिखाय।
जेते गुनीजन धन धन अपा अपा कर पूजते रे कमल पाय।
'साह बहादुर' के रिझाय अपवश कर अब करो माई-पुरा दाय।

७. गंधार—चौताल

बालापन गयो री अब आयो री जोवन रोम रोम की बतीयाँ।
पीतम सों हम खेले बावरी काहे की करत धो कपटीयाँ।
वे चतुर नायक रिझाय रहे रहस रहस सकुच उठीयाँ।
बेग मिलो 'साह बहादुर' सो वै जो परे रस हठीयाँ।

८. गंधार—चौताल

नैन जुगल, जुगल मघ तारे, श्याम अपान लेत हैं माई।
मानो मकर सुगंध धवल विशाल डारै,
लाल पै रूप छक्यो चित चंचल अंजन दीने आई।
खंजन रस लेत उड़ उड़ अपने आप नही विराजत आई।
कूं कूं चंपा पियारे भए हैं पूजत न परछाईं।
दामिनी सकुच लगाय आकाश गई है,
छबि निरखत दशनन जोत दारम हियो दरक दर जाई।
मारग मृग जे मीन बन गह्यो याते सनमुख होत लजाई।
ऐसी उजारी प्यारी सुखदाई 'साह बहादुर' पियकी सवत सरमाई।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

९. गंधार--चौताल

तूं जो अपनो मुख दिखावत, गहरो गुमान कररी जो लालन भावै।
बाद ही बकवो करत पूंछत न उतर देत, कांचन की चौकी छवि पावै।
साह की कसोटी कसाई मेरे जात ताही मैं मारग सोतन के जिय आवै।
सोंहे किए कहत तोही को लेन 'साह बहादुर' को रिझावै।

१०. गंधार धीमा तिताल

आए हो जू तुम रसमाते चित भरे प्रतक्ष,
देखियत झप कोहि, गालन लागी पीक।
याते मैं जानी अनत रित मानी,
'साह बहादुर' पिय तिहारे दुकूलन सोहै कजरा लीक।

११. गंधार धीमा तिताल

सगुन होत पिय मिलवें कों आली री ताके लागे आंखियन।
प्राणेश्वर कब आवेंगे होड़ परी सब सखियन।
भली भई तुम आवन कीनो, तन मन रोम रोम फूली छतियन।
'शाह बहादुर' तुम बहु नायक जागे मेरे करम भाग रतियन।

१२. धनाश्री--चौताल

तुम सों जो बोलत हो लाल, ज्यों तुमसों होय साँची।
वहाँ ही जाओ जहाँ होय तिहारो काम,
अहो सिधारो प्रीत नीभे के बाँची।
उनकी प्रकृति रीत ही से अधीन, के जेई भली तेई सोइ नाँची।
'शाह बहादुर' तुम नीके जानत, अब तुज बोलवे की खाँची।

१३. मालव--चौताल

नैन तेरे घुमर भए आज बिन देखे ए मन भावन।
कल न परत मोहे री एको पल कब होईयो पिया आवन।
सुने कुहुक कोयल की कबधौं होय गर लगावन।
'शाह बहादुर' तुम बहुनायक कैसे करूँ दिन सावन।

१४. भैरव चौताल

बीतत हम पर जैसे हों, हमसों कहत हो रावरे।
काहे तुझे और पहचाने हम जानत जहाँ जावरे।
रैन दिना मोहे कल न परत है तुं तुंली लावरे।
'शाह बहादुर' तुम बहुनायक हम सी भए बड़ बावरे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Brindavan Vasi Trust Collection, Lucknow

४. देशी रौड़ी-स्वर फाख्ता

घरी घरी तू काहे मेरे आवत माई,
इत उनकी बातें आन आन मोसों कहत बनाई।
तेरे हित चित की हों नीके जानत,
पै मानत नाहीं न कछु लाग लगाई।
'शाह हबादुर' की हौं करूँ टहल,
जौं उन चाही, सोई लगी मैं लगाई।

५. गूजरी--चौताल

तू हठ छोड़ दे री लाल कहे सोई कीजे।
तेरे रूसे सोते सब फूलत बाद ही को कत कीजे।
अधर कोप किए, भृकुटी मोहन तन, असुअन अचरा भीजे।
'शाह बहादुर' सौ क्यों न बन आई जिनकी मया से जीजे।

६. गुर्जरी सुरफ़ाख्ता

तेरो सो निरत, तोहि बन आवै, साँची मोहन राय।
उरप तिरप लाग डाट, सहस सुध अंग देशी दिखाय।
जेते गुनीजन धन धन अपा अपा कर पूजते रे कमल पाय।
'साह बहादुर' के रिझाय अपवश कर अब करो माई-पुरा दाय।

७. गंधार--चौताल

बालापन गयो री अब आयो री जोवन रोम रोम की बतीयाँ।
पीतम सों हम खेले बावरी काहे की करत धो कपटीयाँ।
वे चतुर नायक रिझाय रहे रहस रहस सकुच उठीयाँ।
वेग मिलो 'साह बहादुर' सो वै जो परे रस हठीयाँ।

८. गंधार--चौताल

नैन जुगल, जुगल मघ तारे, श्याम अपान लेत हैं माई।
मानो मकर सुगंध धवल विशाल डारै,
लाल पै रूप छक्यो चित चंचल अंजन दीने आई।
खंजन रस लेत उड़ उड़ अपने आप नही विराजत आई।
कूं कूं चंपा पियारे भए हैं पूजत न परछाईं।
दामिनी सकुच लगाय आकाश गई है,
छबि निरखत दशनन जोत दारम हियो दरक दर जाई।
मारग मृग जे मीन बन गह्यो याते सनमुख होत लजाई।
ऐसी उजारी प्यारी सुखदाई 'साह बहादुर' पियकी सवत सरमाई।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

९. गंधार--चौताल

तूं जो अपनो मुख दिखावत, गहरो गुमान कररी जो लालन भावै।
बाद ही बकवो करत पूंछत न उतर देत, कांचन की चौकी छवि पावै।
साह की कसोटी कसाई मेरे जात ताही मैं मारग सोतन के जिय आवै।
सोंहे किए कहत तोही को लेन 'साह बहादुर' को रिझावै।

१०. गंधार धीमा तिताल

आए हो जू तुम रसमाते चित भरे प्रतक्ष,
देखियत झप कोहिं, गालन लागी पीक।
याते मैं जानी अनत रित मानी,
'साह बहादुर' पिय तिहारे दुकूलन सोहै कजरा लीक।

११. गंधार धीमा तिताल

सगुन होत पिय मिलवें कों आली री ताके लागे आंखियन।
प्राणेश्वर कब आवेंगे होड़ परी सब सखियन।
भली भई तुम आवन कीनो, तन मन रोम रोम फूली छतियन।
'शाह बहादुर' तुम बहु नायक जागे मेरे करम भाग रतियन।

१२. धनाश्री--चौताल

तुम सों जो बोलत हो लाल, ज्यों तुमसों होय साँची।
वहाँ ही जाओ जहाँ होय तिहारो काम,
अहो सिधारो प्रीत नीभे के बाँची।
उनकी प्रकृति रीत ही से अधीन, के जेई भली तेई सोइ नाँची।
'शाह बहादुर' तुम नीके जानत, अब तुज बोलवे की खाँची।

१३. मालव--चौताल

नैन तेरे घुमर भए आज बिन देखे ए मन भावन।
कल न परत मोहे री एको पल कब होईयो पिया आवन।
सुने कुहुक कोयल की कबधौं होय गर लगावन।
'शाह बहादुर' तुम बहुनायक कैसे करूँ दिन सावन।

१४. भैरव चौताल

बीतत हम पर जैसे हों, हमसों कहत हो रावरे।
काहे तुझे और पहचाने हम जानत जहाँ जावरे।
रैन दिना मोहे कल न परत है तुं तुंली लावरे।
'शाह बहादुर' तुम बहुनायक हम सी भए बड़ बावरे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

शाह मौजदीम : मुईजुदीन जहाँदारशाहके पद

१. टोड़ी–चौताल

'शाह मौजदीन' महाबली किए हैं शिकार, देख कांपे हैं थिर थिर नर।
सहस फनेश लंकेश दृगपाल सर्व देख तेज भज गए।

२. आसावरी आड़ा चौताल

कीनो एसो सर तुव करवर बखर डर, काटे अपार और दीनो बिरड़ा।
सैन भर कमठ मानी अरु शेष डगे गोली सगर।
खल कमठ्यो इन्द्र गहत मथा कीजिए जिय दूर
जब सुने बाजे इन्द्र बजावत की ढार।
अतपे बरवठ डर बरषायो अधिकर एसी मची मार।
एक गैर न चाहे जाय कनकी बाद भजी जातरो लार।
मिटि डार उड़ प्रवल उड़ गए जित वित जुटें
न लगत वय पड़त चरण कीरति चल महावली
'शाह मौजदीन' लीजिए पग पर वर जो जग में प्रतक्ष राम अवतार।

३. पुरवी चौताल

तुम्हारे होत असवार सह नाना राग विस्तार
मिलि मुरसल ठंनकार धुंकार बनो रंग अपाए।
तिन प्रति धुन उन सुरपत डल विचार, समझ सबरो गुणी गावत पठाए।
करनाल रवन, लगो नवदर्पण उड़न, मानो असुरन डर
धरन छोड़न लगे अस्तुति करण।
दुंदवान दमकन, लाग्यो महिं मंडल हलन, मानो घन गरजन
इन तरफन, झाँझ झनकत मानो दाँत तिन गहे इन्द्र मेघ रसाल लाए।
तुरई वाजत यों लागत मानो ऐरावत बोलत आवत
वाजत नरसिंगा नकिरी मानो उचैश्रवा आदि देन सुर सब लगे हैं नए।
'शाह मौजदीन' की यह असवारीसुनत दिग दृगपाल
लंकेश फनेश छिपो पताल सबन पर विकराल अरि कोउ न ठहराए।

४. श्रीराम–चौताल

अवध पिता संग गुईयां विरह आनंद खेताह मों संग चोपर।
विशात तन मन योवन सबन पर सारे छिन लगन तापर।
मोहे अंग धरे सुध बुध गुण पारस बनाय कर।
ध्यानन चलाय सारे पकाय लाई पिता अवध सब धर।
तिनके बाँध पंजे छक्के कर ध्यान तक जक
जीत लाई पकाय बाजी लाई 'शाह मौजदीन' रूप सुन्दर।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मुहम्मद शाह 'रंगीला' के पद

१. टोड़ी–सावनी

अब मोरे कंधा आ मिलो एक पल छिन मोरे संगवा।
नेह लागीला तुम सन मोरा सुधर 'मुहम्मद सा' नेकहुन लागी लो अंगवा।

२. टोड़ी–धमार

अबके होरी में प्यारी लरबे को यह समान तैंने कीने।
ढफ ढाल नोला सी खड़ग गहे सौतिन के गुमान सुभट मार हीने।
मृदंग तोप गेंदा गुलाल धूम ताकी आवाज ते गरुड़ गढ़ छीने।
'महम्मद सा' के सुहाग बढ़ो याते अन हितुअन के झुंड सुख मोर फेर दीने।

३. टोड़ी–इकताल

धाय मिलूं जब आवै मोरे घर 'महम्मद सा' प्यारा गर धाय।
गाय बजाय नीकी तान से मेरा मन बसकर रहिलवा धाय।
मृदंग से भेद परे धाकिट् धुम किट तक्धि तिलाना गिड़ धाय रे धा।

४. धनाश्री–एकताल

मन भावन लाड़ लड़ावन रंग उपजावन जगत जीवावन।
भाग बड़े सब ही के मिल देहों अशीरा
जो पायो 'महम्मद सा' अपरम्पार गुण अमोथ पावन।

५. देश लूम

नींद की माती गई सोय एरी ए मैं ना जानूं।
'महम्मद सा' पिया मोरे डेरे आइले रखती नैणवा लगाय।
मइकूं न जगावो सहयाँ निदियाँ लागी रे
बारे बरस पैंसइयाँ मोरे आइले परहुँ तोरे पइयाँ।

६. ललित धमार

हों होको कौन सीख देहों री नागर।
तू तो होरी में अत छिन छिन मेंरि गसावै
उनके मन ही में सब इस गुण के आगार।
अब तुम मान गहे राखो सखी ए रिझए प्रेम सागर।
अब के 'महम्मद सा' कोउ मनाय ले आवे तो मरूँगी कची गागर।

७. आसावरी तिताल

साहब मेरा है बहोरंगी उस बहोरंगी के हौं बल जाई।
जहाँ तहाँ सब घट रम रहो छहर घट में हरि जी की परछांही।
आप ही लाला आपही मियाँ आपी सेवक आपी गुसांई।
'महम्मद सा' श्यामसुन्दर कों जो लों जिओ तोलों यश गाऊँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

शाह मौजदीम : मुईजुदीन जहाँदारशाहके पद

१. टोड़ी–चौताल

'शाह मौजदीन' महाबली किए हैं शिकार, देख कांपे हैं थिर थिर नर।
सहस फनेश लंकेश दृगपाल सर्व देख तेज भज गए।

२. आसावरी आड़ा चौताल

कीनो एसो सर तुव करवर बखर डर, काटे अपार और दीनो बिरड़ा।
सैन भर कमठ मानी अरु शेष डगे गोली सगर।
खल कमठ्यो इन्द्र गहंत मथा कीजिए जिय दूर
जब सुने बाजे इन्द्र बजावत की ढार।
अतपे बरबठ डर बरषायो अधिकर एसी मची मार।
एक गैर न चाहे जाय कनकी बाद भजी जातरो लार।
मिटि डार उड़ प्रबल उड़ गए जित वित जुटें
न लगत वय पड़त चरण कीरति चल महावली
'शाह मौजदीन' लीजिए पग पर वर जो जग में प्रतक्ष राम अवतार।

३. पुरवी चौताल

तुम्हारे होत असवार सह नाना राग विस्तार
मिलि मुरसल ठंनकार धुंकार बनो रंग अपाए।
तिन प्रति धुन उन सुरपत डल विचार, समझ सबरो गुणी गावत पठाए।
करनाल रबन, लगो नवदर्पण उड़न, मानो असुरन डर
धरन छोड़न लगे अस्तुति करण।
दुंदवान दमकन, लाग्यो महिं मंडल हलन, मानो घन गरजन
इन तरफन, झाँझ झनकत मानो दाँत तिन गहे इन्द्र मेघ रसाल लाए।
तुरई बाजत यों लागत मानो ऐरावत बोलत आवत
बाजत नरसिंगा नकिरी मानो उचैश्रवा आदि देन सुर सब लगे हैं नए।
'शाह मौजदीन' की यह असवारीसुनत दिग दृगपाल
लंकेश फनेश छिपो पताल सबन पर विकराल अरि कोउ न ठहराए।

४. श्रीराम–चौताल

अवध पिता संग गुईयां विरह आनंद खेताह मों संग चोपर।
विशात तन मन योवन सबन पर सारे छिन लगन तापर।
मोहे अंग धरे सुध बुध गुण पारस बनाय कर।
ध्यानन चलाय सारे पकाय लाई पिता अवध सब धर।
तिनके बाँध पंजे छक्के कर ध्यान तक जक
जीत लाई पकाय बाजी लाई 'शाह मौजदीन' रूप सुन्दर।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मुहम्मद शाह 'रंगीला' के पद

१. टोड़ी–सावनी

अब मोरे कंधा आ मिलो एक पल छिन मोरे संगवा।
नेह लागीला तुम सन मोरा सुघर 'मुहम्मद सा' नेकहुन लागी लो अंगवा।

२. टोड़ी–धमार

अबके होरी में प्यारी लरबे को यह समान तैने कीने।
ढफ ढाल नोला सी खड़ग गहे सौतिन के गुमान सुभट मार हीने।
मृदंग तोप गेंदा गुलाल धूम ताकी आवाज ते गरुड़ गढ़ छीने।
'महम्मद सा' के सुहाग बढ़ो याते अन हितुअन के झुंड सुख मोर फेर दीने।

३. टोड़ी–इकताल

धाय मिलूं जब आवै मोरे घर 'महम्मद सा' प्यारा गर धाय।
गाय बजाय नीकी तान से मेरा मन बसकर रहिलवा धाय।
मृदंग से भेद परे धाकिट् धुम किट तक्धि तिलाना गिड़ धाय रे धा।

४. धनाश्री–एकताल

मन भावन लाड़ लड़ावन रंग उपजावन जगत जीवावन।
भाग बड़े सब ही के मिल देहों अशीरा
जो पायो 'महम्मद सा' अपरम्पार गुण अमोथ पावन।

५. देश लूम

नींद की माती गई सोय एरी ए मैं ना जानूं।
'महम्मद सा' पिया मोरे डेरे आइले रखती नैणवा लगाय।
मइकूं न जगावो सहयाँ निदियाँ लागी रे
बारे बरस पैसइयाँ मोरे आइले परहुँ तोरे पइयाँ।

६. ललित धमार

हों होको कौन सीख देहों री नागर।
तू तो होरी में अत छिन छिन मेंरि गसावै
उनके मन ही में सब इस गुण के आगार।
अब तुम मान गहे राखो सखी ए रिझए प्रेम सागर।
अब के 'महम्मद सा' कोउ मनाय ले आवे तो मरूँगी कची गागर।

७. आसावरी तिताल

साहब मेरा है बहोरंगी उस बहोरंगी के हौं बल जाई।
जहाँ तहाँ सब घट रम रहो छहर घट में हरि जी की परछांही।
आप ही लाला आपही मियाँ आपी सेवक आपी गुसांई।
'महम्मद सा' श्यामसुन्दर कों जो लों जिओ तोलों यश गाऊँ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Sarayu Trust Collection, Lucknow

८. भैरव–धमार

आवो बलम जी हमारे डेरे अबीर गुलाल मलों मुख तेरे।
होरी के दिनन में ना उरझे रे
जो पिया मोसेरूस रहे हो बल बल जाऊ सब ही घनेरे।
'महम्मद सा' पिया चतुर रंगीले दूर न बसो मेरे नेरे।

अहमद शाह के पद

सोरठ

घटा ने छोड़ी लटा बूंदन की अब कहां रोऊँ माई।
बिजरी चमके कोमल कुहुक कुहुक डरावै।
रंग रस भरे 'अहमद सा' को देख री मेरो ध्यान बटावै।

आलमगीर सानी (द्वितीय) : अजीजदी के पद

१. धनाश्री––मुलतानी तिताला

सोतन के मन में एसी विधना चढ़ आवै मत अब जानी।
तुम हमको बिसारा के बैठे किस विध मिलना होय।
'अजीजदीन' उमग जात है जोवना और बह्यो जात है पानी।

२. मुलतानी––तिताला

काहू मन में ठानी में वारियाँ, को राज म्हाने बतलावो।
वाका मासड़ा राजदुलारा संग 'अजीजदीन' अरज करे रीत पीत अछी थाँको।

३. सोरठ

मोहे सैन बुलावै बाँका मासड़ा, मैं कैसे कर आऊँ तोरे ढिग आगे।
चाँदनी रात प्यारे मोरे ननद जेठानी जागे।
तोरी परछाइ मइ लुक के 'अजीजदीन' के समीप कैसे आऊँ,
जो तू चली श्याम बसन पहर आगे।

४. कॉलिग–परज

पियके संग एरी नार चौसर क्यों नहीं खेले।
इस चौसर को निपट सार जोवना यह दिन है तीन चार।
जो जीते तो पिय संगि जीते जो हारे तो रहे पिया लार।
तेरी तो सब तरह जीत है जीत हेत न कर सोच विचार।
सात पांच की कंची पंची तो सोलह है हार।
दाव रखे सो रंग है वाको जो ही जीते सौ बार।
अब तो अदिया वंद चले हैं कर है धोंधन रार।
जब छक्के पंजे छूटे जावेंगे तेरे, तब क्या करोगी खेलार।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

आठ याम इनकी सुध राखो यह जो खुले दस द्वार।
तेरी भलाई इसी में प्यारी कि काम भी ले न रद मार।
और पांच बीस है इन पंद्रह को निहार।
चब दे भुवन तब ही खुले तोकों जब ते इनको सबार।
ग्रीष्म भरी ऋतु की प्यास बुझावो दसों लगावो बार।
नव रिद्धि करि सिद्धि हो तब हीं के जो तू तजि है अहंकार।
बारह है बाट अठारह हैं पेड़ा और चालें हैं हजार?
तू चल गुरु की बताई चाल पे याही ते उतरेगी पार।
अब तू रंग निकार रंग रही, जो उन करत करार।
जाको जाको सत रहे सो लहै पिय को कौन करे प्यार।
अब कुछ पासो में पै पासा हाथ एकन के मुख्तार।
वाही को कुछ और आवे कछु और याही ते लाचार।
अपर चाल कबहूं तो सूझहे हमको कहो मतवार।
युग युग जिये 'अजीजदीन' ऊपर उठना है एक बार।

शाह आंलम सानी द्वितीय के पद

१. आवन लागी हैं सारी सखी मिल गाय बजाय अरी मोरी आली।
खेल मचा सब खेलन लागी छोटी बड़ी सब बैस की भोली भाली।
जब खेलन लागी 'शाहे आलम' सूं हार गईं सांवरी गोरी जोवन वाली।
हा हा करत अब पैय्यां परत सब देत असीस मुबारक दिवाली।

२. हो बरजोरी तोकी तो वरजोरी लाथ शाहे अलाम सूं खेलन के ढोरी।
ले गुलाल अंगया भरदीनी, मुख पर लाथ गह अंचर झर झोरी।
तोरी बनी कंचुकी छोरी बाँह मरोरी कुच पकरि कर सूं आप धोरी।
मेरो कहों न मानो तब सू अब कैसे कहे री राज करो ऐसी होरी।

३. तोड़ी--होरी

अनुराग है रंग भरो बहु भांत छुटे रंग डोरी सुधार से झोरी।
पिचकारी मन नीलम काजर है तरुनी मद मूणी से छूटे न ढोरी।
अजढाई गुलाल लिये पट फेंक अबीर है सिता कुमकुम गोरी।
कर लाज बड़ी 'शाहे आलम' के संग ते नैनन ही में खेलत होरी।

४. सारंग बिन्द्रावनी होरी--

लाल गुलाल लगयो लख बाल के लाल नहीं अंखयाँ रतनारी।
भौंहे चढ़ाय के बैठ रही अनखाय तें निवाथ के प्यारी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाँह गही हँस के 'शाहे आलम' जान के मान कियो हितकारी।
रात रहे जहाँ जाईये तहाँ मैं निहारत हूंगी राह तिहारी।

५. किदारा—चौताल—

सांची कहो निस कहाँ जागत हो, नेह अत पागत हो, याही के गुण गावत हो।
बार बार आवत हो, मन सकुचावत सुख के बैन सुनावत हो,
याही में कहा पावत हो?
एकन को अंग लगावत हो, एकन को नेह जनावत हो,
एकन के मन लाल चखत हो।
'शाह आलम' पिया कौन तुम कूं सिखावत, ऐसी कहा मन लावत हो।

ख्याल भैरव तिताला

अब तुम जागो क्यों न मीत पिघरवा
हमरी प्रीत तुम सन लागी।
नींद के माते साह आलम सुरजनु
बाग बनवा सगरी रैन रंग रस पागी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दक्खिनी हिन्दी में ब्रज-भाषा काव्य

डा० परमानन्द पांचाल
एम० ए०, पी-एच० डी०

उत्तर भारत में जिस काल में सूर, तुलसी और मीरा की स्वर लहरियाँ गूंज रही थीं, केशव और विहारी की शृंगारिक रचनाओं से सर्वत्र मादकता व्याप्त थी, उसी समय 'नवरस' और 'सवरस' जैसी रचनाओं से दूर दक्षिणापथ का जनमानस भी रस विभोर हो रहा था। कुतुब मुश्तरी, मैना सतवंती, फूलबन तथा चन्द्र बदन व पाहियार जैसे प्रेमाख्यानों से दक्खिनी हिन्दी के साहित्य के भंडार को भरा जा रहा था।

ख्वाजा बन्दा नवाज गेसू दराज (१३२२-१४२३ ई०) से लेकर (वली १७३० ई०) तक अनेक लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के इस रूप को समृद्ध किया था। निज़ामी, लुत्फी, शाह हुसेनी, इब्राहीम—आदिल शाह, जानम, अब्दुल, नस्रुती, मुल्लावजही, गवासी, तबई, इब्न-निशाती और कुल्ली कुतुबशाह जैसे न जाने कितने कवियों ने दक्खिनी हिन्दी को महान साहित्य प्रदान किया था।

दक्खिनी हिन्दी पर जहाँ खड़ी बोली का प्रभाव है वहां ब्रज और अवधी का भी स्पष्ट प्रभाव है। दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवियों की रचनाओं को देखकर तो यहां तक भ्रम होता है कि ये रचनाएँ दक्खिनी की हैं या ब्रज भाषा की। दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय (१५८०-१६८६ ई०) की कालजयी रचना 'नवरस' के विषय में तो यह उक्ति निरापद रूप से चरितार्थ होती है। इसमें कितने ही रूपक तो निश्चय ही बेजोड़ हैं, जिन्हें पढ़कर सहसा रीति कालीन कवियों की याद आ जाती है। नवरस में प्रकृति चित्रण के ये अनूठे उपमान तो देखिये :—

"गणपति मूरत हस्त मेघ मद बरसत पानी
दंत दामिनी घंट घोर घोर मुंडन माल विधुबानी"

(मेघ नक्षत्र गणेश के समान है। बिजली दाँत हैं। गरज घंटे हैं और इन्द्र धनुष सरस्वती का मस्तक है)

विहारी की नायिका का चित्रण "लिखन बैठ जाकी सबै कैकै गजब गरूर" द्वारा भी नहीं हो पाया था। उसी प्रकार इब्राहीम की नायिका का सौंदर्य भी लहरों की भांति प्रति पल बदल रहा है। भला कौन चितेरा उसका चित्रण करे—

पूनम रात की मकर चाँदनी
या झमके मेघ सत सौदामिनी
चितारी चित न सके हुए मानी
ज्यों मौज पे मौज आवै पानी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वाँह गही हँस के 'शाहे आलम' जान के मान कियो हितकारी।
रात रहे जहाँ जाईये तहाँ मैं निहारत हूंगी राह तिहारी।

५. किदारा--चौताल--

सांची कहो निस कहाँ जागत हो, नेह अत पागत हो, याही के गुण गावत हो।
बार बार आवत हो, मन सकुचावत सुख के बैन सुनावत हो,
याही में कहा पावत हो?
एकन को अंग लगावत हो, एकन को नेह जनावत हो,
एकन के मन लाल चखत हो।
'शाह आलम' पिया कौन तुम कूं सिखावत, ऐसी कहा मन लावत हो।

ख्याल भैरव तिताला

अब तुम जागो क्यों न मीत पिघरवा
हमरी प्रीत तुम सन लागी।
नींद के माते साह आलम सुरजनु
बाग बनवा सगरी रैन रंग रस पागी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

दक्खिनी हिन्दी में ब्रज-भाषा काव्य

डा० परमानन्द पांचाल
एम० ए०, पी-एच० डी०

उत्तर भारत में जिस काल में सूर, तुलसी और मीरा की स्वर लहरियाँ गूंज रही थीं, केशव और विहारी की शृंगारिक रचनाओं से सर्वत्र मादकता व्याप्त थी, उसी समय 'नवरस' और 'सवरस' जैसी रचनाओं से दूर दक्षिणापथ का जनमानस भी रस विभोर हो रहा था। कुतुब मुश्तरी, मैना सतवंती, फूलबन तथा चन्द्र बदन व पाहियार जैसे प्रेमाख्यानों से दक्खिनी हिन्दी के साहित्य के भंडार को भरा जा रहा था।

ख्वाजा बन्दा नवाज गेसू दराज (१३२२-१४२३ ई०) से लेकर (वली १७३० ई०) तक अनेक लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी के इस रूप को समृद्ध किया था। निज़ामी, लुत्फी, शाह हुसेनी, इब्राहीम—आदिल शाह, जानम, अब्दुल, नस्रुती, मुल्लावजही, गवासी, तबई, इब्न-निशाती और कुल्ली कुतुबशाह जैसे न जाने कितने कवियों ने दक्खिनी हिन्दी को महान साहित्य प्रदान किया था।

दक्खिनी हिन्दी पर जहाँ खड़ी बोली का प्रभाव है वहां ब्रज और अवधी का भी स्पष्ट प्रभाव है। दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवियों की रचनाओं को देखकर तो यहां तक भ्रम होता है कि ये रचनाएँ दक्खिनी की हैं या ब्रज भाषा की। दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय (१५८०-१६८६ ई०) की कालजयी रचना 'नवरस' के विषय में तो यह उक्ति निरापद रूप से चरितार्थ होती है। इसमें कितने ही रूपक तो निश्चय ही बेजोड़ हैं, जिन्हें पढ़कर सहसा रीति कालीन कवियों की याद आ जाती है। नवरस में प्रकृति चित्रण के ये अनूठे उपमान तो देखिये :—

"गणपति मूरत हस्त मेघ मद बरसत पानी
दंत दामिनी घंट घोर घोर मुंडन माल विधुबानी"

(मेघ नक्षत्र गणेश के समान हैं। बिजली दाँत हैं। गरज घंटे हैं और इन्द्र धनुष सरस्वती का मस्तक है)

बिहारी की नायिका का चित्रण "लिखन बैठ जाकी सबै कैकै गजब गरूर" द्वारा भी नहीं हो पाया था। उसी प्रकार इब्राहीम की नायिका का सौंदर्य भी लहरों की भांति प्रति पल बदल रहा है। भला कौन चितेरा उसका चित्रण करे—

पूनम रात की मकर चाँदनी
या झमके मेघ सत सौदामिनी
चितारी चित न सके हुए मानी
ज्यों मौज पे मौज आवै पानी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नायिका का एक और सुन्दर रूप देखिए—

"सोम सेत मघ स्याम मानो नैन सुन्दर रूप लछन
बादर आंचर ता पर हरत लागे कब प्रकट दखे बदन"

(श्वेत चन्द्र में कालिमा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह कोई सुन्दर स्त्री है। बादल उसके मुख पर ऐसा लग रहा है जैसे उसके मुख पर कोई आंचल हो, जो हवाके कारण कभी उड़ जाता है और कभी उसे ढ़क लेता है)।

यही कारण है कि डा० श्रीराम शर्मा इब्राहीम आदिल शाह की इस रचना को दक्खिनी की रचना स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

आदिल शाही परिवार के ही आठवें सुल्तान अली आदिल शाह द्वितीय 'शाही' (१६५६-१६७२) के काव्य पर ब्रज का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित है। इन्होंने दोहे और गीत ही नहीं लिखे अपितु कवित्त और सवैये तक लिखे हैं। संगीत की अनेक राग-रागनियों में इन्होंने अपने भावों को पिरोया है। इनके शब्द संगीत लहरियों पर थिरकते नज़र आते हैं। इनकी नायिका की एक अनोखी चितवन को तो देखिये— "भरे भौन में वह केवल नैन ही सौं बात" नहीं करती, वह तो नैनन सैनन और बैनन तीनों ही का अद्भुत समन्वय करती हुई दीख पड़ती है:—

बड़े बड़े नैनन तें, थोड़े थोड़े सैनन सौं
भरे भरे बैनन तें कहें मोसो बात हैं
खड़े खड़े देखन तें, चल चल केनन सों
हँस हँस लाज करें मुड़ मुड़ जात हैं।
गौरे गौरे दंडन में कारे कारे फूहे सोहैं,
आंचर की ओट गात घर के लजात हैं।
पेखत मदन रूप पेम को समुंदर कर
जहाज लाज मीति भर ल्यात हैं।

नायिका का सौंदर्य और लावण्य और उसके अंगों के लिये उपमान खोज पाना भी कठिन है। उसके बुलाक का मोती कवि को घुंघची प्रतीत होता है—

तिरया बेसर कौ मुकता गुंज फल भयो
स्याम दसन लाल अधर मिल ऐसो रंग कियो
कवरी फारीच कहू कहूं फुब नेके
लागत हमें जैसे उडुगन धन रह्यो
मदन रूप जहां रूप सूं अटक्यों, ताके उपमान सांच कह्यो।

शाही ने हिन्दू धर्म की पौराणिक कथाओं से भी उपमानों को चुना है। सागर मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों को नायिका के सौंदर्य का रूपक तैयार करने में कितने उक्ति वैचित्र्य से काम लिया है। रमणी के नख शिख वर्णन में सभी रत्न एक स्थान पर समाविष्ट हो गए हैं—

जगत समुंदर मथ्यो चितराई रमणी कर सिंगार
पलक तीर दहन रंभा पुतरी लज्या लच्छमी लिए अवतार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कटाछ तुरंग से अमृत पक काजर नैं को चन्दर केती नार
बोह सुरा कौस्तंभ केके डोरी पारजात देह मलता संख खयार
मदन हस्त निरखन धन्वन्तरी कामधेन सोदिस्ट दुख निवार।

शाही के काव्य में अनेक बेजोड़ दोहे भी बन पड़े हैं, जिन्हें निःसंकोच ब्रज काव्य की थाती कहा जा सकता है।

तन तिहारो चंदना और मुक तिहारो चाँद
नैन हमारे चकौर ज्यों रहे प्रीत सो बांद।

\+ \+ \+

पिया बिछुरत तम लोक पड़े और नैना को सुख नांव
शुभ दिन तभी हुएगी पिया आवें मुआ ठांव।

इसी प्रकार एक दो नहीं दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवियों ने परम्परागत ब्रज काव्य की लीक पर चलकर अपनी कविता कामिनी के रूप सौंदर्य में और भी चार चाँद लागए हैं। आवश्यकता इस दिशा में समुचित शोध की है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

नायिका का एक और सुन्दर रूप देखिए—

"सोम सेत मघ स्याम मानो नैन सुन्दर रूप लछन
बादर आंचर ता पर हरत लागे कब प्रकट दखे बदन"

(श्वेत चन्द्र में कालिमा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह कोई सुन्दर स्त्री है। बादल उसके मुख पर ऐसा लग रहा है जैसे उसके मुख पर कोई आंचल हो, जो हवाके कारण कभी उड़ जाता है और कभी उसे ढ़क लेता है)।

यही कारण है कि डा० श्रीराम शर्मा इब्राहीम आदिल शाह की इस रचना को दक्खिनी की रचना स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

आदिल शाही परिवार के ही आठवें सुल्तान अली आदिल शाह द्वितीय 'शाही' (१६५६-१६७२) के काव्य पर ब्रज का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित है। इन्होंने दोहे और गीत ही नहीं लिखे अपितु कवित्त और सवैये तक लिखे हैं। संगीत की अनेक राग-रागनियों में इन्होंने अपने भावों को पिरोया है। इनके शब्द संगीत लहरियों पर थिरकते नज़र आते हैं। इनकी नायिका की एक अनोखी चितवन को तो देखिये— "भरे भौन में वह केवल नैन ही सौं बात" नहीं करती, वह तो नैनन सैनन और बैनन तीनों ही का अद्भुत समन्वय करती हुई दीख पड़ती है:—

बड़े बड़े नैनन तें, थोड़े थोड़े सैनन सौं
भरे भरे बैनन तें कहें मोसो बात हैं
खड़े खड़े देखन तें, चल चल केनन सों
हँस हँस लाज करें मुड़ मुड़ जात हैं।
गौरे गौरे दंडन में कारे कारे फूहे सोहैं,
आंचर की ओट गात घर के लजात हैं।
पेखत मदन रूप पेम को समुंदर कर
जहाज लाज मीति भर ल्यात हैं।

नायिका का सौंदर्य और लावण्य और उसके अंगों के लिये उपमान खोज पाना भी कठिन है। उसके बुलाक का मोती कवि को घुंघची प्रतीत होता है—

तिरया वेसर कौ मुकता गुंज फल भयो
स्याम दसन लाल अधर मिल ऐसो रंग कियो
कवरी फारीच कहू कहूं फुव नेके
लागत हमें जैसे उडुगन धन रह्यो
मदन रूप जहां रूप सूं अटक्यों, ताके उपमान सांच कह्यो।

शाही ने हिन्दू धर्म की पौराणिक कथाओं से भी उपमानों को चुना है। सागर मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों को नायिका के सौंदर्य का रूपक तैयार करने में कितने उक्ति वैचित्र्य से काम लिया है। रमणी के नख शिख वर्णन में सभी रत्न एक स्थान पर समाविष्ट हो गए हैं—

जगत समुंदर मथ्यो चितराई रमणी कर सिंगार
पलक तीर दहन रंभा पुतरी लज्या लच्छमी लिए अवतार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कटाछ तुरंग से अमृत पक काजर नैं को चन्दर केती नार
बोह सुरा कौस्तंभ केके डोरी पारजात देह मलता संख खयार
मदन हस्त निरखन धन्वन्तरी कामधेन सोदिस्ट दुख निवार।

शाही के काव्य में अनेक बेजोड़ दोहे भी बन पड़े हैं, जिन्हें निःसंकोच ब्रज काव्य की थाती कहा जा सकता है।

तन तिहारो चंदना और मुक तिहारो चांद
नैन हमारे चकौर ज्यों रहे प्रीत सो बांद।

\+ \+ \+

पिया बिछुरत तम लोक पड़े और नैना को सुख नांव
शुभ दिन तभी हुएगी पिया आवें मुआ ठांव।

इसी प्रकार एक दो नहीं दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवियों ने परम्परागत ब्रज काव्य की लीक पर चलकर अपनी कविता कामिनी के रूप सौंदर्य में और भी चार चाँद लागए हैं। आवश्यकता इस दिशा में समुचित शोध की है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्राचीन मथुरा का बौद्ध धर्म से संबंध

साहित्य-वाचस्पति प्रभुदयाल मीतल

भगवान बुद्ध का जन्म प्राचीन कौशल जनपद के अन्तर्गत शाक्य गण राज्य की राजधानी कपिलवस्तु के लुंबिनी बन में विक्रमपूर्व सं० ५६६ की वैशाखी पूर्णिमा को हुआ था। उनका जन्म-स्थान इस समय 'रुम्मनदेई' कहलाता है, जो उत्तर प्रदेश और नेपाल का एक सीमावर्ती गांव है। गौतम के पिता शाक्यों के गण-प्रमुख शुद्धोदन थे और उनकी माता का नाम महामाया था। उनका आरंभिक नाम सिद्धार्थ था। यद्यपि उन्हें संसार के समस्त भौतिक सुख प्राप्त थे, तथापि उनका मन उनमें नहीं रमता था। फलतः वे २९ वर्ष की युवावस्था में ही वृद्ध माता-पिता, युवा पत्नी और नवजात शिशु तथा राजकीय वैभव को छोड़ कर विरक्त वेश में घर से चल दिये थे। पहिले उन्होंने कई वर्षों तक घोर तपस्या की, किंतु उससे उन्हें शांति प्राप्त नहीं हुई। बाद में वे चिंतन-मनन में लीन रहने लगे। कुछ समय पश्चात उनके हृदय में ज्ञान की अपूर्व ज्योति जगमगा उठी और उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें सम्यक् 'बोध' हो गया है। इस प्रकार बोध प्राप्त होने से वे सिद्धार्थ की अपेक्षा 'बुद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसके बाद उन्होंने संसार के दुखी मानवों के कल्याणार्थ उपदेश करना आरंभ किया था।

बुद्ध का प्रथम धर्मोपदेश विक्रमपूर्व सं० ५३१ की आषाढ़ी पूर्णिमा को वाराणसी के निकटवर्ती सारनाथ नामक स्थान में हुआ था। बौद्ध धर्म में वह उपदेश 'धर्मचक्र प्रवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है। वे वर्ष में प्रायः ८-९ महीने धर्म-प्रचार के लिए 'चारिका' (विचरण) करते थे और वर्षा ऋतु के ३-४ महीने किसी एक स्थान पर निवास कर धर्मोपदेश करते हुए बिताते थे। बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि 'धर्म चक्र प्रवर्तन' के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन में ४५ 'वर्षावास' किये थे। उनका परिनिर्वाण ८० वर्ष की आयु में मल्ल गणराज्यांर्गत कुशीनारा के शालवन में विक्रमपूर्व सं० ४८६ की वैशाखी पूर्णिमा को हुआ था।

बुद्ध ने जिस धर्म का प्रचार किया था, वह 'बौद्ध धर्म', कहलाता है। उसका जन्म और उसका आरंभिक प्रचार पूर्वी भारत में हुआ था, किंतु उसके धार्मिक सिद्धांत और धर्मोपदेश तत्कालीन परिस्थिति में इतने लोकोपयोगी एवं लोकरंजक सिद्ध हुए, कि वह धर्म थोड़े ही काल में समस्त देश में प्रचलित हो गया था। मथुरा मंडल में भी उसका व्यापक प्रचार हुआ, किंतु उसके लिए अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां कुछ अधिक समय लगा था। भगवान बुद्ध अपने जीवन काल में धर्म-प्रचार के लिए यहां दो बार आये थे, किंतु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली थी। इस धर्म का यहां पर प्रचार उनके परिनिर्वाण के पश्चात् हुआ था।

भगवान् बुद्ध की पहिली मथुरा-यात्रा उनके जीवन के मध्य काल में हुई थी। वे अपने बारहवें वर्षा-वास के अवसर पर वेरंजा या वेरंभ नामक स्थान से यहां आये थे। दूसरी बार अपने निर्वाण काल से कुछ समय पूर्व वे अपने प्रिय शिष्य आनंद के साथ आये थे और उन्होंने यहां के 'रुरुमुंड पर्वत' को देखा था। इन दोनों में भी वेरंजा से मथुरा आने का उल्लेख ग्रंथों में अधिक प्रामाणिक ढंग से हुआ है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जिस समय भगवान बुद्ध वेरंजा से प्रथम बार मथुरा आये थे, उस समय उन्हें यह स्थान रुचिकर नहीं लगा था। 'अंगुत्तर निकाय' ('मधुरिय सुत्त, ३-२५६) से ज्ञात होता है, बुद्ध के मन पर उस यात्रा का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा था। उन्होंने अपने शिष्यों को मथुरा के अवगुण (आदीनवा) बतलाते हुए कहा था—"पंचिमें भिक्खवे आदीनवा मथुरायां। कत में पंच? विसमा, बहुरजा, चंड सुनखा, वाल यक्खा, दुल्लभ पिंडा।" हे भिक्षुओं। मथुरा में ५ दोष हैं—१. वहां के मार्ग विषम हैं, २. वहां बहुत धूल है, ३. वहां के कुत्ते बड़े भयंकर हैं, ४. जहां अज्ञानी यक्ष रहते हैं, और ५. वहां भिक्षा मिलने में कठिनाई होती है।

उक्त उल्लेख से ऐसा अनुमान होता है, उस काल में मथुरा की धार्मिक स्थिति विकृत हो गई थी और वहां के राज्यप्रबंध में शिथिलता आ गई थी, जिससे वहां की शांति और शासन-व्यवस्था में गड़बड़ी फैल गयी थी। फलतः वहां पर क्रूरकर्मा यक्षों का आतंक बढ़ गया था। उसके साथ ही वहां भीषण कुत्तों की प्रबलता एवं वहां की भूमि में कंकड़-पत्थर, झाड़-झंखाड़ तथा धूल-धक्कड़ की अधिकता हो गई थी। इन सबके कारण बुद्ध को उस यात्रा में पर्याप्त सफलता नहीं मिली थी। उस समय यहां के यक्ष-पूजकों में ही उनके विचारों का कुछ प्रचार होसका था। बुद्ध किस काल में प्रथम बार मथुरा आये थे, इसका निश्चय उनके 'वर्षा-वास' की गणना के आधार पर किया जा सकता है। उनका १२वां वर्षा-वास विक्रम पूर्व सं० ५१८ में हुआ था। वही काल उनकी प्रथम मथुरा यात्रा का भी है।

बौद्ध ग्रंथों से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध अपने परिनिर्वाण से कुछ समय पहिले दूसरी बार मथुरा आये थे। उस समय उनके साथ आनंद सहित कई शिष्य थे। उस अवसर पर आनंद ने उन्हें रुरु-मुंड पर्वत का हरा-भरा वन दिखलाया था। उसे देखकर बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि उनके देहावसान के सौ वर्ष बाद नट और भट नामक दो धनी भाई वहां बौद्ध भिक्षुओं के लिए एक विहार का निर्माण करावेंगे। उसी समय एक गंधी-पुत्र उपगुप्त का जन्म होगा। वह उन्हीं के समान सद्धर्म का प्रचार कर अनेक भिक्षुओं को अर्हत बनावेगा। बुद्ध की दूसरी मथुरा-यात्रा के काल का निश्चय उनके प्रिय शिष्य आनंद की उपस्थिति और उनके परिनिर्वाण-काल की संगति में किया जा सकता है। इस हिसाब से बुद्ध की दूसरी मथुरा-यात्रा का काल विक्रमपूर्व सं० ४९० के लगभग होता है।

वेरंजा की पहिचान—वेरंजा नामक स्थान को अभी तक ठीक तरह से नहीं पहचाना जा सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि बौद्ध साहित्य के अनंतर हिंदू साहित्य में उसका उल्लेख नहीं मिलता है। वर्तमान काल में भी मथुरा के आस-पास इस नाम का अथवा इससे मिलते हुए नाम का कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसकी वेरंजा के समान महत्वपूर्ण स्थिति और प्राचीन परंपरा रही हो।

डा० भरतसिंह उपाध्याय ने पालि विवरणी में बतलाई हुई वेरंजा की स्थिति का अनुसंधान करने के अनंतर अभिमत प्रकट करते हुए लिखा है—

"आज जहां ग्राड ट्रंक रोड अलीगढ़ और एटा के बीच सिकंदरराव कस्बा (जिला अलीगढ़) के पास मथुरा और सोरों के बीच के मार्ग को काटती है, वहीं संभवतः कहीं वेरंजा था।" हम भी उक्त मत से सहमत हैं। हमारे मतानुसार वेरंजा की पहिचान अलीगढ़ जिला के बरहद अथवा एटा जिला के अत-रंजी नामक स्थानों से की जा सकती है।

रुरुमुंड पर्वत की पहिचान—वेरंजा की भांति रुरुमुंड पर्वत की भी पहिचान नहीं की जा सकी है। कई विद्वानों का सुझाव उसे गोवर्धन पर्वत मानने के पक्ष में रहा है। श्री ग्राउस ने रुरुमुंड की पहिचान कंकाली

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

टीलो से की थी, उसका खंडन करते हुए डा० भरतसिंह उपाध्याय ने रुरुमुंड या उरुमुंड पर्वत को गोवर्धन पर्वत बतलाया है। उन्होंने महा कात्यायन द्वारा अवंतिपुत्र को उपदेश देने के स्थल 'गुंदावन' या 'गुंदबन' की पहिचान भी गोवर्धन के निकटवर्ती राधाकुंड-कृष्णकुंड से की है। चीनी यात्री हुएनसांग ने उपगुप्त विहार के संबंध में जो आंखों देखा वृत्तांत लिखा है, उसे प्रामाणिक मानने से रुरुमुंड या उरुमुंड पर्वत के गोवर्धन पर्वत होने की संभावना समाप्त हो जाती है। पूर्वोक्त विद्वानों को गोवर्धन तक दृष्टि फैलाने की आवश्यकता कदाचित् इसलिए हुई कि मथुरा की प्राचीन या नवीन सीमाओं के आस-पास कोई तथाकथित 'पर्वत' नहीं है।

हुएनसांग के उल्लेखानुसार हमें उरूमुंड पर्वत, जहां उपगुप्त विहार भी था, बुद्धकालीन मथुरा के १।४ मील पूर्व की ओर खोजना चाहिए। बुद्धकालीन मथुरा कटरा केशवदेव के आस-पास थी। जहाँ से गोवर्धन पर्वत प्रायः १३ मील पश्चिमी दिशा में है। कंकाली टीले को ग्राउस ने "कटरा से कुछ पूर्व में" बतलाया है, किंतु वह भी उसके दक्षिण में है, न कि पूर्व में। कंकाली टीला प्राचीन काल में जैन धर्म का एक बड़ा केन्द्र था, जहाँ उनके अनेक स्तूप-मंदिर आदि थे। बौद्ध धर्म के किसी बड़े स्तूपादि के वहाँ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। गोवर्धन के विरुद्ध एक बड़ी बात यह है कि उसके उरुमुंड नाम की कोई प्राचीन परंपरा नहीं मिलती है। गोवर्धन पहाड़ी कृष्ण-काल का प्राचीन अवशेष है और पुराणादि ग्रंथों में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। उनमें से किसी में भी उसका उरुमंड नाम नहीं मिलता है। बौद्ध कथा ग्रंथ 'घट जातक' में भी उसे 'गोवड्ढन' ही कहा गया है। ऐसी दशा से गोवर्धन और कंकाली टीला में किसी को भी उरुमंड पर्वत नहीं कहा जा सकता है।

हमारे मतानुसार बौद्ध साहित्य का रुरुमुंड अथवा उरुमुंड पर्वत गोकर्णेश्वर महादेव के निकटवर्ती टीलों में से कोई ऊंचा टीला था। उसके नाम की परंपरा 'पद्मपुराण' में उल्लिखित दैत्य की कथा के आधार पर प्रचलित हुई जान पड़ती है। उक्त पुराण में लिखा है, प्राचीन काल में एक अत्यन्त बलशाली दैत्य हुआ, जिसका नाम 'रुरु' था। उसने देवताओं को बड़ा कष्ट दिया था। फलतः देवताओं की प्रार्थना पर भगवती शिवदूती ने दैत्य का मुंड-छेदन किया था। उस रुरुमुंड को धारण करने वाली देवी की जो स्तुति की गई है, उसमें उसे 'चामुंडा' भी कहा गया है।

"जयस्व देवि चामुंडे जय भूतापहारिणी। जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोस्तुते॥"

मथुरा में चामुंडा देवी का स्थान इसी कथा की स्मृति में निर्मित हुआ जान पड़ता है। यह स्थान गोकर्णेश्वर महादेव के निकटवर्ती टीलों के पास ही है। गोकर्णेश्वर क्षेत्र प्राचीन काल में बौद्ध धर्म का एक बड़ा केन्द्र था वहां से बौद्ध मूर्तियां यथेष्ट संख्या में उपलब्ध हुई हैं। कुषाण काल में वहां एक 'देव-कुल' था, जहां कुषाणों के दिवंगत राजाओं की मूर्तियाँ रखी जाती थीं। बौद्ध काल में वहाँ कई बिहार होने के प्रमाण मिले हैं; अतः 'उपगुप्त विहार' का वहां होना सर्वथा संभव है। बुद्धकालीन मथुरा से यह स्थान प्रायः १½ मील पूर्वोत्तर दिशा में भी है। इस प्रकार उरुमुंड अथवा रुरुमुंड पर्वत और उपगुप्त विहार की पहिचान के लिए मथुरा में इससे अच्छी स्थिति का कोई दूसरा स्थान दिखलाई नहीं देता है। उसके लिए गोवर्धन पर्वत, कंकाली टीला, कंस किला और सप्तर्षि टीला में से किसी का भी नाम लेना सर्वथा असंगत कल्पना है।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ समय पश्चात उनका एक विद्वान शिष्य कात्यायन मथुरा में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धर्म-प्रचार के लिए आया था और यहां के गुंदाबन में विहार किया था। उस समय मथुरा का राजा अंबतिपुत्र था। कात्यायन के उपदेश से अवंतिपुत्र बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। तभी से मथुरा की जनता में उस धर्म का प्रसार होने लगा। इस प्रकार भगवान् बुद्ध की यात्राओं से प्राचीन ब्रज में बौद्ध धर्म का बीजारोपण हुआ, और कात्यायन के प्रयत्न से वह अंकुरित भी हुआ, किंतु वह पल्लवित और पुष्पित मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल (विक्रम पूर्व दूसरी शती) में हुआ था। उस काल में बौद्ध धर्म के मूल रूप स्थविरवाद (थेरवाद) की एक शाखा 'सर्वास्तिवाद' का यहां पर प्रचार हुआ था। बौद्ध धर्म के उस संप्रदाय के आरंभिक आचार्य शाणकवासी थे, जो मथुरा के 'नट-मट विहार' में निवास करते थे। उनका शिष्य सुप्रसिद्ध उपगुप्त था।

उपगुप्त मथुरा के निवासी थे। उनका पिता एक गंधी था, जो यहां पर प्रसाधन सामग्री का व्यापार करता था। मथुरा के बौद्ध विद्वान शाणकवासी उपगुप्त के पिता के यहां भिक्षा लेने जाया करते थे। उन्होंने बालक उपगुप्त की अद्भुत प्रतिभा को पहिचान लिया और उसे अपना श्रामणीर (दीक्षार्थी) बनाना चाहा। उपगुप्त के पिता ने इसे स्वीकार कर लिया। उपगुप्त शाणकवासी के संपर्क में रह कर बौद्ध धर्म का मार्मिक विद्वान और उसका प्रसिद्ध व्याख्याता हो गया। शाणकवासी के पश्चात् वही सर्वास्तिवाद का महान आचार्य और उसका सबसे बड़ा प्रचारक हुआ था। जब उपगुप्त युवा था, तब मथुरा की एक समृद्धिशालिनी और रूपवती गणिका वासवदत्ता उस पर आसक्त हो गई थी। उपगुप्त ने अपने चरित्र की दृढ़ता और आध्यात्मिकता के प्रभाव से उक्त गणिका को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया था, जिससे उसकी बड़ी ख्याति हुई थी। बौद्ध धर्म के ग्रंथों में वैशाली की नगरबधू आम्रपाली की भांति मथुरा की जनपद-कल्याणी वासवदत्ता का आख्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। आम्रपाली भगवान बुद्ध द्वारा कृतार्थ हुई थी, तो वासवदत्ता उपगुप्त द्वारा उपकृत हुई थी। दोनों वारांगनाएं अपने अपार वैभव, ऐश-आराम के प्रभूतसाधन और सैकड़ों धनाढ्य व्यक्तियों के प्रेम को ठुकरा कर भिक्षुणी हुई थी। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक महात्माओं के संपर्क से अपने निंदनीय जीवन को भी अभिनंदनीय बना लिया था।

उपगुप्त बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के सर्वाधिक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। उन्होंने मौर्य सम्राट अशोक को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी, और मथुरा को इस धर्म का एक बड़ा केन्द्र बना दिया था। उपगुप्त के उपदेश से अशोक ने बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार किया और बौद्ध भिक्षुओं के लिए अनेक विहार तथा स्तूपों का निर्माण कराया था। मथुरा में भी कई विहार और स्तूप बनाये गये थे। उस काल में मथुरा बौद्ध धर्म का भारत प्रसिद्ध केन्द्र हो गया था।

मौर्य सम्राटों के पश्चात् जब शुंग नरेशों का शासन हुआ, तब बौद्ध धर्म का प्रभाव कुछ कम हो गया था। शुंग सम्राट वैदिक धर्मावलंबी थे, अतः उन्होंने अशोक की भांति बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन नहीं दिया था, यद्यपि उन्होंने उसके प्रसार में कोई बाधा भी उपस्थित नहीं की थी। उस काल में मथुरा में कई नये बौद्ध स्तूप बनाये गये थे। इससे सिद्ध होता है कि शुंग सम्राट वैदिक धर्मावलंबी होते हुए भी बौद्ध धर्म के प्रति उदार थे।

शुंग नरेशों के पश्चात मथुरा मंडल पर शक एवं कुषाण जैसे विदेशी और नाग तथा गुप्त जैसे भारतीय राजाओं का शासन हुआ था। उस काल में भी बौद्ध धर्म की अच्छी स्थिति थी। शकों में से अधिकांश बौद्ध धर्मावलंबी थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के प्रति अपनी अधिक रुचि दिखा-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

टीलो से की थी, उसका खंडन करते हुए डा० भरतसिंह उपाध्याय ने रुरुमुंड या उरुमुंड पर्वत को गोवर्धन पर्वत बतलाया है। उन्होंने महा कात्यायन द्वारा अवंतिपुत्र को उपदेश देने के स्थल 'गुंदावन' या 'गुंदबन' की पहिचान भी गोवर्धन के निकटवर्ती राधाकुंड-कृष्णकुंड से की है। चीनी यात्री हुएनसांग ने उपगुप्त बिहार के संबंध में जो आंखों देखा वृत्तांत लिखा है, उसे प्रामाणिक मानने से रुरुमुंड या उरुमुंड पर्वत के गोवर्धन पर्वत होने की संभावना समाप्त हो जाती है। पूर्वोक्त विद्वानों को गोवर्धन तक दृष्टि फैलाने की आवश्यकता कदाचित् इसलिए हुई कि मथुरा की प्राचीन या नवीन सीमाओं के आस-पास कोई तथाकथित 'पर्वत' नहीं है।

हुएनसांग के उल्लेखानुसार हमें उरूमुंड पर्वत, जहां उपगुप्त विहार भी था, बुद्धकालीन मथुरा के १।४ मील पूर्व की ओर खोजना चाहिए। बुद्धकालीन मथुरा कटरा केशवदेव के आस-पास थी। जहाँ से गोवर्धन पर्वत प्रायः १३ मील पश्चिमी दिशा में है। कंकाली टीले को ग्राउस ने "कटरा से कुछ पूर्व में" बतलाया है, किंतु वह भी उसके दक्षिण में है, न कि पूर्व में। कंकाली टीला प्राचीन काल में जैन धर्म का एक बड़ा केन्द्र था, जहाँ उनके अनेक स्तूप-मंदिर आदि थे। बौद्ध धर्म के किसी बड़े स्तूपादि के वहाँ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। गोवर्धन के विरुद्ध एक बड़ी बात यह है कि उसके उरुमुंड नाम की कोई प्राचीन परंपरा नहीं मिलती है। गोवर्धन पहाड़ी कृष्ण-काल का प्राचीन अवशेष है और पुराणादि ग्रंथों में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। उनमें से किसी में भी उसका उरुमंड नाम नहीं मिलता है। बौद्ध कथा ग्रंथ 'घट जातक' में भी उसे 'गोवड्ढन' ही कहा गया है। ऐसी दशा से गोवर्धन और कंकाली टीला में किसी को भी उरुमंड पर्वत नहीं कहा जा सकता है।

हमारे मतानुसार बौद्ध साहित्य का रुरुमुंड अथवा उरुमुंड पर्वत गोकर्णेश्वर महादेव के निकटवर्ती टीलों में से कोई ऊंचा टीला था। उसके नाम की परंपरा 'पद्मपुराण' में उल्लिखित दैत्य की कथा के आधार पर प्रचलित हुई जान पड़ती है। उक्त पुराण में लिखा है, प्राचीन काल में एक अत्यन्त बलशाली दैत्य हुआ, जिसका नाम 'रुरु' था। उसने देवताओं को बड़ा कष्ट दिया था। फलतः देवताओं की प्रार्थना पर भगवती शिवदूती ने दैत्य का मुंड-छेदन किया था। उस रुरुमुंड को धारण करने वाली देवी की जो स्तुति की गई है, उसमें उसे 'चामुंडा' भी कहा गया है।

"जयस्व देवि चामुंडे जय भूतापहारिणी। जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोस्तुते॥"

मथुरा में चामुंडा देवी का स्थान इसी कथा की स्मृति में निर्मित हुआ जान पड़ता है। यह स्थान गोकर्णेश्वर महादेव के निकटवर्ती टीलों के पास ही है। गोकर्णेश्वर क्षेत्र प्राचीन काल में बौद्ध धर्म का एक बड़ा केन्द्र था वहां से बौद्ध मूर्तियां यथेष्ट संख्या में उपलब्ध हुई हैं। कुषाण काल में वहां एक 'देव-कुल' था, जहां कुषाणों के दिवंगत राजाओं की मूर्तियाँ रखी जाती थीं। बौद्ध काल में वहाँ कई बिहार होने के प्रमाण मिले हैं; अतः 'उपगुप्त विहार' का वहां होना सर्वथा संभव है। बुद्धकालीन मथुरा से यह स्थान प्रायः १½ मील पूर्वोत्तर दिशा में भी है। इस प्रकार उरुमुंड अथवा रुरुमुंड पर्वत और उपगुप्त विहार की पहिचान के लिए मथुरा में इससे अच्छी स्थिति का कोई दूसरा स्थान दिखलाई नहीं देता है। उसके लिए गोवर्धन पर्वत, कंकाली टीला, कंस किला और सप्तर्षि टीला में से किसी का भी नाम लेना सर्वथा असंगत कल्पना है।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ समय पश्चात उनका एक विद्वान शिष्य कात्यायन मथुरा में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

धर्म-प्रचार के लिए आया था, और यहां के गुंदाबन में विहार किया था। उस समय मथुरा का राजा अंबतिपुत्र था। कात्यायन के उपदेश से अबंतिपुत्र बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। तभी से मथुरा की जनता में उस धर्म का प्रसार होने लगा। इस प्रकार भगवान् बुद्ध की यात्राओं से प्राचीन व्रज में बौद्ध धर्म का बीजारोपण हुआ, और कात्यायन के प्रयत्न से वह अंकुरित भी हुआ, किंतु वह पल्लवित और पुष्पित मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल (विक्रम पूर्व दूसरी शती) में हुआ था। उस काल में बौद्ध धर्म के मूल रूप स्थविरवाद (थेरवाद) की एक शाखा 'सर्वास्तिवाद' का यहां पर प्रचार हुआ था। बौद्ध धर्म के उस संप्रदाय के आरंभिक आचार्य शाणकवासी थे, जो मथुरा के 'नट-मट विहार' में निवास करते थे। उनका शिष्य सुप्रसिद्ध उपगुप्त था।

उपगुप्त मथुरा के निवासी थे। उनका पिता एक गंधी था, जो यहां पर प्रसाधन सामग्री का व्यापार करता था। मथुरा के बौद्ध विद्वान शाणकवासी उपगुप्त के पिता के यहां भिक्षा लेने जाया करते थे। उन्होंने बालक उपगुप्त की अद्भुत प्रतिभा को पहिचान लिया और उसे अपना श्रामणीर (दीक्षार्थी) बनाना चाहा। उपगुप्त के पिता ने इसे स्वीकार कर लिया। उपगुप्त शाणकवासी के संपर्क में रह कर बौद्ध धर्म का मार्मिक विद्वान और उसका प्रसिद्ध व्याख्याता हो गया। शाणकवासी के पश्चात् वही सर्वास्तिवाद का महान आचार्य और उसका सबसे बड़ा प्रचारक हुआ था। जब उपगुप्त युवा था, तब मथुरा की एक समृद्धिशालिनी और रूपवती गणिका वासवदत्ता उस पर आसक्त हो गई थी। उपगुप्त ने अपने चरित्र की दृढ़ता और आध्यात्मिकता के प्रभाव से उक्त गणिका को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया था, जिससे उसकी बड़ी ख्याति हुई थी। बौद्ध धर्म के ग्रंथों में वैशाली की नगरबधू आम्रपाली की भांति मथुरा की जनपद-कल्याणी वासवदत्ता का आख्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। आम्रपाली भगवान बुद्ध द्वारा कृतार्थ हुई थी, तो वासवदत्ता उपगुप्त द्वारा उपकृत हुई थी। दोनों वारांगनाएं अपने अपार वैभव, ऐश-आराम के प्रभूतसाधन और सैकड़ों धनाढ्य व्यक्तियों के प्रेम को ठुकरा कर भिक्षुणी हुई थी। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक महात्माओं के संपर्क से अपने निंदनीय जीवन को भी अभिनंदनीय बना लिया था।

उपगुप्त बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के सर्वाधिक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। उन्होंने मौर्य सम्राट अशोक को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी, और मथुरा को इस धर्म का एक बड़ा केन्द्र बना दिया था। उपगुप्त के उपदेश से अशोक ने बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार किया और बौद्ध भिक्षुओं के लिए अनेक विहार तथा स्तूपों का निर्माण कराया था। मथुरा में भी कई विहार और स्तूप बनाये गये थे। उस काल में मथुरा बौद्ध धर्म का भारत प्रसिद्ध केन्द्र हो गया था।

मौर्य सम्राटों के पश्चात् जब शुंग नरेशों का शासन हुआ, तब बौद्ध धर्म का प्रभाव कुछ कम हो गया था। शुंग सम्राट वैदिक धर्मावलंबी थे, अतः उन्होंने अशोक की भांति बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन नहीं दिया था, यद्यपि उन्होंने उसके प्रसार में कोई बाधा भी उपस्थित नहीं की थी। उस काल में मथुरा में कई नये बौद्ध स्तूप बनाये गये थे। इससे सिद्ध होता है कि शुंग सम्राट वैदिक धर्मावलंबी होते हुए भी बौद्ध धर्म के प्रति उदार थे।

शुंग नरेशों के पश्चात मथुरा मंडल पर शक एवं कुषाण जैसे विदेशी और नाग तथा गुप्त जैसे भारतीय राजाओं का शासन हुआ था। उस काल में भी बौद्ध धर्म की अच्छी स्थिति थी। शकों में से अधिकांश बौद्ध धर्मावलंबी थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के प्रति अपनी अधिक रुचि दिखा-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लाई थी। शक क्षत्रप राजुवलु की रानी कुमुइअ (कंबोजिका) ने बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मथुरा के वर्तमान सप्तर्षि टीले पर एक स्तूप और 'गुहा विहार' नामक संघाराम बनवाया था। राजुवुल के पुत्र शोडास ने उक्त संघाराम के लिए कुछ भूमि का दान किया था। उस काल में सर्वास्तिवाद के कई प्रसिद्ध विद्वान हुए थे। उनमें से एक बुद्धिबल था, जिसने महासंघिकों को शास्त्रार्थ में पराजित कर बड़ी कीर्ति अर्जित की थी। इसका उल्लेख मथुरा के सप्तर्षि टीला से मिले हुए सिंह-शीर्ष लेख में हुआ है।

कुषाण सम्राट् कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और उसने साम्राज्य के अनेक स्थानों में बौद्ध स्तूपों एवं संघारामों का निर्माण कराया था। कनिष्क का पौत्र हुविष्क भी बौद्ध धर्म का प्रेमी था। उसने मथुरा में अपने नाम से एक विशाल बौद्ध विहार बनवाया था और कनिष्क के समय के बने हुए देवकुल का जीर्णोद्धार कराया था। कुषाण काल में त्रिपिटकाचार्य बल मथुरामंडल में बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध आचार्य हुआ था। उसकी दो भिक्षुणी शिष्याओं ने मथुरा में बोधिसत्व की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।

कुषाण के पश्चात् मथुरामंडल पर पहिले नाग राजाओं का और फिर मगध गुप्त सम्राटों का शासन हुआ। नागवंशीय नरेश शैव धर्म के और गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के अनुयायी थे, किंतु उनके शासन काल में सभी धर्मों की उन्नति हुई थी। फलतः बौद्ध धर्म भी उस काल में उन्नत अवस्था में था। सुप्रसिद्ध गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अन्य धर्मों के साथ ही साथ बौद्ध धर्म को भी प्रोत्साहन प्रदान किया था। उस समय मथुरा राज्य में बौद्ध धर्म की कैसी स्थिति थी, उसका कुछ परिचय फाह्यान के यात्रा-विवरण से मिलता है।

चीनी यात्री फाह्यान भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा करता हुआ सं० ४५० के लगभग मथुरा आया था और यहां पर प्रायः एक मास तक ठहरा था। उसने चंद्रगुप्त विक्रमादित्य कालीन मथुरा राज्य के बौद्ध धर्म की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है—"यहां के छोटे-बड़े सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। शाक्य मुनि के बाद से यहां के निवासी इस धर्म का पालन करते आ रहे हैं। मथुरा नगर, उसके आस-पास तथा यमुना नदी के दोनों ओर २० संघाराम हैं, जिनमें ३००० भिक्षु निवास करते हैं। ६ बौद्ध स्तूप भी हैं। इनमें सारिपुत्र के सन्मान में बना हुआ स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। फाह्यान के इस वर्णन से समझा जा सकता है कि उस काल में मथुरा में बौद्ध धर्म की स्थिति अच्छी थी।

गुप्त शासन के अंतिम काल में विदेशी हूणों का भारत पर आक्रमण हुआ था। उनके क्रूर कृत्यों का दुष्परिणाम मथुरा राज्य को भी सहन करना पड़ा था। हूणों में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना नहीं थी। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं का संहार कर बौद्ध इमारतों को नष्ट-भ्रष्ट किया था। उस समय मथुरा नगर की भारी लूट हुई थी। किंतु यहां की इमारतों को अधिक क्षति नहीं पहुंची थी। हूणों ने बौद्ध संघाराम जैसी बड़ी इमारतों का स्पर्श न कर कदाचित छोटे स्तूपादि ही नष्ट किये थे, क्योंकि उनके आक्रमण के बाद जब चीनी यात्री हुएनसांग मथुरा में आया था, तब उसने यहां पर २० संघाराम देखे थे, जो फाह्यान के समय में भी थे। हूणों के आक्रमण के पश्चात मथुरा राज्य में बौद्ध धर्म की अवनति होने लगी थी। उस समय सर्वास्तिवाद सहित सभी थेरवादी संप्रदाय प्रभाव शून्य हो गये थे। वह युग महायानी संप्रदायों की उन्नति का था, किंतु मथुरा राज्य में वे भी अपना अधिक प्रभाव स्थापित नहीं कर सके थे।

गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने के पश्चात् मथुरा मंडल पर कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन का शासन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुआ। सम्राट हर्ष अपनी कुल-परंपरा के अनुसार आरंभ में सूर्य और शिव का उपासक था, किंतु बाद में उसका झुकाव बौद्ध धर्म के प्रति हो गया था। उसकी आस्था उस धर्म के महायान संप्रदाय के प्रति अधिक थी। यद्यपि उस काल में बौद्ध धर्म की अवनति होने लगी थी, तथापि हर्ष के प्रोत्साहन से महायान अच्छी स्थिति में हो गई थी। सम्राट हर्ष के शासन काल की एक उल्लेखनीय घटना चीनी यात्री हुएनसांग का बौद्ध धर्म स्थानों की यात्रा करने के लिए भारत आना था।

हुएनसांग अपनी यात्रा के अवसर पर मथुरा भी आया था। उसने अपने यात्रा-विवरण में यहां के बौद्ध धर्म की तत्कालीन स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। उसने लिखा है—"मथुरा नगर में प्रायः २० संघाराम हैं जिनमें लगभग दो हजार भिक्षु निवास करते हैं। वे बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान दोनों संप्रदायों को मानते हैं। वहां पर ५ देव मंदिर भी हैं, जिनमें कई प्रकार के मतावलंबी उपासना करते हैं। महाराज अशोक के बनवाये हुए वहां ३ स्तूप हैं और विगत चारों बुद्धों के अनेक चिन्ह भी वहां विद्यमान हैं। शाक्य तथागत के अनुगामियों के पवित्र अवशेषों पर स्मारक स्वरूप कई स्तूप वहाँ बनवाये गये हैं। सारिपुत्र, मोद्गलपुत्र, मेत्रायणीपुत्र, पणिपुत्र, उपालि, आनंद, राहुल, मंजुश्री तथा अन्य बोधिसत्वों के स्तूप हैं, जिनमें भिक्षुगण व्रत और उपवास के दिनों में धार्मिक भेंट के रूप में अनेक बहुमूल्य वस्तुएं अर्पित किया करते हैं। वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आदर भाव रखते हैं। अभिधर्म के अध्येता सारिपुत्र के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं, तपस्वी मौद्गलपुत्र के प्रति, सूत्रों का पठन-पाठन करने वाले पूर्ण मैत्रायणी-पुत्र के प्रति, तथा विनय और शील की दीक्षा लेने वाले उपालि के प्रति आदर भाव रखते हैं। भिक्षुणियां आनंद की आराधना करती हैं और श्रामणेर जन राहुल की। महायान के मानने वाले बोधिसत्वों की उपासना करते हैं। सभी भिक्षुगण उपवास के दिनों में अपनी श्रद्धांजलि स्वरूप विभिन्न प्रकार की भेंट अर्पित किया करते हैं। उनकी रत्नजटित पताकाएँ सर्वत्र फहराती हैं और धार्मिक अनुष्ठानों का सुगंधित धुआं दिशाओं में भर जाता है। महकदार फूलों की सर्वत्र वर्षा होती रहती है। देश का राजा और उसके मंत्री-गण भी उन धार्मिक आयोजनों में बड़े उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

हुएनसांग के उपर्युक्त उल्लेख से हर्षकालीन मथुरा में बौद्ध धर्मस्थानों की यथार्थ स्थिति, भिक्षुओं के आचार-विचार और उनकी पूजा-विधि का बोध होता है। हुएनसांग का पूर्ववर्ती चीनी यात्री फाह्यान जब सं० ४५० के लगभग मथुरा आया था, तब यहां के २० संघारामों में ३ हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे, किंतु हुएनसांग के समय में उनकी संख्या २ हजार ही रह गई थी। उससे ज्ञात होता है कि उस काल में यहां पर बौद्ध धर्म की स्थिति बिगड़ने लगी थी।

मथुरामंडल में मूल बौद्ध धर्म के जो थैरवादी (हीनयानी) संप्रदाय 'सर्वास्तिवाद' और 'सम्मितीय' प्रचलित थे, उनका अस्तित्व हर्षवर्धन के काल तक रहा था, किंतु बाद में उनका स्थान महासंघिक महायानी संप्रदायों ने ले लिया था।महायान की साधना को संक्षिप्त रूप देने के लिए उसके अंतर्गत-'मंत्रनय' का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके साथ 'ध्यानी बुद्धों' का महत्व भी जुड़ गया था। उस समय भगवान बुद्ध के वचनों को सूक्ष्म मंत्र मान कर उनके उच्चारण और जप मात्र को ही सिद्धिदायक समझा जाने लगा था। षडक्षरी मंत्र 'ऊं मणिपद्मे हुम्' महायानी बौद्धों के लिए गायत्री से भी अधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि उनके मंत्रनय से तांत्रिक साधना का विकास हुआ और उससे वज्रयानी साधना विकसित हुई। इस प्रकार महायान से मुत्रयान, मंत्र से तंत्रयान और तंत्र से वज्रयान का उदय हुआ था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

लाई थी। शक क्षत्रप राजुवलु की रानी कुमुइअ (कंबोजिका) ने बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मथुरा के वर्तमान सप्तर्षि टीले पर एक स्तूप और 'गुहा विहार' नामक संघाराम बनवाया था। राजुवुल के पुत्र शोडास ने उक्त संघाराम के लिए कुछ भूमि का दान किया था। उस काल में सर्वास्तिवाद के कई प्रसिद्ध विद्वान हुए थे। उनमें से एक बुद्धिबल था, जिसने महासंघिकों को शास्त्रार्थ में पराजित कर बड़ी कीर्ति अर्जित की थी। इसका उल्लेख मथुरा के सप्तर्षि टीला से मिले हुए सिंह-शीर्ष लेख में हुआ है।

कुषाण सम्राट् कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और उसने साम्राज्य के अनेक स्थानों में बौद्ध स्तूपों एवं संघारामों का निर्माण कराया था। कनिष्क का पौत्र हुविष्क भी बौद्ध धर्म का प्रेमी था। उसने मथुरा में अपने नाम से एक विशाल बौद्ध विहार बनवाया था और कनिष्क के समय के बने हुए देवकुल का जीर्णोद्धार कराया था। कुषाण काल में त्रिपिटकाचार्य बल मथुरामंडल में बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध आचार्य हुआ था। उसकी दो भिक्षुणी शिष्याओं ने मथुरा में बोधिसत्व की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।

कुषाण के पश्चात् मथुरामंडल पर पहिले नाग राजाओं का और फिर मगध गुप्त सम्राटों का शासन हुआ। नागवंशीय नरेश शैव धर्म के और गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के अनुयायी थे, किंतु उनके शासन काल में सभी धर्मों की उन्नति हुई थी। फलतः बौद्ध धर्म भी उस काल में उन्नत अवस्था में था। सुप्रसिद्ध गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अन्य धर्मों के साथ ही साथ बौद्ध धर्म को भी प्रोत्साहन प्रदान किया था। उस समय मथुरा राज्य में बौद्ध धर्म की कैसी स्थिति थी, उसका कुछ परिचय फाह्यान के यात्रा-विवरण से मिलता है।

चीनी यात्री फाह्यान भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा करता हुआ सं० ४५० के लगभग मथुरा आया था और यहां पर प्रायः एक मास तक ठहरा था। उसने चंद्रगुप्त विक्रमादित्य कालीन मथुरा राज्य के बौद्ध धर्म की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है—"यहां के छोटे-बड़े सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। शाक्य मुनि के बाद से यहां के निवासी इस धर्म का पालन करते आ रहे हैं। मथुरा नगर, उसके आस-पास तथा यमुना नदी के दोनों ओर २० संघाराम हैं, जिनमें ३००० भिक्षु निवास करते हैं। ६ बौद्ध स्तूप भी हैं। इनमें सारिपुत्र के सन्मान में बना हुआ स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। फाह्यान के इस वर्णन से समझा जा सकता है कि उस काल में मथुरा में बौद्ध धर्म की स्थिति अच्छी थी।

गुप्त शासन के अंतिम काल में विदेशी हूणों का भारत पर आक्रमण हुआ था। उनके क्रूर कृत्यों का दुष्परिणाम मथुरा राज्य को भी सहन करना पड़ा था। हूणों में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना नहीं थी। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं का संहार कर बौद्ध इमारतों को नष्ट-भ्रष्ट किया था। उस समय मथुरा नगर की भारी लूट हुई थी। किंतु यहां की इमारतों को अधिक क्षति नहीं पहुंची थी। हूणों ने बौद्ध संघाराम जैसी बड़ी इमारतों का स्पर्श न कर कदाचित छोटे स्तूपादि ही नष्ट किये थे, क्योंकि उनके आक्रमण के बाद जब चीनी यात्री हुएनसांग मथुरा में आया था, तब उसने यहां पर २० संघाराम देखे थे, जो फाह्यान के समय में भी थे। हूणों के आक्रमण के पश्चात मथुरा राज्य में बौद्ध धर्म की अवनति होने लगी थी। उस समय सर्वास्तिवाद सहित सभी थेरवादी संप्रदाय प्रभाव शून्य हो गये थे। वह युग महायानी संप्रदायों की उन्नति का था, किंतु मथुरा राज्य में वे भी अपना अधिक प्रभाव स्थापित नहीं कर सके थे।

गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने के पश्चात् मथुरा मंडल पर कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन का शासन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हुआ। सम्राट हर्ष अपनी कुल-परंपरा के अनुसार आरंभ में सूर्य और शिव का उपासक था, किंतु बाद में उसका झुकाव बौद्ध धर्म के प्रति हो गया था। उसकी आस्था उस धर्म के महायान संप्रदाय के प्रति अधिक थी। यद्यपि उस काल में बौद्ध धर्म की अवनति होने लगी थी, तथापि हर्ष के प्रोत्साहन से महायान अच्छी स्थिति में हो गई थी। सम्राट हर्ष के शासन काल की एक उल्लेखनीय घटना चीनी यात्री हुएनसांग का बौद्ध धर्म स्थानों की यात्रा करने के लिए भारत आना था।

हुएनसांग अपनी यात्रा के अवसर पर मथुरा भी आया था। उसने अपने यात्रा-विवरण में यहां के बौद्ध धर्म की तत्कालीन स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। उसने लिखा है—"मथुरा नगर में प्रायः २० संघाराम हैं जिनमें लगभग दो हजार भिक्षु निवास करते हैं। वे बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान दोनों संप्रदायों को मानते हैं। वहां पर ५ देव मंदिर भी हैं, जिनमें कई प्रकार के मतावलंबी उपासना करते हैं। महाराज अशोक के बनवाये हुए वहां ३ स्तूप हैं और विगत चारों बुद्धों के अनेक चिन्ह भी वहां विद्यमान हैं। शाक्य तथागत के अनुगामियों के पवित्र अवशेषों पर स्मारक स्वरूप कई स्तूप वहाँ बनवाये गये हैं। सारिपुत्र, मोद्गलपुत्र, मेत्रायणीपुत्र, पणिपुत्र, उपालि, आनंद, राहुल, मंजुश्री तथा अन्य बोधिसत्वों के स्तूप हैं, जिनमें भिक्षुगण व्रत और उपवास के दिनों में धार्मिक भेंट के रूप में अनेक बहुमूल्य वस्तुएं अर्पित किया करते हैं। वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आदर भाव रखते हैं। अभिधर्म के अध्येता सारिपुत्र के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं, तपस्वी मौद्गलपुत्र के प्रति, सूत्रों का पठन-पाठन करने वाले पूर्ण मैत्रायणी-पुत्र के प्रति, तथा विनय और शील की दीक्षा लेने वाले उपालि के प्रति आदर भाव रखते हैं। भिक्षुणियां आनंद की आराधना करती हैं और श्रामणेर जन राहुल की। महायान के मानने वाले बोधिसत्वों की उपासना करते हैं। सभी भिक्षुगण उपवास के दिनों में अपनी श्रद्धांजलि स्वरूप विभिन्न प्रकार की भेंट अर्पित किया करते हैं। उनकी रत्नजटित पताकाएँ सर्वत्र फहराती हैं और धार्मिक अनुष्ठानों का सुगंधित धुआं दिशाओं में भर जाता है। महकदार फूलों की सर्वत्र वर्षा होती रहती है। देश का राजा और उसके मंत्री-गण भी उन धार्मिक आयोजनों में बड़े उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

हुएनसांग के उपर्युक्त उल्लेख से हर्षकालीन मथुरा में बौद्ध धर्मस्थानों की यथार्थ स्थिति, भिक्षुओं के आचार-विचार और उनकी पूजा-विधि का बोध होता है। हुएनसांग का पूर्ववर्ती चीनी यात्री फाह्यान जब सं० ४५० के लगभग मथुरा आया था, तब यहां के २० संघारामों में ३ हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे, किंतु हुएनसांग के समय में उनकी संख्या २ हजार ही रह गई थी। उससे ज्ञात होता है कि उस काल में यहां पर बौद्ध धर्म की स्थिति बिगड़ने लगी थी।

मथुरामंडल में मूल बौद्ध धर्म के जो थैरवादी (हीनयानी) संप्रदाय 'सर्वास्तिवाद' और 'सम्मितीय' प्रचलित थे, उनका अस्तित्व हर्षवर्धन के काल तक रहा था, किंतु बाद में उनका स्थान महासंघिक महायानी संप्रदायों ने ले लिया था।महायान की साधना को संक्षिप्त रूप देने के लिए उसके अंतर्गत-'मंत्रनय' का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके साथ 'ध्यानी बुद्धों' का महत्व भी जुड़ गया था। उस समय भगवान बुद्ध के वचनों को सूक्ष्म मंत्र मान कर उनके उच्चारण और जप मात्र को ही सिद्धिदायक समझा जाने लगा था। षडक्षरी मंत्र 'ऊं मणिपद्मे हुम्' महायानी बौद्धों के लिए गायत्री से भी अधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि उनके मंत्रनय से तांत्रिक साधना का विकास हुआ और उससे वज्रयानी साधना विकसित हुई। इस प्रकार महायान से मुत्रयान, मंत्र से तंत्रयान और तंत्र से वज्रयान का उदय हुआ था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

वज्रयान की तांत्रिक साधना ने बौद्ध धर्म के रूप को एकदम बदल दिया था और वही उसके ह्रास एवं पतन का भी मुख्य कारण हुई थी। बौद्ध धर्म की मूल भावना निवृत्ति और वैराग्य प्रधान थी, किंतु वज्रयानी सिद्धों ने तांत्रिक साधना के लिए उनकी उपेक्षा कर शुद्ध रागात्मक विधियों को ग्रहण किया था। उसके कारण बौद्ध धर्म के उस परवर्ती रूप में वैराग्य वृत्ति का सर्वथा लोप हो गया और शुद्ध राग के साथ ही साथ वासनापूर्ण राग एवं भोग-प्रवृत्ति का प्रचलन बढ़ गया था।

सिद्ध तिलोपा की यह उक्ति वज्रयानी साधना की कुंजी कही जा सकती है—'जिम विस भक्तइ विसहि पलुत्ता। तिम भव भुज्जइ भवहिं ण जुत्ता॥ जैसे विष का भक्षण करते रहने से मनुष्य उसके प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वैसे ही भव का भोग करने से भी वह भव में लिप्त नहीं होता।' जिस साधना में भोग-प्रवृत्ति को इतना महत्व दिया गया हो, उसका अंत वासनापूर्ण अनाचार, में होना स्वाभाविक था।

बौद्ध धर्म श्रमण-संस्कृतिमूलक और वैराग्यप्रधान था, इसलिए इसमें विरक्त भिक्षुओं और गृह-त्यागी साधकों को अधिक महत्व दिया गया था। समाज के बहुसंख्यक गृहस्थ वर्ग की इस धर्म में उपेक्षा ही की गई थी। वैसे इस धर्म के अनुयायियों में गृहस्थों की भी बड़ी संख्या रही थी, तथापि बौद्ध धर्म संघ में उन्हें कभी महत्व का स्थान नहीं हुआ था। समस्त पालि साहित्य में बौद्ध गृहस्थों के लिए विवाहादि आवश्यक संस्कारों से संबंधित एक भी ग्रंथ नहीं था, गृहस्थों के लिए जैसे उसमें कुछ सोचा ही नहीं गया था। फलतः जो बौद्ध विहार पहिले विरक्त भिक्षुओं के संयम, सदाचार, तप और त्याग के केन्द्र थे, वे वज्रयानियों की भोग प्रधान और वासनापूर्ण तांत्रिक साधना के कारण भ्रष्टाचार तथा व्यभिचार के अड्डे बन गये थे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सुमना

विविधा

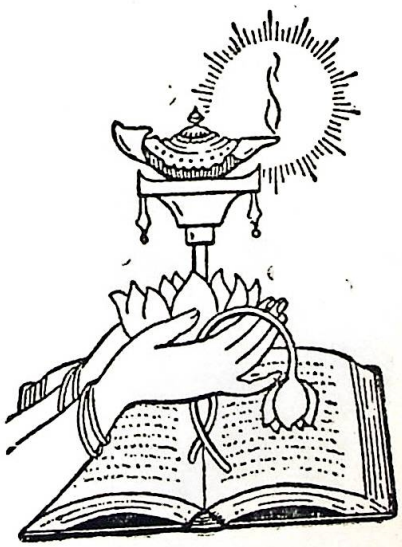

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

जयतु जयतु बृन्दावनदासः

⊙

डा० राजेन्द्र द्विवेदी

एम० ए० (अंग्रेजी, संस्कृत), पी-एच० डी० साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

जयतु जयतु वृन्दावनदासः।
वृन्दाटवीविहारकोकिलो ब्रजभारतीविकासः॥
ब्रजसाहित्यमण्डले निपुणं कीर्तिकलापं तनुते।
यः साहित्यसेविनां सेवा नित्यकर्मवत् मनुते॥
स्वयमपि विविधपुस्तकानां यो वागीश्वरः प्रणेता।
ब्रजभूमेः साहित्यधुरीणानामपि धुर्यो नेता॥
जयतु ब्रजधरा यमुनावीचीनां माधुर्य विलासः।
जयतु ब्रजपतिः जयतु वल्लवीश्वर्याः सुस्मितहासः॥

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्यिक संस्थाओं के अभिसिंचक

⊙

डा० प्रभाकर माचवे

श्री वृन्दावनदास 'ब्रज भारती' के कुशल संपादक, भारतीय संस्कृति और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् वक्ता, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और स्वर्गीय वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों के संकलनकर्ता और सम्पादक, बड़े कर्मठ हिन्दी सेवी हैं। आपने अनेक साहित्यिक संस्थाओं और सम्मेलनों का संचालन, दिशादर्शन और अभिसिंचन किया है। ऐसी विभूति के सम्मान में जो अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, उसकी सफलता की मैं हार्दिक कामना करता हूँ। आशा करता हूँ कि वृन्दावनदास जी शतायु हों तथा ब्रज साहित्य-मंडल और ब्रज की इसी प्रकार से सेवा-साधना करते रहें। वस्तुतः आज की हिन्दी का मूल बीज शौरसेनी प्राकृत यानी ब्रजभूमि की बोली में था, और उसी मधुरभाषा में सूरदास और अष्ट-छाप के कवि' हिन्दी के रीतिकाल के अनेक कवि हुए। उस भाषा की माधुरी ने किसी समय समस्त भारत को एक भागवत निष्ठा से आप्लावित किया, दक्षिण उत्तर को एकात्म बनाया—वृन्दावन के मन्दिरों में आंध्र के और तमिलनाडु के 'दिव्य प्रबंधक' गाये जाने लगे। उस भूमि के पुत्र और उस भूमि की भाषा के अनन्य उन्नायक वृन्दावनदास जी को मेरे अनेक प्रणाम। ●

सुशील साहित्यसेवी

⊙

डा० सैयद असद अली

एम० ए०, पी-एच०, डी०

बाबू वृन्दावनदास जी उन महान व्यक्तियों में से हैं जिनका उद्देश्य दूसरों की सेवा और सहायता करना रहा है। उन्होंने साहित्यकारों के अभिनन्दन करके उनको प्रोत्साहित किया है, अनेक ग्रंथों का संपादन उनकी महती प्रतिभा का परिचायक है। 'ब्रजभारती' का आज भी वे बड़ी दक्षता के साथ संपादन भार संभाले हुए हैं। ऐसे कर्मठ, गुणी, सुशील और साहित्यसेवी के अभिनन्दन पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। ●

शत-शत अभिनन्दन

⊙

डा० माजदा असद

एम० ए०, पी-एच०, डी०

वयोवृद्ध साहित्यकार बा० वृन्दावनदास जी का अभिनन्दन किया जा रहा है यह हर्ष का विषय है। साहित्य जगत में उनकी सेवाएँ सराहनीय हैं। अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष रह कर उन्होंने ब्रज साहित्य की सेवा की है, वे वस्तुतः साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत हैं। ऐसी प्रतिभावान विभूतियों का अभिनन्दन कर हम उनके प्रति कृतज्ञता के भाव का ज्ञापन करते हैं। उनको शत शत अभिनन्दन।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनोविज्ञान के पण्डित

⊙

कु० मधु पोद्दार

ग्रीष्म अवकाश में बंगलोर से बंबई आने का कारण परिवर्तन के लिए घूमना फिरना था, अचानक नाना जी के आ जाने पर हम लोग मथुरा चले गए। वहाँ से हरिद्वार जाने का कार्यक्रम बना। मैंने सोचा कि यह तो धार्मिक यात्रा का कार्यक्रम है। इसमें मनोरंजन का अंश अत्यल्प होगा। पर हमारे नाना जी के साथ ने इस धारणा को आमूल बदल डाला। इस यात्रा में मुझे नाना जी के दो रूप दृष्टिगोचर हुए। प्रथमतः उनका साहित्यिक नेता का रूप देखने को मिला, 'स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के स्मृति समारोह में नाना जी का अध्यक्षीय भाषण सुनने को मिला वहाँ घर पर सामान्य रूप से रहने वाले हमारे नाना जी की प्रतिभाशीलता की सराहना गण्यमान्य साहित्यज्ञ लोगों को करते सुना। दूसरे उनके पूजनीय व्यक्तित्व को देखने का भी अवसर मिला। हरिद्वार के गण्यमान व्यक्तियों ने उनका अभिनन्दन किया। माल्यार्पण की तो यह स्थिति थी कि उन्हें अनेक बार मालायें उतार कर रखनी पड़ीं।

नाना जी मात्र अपने स्वागत सत्कार या भाषण उद्घाटन की धुन में ही लीन नहीं रहे अपितु उन्होंने हमारे घूमने फिरने की भी उचित व्यवस्था कर दी। सौभाग्य से मथुरा के डा० आनन्दस्वरूप पाठक जो भारत सरकार के औद्योगिक विकास मंत्रालय, दिल्ली में सेवारत हैं हरिद्वार आए थे। नाना जी ने उनके साथ घूमने फिरने का कार्यक्रम बना दिया। पर्वतीय कठिनाइयां भी अच्छा संग होने के कारण मनोरंजक बन गई। डा० पाठक के भानजे भानजी अजय अर्जेश एवं मनीषा के साथ बड़ा सुन्दर साथ रहा। हम लोग पहाड़ों पर उछलते कूदते खाते पीते जाते और नैसर्गिक छटा का अवलोकन करते। माता जी एवं नानी जी धार्मिक पक्ष में रुचि रखती तो हम लोग प्राकृतिक स्थानों के देखने में रुचि लेते। नाना जी ने हमें हैवी इलेक्ट्रीकल्स भी दिखलाया उनकी मान्यता है कि ऐसे स्थलों को देखने से बच्चों के ज्ञान क्षितिज का विकास होता है। इस सबके पीछे नाना जी की मनोविज्ञान की समझने की क्षमता ही है। वे प्रत्येक के मनो-भावों को समझकर उसके अनुकूल व्यवस्था कर देते हैं कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके अनुराग के कारण ही हम लोग इतनी दूर से आकर उनके पास रहना चाहते हैं।

इस यात्रा में मैंने उनके वन्दनीय, साहित्यिक एवं मनोविज्ञानवेत्ता के रूपों का दर्शन किया। जिनसे मैं सर्वथा अपरिचित थी। जनता के समक्ष उनका कुछ भी रूप हो पर हमारे लिए तो वे प्रिय नाना जी हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें नाना जी का अनुराग हमारी वृद्धावस्था तक मिलता रहे। ●

ब्रज-संस्कृति के मर्मज्ञ

⊙

डा० मण्डन मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल एवं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं ब्रज भारती पत्रिका के यशस्वी संपादक श्री वृन्दावन दास जी साहित्य सेवी हैं। वे एक योग्य संपादक एवं व्याख्यान दाता हैं। ब्रज संस्कृति के तो आप प्रकाण्ड पंडित हैं। आपका अभिनन्दन ब्रज भारती का अभिनन्दन है। इस अवसर पर उन्हें मेरा नमस्कार। ●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कर्मठ साहित्यकार

⊙

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

ब्रजभाषा और ब्रजसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री वृन्दावनदास अग्रवाल हिन्दी जगत के उन महारथियों में हैं, जिन्होंने अपना जीवन भाषा और साहित्य की सेवामें लगा दिया है। जीवन की अनेक व्यस्तताओं में भी वे साहित्य की प्रत्येक गतिविधि में इतना डूबकर भाग लेने को आतुर-उत्सुक रहते हैं, यह उनके व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता है। चाहे कोई गोष्ठी हो अथवा सम्मेलन, कोई गम्भीर शास्त्रीय अनुशीलन की चर्चा हो अथवा सहज विनोद की बैठक सभी में उनका अनवरत उत्साह दृष्टिगत होता है। मैंने कभी उनको उदास या गम्भीर 'मूड' में नहीं देखा। अहर्निश व्यस्त रहने की सहज भावना ही उनकी कर्मठता का द्योतक है। उनके अभिनन्दन के निमित्त किए गये इस पावन यत्न में मैं भी कर्मठता की प्रतिमूर्ति अग्रवाल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को अपनी विनम्र प्रणमांजलि अर्पित करता हूँ।

●

विनम्र साहित्यसेवी

⊙

कु० जयलक्ष्मी नायडू

बा० वृन्दावनदास जी वयोवृद्ध होने के साथ साथ ज्ञान वृद्ध और लक्ष्मीवृद्ध भी हैं। साहित्य एवं साहित्यज्ञों के तो वे सेवक हैं। साहित्यिक समारोहों के आयोजक के नाते वे सुप्रसिद्ध हैं। सत्यनारायण शताब्दीसमारोह, शिशु स्मृति समारोह, सूर समारोह, ग्वाल कवि शताब्दि समारोह, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति समारोह, सभी के मूल में बाबू जी की प्रेरणा निहित है। अभिनन्दन ग्रन्थ एवं स्मृति ग्रन्थों द्वारा साहित्यज्ञों का पूजन करना उनकी हाबी (व्यासंग) है। प्रेरक साधक (डा० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ) श्री युगल किशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृतिग्रन्थ के संपादक के रूप में आपने इनके आयोजन में तन मन धन से सहयोग दिया है। साहित्यज्ञों के मथुरा आगमन पर वे उनका अपने प्रकाश भवन में स्वागत करते हैं तथा उनके सम्मान में साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन भी। वे स्वयं को साहित्यज्ञ कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। आप कहते हैं कि मुझे तो साहित्य और साहित्यज्ञों का सेवक कहलाना अति रुचिकर प्रतीत होता है। वस्तुतः वे बड़े विनम्र हैं उनका हार्दिक अभिनन्दन।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

मनोविज्ञान के पण्डित

कु० मधु पोद्दार

ग्रीष्म अवकाश में बंगलोर से बंबई आने का कारण परिवर्तन के लिए घूमना फिरना था, अचानक नाना जी के आ जाने पर हम लोग मथुरा चले गए। वहाँ से हरिद्वार जाने का कार्यक्रम बना। मैंने सोचा कि यह तो धार्मिक यात्रा का कार्यक्रम है। इसमें मनोरंजन का अंश अत्यल्प होगा। पर हमारे नाना जी के साथ ने इस धारणा को आमूल बदल डाला। इस यात्रा में मुझे नाना जी के दो रूप दृष्टिगोचर हुए। प्रथमतः उनका साहित्यिक नेता का रूप देखने को मिला, 'स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के स्मृति समारोह में नाना जी का अध्यक्षीय भाषण सुनने को मिला वहाँ घर पर सामान्य रूप से रहने वाले हमारे नाना जी की प्रतिभाशीलता की सराहना गण्यमान्य साहित्यज्ञ लोगों को करते सुना। दूसरे उनके पूजनीय व्यक्तित्व को देखने का भी अवसर मिला। हरिद्वार के गण्यमान व्यक्तियों ने उनका अभिनन्दन किया। माल्यार्पण की तो यह स्थिति थी कि उन्हें अनेक बार मालायें उतार कर रखनी पड़ीं।

नाना जी मात्र अपने स्वागत सत्कार या भाषण उद्घाटन की धुन में ही लीन नहीं रहे अपितु उन्होंने हमारे घूमने फिरने की भी उचित व्यवस्था कर दी। सौभाग्य से मथुरा के डा० आनन्दस्वरूप पाठक जो भारत सरकार के औद्योगिक विकास मंत्रालय, दिल्ली में सेवारत हैं हरिद्वार आए थे। नाना जी ने उनके साथ घूमने फिरने का कार्यक्रम बना दिया। पर्वतीय कठिनाइयां भी अच्छा संग होने के कारण मनोरंजक बन गई। डा० पाठक के भानजे भानजी अजय अर्जेश एवं मनीषा के साथ बड़ा सुन्दर साथ रहा। हम लोग पहाड़ों पर उछलते कूदते खाते पीते जाते और नैसर्गिक छटा का अवलोकन करते। माता जी एवं नानी जी धार्मिक पक्ष में रुचि रखती तो हम लोग प्राकृतिक स्थानों के देखने में रुचि लेते। नाना जी ने हमें हैवी इलेक्ट्रीकल्स भी दिखलाया उनकी मान्यता है कि ऐसे स्थलों को देखने से बच्चों के ज्ञान क्षितिज का विकास होता है। इस सबके पीछे नाना जी की मनोविज्ञान की समझने की क्षमता ही है। वे प्रत्येक के मनो-भावों को समझकर उसके अनुकूल व्यवस्था कर देते हैं कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके अनुराग के कारण ही हम लोग इतनी दूर से आकर उनके पास रहना चाहते हैं।

इस यात्रा में मैंने उनके वन्दनीय, साहित्यिक एवं मनोविज्ञानवेत्ता के रूपों का दर्शन किया। जिनसे मैं सर्वथा अपरिचित थी। जनता के समक्ष उनका कुछ भी रूप हो पर हमारे लिए तो वे प्रिय नाना जी हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें नाना जी का अनुराग हमारी वृद्धावस्था तक मिलता रहे। ●

ब्रज-संस्कृति के मर्मज्ञ

डा० मण्डन मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल एवं उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं ब्रज भारती पत्रिका के यशस्वी संपादक श्री वृन्दावन दास जी साहित्य सेवी हैं। वे एक योग्य संपादक एवं व्याख्यान दाता हैं। ब्रज संस्कृति के तो आप प्रकाण्ड पंडित हैं। आपका अभिनन्दन ब्रज भारती का अभिनन्दन है। इस अवसर पर उन्हें मेरा नमस्कार। ●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

कर्मठ साहित्यकार

⊙

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

ब्रजभाषा और ब्रजसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्री वृन्दावनदास अग्रवाल हिन्दी जगत के उन महारथियों में हैं, जिन्होंने अपना जीवन भाषा और साहित्य की सेवामें लगा दिया है। जीवन की अनेक व्यस्तताओं में भी वे साहित्य की प्रत्येक गतिविधि में इतना डूबकर भाग लेने को आतुर-उत्सुक रहते हैं, यह उनके व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता है। चाहे कोई गोष्ठी हो अथवा सम्मेलन, कोई गम्भीर शास्त्रीय अनुशीलन की चर्चा हो अथवा सहज विनोद की बैठक सभी में उनका अनवरत उत्साह दृष्टिगत होता है। मैंने कभी उनको उदास या गम्भीर 'मूड' में नहीं देखा। अहर्निश व्यस्त रहने की सहज भावना ही उनकी कर्मठता का द्योतक है। उनके अभिनन्दन के निमित्त किए गये इस पावन यत्न में मैं भी कर्मठता की प्रतिमूर्ति अग्रवाल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को अपनी विनम्र प्रणमांजलि अर्पित करता हूँ।

●

विनम्र साहित्यसेवी

⊙

कु० जयलक्ष्मी नायडू

बा० वृन्दावनदास जी वयोवृद्ध होने के साथ साथ ज्ञान वृद्ध और लक्ष्मीवृद्ध भी हैं। साहित्य एवं साहित्यज्ञों के तो वे सेवक हैं। साहित्यिक समारोहों के आयोजक के नाते वे सुप्रसिद्ध हैं। सत्यनारायण शताब्दीसमारोह, शिशु स्मृति समारोह, सूर समारोह, ग्वाल कवि शताब्दि समारोह, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति समारोह, सभी के मूल में बाबू जी की प्रेरणा निहित है। अभिनन्दन ग्रन्थ एवं स्मृति ग्रन्थों द्वारा साहित्यज्ञों का पूजन करना उनकी हाबी (व्यासंग) है। प्रेरक साधक (डा० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ) श्री युगल किशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृतिग्रन्थ के संपादक के रूप में आपने इनके आयोजन में तन मन धन से सहयोग दिया है। साहित्यज्ञों के मथुरा आगमन पर वे उनका अपने प्रकाश भवन में स्वागत करते हैं तथा उनके सम्मान में साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन भी। वे स्वयं को साहित्यज्ञ कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। आप कहते हैं कि मुझे तो साहित्य और साहित्यज्ञों का सेवक कहलाना अति रुचिकर प्रतीत होता है। वस्तुतः वे बड़े विनम्र हैं उनका हार्दिक अभिनन्दन।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी पोषक महारथी

⊙

डा० चक्रधर बिजल्वान
एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रजभारती पत्रिका के सम्पादक बाबू वृन्दावनदास जी, ब्रज-संस्कृति एवं साहित्य के विद्वान तो हैं ही, साथ ही आप हिन्दी साहित्य क्षेत्र के भी महारथी हैं। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप दो बार अध्यक्ष रह चुके हैं, और अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के आप जीवनाधार हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा के प्रयोग को क्रियान्वित देखना आपकी बलवती इच्छा है। सरस्वती के वरद पुत्र बाबूजी साहित्य साधकों के पूजक व साहित्यिक समारोहों के आयोजनकर्ता हैं। मृदुल स्वभाव, वाणी पर सरस्वती का अधिवास एवं साहित्य समाराधना का व्रत बाबू जी के व्यक्तित्व के निर्माण तत्व हैं। आपका अभिनन्दन साहित्यिकों का अभिनन्दन है। उन्हें मेरी प्रणति।

●

स्थितप्रज्ञ

⊙

आंजनेय शर्मा

सम्यक गुण, कर्म, त्याग और शील का सुसमन्वय ही एक उज्ज्वल चरित्रवान और आदर्श व्यक्ति का निर्माण करता है। बा० वृन्दावनदास अपने गुण कर्म और शील के कारण मथुरा नगरपालिका के सफल अध्यक्ष के नाते सुख्यात हैं। शैक्षणिक क्षेत्र में वी० एस० ए० डिग्री कालेज, आदि लगभग एक दर्जन संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। सहकारिता आन्दोलन में आप जिला स्तर से प्रदेश स्तर तक सम्बद्ध रहे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में वे एक दशाब्दि से आए हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल और उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एकाधिक बार अध्यक्ष निर्वाचित होकर उन्होंने इस क्षेत्र में भी अपनी योग्यता का परिचय दे दिया है। आपने सत्यनारायण कविरत्न के वीर होरेशस का सम्पादन किया है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र, भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य; प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य आदि ग्रन्थ आपके निष्णात सम्पादक होने का प्रमाण हैं। आप विगत एक दशाब्दि से 'ब्रज भारती' त्रैमासिक के सम्पादक हैं जिसका अबाध प्रकाशन होता रहा है। इन सभी सफलताओं के पीछे बाबू जी की स्थितप्रज्ञता ऐसा कारण है जो उन्हें उत्तरोत्तर अग्रगामी बनाती रही है। ऐसे साहित्य सेवी का अभिनन्दन सुन्दर आयोजन है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्यतीर्थ

डा० विद्या शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

श्याम काशी प्रेस के सन्दर्भ में मुझे बाबू वृन्दावन दास जी के साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय मिला। ब्रजभाषा के लीला साहित्य की अमर सेवा करने वाले इस प्रेस ने लोक साहित्य, श्रेण्य साहित्य, जनरुचि के साहित्य तथा पुराणों एवं शास्त्रों के अनुवाद आदि के प्रकाशित करने में जो योगदान किया हैं वह चिरस्मरणीय है। उसी प्रकार इस प्रेस के मालिक वा० वृन्दावन दास जी ने ब्रज साहित्य मंडल को दृढ़ आधार प्रदान करने में तथा उसे ढुलमुल स्थिति से निकाल कर सुदृढ़ बनाने में स्पृहणीय योग दिया हैं। विनम्रता की मूर्ति एवं अध्ययनशील व्यक्तित्ववान बाबूजी की बहुमुखी प्रतिभा एवं कर्मण्यता जहाँ युवकों के लिए आदर्श हैं वहाँ कार्य करने के लिए प्रेरित करने की उनकी अद्भुत शक्ति भी संस्थाओं को सजीव बनाये रखने तथा कार्यकर्ताओं को उद्बुद्ध करने के लिए वाञ्छनीय हैं। वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध एवं साहित्य-तीर्थ बाबूजी का हार्दिक अभिनन्दन।

श्रद्धेय

अनिल कुमार आंजनेय

मथुरा के डोरी बाजार से 'संकुचित स्व' के वर्तुल को उलांघकर परिचय की जो डोर बढ़ाई जा रही है उसके पीछे एक स्वस्थ दृष्टि और सगुण चिन्तन है। प्रकाश भवन में बैठ कर 'ब्रज साहित्य मण्डल' का 'ब्रजभारती' के रूप में जो ज्योतिवितान ताना जा रहा है उसके प्रसार में भारत भारती के भास्वर स्वरूप की आरती उतारने की साध है। "संदेशन मधुबन कूप भरे' अपनो भेजत नांहि नंदनन्दन हमरो फेरिधरे" का उपालम्भ यहां नहीं पहुंचता यहाँ तो नित्यप्रति संदेशा-पाती में लिखकर पठाया जाता है।

भारतीय मनीषा अर्थशुद्धि के भाव की भी हामी है।

"सर्वेषामेव शौचानामर्थ शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिः सहि शुचिर्न मृद्वारि शुचि शुचि।"

बाबू जी में अर्थ शुचिता है। वे मितभाषी, मृदु व्यवहारकुशल, अतिथिवत्सल, अध्यवसायी, दत्तावधान, मुदितापरायण, काव्यशास्त्र के विनोद सेकालयापन करने वाले धीमान हैं। आप में विद्या के साथ विनय-का अधिवास है।

बाबूजी की कीर्तिकौमुदी उत्तरोत्तर विवर्द्धित होकर प्रकाश भवन के प्रकाश को विकीर्ण करती रहे यही हमारी शिव कामना है। भद्रमस्तु।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हिन्दी पोषक महारथी

डा० चक्रधर बिजल्वान
एम० ए०, पी-एच० डी०

ब्रजभारती पत्रिका के सम्पादक बाबू वृन्दावनदास जी, ब्रज-संस्कृति एवं साहित्य के विद्वान तो हैं ही, साथ ही आप हिन्दी साहित्य क्षेत्र के भी महारथी हैं। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप दो बार अध्यक्ष रह चुके हैं, और अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के आप जीवनाधार हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा के प्रयोग को क्रियान्वित देखना आपकी बलवती इच्छा है। सरस्वती के वरद पुत्र बाबूजी साहित्य साधकों के पूजक व साहित्यिक समारोहों के आयोजनकर्ता हैं। मृदुल स्वभाव, वाणी पर सरस्वती का अधिवास एवं साहित्य समाराधना का व्रत बाबू जी के व्यक्तित्व के निर्माण तत्व हैं। आपका अभिनन्दन साहित्यिकों का अभिनन्दन है। उन्हें मेरी प्रणति।

●

स्थितप्रज्ञ

आंजनेय शर्मा

सम्यक गुण, कर्म, त्याग और शील का सुसमन्वय ही एक उज्ज्वल चरित्रवान और आदर्श व्यक्ति का निर्माण करता है। वा० वृन्दावनदास अपने गुण कर्म और शील के कारण मथुरा नगरपालिका के सफल अध्यक्ष के नाते सुख्यात हैं। शैक्षणिक क्षेत्र में वी० एस० ए० डिग्री कालेज, आदि लगभग एक दर्जन संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। सहकारिता आन्दोलन में आप जिला स्तर से प्रदेश स्तर तक सम्बद्ध रहे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में वे एक दशाब्दि से आए हैं। अ० भा० ब्रज साहित्य मंडल और उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एकाधिक बार अध्यक्ष निर्वाचित होकर उन्होंने इस क्षेत्र में भी अपनी योग्यता का परिचय दे दिया है। आपने सत्यनारायण कविरत्न के वीर हमीरहठ का सम्पादन किया है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र, भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य; प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य आदि ग्रन्थ आपके निष्णात सम्पादक होने का प्रमाण हैं। आप विगत एक दशाब्दि से 'ब्रज भारती' त्रैमासिक के सम्पादक हैं जिसका अबाध प्रकाशन होता रहा है। इन सभी सफलताओं के पीछे बाबू जी की स्थितप्रज्ञता ऐसा कारण है जो उन्हें उत्तरोत्तर अग्रगामी बनाती रही है। ऐसे साहित्य सेवी का अभिनन्दन सुन्दर आयोजन है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

साहित्यतीर्थ

डा० विद्या शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

श्याम काशी प्रेस के सन्दर्भ में मुझे बाबू वृन्दावन दास जी के साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय मिला। ब्रजभाषा के लीला साहित्य की अमर सेवा करने वाले इस प्रेस ने लोक साहित्य, श्रेण्य साहित्य, जनरुचि के साहित्य तथा पुराणों एवं शास्त्रों के अनुवाद आदि के प्रकाशित करने में जो योगदान किया है वह चिरस्मरणीय है। उसी प्रकार इस प्रेस के मालिक बा० वृन्दावन दास जी ने ब्रज साहित्य मंडल को दृढ़ आधार प्रदान करने में तथा उसे डुलमुल स्थिति से निकाल कर सुदृढ़ बनाने में स्पृहणीय योग दिया है। विनम्रता की मूर्ति एवं अध्ययनशील व्यक्तित्ववान बाबूजी की बहुमुखी प्रतिभा एवं कर्मण्यता जहाँ युवकों के लिए आदर्श है वहाँ कार्य करने के लिए प्रेरित करने की उनकी अद्भुत शक्ति भी संस्थाओं को सजीव बनाये रखने तथा कार्यकर्ताओं को उद्बुद्ध करने के लिए वाञ्छनीय है। वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध एवं साहित्य-तीर्थ बाबूजी का हार्दिक अभिनन्दन।

श्रद्धेय

अनिल कुमार आंजनेय

मथुरा के डोरी बाजार से 'संकुचित स्व' के वर्तुल को उलांघकर परिचय की जो डोर बढ़ाई जा रही है उसके पीछे एक स्वस्थ दृष्टि और सगुण चिन्तन है। प्रकाश भवन में बैठ कर 'ब्रज साहित्य मण्डल' का 'ब्रजभारती' के रूप में जो ज्योतिवितान ताना जा रहा है उसके प्रसार में भारत भारती के भास्वर स्वरूप की आरती उतारने की साध है। "संदेशन मधुबन कूप भरे' अपनो भेजत नांहि नंदनन्दन हमरो फेरिघरे" का उपालम्भ यहां नहीं पहुंचता यहाँ तो नित्यप्रति संदेशा-पाती में लिखकर पठाया जाता है।

भारतीय मनीषा अर्थशुद्धि के भाव की भी हामी है।

"सर्वेषामेव शौचानामर्थ शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिः सहि शुचिर्न मृद्वारि शुचि शुचि।"

बाबू जी में अर्थ शुचिता है। वे मितभाषी, मृदु व्यवहारकुशल, अतिथिवत्सल, अध्यवसायी, दत्तावधान, मुदितापरायण, काव्यशास्त्र के विनोद सेकालयापन करने वाले धीमान हैं। आप में विद्या के साथ विनय-का अधिवास है।

बाबूजी की कीर्तिकौमुदी उत्तरोत्तर विवर्द्धित होकर प्रकाश भवन के प्रकाश को विकीर्ण करती रहे यही हमारी शिव कामना है। भद्रमस्तु।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

चेतनादीप्त एवं स्थितप्रज्ञ

डा० एल० बी० राम 'अनन्त'
एम० ए०, पी-एच० डी०

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं ब्रज साहित्य मंडल के अध्यक्ष तथा ब्रजभारती के यशस्वी संपादक बाबू जी को अभिनंदन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन स्तुत्य कार्य है। भारतीय संस्कृति के आधुनिक चेतना दीप्त स्थितप्रज्ञ पुजारी ब्रजभारती के सेवक तथा ब्रजमण्डल के गौरव वा० वृन्दावन दास जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सुधी संसार को परिचित होने का सुअवसर देकर इस ग्रन्थ द्वारा साहित्य सेवा प्रेरणा के लिए एक ऊर्जा केन्द्र की स्थापना तो की ही गई है साथ ही भारतीय भाषा साहित्य खण्ड एवं ब्रजभाषा साहित्य खण्ड में ऐसी निधियाँ संजोई गई हैं जो अन्वेषियों की चेतना को सदा नई आभा एवं शक्ति देती रहेगी। इस महायज्ञ के अध्वर्यु एवं होता पोता आदि सभी को धन्यवाद देने में आनन्द की अनुभूति होती है। इन सभी के साथ मैं भी बाबू जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

एक भाव नमन

उमाकान्त शुक्ल

मैं बाबू जी को हिन्दी के एक ऋषि के रूप में देखता हूँ। हिन्दी के प्रति उनकी निष्ठा सर्वत्र दृष्टि-गोचर होती है। अपनी भाषा की उन्नति में ही हमारी उन्नति निहित है। इसकी पुष्टि में उनकी ही कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं :—

"आइए प्रेम और सहकार की भावना से हम सब मिल जुलकर हिन्दी सेवा की पवित्र दिशा में अग्रसर हों।"

वस्तुतः बाबूजी हिन्दी के आराधक हैं हिन्दी के कार्यकर्ताओं और हिन्दी-सेवियों के प्रति उनका अगाध प्रेम है—"हिन्दी के कार्यकर्ता राष्ट्रीय एकता के दूत हैं। उनकी गरिमा देवदूतों से कम नहीं। उनके व्यवहार में आकर्षण और वाणी में मिठास होगा तो हिन्दी के प्रति दुर्भावनाएँ भी न रहेंगी। बाबूजी की इन पंक्तियों की यदि बाबू जी के सन्दर्भ में ही व्याख्या कर दी जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

वे विनम्र मनीषी हैं। उनके प्रति मेरा सश्रद्ध 'नमन'। उनके आयुष्टोम के रूप में भावजगत की सम्पूर्ण शुभकामनाएँ सादर समर्पित।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

महान् आत्मा

रामदास शास्त्री

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

मन वचन कर्म से जो एक होता है वह महात्मा है और मन वचन कर्म द्वारा तीन तरह के आचरण करने वाला दुरात्मा होता है।

बाबू जी में महात्मा के गुण विद्यमान हैं। आज का युग इस धर्म के नितान्त विपरीत है, पर बाबूजी किसी को झूठा आश्वासन नहीं देते; वही कहते हैं, जो उनमें करने की सामर्थ्य है। सौम्यता और सरलता उनके सहज स्वाभाविक गुण हैं।

बाबू जी उच्चकुल संभव हैं तथा वैसेही उनके गुण हैं। एक घटना जो संभवतः बाबू जी को याद न होगी मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। मेरे मित्र और मैं शिवपुराण का अनुवाद 'श्यामलाल हीरालाल' प्रेस के लिए कर रहे थे। एक फर्मे का अनुवाद करके दे आते थे और पैसे नकद ले आते थे। एक दिन जब हम प्रेस में गये तो थैले में रखी स्याही की दवात का ढक्कन खुल जाने से पाण्डुलिपि खराब हो गई। ला० हीरा लाल जी ने कम्पोजीटरों से कहा कि यह स्पष्ट पढ़ा जा सकता है पर वे कम्पोज करने को तैयार नहीं थे। बा० वृन्दाबनदास जी ने, जो संभवतः तब मजिस्ट्रेट थे कहा कि मैं इसकी प्रतिलिपि कर दूंगा और हमें धन-राशि दे दी, पैसे कुछ अधिक थे, हमने कहा कि बाबूजी पैसे कुछ अधिक दे दिये हैं आपने। बाबूजी ने हँसकर उत्तर दिया कि :—

गंगा जी कौ तैरिवौ और विप्रन कौ ब्यौहार।
पार गये तौ पार है, डूबि गये तो पार॥

●

प्रकाश-पुंज बाबू वृन्दावनदास जी

मोहनलाल 'मधुकर'
एम० ए०

"राह हो साफ तो रफ्तार में सब चलते हैं,
वायु अनुकूल हो तो फूल सभी खिलते हैं;
किन्तु इस रात में कुछ ऐसे दिये भी हैं जो
बुझाओ जितना कि तुम उतने ही वे जलते हैं।"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज साहित्य मंडल के कार्यों को गति देते हुए 'ब्रजभारती' को गत दस वर्षों से निरन्तर प्रकाशित कर श्रद्धेय बाबू वृन्दावनदास जी ने कविवर नीरज की उपर्युक्त पंक्तियों को पूर्णतः चरितार्थ किया है। तभी तो १४ अप्रैल १९६८ को आगरा के सेंट पीटर्स कालेज के सभा भवन में आयोजित 'ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दी समारोह' के अध्यक्षीय भाषण में माननीय पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी को बाबूजी की प्रशंसा में कहना पड़ा था—"इधर ब्रज में एक ऐसी विभूति हमारे सामने आ रही है जिसके दिन के बारह घंटे ब्रज की साहित्यिक सेवा में ही नित्यप्रति बीत रहे हैं। भाई वृन्दावनदास जी के विषय में अधिक कहकर उन्हें ईर्ष्या का पात्र नहीं बनाना चाहता।"

बाबू वृन्दावनदास जी ही ऐतिहासिक महत्व के उस त्रिदिवसीय समारोह के स्वागताध्यक्ष थे और वहीं मैंने प्रथम बार उनके दर्शन किए।

मई १९७१ के उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फीरोजाबाद अधिवेशन और अप्रैल १९७२ के अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के भरतपुर अधिवेशन में मैं उनके निकट सम्पर्क में आया। जनवरी १९७३ में प्रकाशित 'श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादक मण्डल में बाबूजी के साथ रहकर मुझे उनकी कार्यप्रणाली और सम्पादन-कला का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हुआ।

मैंने अनुभव किया कि वे छोटे से छोटे कार्यकर्ता को भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अतः गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में उन्हें 'सबहिं मानप्रद आप अमानी' कहा जा सकता है। किन्तु वे स्वाभिमान की रक्षा का भी सदैव ध्यान रखते हैं। वस्तुतः उनका सरल, सादा, त्यागमय जीवन और मृदुल स्वभाव स्पृहणीय है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जीवन निम्नलिखित लोकोक्ति के अनुसार ढला हुआ है—

"न हलवा बन कि चट कर जांय भूखे। न कड़वा बन कि जो चक्खे सो थूके॥"

अभिनन्दनीय बाबूजी शताधिक आयु प्राप्त कर अनवरत साहित्य-सेवा में रत रहें, यही मंगलकामना है।

●

साहित्य और संस्कृति के उन्नायक

⊙

बच्चू प्रसाद सिंह

साहित्य संस्कृति और समाज के संरक्षण; संधारण और उन्नयन की भावना से अनुप्राणित मानव विरले ही होते हैं। कुछ करने की साध महान व्यक्तित्वों में ही होती है। बा० वृन्दाबनदास जी साहित्यिक संस्थाओ के प्राण रहे हैं, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन अन्तर जनपदीय परिषद आदि संस्थाओं के अध्यक्ष के रूप में आपको भूमिका सराहनीय रही है। 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' 'भारत के हिन्दू राज्य' आदि ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा के परिचायक हैं। ब्रज साहित्य मण्डल की 'ब्रज भारती' पत्रिका का आप विगत दस वर्षों से संपादन कर रहे हैं। यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित और वितरित होती है। बाबू जी का अभिनन्दन वस्तुतः ब्रज साहित्य का अभिनन्दन है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सहकारिता आन्दोलन के महारथी

डॉ० शिवशंकर उपाध्याय

समाज और देश की उन्नति की भावना रखने वालों को सेवा करने के अनेक मार्ग मिल जाते हैं। बाबू वृन्दाबन दास जी ने सेवा करने का मार्ग सहकारिता आन्दोलन को प्रबलतर करने में योग देकर अपनाया। आप जिला स्तर से प्रदेश स्तर तक उच्चपदों पर रहकर सहकारिता आन्दोलन को बल प्रदान करते रहे हैं। मथुरा जिले में सहकारी संस्थाओं को दृढ़ आधार प्रदान करने में बाबू जी का सहयोग प्रशंसनीय हैं। नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते आपने स्थानीय स्वायत्तशासन को कसा हुआ बनाया तथा नगर में शिक्षा स्वास्थ्य तथा जल विद्युत सफाई आदि की सुन्दर व्यवस्था की।

साहित्यिक और सांस्कृतिक-जागरण के लिए किये गये आपके प्रयास इस क्षेत्र के व्यक्तियों को सुविदित हैं। आपने एक धर्मशाला का निर्माण कराया है। ब्रज साहित्य मंडल के तो वे करता-धरता हैं।

बाबूजी का व्यक्तित्व साहित्य समाज और संस्कृति के सुन्दर तत्वों का संगम है। मेरी कामना है कि उनके शतशः अभिनन्दन हों।

संस्कृति-अनुरागी

डॉ० भगवान दयाल श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

समाज सुधार, सांस्कृतिक अनुराग, व्यापक अध्ययन, सुनिश्चित दृष्टिकोण तथा साहित्य सृजन और साहित्य सेवा बाबू वृन्दावनदास जी के जीवन का संक्षिप्त सार हैं। बाबू जी चार दशकों से एकसांस हिन्दी की सेवा करते चले आ रहे हैं। "श्री वृन्दावनदास प्रकाशवती ट्रस्ट" की स्थापना आपने इसी भावना से प्रेरित होकर हैं। अयोध्या में "श्री वृन्दावनदास पुस्तकालय" की स्थापना के मूल में भी यही भावना है। मथुरा स्थित हीरालाल धर्मशाला जो आपके पूज्य पिताजी के नाम से है वह भी परमार्थ की दृष्टि से बनाई गई है इसमें सुखद निवास प्राप्त कर ब्रज के दर्शनार्थी उनके सुयश को दूर दूर तक प्रसारित करते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में उनके द्वारा सम्पादित डा० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्रों के संग्रह पत्र विधा के क्षेत्र में गण्य कृतियाँ हैं। बाबूजी शताधिक वर्षों तक साहित्य सेवा करते हें। प्रभु से यही प्रार्थना है उन्हें मेरा अभिनन्दन।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज साहित्य मंडल के कार्यों को गति देते हुए 'ब्रजभारती' को गत दस वर्षों से निरन्तर प्रकाशित कर श्रद्धेय बाबू वृन्दावनदास जी ने कविवर नीरज की उपर्युक्त पंक्तियों को पूर्णतः चरितार्थ किया है। तभी तो १४ अप्रैल १९६८ को आगरा के सेंट पीटर्स कालेज के सभा भवन में आयोजित 'ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दी समारोह' के अध्यक्षीय भाषण में माननीय पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी को बाबूजी की प्रशंसा में कहना पड़ा था—"इधर ब्रज में एक ऐसी विभूति हमारे सामने आ रही है जिसके दिन के बारह घंटे ब्रज की साहित्यिक सेवा में ही नित्यप्रति बीत रहे हैं। भाई वृन्दावनदास जी के विषय में अधिक कहकर उन्हें ईर्ष्या का पात्र नहीं बनाना चाहता।"

बाबू वृन्दावनदास जी ही ऐतिहासिक महत्व के उस त्रिदिवसीय समारोह के स्वागताध्यक्ष थे और वहीं मैंने प्रथम बार उनके दर्शन किए।

मई १९७१ के उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फीरोजाबाद अधिवेशन और अप्रैल १९७२ के अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के भरतपुर अधिवेशन में मैं उनके निकट सम्पर्क में आया। जनवरी १९७३ में प्रकाशित 'श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादक मण्डल में बाबूजी के साथ रहकर मुझे उनकी कार्यप्रणाली और सम्पादन-कला का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हुआ।

मैंने अनुभव किया कि वे छोटे से छोटे कार्यकर्ता को भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अतः गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में उन्हें 'सबहिं मानप्रद आप अमानी' कहा जा सकता है। किन्तु वे स्वाभिमान की रक्षा का भी सदैव ध्यान रखते हैं। वस्तुतः उनका सरल, सादा, त्यागमय जीवन और मृदुल स्वभाव स्पृहणीय है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जीवन निम्नलिखित लोकोक्ति के अनुसार ढला हुआ है—

"न हलवा बन कि चट कर जांय भूखे। न कड़वा बन कि जो चक्खे सो थूके॥"

अभिनन्दनीय बाबूजी शताधिक आयु प्राप्त कर अनवरत साहित्य-सेवा में रत रहें, यही मंगलकामना है।

●

साहित्य और संस्कृति के उन्नायक

⊙

बच्चू प्रसाद सिंह

साहित्य संस्कृति और समाज के संरक्षण, संधारण और उन्नयन की भावना से अनुप्राणित मानव विरले ही होते हैं। कुछ करने की साध महान व्यक्तित्वों में ही होती है। बा० वृन्दावनदास जी साहित्यिक संस्थाओं के प्राण रहे हैं, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन अन्तर जनपदीय परिषद आदि संस्थाओं के अध्यक्ष के रूप में आपकी भूमिका सराहनीय रही है। 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' 'भारत के हिन्दू राज्य' आदि ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा के परिचायक हैं। ब्रज साहित्य मण्डल की 'ब्रज भारती' पत्रिका का आप विगत दस वर्षों से संपादन कर रहे हैं। यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित और वितरित होती है। बाबू जी का अभिनन्दन वस्तुतः ब्रज साहित्य का अभिनन्दन है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सहकारिता आन्दोलन के महारथी

डॉ० शिवशंकर उपाध्याय

समाज और देश की उन्नति की भावना रखने वालों को सेवा करने के अनेक मार्ग मिल जाते हैं। बाबू वृन्दाबन दास जी ने सेवा करने का मार्ग सहकारिता आन्दोलन को प्रबलतर करने में योग देकर अपनाया। आप जिला स्तर से प्रदेश स्तर तक उच्चपदों पर रहकर सहकारिता आन्दोलन को बल प्रदान करते रहे हैं। मथुरा जिले में सहकारी संस्थाओं को दृढ़ आधार प्रदान करने में बाबू जी का सहयोग प्रशंसनीय हैं। नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते आपने स्थानीय स्वायत्तशासन को कसा हुआ बनाया तथा नगर में शिक्षा स्वास्थ्य तथा जल विद्युत सफाई आदि की सुन्दर व्यवस्था की।

साहित्यिक और सांस्कृतिक-जागरण के लिए किये गये आपके प्रयास इस क्षेत्र के व्यक्तियों को सुविदित हैं। आपने एक धर्मशाला का निर्माण कराया है। ब्रज साहित्य मंडल के तो वे करता-धरता हैं।

बाबूजी का व्यक्तित्व साहित्य समाज और संस्कृति के सुन्दर तत्वों का संगम है। मेरी कामना है कि उनके शतशः अभिनन्दन हों।

●

संस्कृति-अनुरागी

डॉ० भगवान दयाल श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

समाज सुधार, सांस्कृतिक अनुराग, व्यापक अध्ययन, सुनिश्चित दृष्टिकोण तथा साहित्य सृजन और साहित्य सेवा बाबू वृन्दावनदास जी के जीवन का संक्षिप्त सार है। बाबू जी चार दशकों से एकसांस हिन्दी की सेवा करते चले आ रहे हैं। "श्री वृन्दावनदास प्रकाशवती ट्रस्ट" की स्थापना आपने इसी भावना से प्रेरित होकर है। अयोध्या में "श्री वृन्दावनदास पुस्तकालय" की स्थापना के मूल में भी यही भावना है। मथुरा स्थित हीरालाल धर्मशाला जो आपके पूज्य पिताजी के नाम से है वह भी परमार्थ की दृष्टि से बनाई गई है इसमें सुखद निवास प्राप्त कर ब्रज के दर्शनार्थी उनके सुयश को दूर दूर तक प्रसारित करते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में उनके द्वारा सम्पादित डा० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्रों के संग्रह पत्र विधा के क्षेत्र में गण्य कृतियाँ हैं। बाबूजी शताधिक वर्षों तक साहित्य सेवा करते हें। प्रभु से यही प्रार्थना है उन्हें मेरा अभिनन्दन।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

ब्रज साहित्य मंडल के कार्यों को गति देते हुए 'ब्रजभारती' को गत दस वर्षों से निरन्तर प्रकाशित कर श्रद्धेय बाबू वृन्दावनदास जी ने कविवर नीरज की उपर्युक्त पंक्तियों को पूर्णतः चरितार्थ किया है। तभी तो १४ अप्रैल १९६८ को आगरा के सेंट पीटर्स कालेज के सभा भवन में आयोजित 'ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दी समारोह' के अध्यक्षीय भाषण में माननीय पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी को बाबूजी की प्रशंसा में कहना पड़ा था—"इधर ब्रज में एक ऐसी विभूति हमारे सामने आ रही है जिसके दिन के बारह घंटे ब्रज की साहित्यिक सेवा में ही नित्यप्रति बीत रहे हैं। भाई वृन्दावनदास जी के विषय में अधिक कहकर उन्हें ईर्ष्या का पात्र नहीं बनाना चाहता।"

बाबू वृन्दावनदास जी ही ऐतिहासिक महत्व के उस त्रिदिवसीय समारोह के स्वागताध्यक्ष थे और वहीं मैंने प्रथम बार उनके दर्शन किए।

मई १९७१ के उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फीरोजाबाद अधिवेशन और अप्रैल १९७२ के अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल के भरतपुर अधिवेशन में मैं उनके निकट सम्पर्क में आया। जनवरी १९७३ में प्रकाशित 'श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादक मण्डल में बाबूजी के साथ रहकर मुझे उनकी कार्यप्रणाली और सम्पादन-कला का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हुआ।

मैंने अनुभव किया कि वे छोटे से छोटे कार्यकर्ता को भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। अतः गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में उन्हें 'सबहिं मानप्रद आप अमानी' कहा जा सकता है। किन्तु वे स्वाभिमान की रक्षा का भी सदैव ध्यान रखते हैं। वस्तुतः उनका सरल, सादा, त्यागमय जीवन और मृदुल स्वभाव स्पृहणीय है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जीवन निम्नलिखित लोकोक्ति के अनुसार ढला हुआ है—

"न हलवा बन कि चट कर जांय भूखे। न कड़वा बन कि जो चक्खे सो थूके॥"

अभिनन्दनीय बाबूजी शताधिक आयु प्राप्त कर अनवरत साहित्य-सेवा में रत रहें, यही मंगलकामना है।

●

साहित्य और संस्कृति के उन्नायक

⊙

बच्चू प्रसाद सिंह

साहित्य संस्कृति और समाज के संरक्षण, संधारण और उन्नयन की भावना से अनुप्राणित मानव विरले ही होते हैं। कुछ करने की साध महान व्यक्तित्वों में ही होती है। बा० वृन्दावनदास जी साहित्यिक संस्थाओ के प्राण रहे हैं, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन अन्तर जनपदीय परिषद आदि संस्थाओं के अध्यक्ष के रूप में आपको भूमिका सराहनीय रही है। 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' 'भारत के हिन्दू राज्य' आदि ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा के परिचायक हैं। ब्रज साहित्य मण्डल की 'ब्रज भारती' पत्रिका का आप विगत दस वर्षों से संपादन कर रहे हैं। यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित और वितरित होती है। बाबू जी का अभिनन्दन वस्तुतः ब्रज साहित्य का अभिनन्दन है।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

सहकारिता आन्दोलन के महारथी

डॉ० शिवशंकर उपाध्याय

समाज और देश की उन्नति की भावना रखने वालों को सेवा करने के अनेक मार्ग मिल जाते हैं। बाबू वृन्दाबन दास जी ने सेवा करने का मार्ग सहकारिता आन्दोलन को प्रबलतर करने में योग देकर अपनाया। आप जिला स्तर से प्रदेश स्तर तक उच्चपदों पर रहकर सहकारिता आन्दोलन को बल प्रदान करते रहे हैं। मथुरा जिले में सहकारी संस्थाओं को दृढ़ आधार प्रदान करने में बाबू जी का सहयोग प्रशंसनीय हैं। नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते आपने स्थानीय स्वायत्तशासन को कसा हुआ बनाया तथा नगर में शिक्षा स्वास्थ्य तथा जल विद्युत सफाई आदि की सुन्दर व्यवस्था की।

साहित्यिक और सांस्कृतिक-जागरण के लिए किये गये आपके प्रयास इस क्षेत्र के व्यक्तियों को सुविदित हैं। आपने एक धर्मशाला का निर्माण कराया है। ब्रज साहित्य मंडल के तो वे करता-धरता हैं।

बाबूजी का व्यक्तित्व साहित्य समाज और संस्कृति के सुन्दर तत्वों का संगम है। मेरी कामना है कि उनके शतशः अभिनन्दन हों।

संस्कृति-अनुरागी

डॉ० भगवान दयाल श्रीवास्तव
एम० ए०, पी-एच० डी०

समाज सुधार, सांस्कृतिक अनुराग, व्यापक अध्ययन, सुनिश्चित दृष्टिकोण तथा साहित्य सृजन और साहित्य सेवा बाबू वृन्दावनदास जी के जीवन का संक्षिप्त सार है। बाबू जी चार दशकों से एकसांस हिन्दी की सेवा करते चले आ रहे हैं। "श्री वृन्दावनदास प्रकाशवती ट्रस्ट" की स्थापना आपने इसी भावना से प्रेरित होकर है। अयोध्या में "श्री वृन्दावनदास पुस्तकालय" की स्थापना के मूल में भी यही भावना है। मथुरा स्थित हीरालाल धर्मशाला जो आपके पूज्य पिताजी के नाम से है वह भी परमार्थ की दृष्टि से बनाई गई है इसमें सुखद निवास प्राप्त कर ब्रज के दर्शनार्थी उनके सुयश को दूर दूर तक प्रसारित करते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में उनके द्वारा सम्पादित डा० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्रों के संग्रह पत्र विधा के क्षेत्र में गण्य कृतियाँ हैं। बाबूजी शताधिक वर्षों तक साहित्य सेवा करते हें। प्रभु से यही प्रार्थना है उन्हें मेरा अभिनन्दन।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

एकनिष्ठ साधक

राजेन्द्र कृष्ण

एक निष्ठ साधक के रूप में बाबू वृन्दावन दास जी जनपदीय भाषा आन्दोलन के कार्य को अग्रसर करने में संलग्न हैं। वस्तुतः वे ब्रजभाषा विकास कार्यक्रम के उद्देश्य को लेकर आगे बढ़े और क्रमशः समस्त जनपदीय भाषाओं का विकास उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। 'ब्रजभारती' के माध्यम से ब्रजभाषा साहित्य के और 'चतुर्मुख' आदि पत्रिकाओं द्वारा जनपदीय समस्त भाषाओं के काम में वे तन मन धन से रत हैं। मैं बाबू जगजीवनराम जी के दिल्ली में किये गये दोनों अभिनन्दनों के समय उनके निकट सम्पर्क में आया। 'एक युग एक प्रतीक' तथा 'स्ट्रगिल्स एण्ड एचीवनेन्ट' दोनों ग्रन्थों के समर्पण के समय मैं उनकी वाग्मिता से अति प्रभावित हुआ। आपकी धारा प्रवाह शैली में परिपक्व विचार श्रृंखला अजस्रभाव से प्रवाहित होती है। राजनीति और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों के वे निष्णात पंडित हैं। उनके विचार अत्यन्त सुलझे हुए होते हैं। हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी में भी आप कुशल लेखक हैं। आपकी अंग्रेजी में अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। बाबूजी का अभिनन्दन वस्तुतः साहित्य का अभिनन्दन है। उन्हें मेरा अभिवादन।

महामना

नरेन्द्र मोहन अग्रवाल
एम० ए०

साहित्य और समाज के लिए अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को लगाने की अभिलाषा वा० वृन्दावन दास जी के जीवन का लक्ष्य है। वे इतने उदारचेता हैं कि सैकड़ों संस्थाएँ उनके दान से लाभान्वित हुई हैं। साहित्यिक समारोहों के आयोजक, साहित्यिक संस्थाओं के पोषक एवं साहित्य सर्जकों के अर्चक के रूप में आप हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हैं। आपका व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के लिए एक समर्पित व्यक्तित्व है। आप निरहंकार और मिलनसार हैं, सौजन्य और लोकप्रियता, शिष्टाचार और मृदुभाषिता बाबूजी के स्वभाव का अभिन्न अंग है। हिन्दी भाषी क्षेत्र ही नहीं अहिन्दी भाषी क्षेत्र तक भी आपकी यशोगाथा किसी न किसी रूप में विस्तरित है। ब्रज साहित्य मण्डल एवं ब्रजभारती के लिए तन मन धन प्राणपण से जो आपने उत्सर्ग किया है वह अनुकरणीय है। वे सच्चे अर्थों में महामना हैं। उनका हार्दिक अभिनन्दन।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

अध्यवसायी एवं अध्ययनशील

डा० श्यामसिंह 'शशि'
एम० ए०, पी-एच० डी०

'ब्रजभारती' पत्रिका के संपादक बा० वृन्दावनदास जी को सर्वप्रथम मैंने बा० जगजीवन राम जी के अभिनन्दन समारोह में भाषण देते हुए देखा था। उसी समय भाई कन्हैयालाल चंचरीक व डा० आनन्द-स्वरूप पाठक ने मेरा उनसे परिचय कराया। पत्रकार होने के नाते अपने सहधर्मी बाबूजी से परिचय प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष हुआ। बाबूजी की भाषण शैली बड़ी प्रभावशाली है राष्ट्रपति श्री गिरि, श्री उमाशंकर दीक्षित, काका साहेब कालेलकर श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा, सेठ गोविन्ददास, डा० नगेन्द्र, डा० विजयेन्द्र स्नातक आदि की उपस्थिति में आपका भाषण प्रशंसनीय रहा तथा उपस्थित जन समुदाय ने उसे अत्यन्त रुचि लेकर श्रवण किया। उसके उपरान्त बाबू जगजीवनराम जी को अंग्रेजी का अभिनन्दन ग्रन्थ 'स्ट्रगिल्स एण्ड एचीवमेन्टस्" भेंट करते समय जिसका समारोह लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लो की अध्यक्षता में हुआ था, बाबूजी ने प्रमित शब्दों में अपने कथ्य को बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। आपके द्वारा सम्पादित ब्रजभारती पत्रिका भी भाई चंचरीक के सौजन्य से अनेक बार पढ़ने को मिली है, सफल सम्पादक के गुण बाबूजी में बहुलांश में विद्यमान हैं। बाबू जी जिस पीढ़ी से सम्बन्धित हैं वह पीढ़ी ही अपनी कर्मण्यता अध्ययनशीलता एवं अध्यवसाय के कारण पूजनीय है। अभिनन्दन के इस अवसर पर उन्हें मेरा प्रणाम।

●

बहुज्ञ साहित्यज्ञ

श्रीमती कुसुम श्रीवास्तव
एम० ए०

ब्रज जनपद के प्रत्येक समारोह के साथ बाबू वृन्दाबनदास जी का नाम स्वतः ही जुड़ा रहता है। उनकी बहुज्ञता, सामाजिकता और साहित्यिकता ने उनके 'स्व' की परिधि को बहुत विस्तृत कर दिया है। प्रत्येक ब्रजवासी उनके नाम को अपने आयोजन के साथ इस विश्वास से जोड़ लेता है कि बाबू जी का पूरा पूरा सहयोग उन्हें मिलेगा ही। बाबूजी के विशाल हृदय में सभी के लिए स्थान है।

साहित्यिक कार्यों के आयोजक, शिक्षा संस्थाओं के संस्थापक बाबूजी में एक कर्मण्य और लगनशील व्यक्तित्व देखकर उनके सहयोग की अपेक्षा करते हैं जो उन्हें बाबूजी से सहज ही प्राप्त हो जाता है। बाबू जी एक सफल पत्रसंपादक तो हैं ही उच्च श्रेणी के लेखक भी हैं। उनकी एक दर्जन से अधिक रचनाएँ हिन्दी जगत में आ चुकी हैं। उनसे ब्रज, ब्रजभारती एवं ब्रजवासियों को बड़ी आशायें हैं।

उनका अभिनन्दन मां सरस्वती का अभिनन्दन है। उन्हें मेरी प्रणति।

●

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेरणा का प्रकाश

⊙

डा० राजेन्द्र रंजन

समाज के लिये समर्पित व्यक्तित्व निश्चित ही अभिनन्दनीय होते हैं और समाज उनका अभिनन्दन करता भी है। परन्तु उस व्यक्तित्व की प्रेरणा उससे भी अधिक अभिनन्दनीय होती है। डॉ० रांगेय राघव ने रत्ना की बात मेरी भवबाधा हरो, भारती का सपूत, लोईका ताना, लखमा की आँखें क्रमशः तुलसी, विहारी, भारतेन्दु कबीर और विद्यापति के जीवन से संबंधित उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में डा० राघव ने स्पष्ट किया है, इन महापुरुषों के जीवन के निर्माण में रत्ना, सुशीला, भारतेन्दु की पत्नी, मन्नो बीबी, लोई और विद्यापति की पत्नी का कितना महान् योगदान था। 'यशोधरा जीत गई' में तो उन्होंने बड़े प्रखर रूप में इस तथ्य को उजागर किया है कि पुरुष घर के बाहर ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा करता है परन्तु यदि जीवन सत्य है, यदि प्रेम सत्य है तो वह इस सन्दर्भ में नारी का ऋणी है कि वह उसे ऐसा करने का अवसर देती है। वास्तव में पुरुष घर-परिवार की परिधि के बाहर तभी क्रियाशील हो सकता है, परिवार की सत्ता से ऊपर तभी उठ सकता है जबकि उसकी पत्नी उसके परिवार को सम्हाल सके। इतना ही नहीं सामाजिक व्यक्ति को समाज में संघर्ष करना पड़ता है, और अनेक मनचले लोगों का अकारण ही क्रोध-भाजन होना पड़ता है पर सामाजिक व्यक्ति यदि क्रुद्ध होने लगे तो उसका कार्य संभव नहीं, इसलिये वह वहाँ तो मुसका कर उस क्रोध को पी जाता है पर घर में उस क्रोध की अभिव्यक्ति स्वतः ही हो जाती है, और अन्त में उस नारी को ही उसे सहन करना होता है। एक बार गांधी जी से किसी ने पूछा—बापू! आपको तो कभी क्रोध नहीं आता? बापू ने कहा—'बा' से पूछो।

यही बात मैंने बा० वृन्दावनदास जी के संबंध में सत्य पाई है। बाबू जी से मेरा परिचय सन् १९६५ में हुआ, और वह उनके व्यक्तित्व के आकर्षण से आज इतना गहरा हो चुका है कि उनके परिवार के और सभी सदस्य भी अब मेरे अपने हो गये हैं। और यदि उनके परिवार के संयोजक सूत्र का परिचय आपसे कराना चाहूँ तो गौरवर्ण की भरी हुई देह, शील से झुकी हुई आँखें, मुसकाते हुए ओंठ और स्नेह से जगमगाती मुख मुद्रा मेरे सामने तरंगित हो जाती हैं।

उन्हें प्रातःकाल मैंने देखा है, हाथ में पूजा की कंडिया लिये जिसमें फूल, यमुना जल की छोटी गिलसिया और पूजा के अन्य उपचार होते हैं। और वे श्रीद्वारकाधीश मंदिर की ओर जाती हैं—शृंगार की झाँकी करने के लिये। उसके बाद मंदिर में अनेक स्त्रियां उन्हें घेरे रहती हैं, और वे डूबी होती हैं, भगवतचर्चा-प्रसंग में उनके घर में पाठ-पूजा, कीर्तन-कथा का आयोजन चलता ही रहता है।

बाबू जी हैं तो आस्तिक ही पर उनका भजन तो जनता-जनार्दन की सेवा-चिन्तन और मनन ही है। वे अपना प्रत्येक कार्य अपने दृष्टिकोण से करते हैं। कोआपरेटिव की मीटिंग के लिए वे लखनऊ जाते हैं, सम्मेलन की अध्यक्षता करने वे इलाहाबाद जाते हैं, जनपदीय-सम्मेलन का आयोजन करने के लिये उन्हें हरिद्वार जाना होता है परन्तु उनके इन लक्ष्यों में बातों ही बातों में गोमती का स्नान, संगम का स्नान और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हृषीकेश-लक्ष्मण झूला आदि की तीर्थयात्रा और हरि की पैंड़ी का महात्म्य अपने आप जुड़ जाता है तो इसका कारण उनकी धर्मपत्नी होती हैं।

बाबू जी यथार्थ में चिन्तक हैं। परन्तु उनका चिन्तन हिल जाता है और वे अपने आयोजनों के साथ ही अयोध्या में मंदिर बनवाने, प्याऊ लगवाने, फर्श बनवाने का प्रस्ताव जान लेते हैं। अयोध्या में पति के द्वारा पुस्तकालय की स्थापना होती है तो पत्नी के द्वारा मंदिरों का जीर्णोद्धार क्यों नहीं होना चाहिये ? पत्नी के द्वारा पुस्तकालयों को पुस्तकों दान तो होनी ही चाहिये और यह तर्क वे मानते हैं और फिर वे सभी कार्य हो जाते हैं।

बाबूजी उनके कार्यक्रमों में अपने कार्यक्रमों को इस प्रकार मिला देते हैं कि भक्ति-भावना और साहित्य-सेवा का रसायन तैयार हो जाता है। उद्यापन हुआ है तो ब्रह्म भोज तो होगा ही अब बाबू जी साहित्यिक ब्राह्मणों को बुलाकर कार्यक्रम को संपन्न करते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि आज बाबूजी का परिवार खूब फल-फूल रहा है तो इसका कारण उनकी पत्नी श्रीमती प्रकाशवती देवी की धार्मिक-आस्था ही है। घण्टों पूजा सेवा करना, दान करना उनका स्वभाव है और उनके इस सुसंस्कृत स्वभाव का कारण उनके पिताजी का जीवन है। उनके पिता श्री लाला गोपाल-दास जी मथुरा के प्रतिष्ठित लठ थे और उन्हें हजारों संस्कृत की सूक्तियां एवं ब्रजभाषा और हिन्दी कण्ठस्थ थीं, उनकी धार्मिक आस्था ही उनकी पुत्री में फली फूली है।

बाबू जी तो सार्वजनिक व्यक्ति हैं, उन्हें अपने कार्य में अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। एक दिन मैं और बाबू जी रात को साढ़े आठ बजे के लगभग सासनी से आ रहे थे। बोले—मुझे घर में अब गरम खाना मिलेगा, वे प्रतीक्षा कर रही होंगी। उनके आने का जाने का समय नियत नहीं होता, जन नेता ठहरे। अब उनके ताजे भोजन की व्यवस्था वे बड़ी सावधानी से करती हैं। बाहर आने-जाने की बात रहने दें, तो घर में ही, बाबूजी तो टेबिल पर सिर झुकाये अपनी धुन में मस्त हैं और ऊपर से आवाज आ रही है—"सुन रहे हौ, अब न्हाइ लेउ" और बाबू जी ने 'हाँ' कह दी और फिर वही अपनी धुन। ऊपर से फिर आवाज आई। आवाज चाहे कितनी ही आवें, पर उस आवाज में सदा नम्रता ही होती है कभी भी झुंझलाहट का स्वर नहीं।

बाबू वृन्दावनदास जी के संबंधी आते हैं, बाबू जी बड़े उत्साह से अट्टहास के साथ उनका स्वागत करते हैं; पर इसके बाद का सारा दायित्व मानो उनका नहीं है, वह उनकी धर्मपत्नी का है। और वे बड़े कौशल से इसका निर्वाह करती भी हैं। यदि न करें तो बाबूजी आठ-आठ घण्टे मेज पर जम कर कार्य नहीं कर सकते और हर समय सभाओं में नहीं घूम सकते। अतः मेरी तो मान्यता यही है कि उनके सार्व-जनिक जीवन का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमती प्रकाशवतीदेवी को ही दिया जाना चाहिये।

उनमें जैसी कोमलता है, जैसी सज्जनता है, वह कहने की नहीं अनुभव करने की बात है। हरिद्वार की यात्रा में बाबूजी के परिवार के साथ मैं भी था। प्रातःकाल मैं अपनी पत्नी के भाई के यहां चला गया, वहां दोपहर हो गई, इसलिये भोजन भी वहीं करना पड़ा परन्तु जब लौट कर आया तो वे बोलीं—रंजन जी। तुम्हारी खानी तौ बहुत देर कौ रक्खौ ऐ।" मैं उनके इस स्नेह भाव से गद्‌गद् हो गया। ऐसे प्रसंग एक बार नहीं, न जाने कितने हैं जिनमें उनकी गुणवत्ता, स्नेह, और ममता की भावना उभर कर आ जाती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

प्रेरणा का प्रकाश

⊙

डा० राजेन्द्र रंजन

समाज के लिये समर्पित व्यक्तित्व निश्चित ही अभिनन्दनीय होते हैं और समाज उनका अभिनन्दन करता भी है। परन्तु उस व्यक्तित्व की प्रेरणा उससे भी अधिक अभिनन्दनीय होती है। डॉ० रांगेय राघव ने रत्ना की बात मेरी भवबाधा हरो, भारती का सपूत, लोईका ताना, लखमा की आँखें क्रमशः तुलसी, विहारी, भारतेन्दु कबीर और विद्यापति के जीवन से संबंधित उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में डा० राघव ने स्पष्ट किया है, इन महापुरुषों के जीवन के निर्माण में रत्ना , सुशीला, भारतेन्दु की पत्नी, मन्नो बीबी, लोई और विद्यापति की पत्नी का कितना महान् योगदान था। 'यशोधरा जीत गई' में तो उन्होंने बड़े प्रखर रूप में इस तथ्य को उजागर किया है कि पुरुष घर के बाहर ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा करता है परन्तु यदि जीवन सत्य है, यदि प्रेम सत्य है तो वह इस सन्दर्भ में नारी का ऋणी है कि वह उसे ऐसा करने का अवसर देती है। वास्तव में पुरुष घर-परिवार की परिधि के बाहर तभी क्रियाशील हो सकता है, परिवार की सत्ता से ऊपर तभी उठ सकता है जबकि उसकी पत्नी उसके परिवार को सम्हाल सके। इतना ही नहीं सामाजिक व्यक्ति को समाज में संघर्ष करना पड़ता है, और अनेक मनचले लोगों का अकारण ही क्रोध-भाजन होना पड़ता है पर सामाजिक व्यक्ति यदि क्रुद्ध होने लगे तो उसका कार्य संभव नहीं, इसलिये वह वहाँ तो मुसका कर उस क्रोध को पी जाता है पर घर में उस क्रोध की अभिव्यक्ति स्वतः ही हो जाती है, और अन्त में उस नारी को ही उसे सहन करना होता है। एक बार गांधी जी से किसी ने पूछा—बापू ! आपको तो कभी क्रोध नहीं आता ? बापू ने कहा—'बा' से पूछो।

यही बात मैंने बा० वृन्दावनदास जी के संबंध में सत्य पाई है। बाबू जी से मेरा परिचय सन् १९६५ में हुआ, और वह उनके व्यक्तित्व के आकर्षण से आज इतना गहरा हो चुका है कि उनके परिवार के और सभी सदस्य भी अब मेरे अपने हो गये हैं। और यदि उनके परिवार के संयोजक सूत्र का परिचय आपसे कराना चाहूँ तो गौरवर्ण की भरी हुई देह, शील से झुकी हुई आँखें, मुसकाते हुए ओंठ और स्नेह से जगमगाती मुख मुद्रा मेरे सामने तरंगित हो जाती हैं।

उन्हें प्रातःकाल मैंने देखा है, हाथ में पूजा की कंडिया लिये जिसमें फूल, यमुना जल की छोटी गिलसिया और पूजा के अन्य उपचार होते हैं। और वे श्रीद्वारकाधीश मंदिर की ओर जाती हैं—शृंगार की झाँकी करने के लिये। उसके बाद मंदिर में अनेक स्त्रियां उन्हें घेरे रहती हैं, और वे डूबी होती हैं, भगवतचर्चा-प्रसंग में उनके घर में पाठ-पूजा, कीर्तन-कथा का आयोजन चलता ही रहता है।

बाबू जी हैं तो आस्तिक ही पर उनका भजन तो जनता-जनार्दन की सेवा-चिन्तन और मनन ही है। वे अपना प्रत्येक कार्य अपने दृष्टिकोण से करते हैं। कोआपरेटिव की मीटिंग के लिए वे लखनऊ जाते हैं, सम्मेलन की अध्यक्षता करने वे इलाहाबाद जाते हैं, जनपदीय-सम्मेलन का आयोजन करने के लिये उन्हें हरिद्वार जाना होता है परन्तु उनके इन लक्ष्यों में बातों ही बातों में गोमती का स्नान, संगम का स्नान और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

हृषीकेश-लक्ष्मण झूला आदि की तीर्थयात्रा और हरि की पैंड़ी का महात्म्य अपने आप जुड़ जाता है तो इसका कारण उनकी धर्मपत्नी होती हैं।

बाबू जी यथार्थ में चिन्तक हैं। परन्तु उनका चिन्तन हिल जाता है और वे अपने आयोजनों के साथ ही अयोध्या में मंदिर बनवाने, प्याऊ लगवाने, फर्श बनवाने का प्रस्ताव जान लेते हैं। अयोध्या में पति के द्वारा पुस्तकालय की स्थापना होती है तो पत्नी के द्वारा मंदिरों का जीर्णोद्धार क्यों नहीं होना चाहिये ? पत्नी के द्वारा पुस्तकालयों को पुस्तकों दान तो होनी ही चाहिये और यह तर्क वे मानते हैं और फिर वे सभी कार्य हो जाते हैं।

बाबूजी उनके कार्यक्रमों में अपने कार्यक्रमों को इस प्रकार मिला देते हैं कि भक्ति-भावना और साहित्य-सेवा का रसायन तैयार हो जाता है। उद्यापन हुआ है तो ब्रह्म भोज तो होगा ही अब बाबू जी साहित्यिक ब्राह्मणों को बुलाकर कार्यक्रम को संपन्न करते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि आज बाबूजी का परिवार खूब फल-फूल रहा है तो इसका कारण उनकी पत्नी श्रीमती प्रकाशवती देवी की धार्मिक-आस्था ही है। घण्टों पूजा सेवा करना, दान करना उनका स्वभाव है और उनके इस सुसंस्कृत स्वभाव का कारण उनके पिताजी का जीवन है। उनके पिता श्री लाला गोपाल-दास जी मथुरा के प्रतिष्ठित लठ थे और उन्हें हजारों संस्कृत की सूक्तियां एवं ब्रजभाषा और हिन्दी कण्ठस्थ थीं, उनकी धार्मिक आस्था ही उनकी पुत्री में फली फूली है।

बाबू जी तो सार्वजनिक व्यक्ति हैं, उन्हें अपने कार्य में अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। एक दिन मैं और बाबू जी रात को साढ़े आठ बजे के लगभग सासनी से आ रहे थे। बोले—मुझे घर में अब गरम खाना मिलेगा, वे प्रतीक्षा कर रही होंगी। उनके आने का जाने का समय नियत नहीं होता, जन नेता ठहरे। अब उनके ताजे भोजन की व्यवस्था वे बड़ी सावधानी से करती हैं। बाहर आने-जाने की बात रहने दें, तो घर में ही, बाबूजी तो टेबिल पर सिर झुकाये अपनी धुन में मस्त हैं और ऊपर से आवाज आ रही है—"सुन रहे हौ, अब न्हाइ लेउ" और बाबू जी ने 'हाँ' कह दी और फिर वही अपनी धुन। ऊपर से फिर आवाज आई। आवाज चाहे कितनी ही आवें, पर उस आवाज में सदा नम्रता ही होती है कभी भी झुंझलाहट का स्वर नहीं।

बाबू वृन्दावनदास जी के संबंधी आते हैं, बाबू जी बड़े उत्साह से अट्टहास के साथ उनका स्वागत करते हैं; पर इसके बाद का सारा दायित्व मानो उनका नहीं है, वह उनकी धर्मपत्नी का है। और वे बड़े कौशल से इसका निर्वाह करती भी हैं। यदि न करें तो बाबूजी आठ-आठ घण्टे मेज पर जम कर कार्य नहीं कर सकते और हर समय सभाओं में नहीं घूम सकते। अतः मेरी तो मान्यता यही है कि उनके सार्व-जनिक जीवन का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमती प्रकाशवतीदेवी को ही दिया जाना चाहिये।

उनमें जैसी कोमलता है, जैसी सज्जनता है, वह कहने की नहीं अनुभव करने की बात है। हरिद्वार की यात्रा में बाबूजी के परिवार के साथ मैं भी था। प्रातःकाल मैं अपनी पत्नी के भाई के यहां चला गया, वहां दोपहर हो गई, इसलिये भोजन भी वहीं करना पड़ा परन्तु जब लौट कर आया तो वे बोलीं—रंजन जी। तुम्हारी खानी तौ बहुत देर कौ रक्खौ ऐ।" मैं उनके इस स्नेह भाव से गद्‌गद् हो गया। ऐसे प्रसंग एक बार नहीं, न जाने कितने हैं जिनमें उनकी गुणवत्ता, स्नेह, और ममता की भावना उभर कर आ जाती है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

बाबू जी कहा करते हैं कि हमें तिथि, तारीखों के विषय में कभी कठिनाई सामने नहीं आती, हमारी पत्नी चलती फिरती जन्त्री ही हैं। विशाल परिवार के अनेक स्त्री, पुरुष और बच्चों के जन्म, और विवाहादि की तिथियाँ मय वर्ष के उन्हें कण्ठस्थ हैं। उनकी इस विलक्षण स्मरण शक्ति के फलस्वरूप परिवार से सम्बन्धित सभी घटनाओं का कालक्रम हस्तामलक सा रहता है और किसी भी पुरानी घटना का स्मरण कर उसकी तिथि का बोध त्वरित हो जाता है।

भावना अपने आप में बहुत सशक्त तर्क होता है। बाबूजी बौद्धिक हैं और हर पहलू को अपने ढंग से सोचते हैं पर जहाँ उनकी भावना आ जाती है, उनका तर्क परास्त हो जाता है। हरि की पैंड़ी पर अब सब लोग गये तो देखने लगे कि कहाँ स्नान करना उपयुक्त होगा? बाबू जी ने पुल के पार की एक एकान्त और रमणीय सीढ़ियों को चुना और उनकी धर्मपत्नी ने ब्रह्मकुंड में ही स्नान करने का महत्व बताया। बात उन्हीं की चली क्योंकि भावना, तर्कों में भी सबसे सशक्त तर्क होता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

Bhuvan Vani Trust Collection, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi